

हिन्दी विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक
श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,
सिद्धान्त-वारिधि, शब्द-रात्नाकर, एम, आर, ए, एच,
तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित ।

द्वितीय भाग

[अभिप्रेक्षित—पाठ्य, ति]

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. II.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, *Prāchyavidyāmahārṇava*,

Siddhānta-vāridhi, *Sabda-ratnākara*, M. R. A. S.,

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of *Bangiya Sāhitya Parishad*
and *Kāyastha Patrikā* ; author of *Castes & Sects of Bengal*, *Mayura-*
bhanja Archaeological Survey Reports and *Modern Buddhism* ;

Hony. Archaeological Secretary, Indian Research Society ;

Member of the Philological Committee, Asiatic

Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by R. C. Mitra, at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, *Visvakosha Lane*, *Baghbazar*, *Calcutta*.

1917

To

His Excellency

THE RIGHT HON'BLE FREDERIC JOHN NAPIER,
BARON GHELMSFORD.

P. C., G. M. S. I., G. C. M. G., G. M. I. E.,

VICEROY

AND

GOVERNOR-GENERAL OF INDIA

THIS VOLUME OF THE

HINDI VISVAKOSHA

OR

THE ENCYCLOPÆDIA INDICA

BY KIND PERMISSION OF HIS EXCELLENCY

IS

most respectfully dedicated

by his humble servant

the Editor

as a token of his loyal devotion and admiration

for His Excellency's great interest in the

cause of the

Education of India.

हिन्दी

विश्वकोष

(द्वितीय भाग)

अभिप्रहृत (सं० त्रि०) अभि-प्र-हृन्-क्त । आहत, जूझ-मो, घायल, मार खाये हुआ, मारा गया ।

अभिप्राणन (सं० क्ली०) अभि-प्र-अन-ल्युट् । निश्वास, उच्छ्वास, निर्गम, उदगमन, तवखीर, भाप ।

अभिप्रातर् (सं० अर्थ०) अतिशयं प्रातः । अतिशय प्रत्यूष, अतिप्रभात, बहुत सवेरे, ज्य.दा तड़के ।

अभिप्राप्त (सं० त्रि०) आगत, हस्तगत, उपस्थित, आया हुआ, दस्तयाव, जो आ पहुँचा हो ।

अभिप्राप्ति (सं० स्त्री०) अभिमुख्येन प्राप्तिः, प्रादि-समास । अभिमुख-प्राप्ति, सम्मुख प्राप्ति, पहुँच, आमद ।

अभिप्राय (सं० पु०) अभिप्रैति अभिगच्छति कार्य-सिद्धिमनेन, अभि-प्र-इण करणे अच् । १ आशय, भाव, मतलब, गुरज् । २ छन्द । ३ आशय, मकसद, इरादा । ४ विष्णु । (त्रि०) ५ अभिगामी, पाम पहुँचनेवाला ।

अभिप्री (सं० त्रि०) अभिप्रीणाति, अभि-प्री-क्तिप् । सकल प्रकार तर्पण करनेवाला, जो हर सूरतसे खुश रहता हो ।

अभिप्रीति (सं० स्त्री०) १ उत्साह, आनन्द, प्रसन्नता, हौसला, खुशी, रज़ामन्दी । २ अभिलाष, इच्छा, खाँहिश, मर्जी ।

अभिप्रेक्ष्य (सं० अर्थ०) दृष्टि डालकर, निगाह उठाकर ।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभिप्रेयते ध्व, अभि-क्त । १ अभीष्ट, इरादा किया हुआ । २ अभि-चाहा गया । ३ खोकात, सभानित, मञ्जुपमन्द किया हुआ । ४ इच्छक, खाँहिशमन्द, वाला ।

अभिप्रेत्य (सं० त्रि०) अभिप्रेयते, अभि-प्र-इ-तुगागमः । १ अभिप्रेतव्य, अभिप्रायणीय, अ-णीय, खाँहिश रखने काविल, जो चाहने लाय-अभिप्रेप्तु (सं० त्रि०) अभिप्राप्तिमिच्छुः, आ-प्-सन्-उ । पानेके निमित्त इच्छक, जो मि-खाँहिशमन्द हो ।

अभिप्रेयमाण (सं० त्रि०) खदेरा जाते जो हटाया जा रहा हो ।

अभिप्रीचण (सं० क्ली०) अभि सर्वतः प्रीचणं स-विशेषः । सकल दिक् जलादि द्वारा सेक-संस्कार, छिड़काव ।

अभिप्लव (सं० पु०) अभिप्लवन्ते स्वर्लोकमभिग-अभि-प्ल-गतौ अच् । १ प्राजापत्य नामक अ-सकल । २ वर्षसाध्य गवामयन यज्ञवाले प्रति-चौबीस दिनके मध्यस्थित चार-संख्यक छः-अर्थात् चौबीसको चारसे भाग देनेपर प्रत्येक ।

जो छः दिन घाते, उनके एक-एक अंगका छः

वाला समय। ३ छः दिन साध्य स्तोमादि पाठसाधक गवामयनाह्न याग विधि। भावे अप्। ४ उपद्रव, उपद्रव, सकल दिक् लम्फन, सकल दिक् गमन, भगड़ा, बखेड़ा, चारो चोरकी दोड़-धूप।

अभिभूत (सं० त्रि०) मय्यक् इतम्, अभि-इ-त्त।

१ सकल दिक् व्याप्त, चारो भीर भरा हुआ। २ सकल प्रकार मित्त, सब तरह लवरेज। ३ अभिभूत, अधोन, मातृहीन पड़ा हुआ।

अभिवल (सं० स्त्री०) गुणवेगमें स्थानविधि पर मिलनेकी शोक्ति, छिप कर किसी अखाड़ेमें भानिका इकार।

अभिवृद्धि (सं० स्त्री०) बुद्धिन्द्रिय, रुक्त, शक्त, समभक्ता भीजार।

अभिभङ्ग (सं० त्रि०) अभितो भङ्गो यथात्, ध-व-द्रो०। १ भङ्ग करनेवाला, जो तोड़ डालता है। २ भङ्गशील, टूटा हुआ। (पु०) ३ भङ्गकरनेवाला व्यक्ति, जो शख्स तोड़नेवाला है।

अभिभङ्गत् (सं० त्रि०) तोड़ डालनेवाला, जो तोड़ रहा है।

अभिभर्त् (सं० अव्य०) प्रेमोके प्रति, स्वामीके सम्मुख, आशककी तर्फ, खादिन्दके सामने।

अभिभव (सं० पु०) अभि-भू-अप्। १ पराजय, हार। २ तिरस्कार, घनादर, वैद्वज्जती। ३ रोगादि द्वारा जड़ोभाव, बीमारी वगैरहसे संख्त पड़ जाना। ४ योग, जोड़। (त्रि०) ५ शक्तिसम्पन्न, गालिब, हाथी।

अभिभवन (सं० स्त्री०) अभि-भू-लुगट्। अभिभव, पराजय, रोगादि द्वारा ज्ञानरोध, गिकस्त, हार, बीमारी वगैरहसे होयका न रहना।

अभिभवनीय (सं० त्रि०) अभिभूत होनेवाला, जिसे गिकस्त दें।

अभिभा (सं० स्त्री०) अभि-भा-अड्। १ प्रेत, साया। २ पराजय, अभिभव, गिकस्त, हार। ३ सकल दिक् दीप्ति, चारो भीर रोगनो, उल्कप, सबकृत, बढ़ाई।

अभिभायतन (सं० स्त्री०) १ उल्कपका स्थान,

सबकृतको जगह। २ बौद्ध उल्कपके पाठ सोतका नाम।

अभिभार (सं० पु०) अभि-भू-अञ्, अभिं अति-श्रयितो भारो यस्य, प्रादि-वडुनी०। अतिभारयुक्त, निहायत यज्ञो।

अभिभावक (सं० त्रि०) अभिभवति, अभि-भू-ण्व्। अभिभवकारी, पराजयकारी, तिरस्कारकारी, जड़ो-भावकारी, सबकृत ले जानेवाला, जो हरा देता है, वैद्वज्जत करनेवाला। २ आत्मीय स्वजन, तत्वा-वधायक, सुरब्धी।

अभिभावन (सं० स्त्री०) विजय, जीत।

अभिभाविन् (सं० त्रि०) अभिमवति, अभि भू-णिनि। तिरस्कारकारी, पराजयकारी, वैद्वज्जत करनेवाला, जो हरा देता है। 'सर्वेभ्योभिभाविना' (२५ । ११)

अभिभावी (सं० पु०) अभिभाविन् देखो।

अभिभावक (सं० त्रि०) अभि-भू-उकञ्। तिरस्कार-कारी, पराजयकारी, जड़ोभावकारी, वैद्वज्जत करने-वाला, जो हरा देता है, होय उड़नेवाला।

अभिभाषण (सं० स्त्री०) अभितो भाषणम्, प्रादि सं०। आभिमुख्य कथन, सम्मुखका बोलना, सामनेकी मुफ्तगू, जो बात ब्रबह है।

अभिभाषमाण (सं० त्रि०) बोल देनेवाला, जो बात कह उठता है।

अभिभाषित (सं० त्रि०) कथित, निवेदित, कहा गया, जिससे कह चुकें।

अभिभाषिन् (सं० त्रि०) आभिमुख्ये न भाषति, अभि-भाष्-णिनि। आभिमुख्य कथक, जो सम्मुख बोलता है, सामने कहनेवाला, जो बात कर रहा है।

अभिभाष्य (सं० त्रि०) कथनीय, कहा जानेवाला, जिससे बात की जाये।

अभिभाष्यमाण (सं० त्रि०) कहा जाते हुआ, जिससे बात करते हैं।

अभिभू (सं० त्रि०) अभिभवति, अभि-भू-क्लिप्। अभिभावक, पराजयकारी, तिरस्कारक, सबकृत ले जानेवाला, जो हरा देता है, इज्जत बिगाड़नेवाला।

अभिभूत (सं० त्रि०) अभि-भू-क्त। १ किंकर्तव्य-

विमूढ, जो ध्वरा गया हो। २ पराभूत, मगलुव, हारा हुआ। ३ व्याकुल, तकलीफ़ज्दह।
 अभिभूति (सं० स्त्री०) अभिभू-क्तिन्। १ पराभव, पराजय, शिकस्त, हार। २ अवज्ञा, वैद्वज्जती। (त्रि०) ३ अभिभावक, पराजयकारी, गालिब आने-वाला, जो जीत लेता हो।
 अभिभूत्योजम् (वे० स्त्री०) १ उत्कृष्ट शक्ति, ऊंची ताकत। (त्रि०) २ उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न, ऊंची ताकत रखनेवाला।
 अभिभूय (सं० स्त्री०) अभिभू भावे क्यप्। सकल दिक् प्रसार, सकल प्रकार स्थिति, उत्कर्ष, चारो ओर फैलाव, सब तरह गुजारा, सबकृत।
 अभिभूयन् (सं० त्रि०) अभिभवति, अभिभू-कर्तरि बाहुलकात्, ड्वनिप्। अभिभावक, तिरस्कारक, पराजयकारी, हरानेवाला, जो गालिब आता हो, भिड़की देनेवाला। (स्त्री०) डीप्। अभिभूवरी।
 अभिमण्डन (सं० स्त्री०) १ शृङ्गार, सजावट, वनाव-जुनाव। २ प्रतिपादन, समर्थन, अपनी बातका रखना।
 अभिमण्डित (सं० त्रि०) विभूषित, अलङ्कृत, सजा हुआ, जो संवारा गया हो।
 अभिमत (सं० त्रि०) अभिमन्यते स्म, अभि मन-क्त। १ अभिमानका विषयीभूत, जिसके लिये घमण्ड करे। २ सम्मत, मञ्जूर, माना हुआ। ३ आहत, इज्जत किया गया। ४ अभोष्ट, खाहिय किया हुआ। (स्त्री०) भावे क्त। ५ अभिमान, घमण्ड। ६ मिथ्या-ज्ञान, भूठो समझ। ७ अभिलाप, इच्छा, खाहिय, मर्जी।
 अभिमतता (सं० स्त्री०) १ अनुरूपता, काम्यता, शवाहृत, खाहियमन्दी। २ प्रेम, उत्कण्ठा, इशक, चाह।
 अभिमति (सं० स्त्री०) अभि-मन्-क्तिन्। १ अभिमान, गुरूर। २ मिथ्याज्ञान, भूठो समझ। ३ आदर, सम्मान, तवक्का, इज्जत। ४ अभिलाप, खाहिय।
 अभिमनस् (सं० त्रि०) अभिसुखं सम्पादनोन्मुखं मनो यस्य, बहुव्री०। १ कार्य करनेमें उन्मुख वा उद्यत,

काममें मन लगानेवाला। २ दस, तुष्ट, आच्छा, सेर, छका हुआ। ३ उत्कण्ठित, खाहियमन्द।
 अभिमन्तव्य (सं० त्रि०) अभिमन्यते, अभि-मन्-कर्मणि तव्य। ज्ञातव्य, खयाल करने काबिल। २ स्पृहनीय, चाहने लायक। ३ अधिक मान किया जानेवाला, जिसको ज्यादा इज्जत की जाये।
 अभिमन्तु (सं० स्त्री०) चोटका चलाना, नाशका करना।
 अभिमन्तु (सं० त्रि०) इच्छुक, उत्कण्ठित, स्पृष्टा-युक्त, लालची, खाहियमन्द।
 अभिमन्तोस् (वे० अथ्य०) हानि पहुंचानेको, नुक-सान करनेके लिये।
 अभिमन्त्र (सं० स्त्री०) अभि-मन्त्र चुरा० अच्। मौमांसकोक्त मन्त्रपाठपूर्वक दर्शनादि संस्कारविशेष।
 अभिमन्त्रण (सं० स्त्री०) अभि-मन्त्र चुरा० ष्टु। १ मौमांसकोक्त मन्त्रपाठपूर्वक दर्शनादि संस्कारविशेष। २ सम्बोधन, आमन्त्रण, बुलाहट, पुकार। ३ अभि-प्रणयन, सलाहका लेना। ४ जादू, टोना।
 अभिमन्वित (सं० त्रि०) जादू किया हुआ, जिसपर टोना पड़ चुके।
 अभिमन्त्रा (सं० त्रि०) अभि-मन्त्र चुरा० यत्। १ अभिमन्त्रणीय। गोपनमें परामर्शणीय, समझाने-काबिल, जो चुपकेसे सिखाने लायक हो। (अथ्य०) २ अभिमन्त्र-व्यप्। ३ मन्त्रणा करके, मन्त्र पढ़के।
 अभिमन्त्र्य, अभिमन्त्र्य (सं० पु०) अभि अधि वा मथ्याति नेत्रम्। १ नेत्ररोगविशेष, आंखको कोई बोसारी। भावे घञ्। २ अतिशय मन्यन, हृदसे ज्यादा मथाई। (अथ्य०) मन्यस्याभिमन्त्र्यम्, ध्वय्यी०। ३ मन्यनदण्डके सम्बन्ध, मन्यनदण्डके समीप, मथानीके सामने या पास।
 अभिमन्थु (सं० पु०) अभिगतः प्राप्तः युद्धसमये मन्थुः क्रोधो यस्य, प्रादि २-बहुव्री०; अथवा अभिलक्षी-कृत्य अतियोजारमिति शेषः मन्थुः क्रोधो यस्य, ६-बहुव्री०; अथवा अभि अतिशयो मन्थुः ग्रीको यस्मान्, ५-बहुव्री०। १ अर्जुनके पुत्र। हण्यको भगिनी सुभद्राके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। विराटकन्या उत्तरासे

वाला समय । ३ छः दिन साथ स्त्रोमादि पाठसाधक गणामयनाङ्ग याग विशेष । भाषे अप् । ४ उपद्रव, उपद्रव, सकल दिक् लम्पन, सकल दिक् गमन, भगड़ा, बखेड़ा, चारो ओरकी दोड़-धूप ।

अभिभूत (सं० त्रि०) सम्यक् ज्ञतम्, अभि-भू-क्त । १ सकल दिक् व्याप्त, चारो ओर भरा हुआ । २ सकल प्रकार सिक्त, सब तरह लवरेज । ३ अभिभूत, अधोन, मातहतोर्मि पड़ा हुआ ।

अभिवल (सं० स्त्री०) गुप्तयेयमें स्थानविशेष पर मिलनेकी स्त्रोक्तित, द्विप कर किसी अखाड़ेमें भानिका इकरार ।

अभिबुद्धि (सं० स्त्री०) बुद्धीन्द्रिय, इक्त, अक्त, समभक्ता चौजार ।

अभिभङ्ग (सं० त्रि०) अभितो भङ्गो यस्मात्, ५-वङ्गो० । १ भङ्ग करनेवाला, जो तोड़ डालता हो । २ भङ्गगील, टूटा हुआ । (पु०) ३ भङ्गकरनेवाला व्यक्ति, जो शस्त्र से तोड़नेवाला हो ।

अभिभञ्जत् (सं० त्रि०) तोड़ डालनेवाला, जो तोड़ रहा हो ।

अभिभर्त्स (सं० अर्थ०) प्रेमोके प्रति, स्वामीके सम्मुख, आशककी तर्फ, श्वाविन्दके सामने ।

अभिभव (सं० पु०) अभि-भू-अप् । १ पराजय, हार । २ तिरस्कार, अनादर, वेदञ्जती । ३ रोगादि द्वारा जड़ीभाव, बीमारी वगैरहसे सख्त पड़ जाना । ४ योग, जोड़ । (त्रि०) ५ शक्तिसम्पन्न, गानिव, हावी ।

अभिभवन (सं० स्त्री०) अभि-भू-लुट् । अभिभव, पराजय, रोगादि द्वारा ज्ञानरोध, शिकस्त, हार, बीमारी वगैरहसे होशका न रहना ।

अभिभवनीय (सं० त्रि०) अभिभूत होनेवाला, जिसे शिकस्त दें ।

अभिभा (सं० स्त्री०) अभि-भा-अङ् । १ प्रेत, साया । २ पराजय, अभिभव, शिकस्त, हार । ३ सकल दिक् दीप्ति, चारो ओर रोगनी, उल्कधं, सबकृत, बड़ाई ।

अभिभायतन (सं० स्त्री०) १ उल्कर्षका स्थान,

सबकृतकी जगह । २ बौह उल्कर्षके पाठ स्रोतका नाम ।

अभिभार (सं० पु०) अभि-भू-अङ्, अभि अति-शयितो भारो यस्य, प्रादि-बहुव्री० । अतिभारशुक्त, निहायत यजुने ।

अभिभावक (सं० त्रि०) अभिभवति, अभि-भू-अङ् । अभिभवकारी, पराजयकारी, तिरस्कारकारी, जड़ी-भावकारी, सबकृत ले जानेवाला, जो हरा देता हो, वेदञ्जत करनेवाला । २ आत्मीय स्वजन, तत्त्वा-यथायक, सुरब्धी ।

अभिभावन (सं० स्त्री०) विजय, जीत ।

अभिभावित् (सं० त्रि०) अभिभवति, अभि भू-षिनि । तिरस्कारकारी, पराजयकारी, वेदञ्जत करनेवाला, जो हरा देता हो । 'अभंजोभिमामिना' (२५ (१११)

अभिभावी (सं० पु०) अभिभावित् शब्दोः ।

अभिभाषक (सं० त्रि०) अभि-भू-अङ् । तिरस्कार-कारी, पराजयकारी, जड़भावकारी, वेदञ्जत करने-वाला, जो हरा देता हो, शोय उड़ानेवाला ।

अभिभाषण (सं० स्त्री०) अभितो भाषणम्, प्रादि सं० । आभिमुख्य कथन, सम्मुखका बोलना, सामनेकी गुफ्तगू, जो बात बचक हो ।

अभिभाषमाण (सं० त्रि०) बोल देनेवाला, जो बात कह उठता हो ।

अभिभाषित (सं० त्रि०) कथित, निवेदित, कहा गया, जिससे कह चुके ।

अभिभाषित् (सं० त्रि०) आभिमुख्येन भाषते, अभि-भाष-षिनि । आभिमुख्य कथक, जो सम्मुख बोलता हो, सामने कहनेवाला, जो बात कर रहा हो ।

अभिभाष्य (सं० त्रि०) कथनीय, कहा जानेवाला, जिससे बात की जाये ।

अभिभाष्यमाण (सं० त्रि०) कहा जाते हुआ, जिससे बात करते हैं ।

अभिभू (सं० त्रि०) अभिभवति, अभि-भू-क्लिप् । अभिभावक, पराजयकारी, तिरस्कारक, सबकृत ले जानेवाला, जो हरा देता हो, इञ्जत बिगाड़नेवाला ।

अभिभूत (सं० त्रि०) अभि-भू-क्त । १ किंकर्तव्य-

विमूढ, जो घबरा गया हो। २ परामृत, मगलुव, हारा हुआ। ३ व्याकुल, तकलीफ़ज़दह।
अभिभूति (सं० स्त्री०) अभि-भू-क्तिन्। १ परामव, पराजय, शिकस्त, हार। २ भवन्ना, वैदञ्जती। (त्रि०) ३ अभिभावक, पराजयकारी, गालिव आने-वाला, जा जीत लेता हो।
अभिभूत्योजम् (वै० स्त्री०) १ उत्कृष्ट शक्ति, जंघी ताकत। (त्रि०) २ उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न, जंघी ताकत रखनेवाला।
अभिभूय (सं० स्त्री०) अभि-भू भावे क्वाप्। सकल दिक् प्रसाग, सकल प्रकार स्थिति, उल्कार्प, चारो श्रीर फैलाव, सब तरह गुजारा, सबकत।
अभिभूवन् (सं० त्रि०) अभि-भवति, अभि-भू-कर्तृरि बाहुलकात्, डवनिप्। अभिभावक, तिरस्कारक, पराजयकारी, हरानेवाला, जो गालिव आता हो, झिड़की देनेवाला। (स्त्री०) डीप्। अभिभूवरी।
अभिमण्डन (सं० स्त्री०) १ शृङ्गार, सजावट, बनाव-नुवाव। २ प्रतिपादन, समर्पण, अपनी बातका रखना।
अभिमण्डित (सं० त्रि०) विभूषित, अलङ्कृत, सजा हुआ, जो संवारा गया हो।
अभिमत् (सं० त्रि०) अभिमन्यते स्म, अभि मन-त्त। १ अभिमानका विपयीभूत, जिसके लिये घमण्ड करें। २ सम्यत, मखूर, मना हुआ। ३ आहत, इज्जत किया गया। ४ अभोध, खाद्विग किया हुआ। (स्त्री०) भावे त्त। ५ अभिमान, घमण्ड। ६ मिथ्या-ज्ञान, भूठो समझ। ७ अभिलाष, इच्छा, खाद्विग, मर्जी।
अभिमत्ता (सं० स्त्री०) १ अतुरूपता, काम्यता, शवाहत, खाद्विगमन्दी। २ प्रेम, उत्कण्ठा, इशक, चाह।
अभिमति (सं० स्त्री०) अभि-मन्-क्तिन्। १ अभिमान, गुरूर। २ मिथ्याज्ञान, भूठो समझ। ३ आदर, सम्मान, तयक्ता, इज्जत। ४ अभिलाष, खाद्विग।
अभिमनस् (सं० त्रि०) अभिमुखं सम्पादनोन्मुखं मनो यस्य, बहुव्री०। १ कार्य करनेमें उन्मुख वा उद्यत,

काममें मन लगानेवाला। २ दम, तुष्ट, आसूदा, सेर, ढका हुआ। ३ उत्कण्ठित, खाद्विगमन्द।
अभिमन्तव्य (सं० त्रि०) अभिमन्यते, अभि-मन् कर्मणि तथ्य। ज्ञातव्य, खयाल करने काविल। २ स्पृहनीय, चाहने लायक। ३ अधिक मान किया जानेवाला, जिसकी ज्यादा इज्जत की जाये।
अभिमन्तु (सं० स्त्री०) चोटका चलाना, नाशका करना।
अभिमन्तु (सं० त्रि०) इच्छुक, उत्कण्ठित, स्पृहा-युक्त, लालची, खाद्विगमन्द।
अभिमन्तोस् (वै० अव्य०) हानि पहुँचानेकी, तुक्-सान करनेके लिये।
अभिमन्त्र (सं० स्त्री०) अभि-मन्त्र चुरा० अच्। मीमांसकीक मन्त्रपाठपूर्वक दर्शनादि संस्कारविशेष।
अभिमन्त्रण (सं० स्त्री०) अभि-मन्त्र चुरा० ल्युट्। १ मीमांसकीक मन्त्रपाठपूर्वक दर्शनादि संस्कारविशेष। २ सम्बोधन, आमन्त्रण, बुलाहट, पुकार। ३ अभि-प्रणयन, सलाहका लेना। ४ जादू, टोना।
अभिमन्त्रित (सं० त्रि०) जादू किया हुआ, जिसपर टोना पड़ चुके।
अभिमन्त्रय (सं० त्रि०) अभि-मन्त्र चुरा० यच्। १ अभिमन्त्रणीय, गोपनमें परामर्शणीय, समभाने-काविल, जो चुपकेसे सिखाने लायक हो। (अव्य०) २ अभिमन्त्र-न्यप्। २ मन्त्रणा करके, मन्त्र पढ़के।
अभिमन्य, **अभिमन्य** (सं० पु०) अभि अधि वा मद्यति नेवम्। १ नेवरोगविशेष, आँखकी कोई बोसारी। भावे घञ्। २ अतिशय मन्यन, इदसे ज्यादा मथारें। (अव्य०) मन्यस्याभिसुख्यम्, घञ्ययी०। ३ मन्यनदण्डके सम्मुख, मन्यनदण्डके समीप, मथानीके सामने या पास।
अभिमन्यु (सं० पु०) अभिगतः प्राप्तः युद्धममये मन्युः क्रोधो यस्य, प्रादि २-बहुव्री०; अथवा अभिलक्षी-कृत्य अतियोहारमिति शेषः मन्युः क्रोधो यस्य, ६-बहुव्री०; अथवा अभि अतिययो मन्युः शोको यश्चात्, ५-बहुव्री०। १ अर्जुनके पुत्र। कृष्णको भगिनी सुभद्राके गर्भसे इनका जन्म हुआ था। विराटकन्या उत्तरासे

इन्होंने विवाह किया। इनके पुत्रका नाम परीक्षित रहा। कुरुक्षेत्रयुद्धमें अभिमन्युने असाधारण वीरत्व दिखाया था। अर्जुन नारायणी सेनाके साथ दूर लड़ते रहे, इधर अभिमन्यु व्यूहमें घुस पड़े। महाभारतमें लिखा है, कि उसी दिनके युद्धमें इनके हाथ दुर्योधनके भ्राता हृद्यारक, मगधराजपुत्र श्वेतकेतु, अश्वकेतु एवं कुन्धरकेतु, कौशलके राजा हृहहल, दुःशामनके पुत्र उलूक प्रभृति अनेक वीर मारे गये थे। शेषमें कर्ण प्रभृति छः रथियोंने मिल अभिमन्युकी वध किया। शायमुक्त हो अभिमन्यु चन्द्रलोक पहुँचे थे।

२ विश्वपुराणमें लिखा है, कि चाक्षुष मनुके पुत्रका नाम अभिमन्यु रहा। इन्होंने नवलाके गर्भसे जन्म लिया था। ३ राधिकाके स्वामी प्रायामकी भी पहले लोग अभिमन्यु कहते रहे।

४ कश्मीरमें दो अभिमन्यु नृपति थे। प्रथम अभिमन्यु नृपतिके समय वहाँ बौद्धधर्म अतिशय प्रबल रहा। किन्तु महाराज अभिमन्यु शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठित कर पूजते थे। प्रसिद्ध वेद्याकरण चन्द्राचार्य इन्होंनेकी सभामें विद्यमान रहे। चन्द्रव्याकरण इन्होंने ही उद्धार किया था। नागार्जुन प्रभृति बौद्ध राजसभामें पहुँच सबदा ही पण्डितोंके साथ तर्क-वितर्क और नील-पुराणकी कुत्सा करते रहे। उससे नागजातिने क्रुद्ध हो अनेक बौद्धोंकी मार डाला। कहते हैं, कि अन्तमें कश्यपवंशके चन्द्रदेव नामक किसी द्राघ्णने महा-देवकी आराधना लगा यह सकल उपद्रव मिटाया था। इन्होंने कश्मीरमें अभिमन्युपुर नामक नगरकी स्थापन किया।

५ द्वितीय अभिमन्यु ८८० शकाब्दमें प्रादुर्भूत हुए थे। यह लोमगुप्तके पुत्र रहे। इन्होंने बाल्यकालमें ही राज्यका भार उठा लिया था। ४८ लौकिकाब्दमें यक्षारोगसे इन्होंने प्राणत्याग किया। कश्मीर देखी।

अभिमर (सं० पु०) अभिसुख्येन स्त्रियन्ते सैन्या यत्र, अभि-मृ अधिककरणे अप्। १ युद्ध, जङ्ग, लड़ाई। २ युद्धस्थान, रणक्षेत्र, मैदान-जङ्ग, खेत, जिस जगह लड़ाई रहे। करणे अप्। ३ भय, खौफ, डर। ४ अपने सैन्यपक्षसे विश्वासघातकी आशङ्का, अपने सिपाहीसे

धोका खान्की शक। अभिस्त्रियते यस्मात्, अपादाने अप्। ५ मरणव्यापार, वध, कत्ल, जानका लेना। अभिसुखीभूय स्त्रियते, कर्तरि अप्। ६ स्वसैन्य, सिपाही, धनलोभसे प्राणकी आशा छोड़ व्याप वा हस्तीके समुख युद्ध करनेको उद्यत व्यक्तित्वा, जो गद्द-स दौलतके लालच जानकी उन्मोद न रख गैर या हाथीसे लड़नेको तैयार हो। ७ बन्धन, कैद।

अभिमर्द (सं० पु०) अभि-मृद भावे घञ्। १ अ-व-मर्द, रगड़। २ निप्योड़न, जुल्म, दुश्मनके शूरिया सुल्फकी बरबादी। अधिकरणे घञ्। ३ युद्ध, जङ्ग, लड़ाई। ४ भय, शराव। (त्रि०) ५ मर्दनकर्ता, मलने या रगड़नेवाला।

अभिमर्दन (सं० लो०) अभि-मृद भावे लुट्। पीड़न, चूर्णन, जुल्म, किसीको सताना।

अभिमर्दिन् (सं० त्रि०) पोड़ा पहुँचानेवाला, जो तकलीफ़ देता हो।

अभिमर्श, अभिमर्ष (सं० पु०) अभि-मृग वा मृप भावे घञ्। स्पर्श, घर्षण, छूत, मिलाव।

अभिमर्शक, अभिमर्षक (सं० त्रि०) अभि-मृग वा मृप-ण्व-ल्। १ स्पर्श करनेवाला, जो छू लेता हो। २ पराभवकारी, नीचा देखानेवाला।

अभिमर्शन, अभिमर्षण (सं० लो०) अभि-मृग वा मृप-लुट्। १ स्पर्श, छूत। २ घर्षण, पराभव। ३ यद्य-पिगाचादि भूतकृत पोड़ा, जो बीमारी साये बगैरहसे पैदा हो।

अभिमाति (सं० त्रि०) अभिमयते, अभि-मेड कर्तरि क्तिन् न इत्वम्। १ घातक, मारनेकी कोशिश करते हुए, चोट देनेवाला, जो दुश्मनी रखता हो। (पु०) २ गद्द, दुश्मन। ३ पाप, इजाब।

अभिमातिजित् (सं० त्रि०) शत्रुको जीतनेवाला, जो दुश्मनको घरा देता हो।

अभिमातिन् (सं० पु०) अभि-मेड भावे क्त। १ शत्रु, दुश्मन। २ आघात, चोट।

अभिमातिपाद् (सं० त्रि०) अभिमातिं शत्रुं सृष्टे, अभिमातिं सृष्ट-खि पत्वम्। शत्रुजित्, दुश्मनको जीतनेवाला।

अभिमातिपाह, 'अभिमातिपाह देवो।'
 अभिमातिहन् (सं० पु०) शत्रुसंहारकर्ता, जो शत्रुस
 दुश्मनको कुत्ल करता हो।
 अभिमांद् (सं० पु०) मद, धीवता, नशा, खुमार।
 अभिमाथत् (सं० त्रि०) उन्मत्त होनेवाला, जो
 नगा पौ रहा हो।
 अभिमाथत् (सं० त्रि०) कुञ्ज-कुञ्ज उन्मत्त, जो
 बहुत नशमें न हो।
 अभिमान (सं० पु०) अभि मन्-घञ् । १ ऐश्वर्य
 प्रभृतिके निमित्त गर्व, दर्प, अहङ्कार, फ़ख़्द, घमण्ड।
 २ प्रणय, स्नेह प्रभृति स्थलमें मनका दुःख हितुक
 आदर-महित क्रोध, मुहब्बत, प्यार वगैरहको जगह
 दिलको दुखानेवाली इज्जतसे मिली-गुस्ता। ३ प्रणय,
 प्रेमप्राथेना, शादी, मुहब्बतका इज्जहार। ४ अपलेप,
 दावेदारी। ५ मिथ्याज्ञान, झूठी समझ। ६ शृङ्गार-
 रमकी अवस्थाविशेष, मान, नखरा। ७ हिंसा, हनन,
 कुत्ल, मारकाट।
 अभिमानता (सं० स्त्री०) दर्प, घृणता, गुरूर, गुस्ताखी।
 अभिमानवत् (सं० त्रि०) १ मानो, नखरेवाज़।
 २ दर्पित, मगूरर, गुस्ताख।
 अभिमानशून्य (सं० त्रि०) दर्परहित, गर्वविहीन,
 वेफ़ख़्द, गुरूरसे ख़ाली, जिसे घमण्ड न रहे।
 अभिमानित (सं० त्रि०) अभिमानो गर्वः सञ्जातो-
 ऽथ, अभि-मान-इतच् । १ जातगर्व, जाताभिमान,
 जिसे घमण्ड आ जाये। (स्त्री०) अभि-मान षिच्
 भावे क्त। २ मैथुन, हमबिस्तारी। ३ गर्व, गुरूर।
 अभिमानिता (सं० त्रि०) हस रहनेकी दया, जिस
 हालतमें घमण्ड घेरे रहे।
 अभिमानित्व (सं० स्त्री०) अभिमानिता देवो।
 अभिमानिन् (सं० त्रि०) अभि-मन् षिनि । १ गर्व-
 युक्त, हस, अभिमानविशिष्ट, मगूरर, गुस्ताख,
 घमण्डो। २ प्रणयकोपयुक्त, नखरेवाज़। ३ मिथ्या-
 ज्ञानयुक्त, झूठी समझवाला। (पु०) ४ भौत्य मतके
 दम पुत्रोंमें पक्षम श्रुत।
 अभिमानो, 'अभिमानिन् देवो।'
 अभिमानुक (सं० त्रि०) अभि-मन् बाहुलकात् उक्ञ् ।

१ अभिमानविशिष्ट, मगूरर। २ वध करनेमें शक्त,
 जो चोट पहुंचा सकता हो।
 अभिमाय (सं० त्रि०) -मायां अविद्यां अभिगतम्,
 अतिक्रा०-तत् गौषे ङ्खलः। इतिकर्तव्यताशून्य, अभि-
 भूत, घबराया हुआ, जो भौचक रह गया हा, अह-
 मक, नादान।
 अभिमिह्य (सं० त्रि०) अभिमिह्यते सिच्यते। जिसके
 सम्मुख मलमूत्रादि त्याग किया जाये, पेशाव किया
 जानेवाला, जिसपर पेशाव करें।
 अभिमौलित (सं० त्रि०) अवरुद्ध, बन्द, जो आंखकी
 तरह भपका हो।
 अभिसुख (सं० त्रि०) अभिगतं सुखम्, अतिक्रा०-
 तत् । १ अभिसुखप्राप्त, सामने चेहरा किये हुआ।
 २ सम्मुख, समक्ष, घूमा हुआ, जो सामने आ गया
 हो। ३ कर्म करनेमें उद्यत, काममें लगा हुआ।
 ४ उपस्थित होनेवाला, जो नजदीक जा या पहुंच रहा
 हो। ५ इच्छा रखनेवाला, जो इरादा बांधे हो।
 (अथ्यं) मुखमभिलषीकृत्य; अथ्ययी० । ६ अभिसुख,
 सम्मुख, सामने, रुबरु। ७ सम्मुख जाकर, सामने
 पहुंचके।
 अभिसुखता (सं० स्त्री०) उपस्थिति, सामीप्य, हाजिरी,
 नजदीक रहनेकी हालत।
 अभिसुखी (सं० स्त्री०) बौद्धमतमें—दम प्रथिवीमें एक
 प्रथिवी।
 अभिसुखीकरण (सं० स्त्री०) अभिसुखः क्रियते अनेन,
 अभिसुख चि-ल्ल करणे लुण्ट्। सम्बोधन, बुलाहट,
 पुकार। सम्बोधन उच्चारण करनेसे श्रोता सुनकर
 अभिसुख होता, इसीसे अभिसुखीकरण शब्द सम्बोधन
 बताता है।
 अभिसुखीभाव (सं० पु०) अनभिसुखस्य अभिसुख-
 रूपो भावः भयनम्, अभिसुख-चि-भू भावे ङ्ख् ।
 १ अभिसुख्य, सामना। २ कार्यकी अनुकूलता,
 कामकी सुवाफ़िकत। ३ अभिसुखका होना, सामनेका
 पहुंचना।
 अभिसुखीभूत (सं० त्रि०) सम्मुखगत, उपस्थित,
 सामने पड़ा हुआ, जिसका सुँह सामने रहे।

अभिसूक्ति (सं० त्रि०) विहित, मोहित, व्यथ, विभ्र, पाकुल, मूढ़, विह्वल, संसृष्ट, श्मश, उन्मत्त, धिक्की, फुरफुरा, घकामांदा, मतवाला ।

अभिसृष्ट (सं० त्रि०) अभिसृष्ट-ल । १ सृष्ट, जो अर्थ किया गया हो। हुआ हुआ । २ परामृत्त, पराजित, धर्मित, निकलत खाये हुआ, जो हार हुआ हो । २ मिलित, संघट, मिना हुआ, जो निकाला गया हो । (त्रि०) ४ मारजायुक्त, मुष्ट, दना-मना, पाकीजा ।

अभिसेयक (सं० पु०) अभि-सिध्-स्तम् । सर्व-प्रातिमाधन वाच्यविशेष, जिस वाच्यके कहनेमें गलत ही मिल जाये, मारा मतलब पूरा करनेवाली बात ।

अभिसेयिका (सं० स्त्री०) १ वाच-मदम वाच्य, तौर जैसी बात । २ पद्योक्त वचन, फोहम गुप्तम् । ३ भाष, मद्दुवा ।

अभिसेहा, अभिसिध्-स्तम् ।

अभिस्यात, अभिसिध्-स्तम् ।

अभिस्यात (सं० वि०) अभितो श्वात्म, अभि-श्वे-ल । १ अतिममिन, अमनष, निहायत पक्षुष्टां, नाभ्य, कुम्भिनाया हुआ । २ विमोर्ष, मङ्गा-गला ।

अभियज्ञगाथा (सं० स्त्री०) यज्ञ-मन्त्र्ययीय भजन ।

अभिया (सं० पु०-स्त्री०) आक्रमण, हमला, धावा, पढ़ाई ।

अभियाघन (सं० स्त्री०) अभि-याघ-स्तुट् । अभि-मुष प्राथना, जो प्राथना मध्य होकर को जाती हो, धार्ज-मिषत, सामनेकी मांग याच ।

अभियाचित (सं० त्रि०) मध्युष प्राथना किया गया, सामने मांगा हुआ ।

अभियात् (सं० त्रि०) अघगामी, आक्रमणकारी, हमलावर, जो धावा मार रहा हो ।

अभियात (सं० त्रि०) आक्रमण किया गया, जिम-पर हमला पड़ चुके ।

अभियाति (सं० पु०) अभिसुष्येण याति: युद्धार्थं गतिः, अभि या बाहुलकात् अति । रिपु, मत्त, दुग्मन । (स्त्री०) भाये क्तिन् । २ युद्धार्थं गमन, लड़ाईकी पढ़ाई ।

अभियातिन् (सं० पु०) अभियातमनेन ; अभि-या भाये क्त, मत इटादि० इन् । मत्त, दुग्मन ।

अभियाय (सं० पु०) अभिसुष्यं युद्धार्थं याति, अभि-या-यत् । १ मत्त, दुग्मन । (त्रि०) २ अभिसुष्य-गमनकारी, सामने धावा लगानेवाला ।

अभियाग (सं० स्त्री०) अभि-या-स्तुट् । युद्धयात्रा, अभिगमन, सुद्धीम, हमला, पढ़ाई ।

अभियायिन् (सं० त्रि०) अभिसुष्येण याति, अभि-या-यिनि । अभिसुष्य-गमनकारी, सामने जानेवाला, जो हमला मारता हो, पाम पढ़्पने हुआ ।

अभियुक्त (सं० त्रि०) अभि-सुष्येण धा, अभि युक्-ल । १ अथ कर्त्तक रह, मत्पर, पामल, लगाया हुआ, सुष्येद, स्यात्मं दृष्टा हुआ । २ प्रतिष्ठित, मुक्तरर किया हुआ । ३ कथित, उक्त, कहा हुआ, जिमके धर्ममें बात हो चुके । ४ आक्रमण किया हुआ, जिमपर दुग्मनका हमला पड़ चुके । ५ निश्चित, बदनाम । ६ ज्ञानमर्म—प्रतिपादो, सुरासह, जिमपर नाशिम हो चुके ।

अभियुक्त्वा, अभियुज्जन् (सं० त्रि०) अभि-सुष्य-दुगिप्, धिदे प्र-कुल्यम् । १ अभियोक्ता, अभियोगकारी, अभियोग लगानेवाला, हमलावर, मुहूर्त् । (पु०) २ आघात, आक्रमण, पोट, हमला । ३ मत्त, दुग्मन । (स्त्री०) स्त्रीप् । अभियुक्वरी ।

अभियुक्त्वा (सं० त्रि०) अभिसुष्यं युनक्ति, अभि-सुष्य-क्तिप् । अभियोक्ता, अभियोगकारी, मुहूर्त्, नाशिम करनेवाला । (स्त्री०) २ आक्रमण, हमला । ३ मत्त, दुग्मन ।

अभियुज्यमान (सं० त्रि०) अभियोग लगाया जाने हुआ, जिमपर नाशिम को जा रही हो ।

अभियोक्तव्य (सं० त्रि०) अभियोक्तं शक्यम्, अभि-सुष्य-तव्यम् । १ अभियोग लगाने योग्य, जिमपर हलकाम लगाया जा सके । २ अभिसुष्य योजनीय, सामने धावा मारने काबिल । ३ निषेध, रोकने काबिल ।

अभियोक्ता, अभियोक्त्वा, स्त्री ।

अभियोक्त्वा (सं० पु०) अभिसुष्यं युनक्ति, अभि-सुष्य-यत् । १ अभियोगकर्ता, वादो, नाशिम करनेवाला,

सुद्धे। २ युद्धार्थं आक्रमणकर्ता, लड़ाईकी चढ़ाई करनेवाला।

अभियोग (सं० पु०) अभितो राजसमीपे योगः योजनम्, अभि-युज्-घञ्। १ अन्य कर्त्तक प्रपकार निवारण वा चतिपूरण करनेको राजाके निकट प्रार्थना, दूसरका किया हुआ नुकसान मिटानेको हाकिमसे अर्ज।

२ युद्धार्थं आक्रमण, लड़ाईकी चढ़ाई। ३ शपथ, कृष्ण। ४ उद्योग, तद्वीर। ५ आपद्, जिद। ६ अभिनिवेश, खटका। ६ दोषारोप, ऐवजोयी। ७ नियुक्ति, लगाव।

अभियोगपत्र (सं० स्त्री०) अर्जीटावा, जिस काम्ज पर लिखकर नालिश की जाये।

अभियोगिन् (सं० त्रि०) अभितो राजादि समोपे युनक्ति स्वदुःखमावेदयति अभि-युज् बाहुलकात् घिणुन्। १ अभियोगकर्ता, वादो, नालिश करनेवाला, सुद्धे। २ आक्रमणकर्ता, हमलावर। ३ आग्रहयुक्त, जिहो। ४ अभिनिविष्ट, मनोयोगी, दिल लगानेवाला। ५ योजनकर्ता, जो मिला देता हो।

अभियोगी, अभियोगिन् देखो।

अभियोग्य (सं० त्रि०) आक्रमण किये जाने योग्य, जो धावा लगाये जाने काविल हो।

अभियोजन (सं० स्त्री०) अभि पुनःपुनर्योजनम्। योजित पदार्थकी दृढ़ताके लिये पुनर्वार योजन, जुड़ो सुद्धे चोजकी मजबूतीके लिये दोबारा जोड़ाई।

अभियोज्य, अभियोज्य देखो।

अभिरक्षण (सं० स्त्री०) अभितो रक्षणम्। सकल दिक् रक्षा, पचादि हारा सकल दिक् सरसों आदि फेंक राक्षसादिसे वैध कर्मकी रक्षा, दुनियावी डिफा-जत। पूर्वकाल यज्ञादि कार्य उपस्थित होनेपर राक्षसादि आकर घृत प्रथति यज्ञी द्रव्य खा जाते और यज्ञ विगाड़ देते थे। उसके लिये ऋषि मन्त्रपाठपूर्वक सफेद सरसों आदि फेंक उन्हें निवारण करते रहे। आजकल भी जुड़ैल और भूत भाड़ते समय लोग सफेद सरसों फेंकते हैं।

अभिरक्षा (सं० स्त्री०) अभि-रक्ष्-श् टाप्। मन्वादि हारा यज्ञ प्रथतिकी रक्षा।

अभिरक्षित (सं० त्रि०) अभितो रक्षितम्, प्रादि-स०। सकल दिक् रक्षित, चारो ओर महफूज।

अभिरक्षित (सं० त्रि०) अभितो रक्षितम्, अभि-रक्ष्-टच्। सकल दिक् रक्षाकर्ता, सर्वप्रकार रक्षाकर्ता, चारो ओर डिफाजत रखनेवाला, जो सब तरह डिफाजत रखता हो।

अभिरक्ष्य (सं० त्रि०) रक्षा वा शासन किया जानेवाला, जो डिफाजत रखे या हुकूमत किये जाने काविल हो।

अभिरञ्जित (सं० त्रि०) रागरङ्गयुक्त, अर्थात्, रक्त, लोहित, अनुराजित, रंगा हुआ, सुद्धे, जिसपर सुहृत्त्वका जोय चढ़ चुके।

अभिरत (सं० त्रि०) आभिसुख्येन अतिमयं रतम्, अभि-रम्-क्त। १ आरक्त, फरफता। २ प्रीतियुक्त, आसूदा, खुश। ३ नियुक्त, मसरफ, लगा हुआ। ४ ध्यान देनेवाला, जो खुयाल लड़ाता हो।

अभिरति (सं० स्त्री०) अभितो रतिः, प्रादि-स०, अभि-रम्-क्तिन्। १ अतिमय आसक्ति, हदसे ज्यादा फासाव। २ प्रसन्नता, खुशी।

अभिरत्य (सं० अव्य०) अभिरत्य देखो।

अभिरना (हिं० क्ति०) १ सामना करना, गुस्सामें लुपटना, लड़ना-भिड़ना।

अभिरमण (सं० स्त्री०) अनुराग, हय, खुशी।

अभिरमणीय (सं० त्रि०) अभिरत्य देखो।

अभिरम्य (सं० त्रि०) अभिरम्यते, अभि-रम् कर्मिण्यत्। १ रमणीय, मनोरम, मजेदार, दिलको खुश करनेवाला। (अव्य०) २ रमण वा छोड़ा करके, मजा चड़ा या खेलकर।

अभिराज् (सं० त्रि०) सर्वत्र राज्य करते हुआ, जो सब जगह हुकूमत चला रहा हो।

अभिराड (सं० त्रि०) अभितो राडम्, अभि-राध्-त्। १ सर्वथा सिद्ध, सकल प्रकार निष्पन्न, हर सूतसे साबित, सबतरह तैयार। २ सेवित, तावेदारी किया गया।

अभिराम (सं० त्रि०) अभिरम्यते अनेन अभिन् वा, अभि-रम् करणे अधिकरणे वा घञ्। सुन्दर, प्रिय,

'मनोच', खुश करानेवाला, गवारा, खुबसूरत। (अश्व०)
 २ रामके प्रति, रामकी।
 अभिरामता (सं० स्त्री०) अभिरामत्व, सौन्दर्य, प्रियता, मनोघ्नता, सुयरापन, खुबसूरती, चमक-दमक।
 अभिरामी (सं० त्रि०) अभिरमणकर्ता, मज़ा उड़ानेवाला।
 अभिराट्ट (सं० त्रि०) राज्य पानेवाला, जिसे बाद-शाहों मिल जाये।
 अभिरुचि, अभिरुची (सं० स्त्री०) अभिरुचि-इन्।
 १ अतिगय रुचि, अतिगय दौमि, हृदसे ज्यादा रौनक, हृदसे ज्यादा हौसिला। २ इच्छा, हर्ष, स्वाद, खाद्विष, खुशी, मज़ा।
 अभिरुचित (सं० त्रि०) हर्षित, प्रसन्न, खुश, बग्शास।
 अभिरुचिर (सं० त्रि०) अतिगय मनोरम, सुन्दर, निहायत खूशगवार, खुबसूरत।
 अभिरुत (सं० त्रि०) १ सुखरित, जिससे आवाज निकल चुके। २ कूजित, सुखर, मधुर, कूका हुआ, सुरीला, मीठा।
 अभिरुता (सं० स्त्री०) १ सङ्गतकी कोई मूर्खना। २ कूक, सुरीलापन।
 अभिरूप (सं० त्रि०) अभिरूपयति सर्वे रूपविशिष्टं करोति, अभि सुरा० रूप-णिच्-अच्। १ मनोहर, प्रिय, दिलकश, धारा। २ पण्डित, दाना। "अभिरूपमृषिणा परिपन्।" (शक०) ३ सद्गय, मिलते हुआ। ४ उचित, वाजिव। ५ यथेष्ट, काफी। (पु०) ६ कन्दर्प, काम-देव। ७ चन्द्र, चांद। ८ विशु। ९ शिव।
 भावपसदअभिरुपा सुधमोदयोः। (चरत)
 अभिरूपक (सं० त्रि०) अभिरूप देखो।
 अभिरूपपति (सं० पु०) सुन्दर स्वामी, अच्छासा खाविन्द।
 अभिरोग (सं० पु०) जिह्ममें छमि पड़नेकी पीड़ा, जिस बीमारीसे जीभमें कौड़ा पड़ जाये। यह रोग पशुको अधिक लगता है।
 अभिरोध (सं० पु०) अभिरुध-घञ्। पीड़न, बीमारी, तकलोफ़।
 अभिरोरुट्ट (वै० त्रि०) हलानेवाला, जिसे देख कर आंसू टपकते रहें।

अभिलकपित्त (सं० पु०) आम्नातक हृद्य, अमड़ेका पेड़।
 अभिलक्षित (सं० त्रि०) चिह्नित, निशानदार।
 अभिलक्ष्य (सं० त्रि०) अभिलक्ष्यते शरादि वेधार्थं अतिशयेन दृश्यते; अभि सुरा० लक्ष-णिच्-यत्, णिच् लोपः। १ शरथ्य, तीरसे मारा जानेवाला। २ चिह्न-योय, निशाना जमाने काविल। (अश्व०) लक्ष्यः शरथ्यस्य आभिसुरस्यम्. अश्वयी०। ३ शरथ्यके समीप, लक्ष्यके सम्मुख, निशानेके पास, शिकारके सामने। ४ लक्ष्य लगाकर, शिष्ट जमाके।
 अभिलहन (सं० स्त्री०) अभि लधि भावे लुगट्।
 उलहन्. कूद फांद।
 अभिलापण (सं० स्त्री०) उत्कण्ठा, स्पृहा, लालच, खाद्विष।
 अभिलपणीय (सं० त्रि०) अभि-लप कर्मणि अनीयर्।
 वाञ्छनीय, चाहने काविल।
 अभिलपिकरोग (सं० पु०) वातव्याधिविग्रेय, वातकी कोई बीमारी।
 अभिलपित (सं० त्रि०) अभिलक्ष्यते स्म, अभि-लप कर्मणि क्त। १ इष्ट, वाञ्छित, मकबूल, चाहा हुआ। (स्त्री०) भावे क्त। २ अभिलाप, इच्छा, खाद्विष, मर्जी।
 अभिलपितव्य (सं० त्रि०) अभि-लप-तव्य। अभिलप-णोय, काम्य, चाहने काविल।
 अभिलाखे (हिं०) अभिलाप देखो।
 अभिलाखना (हिं० त्रि०) उत्कण्ठित होना, खाद्विष-करना।
 अभिलाखा (हिं० स्त्री०) अभिलाप देखो।
 अभिलाखी (हिं०) अभिलापिन देखो।
 अभिलाप (सं० पु०) अभिलक्ष्यते मानसं कर्म अनेन।
 अभि-लप करणे घञ्। १ सङ्ख्ययाक्य। भावे घञ्। २ कथन, बातचीत।
 अभिलाव (सं० पु०) अभिलयते, अभि-लु भावे घञ्। छेदन, चौरफाड़।
 अभिलाव (सं० पु०) अभि-लव-घञ्। १ इच्छा, खाद्विष। २ लोभ, लालच। ३ अनुराग, मुहव्वत।
 अभिलापक (सं० त्रि०) अभि-लप-णुल्। अभिलाप-कारी, खाद्विषमन्द। (स्त्री०) अभिलापिका।

अभिलाषा (सं० स्त्री०) अभिलाष देखो।
 अभिलाषिन् (सं० त्रि०) अभिलषति, अभिलष-
 णिनि। अभिलाषशील, अभिलाषकारी, खाद्दिगमन्द,
 लालची। (स्त्री०) ङीप्। अभिलाषिणी।
 अभिलाषुक (सं० त्रि०) अभिलषितुं शीलमस्य
 अभिलषति वा, अभिलष वाहुलकात् उक्त्वा। अभि-
 लाषुक, खाद्दिगमन्द।
 अभिलास, अभिलाष देखो।
 अभिलासा, अभिलाष देखो।
 अभिलिखित (सं० त्रि०) पत्रारूढ, न्यस्ताक्षर, लेख्या-
 रोपित, हर्षमें खोदा हुआ, जो तहरीरमें टला हो।
 अभिलौन (सं० त्रि०) १ संलग्न, चिपक जानेवाला।
 २ हृदयसे लगाया हुआ, जिसे छातीसे लिपटा चुके।
 ३ हृदयसे लगाते हुआ, जो छातीसे लिपटा रहा हो।
 अभिलुप्त (सं० त्रि०) उद्दिग्न्, ताडित, घबराया
 हुआ, जिसके चोट लग चुके।
 अभिलुलित (सं० त्रि०) १ क्रीड़ाशील, चञ्चल,
 खेलाडी, चुलबुला। २ उत्तेजित, उद्दिग्न्, आहत,
 जोश खाये हुआ, जो घबरा गया हो।
 अभिलुता (सं० स्त्री०) कौटवियेय, किमी किस्मकी
 मकड़ी।
 अभिलेखन (सं० क्लो०) न्यस्ताक्षरता, पापाण या
 शिलालेख, हर्षकी खोदाई, जो तहरीर पत्थर वगै-
 रह पर कां जाती हो।
 अभिवचन (सं० क्लो०) सत्यवचन, प्रतिज्ञा, कौल,
 इकरार।
 अभिवञ्चित (सं० त्रि०) प्रतारित, अभिसन्धानित,
 धोका खाये हुआ, जो ठगा गया हो।
 अभिवत् (सं० त्रि०) अभि शब्दसंयुक्त, जिसमें अभि
 लक्ष्ण शामिल रहे।
 अभिवदन (सं० क्लो०) अभि अनुकूलं वदनं कथनम्,
 प्रादि-तत्। १ अनुकूल वाक्य, सुवाचिक वातचीत।
 (त्रि०) अभि-अनुकूलं वदनं वाक्यं मुखं वा यस्य,
 प्रादि-बहुव्री०। २ अनुकूलवादी, प्रसन्नमुख, सुवाचिक
 वात करनेवाला, खुगदिल,। (अव्य०) वदनस्य मुख-
 स्यामिमुखम्, अव्ययी०। ३ मुखके सामने, चेहरेके पास।

अभिवन्दन (सं० क्लो०) अभितः सर्वतः आभिसुख्येन
 वा वन्दनम्, प्रादि-तत्। सकल दिक्प्रणति, सम्मुख-
 प्रणाम, साहच-सलामत।
 अभिवयस् (सं० त्रि०) अभिमतं वयः, प्रादि-तत्।
 १ अभिमत वयस, ठीक उमरवाला। विवाहादिके समय
 वयस अधिक वा न्यून न होनेसे वर अभिमतवयस
 कहा जा सकता है। अभिमतं सम्मतं वयो यस्य,
 प्रादि-बहुव्री०। २ प्रकष्ट वयस्क, नौ जवान्।
 अभिवर्तिन् (सं० त्रि०) अभितः अभिसुखिन वा वर्तते,
 अभि-व्रत-णिनि। सम्मुखवर्ती, सम्मुखस्थायी, सामने
 जानेवाला, जो पास पहुंच रहा हो, हमलावर।
 अभिवर्षण (सं० क्लो०) अभितो वर्षणम्, प्रादि-तत्।
 १ सकल दिक् वर्षण, भीषण हट्टि, गहरी वारिण।
 २ मिंचायी, पानीका दिया जाना।
 अभिवर्षिन् (सं० त्रि०) अभितो वर्षति, अभि-व्रप-
 णिनि। सकल दिक् वर्षणकारो, सब तर्फ बरसने-
 वाला। (स्त्री०) ङीप्। अभिवर्षिणी।
 अभिवह (सं० त्रि०) निकट या सम्मुख ले जाने-
 वाला, जो हांकेते जा रहा हो।
 अभिवहन (सं० क्लो०) निकट वा सम्मुखका पहुं-
 चाना, नजदीक या सामनेका ले जाना।
 अभिवाञ्छित (सं० त्रि०) इच्छा क्रिया हुआ, जो
 चाहा गया हो।
 अभिवात् (सं० त्रि०) आभिसुख्येन वाति गच्छति,
 अभि वा-ग्रह। श्रुत्य, दास, नौकर, गुलाम।
 अभिवात (सं० अव्य०) वायुकी धोर, हवाकी तर्फ,
 जिस रुखको हवा चले।
 अभिवाद (सं० पुं०) अभितो वादः आशीर्वादरूपं
 वाक्यम् येन, प्रादि-बहुव्री०। अभि वद करणे ध्व्।
 १ सम्मुख प्रणाम, साहच सलामत। अभिधर्षको वादः
 वाक्यम्, प्रादि-तत्। २ परुष वाक्य, कठिन वचन,
 कड़ी बात, मालीगलीज। 'पारुषमभिवादः स्तान्' (अन०)
 अभिवादक (सं० त्रि०) अभितो वदति, अभि-पुरा०
 वद-णुल्। १ सम्मुख प्रणतिकारो, वन्दार, वन्दगो
 करनेवाला। 'वन्दारमिवादकः' (अन०)
 अभिवादन (सं० क्लो०) अभि पूजाई वादनं त्वामह-

अभिवाद्ये इत्यादिरूपं कथनम्, प्रादि-तत्; अभि-
चुरा० वद-णिच्-लुगट् । १ पूजार्थं यावत्, गौरवाहं
यावत्, जो वांत किसोको इज्जत बढ़ानेके लिये कही
गयी हो। यद्य अभिः सौम्ये सौम्यं आशीर्वादरूपं
वाच्यते प्रत्नभिवाद्यित्रा कथ्यते येन । २ नामग्रहण-
पूर्वक प्रणाम, नाम लेकर बन्दगीका वजाना। जिसके
हाथमें समिध, जल, जलका कलस, फूल, अन्न, कुश,
अग्नि, दत्तन और भक्ष्यवस्तु रहे, उसे अभिवादन न
देना चाहिये। किंवा जो जप वा यज्ञ करता या
जलमें खड़ा हो, उसे भी अभिवादन करनेका निषेध
है। वयःकनिष्ठ श्वशुर, पित्रव्य, मातुल एवं पुरोहित
को खड़े ही खड़े अभिवादन दिया जाता अर्थात्
पैर न छूना चाहिये।

अभिवाद्यिता (सं० पु०) अभिवाद्यित देखो।

अभिवाद्यित (सिं० त्रि०) सगौरव प्रणतिकारी,
अदबके साथ सलाम करनेवाला।

अभिवाद्यित्री (सं० स्त्री०) अभिवाद्यित देखो।

अभिवादित (सं० त्रि०) सगौरव प्रणाम किया
हुआ, जिसकी अदबके साथ बन्दगी हो चुके।

अभिवाद्य (सं० त्रि०) अभिवाद्यितुमर्हम्, अभि-
चुरा० वद-णिच्-यत् । १ अभिवादनके योग्य, जिसे
प्रणाम करना कर्तव्य ठहरे, अदबसे बन्दगी बजाने
काबिल। पिता, गुरु, सर्वथं वयोव्येष्ठ, राजा, पुरो-
हित, श्रोत्रिय, अधर्मनिवारक, अध्यापक, पित्रव्य,
मातामह, मातुल, श्वशुर, ज्येष्ठभ्राता, सम्बन्धियक्ति,
इनकी स्त्री सकल वयोव्येष्ठ, मीसी, पित्रव्यसा,
ज्येष्ठा भगिनी आदि अभिवाद्य हैं। युवती गुरुपत्नीके
पैर न छूना चाहिये। किसी-किसीके मतमें गुरुके
पैर छूकर प्रणाम करना निषिद्ध है। (अव्य०) ल्यप् ।
प्रणाम करके, आदाव बजाकर।

अभिवान्य (सं० त्रि०) अभि-वन-सम्भक्तौ कर्मणि
ल्यत् । संभक्त्तनीय, सव्यक् भजनाके योग्य।

अभिवान्यवत्सा, अभिवाद्या देखो।

अभिवान्या (सं० त्रि०) दूसरेके बच्चेको दूध
पिलानेवाली गाय, जो गाय दूसरी गायके बच्चेको
चापना सम्भक्कर दूध पिलाती हो।

अभिवास (सं० पु०) आच्छादन, आवरण, पोशिश,
घोड़ना, चादर, गिलाफ़।

अभिवासन (सं० स्त्री०) अभिवास देखो।

अभिवासम् (सं० अव्य०) वासस्-उपरि, अव्ययो० ।
परिहित वस्त्रके उपरिभाग, कपड़े,पर।

अभियाद्य (सं० त्रि०) अभ्युद्यते, अभि-वह कर्मणि
ल्यत् । १ सकल दिक् वा सकल प्रकार वहनोय,
नज्जदीक पहुँचाया जानेवाला। (स्त्री०) भाये ल्यत् ।
३ नयन, प्रापण, इन्तिकाल, तकबोल, ले जाना।
३ समर्पण, नजर।

अभिविख्यात (सं० त्रि०) लोकप्रसिद्ध, खूब मगझर,
जिसे सब लोग जानें।

अभिविद्यत (सं० त्रि०) विधोयित, सूचित, सुशहर,
जो लोगोंको बता दिया गया हो।

अभिविधि (सं० पु०) अभि समन्तात् विधि व्यापनम्,
अभि-वि धा-कि। व्याप्ति, इन्दिराज, समायी।

अभिविनीत (सं० त्रि०) १ भली भाँति बरताव
करनेवाला, जो अच्छीतरह पैग आता हो। २ सुगोल,
सुखद्व। ३ साधु, पाकोला।

अभिविमान (सं० पु०) अभितः विशेषण मानं
हादयाङ्गलरूपपरिमाणं यस्य, प्रादि बहुव्री० । १ पर-
मात्मा, परमेश्वर। (त्रि०) २ अपरिमित परिमाण-
वाला, जिसकी जसामत देहद रहे।

अभिविशद्विन् (सं० त्रि०) भयभीत, डरनेवाला।

अभिविद्युत (सं० त्रि०) सुप्रसिद्ध, खूब मगझर।

अभिवीचित (सं० त्रि०) मंष्ट, देखा हुआ, जो
मादुम पड़ गया हो।

अभिवीच्य (सं० अव्य०) देख या समझकर।

अभिवीर (सं० पु०) पुरुषों वा वीरोंसे आवेष्टित
व्यक्ति, जिस शस्त्रको आदमी या बहादुर धरे रहें।

अभिहत (सं० त्रि०) व्याहत, उद्धृत, जुना हुआ,
जो छोट कर निकाला गया हो।

अभिहत (सं० त्रि०) १ गया हुआ, जो खाना हो
चुका हो। २ घूम जानेवाला, जो रुख बदल रहा हो।

अभिहृत्ति (सं० स्त्री०) अभि-हृत्-क्लिन् । सर्वथा
गमन, दीड़ घूम।

अभिहित (सं० द्वि०) विस्तारित, सग्रह, बढ़ा हुआ, जो फेल गया हो।

अभिहित (सं० स्त्री०) सग्रह, संयोग, सफलता, बढ़ती, मिल, कामयाबी।

अभिहित (सं० द्वि०) १ मिश्रित, सौंघा हुआ, जिसमें पानी दे चुके। २ बरसा हुआ, जा बरस चुका हो।

अभिविग (सं० पु०) विचार, अभीष्ट, ख्याल, इरादा।

अभिव्यक्त (सं० द्वि०) अभि-वि-भ्रष्ट कर्मणि क्त।

१ फ्लोन्सुभ्रोजित, जाहिर, साफ़। "तत्र वेदमभिव्यक्तं पौरुषं" (वाचस्पत्य) २ अभिव्यक्तियुक्त, प्रकाशित, जाहिर किया हुआ, जो बताया गया हो।

३ सांख्यदि मतसिद्ध आविर्भावयुक्त। (अव्य०)

४ प्रकाशभावसे, साफ़-साफ़।

अभिव्यक्ति (सं० स्त्री०) अभि-वि-भ्रष्ट-क्तिन्।

१ प्रकाश, जहूर। २ घोषणा, डिंटोरा। ३ सांख्यदि मतसिद्ध भूत्प्ररूपस्थित कारणका कार्यरूप आविर्भाव।

४ एकरूप स्थित पदार्थका अन्यरूप प्रकाश।

अभिव्यङ्ग्य (सं० द्वि०) प्रकाशित किया जानेवाला, जो साफ़-साफ़ बताने काविल हो।

अभिव्यञ्जमान (सं० द्वि०) प्रकाशित किया जाते हुआ, जो साफ़-साफ़ बताया जा रहा हो।

अभिव्यञ्जक (सं० द्वि०) अभिव्यञ्जयति प्रकाशयति, अभि-वि-भ्रष्ट-णिच्-त्-न्। १ प्रकाशक, जाहिर करनेवाला। २ निर्देशक, जो बताता हो। ३ भ्रष्ट-कारणसे व्यञ्जनाश्रिति द्वारा प्रकाशक।

अभिव्यञ्जन (सं० स्त्री०) प्रकाशन, जाहिर करनेकी शक्त।

अभिव्यादान (सं० स्त्री०) १ नियन्वित शब्द, देवी हुई भावाज्ञ। २ अभिन्न शब्दकी पुनराश्रिति, उन्नी भावाज्ञका दोहराव।

अभिव्याधिन् (सं० द्वि०) आघातकारी, अतिकष्टदायक, मार डालनेवाला, जो गहरी पीट लगाता हो।

अभिव्यापक (सं० द्वि०) अभितो व्याप्नोति, अभि-वि-भाप-ष्ट-न्। सकल दिक् व्यापक, जो सकल अवयवमें व्याप्त हो, सब ओर भरा हुआ, जो सब

अज्ञमें समा रहा हो,। ३ व्याकरणमतसे—सकल अवयव व्याप्त आधार अभिव्यापक होता है।

"चोपटं विदो वेवधिकोऽभिव्यापकश्चेत्प्राथमिकः।" (विद्यालोकमुदी) अभिव्याप्त (सं० द्वि०) मन्ग्लित, शामिल, मिला हुआ।

अभिव्याप्ति (सं० स्त्री०) अभि-वि-भ्रप् भावे क्तिन्।

सकल दिक् व्यापन, सर्वत्र अवस्थान, सकल अवयव व्याप्ति, सब तर्फ समायो, सब जगह रहायिग, सब गज्जाकी पैट।

अभिव्याप्य (सं० द्वि०) अभिव्याप्यते, अभि-वि-भाप् कर्मणि ष्यत्। १ सकल अवयव व्यापनीय, सब अज्ञमें समा जानेवाला। (अव्य०) ल्यप्। २ सकल अवयवमें व्याप्त होकर, सब अज्ञमें समाके।

अभिव्याहरण (सं० स्त्री०) अभिव्याहार देखो।

अभिव्याहार (सं० पु०) अभि सौम्यः व्याहार उक्तिः, अभि-वि-भा-ह-घञ्। १ प्रयत्न उक्ति, भली बात। २ उच्चारण, तलफूफुज।

अभिव्याहारिन् (सं० द्वि०) उच्चारण करनेवाला, जो कह रहा हो।

अभिव्याहृत (सं० द्वि०) उच्चारित, कहा हुआ, जो सुंइसे निकल गया हो।

अभिवृत्त (सं० पु०) आक्रमण, हमला, चढ़ाई।

अभिगंसक (सं० द्वि०) १ अभियोग लगानेवाला, जो इलजाम लगाता हो। २ अपमान करनेवाला, जो इज्जत उतारता हो। ३ अपयग्य कहनेवाला, जो गाली देता हो।

अभिगंसन (सं० स्त्री०) अभितः शंसनं श्लोघवचनं आरोप्यापवादो वा, अभि-गन्त-नुदात्। १ अपवाद, इल-जाम। २ पक्ष वाक्यप्रयोग, कड़ी बातका कहना। ३ आक्रोश, बढ़दुवा।

अभिगंसिन्, अभिगंसक देखो।

अभिग्रह (सं० द्वि०) अभितः शब्दा यक्ष, प्रादि-वहुव्री०। सर्वथा शब्दायुक्त, जिसे सब तरह शक बना रहू।

अभिग्रहा (सं० स्त्री०) अभितः शब्दा ; प्रादि-तत्, अभि-शब्द-भावे ष-टाप्। १ सर्वथा शब्दा, सकल प्रकार आग्रह, संसय, भ्रम, शक।

अभिशङ्कित (सं० त्रि०) शङ्कायुक्त, भयभीत, शक करनेवाला, खौफ़ज़दह, जिसे डर लग चुके।

अभिग्रपन (सं० क्ली०) अभिग्रप देखो।

अभिग्रम (सं० त्रि०) अभिग्रम्यते स्म, अभि-ग्रप कर्मणि क्त। १ अभिग्रपापस्त, शापित, जिसे बद्दुवा दी जा चुके। २ अभिग्रयोग लगाया हुआ, जिमपर हलजाम लग चुके। ३ निन्दित, बदनाम।

अभिग्रन्दि (सं० त्रि०) आभिसुख्येन शब्दितम्। सम्मुख आहृत, सम्मुख कथित, सामने सुनाया हुआ, जो मुँहपर कहा गया हो।

अभिग्रन्त् (सं० त्रि०) अभि-ग्रन्त्-क्तिप्। १ सर्वथा आक्रोशकारी, सबतरह बद्दुवा देनेवाला। २ सर्वथा अपवादकारी, सब तरह हलजाम लगानेवाला। (दे० स्त्री०) ३ अभिग्रयोग, हलजाम।

अभिग्रस्त (सं० त्रि०) अभिग्रस्यते-श्च, अभि-ग्रन्त्-क्त। १ मिथ्यापवादित, झूठ मूठ बदनाम। अभि-ग्रथे क्त। २ हिंसित, आक्रान्त, मारा हुआ, जो चोट खा चुका हो। (क्ली०) ग्रन्त् ग्रस् वा भावे क्त। ३ आक्रोश, अभिग्रप, अपवाद, हिंसन, बद्दुवा, बदनामी, मारपीट।

अभिग्रस्तक (सं० त्रि०) १ मिथ्यापवादित, झूठ-मूठ बदनाम। २ शापित, जिसको बद्दुवा दी गयी हो। ३ अभिग्रपसे उत्पन्न, जो बद्दुवासे पैदा हुआ हो। (स्त्री०) अभिग्रस्तिका।

अभिग्रस्ता, अभिग्रस् देखो।

अभिग्रस्ति (सं० स्त्री०) अभि-ग्रन्त्-क्तिन्। १ अभि-ग्रप, बद्दुवा। २ अपवाद, बदनामी। ३ हिंसा, कत्ल। आभिसुख्येन शस्तियार्चनम्। ४ प्रार्थना, प्रार्थ।

‘अभिग्रस्तिः पुनर्लोकप्राप्तेः शान्तेः प्रिये च।’ (धन)

अभिग्रस्तिचातन (दे० पु०) अभिग्रप निवारण, बद्दुवाका दूर रखना।

अभिग्रस्तिपा (वे० पु०) अपवाद वा अभिग्रपसे बचानेवाला व्यक्ति, जो शब्दस बदनामी या बद्दुवासे बचाता हो।

अभिग्रस्तु (सं० पु०) शत्रु, हानिकर्ता, दुश्मन, नुकसान पहुँचानेवाला।

अभिग्रस्तार (सं० त्रि०) अभिग्रस्तिं अभिग्रपं अर्हति यत्। अभिग्रपापार्ह, हिंसाके योग्य, बद्दुवा देने काविल, जो मारा जाने लायक हो।

अभिग्रान्त (सं० क्लो०) अतुंग्रह, कृपा, मेहरवानी, नेवाञ्जि।

अभिग्रप (सं० पु०) अभि-ग्रप-घञ् वा दीर्घः। १ अभिग्रमपात, आक्रोशयाक्य, बद्दुवा, कीसनको बात। २ मिथ्यापवाद, झूठी बदनामी।

अभिग्रपञ्चर (सं० पु०) अभिग्रपके कारण आया हुआ च्वर, जो बुखार बद्दुवाके सबब चढ़ आता हो।

अभिग्रपापित (सं० त्रि०) अभिग्रप दिया हुआ, जिसको बद्दुवा दी गयी हो।

अभिग्रिरीष (सं० त्रि०) ग्रिरीसोऽभिसुखं अथमस्य, बहुवी०। ऊर्ध्वदिक् मूल एवं निम्नदिक् श्रांखावाला, जिसको जड़ ऊपर और डाल नीचे जाये।

अभिग्रिरीतं (सं० चि०) बहुत ठण्डा, निहायत सर्द।

अभिग्रिरीन (सं० त्रि०) घनोभूत, जो गाढ़ा हो गया हो।

अभिग्रिरीक (सं० पु०) अभिलक्ष्मीछल्य कमपि शोकः, प्रादि-तत्। १ किसीको लक्ष्यकर शोक करनेवाला व्यक्ति, जो शब्दस किसीको देख अपसोस करता हो। (क्लो०) श्च-ल्यट्। २ अभिग्रिरीचन, पक्षतावा।

अभिग्रिरीच (सं० त्रि०) चमत्कृत, प्रदीप्त, चमकीला, जो गर्मसे चमक रहा हो।

अभिग्रिरीचयिष्णु, अभिग्रिरीच देखो।

अभिग्रिरीरि (सं० अथ०) शौरिकी शोर, कण्ठको तर्फ़।

अभिग्रिरीयान, अभिग्रिरीच देखो।

अभिग्रिरीय (वे० पु०) अभि-ग्रु-अप् वेदे घञ्। सर्वथा व्यवथ, सकल दिक् व्यवथ, सबतरह सुनायी, चारो ओरका सुनना।

अभिग्रिरीयण (वे० क्ली०) वेदके मन्त्रविशेषका पुनः पुनः उच्चारण, श्राद्ध करनेको बैठना।

अभिग्रिरीयथ, अभिग्रिरीच देखो।

अभिग्रिरी (वे० पु०-स्त्री०) १ संयोजक, जोड़नेवाला, जो मिला रहा हो। २ नियमसे रखनेवाला, जो

तरतोश्च जगता ही। ४ शरणापय, पगाइ वा जाने
कृत्रिम। ५ मग्नानित, रज्जु, तदार। ६ प्रदीप्त, चमकते
रूप। ७ गच्छिमाप्ती, ताकृतवर।

अभिप्रेषण (सं० क्री०) अग्र, विद्वान्, रज्जु, पद्मी
बांधनेकी शिष्ट।

अभिप्रेतम् (सं० त्रि०) उपर मांस सेनेवाणा, जो
किमीको तर्क मांस बनाता हो।

अभिप्रेत (सं० पु०) उद्गार, उद्गम, उद्गमन,
मांसका छोड़ देना।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभिप्रेतम् अर्थे अग्रमप्य
अपि यत् प्रादि-पद्योः। अग्रपरित, जिनका
अभाव पडित रहै, नैकचलन, पाकीर्ण मित्राजवाणा।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभिप्रेत, पराजित, अभिप्रेत,
निन्दित, दासमान, मित्रका, जिनको बटदुवा दोःगयी
हो, बटनार।

अभिप्रेत (सं० पु०) अभिप्रेतः मङ्गो मित्तन्मू चागतिर्गो
धनः प्रादि-बटुयोः, अभिप्रेत पद्यम्। १ अग्रप, कृष्ण।

२ पाकीर्ण, बटदुवा। ३ पराभव, हार। 'अभिप्रेत
करे अग्रमप्येति अर्थः' (शिव) ४ चागति, कर्माव।

५ अग्रम, दुःख, घादन, तर्कमात्रः। 'अभिप्रेतमन्त्रम्'
(अ० ५६) 'अभिप्रेतः अग्रमप्येति' (अ० ५७) ६ पूर्ण
रंदाय, पुरा भन। ७ मङ्गल, मोहवत। ८ चागति, न,
दातामि दातांको प्रेसमे मिलाया। ९ प्रेतवाधा,
मेताज्का भावा।

अभिप्रेतवर (सं० पु०) भूतादिके दायेमये पाया
रूप। अवर, जो दुपार मेताज्के भाये मवव श्रुता
हो। यह वः प्रकारका योग। वैद्यकेमे निवा है,—

“अभिप्रेतवरः अग्रमप्येति अर्थः।
अभिप्रेतरे अर्थे अग्रमप्येति अर्थः (अग्रपरितान)

पुनश्च,—

“अभिप्रेतवरः अग्रमप्येति अर्थः।
अभिप्रेतरे अर्थे अग्रमप्येति अर्थः (अग्रपरितान)

अभिप्रेत (सं० क्री०) वैदका पाय विमोय।

अभिप्रेत (सं० पु०) अभिप्रेत-पद्यम्। १ यथोय छान,
मन्त्रवादी गुणम्। २ निव्योङ्ग, मोमलताका निचोड़।
३ मध्यमत्याग, पावकागे। ४ सुरामष्ट, कारोसर,

गुमीर। ५ मोमलताका रसपान। वदिक समयमे
अपि मकटपर सोमकी लाद जाते थे। उसकी बाद
वहो लता मक्षरपर रस अन्य मक्षर द्वारा दबा
देते रहे। अच्योतरह दय जानेमे भेड़के चमड़ेको
ममकमे छेद भरते और कूट-कूट कर रस निकालते
थे। मगकका रोयेदार चमड़ा भीतरकी ओर रहता
था। योके वही रस पुनर्बार चमड़े आधारसे छान
सेनेपर परिष्कार होते रहा। अपि कुम्भके भीतर
रस मोमरसमे यव, चीनी प्रथति नानाप्रकार द्रव्य
मिला देते थे। लघोमे अन्तःकृतिक छोकर मध्य
पद्युत होते रहा।

शुद्धि छायेते अभिप्रेत, अधिकरयि अप्। ६ यद्य।
७ अनेमशास्त्रके मतमे भोज्योरादि द्वय वा तृप्य द्रव्य।

“अभिप्रेतः अर्थः।
“अभिप्रेतः अर्थः अर्थः अर्थः अर्थः अर्थः”

(अग्रपरितान)

अभिप्रेत (सं० क्री०) अभि-सु-गुणः। अभिप्रेत हीं।

अभिप्रेत (सं० क्री०) सोम-निव्योङ्गका यन्त्र,
जिस ओत्रमे सोम दबाया जाय।

अभिप्रेतनीय (सं० त्रि०) सोमरसकी भांति निचोड़े
जाने योग्य, जो रस दवाने काबिल हो।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभिप्रेतः मोट्टं गकरम्, अभि-
मह-यत्। १ सहन करने योग्य, जो बरदाश करने
काबिल हो। (अग्रप्य) २ वनपूर्वक, जोरसे।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभि-मह-स्वार्थे विष्-क्षिप्।
मह-स्व अर्थान् करनेमे समय, अभिभावक, सामने बांध
मकनेवाणा, जो जड़यत् कर सकता हो।

अभिप्रेत (सं० पु०) सोमरस निचोड़नेवाला प्यक्ति।

अभिप्रेतकीय (सं० त्रि०) अभिप्रेतक-सम्पन्नीय,
जा सोम निचोड़नेवासे मध्यमे ताकूट रहता हो।

अभिप्रेत, अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभि सच-ष्ठ स्वार्थे
विष्-क्षिप् वा। १ मङ्गल्यकारो, दुश्मन्की जीतने-
वाणा। २ सहनकारो, जो बरदाश कर सेता हो।

अभिप्रेत (सं० त्रि०) अभिप्रेतते च, अभिप्रेत-
क। १ विधिपूर्वक छायेते, जो महजुषी तौरपर
नहलाया गया हो। प्रतिमाकी प्रतिष्ठा और राजाके

राज्यभार पाने इत्यादि शुभकार्यमें तोर्थजलादि द्वारा विधिपूर्वक लोग नहति है।

अभिपिषित् (सं० त्रि०) अभिषेक करनेका इच्छुक, जिसे तेल चढ़ानेकी स्थास्थि लगी रहै।

अभिषुक (सं० पु०) काबुल बगैरइका मयइर भेवा, पिप्ता।

अभिपुत (सं० त्रि०) अभिषयते घ्न, अभि-सु-क्त।
१ निष्पीडित, सोमरसको भांति निचोड़ा हुआ। (श्लो०)
२ काञ्जी।

अभिषुविकान्त (सं० पु०) माधवीसुरा, महुवेकी शराव।

अभिषेक (सं० पु०) अभिषेचनं अभि-सिच-भावे सञ् । विधान अनुसार शान्तिके लिये मेचन, अधिकार पानेके लिये स्नान, मन्त्रमे शिरपर जल छिड़ककर मार्जन, कर्तव्य कर्मके अन्तमें शान्तिस्नान, पुरस्करणके अन्तर्गत मन्त्रद्वारा शिरपर जल छिड़कनेका तीसरा काम। इष्टमन्त्रग्रहण करते समय दश प्रकारके संस्कारमें पाँचवां संस्कार विशेष। यथा गौतमीये

“जननं जीवनं पश्चात्तान्नं बोधनं तथा।

अथाभिषेको विमलीकराध्यायने पुनः।

सपथं दीपनं शुनिर्दं गेता मन्त्रसंक्षिप्याः ॥”

जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, अध्यायन, तर्पण, दीपन, गोपन, मन्त्रका यही दश प्रकार संस्कार है।

मन्त्राभिषेककी प्रणाली इस तरह लिखी हुई है,—स्वर्ण अथवा ताम्बादिके पात्रपर पहले खरव्यञ्जन-भेदमे कुङ्कुमद्वारा मन्त्रको लिखना चाहिये। फिर उसके ऊपर तालपत्रादि रखकर पंक्ति पंक्ति मन्त्र लिखे। अन्तमें,—“सप्तत्रयसंभविष्यामि नमः”—यह मन्त्र सी, वीम या षाठ बार उच्चारण कर कुङ्कुमसे लिखे हुए मन्त्र द्वारा प्रत्येक वर्षको पोपसके पत्रवसे अभिषेक करना पड़ेगा।

शक्तिमन्त्र द्वारा दीक्षा देते समय मधुसे अभिषेक करना होता है। विश्वामन्त्रमें कर्पूरयुक्त जल प्रयुक्त है। शिवमन्त्रमें घी अथवा दूध देना चाहिये।

शिवलिङ्गादि प्रतिष्ठा एवं दोलयात्रादि उत्सवमें भी अभिषेककी पहति है। किन्तु सब क्रियाका अभिषेक द्रव्य समान नहीं होता।

दोलयात्रा अभिषेकके द्रव्य यह हैं,—शोतल जल, गायका गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घा, कुगका जल, शङ्का जल, चन्दनका जल, कुङ्कुमका जल, फूलका जल, फलका जल, चन्दन और अंबरा—इन सबको एक साथ पीस कर उसका प्रलेपन और सुगन्धि जल। इन सब वस्तुओंसे आठ बार स्नान कराना चाहिये। दूसरी बार स्नानके समय अभिषेक-द्रव्योंके साथ दूध मिलाते हैं। पाँचवाँ बारके समय घी और आठवाँ बारके समय उसमें मधु मिला देना आवश्यक है। अन्तमें अन्यान्य द्रव्योंके साथ गङ्गोदक, तोर्य-जल, गङ्गाजल, वल्मीक जल, सर्वौषधि-जल, सहस्रधारा-जल, घड़ेका जल—इन सब द्रव्योंसे अभिषेक करते हैं।

दुर्गापूजाके अभिषेकमें यह सब द्रव्य व्यवहृत होते हैं,—पिसे हुए अंबरेमें हलदी मिलाकर उसका प्रलेपन, शुद्धजल, शङ्का जल, गङ्गाजल, गन्धोदक, पद्मगवय, कुशका जल, पञ्चामृत, शिशिरका जल, मधु, फूलका जल, इक्षुरस, सागरका जल, सर्वौषधि-महौषधि-जल, पञ्चकपायका जल, अष्ट भक्तिका, फलका जल, उष्ण जल, सहस्रधारा-जल, वृष्टि-मन्दा-किनौ-सरस्वती-सागर-पद्मरेणुमिश्रित-भिर्भर मंत्रैतीर्थ-शुद्धजल, इन आठ प्रकारके जलोंसे पूर्ण आठ घड़े रखे। फिर इन आठ प्रकार घड़ेके जलोंसे स्नान कराते समय आठ प्रकारके वाजे बजाने और राग बालापनेका विधि है। ब्रह्मन्दिशेखर, देवीपुराण और कालिकापुराणमें भिन्न भिन्न वाजों और रागरागिणियोंके नाम पाये जाते हैं।

ब्रह्मन्दिशेखरके मतसे इन सब राग रागिणियोंमें यह गीत होना चाहिये,—१ मालश्री, २ देवकीरो, ३ बराड़ी, ४ देगाख्य, ५ घनाश्री, ६ भैरवी, ७ गुर्जरी, ८ वसन्त। देवीपुराणके मतसे,—१ बराड़ी, २ मालश्री, ३ मालव, ४ देगाख्य, ५ मालश्री, ६ भैरवी, ७ वसन्त, ८ कोड़ा। कालिकापुराणके मतसे,—

यक, रचक, मददगार, मुहाफिज। ३ रचा रखने कारण पुन्य वरक्ति, जिस शख् सकी तारोफ् हिफाजत करनेसे रहे। ४ आक्रमणकारी, हमला करनेवाला। ५ शत्रु-पराजयकारी, दुश्मनको शिकस्त देनेवाला। ६ अभिलाष, खाद्दिय। (स्त्री०) ७ साहाय्य, रचा, मदद, हिफाजत। ८ यत्न। ९ यत्नीय गीत। १० साहाय्यार्थ उपस्थिति, मददके लिये पहुँचना।

अभिष्टिक्तत् (सं० त्रि०) सहायक, मददगार।

अभिष्टिदुःख (सं० त्रि०) आनन्ददायक, आराम देनेवाला।

अभिष्टिपा (वे० पु०) शत्रु से रचा करनेवाला, निवारणकारी, जो दुश्मनसे हिफाजत करता हो, दुश्मनको दूर रखनेवाला।

अभिष्टिमत् (सं० त्रि०) अभिलषणोप, उत्कण्ठा योग्य, मरगुब्ब, काबिल-तमना, पसन्दीदा, अच्छा।

अभिष्टिवस् (सं० त्रि०) सहायक वरक्ति, मददगार शख्स, जो आदमी दुश्मनको जीतने काबिल हो।

अभिष्टुत (सं० त्रि०) अभितः स्तुतम्, अभि-स्तु-त्ता। प्रशस्त, प्रशंसित, वर्णित, स्तुत, तारोफ् किया हुआ।

अभिष्टवत् (सं० त्रि०) प्रशंसापरायण, जो तारोफ् कर रहा हो।

अभिम्यत् (सं० त्रि०) विनाशक, हिंसक, बरबाद करनेवाला, जो कत्ल कर रहा हो।

अभिम्यन्द, अभिम्यन्द (सं० पु०) अभि-म्यन्द भावे घञ्, अप्राणि-कर्त्तरि वा पत्वम्। १ अतिहृदि, अधिक हृदि वा फूलना, बहाव, जल आदिका निकास, जलका गिरना। आधारे घञ्। २ नेत्ररोगविशेष। 'अभिम्यन्दय आसायनेनरोगानिहतिहृदु।' (वेम) नेत्रके भीतर धूल, कौड़ा, पसीना, आदि बाहरकी कोई वस्तु उड़कर पड़ने; उग्र वायुआदिका तेज, प्रखर रौद्र, धूम, पूर्वं वा उत्तर दिशाका वायु अथवा अति शीतल वायु प्रभृति लगने, सर्वदा सूक्ष्म वस्तुकी ओर देखते रहने, वर्षा और शीतकालकी रात्रिका वायु छूने; अतिशय मद्यपान, अतिमेथुन, अत्यन्त मानसिक उद्वेग, अधिक वमन, कोष्ठवहता, शिरोरोग, अतिशय क्रोध प्रभृति कारण

विद्यमान रहनेसे अभिम्यन्द रोग हो सकता है।

Ophthalmia, Suppurative inflammation of the eye प्रभृति रोग यहाँ एक ही साथ गृहीत हुए हैं।

वैद्यक पुस्तकोंमें अभिम्यन्दरोग चार श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है,—वातजनित, पित्तजनित, कफ-जनित और रक्तजनित। फलतः यह रोग कहीं सृजज और कहीं अतिशय कठिन हो जाता है। नेत्र छोड़े या बहुत लाल हो जाते और जैसे उनमें धूल पड़ गई हो, देसे करकराया करते हैं। इसे 'खाँख उठना' (Conjunctivitis, simple ophthalmia) कहते हैं। वैद्यशास्त्रका यह वातजनित अभिम्यन्द है।

कफजनित अभिम्यन्द (Ophthalmiacum catarrho, catarrhal ophthalmia) पहलेसे कुछ विभिन्न है। इस रोगमें खाँखके भीतर मानो तेज सूईकी तरह सदैव कुछ सुभा करता है। पलकके भीतर बालू प्रभृति पड़ जानेसे जिस तरह खाँख करकराती, उसी तरहकी पीड़ा उठती है। सदैव अत्यन्त जल और बीचड़ बहा करता है; रातकी नेत्रके मलसे दोनों पलकें सटतीं, कोबे अत्यन्त लाल हो उठते और खाँखें फूल जाती हैं। उस लनाईमें पतली-पतली रेखायें दिखाई देती हैं। इस श्रेणीका रोग कुछ संक्रामक होता है।

पित्त और रक्तजनित अभिम्यन्द—पूयजनक प्रादाह है (Ophthalmia purulenta, purulent ophthalmia)। यह रोग अतिशय कठिन और कटकर होता है। पहले खाँख कुछ कुछ खुजलाती, उसकी बाद बहुत करकराती और भीतर पीड़ा मालूम पड़ती है। ऐसा जाननेमें आता, मानो हठात् खाँखके भीतर कहीं कौड़ा पड़ गया और दुःसह यन्त्रणा होती है। दोनों पलक अत्यन्त फूल जाते हैं। पहले केवल जल, फिर मलमिश्रित जल गिरने लगता है। कोबे लाल हो जाते हैं। शिरमें पीड़ा होती, शरीर गर्म पड़ता और नाड़ी तेज हो जाती है। बीच बीचमें वमन और वमनोद्देग हुआ करता है।

नेत्ररोगमें मादक द्रव्य-सेवन, अधिक मानसिक चिन्ता, रात्रिजागरण, धूप, धूम, शीतल वायु, पूर्वं और उत्तर दिशाके वायुका लगना, अधिक मेथुन, मत्स्य,

गच्छति, अभि-सम्-सृ-घञ् । १ जगत्, जहान् ।
२ दत्तरूप आगमन, झुण्ड बांधकर पडुं चना । (अव्य०)
संसारस्थामिमुख्यम्, अव्ययी० । ३ संसारके अभिसुख,
दुनियाके सामने । ४ अभिगमन करके, रवाना
होकर ।

अभिसंस्कार (सं० त्रि०) भावना, भावन, कल्पना,
कल्पन, महत्त्व, वामना, मनःकल्पना, कुव्वत सुतखै यल,
बन्धिय-ख्याल, सोच-विचार ।

अभिसंस्तय (सं० पु०) चल्कट प्रयंसा, गहरी तारोफ ।

अभिसंस्तुत (सं० त्रि०) अतिग्रय प्रयंसित, निहा-
यत तारोफ किया हुआ ।

अभिसंहत (सं० त्रि०) नियोजित, संगठित, जोड़ा
हुआ, जो मिल गया हो ।

अभिसंहित (सं० त्रि०) अभि-सम् धा कर्मणि
कर्तरि वा ऋ । १ किसी फलके उद्देश्यसे कृत, जो
किसी नतीजेके लिये किया गया हो । २ अभिसन्धिका
विषयभूत, लगा हुआ । ३ अभिसन्धिकर्ता, राजा,
जो मञ्चूर कर चुका हो ।

अभिसंक्रुद्ध (सं० त्रि०) जातामर्ष, रुष्ट, सामर्ष,
सरोप, कुपित, समन्व, नाराज गुप्सावर, जिसको
गुप्सा आ गया हो ।

अभिसंक्रुद्धयत् (सं० त्रि०) कुपित होनेवाला, जो
नाराज हो रहा हो ।

अभिसद्धित (सं० त्रि०) १ फेंका हुआ, जो डाल
दिया गया हो । २ फेंकने, गोली मारने या निगाना
लगानेवाला । ३ जिसपर निगाना लग चुके ।

अभिसद्दोष (सं० पु०) प्रहण, बोध, धी, मति, बुद्धि,
अवधारण, मेधा, समझ, अज्ञा, हाफिजा ।

अभिसद्द्वय (सं० त्रि०) अनुमेय, आनुमानिक, निरूप-
णाय, निर्णययोग्य, अन्दाजी, बताने काबिल ।

अभिसद्द्वय (सं० त्रि०) रचित, दात, द्विफाजत
किया हुआ ।

अभिसच्चारिन् (सं० त्रि०) अस्थिर, अट्ट, चल,
तरल, सोलमति, चलचित्त, सुतलव्विन, बेवफा,
सुतगैर, सुतमदिल, जो ठहरता न हो ।

अभिसच्चात (सं० त्रि०) उत्पन्न, उत्पादित, निर्मित,

घटित, सृष्ट, जनित, जात, उद्भूत, पैदा होनेवाला,
जो पैदा हुआ हो ।

अभिसन्तत (सं० त्रि०) विस्तृत, दोर्घकृत, प्रसारित,
फैल जानेवाला, जो खूब बढ़ गया हो ।

अभिसत्वन् (वै० त्रि०) वीर पुरुषोंसे आवेष्टित, जो
बहादुर लोगोंसे घिरा हो ।

अभिसन्तप्त (सं० त्रि०) अतिग्रय आतद्धित, व्यथित,
पीड़ित, दुःखित, प्रमथित, अज्ञाव या अज्ञोयत दिया
हुआ, जिसको तकलीफ पडुं ची हो ।

अभिसन्ताप (सं० पु०) अभि-सम्-तप् भावे घञ्
अभिसन्ताप्यतेऽधिन् धधिकरणे वा घञ् । १ बुद्ध, जङ्ग,
सड़ाई । अभिसन्ताप्यतेऽनेन, अभि सम्-तप्-णिच्
करणे अच् । २ अभिग्राप, बद्दुवा ।

अभिसन्दस्त (सं० त्रि०) अतिग्रय भयभीत, जो बहुत
डर गया हो ।

अभिसन्दष्ट (सं० त्रि०) सद्बोचित, सम्पीड़ित,
दबाया हुआ, जो बांधा गया हो ।

अभिसन्देह (सं० पु०) १ विनिमय, परोवर्त, परि-
वृत्ति, परिदान, व्यतिहार, सुवादला, अलटा-पलटा,
अदला-अदला । २ जननेन्द्रिय, पैदा करनेका आला ।
इस अर्थमें अभिसन्देह भी लिखते हैं ।

अभिसन्ध, अभिसन्धक देखो ।

अभिसन्धक (सं० चि०) अभिधर्षणं सन्धत्ते, अभि-सम्-
धा-क स्वायं कन् । दूसरेका गुण न सह सकनेपर
आक्षेपकारो, परगुणासद्धिष्णु, दूसरेका वस्त्र, न देख
सकनेपर ताना मारनेवाला, जो इलजाम लगाता हो ।

अभिसन्ध्या (सं० स्त्री०) अभि-सम् धा भावे अड् ।
१ वक्षना, फरेव, धोका । २ फलोद्देश्य, खास राजो-
नामा । ३ अभिसन्धि, लगाव, फायदा । ४ वचन,
कथन, बातचीत, इजुहार ।

अभिसन्ध्यान (सं० स्त्री०) अभि-सम्-धा-लुगट् । १ पर-
वक्षन, धोकेबाजी, होलासाजी । २ फलोद्देश्य, आखिरी
मतलब । ३ अभिसन्धि, लगाव, सुहृद्वत् ।

"सा हि सन्ध्याभिसन्ध्या ।" (रामायण ३।३।१२१)

अभिसन्ध्याय (सं० पु०) अभि-सम्-धा वाङ्मुलकात्
य घञ् वा । १ अभिसन्धि, लगाव । २ फलोद्देश्य,

आखिरी मतलब। (अर्थ०) व्यप। फलादिका उद्देश्य करके, नतीज वगैरहके मतलबसे।

अभिसन्धि (सं० पु०) अभि-सम्-धा भावे कि। फलादिका उद्देश्य, अभिसम्बन्ध, मतलब, गुरज, इरादा।

अभिसन्धिकृत (वे० त्रि०) प्रयोजनानुसार किया हुआ, जो मतलबसे किया गया हो।

अभिसन्धित (सं० त्रि०) अभिसन्धा जाता अर्थ, तारकादि इतत्। उद्देश्य-विगिष्ट, अभिसन्धिविषयक, मतलबसे भरा हुआ, जिससे मतलब निकले।

अभिसन्धिता (सं० स्त्री०) नायिकाविशेष, कल-हान्तरिता। यह अपने आप प्रियसे लड़ पकताया करती है।

अभिसन्धह (सं० त्रि०) १ अलङ्कृत, सूपित, सुस-क्लित, धारास्ता, सजा हुआ।

अभिसमवाय (सं० पु०) सम्बन्ध, सङ्गति, मेल-जोल, साथ।

अभिसम्पत्ति (सं० स्त्री०) अभितः सम्पत्तिः, प्रादि-स०, अभि-सम्-पद-क्तिन्। १ सकल दिक् सम्पत्ति, पूरे तौरपर असरका पड़ना। २ संभ्रान्ति, परिवर्तन, विकार, स्थित्यन्तर, अवस्थान्तर, तबदील, तगैयुर, तबद्दल।

अभिसम्पद् (सं० स्त्री०) अभि अतिशय सम्पत्, प्रादि-स०। १ अधिक सम्पत्ति, अधिक धन, ज्यादा दौलत, बहुत रुपया-पैसा। २ पूर्ण होनेकी स्थिति, जिस हालतमें पूरा पड़े।

अभिसम्पद (सं० अर्थ०) सम्पदमभिलक्षीकृत्य, टजन्त अर्थयो०। सम्पदकी अभिलक्ष्य करके, दौलत-की ओर इशारा निकालकर।

अभिसम्पन्न (सं० त्रि०) परिपूर्ण, पूर्णरूपसे सकल, जिसपर पूरे तौरसे असर पड़े।

अभिसम्पराय (सं० पु०) भावि उत्तर-काल, भविष्यत्, आगामि-काल, उक्त्वा, आक्षिप्त, आलम-गैव, इगि-कवाल, होनी, होनहार।

अभिसम्प्रात (सं० पु०) अभि साम्प्रत्येन सम्पतन्ति सङ्घच्छन्तेऽस्मिन्, आधारे घञ्। १ सुब, सड़ाई। भावे

घञ्। २ पतन, ज.वाल। सम्पतन्ति विनश्यन्ति घनेन कारणे घञ्। ३ अभिग्राय, बददुवा।

अभिसम्बह (सं० त्रि०) १ सम्मिलित, मिला हुआ। २ प्रमाणयुक्त, जो हवाला देता हो।

अभिसम्बन्ध (सं० पु०) अभितः सम्बन्धते, अन्ति-सम् बन्ध-घञ्, प्रादि-स०। १ अधिक सम्बन्ध, ज्यादा रिश्ता। २ अर्थ, संसर्ग, सम्पर्क, संसर्ग, संयोग, आमङ्ग, व्यतिकर, परामर्श, इतिहास, नमूना, कुवाय, भगवा। ३ दाम्पत्य सम्पर्क, पौरत-मटेका रिश्ता।

अभिसम्बाध (सं० त्रि०) अतिशय संयत, निरुह वा निवह, निहायत मुक्येद, जो खूब षटका हो।

अभिसम्बुध (सं० त्रि०) १ प्रत्यक्ष, समस्त, सम्बुध, सुंह सामने किये हुआ, जिसका चेहरा सामने रहे। २ आदरपूर्वक देखते हुआ, जो इज्जतके साथ निगाह डाल रहा हो।

अभिसर (सं० पु०) अभितः सरति, अभि-स-घ। सहाय, अनुचर, मददगार, नौकर।

अभिसरण (सं० क्ली०) अभितः सरणम्, प्रादि-स०। १ अभिगमन, सम्बुध गमन, पहुँच, मुलाकात, मिलनेको खानगी। २ नायकके अनुरागहेतु नायिका-का अन्य सद्देतस्थानको गमन, आशिकको लुब्ध करनेके लिये माशुकका दूसरे जगह पहुँचना। अश-सरण, अभिसार।

अभिसरत् (सं० त्रि०) आभिसुख्यार्थं गमनकर्ता, आक्रमणकारी, मिलनेकी जानेवाला, हमलावर, जो धावा मार रहा हो।

अभिसरना (सिं० क्लि०) १ गमन करना, चला जाना। २ अभीष्ट स्थानको खाना होना, वादेकी जगह पहुँचना। ३ नायक या नायिकाका प्रियतमसे मिलनेकी सद्देतस्थानके प्रति गमन, आशिक या माशुकका अपने प्यारसे मुलाकात करने किसे मुजर्र जगहको जाना।

अभिसर्ग (सं० पु०) सृष्टि, विनयत्।
अभिसर्जन (सं० क्ली०) अभि-स-ज भावे सुाट्। १ दान, उत्सर्ग, दक्षयिर्ग, देना। २ वध, कत्न।

गच्छति, अभि-सम्-सृ-घञ् । १ जगत्, जहान् ।
२ दलरूप आगमन, झण्ड बांधकर पहुँचना । (अव्य०)
संसारस्थामिसुख्यम्, अव्ययी० । ३ संसारके अभिसुख,
दुनियाके सामने । ४ अभिगमन करके, रवाना
होकर ।

अभिसंस्कार (सं० त्रि०) भावना, भावन, कल्पना,
कल्पन, सङ्कल्प, यामना, मनःकल्पना, कुञ्चत मुतखैयल,
बन्दिश-खुदान, सोच-विचार ।

अभिसंस्नाय (सं० पु०) उल्लत प्रशंसा, गहरी तारोफ़ ।

अभिसंस्तुत (सं० त्रि०) अतिशय प्रशंसित, निहा-
यत तारोफ़ किया हुआ ।

अभिसंहत (सं० त्रि०) नियोजित, संगठित, जोड़ा
हुआ, जो मिल गया हो ।

अभिसंहित (सं० त्रि०) अभि-सम् धा कर्मणि
कर्तरि वा ङ् । १ किसी फलके उद्देश्यसे कृत, जो
किसी नतीजेके लिये किया गया हो । २ अभिसन्धिका
विषयौभूत, लगा हुआ । ३ अभिसन्धिकर्ता, राजा,
जो मञ्जूर कर चुका हो ।

अभिसंक्रुद्ध (सं० त्रि०) जातामर्ष, रुष्ट, सामर्ष,
सरोष, कुपित, समन्ध, नाराज गुस्सावर, जिसको
गुस्सा आ गया हो ।

अभिसंक्रुद्धयत् (सं० त्रि०) कुपित होनेवाला, जो
नाराज हो रहा हो ।

अभिसद्धित (सं० त्रि०) १ फेंका हुआ, जो डाल
दिया गया हो । २ फेंकने, गोलौ मारने या निशाना
लगानेवाला । ३ जिघपर निशाना लग चुके ।

अभिसद्दोष (सं० पु०) प्रहण, बोध, धी, मति, बुद्धि,
अवधारण, मिथा, समझ, अज्ञा, ह्यफिज्ञा ।

अभिसद्दत्र (सं० त्रि०) अनुमेय, आनुमानिक, निरूप-
णीय, निर्णययोग्य, अन्दाज़ी, बताने काबिल ।

अभिसद्दत्त (सं० त्रि०) रचित, द्रात, द्विफाजत
किया हुआ ।

अभिसद्धारिन् (सं० त्रि०) अस्थिर, अट्ट, धल,
तरल, सोलमति, चलचित्त, मुतलब्धिन, वेधपा,
मुतगैयर, मुतयहिल, जो ठहरता न हो ।

अभिसद्धारित (सं० त्रि०) उत्पन्न, उत्पादित, निर्मित,

घटित, सृष्ट, जनित, जात, उद्भूत, पैदा होनेवाला,
जो पैदा हुआ हो ।

अभिसन्तत (सं० त्रि०) विस्तृत, दोर्बीकृत, प्रसारित,
फैल जानेवाला, जो खूब बढ़ गया हो ।

अभिसत्त्वन् (वै० त्रि०) वीर पुरुषोंसे आवेष्टित, जो
बहादुर लोगोंसे घिरा हो ।

अभिसन्तस (सं० त्रि०) अतिशय आतङ्कित, व्यथित,
पीड़ित, दुःखित, प्रमथित, अज्ञावया अज्ञेयत दिया
हुआ, जिसको तकलौफ़ पहुँची हो ।

अभिसन्ताप (सं० पु०) अभि-सम्-तप् भावे घञ्
अभिसन्ताप्यतेऽग्निन् अधिकरणे वा घञ् । १ युद्ध, जङ्ग,
लडाई । अभिसन्ताप्यतेऽग्निन् अभि-सम्-तप्-णिच्
करणे षच् । २ अभियाप, बटुवा ।

अभिसन्त्वस्त (सं० त्रि०) अतिशय भयभीत, जो बहुत
छर गया हो ।

अभिसन्दष्ट (सं० त्रि०) सङ्कोचित, सम्बोधित,
दबाया हुआ, जो बांधा गया हो ।

अभिसन्देह (सं० पु०) १ विनिमय, परोवर्त, परि-
दृष्टि, परिदान, व्यतिहार, मुबादला, अलटा-पलटा,
अदला-बदला । २ जननेन्द्रिय, पैदा करनेका आला ।
इस अर्थमें अभिसन्देह भी लिखते हैं ।

अभिसन्ध, अभिसन्धक देखो ।

अभिसन्धक (सं० त्रि०) अभिघर्षणं सन्धके, अभि-सम्-
धा-क स्वार्थे कन् । दूसरेका गुण न सह सकनेपर
आच्छेपकारो, परगुणासद्विष्णु, दूसरेका वस्त्र, न देख
सकनेपर ताना मारनेवाला, जो हलजाम लगाता हो ।

अभिसन्ध्या (सं० स्त्री०) अभि-सम् धा भावे अङ् ।
१ वक्षना, फरेब, धोका । २ फलोद्देश, खास राजी-
नामा । ३ अभिसन्धि, लगाव, फायदा । ४ वचन,
कथन, बातचीत, इज्जहार ।

अभिसन्धान (सं० स्त्री०) अभि-सम्-धा-लुगट् । १ पर-
वक्षन, धोकेबाजी, होलासाजी । २ फलोद्देश, आखिरी
मतलब । ३ अभिसन्धि, लगाव, सुहृद्व्यत ।

“ला हि स्याभिसन्धाना ।” (रामायण ३।५।१११)

अभिसन्धाय (सं० पु०) अभि-सम्-धा वाङ्मलकान्
ष घञ् वा । १ अभिसन्धि, लगाव । २ फलोद्देश,

आखिरी मतलब। (अव्य०) ल्यप्। फलादिका उद्देश्य करके, नतीजे वगैरहके मतलबसे।

अभिसन्धि (सं० पु०) अभि-सम्-धा भावे कि। फलादिका उद्देश्य, अभिसन्धान, मतलब, शूरज, इरादा।

अभिसन्धिकृत (वे० त्रि०) प्रयोजनानुसार किया हुआ, जो मतलबसे किया गया हो।

अभिसन्धित (सं० त्रि०) अभिसन्धा जाता अर्थ, तारकादि इतत्। उद्देश्य-विशिष्ट, अभिसन्धिविषयक, मतलबसे भरा हुआ, जिससे मतलब निकले।

अभिसन्धिता (सं० स्त्री०) नायिकाविशेष, कल-हान्तरिता। यह अपने आप प्रियसे लड़ पड़ताया करती है।

अभिसन्धह (सं० त्रि०) १ अलङ्कृत, भूषित, सुसज्जित, पारास्ता, सजा हुआ।

अभिसमवाय (सं० पु०) सम्बन्ध, सङ्गति, मेल-जोल, साथ।

अभिसम्पत्ति (सं० स्त्री०) अभितः सम्पत्तिः, प्रादि-स०, अभि-सम्-पद्-क्तिन्। १ सकल दिक् सम्पत्ति, पूरे तौरपर असरका पड़ना। २ संक्रान्ति, परिवर्त, विकार, स्थित्यन्तर, अवस्थान्तर, तबदील, तगैयुर, तबहल।

अभिसम्पद् (सं० स्त्री०) अभि अतिशय सम्पत्, प्रादि-स०। १ अधिक सम्पत्ति, अधिक धन, व्यादा दौलत, बहुत रुपया-पैसा। २ पूर्ण होनेकी स्थिति, जिस हालतमें पूरा पड़े।

अभिसम्पद् (सं० अव्य०) सम्पदमभिलक्षीकृत्य, टजन्त अव्ययी०। सम्पदको अभिलक्ष्य करके, दौलत-की ओर इगारा निकालकर।

अभिसम्पन्न (सं० त्रि०) परिपूर्ण, पूर्णरूपसे सफल, जिसपर पूरे तौरसे असर पड़े।

अभिसम्पराय (सं० पु०) भावि उत्तर-काल, भविष्यत्, आगामि-काल, उक्त्वा, भाविष्यत्, भालम-गैव, इति-कवाल, होनी, होनहार।

अभिसम्पात (सं० पु०) अभि सागुण्येन सम्पतन्ति सङ्घच्छन्तोऽग्निन्, पाधारे घञ्। १ युद्ध, लड़ाई। भावे

घञ्। २ पतन, ज, बाल। सम्पतन्ति विनश्यन्ति अनेन कारणे घञ्। ३ अभिश्राप, वददुवा।

अभिसम्बह (सं० त्रि०) १ सम्मिलित, मिना हुआ। २ प्रमाणयुक्त, जो इवाला देता हो।

अभिसम्बन्ध (सं० पु०) अभितः सम्बन्धते, ङ्भि-सम् बन्ध-घञ्, प्रादि-स०। १ अधिक सम्बन्ध, व्यादा रिश्ता। २ स्वर्ग, संस्वर्ग, सम्पर्क, संसर्ग, संयोग, आमङ्ग, व्यतिकर, परामर्श, इत्तिसान, पम्स, कुवाय, मगाव। ३ दाम्पत्य सम्पर्क, पौरत-भट्टका रिश्ता।

अभिसम्बाध (सं० त्रि०) अतिशय संयत, निरुह वा निवह, निहायत मुक्येयद, जो खूब घटका हो।

अभिसम्मुख (सं० त्रि०) १ प्रत्यक्ष, समक्ष, सम्मुख, मुंह सामने किये हुआ, जिसका चेहरा सामने रहे। २ आदरपूर्वक देखते हुआ, जो इज्जतके साथ निगाह डाल रहा हो।

अभिसर (सं० पु०) अभितः सरति, अभि-सृ-प। सहाय, अनुचर, मददगार, नौकर।

अभिसरण (सं० स्त्री०) अभितः सरणम्, प्रादि-स०। १ अभिगमन, सम्मुख गमन, पहुँच, मुलाकात, मिलनेकी रवानगी। २ नायकके अनुरागहेतु नायिकाका अन्ध सङ्केतस्थानकी गमन, भायिकको खुश करनेके लिये माशूकका दूसरो जगह पहुँचना, अनुसरण, अभिसार।

अभिसरत् (सं० त्रि०) आभिमुख्यार्थ गमनकर्ता, आक्रमणकारी, मिलनेको जानेवाला, हमलावर, शो धावा मार रहा हो।

अभिसरना (हिं० क्रि०) १ गमन करना, चला जाना। २ अभीष्ट स्थानकी रवाना होना, वादेकी जगह पहुँचना। ३ नायक या नायिकाका प्रियतमसे मिलनेकी सङ्केतस्थानके प्रति गमन, भाग्य या माशूकका अपने प्यारसे मुलाकात करने किछी सुकरर जगहको जाना।

अभिसर्ग (सं० पु०) सृष्टि, जितकृत।

अभिसर्जन (सं० स्त्री०) अभि-सृज् भावे सुट्। १ दान, उत्सर्ग, बख्शिय, देना। २ बध, कत्ल।

अभिसदृ (सं० त्रि०) आक्रमणकारी, हमलावर, जो धावा मार रहा हो ।

अभिसार (सं० पु०) अभिसरन्ति गच्छन्ति अभिघ्न, अभि-सृ-घञ् । १ युद्ध, लड़ाई । २ सम्मिलन, जमघट । ३ आक्रमण, हमला । ४ संस्कार विधि । ५ बल, जोर । ६ सहाय, सहाय । ७ नायकका अनुरागसे नायिकाके लिये सङ्केतस्थानको गमन, आश्रयका सुहृद्वत्से माशुकके लिये मिलनेकी जगहकी जाना । कर्तारि घञ् । ८ अनुचर, माथी । ९ शकुली मत्स्य ।

अभिसार—पौराणिक जनपद और उसमें रहनेवाली स्त्रिय-जातिविशेष । (महाभारत, भीष्म० १।१४. मार्कण्डेयपु० १५४०८, १६५४० । १।१४) भारतीय उत्तरपश्चिमप्रान्तमें मरो और बर्गला गिरिसदृत्के मध्य अवस्थित यह एक पार्वत्य राज्य है । यूनानी ऐतिहासिकोंने इस जगहके नृपतिको भी Abisares नामसे ही परिचित किया है । महावीर सिकन्दरने अपने विजित सिन्धुनदके पूर्वीशमें अवस्थित भारतखण्डका शासनकाल लिन कई नृपतियोंपर छोड़ा था, उनमें अभिसार भी एक राजा रहे ।

अभिसारना (हिं० क्लि०) चल देना, राह पकड़ना, प्रियसे किसी सङ्केतस्थानमें मिलनेको रवाना होना ।

अभिसारिका (सं० स्त्री०) अभिसरति अभिसारयति वा सङ्केतस्थानम्, अभि-सृ-णुल्, षिच्-णुल् वा । स्त्रीयादि सोलह प्रकार नायिकामें अष्टावस्था विधिष्ट अष्टनायिकास्तर्गत नायिका विशेष, नायककी साथ परामर्श करके जो नायिका सङ्केतस्थलमें गमन करे, जो नायिका नायकको सङ्केतस्थानमें भेज दे ।

“अभिसारयते कामं वा मन्त्रपदवाम्भदा ।

स्त्वव अभिसारये वा धीरेहस्ताभिसारिका ॥” (साहित्यदर्पण)

जो स्त्री कामपीडित होकर काम्तको सङ्केतस्थलमें भेज दे अथवा स्वयं वहां गमन करे, पण्डितलोग उसे अभिसारिका नायिका कहते हैं ।

अभिसारिका नायिकाकी चेष्टा चार प्रकार होती है । यथा—समयानुरूप वस्त्राभरण, श्रद्धा, बुद्धिकी निपुण्यता और कपट साहसादि । रसमञ्चरीमें तीन प्रकारकी अभिसारिकाका उल्लेख है । यथा—दिवाभिसारिका, ज्योत्स्नाभिसारिका एवं भन्वकाराभिसारिका ।

हिन्दीके कवियोंने भी तीन प्रकारकी अभिसारिका कही है । यथा—दिवाभिसारिका, ज्योत्स्नाभिसारिका और कृष्णाभिसारिका । इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं,—

दिवाभिसारिका—

पगलिमें भीस करि दीस दीस हो को चलो चलो
पिय सहनूष मिलने को बनी घाति है ।
धरदार जामा पायजामाधे प्रथम बनी
अति ही सकामा तामा सुख अदमाति है ।
बधि बलतरी परी कधि समसे रफरी
सखी ना परी है काइ सखि न सकाति है ।
केस कच पररीमें डररी बनाव बाल
सुगलनचा ली एकपेयो सजे आति है ॥

ज्योत्स्नाभिसारिका—

सजि मन्त्रपदपे खली यो सुखचन्द आतो
बद बरिदीको दुति मन्द ही करत जात ।
कई पदमाकर लो सङ्ग सुनम्हीके
पुल बन कुलनमें कंजरी भरत आत ॥
धरत लहाइ लहाइ पर है सुपारी सदा
मंजुल मञ्जीठहोके भाउसे दुगत भाव ।
चारनते धीरे छेत सारीके जिनारनते
बारन ते सुकता चजारन भरत जात ॥

कृष्णाभिसारिका—

छमहि सुमहि दिगम बलमि मरि रहे
कूमि म्मि मार कुइको निशि कारी में ।
भंगन में खोनी धगमद अङ्गराग तेधे
पानन उदाय लीन्ही सामगरी सारी में ।
मतिराम सुकवि मेषक सवि राजि रहे
आमरघ सांजि मरकत मनिवारी में ।
मोहन हरीलीको निगन चली वेडो बधि
काँच ली बरीली बनि बाजत अंधारी में ॥

अभिसारिन् (सं० त्रि०) अभि साम्बुद्ध्येन सरतिगच्छति, अभि सृ-णिनि । १ सम्मुख-गमन करनेवाला, आक्रमणकारी, जो मिलने जा रहा हो, सामने जानेवाला, हमलावर, जो सुलाभात करता हो । २ अनुचर, नौकर ।

अभिसारिणी (सं० स्त्री०) १ अनुसारिणी, अनुचरी, नौकरनी, जो सुवाफिक काम करती हो । २ अपने

मियसे मिलने जानिवाली स्त्री । ३ वैदिक छन्दोविशेष । इस छन्दके दो पाद वैराज और दो पाद जगतो रहेगी ।

अभिसारी, अभिसारिन् देखो ।

अभिसार्पमाण (सं० त्रि०) जिसके पास पहुंचे, जिससे मुलाकात हो जाये ।

अभिष्टव्य (सं० अथ०) निकट उपस्थित होने, पास पहुंचकार ।

अभिष्ट (सं० त्रि०) अभिष्टज्यते स्म, अभिष्टज-क्त । दत्त, उत्सृष्ट, दिया हुआ, जो छोड़ा जा चुका हो ।

अभिसेध (हिं० पु०) अभियेक, धार्मिक स्नान ।

अभिसेवन (सं० क्लौ०) सम्यक् अभ्यास, उत्कृष्ट सेवा, खासी महारत, बड़ी खिदमत ।

अभिस्कन्द (वै० पु०) १ आक्रमण, धावा । २ आक्रमण करनेवाला व्यक्ति, जो शत्रुस हमला करता हो । (अथ०) ३ आक्रमण हारा, धावसे ।

अभिस्थिर (सं० अथ०) अतिशय दृढ़तापूर्वक, निहायत मजबूतीसे ।

अभिस्त्रेह (सं० पु०) अनुराग, प्रेम, उत्कण्ठा, मुहूर्त्त, प्यार, खाद्दिश ।

अभिस्फुरित (सं० त्रि०) पूर्णरूप प्रसारित, अच्छी तरह खिली हुयी ।

अभिस्थन्द, अभिस्थन् देखो ।

अभिस्त्रयमाह्वयम् (वै० अथ०) यज्ञीय इंटरप ।

अभिस्त्र (वै० स्त्री०) अभितः स्त्रः स्त्रणं शब्दो वा यस्य, अभि-स्त्र् भावे विच् । १ अतिशय स्त्रयुक्त स्त्री विशेष, अधिक शब्दयुक्त स्तव । २ आह्वान, नामपहण, प्रार्थना, बुलावा, पुकार, भर्त्सा । ३ सम्मुख आह्वान, सामनेका बुलाना ।

अभिस्त्र (सं० पु०) अभि-स्त्र्-अप् । सम्मुख भेजना, सामने पहुंचाना ।

अभिस्त्रतृ (सं० पु०) आमन्त्रणकारी, प्रशंसापरायण, आह्वान करनेवाला, जो पुकारता हो, तारीफ करनेवाला ।

अभिस्त्रत (सं० त्रि०) अभि-स्त्र्-क्त । १ अभिघात-

संयोगयुक्त, जिसमें मारका (खटका लग चुके) । २ ताड़ित, मारा या पीटा हुआ । ३ सन्नाह, जला हुआ । ४ अभिभूत, तोड़ा हुआ । ५ अचरह, रुखा हुआ । ६ गुपित, जो लुप्त किया गया हो ।

अभिस्त्रति (सं० स्त्री०) १ ताड़न, मारपोट । २ गुपन, लुप्त ।

अभिस्त्रन्वमान (सं० त्रि०) यध्यमान, निहत, मारा जानिवाला, जो मार डाला गया हो ।

अभिस्त्र (सं० त्रि०) उठा ले जानिवाला, जो गुम कर देता हो ।

अभिस्त्रण (सं० क्लौ०) अभि-स्त्र्-स्युट् । १ सम्मुख आहरण, सामनेसे उठा ले जाना । २ विवाहादिका यौतुक दान, जो दहेज यादीमें लड़कीकी दिया जाता हो ।

अभिस्त्रण्यीय (सं० त्रि०) निकट लाने योग्य, जो नजदोक लाने काविल हो ।

अभिस्त्रतृव्य, अभिस्त्रण्य देखो ।

अभिस्त्रतृ (सं० पु०) अभिस्त्रण्यकर्ता, उठा ले जानिवाला, आक्रमणकारी । २ घर्षक ।

अभिस्त्रव (सं० पु०) अभिस्त्रयते, अभि-स्त्रे-अप् । १ सम्मुख आह्वान, सामने बुलाना । २ यत्र ।

अभिस्त्रव्य (सं० त्रि०) अभिस्त्रयते, अभि-स्त्र्-यत् । उपहसनीय, उपहासकी योग्य, काविल-तज्जीक, हंसने लायक ।

अभिस्त्रार (सं० पु०) अभि-स्त्र्-अञ् । १ अणकार पहुंचानेकी इच्छासे सम्मुख आक्रमण, मुकसान करनेके इरादेसे सामने जा हमला मारना । २ सम्मुख हरणा, सामनेसे उठा ले जाना । ३ पालिडन, हमानोगी । ४ मेलन, मुलाकात । ५ चौर्य, चोरी । ६ अभियोग, इलजाम । ७ वधन, कंद । ८ कषण-धारण, अक्षतरकी योग्य ।

अभिस्त्रारिभित्तयेच । चौर्यं च मरुतेति च । (अमरटीका)

अभिस्त्रार्य, अभिस्त्रण्य देखो ।

अभिस्त्रास (सं० पु०) हास्य, विनोदोक्ति, प्रहसन्य, विनोदभाषण, परिहासोक्ति, नर्माहाप, हंसी, दिग्गो, मजाक, बोलो-ठोलो, छिड़काव ।

अभिहित (सं० त्रि०) अभि-धा-त् । १ भाषित, उदित, ज्ञापित, आख्यात, उच्यते, कथा कृष्ण ।

'उत्तं भाषितमुदितं ज्ञापितमाख्यातमभिहितं उच्यते' । (अमर)

२ इच्छा किये कृष्ण, जो इरादा बांध चुका हो । (स्त्री०) ३ नाम, वर्णन, शब्द, इच्छा, बयान्, लम्झ ।

अभिहितत्व (सं० स्त्री०) कथित होनेकी स्थिति, कहे जानेकी हालत । २ घोषणा, पुकार । ३ प्रमाण, आशयचन, निदर्शन, हवाला, सबूत, पक्की बात ।

अभिहिता (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, पानीपिपरी ।

अभिहितान्वय (सं० पु०) अभिहितानां अभिघया लक्षणया वा पदोपस्थापितानां अर्थानां अन्वयः सम्बन्धः, मध्यपदलोपी इ-तत् । सकल पदार्थ बोध होने पर वाक्यार्थका अन्वय । प्राचीन नैयायिकोंके मतसे किसी वाक्यके प्रथम प्रत्येक पदका अर्थ समझ सकनेपर वाक्यार्थका अन्वय लगता, किन्तु यह भी तात्पर्याख्य वृत्तिसापेक्ष है । आजकलके नैयायिक इसे संसर्गमर्यादा कहेंगे । मौमासकोंके मतसे प्रथम क्रिया और कारकका अन्वय लगता, पीछे अर्थ समझ पड़ता है ।

अभिहितान्वयवादिन् (सं० पु०) अभिहितानां अभिघया लक्षणया वा पदोपस्थापितानां अर्थानां अन्वयं परस्परसम्बन्धं वदति; अभिहितान्वय-वद-णिनि, उच०स० । प्राचीन नैयायिक, प्रथम प्रत्येक पदका अर्थबोध मान पीछे वाक्यार्थका अन्वयबोध स्वीकार करनेवाला ।

अभिहिति (सं० स्त्री०) कथन, वर्णन, उपाधि, बात, बयान्, विदग्धाव ।

अभिहिति (सं० स्त्री०) अभि-हे-त्तिन्, सम्प्रसारणं दीर्घव । १ सम्मुख आह्वान, पुकार । अभि-ह-त्तिन् प्रयो० साधुः । २ कुटिल स्वभाव, टेढ़ा मिजाज ।

अभिहृत् (सं० त्रि०) अभि-हृ-कर्मणि अति, वेदे प्रयो० न गुणः । १ सम्मुख चरण क्रिया जानेवाला, जिसे समानेसे छटा ले जायें । २ वक्र, टेढ़ा, बेहम्याफी-से काम करनेवाला । (स्त्री०) ३ पतन, पराजय, हानि, जयाल, शिकारा, नुकसान ।

अभिहितः (सं० स्त्री०) १ निपात, गिराव । २ पराजय, हानि, अपराध, शिकार, नुकसान, कुर्म ।

अभिहृत् (सं० त्रि०) अभि-हृ-विच् । कुटिल गमनकारी, टेढ़ा चलनेवाला ।

अभिहृत् (सं० स्त्री०) १ निपतन, जवाल । २ वक्रता, पाप, टेढ़ाई, गुनाह ।

अभिहृत्, अभिहृत् देखो ।

अभिहृत् (सं० त्रि०) हृ-कौटिल्ये कर्तरि अति । सम्मुख कुटिल कर्मकारी, सामने बुरा काम करनेवाला ।

अभी (सं० त्रि०) नास्ति मोर्भयं यस्य, बहुव्री० । १ निर्भय, भयशून्य, बेखौफ, निडर । (हिं० स्त्री०-वि०) २ इसी समय, इसी वक्त । ३ ग्रीव, फौरन् ।

अभीक (सं० त्रि०) अभि-कन् दीर्घव । १ कामयमान, कामुक, खाडिमन्द, चाहनेवाला । २ उत्सुक, नफसपरस्त । ३ चिन्तायुक्त, फिक्रमन्द । ४ क्रूर, बदमिजाज । नास्ति भी र्यस्य, अभी-कप् । ५ निर्भीक, भयशून्य, मयहीन, बेखौफ, जिसे डर न लगे ।

(पु०) अभि-इण्-कक् । ६ कवि, शायर । ७ स्वामी, स्वाभिन्द । (स्त्री०) ८ सम्मेलन, सामीप्य, मिलजोल, कुर्व, नजदोकी । ९ संघट्ट, समाघात, प्रतिघात, संमर्द, संघर्ष, ठोकर, लड़ाई, दुश्मनी । (अव्य०)

१० सम्बिधिमं, उसी स्थान वा समयपर, उपयुक्त समय, कुर्वमं, उसी जगह या वक्तपर, ठीक मौकोंसे । ११ एक ही चरणमें, शोध, एक लमहेमें, फौरन् ।

अभीच्छ (सं० त्रि०) अभि-च्छु तेजने बाहुलकात् उ दीर्घव, अभिगतं चणं वा प्रयो० साधुः । १ सन्तत, निरन्तर, मुदाभी, लगातार । २ रथ, अकसर-अभीघात, जो बार-बार आता हो । (अव्य०) ३ पुनःपुनः, बारबार । ४ सदा, हमेशा । ५ अतिशय, बहुत, निहायत । ६ शोध, फौरन् ।

अभीच्छम् (सं० अव्य०) अभि-च्छु बाहुलकात् उ प्रयो० दीर्घवः । १ पुनःपुनः, मुहुः, बारबार, लगातार । २ शश्वत्, असतत, फौरन्, उसी वक्त । ३ निवृत्त, ।

अभीच्छयस्, अभीच्छम् देखो ।

अभीघात, अभीघात देखो ।

अभोच्छत् (सं० त्रि०) उत्कण्ठित, खाहियमन्द ।
(स्त्री०) अभोच्छती ।

अभोज्य (सं० त्रि०) १ वलि दिया जानेवाला, जिसे वलि चढ़ायें । (पु०) २ देवता ।

अभोज (सं० त्रि०) अभि-इण्-क्त । १ अभिगत, प्राप्त. चाया हुआ, जो हाथ लग गया हो । न भोतम्, नञ्-तत् । २ निर्भय, उत्साहान्वित, वैखीफ, हीमलेमन्द ।

अभोजवत् (सं० अव्य०) निर्भय व्यक्तिकी भांति, भयका छोड़कर, वैखीफ शखुसकी तरह, निडर बनके ।

अभोजि (सं० त्रि०) नास्ति भोजिर्यस्य, नञ्-बहु-द्वी० । १ निर्भय, भयगून्, वैखीफ । (स्त्री०) अभोजि नञ्-तत् । २ भयका अभाय, खीफकी अदममौजूदगी । ३ अभयदायक सुद्राविशेष । अभि-इण्-क्तिन् । ४ अभिगमन, बढ़ावट्टी । अभि-इण् कर्मणि-क्तिन् । ५ समोप, कुर्ष, पास ।

अभोजन् (सं० पु०-स्त्री०) । १ अग्रगमन, आक्रमण, धावा, हमला ।

अभोजन्, अभोजन् देखो ।

अभोज (सं० त्रि०) प्रवृत्तित, द्युतिमान्, भभकते हुआ, चमकीला ।

अभोजत् (सं० त्रि०) अभि-पत्-क्तिप् छ्यो० दीर्घः । अभिगमनकर्ता, धावा मारनेवाला । (वे० पु०) २ जिस तड़ाक या स्थानमें जल एकत्र हो जाये । ३ कृपा, मेहरवानी ।

अभोजित (सं० त्रि०) अभि-भाप्-सन्-क्त । अभोजित, अभिलषित, वाञ्छित, खाहिय किया हुआ, जो चाह गया हो ।

अभोजित् (सं० त्रि०) उत्कण्ठित, अभिलाषयुक्त, खाहनेवाला, खाहियमन्द ।

अभोजि (सं० त्रि०) अभि-भाप्-सन्-क्त । अभिलाषुक, खाहियमन्द, जिसकी चाह लगी हो ।

अभोज (सं० त्रि०) विभ्रेत्यस्मात्, भी-मक् ततो नञ्-तत् । १ भ्रजनका प्रपन्न न होनेवाला, जो भ्रजनसे पहले पैदा न हुआ हो । २ जो भयानक या भयङ्कर न हो, जिससे डर न लगे ।

अभोजान (सं० पु०) अभि-मन-ञञ् वा दीर्घः ।

अभिमन देखो ।

अभोजोद (सं० पु०) आनन्द, प्रसन्नता, खुशी ।

अभोज (सं० पु०) अभिमुख्येन इत्यति प्रेरयति गा., अभि-इर्-ञच् । १ गोप, भ्वाला, पक्षीर । पहले कृष्णा और गोदावरीके तीर विन्दार अभोज रहते थे । सिन्धु नदके कूलमें भी इनका पास था । पौराणिक मतमें इन्हे असभ्य वन्य जाति समझते हैं । सिन्धु नदके तटवर्ती अभोज कृष्णकी सोलह सौ रमणी सुरा ले गये थे । आजकल इस जातिकी हम पक्षीर कहते हैं । कृष्णानदीके निकट गोवर्द्धन नामक पर्वत विद्यमान है । देवराज इन्द्रने यह पर्वत बनाया था ।

वनवासके समय रामचन्द्रने निकट पहुँच गोवर्द्धन पर्वतको पवित्र किया, उससे यह स्वर्गतुल्य स्थान हो गया । भरहाजने वहाँ एक नगर बसाया था । वह नगर उद्यान और सरोवरसे सुशोभित रहा । ब्रह्माण्ड-पुराणके मतसे उस देशको अभोज देश भी कहते हैं । सुननेमें आता, कि अग्नि और भरहाजवंशकी कोई-कोई जाति आज भी उस स्थानमें वसती है । मालूम होता, कि इस जातिके लोगोंने अर्थात् स्त्रोके गर्भमें जन्म लिया था । अभोजकी खादिमें बल्धिक, और बस्व, नामसे भी पुकारते हैं । बाटधान, कालतोयक, अपरोत, गूद, पञ्चव, चर्मचन्द्रक, कम्बोज, दरद, बर्धर प्रभृति दूमरे नाम पुराणमें मिलेंगे । अभोज देखो । २ चार पादयुक्त हृन्दोविशेष । इसके प्रतिपादमें ग्यारह माया लगती है ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) दुन्दुभ सर्प, पनिहा साँव ।

यह जहरोली नहीं होती ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) विपाक फीटविशेष, कोई जहरीला कोड़ा ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) विपाक फीटविशेष, कोई जहरीला कोड़ा ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) विपाक फीटविशेष, कोई जहरीला कोड़ा ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) विपाक फीटविशेष, कोई जहरीला कोड़ा ।

अभोजिणी (सं० स्त्री०) विपाक फीटविशेष, कोई जहरीला कोड़ा ।

अभिराम देखो ।

अभिराम (अभिराम), एक गोष्ठामो । यह अभिराम-गोपाल नामसे भी परिचित रहे । श्रीचैतन्यावतारमें श्रीदासके अवतार और हादयगोपालके पन्थतम होनेसे गोड़ीय वैश्ववसमात्र इन्हे पूजता है । बङ्गाल-वासे हुगली जिलेके खानाकुल-छत्रनगरमें इन

अभिहित (सं० त्रि०) अभि-धा-ङ् । १ भाषित, उदित, जल्पित, आख्यात, लपित, कहा हुआ ।

‘उच्चं भाषितं मुदितं अक्षितमाकाशतमभिहितं उदितम् ।’ (चर) -

२ इच्छा किये हुआ, जो इरादा बांध चुका हो । (स्त्री०) ३ नाम, वर्णन, शब्द, इच्छा, बयान्, लपञ् ।

अभिहितत्व (सं० स्त्री०) कथित होनेकी स्थिति, कष्ट जानेकी हालत । २ घोषणा, पुकार । ३ प्रमाण, आमवचन, निदर्शन, हवाला, सुबूत, पक्की बात ।

अभिहिता (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, पानोपिपरी ।

अभिहितान्वय (सं० पु०) अभिहितानां अभिघया लक्षण्या वा पदोपस्थापितानां अर्थानां अन्वयः सम्बन्धः, मध्यपदलोपी इ-तत् । सकल पदार्थ बोध होने पर वाक्यार्थका अन्वय । प्राचीन नैयायिकोंके मतसे किसी वाक्यके प्रथम प्रत्येक पदका अर्थ समझ सकनेपर वाक्यार्थका अन्वय लगता, किन्तु यह भी तात्पर्याख्य वृत्तिसापेक्ष है । आजकलके नैयायिक इसे संमर्गमर्यादा कहेंगे । मीमांसकोंके मतसे प्रथम क्रिया और कारकका अन्वय लगता, पीछे अर्थ समझ पड़ता है ।

अभिहितान्वयवादिन् (सं० पु०) अभिहितानां अभिघया लक्षण्या वा पदोपस्थापितानां अर्थानां अन्वयं परस्परसम्बन्धं वदति; अभिहितान्वय-वद-णिनि, उप०स० । प्राचीन नैयायिक, प्रथम प्रत्येक पदका अर्थबोध मान पीछे वाक्यार्थका अन्वयबोध स्वीकार धरनेवाला ।

अभिहिति (सं० स्त्री०) कथन, वर्णन, उपाधि, बात, बयान्, वृत्ताथ ।

अभिहित्ति (सं० स्त्री०) अभि-हे-क्तिन्, सम्प्रसारणं दीर्घेय । १ सम्मुख आह्वान, पुकार । अभि-ह-क्तिन् घृषो० साधुः । २ कुटिल स्वभाव, टेढ़ा मिजाज ।

अभिहित्त् (सं० त्रि०) अभि-ङ्, कर्मणि अति, वेदे घृषो० न गुणः । १ सम्मुख शरण किया जानेवाला, जिसे सामनेसे छठा ले आवे । २ वक्र, टेढ़ा, बेइन्साफ़ी-से काम करनेवाला । (स्त्री०) ३ पतन, पराजय, हानि, जवाल, शिकार, नुकसान् ।

अभिहित्ति (सं० स्त्री०) १ निपात, गिराव । २ पराजय, हानि, अपराध, शिकार, नुकसान्, जुर्म ।

अभिहित्त् (सं० त्रि०) अभि-ङ्-विच् । कुटिल गमनकारी, टेढ़ा चलनेवाला ।

अभिहित्त् (सं० स्त्री०) १ निपतन, जवाल । २ वक्रता, पाप, टेढ़ाई, गुनाह ।

अभिहित्त्, अभिहित्त् ।

अभिहित्त्म् (सं० त्रि०) इ, कौटिल्ये कर्तारि अति । सम्मुख कुटिल कर्मकारी, सामने बुरा काम करनेवाला ।

अभी (सं० त्रि०) नास्ति भोम्यं यस्य, बहुव्री० । १ निर्भय, भयान्त्र, बेखोफ, निडर । (हिं० क्ति०-वि०) २ इसी समय, इसी वक्त । ३ शीघ्र, फौरन् ।

अभीक (सं० त्रि०) अभि-कन् दीर्घेय । १ कामयमान, कामुक, खादिशमन्द, चाहनेवाला । २ उत्सुक, नफ़सपरस्त । ३ चिन्तायुक्त, फिक्रमन्द । ४ क्रूर, बदमिजाज । नास्ति भो यंस्य, अभी-कप् । ५ निर्भय, भयान्त्र, भयहीन, बेखोफ, जिसे डर न लगे । (पु०) अभि-ङ्-कक् । ६ कवि, शायर । ७ खामो, खाविन्द । (स्त्री०) ८ सम्भेलन, सामीप्य, मिलजोल, कुर्व, नजदोकी । ९ संवह, समाघात, प्रतिघात, संमर्द, संघर्ष, ठोकर, लड़ाई, दुश्मनी । (अथ०) १० सन्निधिमें, उसी स्थान वा समयपर, उपयुक्त समय, कुर्वमें, उसी जगह या वक्तपर, ठीक मौकेसे । ११ एक ही चरणमें, शोध्, एक लमड़ेमें, फौरन् ।

अभीक्ष्ण (सं० त्रि०) अभि-क्ष्णु तीजने वाहुलकात् छ-दीर्घेय, अभिगतं चणं वा घृषो० साधुः । १ सन्तत, निरन्तर, मुदाभी, लगातार । २ अच, अकसर-भौकात, जी बार-बार आता हो । (अथ०) ३ पुनःपुनः, बारबार । ४ सदा, हमेसा । ५ प्रतिगय, बहुत, निहायत । ६ शोध्, फौरन् ।

अभीक्ष्णम् (सं० अथ०) अभि-क्ष्णु वाहुलकात् छ-घृषो० दीर्घः । १ पुनःपुनः, मुहुः, बारबार, लगातार । २ शब्वत्, अचञ्चत्, फौरन्, उसी वक्त । ३ नित्य, रोज । अभीक्ष्णम्, अभीक्ष्णम् ।

अभीक्ष्णम्, अभीक्ष्णम् ।

अभीक्ष्णम्, अभीक्ष्णम् ।

अभीक्ष्णम्, अभीक्ष्णम् ।

अभीक्ष्णम्, अभीक्ष्णम् ।

अभोच्छत् (सं० त्रि०) उत्कण्ठित, खाद्दिशमन्द ।
(स्त्री०) अभोच्छती ।

अभोच्च्य (सं० त्रि०) १ वलि दिया जानेवाला, जिसे वलि चढ़ायें। (पु०) २ देवता ।

अभोत (सं० त्रि०) अभि-इण्-क्तः । १ अभिगत, प्राप्त. भाया हुभा, जो ज्ञाय लग गया हो । न भोतम्, नञ्-तत् । २ निर्भय, उत्साहान्वित, वैखीफ्, हौसलेमन्द ।

अभोतवत् (सं० अर्थ०) निर्भय ब्यक्तिकी भांति, भयका छोड़कर, वैखीफ् शखुमकी तरह, निडर बनके ।

अभोति (सं० त्रि०) नास्ति भोतिर्यस्य, नञ्-बहु व्री० । १ निर्भय, भयशून्य, वैखीफ् । (स्त्री०) अभवि नञ्-तत् । २ भयका प्रभाव, खीफ्की अदममौजूदगी । ३ अभयदायक सुद्राविशेष । अभि-इण्-क्तिन् । ४ अभिगमन, वदावदौ । अभि-इण् कर्मणि-क्तिन् । ५ समोप, कूर्ध, पास ।

अभोत्वन् (सं० पु०-स्त्री०) १ अग्रगमन, आक्रमण, धावा, हमला ।

अभोत्वन्, अभोत्वन् देवो ।

अभोह (सं० त्रि०) प्रव्वलित, द्युतिमान्, भभकते हुभा, चमकीला ।

अभोपत् (सं० त्रि०) अभि-पत्-क्तिप् ह्यो० दीर्घः । अभिगमनकर्ता, धावा मारनेवाला । (द्वि० पु०) २ जिस तड़ान या स्थानमें जल एकत्र हो जाय । ३ छपा, मेहरबानी ।

अभोषित (सं० त्रि०) अभि-भाप्-सन्-क्तः । अभोष्ट, अभिलषित, वाञ्छित, खाद्दिश किया हुभा, जो चाहा गया हो ।

अभोषिन् (सं० त्रि०) उत्कण्ठित, अभिलाषयुक्त, चाहनेवाला, खाद्दिशमन्द ।

अभोष् (सं० त्रि०) अभि-भाप्-सन्-त् । अभिलाषुक, खाद्दिशमन्द, जिसको चाह लगी हो ।

अभोम (सं० त्रि०) विभेत्यच्चात्, भो-भक् ततो नञ्-तत् । १ अर्जुनका अण्ड न होनेवाला, जो अर्जुनसे पहले पैदा न हुआ हो । २ जो भयानक या भयङ्कर न हो, जिससे डर न लगे ।

अभोमान (सं० पु०) अभि-मन-ञञ् वा दीर्घः ।

अभिमान देवो ।

अभोमोद (सं० पु०) आनन्द, प्रसन्नता, सुखो ।

अभोर (सं० पु०) आभिमुख्येन इत्यति प्रेरयति गा., अभि-इर्-पच् । १ गोप, ग्वाला, अहीर । पहले छण्या और गोदावरीके तीर विस्तार अभीर रहते थे । सिन्धु नदके कुलमें भी इनका वास था । पौराणिक मतमें इन्हें असभ्य बन्धु जाति समझते हैं । सिन्धु-नदके तटवर्ती अभीर छण्याकी मोलह भी रमणो पुरा ले गये थे । आजकल इस जातिको हम अहीर कहते हैं । छण्यानदीके निकट गोवर्द्धन नामक पर्वत विद्यमान है । देवराज इन्हीं पर्वत बनाया था । वनवासके समय रामचन्द्रने निकट पहुंच गोवर्द्धन पर्वतको पवित्र किया, उससे वह स्वर्गतुल्य स्थान हो गया । भरद्वाजने वहां एक नगर बसाया था । वह नगर उद्यान और सरोवरसे सुशोभित रहा । ब्रह्माण्ड-पुराणके मतसे उस देशको अभीर देश भी कहते हैं । सुननेमें आता, कि अत्रि और भरद्वाजवंशकी कोई-कोई जाति आज भी उस स्थानमें बसती है । मान्यम होता, कि इस जातिके लोगोंने अनार्य स्त्रोके गर्भसे जन्म लिया था । अभीरकी खादेश्यमें बल्हिक, और बल्ल, नामसे भी पुकारते हैं । बाटधान, कालतीयक, अफरोत, गूद्र, पङ्कव, अर्मचन्द्रक, कब्जो, दरद, बर्दर प्रभृति हमरे नाम पुराणमें मिलेंगे । अभीर देवो । २ चार पादयुक्त क्षत्रोविशेष । इसके प्रतिपादमें ग्यारह मावा लगती है ।

अभीरणी (सं० स्त्री०) दुन्दुभ सर्प, पनिहा सांप । यह जहरीलो नहीं होती ।

अभीराजो (सं० स्त्री०) विद्याक्त कीटविशेष, कोई जहरीला कीड़ा ।

अभीराम—सौगन्धिका-विवरण-व्याख्याकार ।

अभीराम देवो ।

अभीराम (अभिराम), एक गोस्वामी । यह अभिराम-गोपाल नामसे भी परिचित रहे । श्रीचैतन्यावतारमें श्रीदामके अवतार और दादगंगोपालके अन्ततम होनेसे गौड़ीय वैष्णवसमाज इन्हें पूजता है । बङ्गाल-वासे हुगली त्रिचेके खाताकुच-क्षण्णनगरमें इन

अमिराम-गोस्वामीकी गद्दी मौजूद है। अमिराम-लीलासूत्रमें इनकी चरिताध्यायिका विवृत हुई है।

अमीरामभट्ट—अभिज्ञानशकुन्तलके टोकाकार।

अमीरामविद्यालङ्कार—यथोचन्द्ररचित संक्षिप्तसंरचनात्मक व्याकरणको कौमुदी नाम्नी टोकाके रचयिता।

अमीरी (सं० स्त्री०) अमीर भाषा, अमीरोंकी बोली, जिस जवानको अमीर बोलें।

अमीर (सं० त्रि०) विभक्ति, भी-ऊ। १ अभय-शील, जो डरावना न हो। २ निर्भय, देखीफ।

(पु०) ३ भैरव। ४ शिव। (स्त्री०) ५ शतमूली, सतावर। 'अमूली बहुवृत्ता भौरित्दोरोरौ' (चर)

अमीरक, अमीर देखो।

अमीरक (सं० त्रि०) अमि-रु-उन्नन् दीर्घः। १ निर्भय, जो डरावना न हो, देखीफ, वेगुनाह। २ सम्मुख।

अमीरकपत्रिका, अमीरक देखो।

अमीरकवो (सं० त्रि०) न अमीरक-भीरवत् न सङ्घितानि पत्राखण्डाः, नञ्-बहुव्री०, जातित्वात् ङीप्। शतमूली, सतावर।

अमील (सं० स्त्री०) अमितः इत्यति प्रेरयति, अमि-रैर्-भच् रस्य लत्वम्; यद्वा अमि इतस्ततः एज्यति गमयति, अमि-रुरा० इल-क। १ कष्ट, तकलीफ।

२ भय, देखीफ। (त्रि०) अमि इतस्ततः ईलं कष्टं गमनं वा यस्य। ३ ह्ये शयुक्त, तकलीफमें पड़ा हुआ।

४ भययुक्त, खीफसदह।

अमोलाप (सं० पु०) अमि-लप् मावे-घञ् वा दीर्घः। अमिमुख कयन-रूप शब्द, सामन कहने जैसी लफ्ज़।

अमोलापलप (हे० पु० बहु०) अतिशय कयन, हृदसे व्यथा गुफ्तगू।

अमीलु, अमीर देखो।

अमीलुक, अमीर देखो।

अमीवर्गी (सं० पु०) अमि-वृज्-अधिकरणे घञ्। अमिमुखसमूह, अमिमुख बहुव्यक्ति, चक्र, दौर।

अमीवर्त (सं० पु०) अमि-वर्तन्ते तिष्ठन्ति ब्रह्म-साम्यतया अनेन, अमि-वृत्त-करणे घञ् उपसर्ग दीर्घः।

१ ब्रह्मसाम, ब्रह्मस्तीवविशेष।-इसे शत्रु पर आक्रमण

करते समय पड़ते-हैं। अमि-वर्तयति सर्वाणि भूतानि हृदय मासान् पट्टित्नुं वा परिवर्तयति, अमि-वृत्त-कर्तारि घञ् उपसर्ग दीर्घः। २ संवत्सर। ३ सङ्घ-विशेष। ४ अमिष्ठितिसाधन छतादि। ५ सर्वव्यापकत्व, हर जगहकी मौजूदगी। ६ यात्रा, रवानगी।

७ आक्रमण, हमला। ८ विजय, फतेहमन्दी।

अमोहत् (हे० त्रि०) सर्वव्यापी, सब-जगह रहनेवाला।

अमोहत (सं० त्रि०) आच्छादित, आविष्टित, ढंका हुआ, जो-घिरा हो।

अमीशाप, अमि-र देखो।

अमीशु (सं० पु०) अमि-अशु व्याप्तौ बाहुलकात् उ-धात्ववयवस्य आकारस्येकारश्च; अथवा अमि-ईश ऐश्वर्ये च, यद्वा अमि-अशु-उ। १ शर्म, शवा। २ बाहु, बाजू। ३ अङ्गुलि, उंगली। ४ प्रपञ्च, लगाम।

अमीशुमत् (सं० पु०) अमी-शुवः किरणाः सन्वस्य, बाहुलकार्ये मत्तु। १ सूर्य, आपताव। (त्रि०)

२ युतिमान्, प्रदीप्त, चमकौला, रौशन।

अमीपङ्क (सं० पु०) अमि-सञ्ज-घञ् उपसर्ग दीर्घः। १ परामव, शिकस्त। २ शपथ, कृष्ण। ३ व्यसन, पादत। ४ आसक्ति, फंसाव। ५ भूतादिका आवेश, शैतान्का साया। ६ आक्रोश, बद्दुवा।

'अमीपङ्कमभट्टः' (चर)

अमीपया (सं० अथ०) निर्भय हो कर, देखीफोसे।

अमोपाह (सं० त्रि०) १ परामवकारी, जो दवा देता हो। (स्त्री०) २ प्रभूत शक्ति, बड़ी ताकत।

अमीपु (सं० पु०) अमि इत्यते व्यञ्जिते; अमि-इप कर्मणि कु। १ किरण, शवा। २ अश्वरज्जु, बागडोर। ३ प्रपञ्च, लगाम। ४ काम, चाहिय। ५ अनुराग, सुहृदत्व।

अमीपुमत् (सं० त्रि०) अनुरक्त, आसक्त, फरेफता।

अमीट (सं० त्रि०) अमि इत्यते च, अमि-इप-क्त। १ वाञ्छित, दयित, वक्तव्य, द्रव्य, प्रिय, अमीपुसित, चाहिय किया हुआ, धारा, दिलदार। 'अमीट इमोपुसितं हृदं दयितं ब्रह्मं विद्यम्' (चर) अमि-यज-क्त। २ पूजित, परस्मिन् किया हुआ। (पु०) ३ तिलकछाप, तिलका पेड़।

अभौष्टगन्धक (सं० वि०) माधवीलता, मधुवेका
येह ।

अभौष्टता (सं० स्त्री०) द्वयता, प्रियता, राक्षिमन्दी,
दिलदायी ।

अभौष्टदेवता (सं० स्त्री०) ईप्सित देवी ।

अभौष्टलाम् (सं० पुं०) प्रिय पदार्थकी प्राप्ति, प्यारी
चीज का मिलना ।

अभौष्टसिद्धि (सं० स्त्री०) अभौष्टलाम् देखी ।

अभौष्टा (सं० स्त्री०) १ ऐलुक गन्धद्रव्य, खुशबूदार
खाक । २ ताम्बूल, पान । ३ गृहस्वामिनी, बोबी ।
अभुशाना (हिं० क्रि०) १ अतिशय चेष्टा करना,
बहुत कोशिश लगाना । २ धैर्यच्युत होना, बेसब्र
पड़ना ।

अभुक्त (सं० त्रि०) भज-क्त, ततो नञ्-तत् । १ अ-
र्भचत, भोजन न किया हुआ, जो खाया न गया
हो । २ फलभोगविहीन, मज्जा न लिया हुआ,
जो काममें न आया हो । ३ न खाये हुआ, जिसको
मज्जा न मिला हो ।

“अभुक्तस्य दिवाग्निदा पाशाचमपि शीर्यति ।” (देवकनिचट्ट)

अभुक्तमूल (सं० स्त्री०) अभुक्तं मूलं पिष्टधनं
यस्मिन् येन वा । ज्येष्ठके श्रेय एवं मूलाके आदि
दो दण्ड । इष्ट कालमें जन्म लेनेसे सन्तान पिष्टधन
भोग नहीं कर सकता ।

“ज्येष्ठानो घटिके श्रेय मूलापघटिकापरम्

अभुक्तमूलमिच्छात् कान्तं तव विवर्जयेत् ॥” (परिह)

अभुक्तवत् (सं० त्रि०) भोजन न करनेवाला, जो
खा न चुका हो ।

अभुम्न (सं० त्रि०) १ अवरु, सीधा, जो टेढ़ा
न हो । २ स्वस्थ, नीरोग, तन्दुरुस्त, जो बीमा-
रीसे बचल हो ।

अभुज् (सं० त्रि०) न मुक्ते, भुज-क्षिप, नञ्-तत् ।

अभमचक, न खानेवाला, जो खाता न हो ।

अभुज (सं० त्रि०) बाहुविहीन, बेबाजू, लूना,
जिसका हाथ टूट जाये ।

अभुलिय (सं० पुं०-स्त्री०) जो यत्कि दास वा मूल्य
न हो, नीकर या गुलाम न होनेवाला शर्ष स ।

अभू (सं० पुं०) १ विष्णु, नारायण । अजम्बा होनेसे
विष्णुकी अश्रु कहते हैं । (हिं० क्रि०-वि०) अशु देखी ।

अभूखन (हिं० पुं०) अश्रुच देखी ।

अभूत (सं० त्रि०) न भूतम्, नञ्-तत् । १ अनतीत,
जो बीता न हो । २ अित्यपादि पञ्चभूत भिन्न, जो
दुनियाकी चीजसे भलग हो । ३ पिशाचादि न होने-
वाला, जो शयतान न हो । ४ जन्तु-भिन्न, जो जानदार
न हो । ५ मिथ्याभूत, झूठा साधित होनेवाला ।
६ अविद्यमान, गैरहाजिर ।

अभूततद्भाव (सं० पुं०) अभूतस्य यथा भावाप्राप्तस्य
तेन रूपेण भावः उत्पत्तिः, इ-तत् । पूर्व न रहने-
वाले भावकी प्राप्ति, जो हासिल पहले न रहनेवाली
बात हो । जैसे दूध पहले पतला रहता, गर्म
करनेसे गाढ़ा पड़ जाता है । ऐसी जगह दूधका
गाढ़ा पड़ना अभूततद्भाव होगा ।

अभूतपूर्व (सं० त्रि०) न पूर्व भूतम्, नञ्-तत् । पूर्व
न होनेवाला, जो पहले न हुआ हो ।

अभूतप्रादुर्भाव (सं० पुं०) पूर्व न होनेवाले विषय-
का विकास, जो ज़रूर पहले न रहनेवाली
बातका हो ।

अभूतरजस् (सं० पुं०) पञ्चम मन्वन्तरके देवता-
विशेष ।

अभूतशत्रु (सं० त्रि०) रिपुसहित, जिसके दुश्मन्
न रहे ।

अभूताभिनियोग (सं० पुं०) अभूते असत्ये वस्तुनि
अभिनियोगः असत्यताकल्पनम्, अ-तत् । मिथ्या-
वस्तुकी असत्यकल्पना, मिथ्या वस्तुमें सत्य वस्तुका
आरोप, भूठ चीजको सच मान लेना, झूठको सच
समझना ।

अभूति (सं० स्त्री०) भू-लिन, अभावे नञ्-तत् ।
१ उत्पत्तिका अभाव, पैदायशकी अदममीन्द्रणा ।
२ अस्पष्टिका अभाव, गरीबी, सुफ़्लिसी । ३ गल्लिका
अभाव, नाताकृती, कमज़ोरी । (त्रि०) नास्ति
भूतिर्वस्य, नञ्-वद्भूती । ४ जन्मगम्य, नापेद, जो
पैदा न हो । ५ सम्यक्तविहीन, निर्धन, गरीब,
सुफ़्लिसि ।

अभूतोपमा (सं० स्त्री०) दृश्य उपमाका कोई भेद ।
 • इसमें उपमानका गुण नहीं बताते ।
 अभूमन् (सं० पु०) बहु-इमनिच्; हकारलोपः
 भूरादेश्य, नञ्-तत् । अनधिक, अल्प, थोड़ा, कम ।
 अभूमि (सं० पु०) भू-सि, ततो नञ्-तत् । १ घनाश्रय,
 अपात्र, अविषय, गैरवाञ्छित बात, नाकाविल जगह ।
 २ भूमिसे प्रतिरिक्त द्रव्य, जो चीज ज़मीन न हो ।
 (त्रि०) नास्ति भूमिर्यस्य, नञ्-बहुव्री० । ३ भूमिशून्य,
 स्थानशून्य, वजगह, वज्रमीन ।
 अभूमिज (सं० त्रि०) भूमौ भूम्या वा जायते; भूमि-
 जन-ड, नञ्-तत् । १ अभूमिजात, जो ज़मीनसे पैदा
 न हुआ हो । २ आकाशादि जात, आसमानसे
 निकला हुआ । ३ आश्रयस्त भूमिसे उत्पन्न, नाकाविल
 ज़मीनसे पैदा हुआ ।
 अभूम्यिष्ट (सं० त्रि०) बहु-इष्टन्, नञ्-तत् । अनधिक,
 न्यून, कम, जो व्य़ादा न हो ।
 अभूरि (सं० त्रि०) कतिपय, कुछ, थोड़ा ।
 अभूय (सं० त्रि०) वेशभूषणार्हित, सजा न हुआ ।
 अभ्यस्त (सं० त्रि०) भाटक न पानेवाला, जिसको
 किराया दिया न गया हो ।
 अभ्यस्य (सं० त्रि०) अनधिक, न्यून, किञ्चित्, थोड़ा,
 कम, जो व्य़ादा न हो ।
 अभिड़ा, अभेद देखो ।
 अभेद (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ भेदका
 अभाव, फर्कका न पड़ना । २ ऐक्य, बराबरी ।
 ३ सङ्गठन, मिलावट । (त्रि०) बहुव्री० । ४ अभिन्न,
 निर्विशेष, बांटा न हुआ, मिलता-जुलता, बराबर ।
 अभेदक (सं० त्रि०) अभिन्न, निर्विशेष, न बांटने-
 वाला, जो फर्क न डालता हो ।
 अभेदनीय, अभेद देखो ।
 अभेदवादीः (सं० पु०) भेद न माननेवाला व्यक्ति,
 जो शब्दस जीवात्मा और परमात्मा में कोई फर्क न
 देखता हो ।
 अभेद्य (सं० त्रि०) न भेदुं शक्यम्; भेद शक्यार्थे
 श्लव्, नञ्-तत् । १ भेद किये जानेकी अशक्य, जो
 छेदा न खाता हो । २ विभक्त न होनेवाला, जिस

तक्छोम न कर सकें । (स्त्री०) ३ होरक, होरा ।
 किसी धातुसे न छिदने कारण हीरेको अभेद्य
 कहते हैं ।

अभेद्यता (सं० स्त्री०) अविभाष्यता, अविच्छेद्यता,
 अविभेद्यता, अदमश्नकिसाम, गुर काबिलियत-
 इनकिसाम, टुकड़े न उड़ सकनेकी हालत ।

अभेय (हिं०) अभेद देखो ।

अभेरा (हिं० पु०) युद्ध, विषय, लड़ाई, भगड़ा,
 सामना, मुकाबिला ।

अभेव (हिं०) अभेद देखो ।

अभेवज (सं० स्त्री०) विपरीत श्रेयस, उलटो दशा ।

“अभेवजनिभि मेव विपरीतं यदीयवम् ।” (परक चिकित्साशास्त्र)

अभै (हिं०) अभय और अभी देखो ।

अभैर (हिं० पु०) कलवांसा, दूदेरी, जिस लकड़ीमें
 रस्सी कास करवेकी कड़ी लटकाने जाये ।

अभोक्तव्य (सं० त्रि०) आनन्द लेने वा काममें लानेकी
 योग्य, जो मजा चढ़ाने या इस्तेमाल करने
 लायक न हो ।

अभोक्ता (सं० पु०) अभोक्त देखो ।

अभोक्तृ (सं० त्रि०) आनन्द न लेनेवाला, जो काममें
 न आता हो, पृथक् रहनेवाला, मजा न लूटनेवाला,
 जो इस्तेमाल न करता हो, परहेजगार ।

अभोग (सं० पु०) आनन्दका अभाव, काममें न
 लानेकी स्थिति, विलुप्तपौ, इस्तेमालमें न आनेकी
 हालत ।

अभोगिन्, अभोक्तृ देखो ।

अभोगी, अभोक्तृ देखो ।

अभोग्य, अभोक्तव्य देखो ।

अभोज (वे० पु०) आनन्दनिग्रह, खुशोका न बख्-
 शना । देवताको वलि न देना अभोज कहाता है ।
 (हिं०) अभोक्तव्य देखो ।

अभोजन (सं० स्त्री०) भोजनका अभाव, उपवास,
 निवृत्ति, न खानेकी बात, फाका, परहेज ।

“अजीर्णं भोजनं वेदां लीच विद्यामभोजनम् ।

राजाभोजनं वेदां तेषां नश्यति धातयः ।” (अप)।

अभोजित (सं० त्रि०) खिटाया न हुआ, जो

भोजनसे छस न किया गया हो, खाना न लिखाया हुआ, जो खानेसे भासूदा न किया गया हो।

अभोजिन् (सं० त्रि०) भोजन न पाते हुआ, जो उपवास कर रहा हो, न खानेवाला, फाकी मसूदा।

अभोज्य (सं० त्रि०) न भोक्तुं शक्यं शास्त्रनिषिद्धत्वात्, भुजःष्यत् निपातनात् न क्लृप्तम्। भोजनके अयोग्य, जो भोजनके लिये निषिद्ध हो, अमैथ्य, अमैष्ट्य, खानेके ग्राह्यविल, जिमको खाना मना हो, नापाक।

अभोज्यास (सं० त्रि०) जिसका अन्न भोजन करना निषिद्ध रहे, जिसका अनाज खाना न जाये।

अभौतिक (सं० त्रि०) पञ्चभूतसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जिसका तत्त्वज्ञक, दुनियायी चीज से न रहे।

अभौम (सं० त्रि०) न भूमौ भवम्, नष्ट-तत्। १ भूमिसे न उत्पन्न होनेवाला, जो जन्मसे पैदा न हुआ हो। २ आकाशदि वात, अस्मान् वगैरहसे पैदा हुआ। ३ जैनशास्त्रमतमें शूद्र, हीनजाति।

अभ्यक्त (सं० त्रि०) अभि-अक्ष-क्त। आपादमस्तक तैलात्, सरसे पैरतक तेल लगाये हुआ।

अभ्यक्ष्य (सं० क्लौ०) अभि-अशु-क्ष्य; अभितः अक्ष्यम्, प्रादिसं०। १ सर्वथा अक्षय्य, जो चीज हर-तरह साबित हो। २ तिलकल्क, तिलकी खली।

अभ्यग्नि (सं० पु०) १ ऐतपके कोई पुत्र। (अव्य०) २ अग्निकी धोर, आतिशकी तर्फ।

अभ्यग्र (सं० त्रि०) अभिसुख मर्गं यस्य। १ निकट, अस्तिक, नजदीक, पास। २ नतन, नव, नया, ताज।

अभ्यङ्ग (सं० त्रि०) अचिर चिद्धित, हालमें निगान् लगाया हुआ।

अभ्यङ्ग (सं० पु०) अभ्यजते अङ्गं दौष्यते येन, अभि अङ्ग-कारणे घञ् क्लृत्वञ्च। १ आपादमस्तक तैलादि मर्दन, सरसे पैरतक तेलकी मालिश।

अभ्यङ्ग (सं० त्रि०) अचिर चिद्धित, हालमें निगान् लगाया हुआ।

अभ्यङ्ग (सं० पु०) अभ्यजते अङ्गं दौष्यते येन, अभि अङ्ग-कारणे घञ् क्लृत्वञ्च। १ आपादमस्तक तैलादि मर्दन, सरसे पैरतक तेलकी मालिश।

अभ्यङ्ग (सं० त्रि०) अचिर चिद्धित, हालमें निगान् लगाया हुआ।

अभ्यङ्ग (सं० पु०) अभ्यजते अङ्गं दौष्यते येन, अभि अङ्ग-कारणे घञ् क्लृत्वञ्च। १ आपादमस्तक तैलादि मर्दन, सरसे पैरतक तेलकी मालिश।

अभ्यङ्ग (सं० त्रि०) अचिर चिद्धित, हालमें निगान् लगाया हुआ।

अभ्यङ्ग (सं० पु०) अभ्यजते अङ्गं दौष्यते येन, अभि अङ्ग-कारणे घञ् क्लृत्वञ्च। १ आपादमस्तक तैलादि मर्दन, सरसे पैरतक तेलकी मालिश।

मदनपालके मतमें—

“अभ्यङ्गी आतुरोग्यः धातुग्रामं च” सुप्रम्।

निद्रातर्षणद्वलानि कुरते हृदिपुच्छिकम्।

मिरीऽभ्यः शिरःशिरिकेऽप्याश्विपुच्छिकम्।

केशग्रहाधनः केभ्यः रजोत्रयमनापहा।” (मदनपालनिघण्टु)

कारणे श्युटः। २ तैलादि, तेल वगैरह।

अभ्यञ्जन (सं० क्लौ०) अभि-अञ्ज-भावे श्युटः। १ तेल-मर्दन, तेलकी मालिश। २ तैल, तेल। ३ नेत्रमें कज्वल या सुरमेका लगाना। ४ आभूषण, जेवर। ५-वेश, आकृत्य, जेऽशयय, आरास्तगौ, वनावट, सजावट।

अभ्यञ्जनीय (सं० त्रि०) अभि-अञ्ज कर्मणि अनोयर्। मर्दनके योग्य, लगाने काबिल।

अभ्यतोत (सं० त्रि०) मृत, निर्गत, सुर्दा, गया-गुजरा।

अभ्यधिक (सं० त्रि०) अभि अतिशयं अधिकम्, प्रादि-सं०। १ अधिकपरिमाण, ज्यादा मिकदारवाला। २ उत्कृष्टतम, सबसे बड़ा। ३ अति उत्कृष्ट, निहायत उम्दा। (अव्य०) ४ अतिशय, निहायत, ज्यादातर।

अभ्यध्व (सं० अव्य०) अध्वन अभिसुख्यम्, टजन्त-अव्ययी०। १ पथके अभिसुख, राहको धोर, सड़कपर।

अभ्यनुज्ञा (सं० क्लौ०) अभि-अनु-ज्ञा-नुष्ट। १ अनु-मति, रजा। २ प्रयत्नकरण, वरतरफ़ी। ३ आज्ञा, हुक्म।

अभ्यनुज्ञात (सं० त्रि०) अभि-अनु-ज्ञा-क्त। नियोजित, रजा पाये हुआ, जिसे हुकम मिल चुके।

अभ्यनुज्ञान (सं० क्लौ०) अभि-अनु-ज्ञा-नुष्ट। अनुज्ञा, रजा।

अभ्यनुक्त (सं० त्रि०) अभि-अनु-क्त-वच् वा क्त। प्रकाशरूपसे न कहा हुआ, जो साफ़, तीरपर बताया न गया हो।

अभ्यन्त (सं० त्रि०) आतुर, तकलीफ़ज़दह, घबराया हुआ।

अभ्यन्तर (सं० क्लौ०) अभिगतं प्राप्तं प्रन्तरं अवकार्यं मध्यदेशं वा, प्रादि-सं०। १ अन्तराल, मध्यस्थान, अन्दरुनी दिशा, बीचकी जगह। (अव्य०)

अभ्यन्तर (सं० क्लौ०) अभिगतं प्राप्तं प्रन्तरं अवकार्यं मध्यदेशं वा, प्रादि-सं०। १ अन्तराल, मध्यस्थान, अन्दरुनी दिशा, बीचकी जगह। (अव्य०)

अभ्यन्तर (सं० क्लौ०) अभिगतं प्राप्तं प्रन्तरं अवकार्यं मध्यदेशं वा, प्रादि-सं०। १ अन्तराल, मध्यस्थान, अन्दरुनी दिशा, बीचकी जगह। (अव्य०)

अभ्यन्तर (सं० क्लौ०) अभिगतं प्राप्तं प्रन्तरं अवकार्यं मध्यदेशं वा, प्रादि-सं०। १ अन्तराल, मध्यस्थान, अन्दरुनी दिशा, बीचकी जगह। (अव्य०)

अभ्यन्तर (सं० क्लौ०) अभिगतं प्राप्तं प्रन्तरं अवकार्यं मध्यदेशं वा, प्रादि-सं०। १ अन्तराल, मध्यस्थान, अन्दरुनी दिशा, बीचकी जगह। (अव्य०)

इसका गुण यह है,—

“अथर्ववेदके अर्थके अन्वयानुसारः—
तथा आतुरादिभिर्च ये हसिकस्य भावते।
मिरासुखेरोमहूपैर्च मनोभिय तर्पेत्” (सुप्रम्)।

(अक्षरपाणिपुस्तक सं० ४)

२ उभयका मध्य, दोनोका बीच । ३ अन्तःकरण, कलेजा । (त्रि०) ४ अन्तस्त्र, भीतरी, हार्दिक, दिली । (पद्य०) ५ अन्तर्भागमें, भीतर-भीतर ।

अभ्यन्तरक (सं० पु०) हार्दिक मित्र, दिली दोस्त ।

अभ्यन्तरकरण, अन्तर देहो ।

अभ्यन्तरकला (सं० स्त्री०) गुप्त वा विलास-सम्बन्धीय विद्या, जो हुनर पोषीदा या ऐश-इशरतसे तपस्युक्त रखनेवाला हो ।

अभ्यन्तरायाम (सं० पु०) घनुस्तम्भ रोगविशेष, घृष्टास्थिका सङ्घात द्वारा वक्रोभाव, रोडका सिकुड़कर टेढ़ा पड़ना । इस रोगमें कुपित बलवान् वायु अङ्गुलि वक्ष, हृदय, शीर गलदेगादिक पर दौड़ छाया समूहको खेचता शीर मनुष्यको मुका देता है । यह अचिन्त्यता शीर हनुस्तम्भादिको उत्पन्न करेगा इसका लक्षण इतरतरह लिखा है,—

“अङ्गुलीसङ्घातस्य हनुस्तम्भ इति ।

आनुस्तम्भस्य यदा विपरीतं वेदयन् ।

विद्यमानस्य हनुस्तम्भस्य यदा वक्रं भवति ।

अन्तर्गतं घट्टयति यदा अस्ति मानसः ।

सदाऽन्तर्गतस्य हनुस्तम्भस्य यदा भवति ।” (भाष्येन्द्रिय)

अभ्यन्तराराम (सं० त्रि०) अभ्यन्तरे परमात्मनि धारमति, रम कर्तारि चञ्च । आत्माराम, आत्मज्ञ, योगी, जो भगवान्का मजन करता हो ।

अभ्यन्तरीकरण (सं० स्त्री०) १ अभिपेक, प्रतिष्ठा, अच्छे कामका अदाय-रहस्य । २ हार्दिक मित्र बनाना, दिली दोस्त पैदा करना ।

अभ्यन्तरीकृत (सं० त्रि०) मध्यस्थापित, अन्तस्त्र, बनाया हुआ । २ अभिपेक, जिसकी रक्ष अदा हो जाये । ३ हार्दिक रूपसे किया हुआ, जो दिलसे किया गया हो ।

अभ्यमन (सं० स्त्री०) अभितः अभ्यमन्, अभ्यमन्त्यादौ भावे लुप्त । १ अभिगमन, हमला, घाया । २ रोग, बीमारी ।

अभ्यमनवत् (सं० अद्य०) १ आक्रमणसे, धावेमें, हमला करके । २ रोगसे, बीमारीमें ।

अभ्यमित (सं० त्रि०) अभ्यस्यते, अभि-अभ्य-कर्मणि क् । रत्न, पीड़ित, आतुर, बीमार ।

अभ्यमित (सं० अद्य०) अभ्यमन् इव अभितः शत्रुः तस्याभिसुख्यन्, अभिसुख्ये अभ्ययी० । अभ्यमितश्च । वा शत्रोः । शत्रुके अभिसुख्य, रिपुके सम्मुख, दुश्मनके सामने ।

अभ्यमित्रीण (सं० पु०) वीरतापूर्वक शत्रुसे सम्मुखीन होनेवाला योद्धा, जो सिपाही दिलीरोसे दुश्मनका सामना पकड़ता हो ।

अभ्यमित्रीय, अभ्यमित्रीय देहो ।

अभ्यमित्रा, अभ्यमित्रीय देहो ।

अभ्यमिन् (सं० त्रि०) अभि-अभ्य कर्तारि षिनि । १ रोगयुक्त, बीमार । २ मनुष्यवर्ती हो पीड़नकर्ता, जो सामने तकलीफ पहुंचाता हो ।

अभ्यय (सं० पु०) अभितः सर्वथा-अभ्यः गमनम्, प्रादि-सं० । १ निकट गमन, समापकी उपस्थिति, पासका पहुंचना । २ प्रवेश, दाखिल । ३ अस्त्रमय, मुख्य, सूर्यका बैठना ।

अभ्यरि (सं० अद्य०) शत्रुके प्रति, अरिके विरुद्ध, दुश्मनके खिलाफ ।

अभ्यर्कविम्ब (सं० अद्य०) सूर्यके मण्डलकी शीर, आपतावके घेरेकी तर्फ ।

अभ्यर्चत् (सं० त्रि०) पूजा करते हुआ, जो परस्त्रिय कर रहा हो ।

अभ्यर्चन (सं० स्त्री०) अभि-अर्च-ल्युट् । सकल प्रकार पूजा, जो पूजा अनुकूल बनानेको की जाती हो, हरतरहको परस्त्रिय, जो परस्त्रिय सुधाफिक्त करनेको हो ।

अभ्यर्चनीय, अभ्यर्च देहो ।

अभ्यर्चा (सं० स्त्री०) अभ्यर्चन देहो ।

अभ्यर्चित (सं० त्रि०) सुप्रार्थित, सकल प्रकार पूजित, खूब तारीफ किया हुआ, जिसकी परस्त्रिय सब तरह हो जाये ।

अभ्यर्थ (सं० त्रि०) अभ्यर्थते, अभि-अर्थ कर्मणि खत् । १ सर्वथा पूजनीय, सब तरह परस्त्रिय करने काविल । (अद्य०) ल्यप् । पूजा करके, परस्त्रिय पहुंचाके ।

अभ्यर्थ (सं० त्रि०) अभि-अर्दि कर्मणि क्, अद्वाराय

इड़भावः । १ समीप, अन्तिक, निकट, नजदीक, क्रोश, पास ।

'अभयं गतिदूरं भासन्न' वा । (विज्ञानश्रीमते)

(स्त्री०) २ सामीप्य, अन्तिकता, नैक्य, कुर्व, नजदीकी ।

अभ्यर्थन (सं० स्त्री०) अभ्यर्थना देखो ।

अभ्यर्थना (सं० स्त्री०) अभि-अदन्त-चुरा०-अर्थ भावे श्च् । सर्वथा प्रार्थना, खुली अर्जा, दरखास्त । हिन्दी भाषामें समादर देनेकी अभ्यर्थना कहत हैं । जैसे—वहोंने समागत व्यक्तिको यद्येष्ट अभ्यर्थना की थी ।

अभ्यर्थनीय (सं० त्रि०) अभि-अदन्त-चुरा० अर्थ गौणे कर्मणि अनोयर् । १ सर्वथा प्रार्थनीय, सब तरह अर्ज करने काबिल । २ अगवानी करने योग्य, जिसकी ताजीम बजायी जाये ।

अभ्यर्थित (सं० त्रि०) अभि-अदन्त-चुरा०-अर्थ गौणे कर्मणि क्त । १ प्रार्थित, याचित, अर्ज किया हुआ, जिससे मांग सुके । २ अगवानी किया हुआ । (स्त्री०) भावे क्त । ३ सर्वथा प्रार्थना, दरखास्त ।

अभ्यर्थिन् (सं० त्रि०) सर्वथा प्रार्थना करनेवाला, जो हरतरह अर्ज कर रहा हो । २ अगवानी या ताजीम देनेवाला ।

अभ्यर्थ्य (सं० त्रि०) अभि-अदन्त-चुरा०-अर्थ कर्मणि श्यत् । १ प्रार्थनीय, अर्ज करने लायक । २ अगवानी करने योग्य, जो ताजीम पाने काबिल हो । (अर्थ०) ख्यप् । ३ अगवानी करके, ताजीम बजाकर । ४ सर्वथा प्रार्थना करके, सबतरह अर्ज सुनाकर ।

अभ्यर्थित (सं० त्रि०) अभि-अर्ध-क्त । अतिशय पीडित, निहायत तकलीफ उठाय हुआ ।

अभ्यर्थ (सं० त्रि०) अभि-अर्ध-ह्रस्वा णिच्-अच् । इस पार्श्वपर रहनेवाला, जो इस तर्फ रहता हो । १ समीप, निकट, पास, करीब । ३ उन्नतिशील, बढ़नेवाला । (स्त्री०) ४ सामीप्य, नैक्य, कुर्व, नजदीकी । ५ इस पार्श्वको स्थिति, इस तर्फकी रहनायग ।

अभ्यर्थयञ्चन् (वै० त्रि०) अभ्यर्थ-यञ्-उनिप् । १ दान करनेवाला, जो बखूश रहा हो । २ पुजारीकी

सम्पत्ति बढ़ानेवाला, जो परस्तिथ करनेवालेकी जायदाद बढ़ा रहा हो । ३ रसकी आहरण कर बरसनेवाला, जो अर्क खींच कर बरसाता हो ।

अभ्यर्थ (सं० पु०) अभि-अर्ध गती अ । अध्येषण, अरदास, मांग ।

अभ्यर्थण (सं० स्त्री०) अभि-अर्ध भावे लुट् । १ सर्वथा पूजा, हरतरहकी परस्तिथ ।

अभ्यर्थणा (सं० स्त्री०) अभ्यर्थण देखो ।

अभ्यर्थणीय (सं० त्रि०) अभि-अर्ध पूजायां अनोयर् । पूजनीय, परस्तिथके काबिल ।

अभ्यर्थणीयता (सं० स्त्री०) सुप्रसिद्धि, श्लाघ्यता, इज्जतदारा, रास्ती, साकूलियता ।

अभ्यर्हित (सं० त्रि०) अभि-अर्ध पूजायां क्त । १ पूजित, इज्जत पाये हुआ । २ उचित, वाजिब ।

अभ्यर्हित (सं० त्रि०) सर्वप्रकार मण्डित, सम्यक् रूप भूषित, सजा हुआ, जो संवारा गया हो ।

अभ्यर्धकपर्षण (सं० स्त्री०) अभि-अर्ध-कप भावे लुट् । १ निर्धार, निकास, निचोड़, खींच । २ शब्थाद्युत्पाटन, काटे वगेरहका निकालना ।

'निर्धारोऽभ्यर्धकव' चम् । (चमर)

अभ्यवकाश (सं० पु०) असंश्लेष स्थान, खुली जगह ।

अभ्यवदान्य (वै० त्रि०) १ अनुदार, क्षपण, कष्टभूष, दखील, जो दान न करता हो ।

अभ्यवस्कन्द (सं० पु०) अभि-अव-स्कन्द-अच् । १ यत्रुका धाकमण, दुश्मनका हमला । २ दुबल बनानेकी शत्रुपर प्रहारका करना, कमजोर करनेके लिये दुश्मनको मारना । ३ प्रहार, मार । ४ प्रयात, धावा । ५ आक्रमण, हमला । ६ अश्वरोध, रोक ।

अभ्यवस्कन्दन (सं० स्त्री०) अभ्यवस्कन्द देखो ।

अभ्यवहरण (सं० स्त्री०) अभि-अव-हृ-लुट् । भोजनका करना, खाना, निगलना । २ आहार, खुराक ।

अभ्यवहार (सं० पु०) अभि-अव-हृ-अच् ।

अभ्यवहरण देखो ।

अभ्यवहार्य (सं० त्रि०) अभ्यवहरण्यते, अभि-अव-हृ-लुट् । १ भोजनयोग्य, भोजनीय, खाने काबिल । (स्त्री०) २ आहार, खाना ।

अभावहित, (सं० त्रि०) प्रगमित, निर्वापित, ठण्डा किया हुआ, जो बुझा दिया गया हो।

अभावहृत (सं० त्रि०) अभावहृत्यते अ, अभि-अव-हृ-त्। भचित, भुक्त, खादित, खाया हुआ, जो खा डाला गया हो।

अभाववायन (सं०, क्ली०) अभि-अव वण-अप वा लुट्।
१ आभिसुख्य अपयान, नीचेकी धोरका गिराव।
२ अपगमन, वुरी चाल। ३ पसायन, फरारी, भगोड़ापन।

अभाववैत (सं० त्रि०) मग्न, निविष्ट, अभिनिविष्ट, व्यापृत, लीन, आसक्त, डूबा हुआ।

अभागन (सं० क्ली०) प्राप्ति, उपस्थिति, हासिल, पट्टुंच।

अभासन (सं० क्ली०) अभा-अस-लुट्। १ अभ्यास, महावरा, कसरत। २ पुनः पुनः एकरूप क्रियाका करना, बार-बार वैसे ही कामका चलाना। ३ बार-बार आहति, सुतालह, पढ़ाई।

अभ्यसनीय (सं० त्रि०) १ अभ्यास करने योग्य, महावरा डालने काबिल। २ बार-बार पढ़ने योग्य, जो सुतालह करने काबिल हो।

अभ्यसित, अभ्यास देखो।

अभ्यसितव्य, अभ्यासनीय देखो।

अभ्यस्य, अभ्यासक देखो।

अभ्यस्यक (सं० त्रि०) अभ्यस्यति अभ्यस्यति अभ्यस्यति वा, अभि-अस उपतापे अस असृञ् वा कषादि० यक्-श्वल्। १ अत्यन्त अस्ययाकर्ता, निहायत बुम्ज रखनेवाला, जो बहुत व्यादा डाह करता हो।

२ साधुव्यक्तिके गुणमें दोष आरोपक, जो भले आदमीके हृदयमें ऐव लगाता हो। (स्त्री०) अभ्यस्यिका।

अभ्यस्य्या (सं० स्त्री०) अभि-अस उपतापे अस असृञ् वा कषादि० यक् प्रत्ययान्तात् अ टाप्। परगुणमें दोषारोप, स्वर्धा, दूधरेके हृदयकी ऐवजोई, बुग्ज, डाह।

अभ्यस्त (सं० त्रि०) अभ्यस्यते अ, अभि-अस-त्।

१ बार-बार एकरूप कार्यकी आहत्तिसे युक्त, बार-बार एक ही वैसे काम करनेवाला। २ शिचित,

तालीमयाफूता, पदा-लिखा। ३ व्याकरणमें हिगुणित, दुचन्द किया हुआ। (क्ली०) ४ मूलका हिगुणित आधार, जड़की दुचन्द बुनियाद।

अभ्यस्य, अभ्यासनीय देखो।

अभ्यस्यत् (सं० त्रि०) अभ्यास करने या पढ़नेवाला, जो महावरा डाल या पढ़ रहा हो।

अभ्यस्तमय (सं० पु०) सूर्यास्तकाल, गुरुव-आफताव। किसीके अनुसार सूर्यका अस्त होना अभ्यास्तमय कहलाता है।

अभ्यस्तमित (सं० त्रि०) सूर्यास्तकी समय सोनेवाला, जो आफतावके गुरुव होते वक्त सोता हो।

अभ्याकर्ष (सं० पु०) तालका ठोकना, ललकार।

अभ्याकाङ्क्षित (सं० त्रि०) अभ्याकाङ्क्षते अ, अभि-आ-काङ्क्ष कर्मणि क्त। १ ईप्सित, वाञ्छित, वाद्दिग्र किया हुआ, जो चाहा गया हो। (क्ली०) भावे क्त। २ मिथ्या अभियोग, बनावटो नास्तिग, झूठा दावा।

अभ्याक्राम (सं० अव०) निकट पदार्पण करके, पाससे निकलकर।

अभ्याख्यात (सं० त्रि०) मिथ्यारूप अभियुक्त, जिसपर झूठा जुर्म लग चुके।

अभ्याख्यान (सं० क्ली०) अभि-आ ख्या-लुट्। मिथ्या अभियोग, झूठा जुर्म। 'मिथ्याभियोगोऽप्रमाख्यानम्' (अनर)

अभागत (सं० पु०) अभि-आ-गम कर्तरि क्त। १ पतिथि, अन्वयसे आगत याक्ति, मेहमान, दूधरी लगहसे आया हुआ आदमी। (त्रि०) २ सम्प्रदागत, सामने आया हुआ, जो आ पहुँचा हो।

अभागम (सं० पु०) अभिसुलतया गच्छति यत्, अभि-आ-गम आधारे अप्। १ युद, लड़ाई। २ रण-स्थल, मैदान-जङ्ग, लड़ाईका खेत। कर्मणि अप्।

३ अन्तिक, समीप, कुर्ब, पड़ोस। कर्त्वि अप्।

४ विरोध, दुश्मनी। भावे अप्। ५ अभ्याख्यान, वदाव, उठान। ६ अभिघात, मार। ७ सम्प्रदागमन, पहुँच, मुलाकात।

'अभागमीप्रतिके चाते विरोधोऽहमादिषु' (विश्व)

अभागमन (सं० क्ली०) अभि-आ-गम-लुट्।

अभागम देखो।

अभ्यागारिक (सं० पु०) अभ्यागारे रट्टगतपुत्रादि-
पोषण-कर्मणि नियुक्तः ठन् । १ रट्टगत पुत्रादि पोषण-
कार्यमें नियुक्त, जो घरके बाल-बच्चे पालनेमें लगा
हो । २ पुत्रादिके पालन निमित्त यत्रवान्, जो
बाल-बच्चोंके खिलाने-पिलानेकी तद्बीर लड़ा
रहा हो ।

अभ्याघात (सं० पु०) अभि-घा-हन-घञ् । १ आघात,
ताड़न, जूधे, मार । करणे घञ् । २ आघातका
उपदेश, मारनेको सलाह ।

अभ्याघातिन् (सं० त्रि०) अभ्याहन्ति, अभि-घा-हन-
ताच्छिष्ये घितुष् । हिंसागील, आघातकारो, हमला
मारनेवाला, जो धावा कर रहा हो ।

अभ्याचार (सं० पु०) अभि-घा-चर-घञ् । १ मर्वतो-
भाव आचरण, सब तर्फको चाल । २ आक्रमण, बाधा,
हमला, दस्तान्दाजी ।

अभ्याज्ञाय (सं० पु०) अभि-घा-ज्ञा-घञ् युक् च ।
१ अभिज्ञान, पूर्वज्ञात विषयका बिलकुल अतुरूप
ज्ञान. समभदारो, पहले जानी हुयो बातकी ठोका-
ठीक वैसी ही समझ । (वे० पु०) २ आज्ञा, आदेश,
हुकम, फर्मान् ।

अभ्याप्तान (सं० पु०) अभि-घा-तन-घञ् । अत्यन्त
विस्तार, बहुत ज्यादा फैलाव ।

अभ्याप्त (सं० पु०) अभ्यातति सातत्यं व्याप्नोति,
अभि-प्रत सातत्ये कर्तरि क्त । १ सर्वव्यापक परमेस्वर ।
(त्रि०) अभ्यादीयतेष, अभि-घा-दा-क्त । २ रट्टहीन,
पाया हुआ ।

अभ्याप्त (सं० त्रि०) १ अपनी और निर्देश किया
हुआ, जो अपनी तर्फ भुकाया गया हो । (अर्थ०)
२ अपनी ओरको, अपनी तर्फ ।

अभ्याप्ततर (सं० अर्थ०) अधिक अपनी ओरको,
ज्यादातर अपनी तर्फ ।

अभ्यादान (सं० क्लो०) अभिमुख्येन आदानम्,
प्रादि-सं० ; अभि-घा-दा-नुट् । श्रीभ्यादाने । पा ५४०० ।
१ प्रहण, पकड़ । २ आरम्भ, शुरु ।

अभ्याधान (सं० क्लो०) अभीत आधानम्, प्रादि-सं० ;
अभि-घा-धा-नुट् । १ सर्वथा मन्दादि द्वारा अन्व्या-

दिका आधान, यथाविधान अन्व्यादि स्थापन ।
२ संस्थापन, प्रतिष्ठा, जमावट ।

अभ्यान्त (सं० पु०) अभि-अम-क्त । रोगयुक्त,
निष्पीडित, बोमार, तकलीफ उठानेवाला ।

अभ्यापत्ति (सं० क्लो०) अभि-घा-पद्-क्तिन् । अभिसुख
आगमन, सम्मुखका आना, आक्रमण, धावा, हमला,
चढ़ाई ।

अभ्यापात (सं० पु०) विपद्, विघ्न, बाधा, आफत,
बदबख्तो ।

अभ्यामर्द (सं० पु०) मृद्यते निष्पीड्यते अस्मिन् ;
अभि-घा आधारे घञ् । १ युद्ध, रण, लड़क, लड़ाई ।
भावे घञ् । २ निष्पीडन, तकलीफदिहो, दुःखका
देना ।

अभ्यायसैन्य (सं० त्रि०) अभि-घा-यम वाहु० सैन्य ।
१ अभितो नियन्त्रय, रोक जानेवाला । २ अधोन
वनाने योग्य, जा मातहत बनाने लायक हो ।

अभ्यारम्भ (सं० पु०) अभि-आ-रम-घञ्-नुम् । प्रथम
आरम्भ, पहला अमाज, शुरु ।

अभ्यारुद्ध (सं० त्रि०) अभि-घा-रुह-क्त । १ अति
भारुद्ध, खूब चढ़ा हुआ । २ हड, बुद्धा । ३ आगे
निकला हुआ, जो सबकत ले गया हो ।

अभ्यारोह (सं० पु०) अभि-घा-रुह-घञ् । १ अभि-
मुख आरोहण, ऊपरका चढ़ाव । २ एक स्थानसे
दूसरे स्थानको परिवर्त, एक जगहसे दूसरी जगहको
तथादिसा । ३ उन्नति, तरकी । अभिसुखेनारुह्यते,
देवभावोऽग्नि, करणे घञ् । ४ मन्त्रजपविशेष ।

अभ्यारोहण्य (सं० क्लो०) अभ्यारोह देको ।
अभ्यारोहण्यो (सं० त्रि०) अभ्यारोहं शक्यम्, अभि-
घा-रुह-अनीयर् । १ अभिसुख्य आरोहण्यो, चढ़
जाने लायक । (पु०) २ यत्र विशेष ।

अभ्यारोह्य (सं० त्रि०) आरोहणके योग्य, चढ़ जाने
काविल ।

अभ्यावर्त (सं० त्रि०) अभ्यावर्तते, अभि-घा-हृत् कर्तरि
अच् । १ पुनः पुनः आवर्तमान, बार-बार वापस आने-
वाला । २ अभि-घा-हृत्-श्विच् कर्मणि अच् । ३ बार-
बार आवर्तनीय, बार-बार वापस आने काविल ।

(पु०) भावे घञ् । ४ अतिशय आहृत्ति, हृदने
घ्यदा दोहराव । (अव्य०) ५ पुनः पुनः आहृत्ति
करके, वार-वार दोहराकर ।

अभावावतिन् (सं० द्वि०) अभावावर्तते, अभि-आ-हृत्-
तिनि । १ सर्वदा स्थितिगोल, वार-वार आनेवाला ।
(पु०) २ वेदीक्ष धयमान राजपुत्र ।

अभावाहृत् (सं० पु०) अभि-आ-हृत् उपसृष्टत्वात् हृत् ।
१ अभिसुख्य आनीत होमशेष द्रव्य, होमकी जो यची
हुयी चीज, सामने लायी गयी हो । (द्वि०) २ वार-
स्वार अभाग्रन्त, वारस्वार आहृत्तियुक्त, वार-वार महा-
वरा डाला हुआ, जो वार-वार दोहराया गया हो ।

अभावाहृत्ति (सं० स्त्री०) अभि-आ-हृत्-तिङ् । वारस्वार
अभाग्रस, पुनः पुनः आहृत्ति, दोहराव, वार-वारका
महावरा ।

अभाग्रस (सं० पु०) अभिसुखं आग्रन्ते व्याप्यतेऽनेन,
अभि-आ-अशू व्यसो करणे घञ् । १ निकट, कुर्ब,
पड़ोस । २ अभिव्यापन, अभिव्याप्ति, पहुँच । ३ फल,
नतीजा । (अवा०) ४ समीप, नजदीक ।

अभाग्रसादागत (सं० द्वि०) निकट स्थानसे आगत,
जो नजदीकसे आया हो ।

अभाग्रसे (सं० अव्य०) समीप, नजदीक ।

अभाग्रस (सं० पु०) आभिसुख्येन आस्यते धिष्यते
यदादि यत्र, अभि-आ-असु चेपि आघारि घञ् ।
१ निकट, समीप, कुर्ब, पड़ोस, नजदीक पास ।

२ पुनः पुनः अनुशीलन, वार-वारका काम । ३ पुन-
राहृत्ति, दोहराव । ४ साधन, सामरिक अनुशीलन,
सदाका याग्याम, प्रयोग, स्वभाव, प्रथा, महावरा,
जङ्गी कसरत, सुदामो मिहन्त, इस्तेमाल, भादत,
रिवाज । ५ वेदादिकी आहृत्ति, कष्टाव पठन, जुवानो
याददाशु । ६ गिष्ठा, तालीम । ७ धनुर्विद्याका
अनुशीलन, तीर चलानेका महावरा । कर्मणि घञ् ।
८ धाकरणीका हिरुक्त धातु भागहय, दोवारका दोह-
राव, तशदीद । ९ कावर्म—अश्लिम चरणका दोह-
राव, मूजलके आखिरी मिलते-मिसरेका वार वार
कहा जाना । १० गणित शास्त्र—गुणन ।

अभाग्रसकला (सं० स्त्री०) आघन और प्राणा-

यामकी एकता । योगमें जो चार कला होतीं, उनमें
इसका भी नाम पाते हैं । यह विविध साधनके संयोगसे
निकलीगी ।

अभाग्रसता (सं० स्त्री०) अनवरत अनुशीलन, प्रयोग,
व्यसन, लगातार महावरा, इस्तेमाल, भादत ।

अभाग्रसनिमित्त (सं० स्त्री०) यशकरणके हितका
कारण, नष्टकी तशदीदका सबब ।

अभाग्रसपरिवर्तिन् (सं० द्वि०) समीप या निकट
भ्रमणकारी, पास या करीब घूमनेवाला ।

अभाग्रसयोग (सं० पु०) अभाग्रसेन सर्वदा लीचनया
योग, शतत् । सर्वदा एक विषयकी चिन्ता द्वारा जात
समाधि, जोधाका और परमाका संयोग, अभाग्रस
द्वारा किसी कार्यका मनःसंयोग, वार-वार यादका
आगा ।

अभाग्रसवरावय (सं० पु०) हित्वाचरसे उत्पन्न अव-
काय, जो वक्ता तशदीदसे निकलता हो ।

अभाग्रसाघन (सं० स्त्री०) अभि-आ-सद्-णिक्तुत् ।
शस्त्रादि द्वारा शत्रुकी निर्वन्धन वनानेका काम, शत्रु-
पक्षपर आक्रमण, शत्रुके सम्मुखगमन, निकट स्थापन,
हथियार वगैरहसे दुश्मनकी कमजोर करना, शत्रुपर
हमला मारना, दुश्मनका सामना पकड़ना, नजदीक
जा पहुँचना ।

अभाग्रसी (सं० पु०) अभाग्रस उठानेवाला, जो महावरा
डालता हो ।

अभाग्रसत (सं० द्वि०) आघत, स्तम्भित, जुड़भी,
चोट खाये हुआ ।

अभाग्रसनन (सं० स्त्री०) आघात, वध, स्तम्भन,
मार-पोट, कत्तल, फटकार ।

अभाग्रहार (सं० पु०) आभिसुख्येन आहारः आह-
रणम्, प्रादि-सं० । १ अपकारकी इच्छासे सम्म स्वका
आक्रमण, साधात् चौर्य, डाका, दिन-दहाड़ेकी लूट-
मार । २ अभियोग, नाशिश । ३ कवचादि धारण,
वस्तु वगैरहका पहनना । ४ आलिङ्गन, हमा-
गायी । ५ मिलन, मेल-जोल । ६ आभिसुख्य-आनयन,
सामनेका खाना । ७ भक्षण, खाना । यह चर्य, चोथ,
खिन्न और पिय भेदसे चार प्रकारका होता है ।

अभ्याहार्य (सं० त्रि०) भोजन कर लेने योग्य, जो खा डालनेके लायक हो ।

अभ्याहित (सं० त्रि०) अभि-आ-धा-क्त । मन्वादि द्वारा यथाविधान संस्कार किया हुआ, जो रख दिया गया हो ।

अभुक्त (सं० त्रि०) अभिमुख्येन उक्तम्, प्रादि-स० । समच उक्त, साक्षात् उक्त, प्रकाशित, सामने जाहिर किया हुआ, जो ऊपर ऊपर दिया गया हो ।

अभुचण (सं० स्त्री०) अभिमुख्येन उच्यते, प्रादि-स० ; अभि-उच्य सेचने लुप्त । सेचन, अधोमुख हस्त द्वारा सेचनरूप संस्कार विशेष, सिंचार्द्र, छिड़काव, आबपाशो । "मूलेनाभुचणं उच्यते" (तन्) मूलमन्त्र पद निम्नमुख हस्त द्वारा स्पण्डिलमें जल छिड़क देना चाहिये । इस बातके प्रमाणमें लिखा है,—

"उच्यतेनेव इत्येव प्रोचयं परिकीर्तितम् ।

अधितभुचणं शोके तिर्यगोचयं अत्तम् ।" (अथि)

वेध कार्यमें हाथ सीधा रख जो जलसेका किया जाता, वह प्रोचण कहलाता है । फिर उलटे हाथसे किये जानेवाले जलसेकाकी अभुचण कहेंगे । इसी-तरह हाथ घुमा जो जलसेका होता, उसका नाम अबोचण पड़ा है । मीमांसक द्रव्यनिष्ठ अभुचणादि संस्कारको भट्ट विशेष रूप बतायेगा ।

अभुचित (सं० त्रि०) अभि-उच्य-क्त । अभुचण किया हुआ, जो छिड़का गया हो ।

अभुच्य (सं० त्रि०) अभुचितुं योग्यम्, अभि-उच्य अर्हायं ष्यत् । अभुचणके योग्य, छिड़कने काबिल । (अथ्य०) उलटे हाथसे जलका छौटा देकर, ऊपर छिड़कके ।

अभुचित (सं० त्रि०) साधारण, रीतिमत, मामूली, जो रिवाजमें आ गया हो ।

अभुच्यगामिन् (सं० त्रि०) १ अतिशय उच्च गमन करले हुआ, जो निहायत ऊंचे चढ़ा जाता हो । (पु०) २ बुद्ध विशेष ।

अभुच्य (सं० पु०) अभि-उच्य-चि-अच् । वृद्धि, बढ़ती । "अचिन्व्य उच्यतेनादधानम् ।" (अदि ३८)

अभुच्यत (सं० त्रि०) अधिरोपित, उच्चैत, उपरि-

नियुक्त, ऊपर चढ़ाया हुआ, जो बढ़ा दिया गया हो ।

अभुच्यतकर (सं० त्रि०) उच्चैतइत्या, जो हाथ उठाये हो ।

अभुच्यकष्ट (सं० त्रि०) उच्चैर्घोष द्वारा प्रयंसित, जिसको तारोफ बुलन्द आवाजसे हो चुके ।

अभुच्यक्रोशन (सं० स्त्री०) उच्चैर्घोष, बुलन्द-आवाज, जोर को चिल्लाहट ।

अभुच्यक्रोशनमन्त्र (सं० पु०) प्रयंसाका गौत, जो गाना किसीको तारीफके बारेमें हो ।

अभुच्यतान (सं० स्त्री०) अभितः उच्यतानम्, प्रादि-स० ; अभि-उच्य-स्या-लुप्त । १ किसीका आदर करनेके लिये आसन छोड़ खड़ा हो जाना, ताज्जीम । २ प्रत्युद्-गमन, अथसर हो किसीका आदरपूर्वक धानयन, भगवानो । ३ उद्यम, उद्भव, उच्चपदप्राप्ति, अधिकार-प्राप्ति, तरकी, उठान, ऊंची जगहका पाना ।

अभुच्ययिन् (सं० त्रि०) अभुचित्तित्ति, अभि-उच्य-स्या-णिनि-युक् । उच्चतिशोल, दण्डायमान, उठनेवाला, जो खड़ा हो । (स्त्री०) स्त्रीप । अभुच्ययिनी ।

अभुच्ययिनी, अभुच्ययिन् देखो ।

अभुच्यत (सं० त्रि०) अभि-उच्य-स्या-क्त । अभि-वादनके निमित्त खड़ा हुआ, मुख्य व्यक्तिको सम्मान-रचाके लिये आसनसे उचित, अभिमुख्य उद्गत, उठा हुआ, जो उठकर खड़ा हो गया हो ।

अभुच्यतान्त्र—दशरथसे उत्पन्न बुधे कोई नृपति-विशेष ।

अभुच्येय (सं० त्रि०) अभुच्यतुं अर्हम्, अभि-उच्य-स्या उपसृष्टत्वात् यत् । अभिवाद्य, जिसके अभिवादन-को आसनादिसे उठना पड़े, ताज्जीमके लायक, जो भगवानो किये जाने काबिल हो ।

अभुच्यपतन (सं० स्त्री०) अभिमुख्येनोत्पतनम्, प्रादि-स० ; अभि-उच्य-पत-लुप्त । सम्मुख भाव ऊर्ध्व-गमन, उल्लंघन, उद्गमन, झपटा-झपटी, क्रुद्ध-भांड, किसीके ऊपर जाकर पड़ना ।

अभुच्य (सं० पु०) अभितः उच्यः, प्रादि-स० ; अभि-उच्य-इण-अच् । १ अभीष्ट कार्यका प्रादुर्भाव,

स्वाहिय की हुयी बातका हो जाना । २ वृद्धि, उन्नति, बढ़ती, तरकी। 'अभुप्रदये चना।' (हितोपदेश) अभितः ।
 उदयः मङ्गलम्, प्रादि-सं० । ३ विवाह और पुत्र-जन्मादि रूप इष्टलाभ, शादीका हो जाना । ४ प्रहका, उद्यान, सितारिका निकलना । ५ धारम्भ, प्रागाज ।
 ६ आनन्द, खुशी । ७ शुभफल, अच्छा नतीजा ।
 ८ उत्सव, जलसा । ९ समापत्ति, देवयोग, देवगति, दैवघटन, हादिसा, वाकिया, माजरा ।

अभुप्रदयार्थक (सं० त्रि०) अभुप्रदयः इष्टलाभः अर्थो निमित्तं यस्य, बहुव्री० कप् । अभुप्रदयके निमित्त किया जानेवाला, जो अभुप्रदयके लिये हो । आभुप्रदयिक श्राव, विवाहादि सकल मङ्गल कार्यमे पहले ही करना चाहिये । किन्तु पुत्रजन्म प्रायश्चित्त प्रभृति कामके बाद भी आभुप्रदयिक श्रावका विधान पाया जाता है ।

अभुप्रदयिन् (सं० त्रि०) उठते हुआ, जो निकल रहा हो ।

अभुप्रदयेष्टि (सं० स्त्री०) अधमर्षण यागविशेष ।
 अभुप्रदानयन (सं० स्त्री०) अभि-उद्-धा-नी-लुगट् ।
 अन्निके अभिसुख आनयन; धागके सामने पङ्कचाना ।
 अभुप्रदाहरण (सं० स्त्री०) अभि-उद्-धा-छ-लुगट् ।
 १ अभिसुख कथन, सामनेकी बातचीत । २ अभिसुख उत्सव, सामनेकी उछाल । ३ किसी पदार्थका विपरीत भावसे निदर्शन, जो मिसाल किसी चीज़ पर चलते तौरसे पड़ती हो ।

अभुप्रदित (सं० त्रि०) अभितः सम्यक् उदितं उत्प्लान्तं वा प्रातर्दिक्षितं वैधकर्मनिद्रादिवशात् येन यस्य वा, प्रादि बहुव्री० ; अभि-उद्-ध-ण-क्त । १ निद्रावयतः प्रातःकालका वैधकर्म न करनेवाला, जो नींदके सबब सबरेका सुनासिब काम न करता हो ।

'दुने यक्षिप्रभमे ति दुने यक्षिनुदंति च ।

अ'यकालमिनिर्घुं क्ताभुप्रदितौ तौ यथाक्रमम् ॥' (चमर)

२ सर्वोय उदित, पूरे तौरसे निकला हुआ ।
 ३ कथित, कहा हुआ । ४ प्रादुर्भूत, जो हुआ हो ।
 ५ वर्धित, बढ़ा हुआ । ६ उत्पन्नकी मांति प्रसिद्ध किया हुआ, जो जलसेकी तरह मगहर किया गया

हो । (स्त्री०) ७ सूर्योदय, आफताबका निकलना ।
 ८ उदयम्, उठान ।

अभुप्रदीरित (सं० त्रि०) अभि-उद्-ध-र-क्त । १ सम्पन्न कथित, सामने कहा हुआ । २ ऊपर फेंका हुआ, जो चला दिया गया हो । (स्त्री०) भावे क्त । ३ कथन, कलाम ।

अभुप्रह (सं० त्रि०) उठते हुआ, जो निकल रहा हो ।

अभुप्रहत (सं० त्रि०) १ विस्तृत, फैला हुआ । २ अभ्यर्थनार्थ प्रस्थानित, जो ताज्जीमके लिये बाहर गया हो ।
 ३ उथित, उठा हुआ ।

अभुप्रहतराज (सं० पु०) नोह कल्प विशेष ।

अभुप्रहम (सं० पु०) अभि-उद्-ग-म-अप् । १ अभ्युत्थान, उन्नति, उन्नव, उठान, बढ़ती, होती । २ अभ्यर्थनार्थ उठना, ताज्जीम बजानेको खड़ा हो जाना ।

अभुप्रहमन (सं० स्त्री०) अभितः उहमनम्, प्रादि-सं० ; अभि-उद्-ग-म-लुगट् । अग्रहम देखी ।

अभुप्रहट (सं० स्त्री०) दृग्गोचर होना, दिखाई देना, उदय, उठान ।

अभुप्रहृष्टा (सं० स्त्री०) संस्कार विशेष, कोई रस ।

अभुप्रहृत (सं० त्रि०) अभि-उद्-ह-क्त । १ याज्ञा विना आनीत, बेमांगि लाया हुआ । २ अभ्यर्थन करके प्रदत्त, जो ताज्जीमके साथ दिया गया हो ।
 अभि-उद्-धृत । ३ अभिसुख होकर उत्तोलन द्वारा धृत, जो सामने उछालकर पकड़ा गया हो ।

अभुप्रयत् (सं० त्रि०) अभितः सम्यक् उद्यतम्, प्रादि-सं० ; अभि-उद्-य-म-क्त । १ अयाचित अथच किसी व्यक्तिकटक आनीत, बेमांगि लाया या दिया हुआ । २ उद्य क्त, उपक्रम-विशेष, कार्य करनेमें प्रवृत्त, घिलकुल तैयार, उठा हुआ, जो काम कर रहा हो ।

अभुप्रन्दत् (सं० त्रि०) भिगोते हुआ, जो तर कर रहा हो । २ बह जानेवाला, जो बहते जा रहा हो ।
 (स्त्री०) अभुप्रन्दती ।

अभुप्रवत् (सं० त्रि०) अभितः सम्यक् उद्यतम्, अभि-

उद्-नम कर्तेरि ऋ । १ सम्यक् उच्यते, चट्टा-बट्टा, जो जं'चा हो चुका हो । २ समधिक उच्य, ऊपरको उठा हुआ, जो निहायत जं'चा या भरा हो ।

अभुपत्रति (सं० स्त्री०) सम्यक् सञ्चिदा उच्यते, बड़ी तरङ्गी या खुर-खुरमौ ।

अभुपगगत (सं० त्रि०) अभि-उप-गम ऋ म-लोपः । १ स्त्रीकृत, अङ्गीकृत, मञ्जू-रगदा, जो मान लिया गया हो । २ निकट गत, पास पहुँचा हुआ । ३ प्रमाणित, सम्यक्, इवाला दिया हुआ, जो सुमकिन हो । ४ विवक्षित, प्रतीत, उपलक्षित, सूचित, मफ़्ङ्म, सुतसञ्चर, मानी रखते हुआ । ५ सम, समान, तुल्य, अनुगुण, अनुरूप, सधर्मेन, सुताविक, मित्र, वेसा ही, मानिन्द, इमशङ्क, सुतयाविह, मिनता-शुलता । (स्त्री०) अभुपगता ।

अभुपगन्तव्य (सं० स्त्री०) निकट जाने योग्य, जो पास पहुँचने लायक हो ।

अभुपगन्ता (सं० पु०) अभुपगन्तु देशः ।

अभुपगन्तु (सं० त्रि०) सम्यक् उपस्थित होने या स्त्रोकार करनेवाला, जो पास पहुँचता या मञ्जूर कर लेता हो ।

अभुपगन्ती (सं० स्त्री०) अभुपगन्तु देशः ।

अभुपगम (सं० पु०) अभि-उप-गम-अप् । १ समीप-गमन, पासका पहुँचना । २ प्रतिष्ठा, स्त्रोकार, अङ्गीकार, इकरार, राजीनामा, ठेका, कौल-करार । ३ नियम, कायदा । ४ विश्वास, एतवार । ५ सम्बिद्ध । यह न्यायशास्त्रके चार सिद्धान्तमें सम्मिलित है । जब वेदेहे सुने कोई मानी हुई बात काटी जाती, तब उसको विशेष परीक्षा अभुपगम-सिद्धान्त कहलाती है । 'अभुपगमः समीपगमने स्त्रीकृतान्विति' (इम)

अभुपगमसिद्धान्त (सं० पु०) अङ्गीकृत तत्त्व, माना हुआ उल्लुम-सुतारका ।

अभुपगमिति (सं० त्रि०) १ अङ्गीकार कराया हुआ, सम्यक्तिसे प्राप्त, मरजीसे मिला हुआ, जो मना लिया गया हो । (पु०) २ नियत अवधिका दास, जो मुलाम सुकरर बन्नीके लिये हो ।

अभुपपत्ति (सं० स्त्री०) अभि अतिशया उपपत्तिः

प्रादि-सं० ; अभि-उप-पद्-क्तिन् । १ अनिष्ट निवारण और इष्ट सम्पादन रूप अनुग्रह, मेहरवानो, प्यार । 'अभुपपत्तिवृत्तः' (वर) २ सान्वना, हिफाजत, बचाव । ३ सम्पत्ति, रजा । ४ किसी स्त्रीका गर्भाधान, औरतका हमल ।

अभुपपत्तुम् (सं० ध्व०) अभितः उपपत्तुम्, प्रादि-सं० ; अभि-उप-पद्-तुसुन् । सान्वनाके निमित्त, अनुग्रहाय, हिफाजतके लिये, मेहरवानोके वास्ते ।

अभुपपन्न (सं० त्रि०) अभि-उप-पद्-क्त तत्त्व न । अनुग्रहोत्त, बचाया हुआ ।

अभुपपयुक्त (सं० त्रि०) नियुक्त, व्यवहृत, काममें लगा हुआ, जो इस्तेमाल किया गया हो ।

अभुपपशान्त (सं० त्रि०) निर्वापित, प्रशमित, ठण्डा किया हुआ, जो कम कर दिया गया हो ।

अभुपपस्थित (सं० त्रि०) साहित, अनुपक्त, समेत, परिहृत, साथ, 'दानिरो दिया हुआ, जिसकी मदद मिली हो ।

अभुपपाकृत (सं० त्रि०) भाग ग्रहण करनेको आहृत, जो हिम्मा लेनेको बुलाया गया हो ।

अभुपपाय (सं० पु०) अभितः उपायः, प्रादि-सं० ; अभि-उप-इण्-अच् । १ स्त्रोकार, रजा, इकरार । २ अधिक उपाय, कस्य, साधन, जूरिया, वसोला, तवस्तुक्त, चारा, इलाज, मड़क ।

अभुपपायन (सं० स्त्री०) उल्कीच, पारितोषिक, रियवत, इनाम ।

अभुपपावृत्त (सं० त्रि०) समीपागत, भाया हुआ, जो पहुँच गया हो ।

अभुपपेत (सं० त्रि०) अभि समीपं उपेतम्, प्रादि-सं० ; अभि-उप-इण्-क्त । १ अभिसुखसे समीपगत, पहुँचा हुआ । २ अङ्गीकृत, खोखत, मञ्जूर किया हुआ, जो मान लिया गया हो ।

अभुपपेतव्य, श्राव्ये देखो ।

अभुपपेतायुक्त (सं० त्रि०) अभिलपित अङ्के सम्पादनार्थं विहित, जो खादिस किये हुये तमायेकी तस-नोफकी लिये मरङ्गन् हो ।

अभुपपेत्य (सं० त्रि०) अभि-उप-इण्-अच् तुपागमः ।

१ अभिगमनीय, पास जाने काविल। : (अध्य०)
ख्यप्। २ स्त्रीकार करके, समीप पहुँचकर।

अभ्रपेत्या (सं० स्त्री०) अभि-उप-इप् भावे ख्यप्।
सेवा, खिदमत, टहल।

अभ्रपेत्याशय्या (सं० स्त्री०) अभ्रपेत्य स्त्रीछत्य
अशय्या पा सेवनाभावः। दासत्व करनेमें स्त्रीछत होनेसे
उसका अकरण रूप विवाद विधीय, मृत्युके कर्तव्य
कर्ममें त्रुटि डालनेपर उसी कार्यकी अवहेलाके
निमित्त प्रभु और मृत्युका परस्पर विवाद, मालिक
और नौकरकी शर्तका विगाड़।

अभ्रपेय (सं० त्रि०) अभ्रि-कार किया जानेवाला,
जो मञ्जर करने काविल हो।

अभ्रप (सं० पु०) अभित उच्यते ज्यते वा अग्निना
दहते, अभि-उप ऊप वा बाहुलकात् कर्मणि क्त।
१ पौलिका, रोटी। उप भावे कर्मणि वा घञ्।
२ अल्प दग्ध अन्न, कुछ जला हुआ अनाज। भावे
घञ्। कलायादिका अल्प दहन, दानकी थोड़ी
सुंजाई। अभि-उप भावे घञ्। ३ सुना हुआ अनाज,
बहुरी, भूंगड़ा। चना मटर वगैरह भूनेपर चट-
घटानेसे अभ्रप कहलाता है।

राजनिघण्टुमें अभ्रपका इस तरह गुण लिखा
गया है,—यह मधुर, गुरु, रोचक एवं बलकारी होता
और श्लेष्मा, रक्त तथा पित्तकी बढ़ाता है; फिर
अङ्गारपर भूनेसे आग्नेय, वायुवहिकर, लघु और
बलकारक हो जायेगा।

अभ्रपित (सं० त्रि०) अभि-वस-क्त। सम्भ्र रहने-
वाला, जो एकत्र वास करता हो, नज्दीक क्याम
करनेवाला, जो साथ ही ठहरा हो।

अभ्रपौय (सं० त्रि०) अभ्रप-सम्यन्वीय, बहुरो
या भूंगड़ेसे तथहूक् रखनेवाला।

अभ्रप्य, अभ्रपौय देखो।

अभ्रपद्य (सं० अध्य०) १ प्रतिफल निकालकर, नतीजा
पैदा करके। २ छदन्त समाकर, तक्ष्दीर-कलाम
मिलानेके।

अभ्रपद् (सं० त्रि०) १ निकट घानोत, नज्दीक
लाया हुआ। २ प्रतिफलित, नतीजा निकाला हुआ।

अभ्रप्य, अभ्रप देखो।

अभ्रपौय, अभ्रपौय देखो।

अभ्रप्य, अभ्रपौय देखो।

अभ्रपद् (सं० पु०) अभि-ऊह-घञ्। १ वितक,
बहस। २ छदन्त साधन, तक्ष्दीर-कलामका बहस
पहुंचाना। ३ बुद्धि, समझ।

अभ्रपहनौयः (सं० त्रि०) अभितः ऊहनौय ऊह्यं वा
अभि-ऊह-घनीयर् यत् वा। तर्कनीय, बहस करने
काविल।

अभ्रपहित्य, अभ्रपौय देखो।

अभ्रपद्य, अभ्रपहनौय देखो।

अभ्येत्य (सं० अध्य०) समीप उपस्थित होके, पास
पहुँचकर।

अभ्येषण (सं० क्तो०) १ इच्छा, खाद्विग, चाह।
२ आक्रमण, हमला, धावा।

अभ्रपणोय (सं० त्रि०) अभिसाप किया जानेवाला,
जिसकी चाह लगी रहे।

अभ्रपौय, अभ्रप देखो।

अभ्रपौयौय, अभ्रपौय देखो।

अभ्रपौय, अभ्रपौय देखो।

अभ्र [(सं० क्तो०) अक्र-अच्। अस्त्रक, अस्त्रक।

अन्या विवरण अत्र अत्र देखो।

भारतवर्ष, सायबेरिया, पेरू, मेचिको, नारवे,
सुपडेन प्रभृति नाना स्थानके पार्श्वतीय प्रदेशमें यह उप-
धातु उत्पन्न होता और सचराचर देखनेमें कांच-जैसा
परिष्कार और श्वेतवर्ण रहता है। किसी किसी
जातिके अभ्रमें सिलिका ४६-६३ भाग, मैग्नेशिया
३०-३५ भाग एवं जल २-६ भाग मिलता है। तन्निष्ठ
अन्यान्य लातौय अभ्रमें लौह, मैङ्गेनिज, क्रोम, फ्लोरिन
प्रभृति पदार्थ भी विद्यमान रहते हैं। इन सब
पदार्थोंके गुणसे श्वेत, घुसर, सज्ज, लाल, धंधला, कृष्ण
वर्ण एवं क्वचित् पीतवर्ण अभ्र देखनेमें आता है। कोई
कोई अभ्र चट-चटा, कोई विलक्षण स्थितिस्थापक
एवं कितना ही अभ्र तोड़नेपर परत-परत चलन
होजानेवाला रहता है। अभ्र बहुत पतला होता है।
सचराचर ३००००० इंचसे अधिक मोटा नहीं पड़ता।

अनेक खानिमें दो, द्वाय व्याससे भी बड़ा-बड़ा अभ्र पाया जाता है। अणुबोसणयन्त्रकी परीक्षासे द्रव्य निर्दिष्ट करनेके लिये अभ्र यथेष्ट वयवृद्धत होता है। साइबेरिया, पेरू, मेचिकोकी प्रभृति स्थानमें खिड़कीपर कांचकी जगह अभ्र ही लगाया जाता है। अभ्रधातुके गुणमें शीतोष्णता बदलनेसे कुछ भी वयतिक्रम नहीं पड़ता, परन्तु कांचके गुणमें बहुत वयतिक्रम होता है। इसीसे साल्टनेमें भी अच्छा अभ्र लगाया जा सकता है। दीवार खूब साफ, और सुन्दर दिखाई देनेसे अनेक देशके राजमिस्त्री अभ्रचूर्ण लेकर मन्दिरको रंगते हैं। भारतवर्षके अजमेर आदि नाना स्थानीय पट्टालिकाकी भौतरी कतमें लाल, सख, प्रभृति अनेक प्रकारके ताम्रपर अभ्र चढ़ा है। इससे राजप्रासादका सौन्दर्य बहुत बढ़ता है। तोप वगैरहको गहरी भावाजके धकेसे कांच तड़क जाता, परन्तु अभ्र नहीं टूटता; इसलिये यह रणपोतमें भी लगता है। इस देशके माली राम, दोल, विवाह आदि अनेक प्रकार उत्सवमें अभ्रके भाड़, ग्लास, फानूस और दूसरे भी कितने ही खिलौने बनाते हैं। अबीरके साथ कोई-कोई अभ्र मिलाते हैं। वैद्य लोग अनेक रोगमें औषधके साथ अभ्र प्रयोग करते हैं।

वेद्यमतसे अभ्र चार प्रकार है। यथा,—पिनाक, दर्दुर, नाग और वल्ल। कहते हैं, कि पूर्वकालमें इवासरको वध करनेके लिये इन्द्रने वल्ल उत्पन्न किया था। उस वल्लसे स्फुल्लिङ्ग भर कर पर्वतोंपर जा गिरा। उसीसे अभ्रकी उत्पत्ति हुयी है। इसीसे आज भी लोग कहा करते, कि मेघ गरजनेसे अभ्र उत्पन्न होता है। फिर सुनते हैं कि मेघ हस्तिरूपसे सालकी पत्ती खाता है। सालकी पत्ती खाते समय उसके मुँहसे लार टपकती, उसी खल्ल लारसे अभ्र उत्पन्न होता है। 'रश्मिखर'में लिखा, कि गौरीके रजसे अभ्रका धातुकी उत्पत्ति हुई है।

शास्त्रकार कहते हैं,—श्वेतवर्ण अभ्र जातिमें ब्राह्मण, रक्तवर्ण—क्षत्रिय, पीत—वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र रहता है। इनमें तौय्य मुक्तादिपर श्वेतवर्ण अभ्र

विहित है। रसायनमें रक्तवर्ण, सुवर्णादिमें पीतवर्ण एवं रोगादिमें कृष्णवर्ण अभ्र प्रयुक्त होता है।

आगमें डालनेसे पिनाक अभ्रका सब परत खुल जाता है। इसके खानिसे कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। दर्दुर अभ्रको आगमें डालनेसे गोल गोल कुण्डली पड़ती और एक प्रकारका शब्द निकलता है। इस अभ्रके खानिसे मृत्यु हो सकती है। नागामुको आगमें छोड़नेसे सांपकी फुसकार-जैसा शब्द होता है। इसके खानिसे भगन्दर रोग लगता है। बच्चांम देखनेमें काला होता है। आगमें डालनेसे यह जैसेका तेसा ही रहता, कोई भावान्तर नहीं पड़ता; इसीसे यह सब अभ्रमें श्रेष्ठ है। उत्तर पर्वतमें जो काला अभ्र होता, वही विशेष गुणकर होता है। दक्षिण पर्वतका अभ्र उतना गुणकर नहीं ठहरता। कृष्णामुसे सब वधाधि और जरा मिट जाती, और इसका सेवन करनेसे अकालमृत्यु कम होती है। किन्तु अन्यान्य धातुकी तरह विना शोधित किये अभ्र भी सेवन न करना चाहिये। जिस पार्वतीय प्रदेश या पथरीले स्थानमें अभ्रकी खानि होती, वहांका जल पीना उचित नहीं; पीनेसे अनेक प्रकारका उत्कट रोग लग जाता है।

अम शोधनेकी प्रणाली—पहले कृष्णवर्ण अभ्रको आगमें जलाकर गायका कच्चा दूध छोड़ देते हैं। इस प्रक्रियाको कोई-कोई एकबार और कोई-कोई पांच सात बार करते हैं। फिर अभ्रको अच्छी तरह धोकर उसके सब तह खोल डालते हैं। सब तह फलम फलम हो जानेसे उसे कागजो नीत्र और चोलाई आदिके रसमें पाठ दिन तक भिगो रखते हैं।

उसके बाद एक गुण उन्न शोधित अभ्र और उसका चतुर्थांश शाठी चावल एक साथ कम्बलसे लपेटकर तीन दिन जलमें भिगो रखना चाहिये। फिर उसको हाथसे मलनेपर विग्रह अभ्रकषा कम्बलके ऊँदसे बाहर गिर पड़ेगी। उसे ही संप्रह कर लेते और धान्यामू कहते हैं।

धान्यामूकी मन्दारवाले भाटेके साथ पत्थरीले अच्छो तरह मर्दन करके टिकिया बना लेते हैं।

टिकियेको मन्दारके पत्तोंमें लपेटकर गजपुटसे पकाना चाहिये। इस तरह सातवार मन्दारके पाटेसे मर्दन और सात बार पकाकर अन्तमें वटकी बीके रसमें फिर मर्दन करना पड़ेगा। पीछे तोन बार पहले ही की तरह गजपुटसे पकाते हैं। इसतरह एक जानीपर यह जारित अन्न कहा जाता है।

जारित अन्न और उसीके बराबर गायके घों दोनोको एक साथ मिला कर लौह-पात्रमें पकाना चाहिये। जब घा जल जाय, तब पात्रको उतार ले। इसे अमृतोकरण कहते हैं। इस प्रकारसे प्रस्तुत किया हुआ अन्न कपाय, मधुर, शीतवीर्य, श्रायुष्कर एवं धातुपोषक होता और विदोष, व्रण, मेह, कुष्ठ, श्लोघा, उदरी, ग्रन्थिरोग तथा कृमिको नष्ट करता है। मात्रा ३-६ रसौ रहेंगी। इसे मधुके साथ सेवन करना पड़ता है। वैद्यलोग जारित अन्नसे नाना प्रकारके औषध प्रस्तुत करते हैं।

मिटर जी वाट अपनी "Dictionary of the Economic Products of India"में लिखते हैं :—

अन्न चार प्रकारका होता है। यथा—Muscovite (लाल), Boitite (काला), Lepidolite (सीसेके रङ्क) और Lepidomelane।

हिन्दुस्थानके अनेक स्थानोंमें अन्नको खानि है, जहाँ व्यवहारयोग्य अन्नको थोड़े ही स्थलोंमें पाया जाता है। यह प्रायः बेटके पत्थरोंके दर्रोंमें मिलता है। मन्द्राजवाले विजगापट्टम जिलेके अन्तर्गत कोलरमें जितने बड़े बड़े पत्र कामके योग्य चाहिये, उतने ही बड़े बड़े मिल जाते हैं; परन्तु यह अच्छे नहीं होते। क्योंकि रुपयेके प्रायः बारह सेर मिलते हैं। प्रधानतः इसकी आमदनो विहारके हजारीबाग जिलेसे होती है। वहाँ धम्वी, कुदरमा, धूम और जामताराकी खानिसे अन्न निकाला जाता है। पास ही गया और सुंगेर जिलेके रजाऊमें भी नौ इंच लम्बे और उतने ही चौड़े अन्नके पत्र मिलते हैं। हजारीबाग जिलेके उत्तरी अंशमें एक फुट या उससे अधिक व्यासवाले मस्कोवाइट (Muscovite)के पत्र निकलते हैं। मैलेट कहता है, मैंने २० × १० और २२ × १५

इंचके पत्र भी देखे; फिर खानि खोदनेवालोंको कभी कभी इसमें भी बहुत बड़े पत्र मिले हैं। इस जिलेका अन्नक धूमां-जैसे भूरेया लाल-भूरे रङ्कका होता है। यह सामान्य मोटाईके पत्रसे मिलता और बहुत खच्छ-रहता है। व्यापारका यही लाल अन्नक है। जबतब यह पोले या जैतून जैसे सब्ज रङ्कका भी पाया जाता है। मैलेटके कथनानुसार इसी जिलेमें कभी कभी Boitite और सीसे-जैसे भूरेया गहरे नीले रङ्कका Lepidolite अन्नक मिलता है। महिसूरमें मस्कोवाइट (Muscovite) अन्नके एक एक फुट लम्बे पत्र निकलते हैं। यह चित्रकारोंके काममें आते हैं। पश्चिमघाट पर्वतश्रेणी और उसकी पूर्वी ओरवालो जमीनमें सालटेन बनाने और खिड़कियोंमें लगाने लायक बड़े बड़े पत्र मिलते हैं। मिटर ब्राउयका कथन है, कि बाइनादकी रङ्ग बदनवालो चट्टानोंके दर्रोंमें भी बड़े बड़े पत्र पाये जाते हैं। इराइनका कहना है, कि राजपूतानेमें बड़े बड़े पत्र खानिसे निकाले जा सकते हैं। मैलेटका मत है, कि टोंकके उत्तर-पूर्व चतुर्भुज पहाड़ी और जयपुरमें भी अच्छे कदके पत्र मिलते हैं, परन्तु वह हजारीबागके अन्नक-जैसे अच्छे नहीं होते। सतलज नदीवाले बाङ्गू पुलके पास पत्थरके दर्रोंसे भी बड़े बड़े टुकड़े निकलते हैं। मि० वेडेन पौयेल लिखते हैं, कि गुड़गांवमें बहुत अच्छे और बड़े बड़े पत्र मिले थे, जिनमें १८६४ ई० की लाहौरकी प्रदर्शिनोमें दिखाये गये।

अन्नकका चूर्ण कपड़ा छापनेके काममें व्यवहार किया जाता है, फिर धोबीलोग चमक देनेके लिये उसे कपड़ोंमें भी लगा देते हैं।

संस्कृतलेखकोंके मतानुसार अन्नक चार प्रकारका होता है। यथा—सफेद, लाल, पोला और काला। सफेद सालटेन बनानेके काम और काला औषधमें व्यवहार किया जाता है। व्यवहारमें लानेसे पहले इसे शोध लेते हैं। पहले गर्म करके यह धूममें भिगोया जाता है। उसके बाद तब अन्नक धसग कर लेते, फिर चौलाई शाकके रस और

काञ्चिकर्म षाठ दिन तक उन्हें भिगो रखते हैं। पीछे उन्हें मोटे कपड़ेके टुकड़ोंमें रख घोर धोड़ेसे धान मिला कर मलते हैं। मलनेसे कपड़ेके छेदोंसे अभ्रकका चूर्ण नीचे गिर पड़ता है। उसे छटा कर इकट्ठा कर लेते हैं। यह धान्याभ्रक कहा जाता है। इस धान्याभ्रकको गोमूदमें मिला एक मट्टोके बरतनमें रख उसका सुँह बन्द कर देते हैं। फिर उसे सौ बार आगमें फूँकते हैं। कोई कोई सहस्र बार भी फूँकते हैं। इसे सहस्रपुटित अभ्र कहते हैं। यह षाठ रूपये तोला बिकता है। इस अभ्रका रंग इँटके चूर-जैसा लाल होता, खानेमें नमकीन और साधा मालूम देता है। यह उत्तेजक और पुष्टिकारक होता है। यह लोहेके साथ रक्ताल्पता, कंवल, संश्लेषी, अतोसार, भाव, पुराने ज्वर, ग्रीहा, मूत्ररोग और नामर्दी आदि रोगोंमें काम आता है। लोहेके साथ देनेसे इसका गुण बढ़ जाता है। मात्रा ६से १२ ग्रैन तक रहेंगी।

चोना लोग इसे जीवनवर्धक समझते हैं। अभ्रकको लालटेन, दरवाजे, और खिड़कियाँ बनाई जाती हैं। यह चित्रोंमें चमक देनेके काम आता और दर्पणोंके पीछे लगाया जाता है। हिन्दुस्थानमें यह मन्दिर, राजभवन, भण्ड और कपड़े आदिके सजानेमें लयीगा। अभ्रकका चूर्ण मट्टोके बरतनों और माधारण कपड़ोंमें भी दिया जाता है। चित्रकार इसे चित्रकारीके काममें लाते हैं। अभ्रंलिह (सं० पु०) अभ्रं गगनं लेट्टि स्थिति, अभ्र-लिह-खय-सुम्। १ वायु, हवा। (त्रि०) २ अतिशय उच्च, गगनस्वर्ग, निहायत ऊँचा, आसमानकी धूमनेवाला।

अभ्रक, चष देखी।
अभ्रकभ्रमन् (सं० स्त्री०) अवरककी खाक।
अभ्रकसत्व (सं० पु०) ईश्रात, लोहा।
अभ्ररूप्य, चषरूप्य देखी।
अभ्रज, चषरूप्य देखी।
अभ्रनाग (सं० पु०) अभ्रस्य मेघस्य नागः इस्ती,
१-तत्। पुरावत, इन्द्रका हाथी।

अभ्रनामक (सं० पु०) सुस्ता, मोघा।
अभ्रपटल (सं० पु० स्त्री०) अभ्रक, अवरक।
अभ्रपथ (सं० पु०) अभ्रं यगने पथ्या, ७-यत्। गगनमार्ग, विमान, शून्यपथ, आसमानको राह।
अभ्रपियाच, चषरूप्य देखी।
अभ्रपियाचक, चषरूप्य देखी।
अभ्रपुप्य, चषरूप्य देखी।
अभ्रमुष् (वे० स्त्री०) बादलको छोट, वृंदाभांदि।
अभ्रम (सं० पु०) भ्रमो भ्रमणं मिथ्याज्ञानञ्च, अभ्रमे नञ्-तत्। १ भ्रमका अभ्रम, भ्रमणं न लगना, शककी अदमनौन्दगो। (त्रि०) नास्ति भ्रमो यस्य यत्र वा, बहुव्री०। २ अभ्रान्त, भ्रमशून्य, न भ्रूलनेवाला, जिसमें कोई शक न रहे।
अभ्रमती (सं० स्त्री०) आनर्त्तं या काठिवारप्रान्तकी एक प्राचीन नदी। (छान्दे नागरखण्ड ११५४४)
अभ्रमांसी (सं० स्त्री०) अभ्रमिव जटाया मांसो यस्य, बहुव्री०। भाकाशमांसोलता, जटामांसी।
अभ्रमातङ्ग, चषरूप्य देखी।
अभ्रमाला (सं० स्त्री०) अभ्रमाणां मेवानां माला श्रेयो, ६-तत्। मेघसमूह, मेघश्रेणी, घटा, बादलका जमघट।
अभ्ररोहस्, चषरूप्य देखी।
अभ्रलिप्त (सं० त्रि०) मेघसे आच्छादित, बादलसे भरा हुआ।
अभ्रलिती (सं० स्त्री०) अभ्रमेण लिप्तम्, स्त्रीत्वात् स्त्री; ३-तत्। अल्प मेघयुक्त आकाश, जिस आकाशमें थोड़ा बादल रहे।
अभ्रवटिका (सं० स्त्री०) अवरककी गोली। यह रसविशेष ज्वरातिसार रोगमें देना और मटर-बराबर गोली रखना चाहिये। इसके बनानेका विधि यह है,—

‘अथ मूलस्य इहल गन्धकसामकस्य च।
अथ के कर्षं मे कान् वासं रसगुणैश्चिषा।
ततः कञ्जलिका कला ज्योष्वं प्रदापयेत्।
केप्रराजस्य इहस्य निगुं श्यादिवकस्य च।
गोभसुन्दरकस्यैव अथवाः अवरकं तथा।
मधु कपथ्याः सरथं ततः श्यामलस्रज्।

पैतापराजितायाश्च खरश्च पर्यंभ्रवम् ।
 दापयेत्तत्तुल्यं विभिन्नाः पुत्रान्नी भिन्नम् ।
 रघुतुल्यं प्रदातव्यं च स्रं मरिचसम्भ्रवम् ।
 दीर्घं रघुसंभ्रवेन च स्रं टङ्गसम्भ्रवम्" (रघुकाण्डे)

पद्मजोपर चलनीवाली अभ्रवटिका इसतरह बनेगी,—

"पक्षे टिकाटिकाभासगारदुर्भ्रमं च ।
 मोहितं पाददण्डं च कर्णोपे तुलया ध्रुवम् ।
 बहुराजस्रं च स्रं दम्भकं रघुसम्भ्रवम् ।
 चाभ्रं कल्पनिकां कला माययैतनु भ्रमेणैः ॥
 विन्दुवारदलरसे मञ्जु रूपसंकारसे ।
 केयराजस्रं चैव शोभसुन्दरसे रसे ॥
 रघुपराजितायाश्च शोभराजोपसे तथा ।
 रक्तचिह्नकपतीत्ये रसे च परिभाषितम् ।
 रघुमानससामिभ द्वायायां शोभयैविषम् ॥" (राजनिष्यट्)

अभ्रवर्ष (सं० पु०) अभ्रैर्सेषैर्हृष्यते, ह्रष कर्मणि घञ् । १ मेघ कर्तृक सिन्धुमान स्थान, जो जगह बादलसे सींची जाती हो । भावे घञ् । २ मेघवर्षण, बादलका बरसना ।

अभ्रवाटक (सं० पु०) अस्त्रातक ह्रष, अमड़ा ।
 अभ्रवाटिक (सं० पु०) अभ्रेण शून्येन वाटो विष्टनं यस्य, बहुव्री० । आस्त्रातक ह्रष, अमड़ा । अमड़ेकी पत्ती भङ्ग जानेसे ह्रष केवल शून्य द्वारा विष्टित रहता, इसीसे इसका नाम अभ्रवाटिक पड़ा है ।

अभ्रवाटिका (सं० स्त्री०) अघ्रवाटिक देखो ।
 अभ्रशिरस् (सं० स्त्री०) आकाशका बना हुआ शिर, जो सर आसमानसे बना हो ।

अभ्रसार (सं० पु०) भ्रौमसेनी कर्पूर, काफूर ।
 अभ्रराज (सं० त्रि०) न भ्रालते, भ्रारज-अघ्र; नञ्-तत् । अनुज्ज्वल, मैला, जो अच्छा न मालूम हो ।
 अभ्रराता (सं० पु०) अघ्राट देखो ।
 अभ्रराट (सं० त्रि०) नास्ति भ्राता यस्य, बहुव्री० ।

भ्राटशून्य, जिसके भाई न रहे ।
 अभ्रराटक, अघ्राट देखो ।
 अभ्रराटमत्, अघ्राट देखो ।
 अभ्रराटमती (सं० स्त्री०) अघ्राट देखो ।
 अभ्रराटमान् (सं० पु०) अघ्राट देखो ।

अभ्रराट्य (सं० त्रि०) नास्ति भ्राट्यः, भ्रातुष्युः श्रुत्वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ भ्रातुष्युदहीन, जिसके भतीजा न रहे । २ श्रुत्वरहित, जिसके दुश्मन् न रहे ।

अभ्ररात्री (सं० स्त्री०) अघ्राट देखो ।
 अभ्ररान्त (सं० त्रि०) अम-रन्त, ततोः नञ्-तत् । भ्रान्तिशून्य, प्रमादरहित, न घबराया हुआ, जो ग्लतीमें न हो, साफ़, ठहरा हुआ ।

अभ्ररान्तबुद्धि (सं० त्रि०) विशुद्ध प्रज्ञा-सम्पन्न, जिसकी अज्ञ, विगड़ो न रहे ।

अभ्ररान्ति (सं० स्त्री०) अम-रान्तिन्, नञ्-तत् । १ भ्रान्तिका अभाव, प्रमादका न पड़ना, अमणकी शून्यता, घबराहट या ग्लतीका न होना । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ भ्रान्तिशून्य, जो घबराहट या ग्लतीमें न पड़ता हो ।

अभ्ररायकाय (सं० पु०) अघ्र आकाशमेव अयकायः अघ्रसरः । मेघका शरण, बादलकी पनाह ।

अभ्ररायकायिक (सं० त्रि०) अभ्ररायकायः अरुणस्य, इति स्वार्ये कन् वा । केवल आकाशवरणयुक्त, जो आकाश भिन्न अन्य आवरणसे विशिष्ट न हो, बारिशके तथीं खुला हुआ ।

अभ्ररायकायिन्, अघ्रायकायिक देखो ।
 अभ्रराट्ट (सं० स्त्री०) कुडूम, कसर ।
 अभ्रि, अघ्रि देखो ।
 अभ्रिघात (सं० त्रि०) शकड़की फायड़ेसे खोदा हुआ ।

अभ्रित (सं० त्रि०) मेघाच्छन्न, बादलसे भरा हुआ ।
 अभ्रिय (सं० त्रि०) १ मेघ-सम्बन्धीय, बादलसे पैदा हुआ । (पु०) २ विद्युत्, बिजली । (स्त्री०) १ सौदामिनियुक्त मेघसमूह, जिस घटामें बिजली भरी रहे ।

अभ्रय (सं० पु०) तानुयोगविशेषः तासुकी कोर्धे वीमारौ । इसमें स्तम्बलोहित एवं शोणितोत्थ शोध, ज्वरकी-तौघ्र वैदनासे युक्त रहता है ।

अभ्रेय (सं० पु०) अघ्रय चलने घञ्, ततो नञ्-तत् । १ युक्तता, योग्यता, अमता, पात्रता, उपयोगिता,

उपपत्ति, काबिलियत, लियाकत. मकदूर। (त्रि०)
२ चलनशून्य, जिस्का रिवाज न रहे।

अभ्यु (सं० पु०) अन्न साधु, जो फकीर नह
रहता हो।

अभ्य (सं० त्रि०) आ समन्ताद् भवति विद्यते,
आभू वाहुलकात् क; उपसर्गङ्गत्वम्। १ महत्,
बड़ा. भारी, ताकतवर। २ भोषण, भयदायक, हलाकू,
खोफनाक। (स्त्री०) ३ जल, पानी। ४ मेघ,
बादल। ५ निर्भर, चम्प। ६ राक्षस, बादमखोर।
७ अपूर्व शक्ति, अनोखी ताकत। ८ घोर विपत्ति,
बड़ी आफत। ९ प्रखरता, तेजी। (पु०) १० शक्ति-
शाली शत्रु, कष्टर दुश्मन्।

अम, आम (सं० पु०) अम गती अच् घञ् वा।
१ सेवक, नौकर। २ साथी, हमसीहबत। ३ बल,
ताकत। ४ रोग, बीमारो। ५ प्राण, नफ्स। ६ अपक
फलादि, कच्चा फल वगैरह।

‘अमी रीति तस्मिन् अमीः परकं तु वाचयन्।’ (विभ)

अमगांव—मध्यप्रदेशके चांदा जिल्लाका एक परगना।
इसमें बहुत पहाड़ पड़ा है। सिवा वाणगङ्गाके निकट
दूसरी जगह जङ्गलको कोई कमी नहीं देखते। इसमें
वाणगङ्गाको कितनी ही सहायक नदी बहतो हैं।
यहां चावल, टसर और जङ्गली चीज ब्यासकर पैदा
होगी। पूर्व-भागर-तटसे कितना ही नमक मंगाया
जाता है। उत्तरमें तेलगू और दक्षिणमें लोग मराठी
भाषा बोलेगे। तैलङ्गो ही इसके प्रधान व्यापारी हैं।

अममन (सं० पु०) न मनं यत्र, नञ्-बहुव्री०।
सागर विषेय, किसी बहरका नाम। कुग्रहीपके
अन्तर्गत ज्वालामुख पर्वतपर भास्वायन राजा रहते
थे। वह अपनी भगिनी अन्तर्मदाके साथ तपोवनमें
पहुंच तपस्या करने लगे। मायादेवीने नाना प्रकार
प्रलोभन देखा उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेको विस्तर
चेष्टा की थी। किन्तु किसीतरह वह जतकाय
न हुयीं। अन्तर्मदाने उससे गर्वित हो कहा था,—
‘विभुवनके लोग भव भाकर हमारी पूजा चढ़ावें।
हम वसिष्ठपत्नी अदम्यतीके सद्य-विराजमान हैं।
देहान्त होनेसे हम नचत्रलोकमें जाकर रहेंगे।’

इस गर्वित वाक्यसे मायादेवी अतिशय क्रुद्ध हो
गयी थीं। उन्होंने शीशुको बुला तपोवनमें आग
लगया दी। किन्तु तपोवनमें विष्णु अन्तर्मदाके सहाय
रहे। चक्रपाणि मायासे पर्वत बन गये थे। उसी
पर्वतकी गुहामें राजा और उनको भगिनी दोनों जा
छिपे। इसीसे उस स्थानको स्थानाच्छादित वा परि-
रक्षित कहते हैं। मायादेवी पुनर्बार प्रबल भङ्ग
बांध उन्हें विरक्त बनाने लगी थीं। विष्णु भी
पुनर्बार उहड़त हच बन तने और डालसे उन्हें बचा
लिया था। उस स्थानको रक्षितस्थान कहते हैं। इतने
पर भी मायादेवीकी मनस्कात्मना पूर्ण न हुयी।
परिशेष पर उन्होंने अन्तर्मदाको पकड़ किसी सागरके
जलमें डाल दिया था। किन्तु विष्णुकी मायासे
अन्तर्मदा न डूबी, पानी पर तैरने लगी। उस
दिनसे इसके जलमें कोई वस्तु डालने पर नहीं डूबती।
यही इसके अममन नाम पड़नेका कारण है।

प्राधुनिक प्रवृत्तत्वानुसन्धायो अनुमान बांधते,
कि राजा और उनकी भगिनी मियके उत्तर-प्रदेशमें
तपस्या करने गये थे, आस्फाल्टाइटस सागरका ही
नाम अममन रहा। नहीं कह सकते, यह भीमांसा
कहांतक सद्गत है।

अमङ्गल (सं० पु०) मङ्ग-अलच्; नास्ति मङ्गलं
प्रयोजनं यस्मात्, ५-बहुव्री०। १ परच्छत्र, रेंडका
पिड़। परच्छत्रचसार न रखनेसे किसी काम नहीं
घाता। (त्रि०) ६ वा ७-बहुव्री०। २ मङ्गलशून्य,
अकुशल, बददिगुन, बदबख्त, बुरा। (स्त्री०)
नञ् तत्। ३ अशुभ, बददिगुनी, कमबखती।
४ अशुभसूचक लक्षणदि, जो दिगुन वगैरह बुरा हो।
हमारे शास्त्रकारने विस्तर अशुभ लक्षणका उल्लेख
उठाया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इसका विस्तारित
विवरण मिलेगा। दिवसमें शृगालका हुषाना,
कुत्तेका रोना, रात्रिको उजूका बोलना, द्रोणकाक या
जङ्गली कौवेका कांव-कांव करना, रहमें रथप्राका
गिरना और यात्राकालमें भग्न वा शून्य कूभ, तैल,
लवण, अस्थि, कार्पास, कच्छप, कुत्ते, हिरकेश, नख,
मल, देवलगाद्याय, ग्रामयाजक, शयक, घाह, विप,

तेलो, व्याध, नपुंसक, सपिरे प्रथितिका दिख पडना विश्वर अमङ्गलिक लक्षण माना गया है।

अमङ्गल्य (सं० त्रि०) मङ्गलाय हितं यत्, नञ्-तत्।

अमङ्गलजनक, अशुभ, बदधिगुण, बुरा, खुराश।

अमचूर (हिं० पु०) सूखे आमकी बुकनौ, जो अमचूर पीस ली गयी हो।

अमजद अलीशाह—मुहम्मद अली शाहके लड़के। सन् १८४२ ई०की १७ वीं मईको यह अपने चापकी जगह लखनऊके राजसिंहासनपर बैठे और भवधके नवाब बने थे। उसी उत्सवके उपलक्षमें इन्हें सूरिया शाहकी उपाधि मिली। सन् १८४७ ई०की १६ वीं मार्चको इनकी मृत्यु हुयी थी। फिर इनके लड़के वाजिद-अली शाहकी राज्यका भार दिया गया। सन् १८५६ ई० को ७ वीं फरवरीको अंगरेज-सरकारने वाजिद-अली शाहसे लखनऊकी नवाबी छीन अपने राज्यमें मिला ली थी।

अमजेर—गुजरातका एक राज्य। सन् १८५७ ई० की मजमें सिपाहियोंके बलवा करनेपर यहांके राजाने भोपावारके पोलिटिकल एजण्ट कप्तान हचिनसनपर आक्रमण किया था।

अमण्ड (सं० त्रि०) मन-ड; नास्ति मण्डो, यद्य, बहुप्रो०। १ मण्डरहित, मांडसे खाली, जिसमें मांड न रहे। २ भूयणहीन, विसाज। (पु०) ३ परण्ड-वृक्ष, रेंडुका पेड़।

अमण्डित (सं० त्रि०) भूमित न किया हुआ, जो संवारा न गया हो।

अमड़ा (हिं० पु०) आम्रातक, अमारी। (Spondias mangifera) यह वृक्ष छोटा और पतभरा होता है। इसे भारतवर्षके इस सिरेसे उस सिरेतक वन्य अवस्थामें पाये जा लगायेंगे। सिन्धुनदसे पूर्व एवं दक्षिण, मलाका और सिंहल तक इसका अधिक प्रसार देखते हैं। हिमालय पर यह ५००० फ़ीटसे ऊँचे न ऊगिया। प्रकृतिने इसे अनयनहस्त अशियामें विभाजित किया है।

इसके बकलीसे 'मृदु-निःसार' निर्वास टपकता, जो कुछ-कुछ अरबी-निर्वास जैसा होता; किन्तु

रङ्गमें ज्यादा काला निकलता है। वह वृक्षके लटकते हुये कुछ-कुछ पोले या साल-जैसे भूरे रङ्गवाले भागमें रहे और उसका चिकना-चमकीला तल चमका करेगा। अधिक जलके साथ यह लसदार गोंद बनाता, जो सीसेके नमकसे जम जाता; फिर बुनियादी नमक और लाइकी इरी भापसे विपचिपाने लगता है। किन्तु इसमें सोहागिका कोई काम नहीं देखते।

इसके फलवाले गूदेको संस्कृत लेखकोंने खटा, कसेला और पिस-सम्बन्धी अजीर्ण रोगमें लाभदायक बताया है। इसीसे कभी-कभी अमड़ेको पित्तहृषक कह देते हैं। हमलोग खटाईके लिये इसे तरकारीमें छाने और इसका अचार बनायेंगे। पत्ता और बकशा कसेला-खुशबूदार रहता और पेंचिगकी दवाके काम आता है। इसका गोंद आमक होगा। पत्तीका अर्क कहीं-कहीं कानमें दर्द होनेसे छोड़ा जाता है। ब्रह्मदेशकी शान जाति इस फलको कृषरीसे खाणसे हुये धावके लिये जहरमोहरा समझती और आवश्यकता आनेसे हरा या सूखा हो खा लेती है।

इसका फल अजीवरमें पके और सबसे बड़ा होनेपर इसके अण्डे-जैसा निकलेगा। रङ्गमें वह खूब केतूनी-हरा रहता और पोला-काला धब्बा पड़ जाता है। उसमें कोई गन्ध नहीं होता। बकलीके पासका भाग बहुत खटा लगता, किन्तु उसे निकाल छालनेसे गुठलीके पास मोटा और खाने लायक आता है। पकने पर उसे कभी-कभी सूखा भी खाते, किन्तु प्रायः तरकारीमें खटाई देनेको हरा हो छोड़ देते हैं। तेल, नमक और लाल मिर्च मिलाके फलकी चटनी भी बनायेंगे। गो और हिरण फलको बड़े धावसे खाते हैं।

इसको लकड़ी सुलायम और कुछ-कुछ भूरी होती है। प्रति घन फूटमें लकड़ोका वजन कोई छत्तीस सेर रहेगा। लकड़ी सिर्फ जलानेके ही काम आती है। अमंत (सं० पु०) अम-अतच्। १ रोग, बीमारी। २ मृत्यु, मौत। ३ काल, समय। (त्रि०) अन-अ,

नञ्-तत् । ४ असम्मत, अज्ञात, मालूम न होनेवाला, जो दमागुसे समझ न पड़ता हो ।

अमृतपरार्थ (सं० त्रि०) प्रधान विषयसे असम्बद्ध, खास मज्जमूर्त्तसे लगाव न रखनेवाला ।

अमृति (सं० पु०) अम-अति । १ काल, वक्र । २ चन्द्र, चाँद । ३ दण्ड, सजा । (स्त्री०) ४ दोषि, चमक । ५ रूप, सूरत । ६ ज्ञानाभाव, वैवक्यो ।

७ अग्रयन्तबुद्धि, भोळी समझ । (त्रि०) ८ दुष्ट, बदमाश । ९ ज्ञानहीन, बेसमझ । १० दरिद्र, गरीब ।

अमृतिपूर्व (सं० त्रि०) अचेतन, अज्ञात, बेहोश, बेइरादा, जिसे पहिलेका ख्याल न रहे ।

अमृतीवन् (सं० त्रि०) अमृतिरग्रयन्ता बुद्धिस्तय वन्ते, वन-क्तिप् दीर्घः । १ अग्रयन्त बुद्धियुक्त, भोळी समझवाला । २ दरिद्र, निर्धन, गरीब, जिसके पास दौलत न रहे ।

अमृत्त (सं० त्रि०) न मत्तम्, नञ्-तत् । अघोष, निर्मद, बाहोश, जो मतवाला न हो ।

अमृत्त (सं० स्त्री०) १ भोजनपात्र, भोजन, बरतन । २ बल, ताकत । (त्रि०) ३ अर्द्धसित, ताकतवर ।

४ अपरिमित, हृदसे व्यादा ।

अमृत्तिन् (सं० त्रि०) १ शक्तिशाली, बलवान, ताकतवर, जोरदार । २ भोजन लिये डुप्पा, जिसके पास बरतन मौजूद रहे ।

अमृत्तर (सं० पु०) मद्-सरन्, ततो नञ्-तत् । १ अन्यके मङ्गलमें हिंसाका अभाव, दूसरेकी भलाईमें हानदका न करना । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० ।

२ मात्सर्यरहित, अन्यके प्रति ह्येपयुक्त, हसद न रखनेवाला, फयाज, जो किसीसे डाह न करता हो ।

अमृद (सं० त्रि०) विषण्, निरानन्द, बेचैन, गमजुद्ध, सञ्जीव, जो उदास रहता हो ।

अमृदन (अ०-क्रि०-वि०) इच्छापूर्वक, सरासर, जान-बूझकर ।

अमृदय्य (सं० त्रि०) सोममाधुर्यके अयोग्य, जो सोमकी मिठाईके काबिल न हो ।

अमृदुपर्य्य (सं० त्रि०) मधुपर्कके अयोग्य, जो गृहद, दूध और घी मिचाकर दिया जाने काबिल न हो ।

अमधुर (सं० त्रि०) १ कटु, कड़वा, जो मीठा न हो । (पु०) २ वंशके छः दोषमें एक दोष ।

अमध्यम (सं० त्रि०) अमध्यस्थ, बीचमें न पड़नेवाला ।

अमध्यस्थ (सं० त्रि०) असामान्य, असमनुषि, जो बख्तर न हो ।

अमध्यस्थधर्मिणो (सं० स्त्री०) चेतनजडोभय धर्म-वर्तिनो न होनेवाली, जा जानदार और बेजान दोनो सिफतके बीच न रहती हो ।

अमन (अ० पु०) आनन्द, शान्ति, चैन, बचाव ।

अमननौय, अमनन्य देखो ।

अमनस (सं० त्रि०) नास्ति प्रशस्तात्वात् कार्यक्षमं मनो यस्य । १ कार्यक्षम मनोहीन, काम करने लायक तवीयत न रखनेवाला । २ मनोहृत्तिशून्य, जिसका मन मर जाये । (स्त्री०) ३ जो इन्द्रिय इच्छाका न हवे, ज्ञानका अभाव, जो थोजार अज्ञान न हो ।

अमनस्क (सं० त्रि०) १ इच्छाके इन्द्रियसे रहित, जिसे ज्ञान न रहे, खाहियका आला न रखनेवाला, जिसे मालूम न पड़े । २ अचेतन, बेहोश ।

अमनसिन् (सं० त्रि०) अज्ञान, अमनुष्यधर्मा, बेसमझ, पादमखोर-जैसा ।

अमनाक् (सं० अर्थ०) अधिक, अमन्य रूपसे, व्यादा, बहुत, खूब ।

अमनि (सं० स्त्री०) १ गति, चाल । अमनितिः । (सन्तनदश) २ पथ, राह ।

अमनिया (हिं० वि०) विशुद्ध, स्वच्छ, पवित्र, पाक, साफ, जो छूवा न गया-हो ।

अमनुष्य (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ मनुष्य भिन्न पशु, देवता, हवादि, आदमोकी छोड़ जानवर, पुरिष्ठा, दरखूत वगैरह । (त्रि०) अप्राशस्त्ये नञ्-तत् । २ मनुष्योचित गुणशून्य, आदमीके काबिल

सिफत न रखनेवाला, जो इन्सान न हो ।

अमनुष्यता (सं० स्त्री०) क्लौबल, पीरपहनता, पुरुषानर्हता, नामरदानगी, ज्ञानानापन ।

अमनुष्यनिषेवित (सं० त्रि०) मनुष्यगुण्य, जहां मनुष्य न रहे, आदमासे खाला, जिस जगह

न बसे ।

अमनैक (चिं० पु०) कृपकविशेष, कोई खास काम-कार। यह अवधमें रहता और मालगुजारी देनेमें अपना खास हक रखता है। २ सरदार, अधिकार-प्राप्त व्यक्ति। (वि०) ३ साहसी, जूझरदस्त।

अमनोगत (सं० त्रि०) न मनोगतम्, नञ्-तत्। अममिषत, खयाल न किया हुआ, नामालूम।

अमनोन्न (सं० त्रि०) चित्तको अप्रिय, अनिष्ट, अनौषित, दिलको खुश न आनेवाला, नागवार, नापसन्द।

अमनोनीत (सं० त्रि०) न मनोनीतम्, नञ्-तत्। १ जो मनःभूत न हो, खराब-खस्ता, मरदूद, गया-शुद्ध। २ अनौषित, अममिषत, नापसन्द।

अमनोयोग (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ मनो-योगका अभाव, अवधारणका न रहना, कमतवज्जीही। (चिं०) नञ्-बहुव्री०। २ अन्यमनस्क, मनोयोग-शून्य, दिल न लगानेवाला, जिसका खयाल दूसरो लगड़ लगा रहा।

अमनोयोगिन् (सं० त्रि०) अनवधान, निरपेक्ष, अपनासक्त, अपेक्षक, मन्दादर, प्रमत्त, प्रमादिन्, अन-वहित, अनिविष्टचित्त, शून्यहृदय, वेपरवा।

अमनोरम्य, अमनोहर देखी।

अमनोहर (सं० त्रि०) अममिषत, अनौषित, नाग-वार, नापसन्द, जो दिलको न खींचता हो।

अमन्तव्य (सं० त्रि०) ध्यान न दिया जानेवाला, जिसपर खयाल न दौड़े।

अमन्तु (सं० त्रि०) मन-तुन्, ततो नञ्-तत्। १ अज्ञान, नासमझ। २ निरपराध, बेगुनाह।

अमन्त्र (सं० त्रि०) नास्ति मन्त्रो वेदपाठो यस्मिन् कर्मणि, बहुव्री०। १ वेदपाठशून्य, जिसमें वेदमन्त्र न पढ़ा जाये। २ वेदमन्त्र न जाननेवाला, जिस वेद पढ़नेका अधिकार न रहे। (पु०) १ अवेदिक मन्त्र, मन्त्रशून्य कर्मादि।

अमन्त्रक, अमन्त्र देखी।

अमन्त्रविद् (सं० त्रि०) वेदविधि न जाननेवाला, जिस वेदका सूत्र भालूम न रहे।

अमन्त्रिका (सं० स्त्री०) अमन्त्र देखी।

अमन्द (सं० त्रि०) १ पट्ट, झोशियार। २ उत्कृष्ट, बढ़िया। ३ तीव्र, चालाक, जो सुस्त न हो। ४ अधिक, प्रधान, जूझरी, ज्यादा। (पु०) ५ छत्रविशेष, किसी दरखतका नाम।

अमन्यमान (सं० त्रि०) १ न माननेवाला, जो इज्जत न करता हो। २ आया न रखते हुआ, जिसे आगाही न रहे।

अमन्युत (सं० त्रि०) गुप्त क्रोध न रखनेवाला, जो किसी शख्ससे डाह न करता हो।

अमम (सं० पु०) १ भावी उत्सर्पिणीके हादग जिन-विशेष। (त्रि०) नास्ति मम इत्यभिमानः गृह्यादिपु-यस्य, बहुव्री०। २ ममताशून्य, गृह्यादिके प्रति माया न रखनेवाला, खुदसनायीसे खाली, जिसे विलकुल दुनयावो मुहब्बत न रहे।

अममता (सं० स्त्री०) निरीहता, निःसङ्गता, धैतमयी, वेगुरजी, वेपरवायी।

अममल (सं० स्त्री०) अममता देखी।

अमम्बि (वै० त्रि०) अचर, अमर, जो कभी मिटता न हो।

अमर (सं० पु०) १ अचर, ततो नञ्-तत्। १ देवता, फुरिश्वा। २ कुलिशहच, सेडुड़। ३ अस्थिसंहार हच, हरजोड़। ४ पारद, पारा। ५ सनोवर। ६ मरुद्गण विशेष, उष्णार्धमें एक पवन। ७ विवाह-जोटक नक्षत्रविशेष। इसमें अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्या, हस्ता, स्वाती, अश्लेषा, श्रवणा और रीवती नक्षत्र रहता है। ८ सुवर्ण, सोना। ९ रत्नाच। १० हस्ती, हाथी। ११ अमरकोय अभिधानके रच-यिता। लोग इन्हें अमरसिंह कहते हैं। यह बौद्धधर्मावलम्बी रहे और विक्रमादित्यकी सभाको सुशोभित करते थे। १२ गिरिविशेष, किसी पहाड़का नाम। १३ सोमगिरिके अन्तर्गत सरोवरविशेष, सोम पहाड़का कोई तालाब। इसे देवसरोवर भी कहते हैं।

१४ उकार अचरका गूढ़ अर्थ। १५ तैत्तिरीय संह्या १। १६ अमरकोय। १७ बम्बईके कच्छ जिलेका स्थान विशेष। यह भुजसे कोई चौबीस कोस पश्चिम अवस्थित है। प्रति वर्ष यहां गजनीके समीर-कारवा-सिमकी-

१४ उकार अचरका गूढ़ अर्थ। १५ तैत्तिरीय संह्या १।

१६ अमरकोय। १७ बम्बईके कच्छ जिलेका स्थान विशेष। यह भुजसे कोई चौबीस कोस पश्चिम अवस्थित है। प्रति वर्ष यहां गजनीके समीर-कारवा-सिमकी-

अमरनाथको मेला लगता है। सन् ई०के १४वें शताब्द
वर्ष पश्चिमभारतमें भ्रमण करते समय कच्छमें राज्य
करनेवाले सच्चा राजपूतों द्वारा मार डाले गये थे।
चैत्र कृष्णपक्षमें जो पहला सोमवार पड़ता, उससे
मेला शुरू होता और पांच दिनतक रहता है।
मन्दिरके पीर शाह सुराद मेलिका प्रवन्ध करते हैं।
प्रति वर्ष हजारों मुसलमान और गौच जातिके हिन्दू
यात्री इस जगह आते और रुपया-पैसा, नारियल,
कपड़ा, बकरा, भेड़, मिठाई तथा छोहारा कन्नपर
चढ़ाते हैं। यहां चावल, छोहारे, रज्जिन कपड़े, बैल,
जंत और मिठाईका रोजगार चलता है।

अमरकणा (स० स्त्री०) १ गजपिपली, बड़ी पीपल।

अमरकण्टक—पर्वतविशेष, एक पहाड़। यह पर्वत
बुंदेलखण्डके रोवा राज्यमें समुद्रतलसे ३४८६ फीट
ऊंचे अवस्थित है। इससे शोण और नर्मदा नदी
निकली है। यह विन्ध्याचलके सातपुरा पर्वतका एक
भाग है और इसकी चौटीपर सुविस्तृत अधिल्यका
पड़ो है। यहां नर्मदा नदीकी चारो ओर सुन्दर
मन्दिर बने और कितने ही निर्भर पानीका फौवारा
छोड़ा करते हैं। अमरकण्टक हिन्दुओंका एक तीर्थ
है और प्रति वर्ष महादेवका मेला लगता है।

अमरकण्टिका (सं० स्त्री०) शतावरी, सतावर।

अमरकन्द (सं० पु०) कन्दविशेष।

अमरकण्ड—महिम्नस्त्रीवके टीकाकार।

अमरका, अमरका—बम्बईके सुरत जिलेकी कोई पुरानी
छावनी। त्रैकूटक महाराज द्रुसेनने यहां विजय
पाकर जो दानपत्र लिखा, उसमें अज्ञात संवत्
२०० पड़ा है।

अमरकान्त—संस्कृत एकाक्षर-नाममालाके रचयिता।

अमरकालिक (सं० पु०) हृदिकासी, घटन्ता।

अमरकाष्ठ (सं० स्त्री०) देवकाष्ठ, देवदारु।

अमरकुसुम (सं० स्त्री०) लवङ्ग, लौंग।

अमरकोट—सिन्धुनदके परपारका स्थान विशेष। पहले
यह कियो राजपूतराज्यकी राजधानी रहा। इसी
स्थानमें प्रसिद्ध बादशाह अकबरका जन्म हुआ था।

अमरकोट

अमरकोष (सं० पु०) अमरसिंहप्रणौत अमिधान-
विशेष। अमरसिंह देखो।

अमरख (हिं०) अमर देखो।

अमरखी (हिं० वि०) क्रोधी, गुस्सावर, बुरा
माननेवाला।

अमरगढ़—बम्बईके धारवाड़ जिलेवाले देवगिरि
स्थानके कोई यादव-नृपति। यह सेवकके पौत्र,
मल्लुगीके पुत्र और कर्णके भ्राता रहे। कर्ण-पुत्र
भिल्लम महाराज सन् ११८१ ई०में देवगिरिके सिंहासन
पर प्रतिष्ठित थे।

अमरगढ़ (अमरार गढ़)—बहुमानके गोपभूम प्रान्तका
एक प्राचीन नगर। पहले यह सदगोपवंशके नृपति
महेन्द्रनाथ महाराजकी राजधानी रहा। इसकी
चारो ओर सुदीर्घ दुर्गभेदी बनी थी। आज भी
उसका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

अमरगण (सं० पु०) देवतासमाज, फरिश्तोंका समाज।

अमरगोल—बम्बईवाले धारवाड़ जिलेके हुबली परगनेका
कोई गांव। यहां जो पत्र-लेख मिला था, उसमें
महामण्डलेश्वर जयकृष्ण द्वितीयका उल्लेख रहा।
उन्होंने सन् १११८ ई० से ११२५ ई० तक राज्य किया
था। इस ग्रामके मध्य शहरलिङ्गका मन्दिर बना,
जो कुक्षु-कुक्षु गिरने लगा है। मन्दिरकी दीवारों और
खम्भोंपर देवदेवीकी मूर्ति खचित है।

अमरचन्द्र—१ परिमलनामक संस्कृतव्याकरणरचयिता।

२ श्यामगच्छीय जिनदत्तचरि के ग्रन्थ। इन्होंने कला-
कलाप, काव्यकल्पलता, छन्दोरत्नावली, बालभारत
प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ बनाये थे। ३ विवेकविलास-
रचयिता। यह सन् ई०के १३वें शताब्दीमें विद्यमान थे।

अमरज (सं० पु०) अमरः दुर्मर इव जायते, अमर-
जन-ह। १ दुष्खदिरहच, लजालू। २ देवदारु।
३ नदीघट।

अमरजो—राजपूतानेके एक कवि। 'राजस्थान'में टाडने
इनका उल्लेख किया है।

अमरण (सं० स्त्री०) अमरता, अमरत्व, अमरत्वता,
अमरत्व, नित्यता, हयात-अवदी, हयात-जाविदानी,
बका, कभी न मरनेकी हालत।

अमरणीय (सं० त्रि०) अमर, अनखर, नित्य, लाज-
घाल, लो कभी मरता न हो।

अमरणीयता (सं० स्त्री०) अमरत्व देखो।

अमरतटिणी (सं० स्त्री०) देवताओंकी नदी, गङ्गा।

अमरतृ (सं० पु०) १ देवदारु। २ अर्कादि, अर्कोड़ा
वगैरह।

अमरता (सं० स्त्री०) १ अनखरता, कभी न मरनेकी
ज्ञानत। २ देवल, देवताका भाव।

अमरत्व (सं० स्त्री०) अमरता देखो।

अमरदत्त—१ बम्बईवाले खम्भात प्रान्तके नृपतिविशेष।

यह राजपूताना—जयपुरके रणस्तम्भगढ़वाले धंधल
पंवारकी २६ वीं पीढीमें उत्पन्न हुए थे। सन् ई०के
१६वें शताब्द अलाउद्दीन खिलजीने जब रणस्तम्भगढ़की
भूटपाट अपने हाथ किया, तब धंधलकी यहसि
भाग खम्भातमें जा बसना पड़ा। सन् ई०के १६वें
शताब्दमें अमरदत्तने शाहजहाँको कोई हीरा नजर
दिया था। उससे उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न हो इन्हें रायकी
उपाधि प्रदान की और अपने साथ ही दिल्ली ले
जाकर दरबारका मुसाहब बना लिया। यह एक
सड़का छोडकर मरे थे, जिसने सुरगिदावादके सेठ
मानिकचन्दकी सड़कासे अपना विवाह किया।
२ एक प्राचीन संस्कृत-शब्दकोषकार।

अमरदास (सं० पु०-स्त्री०) अमराणां प्रियं दास,
शाक०-तत्। देवदास।

अमरदाम—नानकप्रियोंके दस गुरुमें एक। सिखोंके
'ग्रन्थ'में इनके बनाये भजन मिलते हैं।

अमरदेव—१ मालव देशवाले किसी विक्रमादित्य
नृपतिकी राजसभाके रत्न-विशेष। कहते हैं, जब
महादेवने स्वप्न देखाया, तब बोध-गयामें अशोकका
कोई विहार खोदना इन्होंने एक शिवमन्दिर बनवाया
था। बोधगयासे आधिष्णत १००५ संवत्की शिला-
लिपिसे उपरोक्त विषय प्रमाणित होता है।

अमरदु (सं० पु०) विखरिंदरहच, लजाने।

अमरद्विज (सं० पु०) अमराणां देवानां पूजकः
द्विजः, शाक०-तत्। देवल ब्राह्मण, पुंजायै ब्राह्मण,
जो ब्राह्मण देवताका पूजन करता हो।

अमरनाथ (सं० पु०) १ इन्द्र, देवताओंके मालिक।
२ काश्मीरका एक प्रसिद्ध तीर्थ। यहां महादेवका
जो स्वयम्भू तुपारलिङ्ग है, उसीका नाम अमरनाथ
वा अमरेश्वर पड़ा है। प्रति वर्ष श्रावण मासकी
राखी पूर्णिमाको भारतवर्षके नाना-देशवाले यात्री
यहां आते हैं।

अमरनाथ काश्मीरकी पूर्वे दिगामें अवस्थित है।
इसके उत्तर तिब्बत दिग्ग है। यहांकी पर्यतमाला
बहुत ऊँची-नीची है। उंचाई प्रायः १५०००-१६०००
फीट होगी। क्या शीत, क्या शीघ्र—बारहो महीने
चारो ओर तुपार ही तुपार दिखाई देता है। पथ
दुर्गम, प्राणशून्य और लक्षणशून्य है। सड़स सड़स
प्रखरखण्ड और हिमशिला पतनीम्बूछ हो रही हैं।
चलते समय यात्रोंके लक्ष्मरमें बोलने अथवा जोरमें
पैर फटकने पर उसकी धमकसे सारी शिला उसके
गिरपर गिर पड़ेंगी। इधर भाद्रमास रातदिन इष्टि
हुआ करती, कभी कभी वर्ष भी पड़ जाती है।
इतनी विघ्नबाधा रहते भी प्रायः दो हजार यात्री
प्रति वर्ष इस स्वयम्भूलिङ्गका दर्शन करने अमरनाथ
पहुँचते हैं।

पथ ऐसा दुर्गम रहनेके कारण काश्मीराधिपति
यात्रियोंको विशेष सहायता देते हैं। इस महा-
तीर्थका दर्शन करनेको भारतवर्षके सुदूर स्थानोंसे
यात्री आते हैं। उनमें धनी दरिद्र, योगी सन्ध्यामी,
सभी सम्पुदायके मनुष्य पाये जाते हैं। दरिद्रोंको
काश्मीरराज स्वयं राहखर्च देते हैं।

राखी-पूर्णिमासे चौदह पन्द्रह दिन पहले यी-
नगरके निकट रामबागमें सरकारी भण्डा उड़ा दिया
जाता है। इसीको देखकर यात्री क्रमशः एकत्र
होते हैं। फिर पूर्णिमासे आठ दिन पहले ही सब
यात्री यीनगरसे यात्रा करते हैं। अनन्तनागमें
भण्डा पहुँचने पर यात्री एकत्र हो जाते हैं, आगे
पीछे कोई भी नहीं रहता। यहांसे अमरनाथ २८
कोस रह जाता है। बीचमें पांच पड़ाव पड़ते हैं,
फिर तीर्थस्थान मिलता है। पथमें कुछ भी नहीं
पाते। अमरनाथमें भी न तो हाट-बाजार और

न मनुष्योंकी बन्दी ही है। इसीसे यात्री अमरनाथ-नागमें ही आचम्यकीय वस्त्र खरीद लेते हैं।

राज-पताका आगे आगे और उसके पीछे पोछे हाथमें प्राण लिये यात्री चलते हैं। अमरनाथके पथमें सब मिलाकर इक्कीस तोर्योंमें स्नान किया जाता है। पहले वितस्ता नदीके उस पार कश्यपमुनिका शौर्य वा श्रीघ्नान मिलता है। वहां कोई देवमूर्ति नहीं। कहते हैं, वहां जो कोई स्नान करता, वह शौर्य एवं श्रीसम्पन्न होता है।

दूसरा तीर्थ पाण्डृतन है, यह 'पुराणाधिष्ठान' शब्दका अपभ्रंश जान पड़ता है। भगवती भागती थी और महादेव उनका पोछा कर रहे थे। उसी स्थानमें महादेवने भगवतीका पदचिह्न देख पाया। बहुत समय पहले वहां काश्मीरकी राजधानी रही। महाराज अशोक किसी दिन उस नगरमें राजत्व करते थे। उनके प्रतिष्ठित एक मन्दिरमें बुधदेवका दांत रखा था। उसके बाद काश्मीरके राजा अभिमन्युने प्राग लगवाकर समस्त नगरको जला डाला। उसमें देवालयादि भी भस्म हो गये थे। कोई कोई कहते हैं, कि सन् १२१३ ई०की पार्थ राजाने वह नगर बसाया था। अभिमन्युने जो नगर ध्वंस किया, वह पाण्डृतनके निकट हो रहा। अन्तको जब शहाबुद्दीन सिकन्दरने काश्मीरमें उत्पात मचाया, उस समय भी पाण्डृतन विनष्ट न हुआ था। वहां अस्सी हाथ चतुष्कोण एक शिवकुण्ड है। अमरनाथ जाते समय यात्री उसी कुण्डमें स्नान करते हैं। पाण्डृतनमें अब भी कितने ही देवालया और अष्टालिकाओंके भग्नावशेष वर्तमान हैं।

तीसरे तीर्थस्थानका नाम पदिनापुर वा पाम्पुर है। यह 'पद्मपुर' शब्दका अपभ्रंश है। पद्म नामक किसी राजाने उसे निर्माण कराया था। अब जगह-जगह केवल बड़े बड़े स्तम्भ और अष्टालिकाके भग्नावशेष दिखनेमें आते हैं।

उसके बाद यात्री जहां स्नान करता, उसका नाम यहूद है। वहां महादेवका एक लिङ्ग विद्यमान है।

यहूदसे आगे बढ़ने पर अमरनाथपुर मिलता है। महाराज श्रीशैलीवर्माने उस नगरकी प्रतिष्ठित किया

था। कहते हैं, महादेवके वरसे वह जलके ऊपर चल सकता रहे। उस समय एकबार महाजलझावनमें काश्मीर डूब गया था। परन्तु अपने साधनबलसे अमरनाथपुरमें आनेके बाद धागहसु उत्सु आया। ८ हस्ती-कि-नर-कुनु नगम, ८ चक्रधर, १० देवकीस्थान, ११ विजयेश्वर, १२ हरिचन्द्रराज, १३ तेजोवर, १४ सुरिगुफर (सौर-गड्ढर), १५ सुकर गां, १६ वदुह, १७ मन्तर, १८ गणेश बुल, १९ नीलगङ्गा, २० स्थानेश्वर, सबके अन्तमें पञ्चतरङ्गिणी है। इस भरनेकी पांच शाखायें हैं, इसीसे पञ्चतरङ्गिणी कहते हैं। यात्री उस स्थानमें स्नान करेंगे। स्नानके उपरान्त वस्त्र त्याग कर भूर्जपत्रका वस्त्र पहनते हैं। कोई कोई नङ्गे ही मनके लजाससे दूर दूर जय-जय कहते हुए आगे बढ़ते हैं। पञ्चतरङ्गिणी अमरेश्वरसे एक कोसपर है। यात्री अपनी अपनी खाद्यसामग्री प्रभृति वहाँ रख देते हैं।

अब अमरेश्वरकी गुहा मिलेगी। इसका प्रवेशपथ प्रायः ३२ हाथ प्रशस्त है। गुहामें प्रवेश करनेपर पहले कोई ५० हाथ सरल पथ आता है। उसके बाद दक्षिण ओर थोड़ा घुमकर प्रायः १६ हाथ आगे बढ़ना पड़ता है। गुहाके भीतर अत्यन्त शीत लगता है। ऊपरसे सदेव टप टप जल चूषा करता है। महादेवका स्वयम्भु तुपारलिङ्ग यहाँ निर्मल स्फटिककी भांति चमकते रहता है। कहते हैं, शायद चन्द्रमाकी तरह इस शिवलिङ्गको भी क्रासवृद्धि हुआ करती है। पूर्णमाके दिन महादेवकी पूर्णमूर्तिका दर्शन होता है। फिर प्रतिपत्से एक एक कला घटने लगती है। अमावस्याके दिन तुपारलिङ्गका कोई चिह्न बाकी नहीं रहता, सब अथयव अट्टम्य हो जाता है। फिर शुक्लपक्षको प्रतिपत्से यह लिङ्ग प्रतिदिन एक एक कला बढ़ने लगता है। स्थान अत्यन्त शीत अत्यन्त भयानक है। बारह महीने यहां मनुष्य नहीं रह सकता। योगी-संन्यासियोंमें कोई-कोई तीन चार महीने वास करते हैं। यही क्षीय कहते

हैं, कि चन्द्रमाकी झासहृदिके साथ अमरनाथकी भी झासहृदिके हुषा करती है। महाराज गुलाब सिंहने यहाँ एक रात वास किया था। कहते हैं, किसी समय उन्हें सर्परूपमें दर्शन दे कर महादेव भन्तर्हित हुये। दूसरा भी प्रवाद है, कि यह स्वयम्भू लिङ्ग कदाचित् कपोतरूप धारण करता है। फलतः यह बात मिथ्या है। अमरनाथ जाते समय पण्डे कयुतरोंको कपड़ेमें छिपा लेते, और भन्तमें अमरनाथको गुफाके पास पहुँचकर उन को छोड़ देते हैं। यात्री कपोतरूपो महादेवको देखकर भक्ति करते हैं। अमरनाथमें दूसरी भी कई देवदेवी और वैलकी पाषाणमय मूर्ति है।

उज्जैनमें भी अमरनाथ वा अमरेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित था।

३ बम्बई प्रान्तके थाना जिलेका एक गांव। यहाँसे आध कोस दूर एक सुन्दर उपत्यकामें महादेवका प्राचीन मन्दिर बना है। मन्दिरमें हिन्दुओंकी असली क्वारीगरी देख पड़ेगी। सम्भवतः मन्दिर सन् ई०के ११ वें शताब्दमें तैयार हुआ था। इस मन्दिरमें जो शिन्ना-लेछ मिला, उसमें ८८२ शक अङ्कित है। कल्याणवाले चालुक्योंके अधीनस्थ महामण्डलेश्वर चित्रराजदेव-पुत्र मामधनीराज कदाचित् मन्दिरके बनवानेवाले रहे। इसमें शिव-पार्श्वती, विमान और कालीकी मूर्ति बहुत अच्छी गढ़ी गयी है।

४ हिन्दुस्थानके भिच्चुकोंका सम्प्रदाय विशेष।

अमरपख (हि० पु०) अमरपक्ष, गिष्टपक्ष।

अमरपति (सं० पु०) देवतावीके प्रभु, इन्द्र।

अमरपद (सं० पु०) १ देवतावीका स्थान, स्वर्ग।

२ मोक्ष, निर्वाण।

अमरपाल—पालवंशीय नृपतिविशेष। भविष्य ब्रह्म-खण्डके मतसे यह देवपालके पुत्र रहे।

(भविष्यब्र० १०॥१००)

अमरपुर (सं० स्त्री०) १ देवतावीका नगर, स्वर्ग, अमरावती।

२ ब्रह्मदेशकी प्राचीन राजधानी। यह ऐरावती नदीके पूर्व तटपर अवस्थित है। अनेक मनुष्योंका

अनुमान है, कि अमरपुर सन् १७८३ ई०में प्रतिष्ठित हुआ था। इसमें एक मन्दिर ही विशेष प्रसिद्ध है। उसकी चारो ओर मुलमोदार लकड़ीके २५० खम्भे सुशोभित हैं। मन्दिरके भीतर बुहकी बड़ी भारी धातुमयी मूर्ति है। पहले अमरपुरकी चारो ओर २० फीट ऊँची और ७००० फीट लम्बी शहरपनाह बनी थी। सन् १८१० ई०में धाग जगनेसे नगर विनष्ट हो गया। फिर १८३८ ई०में भूकम्पसे भी इसे बहुत हानि पहुँची थी। ब्रह्मदेशवाले प्राचीन राजाओंके राजप्रासादका भग्नावशेष अभीतक नगरके मध्य स्तूपकार पड़ा हुआ है।

कोई कोई कहते हैं, कि अमरपुर नगर आधुनिक नहीं ठहरता। यह राजधानी अतिप्राचीन है। सन् १६८३ ई०में केवल इसका नाम बदल दिया गया था। तलेमिने आवा नदीकी दो शाखाओं और उसके निकटवर्ती दो नगरोंका विषय लिखा है। उन दो नगरोंके नाम उरयेना और नर्दन हैं। उरयेन शब्द राघन शब्दका अपभ्रंश है। यही अमरपुरका प्राचीन नाम है। इसे पहले आवा और रन्दामरकोट कहते थे। प्रकृत आवा नगर एवं अमरपुरमें प्रभेद है। ब्रह्मदेशमें यह रीति प्रचलित रही,—जब कोई नया राजा होता, तब वह पूर्व राजधानीकी त्याग किसो दूसरे नगरमें अपनी राजधानी स्थापित करता था। इसी प्रथाके अनुसार राजधानी आवासे अमरपुर स्थानान्तरित हो गई।

अमरपुष्प (सं० पु०-स्त्री०) १ कल्पवृक्ष। २ पूगफल, सुपारीका पौधा। ३ कासलक्षण। ४ आन्न, धाम।

५ केतकी। ६ तालमछाना। ७ गोखरू।

अमरपुष्पक, अमरपुष्प देखो।

अमरपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ सोया। २ कांस।

अमरपुष्पी, अमरपुष्पिका देखो।

अमरप्रख्य (सं० त्रि०) देवता-जैसा, जो देवताकी तरह ही।

अमरप्रभ, अमरपख देखो।

अमरप्रभा-सुरि—एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

अमरप्रभु (सं० पु०) १ इन्द्र। २ विशु।

अमरप्रसादसूत्रि—एक प्रसिद्ध जेनाचार्य ।
अमरवेल (हिं० पु०) : अमरवल्ली, कोरुं पीखीलता,
पघेर । इसमें जड़ और पत्ती नहीं पाते । यह जिस
हृत्पर फ़ैलता, उसके रससे अपना पेट भरता और
उसे निर्बल बना देता है । इसमें श्वेत पुष्प निकलेंगे ।
वैद्यकमतसे—यह मीठा होता, पित्तको दबाता और
वीर्य बढ़ाता है ।

अमरभर्ता, अमरभट्ट श्लो ।

अमरभट्ट (सं० पु०) इन्द्र, देवताओंके स्वामी ।

अमरमङ्गल—नैपालके एक प्रसिद्ध राजा । यह सूर्यमलके
पुत्र और शिवसिंहके पितामह रहे ।

अमरमङ्गुली—दक्षिणके मङ्गुली नृपतिके एक पुत्र । यह
गोविन्दराजके मरनेपर सिंहासनारूढ़ हुये थे । जब
यह भी मर गये, तब राजसिंहासन इनके पुत्र कालीय-
बल्लालको मिला ।

अमररत्न, अमलरत्न (सं० स्त्री०) स्फटिक, विजौर ।

अमरराज (सं० पु०) देवताओंके राजा, इन्द्र ।

अमरराजशत्रु (सं० पु०) देवताओंके नृपतिका शत्रु,
इलासुर, रावण ।

अमरलोक (सं० पु०) देवताओंका स्थान, स्वर्ग,
विहिंशु ।

अमरलोकता (सं० स्त्री०) स्वर्गका प्रहर्ष, विहिंशुका
मञ्जा ।

अमरवत् (सं० अव्य०) देवताकी भांति, फ़रिश्तेकी
तरह ।

अमरवर (सं० पु०) इन्द्र, जो व्यक्ति देवताओंमें
श्रेष्ठ हो ।

अमरवल्ली, अमरवल्ली श्लो ।

अमरवल्ली (सं० स्त्री०) १ आकाशवल्ली, अमरवेल ।
२ सालसा । इसका गुण यों लिखा है,—

“इयं वक्रो ह्रस्वरी परं इयं स्थामिनी ।

मूलकमूलं दन्तनी उदिका काष्ठं शक्तिषो ॥

बीषदं शिकरीगांथं रक्तदीर्घं हृदिदियम् ॥” (वैद्यक)

अमरवार—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़े जिलेका एक गांव ।
यह नरसिंहपुरकी गयो सड़कपर बसा और इसमें
गवर्नमेंष्ट-स्कूल एवं पुलिसका थाना बना है ।

अमरविजय—राजपूतानेवाले कोड़ागढ़के एक विख्यात
राठौर राजा । ठाडके राजस्थानमें लिखा है, कि
इन्होंने सोलह हजार परमारोंको बधकर उक्त राज्य
अधिकार किया था । इनके अंशधर कोड़ा कामध्वजकी
उपाधि व्यवहारमें लाते रहे ।

अमरम (हिं० पु०) आमका रस, अमावट । आमका
रस निचोड़ कर थाली या कपड़ेपर फैला धूपमें सुखा
लेते हैं । वही पीछे अमरस या अमावट कहलाता है ।

अमरसरित् (सं० स्त्री०) देवनदी, गङ्गा ।

अमरसंपं (सं० पु०) देवसंपं, राई ।

अमरसिंह—१ सुप्रसिद्ध संस्कृत शब्दकोषकार । प्रवाद-
मतसे यह विक्रमादित्यवाले नवरत्नके एक जन और
बौद्धधर्मावलम्बी व्यक्ति रहे । बोपदेवने अपने कवि-
कल्पद्रुममें इन्हें अन्ततम शाब्दिक या वैयाकरणके
मध्य बताया है । सदुक्तिकर्णान्तमें अमरसिंहको
कितनी ही भविता उद्धृत हुयी । इनके नामानुसार
ही कीर्तिशतश्लेषरूप ‘अमरकोष’ प्रसिद्ध पड़ा है ।

संस्कृत भाषामें जितना प्राचीन शब्दकोष विद्यमान
है, उसमें अमरकोष सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ।

इसीलिये इस कोषकी जितनी टीका बनी, उतनी
किसी दूसरे संस्कृत कोषकी नहीं देख पड़ती । अमर-
कोषकी टीकाओंमें अच्युतउपाध्यायका व्याख्याप्रदीप,
अप्ययदौचितकी अमरहृत्ति, आशाधरका क्रिया-
कलाप, काशोनायकी काशिका, चोरस्वामीका अमर-
कोषोद्घाटन, गोस्वामि-रचित वाङ्मयोधिनी, नयनानन्द
एवं रामचन्द्रयर्माकी अमरकौमुदी, नारायणयर्माकी

अमरकोषपञ्जिका, नारायणविद्याविनोदको शब्दार्थ-
संदीपिका, नीलकण्ठकी सुनोधिने, परमानन्दकी

अमरकोषमाला, बृहस्पतिकी अमरकोषपञ्जिका,
भरतमल्लिककी सुश्वेधोधिनी, भातृजीदौचितकी

व्याख्यासुधा, मञ्जुभट्टकी शुक्वालयश्वेधोधिनी, मथुरेश-
विद्यालङ्कारको सारसुन्दरी, मल्लिनाथका अमरपद-

पारिजात, महादेवतीर्थकी बुधमनोहरा, महेश्वरका
अमरकोषविवेक, सुकुन्दशर्माकी अमरवोधिनी, रघुनाथ

चक्रवर्तीकी त्रिकाण्डचिन्तामणि, राघवेंद्रकी अमर-
कोषव्याख्या, रामनाथका त्रिकाण्डविवेक, रामप्रसादको

है, कि चन्द्रमाकी झासष्टिके साथ अमरनाथकी भी झासष्टिके हुषा करती है। महाराज गुलाब सिंहने यहां एक रात वास किया था। कहते हैं, किसी समय उन्हें सर्परूपमें दर्शन दे कर महादेव अन्तर्हित हुये। दूसरा भी प्रवाद है, कि यह स्वयम्भू लिङ्ग कदाचित् कपोतरूप धारण करता है। फलतः यह वात मिथ्या है। अमरनाथ जाते समय पण्डे कयूतरोंको कपड़ेमें छिपा लेते, और अन्तमें अमरनाथको गुफाके पास पङ्चकर उन को छोड़ देते हैं। यात्री कपोतरूपो महादेवको देखकर भक्ति करते हैं। अमरनाथमें दूसरी भी कई देवदेवी और बैलकी पाषाणभय मूर्ति है।

उल्लैनमें भी अमरनाथ या अमरेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित था।

३ बस्वई प्रान्तके थाना जिलेका एक गांव। यहांसे आध क्रोस दूर एक सुन्दर उपत्यकामें महादेवका प्राचीन मन्दिर बना है। मन्दिरमें हिन्दुओंकी असली कारीगरी देख पड़ेगी। सम्भवतः मन्दिर सन् ई०के ११ वें शताब्दमें तैयार हुआ था। इस मन्दिरमें जो शिला-लेख मिला, उसमें ८८२ शक अक्षित है। कल्याणवाले चालुक्योंके अधीनस्थ महामण्डलेश्वर चित्रराजदेव-पुत्र मामवनीराज कदाचित् मन्दिरके बनधानेवाले रहे। इसमें शिव-पार्वती, विमान और कालीकी मूर्ति बहुत अच्छी गढ़ी गयी है।

४ हिन्दुस्थानके भिच्चुर्कोका सम्प्रदाय विशेष।

अमरपख (हिं० पु०) अमरपक्ष, पिच्छपक्ष।

अमरपति (सं० पु०) देवताओंके प्रभु, इन्द्र।

अमरपद (सं० पु०) १ देवताओंका स्थान, स्वर्ग।

२ मोक्ष, निर्वाण।

अमरपाल—पालवंशीय नृपतिविशेष। भविष्य ब्रह्म-खण्डके मतसे यह देवपालके पुत्र रहे।

(भविष्यब्र० १०।४०)

अमरपुर (सं० स्त्री०) १ देवताओंका नगर, स्वर्ग, अमरावती।

... २ ब्रह्मदेशकी प्राचीन राजधानी। यह ऐरावती नदीके पूर्व तटपर अवस्थित है। अनेक मनुष्योंका

अनुमान है, कि अमरपुर सन् १०८२ ई०में प्रतिष्ठित हुआ था। इसमें एक मन्दिर ही विशेष प्रसिद्ध है। उसकी चारो ओर सुलझेदार लकड़ीके २५० खम्भे सुशोभित हैं। मन्दिरकी भीतर बुद्धकी बड़ी भारी चातुमयी मूर्ति है। पहले अमरपुरकी चारो ओर २० फीट ऊंची और ७००० फीट लम्बी शहरपनाह बनी थी। सन् १८१० ई०में धाम जगनेसे नगर विनष्ट हो गया। फिर १८३८ ई०में भूकम्पसे भी इसे बहुत हानि पहुँची थी। ब्रह्मदेशवाले प्राचीन राजाओंके राजप्रासादका भग्नावशेष अभीतक नगरके मध्य स्तूपकार पड़ा हुआ है।

कोई कोई कहते हैं, कि अमरपुर नगर आधुनिक नहीं ठहरता। यह राजधानी अतिप्राचीन है। सन् १६८३ ई०में केवल इसका नाम बदल दिया गया था। तलेमिने आवा नदकी दो शाखाओं और उसके निकटवर्ती दो नगरोंका विषय लिखा है। उन दो नगरोंके नाम उरथेना और मर्दन हैं। उरथेन शब्द राधन शब्दका अपभ्रंश है। यही अमर-पुरका प्राचीन नाम है। इसे पहले आवा और रन्दामरकोट कहते थे। प्रकृत आवा नगर एवं अमरपुरमें प्रमेद है। ब्रह्मदेशमें यह रीति प्रचलित रही,—जब कोई नया राजा होता, तब वह पूर्व राजधानीको त्याग किसी दूसरे नगरमें अपनी राजधानी स्थापित करता था। इसी प्रथाके अनुसार राजधानी आवासे अमरपुर स्थानान्तरित को गई।

अमरपुष्य (सं० पु०-स्त्री०) १ कल्पवृक्ष। २ पूगफल,

सुपारीका पौधा। ३ काष्ठवृक्ष। ४ आन्त्र, आम।

५ केतकी। ६ तालमखाना। ७ गोखरू।

अमरपुष्पक, अमरपुष्प देखो।

अमरपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ सोया। २ कांस।

अमरपुष्पी, अमरपुष्पिका देखो।

अमरप्रख्य (सं० त्रि०) देवता-जैसा, जो देवताको तरह हो।

अमरप्रभ, अमरप्रख्य देखो।

अमरप्रभा-सुरि—एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

अमरप्रभु (सं० पु०) १-इन्द्र। २-विष्णु।

अमरप्रसादसूरि—एक प्रसिद्ध जेनाचार्य ।
 अमरधन (हिं० पु०) अमरपत्नी, कोई पौत्रीनता,
 पत्नी । इसमें लड़ और पत्नी नहीं पाते । यह जिस
 हृत्पर फेलाता, उसके रसमें अपना पेट भरता और
 उसे निर्बल बना देता है । इसमें श्रेष्ठ पुण्य निकलेगे ।
 वैद्यकप्रतिस—यह मीठा होता, पित्तको दबाता और
 वीर्य बढ़ाता है ।

अमरभर्ता, अमरभर्तृदधी ।

अमरभय (सं० पु०) इन्द्र, देवताओंके स्वामी ।

अमरमन्त्र—नैपालके एक प्रसिद्ध राजा । यह सूर्यमन्त्रके
 पुत्र और शिवसिंहके पितामह रहे ।

अमरमसूरी—दक्षिणके मसूरी नृपतिके एक पुत्र । यह
 गोविन्दराजके मरणपर सिंहासनारूढ़ हुए थे । लष
 यह भी मर गये, तब राजसिंहासन इनके पुत्र कालीय-
 ब्रह्मणकी सिमा ।

अमररत्न, अमररत्न (सं० स्त्री०) स्फटिक, विनोद ।

अमरराज (सं० पु०) देवताओंके राजा, इन्द्र ।

अमरराजप्रभु (सं० पु०) देवताओंके नृपतिका गुरु,
 ब्रह्मासुर, राघव ।

अमरकोक (सं० पु०) देवताओंका स्थान, स्वर्ग,
 विश्विगत ।

अमरकोकता (सं० स्त्री०) स्वर्गका प्रहरी, विश्विगतका
 मन्त्री ।

अमरवत् (सं० अर्थ०) देवताकी भांति, पुरिष्केकी
 तरह ।

अमरवर (सं० पु०) इन्द्र, जो ब्रह्म देवताओंमें
 श्रेष्ठ हो ।

अमरवल्गरी, अमरवल्गरीदधी ।

अमरवन्दी (सं० स्त्री०) १ प्राकाशवन्ती, अमरधन ।
 २ मालसा । इसका शुच यों किया है,—

“अमरको अमरवन्दी पर” इत्यादि ।

सुवर्णमन्त्रे दत्तमनो सुदिना भाग्यं वारिकी ३

वीरदं निश्चरोनाय रक्तदोषं हरेदिवम् ४” (वेदक)

अमरवार—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़े जिलेका एक गांव ।
 यह नरसिंहपुरकी गयो सड़कपर बसा और इसमें
 गवर्नमेण्ट-स्कूल एवं पुलिमका धाना बना है ।

अमरविजय—राजपूतानेवाले कोड़ागढ़के एक विख्यात
 राठौर राजा । टाडके राजस्थानमें लिखा है, कि
 इन्होंने सोलह हजार परमारोंको बधकर उक्त राज्य
 अधिकार किया था । इनके वंशधर कोड़ा कामध्वजकी
 उपाधि व्यवहारमें लाते रहे ।

अमररस (हिं० पु०) आमका रस, अमावस । आमका
 रस निचोड़ कर पानी या कपड़ेपर फेला धूपमें सुखा
 लेते हैं । वही पीके अमरस या अमावस कहलाता है ।

अमरसरित् (सं० स्त्री०) देवनादी, गङ्गा ।

अमरसर्प (सं० पु०) देवसर्प, राई ।

अमरसिंह—१ सुप्रसिद्ध संस्कृत शब्दकोषकार । प्रवाद-
 मतमें यह विक्रमादित्यवाले नवरत्नके एक जन और
 बौद्धधर्मावलम्बी व्यक्ति रहे । वोपदेवने अपनी कवि-
 कल्पद्रुममें इन्हें अत्यन्त शब्दिक या वैयकरणके
 मध्य बताया है । मट्टल्लिकर्णामृतमें अमरसिंहको

कितनी ही कविता उद्धृत हुई । इनके नामानुसार
 ही कीर्तिस्तम्भस्वरूप ‘अमरकोष’ प्रसिद्ध पड़ा है ।

संस्कृत भाषामें जितना प्राचीन शब्दकोष विद्यमान
 है, उसमें अमरकोष सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ।

इमोजिने इस कोषकी जितनी टीका बनी, उतनी
 किमी दूसरे संस्कृत कोषकी नहीं देख पड़ती । अमर-
 कोषकी टीकावर्ति अश्वत्थव्याख्याका व्याख्याप्रदोप,

अप्यदीक्षितकी अमरसिंह, आशाधरका क्रिया-
 कलाप, कागोनायकी काशिका, चोरस्वामीका अमर-

कोषोद्घाटन, गोस्वामि-रचित बालवोधिनी, नयमानन्द
 एवं रामचन्द्रगर्गकी अमरकोषुदी, नारायणगर्गकी

अमरकोषपञ्चिका, नारायणव्याघ्रविनोदकी शब्दार्थ-
 संदीपिका, नोलकण्ठकी सुबोधिने; परमानन्दकी

अमरकोषमाला, हृदयसिंहकी अमरकोषपञ्चिका,
 भरतमल्लिककी सुखवोधिनी, भातुजीदीक्षितकी

व्याख्यासूत्रा, मञ्जुभट्टकी गुरुवालप्रबोधिनी, मयुरेश-
 विद्यालङ्कारकी सारसुन्दरी, मन्दिनाथका अमरपद-

वारिजात, महेशदेवतीर्थकी सुधमनोहरा, महेश्वरका
 अमरकोषविवेक, सुकुन्दर्याकी अमरवोधिनी, रघुनाथ

चक्रवर्तीकी त्रिकाण्डचिन्तामणि, राघवेश्वरकी अमर-
 कोषव्याख्या, रामनाथका त्रिकाण्डविवेक, रामप्रसादकी

हैं, कि चन्द्रमाकी झासहृदिके साथ अमरनाथको भी झासहृदिके हुथा करती है। महाराज गुलाब सिंहने यहाँ एक रात वास किया था। कहते हैं, किसी समय उन्हें सर्परूपमें दर्शन दे कर महादेव अन्तर्हित हुये। दूसरा भी प्रवाद है, कि यह खयभू लिङ्ग कदाचित् कपोतरूप धारण करता है। फलतः यह बात मिथ्या है। अमरनाथ जाते समय पण्डे कबूतरोंको कपड़ेमें छिपा लेते, और अन्तमें अमरनाथको गुफाके पास पहुँचकर उन को छोड़ देते हैं। यात्री कपोतरूपो महादेवको देखकर भक्ति करते हैं। अमरनाथमें दूसरी भी कई देवदेवी और वैलकी पाषाणभय मूर्ति है।

उल्लोचनमें भी अमरनाथ या अमरेश्वर नामक एक शिवलिङ्ग प्रतिष्ठित था।

३ वरुई प्रान्तके थाना जिलेका एक गांव। यहांसे आध क़ोस दूर एक सुन्दर उपत्यकामें महादेवका प्राचीन मन्दिर बना है। मन्दिरमें हिन्दुओंकी असली कारीगरी देख पड़ेगी। सम्भवतः मन्दिर सन् ई०के ११ वें शताब्दमें तैयार हुआ था। इस मन्दिरमें जी शिला-लेख मिला, उसमें ८८२ शक अङ्कित है। कल्याणवाले चालुक्योंके अधीनस्थ महामण्डलेखर चित्रराजदेव-पुत्र मामधनीराज कदाचित् मन्दिरके बनवानेवाले रहे। इसमें शिव-पार्वती, विमान और कालीकी मूर्ति बहुत अच्छी गढ़ी गयी है।

४ हिन्दुस्थानके भिन्नकोंका सम्प्रदाय विशेष।

अमरपख (हिं० पु०) अमरपक्ष, पिटपक्ष।

अमरपति (सं० पु०) देवतावीके प्रभु, इन्द्र।

अमरपद (सं० पु०) १ देवताओंका स्थान, स्वर्ग।

२ मोक्ष, निर्वाण।

अमरपाल—पालवंशीय नृपतिविशेष। भविष्य ब्रह्म-खण्डके मतसे यह देवपालके पुत्र रहे।

(भविष्यब्रह्म २०।१०)

अमरपुर (सं० स्त्री०) १ देवतावीका नगर, स्वर्ग, अमरावती।

२ ब्रह्मदेशकी प्राचीन राजधानी। यह ऐरावती नदीके पूर्व तटपर अवस्थित है। अनेक मनुष्योंका

अनुमान है, कि अमरपुर सन् १७८३ ई०में प्रतिष्ठित हुआ था। इसमें एक मन्दिर ही विशेष प्रसिद्ध है। उसकी चारो ओर सुलभेदार लकड़ीके २५० खम्भे सुशोभित हैं। मन्दिरके भीतर बुधकी बड़ी भारी धातुमयी मूर्ति है। पहले अमरपुरकी चारो ओर २० फीट ऊँची और ७००० फीट लम्बी शहरपनाह बनी थी। सन् १८१० ई०में प्राग जगसे नगर विनष्ट हो गया। फिर १८३८ ई०में भूकम्पसे भी इस बहुत हानि पहुँची थी। ब्रह्मदेशवाले प्राचीन राजाओंके राजप्रासादका भग्नावशेष अभीतक नगरके मध्य स्तूपकार पड़ा हुआ है।

कोई कोई कहते हैं, कि अमरपुर नगर आधुनिक नहीं ठहरता। यह राजधानी अतिप्राचीन है। सन् १६८३ ई०में केवल इसका नाम बदल दिया गया था। तलेमिने आवा नदीके दो शाखाओं और उसके निकटवर्ती दो नगरोंका विषय लिखा है। उन दो नगरोंके नाम उरथेना और गर्दन हैं। उरथेन शब्द राधन शब्दका अपभ्रंश है। यही अमर-पुरका प्राचीन नाम है। इसे पहले आवा और रन्दाभरकोट कहते थे। प्रकृत आवा नगर एवं अमरपुरमें प्रभेद है। ब्रह्मदेशमें यह रीति प्रचलित रही,—जब कोई नया राजा होता, तब वह पूर्व राज-धानीको त्याग किसी दूसरे नगरमें अपनी राजधानी स्थापित करता था। इसी प्रथाके अनुसार राजधानी आवासे अमरपुर स्थानान्तरित की गई।

अमरपुथ्य (सं० पु०-स्त्री०) १ कल्पवृक्ष। २ पूगफल,

सुपारीका पौधा। ३ कासदण। ४ आसन, आम।

५ केतकी। ६ तालमखाना। ७ मोखरु।

अमरपुथ्यक, अमरपुथ्येकी।

अमरपुथ्यिका (सं० स्त्री०) १ सोया। २ कांस।

अमरपुथ्यी, अमरपुथ्यिकाकेकी।

अमरप्रथ्य (सं० त्रि०) देवता-जैसा, जो देवताकी तरह हो।

अमरप्रभ, अमरप्रथ्येकी।

अमरप्रभा-सुरि—एक प्रसिद्ध जैनाचार्य।

अमरप्रभु (सं० पु०) १-इन्द्र। २-विष्णु।

अमरप्रसादसूरि—एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ।
अमरवेल (हिं० पु०) अमरवल्ली, कोई पीलीलता,
पत्तरी । इसमें जड़ और पत्ती नहीं पाते । यह जिस
हृत्पर फैलता, उसकी रससे अपना पेट भरता और
उसे निर्बल बना देता है । इसमें खेत पुष्प निकलेंगे ।
वैद्यकमतसे—यह मीठा होता, पित्तको दबाता और
वीर्य बढ़ाता है ।

अमरभर्ता, अमरभट्ट देवो ।

अमरभट्ट (सं० पु०) इन्द्र, देवताओंके स्वामी ।

अमरमल्ल—नैपालके एक प्रसिद्ध राजा । यह सूर्यमल्लके
पुत्र और शिवसिंहके पितामह रहे ।

अमरमल्लगौ—दक्षिणके मल्लगौ नृपतिके एक पुत्र । यह
गोविन्दराजके मुरनेपर सिंहासनावृद्ध हुये थे । जब
यह भी मर गये, तब राजसिंहासन इनके पुत्र कालीय-
वज्जालको मिला ।

अमररत्न, अमलरत्न (सं० स्त्री०) स्फटिक, बिजौर ।

अमरराज (सं० पु०) देवताओंके राजा, इन्द्र ।

अमरराजशत (सं० पु०) देवताओंके नृपतिका शत,
हत्वासर, रावण ।

अमरलोक (सं० पु०) देवताओंका स्थान, स्वर्ग,
विद्विग्ग ।

अमरलोकता (सं० स्त्री०) स्वर्गका प्रहरी, विद्विग्गका
मञ्जा ।

अमरवत् (सं० अव्य०) देवताकी भांति, फुरिष्ठेकी
तरङ्ग ।

अमरवर (सं० पु०) इन्द्र, जो व्यक्ति देवताओंमें
श्रेष्ठ हो ।

अमरवल्ली, अमरवली देवो ।

अमरवल्ली (सं० स्त्री०) १ आकाशवल्ली, अमरवेल ।
२ सालसा । इसका गुण ये लिखा है,—

“वयवसो वृत्तवती परं हवा रसाग्निनी ।

मूलकृत्स्नं दशनमी पुष्टिदा कर्मव्यारिणी ॥

“औरदं मित्रयोगीय रक्तदीपं हरेदिसम् ॥” (वैद्यक)

अमरवार—मध्यप्रदेशके छिन्दवाड़े जिल्लाका एक गांव ।
यह नरसिंहपुरकी गयी सड़कपर बसा और इसमें
गवर्नमेण्ट-स्कूल एवं पुलिसका थाना बना है ।

अमरविजय—राजपूतानेवाले कोड़ागढ़के एक विख्यात
राठीर राजा । टाड़के राजस्थानमें लिखा है, कि
इन्होंने सोलह हजार परमारोंकी बधकर उक्त राज्य
अधिकार किया था । इनके वंशधर कोड़ा कामध्वजकी
उपाधि व्यवहारमें लाते रहे ।

अमरम (हिं० पु०) आमका रस, अमावट । आमका
रस निचोड़ कर थाली या कपड़ेपर फैला धूपमें सुखा
लेते हैं । वही पीछे अमरस या अमावट कहलाता है ।

अमरसरित् (सं० स्त्री०) देवगदी, गङ्गा ।

अमरसर्प (सं० पु०) देवसर्प, राई ।

अमरसिंह—१ सुप्रसिद्ध संस्कृत शब्दकोषकार । प्रवाद-
मतसे यह विक्रमादित्यवाले नवरत्नके एक जन और
बौद्धधर्मावलम्बी व्यक्ति रहे । बोपदेवने अपने कवि-
कल्पद्रुममें इन्हें अत्यन्त शब्दिक या वैयाकरणकी
मध्य बताया है । सदुक्तिकर्णामृतमें अमरसिंहको
कितनी ही कविता उद्धृत हुयी । इनके नामानुसार
ही कीर्तिस्तम्भस्वरूप ‘अमरकोष’ प्रसिद्ध पड़ा है ।
संस्कृत भाषामें जितना प्राचीन शब्दकोष विद्यमान
है, उसमें अमरकोष सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है ।
इसीलिये इस कोषकी जितनी टीका बनी, उतनी
किन्हीं दूसरे संस्कृत कोषकी नहीं देख पड़ती । अमर-
कोषकी टीकाओंमें अच्युतउपाध्यायका व्याख्याप्रदीप,
चण्ण्यदीक्षितकी अमरहृत्ति, आयाधरका क्रिया-
कलाप, काश्यापकी काशिका, चोरस्वामीका अमर-
कोषोद्घाटन, गोस्वामि-रचित बालबोधिनी, नयनानन्द
एवं रामचन्द्रशर्माकी अमरकोषसूदी, नारायणशर्माकी
अमरकोषपञ्चिका, नारायणविद्याविनोदको शब्दार्थ-
संदोषिका, नीलकण्ठकी सुबोधिने; परमानन्दकी
अमरकोषमाला, बृहस्पतिकी अमरकोषपञ्चिका,
भरतमल्लिककी सुशुबोधिनी, भातुजोदीक्षितकी
व्याख्यासुधा, मञ्जुभट्टकी गुरुवालप्रबोधिनी, मधुरेश-
विद्यालङ्कारकी सारसुन्दरी, मल्लिनाथका अमरपद-
पारिजात, महादेवतीर्थकी सुधमनोहरा, महेश्वरका
अमरकोषविवेक, मुकुन्दशर्माकी अमरबोधिनी, रघुनाथ
चक्रवर्तीकी त्रिकाण्डचिन्तामणि, राघवन्दकी अमर-
कोषव्याख्या, रामनाथका त्रिकाण्डविवेक, रामप्रसादको

वेपथ्यक्रीमुदे, रामशर्माकौ अमरकोपव्याख्या, राम-स्वामिको अमरविहित, रामाश्रमकी अमरकोप-टीका, रामेश्वरशर्माकौ प्रदापमञ्जरी, रायसुकुटकी पदचन्द्रिका, लक्ष्मणशास्त्रीकी अमरकोपव्याख्या, लिङ्गभट्टकी अमरकोधिनी, लाकनाथकी पदमञ्जरी, श्रीकाराचार्यका व्याख्यामृत, श्रीधरकी अमरटीका और सर्धानन्दका टीकासर्वस्व उल्लेखयोग्य है।

रायसुकुट और भाग्यलौकीचिंतने अपनी-अपनी टीकामें हृहदमरकोपकी बात भी कही है।

२ राजपूत-बौरकेयरी राणा प्रतापसिंहके ज्येष्ठ-पुत्र। राणा प्रतापके जो सत्रह लड़के रहे, उनमें अमरसिंह सबसे बड़े थे। पिताकी मृत्यु होनेसे उन्होंने मेवाड़का राजसिंहासन पाया। आठ वर्षकी अवस्थासे राणा प्रतापके मृत्युकालतक यह सुख-दुःख, सम्पद-विपदमें सभी समय अपने पिताके पास ही रहे। राणा प्रतापने मरनेसे पहले अमरसिंहको अपने कठोर व्रतमें दीक्षित कर दिया था। प्रतापने जैसे स्वाधीनताके लिये भाजन्म युद्ध चलाया, वैसे ही अपने राणा अमरसिंहसे भी चिरवैरी मुगलोंके विपक्षमें युद्ध करने और स्वदेशकी स्वाधीनता अशुण्य रखनेकी शपथ ले लिया। अमरके सिंहासनारूढ़ होनेके बाद आठ वर्षतक मुगल-सम्राट अकबर जीवित रहे और उन्होंने कई वर्ष मेवाड़के विरुद्ध अस्त्रधारण न किया। इससे राणा अमर एक तरह युद्धविद्या भूल बहुत विलासी बन गये थे। उन्होंने पिताके भादेश और उपदेशपर ध्यान न दे और क्षेत्रकर कुटीरवास छोड़ उदयसगरके पास कौश्रि सरय्य प्रासाद बनवाया, फिर यहाँ विलास-व्यसनमें समय बिताने लगे। उसी समय बादशाह जहांगीरने उनके विरुद्ध युद्धघोषणा की। राणाको बड़ा सडट पड़ गया। उन्होंने मन ही मन स्थिर किया,—यह सुखभोग और विलास व्यसन छोड़, हम अथान्तिक युद्धमें प्रवृत्त न होंगे, बादशाहके साथ सन्धि कर लेंगे। किन्तु अन्तमें अमर सन्धि करनेमें समर्थ न हुये। मेवाड़के जिन सेकड़ों राजपूतों और सरदारोंने राणा प्रतापके साथ खड़े हो कई बार मुसलमानोंसे युद्ध किया, वह

अपना-अपना कर्तव्य न भूले थे। सालुबरेके सरदार गोविन्दसिंह-प्रमुख बोरगणकी उत्तेजना और अनुरोधसे अमरसिंह युद्ध करनेपर बाध्य बने। देवीर नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ था। बादशाहके भाई हारकर भाग गये। किन्तु बादशाह उपपर भी सहृदयव्युत्त न हुये, थोड़े दिन बाद ही शत्रुदुष्टा नामक सेनापतिकी अधिनायकतामें मेवाड़के विरुद्ध बहुत मुसलमान-फौज भेजी थी। संवत् १६६६में रणपुर नामक पार्वत्य प्रदेशपर फिर राजपूतोंके साथ मुगलोंका युद्ध हुआ। शत्रुदुष्टा अपने फौजके साथ हार गये थे।

बार-बार हार होनेसे जहांगीरका क्रोध और विधेयवृत्ति प्रचण्ड वेगसे प्रज्वलित हुआ; राजपूतोंमें घराक भगड़ा छालनेके लिये उन्होंने एक उपाय निकाला। राणा प्रतापके किसी भाई सगरसिंहने प्रतापका पक्ष छोड़ मुसलमानोंका पक्ष ले लिया था। बादशाहने उन्हें हद सगरको राणा बना परण्यपूर्ण और भग्न चित्तौरगढ़में अभियुक्त किया। किन्तु चित्तौरके शशासनमय दुर्गमें राणा वननेसे हद सगरके मनमें दारुण अनुताप उपस्थित हो गया था। उन्होंने अनुतापसे जर्जरित हो, अमरसिंहको चित्तौरगढ़ प्रत्यर्पणकर, बादशाहके निकट पहुँच और अपने छातीमें छुरी घुसेड़ पापका प्रायश्चित्त किया। बादशाहका उद्देश्य उसट पड़ा था। अन्तको सन् १६०८ ई०में जहांगीरने अपने लड़के परबीरकी सेनापति बना उनके अधीन बहुत बड़ी फौज मेवाड़ भेजी। खेमनरकी विशाल रणभूमिमें राजपूत और मुसलमान फिर भिड़ गये। इस बारके युद्धमें भी प्रायः सारे मुगल मृत्युमुखमें पड़े थे। शाहजहाँ परबो जहारकर भाग खड़े हुये। मुसलमान-ऐतिहासिक इस युद्धका वर्णन अच्छे तरह कर गये हैं। अमरसिंहको राजा होने बाद मुगलोंसे सत्रह बार लड़ना पड़ा। सकल ही युद्धमें उन्होंने जयलाम किया था।

किन्तु विधिलिपि भ्रष्टरुमीया होती है। अन्तमें जहांगीरने अपने रणनिपुण सुदत्त तनय खुरमको

(भायो ग्राहजहान्) मुगल सेनापति बना और बड़ा भारी फौज सायकर राणासे लड़ने भेजा। इधर क्रमागत युद्ध करनेसे कितने ही राजपूतयौव धरागायो हो गये थे। अतिकष्टसे थोड़े फौज इकट्ठा कर राणाके ज्येष्ठपुत्र कर्ण खुरमकी विद्याल याहिनीसे लड़नेको खड़े हुये। किन्तु इस धार मुगलोंका आक्रमण कोई व्यर्थ कर न सका था। मुगलोंकी जयपताका मेवाड़में उड़ने लगी, मेवाड़ने चिरतरकी स्वाधीनता खोयी और राणा सन्धि करनेपर बाध्य हुये। ग्राहजहान्ने खुरमने अमरकी समधिक सम्बर्धना कर उन्हें फिर राज्यग्रहण करनेका आदेश दिया था। किन्तु उन्होंने अपने पुत्र कर्णके शिर राज्यभार झाल और वापस स्वयंसेवन कर श्रेष्ठ जीवनको अति-वाहित किया।

३ औधपुरवाले राजा गजसिंहके ज्येष्ठपुत्र और नागौरके सामन्तराज। बाल्यकालसे यह अत्यन्त दुर्धर्ष, साहसी और महावीर रहे। दाक्षिणात्यके सकल युद्धमें यह पिताके साथ गये और अमर-प्राद्वर्षमें इन्होंने सर्वोच्च ही भवस्थान किया। यह उग्र स्वभाव होने कारण प्रजाको मदा सताते और वह इनके ब्रह्म अभियोग लेकर राजा गजसिंहसे परित्राण पातेको प्रार्थना करते रही। अयमेपमें राजा गजसिंहने राजधर्मानुसार प्रजारक्षनके लिये ज्येष्ठपुत्र अमरसिंहको उत्तराधिकारसे वक्षित रखा। सन् १६३४ ई०के वैशाख मास अमरसिंहको 'दिगभाटा' भर्षान् चिरनिर्वासनका दण्ड दिया गया था। निर्वासित अमरसिंहने अपने अनुचरोंके भाव दिसी पट्टेच बादग्राहका प्राय्य लिया। इन्हें बादग्राहने 'राव'की उपाधि दे तोन हज़ार सवारका मनसब और नागौरका स्वाधीन शासक बना दिया था। अवाधता और उग्र-स्वभावने ही इनके जीवनका शोचनीय परिणाम देखाया। कुछ दिन यह दिग्भीमे गिफारके बहाने नागौरमें जाकर रहे थे। कई दिन दिग्भीमें इन्हें न देख ग्राहजहान्ने गाराज हुये और अर्धदण्डका भय देखाया। अग्रतज अमरसिंहने अपना अपराध न माना, वरं ग्राहजहान्को अपनी

कटार देखा कहा था,—'यही हमारी सम्पत्ति है।' बादग्राहने उससे विरक्त बन जुमाना बचल करने सलावत् खान्को इनके मनान् भेजा। बादग्राहको आशसे सलावत् खान्ने औरन् अमरसिंहके घर पट्टेच जुमाना देनेकी बात कही। अमरसिंह जुमाना देनेपर राजी न हुये और उसी समय मनापत खान्को घरमें निकाल दिया। ग्राहजहान्ने इनका यह ह्वास सुन अपना अपमान समझा और उसकी सजा देनेकी सभामें बुला भेजा। अमरसिंह खुर पाते ही आमखान दरबारमें जा पट्टेच थे। इन्होंने जाकर देखा,—बादग्राह भाग-बचला हो और सलावत् खान् उनको समझा रहे हैं। यह वतह हज़ार सवारके मनसबदार अमरको लावते हुये बादग्राहके सिंहासनकी ओर भ्रष्ट पड़े। इन्होंने अपनी कमरमें कटार छिया रखी थी, सलावत खान्के पास पट्टेचने ही उसकी छातोमें चुभेड़ दो। देखते-देखते सलावत खान् सम्मटके सामने धरागायो हुये थे। फिर इन्होंने सिंहासनपर बैठे ग्राहजहान्को तनवार फेंक कर मारा, किन्तु भीभायक्रमपर वह खर्भेसे टकरा टुकड़े-टुकड़े हुयी और बादग्राह बाल-बाल बच गये। अमरसिंहके डरसे ग्राहजहान् जनानेमें जाकर छिपे थे। इन्होंने शोधमें तलवार निकाल ली और पांच मुगल सरदारोंको आमखानमें ही मार गिराया। किसी सुमसमान्-सरदारने अमरसिंहको पकड़नेको द्रिप्त न देखायो था। अन्तमें अर्जुन गौड़ नामक एक पाकोयने मान्वा देनेके बहाने इनपर दारुण प्रत्याघात किया और यह मारते-काटते समाख्यलमें ही अन्त निद्रासे परिभूत हुये। अमरसिंहके मरनेकी बात सुनते ही राठौरोंने खाल-किलेमें पट्टेच फिर इत्याभिनय मचा दिया था।

अमरसिंहका विशाह वृद्धो-नरियकी कन्यासे हुआ था। वह आमखानमें पट्टेच इनका गच छटा मार्यो और उसीके भाव अस्कर स्वर्गधामयो गया। किन्ने पाचोन कविने अमरसिंहकी प्रशंसामें कहा है,—

अमरसिंह पू अमर है कान्त धरम अहम ।
ग्राहजहान्को योवर्ष इको अमरत भाव है

अमरसिंह ठापा—एक गोर्खा सेनापति। सन् १८१५ ई०में इनकी अधीनस्थ गोर्खा सेनाने पञ्जाबके मलावन विलिमें घुस कर शरण लिया, जिसे जनरल आक्टर-लोनीने पश्चिम-पर्वतोंके समग्र स्थानोंसे खदेर दिया था। अन्तमें इन्होंने अपने पुत्रके साथ अंगरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। पीछे जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार इन्हें नेपाल चले जानेकी आज्ञा दी गयी थी। सन् १८१६ ई०में इनका परलोक हुआ।

अमरसी (हिं० वि०) आमके रस-जैसा, जो अमाव्यकी तरह पौला हो, सुनहला। एक छटांका हलदीमें आठ मासे चूना डालनेसे अमरसी रङ्ग बन जाता है।

अमरसुन्दरी (सं० स्त्री०) ज्वराधिकारका औषधविशेष। इसके बनानेका विधान यह है,—

‘विकट’ सिफना खेव रन्धिके रेशुकालम् ।

आयुर्जातं स्तं मौर्धं पारधी विषगन्धकम् ॥

मममागमिदं रूषं तलाक दिगुधी गुङ्गः ।

कोणप्रमाचं गुहिकां प्रातःकालाय केवयेत् ॥’ (प्रयोगप्रत)

अमरस्त्री (सं० स्त्री०) स्वर्गकी अप्सरा, विहिष्टकी परी।

अमरा (सं० स्त्री०) अमर-टापू। १ दूर्वा, दूव। २ गुडूची, गुर्च। ३ इन्द्रवारुणीलता, इन्द्रायण। ४ नीलदूर्वा, काली दूव। ५ गृहकन्या, घीकार। ६ नीलीहृत्त, बड़े नीलका पेड़। ७ मेघशृङ्गी, बरियारी। ८ हृत्तकाली, बड़न्ता। ९ नदीवट। १० जरायु। ११ गर्भनाडी। १२ अमरावती, इन्द्रके रहनेकी पुरी। १३ नाभिनाली। (पु०) १४ अमड़ा।

अमराई (हिं० स्त्री०) आमका बाग, जिस धारीमें आमका ही पेड़ रहे।

अमराङ्गना (सं० स्त्री०) इन्द्रपुरीकी अप्सरा, विहिष्टकी परी।

अमराचार्य (सं० पु०) देवताओंके गुरु, ब्रह्मरति।

अमराद्रि (सं० पु०) देवताओंका पर्वत, सुमेरु।

अमराधिप (सं० पु०) देवताओंके प्रभु, इन्द्र।

अमरापगा (सं० स्त्री०) देवताओंकी नदी, गङ्गा।

अमरालय (सं० पु०) देवताओंका भवन, स्वर्ग।

अमराव (हिं० पु०) अमराई देखो।

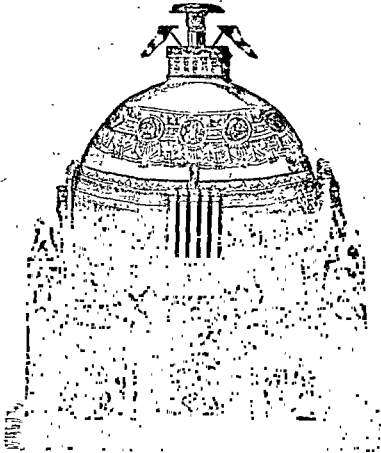
अमरावती (सं० स्त्री०) अमरा देवा धियन्ते यस्याम्, अस्तार्ये मत्पुं मस्य वकारः मती दीर्घः। १ इन्द्रालय। इस नगरकी विश्वकर्माने निर्माण किया था। यह सुमेरु पर्वतपर अधिष्ठित है। यहाँ जरा नृत्य, शोक-ताप कुछ भी नहीं होता। इसके सुरभि भेनु, ऐरावत हस्ती, उच्चैःश्रवा अश्व, अप्सरा और नन्दन-काननवाले मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष एवं हरिचन्दन—यह पांच वृक्ष ही विशेष प्रसिद्ध हैं। अलकानन्दा इन्द्रपुरीके भीतर होकर बहती है। देवराज इन्द्र यहाँके अधीश्वर हैं। बोधारे वगैरहके पास ‘इन्द्रालय’ नामक एक स्थान है। किसी किसीका अनुमान है, कि वही प्राचीन इन्द्रालय वा अमरावती होता और अलकानन्दाका ही आधुनिक नाम अक्सम् है। वेद और पुराणमें देखा जाता है, कि पहले असुरोंने इन्द्रसे कई बार विरोध किया था। मालम् होता है, इन्द्रसे राजधानी आदि चीज लेनेके लिये ही वह सब बार बार युद्ध करती रहे।

२ मन्द्राजवाले गुप्तूर जिलेका एक सुप्राचीन नगर, जो अक्षां १६° ३५' उ० और द्राधि० ८०° २४' पू० क्षणा नदीके दक्षिण-तटपर अवस्थित है। अमरावतीके स्तूप और मरमर पत्थरवाले रेलिङ्गकी मूर्ति प्राचीन-भारतीय शिल्पका अच्छा आदर्श है। इसे देखकर २००० वर्ष पहलेके धरणिकोट नगरका स्मरण आये गा। कोई सुचारुरूप खचित स्तम्भ नगरके दक्षिण खड़ा था, जिसका आधार सन् ई०के १२वें शताब्द तक होते रहना। किन्तु सन् ई०का १८वां शताब्द लगते समय किसी स्थानीय जमीन्दारने अपना गृह बनवानेको सस्ता मसाला पानेके लालच उसे तोड़वा डाला। कितने ही पुरातत्त्वानुसन्धायियोंने इसकी मूर्तियोंका नक़्का उतारा, जिनका अब चिह्नतक मिट गया है। फिर भी अनेक स्तूपकी सुन्दर मूर्तियां छटिशमिउजिअम् और मन्द्राजके अजायब घरमें रखी हैं।

शिलालेखके अनुसार अमरावतीके प्रथम स्तूप सन् ई०से २०० वर्ष पहले बनाये गये थे। किन्तु अधिकांश

रूप पीछे धर्याम् कुपानोके समय तैयार हुये। कुपानोका राज्य भमरावतीमें न रहा, यहाँ चम्बुवंग अपना आधिपत्य जमाये था। चम्बुवंगके जो दो शिलालेख मिले, उनमें समझते हैं—रूप और उद्यका सुखचित रेनिङ्ग सन् १५० और २०० ई० के बीच बना था। सर्वोत्तम रेनिङ्ग या कटहरका व्यास ६४ गज, परिधि २०० गज और उच्चता कोई ५ गज रही।

उमके चन्द्रप्रत्यङ्गमें सुखचित फलक मने, जिनमें फलोंके गुच्छे निये मनुष्य बने और दूसरे माना प्रकार पाकार खिंचे थे। स्तम्भतलमें हास्यप्रद वादक और पगका चित्र रहा। भीतरकी और सजावट न्यादा थी, बाह्य पुराणका प्रत्येक विषय सुचित था। इसीतरह १६८०० वर्गफीट तलके संस्थानका प्रत्येक भाग सुचित नाना-साधनसे भरा रहा।



भमरावतीमें एक बूडाका चित्र

यहाँ भमरावतीरूपकी एक बूडाका चित्र दिया गया है। चित्रके मध्यस्थलमें एक मूर्ति है। उसके मस्तक पर नागकथा सुशोभित है। सामने चार भक्त प्रणाम कर रहे हैं। नीचे दोनों ओर कई मनुष्य गिरपर कुह रक्ष लिये जाते हैं। ऊपर दोनों ओर सिंह तथा और भी कई मूर्ति हैं। बूडाके गिखरपर चक्र विद्यमान है।

भमरावतीके दूसरे भी कई स्थानमें नाग, चक्र और हथकी प्रतिमूर्ति देखनेमें आती है। किसी स्थानपर

पत्थरके मध्यस्थानमें एक नाग, उसकी दाहिनी ओर एक हथक एवं ऊपर और बाईं ओर चक्र बना है।

साक्षात् रत्न या कटहर भी बुरे नहीं मगते। किन्तु भमरावतीके कटहर सबसे बड़े और सुचिद्रित है। देवालयकी नीवपर बालक और नाना प्रकारके पंगकी मूर्ति खुदी है। स्तम्भके नाचे-ऊपर चर्च चन्द्र और मध्यमें पूरुषेन्द्रकी चालति है। ममप स्थान नाना प्रकार चित्र विचित्र बना है। द्वारके निकटवर्ती स्तम्भका चित्र-ध्वज प्रकार है। यह

स्थानमें कोई राजा सिंहासन पर बैठे हैं। कटिमें कपड़ा लिपटा, गिरपर पगड़ी बंधी और पगड़ोके ऊपर मणिमय चन्द्रमा लगा है। दोनों हाथोंमें सोनिके कड़े हैं। शरीरमें सिवा कटिके और कर्णों भी वस्त्र नहीं देखते। दाहनी और और पीछे समासदृश्य हैं। उनका वस्त्राभरण भी राजाके सदृश्य ही है। एक मन्त्री हाथ जोड़कर राजासे कुछ कह रहे हैं। राजा मन लगाकर उनको बात सुनते हैं। सामने अस्त्रधारी प्रहरी हैं। उनके सम्मुख युद्धसज्जा लगी है। पैदल सिपाही अस्त्र उठाये हैं। कोई सैनिक घोड़े और कोई हाथीपर सवार है। अजगड़ा गुफामें जो मूर्ति खुदीं, उनमें कितनोंहीके शरीर कुरते, चपकन आदि वस्त्रसे ढंके और वह यूनान और ईरानके आदमी-जैसे जान पड़ते हैं। परन्तु अमरावतीमें किसीके शरीरपर वस्त्र नहीं मिलता और न कोई विदेशी ही मालूम देता है।

इसमें सन्देह नहीं, कि वैभव-समय अमरावतीके स्तूप आकार-प्रकारमें अपूर्व थे। पुराकीर्ति-वेत्तायोंने इसके सम्बन्धमें लिखा है,—

“Study of Plate XXXIII, reproducing the best preserved of such slabs, will dispense with the necessity for detailed description, and at the same time give a good notion of what the appearance of Amaravati stūpa must have been in the days of its glory. When fresh and perfect the structure must have produced an effect unrivalled in the world”. *

भारतय शिल्पकारोंने रेलिङ्गका अङ्गुल भर स्थान भी खानी नहीं छोड़ा। दिनको सूर्यकी प्रभा और रातको शुभ्रदवासे चैकड़ो प्रदीपके प्रकाशसे जब मरमर चमकता, तब उसे देख कर लोगोंकी आंखमें सकाचौंध लग जाती थी। चन्द्रकान्तमणिका आकार सिंहलके आदर्श-जैसा रहा। सिंह और कुछ दूसरे खचित आकार प्रयोक्ताले समयके असुरीय और ईरानीय

नमूनेसे मिलते थे। वास्तवमें इस शिल्पको देखकर शिल्पकार और चित्रकारकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करना पड़ेगी। पूजाके स्तम्भका ११ फीट व्यासवाला दुन्दुभि कुछ दिन छुये अमरावतीसे खोदकर निकाला गया था। उसके आधार पर जो स्त्री-पुरुष खड़ा, उसकी मूर्ति अतीव सुन्दर आयी और कमलके फूलकी आकृति भी खूब ही बनी है।

अमरावतीमें कुछ मूर्ति प्रयत्न भी मिली थी। मूर्तिका वस्त्र गुप्तकालसे नहीं, गन्दार और अजगड़ेकी १० वीं शताब्दीके कार्कायसे मिलता है।

अमरावतीकी मूर्तिको देखते हो पणजोवन, पलङ्कार-धारण और मनुष्यकी गतिका चित्र सामने आ जायेगा। शिल्पकारोंने बड़ी ही खतन्धता और पटुतासे काम किया है।

कितने ही अनुमान करते हैं, कि सन् ३१८ ई०में दन्तपुरीसे लड़ा जाते समय बुद्धका दांत अमरावतीके भीतर होकर निकला था। उसी समय यहाँका बाहरवाला रेलिङ्ग बना। भीतरवाला रेलिङ्ग सम्भवतः सन् ६०के पहले दूसरे शताब्द सम्पूर्ण हुआ होगा। उसके कई पत्थरमें पहिले न मालूम और क्या क्या खोदा था। इसीसे जान पड़ता, किसी पुरातन अष्टालिकाको तोड़कर यह नवोन देवालय निर्मित हुआ है।

सन् ६१८ ई०में चीन-परिव्राजक यूयङ्-चुयाङ्ग यहाँ आये। उससे प्रायः सौ वर्ष पूर्व यह स्थान जनशून्य हो गया था। फिर भी उन्होंने अमरावतीकी बड़ी प्रशंसा की है।

अमरावतीकी प्राचीनकीर्तिके सम्बन्धपर निम्न-लिखित ग्रन्थमें विस्तृत विवरण दिया गया है,—

Fergusson's *Tree and Serpent. Worship*, 2nd ed. (1873); Fergusson's *History of Indian and Eastern Architecture* (2nd ed. by Burgess, 1910), Vol. I, p. 119ff; *Annual Report of the Archaeological Survey of India*, 1905-6; Vincent A. Smith's *History of Fine Art in India & Ceylon* (1911), pp. 148-156.

* Vincent A. Smith's *History of Fine Art in India and Ceylon*, (1911), p. 150.

३ बरार प्रान्तका एक जिला। - यह अक्षा० २०° २५' एवं २१° ३६' ४५" उ० और द्रावि० ७७° १५' ३०" तथा ७८° १८' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। अमरावतीसे उत्तर बैतूल जिला, पूर्व वर्धा नदी, दक्षिण वासिम एवं जन जिला और पश्चिम अकोला तथा एलिचपुर जिला पड़ेगा। इसका क्षेत्रफल २७७८ वर्गमील होता है।

अमरावती जिला समुद्रतलसे ८०० फीट ऊँचे समान भूमिपर बसा है। इसकी भूमि उत्तरसे दक्षिणकी ढली है। अमरावती और चांदपुरके बीच का पहाड़ पड़ता, उसमें हवादि बहुत कम उपजता है। इस जिलेकी चिकनी और काची मट्टो निहायत जरूरी न निकलेगी। पूर्वा नदी अमरावतीके पश्चिम बहती है। जङ्गलमें शिकारकी कोई कामी नहीं देखते।

शिक्षण—पुराणमतसे कितने ही बरहारी रक्षिणीका गार्भर्ष विवाह देखने अमरावती आये थे। वह अन्तमें यहाँ बसे और देयको बरार कहने लगे। यहाँ कई शताब्द राजपूतोंका राज्य रहा था। सन् १२८४ ई०में दिल्लीवाले बादशाह फ़ोरोजशाह गिलजायीके आमाद अलाउद्दौनने बरार सहित अमरावतीपर अपना अधिकार जमाया। औरङ्गजेबके मरने बाद दक्षिणके अधिनायक चीनकलोक खानने निजाम-उल-मुल्ककी उपाधि ग्रहणकर सन् १७२४ ई०में महाराष्ट्रसे बरार छीन लिया था। सन् १८५३ और १८६१ ई०के सन्धिप्रदानुसार अंगरेजोंने हैदराबादके निजामकी समझ बरार सौंप अमरावती और कुछ दूसरे जिले अपने अधीन किये।

हाथ—रुयी ही यहाँ अधिक उपजती है। यह दो किस्मकी होती, - बंदी और गारी। बंदीको जूनके अन्त होते और नवम्बरमें चुनते हैं। किन्तु गारी बंदीसे दो सप्ताह पीछे पूर्ण उपत्यका की गहरी काली मट्टीमें बोयी जायेगी। यह १५ थीं दिसम्बरसे पहले प्रायः तैयार नहीं होती। सब्जोमें आलू खराब, किन्तु रतालू अच्छी निकलती है।

शिल्पनिष्पा—सिवा मोटे कपड़े और घराल

कामको लकड़ीकी चीजके और कुछ यहाँ नहीं बनता। पुराने समय शोलापुरमें रोगमका व्यवसाय होता था।

आपार—प्राचीन समय अमरावतीसे बेल गाड़ोपर रुयी टाई-सी कोस दूर मिर्जापुर विकने भेजी जाती थी। आजकल रेलवे द्वारा यह बम्बई पहुँचती और अमरावती नगरमें कपास साफ करनेकी कितनी ही कल चलती है। इस नगरमें नागपुरसे ममाला, नमक, विलायती कपड़ा, बढ़िया सूत, दिल्लीसे चीनी, गुड़, पगड़ी और बनारससे सोनेको गोटा-किनारी संगायो जाती है। जिलेका मोती कारवार, कुन्दनपुर, भीलटेक, अमरावती नगर, मोरसी, चांदपुर, मुर्तजापुर और बन्देनेमें साप्ताहिक बाजार लगनेसे चलता है।

४ अमरावती जिलेका एक तहसील। इसका क्षेत्रफल ६७२ वर्गमील लगता है।

५ अमरावती जिलेका म्युनिसिपल नगर और डेड क्वार्टर। यह नगर अक्षा० २०° ५५' ४५" उ० और द्रावि० ७७° ४७' ३०" पूर्वपर अवस्थित है। बन्देनेसे निकल तीन कोसकी शाखा-रेल इसे ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला-रेलवेके साथ मिला देती है। इसको चारो ओर पत्थरकी चहारदोवार घनी जो २०से २६ फीट ऊँची और सवा दो मील घेरेमें पड़ती है। उसमें पांच फाटक और चार खिड़की लगी हैं। सन् १८०७ ई०में निजाम सरकारने पेन्थारियोंसे धनो सौदागरोंको बचानेके लिये यह दीवार बनवायी रही। एक खिड़की खूबारी इसलिये कहलायी, कि उसके पास सन् १८१८ ई०में सात-सौ भादमी कट मरे थे। शहरका पानी ठोका नहीं, बहुतसे कुये खारी पड़े हैं। यहाँ भवानी वा अम्बा-मन्दिर बहुत अच्छा बना है। लोग कहते, कि उस मन्दिरकी बने हजार वर्षे होते हैं। यह अपने रुईवाले व्यापारके लिये प्रसिद्ध है। सन् १८४२ ई०में किसी व्यापारीने एक साख गाड़ी रुयी अमरावतीमें कलकत्ते पेंदल भेजी थी।

अमराह (सं० ह्री०) देवदाह।

अमरिष्णु (वै० त्रि०) अमर, न. मरनेवाला ।
 अमरी, अमरा देखो ।
 अमरु- (सं० पु०) १ अमरुशतक-रचयिता । यह
 कोई राजा रहे । महाराष्ट्रमें देखो ।
 अमरुत (सं० त्रि०) वायुरहित, निष्कम्प, बेहवा,
 खमीर ।
 अमरुफल (सं० स्त्री०) उत्तरदेशप्रसिद्ध फल, जो
 फल शिमाली सुल्कमें मगहर हो । इसका गुण
 इसतरह लिखा है,—
 "अमरोष फलं शीतं मलद्रवकरं मतम् ।
 सारं दाहं रक्तपित्तं कान्तलां मृतकच्छुकम् ॥ (वैद्यक-निघण्टु)
 मृतपमरीष इतीति अविभिः परिकीर्तितम् ॥"
 अमरुत (चिं० पु०) अमरुद, सफरी । इसे मध्य-
 भारत एवं मध्यप्रदेशमें जाम या बिही, बङ्गालमें प्यारा,
 दक्षिणमें पेरुफल या पेरुक, नेपाल-तराईमें रूखी और
 तिब्बतमें लताम कहते हैं । (Psidium Guyava)
 इसका तना कमजोर, टहनी पतली और पत्ती
 पांच-छः अङ्गुल लम्बी होगी । फल कच्चा रहनेसे
 वासला और पकनेपर मौठा लगता है । उसमें
 छोटे-छोटे कड़े घीज रहेंगे । फलका गुण रेचक है ।
 अमरुतकी पत्ती, बकला चमड़ा रंगने और सिम्भानिमें
 लगेगा । पत्तीके काढ़ेसे जुझा करनेपर दांतका
 दर्द और वह अफीमके साथ मदकमें भी
 पड़ती है । इलाहाबादका अमरुत भारतमें
 प्रसिद्ध है ।
 अमरुद, अमरु देखो ।
 अमरेज्य (सं० पु०) देवगुरु हृदयस्यति ।
 अमरेन्द्रतह (सं० पु०) १ देवदाहृदय । २ नियुंण्डी
 धूप ।
 अमरेय (सं० पु०) १ शिव । २ इन्द्र ।
 अमरेखर, अमरेय देखो ।
 अमरेया, अमरा देखो ।
 अमरोत्तम (सं० त्रि०) देयतावर्गमें सबसे अच्छा,
 जोः फुरित्तमें सबसे बढ़कर हो ।
 अमरोपम (सं० त्रि०) देवताके सदृश, फुरित्त-
 जैसा ।

अमर्त (वै० त्रि०) अमर, जो कभी मरता न हो ।
 अमर्त्य (सं० त्रि०) मर्त स्वार्थे यत्, नञ्-तत् । मरण-
 शून्य, जो मर न सकता हो ।
 अमर्त्यभुवन (सं० स्त्री०) देवतावर्गका लोक, स्वर्ग,
 विद्विष्य ।
 अमर्दित (सं० त्रि०) अनिपतुपित, अनभिभूत, जो
 दला-मला न गया हो, मातहत न बनाया हुआ, जो
 पेरने जुचला न गया हो ।
 अमर्धत् (वै० त्रि०) अर्द्धिसक, जो चोट न चलाता
 हो ।
 अमर्मजात (सं० त्रि०) दृढ अङ्गसे जलात, जो मज्ज-
 वृत अङ्गसे न पैदा हुआ हो ।
 अमर्मन् (वै० त्रि०) शरीरमें अग्रधान, अनिरहित,
 जो जिम्हमें खास न हो, वेगाठ ।
 अमर्मविधिन् (सं० त्रि०) प्रधान अङ्गका अर्द्धिसक,
 मृदु, खास अङ्गमें चोट न देनेवाला, सुलब्धन ।
 अमर्याद (सं० त्रि०) नाशित मर्यादा सीमा सम्मानो
 यस्य यत्र वा, बहुव्री० गौणे ङ्ङ्लः । सीमारहित,
 सम्मानविहीन, बेहद, बेदृज्जत ।
 अमर्यादा (सं० स्त्री०) १ सीमारहित्य, वाजिव
 हृदका लांघ जाना । २ सम्मानशून्यता, बेदृज्जती ।
 ३ उचित अर्चनाका उल्लङ्घन, वाजिव परस्तिग्रका न
 करना । ४ प्रागल्भ्य, निर्लज्जता, अतिप्रसङ्ग, अविनय,
 वैशर्म्य, गुस्ताखी ।
 अमर्य (सं० पु०) मृप चान्ती घञ्-तत् । १ क्रोध,
 अक्रमा, गुस्सा । 'कोपकोषामर्य' रोपप्रतिवा । (अमर) २ अधैर्य,
 वैसवरी । ३ सहनशीलताका अभाव, बरदाशका न
 होना । ४ साहस, हिम्मत । ५ अलङ्कारमतसे व्यभि-
 चारी भाव विशेष । (त्रि०) ६ असहिष्णु, बरदाशत
 न करनेवाला ।
 अमर्षज (सं० त्रि०) अधैर्य वा छृणासे उत्पन्न, जो
 वैसवरी या नफरतसे पैदा हुआ हो ।
 अमर्षण (सं० त्रि०) मृप-लुप, ततो नञ्-तत् ।
 १ क्रोधो, गुस्सावर । २ असहन, बरदाशत न करने-
 वाला । (स्त्री०) भावे लुगट् । ३ क्रोध, गुस्सा ।
 ४ अचमा, नाराजी ।

अमर्षवत्, अमर्षित देखो।

अमर्षहास (सं० पु०) क्रोधका हास्य, गुच्छेकी हंसी।

अमर्षित (सं० त्रि०) मृप-क्त, ततो नञ्-तत्। क्रुद्ध, चमारहित, गुस्सावर, माफ न करनेवाला।

अमर्षिन् (सं० त्रि०) मृप-षिनि, ततो नञ्-तत्। क्रोधो, गुस्सावर।

अमर्षी, अमर्षित देखो।

अमल (सं० स्त्री०) मृज्यते शोध्यते, मृजूप शब्दो कल, ततो नञ्-तत्। अथवा अम-कलच्। १ अम्र, अवरक। २ समुद्रफेन। ३ कर्पूर, कपूर। ४ रोप्य माचिक, रूपामाखी। ५ कतकवृक्ष, निर्मली। ६ गन्धद्रव्यविशेष। ७ पवित्रता, पाकीजगी। ८ परमात्मा। (त्रि०) नास्ति मलमस्य, नञ्-वहुमी०। ८ निर्मल, साफ। १० दोषरहित, बेदोष। (च० पु०) ११ व्यवहार, वरताव। १२ शासन, हुकूमत। १३ उन्माद, नया। १४ व्यसन, आदत। १५ प्रभाव, असर। १६ समय, वक्तु।

अमलगर्भ (सं० पु०) बोधिसत्त्वविशेष, किसी बोधि-सत्त्वका नाम।

अमलता (सं० स्त्री०) १ निर्मलता, सफाई। २ दोष-राहित्य, बेदोषी।

अमलतास (हिं० पु०) आरग्वध, गिरिमाला, राज-वृक्ष, कितवाली, करकच, भावा, कथ-उल-हिन्द, खियार-चंवर। (Cassia Fistula)

यह वृक्ष हिमालयके निम्न भागमें उपजता, मध्यम परिमाण-विशिष्ट एवं पतनशील होता, और भारत तथा ब्रह्मदेशके भीतर-बाहर ३००० फीटकी उच्चता-पर बढ़ता है। खासिया पहाड़से पेशावर तक हिमालयके अञ्चलमें निम्न पार्वत्य प्रदेशपर इसे अधिक देखें और छोटा-नागपुर तथा मध्यभारतसे बम्बईतक फैला पायेंगे। यह प्रधानतः छोटा और फौलनेवाला वृक्ष रहता, चं'चाईमें २० फीटसे अधिक नहीं पड़ता, मार्चमें पत्ती भड़ जाती और चमकीला पीला फूल, ताजे शरी पत्तीके लम्बे हिलनेवाले गुच्छे साथ ही अप्रैलमें निकलता है। किन्तु कभी-कभी दुबारा शरत्में फूल खिल जायेगा। इसकी लम्बी, भुरी,

हिलनेवाली फली या छिया लम्बाईमें एक या डेढ़ फीट पड़ती और जाड़ेमें पकती है।

उलसे जो लाल अर्क टपकता, वह कड़ा पड़नेसे गोंद-जैसा बन जाता है। उसे साधारणतः कमर-कस कहेंगे। उसका अमृतहस्त प्रयोग मामूली लोग नहीं जानते, किन्तु उसे सद्बोधनशील बताया करते हैं।

अमलतासका बकला नमड़ा रंगनेके काम आता है। बङ्गालके लोहारडायी जिलेमें बकलीसे हलका-लाल रङ्ग बनाते और टिकाऊ रखनेके लिये उसमें फिटकरी डाल देते हैं। दो छटांक बकलीको दो तोले फिटकरीके साथ उबालेंगे। रङ्ग अनारकी छाल डालनेसे गहरा पड़ जाता है। युक्तप्रदेशसे अमलतासका बकला कुछ बाहर भेजा जाता है।

फलका सार या गूदा और जड़का बकला दवामें पड़ता है। घराऊ दवामें गूटेकी सबसे साधारण और लाभदायक विरेचन समझेंगे। वह मृदु रेचनकी भांति भी व्यवहृत होता है। फलीको उबालकर गूदा निकालने और बादांमवाले तेलके साथ शरीर पर मलनेसे वह शिशु और गर्भवती स्त्रीके लिये निराशाघ विरेचन ठहरिगा। स्वल्प मात्रामें रेचक और अधिक मात्रामें उसे विरेचक देखते हैं। वह मृदु-रेचक और वचःस्त्रलका प्रतिबन्ध मिटानेको लाभदायक होगा। वह प्रायः इसलीके साथ मिलाया और उस दवामें शुष्क पित्तके लिये उत्तम विरेचन समझा जाता है। बाहरसे उसको गठिये और चिनक-बाईपर लगायेंगे। कहवैके जोहरमें भी वह पड़ता है। फूलका गुलकन्द बनाया और वह डुबारा छोड़नेवाला समझा जायेगा। छाल और पत्ती दोनों को कूट-पीस और तेल डालकर फोड़ेपर लगाते हैं। चर्मरोग—प्रधानतः दह्रपर भी उसे बाहरसे रखेंगे। सन्तान इसकी पत्तीका काढ़ा रेचककी भांति व्यवहार करता है। मूल प्रवल विरेचक होगा। सिंहलवासी वृक्षके प्रत्येक भागको विरेचन बताता है। पञ्चाङ्गमें इसका मूल धातु पुष्ट करने और डुबारा छोड़नेको खिलायेंगे। इसकी पीजसे वमन भी कराते हैं।

सन् ई०के १३वें शताब्द सेविज्ञेवाले अमल
अमलतासिया इका गुण लोकोकी समभा-सुभा दिया
या, उसी समय फलके औषधमें व्यवहृत होनेकी
यात उठी।

सुनी हुयी पत्ती भोजनके साथ मृदु-रेचककी भांति
खायी जाती है। सन्ताल फूलकी अधिकतर खाद्य-
द्रव्यकी भांति व्यवहार करेगा। फलीका गूदा
बङ्गालमें तम्बाकूकी जायकेदार बनानेके काम
आता है। सारकाष्ठ विस्तीर्ण और अश्वत्थर-काष्ठ धूसर
या हरिद्राभ रक्तवर्णसे दृष्टक-रक्तवर्ण बदलते रहता है।
काष्ठ अधिक खायी हो, किन्तु साधारणतः यद्ये
विस्तीर्ण परिमाणका न पड़ेगा। इससे उत्तम स्तम्भ
बनता और शकट, कृपियन्त्र एवं शालिसुसलके
लिये भी प्रशस्त ठहरता है।

अमलतासिया (हि० वि०) अमलतासके फूल-जसा,
हलके-पीले रङ्गवाला, गन्धकी, जिसका रङ्ग अमलतासके
फूल-जैसा चमके।

अमलदारी (फा० स्त्री०) १ हृक्कृत, दण्डू, शासन,
अधिकार। २ कनकृत, मालगुजारी। रुहेलखण्डमें
कोई कृषि ऐसी होती, जिसमें कृषककी उपजके तुल्य
कर देना पड़ता है।

अमलदोसि (सं० पु०) कपूर, काफूर।

अमलपट्टा (हि० पु०) कर्मचारीकी कार्यमें नियुक्त
करनेके लिये दिया जानेवाला अधिकारपत्र, जो दस्ता-
वेज कारिन्देको काममें लगानेके लिये दी जाती हो।

अमलपतत्रिणी (सं० स्त्री०) अमलपतत्रिन् देखो।

अमलपतत्रिन् (सं० पु०) पद्यात् पतनात् पतत्रः पत्रः
सोऽस्यास्तीति; अमलशासी पतत्रो चिति, कर्मधा०।
वन्यकुङ्कुट, जङ्गली हंस। वन्यकुङ्कुटका पर देखनेमें
आतिसुन्दर लगता, उसीसे यह नाम पड़ा है।

अमलपतत्रो, अमलपतत्रिन् देखो।

अमलपत्रो (सं० पु०) हंस।

अमलवैत (हि० पु०) अमलवैतस्, चूक, अश्वरी,
चूकपालक, सलूनो, इमाक, तुर्बह। (Runex
Vesicarius) यह हृष प्रतिवर्ष फलता, पीछे मर
जाता और ह्रःसे धारह हृषतक जंघा होता है। इसे

प्रधानतः पश्चिम-पञ्चाप, लवणपर्वत और सिन्धुके उस
पारवाले पहाड़ पर उपजते देखेंगे। भारतके दूधरे
प्रदेशमें भी यह मिलता, किन्तु वहां से दिया जाता
है। लताके रसकी भारतवासी ग्रीक, रेचक और
कुष्ठ-कुष्ठ मूलवर्धक समझते हैं। यह दन्तपीडा-
निवारणके काम आये और अपने रेचक गुणसे वमनकी
रोकेगा। पूर्ण मात्रामें अमलवैतस कोष्ठप्रदाह रोकने
और बुभुक्षा बढ़ानेकी खिलाया जाता है। विदाह
कृमि और हृदिकका दंश दूर करनेके लिये कुचली
हुयी पत्तीकी लेयी चमड़ेपर लगायेंगे। पीजमें भी
वेसा ही गुण रहता, फिर संघर्षणमें भ्रूणकर
दिया जाता है। मूलसे भी औषध बनेगा। लता
भारतके भीतर-बाहर सबजी की तरह लगायी
और कच्ची-पक्की दोनो तरह खायी जाती है। प्रायः
यह कूपके समीप ढेरका ढेर जग और साल भर
बराबर मिल सकता है। इसकी सूखी टहनो हाटमें
बिकेगी। यह खट्टी रहती और पाचक पूर्णमें
पड़ती है। अश्वत्थस देखो।

अमलमणि (सं० पु०) १ स्फटिक, विज्ञौर। २ कर्पूर-
मणि, कर्पूरगन्धमणिविषय, जिस अवाहरमें काफूर-
जैसी खुशबू आये।

अमलरत्न (सं० स्त्री०) स्फटिक, विज्ञौर।

अमला (सं० स्त्री०) नास्ति मलं दोषः क्रोऽपि
यस्याः, बहुव्री०। १ लक्ष्मी। २ भूम्यामलकी,
पाताल-भांवला। ३ सातलाहच, कोई भाड़ो।
४ नाभिनाली, तौंदीकी डोरी। ५ आमलकी, भांवला।
(अ० पु०) ६ राजकर्मचारी, सरकारी नौकर।
प्रधानतः न्यायालयके कर्मचारियोंको अमला कहते हैं।

अमलाश्रुटा (सं० स्त्री०) भूधात्री, पाताल-
भांवला।

अमलाकन् (सं० पु०) अमलो दोषरहितः आत्मा
यस्य, बहुव्री०। १ विग्रहान्तःकरण योगी, जिस
फकीरका दिल साफ रहे। (द्वि) २ विग्रहान्तःकरण,
साफ दिलवाला।

अमलानक (सं० स्त्री०) अम्लानपुष्प, सदा-बहार,
गुल-श्यादाव।

अमलिन (सं० वि०) निष्कलङ्ग, निर्मल, शुद्ध, वेदाङ्ग, वैश्रल, साफल।

अमली (हिं० स्त्री०) १ अम्बिका, इमली। २ कर्मई, गोरूवटी। यह भाङ्गादार पेड़ हिमालयके दक्षिण गढ़वालसे आसामतक उत्पन्न होता है। (अ० वि०) ३ अमलसे तक्षक रखनेवाला, जो व्यवहारमें आता हो। ४ अमल करनेवाला, कर्मयोगी। ५ नशेवाज, जो मादक द्रव्य खाता हो।

अमलूक (हिं० पु०) वृचविशेष, कोई पेड़। यह अफगानस्थान, बलूचिस्थान, कश्मीर और पञ्जाबसे उत्तर हिमालयकी पहाड़ीपर उपजता। इससे जो कितना ही रस टपकता, वह जमकर गोंद-जैसा बन जाता है। फलको कच्चा-पका दोनो तरह खायेंगे। सूखा फल काबुली लाया करते हैं। इसे मलूक भी कहेंगे।

अमलोनी (हिं० स्त्री०) लोनिया, नोनी। यह एक तरहकी घास है। पत्ती छोटी, मोटी और खड़ी रहेंगी। इसको जो तरकारी बनती, उससे भूख बढ़ती है। रसको निचोड़ कर पीनेसे धतूरेका ज्वर उतर जायगा। बड़ी पत्तीकी अमलोनी कुलफा कहलाती है।

अमलक (हिं० वि०) सुतलक, समूचा।

अमवत् (सं० वि०) अमा सद्यर्था व्ययम् मत्तुप्लवः। १ अशुद्धाय, वैमदद। अथवा अम रोगस्ततो मत्तुप्ल। २ रोगवान्, बीमार। अथवा आत्म-शब्दस्य वा अमभावः। ३ यत्नवान्, तद्वीर-सङ्गनेवाला। ४ भीषण, खूंखार। ५ शक्तिशाली, ताकतवर। (अथ०) ६ भीषणरूपसे, जोरमें।

अमवती (सं० स्त्री०) अमवत् देवी।

अमवा—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलेका एक ग्राम। यह गोरखपुर शहरसे ३४ कोस दूर पड़ेगा। इसमें प्रधानतः नीच जातिके हिन्दू किसान रहते हैं। बड़ी गण्डक नदीके किनारे यह बसा है। नदी अपनी जगह छोड़ कुछ मील दूर पूर्वकी ओर बहने लगी है। किन्तु ग्राम और नदीके बीचकी जगह कभी-कभी बाढ़ आनेसे उपजाऊ बन जाती है।

अमवान् (सं०-पु०-स्त्री०) अमवत् देवी।

अमविष्णु (सं० वि०) विभिन्नदिक् गमनयोग, निम्नोच्च, सुखतलिङ्ग तर्कको ज्ञानेवाला, ज्ञान-नीचा।

अमस (सं० पु०) अम-असच्। १ काल, वक्त। २ रोग, बीमारी। ३ निर्बोध, बेवकूफी। ४ अज्ञानो व्याप्ति, जिस शख्सको अज्ञ न रहे।

अमसूल (हिं० पु०) वृच-विशेष, कोई दरखत। यह पतला होता और डाल नोचकी भूक जातो है। इसे दक्षिणको और कोकण, कनाड़े और कुर्गके जिलेमें उत्पन्न होते देखेंगे। नोलगिरिपर इसकी प्रतिष्ठि रहती है। फलको 'त्रिन्दाथ' कहें और खायेंगे। इसके बोजका तेल बहुत प्रसिद्ध है। बाजारमें वह जमो हुये सफेद लम्बो पत्ती या टिकिये-जैसा बिके और थोड़ी ही गर्मी पड़नेसे पिघल जायेगा। उसका गुण वर्धक और सङ्कोचक होता है। सूजन वगैरहपर वह मला जाता है। उससे मरहम भी बनता है।

अमसृण (सं० वि०) कठोर, कठिन, सख्त, कड़ा, जो मुलायम न हो।

अमस्ताक (सं० वि०) मस्तकहोन, अधिरस, धेसर, जिसके सर न रहे।

अमसु (सं० स्त्री०) दधि, दही।

अमहत (सं० वि०) रोगादिसे पोहित, जिसको बीमारो वगैरहसे घोट पड़चो, हो।

अमहन् (सं० वि०) रोगादि निवारक, जो बीमारो वगैरहको मिटता हो।

अमहर (हिं० पु०) कच्चे और छिले हुये आमकी सूखी फांक। इसे दाल और तरकारीमें डालते हैं।

अमहल (हिं० वि०) १ भवन-विहोन, वैमकान्, जिसके पास घर न रहे। २ व्यापक, समया हुआ।

अमा (सं० अथ०) मा-का मा, न मा। १ सप्त, साय। २ निकट, नजदीक। ३ भवनमें, मकानपर। (स्त्री०) ४ अमावस्या, अमावस। ५ चन्द्रकी सोलह कला। ६ महाकला। (पु०) ७ आत्मा, रुह। ८ गृह, मकान, घर। ९ इहलोक। १० पृथके नेत्रकी तीरी। इसे अशुभ समझते हैं। (वि०) ११ परि-

माणशून्य, बेमिक्त्दार। १२ अपक, कच्चा, जो पका न हो। १२ दुर्भाग्य, कमबख्त।

अमांस (सं० त्रि०) नास्ति मांसं यस्य, बहुव्री०।

१ दुर्बल, लागर, जिसके जिभपर गोश न रहे। (क्लो०)

२ मांस भिन्न अन्य वस्तु, जो चीज गोस्त न हो।

अमांसोदनिक (सं० त्रि०) मांसविशिष्ट शालि-भोजनसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो गोस्त मिले भातसे तपस्युक्त न रखता हो।

अमास (वे० त्रि०) मिलित, सहागत, मिला हुआ, जो साथ-साथ आया हो।

अमाघोत (हिं० पु०) शालिविशेष, किसी किष्मका चावल। यह अग्रहायणमें प्रस्तुत हो जाता है।

अमाजूर, अमाजूर (वे० स्त्री०) १ यावज्जीवन गृहनिवास, मकानमें ही बुढ़ हो जानेकी हालत।

२ माता-पिताके साथ गृहमें रहते हुये पतिका वियोग, अपने मा-बापके साथ एक ही मकानमें रहते हुये श्वादिन्दकी जुदायी।

अमात् (सं० त्रि०) १ अमित, अपरिमित, अप्रती-मान, वैश्रन्दाज, बेतील, जिसको पैसायश न हो सके। (अर्थ०) २ निकटमें, पड़ोससे।

अमातना (हिं० क्लि०) निमन्त्रण देना, बुला भोजना, तलब करना।

अमातापुत्र (सं० पु०) माता और पुत्र दोनोंका अनन्तित्व, मा और लड़के दोनोंका न रहना।

अमाटक (सं० त्रि०) हीनमाटक, गृतमाटक, वैसादर, जिसके मा न रहे।

अमाटभोगीण (सं० त्रि०) माताके व्यवहारमें न आने योग्य, जो माके काम आने काबिल न हो।

अमात्य (सं० पु०) अमा सह विद्यते अस्य त्यप्।

१ अभिन्न गृहका परिजन, हमखाना, हममसकन, जो आदमी एक ही मकानमें रहता हो। २ मन्त्री, सचिव, वकील, दीवान्। जो धर्मज्ञ, प्राज्ञ, जितेन्द्रिय, सत्-कुलीन, और कार्यकुशल रहता, शासकार उसीको राजाके अमात्य योग्य कहता है।

“अमात्यसुखं धर्मज्ञं मार्गं दानं कुनीडतम्।

श्यापयेदसने तस्मिन् विप्रः कायपथे शशाङ्कः” (मनु ७।१६१)

अमात्र (सं० पु०) मा-उण्-त्रन्-टाप्; नास्ति मात्रा मानं परिच्छेदो वा यस्य, नञ्-बहुव्री० गौण ऋत्विः। १ तुरीय ब्रह्म, परमात्मा, जिसा चीजकी कोई माप न पड़े। (त्रि०) २ असौम, वेहद, जिसका क्षोर न मिले। ३ असम्पूर्ण, जो समूचा न हो। ४ अपारश्रमक, जो असली न हो। ५ अकार-मात्रा-विशिष्ट, जो अलिफ्फूकी मिक्त्दार रखता हो।

अमात्रवत्त्व (सं० क्लो०) १ न्यूनता, दोष, कमो, ऐव। २ प्राण, आत्मा, आध्यात्मिक सार, जानू, रुह, रुहानी माहियत, जानूकी जड़।

अमान (सं० त्रि०) १ मानरहित, वैसाप, जिसका कोई ठिकाना न लगे। २ निरभिमान, बेफुखूर, जिसे घमण्ड न घरे। ३ अप्रतिष्ठित, बेइज्जत। (अ० पु०) ४ रक्षण, हिफाजत। ५ शरण, पनाह।

अमानत (अ० स्त्री०) न्यास, निचेप, आधि, उप-निधि, तहवील, वदीयत, ज़र अमानत, धरोहर, किसी चीजका किसीके पास कुछ वस्तुके लिये रखना, सुपुर्दे किया हुआ माल।

अमानतदार (अ० पु०) अमानत रखनेवाला शख्स, जिस व्यक्तिके पास उपनिधि रहे।

अमानन (सं० क्लो०) अमानन देखो।

अमानना (सं० स्त्री०) मान जुरा० पूजायां युच् टाप्, अभावे नञ्-तत्त्। १ आदरका अभाव, सम्मानकी शून्यता, बेइज्जती, इज्जतका न रहना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ मानशून्य, गौरवहीन, बेइज्जत।

अमानव (सं० त्रि०) १ अपौरुषेय, अमानुष, गैर इन्सानी, जो आदमी न हो। २ अतिमर्त्य, मातृ-पालिग, खारिज अथ ताकत-बशरी, आसमानी, जो आदमीकी पहुँचका न हो।

अमाननाय, अमान देखो।

अमानस्य (सं० क्लो०) मानसे मनसि साधु मानस-यत् ततो नञ्-तत्त्। १ दुःख, तकलीफ़। २ पीड़ा, दर्द। “पीडावाच्यथादुःखमानस्य” प्रथितम्। (अमर)

अमाना (हिं० क्लि०) १ पूरे तीरपर भर जाना, समाना, किसी चीजके भीतर किसी चीजका आ जाना। २ प्रफुल्लित होना, बह-बहलना, अभिमान

देखाना। (पु०) २ असभवनका द्वार, बखारका दरवाजा, आना।

अमानितव्य, अमान्य देखो।

अमानिता (सं० स्त्री०) लज्जाशीलता, नम्रता, आजिजी, खाकसारी, गरीबी, तावेदारी।

अमानित्व (सं० स्त्री०) अमानिता देखो।

अमानित् (सं० त्रि०) १ लज्जाशील, नम्र, आजिज, खाकसार, तावेदार, गरीब। (पु०-स्त्री०) अमानो। (स्त्री०) अमानिनी।

अमानी (हिं० स्त्री०) १ भूमिविशेष, कोई खास ज़मीन, जिस ज़मीनका सरकार ही ज़मीन्दार रता है और उसको थोरसे कलेक्टर इन्तजाम करता है। २ भूमिका कार्य विशेष, ज़मीनका कोई खास काम। इसका प्रबन्ध अपने ही हाथमें रखते हैं, ठीके पर कभी नहीं छोड़ते। ३ भूमिकरकी प्राप्ति, मालगुजारी का वसूल। इसमें खराब हुई फसलको देख कुछ छोड़ देते हैं। ४ इच्छानुसारिणी क्रिया, जो कारवाई अपनी तबीयतके मुवाफिक की जाती हो।

अमानुष, अमानव देखो।

अमानुषी (हिं०) अमानव देखो।

अमानुष्य, अमानव देखो।

अमाप (सं० त्रि०) अमान, असौम, वेहद, जिसको कोई नाप न रहे।

अमाप्तसी (सं० स्त्री०) अमा सह सूर्येण माः मासो वा चन्द्रे यस्याम्, बड़नी० गौरादि० ङीप्। सूर्य और चन्द्रके एक साथ रहनेको तिथि, अभावस्था।

अमामाघो (सं० स्त्री०) मास इति माः पच इति, मस् स्त्रायै अण्। अमानसी देखो।

‘अमावस्याप्यमामाघो’ (शब्दार्थ)

अमाघ (सं० त्रि०) नास्ति मांया यस्य, नञ्-बहुव्री०।

१ मायाशून्य, कपटतारहित, सादिक, सच्चा।

२ अविद्याहीन, जानकार। ‘स्वानुमायाश्वरी रूप। दधो वदिव’ (६५) माघो पीताम्बरं अम्बरं वा तदास्ति यस्य,

नञ्-बहुव्री०। ३ पीताम्बरशून्य, वस्त्रशून्य, पीताम्बर न पहने हुआ, जिसके पास कपड़ा न रहे। ‘मायः पीताम्बरम्’ (विच) मायो मानं स नास्ति यस्य। ४ परि-

माघशून्य, दयत्तारहित, वैमिक्दादर, वेहद, जिसको कोई नाप न रहे। (स्त्री०) ५ ब्रह्म, परमेश्वर। अमायत् (सं० त्रि०) माः मानं तां यन् प्रायुषन्; मा-इण्-शट्, ततो नञ्-तत्। अपरिमित, वेहद, जिसको कोई नापजोख न रहे।

अमाया (सं० स्त्री०) १ स्वमका अभाव, सुगालतेकी षदम-मौजूदगी। २ सत्यका ज्ञान, राक्षीका इच्छ। ३ जीव, आर्जन, राक्षबाजी सदाकृत, सचायी। (हिं० वि०) अमाय देखो।

अमार (सं० पु०) १ जीवन, जिन्दगी, न मरनेकी हालत। (हिं० पु०) २ अम्बार, अनाज रखनेकी जगह। यह अरहरके सरकण्डोंकी टट्टीसे घेर छाया और नीचे ऊपर भुस डाल बीचमें अनाजसे भरा जाता है। ३ अमड़ा।

अमारग (हिं०) अमर्ग देखो।

अमारी (अ० स्त्री०) हाथीका हौदा। इसपर छायाके लिये मण्डप बंधा रहता है।

अमार्ग (सं० पु०) मार्गका अभाव, राहकी अदम-मौजूदगी। (त्रि०) २ मार्गरहित, बेराह, जहाँ चलनेको जगह न मिले।

अमार्गित (सं० त्रि०) अनिरीक्षित, जो आखेट न किया गया हो, तलाश न किया हुआ, जिसके पीछे गिकार करनेको न पड़ चुके।

अमाजित (सं० त्रि०) मृज-ज्ञ-इट् ह्रिः, ततो नञ्-तत्। अशुद्ध, अपरिष्कृत, नापाक, मैला, जो साफ न किया गया हो।

अमाल (अ० पु०) शासक, अधिकारी, हाकिम।

अमालनामा (अ० पु०) १ कर्मचारीके उत्तम-अधम कार्य लिखनेका पुस्तक, जिस किताब या रजिटरमें नौकरोंके भले-बुरे काम लिखे जायें।

अमाषट (हिं० स्त्री०) अमरस, आमका सूखा रस। आम अच्छीतरह पक जानेपर उसकी निचोड़ते और कपड़ेपर फैलाकर सूखा लेते हैं। यह खानेमें मजेदार लगता और चटनी बगैरइके काम आता है।

अमावना, अमाना देखो।

अमाषस (हिं०) अमारहा देखो।

श्रमावसी (सं० स्त्री०) श्रमा सह वसतोऽस्यां चन्द्रार्का ;
श्रमा-यस-अप्-चञ् वा ष्यो० साधु०, ततो गोरा०
ऌीप् । श्रमावस्था ।

श्रमावसु (सं० पु०) १ उर्वशी-गर्भसे उत्पन्न इत्ये
पुत्ररथाके पुत्र । यह मात भाईं रड़े । यथा—प्रायु,
श्रमावसु, विभायु, दृढायु, वनायु एवं गतायु । (हरिवंश)
२ चन्द्रवंशीय कुशके चतुर्थ पुत्र । यह वसु एवं कुशिक
नामसे भी प्रसिद्ध रड़े । (निष्कण्डव)

श्रमावस्था, श्रमावस्था (सं० स्त्री०) श्रमा सह
वसतोऽस्यां चन्द्रार्का, श्रमा-यस अधिकरणे खत् निपा-
तनात् ङ्लोपि । कृष्णपक्षको पन्द्रहवीं तिथि । शास्त्र-
कारगण कहते हैं, कि श्रमावस्थाके दिन एकही रात्रिमें
सूर्य ऊपर और चन्द्रमा नीचे रहता है । वह
लोग यह भी कहते हैं, कि श्रमावस्था तिथिको चन्द्र
सूर्यकी किरणसे आच्छन्न रहता है, इसीसे उसे कोई
देख नहीं सकता ।

‘श्रमावस्तलश्रमावस्था दग्धः सूर्येन्दुसङ्गमः ।’ (अमर)

‘शुश्रांश्चन्द्रमद्योते परः सन्निवृत्तः श्रामाशसेति ।’ (गोमिश्र०)

‘परः सन्निवृत्तः उपपंथीभोभावापन्न-वसस्युपपातथावेनेकराद्यस्येदेन
महाशरणावपः ।’ (आर्त)

विश्वपुराणके दूसरे अंशके वारहवें अध्यायमें
लिखा है, कि कृष्णपक्षमें देवगण और पित्रगण चन्द्रका
सुधा पान करते हैं । अन्तमें जब एक काला बाकी
रह जाती है, तब सूर्य सुपुत्रा नास्वी रश्मिद्वारा उन्हें
फिर परिपुष्ट कर देते हैं ।

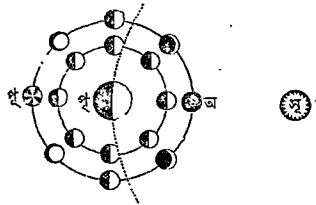
जब दो काला बाकी रह जाती हैं, उस समय चन्द्र-
श्रमा नास्वी सूर्यरश्मिमें प्रवेश करता है, इसीसे उस
दिनको श्रमावस्था कहते हैं ।

‘श्रमावस्था रग्नी वधति श्रमावस्था लताः श्रुता ।’ (निष्कण्डव)

श्रमावस्थाके दिन अहोरात्र चन्द्र पक्षसे गलमें,
उसके बाद सतमें, फिर अन्तको सूर्यमण्डलमें प्रवेश
करता है ; इसीसे लता या लता-पत्र आदि तोड़नेसे
ब्रह्महत्याका पाप लगता है ।

श्रमावस्था तिथिमें चन्द्र और सूर्य किस तरह
अवस्थान करते हैं, उसे ऊपरके गोमिश्र-सूत्रमें, ध्यातने

खट भावसे प्रकाम नहीं किया । चन्द्र, सूर्य और
पृथिवी इन तीनोंका समसूत्रपात पड़नेसे उस समय
चन्द्र-यदि पृथिवी और सूर्यका मध्यवर्ती रहे, तो उसी
दिन श्रमावस्था होती है । इस चित्रमें श्र-से सूर्यमण्डल,



अ-से श्रमावस्थाका चन्द्र, श्र-से पूर्णिमाका चन्द्र
और श्र-से पृथिवी समझना चाहिये । विन्दु-विन्दु
रेखाद्वारा इत्तका जो कुछ अंश दिखाया गया है, उस
पथद्वारा पृथिवी सूर्यके चारों ओर घूमती है । इधर
चन्द्रमण्डल फिर उसीके साथ साथ पृथिवीके चारों
ओर घूमता है । इसीसे सूर्य, पृथिवी एवं चन्द्र—तीनों
प्रति मास दो बार समसूत्रमें अवस्थान करते हैं । उनमें
जिस दिन सूर्य और पृथिवीके मध्यस्थलमें चन्द्र आ
पड़ता है, उस दिन श्रमावस्था होती है, एवं जिस दिन
सूर्य और चन्द्रके मध्यस्थलमें पृथिवी आ पड़ती है, उस
दिन पूर्णिमा होती है । ऐसा होनेका कारण यही है,
कि चन्द्र स्वयं ज्योतिर्मय ग्रह नहीं है । उसमें
सूर्यकिरण प्रतिबिम्बित होनेसे ही प्रकाश पंडुचता
है । इसीलिये चन्द्रमाकी जो दिक् सूर्यकी ओर
घूमती है, केवल उसी ओर धूप जाती है, दूसरी ओर
अन्धकारमें छिपी रहती है । अतएव चन्द्रमण्डलका
जो अंश पृथिवी और सूर्य इन दोनोंकी ओर घूमता
रहता है, केवल उसी अंशको हमलोग देखते
हैं । इस चित्रमें अ-श्रमावस्थाका चन्द्र है । वह
सूर्य एवं पृथिवीका मध्यवर्ती हो गया है, इसीसे
उसका जो अंश पृथिवीकी ओर फिरा हुआ है उसमें
सूर्यका किरण नहीं लगती, और हम लोग

चन्द्रको देख नहीं सकते। इसके अतिरिक्त श्रमा-
वस्थाको चन्द्रमण्डल पृथिवी-निकटसे और कहीं
अन्तर्हित तो नहीं हो जाता। सूर्यप्रदण लगते
समय चन्द्रमण्डल ठीक पृथिवी और सूर्यके मध्यस्थलमें
रहता है। इसलिये चन्द्रको छाया पड़नेसे हमनीग
सूर्यके कुछ अंगको छोड़ी देरतक नहीं देख सकते।
फिर जब चन्द्रमा ढट जाता, हैं तब सूर्यमण्डल
दिखाई पड़ने लगता है। इस तरह चन्द्रका छाया-
पतन ही सूर्यप्रदणका कारण है। श्रमावस्थाके दिन
सूर्य, चन्द्र और पृथिवी समसूत्रमें रहते हैं, और
चन्द्रमण्डल दोनोंके बीचमें था जाता है, इसीसे
सूर्यप्रदण होता है, तदुभिर दूसरी तिथिमें सूर्यप्रदण
नहीं पड़ सकता।

इस जगह प्रश्न हो सकता है, कि प्रति श्रमा-
वस्थाको ही सूर्य, चन्द्र और पृथिवी समसूत्रमें
रहती है और चन्द्रमण्डल भी दोनोंके मध्यस्थलमें
था पड़ता है, फिर प्रत्येक श्रमावस्थाके दिन सूर्य-
प्रदण क्यों नहीं होता? उसका कारण यह है, कि
इस चित्रपर पृथिवी और चन्द्रका भ्रमणपथ जिस
प्रकार समतल क्षेत्रमें दिखाया गया है, वस्तुतः भाकाग्रमें
द्वैमा समतल नहीं थाता। यदि वह समतल
होता, तो प्रतिमास ही एक बार सूर्यप्रदण पड़ता।
चन्द्रका भ्रमणपथ पृथिवीके भ्रमणपथकी और कुछ
झुका हुआ है। वारीक हिसाब लगानेसे इस वक्रताके
कोणका परिमाण ५° ८' +, होता है; और चन्द्र-
मण्डल धूमते धूमते कभी पृथिवीवाली भ्रमणपथके
ऊपर और कभी नीचे था जाता है, इसीसे जिस समय
चन्द्र पृथिवीवाले भ्रमणपथके ऊपर था तिरछे पार
होता है, उस दिन श्रमावस्था होनेसे सूर्यप्रदण लगता
है।

चन्द्रके भाकपेणसे समुद्रका जल स्कोत हो जाता
है, इसीसे गङ्गा आदि नदियोंमें उस समय लुभार
उठता है। श्रमावस्था एवं पूर्णिमाके समय समुद्र
का जल अत्यन्त स्कीत होता, इसीसे उस समय
वाढ़-थाती है। किसी स्थानकी द्राघिमाके ऊपर
जब चन्द्र उपस्थित होता है, तब उसके तीन घण्टे

बाद लुभार धाता है। चन्द्रको घोर वाली द्राघिमा
एवं उसकी विपरीत दिगामें भी लुभार होता है।
चन्द्रको एक बार धूमकर फिर श्रमनी द्राघिमाको पहुं-
चनेमें २४ घण्टे ५० मिनट लगते हैं, सुतरां १२ घण्टे
२५ मिनट बाद अहोरात्रमें दो बार लुभार
थाता है।

श्रमावस्थादन्तरकाल। पा० ११११२१। श्रमा इस उपपदके
परस्थित वस धातुसे उत्तराधिकरण वाच्यमें श्युत् प्रत्यय
होता है। वृद्धि होनेपर निपातनमें विकल्पसे ङस्त्व
भी होता है। "इही सर्वा पाथिको इत्यय द्विवाक्ये। एका
सह वसतोऽस्याचन्द्राकीं श्रमावासा श्रमावसा।" (वि० को०)।

"श्रमावस्था शुभं शनि गिथं शनि चतुर्दशौ।" (सगु ३११५)

श्रमावस्थाके दिन पड़नेसे शुभ और चतुर्दशौके
दिन पड़नेसे ह्यष मर जाता है।

शास्त्रकारोंने विभेय कर्तव्य कर्मके लिये श्रमा-
वस्थाको कई प्रकारसे विभक्त किया है। चतुर्दशौ-
युक्त श्रमावस्थाका नाम सिनोवाली और चययुक्त श्रमा-
वस्थाका नाम कुड्ड है। श्रमावस्थाके दिन तेज लगाना,
वाल धनवाना, मांस-मछली खाना और स्त्रीभोग
करना मना है। इस दिन धान्य और लणदि काटना
न चाहिये। पुथा नचत्र वा जम्भ नचत्रमें; व्यतीपात
वा वैधृति योगमें श्रमावस्था होनेसे उस दिन नदी-
स्नान करनेसे सात कुल पवित्र हो जाते हैं। मङ्गल-
वारकी श्रमावस्थाको नदी स्नान करनेसे मङ्गल गोदान-
का फल मिलता है। सोमवारकी सिनोवाली वा कुड्ड
श्रमावस्था हो, तो मौन रह स्नान करनेसे मङ्गल
गोदानका फल होता है। सुख चान्द्र पीपकी श्रमा-
वस्थाको यदि रविवार एवं व्यतीपात योग और श्रवणा
नचत्र हो, तो उसका नाम अर्धोदययोग है। यह
योग कभी कभी थाता है। शर्वादय देहो।

श्रमावस्था ही श्रावका प्रगस्त काल है, इसलिये
प्रतिमासका कृष्णपक्षनिमित्तक पार्वणश्राव श्रमा-
वस्थाके दिन हो करना होता है। श्रमावस्थाके
श्रावका प्रगस्तकाल अपराह्न है। दिनकी पांच
भाग करनेसे उसके चतुर्थ भागका नाम अपराह्न है।
उसी समय पार्वणश्राव करना उचित है। दोनों

दिनीं सुप्य अपराह्न न मिलनेसे दूसरे दिन अष्टम एवं नवम सुहृत्तरूप गौण अपराह्नमें भी आहका विधान मिलता है। सौर आश्विन मासकी अमावस्याको महालया कहते हैं। महालयामें आह करनेसे उन्नीस पिण्ड देना पड़ता है। उसका नाम षोडश पिण्डदान है। कार्तिक मासकी अमावस्याका नाम टीपान्विता है। टीपान्विताको आहके बाद उल्कादान करना पड़ता है। प्रति मासमें अमावस्याका एक-एक व्रत भी प्रचलित है।

अमावासी, अमावस्या देखो।

अमावास्याक (सं० त्रि०) अमावस्याकी रात्रिकी उत्पन्न हुआ, जो अमावसकी रातकी पैदा हुआ हो।

अमावास्या, अमावस्या देखो।

अमाप (सं० त्रि०) सुदृगविहीन, शिथिलकर्म, लोभियाकी फली न रखनेवाला, जिसमें लोभियाकी क्रिया न रहे।

अमाह (हिं० पु०) नेत्ररोगविशेष, नाखून। इससे आंखमें लाल मांस उभर आता है।

अमाही (हिं० वि०) नेत्ररोग सम्बन्धीय, जो नाखूनसे तन्मूल्य रखता हो।

अमित (हिं० वि०) १ न मिटनेवाला, जो टिका रहता हो। २ अवश्यभावी, जिसके होनेमें फर्क न पड़े।

अमित (सं० त्रि०) न मितम्, नञ्-तत्। १ अपरिमित, इयत्तारहित, वेदद, जिसको कोई नाप-जोख न रहे। २ अघ्नान, नादान। ३ अनवधारित, भ्रूला हुआ। ४ अपरिष्कृत, जो साफ न किया गया हो। ५ अलक्षार-विशेष। कैशवके मतानुसार साधन जब साधककी सिद्धिका फल उठाता, तब अमितालक्षार लगता है।

अमितक्रतु (बे० पु०) १ असीम प्रज्ञा-सम्पन्न व्यक्ति, जिस शूरुतकी अक्षरका ठिकाना न लगे। २ असीम शक्तिशाली, वेदद ताकत रखनेवाला।

अमितगतिस्मृति (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। विक्रमसंवत् १०२५के कुछ पहले श्रीअमितगतिस्मृतिरत्ना जन्म हुआ था।

आचार्यवर्य अमितगति बड़े भारी विद्वान् पौर कवि थे। इनकी असाधारण विद्वत्ताका परिचय पानिको इनके ग्रन्थोंका भलीभांति मनन करना चाहिये। रचना सरल और सुखसाध्य होने पर भी बड़ी गंभीर और मधुर है। संस्कृत भाषापर इनका अच्छा अधिकार था। इन्होंने अपने धर्मपरोक्षा नामक ग्रन्थको केवल दो महोत्सवोंमें रचके तयार किया जिस वाचकर लोग सुगम हो जाते हैं। यथा :—

“अमितगतिरिदं” सस मासश्चैन
प्रथितविशदकीर्तिः काव्यमुद्गतोपम् ।”

धर्मपरोक्षाके अतिरिक्त अमितगतिके बनाये हुए निम्नलिखित ग्रन्थोंका भी उल्लेख मिलता है—
१ सुभाषितरत्नसन्दोह, २ आवाकाधार, ३ भावना-
छात्रिंशति, ४ पञ्चसंग्रह, ५ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ६ चन्द्र-
द्वीप प्रज्ञप्ति, ७ सार्धद्वयद्वीपज्ञप्ति, ८ व्याख्यामञ्जलि,
९ योगसारप्राश्नत।

पञ्चसंग्रहमें अमितगतिकी प्रशस्ति इस प्रकार लिखी है—

“श्रीमाधुराधामनचतुर्तीनां संघोऽभवदगमिषूषितायाम् ।

शरी मनीनामिष तापशरी युवातशरी शक्तिगिषुषः ॥ १ ॥

माधवसेन बघो गणनीयः प्रदत्तगोऽग्रिम तत्त कनीयः ।

भूयसि सत्यवतीय श्यादः श्रीमति विदुषतावकमज्ञा ॥ २ ॥

विषयस्य मद्भाष्योऽमितगतिर्मोक्षार्थनाशयि-

रितच्छास्त्रमिषकर्म समितिप्रख्यापनाशकृत ।

श्रीरसेन जिनैश्वरस्य गण्यद्व्याघ्रतां व्यापको-

दुषारकरदनिटाव्युषरिः श्रीमौलम. सगमः ॥ ३ ॥

यदत्त विद्वान्निशिषि वडं शास्त्रं निराकृत्य तदेतदर्थः ।

यद्वन्ति लोका दृष्टकारि यवाच्यं निराकृत्य फलं विनयम् ॥ ४ ॥

अनीशरो किवन्मर्षं भोऽं (यावधिरे) तिष्ठति मुक्तिप्रकौ ।

तावद्द्वारापिदमव शास्त्रं मुद्रायुक्तं कर्मनिरायकारि ॥ ५ ॥”

(पञ्चसंग्रह)

इसका सारांश यह है—जिस समय महाराज सिन्धुपति (भोजके पिता) पृथ्वीका पालन करते थे, उस समय कौर्तिशाली माधुरसंग्रहमें एक माधवसेन नामके आचार्य हुए, जिनके गौतमगणधरके समान विद्वान् शिष्य अमितगतिने यह पञ्चसंग्रह ग्रन्थ सम्पूर्ण कर्मसमितियोंको प्रख्यापनाके लिये बनाया।

अमितगतिने संवत् १०५०में सुभाषितरत्नसन्दोह बनाते समय मुज्जका राज्यकाल बताया और

अपने गुरुके समयमें सिंधुल महाराजका राज्य बत-
लाया है। इससे यह निश्चय होता है कि, सुष्मके
पहले भी सिंधुल राज्य कर चुके थे। फिर उनके पीछे
भी उनका राजा होना सिद्ध होता है।

धर्मपरीक्षाको प्रशस्तिके कुल शोक उद्धृत करते हैं—

“सिद्धान्तपञ्चोनिधिपारगामी

श्रीश्रीरसेनोऽनि शूरिकथ्यः ।

श्रीमाधुराकां धमिनां वरिष्ठः

कथावसिष्ठं सविधी पठितः ॥ १ ॥

महासायबभानहर्षिर्मनसो

तथात्पुनरिदं वसिनीऽग्रजिष्टः ।

लोकोत्थोती प्रशंसादिशार्कः

विद्याभीष्टः श्रेयसोऽप्यासदोषः ॥ २ ॥

भासितासिद्धमउदारं ससुधो

निर्मनीऽग्रनिगतिरैश्वर्याथः ।

बासरी—दिनसधिरिव—सथा

ध्यायतिथ कसलाकरचौधो ॥ ३ ॥

नेमिपिपगपनायकसः*

पावनं इवमधिष्ठती विभुः ।

पार्श्वीपतिरिवाकम्पयो

योगनोपनपरां मन्थार्दिनः ॥ ४ ॥

कोपनिवारी शमदसधारी माधवसेनः प्रथतरसेनः ।

श्रीमभदकाङ्गनितमदीया यो धतिपारः प्रमिततारः ॥

धर्मपरीक्षामङ्गलवरेणां धर्मपरीक्षामखिलगणश्याम् ।

मिष्टवरिष्ठोऽमितगतिनामा तस्य पठितोऽनुभवगतिधामा ॥”

इसका सारांश यह है कि माधुरसंधके सुनियोगिं
श्रीश्रीरसेन नामके एक श्रेष्ठ आचार्य हुए और उनके
शिष्योर्मि क्रमसे देवसेन, अमितगति (प्रथम) नेमि-
पिण, और माधवसेन नामके सुनि हुए। अमितगति
इन्हीं माधवसेनके शिष्य थे।

अमिततेजस् (सं० द्वि०) असीम तेज सम्पन्न, वैहद
रीगनी रखनेवाला, जिसकी महिमा या शान्का
होर न मिले।

अमितद्युति (सं० द्वि०) असीम प्रमान्वित, वैहद
चमक-दमक रखनेवाला।

अमितध्वज (द्वि० पु०) चन्द्रवंशीय धर्मध्वजके पुत्र।

अमितविक्रम (सं० पु०) अमिता अपरिच्छिन्ना
विक्रमाश्रयः पादनिःसेपरुपा यस्य अमितः विक्रमः शौर्यं-

मख्येति वा, बहुव्री०। १. विष्णु। (त्रि०) २ बहु विक्रम-
शाली, अधिक शौर्य-सम्पन्न, जो निहायत बहादुर हो।
अमितशौर्य (सं० पु०) असीम शक्तिसम्पन्न, वैहद
कुवत रखनेवाला।

अमिताचर (सं० द्वि०) अनियत अचर-विगिष्ट,
जिसमें गैर सुकरर झूठ रहें।

अमिताम (सं० पु०) १ सावर्णि मन्वन्तरकी द्वितीय
शौर धैवत मन्वन्तरकी प्रथम श्रेणीके देवता। २ कोई
ध्यानी बुद्ध। (द्वि०) ३ असीम प्रभासम्पन्न, जिसकी
चमक दमक वैहद रहें।

अमितायुस् (सं० पु०) कोई ध्यानी बुद्ध।

अमितागन (सं० पु०) अमित अश्राति प्रलय समये
अमित-अश-लग्न। १ सर्वमचका परमेश्वर। २ विष्णु।
(त्रि०) अमित अगनं यस्य, बहुव्री०। ३ अपरिमित-
भोजी, अतिभोजी, वैहद खानेवाला, जिसके खानेका
ठिकाना न लगे।

अमितौजस् (सं० द्वि०) अदन्त तुरा०, भोज-असुन
ततो नञ-बहुव्री०। अपरिमित बलशाली, वैहद
कुवत रखनेवाला।

अमित्र (सं० क्ली०) अम-उण्-इत्र। असुहृत्, शत्रु,
दुश्मन्, अद्रू।

अमित्रषाद (सं० पु०) शत्रुको चवा जानेवाले इन्द्र।

अमित्रगणसूदन (सं० द्वि०) शत्रुका दल नष्ट करने-
वाला, जो दुश्मन्का गिरोह बरवाद कर डालता हो।

अमित्रघात (वै० द्वि०) १ शत्रुको नष्ट करनेवाला,
जो दुश्मन्को कुत्ल कर रहा हो। (पु०) २ शौर्य-
वंशीय एक राजाका नाम (Amitrachates)।

अमित्रघातिन् (सं० द्वि०) अमित्रघात देखो।

अमित्रघ्न (सं० द्वि०) अमित्रघात देखो।

अमित्रजित् (सं० पु०) अमित्रं शत्रुं जयति, जि-
क्षिप्। १ शत्रुपराजयकारी, दुश्मन्को जीतनेवाला।

२ इक्ष्वाकुवंशवाले सुवर्णराजके पुत्र। मत्स्यपुराणमें
इसका नाम अमन्त्रजित् लिखा, किन्तु विष्णुपुराणमें
‘अमित्रजित्’ ही मिला है।

अमित्रता (सं० स्त्री०) शत्रुता, दुश्मनी, दोस्त न
होनेकी हालत।

अभिवदमन (वै० त्रि०) शत्रुको हानि पहुँचाने-
वाला, जो दुश्मनको चोट दे रहा हो ।
अभिवमह (म० त्रि०) अभिवं शत्रुं सहते, अभिव-
सह-पच् । रिपुजययोग, बलवान्, दुश्मनको जोतने-
वाला, हीरदार ।
अभिवत्राह (स० त्रि०) अभिवं सहते, अभिवसह-
अच् । अभिवसह देखो ।
अभिवसेना (स० स्त्री०) शत्रुसेना, दुश्मनकी फौज ।
(अर्थ० ११११)
अभिवहन (वै० पु०) शत्रुको नष्ट करनेवाला, जो
दुश्मनका कत्ल कर रहा हो ।
अभिवशुभ (वै० त्रि०) शत्रुको अभिभूत करते हुआ,
जो दुश्मनको दबा रहा हो ।
अभिविन् (स० त्रि०) विपची, विदेषी, दुश्मनी
रखनेवाला । (स्त्री०) अभिविषी ।
अभिविय (स० त्रि०) प्रतिबुद्ध, खिलाफ ।
अभिवयः अभिविय देखो ।
अभिवियत (वै० त्रि०) १ अप्रकाशित, जो ज़ाहिर
न हो । २ अप्रकोषित, जो नाराज न हो ।
अभिव्या (म० अर्थ०) सत्य-सत्य, सच-सच, सचे-
पमसे ।
अभिवन् (स० त्रि०) अम अस्यास्ति, अम-इनि ।
१ गमनगोल, चलनेवाला । २ रोगी, पीड़ित, बोमार,
जिसके ददं रहें ।
अभिवन (म० त्रि०) मि हिंसा वषकर्म वा, बाहुल्य-
कात् शोणादिक नक्-मिनम् ततो नञ्-तत् ।
१ अहिंसित, जो विनष्ट न हो, न मारा हुआ,
जो बरबाद न हो । २ भीषण, खूँखार ।
३ अपरिमाण, बेमिहदार, जिसकी कोई नाप-जोख
न रहे ।
अभिवन्त् (वै० त्रि०) १ आघात न करनेवाला,
जो चोट न पहुँचा रहा हो । २ अधिदारित, जो
चोट न खाये हो ।
अभिव्य (हिं० पु०) अमृत, आव-हयात ।
अभिव्य-मूरि (हिं० स्त्री०) अमृतमूल, सञ्ज्ञावनी
बूटी, जिस जड़को खाकर सुदं जी चठे ।

अभिवरतो, शरती देखो ।
अभिल (हिं० त्रि०) १ न मिलनेवाला, जो दस्त-
याव न हो । २ अर्थक्, बेमिल ।
अभिलतास, अमरणाव देखो ।
अभिलपटो (हिं० स्त्री०) चौड़ी तुरपन, किसी
किम्पकी सिलाई ।
अभिल्लातक (सं० स्त्री०) बेलेका फूल ।
अभिल्लातका (सं० स्त्री०) महाराजतरुणीपुष्पवृक्ष,
चमेली ।
अभिलित (सं० त्रि०) अर्थक्, न मिला हुआ ।
अभिलिया पाट (हिं० पु०) एक प्रकारका पटसन ।
अभिलौ, शरती देखो ।
अभिव्र (सं० त्रि०) १ संयोगशून्य, न मिला हुआ ।
२ दूसरेकी अभिसन्धिसे रहित, जिसमें दूसरेकी
शिरकात न रहे ।
अभिव्रण (सं० स्त्री०) मिश्रणका अभाव, मिला-
वटकी अदम मौजूदगी ।
अभिव्रराशि (सं० पु०) एकाईसे हो अर्थक्
अर्थक् किया जानेवाला राशि, जिस जिनमें कुछ
मिला न रहे । गणितशास्त्रमें एकसे नौ तक संख्या
अभिव्र राशि कहलाती है ।
अभिव्रणौय (सं० त्रि०) मिश्रणके अयोग्य, मिला-
नेके नाकाबिल, जो मिला न सकता हो ।
अभिव्रित (सं० त्रि०) मिश्रणशून्य, बेमिलावट,
जिसमें कोई दूसरी चीज़ मिली न रहे ।
अभिव्र सं० स्त्री०) अम भोगे कमंषि टिपच् ।
१ लौकिक सुख, दुनियाकी आराम । २ भोग्य वस्तु,
मजा लेने लायक चीज़ । ३ अज्ञपट, सत्य, ईमान-
दारी, सादादौही । ४ असत्य, बेइमानी । (त्रि०)
नास्ति मिष्यञ्चलं यस्य यत्र वा, नञ्-बहुप्रो० ५ क्ल-
शून्य, धोका न देनेवाला ।
अमी (हिं० पु०) अमृत, आव-हयात ।
“अमी विद्यावत् मान विन
रश्मिन् इति न सुखाय ।” (रघु०)
अमीकर (हिं० पु०) अमृत बरसानेवाला, अमृतमा ।
अमीत (सं० त्रि०) मी वधे कामंषि क्त, ततो नञ्-

तत् । १ अर्हिमित, जो मारा न गया हो । (हिं० पु०)
२ शत्रु, दुश्मन्, जो मित्र न हो ।

अमीतवर्ण (दै० त्रि०) १ अपरिमित वर्णविशिष्ट, जिसमें बेहद रङ्ग रहें । २ अस्नानवर्षयुक्त, जिसका रङ्ग फीका न पड़े ।

अमीन (अ० पु०) न्यायालयके वाद्योंकर्मका अधिकारी, जिस कचहरीवाले हाकिमके हाथ बाहरी इन्तजाम रहे । घटनास्थल विवेचना अनुसन्धान लेना, भूमि नापना, विच्छेद कराना, कुरकौकी चोज नौलामपर चढ़ाना आदि अमीनका काम है ।

अमीमांसा (सं० स्त्री०) अध्याहार वा अनुसन्धानका अभाव, वहस या तनागकी अदम-मौजूदगी ।

अमीमांस्य (सं० त्रि०) अध्याहार वा अनुसन्धान लगानेके अयोग्य, जो तलाश या वहस करने काबिल न हो ।

अमीर (अ० पु०) १ अधिकारी, हाकिम । २ धनवान्, दीनतमन्द, जिसके पास खूब रूया-पैसा रहे । ३ अज्ञपण, सखी । ४ अफगानस्थानके बादशाहकी उपाधि । अफगानस्थानके समग्र नृति अमीर हो कहलाते हैं ।

अमीराना (अ० वि०) अमीर-जैसा, जिससे दौलत-मन्दो भलके ।

अमीरी (अ० स्त्री०) १ धनाव्यता, ऐश्वर्य, दीनत-मन्दी । २ उदारता, सखावत । (वि०) ३ अमीर-जैसा, अमीराना, जो धनाव्यके योग्य हो ।

अमीव (सं० स्त्री०) अम रोगी ईव । 'अमरीषः' ईव प्रत्ययः । (निष्क०) १ रोग, बीमारी । २ हिंसित, कत्त । ३ पाप, हज़ार । ४ दुःख, तकलीफ । ५ प्रेत, शैतान् ।

अमीवचातन (सं० त्रि०) अमीव रोग चातयति, चत पाचने णिच्-लुट् । १ रोगनाशक, बीमारी मिटाने-वाला । २ शत्रुघातक, दुश्मनको मारनेवाला । (स्त्री०) गौरादि० डीप् । अमीवचातनी ।

अमीवहन्, अमीवचातन देखी ।

अमीषा (सं० स्त्री०) अमीव देखी ।

अमुक (सं० त्रि०) अदम्-टैरफ्क लः मख । अदम् शब्दके अर्थवाला, फतान्, कौर्य । जब किसी आदमी

या चीज़का नाम नहीं लिया जाता, तब उसको जगह अमुक शब्द आता है ।

अमुक्त (सं० त्रि०) १ सम्बन्ध, बंधा हुआ, जो खुला न हो । २ जन्मकरणसे भावद, जिसे पेदा होने और मरनेसे छुटकारा न मिला हो । (स्त्री०) ३ अस्त्र, इथियार । जिसे हाथमें पकड़ रखते और भारते समय भी नहीं छोड़ते, उस इथियारको अमुक्त कहते हैं । जैसे—कुरी, कटारी, तन्वार ।

अमुक्ति (सं० स्त्री०) १ मोलका अभाव, छुटकारिका न मिलना । २ स्वतन्त्रताका अभाव, आजादीकी अदम-मौजूदगी ।

अमुख (सं० त्रि०) मुखरहित, वेदहन, जिसके मुँह न रहे ।

अमुख्य (सं० त्रि०) अपधान, अधोन, मातहत, जो बड़ा न हो ।

अमुख्य (सं० त्रि०) अनाकुल, अव्यय, घबराया न हुआ, जो फरैफ़ता न हो ।

अमुच् (वै० स्त्री०) अस्ति देखी ।

अमुची (वै० स्त्री०) कुड़िल, डारन ।

अमुतस् (सं० अश्व०) अमुष्मात्, अदम्-तसिस् लः मख । १ वहंसि, दूनरो दुनियासे, विहिश्यसे । ३ इस-पर, इससे । ४ यहाँसे, भागे ।

अमुत्र (सं० अव्य०) अमुष्मिन्, अदम्-न् लः मख । १ वहाँ, उस स्थानपर । २ परकालमें, आक़िबतपर । ३ यहाँ, इस जगह ।

अमुवत्य (सं० त्रि०) परकालोन, आयन्दा हालतसे तपकृत् रखनेवाला, जो दूसरी दुनियाका हो ।

अमुवभूय (सं० स्त्री०) अमुवस्य भावः, अमुव-भू भावे क्वाप् । १ परकालका धर्म, उक्थेका फ़र्ज । २ मृत्यु, मौत ।

अमुषा (सं० अव्य०) अमुना प्रकारेण, अदम्-याल् लः । १ इस प्रकार, इसतरह । २ उस प्रकार, उस तरीक़ेसे, वैसे ।

अमुद्रच् (सं० त्रि०) अमुमञ्चति, अदम्-पञ्चु गतो क्तिप् न भोपः, अद्रादेशः लः मख । अदम् शब्दका अर्थमात्र, वैसा, ऐसा । (स्त्री०) अमुद्रोचि ।

असुद्रश्च (सं० त्रि०) असुमश्चति, अदस्-अक्षु पूजायां
क्षिप्, न लोपाभावः अद्रादेशश्च। उसका पूजक,
जो उसकी परस्तिश करता हो।

असुसुयच् (सं० त्रि०) असुमश्चति, अदस्-अक्षु गती
क्षिप् न लोपः अद्रादेशः अद्रेरपि उत्त्वमत्वे। अदस्
शब्दका अर्थप्राप्त, वैसा, ऐसा। (स्त्री०) असुसुयीची।

असुसुयश्च (सं० त्रि०) असुमश्चति, अदस्-अक्षु
पूजायां क्षिप्, न लोपाभावः अद्रादेशः अद्रेरपि
उत्त्वं मत्वश्च। उसका पूजक, जो उसकी परस्तिश
करता हो। (स्त्री०) स्त्रीप्। असुसुयची।

असुया (सं० अद्य०) उस मार्गसे, उस तरीकेपर।

असुहिं (सं० अद्य०) उस समय, उस वक्त, तब।

असुयत्, अदीवत् (सं० अद्य०) असुय्येव, अदस्-
यति। उसकी भांति, फलान् शब्दस या चीजकी तरह।

असुप्तिन् (सं० अद्य०) परलोकमें, आकित्तपर।

असुथ (सं० त्रि०) प्रसिद्ध, मशहूर, जिसका नाम
फैल पड़े।

असुथ्यकुल (सं० स्त्री०) प्रथो० अलुक, इ-तत्।
१ प्रसिद्धकुल, मशहूर खान्दान्। (त्रि०) २ प्रसिद्ध
कुलमें उत्पन्न, जो मशहूर खान्दानमें पैदा हो।

असुथ्यपुत्र (सं० पु०) प्रथो० अलुक, इ-तत्। प्रसिद्ध-
वंश, कुलीन, खान्दानी शब्दस।

असुथायण, आसुथायण (सं० पु०) विख्यात
वंशोत्पन्न अपत्य, मशहूर शब्दमका बेटा।

असूक (सं० त्रि०) १ जो सूक न हो, गूंगा न
होनेवाला। २ वक्ता, जो बोल रहा हो। ३ वाचाल,
बहुत बात करनेवाला। ४ प्रवीण, होशियार।

असूद्र (सं० त्रि०) १ असुमसंज्ञ, बुद्धिमान, होशि-
यार, जिसकी अक्षु गुम न पड़े। २ अकातर, जो
धवराया न हो।

असूद्रश्च (सं० त्रि०) असुमिष पश्चति असाविष
दृश्यते वा, अदस्-दृश्च अयथा दृश्-क्त्स सर्वनामः आ
अन्तादेशश्च तो आकारस्य उत्वं दस्य मकारः। इसकी
भांति, ऐसा, इस तरहका, ऐसी शब्द या किस्मवाला।
(स्त्री०) असूद्रशी।

असूद्रश्च, असूद्रश्चो।

असूद्रश्च, असूद्रश्चो।

असूर (सं० त्रि०) मूर्च्छ-क्षिप् सूः मूर्च्छां तस्या
अभावः असूः, असूरस्तस्य कुञ्जादिर। १ असूद्र,
जो बेवकूफ न हो। २ मोहशून्य, जो फरेफता न
हो।

असूर्त (सं० त्रि०) मूर्च्छ-क्त छ लोपः, ततो नञ्-
तत्। १ अवयवशून्य, आकार-रहित, अपरिच्छिन्न,
परिमाणशून्य, बेचज्जे, बेशक्त, बेमिकदार, जिसकी
कोई सूरत न रहे। (पु०) २ शिष।

असूर्तगुण (सं० पु०) असूर्तस्य गुणाः, इ-तत्।
असूर्त आकाशादिका गुण विशेष, जो खास वस्तु
बेशक्त आसमान् वगैरहमें हो।

असूर्तरजस्, असूर्तरजस, कुशके कोई पुत्र। यह
वैदर्भिके गर्भसे उत्पन्न हुये थे।

असूर्ति (सं० त्रि०) मूर्च्छ-क्तिन्, ततो नञ्-बहुव्री०।
१ मूर्तिशून्य, आकृतिहीन, बेशक्त, जिसकी कोई
सूरत न रहे। (पु०) २ विष्णु। ३ गगनादि,
आसमान् वगैरह। (स्त्री०) ४ आकार वा अवयवका
अभाव, शक्त या अजोकी अदम-मौजूदगी।

असूर्तिमत् (सं० त्रि०) मूर्ति-मतप्, ततो नञ्-
तत्। मूर्तिरहित, बेशक्त।

असूर्तिमती (सं० स्त्री०) असूर्तिन् दीक्षो।

असूर्तिमान् (सं० पु०) असूर्तिन् दीक्षो।

असूल (सं० त्रि०) नास्ति मूलं यस्य, नञ्-
बहुव्री०। आदिकारणशून्य, मूलरहित, असली
सबध न रखनेवाला, जिसकी जड़ न रहे।

असूलक (सं० त्रि०) नास्ति मूलं यस्य, कप्-
बहुव्री०। असू दीक्षो।

असूला (सं० स्त्री०) अग्निशिखापृष्ठ, करियारी।

असूल्य (सं० त्रि०) मूल्यरहित, क्रयके अयोग्य,
बेवच्चा, खरीदके नाकाबिल, जिसकी कोई कीमत
न रहे।

असूक्त (सं० त्रि०) सृष्यते स्म, सृज शुद्धी क्त, ततो
नञ्-तत्। १ अयोग्यित, अप्रचालित, पाक न किया
हुआ, जो धोया न गया हो। २ अपोडित, तकलीफ
न दिया हुआ, मजफूज, जिसे नुकसान न पहुँचा हो।

अमृतपाल (सं० क्लो०) श्वेत उग्रौर, सफेद खस ।

अमृत (सं० त्रि०) मृद् मरणे निष्ठा-क्त भयवा श्रौषादिक तन्, ततो नञ्-तत् । १ जोषित, जिन्दा, जो मरा न हो । २ मरणशून्य, जो मर न सकता हो । ३ सुन्दर, प्रिय, अभिलषित, खूबसूरत, प्यारा, पसन्दीदा । (पु०) ४ देवता, फरिश्ता । ५ इन्द्र ।

६ सूर्य । ७ प्रजापति । ८ आत्मा, रूह । ९ विशु ।

१० शिव । ११ धन्वन्तरि । १२ पारद, पारा ।

१३ वनसुन्द, लड़क । १४ धाराही नाम महाकन्द-शक, जमीकन्द, सूरन । (क्लो०) भावे क्त । १५ जल, पानी । १६ समुद्र नवनीतक यज्ञशेष द्रव्य । १७ स्वर्ण, सोना । १८ घृत, घी । १९ दुग्ध, दूध । २० अन्न, भनाज । २१ स्वादु द्रव्य, जायकेदार चीज ।

२२ रोगनाशक श्रौषध, बीमारी मिटानेवाली दवा ।

२३ विष, जहर । २४ वत्सनाभ, बच्छनाग ।

२५ धन, दौलत । २६ सुक्ति, निजात । २७ अमरत्व, बक्ता । २८ देवगण । २९ वैकुण्ठ, विहिण्ड ।

३० सीमरस । ३१ जहरमोहरा । ३२ अयाचित दान, बेमांगी बख्शिग्य । ३३ भोजन, खुराक ।

३४ मिठाई । ३५ भात । ३६ चमत्कार, चमक-दमक । ३७ वार और तिथि-घटित योग विशेष ।

३८ वार और नक्षत्र-घटित योग विशेष । ३९ साहेन्द्र प्रभृति योगके अन्तर्गत योग विशेष । अथतः योः ४० ।

४० ब्रह्मा । ४१ पीयूष, आव-हयात । कहते हैं, कि

पृथुराजके भयसे पृथिवीने गोरूप धारण किया था ।

उस समय देवताओंने इन्द्रको बल बनाकर सुवर्ण-पात्रमें उसी गोरुपा पृथिवीको दूड़ा । उसमें पृथिवीके

रूानसे अमृत निकला था । पीछे दुर्वासाके शापसे

वही अमृत समुद्रमें जा गिरा । शेषकी देवासुरके

चौरौदसागर मथनेपर अमृत पुनवार उल्लिखित हुआ

था । लोगोंमें ऐसा प्रवाद पड़ गया है, कि अमृत

पीनेसे जरा, मृत्यु प्रभृति कुछ भी नहीं होता ।

‘अमृतं यद्यपि स्वात् पीयूषे सलिले हृते । (मंदिनी)

अमृतक (सं० क्लो०) पीयूष, आव-हयात ।

अमृतकन्दा (सं० स्त्री०) कन्दगुड़ूची, कन्दगुड़ू ।

अमृतकर (सं० पु०) चन्द्र, चांद, जिस चीजकी किरणमें अमृत रहे ।

अमृतकल्परस (सं० पु०) अजीर्णाधिकारका रस, जो रस बदहज्मीपर दिया जाता हो ।

‘पृथी पारदगन्धी च सनानी कल्पलोहती ।

तथोरसं विषं पदं तत्सम इदं च भवेत् ।

भद्राशुभद्वैतार्थं विदिनं यतः पुनः ॥ (रसेन्द्रचारुचं पद्य)

अमृतकुण्ड (सं० स्त्री०) अमृतपात्र, जिस भरतनमें आव-हयात रहे ।

अमृतकुण्डली (सं० स्त्री०) १ कन्दोविशेष । चान्द्रा-यणके अन्तमें हरिगौतिकावासे दो पद मिलनेसे यह कन्द बन जाता है । २ वाद्यविशेष, कोई बाजा ।

अमृतकेशव (सं० पु०) अमृतप्रभाका बनवाया हुआ कोई मन्दिर । (राजतरङ्गिणी)

अमृतचार (सं० स्त्री०) नौसादर ।

अमृतगति (सं० स्त्री०) कन्दोविशेष । इसके प्रत्येक चरणमें एका नगण, एक जगण ; पुनः एक नगण और अन्तमें शुद्ध अक्षर रहेगा ।

अमृतगर्भ (सं० पु०) अमृतं ब्रह्म गर्भे अभ्यन्तरे यस्य, बहुव्री० । १ जीव, जान । २ ब्रह्मा । ३ निद्रा, नींद । (त्रि०) ४ अमृतपूरित, आव-हयातसे भरा हुआ ।

अमृतगुड़िका (सं० स्त्री०) अजीर्ण रोगकी बटी, जा गोली बदहज्मीपर दी जाती हो ।

‘उषाद्रन्ध्रविषम्भोजिकसापारदैः समैः ।

भद्राशुभद्वैतार्थं विदिनं यतः पुनः ॥ (रसेन्द्रचिन्तामणि)

अमृतचिति (सं० स्त्री०) अमरत्व प्रदान करनेवाली यज्ञोय ईंटका सङ्घ ।

अमृतज (सं० त्रि०) पीयूषसे उत्पन्न, जो आव-हयातसे पैदा हो ।

अमृतजटा (सं० स्त्री०) अमृतमिय रोगनाशिनी जटा यस्याः, बहुव्री० । जटामांसी, जटामासी ।

अमृतजा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर ।

अमृततरङ्गिणी (सं० स्त्री०) चन्द्रन्धोत्पन्ना, चांदनी, जिस चीजकी सहर आव-हयात-असो रहे ।

अमृतता (सं० स्त्री०) अमृतल देको

अमृतत्व (सं० क्ली०) अमृतस्य भावः त्व। सुखि, निजात।

अमृतदान (हिं० पु०) खाद्यवस्तु रखनेका पात्रविशेष, जिस बरतनमें खानेकी चीज रखे। यह टकनेदार रहता है।

अमृतदीधिति (सं० पु०) अमृतमिष द्रविकरौ दीधितिः किरणोऽप्य, बह्व्री०। चन्द्र, चांद, जिस चीजका किरण अमृतकी तरह तबीयतकी आसूदा करे।

अमृतद्युति (सं० पु०) अमृतमिष द्रविकरौ द्युतिर्दीप्तिर्यस्य, बह्व्री०। चन्द्र, चांद।

अमृतद्रव (सं० त्रि०) अमृत बरसानेवाला, जिससे अमृत टपके।

अमृतधारा (सं० त्रि०) अमृत बहानेवाला, जिससे अमृत बहे।

अमृतधारा (सं० स्त्री०) अमृतस्य धारा इ-तत्। १ अमृतविस्तार, आब-हयातका फैलाव। २ छन्दो-विशेष। इसके प्रथम पादमें आठ और द्वितीय पादमें दस अक्षर रहते हैं।

अमृतधुनि (हिं०) अमृतधनि देखो।

अमृतध्वनि (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष। इसमें २४ मात्रा और प्रथम एक दोहा लगायेंगे। इसतरह यह छः चरण रखता है। फिर प्रत्येक चरणमें तीन-तीन यमक पड़े, जिसपर हिल वणका प्रयोग या झटका बैठेगा। प्रायः इसे वीररसपर ही अधिक लिखते हैं।

अमृतनाद (सं० पु०) अमृतमिष आध्यायकः नादः स्रोतो यस्य, बह्व्री०। ज्ञापयन्नुर्वेदान्तर्गतं उपनिषद् विधिम्।

अमृतनादोपनिषत्, अमृतनाद देखो।

अमृतनालिका (सं० स्त्री०) अमृतस्य खादुरसस्य नालीय, इ-तत्। १ कर्पूरनालिका विशेष। २ पक्वान-विशेष।

अमृतप (सं० पु०) अमृतं समुद्रमन्थनोद्भूतं पानिं रचति असुरेभ्यः, पा रचणे क। १ विष्णु। समुद्रमन्थन-से अमृत निकालनेपर देवीने सेना चाहा था। किन्तु विष्णुने मोहिनीमूर्ति बना उसी अमृतकी

देवताओंके लिये बचाया। इसीलिये विष्णुका नाम अमृतप अर्थात् अमृतके रक्षाकर्ता पड़ा है।

अमृतं पिबति, अमृत-पा पाने क। २ देवता, जो अमृत पीता हो। (त्रि०) अमृततुष्य मधु प्रभृति पानकर्ता, जो आब-हयात जैसा शब्द वगैरह पोता हो।

अमृतपत्र (सं० पु०) अमृतस्य सुवर्णस्य पत्रः, अवि-नाशकत्वात् आत्मोय इव। १ अग्नि, पाग। अग्नि सकल वस्तुकी दग्ध और विनष्ट कर डालता, किन्तु स्वर्ण को कोई हानि नहीं पहुंचा सकता; वरं उसका गुणागुण देखा देता है। इसीलिये अग्नि को अमृतपत्र कहेंगे। २ स्वर्णवत् वर्णके पत्रसे युक्त पत्ती, जिस चिड़ियेके पर सोने-जैसे चमकें।

अमृतप्राशघृत (सं० क्ली०) काय प्रभृति नाना प्रकार रोगोंका मद्योपकारी घृत विशेष। चार सेर गायके घीकी थोड़ी सी हल्दीके साथ मिला और मूच्छा करके पन्द्रह दिन रख दे। फिर ज्ञाथके लिये सुपक्व आम-लकौका रस, भूमिकुभाण्डका रस, जखका रस, बधिया बकरेके मांसका ज्ञाय और बकरीका दूध चार चार सेर ले। सात सात दिन बाद एक एक वस्तुको घीके साथ पाक करे।

कल्पायं—जीवक, ऋषभक, विष्णुका मूल, जीवन्ती, सींठ, गठी। मासपर्वी, चक्रकुल्या, मापपर्वी, सुदपर्वी, मेद, महामेद, कड़ोल, चौरकाकोली, कण्टकारी, इचतो, खेतपुनर्णवा, रत्नपुनर्णवा, ज्येष्ठीमधु, कोंचका बीज, शतमूल, ऋद्धि, परुपफल, द्वाघ्राणयष्टिका मूल, सुनका, सिंवाड़ा, भूम्यामलकी, भूमिकुभाण्ड, पीपल, बहेड़ा, कुलके बीजका गूदा, अखरोट, बादाम, पिण्डखजूर, फालसा—प्रत्येक दो दो तोला रहे।

पाक सिद्ध हो जाने पर कल्कद्रव्य छानकर शीतल घृतमें मधु दो सेर, चीनी सवा छः सेर; मरौचचूर्ण, दासचीनीचूर्ण, बड़ी इलायचीका चूर्ण, तैजपत्र चूर्ण, और नागकेगरका फूल प्रत्येक आधा आधा पल लेकर एक साथ मिला दे।

''जीवकवर्षिकी बीरां जीवन्ती नागरं शठीम्।

अतः पर्वणोर्ध्वं काकोलीं द्विदक्षिणात्॥

पुनर्धरे हे मधुकामाभ्युदायं यथावतीम् ।
 प्लाहिं पदपत्रं धात्रीं खरीकं हृत्पत्रं तथा ॥
 मण्डाटकनामजर्को पर्यथा पिप्पलीं वनाम् ।
 बःपाचोद्भवातादखञ्जं रामिषुवाणि च ॥
 फलानि चैवमादीनि कल्कान् कुर्वते क्वापि कान् ।
 धावोकसविदारौघकागमांसरमन् ॥ प्रथः ॥
 दत्त्वा प्रख्यान्निदान् भगान् घृतप्रस्थं विपावधेत् ।
 प्रथमं मधुनः शीते मकराहं तुनां तथा ॥
 प०ाहं कश्च मरिचक्येलापत्रकेशरम् ।
 विनौय च मूँयेतव्याङ्गिद्याग्नायां यथावत् ॥
 चम्पतप्राम् इत्येव मरुपायमयोपनः ।
 सुराष्टतमये पथ्यं धीरमांसरसाग्निनः ॥
 मधुककचतपोषदुर्बं अस्याधिपौडितात् ।
 श्रीप्रसन्नानकुयमान् ध्वरपीनां च इवेत् ॥
 कासादिक्वाञ्जरासदाः श्लेष्वास्विशतुम् ।
 पुषदो षडि.....दाहयनचमपः ॥" (प्रथोनाम, त)

प्रकारान्तर—गायका घी ४ सेर लाये। क्वायायं
 वधिद्या वकरैका मांस १२७ सेर, ६४ सेर जलमें सिद्ध
 करे। जब १६ सेर रह जाय, तब छतार ले; अश्वगन्ध्या
 क्वायायं ऐसा है,—वकरैका दूध १६ सेर मंगाये।
 सात सात दिन बाद एक एक द्रव्य घृतके साथ पाक
 करे। कल्कार्थं श्वेत खरेटाका मूल, गेहूँ, अश्वगन्धा,
 गुलबन्द, गोघृष्ट, कमीर, त्रिकटु, धनिया, तालाडुर,
 त्रिफला, मृगनाभि, कौंचका बीज, मेद, मझामेद,
 केजकी खूजो जड़, जौषक, ऋषभक, मठी, दाहहरिद्रा,
 म्रियङ्गु, मञ्जिष्ठा, तगरपादुका, तालीशपत्र, इलायची,
 तेजपत्र, दाहचीनी, नामकेकर, जातीपुष्प, रेणुक,
 सरलकाष्ठ, जैत्री, छाटी इलायची, उत्पल, अनन्तमूल,
 तैलाकुचाका मूल, जावन्ती, ऋद्धि, वृद्धि, उडुस्वर—
 प्रत्येक दो दो तोला डाले। पाक सिद्ध हो जाने पर
 कल्क द्रव्यका छानकर शीतल घृतमें एक सेर चीनी
 मिला दे। मात्रा दो तोला होगी।

यह सब घी थोड़े गर्म दूधके साथ सेवन करना
 पड़ता है। इससे सब तरहके कासरोग, ध्वजभङ्ग,
 देहिक दुर्बलता आदि नष्ट हो जाती, मरीर सुष्ट और
 बुद्धिकी तेजोवृद्धि होती है। फिर कलेवर कन्दर्पकी
 तरह हो जाता है।

“क्वामांसं वज्राद्ये च कानिभ्यां तथेव च ।
 कम्पद्रोषे विपक्वं कुर्वान् पादावशेषितम् ॥
 घृतप्रस्थं पचेत्तेन चजाचौरं चतुर्गुणम् ।
 मूँच्छं नाप्ये प्रदातव्यं कुडुमच विकारिणिकम् ॥
 बलासुशय गोधूमं शययन्था तथासदा ।
 गोघृष्टच कमीरश्च त्रिकटुश्च सपान्यकः ॥
 तानाह रस्ते फलश्च कम्पुरीशुभ्राली ।
 मंदि हे च तथा कुटं जौषकश्च भकी मठी ॥
 दासौं त्रिषु मंजिष्ठा नतं ताथीशपत्रकम् ।
 एलापत्रकश्च माव् जातीकुसुमरेचुकम् ॥
 सरनं जातिशोषश्च मूँसे लोतुपनश्चरिव ।
 मूलं विनवथ जीवन्ती षडिहरी उडुस्वरम् ॥
 प्रत्येकं कश्च मानुन् पेषयित्वा विनिक्षिपेत् ।
 वज्रपूते सुशीते च विनाग्दद्याच्छरावकम् ॥" (मेरुगरजावन्ती)

यह अमृतप्राय ध्वजभङ्गाधिकारपर दिया
 जाता है।

अमृतप्रायावलेह (सं० पु०) राजयन्त्राका भवलेह,
 जो टीला पाक चयरीगपर दिया जाता हो।

“धीरे धात्री च मञ्जिष्ठा घोरिषाश्च तथा रतैः ।
 पचेत् सन्नेहं तपस्यं मधुरैः कषैश्चक्रितैः ॥
 द्राघादिचन्दनीशोरेः शर्करोत्पन्नपत्रकैः ।
 मधुचकुसुमानना काशमरीशयश्च कनैः ॥
 प्रस्राहं मधुनः शीते मकराहं तुनां तथा ।
 प्लाहिं कश्च च मूँषं लगेनापत्रकेशरान् ॥
 विनोय तत्र च विद्यान्मायां तिथ्यं मृगवितः ।
 चयतयाग्निथे तद्विषां परिकोतितम् ॥" (भावप्रकाश मन्थमाल)

काङ्गोल, चीरकाङ्गोल, धात्री, मञ्जिष्ठा यह सब
 द्रव्य एक एक पैसे भर और षट्, अश्वत्थ, उडुस्वर,
 पाकर इन हृत्पत्रोंके लव् (छात) एक एक पैसे भर
 इन सब वस्तुओंका क्वाय बनाकर फिर सुनक्का, किम-
 मिग, चन्दन, खस, नीलकमल, पद्मकाठ, सुलहटी,
 लौंग, धनन्तमूल, काशमरी गन्धवण इन द्रव्योंका
 कल्क तैयार करके चार सेर घृतमें पाक करना होता
 है। पाक सिद्ध हो जाने पर दो सेर मधु (यहद)
 दो सेर चीनी, तथा दालचीनी एलायची छोटी, तेज-
 पत्र, कमीर इन वस्तुओंका प्रत्येक आधा आधा पल
 चूर्ण मिलाना चाहिये। इसका नाम अमृतप्रायावलेह

है। इसको प्रतिदिन सेवन करनेसे राजरक्ष्मारोग निरमूल हो जाता है।

अमृतफल (सं० ह्री०) अमृतमिव स्वादु फलम्, मध्यपदलोपी कर्मघा०। १ रुचिफल, नास्पाती।

“गृध्र वातघ्नं स्थायत्” द्रविक्तुं युक्तम् ॥” (सदनपात्र)

“अमृतम् फलं धातुवर्धकं मधुरं नृद।

रुच्यसाधं वातघ्नं त्रिदोषघ्नं च शामकम् ॥” (शैथिलिरसु)

(पु०) अमृतमिव फलं यस्य, बहुव्री०।

२ परवल। ३ पारद, पारा। ४ वृद्धिनामक औषध।

५ धात्रीहृत्, आंवलेका पेड़।

अमृतफला (सं० स्त्री०) १ दाचा, दाख। २ किश-
मिश्र। ३ आमलकी, आंवला। ४ लघुखजूरी,
खिन्नी।

अमृतवसु (सं० पु०) अमृतस्य वसुः सोदरः एक
समुद्रोत्पन्नत्वात्। १ चन्द्र, चंद्र। २ अश्व, घोड़ा।
चन्द्र और अश्व दोनों समुद्रसे अमृतके साथ पैदा
होनेसे अमृतवसु कहते हैं। ३ देवता, फुरिष्ठा।

अमृतवाजार (पूर्वनाम मागुरा)—बङ्गालके यमोर
जिल्लाका एक गांव। इस ग्रामके जमीन्दार स्वर्गीय
त्रिगिरकुमार घाव और उनके भाइयोंने इसे अपनी
माता अमृतमयीके नाम पर बसाया था। अमृतवाजार
अक्षा० २१° ८' उ० और द्रवि० ८८° ६' पू० पर अव-
स्थित है। पहले यहां १८६८ ई०में बङ्गालियोंका
सुप्रसिद्ध अंगरेजी सामाजिक समाचारपत्र अमृत-
वाजारपत्रिका छपते रहा। अब वहाँ कलकत्तेसे
दैनिक रूपमें निकलता है।

अमृतवान (हिं० पु०) रोगनी बरतन, जो मट्टीकी
हांडी लाहके रोगनसे बनती हो। इसमें गुलकण्ठ,
मुरब्बा, अचार, घो, मकखन वगैरह रखा जाता है।

अमृतभस्मातकघृत, (सं० ह्री०) भिलावै प्रमृति द्रव्य-
द्वारा प्रसृत कुष्ठादि रोगका उपयोगो घृत-
विशेष। षाठ सेर सुपक भिलावैको ईंटकी सुर्धूमि
हालकर एक दूसरी ईंटसे अच्छी तरह घिसे।
घिसनेके समय खूब सावधान रहे। हाथमें लुगाव
लग जानेसे सर्वाङ्गमें कण्डु निकल आ सकते हैं, फिर
सारा शरीर भी फूल जाता है।

घिसना अच्छी तरह हो जानेपर टीकरी अथवा
बरतनमें रखकर जलसे बारबार धोये। फिर धूपमें
सुखाकर सब भिलावैको सरीतसे दो दो टुकड़े कर
डाले। उसके बाद ६४ सेर जलमें सिद्ध करे;
जब १६ सेर रह जाय, तब उतार ले। ठण्डा हो
जानेपर उस छाथको छानकर ८ सेर गायके दूधके
साथ सिद्ध करे। दो सेर रह जानेपर उतारकर
घौरका अंग्र छानकर बाकी काथकी ८ सेर गायके
घीके साथ पाक करे। पाक शेष हो जानेपर
उतार कर रख दे। जब ठण्डा हो जाय, तब
४ सेर साफ धोनी मिलाकर अच्छी तरह हिला दे।
इसको मात्रा १ तोलासे १४ तोलातक वा उससे भी
अधिक होगी। थोड़ेसे दूधमें मिलाकर सेवन करे।
इससे खुराक खून साफ होता और शरीर बलिष्ठ पड़
जाता है।

अमृतभस्मातकावलेह (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका
अवलेह, जो ढीला पाक कोढ़पर खिलाया जाता हो।
अमृतभस्मातकघृत देखो। इसको इसतरह बनाते हैं,—

“भस्मातकप्रयुगं” विला दीचलने चिपेतु।

प्रस्यहं गुहृन्थाय चषं तलाभसि चिपेतु ॥

शरावनामकं सर्पिः दुग्धं स्वादादकं तथा।

सितां प्रकृतितां दद्यात्प्रश्याथं माधिकं चिपेतु ॥

सर्वाधिकव भाण्डे तु पथेन्सुखद्विना गतेः।

सर्वद्वे घनोयुते पावकादवतारयेत् ॥

तत चेष्याथि चूर्णानि युनी विमलियामताः।

माकुची चाप दद्रुगः पिपुमर्दा इरीतकी ॥

अथो धातो च मधुिहा मरिचं नागरं लथा।

दमानी सुंरुं सुप्तं लथेता मणिकेरम् ॥

पर्यंतं पतकं बागुमीरं चन्दनं तथा।

शोषण्य च बीजानि कपूंशे रक्तचन्दनम् ॥

शुष्कं पलाशं मातानां च संशेयानि च चिपेतु।

पत्रमातानिदं प्रातः समश्रीयात्सर्वे हि ॥” (भावनकाम-मन्थभाण)

दो पसेरी यानी १० सेर भिलावैकी त्वचा निकाल-
कर १) मन यानी ४० सेर पानीमें डाले और उभी
लसमें दो पसेरी (१०) गुड़चीकी कूटकर छोड़ दे।
फिर १-सेर घृत, आधा मन (२० सेर) दूध १-पसेरी
(५/४सेर) चीनी और आधा पसेरी (२१/४सेर) गजद-

मिला इन सब द्रव्योंकी एक पात्रमें रख शनैः शनैः घीमी धाँचसे पकाना चाहिये। जब सब द्रव्य मिल कर एक हो जाय, तब विपा, गुडूची, धातुकी, ददुघ्न, निम्बकी त्वचा, हर, बड़ेरा, भाँवला, मख्रिट, काली मिर्च, नागरमोथा, कषा, यमाइन, सैन्धव, सुस्ता, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, पर्पट, तेजपत्र, बाल अथवा जटामांसी—खसू, चन्दन, इन सब वस्तुओंका प्रथक् प्रथक् आधा आधा पल चूर्ण मिलाना होता है। इसको अमृतमहलातक कहते हैं। प्रतिदिन जलके साथ एकपल मात्रा खानेसे सब प्रकारका कौट निर्मूल होता है।

अमृतमहलातकी (सं० स्त्री०) रसायनका योग-विशेष। पका हुआ जितना मिलावां हो, उतना ही डैंटका चूर्ण मिलाकर अच्छीतरह रगड कर जलसे धोकर हवामें सुखाना चाहिये। फिर सूखे हुए मिलावेंको छीलकर प्रथक् कार चागुण जलमें पाक करे। जब चौथाई श्रेय रहे, तब उतार कर फिर बराबर दूधमें पाक करे। जब चौथाई श्रेय हो, तब पुनः उतार कर शीतल हो जानेपर तुल्य घृतमें पाक करे। जब पाक सिद्ध हो जाय, तब सब द्रव्यसे आधी चीनी मिलाके खूब मथ (घोट)के एक पात्रमें रखके ७ दिनतक रहने दे। फिर इसे कायेंमें लाना चाहिये। दुसरी इसतरह बनायेंगे—

पकेहुये मिलावेंको द्विधा विदीर्ण कर चौगुण जलमें पाक करके चतुर्थीय श्रेय रहने पर उतार कर पुनः चतुर्गुण दूधमें पाक करके पुनः तुल्य घृतमें पाक करना चाहिये, जब गाढ़ा हो जाय, तब १६ पल मिश्री या चीनी मिलाकर किसी पात्रमें ७ दिनतक रख छोड़ना चाहिये। पद्यात् इसे सेवन करना होता है।
अमृतभुज् (सं० पु०) अमृतं भुज्के; अमृत-भुज्-किपू, ६-तत्। १ देवता, फुरिष्ठा। (त्रि०) अमृतमयाचितं यज्ञशिट्टांश्च वा भुज्के। अयाचितं अथच अन्य-कर्त्तव्यं यद्वाहेतु भागीत वस्तुका भुज्क, यज्ञके शेषावका भोक्ता, धर्मांगी और इच्छतसे लाये हुयी चीजकी खानियाला, जो यज्ञका वचा हुआ अन्न खाता हो।

अमृतभू (सं० त्रि०) जन्ममरणशून्य, जो न तो पैदा होता और न मरता हो।

अमृतमञ्जरी (सं० स्त्री०) १ गोरचदुग्धीसुप, गोरखमुण्डी। २ सामान्यन्वरका रस विशेष, मामुली बुखारपर दिया जानियाला कोई रस। इसे खाँसीपर भी टें और मात्रा दो या तीन गुञ्जा रहेंगे।

"दिङ्, मरिचं टङ्" विष्णुर्भी विभक्त ७।
आतीकीषं समं सर्वं जन्तोपशिविन्दयेत् ॥" (रघुनन्दारसंभव)

दिङ्, मरिच, पिप्पल, विप, जयित्नी यह सब वस्तु सम भाग कूटकर नीपुके रसमें घोटना होता है।

अमृतमण्डुर (सं० पु०) परिणामशूलका रस विशेष, पेटकी दर्दकी कोई दवा। इसे इसतरह बनायेंगे,—

"मण्डुरस्य पलायटो शतावरो रषं तथा।
चौराशं दधि प्रत्येकं पिशा चतुःपचं पचं नृ ॥" (रघुनन्दार)

शुद्धलोहा ८ पल शतावरो का रस, दूध, घृत, दधि, यह सब प्रत्येक चार चार पल एक साथ पचाना होता है।

अमृतमति (सं० स्त्री०) अमृतगति नामक शब्द-विशेष।

अमृतमन्य (सं० पु०) दुग्धादिपरिगोक्षित मन्य, दूध वगैरहका मया जाना।

अमृतमन्यन (सं० स्त्री०) अमृतमन्य देखो।

अमृतमय (सं० त्रि०) १ अमर, न मरनेवाला २ अमृतसे परिपूर्ण, जिसमें भाव-हयात भरा रहे।

अमृतमहल (हिं० स्त्री०) महिसूर पान्तकी कोई भेष।

अमृतमालिनी (सं० स्त्री०) दुर्गा देवी।

अमृतयोग (सं० पु०) अमृतनामा योगः, मध्य-पदलोपी बह्व्री०। वार और नक्षत्र या वार और तिथि घटित योग विशेष। रवि एवं सोमवारको पूर्णा, मङ्गलवारको भद्रा, बुध एवं शनिवारको नन्दा, बृहस्पतिवारको जया और शक्रवारको रिक्ता तिथि होनेसे तिथ्यामृतयोग कहायिगा। फिर रविवारको हस्ता, सोमवारको श्रवणा, मङ्गलवारकी रेवती, बुध

वारको अनुराधा, हृद्यतिवारको पुष्या, शुक्रवारको रविवारी और शनिवारको रोहिणी पढ़नेसे मन्त्रवास्तु-योग होता है। इस योगमें भद्रा, व्यतीपात प्रशक्तिका अशुभ प्रभाव न पड़ेगा।

“दिनकरकरपुत्रः सोमधीश्वे न भाषि

हरणधरितमीमः सोमपुत्रोऽनुराधा।

सुरपुत्ररपि पुत्रे रविवती शुक्रवरे

दिनकरसुतपुत्रा रोहिणी धीश्वरः ॥” (अविषंदिता)

अमृतरश्मि (सं० पु०) चन्द्र, चांद।

अमृतरस (सं० पु०) अमृतस्य रस इव रसो यस्य, मध्यपदलोपो बहुव्री०। १ अमृत-जैसा सुखादु वस्तु, जो चीज भावहयातकी तरह ज्ञायकेंदार हो। अमृतस्य रसः सारः, इ-तत्। २ सुधारस, अर्क, भावहयात। अमृतं निर्वाणं रस इव यस्य बहुव्री०। ३ परमात्मा।

अमृतरसा (सं० स्त्री०) अमृतस्य रस इव रसो यस्याः, मध्यपदलोपी बहुव्री०। कपिला द्राचा, काला अङ्गर।

अमृतलता (सं० स्त्री०) अमृता चासी लता चेति; कर्मधा; पूर्वपदस्य पुंषट्प्रथमः। गुडूची, गुर्च।

अमृतलतादिपुत्र (सं० स्त्री०) पाण्डुरोगके अधि-कारका घृतविशेष, जो घौ यरकानु या कंबल बाईपर दिया जाता हो।

“अमृतलतारघकल्ब” प्रसाधितं हरणविधिः मरि।

और “चतुर्धमेतदितरेषु ह्यजीवाकार्थेभ्यः ॥” (भाष्यप्रथम मध्यभाग)

गुडूचीका रसकल्ब, भैंस का घृत और चौगुणा दूध एकत्र मिश्राकर हलीमक रोगसे पीड़ित मनुष्यको देना चाहिये। यह औषध शीघ्र गुण दिखानेवाला है।

अमृतलतिका, अमृतलता देखो।

अमृतलोका (सं० पु०) स्वर्ग, दिङ्दिशत।

अमृतवटक (सं० पु०) अमृतका लड्डू, जो लड्डू खानेसे अमृतकी तरह गुण करता हो। इसे सन्नि-पातातिसार पर देते हैं।

अमृतवटी (सं० स्त्री०) अग्निमान्द्रका रसविशेष, जो रस भूष न लगनेपर खिलाया जाता हो।

“अमृतवटाकमरिचेः विपचनप्रमादिकेः क्रमः ॥” (मैत्रयण्यब्राह्मणे)

२ तोले विय, ५ तोले कड़ि और ८ तोले मरिचको कूट-पोस मठर-जैसी गोली बनाना चाहिये।

अमृतवपु, अमृतवपु देखो।

अमृतवपुस् (सं० पु०) अमृतमयं अमृतेन वर्हितं वा वपुः शरीरं यस्य, मध्यपदलोपी बहुव्री०। चन्द्र, चांद। सूर्य अपने किरण द्वारा चन्द्रमें सुधारूप अमृत पहुंचाता, इसीसे जलपचकी बाद चन्द्र बढ़ा करता है। कहा जाता कि चन्द्रका शरीर अमृतमय है। वह अपने देहकी अमृतमय शीतल जलीय कथा द्वारा उद्भिद्गणको बढ़ाया करता है। अविनश्वर परमात्मा और विष्णुको भी अमृतवपुः कहेंगे।

अमृतवर्तिका (सं० स्त्री०) अमृतकी वर्तिका। यह औषध मृत्युञ्जयतन्त्रमें लिखा है—त्रिफल, त्रिफला, चाण्डी, गुडूची, चित्रक, नागकेसर, शण्डी, शङ्कराज, निगुण्डी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, यक्षासन, लवक एला, गाभारौत्वक, विडङ्ग और वचका दो-दो पल चूर्ण पचास पल कामरूपदेशीय गुडमें मिला ३६० बत्ती बनाते हैं। एक बत्ती भोजनसे पहले या सभ्याकी शीतल जलके साथ खाना चाहिये। इसके सेवनेसे शरीरका समय रोग दूर हो जाता है।

अमृतवर्ष (सं० पु०) सुधाश्लि, आम-हयातकी वारिग।

अमृतवजरी (सं० स्त्री०) १ गुडूची, गुर्च। २ बड़ी पोय।

अमृतवसिका अमृतवजरी देखो।

अमृतवल्ली (सं० स्त्री०) अमृतावल्ली लता, कर्मधा०। चित्रकूटप्रसिद्ध गुडूची, चित्रकूटकी मशहर गुर्च। इसके गुण लिखा है,—

“अमृतस्य च वल्गो सा हितकारी विवापदा।

किंचिन्निता कराम्याधिषरो कुष्ठामनाशिनो।

कामनत्रचदीपयो अधिमिः परिशीलता ॥” (वैद्यकनिघण्टु)

अमृतवल्लीको ऋषियीकी हितकारी, विवापदा, किंचिन्निता, कराम्याधिषरी, कुष्ठामनाशिनो, और कामलवण-शोथघ्नी बताया है।

अमृतवाका (सं० स्त्री०) पक्षीविशेष, किसी किष्ककी चिड़िया।

अमृतविन्दूपनिषद्—अथर्ववेदका उपनिषत्विशेष ।

अमृतसंयाव (सं० स्त्री०) अमृतमिव संयावम्, मध्यपदलोपी कर्मधा० । घृतपक्क यवचूर्णं प्रस्तुत पकान्न-विशेष, यवके भाटेका धीमें पकाकर बनाया हुआ भोजन । इसके प्रस्तुत करनेकी प्रणाली यह है,—पहले यवका चूर्ण घृतमें पकाकर नये पात्रमें रख लेना चाहिये । फिर उसमें कालीमिर्च, चीनी और कपूर मिलायेंगे । यह विलक्षण सुखादु और पिप्पल होता है ।

अमृतसङ्गम (सं० पु०) खपरिका, खपरिया ।

अमृतसञ्चोवनी (सं० स्त्री०) गोरचदुग्धी नामद्वेष, गोरखमुष्टी ।

अमृतसम्भवा (सं० स्त्री०) अमृता इव सम्भवति, सम्-भू-षच् । गुडूचो, गुर्च ।

अमृतसर—१ पञ्जाबका एक डिविज़न या कमिश्नरी ।

यह कमिश्नरी अक्षा० ३१° १०' एवं ३३° ५०' ३०" उ० और द्रावि० ७४° १४' ४५" तथा ७५° ४४' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है । इसका क्षेत्रफल ५३५४ वर्गमील निकलेगा ।

२ पञ्जाब प्रान्तका एक जिला । यह जिला अक्षा० ३२° १०' एवं ३२° १३' उ० और द्रावि० ७४° २४' तथा ७५° २७' पू०के बीच पड़ता है । इसका क्षेत्रफल १५७४ वर्गमील लगेगा । जिलेसे उत्तर-पश्चिम रावी नदी बहती, जो इसे स्यालकोट जिलेसे अलग करती है । अमृतसरके उत्तर-पूर्व गुरदासपुर जिला आता है । दक्षिण-पूर्व व्यास नदी इसे कपूरथला राज्यसे घृयक् करती है । इसके दक्षिण-पश्चिम लाहौर जिला लगता है ।

३ पञ्जाबवाले अमृतसर जिलेकी एक तहसील । यह तहसील अक्षा० ३१° २८' १५' एवं ३१° ५१' उ०, और द्रावि० ७४° ४४' ३०" तथा ७५° २६' १५" पू०के मध्य लगती है । इसका क्षेत्रफल ५५० वर्गमील पड़ेगा ।

४ पञ्जाबमें सिखोंका प्रधान पवित्र स्थान । यह नगर लाहौरसे १६ क्रीस दूर, अक्षा० ३१° ३७' १५" उ० और द्रावि० ७४° ५५' पू० पर अवस्थित, तथा वाणिज्य-

के लिये विशेष प्रसिद्ध है । हमलोग कायो, हन्दावन आदि तीर्थस्थानाको जिस तरह भक्ति करते हैं, मसलमान जिस तरह मक्काको पवित्र समझते हैं, बौद्धोंके लिये बोधगया जिस भांति पुण्यक्षेत्र है और यहूदी तथा ईसायियोंके लिये जरुबेलम जैसी पवित्र भूमि है, सिखोंको दृष्टिमें अमृतसर भी ठीक वैसा ही है । यहाँ 'अमृतसर' नामक एक बड़ा भारी सरोवर है, इसीसे सिख लोग इस नगरको भी 'अमृतसर' कहते हैं ।

चार सौ वर्ष पहले यहाँ एक छोटेसे गांवके सिखा और कुल्ह भो न था । उस वक्त लोग इसे 'वाक्कार' कहते थे । पीछे अकबर बादशाहके राजत्वकाल सन् १५७४ ई०में सिखोंके चतुर्थ गुरु रामदाससिंहने वर्तमान सरोवरको खुदवाकर उसको चारो ओर छोटे छोटे मन्दिर बनवा दिये । उस समय इस नगरका नाम रामदासपुर हुआ । अन्तमें गुरु रामदासके सन्तान अर्जुन सिंहने यहाँ सिखोंकी राजधानी प्रतिष्ठित करके इसका नाम 'अमृतसर' रख दिया । वही नाम अबतक चला आता है । यहाँ सिख, हिन्दू और मुसलमान सभी लोग वास करते हैं । सब समेत लोकसंख्या प्रायः डेढ़ लाख होगी ।

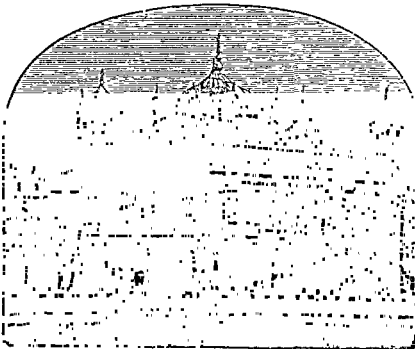
अमृतसरकी चारो ओर शहरपनाह बनी हुई है । उसमें तेरह फाटक हैं । पहले इसको चारो ओर खाई रहो । इसके अतिरिक्त आक्रमणसे नगरकी रक्षा करनेके निमित्त सिखोंने यहाँ जिला भी बनवाया था । परन्तु अब वह जिला नहीं रहा और उत्तर ओर जिलेकी खाई भी भर दो गई है । सन् १८०८ ई०में महाराज रणजित् सिंहने गोविन्दगढ़ नामक परिखावेष्ठित एक दुर्ग बनवाया था ; केवल वही अब तक खड़ा है ।

सन् १७६२ ई०में अहमदशाहके पुत्र तेमुरने अमृतसरके प्रधान-प्रधान मन्दिरोंको तोड़ डाला था । सिखोंने उन्हीं मन्दिरोंको फिर बनवाया । उसके बाद अहमदशाहने स्वयं आकर नये मन्दिरोंको फिर तोड़वा दिया । परन्तु केवल मन्दिरोंको ही ताड़ कर उनके मनका चीम न मिटा था । उन सब देवा-

लयोंके ऊपर गोहत्या करके उन्हेंने स्थानकी अपवित्र भी कर दिया। उसी समय अमृतसरमें जगह-जगह मसजिदें भी बनवायीं गई थीं। अहमदशाहके चले जाने पर उन मसजिदोंकी तोड़कर सिखलोग वहाँ सुभर काटने लगे अन्तमें यतमान मन्दिर बना।

अमृतसर बड़ा भारी सरोवर है। क्या शीघ्र और क्या वर्षा बारहों महीने उसमें जल भरा रहता है। सरोवरके ठीक वक्षस्थलपर सिखोंका देवालय है। यहाँ रात दिन सिखोंके ग्रन्थसाहबका पाठ हुआ करता है। सरोवरकी चारों ओर राजा, राजमन्त्री, प्रधान प्रधान सरदार एवं ग्रन्थान्य धनाढ्योंकी अदालतियाँ सुशोभित हैं।

अमृतसरके इस मन्दिरका नाम 'दरदार साहब' है। यह सफ़ेद पत्थरका बना हुआ है। देखनेमें बहुत बड़ा नहीं है। मन्दिरका गुम्बद ताँबेके पत्रका है, उसपर सोनेका पानी चढ़ा है। इसीसे लोग इसे सुवर्णमन्दिर कहते हैं। सोनेके पानी चढ़ाने में महाराज रणजित्नी बहुत धन व्यय किया था। इसके अतिरिक्त सिखोंने अहांगोर प्रभृति बादशाहोंकी कर्मोंसे बहुमूल्य प्रस्तरादि लाकर भीतर लगा दिये हैं। सरोवरके किनारे किनारे सफ़ेद पत्थर लगा हुआ है। घाटसे मन्दिरमें जानेके लिये सफ़ेद पत्थरका सुन्दर पथ बना है। मन्दिरको चारों ओर बरामदा है। प्रायः पाँच सौ अकाली पुरोहित इस देवालयकी परिचर्यामें नियुक्त हैं।



दरबार-साहब

सिंहद्वारसे प्रवेश करनेपर सामने पकालियोंका 'सुझ' प्रासाद दिखाई देता है। यहाँ सिख गुरुओंके अक्षर अक्षर रखे हुए हैं। यहाँ अनेक गाने बजानेवाले बैठे रहते हैं। प्रतिदिन धार्मिक गीत गानेके लिये ही वे लोग नियुक्त हैं। मन्दिरके भीतर प्रसिद्ध ग्रन्थ साहब विराजमान हैं। पुरोहित लोग पुण्यादि द्वारा प्रतिदिन ग्रन्थ साहबकी पूजा करते हैं। सब मिलाकर सिखोंके दश गुरु हैं—नानक, अहमद, अमरदास,

रामदास, अर्जुन, हरगोविन्द, हरराय, हरकण, तैज-वहादुर और गुरु गोविन्द सिंह। ग्रन्थसाहब या शाहि-ग्रन्थ नानकका रचा हुआ है। देवालयमें जाकर भक्तिपूर्वक ग्रन्थसाहबकी प्रणाम करनेसे पुरोहित लोग दर्शकोंको एक एक भागीवर्दात्मक फूल देते हैं।

मन्दिरकी चारों ओर कहीं यात्री लोग खान करते हैं; कहीं साधु संन्यासी बैठे दिखाई देते हैं; कहीं भक्तिभावसे बैठकर सिख लोग धर्मपुस्तककी नकल

करते हैं; कहीं दुकानदार कपड़े, कंधी और लोहेके अलङ्कार आदि नाना प्रकार वस्तु बेचते हैं। सरोवरकी पूर्व ओर दो बड़े बड़े स्तूप हैं। उनके ऊपर जानिसे चारो ओरका दृश्य अति मनोहर दिखाई देता है। “बाबा अतल” नामकी एक सभा है, उसकी गठनप्रणाली बहुत ही विचित्र है। बाबा अतलकी बगलमें कौलसर है। गुरुगोविन्द सिंहकी स्त्रीका नाम कौल था; वे बन्ध्या थीं। उन्हींके नामसे कौलसर प्रतिष्ठित है। मन्दिरमें जानिके पहले यात्री इसी सरोवरमें स्नान करते हैं। सरोवर किनारेके सुरम्य हवेलीकी शाखायें जलपर झुकी हुई हैं। उनपर सैंकड़ों पंखदार गिलहरी भ्रमना करती हैं। एक हचके नीचे सुनहला ताम्बफलक है। गुरुगोविन्द सिंह किस तरह अपनी पत्नी कौलकी लाहोरसे ले आये थे, इस ताम्बफलकपर उसी समयका दृश्य खुदा हुआ है। अमृतसरका ‘सन्तोपसर’ भी अति मनोहर स्थान है।

अमृतसरसे सात फीस दक्षिण ‘तरण-तारण’ नामक और एक प्रसिद्ध स्थान है। वहां भी एक पुष्पसरोवर है। वह प्रायः ४८४ हाथ लम्बा, ४८० हाथ चौड़ा और चारो ओर पत्थरसे बंधा हुआ है। महाराज रणजित् सिंहके पौत्र नवनिहाल सिंहने सरोवरके ईशानकोणपर एक स्तूप बनवा दिया था। वह अब तक विद्यमान है। उसके किनारे कीड़ी लोग रहते और नित्य पुष्पसरोवरमें स्नान करते हैं। गुरु अर्जुनसिंहके शायद कुष्ठरोग था। वही इस सरोवरकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। कहते हैं, कि व्याधिग्रस्त लोग तैरकर इस सरोवरके पार जानिसे नीरोग हो जाते हैं। प्रति भास कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको वहां अमावस्या नामका मेला लगता है। मेलेके दिन यात्री लोग आकर तरणतारणके जलमें स्नान और सरोवरकी प्रदक्षिण करते हैं। मेलेमें द्रव्यादिका क्रयविक्रय होता है।

अमृतसरके निकटकी भूमि बहुत उपजाऊ है। किसान बड़े दोषावकी भौल, व्यास और रावी नदीसे जल लाकर भूमिकी सींचते हैं। गेहूं, यव आदि

नाना प्रकारके शस्य, कपास, जूट, शन, केयर, तम्बाकू, अफीम एवं धीर धीर कितनी ही चीजें यहां पैदा होती हैं। यहां तिब्बत प्रभृति स्थानोंकी बकरियोंके रोयेंका बहुत बढ़िया शाल बनता है। अमृतसरमें कमसे कम ५००० करघे चलते हैं। काश्मीरके घादमी यहांके मजाजनोंके पास आकर उन सब करघोंमें शाल तय्यार करते हैं। इसके सिवा अमृतसरमें उत्तम रेशम भी उत्पन्न होता है। नाना स्थानोंके व्यवसायी यहां आकर अनेक प्रकारकी चीजें बेचते और खरीदते हैं। कहते हैं, प्रतिवर्ष प्रायः चार करोड़ रुपये चीजकी आमदनी और रफ्तानी होती है। अमृतसरोवर (सं० पु०) घोटक, घोड़ा।

अमृतसार (सं० पु०) अमृतस्य दुग्धस्य सारः, ६-तत् । १ घृत, घी। २ नवनीत, मखन। ३ लोहपाक-विशेष।

अमृतसारज (सं० पु०) अमृतमिव सारः तस्मात् जायते; जन-ड, ६-तत्। गुड़।

अमृतसारजा (सं० स्त्री०) शर्करा, शकर, चीनी, खांड।

अमृतसू (सं० पु०) अमृतं किरणरूपं सृष्टे विकिरति, सू-क्तिप्। १ चन्द्र, चांद। अमृतानां देवानां सः प्रसृतिः, ६-तत्। २ देवमाता, अदिति।

अमृतसोदर (सं० पु०) अमृतस्य पौष्ट्यस्य सोदरः एकस्थानोत्पन्नत्वात्, ६-तत्। १ उच्चैःश्रवा अश्व। समुद्रमन्थनके समय अमृतके साथ यह घोड़ा निकला था, उसीसे इसका नाम अमृतसोदर पड़ा। २ घोटक-मात्र, घोड़ा।

अमृतस्रवा (सं० स्त्री०) अमृतमिव स्रवति, स्रु-पवाचव् टाप्। १ रुदन्तोत्पत्ता। २ त्रायमाणा। (पु०) भावे अप्, ६-तत्। ३ अमृतसरण, आव-ह्रयातका टपकना।

अमृतसृत् (सं० त्रि०) अमृत टपकते हुआ, निःसंसे पावह्रयात वृषे।

अमृतहरीतकी (सं० स्त्री०) पौष्ट्यकी हरीतकी, आवह्रयातकी ह्र। यह अजीर्णपर चलती और इस-तरह बनती है;—

“शायकं शौरखचं च सुदृकं पट्टं पचकम्
यमागाम्पठपच लवङ्गं विहट्टं तथा ॥”
प्रत्येकं शमभामनु श्याचूर्णानि कारयेत्
सर्वं चूर्णं समं दद्यादमयाचूर्णं क्लृप्तम् ॥” (शारङ्गोपुरी)

धान्यक (धनिया), जीरा, सुस्ता, पश्लवण, यमानी (यमाईन), आमठपत्र, सवङ्ग, त्रिकटु, (सोंठ, पीपल, मरिच) इन सबके प्रत्येक समभागका चूर्ण करके सब चूर्णके बराबर हरीतकीका चूर्ण मिलाना चाहिये।

“तत्रै सगुण्डिप्रशियासति तदौजसुहृत् च कौपलिन ।
चूर्णं पचपट्टं नि हिङ्गुचारवनाजोमज्जोऽकथ ।
पुत्रे च सश्राव लषा समानं विपेतु गिरावोऽनिवासमथे ॥”
(श्रीवीणावत)

दूसरा—१०० हरीतकीका तक्रमें डाल दे।

जब बड़ फूल जाय, तो बीजको निकाल कर पट्टपण, पीपल, पीपलमूल, चाय, चित्रकमूल, सोंठ, मरिच, यह सब समभाग; पश्लवण, हिंङ्गु, यवचार, जीरा, कालाजीरा, वनयमानी समभाग—इन सब यस्तुर्षीका चूर्ण तय्यार करके एकमें मिलाकर हरीतकीके बीज-स्थानमें भर देना चाहिये। इसे अमृत-हरीतकी कहते हैं। यह अजीर्णमें बहुत लाभदायक होती है।

अमृता (सं० स्त्री०) न सृतं मरणमनया, टाप ।
१ गुलुश्च, गुर्च । २ आमलकी, श्रावला । ३ स्थूलमांस
हरीतकी, बड़ी हर । ४ तुलसी । ५ काष्ठधात्री,
अतीस । ६ मदिरा, शराव । ७ इन्द्रवारुणे, इन्द्रायण ।
८ पारावतपदौ, ज्योतिषती । ९ गोरचदुग्धा, दूधी ।
१० क्वाथतिविधा, काली सींगिया । ११ रक्तविहता,
लाल निसोत । १२ दूर्वा, दूब । १३ पिपली, पीपल ।
१४ लिङ्गिनी, मालकंगनी । १५ नीलदूर्वा, काली दूब ।
१६ श्वेतदूर्वा, सफेद दूब । १७ नागवल्ली, पान ।
१८ राक्षा, रसोत । १९ गरुडबन्नी । २० सूर्यप्रभा,
खरबूजा । २१ कन्दगुडूची । २२ स्फटिकारिका,
फिटकरी । २३ परीचिक्तकी माता ।

अमृताश (सं० पु०) अमृतमिव तसिकराः अंगवो
यस्य, बडूची०। चन्द्र, जिसका किरण अमृत-जैसा
रश्मिकर रहे।

अमृताचर (सं० त्रि०) अजर-अमर, जो कभी
मरता और गिरता न हो ।

अमृताख्यगुग्गुलु (सं० पु०) वातरक्त रोगपर दिया
जानेवाला अमृत नामक गुग्गुलु। चक्रपाणिदत्तकृत-
संघमें इसके वनानिका विधान इततरह लिखा है,—

गुडूची २ शरावक, गुग्गुलु १ शरावक और त्रिफला
प्रत्येक २ शरावकको ६४ शरावक जलमें डालकर
पाक करे। जब चतुर्विंश श्रेय रह जाय, तब आग-
परसे उतार कर उसे फिर पाक करना चाहिये। गाढ़ा
हो जानेपर थोड़ा उष्ण रहते दन्त्यादिका चूर्ण प्रत्येक
४ तोलक और त्रिवृत् चूर्ण २ तालक डाल अच्छी-
तरह घोटकर मिला दे। मात्रा बलाबल देख कर
देना होगा।

अमृताख्यलौह (सं० पु०-स्त्री०) रक्तपित्ताधिकारका
लौह, जो लौह रक्तपित्तपर दिया जाता हो। इसके
वनानिकी रोति यह है,—गुडूची, विहता, दन्ती,
सुण्डितिका (मुण्डो), खदिर, हृष, चित्रक, अङ्ग-
राज, तालमखाना, कमलकन्द, पुनर्णवा, बरियार,
सहिज्जन, ऊखका मूल, हृददारक, गोरचककैटी,
गतावरी, कन्द, चाय, पिपलामूल, कुष्ठ, और
ब्राह्मणयष्टिका यह सब द्रव्य प्रत्येक एक पल,
१६ सेर जलमें डालकर पाक करे। जब अष्टांग
(२ सेर काय) रह जाय, तब आग परसे उतार ले।
फिर १ सेर त्रिफलाको २ सेर जलमें पचाये। जब
१ सेर काय बाकी रहे, तब आगसे उतार शह लौह
१६ पल, शह अश्वक ४ पल, शह गन्धक ४ पल, गुड
८ पल, गुग्गुलु २ पल, छत १ सेर इन सबको मिला
पाक करना चाहिये। जब पाक मित्र हो जाय, तब
आगसे नीचे उतारि। शीतल होनेसे यह ८ पल,
गुडस्वर्ण-भाक्तिकचूर्ण २ पल, मिलाजतु ४ तोलक
इन सब द्रव्योंको मिलाना चाहिये।

अमृतागुग्गुलु (सं० पु०) राजयक्ष्मापर दिया जानेवाला
गुग्गुलु। इसके वनानिका विधान नीचे लिखते हैं,
१ सेर गुडूची और त्रिफला प्रत्येक आध सेरको १६ सेर
जलमें काय करे। लय काय गाढ़ा हो जाय, तब
आगसे नीचे उतार थोड़ा उष्ण रहते दन्ती, गुडूची,

व्योष (सोंठ मिर्च पीपल), विडङ्ग, त्रिफला—इन सब वसुधिका चूर्ण प्रत्येक भाग पल मिला देना होगा ।

(रसकार)

द्वितीय प्रकार—गुड़ची २ सेर, गुग्गुलु १ सेर, आमलकी १ सेर, विभीतक १ सेर, गुणर्षा १ सेर, हरीतकी १ सेर, इन सबको एकत्र कूट ३२ सेर जलमें पाक करे । चतुर्थीय गानो ८ सेर काय तैयार करना चाहिये । जब काय सिद्ध हो जाय, तब छान कर पुनः पाक करे । जब यह गाढ़ा हो जाय, तब आगसे नीचे उतार कर थोड़ा गर्म रहते, दन्तो, गुड़ूची, व्योष, विडङ्ग, त्रिफला प्रशुतिका प्रत्येक ४ तोलक चूर्ण और २ तोलक त्रिष्टु चूर्ण मिलाना होता है । भावा बलाग्नि देसकर दी जाती है । (चक्रपाण्डित्यवृत्त ४७६)

अमृताङ्गरलौह (सं० पु०-कौ०) उपदंशका लौह विशेष, जो लौह आतयकको खास दवा हो । यह रस कुष्ठपर भी चलता, और इस तरह बनता है,—शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धलौह, शुद्धयत्रक, शुद्धतान्न, शुद्ध गुग्गुलु, शुद्ध भस्मातक (भिलावां) यह सब प्रत्येक एकपल, आमलकी चूर्ण ६॥पंसे भर, हर और विभीतक (बहेरा) का चूर्ण प्रत्येक दो पंसे भर घृत १६ पल—यह सब द्रव्य १ सेर त्रिफलाके कायसे लौह-पात्रमें पाक करे । जब पाक सुसिद्ध हो जाय, तब किसी पात्रमें रख लेना चाहिये । फिर मधु और घृत मिलाकर प्रतिदिन एक रत्तीसे क्रमशः बढ़ाते हुये दूध या नारियलके जल साथ खाना होता है ।

(प्रयोगभूत)

अमृतादि (सं० पु०) कषायद्रव्यसमूह, कोर्रिं कादा । यह विसर्प विस्फोटकपर दिया जाता है,—

गुड़ूची, हृष, पटोल, सुस्ता, सप्तपर्ण, खदिर, असितवेद (श्यामालता), निम्ब, हल्दी, दाहहल्दी, इन सबका कल्क पीना होता है । (रसकार)

द्वितीय प्रकार—अमृतादि सूत्रकृच्छ्र-हितकारक है ।

गुड़ूची, नागरमीथा, धात्री, वाजिगन्धा, त्रिकण्टक, इन सब द्रव्योंको उद्यानकर पीनेसे सशूल सूत्रकृच्छ्र निर्मूल होता है । (मेघशरणावली)

अमृतादिघटी (सं० स्त्री०) अमृतादि नामकी गोली ।

यह कफ, विदोष और अनिमान्दरपर खिलायो जाती है,—विष २ भाग, कपर्दभस्म ५ भाग और मरिच ८ भाग एक साथ पीसकर पानीसे मटर-जैसी गोली बांध लेना चाहिये । (भावश्याम गन्धमान)

अमृताद्यगुग्गुलु (सं० पु०) मेदरोगपर दिया जाने-वाला गुग्गुलु । इसके तैयार करनेकी रीति यह है, गुड़ूची, छोटोएलायची, विडङ्ग, वत्सक, कुटजवल्क, विभीतक, हर, चांबला, गुग्गुलु यह सब क्रमसे बढ़ाकर—यथा गुड़ूची १ पल हो, तो छोटी एलायची २ पल, विडङ्ग ३ पल—इसतरह परिमाण हृदिसे सब द्रव्योंको चूर्ण करके मधुमें मिलाना चाहिये । (मेघशरणावली)

अमृताद्यघृत (सं० स्त्री०) वातरक्तका घृत, जो घी वातरक्त रोगपर लगता हो । इसके बनानेका विधान यों लिखा गया है,—घृत ४ शरावक एवं आरग्वध, श्वेतपुनर्णवा, कोकिलाचमूल, एरण्डमूल और घन-मुस्ताका कल्कद्रव्य १ शरावक किसी हांडीमें रखे । फिर उसमें आमलकीरस ४ शरावक और जल १२ शरावक डालकर खूब पकाना और घो निकाल लेना चाहिये । (चक्रपाण्डित्यवृत्त ४७६)

अमृताद्यचणे (सं० स्त्री०) आमवातका चूर्ण, जो चूर्ण आमवात रोगपर खिलाया जाता हो । इसके तैयार करनेकी रीति यह है,—गुड़ूची, नागर, मुष्टिका और वरुणको बराबर-बराबर रखते और पीसकर चूर्ण बना लेते हैं । (भावश्याम गन्धमान)

अमृताद्यतैल (सं० स्त्री०) गलगण्डादिका तैल-विशेष, जो तैल गलगण्डादि रोगपर लगता हो । इसके बनानेका विधान नीचे लिखते हैं,

सूक्ष्मित तिलका तैल ४ शरावक, गुड़ूची, नीमकी छाल, कुटजवल्क, वत्सक, पोपल, देवदारु, काकमारी, बला इन सबका कल्क १ शरावक तय्यार करना चाहिये । पहले १०० पल गुड़ूचादिको ६४ शरावक जलसे काय बनाये । जब १६ शरावक शेष रहे, तब आगसे नीचे उतार उक्त कल्क और तैलको मिला कर तैल पाककी विधिसे पकाना होता है ।

(मेघशरणावली)

अमृतान्धस् (सं० त्रि०) अमृतं अन्धः अन्धमिव
दृष्टिकरं येयाम् । सकल देवता ।

अमृताफल (सं० स्त्री०) अमृतायाः फलम्, ६-तत् ।
१ परबल । २ हृत्फल, नास्तीति ।

अमृतायमान (सं० त्रि०) अमृतमिव आचरति,
अमृत-कण्डू-शानच् । अमृततुल्य, पीठूप-जैमा, जो
भावहयातके बराबर हो ।

अमृतारिष्ट (सं० स्त्री०) विषमञ्जरादिका अरिष्ट,
जो अरिष्ट विषमञ्जरादिपर दिया जाता हो । गुडूची
पलगत और दशमूल पलगतको द्रोणचतुष्टय जलमें
डाल पकाना और चौयाई वाकी रह जानिसे उतार
लेना चाहिये । पीछे इस कायमें गुड़ तुलादय मिला,
कृष्णजोरा १६ पल, पपेट २ पल तथा सप्तपर्ण, त्रिकटु,
मुस्ताक, नागकेशर, कटुकी, अतिविषा और इन्द्रिय
प्रत्येकका १ पल चूर्ण छोड़ते हैं । उसके बाद आहत-
पात्रमें इसे भर तीन मास रखेंगे । (रघुवामकर)

अमृतार्णव (सं० पु०) अतिशार और ज्वरातिशार
पर दिया जानिवाला रस । इसकी मात्रा १ मापा
रहेगी । अनुपानमें धान्य, जोरक वा शालिवोज
पड़ता है । इसके बनानिका विधान यह होगा,—हिङ्गु-
लोथरस, लौह, गन्धक, टङ्गण, शठो, धान्यक, झीवर,
मुस्ताक, अम्बठा, जोरक और अतिविषाको बकरीके
दूधमें डालकर घोटनेसे अमृतार्णव तैयार हो जाता
है । (रघुवामकर)

अमृतार्णवरस (सं० पु०) कासहर रसविशेष, जो
रस खांसोको मिटाता हो । गुडूची और पद्मकाष्ठसे
हो यह तैयार हो जायेगा । (रघुवामकर) वाजीकरण-
पर चलनेवाले अमृतार्णवरसमें सूतमग्न यानि रस-
सिन्दूर मिलाया जाता है । (रघुवामकर) कासपर
दिया जानिवाला अमृतार्णवरस इसतरह बने और
मात्रामें २ गुञ्जा पड़ेगा । राक्षा, विडङ्ग, त्रिफला,
रसगन्ध, कटुत्रिक, अमृता, पद्मक, चौद्र और विष-
तुल्यको दोस चूर्ण कर लेते हैं । रसेन्द्रसारघृतके
रसायनाधिकार पर भी अमृतार्णव रस चलता और
मात्रामें निष्ककी बराबर रहता है ।

अमृतार्णवलोह (सं० पु०) कुष्ठाधिकारका लौह,

जो लौह कुष्ठपर खिलाया जाता हो । इसे एक मापा
मधुके साथ चाट लेना चाहिये ।

अमृतावटिका (सं० स्त्री०) सद्योन्नपन्नो वटिका,
जो गोली फौरन् फोडा-फुन्सो मिटा देती हो । यह
व्रण शोथपर भो चलती है । इसे यों बनायेंगे,—

गुडूची, पटोलमूल, त्रिफला, त्रिकटु, (सोंठ मिर्च
पीपल), हृत्मिघ्न, इन सबका चूर्ण बराबर बराबर और
सब चर्भके बराबर गुग्गुलु मिला गुटिका बना प्रति-
दिन सेवन करना होता है । (रघुवामकर)

दूसरी, अमृतावटिका हृहदमिधाना होती,
व्रणको फायदा पहुँचातो और मात्रामें ८ मापा रहती
है । बनानिका विधान यह होगा,—

गुडूची १०० पल, दशमूल १०० पल, पाठा, मूर्वा,
बला (बरियार), श्वेत बरियारकामूल, एरण्डमूल यह
सब प्रत्येक १० पल, हरीतकी १०० पल, बड़ेडा
२०० पल, आमलकी ४०० पल, इन सब द्रव्योंको
दो द्रोण (१२० शरावक) जलमें एकरात्र फुलाना
और १ प्रस्थ गुग्गुलुकी पीठकी बांधकर उसमें डाल देना
चाहिये । पचात् दूसरे दिन गुग्गुलुके साथ उक्त द्रव्योंको
पाक करे । जब चतुर्थांश काय शेष रह जाय, तब
उतार उसके गुग्गुलुको खूब पचाना चाहिये । पुनः
इन सब द्रव्योंको लोहके पात्रमें पाक करे । जब
गाढ़ा हो जाय, तब भागसे उतार कर शीतल होनेपर
त्रिफला, त्रिवृता, दन्ती, व्योप (सोंठ मिर्च पीपल),
गुडूची, अश्वगन्धा, विडङ्ग, चित्रक, तेलपत्र, छोटी
पलायची, नागकेशर, इन सबका चूर्ण प्रत्येक एक
एक पल मिलाना होता है । (प्रयोगपत्र)

फिर तीसरी अमृतावटिका कुष्ठरोग और वात-
रक्तको नाश करती है । यह इसतरह बनेगी,—

गुडूची १०० पल, दशमूल, १०० पल, पाठा, मूर्वा,
वरियार, पटोलकी पत्ती, दार्वा, एरण्डमूल, यह सब
प्रत्येक १० पल, विभीतकी १०० पल, हरीतकी २०० पल,
आमलकी १०० पल—सबकी ३ द्रोण (१८२ शरावक)
जलमें काय बनाये, चटांग शेष रहने पर उतार कर
खान ले । पचात् गुग्गुलु १ प्रस्थ, छत आधा प्रस्थ मिला
पुनः पाक करे । जब पाय सिद्ध होजाय, तब गुडूचीका

सत्व २ पल, सोंठ और पीपलका चूर्ण प्रत्येक २ पल देना होता है। (मैषधरचारणी)

अमृताय (सं० पु०) अमृते जले आ-सम्यक्-रूपेण शीते प्रलयकाले, अमृत-आ-शौ-ड। १ प्रलय-कालमें जलपर सोनेवाले विष्णु भगवान्। अमृतं अश्रान्ति, अमृत-अश-अप्। २ अमृत पौनैवासा देवता, जो फरिष्ठा आबहयात पीता हो।

अमृताशन (सं० पु०) अमृतं अश्रान्ति अमृतं अशनं यस्य इति वा, अमृत-अश-अप्। देवता, फरिष्ठा।

अमृताग्नि (सं० पु०) अमृताग्नि देखो।

अमृताश्म (सं० पु०) अमृतो जीवितः अश्मा, टजन्त कर्मधा०। प्रस्तरविशेष, जीवित प्रस्तर, जान्-दार सङ्ग, जीता-जागता पत्थर। ऐसा भो पत्थर होता जो प्राणीको भान्ति जलमें तैरते फिरता है।

अमृताष्टक ((सं० पु०) अमृतां गुडूचो प्रमृतोना-मष्टकं यत्र, बहुव्री०। पाचन विशेष, बदहजमीकी कोई दवा। यह कपाय गुडूचो आदि आठ द्रव्यसे ब्रह्मता है,—गुल्लह, इन्द्रयव, नीमका बकला, परवलकी पत्तौ, कटुकी, सोंठ, रक्तचन्दन और नागरमोघा यह सब दो तोले ले सोलह गुण जलमें धीमी आंचसे पकाना चाहिये। कोई चौथाई जल रह जानसे हाडीको नीचे उतार उसमें आध तोले पीपलका चूर्ण छोड़ देते हैं। इस कपायकी पौनैसे पित्तश्लेष्मल्वर, हृत्सास, अरुचि, वमि, अपासा और दाह मिट जायेगा।

(शारकीहदी)

अमृतासङ्ग (सं० स्त्री०) अमृतस्य विप्रस्येव आसङ्गी यत्र, बहुव्री०। खपरिकातुत्य, खपरिकेका-सुर्मा।

अमृतासङ्गम (सं० पु०) अमृतासङ्ग देखो।

अमृतासु (सं० त्रि०) अमृता वियोगरहिता असवः प्राणा यस्य, बहुव्री०। दीर्घजीवी, बहुत दिन जोने-वाला, जो जल्द न मरता हो।

अमृताहरण (सं० पु०) अमृतं पीयूषं आहरति अमृ-तस्य आहरणं येन वा, अमृत आ-ह-र-त्-सु-त्। अमृतको हरण-करनेवाले गरुड़। गरुड़के अमृताहरणका विवरण अत्र लिख दिये देखो।

अमृताह्न (सं० स्त्री०) अमृतं आह्वयते तुल्यस्वाद-

फलत्वेन स्वहति, अमृत-आ-ह-ने-क। १ अमृतफल, नामपाती। यह गुरु, वातघ्न, खादु और त्रिदोष-नाशक होता है। सुहृन्प्रान्तर्नै इमे प्रसुर पायेगे। २ खरबूजा।

अमृताह्वयतैल (सं० स्त्री०) वातरक्तका तैल, जो तैल वातरक्त रोगपर लगता हो। इसके बनानेका विधान नीचे लिखते हैं,—

गुडूची, मधुक, क्लृप्तपञ्चमूल, हृत्ती, कण्टकारी, पृश्निपर्णी, गोक्षुर, पुनर्णवा, राज्ञा, एरण्डमूल, जीव-नीध, यह सब प्रत्येक १०० पल, बला ५०० पल, कोल, विश्व, यव, माप, कुलथी, यह सब १ आठक, शह कार्शर्या (गभार) १ द्रोण, इन सबका १०० द्रोण जलमें ढाया बनाकर जब ४ द्रोण शेष रहे, तब नीचे उतार कर छान ले, पीछे १ द्रोण तैल और पञ्चगुण दूध मिलाकर पचाना चाहिये, पुनः चन्दन, खसू, केसर, पत्र, एलायची, गुह, कुष्ठ, तगर, मधुपटिका, यह सब प्रत्येक ३ पल और मञ्जिष्ठ आधा पल चूर्ण करके मिलाया जाता है। (भागप्रथाय मधुभाग)

अमृतेय (सं० पु०) अमृतके ईश, शिव।

अमृतेयय (सं० पु०) अमृते जले शीते; अमृत-श्री-अच्, अलुक्-सं०। विष्णु। प्रलयकालमें जलपर सीनेसे विष्णुका नाम अमृतेयय पड़ा है।

अमृतेश्वर, अमृतेय देखो।

अमृतेश्वररस (सं० पु०) यक्ष्मारोगका रसविशेष। इसके तैयार करनेकी रीति यह है—पारामष्म, गुडूचका सत्व, लौह, मधु (गहद), घृत, इन सब द्रव्योंको एकत्र मिलाकर यह औषध बनाया जाता है। मात्रा इसकी ३ रत्ती होती है। (प्रयोगवत)

अमृतेष्टका (सं० स्त्री०) यज्ञीय द्रष्टकाविशेष, यज्ञकी खास इंट। यह मनुष्य, पशु, पक्षी प्रकृतिके शिरजैसो रूपसे बनायी जाती है।

अमृतोत्था (सं० स्त्री०) साधुमूला, सालमसिरी।

अमृतोत्पत्ति (सं० स्त्री०) पीयूषका प्रादुर्भाव, भाव-हयातकी पैदायश।

अमृतोत्पन्न (सं० स्त्री०) अमृतं विपमिव उत्पन्नम्, मध्यपदलोपी कर्मधा०। खर्षीरतुत्य, खपरिया।

अमृतोत्पन्ना (सं० स्त्री०) अमृतमिव स्वादु मधु उत्पन्न यस्याः, ५-वह्व्री० । मधिका, ममाधी । मधिका पुष्पसे मकरन्दको ले कृत्तमें मधुसञ्चय करती, इसीसे उसका नाम अमृतोत्पन्ना पड़ा है ।

अमृतोदन—मिंहहनुके पुत्रविशेष ।

अमृतोद्भव (सं० स्त्री०) अमृतं विपमिव उद्भवति, अमृत-उद्-भू-प्रच् । १ खपरीतुल्य, खपरिया । २ आमलकी, आंवला । (पु०) अमृतं मृतश्चयं शिवमिति यावत् उद्भवति प्राप्नोति भक्तदेवत्वेन । ३ विश्वहृद्य, वेलका पिड़ । ४ धन्वन्तरि ।

अमृतोद्भवा (सं० स्त्री०) १ आमलकी, आंवला । २ नागरयज्ञो, पान ।

अमृतोपम (सं० स्त्री०) खपरीतुल्य, खपरिया ।

अमृतोपहिता (सं० स्त्री०) चोपचीनी ।

अमृतुर (सं० पु०) १ मृत्युका अभाव, अमरत्व, मोतकी अदममौजूदगी, वफा । (त्रि०) २ अमर, कभी न मरनेवाला । ३ अमरत्व प्रदान करनेवाला । जो वफा वचन देता हो ।

अमृध (सं० त्रि०) मृधु उन्धने यादुलकात् रक्, ततो नञ्-तत् । १ अहिंसित, न मारा हुआ, जिसे कोई चोट न दे सके ।

अमृया (सं० अश्व०) १ सत्य, सच-सुच, वेगक, अमलमें । २ शूद्र रीतिपर, ठीक तौरसे ।

अमृयाभापिन् (सं० त्रि०) सत्यवक्ता, सच बोलने वाला, जो झूठ न कहता हो ।

अमृष्टमृज (सं० त्रि०) विगड, निहायत पकीड़ा, जिसको सफ़ाईमें दाग न लगे ।

अमृथ्य (सं० त्रि०) सहन करनेके अयोग्य, जो वर-दाग्न न हो ।

अमृथ्यमाथ (सं० त्रि०) सहन न करनेवाला, जो वरदाग्न न करता हो ।

अमिचण (सं० त्रि०) मिचणशून्य, वैचण्य, जिसमें चलानेकी चण्यच न रहे ।

अमिघ (सं० त्रि०) मिघरहित, विषादल, माफ़, खुला । अमिजना (हिं० क्रि०) १ आमिजिम रहना, मिसायट होना, मिल जाना । २ आमिजिय करना, मिला देना ।

अमिठना, अनेक दिखी ।

अमिदस्क (सं० त्रि०) मिदरहित, वैधर्म, लागर, दुबला ।

अमिधम् (सं० त्रि०) -मान्ति मिधा धारणवती धीर्यस्य, नञ्-वह्व्री० । १ अल्प धारणागलितसम्पन्न, कुछ भी अरण्य न रखनेवाला, विद्यापिज्ञा, जिसे कुछ भी याद न रहे । २ मूर्ख, वैधक्य । ३ चित्त, पागल ।

अमिध्व (सं० त्रि०) न मिध्वं पवित्रम्, विरोधे नञ्-तत् । १ अपवित्र, अशुद्ध, नापाक । "अदमं धमशुचः" (कृत्ति) (स्त्री०) २ विद्या, मैला । "अमचापि विज्ञातीमानमिध्वनवापिच" (मनु ५३) ३ अपशकुन, बुरा शिगून् ।

अमिध्वकुणपागिन् (सं० त्रि०) १ कुणपमचक, सुर्दा-खोर । २ अखाद्यमांसभोजी, सड़गला गोश खाने-वाला ।

अमिध्वता (सं० स्त्री०) अपवित्रता, अशुद्धता, नापा-कोजगी, मैलापन ।

अमिध्वत्व (सं० स्त्री०) अनेक दिखी ।

अमिध्वशुक्त (सं० त्रि०) मलिन, कलुप, मैला, नापाक ।

अमिध्वलेप (सं० पु०) पुरीषका लेपन, गोबरकी लेपायी ।

अमिध्यात्त (सं० त्रि०) पुरीषसे कलुपित, मेलसे भरा हुआ, जिसमें गोबरकी खाइ पड़ जाये ।

अमिन (वै० पु०) मृतपत्नीक, गतभार्य, बेजान, रंहु, या, जिम शख्सकी बीबी मर जाये ।

अमिनि (वै० त्रि०) मि-नि, ततो नञ्-तत् । परि-च्छेदशून्य, इयत्तारहित, विभाव, धैमिकदार । २ प्राघात न करनेवाला, जो चोट न पहुँचा रहा हो ।

अमिय (सं० त्रि०) न मियम्, नञ्-तत् । १ इयत्ता लेनेके अयोग्य, जिसको मिकदार माशुम न हो सके । २ जाननेके अयोग्य, समझमें था न सकनेवाला ।

अमियात्मन् (सं० त्रि०) महातुभाव, उदारचेता, मझाग्य ।

अमेरिका—एक महाद्वीप । यह उत्तर, मध्य और दक्षिण—तोम भागमें विभक्त है, किन्तु सचराचर उत्तर-और दक्षिण—दो ही भाग प्रधान हैं ।

उत्तर-अमेरिकासे उत्तर उत्तर-महासागर, पूर्व आटलाण्टिक महासागर और पश्चिम एवं दक्षिण प्रयान्त-महासागर विद्यमान है। उत्तरसे दक्षिण दिक् पर्यन्त इसका दैर्घ्य ४६०० मील और पूर्वसे पश्चिम पर्यन्त प्रस्थ ३१२० मील पड़ेगा। इसमें भूमिका परिमाण प्रायः ८३१८७११ वर्ग-मील आता है।

उत्तर-अमेरिकाके विभाग नीचे लिखेंगे,—

विभागका नाम	परिमाण (वर्गमील)
१ ग्रीनलैण्ड	३८००००
२ फ्रान्सीसी अधिकार	११३
३ रूस अधिभूत अमेरिका	३८४०००
४ निउ ब्रटेन	१४८००००
५ पश्चिम कानाडा	१४७८३२
६ पूर्व-कानाडा	२०१८८८
७ निउ ब्रन्सविक	२७७००
८ नोवा स्कोशिया	१८७४६
९ प्रिन्स एडवर्ड द्वीप	२१३४
१० निउ फाउण्डलैण्ड	५७१००
११ ब्रिटिश कलम्बिया	२१३५००
१२ युनाइटेड स्टेट्स या युक्तराज (अमेरिका)	३३०६८३४
१३ मेक्सिकोका मिश्रराज्य	१०३८८६५

दक्षिण अधिकार

प्रधान द्वीप—उत्तर-महासागरमें ग्रीनलैण्ड, साउथ-मटन, कम्बरलैण्ड, ककावरन, विकोरिया, वैडम-लैण्ड; ब्रिटिश अमेरिकासे पश्चिम सितका, प्रिन्स चौफ विल्स, क्वीन शार्लेट, वडुपर; बर्मुदास, कैपट्टेन, प्रिन्स एडवर्ड, निउ फाउण्डलैण्ड, एवं वेष्ट इण्डिज द्वीपपुञ्ज।

उपसागर—कालिफोर्निया, मेक्सिको, कम्पौची, वुण्डू-रास, वडसन, वेकिन, सेण्ट लरेन्स, चौसापोक, कारोय सागर।

प्रधानी—वेरिङ्ग, वडसन, डेविस।
 पत्तरीय—प्रिन्स चौफ विल्स, सेण्ट लूकस्, सेवल, रे चार्लस, सुडलेघ, फेगरोवेल, रिस।

उपरीय—कालिफोर्निया, आलस्का, लाम्राडर, फ्लोरिडा, नोवास्कोशिया, युकेटन।

पर्वत—राकी गिरिश्रेणी (उच्चशृङ्ग ब्राउन गिरि),

आलिवाणी गिरिश्रेणीवाली मेक्सिकोकी गिरिश्रेणी (उच्च शृङ्ग पोपोकाटिपेटल, १७७८३ फीट), कालिफोर्नियाकी गिरिश्रेणी, सेण्ट इलियस, सेण्ट वेदर।

नद-नदी—ग्रेटफिस, मेकञ्जी, वोरगन, मिच कीलोरडो, मिसिसिपि, जेम्स, सेण्ट लारिन्स।

नगर—ग्रेटवियर, ग्रेटलेभ, अयाचीस्का, युनिगेग, सुपिरियर, डिउरन, निकारागोया, चपला।

उत्तर-अमेरिका अतिप्रथम शीतप्रधान स्थान है। इसमें कितनी ही जगह अधिक शीत पड़नेसे न तो कोई ठहर और न गेहूं वगैरह प्रशय ही उपज सकेगा। इस सकल स्थानमें शिकारी पशु जन्तुका चर्म लेने आता है। सुविधा-मत स्थान वास्तवमें रिउ-ब्रडेल नटनसे कालिफोर्नियावाले उपद्वीपके निम्नस्थान पर्यन्त ही मिलेगा।

शीतप्रधान स्थान रहते भी अंगरेजके हाथ जा उत्तर-अमेरिकाकी पूर्व दुरवस्था बदली, अब अनेक स्थान समृद्धियाली सभ्यताकी वाससूत्रि बन गया है।

देश और उद्योगी राष्ट्रधानी एवं नगर।
 देनिग अमेरिका—१ लिक्टेन केलम, जूलियेन, सहाव।

फ्रान्सीसी अधिकार—२ सेण्ट पापर।
 रूसी अधिकार—३ उत्तर-आर्कङ्गल।
 ब्रिटिश अमेरिका—४ योर्क फेक्टरी, ५ टोरेण्टो-हामिल्टन, ६ क्लिबेक, थोटोवा, ७ फ्रेडरिक्टन, सेण्ट जान, ८ हान्तिफव, ९ साल्टन, १० सेण्टजोन्स, ११ निउ वेस्टमिनिस्टर।

युनाइटेडस्टेट्स—१२ वागिङ्गटन, बोस्टन, निउयाक, फिलाडेलफिया, बल्डिमोर, रिचमण्ड, चारलटन, निउ आर्लीन्स, सेण्टलूयो, सिन्सिनाटी, पिटस्वर्ग, चिकागो।

मेक्सिको—वेराकूज, प्यूनवा, मेरिडा।
 थोटोवा नगरमें सुम्बक पत्थरकी खानि निकली है। टोरेण्टो विश्वविद्यालय और क्लिबेक वाणिज्यका स्थान होनेसे प्रसिद्ध है। वागिङ्गटनमें राज्यके प्रधान कर्ता रहते हैं। वहाँ जातीय समिति लगती है। निउ-यार्कमें वाणिज्य-व्यवसाय अधिक चलता और ताना

शास्त्र एवं नाना भाषा सीखनेकी विश्वविद्यालय बना है। चिकागोसे ग्रन्थ भेजा और मंगया जाता है।

मध्य-अमेरिकामें निम्नलिखित देश विद्यमान हैं,—

देशका नाम	परिमाण वर्गमील	राजधानी
सानमालवेडर	८५००	कलुत्तेपेक।
निकारागोया	४४०००	ग्रानाडा।
क्यूबुरास	५३०००	कीमागागोया।
गोयाटेमाना	५८०००	निउगोयाटेमाना।
कटारिका	२५०००	सञ्जोश।
मसकितो		ब्रू फीलडस।
हटिग क्यूबुरास		विनिज।

मध्य-अमेरिका उत्तर अमेरिकामें ही गिना जाता है। किन्तु कोई-कोई इसे स्वतन्त्र भी बना लेगा।

दक्षिण-अमेरिकाकी उत्तर-सीमापर कारीव सागर एवं आटलाण्टिक महासागर, दक्षिण तथा पूर्व दक्षिण-महासागर और पश्चिम प्रशांत महासागर विद्यमान है। उत्तरसे दक्षिण पर्यन्त दैर्घ्य ४५०० मील, पूर्वसे पश्चिम पर्यन्त प्रस्थ ३००० मील और भूमि-परिमाण प्रायः ७८८०००० वर्ग-मील है। इसकी देगादिका विवरण नीचे देखिये,—

देश	मानसप्रधानी	परिमाण	राजधानी।
१ वेनजुयेला	साधारणतन्त्र	४१६६००	काराकास।
२ बोलिविया	„	३७४४८०	सुकुयीगाका।
३ इक्वेडर	„	३२५०००	क्विटो।
४ पेरू	„	५८००००	लिमा।
५ चिलि	„	१७००००	सेप्टियागो।
६ कलम्बिया हटिग		१२००००	बोगोटा।
७ पाटागोनिया		३८००००	पण्डयेरिन्स।
८ बुयेन आयार साधारणतन्त्र		६००००	बुयेन आयार।
९ उरुगोया	„	१२०००	मण्टेभिडो।
१० पारागोया	„	७४०००	आसनशन।
११ ब्राझिल		८२००००	पेराना।
१२ ब्रेजिल		२३००००	रिउडेजोनयरो।
१३ गायना (हटिग)		७६०००	जार्जटाउन।
१४ „ (हालेण्ड-अधिकार)		३४५००	पारामारिबो।
१५ „ (फ्रान्सीसी)		२१५००	कियेन।

१६ फकलैण्ड द्वीपसुष्ठ १६००० पोर्टलूयो।

प्रधान सागर और उपसागर—डेरियान, पनामा, मॉर-कायिवो, गोयाक्लि।

प्रधानी—मेगिलेन।

रीप—ड्रिनिडाड, गालापिगन, चिन्हा, लुयान, फार्नो-एड्रेज, चिलो, वेलिङ्गटन, ऐटन, अबोरा, जर्जिया, मरुहोप, टेण्डेलफिउगो, फकलैण्ड, मराजो।

पर्यट—एण्डिस् (उच्चशृङ्ग एकोनकागुया), पेरिस।
बावे यमिरि—कोटापेक्सी।

श्रद्ध—मारोकायिवो, टिटिकाका, सिलवेरो, गुया-नकेक।

शरी—धीरिनोको, एसेक्विबो, मागडेलाना, फलरेडो, लाप्राटा, पारागुया, फ्रान्सिस्की, टोकाण्टिन, आमे-सान।

योजक—पनामा। इसी योजक द्वारा अमेरिका उत्तर और दक्षिण भागमें विभक्त हुआ। अब यह खोदकर लहर बनाया गया है।

वेष्ट-इण्डिज अमेरिकाका एक विभाग है। इसमें कितने ही देश और नगर विद्यमान हैं,—

देशका नाम	वर्गमील परिमाण	राजधानी।
हैटी	११०००	हैटी।
डोमिनिका	१८०००	सानडोमिनिगो।
कैथ्या	४२३८३	हावाना।
पोर्टोरिका	३८६५	सानजुयन।
जामेका	५४६८	स्पनिश टाउन।
ट्रिनीडाड	२०००	स्पुर्टा।
विण्डवर्ड द्वीपसुष्ठ		त्रिजटाउन।
सवंडो	१६६	„
सेण्ट विनसेण्ट	१३१	किङ्गटन।
टोरिंगो	१८७	स्कारबेरी।
सेण्ट लूसिया	२२५	कैड्रिस।
एण्टीगुया	१६८	सेण्टजान्स।
मण्टसेरेट	४८	„
सेण्ट क्रिस्टोफर	१०३	वेस्टीरी।
एण्टुयेला		
नेविस	३०	चार्ल्स टाउन।

देशका नाम	वर्गमील परिमाण	राजधानी
वेर्जिन द्वीपपुञ्ज	१३७	रोसू।
डोमिनिका	२८१	नसू।
बाहामा द्वीपपुञ्ज	५४२२	वैसिटर।
गोयडेल्फ	} प्राचीन	५०४
मार्टिनिक		३३२
सेण्टमार्टिन उत्तर	} प्राचीन	२१
सेण्टमार्टिन दक्षिण		२१
कूरेसोया	} प्राचीन	५८०
सायटाक्रूज		८१
सेण्टोमस	} इनमार्क	३७
सेण्टवॉलसुस		७२
सेण्टजान	२५	सासेरेनेज।
तुर्क द्वीपपुञ्ज	४००	
मसूडा द्वीपपुञ्ज	४७	हेमिलटन।

वेष्ट-इण्डिज द्वीपकी भूमिका परिमाण—प्रायः ८१८१० वर्गमील पड़ता है।

जाति—अमेरिकाका आदिम निवासी ताम्रवर्ण होता है। यह जाति अमेरिकामें प्रायः सर्वत्र ही देख पड़ेगी। आदिम-निवासी कुछ-कुछ बौना रहता है। उसका हाँठ और गाल बड़ा-मोटा, बाल काला-लम्बा लगीगा। कोई-कोई अनुमान करता है, कि वह सुगल जातिसे उत्पन्न हुआ था। उसका आदि निवास दक्षिण एशिया रहा, वैरिड-प्रणाली पारकर अमेरिका जा पहुँचा। अमेरिका जब स्पेनवासीकी दृष्टि आया, तब वह सिर्फ़ शिकार दूँदते फिरता था। कोलम्बस बहु कष्ट बाद भारतवर्ष समझ अमेरिकामें घुसा और आदिमनिवासीको जा देखा। वह उलझ फिरता, केशराशि घुटदेग पर्यन्त लटकता, दाढ़ीका नाम न मिलता और देह सुचिकण रहता है। सुखयी समान पड़े, देखनेमें मन्द न मालूम देगी। हावभाव नन्म अथच भययुक्त होता है। शरीर लम्बा न लगे, और रूप सुन्दर देख पड़ेगा। उसका बदन कोमल होता है। वह अपने दिहका कोई-कोई अंश चित्र-विचित्र बनाये, फिर उसपर जब सूर्यका किरण पड़े, तब सुन्दरताका ठिकाना न लगीगा। वास्तवमें वह प्रकृतिका सुकुमार

शिशु ठहरता और नहीं जानता, भला-बुरा किसे कहा जाता है। उसे सदा ही प्रफुल्ल और अपने ही आप समझित पायेंगे। उसके पास लोहाखत कुछ भी न रहा और न वह जानता ही था लोहाखत कैसे बनता है। वह बेतके सिरेपर मछलीका कांटा लगा तोर और लकड़ीको जलाकर सुखकी और धार निकाल तलवार बनाता था। युरोपीय उसे रूड इण्डियन कहते हैं। वह सूर्योपासक होता है। पहले जब कोलम्बस अमेरिकाके कूलपर उतरा, तब आदिम निवासीने कोलम्बस और उसके साथीको सूर्यलोक प्रेरित देवदूत समझ भय और भ्रमि देखायो थी। उस समय अमेरिकाके स्थान-स्थानमें वह राज्य भी चलाते रहा। यद्यपि आदिम निवासी उलझप्राय घूमता, तथापि उसके अङ्गपर सोना भी चमका करता था। अब सभ्यजातिके सहवाससे वह भी क्रमसे सभ्य बनते जाता है।

उत्तर-अमेरिकाको प्राचीन जाति इण्डियन, आज-तेक, और एस्किमो, इन तीन भागमें बंटी है। कोई प्राचीन इतिहास न मिलते भी आजतेक बहुत पुरानी जाति ठहरती है। किन्तु प्रवाद सुनो,—तेरह सौ वर्ष पहले तोलतेक नामक कोई सुसभ्य जाति उत्तराञ्चलसे आ अनाइयाकमें बसो थी। (अनाइयाकको अब मेक्सिको कहते हैं) उसकी निर्मित विचित्र अट्टालिकाका ध्वंसावशेष आज भी स्थान-स्थानमें पड़ा है। महामारी, दुर्मिच प्रकृति नाना कारणसे उस जातिके लोग मेक्सिको छोड़कर चले गये थे। सन् ई०के १२वें शताब्दीमें चिचेमेक नामक किसी जातिने अनाइयाक या मेक्सिको पहुँच अपना राज्य जमाया। उसके १३ वर्ष बाद ही आकलइयान जातिने आ चिचेमेकको यहाँसे भगा दिया था।

फिर उत्तर-पश्चिमाञ्चलसे आजतेक जातिने पदा-पंथकर अपना राज्य फैलाया। उस जातिवासे लोग अमेरिकाके सकल अधिवासोसे अँह रहें। शौर्य, वीर्य और सभ्यतावाले गुणसे वह सन् ई०के १४वें शताब्दीमें प्रसिद्ध हो गये थे। उस समय अहविद्या, ज्योतिर्विद्या, गिन्य, राजनीति और युद्ध-विषयदिमें बड़े अमेरिका-

के मध्य प्रधान रहे। वह व्यवहारके लिये वस्त्र, भस्महार, धातुमय भस्मादि और बड़ी-बड़ी चट्टालिका बनाते थे। उनका उपास्य देवता तैलकातल-पोका है। आजतक कहे, कि वह देवता पृथिवीके भात्माका स्वरूप एवं सृष्टिकर्ता ठहरे और मनोहर दिव्यपुरुष समझ उसका ध्यान लगाना पड़ेगा। आजतक जातिमें नरवलिको प्रथा प्रचलित रही। उपरोक्त देवताके उपलक्षमें विपक्षपक्षीय किसी सुलक्षण पुरुषको पकड़ बलि चढ़ाया जाती थी। बलिदानके समय महा-समारोह होते रहा। चार स्थिरयौवना मनोहरा सुन्दरी युवती तेजकातल-पोकेका सेवा किया करती थी। सुविश्र लोग नैवेद्य, एवं गन्धद्रव्यादि लाते रहे। पांच भादमी वध्य व्यक्तिका हाथ-पैर पकड़ते, पछ व्यक्ति साल कपड़े पहन और पत्थरकी छुरी उठा हत्यारेका काम करता था। छुरीसे हृत्पद्म छिन्दनेपर प्राणवायु निकलता या न निकलता, किन्तु वह हृत्-पद्म स्वयं देवकी देखा देवताके सम्मुख रख दिया जाते रहा। उसके बाद जो भादमी युद्धसे निवृत्त व्यक्तिको पकड़ साना, वह महामांससे व्यञ्जनादि बनवा स्त्रीपुत्रपरिजनके साथ महासमारोहसे खाता था। कहते हैं, कि सन् १५४२ ई०में 'ग्रोटजिलो पोटेक्ली' देवतावाले मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय ७२३४४ व्यक्ति पूर्वोक्तरूपसे एकवारगी ही बलि चढ़ाये गये थे। तेजकातलपोकेके अधोन दूसरी भी कितनी ही देव-देवी रहती, जिसकी पूजा आजतक जाति करती है। सन् १६५३ ई०को लन्दन शहरमें आजतक-संजीव कोई १७ वर्षका बालक और ११ वर्षकी एक बालिका जा पहुंची थी। बालक और बालिका देखनेमें दोनो खर्ब रहे। उनके ली जानेवाले व्यक्तिये बताया था,—'यथिमागा नामक प्राचीन नगरके लोग इस बालक और बालिकाको, देवताकी तरह पूजते रहे।' कोई-कोई कहता, कि आजतक भस्माभाविक जाति है।

एम्किमा या एम्किमो जाति उत्तर-अमेरिकामें प्रायः सर्वत्र ही मिलेगी। अनेक कहते, इस जातिके लोग सुगुप्त जातिसे उत्पन्न हुये हैं। फिर दूसरे

वतयें, कि अमेरिकाके रेडइण्डियनसे एम्किमोका सादृश्य रहते वह भी उसी जातिके लोग होंगे। लिये म सांख्यके मतानुसार यही एकमात्र जाति उभय महा-हीममें देख पड़ती है। एम्किमो शब्दका अर्थ आम्पियागी निकलेगा। मालूम देता, कि लोगोंने कदा मांस खानेसे ही वह नाम पाया है। अपनेको यह इन्विट अर्थात् लोक कहेंगे। सन् ई०के दशम शताब्दवाले स्कन्दनाम उन्हें क्रोलिन्जर अर्थात् धूर्त कहकर पुकारते थे। इस जातिवाले युवकके छोटी-छोटी दाढ़ी होती है, मूछ नहीं देख पड़ती। पुराने लोग घनी दाढ़ी और कटी मूछ रखते थे। किन्तु इण्डियनकी दशा ऐसी नहीं रहती। वह दाढ़ी-मूछ कुछ भी न रखे, निकलते ही जड़से उखाड़ डालेगा। इसीसे वह क्षुण्ण-जैसा जान पड़ता है। एम्किमो जातिका भादमी पांच साढ़े पांच फीट पर्यन्त बड़ेगा। पुरुष गिकार मारते घूमता और स्त्री घरका काम चलाने है। मांस खानेके सम्बन्धमें वह प्रायः कुछ सोच-विचार न करेगा। अनेकखलमें उसे ध-पकाये ही पेटमें डाल लेता है। जिस जन्तुकी खाये, पहले उसका निर्गत रक्त यह चूस लेगा। रक्त प्रायः टटका ही पिया जाता है। वह अतिशय अपरिष्कार और उग्र रहेगा। मृग, पशु, पक्षी और मख्यके चर्मसे आच्छादन बनता, जो स्त्रीपुरुषके देहका कपड़ा होता है। उसमें अनेक कुर्मस्कार मिलेगा। उपास्य देवता दो रहते हैं। सन् १७२१ ई०में इनिगेड नामक किसी व्यक्तिये प्रीनलैण्ड जा इस जातिके कितने ही लोगोको ईशायी बना डाला था। एम्किमो निवृत्त पशुका मद्य रक्त तैल और चर्बीसे मिखा एक प्रकार अन्न बनाना, जो स्वास्थ्यके लिये विगेष उपकारी ठहरता है।

अध उत्तर-अमेरिकामें माना सम्य जाति था वसो है। यूनायिटेड-स्टेट्सके सम्य अंगरेजगणने पृथिवी पर नाना विषयमें उच्च आसन पाया। पहले वह इङ्ग्लैण्ड राज्यके अधिकारमें रहे, मध्यमें इङ्ग्लैण्डवासी अंगरेजसे लड़ खापोन बन गये हैं। उनके देशमें राजा न हो, राज्यके मध्य किसी-विध व्यक्तिको सकल

द्वारा निर्वाचनकर राज्यका प्रधान पद दिया जायेगा।
उस प्रधान व्यक्तिको अधिवासीके मतानुसार काम
करना पड़ता है।*

दक्षिण-अमेरिकाका प्रति प्राचीन कालसे भारत-
वर्षके साथ संश्रय रहा। यहाँ आदिम अधिवासीके
मध्य राम-सौताका उत्सव प्रचलित है। (Asiatic

Researches, Vol. XI.) इस स्थानको कितने ही लोग
पुराणीकतापताल लोक समझते हैं। दक्षिण अमे-
रिकाका पेरू देश बहुकाल पूर्व भो सन्तुष्टियाली रहा।
पाश्चात्य पण्डित उसी समयको इङ्ग-पूर्वकाल कहा
करते हैं। इङ्गपूर्व जाति सभ्यता, भाषा, और धर्मा-
चरणमें, दक्षिण-अमेरिकाको दूमरी जातिसे श्रेष्ठ थी।
उसकी शिल्प, और भास्करविद्याका परिचय, प्राचीन
मन्दिरादिके ध्वंसावशेषसे पायेंगे। सकल भग्न मन्दिर
पेरूदेशके स्थान-स्थानमें आज भी पड़ा है। टिटिकाका
झरके तीर टिया-हुनाकुका ध्वंसावशेष देखेंगे।
उसका झरके दरवाजा पत्थरसे बना, दश फीट ऊँचा
और तेरह फीट चौड़ा है। किसी प्रस्तर-स्तम्भकी
उंचाई, कोई बाईस फीट निकलेगी। मन्दिरकी
चारो और खोदी हुई देवमूर्ति तीस फीट लम्बी
लगती है। टियाहुनाकुका इतिहास नहीं मिलता।
यह बात आज भी ठीक न हुयो, किस समय टिया-
हुनाकु नाम रखा गया था। कोई-कोई अनुमान वांधते
हैं, कि इङ्गने वह नाम रखा होगा। यह स्थान सागरसे
१२८३० फीट ऊँचा पड़ता है। यहाँ वायु प्रबल
न लगेगा। मालूम होता है, कि इङ्ग-पूर्वने इस
जगह राजधानी बनायी थी। लिमा गहरसे साढ़े
बारह मील दूर पचाकमाक नामक-कोई प्राचीन
स्थान है। वहाँ बड़े-बड़े मन्दिरका ध्वंसावशेष
देखनेसे समझ पड़ेगा, कि इङ्ग-पूर्व जाति आस्तिक
रहें। 'पचा'का 'प्रथिवी' और 'कमाक'का 'अर्थ

बनानेवाला है। मतलब यह, कि प्रथिवी-निर्माण-
कारी परमेश्वर उसके उपास्य देवता थे, जिनके नाम-
पर उपरोक्त स्थान प्रतिष्ठित हुआ। पचाकमाकके
मन्दिरमें कोई मूर्ति न रहते अनेक लोगोंका अनुमान
है, कि वह निराकार और अव्यक्त परमेश्वरको
मानती थी।

इङ्गकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ निश्चय नहीं
ठहरता। इण्डियनका कहना है, कि मङ्गो नामक
प्रथम इङ्ग टोटीकाका झरके तीर आये, उनके माय
उनकी स्त्री और मामा शोक्लो भो रहे। मङ्गोके
परिचयसे वह इङ्ग अर्थात् सूर्यके आदेशपर असभ्य-
जातिको परिचाय देने पड़ूँचे थे। उनके हाथमें
कोई पतली सोनेकी छड़ो रही। उस छड़ोके छते
ही जमीन् फट और वह अन्तर्हित हो जाते थे।
मङ्गोने उस समय असभ्योंको छेती करना सिखाया
एवं विशुद्ध धर्म और समाजनीतिका प्रचार किया।
मामा शोक्लोने लड़कियोंको सिलार्ड और तुनाईका
काम बताया था। उसी समय कुजका नगर भी बसा
रहा। मङ्गो पहले * इङ्ग हुयो; वह केवल शासन-
कर्ता ही नहीं, सबके पितास्वरूप प्रधान पुरोहित भी
रहे। सब लोग उनके सुनियमसे वह रहे और असभ्य
सभ्य बन गये थे। अन्तको मङ्गो सूर्यके निकट जा
पड़ूँचे। यह घटना सन् १०६२ ई०की है। मङ्गोने
चालीस वत्सर राजत्व किया था।

उसी समयसे पेरूवासो क्रम-क्रम उन्नतिलाभ
करने लगे, उन्नतिके साथ ही निकटस्थ लोगोंके राज्य-
पर भी उन्होंने हाथ मारा।

तुपक इङ्ग युपनकी (१११ इङ्ग)ने अपना राज्य
बहुत दूरतक फैलाया और सन् १४५४ ई०में
चिलि राज्यको अतिक्रम कर मौल नदी पर्यन्त पेरू
राज्यकी सीमा पड़ूँचायी थी। उनके पुत्र हुयना
कपकने फामेजान नदी पार हो क्लिटो राज्यपर अपना
अधिकार जमाया। उन्हें सन् १४७३ ई०में राज्यपद
मिला था।

* अधिकृत डॉक्टरके जाति प्रथम विवरणकी Historical and
Statistical Information respecting the History, Condition
and Prospects of the Indian Tribes of the United
States, by H. N. Schoolcraft L. L. D. Philadelphia
1, 2, 3rd. pt. देखो।

* इङ्ग देवताके अर्थ है, देवता संज्ञक अर्थ है देवता। प्राचीन अर्थ
राजाको इङ्ग कहते थे।

अमेरिका का आविष्कार—सन् १० के १०वें शताब्द स्कन्द-नामगणने मिसासुसेटस पर्यन्त आविष्कार किया था। कोई कोई कहता है,—सन् ११७० ई० में वेनस युव-राज माइक पश्चिम दिक् घूमने निकले और सात दिन बाद उनका जहाज वर्जिनियाके उपकूलमें जा पहुँचा।

सन् ४८२ ई० की ३री अगस्त शुक्रवारको कोलम्बसने भारतवर्ष जानेके लिये यात्रा की। वह नाना स्थान अतिक्रम कर और नाना विपद् उठा अन्तको अमेरिकाके उपकूलमें आ पहुँचे थे। सन् १४८२ ई० की ११वीं अक्तूबरको उन्होंने पहले-पहल अमेरिकामें पैर रखा। उनका प्रथम आविष्कार बाहामा द्वीपसुन्दर रहा, वह स्वर्णलोभसे अमेरिकाके अनेक स्थान घूमने और उनको आविष्कार भी किया। वह खेन देशसे चार बार अमेरिका आये थे। चार बारमें उन्होंने हिस्पानियोला, किउबा, जामैका, इण्डोरासके दक्षिणसे वेगुयाके उपकूल पर्यन्त मध्य-अमेरिका और ओरिनोकोसे मारगरिटो तक दक्षिण-अमेरिकाको आविष्कार किया। दक्षिण-अमेरिका आते समय उनके साथ अमेरिगो-वेस्पुचि विद्यमान रहे। वेस्पुचिके पोतचालन (नावचलाना) विषयसे सन्तुष्ट हो कोलम्बसने उनके नामानुसार इस नूतन महाद्वीपको अमेरिका कहकर पुकारा था।

कोलम्बसके अमेरिका-आविष्कारसे पन्द्रह वत्सर बाद पोनुस डी खून नामक किसी व्यक्तिने फोरिडाको आ खोजा। सन् १५ के १५वें शताब्दमें इडलेण्ड-राज सप्तम हेनरीने वेनिस्-निवासी गियोवन्नी केवट और उसके पुत्रको अटलाण्टिक-आविष्कारके लिये नियुक्त किया था। सन् १४८७ ई० में उन्होंने निउ-फाउण्डलैण्डको दूँट निकाला। फिर सन् १५१८ ई० में मागेलन पश्चिमी घूमते-घूमते अमेरिकाकी किसी प्रणालीमें आ पहुँचे थे। उनके प्रथम वर्षा पहुँचनेसे ही उसका नाम मागेलन-प्रणाली पड़ा है। सन् १६१० ई० में स्कुटेन नामक किसी इटलेण्डवासीने केप हर्नको आविष्कार किया। उसके छः वर्ष बाद सेमियार डेटेन और टेराडेस फिउगोके मध्यसे जाते

समय किसी इटलियन पड़ोस गये थे, उन्हीके नामानुसार यह इटली सेमियार कहा गया। फिर थोड़े दिन पीछे मागेलनके कुछ साथी युरोप वापस गये थे। उनमें वेद्याजनी भी रहे। फ्रान्स-राज प्रथम फ्रान्सिसने उन्हें यूनाइटेड स्टेटके सीमान्तपर अटलाण्टिक उपकूलका पथ आविष्कार करने भेजा। दस वत्सर बाद उक्त राजाके पादशेसि फिर जेम्स कर्टर जलध्रमणको निकाल पड़े थे। उन्होंने सेण्ट-लरेन्स नामक उपसागर और इटलीको आविष्कार किया। सन् १५७८ ई० में ड्रेक साहबने कालिफोर्नियाका उत्तर भाग टूँटा था। सन् १६८२ ई० में फ्रान्सीसी सर्वप्रथम मिसिसिपिमें आ उतरे। सन् १७१८ और १७३८ ई० के मध्य अन्तर्-सन्दर्भके अनेक वृत्तमान इतिहास कालम्बियाके मध्यसे मैकेन्सी नदीपर पहुँचे और वहाँसे प्रगाल महासागरके उपकूल पर्यन्त समग्र स्थानको आविष्कार किया था। सिवा उसके डेविड, वेफिन, लाटेटार, इडसन् प्रभृति, अंगरेजोंने भी अनेक स्थान दूँट निकाले। अभी सकल स्थान आविष्कार नहीं हुए। अनुसन्धान लगा रहे हैं।

उपनिवेश—यूरोपीयोंके मध्य खेनवासियोंने सर्वप्रथम अमेरिकामें उपनिवेश किया। उपनिवेश स्थापन करनेमें उन्हें आदिम अधिवासियोंसे अनेक बार लड़ना पड़ा था। उसमें मेक्सिको और पेरूका ही युद्ध प्रधान रहा। सन् १५८४ ई० की मेक्सिको खेनके अधिकारमें चला गया था। सन् १७६८ ई० में खेनके अधीन फ्रान्सीस्कांनोंपर कालिफोर्नियाको अधिकार किया। सन् १८१८ ई० की ४२ अघान्तर पर्यन्त उत्तर-अमेरिकामें खेनका शासन फैल चुका था। पोर्तुगालवासी उपनिवेश स्थापनमें उतने यत्नवान् न रहे, उनका लक्ष एशिया-खण्डपर ही लग गया। सन् १५०० ई० में ब्रेजिल आविष्कार हुआ था। उसके तीस वर्ष बाद पोर्तुगीजोंने वहाँ उपनिवेश जमाया। सन् १६५० ई० में पोर्तुगालके साथ ब्रेजिल भी खेनके अधिकारमें पड़ गया था। कुछ दिन पीछे फ्रान्सीसराजके आक्रोशमें ब्राजीलवासी सामन्त आदि और ब्रेजिल पहुँचकर आश्रय लिया। पचास वर्ष

बाद, ब्रेजिल दक्षिण-अमेरिकाके मध्य प्रबल और स्वाधीन राज्य बन गया था।

फ्रान्सीसियोंने सिप्टलरनेस और मिमिसिपिका उपमूल अधिकार किया; उन्हें उपनिवेशके संस्थापनकी अधिक इच्छा न रही, अंगरेजोंसे लड़ना ही उनका उद्देश्य था। फ्रान्सीसी अधिकारके मध्य शासनकर्ता ही सर्वसर्वा होता और राजनीतिका चक्र गाना भावने चलता है। किसीको उसपर हस्तक्षेप करनेका अधिकार न रहेगा। सन् १७६२ ई०में फ्रान्सने इङ्ग्लैण्डको कानाडा दे दिया था।

अंगरेज उपनिवेश—स्थापन करनेमें सकल जातिकी अपेक्षा तत्पर होते हैं। किन्तु वही सबसे पीछे अमेरिका पहुँचे थे। सन् १६०७ ई०को निउफाउण्डलैण्ड और वरजिनियामें सर्वप्रथम अंगरेजों उपनिवेश स्थापित हुआ।

सन् १६२० ई०में पूरिटानोंने मेसाचुसेट्सको अधिकार किया था। सन् १६३४से १६३६ ई०के मध्य निउ ह्यामसायर और कर्नैकटिकटमें अंगरेज आकर टिकते रहे। सन् १६६४ ई०में उन्हें निउयार्क, निउजर्सी और डेलावरकी डालेण्डवालोंसे ले लिया। सन् १६७० ई०को साउथ-केरोलिनामें अंगरेजी राज्य स्थापित हुआ था। सन् १७३३ ई०को जर्जिया भी अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

अमेरिकाके अंगरेज स्वाधीनता-प्रयासी होते हैं। वह किसीके अधिकारमें रहना नहीं चाहते। आजकल युनाइटेड-स्टेट्सके अंगरेज सर्वप्रकार स्वाधीन हैं। यहाँ दूसरेका शासन नहीं चलता।

उत्तर और जल—अमेरिकाका उद्भिद् और मत्स्यादि पुरातन महाद्वीपसे भिन्न निकलिया। यहाँ नाना जातीय वृक्ष उपजता, जिसमें देवदारु, शोका, विनो प्रभृति ही अधिक रहता है। चुडास्र जातीय वृक्ष हिमालय पर्वतपर भी देख पड़ेगा। चावल, यव, राई, गेहूँ प्रभृति शस्य उत्पन्न होता है। यहाँ ज्वार प्यादा मिलेगी। स्थान-स्थानमें सन और तीसो बोयो जाती है। ३८° अक्षांशके मध्य तम्बाकू बहुत लगायेंगे। ३७° अक्षांशमें रुयी उपजती है। नील भी बोया

जाये, किन्तु वह देशकी तरह अधिक न होगा। यहाँ केली बहुत बढ़ते और लीनोंको खानेमें भी अच्छे लगते हैं। आलू टेरका टेर निकलिया। मानिवोक नामक कोई लता होती है। उसकी रींगदार जड़ सुखाकर बुकनी बना लेनेसे आटे जैसी आयेगी। अमेरिका या मार्किन उसी आटेकी रोटी पकाकर खाता है। चिलि देशमें भारारोट उपजता। स्थान-स्थानमें नारियल, गन्ना, बादाम और गुलतुरह मिलता है। आजकल युरोपीय सभ्य जातिके उत्पादसे अमेरिकामें नाना जातीय फल-फूलका पेड़ लगाया जाता है।

जन्तु नाना प्रकारका होता है। उसमें हरिण, मछिप (बाइसन), मीप, शयक, विडाल, कछुं दर चूहा, चमगोदड़, शजाकू, भालू और लोमड़ी प्रायः देखनेमें आयेगी। अमेरिकाका मांसायी जन्तु बहुत भयानक लगता है। लगड़भगा और जागुयार नामक व्याघ्र ही अधिक पायेंगे। हाथी, गैंडा, और घोड़ा पुरातन महाद्वीपकी तरह रहता है। चिह्न और पेछु देशमें खामा एवं शकपका मिलेगा। उत्तर अमेरिकामें अपोजम होता है। उष्ण-प्रधान देशमें थानर वसेगा, वृह कितना ही अश्याके बन्दर-जैसा होता है।

यहाँ बड़े-बड़े वाजुवाला गध, चील, उलू, जल्लो कौवा, कौवा, पपीहा, मखीखोरा, चिड़ा, नाना जातीय कदूतर प्रभृति खेचर पक्षी उड़ेगा। हंस, राजहंस, सारस प्रभृति जलचर पक्षी भी तैरते फिरता है। अमेरिकाके टुकन पक्षीकी कौन प्रमांसा न करेगा।

अमेरिकाके सर्पमें विष अधिक होता है। वह नाना जातीय रहेगा। कच्छप भी अनेक प्रकारका होता है। नदीमें छोटी-बड़ी नाना प्रकारकी मछली तैरती है। निउफाउण्डलैण्डके किनारे बड़ी-बड़ी मछली पकड़ेंगे।

मधुमक्षिका बड़ा-बड़ा क्षत्ता लगती, जिससे प्रचुर मधु निकलता है। यहाँ नाना जातीय पिपीलिका होगी। किन्तु उसमें दीमक ही अधिक देख पड़ती है।

अमेली (हि० अमी०) अमेलन, मियणका अभाव,
अमेलिकका न होना, सफाई ।

अमेव (हि०) अमेव शब्द ।

अमेष्ट (सं० त्रि०) अष्टमें वलिदान किया हुआ,
जो घरमें कुरवान् किया गया हो ।

अमोक्य (सं० त्रि०) बांधनेके अयोग्य, जो बांधा न
जा सकता हो ।

अमोच (सं० त्रि०) १ असुल, आषड, निजात न
पाये हुआ, जो खुला न हो । (पु०) २ स्वतन्त्रता-
का अभाव, अन्धन, आज्ञादीको अदम-मौजूदगी, कैद ।
३ मुक्तिका अभाव, निजातकी अदम-मौजूदगी भूठी
जिन्दगीसे छुटकारेका न मिलना ।

अमोघ (सं० त्रि०) न मोघं निष्फलम्, नञ् तत् ।
१ सफल, उत्पादक, सेवादार, जुरखेज, सिरहासिल,
जो पैदा करनेवाला हो । २ अव्यर्थ, न निकनेवाला,
जो निशानेपर लग जाता हो । (पु०) ३ नदविशेष,
कोई खास दरया । ४ विष्णु । ५ गिब । ६ व्यर्थ न
लानेका भाव, जिम हालतमें फूक न पड़े ।

अमोघदण्ड (सं० पु०) दण्ड देनेमें न भूलनेवाले गिय ।

अमोघदर्निन् (सं० पु०) बोधिसत्व-विशेष ।

अमोघदृष्टि (सं० त्रि०) अव्यर्थमत, जिसके सुधा-
यिनेमें फूक न पड़े ।

अमोघदेव—कोई प्राचीन संस्कृत कवि । इनका नाम
शुक्तिमुक्तावलीमें आया है ।

अमोघवल (सं० त्रि०) अव्यर्थगतिवाली, जिसका
ज़ोर कभी कम न पड़े ।

अमोघराज (सं० पु०) मिश्र-विशेष ।

अमोघवर्ष—राष्ट्रकूटवंशीय प्रसिद्ध नृपति । ७५३ ईस्वी
विश्व न विरच्य शब्द ।

अमोघवाक् (सं० स्त्री०) अव्यर्थ शब्द, खाली न
लानेवाली अफ़ज, जो बात कभी बिगड़ती न हो ।

अमोघवाञ्छित (सं० त्रि०) अनवरत आगान्वित,
कभी दिखगीर न होनेवाला ।

अमोघविक्रम (सं० त्रि०) १ अव्यर्थवीर्य, जिसकी
बहादुरीमें कभी फूक न पाये । (पु०) २ गिब ।

अमोघविष (सं० पु०) अदम धानी बुध ।

अमोघा (सं० स्त्री०) १ परबल । २ हरीतकी, हर ।
३ विडङ्ग ।

अमोचन (सं० स्त्री०) १ मुक्तिका अभाव, निजातकी
अदम-मौजूदगी । २ अन्धन, कैद, छूटने न पाना ।

अमोचनीय (सं० त्रि०) स्वतन्त्र करनेके अयोग्य,
छुटकारा न पाने काविल ।

अमोचित (सं० त्रि०) आषड, बांधा हुआ, जिसको
छुटकारा न मिला हो ।

अमोत (सं० स्त्री०) अमा सह जतम्, अमा अन्ध-ज्ञ ।
१ अक्लिष्ट सदश यक्षयुग्म, जिस कपड़ेके जोड़ेका
किनारा फटा न रहे । (त्रि०) २ अदम जत, जो
सकानमें बुना गया हो ।

अमोतक (सं० पु०) १ अदमपालित गिर, सकानमें
परवरिय पाया हुआ वषा । २ पटकारक, लुहाहा,
जो कपड़ा बुनाता हो ।

अमोतपुत्रका (सं० स्त्री०) अदमपालिता धान्तिका,
जो लड़की सकानमें पढी हो ।

अमोद (हि०) अमोद शब्द ।

अमोद—अम्बरेके भड़ोच जिलेका एक प्रधान नगर ।

यह धाधर नदीसे आध कोस दक्षिण, भड़ोचसे साढ़े
दश कोस उत्तर, बड़ोदेसे पन्द्रह कोस दक्षिण पूर्व और
अचा० २१° ५८' ३०" उ० एवं द्राघि० ७२° ५६' १५"
पू० पर अवस्थित है । यहां लोहेका चाकू, कुरा अच्छा
वनता और कुच्छ-कुच्छ खेतीका रोजगार चलता है ।

अमीनिया (सं० पु०) १ नौसादर । २ अमूर्च्छा छोड़ने-
नेका औषध, जिस दवासे होय आ जाये । (Ammo-
nium chloride) इसे बंगलामें निग्रादल, गुजरातीमें
नवसार, मारवाड़ीमें नवसागर, कानरोमें नवासागर,
तामिलमें नवचरम, तेलगुमें नवासागरम्, मलयामें
नवसारम्, अरबीमें मिलहुवार, फारसीमें नौसादर,
भूटानीमें जियतसा, सिंधालीमें नवाचारम् और ब्रह्मीमें
जुरस कहते हैं ।

नौसादर पञ्चाधमें बहुत वनता, फिर जमे हुए
अमूर्च्छाकी शक्ती धातु गलाने और रंगनेके काम आता
है । कहते हैं, कि पञ्चाधवाले फरनाल जिलेके गुम-
तल्लह गांवमें कुम्हार बहुत पुराने समयसे अमूर्च्छा

टैर नौसादर तैयार करते रहें हैं। इसे मिय और भारतमें निम्नलिखित रीतिसे बनायेंगे,—

तालाबकी गन्दी मट्टीमें पन्द्रह या बीस चञ्जार ईंट तैयार करते और उसे पजाबेकी वाहरो और रख भाग लगा देते हैं। जब ईंट आधी जले, तब उसमें पेड़के बकले-जैसी कोई भूरी चीज निकलेगी। यह चोज दो किस्मको होती है—खराब और अच्छी। खराब चीज नौसादरकी खाम मट्टी कहाये, पजाबे पीछे बीस-तीस मन निकले और आठ आने मन विकेंगे। अच्छी चीजको पपरी कहते, पजाबे पीछे एक या दो मनसे ज्यादा नहीं पाते और दो-सवा दो रुपये मन बेचते हैं।

खाम मट्टीको चलनोसे साफ़ कर पानीमें धोले और क्लम बना लेंगे। इसका सारा मेल निकालनेकी उपरोक्त क्रिया चार बार की जाती है। फिर जो खालिस चीज रहे, वह नौ बण्डेतक आगपर रख उबाली जायेगी। पनीसा छिस्सा उड़नेपर कच्ची शकर-जैसा नमक तैयार होता है। उसके बाद पपरीको उठा कूटें और पहले चुसलेंमें मिला देंगे। अन्तमें सबको काले शीशेकी बोटलमें भर मुंह बन्द करते हैं। फिर बोटलपर चिकनी मट्टीके सात तह चढ़ायें और उसे नौसादरके मैलमें रख छोड़ेंगे। पीछे बोटलका मुंह दूमरे शीशेके ढक्कनके टाँका और उसमें हवा न एडूचनेको चिकनी मट्टीका चौदह तह चढ़ाया जाता है। ऐसा होनेपर इसे किसी बरतनमें भर तीन रात और तीन दिनसे जलती रहनेवाली भट्टीपर चढ़ा देते हैं। बारह घण्टे पीछे ढक्कनकी निकास हावेमें। इससे उड़े हुये नौसादरकी जगह ताज़ा नौसादर आ जमता है। तीन दिन, तीन रातके बाद भट्टीसे बरतन उतारें, ठण्डा पड़नेसे मुंहको तोड़ें और बाकी बरतनको फूंक देंगे। खाली नलीमें बरतनसे नमकका जौहर उड़नेपर कोई चीज निकालती, वह फासो कहलाती है। फासो दो तरहकी होगी, बट्टिया और घटिया। बट्टिया फासो सिर्फ़ दो दिन और दो रात ही आगपर नौसादर चढ़ा रहनेसे बन जाती है। इस हालतपर नली कुछ कुछ जौहरसे भरे और

निकासो पांच-छः घेर रहेंगी। यह जौहर सोलह रुपये मन विकता है। घटिया फासो तीन दिन और तीन रात नौसादर आगपर चढ़ा रहनेसे निकलेगी। इस हालतमें बरतनकी नली पूरे तौरपर फानोसे भर जाती, दश-बारह घेर निकासी पड़ती और तेरह रुपये मन विकती होती है।

जो चीज—नलीमें नहीं—बरतनके मुंहमें उड़के लगे, वह फूल कहायेगी। यह सुर्मा बनानेके काम आता और चालीस रुपये मन विकता है।

करनालमें हर साल २३०० मन नौसादर बने, जो ३४५०० रुपयेका पड़ेगा। व्यवसायी इसे कारखानेमें ही आठ रुपये मन बीसतके छिस्सासे ख़रोद लेते और दूसरे शहर भेज पन्द्रह रुपये मन बेचते हैं। पञ्जाबके दूसरे जिलेमें भी पजाबसे नौसादर निकले, किन्तु बहुतयतसे हाथ न लगेगा।

चौपन्नकी भांति नौसादर यज्ञत् और झोहाके शीशपर दिया जाता है। भारतीय वैद्य किसी रोगमें इसे खानेको न कहेंगे। रक्ताक्त यज्ञत्, फेफड़ेको सूजन और गिलटो निकल आनेपर नौसादर ऊपरसे लगता है। पन्द्रह या बीस रत्तो मात्रामें खिलानेसे यह आघातीयोको पीड़ा मिटा देगा। जलको गिर-पीड़ा पर तोस रत्तो मात्रामें यह लाभदायक होता है। ज़ेपा और कासकी भी नौसादर फ़ायदा पहुँचायेगा।

अमोरो (हिं० खी०) १ ग्रामका अपक फल, ग्रामकी कच्ची केंरो, अमिया । २ अमड़ा ।

अमोल (हिं०) अमूल देखो ।

अमोलक (हिं०) अमूल देखो ।

अमोला (हिं० पु०) ग्रामका सद्यशात छह, जो ग्रामका पोधा हालमें ही ज़मीनसे निकल रहा हो। हिन्दुस्थानी लड़का इसे पपीहरा कहता और उगाड़-कार इसकी गुठलीका बकला फोल डालता है। फिर यह छिली हुयी गुठलीके मिरको पत्थर या कियो लकड़ीपर रगड़ेगा। जब मिरकी एक तह बिस जाती और दूसरी देखायी देने लगती, तब लड़का गुठलीको मुंहमें हाल सौटीको तरह फूंकन और

बलाने लगता है। किन्तु गुठलीका मुँह विगड़ जानसे भावाज न निकलेगी। इधीनिये लहका गुठली रगड़ते समय विघ्न-बाधा दूर रखनेको नीचे लिखा बटका पढ़ते छाता है,—

“मोर पनेहरा बरिका—तरिका।

बरिका बं बुरेका देरी बाने तीं धनीं ॥”

अमोमी—युक्तप्रदेशके लखनऊ जिल्लाका एक नगर। यह लखनऊसे कोई चार कोम दूर पड़ेगा। यहां चौहान राजपूतोंका अड्डा बना है। सन् ई०के १५वें शताब्द मध्य उन्होंने भारोसे इसकी छीन लिया था। अमोमीकी चारो ओर ऊसर मिलेगा।

अमोही (हिं० वि०) अमोह, विरल, जो किसीसे सुखव्यत न रखता हो। २ कठोरहृदय, सख्तदिल, जिसे रहम न पाये।

अमोघा (हिं० पु०) १ आम्बके रसतुल्य वर्ष, जो रङ्ग आमके अर्क-जैसा हो। यह तरह-तरहका रहता है। २ आम्बरसतुल्य वर्षविशिष्ट वस्तु, जिस कपड़ेका रङ्ग आमके रस-जैसा रहे। (वि०) ३ आम्बरसतुल्यवर्षविशिष्ट, जो आमके रस-जैसा रङ्ग रखता हो। **अमोवधौत** (सं० वि०) रजक द्वारा अमचालित, जिसको धोबीने न धोया हो।

अमोन (सं० स्त्री०) १ निःशब्दताका अभाव, अमोमीकी अटम-मौजूदगी, धोमचाल। २ आम्बज्ञान, रुहका इल्ल।

अमोलिक (सं० वि०) १ मूलशून्य, वेदुनियाद, जिसकी कोई लड़ न रहे। २ मिथ्या, झूठ। ३ अय-धायं, गुरवाजिय।

अमोया, अमोया देवी।

अम्दपुर—बरारके बुलडाना जिल्लाका कोई गाँव। यह बुलडानेसे दक्षिण-पूर्व दश कोस लगता है। गाँवसे दक्षिण कोई पाय कोम एक छोटा पहाड़ है, जिसके दक्षिण ओर दक्षिण-पूर्व किनारे गहरी-जुबहरत खाड़ी पड़ी है। पहाड़की चोटीपर एक नया भवानीका मन्दिर देखेंगे। मन्दिरमें ऊपरसे इसतरह प्रकाश पड़ता है, कि यह पूर्ण रीतिसे मूर्तिपर ही पड़ता और मण्डपमें अम्बकार बना रहता है। मन्दिरके

निकट किसी बहुत बड़ी मूर्तिका ध्वंसावशेष मिलेगा। नाखनसे एड़ीतक जो छिप्पा टटा, वर साढ़े छः फीट नया है। यह मूर्ति पूर्ण परिमाणमें पचास-साठ फीट रही होगी। इसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग अलग अलग गढ़ा गया है। अम्बम् (ये० अम्ब०) १ अज्ञात दृश्यां, शीघ्र, वेसमन्नि-वृत्ति, अटपट। २ वर्तमान समय, अभी। ३ लघु-रूपसे, कुछ-कुछ।

अम्बर—बरारके अमरावती जिल्लाका एक शहर। यह मोरमी तहसोलसे लगता, जाम तथा वर्षा नदीके गङ्गम पर बसता और निवासियोंमें विशेषतः सुमलमान रखता है। यहां जागीरदार और निजामसे किसी समय घोर युद्ध हुआ था। सात हजार सिपाहियोंकी यात्रा भी देखनेमें आयेंगी। नदी किनारे एक पुराना महादेवका मन्दिर बना और उसके नीचे अद्भुत कुण्ड भरा है। २ बरारवाले एलिचपुर जिल्लाके मेसघाटका किल्ला। यह अक्षां २१° ११' ४५" उ०, द्राधि० ७६° ४८' १०" पू० पर अवस्थित है। गागाँ और तापती नदीने मिलकर जो त्रिकोण बनाया, उसको शिखापर इसे लोगोंने खड़ा किया था। सिधा उत्तर-पश्चिम ओरके किसी राह गद्य इसपर आक्रमण कर नहीं सकता। फिर तापतीके बायें किनारेकी भूमि टालू और ऊँचो भी पड़ेगी। किल्ला एक एकड़ भूमिपर विस्तृत, आकृतिमें चतुष्कोण, ईंटसे उठा और अपने इधर उधर चार बुर्ज रखता है। इसके पश्चिम कोणको मीनारदार ममजिद देखनेमें सुन्दर और उत्कृष्ट मालूम होगी। सन् १८५८ ई०में इसका सामान उतारा और तोप हटायो गयी थी।

अम्ब (सं० पु०) अम्ब-घञ् अच् वा। १ सम्बोधन, पुकार। २ गमन, रवानगी। ३ पिता, बाप। ४ गन्ध, घेद, गन्ध सुनानेवाला, आवाज़, जो आवाज़ लगता हो। (स्त्री०) ५ नेत्र, आँख। ६ जल, पानी। (अम्ब०) ७ सुदु, साधु, सम्यक्, ज्ञ, क्या खूब, भला।

अम्बक (सं० स्त्री०) अम्बति दूरस्थमपि वस्तु प्राप्नोति, अम्ब-शुल्। १ नेत्र, चक्षुः। 'नियन्त्रणे संदर्भिते दरभे' (इभार १/४४) अम्बति छे हात् धावति, घञ् क्षाद्ये

क। २ पिता, बाप। ३ ताम्र, तांश। (पु०)
४ वकुलवृक्ष, मौलसिरी।

अश्वया (वै० स्त्री०) १ माता, मा। २ उत्तमा स्त्री,
अच्छी औरत, ३ जल से जानिवाली, जो पानी ले
जाती हो।

अश्वर (स० स्त्री०) अश्वन्ते शब्दायन्तोऽभिन् नेषाः,
अविड्-अरच् प्रत्ययान्तो निपात्यते। १ आकाश,
आकाशान्। २ अन्तिक, पड़ोस। ३ वस्त्र, कपड़ा।
४ अश्व धातु, अश्वरक। ५ कार्पास, कपास। ६ श्रोत्र,
होंठ। ७ पाप, इजाब। ८ गन्धद्रव्यविशेष, इसी
नामकी कोई खुशबूदार चीज। ९ कुडुम, केसर।
१० परिधि, दीर-सुचीत-दायरा, घेरा। ११ नगर
विशेष, एक शहर। अश्वर या आमेर जयपुरकी
प्राचीन राजधानी रहा। यह वर्तमान जयपुर नगरसे
प्रायः तीन कोस उत्तर अरबली पर्वतके मध्यमें
अक्षा० २६° ५८' ४५" उ० और द्राधि० ७५° ५२' ५०"
पू० पर अवस्थित है। महाराज मानसिंहने इस
नगरकी सुरम्ह प्रस्तरकी घट्टालिकाओंसे सुशोभित
किया था।

अश्वर शहरका चलता हुआ नाम आमेर है।
कोई कोई इसे धनुश्वर और अश्वकेश्वर भी कहते हैं।
इस नगरको पहले किसने स्थापित किया था, इसका
ठीक पता नहीं लगता। आमेर और उसके निकट-
वर्ती स्थानमें मीना नामकी एक असभ्य जाती रहती
है। मेवाड़के भोलोंके साथ मीना जातिकी बहुत
साहस्य देखा जाता है। पहले यहाँके अनेक स्थानोंमें
मीनाओंका एक एक छोटा राज्य था। अश्वरतः
अश्वर भी मीनाओंकी राजधानी रहा होगा। उसके
बाद यह किम तरह मानसिंहके पूर्वपुत्रोंके हाथ आ
गया, यह हतान्त खूब स्पष्ट नहीं है।

जयपुरके राजे सूर्यवंशी क्षत्री हैं। ये लोग
श्रीरामचन्द्रके द्वितीयपुत्र कुशके सन्तान हैं। कुशसे
गणना करनेसे इस समय १३८ धीं पीढ़ी चलती है।
पहले कुशवंशके एक राजाने भयोथासे भाकर गोन
नदके निकट एक पर्वतके ऊपर रोहतासगढ़ नामक
दुर्ग बनाया। यहाँ कुशवंशके राजाधोंने कुछ समय

तक राज्य किया था। फिर यहाँसे जाकर उन लोगोंने
लाहौरके निकट सिन्धु एवं पडुज नदके समीप कल्लुया-
गढ़में कुछ कालतक राज्य चलाया। उसके बाद २७५
ई०में यहाँसे २५ कोस पश्चिम गवालियरका राज्य
संस्थापन हुआ। अन्तमें २८५ ई०में नल नामक जनक
राजाने बुन्देलखण्ड जाकर नरवर राज्य संस्थापन किया।

कुशराजासे बत्तीस पीढ़ी होत गई। उसके बाद
सौधसिंह नरवरके राजा हुए। उनके पुत्रका नाम
दूल्हा राव था। सौधसिंहकी मृत्युके बाद उनके छोटे
भाईने अपने भतीजेको राज्य नहीं दिया। उन्हें नर-
वरसे निकाल दिया। दूल्हा राव उस समय एकदम
लड़के थे। सन् ८६७ ई०में वे अपनी माताके साथ
जयपुरसे टाई कोस दक्षिण मीनाओंके खो-नगरमें
जा पहुँचे।

समय अधिक हो गया, भूख और पयश्रमसे
शिशुका शरीर झलाने लगा। अतभाग्या जननी पुत्रको
एक निर्जन स्थानमें रख थाप आहार खोजने गई।
लौट कर देखा, कि वहाँ धूलमें पड़ा सो रहा और
उसके गिरपर फण पसारे एक बड़ा भारी सांप बैठा
था। देखते ही उनका कलेजा कांप उठा। एक दिन
जो राजरानो थीं, आज वे पयकी भिखारिनी बनीं।
अन्धेकी लाठीकी तरह एकही शिशु सन्तान सम्भन
था, भाग्यदोषसे शायद वह भी जाना चाहते रहा।
दुर्भाग्या जननी रोती रोती पुत्रकी ओर दौड़ी। शब्द
पाकर सांप चला गया। दूरसे एक ब्राह्मणने यह
व्यापार देखकर रानीसे कहा,—‘डरो मत। देखना,
श्रीर ही तुम्हारा यह पुत्र राज्येश्वर होगा।’ दुःखिता
जननी अपनी सन्तानको लेकर नगरमें गई और एक
मोना-सरदारकी परिचारिका हुई। कहते हैं, कि
अन्तमें दूल्हा राव, शायद मोना-सरदारका प्राण नष्टकर
थाप राजा बन बैठे थे। किसी किसीके मतानुसार—
जयपुरसे १७ कोस दक्षिणपूर्वकी ओर दोसा नगरके
सरदारकी कन्याके साथ उन्हेंने अपना विवाह किया
था। दोसाराज निःसन्तान थे, इसीसे उनकी मृत्युके
अनन्तर दूल्हा राव राज्यके उत्तराधिकारी हुए। इस
तरह इस विषयमें अनेक मतान्तर हैं।

प्रवाद है, कि द्रुह्रा रावने मोना प्रभृति जातियोंके माय भयद्वर युद्ध किया था। उसी युद्धमें वे सत्सैन्य चेत प्राये। उनके बाद रातमें अम्बा अर्थात् माता भगवतीने दयाकर द्रुह्रा रावको जिना दिया। इस अद्भुत व्यापारकी देखकर मीनाचौने उन्हें राज्यपदपर अभिषिक्त किया। देवीके वरपुत्र द्रुह्रा राव शम्बरमें अम्बा देवीको मूर्ति प्रतिष्ठित कर उनकी पूजा करने लगे। कोई कोई कहते हैं, कि द्रुह्रा रावके पुत्र कदन्न रावने शम्बर जय किया था। फिर किसीके मतानुसार मेदल राव नामक उर्षीके किसी पुत्रने शम्बरको जीता। मेदल रावको अष्टारह पीढ़ी बाद विहारी या अष्टारमल्लका जन्म हुआ। अष्टारमल्ल बावरके प्रियपात्र थे। इन्हींमें भी उन्हें मनसब अर्थात् पांच हजार सैन्यका सेनापति बना दिया। मानसिंह इन्हीं विहारीमल्लके सन्तान रहे। इन्हींने ही शम्बर नगरको सुरभ्य अष्टालिका प्रभृतिसे सुसज्जित किया था।

कोई कोई कहते हैं, 'अम्बा' देवीके नामसे ही लोग इस गहरको शम्बर कहते हैं। फिर शम्बर शम्बरका अपभ्रंश है। शम्बरमें शम्बरकेश्वर नामक एक शिवलिंग है। इसलिये अनेक यह बात भी कहते हैं, कि शम्बरकेश्वरसे ही इस नगरका नाम शम्बर हुआ है। धुन्डर वा धुन्डवर नामका कारण लोग यह बताते हैं, कि पहले गङ्गा पहाड़में धुन्ड नामक एक देव रहता था। उसीके नामके अनुसार सब कोई इस प्रदेशको धुन्डर वा धुन्डवर कहते हैं। जयपुर ग्रन्थमें शम्बर राजवंशका विवरण देखा।

शम्बर शम्बरका वर्णन किया जाता है। निर्जन निम्न स्थानमें दोनों शोर पर्वतकी गोदमें यह सुरभ्य स्थान मानो अमरावतीके समस्त सौन्दर्यसे सुगोभित किया गया है। जयपुरके ईमान कोषबासे फाटकसे निकलकर उत्तर सुँह जाना पड़ता है। बराबर सुन्दर पक्षी सड़क बनी हुई है। इसी राहसे पहले लोग दिक्की जाते प्राते थे। फाटकके बाहर कुछ बार्दे शोर जयपुरके प्रथम प्रधान मन्त्री शमीर ठाकुरका प्रासाद है। पथकी दोनों शोर पर्वतमाला

विस्तार शरीर फैलाकर पड़ी हुई है। प्रोषकालमें यहांके पहाड़ी लता-गुल्म सूख जाते, परन्तु वर्षाका जल पाकर फिर मधुरित होते हैं। उस समय नगरकी शोभाके साथ तद्दलता हँसती रहती है।

दोनों शोर पर्वतके नीचे स्थान स्थानपर गहरे तानाव हैं। उनमें कच्छर, कुम्भीर, मत्स्य प्रभृति जलजन्तु कभी ऊपर आते, कभी नीचे जाते, शोर कभी तैर-तैर भैर करते हैं। दक्षिण शोर मानसागर है। प्रोषकालमें यह स्थान सुशोभन शोर मनोहर हो जाता है, परन्तु प्राक्कल इसमें धारहो मछीने जल नहीं रहता। उससे कुछ दूर बार्दे शोर चन्द्रबाग है। पथकी दोनों शोर देवी शोर नाना प्रकारके विनायकी वृक्ष शाखा फेलाये छाया किये रहते हैं। दक्षिण शोर रानियोंकी छत्रियां शोर बार्दे शोर शोर शोर लोभोकी समाधियां है। रानियोंकी छत्रियां कुछ बनीं शोर कुछ नहीं बनीं; ऊत अश्वरी शोर ऊपर चढ़ा नहीं है। राजाचौने रानियोंकी छत्रियोंको सम्पूर्ण नहीं किया। सड़कके किनारे एक एक छोटा देवान्ध शोर पथिकोंके विश्रामका स्थान बना हुआ है। शम्बरके बाहर घाटके नीचे प्रसिद्ध 'काले महादेव'का मन्दिर है। प्रवाद है, कि महाराज मानसिंह इस शिवलिंगको यगोहरसे ले प्राये थे।

क्रमसे दो कोस राह खतम हो जानेपर एक कोस शोर बाकी रह जाते हैं। परन्तु इन कोसमें चार कोससे भी अधिक यम होता है। शोषा टालू पथ क्रम क्रमसे ऊपर उठता गया है। छोलां प्रादि लोभोको कच्छपर लिये रहते हैं; दो सामनेका डण्डा पकड़कर खींचते शोर दो दोनों शोर बांसे रहते हैं, तब ऊपर जाया जाता है। उत्तरनेके समय भी ऐसा ही कट होता है। ऊँट, हाथी, घोड़ा, बैल प्रादि चलवान पथ भी धीरे धीरे जाते शोर प्राते हैं।

ऐसे दुरारीह पथसे कुछ कम प्राध कोस ऊपर जाकर फिर नीचे उतरना पड़ता है। उसके बाद शम्बर गहर है। पहले बार्दे शोर 'दिनाराम' बाग मिलता है। इसमें नाना प्रकारके फल फूलके पेड़

हैं। बीचमें जलके कई फव्वारे हैं, पश्चिम ओर अष्टालिका है। बागमें झुण्डके झुण्ड मोर चरते फिरते हैं। कोई बृचपर बैठा और लम्बी पूछ लटकाये देखा रहा है, कोई जमीनपर छायेमें सो रहा है, कोई पूछ फैलाये और उठाये आनन्दसे नाच रहा है; उनके पास जानेमें तनिक भी न डरेंगे। जयपुर-नरैगकी आज्ञासे इस प्रदेशमें मयूरको कोई नहीं मार सकता। दिलाराम बागकी बाईं ओर एक बड़ा भारी सरोवर है।

इस उद्यानसे निकलकर एक सड़क उत्तरकी ओर भग्न नगरमें चली गई है और एक सड़क कुछ दूर पश्चिममें राजप्रासादकी ओर भाई है। यहमें और कुछ भी नहीं है। कितने दिनोंकी धूमधामके बाद यह शहर शव सो रहा है। हाट बाजार टूट फूट गया है। पहले यहाँ बहुत अच्छी बन्दूक और नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र प्रस्तुत होते थे। यह सब अस्त्र श्व भी जयपुरके राजभवनमें रखे हुए हैं। उनके सामने विलायती अस्त्र तुच्छ मालूम होते हैं। महाराज मानसिंहके हाथकी लाठी यहीं बनाई गई थी। विधाताके हाथका नैपुण्य सन्न्याके आकाश तथा मयूर-पुच्छमें और मनुष्यके हाथका नैपुण्य मानसिंहकी सामान्य एक लाठीमें दिखाई देता है। संभारमें ऐसा सुन्दर और कुछ भी नहीं है। लाठीके ऊपर मुलाम्मा किया हुआ है। उसमें कितने ही रङ्ग और विचित्र चित्र हैं। प्रायः तीन सौ वर्ष हो चला, परन्तु आज भी वह नई और ऊपरसे नीचे तक सुन्दरतासे भरी हुई है। श्व भी कैसे चमकती है। उस समय इस नगरमें और भी अनेक शिल्पकार्योंकी उन्नति हुई थी।

श्व शम्बरके शिल्पी जयपुर चले गये हैं। श्व यहाँ धनी आदमी नहीं है। केवल सामान्य श्व-स्थायीको प्रजा कष्टसे दिन बिताती है। दुकानोंमें खानेकी अच्छी चीजें नहीं मिलती, केवल भुना हुआ चना, गेहूँ, दूध और सन्तू, आदि सामान्य चीजें ही पाते हैं। किसी किसी दुकानमें भावकी मिठाई भी मिलती है।

शम्बरका राजप्रासाद ऊँचे पहाड़के नीचे एक

उन्नत स्थानपर बना हुआ है। इसकी पूर्व ओर एक बृहत् सरोवर है। इसी सरोवरके समीप दिलाराम बाग और उसके बाद राजपथ है। राजपथको पूर्व ओर और एक पर्वतमाला है। राजभवनसे दक्षिण ऊँचे पहाड़के ऊपर प्रसिद्ध जयगढ़ है। मानसिंहके भ्राता जगत्सिंहके पौत्र महाराज मिर्जा जयसिंहने इस दुर्गकी सम्पूर्ण किया था। जयगढ़में मानसिंहकी बहुमूर्ख सम्पत्ति भाण्डारमें बन्द है। दरवाजेपर मुहर लगी हुई है। उस भाण्डारको खोलनेकी श्रमा किसीको नहीं है। स्वयं जयपुरके महाराज भी उसे आँखसे नहीं देखने पाते। मोना लोग शम्बर राज-वंशकी परम विधात्री प्रजा हैं। पहले यह लोग चारो ओर राजपूतानेमें चोरी-डकैती करते फिरते थे, परन्तु यहाँकी राजाकी कमी कोई हानि न करते थे। शम्बरका समस्त राजभाण्डार श्व भो मीना जातिके हाथमें है। यह लोग भाठो पहर वहाँ पहरा दिया करते हैं। बहल जय करनेके बाद महाराज मानसिंहने जयगढ़में एक बहुत ऊँचा विजयस्तम्भ स्थापित किया था। यह कौत्सिंहश्व भाज भी विनष्ट नहीं हुआ।

राजप्रासादसे पश्चिम कुछ दूर ऊँचे पहाड़के ऊपर प्राचीन कुन्तलगढ़ है। यह गढ़ हजार वर्षसे भी पहलका है। श्व टूट फूट गया है, चारो ओर जङ्गल लग गया है। इसमें बाघ और बनेलें सुपर लिये रहते हैं। कुन्तलगढ़से और भी ऊपर भूतेश्वर महा-देवका मन्दिर है। यह भो अतिगय प्राचीन है। उत्तर ओरको दीवारके पास एक बड़ा भारी मसजिद है। अजमेरसे गमनागमनके समय किसी मुसलमान वादयाहने इस मसजिदको बनवाया था।

नीचेके पथसे राजप्रासाद बहुत ऊँचेपर है। परन्तु ऊपर जानेके लिये अच्छी राह बनी हुई है। हाथी, घोड़ा, श्वया पालकी प्रश्रुतिपर चढ़कर श्वसे ऊपर जा सकते हैं। पहले ही पूर्वमुख प्रश्रुत दोर्घ सिंहाकार है। उसके ऊपर अंगरेजी घड़ो लगे हुई हैं। सिपाही लोग रात दिन वहाँ पहरा दिया करते हैं। उस द्वारसे पश्चिम मुख प्रवेश करने पर राज-

मयनके पहले महलका बड़ा भारी भांगन मिमता है। पहले यहाँ हाथीकी सड़ाई और बनेक प्रकारकी धूमधाम हुआ करती थी। उसके बाद दक्षिण पश्चिमकी ओर जानसे कुछ ऊपर चढ़ना होता है। चढ़ते ही सामने यगोहरेश्वरों कालीके मन्दिरका प्रवेशद्वार दिखाई देता है। बाईं ओर महाराजका दीवानखाना है।

२४ परगनाके अन्तर्गत टाकीसे प्रायः दस कोस दक्षिण प्राचीन यगोहर नगर है। यहाँ प्रतापादित्य राजाकी राजधानी थी। अब यगोहरका नाम निगान भी नहीं है। नगर ध्वंग हो गया है, कई स्थानोंमें बङ्गन भर गया है। इसके निकटवर्ती स्थानमें राजा चन्द्रनाथ रायके बंशके बनेक यगोहरी कायस्थ अब भी वास करते हैं। प्रतापादित्य दिल्लीके बादशाहको न मानते थे। इसलिये उन्हें दमन करनेके लिये बादशाहके प्रधान सेनापति ससैन्य बङ्गाल पहुँचे। वहाँसे भयानन्द मल्लमदारकी सेना यगोहर गयी। घोर युद्ध हुआ; अन्तमें प्रतापादित्य परास्त हुए।

स्वदेश जानेके समय मानसिंह यगोहरकी गिला देवीको अपने साथ ले गये और अम्बरमें उन्हें प्रतिष्ठित किया। वह गिलादेवी अब भी विद्यमान हैं। देवीको सेवाके लिये महाराज कितने ही पुजारी भी ले गये थे। वह सब वैदिक श्रेणिके ब्राह्मण हैं। इस समय भी उनके रंजधर यगोहरेश्वरीकी पूजा करते हैं। इन ब्राह्मणोंके अनेक धार्मिक व्यक्तित्व अष्टे कृत-विद्या हो रथे थे। उनका नाम विद्याधर था। वर्तमान जयपुर नगर निर्माण करनेके समय उन्होंने ही नक्शा तय्यार कर दिया था। उसी नक्शेके अनुसार यह पदार्थ बहर बना है। मानसिंहके गिलादेवीके ले जानेपर कछरायने और एक प्रतिमा बनवाकर यगोहरमें प्रतिष्ठित की। धूमघाटके देवालयमें आज भी वही गिलादेवी वर्तमान है।

यहाँ यगोहरेश्वरीका एक चित्र दिया गया है। देवो चन्द्रशुभी—महिषमर्दिनी मूर्ति हैं। कटिदेशसे पद-तल तक चाघरेमि कृपा हुआ है। इसीसे सिंह प्रसूतिकी मूर्ति दिखाई नहीं देती। देवी बाईं ओरके

हाथसे ढाल, धनु और महिषासुरकी जिह्वा एकट्टे हुये हैं। फिर एक हाथमें ब्राह्मण लोग फूलोंका छोटासा गुच्छा रख रहे हैं। मानसु होता है, पहले इसमें चक्र था। दाहिने हाथमें अस्त्र, तीर और त्रिशूल है; फिर एक हाथमें न मानसु कौन पन्न है, जो ठीक पहचाना नहीं जाता। मानसु होता है, देवो इस हाथसे वर और अभय देतो हैं। किन्तु लोगोंने किस तरह गोबन्धन करके बाये हाथका अस्त्र दाहिने हाथमें दे रखा है। प्रतापादित्य, मानसिंह और मिनाशरी देखो।

देवीके मस्तकके ऊपर पीछेकी ओर गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और कार्तिकेयकी मूर्ति हैं। यह प्रतिमा पाषाणमयी और उज्वल रूपयुक्त है। न मानसु क्यों बाईं ओर मुख कुछ वक्र किये हुए हैं। इस बारेमें बहुत सो गण्य हैं। कोई कोई कहते हैं, कि मानसिंहके साथ युद्धके समय प्रतापादित्यने गड्ढमें पहुँकर देवीकी स्मृति की थी, परन्तु यगोहरेश्वरीने उसे नहीं सुना; फुटकर मुख फिर लिया। उसीसे देवोका मुख बाईं ओर कुछ वक्र हो गया है।

यह तो हुआ एक मत। और एक प्रवाद है, पहले मानसिंहके समयमें गिलादेवीके निकट प्रतिदिन नरबलि होता था। कुछ दिनोंके बाद यह क्रमथा बन्द हो गई, इसीसे वृष्ट देवीन सुँड फिर लिया था। अन्तमें जब महाराजको स्वप्नमें यह सब बातें मानसु हुईं, तब प्रत्यक्ष वह एक बकरेका बलि देने लगे। अब तक वह नियम चला आता है। केवल पाश्चिमी मासकी महाष्टमी और वासन्ती पूजाके समय अधिक धूम होती है। प्रधान प्रधान मरदार और अन्यक कर्मचारियोंको साथ लेकर जयपुरके महाराज स्वयं पूजा देवने पाते हैं।

बलिदान मन्दिरके ठीक सामने नहीं होता। देवीका सुँड बाईं ओर कुछ वक्र है, इसलिये बलिदान भी मन्दिरकी बाईं ओर होता है। मीना लोग ही प्रतिदिन बलिदान देते हैं। किन्तु महाष्टमी और वासन्तीपूजामें अर्चक्य भैंसों और बकरोंका बलिदान

दिया जाता है। उस समय खुद सरदार लोग ही तलवारसे पत्ति देते हैं।

शिलादेवीके मन्दिरसे निकलकर बाईं ओर जानेसे और एक सिंहद्वार मिलता है। इसके कपाटमें पीतलके पत्र लड़े हैं। यहाँ भी पहरा पड़ता है। विना महाराजका आज्ञापत्र दिखाये पहरेवाले भीतर जाने नहीं देते।

इस पथसे प्रवेश करनेपर सामने पोखूता आंगन दिखाई देता है। उसकी चारो ओर प्रसिद्ध दीवान-खाना है। इसमें लाल पत्थरके चालीस खम्भे हैं। खम्भोंमें सफेद पलस्तर किया हुआ है। ऊपरकी छत मेहराबदार है, महाराज मानसिंह यहीं दरबार करते थे। पहले खम्भोंमें पलस्तर नहीं था। कदा जाता है, कि यह दीवानखाना अकबरके दीवान-आमकी नकल बनाया गया था। यह समाचार पाते ही—सम्भ्रांते आमेरमें कुछ सेना भेज दी। इधर दो पहरके पहले मानसिंहको भी खबर लग गई। बस चटपट उन्होंने सब खम्भोंमें सफेद पलस्तर लगवा दिया। इसलिये आनेपर सम्भ्रांटेके लोग और कोई आपत्ति न कर सके। दीवानखानेकी बगलमें पूर्व ओर कई छोटी छोटी कोठरियाँ हैं।

उसके बाद दक्षिण ओर और एक पीतलका दरवाजा है। इस दरवाजेसे मकानके अन्दर जाना होता है। वीचमें बड़ा भारी आंगन है। उसमें मनोहर उपवन है। उस उपवनमें कहीं फूल लगे हैं, कहीं फूल खिले हैं। हवाके भौंकिसे पेड़ोंको डालियाँ डोल रही हैं। इसकी पूर्व ओर और एक बड़ा भारी दालान है। इस दालानके पत्थरोंमें ताजमहलके निपुण कारीगरोंका शिल्पकीमल है। इसकी कारी-गरीपर नज़र पटक जाती है, वहासे टलना नहीं चाहती। खम्भे सफेद पत्थरके बने हैं। उनपर फूल कटे हुए हैं। फूलोंपर तितलियाँ उड़ उड़कर बैठ रहीं हैं। छत मेहराबदार है। मेहराबके नीचे खिड़कियोंके सिरेपर भी अनेक प्रकारके चित्र विचित्र रङ्ग हैं। उनके ऊपर काँच लड़ा हुआ है। एक मनुष्यके नीचे खड़े होनेसे ऊपर कितने ही मनुष्य दिखाई देते हैं।

हाथ डोखानेसे ऊपर कितने ही हाथ डोलने लगते हैं।

इस दालानकी उत्तर ओर एक छोटे द्वारसे जानेपर मानसिंहके खान करनेका हम्माम मिलता है; उसके बाद पश्चिम ओर सुरङ्गकी राह जानेसे देवार्चनका कमरा है। हम्माममें सफेद पत्थरका होज़ बना है, उसके किनारे किनारे मोरियाँ लगी हैं। खानके बाद सहसा शीतल वायु न लगे, इसलिये हम्मामसे निकल अति अप्रयत्न सुरङ्गके पथसे पूजाके घरमें जाना होता है।

पश्चिम ओर नीचेकी भंजिलमें घौषकालमें रानियाँ आकर बैठती थीं। यहाँ फव्वारा और जलकी प्रचाली है। उत्तर ओर नीचेसे ऊपर जानेके लिये सीढ़ी नहीं है। नीचेसे ऊपर तक प्रगस्त ढालू पथ है। उसपर जानेमें कोई कष्ट नहीं होता। ऊपरी कमरमें अनेक प्रकारके चित्र बने हैं, एक जगह मयुरा, हन्दावन प्रथति नगर अद्वित है। गद्दा-यमुनाके जलमें मछलियाँ क्रीड़ा करती फिरती है। मन्दिरमें देव-मूर्ति प्रतिष्ठित है। विचारालयमें विचारपति बैठे हुए विचार कर रहे हैं। चित्रोंमें इसी तरहके कितने ही विवरण देखनेमें पाते हैं। शिलादेवीकी पूजाके समय रानियाँ ऊपरसे उत्सव देखती थीं, इसलिये दीवारमें भरोखे कटे हुए हैं। उसके बाद पूर्व ओर नीचेवाले दालानके ऊपर और एक छोटा दालान है। यह सफेद पत्थरका बना और पत्ति सुन्दर है। यहांके कमरोंमें किशोका नाम 'जय-मन्दिर', किशोका 'सोहागमन्दिर', किशोका 'यगो-मन्दिर' और किशोका 'सुखमन्दिर' है। ऊपरके दानानमें रानियाँ दरवार करती थीं।

ऊपरकी छतपर जाकर खड़े होनेसे सभी मनोहर दिखाई देता है। जिधर भाँच उठाकर देखिये, उधर ही अपूर्व दृश्य भल्लकता है। मकानके नीचे पूर्व ओर सरोवर है। उसके मध्यस्थलमें द्वीप है। उसके ऊपर मनोहर उद्यान है। उत्तरकी ओर भन्न नगर है। बीच बीचमें देवालय हैं। दक्षिण दिगामें बहुत दूर-पर सुरभ्य जयपुर गहर है, पूर्व पश्चिममें पहाड़ है।

मन होता है, कि दिन-रात वहाँ दृष्टिभर चारों ओरकी संपूर्ण शोभा ही देखा करें।

फिर प्रांगनमें उत्तर कर दक्षिण ओर जाओ, तो रानियाँका भग्नापुर है। किन्तु रानियाँका घर होनेसे यहाँ सुन्दर चन्द्रकी यत्रसे रखनेके लिये मणिकी पहालिका नहीं है। ऊपर नीचे पंक्तिपंक्ति छोटी छोटी सामान्य कोठरियाँ हैं। उन्हींमें रानियाँ रहती थीं। प्रांगनमें एक नाट्यमन्दिर जलक्रीड़ाके लिये एक छौं, चौर कई फ.स्यारि हैं। उत्तरके किनारेके नीचे एक कोठरीमें गौरीदेवीका मन्दिर था। वहाँ रानियाँ गौरीकी पूजा करती थीं। रानियोंकी गौरी-पूजाका नियम अब भी प्रचलित है।

पामरके राजभवनका सौन्दर्य आज भी नष्ट नहीं हुआ। देखनेमें मासूम होता है, मानो पहालिका आज ही बनाई गई है। मकानके भीतरी दरवाजोंमें हाथी-दांत जड़े हुए थे। अब सब टूट फूट गये हैं। कहीं किसी कपाटमें कुछ कुछ निर्दमन देखा जाता है। सीमाग्यसम्भूतीकी पूर्णदृष्टिके समय मानसिंहने इस सुरम्य पहालिकाको बनवाया था। इसके पहल्ले वे जिस मकानमें रहते थे, वह भति सामान्य है। सदर मकानके पश्चिमद्वारसे उत्तरकर उस पुराने मकानमें जाना होता है।

सदर मकानके पश्चिम दरवाजे, से बहुत नीचे उतरना पड़ता है। नीचे अप्रगम्य पथ है। पहल्ले पश्चिम तरफके पहाड़पर नगरनिवासियोंके छोटे छोटे घर थे। अब सब मकान गिर पड़े हैं। कहीं गिरी हुई दो एक दीवार खड़ी है, कहीं दीवारके सब पत्थर गिरकर सड़कपर टेर हो गये हैं। उस समय सब घर कच्चे बनते थे। निर्मम महीके गारेसे पत्थर जोड़ जोड़कर दीवार बना दी जाती थी। राजप्रासादके पीछेकी ओर भी कच्ची बनावट देख पड़ती है। परन्तु यह कच्ची जोड़ों भी बहुत दिनतक रहती है। तीन सौ वर्षके मकान आज भी बने हो खड़े हैं।

नीचेकी राह उत्तर मुँह जानेसे दक्षिण भागमें विद्युत्का एक ऊँचा मन्दिर मिश्रता है। उसके बाद कुछ और उत्तर रत्नाकरका यामस्थान है। रत्नाकर

पम्बरराजके कुलपुरुष थे। इस मकानमें अब कोई नहीं रहता। कई जगह यह गिर भी पड़ा है। याम भागके ऊँचे पहाड़की दक्षिण दिगामें रत्नाकरकी छवी, पहाड़जं चौर रत्नाकरसागर है। देखनेमें रत्नाकरसागर भति सुरम्य सरोवर है। स्थान भी भति मनोहर है। गुरुकी मृत्यु होनेपर उनकी श्रद्धेष्टिक्रिया हो जानेके बाद इसी सरोवरके किनारे उनकी मूर्ति समाहित किया गया था। यह छवी वही समाधिस्थान है।

चौर कुछ उत्तर जाकर बाईं ओर चढ़ना पड़ता है। यहाँकी राह बहुत ऊँची-नीची है। बाईं ओर कुछ दूर जानेसे सामने नृसिंहदेवका मन्दिर दिखाई देता है। इस मन्दिरके प्रांगनसे पश्चिमकी ओर 'हिन्दोला' मण्ड है। महाराज जयसिंहकी महिषी सौदामिनी रानीने इस हिन्दोला मण्डको श्रीकृष्णके प्रीत्यर्थ उत्सर्ग कर दिया था। मण्डके एक सफेद पत्थरपर उत्सर्गका संवत् दिन चादि खुदा हुआ है।

प्रांगनसे पूर्व शूरसिंहका गृह है। शूरसिंहके साथ पम्बरराजका कैदा सम्बन्ध था, बहुत कुछ अनुसन्धान करनेपर भी कुछ निश्चित न हो सका। वे मोनाचोंके सरदार थे भयवा मानसिंहके किसी पूर्वपुरुषके दो तीन नाम रहे इसीसे इस नामका गोलमाल होता है। इन सब बातोंकी ठीक सीमांसा करना शक्य न कठिन है। किन्तु शूरसिंह मानसिंहके कोई विशेष पात्नीय थे, चौर उन्हेंके शत्रुत्वसे पम्बरराजकी श्रीशक्ति हुई थी, इसमें कुछ भी मन्देह नहीं है। कारण, इन शूरसिंहके मकानमें ही अद्यतक जयपुर राजवंशका राजतिलक होता है चौर उस समय राजाचोंके गिरपर शूरसिंहका छत्र रखा जाता है।

शूरसिंहका गृह भति सामान्य है। प्रांगन छोटा चौर ऊपर नीचेके कमरे भी बहुत छोटे हैं। ऊपर जानेमें विपदकी गड़वा होती है,—चोड़ी एकदम छोटी चौर सीधी है। महाराज जिस कमरेमें बैठकर समा करते थे, उसके पश्चिम दक्षिण कोणमें एक वेदी है। वही वेदी शूरसिंहका राजसिंहासन है। इस कमरेकी

उत्तर ओरकी दिवारमें ब्राह्मण पुजारियोंने अनेक छोटी छोटी देवमूर्तियां रख दी हैं। उन मूर्तियोंको नित्य पूजा होती है।

राजभवनकी दक्षिण ओर रानी बालाबाईका मन्दिर है। बालाबाई शूरसिंहकी महिषी थीं। प्रवाद है, कि शूरसिंह और बालाबाई दोनों आदमी गुटिकासिद्ध थे। सन्ध्या समय विमानपर चढ़कर दोनों आदमी शून्यपथसे पुरीमें श्रीजगन्नाथका दर्शन करने जाते थे। परन्तु महाराजने इस बातको रानीसे कभी न कहा और रानीने भी इसे उनसे छिपा रखा था। इसलिये एक दूसरेकी बात कोई न जानता था। एक दिन रानीने जगन्नाथजीके मन्दिरके द्वारपर राजाको देखा। देखते ही लज्जा और भयसे सज्जुचा गईं। परन्तु रानीका मुंह घुंघटमें छिपा था, इससे अपनी महिषीको न पहचान राजाने शिष्टाचार करके कहा,—“डरो मत, बेटी। लजाती क्यों हो ? तूम कन्याके समान हो, स्वच्छन्द प्रतिमाका दर्शन करो।” जगन्नाथ देवका दर्शन करके रानी घर आईं, परन्तु राजाने उन्हें कन्या कह सम्बोधन किया था, इसलिये उस दिनसे उन्हें फिर कभी अपने शयन-रट्टमें न घुसने दिया। बाला शब्दका अर्थ कन्या और बाईका स्त्री है, इसीसे इस मन्दिरका नाम बालाबाई हुआ है।

शूरसिंहके मकानसे पूर्व महाराज मानसिंहका पूर्व वासस्थान है। यह राजभवन सामान्य धनियोंके मकान जैसा है। इसमें कोई कारीगरी नहीं, कुछ औसीन्द्य नहीं। भव कई जगह यह गिर पड़ा है। बादशाहके निकट दिन दिन मानसिंहकी प्रतिपत्ति बटने लगी, सौभाग्य लक्ष्मी दिन दिन प्रसन्न होने लगीं; उसी समय अम्बरका प्रसिद्ध राजभवन बनवाया गया।

राजभवनसे बाहर निकल फिर पूर्वके पथसे कुछ उत्तर पश्चिम मुंह जानसे बाईं ओर खेत प्रस्तरके 'अम्बकेश्वर' महादेव मिलते हैं। किसी किसीके मतानुसार इन महादेवके नामसे ही शहरका नाम अम्बर हुआ है। उसके बाद हड़बटको आंखाके नीचे

ओर कुछ उत्तर जानेपर एक बड़ा भारी झींड़ दिखाई देता है। इसके कुछ दूर पश्चिम ओर भैरवनाथका मनोहर पीठस्थान है। प्रीषकालमें यह स्थान अतिशय मनोहर हो जाता है। चारो ओर घटपव छाया किये हुए हैं, नीचे तनिक मो धूप नहीं आती। जमीनके भीतर एक पत्थरकी भैरवनाथकी मूर्ति खोदकर बनाई गई है, इसीसे लोग इन्हें अनादि लिङ्ग कहते हैं। भैरवनाथके सब अङ्गोंमें मिन्दूर पोता हुआ है। यहांसे फिर पूर्व पथ नगरके भीतर जानेपर जयपुरका राजपथ मिलता है।

अम्बरखाना—भवन-विशेष, कोई मकान। सन् १६३६ ई०की शाहजीने पुनावाले किसिसे दक्षिण यह भवन अपनी धर्मपत्नी लीजी बाई और चोरपुत्र शिवजीके लिये बनवाया था। इसे लालमहल भी कहते हैं। यह बहुत ही मजबूत बना रहा। आज भी कुछ तहखाने देखनेमें आयेंगे। शिवाजीने अपनी माताके साथ कितने ही वर्ष इसमें निवास किया। शाहजीके तत्त्वावधायक दादाजो कोंडदेव शिवजीकी शिष्टाको देखते ओर मकानको भी खबर लेते थे। पेशवाोंने आकर इसमें हाथियोंके झोंड़े रखना शुरू किया। इसीसे लोग इसे अम्बर या अम्बरीखाना कहते हैं।

अम्बरग (सं० त्रि०) आकाशगामो, आसमानपर चलनेवाला।

अम्बरद (सं० पु०) कार्पास हथ, कपासका पेश।
अम्बरनाथ—अम्बरके धाना जिलेका एक गांव। इसमें सन् १०५० ई०की अमरनाथका बहुत अच्छा मन्दिर बना था। यद्यपि मन्दिर छोटा, तथापि नङ्गागो देखकर दिल खुश हो जाता है। शिवरात्रको यहां बड़ा उत्सव रहैगा। मन्दिरमें शिलाहारवंशके शिलालेखपर ८२२ शक खुदा है। गुम्बदपर कितनी ही अच्छी तस्वीरे देख पड़ेगीं। दोबारां खर्चों और छतोंकी कारीगरी देख सभी प्राचोन भारतीय शिल्पियोंकी प्रशंसा करते हैं। गांवका सुखिया ही महादेवको पूजे और दान-दक्षिणा लेगा। लोग कहते हैं, कि इस मन्दिरको देवताओंने एक रातमें बनाया था।

अश्वरयुग (सं० क्री०) लहंगा तुगरा, घोतो-पिहोरी, घंघरिया-बोटनिया ।

अश्वरगौन (सं० पु०) गगनधर्मो पर्वत, लो पहाड़ चपनी छ'वांसे आध्यानकी चमता हो ।

अश्वरस्यनी (सं० स्त्री०) भूमि, जमीन ।

अश्वरा (सं० स्त्री०) कापीसहस्र, कपासका पेड़ ।

अश्वरातक (सं० पु०) आन्नातक हथ, भमड़ा ।

अश्वरात्त (सं० पु०) १ वस्त्रका अश्वमेध, कपड़ेका निरा । २ चित्तत्र, लफ्फ, लो जमीनका किनारा आध्यात्मसे भगा मालूम हो ।

अश्वरिया—विहारके ब्राह्मणोंका समाज विधाय ।

अश्वरिय, अश्वरीय ।

अश्वरीय, अश्वरीय ।

अश्वरीय (सं० पु०-क्री०) अश्वमेध अर्जनकाले शब्दा-

यतिह, अश्व-ईयन् रकारागमो निपात्यते । अश्वरीयः ।

७५११२ । १ अर्जनपाठ, कड़ाही, जिस अरतनमें कोई

चीज तलें । २ आन्नातक हथ, भमड़ा । ३ सूर्य ।

४ विष्णु । ५ शिव । ६ युद्ध, लड़ाई । ७ अरकविधाय ।

८ किशोर, बड़ेड़ा । ९ अश्वमेध, पकतावा । १० पुलह

नामक ब्राह्मणिके पुत्र । ११ आन्नातकके एक पुत्र । यह

विन्दुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुये थे । १२ सूर्यवंशीय

नृपति-विधाय । यह अश्वमेधके पुत्र रहे । किसी समय

इन्होंने यज्ञका अश्वदान किया, किन्तु कार्य सम्पन्न

होनेसे पहले ही इन्द्र जाकर यज्ञीय पशु चोरा लाये

थे । इसीसे अश्वरीयने ऋषिक मुनिके मन्त्रान् शनः-

श्रीफलो वधार्थ खरीदा ।

भागवतमें लिखा है,—अश्वरीय नामाके पुत्र

रहे । इनके परम विष्णुमन्त्र होनेमें कोई छुटि न थी ।

इसीसे विष्णुने इन्द्र वधानेके लिये अपना चक्र सीप

दिया । विपद् पड़नेसे चक्र आकर अश्वरीयकी रक्षा

करता था ।

एक बार कालिके मासकी द्वादशीको व्रत-

पारणके दिन दुर्वासो मुनि इनके भक्तान्तर जा पड़ते

थे । महाराजने यथोचित भसादरके बाद अपने गृहमें

भोजन करनेको मुनिसे अनुरोध किया । दुर्वासो

अश्वत्थ होकर ध्यान करने चले गये थे । कितना ही

विसम्ब होते भी यह वापस न पाये । इसीसे अश्व-

रोपने पुरोहितकी अनुमति ले भोजन कर लिया,

अधिकक्षण फिर दुर्वासोकी राह न देखी थी ।

अश्वत्थकी दुर्वासोने पड़ते यह बात सुनी, क्रोधसे

उमका सर्पाङ्ग बनने लगा । उन्होंने महाराजको

यथ करनेके लिये जटासे कोई उपदेवता निकाला या ।

उसो समय विष्णुके सुदर्शन चक्रने धाया मार उन

उपदेवताको नष्ट किया और दुर्वासोके पोढ़े-पोढ़े

दीड़ने लगा । किसी जगह निस्तार न पा अश्वत्थमें

दुर्वासो अश्वरीयके हो शरणपाव हुये थे ।

अश्वरीयम् (सं० पु०) अश्वर आकाश भोकः स्थानं

यस्य, बहुव्री० । १ वैकुण्ठमें रहनेवाला, लो विहिम्भमें

रहता हो । २ देवता, परिश्रमा ।

अश्वत्थ (सं० पु०) अश्वत्थां माथ्यच्छे तिष्ठति, अश्वत्थ-

स्थानक पत्वं आकारतोपय । १ वैश्वकन्याके गर्भं और

ब्राह्मणके औरसे जात अश्वत्थो जाति विधाय ।

२ वैश्वजाति, हकीम । ३ देशविधाय, एक सुक्त ।

४ युक्तप्रदेशको प्रसिद्ध एक कायस्थ जाति ।

। ५ इसारे धर्मशास्त्रमें अश्वत्थ जातिपर निम्न-

लिखित मीमांसा दी गयी है,—

“अश्वत्थो अश्वरीयान्तराश्वत्थ जातो अश्वत्थोऽश्व-

निपादोऽश्वत्थपारमथाः ।” (मीमांसकसंस्कृत ३।१४)

अर्थात् अश्वत्थरज, अश्वत्थरज, और अश्वत्थरज,

क्रमसे जात अश्वत्थोमगण ही अश्वत्थ, अश्वत्थ,

निपाद, अश्वत्थ और अश्वत्थ जाति है ।

बोधायन-धर्मशास्त्रमें भी उक्तमत समर्थित है । श्राद्ध-

पान्थ अश्वत्थे श्राद्धोऽश्वत्थपारमथाः श्राद्धो निपादः । (१।१)

अर्थात् ब्राह्मणके औरसे एवं विद्याहिता अश्वत्थकन्या-

के गर्भसे ब्राह्मण, ब्राह्मण और वैश्वकन्यासे अश्वत्थ एवं

श्राद्धके निपाद उत्पन्न होता है ।

भगवान् अश्वत्थमें भी धर्म-शुद्धके अनुसार ही लिखा

है । यथा—

“श्राद्धपान्थ अश्वत्थकन्याके गर्भं जायते ।” (१।१८)

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्वकन्याके गर्भमें अश्वत्थ जाति

हूये है ।

अश्वत्थे यथाश्वत्थकन्यासे निष्पाद्यते ।

“विषान् मूर्धानविभो हि चतुर्विधां विशः क्षियाम् ।
अम्बः शूद्रां निषादी जतिः पारश्वोऽपि वा ॥” (१८१)

अर्थात् ब्राह्मणसे क्षत्रियकी गर्भमें मूर्धावसिक्त, ब्राह्मणसे वैश्याकी गर्भमें अम्बष्ठ^० एवं ब्राह्मणसे शूद्राकी गर्भमें निपाद वा पारश्व उत्पन्न हुआ है ।

श्रीश्रम धर्मशास्त्रमें कहा है—

“वैश्यायां विधिना विप्रत्वं जातो षण्मल उच्यते ।
क्षत्राजोऽपि भवेत् तस्य तर्षे माघेऽथस्तिकः ॥
ध्वजिनी जीविका वापि षण्मलाः यस्मज्जीविनः ।”

ब्राह्मणसे विधिपूर्वक वैश्यामें जो उत्पन्न होता, उसको अम्बष्ठ कहा जाता है । वह क्षत्रियजीवो रहता और आग्नेयवृत्तिक एवं ध्वजधारी होता है । अम्बष्ठ शस्त्रजीवो ठहरता । महर्षि नारदका मत है—

“उच्यः पारश्ववर्षे ष निषादशत्रुलोभतः ।
अम्बो माघधर्षे ष षत्रा ष क्षत्रियः ॥”

उच्य, पारश्व, और निपादकी अनुलोमक्रमसे उत्पत्ति है । अम्बष्ठ, माघध और क्षत्रा कितनो ही जाति क्षत्रिय कन्यासे उत्पन्न हैं । नारदने जो आगे फिर लिखा है,—

“अम्बोऽपि तथा पुत्रावै ष क्षत्रियवैश्यायोः ।
एकान्तरथ अम्बष्ठः वैश्यायां ब्राह्मणात् सुतः ॥
शूद्रायां क्षत्रियान् तदन्तु निषादी नाम आद्यते ।
शूद्रा पारश्व^० सुते माघापादुत्तर^० सुतम् ॥” (१९१०१०८)

क्षत्रिय और वैश्यासे अम्बष्ठ और उग्रजाति हुयी है । ब्राह्मण और वैश्यासे एकान्तर अम्बष्ठ, क्षत्रिय और शूद्रासे निपाद नामक जाति एवं ब्राह्मण और शूद्रासे पारश्व की उत्पत्ति है ।

मनु-टीकाकार रामचन्द्रने एक स्थान पर लिखा है—“अपन्नभ्यायां वैश्यां उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति एतौ अम्बो भवतः ।” (मनुटीका १००) वैश्याकी औरस और क्षत्रिय-कन्याकी गर्भसे एवं शूद्रकी औरस और क्षत्रियकन्याकी गर्भसे दोनो ही तरह अम्बष्ठ उत्पन्न होता है ।

स्मार्त रामचन्द्रने फिर “अम्बठाना चिकित्सितम्” इस श्लोक को टीकामें बाड़ा है—“अम्बठाना शूद्रादम्बठा जाताः चिकित्सणं ज्ञानं वैश्वकम् ।” (मनुटीका १०१०) अर्थात् अम्बठादिकी

चिकित्सा यानी वैश्वकाम्बठा ही उपजीविका होती है । अम्बष्ठ शूद्रसे उत्पन्न हैं ।

मनुसंहिता और महाभारतके प्रधान प्रधान टीकाकारने अधिकांश अम्बष्ठकी अपमद वा अपध्वंसज भावसे ही ग्रहण किया है,—

“शे विजातामपयदा ये चापध्वंसजाः स्य ताः ।
ते निन्दितैर्बतेशेऽपि ज्ञातामे ष कर्मणिः ॥
सूतामप्यध्वारयमन्वठानां चिकित्सितम् ।” (मनु १०१६)

द्विजातिमें जो अपमद और अपध्वंसज रहे, वह द्विजगणके निन्दित कर्म द्वारा जीविका चलायेगा । (उपमें) सूतजातिकी वृत्ति अश्वसारथ्य और अम्बष्ठकी चिकित्सा होती है ।

“शैवदुस्सम्पत्तौ तु शैलेषु प्रवनेषु च ।
वसिष्ठेति विज्ञाना वतंसनः स्रक्तमिः ॥” (मनु १०१७)

सूतादि सकल अपमद और अपध्वंसज जाति अपनो-अपनो जातीय वृत्ति उठा चैत्यवृत्तिक नौचे, श्मशान, धर्षत या उपवनमें रहती है । मनुटीकाकारगणकी तरह नौलकण्डने भी अनुशासनपर्वके ४८ वें अध्यायको टीकामें लिखा है,—“पश्चदग वासा उक्ताः अर्थात् उक्त पन्द्रह जाति ही समाजवाद्य कहा गयी है । वेदव्यासने महाभारत अनुशासनपर्वके ४८ वें अध्यायमें अम्बष्ठको अपध्वंसज बताया है । मिता-चरकार विज्ञानेश्वरने ‘अपध्वंसज’ शब्दका ‘ध्यमि-चार-जात’ अर्थ लगाया । (वाग्भट्टटीका ११८)

मनुटीकामें सर्वज्ञनारायणने भी लिखा है,—

“विभ्राह्मण्ययां यथासौ यथा वा क्षत्रियान्शूद्रायास्तुः पुत्र वातु-लीयेन जातोऽप्यनन्तरीजातपुत्रापेयवा निश्चित्तया वैश्याभिधायो जातो वै देहः शूद्रान् क्षत्रियायां जातव क्षत्रा । अन्तर प्रतिपीडनातापिषेवका-भरितज्ञानत्वानिन्दित इत्यर्थः । यदा स्युती निन्दिताविति शेषः ।” (मनुटीका १०११)

ब्राह्मणसे वैश्याका गर्भज अम्बष्ठ एवं क्षत्रियसे शूद्राका गर्भज उग्रपुत्र अनन्तर-श्रीजात पुत्रकी अपेक्षा निन्दित ठहरता है । इसीतरह वैश्यासे ब्राह्मणोका जात वैदेह और शूद्रसे क्षत्रियाका जात क्षत्रा भी

० सूत तथा अम्बष्ठ सङ्ग वैदेहक, माघध, निषाद, शत्रुघ्न, वैद, पुत्र, अम्ब, सुद, क्षत्रा, उग्र, उम्बठ, शिवदूष और वैश्व-सर्व निषादर इत पन्द्रह जातिकी मनुने अपमद और अपध्वंसज कहा है ।

० मिताचरकार विज्ञानेश्वरने दृष्टां ‘विशः क्षियाम्’ का अर्थ विवाहित-वैश्याकन्या लिखा है ।

निम्नित होता है। पनन्तर-प्रतिनोमकी अपचा एकान्तर-प्रतिनोमकी भी बुरा समझते हैं। कारण श्रुतिमें लिखा कि अश्वत्थ और उष दीनो ही अनुलोम जाति निम्नित होती है।

प्रसिद्ध टीकाकार सर्वज्ञानारायणने मनुके १०५० श्लोककी टीकामें बताया है,—‘एते दशस्य विद्याभिरिति’ अर्थात् सप्त और अश्वत्थमें येण पर्यन्त चिह्नित जाति मक्रम मानना होगा। मतलब, उनके मतमें यह मक्रम ही जाति समाजवाह्य ठहरती है। उक्त श्लोककी टीकामें रामचन्द्रने भी कहा है,—‘सर्वभूमि-वर्गमें’ विद्या एते दीव्यवाहयः षड्भिः अर्थात् षोडशक, द्वाविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पद्म, चीन, किरात, दरद, खम, हिज और शूद्रके मध्य जो वाह्य जाति वा दम्पु कहाये तथा अपसद और अपध्वंभज निर्दिष्ट हो, यह निम्नित कर्म द्वारा ही जीविका चमाता है।

मनुष्य षोडशकादि क्षत्रियजातिने क्रम-क्रम जैसे क्रियानोप और ब्राह्मणवादर्गन हेतु ह्यसत्त्व पाया, यैने ही निम्नित कर्म द्वारा अश्वत्थदि और क्रियानोप हेतु षोडशकादिक भी ह्यसत्त्वप्राप्त और वाह्य-जाति कहाया या। वास्तविक अर्थापि दासिणात्वके तिरुवाट्टोड़ राज्यमें ऐमें समाजवाह्य अश्वत्थ वैश्याका वास रहा है। इस जातिके मध्यमें तिरुवाट्टोड़ महाराजके दीवान्पेकार सुमहाराज-अप्यरने लिखा था,

“In their dresses, ornaments and festivals they do not differ from the Malayal Sudras, of whom according to the Keralotpatti, they form one of the lowest subdivisions. The niece is the rightful wife of the son and the daughter that of the nephew.....Among the Ampattans (Ambastham) fraternal polyandry seems to be common.”

अर्थात् वेगभूया और उत्तमवादिमें मलयाम शूद्र-गणमें वहाँके रहनेवाले अश्वत्थगणका कोई पाद्यंश नहीं पाते। केरलोत्पत्तिके मतमें यह जाति गौधतम शूद्रके

मध्य गण्य होती है। भागिनैयी ही उपयुक्त पुत्रवधु और कन्या हो उपयुक्त भागिनैयवधु ठहरती है। इस अश्वत्थ जातिके मध्य वधुतसे आता मिलित हो साधारणतः एक पत्नी रखेंगे।

सम्भवतः ऐसो निम्न अश्वत्थ जाति देखकर ही रघुनन्दन, वाचस्पतिमिय प्रभृति स्मार्तगणने ‘अश्वत्थ-दीनामनि अथो अश्वत्थ’ लिख डाला है। सिवा इसके महाराष्ट्र और कर्णाट अश्वत्थकी घेदु और वेदु जातिको भी पासोचना करनेमें द्वाविड़की अश्वत्थ जातिकी तरह हीन समझना पड़ेगा। बंदू दीयो।

उग्राने जिस अश्वत्थकी बात लिखी, यह अश्वत्थ जाति हस्तिपकरूप बताया गयो है,—

“अश्वत्थामहामर्गो दीव्यस्यमगणिरम्।

भो येन मनुजैः तत्र ममानि यमसादनम्।” (भागवत १०।४१।४)

‘अश्वत्थो हस्तिः’ (श्रीभरतानी)

हिन्युवैके राजत्वकालमें हस्तिपक खेती-यारी करता, हाथोपर पनाका बांधके चसता, रणक्षेत्रमें पक्ष उठाता और नाना उत्सवके समय हाथोपर भागे-भागो जा अतिनीड़ा देखाता था। भागवत-वाला निपादी अश्वत्थही उग्रनाका शम्भोजीयो अश्वत्थ होगा।

अश्वत्थ जाति—मकटूनियाके और निकन्दर जय पञ्चाब पहुँचे, तब पञ्चाबके दक्षिणमें अश्वत्थ नामक और जाति राजत्व चलाती, जो यूनानी वृत्तिसे बहुत मढ़ी थी।† पुराणकार और पाणिनिने भी इस क्षत्रिय जातिकी बात कही है। सुतरां इस जातिकी पति-ग्रय अभागीन कैने समझेंगे। इसको अधूयित वास-भूमि पुराणमें ‘अश्वत्थ’ बताया गयो है।

अश्वत्थ जाति—शाक्य बुद्धके पाविर्भाव कालमें अश्वत्थ नामक कोई ब्राह्मण कपिलवास्तु अश्वत्थमें रहते थे। दो महज वर्ष पूर्वर्षित दीधनिकायके अश्वत्थ ‘अश्वत्थमूत्त’ नामक धानिपत्य उन्हीं अश्वत्थ ब्राह्मणका बनाया ठहरता और उसमें तत्कालीन ब्राह्मणगणकी सामाजिक अवस्थाका धामा परिचय मिलता है। गोत्रे इस उन्का कुल अनुवाद उद्धृत करेंगे,—

• Census Report of Travancore by N. Subrahmanya Aiyar, M. A., M. R. C. M. Part I, p. 27.

† Arrian और Quintin Curtius इत्ये।

‘एकदा भगवान् बृहदेव कोशल राज्यके इच्छा-
नकल नामक वनमें विहार करते थे। उसी समय
वहाँ पुष्करसरो नामक कोई ब्राह्मण भी वसते रहे।
उनका अश्वत्थ नामक कोई पण्डित और त्रिवेदज्ञ
शिष्य था। बृहदेवके आगमन बाद उन्होंने सुना,
कि द्वाविंश-शतचणामान्त कोई महापुरुष वहाँ जा
पहुँचा रहा। उन महापुरुषको देखनेके लिये अश्वत्थ
प्रभृति पण्डित उपस्थित हुये। नानाविध वादानु-
बाद अश्वत्थ नानारूप परुषवाक्यसे बृहदेवको संबोधन
करने लगे थे। उससे भगवान्ने अश्वत्थको पापपरायण
बताया। उन्होंने अत्यन्त असन्तुष्ट हो कहा था,—
हे अश्वत्थ गीतम ! तुम पापी और तुम्हारा वंश झूर-
खभाव एवं निष्ठुर निकलीगा। शाक्यगण नीच और
ब्राह्मणके प्रति भक्तिग्रन्थ रहता, ब्राह्मणके प्रति यथो-
चित सम्मान नहीं देखाता; ब्राह्मणसे शाक्यगणका
ईदृग व्यवहार अनुचित लगता है।

‘बृहदेवने कहा, हे अश्वत्थ ! शाक्यगणने तुम्हारा
व्या अपराध किया है ? (इसपर उन्होंने उत्तर दिया)
किसी दिन मैं अपने आचार्य पुष्करसरोके कामसे
शाक्यगणके विश्रामागार गया था; उस समय शाक्य-
कुमारगण उच्च आसनपर बैठ परस्पर कौतुक करते
रहा, मुझे देख किसीने बैठनेको न कहा। बृहदेवने
उत्तर दिया, मनुज जैसे अपने आसन पर बैठ यथेच्छा
आचरण करता, वैसे ही शाक्यगण भी अपने कपिल-
वास्तु नगरमें यथेच्छा व्यवहार बना सकता है। ऐसे
सामान्य कारणसे आपको कष्ट पहुँचना उचित नहीं
ठहरता।

‘अश्वत्थने कहा,—हे गीतम ! वर्ष चार होता
है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उसमें क्षत्रिय,
वैश्य और शूद्र ब्राह्मणका परिचारक रहता है। इसीसे
शाक्यगण ब्राह्मणसे हीन होता और उसका वैसा व्यव-
हार अनुचित ठहरता है। यह बात सुन भगवान्
मन ही मन ऐसी चिन्ता करने लगे,—तब अश्वत्थ
अति मूर्ख है, इसीकारण यह शाक्यगणको नीच बताता
और निन्दा करता है। उन्होंने प्रकट भावमें
पूछा,—हे अश्वत्थ ! आपका कौन गोत्र है ? अश्वत्थने

कहा,—मैं क्षत्र्य गोत्रसे उत्पन्न हुआ हूँ। बृहदेव
फिर बोल उठे,—आपके मातृ और पित्रकुलकी वंश-
परम्परावाले नाम और गोत्रको देखते प्रतीयमान
होता, कि शाक्यगण आपका प्रमुखानीय और
आप उसके दासीपुत्र हैं। शाक्यगणके पूर्वपुरुष
इच्छाकु रहें। उन्होंने अपना प्रियतमा महिषीके
पुत्रको अधिकार देनेको इच्छासे व्यर्थ कुमारगणको
राज्यसे निकाल दिया था। वह राज्यसे बहिष्कृत
हो हिमवन्त प्रदेशके शाकवनमें जा रहने लगा और
जातीय पवित्रताकी रक्षाके निमित्त यथोचित विवा-
हादि सम्बन्धसे भावबद्ध हुआ। कुछ काल बाद राजाने
अमात्यगणसे पूछा था,—अब कुमारगण कहाँ रहता
है ? उसपर अमात्यगणने कुमारोंकी भवस्था यथा-
यथ बता दी। राजा आप ही आप कहने लगे, कि
कुमारगणका आचरण शक्य अर्थान् धर्मसङ्गत रहा।
उसीसे शाक्य नाम निकला और वही शाक्यगणके
पूर्वपुरुष रहे। इच्छाकु राजके ‘दिसा’ नामी कोई
दासी थी, उसीने क्षत्र्यको प्रसव किया था। उस नव-
जात शिशुने जन्म मात्रसे माताकी पांच प्रकार गर्भमल
परिष्कार करने और उससे अनेक उपकार पहुँचनेकी
कहा। हे अश्वत्थ ! इस समय मनुष्य जैसे पिशाचकी
पिशाच बताता, वैसे ही ‘क्षत्र्य’ को सब लोग पिशाच
समझते थे। इसीसे काण्वीयण गोत्रको उत्पत्ति
हुयी है। वही शिशु क्षत्र्यगोत्रका आदिपुरुष रहा।

‘इसीतरह हे अश्वत्थ ! आपके पित्र-मातृकुलवाले
पूर्वपुरुषगणका नाम और गोत्र सुननेसे मालूम पड़ता,
कि आप लोग शाक्यगणके दासीपुत्र लगते हैं। अश्वत्थसे
ऐसी बात होनेपर समागत जनसङ्घने कहा,—हे
भगवान् गीतम ! आप अश्वत्थको बालक, मूर्ख और
दासीपुत्र बता गौरव न घटायें। अश्वत्थ सदृशजात
और कुलपुत्र हैं। भगवान् बोले,—आप यदि अश्वत्थ-
को नीचकुलजात, दासीपुत्र और मेरे साथ वाद
प्रतिवादके अयोग्य समझें, तो उनके बदले आप ही
मेरे साथ उत्तर प्रत्युत्तर करें। फिर यदि आप
अश्वत्थको उचकुलजात ठहरायें, तो मेरे साथ उन्हें
उत्तर प्रत्युत्तर करनेकी कहें। भगवान्ने अश्वत्थसे

कहा,—इसवार पाप भरे प्रयत्नका यथायथ उत्तर दीजियेगा। जात्यायण गोचकी उत्पत्ति और उनके पूर्वपुरुषका कौन ज्ञान आपने पाचायं, महज्जोक या वृह ब्राह्मणने सुना है ?

उसपर अभ्युत्थने तुण्णोभाव अवलम्बन कर कियत्-क्षण वाद कक्षा,—हे गौतम। आपने जैसा बताया, मैंने भी वैसा ही सुना है। इसपर समवेत जनहृन्द नामा प्रकार निन्दा करने और कहने लगा,—यह कुलपुत्र नहीं ठहरता, नौच पंगोत्पत्त और दाभोपुत्र जगता है। उपस्थित जनहृन्दका वैसा मनोभाव देख बृहदेवने अभ्युत्थके पादिपुरुष 'क्षणा' षट्पिका एक उपास्यान सुनाया और उभरी प्रसन्नमें राजा इत्याकुके उन्हें कन्या देनेकी बात भी कह डाली।

बृहदे सम्यक् और ब्राह्मणत्वः भगवान्ने पूछा,—हे अभ्युत्थ। यदि क्षत्रियकुमार ब्राह्मण-कन्यासे सहवास करे और उसके सहवासमें पुत्र उत्पन्न हो, तो उस पुत्रकी ब्राह्मणगणके मध्य जल वा पासन मिलेगा या नहीं ? अभ्युत्थने उत्तर दिया,—उसे मिलेगा। भगवान्ने फिर पूछा,—यज्ञ, याहादि और अन्यान्य क्रिया-कलापमें वह पुत्र निमग्नित होता है या नहीं ? अभ्युत्थने कहा,—वैसा ही हुआ करता है। भगवान् बोले,—ब्राह्मणगण उसे वेदमन्त्र देता है या नहीं ? अभ्युत्थने बताया,—वेदमन्त्र उसे दिया जाता है। भगवान्ने प्रश्न किया,—ब्राह्मणकन्याके साथ उसका विवाहादि होता है या नहीं ? अभ्युत्थने बताया,—होता है। भगवान्ने पूछा,—वह राज्यपर अभिविहित किया जाता या नहीं ? अभ्युत्थने जवाब दिया,—यह कैम होगा, यदि कि उसका मायकुल क्षत्रिय नहीं ठहरता।

बृहदेवने फिर पूछा,—इसीतरह किसी क्षत्रिय-कन्या माय ब्राह्मण कुमारके सहवास फलमें पुत्र होनेपर वह भी पूर्वोक्तदृश्यमें सकल विषयका अधिकारी बन राजमिंहामनके योग्य समझा जाता है या नहीं ? अभ्युत्थने उत्तर दिया,—यह कैम होगा, कारण उसका पिता क्षत्रिय नहीं ठहरता। बृहदेवने बताया,—शुद्धतरी क्षत्रिय ही अंत समझ पड़ता, ब्राह्मण उसकी अपेक्षा हीम है।

बृहदेवने फिर पूछा,—यदि कोई ब्राह्मण किसी परराधमें मस्तक मुंडवा देगम निकाला जाये, तो वह ब्राह्मणगणके मध्य जल और पासन पानेका अधिकारी होता या नहीं ? अभ्युत्थने उत्तर दिया,—नहीं होता। बृहदेवने कहा,—यज्ञ, याह और अन्यान्य क्रिया-कलापमें उसे भोजन देते हैं या नहीं ? अभ्युत्थने कहा,—नहीं देते। बृहदेवने पूछा, ब्राह्मण-कन्याके साथ उसका विवाहादि होता है या नहीं ? अभ्युत्थने बताया, वह भी नहीं होता।

बृहदेव फिर बोले, क्षत्रियगण यदि कारणवश किसी क्षत्रियकी मस्तक मुंडवा निकाल बाहर करे, तो वह ब्राह्मणगणके मध्य जल वा पासन पाता है या नहीं ? अभ्युत्थने उत्तर दिया, पाता है। बृहदेवने पूछा, यज्ञ और याहादिमें उसे भोजन देते हैं या नहीं ? अभ्युत्थने कहा, देते हैं। बृहदेवने दूमरा प्रश्न उठाया, ब्राह्मणगण उसे मन्त्र देगा या नहीं और ब्राह्मण-कन्याके मध्य उसका विवाहादि होगा या नहीं ? अभ्युत्थने कहा, ऐसा ही होते रहता है। भगवान् शील उठे, कोई क्षत्रिय जब इसतरह सुष्ठितमस्तक देगम निकाला जाता, तब वह अत्यन्त हीम अथस्या-को प्राप्त होता ; किन्तु यैसी हीम अथस्यामें भी क्षत्रिय ब्राह्मणकी अपेक्षा अंत ठहरता है।

उक्त विवरणमें भी अच्छीतरह समझ पड़ता है, कि बृहदेवके अभ्युत्थकालमें क्षत्रियप्रधान्य ही रहा। अभ्युत्थ ब्राह्मण होते भी उनके वंशमें क्षत्रियादिके सन्धयका अभाव न था और ब्राह्मण क्षत्रियमें हीम गिना जाता था। अभ्युत्थ सुस्तके उक्त 'अभ्युत्थ' शब्दको कोई कोई रूपक और जातियाचक बतायेंगे। उनके मतमें अभ्युत्थ और क्षत्रिय जातिके मध्य सामाजिकता पर कुछ गड़बड़ रहा, बृहदेवने उसीकी मोमांसा लगा दी थी। किन्तु दोषनिकायकी टीका एवं भोट देगके दुर्लभ ग्रन्थमें अभ्युत्थ क्षत्रियका निवृत्तीय अनुवाद विद्यमान है। उद्यमें अभ्युत्थ शब्दको अष्टरूपमें स्थिति विवेकका नाम ही बताया है।

अभ्युत्थ शब्द—युद्धप्रदेशीय कायस्थगणके कुलपत्न-हृत पद्मपुराणीय वचनमें समझ पड़ता, कि क्षत्रियगणके

पुत्र हिमवानसे अश्वत्थ नामक कायस्थत्रेणीकी उत्पत्ति हुई है। इस जातिके मध्य भी बहुतसे लोग चिकित्साशास्त्रमें पाण्डित्य देखा गये हैं। अद्यापि उनका आचार-व्यवहार ब्राह्मण-चरित्रिके तुल्य ही निकलेगा। युक्तप्रदेशके कायस्थ-समाजमें प्रवाद है कि अश्वत्थ कायस्थके पूर्वपुरुषोंने गिरनारपर रहने और अश्वत्थ देवीकी पूजा करनेसे अश्वत्थ नाम पाया।* गरुड़-पुराणके ५५वें अध्यायमें अश्वत्थ प्रान्तका वर्णन कर्णाट, साट, कम्बोज और आनर्तके साथ प्राया है।† सिकन्दरकी चट्टाईका हाल लिखते अरियनने (Arrian) पञ्जाबके दक्षिण सुराष्ट्र वा गुजरात हो अश्वत्थ बताया। इन कायस्थोंने अश्वत्थ नाम इसो स्थानके कारण पाया है। आजकल युक्तप्रदेशमें अश्वत्थ कायस्थ न मिलेगा। कितनी हीके मतानुसार बङ्गालमें इन कायस्थोंकी अश्वत्थ या वैद्य कहते हैं।‡ किन्तु बङ्गालका अश्वत्थ अपनेको सेनराजवंशका स्वजातीय बतायेगा। परन्तु सेनवंश-शिरोमणि विजयसेनके शिलालेखमें उन्होंने अपनेको "ब्रह्म-चरित्र्य" और उनके पौत्र लक्ष्मणसेनबाले ताम्रफलकमें "कर्णाट-चरित्र्य" लिखा है। कर्णाटकमें आज भी ब्रह्मचरित्र्य मिलते, जो कायस्थ की तरह लेखकका व्यवसाय चलाते हैं। सेनोंके पूर्वपुरुष कर्णाटकमें रहते थे। सम्भव है, कि उनके साथ अश्वत्थ भी बङ्गाल गये और सम्बन्ध-सूत्रमें बंधे होंगे। बंगला अश्वत्थ-जातिके कुलपत्र्यमें लिखा है, कि अश्वत्थोंके स्वजाति नन्द्यादि महाराष्ट्र देशमें रहते थे—

* "नन्द्यादयः महाराष्ट्र निवसन्ति ये वैधवः।" (भरतमन्त्रिक)

अश्वत्थका, अश्वत्थकी देवी।

अश्वत्थकी (सं० स्त्री०) अश्वत्थं कायति रोगविनाशाय अष्टपार्थमाह्वयति, अश्वत्थ-कै-क। १ लताविशेष, पाठा, हरजिवरो। *Stephania hernondifolia*. इसके पर्याय हैं—पाठा, अश्वत्था, कुचेली, पायचेलिका, एक-

* W. Crooke's Tribes and Castes of N. W. P and Oudh, Vol. III p. 190.

† "कर्णाटा कम्बोजस्था दक्षिणापयचरित्र्यः।"

"अश्वत्था इतिहा साटा कम्बोजाः स्त्रीशुखाः यकाः।"

पारसशास्त्रिनर्थे न चोदा दक्षिणपश्चिमी।" (यद्वज्रपुराण ३३।१४)

चीला, रवा, तिक्ता, प्राचीना, एकोशिका, हका, हृदकपर्ण, स्यापनी, त्र्येयसी, रसा, वनतिक्तिका, अविहकपर्ण, अविहकपर्ण, अश्वत्थका, युधिका, विहकपर्णिका, दोपनी, तिक्तपुष्पा, हृदचित्ता, शिशिरा, हकी, मालती, देवा, हृत्तपर्णा। यह लता देखनेमें विलकुल गुर्च-जैसी होती है। गुर्चकी बनिस्वत इसकी पत्ती छोटी और डाल सीधी रहेगी। किन्तु गठनमें कोई प्रभेद नहीं पड़ता। बङ्गालके जङ्गलों और बागोंमें यह बहुत उत्पन्न होती है।

२ भार्गी, भारङ्गी। ३ लक्ष्मामूल, बीमारीके निशानकी जड़। ४ अश्वलोणी, लोनिया। ५ युधिका, जूही। ६ मयूरशिखा, कीकन। ७ आम्नातक, अमड़ा। ८ माचिका, साङ्गरुष्ट्र, पुदोना।

अश्वत्था (सं० स्त्री०) अश्वत्था-स्या-क। अश्वत्थकी देवी।

अश्वत्थादि (सं० पुं०) पाठादिगण विशेष। इसमें निम्नलिखित द्रव्य रहेंगे,—अश्वत्था, धातकी, कुसुम, समझा, काटूङ्ग, मधुक, विस्व, पैगो, रोध्र, सावरोध्र, पलाय, नन्दोहृष और पत्रकीशर। यह पकातीसार-नायक, सम्बानोय, पित्तमें हितकर और व्रणमें रोपण होता है।

* 'गणो शिवदृग्महादी पकातीसारनायनी।

सम्बानोयी वित्ती पिचो प्रवामाघवि रोपणी।" (सुह्रत)

अश्वत्थिका, अश्वत्थकी देवी।

अश्वत्थी (सं० स्त्री०) कटुकामेद, किसी किष्ककी कुटकी।

"रक्तकाथं रक्षाश्वत्थी कटुका चापरा चूता।" (दश्यादिभाग)

अश्वत्थ—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिल्लाका एक शहर। यह सहारनपुरसे दक्षिण-पश्चिम षाठ कोस अक्षां २८° ५०' १५" उ० और द्राधि० ७०° २२' ३५" पू० पर अवस्थित है। इसका रक्वा कोई ५५ एकर पड़ेगा। यहां सैयदोंका पीरजादा खान-दान रहता है। शहरके बीच शाह अबुल मसलीकी कब्र बनी, सन् ई०के १७वें शताब्द जिनका नाम खूब बढ़ गया था। पीरजादे आज भी माफी पाते और अपना एक प्रतिनिधि किलेमें रखते हैं। वास्तविक यह सुगुल फौजकी छावनी रहा।

सम्यहता—उड़ीसाके दालेखर जिलेका एक जनपद । यहाँ एक किला बना हुआ है ।

पम्बा (सं० स्त्री०) सम्प्रति छेदात् गच्छति, सम्प्र-
पद् स्त्रीत्वादाकारः । १ माता, मा । २ सम्पत्ता,
पुदीना । ३ पाठा, हरजिवरी । ४ दुर्गा । ५ पत्तारम,
विगेय, किमी परीका नाम । ६ कागिराजकी जीरठा
कन्या । भीष्म, पपने सोतेले भाई चित्रवीर्यके निये सम्बा
घोर इनकी ही बहनकी स्वयंवर-सभासे भोरा लाये थे;
किन्तु पहले मन ही मन उनके शास्त्रराजपर धामरुहो
जानिसि उन्हें वापस भेजा । शास्त्रके सम्पद्गता कन्यासे
विवाह करनेमें पसन्दगत होनेपर सम्बाने कठोर
तपस्याकर देहकी छोड़ दिया । भीष्म ही सम्बाके
उत्तरे कटया कारण बने थे । इसीमें महादेवके
वरसे परश्रममें सम्बाने गिण्टीका भयतार लिया ।
गिण्टीके पीछे ही महाभारतमें भीष्म मारे गये थे ।
७ पाण्डुमाताकी भगिनो । ८ ज्योतिषमें चतुर्थ भाव-
वाचक शब्द विगेय ।

भारतवर्षके दक्षिण अञ्चल प्रायः प्रत्येक ग्राममें
सम्बा देवीकी पूजा होती है । देवीकी कोई विगेय
मूर्ति न रहगो । पुरोहित पत्थरके टुकड़े पर तैल
घोर मिन्दूर चढ़ा पुष्पादिसे सम्बाकी पूजने घोर छाम-
नीयादिको बलि देते हैं । गांवमें रैजा, चेचक, महा-
मारी प्रभृति उपद्रव उठनेसे सम्बाकी पूजा धूमधामसे
की जायेगी ।

सम्बागङ्गा (सं० स्त्री०) सिंहलकी कोई नदी ।

सम्बागढ़ चौकी—मध्यप्रदेशके चांदा जिलेकी जमो-
न्दारो । यह पचा० २०° १५' तथा २०° ५१' २०"
उ० घोर द्राधि० ८०° ११' १५' एवं ८०° ५२' पू०के
मध्य अवस्थित है । इसका क्षेत्रफल २०८ वर्ग-मील
रहगो । इसमें जङ्गल घोर पहाड़ बहुत पड़ता, किन्तु
हाथपुरकी घोर घेतो भी अच्छोतरह होती है । कचा
मोहा यहाँ खूब निकलता है ।

सम्बाजम्बन् (सं० स्त्री०) तीर्थविगेय ।

सम्बाभो-दुर्ग—महेश्वर राज्यके कोलार जिलेका एक
पहाड़ । यह समुद्रतलसे ४१८८ फीट उंच घोर
पचा० ११° २१' ४०" उ० एवं द्राधि० ७८° ३' २५"

पू० पर अवस्थित है । टीपू सुनतानने पहले यहाँ
जिलेबन्दी की थी । इसका जननाय महेश्वरमें
पतिगय स्थाप्यकर है ।

सम्बाड़ा, सम्बासा (सं० स्त्री०) माता, मा ।

सम्बाद—दक्षिण-ऐदराबादका कोई तपस्व । यह
ऐदराबादके उत्तर-पश्चिम अवस्थित है । रज्जुवा ८१०
वर्गमील पड़ेगा । इसमें सम्बाद, जामखेर, रोहिलगढ़,
बोहामण्डन, गुनसोमी घोर एकतूनी प्रधान नगर है ।
महाराष्ट्र-पराभवके पश्चात् यह बंगरेशीके हाथ लगा
या, किन्तु छोड़े ही दिन बाद निजामको सौवा गया ।
सम्बापाठक—गुजरात प्रान्तका एक ग्राम । दुर्गाभट्टके
पुत्र घोर राष्ट्रकूट-नृपति कर्णके समर-सचिव मारा-
यणने नागरिकावाले जैनमन्दिरमें इस ग्रामका कुछ
चेत्र उत्तमर्ग किया था ।

सम्बापु, पम्बा १३० ।

सम्बापिट—मन्द्राज प्रान्तके गोदावरी जिलेका एक
राज्य । इसका राजस्र कोई २४२१) ६० देगा
पड़ता है ।

सम्बाप्रसाद—सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि पद्माकरके एक पुत्र ।
सम्बाभोना—बैहार घोर उड़ियाप्रान्तके सम्यनपुर
जिलेका एक गांव । यह बड़गढ़में उत्तर दग कोल
पड़ता है । सम्यनपुरी राजावर्तिके समय यहाँ जिले-
बन्दी रहो । किसी प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष आज
देखनेमें पायेगा । केदारनाथ महादेवका प्राचीन
प्रभारमन्दिर कोई भी वर्ष छुये सम्यनपुर-नरैय राजा
कैतसिंहके दोवान् रचनी रायने बननाया था ।

सम्बाला (सं० स्त्री०) सम्प्रति शब्द लाति धत्ते
सम्बाला-क । १ माता । २ पञ्चाय प्रान्तका एक
जिला । चौदहवीं शताब्दीमें सम्बा नामक जगैत्र
राजपूतने इस नगरको बसाया था । इसीमें लोण इसी
सम्बाला कहते हैं । यह जिला पचा० २८° ४८' एवं
११° १२' उ० घोर द्राधि० ७६° २२' तथा ७७° १८'
पू०के मध्य अवस्थित है । रज्जुवा कोई २५०० वर्गमील
रहगो । इसमें उत्तर-पूर्व हिमालय, उत्तर सतलज,
पश्चिम पटियाला राज्य एवं सुधियाना जिला घोर
दक्षिण कर्नाट जिला तथा यमुना नदी पड़ती है ।

रस जिलेकी भूमि सतलज और सिन्धुके बीच समान बैठेगी। किन्तु पूर्वकी और घना जङ्गल और पहाड़ मिलता है। उसी पहाड़से घाघरा नदी निकली थी। मोरनीके जङ्गलमें दो अच्छे भौल हैं। लोगोंने उन्हें पूज्य एवं पवित्र माना है। बड़े भौलपर श्रीलक्ष्मणचन्द्रका मन्दिर मिलता, जिसमें प्रतिवर्ष धूम-धामसे मेला लगता है। दक्षिण-पश्चिम और इसकी भूमि ठल गयी है। जिलेमें चारो और छोटे-छोटे असंख्य नदी नाले देख पड़ते हैं। घाघरा नदीके पानीसे खेत सींचे जाते हैं। वर्षामें नदी उमड़नेसे डाक हाथीपर भातो-जाती है। दक्षिणमें घाम बहुत होता है। कलेसरके १३८१७ एकर जङ्गलमें सालका वृक्ष भरा रहता है। छोटे छोटे पहाड़ो नालीकी बालूमें घोड़ा बहुत सीना भी हाथ लग जाता है। किन्तु चूनेका काँकड़ ढेरका ढेर मिलेगा। जङ्गलमें शिकार की कोई कमी नहीं देखते, हिंसक जन्तु भी भूमते फिरते हैं।

विषाच-भम्बाला भारतीयों का खादि स्थान है। सरस्वती और घाघराके बीचकी भूमि पवित्र मानी जायगी। सरस्वती नहाने दूर-दूरसे लोग आते हैं। किनारे-किनारे सुन्दर मन्दिर अपनी शोभा दिखायेंगे। यानेश्वर और देहेवा नगर हृदयको भपनी और खीच लेता है। यानेश्वरके सरस्वती कुण्डमें प्रति वर्ष कोई तीन लाख मनुष्य नहाते हैं। चीना परिष्कारक युष्मन चुभङ्ग सन् ई०के०में शताब्द यहाँ आये थे। उन्होंने इस प्रदेशको सभ्य एवं सुसम्पन्न पाया। उस समय राजधानी युष्मने प्रतिष्ठित थी। कितनोही भाविष्कृत सुद्रासे प्रमापित होता है, कि सुषल्मानों के भारतविजय तक युष्मने राजधानीका ठाट-बाट रहा।

भम्बालाके पासपासकी भूमि गज्जनवी और गुरोरी सुषल्मानोंके हाथ चली गयी थी। सन् ई० के १४ वें शताब्द फ़ीरोजशाह बादशाहने हिसारमें पानी पङ्गु-चानेकी एक नहर बनवायी। सन् ई० के १८ वें शताब्दान्त सतलजसे दक्षिण सिख-राज्य प्रतिष्ठित हो गये थे। जब महाराष्ट्र और अफगानोंने सुषल्मान

शाम्राज्यको विच्छिन्न किया, तब कितने ही सिख-सरदार सतलज और यमुनाके बीच राजा बन बैठे। सन् १८०३ ई० में महाराष्ट्र अंगरेजोंसे हारे थे। उस समय यह सारो भूमि पटियाला, भीन्ड, नाभा खादि राज्यो में बाँटी गयी। किन्तु सन् १८०८ ई० में रणजित् सिंघने पञ्जाबसे कितनी ही सिख फौज ले सतलजकी पार किया और उस ओरके नृपतियोंसे राजस्व मांगा था। उस पर सिख-नृपतियोंने विगड़ कर अंगरेजोंसे साहाय्य-प्रायेणा की। अंगरेजोंने बीचमें पड़ भगड़ा मिटा दिया था। सन् १८०८ ई० में अंगरेजोंसे जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार रणजित् सिंघने छोटे राज्यो पर आक्रमण न करने का वचन सनाया। सन् १८११ ई० की घोषणाने साम्यस्वरिक युद्ध भी रोक रखा था। किन्तु राजा पूष रूपसे स्वतन्त्र रहे। उन्हें किसी प्रकारका कर देना पड़ता न था। सन् १८४५ ई०में प्रथम सिख-युद्ध हुआ। उस समय सिख-राजवोंका अधिकार घटाया और भम्बालेमें पोलिटिकल एजण्टकी जगह कमिश्नर बैठाया गया था। सन् १८४८ ई०में जब दूसरा सिख-युद्ध हुआ और पञ्जाब अंगरेजी राज्यमें मिला, तब राजाघोंका बचावचाया खल (स्वतन्त्रता) भी जाते रहा। सन् १८५७ ई०को बलवैके समय भम्बालेमें कितनी ही भाग लगे और गडबड़ पड़ो थी, किन्तु उससे कोई गड़री चलि न हुयी और न इसके प्रबन्धमें ही विधेय भसविधा पायी।

वाषिष्णु न्यवसाय—की धूम क्षयिप्राधान्यके कारण भम्बाले जिलेमें बहुत कम देख पड़ेगे। रूपमें लोहेको छोटी-छोटी चीज, भम्बालेमें कालोन और प्रत्येक घाममें मोटा कपड़ा बनता है। वाषिष्णुका मुख्य स्थान भम्बाला, रूपर, जगाधरी, खिजराबाद, बुरिया और खरार है। इस जिलेमें सिन्धु-पञ्जाब और दिहोसे रेल आती है। जगाधरीसे कुछ मील दक्षिण यमुना और भम्बालेसे कः मील घाघरा पर लोहेका अंगरेजी पुल बंधा पायेंगे। कर्नालसे पकी सड़क इस जिलेमें होकर पटियाला राज्यको चली गयी है। दूसरी पकी सड़क भम्बालेसे कालका जायेगी। रेल और सड़कके किनारे तार लगा है।

१ इम ज़िलेकी एक तहसील। इसका क्षेत्रफल १६६ वर्गमील पड़ेगा।

४ इसी ज़िलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३०° २१' २५" उ० और द्राधि० ७६° ५२' १४" पू० पर अवस्थित है। इसकी भूमि घाघरा नदीके तीन मील पूर्व मसुद्रतलमें १०४० फीट उंच बैठेगी। यहाँ अंग्रेज़ी फौज़की छावनी और ज़िलेकी कचहरी बनी है। किमी अम्बा राजपूतने इसे मग ई०के १४वें शताब्द बसाया था, जिसके अनुमार इसका नाम भी बन पड़ा। सन १८०८ ई०में जब सतलजके उस पारयाला राज्य अंगरेज़ोंके अधिकारमें आया, तब अम्बाला राज्यपर सरदार गुहबख्श सिंहजाकी विधवा पत्नी दया कुंवर बाधिपत्य बना रही थीं। सन १८२३ ई०में दया कुंवरके मरनेपर सतलजके उस पारयाले राज्यका प्रबन्ध बांधनेकी अम्बालीमें पोलिटिकल एजेंट ठेठाया गया। सन १८४३ ई०में नगरसे दक्षिण दायरना पड़ी थी। सन १८४८ ई०को पञ्जाबके अंगरेज़ों राज्यमें मिलनेपर अम्बालीमें ज़िलेका हुडकाटार आया। अम्बाला नगर नये और पुराने दो भागमें विभक्त है। पुरानेकी राह ख़राब और नयेकी जगह अच्छी निकलेगी। सन १८६८ ई०को अफगानस्थानके ग़ुलपुर्ष समीर शीर अमी जब भारत आये, तब अम्बालीमें आनागान दरबार लगा था। नगरमें अरबका बड़ा बाज़ार ज़मत है। अदरक और हमदी भी टिकती टिकती है। यहाँमें छत्ती कपड़ा, अनाज और कालीन चालान किया तथा विमायती कपड़ा, मोहा, नमक, लन एवं रेशम मंगाया जाता है।

अम्बाला शहरकी चारो ओर शहर पनाह है। अब यह शही छावनीके नाममें विजय प्रसिद्ध है। अम्बाला प्रदेशके अन्तर्गत कोटाहा नामक एक स्थान है। वहाँके मरानो नामक जङ्गलके दो ऊट विख्यात हैं। उन तामाबोंका लन कभी नहो छूटता। उनके किगारे किगारे अनेक देणाम्ब है। इस प्रदेशके अनेक स्थानोंमें पहाड़के भरानोंमें चांगके लन लगे रहने हैं। नमके अदरमें पानी गिरता है। जाड़े

ओर गर्मीके दिनोंमें जियाँ अपने अपने बंधोंको घासके तिकियेके सहारे उन्नी मलोंके नीचे सुना देती है। ब्रह्मतातुपर भरभर पानी गिरता रहता है। कहा जाता है, कि रोग हो चाहे न हो, बंधोंको ऐसी चिकित्सा न करने से कितने ही बचपनमें ही प्राणत्याग देते हैं। किन्तु इस प्रक्रिया द्वारा मर्दाँ, खाँसी, खर, शीतला प्रथति कोई रोग नहीं होता।

अम्बाला शहर से प्रायः १० कोस पर ईमान कोषमें त्रीमूर वा नाहन राज्य है। यहाँ राजा वायका बन है। इस प्रदेशमें ताँबा, सीसा, सोहा, और नमक पैदा होता है। अम्बालामें गिमला पहाड़ ४० कोस है।

अम्बालापुल्ले—मन्दाज प्रांतके तिदयाँकीर राज्यका एक तपजुक। इसका क्षेत्रफल १२१ वर्गमील लगता है। अम्बालिका (मं० अ००) अम्बादेव, अम्बाला स्वयं कन् अन्नः इत्वम्। १ माता, मा। २ कामि-राजकी कनिष्ठा कन्या। अय्यय्यर-सभास भीषने इने चोरा अपन शीतने भाई चित्रवीर्यको ब्याह दिया था। चित्रवीर्यके मरनेपर इन्हींके गर्भ और प्यासके औरससे पाण्डुराजने जन्म लिया। ३ अम्बला, पुदीना। ४ पाठा, हरजीधरी।

अम्बाली—बड़ोदा राज्यके सिनोर मधुविजयनका एक गाँव। यहाँ दत्तात्रेयकी माता अमुष्याका पवित्र मन्दिर बना है। कहते हैं, कि इस मन्दिरके नीचेकी मट्टी या देवीके खानका लन लगानेसे कुष्ठरोग मिट जायेगा। कितने ही कोढ़ी इस घाममें टिके रहते हैं। श्रीमान् गायकवाटने कोढ़ियोंके लिये अम्बाला ओर भिक्षुकींके लिये अम्बाला बना रखा है।

अम्बामसुद्रम्—मन्दाज प्रांतयाने तिनेपनी त्रिजिके परने तपजुकका हुडकाटार और नगर। यह अक्षा० ८° ४२' ४६" उ० एवं द्राधि० ७०° २८' १५" पू० पर अवस्थित है। इसमें मधुविजयन चाफिसर वास करते हैं।

अम्बि (ये० अ००) १ जल, पानो। २ अ०, मागा, धाम्नी, चौरत, मा, धाया।

अम्बिका (मं० अ००) अम्बेव, अम्बा स्वयं कन्

इन्द्रः इत्थम् । १ माता, मा । २ दुर्गा । ३ खेतावर जैनकी शासन-अधिष्ठात्री देवी । इसका एक मन्दिर गिरनार पर्वतपर है, इसकी जैन, अजैन सब पूजते हैं । अजैन लोग इसको अम्बिका मन्दिर कहते हैं । ४ कटुकी, कुटुकी । ५ अम्बुष्ठा, पुदीना । ६ मायाफलहल, मैनफल । ७ काशिराजकी मध्यमा कन्या । स्वयम्बर-सभासे बलपूर्वक धरणकर भोषने इन्हें निद्रवैर्यसे ब्याह दिया था । चित्रवैर्यकी मरनेपर इनके गर्भ और व्यासके औरससे अम्बराज धृतराष्ट्रने जन्म लिया ।

अम्बिका—१ बंबई प्रान्तके सूरत जिलेकी एक नदी । यह बासटा पहाड़से निकल बड़ीदा राव्यमें बहती है । फिर पश्चिम ओर दो धारामें बँट इसे सूरत जिलेमें पहुँचते पावेंगे । वहाँसे यह बिखली और जलालपुरके बीच घूम-घूम चलती और पूर्णसे दक्षिण साठे सात कोस पर समुद्रमें गिरती है । मुँहानेसे कोई छः कोस गण्डवी नगर तक इसकी लहर जायेगी । समुद्रसे कोई तोम कोस इस नदी पर ८७ फीट लंबा और २८ फीट ऊँचा रेलवेका पुल बना है । अम्बिकामें कावेरी और खररा दो नदी जा मिली है । सङ्गमके नीचे यह फैलकर चौड़ी खाड़ी बनती है । बिलगोरे तक बड़ा जहाज जा सकेगा । २ बङ्गालके बर्द्धमान जिलेका एक गाँव । कालना देवी ।

अम्बिकादत्तव्यास—इनका निवासस्थान श्रीकाशीधाम रहा । सन् १८८८ ई०में यह जीवित थे । इन्होंने हिन्दी लेखकी बड़ी उद्यति की । कितने ही हिन्दी नाटक इनकी लेखनीसे अहित हुए हैं । स्वर्गीया महाराजने विक्टोरियाकी जुबिलोपर इन्होंने 'भारत-सौभाग्य' नामक नाटकप्रत्य लिखा था । यङ्गला उपन्यास 'मधुमत्'का इन्होंने बहुत अच्छा हिन्दी अनुवाद उतारा है ।

अम्बिकापति (सं० पु०) अम्बिकाके स्वामी, शिव ।

अम्बिकापुत्र (सं० पु०) धृतराष्ट्र ।

अम्बिकाप्रसाद—बिहारप्रान्तके शाहाबाद जिलेके कोई कवि । इन्होंने भोजपुरी भाषामें कितने ही गीत बनाये

हैं । गीत, बहुत उम्दा न ठहरते भी रचयिताकी मातृभाषाके खासे आदर्श है ।

अम्बिकाप्रसाद मिश्र—गयादक्षके पुत्र तथा बच्चान मिश्रके पौत्र थे । इन्होंने ही बेतियाके महाराज श्रीराजन्द्रकिशोरसिंहको भाषानुसार, १८५४ ई०में 'वेधर्हि'साधतिमिरमार्तण्डोदय' नामक संस्कृत ग्रन्थ रचना किये थे ।

अम्बिकेय, अम्बिकेय (सं० पु०) अम्बिकाया अपत्यम्, अम्बिका-ठ टक् । १ गणेश । २ कार्तिकेय । ३ धृतराष्ट्र । अम्बिकेयक, अम्बिकेय देवी ।

अम्बियाली—बंबई प्रान्तके याना जिलेका एक गाँव । इस घामसे कोई आध मील दूर जमश्रुगके पास इसी नामक एक गुहाभी वर्तमान है । इसे लोगोंने एक पहाड़ी खोदकर बनाया था । गुहासे नदी किनारे तक एक ढाल चटान चली गयी है । इसमें एक बड़ासा चौखुण्टा दालान देखेंगे । यह ४२ फीट दीर्घ, ३८ फीट चौड़ा और १० फीट ऊँचा है । उसकी तीन ओर चार-चार कोठरी पावेंगे । तीनों ओरके आसपास एक नौचा तख्ता लगा है । सामने और दाहने दो दरवाजे देखेंगे । दरवाजेसि राख बरामदेकी जाती, जो ३१ फीट पड़ता है । बड़ी दीवारको बाहरी ओर नासिकवाली छतौथ गुहा—जैसी सजावट रहते, यस्नवार खटकता और फूल भूमता था । किन्तु अब टूट फुट जानसे कुछ देख न पड़ेगा ।

अम्बा भी नासिकके ही नम्बुतेका है । चोटी पर चपटा खपरा अथुरी हालतमें देखेंगे । बीचके छोड़े खम्भेमें अठखुण्टा और बाकी दोमें सोलह पङ्क्तुका शङ्करीर लगा है । राहमें पुरानेकी जगह नहामीदार दरवाजा लग जानेंसे यह गुहा ब्राह्मणोंका मन्दिर हो गया । बरामदेके दूसरे खम्भे पर दरवाजेकी बायीं ओर ऊपरसे नीचेको पाली भाषामें कोई लेख लिखा है । खम्भेके बीचवाले छोड़े पर भी अक्षरका चिह्न देखेंगे । किन्तु वह पढ़नेमें बिलकुल नष्टो भाता ।

अम्बिवीथ—बङ्गालदेशान्तर्गत दार्जिलिङ्ग नगरके प्रेम-मन्दिरका निग्रस्थान ।

अभ्युदय—दक्षिणदिशि कापाटक जिनेके कोन्हापुर राज्यकी एक छोटी नदी। यह चारपके पाम वार्ना नदमें जा मिलती है।

अभ्यु (मं० स्त्री०) अमति गच्छति देमाक्षरं अभ्युते गच्छते वा प्राणिभिः, अम-उ वृगागमय। १ जन, पानो। २ वाना, रुमा घास। ३ अमसे चतुर्थं म्यान। ४ चार मंत्र्या। ५ छन्दोविमेष। ६ वानक, वद्या। ७ पुनर्पथा तैम।

अभ्युज (मं० पु०) १ अनेताकमन्दार, सफेद फकोड़ा। २ रत्नरत्न, मान रेंड।

अभ्युजय (मं० पु०) अभ्युजः कयः, ६-तत्। जनकया, पानीका बंद। अभ्युजया-जैसी रूप भी होता है।

अभ्युजगटक (मं० पु०) अभ्युजि जने कपटकः गयः ७-६ वा तत्। कुम्भोर, नक, गिर-भायी, मगर, घड़ियान, जो पानीका काटा हो।

अभ्युजम् (मं० पु०) अद्वाटक, मिंघाड़ा।

अभ्युकिराट, अभ्युकिराटो शेषः।

अभ्युकिरात (मं० पु०) अभ्युजि जसे किरात इय हिंसः। कुम्भोर, नाक, घड़ियान, जो पानीमें गिकारीकी तरह निगागा लगाता हो।

अभ्युकोम (मं० पु०) अभ्युजि अभ्युजो वा कोमो वासर इव। १ गिगमार, सद्म-साडी, गद्दाका रूम। २ गोधा, गोध।

अभ्युकुञ्जटिक, अभ्युकुञ्जटो शेषः।

अभ्युकुञ्जटो (मं० स्त्री०) लम्बुकुञ्जटो, पनहुव्यो।

अभ्युकूर्म (मं० पु०) अभ्युजि कूर्म इव। गिगमार, गद्दामें रहनेवाला रूम।

अभ्युजत (मं० स्त्री०) अण्ट रूपमें उच्चारण किया हुआ जो माफ माफ न बोला गया हो। व्यर्थ-जन्मित, जो बेहदा बका गया हो।

अभ्युज्य (मं० स्त्री०) जनपियनी, पानीकी पोपक।

अभ्युकेसर (मं० पु०) अभ्युजि ज्ञातः किमरो यच्च, बहुमी०। छोसद्म नीबू।

अभ्युक्षिया (मं० स्त्री०) अन्वेषिमांसार, जो काम किमोंके निचे मरनेपर किया जाता है।

अभ्युग (मं० स्त्री०) जनमें गमन करनेवाला, जो पानीमें रहता हो।

अभ्युघन (मं० पु०) वर्षामिना, धोना, पाप्मानुषे गिरनेवाला पत्थर।

अभ्युधर (मं० स्त्री०) अभ्युजि जसे चरति, अभ्युधर-ट। जनघर, पानीमें फिरनेवाला, दरयायी। (पु०) २ कथट, जसपिपरी। ३ कनयर।

अभ्युधामर (मं० स्त्री०) अभ्युगः धामरमिष। गोवाल, सेवार जो चीज पानीपर पड़ेकी तरह फेल जाती हो।

अभ्युधारिणी (मं० स्त्री०) स्वल्पपित्री, स्वल्पकमल, गुल-पजायव।

अभ्युधारिन् (मं० स्त्री०) अभ्युजि चरति, अभ्युधर-णिनि, ७-तत्। जलघर, पानीमें घूमनेवाला।

अभ्युज (मं० स्त्री०) अभ्युजि जसे जायते; जन-उ, ७-तत्। १ पद्म, कमल। २ मारसपची। ३ चन्द्र, चांद। ४ कपूर, काफूर। ५ द्विलसहच, ससुदफन, पनियारो। (पु०-स्त्री०) ६ गह्व। ७ वय। (स्त्री०) ८ जलजात, पानीमें पैदा हुआ, दरयायी।

अभ्युज—एक कवि, कोई गायर। इनका जन्म सन १८१८ ई०में हुआ था। इन्होंने नीति पौर मन्थन पर अच्छी कविता बनायी है।

अभ्युजम्बु (मं० स्त्री०) अभ्युजो जन्म पत्य, बहुमी०। १ पद्म। २ मारसपची। (पु०-स्त्री०) ३ गह्व।

अभ्युजभू (मं० पु०) ब्रह्मा, जो कमलसे उत्पन्न हो।

अभ्युजस्य (मं० स्त्री०) कमलपर बैठनेवाला, जो कमलपर बैठता हो।

अभ्युजामलकी (मं० स्त्री०) पानीयामलकी, भूयं पापला।

अभ्युजामन (मं० पु०) अभ्युजं पद्मं पासने यच्च बहुमी०। १ ब्रह्मा। २ सूर्य। कर्मधा०। ३ योगका धामन विमेष, पद्मामन।

अभ्युजट (मं० पु०) पद्मगुहकहच, पद्माङ्गी गिरीव।

अभ्युजस्कर (मं० पु०) सूर्य, पद्मनाथ, जो पानीको पीराला हो।

अभ्युजान (मं० पु०) अभ्युजि तास्यति तिष्ठति सुरा० तत् प्रतिष्ठायां पच्। गोवाल, सेवार।

अभ्युत्थिता—बङ्गाल प्रान्तके दार्जिलिङ्ग जिल्लाका एक गांव। सन् १८६० और १८६४ ई०के बीच दार्जिलिङ्ग-टी-कम्पनीने यहाँ चाइका बाग लगाया था। इसका मदान ऐसा उम्दा देख पड़ता, मानो प्रकृतिने उसे सुइदौड़के लिये बना रखा है।

अभ्युद (सं० पु०) अभ्युददाति, अभ्युदाक। १ मेघ, बादल। २ सुस्ता, मोथा। (त्रि०) ३ जलदाता, पानी पहुँचानेवाला।

अभ्युधर (सं० पु०) अभ्युनि धरति, अभ्युध-धृत्। १ मेघ, बादल। २ नागर-सुस्ता, नागर-मोथा। ३ भद्रसुस्ता।

अभ्युधि (सं० पु०) अभ्युनि धीयन्ते ऽत्र, अभ्युधा अधिकरणे कि। १ समुद्र, सागर। २ जलपात्र, पानी रखनेका बरतन। ३ चारसंख्या।

अभ्युधिप्रसवा (सं० स्त्री०) अभ्युधिमिव प्रभूतं प्रसृते, अभ्युधि-प्र-सृ-भृच् टाप्। छतकुमारो, घीकुमार।

अभ्युधिफेन (सं० पु०) समुद्रफेन।
अभ्युधियवा (सं० स्त्री०) रटहकन्या, छतकुमारो, घीकुमार।

अभ्युनाम (सं० स्त्री०) १ स्त्रीवेर, रुसा घास।
अभ्युनिधि (सं० पु०) अंबुनः निधिः, इतत्। समुद्र, जलका भाण्डार, सागर, पानीका खजाना।

अभ्युप (सं० पु०) अंबुनि पाति रचति पिवति वा, अभ्युपाक। ३ जलाधिप वरुण। २ समुद्र। २ चक्रुन्दा, पानेवार। (त्रि०) ४ जल पीनेवाला, जो पानी पीता हो।

अभ्युपत्रा (सं० स्त्री०) अंबुनि शीकराः पत्रे यस्याः, बहुव्री०। उच्चटाह्वल, मुलहटी, मीरठी।

अभ्युपत्रिका, अभ्युपत्रा देखी।

अभ्युपत्री, अभ्युपत्रा देखी।

अभ्युपदति (सं० स्त्री०) धारा, पानीका बहाव, चश्मा।

अभ्युप्रात (सं० पु०) अभ्युप्राति देखी।

अभ्युप्रसाद (सं० पु०) अभ्युनि प्रसादयति; अभ्युप्रसाद-णिच्-भृच्, उप-स०। कतकफल, निर्मलीका फेंड़। इसका फल घिस कर डालनेसे मैला जल साफ हो जाता है।

अभ्युप्रसादन (सं० स्त्री०) अभ्युप्रसाद देखी।
अभ्युप्रसादनफल (सं० स्त्री०) कतकफल, निर्मलीका फल।

अभ्युभृत् (सं० पु०) अंबुनि विभर्ति, अंबु-भृ-क्तिप् तुगागमः। १ मेघ, बादल। 'अग्निदेवभृत्' (पनर) २ सुस्तक, मोथा। ३ समुद्र, सागर। ४ अभ्रक। (त्रि०) ५ जल ले जानेवाला, जिसमें पानी भरकर ले जायें।

अभ्युमत् (सं० त्रि०) अंबुनि सन्ताप्तिन्, अंबु वाह्युव्ये मतप्। बहुजलयुक्त, जिसमें पानी बहुत रहे।
अभ्युमती (सं० स्त्री०) अभ्युमत् देखी।

अभ्युमयूरक (सं० पु०) जलापामार्ग, पानीका लटजोरा।

अभ्युमात्रज (सं० पु०) अंबुमात्रे भस्वजले जायते; अंबुमात्र-जन-ड, ७-तत्। १ शंबुक, दुफड़की कौड़ी। (त्रि०) २ केवल जलमें उत्पन्न होनेवाला, जो सिर्फ पानीमें ही पैदा हो।

अभ्युमुच् (सं० पु०) अंबुनि मुचति; सृच्-क्तिप्, इ-तत्। १ मेघ, बादल। २ सुस्तक, मोथा।

अभ्युयष्टिका (सं० स्त्री०) भार्गी, भारङ्गो।

अभ्युर (सं० पु०) अंबु वाह्युलकात् उरण्। हारका अघःकाष्ठ, दहलीज, देहली, चौखटके नोचकी लकड़ी।

अभ्युराज (सं० पु०) १ समुद्र, सागर। २ वरुण, जलके स्वामी।

अभ्युराशि (सं० पु०) अंबुनां राशयो यत्र, बहुव्री०। समुद्र, पानीका खोरा।

"नेत्रमभोजनमभ्युप्रातिः।" (साहित्यरसंघ)

अभ्युरुह (सं० स्त्री०) अंबुनि जले रोहति, अंबु-रुह-क्तिप्। पद्म।

अभ्युरुह (सं० पु०-स्त्री०) अंबु-रुह-क। पद्म।

अभ्युरुहा (सं० स्त्री०) अंबुरुहमिव पुष्पमस्यस्याः, अंबुरुह अयं आदि० अच्-टाप्। १ पद्मिनी। २ स्यन-पद्मिनी।

अभ्युरुहिणी (सं० स्त्री०) अंबुरुहमस्यस्याः; अंबुरुह मत्वर्थे इनि, ऋद्धेभ्यो ङोप्। पद्मलता, कमलकी देव। अंबुरुहायां समूहः। २ पद्मसमूह, कमलका

टे। चंद्रुवाहाणां मन्दिजटदेगः। १ पद्मयुज देग,
जिम मूहमें कमन रहे।

चंद्रुरोहिणी (मं० स्त्री०) पद्मिनी।

चंद्रुरोहिन् (मं० स्त्री०) चंद्रुनि लसे रोहित, चंद्रु-
वह-पिनि। १ वज्र। २ मारम पत्नी।

चंद्रुपत्निका (मं० पु०) लमिगद, कोई पौधा।

चंद्रुपत्निका (मं० स्त्री०) कारवेसी, करेला।

चंद्रुपत्नी (मं० स्त्री०) १ सुद्राकारपत्नी, करेनी।
२ लमपिपत्नी, पानीपिपरी।

चंद्रुवाची (सं० स्त्री०) चंद्रु वाचयति तदर्थं चंद्रुयति
चंद्रु-चुरा वच-निष्-चन्द्रु-निष्-लोपः। उप-सं-होप्।

जिम समय सूर्य चाट्टां नक्षत्रके प्रथम चरणमें रहता
है, उम स्थितिकालका नाम चंद्रुवाची है। सूर्यके

शुक्रगिरा नक्षत्र भोगके बाद तीन दिन बीस दण्ड
मात्र यह स्थितिकाल है। इसी समय पृथिवी गायद

भीतर ही भीतर रजस्रसा होती है। यथा राज-
मार्त्तण्डम्—राजस्रसि विभवे रोहणी चंद्रुवाची चन्द्रुनि वज्र

वज्रः। (चन्द्रुनीति उग्रतमम्; चत्री) सूर्य माममें दो
नक्षत्र पौर एक चरण भोग करते हैं। इसीमे

पेगाण माममें चन्द्रुनी पौर भरणी ये दो नक्षत्र
पौर लक्षिकाका एक चरण सूर्यका भोग होता

है। ज्येष्ठ माममें लक्षिकाके त्रैप तीस पाद,
सम्पूर्ण रोहिणी पौर शुक्रगिराके दो पादोंको सूर्य

भोग करते हैं। फिर पापाद मामके पहले छः
दिन चालीस दण्डोंमें शुक्रगिराके त्रैप दो पाद

सूर्यके भोग होते हैं। उसके बाद जिन तीन
दिन बीस दण्ड तक सूर्य चाट्टांके प्रथम चरणमें रहते

हैं, उसीका नाम चंद्रुवाची है। उसी समयसे वर्षा
की शुरुवात होती है। इसीमे भोग इमे चंद्रुवाची

कहते हैं। इहवामनमें लिखा है,—

“ चंद्रुवाची चन्द्रुवाची रोहि चन्द्रुवाची रोहि।

चन्द्रुवाची चन्द्रुवाची रोहि चन्द्रुवाची रोहि। ”

सूर्यके चाट्टां नक्षत्रमें गमन करनेसे वर्षा उपस्थित
होगी। उसी समय जाड़ीशेख होनेसे भी जनयोग

चर्चातु वर्षाकालका योग कहेंगे।

स्वोत्थितमें लिखा है, जिस दिनके जिस समय

सूर्य मियुन (पापाद) में गमन करते हैं, फिर उसी
बारके उसी समयमें प्रायः ही चंद्रुवाची होता है।

चंद्रुवाचीमें घट घेढाहका अध्ययन निविह है। उसमें
भूमि जोतना न चाहिये। शीथके निमित्त कितने ही

पुदी हुई मछी व्यवहार करते हैं। यति, विपवा पौर
गतस्य ब्राह्मण इनमें कोई भी स्वपाक व परपाक

भक्षण नहीं करते। भक्षण करनेसे चण्डालाद्य भोजन
का पाप होता है। चंद्रुवाचीके मध्यमें विधवाको

पनि स्पर्श न करना चाहिये, इसीसे ये भोग प्रदोष
प्रश्रुति स्पर्श नहीं करतीं। चंद्रुवाची पड़नेके पहले

धानका लावा भून रहनी है पौर चंद्रुवाचीके तीनों
दिनोंमें उसीको खाती है। कितनीही फल भूत

खाकर रहनी है। (मन्दिगुं-वचनः। चन्द्रु) चंद्रु-
वाचीमें दूध पीनेसे सर्पभय नहीं रहता।

चंद्रुवाचीत्याग (सं० पु०) पापाद लक्षिका तेरहरा
दिवस।

चंद्रुवाचीप्रद (सं० स्त्री०) पापाद लक्षिका दगवां दिवस।

चंद्रुवारिणी (सं० स्त्री०) स्थलकमजिनी, गुमाव।

चंद्रुवासिन् (सं० त्रि०) चंद्रुनि जलप्रधाने देगे वमति;

चन्द्रुवम णिनि, मध्यपदलोपी ७-तत्। जनवाधो,
पानीमें रहनेवाला।

चन्द्रुवासिनी, चन्द्रुवासिन् २पी।

चन्द्रुवामी (सं० पु०-स्त्री०) चंद्रुनि जलप्रधाने देगे
वासी यस्याः, होप्। रजपाटन, पुवागका पेड़।

चन्द्रुवाह, चन्द्रुवाह २पी।

चन्द्रुवाह (मं० पु०) चंद्रुनि वहति; चंद्रु-वह-चन्द्रु-
उप-सं०। १ मिथ, वादल। २ सुम्दाक, मोघा। ३ कवार,

पानी भरनेवाला। ४ चन्द्रु, चन्द्रुवज। ५ मात संख्या,
मात मन्वर।

चन्द्रुवाहिन् (सं० त्रि०) चंद्रुनि वहति दधाति;
चंद्रु-वह-चिनि, ६-तत्। १ जनको रखनेवाला, जिसमें

पानी रहे। २ जन से जानेवाला, जो पानी से जावे।
(पु०) १ जनपाव, पानी भरनेका बरतन। ४ मिथ,

वादल। ५ सुम्दाक, मोघा।

चन्द्रुवाहिनी (मं० स्त्री०) पुनःपुनः चंद्रुनि वहति
आनात्तरं नयति; चंद्रु-वह-चिनि, ६-तत्। दोषों,

शश्वेदमें जल पट्टुचानिका पात्रविगेष, कुंडो, जिस वरतनमें खेत सिंचे।

अम्बुविहार (सं० पु०) अम्बुनि जले विहारः; अम्बु-वि-हृ-घञ्, ७-तत् । १ जलक्रीड़ा, सन्तरणादि, पानीका खेल, तैरना वर्ग रह।

अम्बुविषवा (सं० स्त्री०) अम्बुनः विषवा, अम्बु-वि-सु-घञ् । घृतकुमारो, धोकार। इसकी पत्तेसे जल निकलता है।

अम्बुवेतस (सं० पु०) अम्बुजातो वेतः, शाक० तत् । जलवेतस, पानीका बेंत।

ही परिव्याच-विदुषो नादिवै-पात्वेतसि । (अन०)

अम्बुश्रीरीषिका (सं० स्त्री०) अम्बुजातः अल्पः श्रीरीषः, अल्पायं कन्, स्त्रीत्वात् इत्वम् । जल-श्रीरीषिका, पानीका कलसीस। इससे त्रिदोष, विष, कुष्ठ एव अर्ग नष्ट होता है।

अम्बुश्रीरीषी, अम्बुश्रीरीषिका दीपो।

अम्बुशक्ति (सं० स्त्री०) १ जलशक्ति, बोगा। २ अडाहा, घास-फूस।

अम्बुमरोध (सं० पु०) अम्बुनि संरुध्यन्तेऽध्मिन, अम्बु-सम्-रुध आधारे घञ् । समुद्र, सागर।

अम्बुमरण (सं० स्त्री०) अम्बु-स्य-लुगट् । जलप्रवाह, पानीका बहाव।

अम्बुसर्पिणी (सं० स्त्री०) अम्बुनि जले सर्पति गच्छति, अम्बु-स्य-णिनि, ७-तत् । जलौका, लौक।

अम्बुसादन (सं० स्त्री०) निर्मली बीज, निर्मलीका तुल्यम्।

अम्बुसारा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, केलीका दरकृत।

अम्बुसाह (सं० पु०) कुन्दपुष्पक्षुप, कुन्दके फूलका भाह।

अम्बुसेचनी (सं० स्त्री०) अम्बुनि सिच्यन्ते मौकानः अनया; अम्बु-सिच करणे लुगट्, ६-तत् । नौकासे जल निकालकर फेंकनेको काष्ठमय पात्र, नावसे पानी उलीचनेको लकड़ीका वरतन।

अम्बुकृत (सं० स्त्री०) अनम्बु अम्बुकृतम्, अम्बु-क्त्-कृत-। १ निठौवन-युक्त शक्य, घृतुकारो हुयी यात।

(वि०) २ वका हुआ, जो जल्द कड़ा गया हो।

३ यूका हुआ, जिसपर लुभाव गिरा हो।

३ यूका हुआ, जिसपर लुभाव गिरा हो।

अम्बूर—मन्द्राज प्रान्तवाले उत्तर-भरकाट जिलेके बेङ्गूर तहसिलका एक नगर। यह भूचा० १२° ५०' २५" उ० और द्रावि० ७८° ४४' ३०" पू० तथा बेङ्गूरसे ३०, बङ्गलोरसे ७८ और मन्द्राजसे ११२ मील दूर, कदपनाथम् घाटीके नीचे पालार नदीके दक्षिण अवस्थित है।

यहामें बेङ्गूर और सलेमको बढ़िया सड़क गयी है। रेलवे ट्रेगन नगरमें कोई पाव कोम दूर पड़ेगा।

अम्बूरदुर्ग पर्वतकी चोटी पर नगर विराजमान है। यहां तेल, ची और नीलका व्यापार बढ़े जोरसे चलते देखेंगे। सन् १८६० ई०में रेलवेके चल जानेसे नदीकी राह माल नहीं भेजते।

अम्बूर-दुर्ग पर्वतपर किला खड़ा है। सन् १७५० ई०में इस किलेके पास जो भवानक युद्ध हुआ, उसमें मुजफ्फरजङ्गने

भरकाटके नवाब अन्वर-उद्दौनको हरा दिया था। सन् १७६८ ई०में मन्द्राजकी १०वीं पैदल फौजने

इस किलेको बड़ी बहादुरीके साथ बचाया। बीस वर्ष बाद हैदरअलीने हमला मार इसे ले लिया था, किन्तु

बङ्गलोरकी सन्धिके अनुसार वापस दिया। सन् १७८२ और १७८८ ई०में जब मद्रिचूरपर चढ़ाई हुयी, तब

इस किलेमें खबर लेने-देनेको फौज रखी गयी थी।

अम्बूरपेट—मन्द्राज प्रान्तके सलेम जिलेका एक नगर। यह भूचा० १२° ४७' १५" उ० एवं द्रावि० ७८° ४५' १५" पू० पर अवस्थित है। वनियमवाड़ीके

महरतलो है।

अम्बुली—बंबई प्रान्तके पूना जिलेकी एक छोटी घाटी। इस राह लोग अम्बुलीसे पालु भाते जाते हैं। किन्तु

यह व्यापारका मार्ग नहीं ठहरतो। लुवरसे कल्याण जाना सीधा पड़नेसे इसमें बहुत मुसाफिर देखेंगे। यह

मीना उपत्यकाकी चोटीपर पड़ती है।

अम्बूलुपाली—मन्द्राज प्रान्तवाले तिरुवाडोड़ राक्षके इसनाम तहसिलका एक नगर। यह भूचा० ८° ३३' उ० और द्रावि० ७६° २४' ३०" पू० पर अवस्थित

है। इस एक नहर अन्नेपीसे मिलती और अग्रेल मासका मिला स्थानीय व्यापारको बढ़ाता है। सन् १७५४ ई०तक यहां चेम्बगचारी नृपतियोंकी राजधानी रची थी।

अस्यगांव—अस्यगांवके आनिक् जिनिका घाम विमिय। यह दिवांगीमें पचिम माट्टे छः कोम पड़ेगा। इस गांवमें देमादुपजिनिके महादेविका एक बहुत दड़िया मट्ट, गोशार मन्दिर बना या। मन्दिर चार्नीस फीट भव्या पौर हत्तीस फीट चौड़ा रहा। अब छत पौर देःगार गिर गयी है।

अस्योम—पच्चावके धिगावर जिनिके उत्तरपूर्व ठीक अंगरेजो राज्यकी छम पौर अवस्थित एक पच्चाट्टी घाटी। इसी घाटीकी राह करे बार अंगरेजो फौजमें उदण्ड पारंगतीय जातियों पर आक्रमण किया या। सन् १८६३ ई०की मुझीम पट्टी रही। सात मदेगके मितान व्याजमें जो पच्चाट्टी सुमन-मान रहगी, यह पच्चावके अंगरेजो राज्यमें मिलते समयमें उदण्ड उठते पाये थे। सन् १८५० से १८६३ ई० तक इसी मुसलमानोंके कारव्य भीमान्तकी प्रजाने अंगरेजोंमें गहुरा रखी। किन्तु यह कमी अंगरेजोंका सामना पकड़ते न थे। सन् १८५० ई०में इन्होंने अंगरेजो राज्यमें पुन किमो पफसरके छरे पर धारा मारा। इसीजिये सन् १८५८ ई०में अस्योम घाटीकी राह पान हजार अंगरेजो फौज इनके विरुद्ध भेजी गयी या। योद्धीगो पत्ताविधाके बाद अंगरेजो फौज ने इनके महायकाँका गौर फूंक, दो किना उड़ा पौर गितानको मिटा दिया। पत्तमें सन्धि होने पर मितान किमो सरदारको सीपा गया या। किन्तु दो वर्ष बाद ही फिर उदण्ड उठने पौर अंगरेजो राज्य पर आक्रमण पकृने लगा। सन् १८६३ ई०के मित-स्वर साममें अंगरेजो निगहबान फौज पर बड़े जोरसे धारा हुआ या। उमो सालकी १८वीं पत्तोबरको सात हजार अंगरेजो फौज पच्चावकी पत्त अस्योम घाटी पर ला पहुँची। २०वीं पत्तोबरको बहाथी सुमनमान बनते जोरसे मडे, कि अंगरेजो फौजकी दकना पौर कुमक मंगाना पड़ा या। १५वीं दिसम्बरकी रातकी अंगरेजो फौजमें दुश्मनकी जगह छापा मारा पौर १५वीं को अन्तम गांव बना टाका। पत्तकी पुनरे कोम अंगरेजोंमें मिले पौर पच्चावियोंकी भाग करके पर उदण्ड हुई थी। खोरे पत्त ही मत्ताइ थीव अंगरेजो

फौजने पुनरेकी भाव पत्तवाहरीका स्यात भय किया। २३वीं दिसम्बरको अंगरेजो फौज, मय फो पराम्ना कर अस्योम घाटी वापस पहुँची थी। इस युद्धमें अंगरेजों के ८४० पौर मय के १००० पौर हताहत हुए।

अस्योमगढ़—अस्योके रत्नागिरि जिनिका एक किना। यह राजापुर मदेके सुंघामे गाड़ीपर गड़ा पौर ममुद्रतनमें बहुत कम ऊँचे उठा या, उत्तर पौर पचिम पौर गड़डा बना रहा। इसका घेतफन पार एकर निकलता या। सन् १८१८ ई०में जिमेने कनेन इसलकके हाव पाबसमयेण किया। फिर सन् १८६२ ई०में यह विशकुन टूट-फूट गया, मकान, दीवार या दुर्गका कहीं नाम भी न रहा।

अस्योनी—अस्योवाले याने जिनिको सनमोठ तहसीमका एक गांव। इस पाममें गिना-मन्दिर प्रतिष्ठित है।

- अस्य (सं० पु०) गायक, गवैया, गानेवाला।
 अस्यु (सं० पु०) १ अग्ररम, कार्कश्य, तुर्गी, पटार्क।
 अशः (सं० स्त्री०) आश्रोति विमं आश्रोति; पाप-पतन, इत्यः तुम् भय। १ जल, पानी। २ वहाए पत्तर। ३ बासा नामक पौषध। ४ जगमें शायें रागि। ५ वैदिक इन्दोविगिय। ६ पाकाम, पासमान्।

- अशःपा (सं० पु०) शातक, पचो, पपीहा।
 अशःमार (सं० स्त्री०) अशमां सारं श्रेष्ठम्, ६-तम्। सुहा, मोती।

- अशःशु (सं० पु०) अशोति जलानि श्रुति, अशम्-शु-किप्। १ धूम, धुआं। २ माश्रता, वदनी। धुशुथि बादल बनता पौर बादलवे पानी बरसता, इसीसे पूर्वा अशःशु अशोत् पानी बरवानेवाला कहता है। फलतः धूम दृश्य पदार्थके जलाशयोंम शिख दूसरा शब्द नहीं ठहरता।

अशःशु, पाशुपती, ईश-पती इत्यन्तौ तत्तम्।

अशःशु अशम्पद एते श्रेष्ठतरादिति १ (शिव)

- अशःस्य (सं० स्त्री०) १ जलशुद्ध, पानीमें भरा हुआ। २ जलमें स्थिति रखनेवाला, जो पानीमें ठहरा हो।

अशःशु, अशःशु।

अश्वसानिधि (सं० पु०) अश्वसां जलानां निधिः, अलुक् ६-तत् । समुद्र, बहुर ।
 अश्वसाकृत (सं० त्रि०) जलसे किया हुआ, जो पानीसे बना हो ।
 अश्वस्सार, अश्वःसार देखो ।
 अश्विनी (वै० स्त्री०) गितिका विशेष । इन्होंने शक्य युवुर्वेदकी वाचमें परिणत किया था ।
 अश्वपू (सं० पु०) अश्व क्लिप्त-श्च बाहुलकात् न । १ मङ्गल, बड़ा भादमी । २ भयङ्कर शब्दकारक, खौफनाक आवाज देनेवाला । ३ सोमरस वनानेका पात्र । ऋषिविशेष । यहवाचके पिता रहे । (त्रि०) ४ शक्तिशाली, ताकतवर ।
 अश्वोज (सं० स्त्री०) अश्वसि जली जायते; अश्वस-जन-ड, ७-तत् । १ पद्म । २ सारसपक्षी । ३ वारिवेतस, पानीका बेंत । ४ चन्द्र, चाँद । (पु० स्त्री०) ५ शङ्ख । (त्रि०) ६ जलजात, पानीसे पैदा हुआ ।
 अश्वोजखण्ड (सं० पु०) अश्वोजानां शण्डः खण्डो वा । पद्मसमूह ।
 "इन्द्रवधनपरिशीमदश्वोजखण्डम् ।" (भाष १।।१४)
 अश्वोजजनि, अश्वोजजन्म, देखो ।
 अश्वोजजन्मन् (सं० पु०) अश्वोजे पद्मे जन्म यस्य बहुव्री० । चतुस्रुंख, हरिनाभिपद्मजात व्रद्धा ।
 अश्वोजनान्त (सं० पु०) पद्मनाल, कमलकी छण्डी ।
 अश्वोजयोनि, अश्वोजजन्मन्, देखो ।
 अश्वोजयण्ड, अश्वोजखण्ड देखो ।
 अश्वोजपण्ड, अश्वोजखण्ड देखो ।
 अश्वोजा (सं० स्त्री०) वल्ली यष्टीमधु, बेलके छण्डलका शब्द ।
 अश्वोजिनी (सं० स्त्री०) अश्वोजानां समूहः । १ पद्मसमूह । २ पद्मलता, कमलकी बेल । ३ पद्मयुक्त देश, जिस मुल्कमें कमल खूब मिले ।
 अश्वोद (सं० पु०) अश्वो जलं ददाति, अश्वसु-दाक । १ मेघ, बादल । २ सुस्तक, सोया । (त्रि०) ३ जलदानकर्ता, पानी देनेवाला ।
 अश्वोधर (सं० त्रि०) अश्वो जलं धरति, अश्वस-

धु-यच् । १ मेघ, बादल । २ सुस्तक, सोया । ३ समुद्र, बहुर ।
 अश्वोधि (सं० पु०) अश्वसि धोयन्तोऽश्विनः, अश्वसधा आधारे कि । समुद्र, बहुर ।
 अश्वोधिपङ्कज (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा ।
 अश्वोधिवल्लभ (सं० पु०) ६-तत् । प्रवाल, मूंगा ।
 अश्वोनिधि (सं० पु०) अश्वसः निधिः, ६-तत् । समुद्र, बहुर ।
 अश्वोरामि, अश्वोनिधि देखो ।
 अश्वोरुह, अश्वोरुह देखो ।
 अश्वोरुह (सं० स्त्री०) अश्वोसि रोहति; अश्वोरुह-क, ७-तत् । १ पद्म । २ सारसपक्षी । (पु०) ३ वेतस, बेंत । (त्रि०) ४ जलजात, पानीसे पैदा हुआ ।
 अश्वोरुहकेयर (सं० स्त्री०) पद्मकेयर, कमलका रिंगा ।
 अश्वकुदग—गुजरातकी कावेरी नदीके पासका स्थानीय पुरोहित-समाज । पहले लोगोंने इस समाजकी ब्राह्मण समझ रखा था, किन्तु पीछे वह बात जाते रहीं ।
 अश्वणदेव—वर्षईवाले कानाड़ी जिलेके मालखेडा राष्ट्र-कूट नृपति शलुंनके लड़के । देवीकी महाराज कीरने इनके बाबा रहे । इनकी कन्या महाराजाधिराज द्वितीय कृष्णसे व्याही गयी थी । गौसरी ताम्रफलकी अनुसार,—सन् ८१५ ई०की २४ वीं फरवरीकी द्वितीय कृष्ण तिहासनारुद्ध हुये ।
 अश्वपेट—मन्द्राज प्रान्तके सलेम जिलेका एक नगर । यह सलेम नगरके समीप अक्षां १२° ८' १५" उ० एवं द्राधि० ७८° ४१' पू० पर अवस्थित है ।
 अश्वय (सं० त्रि०) अश्व-मयट, प स्थाने मः । जल-मय, आवदार, पानीसे भरा हुआ ।
 अश्वरम (हिं० पु०) अश्वतरका कपोत, जो कनू-तर अश्वतरधरमें पैदा हुआ हो । इसका समय गरीर श्वेत और कण्ठ काना होता है ।
 अश्या, अश्यां (हिं० स्त्री०) माता, मां, महतारी ।
 अश्यामा (अ० पु०) साफा, सुरैठा । इस निरासे साफेकी सुसलमान बांधते हैं ।
 अश्यायानायकनुर—मन्द्राज प्रान्तवाले मदुरा जिलेके डिण्डिगल तपस्विकका एक राज्य । सन् १०४१ ई०में

रक्षा को बड़ाई देती थी, धममें विस्त्रियन खादा माहृषके खाप बना। सन् १८५० ई०में कैटरबर्माके धममा मारमें धमय भी धम राखने बड़ा काम किया था। चम्पारीके धमने अधिकांशके समय धम राखकी कोरं इकीम धमार रूपसे पाकिं कर बना छोड़ दिया। चम्पारामाहृषके मगरमें दक्षिण-भारत ईल-महा क्षेत्र बना है

चम्पारी, सन् १९१०।

चम्पार—मिथिला-विलास नाटक-रचयिता।

चम्पारी—धमके प्रालाभासे कल्पाय राखके कोई काल-सुषे श्रुति। यह मिथ्याराजके पुत्र थे। महिपुरके हरिहर ग्यानमें जो मिथामेष मिना धममें निगना है,—धम राजकी लखने प्रतिष्ठित किया था। यह मिथके चवतार थे। धमका जन्म किमी प्राप्तीमें हुआ था। यह मापितका काम करते रहे। कालचर-में लखने एक राजाको मारा, जो मरमांघ खाता था। धम तरद लखकी मध्य-भारतके हाहल-प्रातका राख मिना। धमके वंशके कितने ही राजावेमि शासन किया था। चम्पारी कथम नामक कोरं श्रुति हुए, धमके दो पुत्र रहे,—बिज्जल और मिथ्याराज। ध्वेष्ट-भ्याता बिज्जल मिथामनादद हुए थे। मिथ्याराजके चार पुत्रका नाम है,—चम्पारी, महवर्मन्, ककर और कीमस। धममें मधमें पहने, चम्पारीकी ही राखका अधिकार दिया गया था। चम्पारीके बाद कीमस महेश्वर बेटे। कीमसके पुत्रका नाम परमादि रहा। परमादिके पुत्र बिज्जल लक्ष मिथामनादद हुए, तब यह मिथामेष बनाया गया। सन् १९०३ ई०को बिज्जलके लोहपुत्र मोषेदेवका ज्जा मिथामेष पद, यह उपरोक्त मिथामेषमें लड़ी मिलता।

चम्पार (ध० चम्प०) धोर, तर्क।

चम्प (ध० पु०) चम्पने धीरमेम दूरात् प्रायते चम्प रक्त। धामर हस। धामका फल, पत्ता बोध चीनेमि ऊँच-निष्ठ होता है।

चम्प या धामरका (Mandilara indica) चम्पता नाम धोर या धाम है। छोटा गामपुर धोर भारतवर्षके दक्षिणमें यह पक्षमें पाप ही पाप लक्षता

था। यह भारतवर्षके मधु मनामिं धमके पदु लक्षते गये धोर फल भी धुव धीने है।

चामर मण्डके ये करं पयोय देखे शांति है—चम, धाम, धूम, रमाध, महकार, कामगर, कामरुध, कोरिष्ठ, माधवद्रुम, धुधाम्भीष्ट, सोधुरम, मधुमा, कोकिमोमय, धमरुद्रुत, चम्पुफल, मोटाध, मक-धालय, मध्याधम, सुमदन, विकराम, श्रुपतिष्ठ, मिथाम्, कोकिमाधम, माहृष, वदपदातिष्ठ, मधुयत, धमरुद्रु, विकप्रिय, धीमिय, गन्धवन्धु, धनिप्रिय, मदिधामय।

येधमाहृषके मताधुमार कथा धाम कथाय, धवि-कर, दुष्ट धम धोर सुगन्धित होता; धमके धामेमि धामु, पित्त धोर रक्त बढ़ता है। परन्तु धोर धमके कफ करं प्रकारका रोग भी नष्ट होता है। चम्प बढ़ा धम पित्तकर होता है।

पके धाममें करं गुण होते हैं। श्लोक कथा करते हैं,—'वाके धामकी रमी खाई न खाई हेहे धम' सुमिष्ट पका हुआ धाम सुघ्राद धोर पुष्टिकर होता है। धममें द्वितीय नष्ट होता है। धमके धामेमि धम, धवि, शरीरकी कान्ति, धम एवं मांम बढ़ता है। धीनेके धाय पका धाम धामेमि धयरीग, धीष्ट, धाम, धीष्टा प्रथति धमेक प्रकारके रोगमें उपकार दिखारं देता है। एतके माय मिनाकर धामेमि धात धोर पित्त नष्ट होता एवं धमि, धमे धोर धम बढ़ता है। दूधके माय धाम शीतल, सुघ्रादु, धिध, विधिधु गुहयाक धोर धम्य विरिचक होता है। धात पिशादि रोगमें यह हितकर रचता है। धममें मूत्र, रक्त धोर धम बढ़ता है।

पके धामका प्रधान गुण यह है, कि धममें विन्-धय कोष्ठरुधि होता है। धममिये धमेक रोगमि यह हितकर है। यहल्य श्लोक लिखका महित कथे धामको सुलाकर रचने है। धमेके उदरामय धीने धर उपका धाय धिधामेमि दो ही तीन दिनमें धापदा मान्धुम होता है। धामका धरा धारा, धूम धोर मुठली मद्योषक है। धमीम जधम विधकर धिधामेमि धे उदरामय रोग नष्ट हो जाता है। धमिधमे धीने धामेमि धमे धामको चंठकी धाममें धुनकर धामे है।

अंठलीके चूर्णको अच्छी तरह धोकर कितनेही उसकी रोटी बनाते हैं। युरोपीय चिकित्सक आमकी अंठली, सॉठ और कच्चे बैलको एक साथ सिद्ध करके रक्तामशय एवं उदरामय रोगमें देनेसे विलक्षण उपकार देखते हैं। नाकसे खून गिरनेमें अंठलीका रस सुड़कनेसे खून बन्द ही जाता है। शिष्टयन फार्मेकोपियामें लिखा है, कि आमकी अंठली में खूब गैलिक-एसिड है। इससे क्षमि नष्ट और बाधक तथा अर्ग रोगमें इसका क्राय खानेसे रोगी सुख्य हो जाता है। दैव्यराजवृक्षके मतमें इससे ज्वरा, छर्दि, मेह एवं अतिसार नष्ट होता है। आमका मञ्जर रुचिकार और अग्निदीपक है।

युरोपीय चिकित्सक कहते हैं, कि कच्चा आम और कच्चे आमकी अंठली नीतप्रदाह, खुजली और श्वासकासमें विशेष उपकार करती है। हरे पत्तेको सुखाकर तम्बाकूकी तरह उसका धुर्पा चुम्बेमें पीनेसे श्वासरुद्ध और कण्ठरोगका प्रतिकार होता है। डालर ऐन्ग्लो कहते हैं, कि आमके पेटका चूर्ण नीचके रस या तैलके साथ मिलाकर लगानेसे चर्मरोग अच्छा हो जाता है। आमका तख्ता ज्यादा कठिन और स्थायी न होते भी साधारण आदमी उसके किवाड़ बादि बनाते हैं। कपड़ा रंगनेसे पहले अनेक आदमी आमके पत्ते और छिलकेको व्यवहार करते हैं।

हम लोगोंके देशमें कितने ही आदमी कच्चे आम को सुखाकर रखते हैं। उसे अमरा, अमचूर या अमूरी, कहते हैं। पके आमके रसको पतला करके सुखा लेते और उसे अमावट कहते हैं। सर्वदा धूप दिखाकर यज्ञसे रखनेपर अमचूर और अमावट बाराह महीने रहता है, उसमें कौड़े नहीं लगते। परन्तु अमचूरमें हल्दी और नमक न मिलानेसे बरसातके दिनों उसमें कौड़ा लग और वह खराब हो जाता है। अमावतः जिसका धातु कोष्ठवह हो, यदि वह नित्य अमचूर या अमावट खावे, तो पेटका उद्देग कम पड़ता है।

वैद्यगण्डोल अम्बुसुष्ट अग्नि उपादेय सामग्री है। इससे नैवरोग, वायुरोग, अक्षपित्तजनितरोग, अम्ब-

वृद्धि, मेहप्रवृत्ति अनेक प्रकारके रोग दूर हो जाते और देहको कान्ति तथा बलवृद्धि होतो है। इसके प्रसृत करनेको रीति यह है,—खूब मीठे आमका रस कपड़ेसे छान ले। छाना रस १२ सेर, साफू चीनी ८ सेर, गायका घी ४ सेर, सोंठका चूर्ण १ सेर, मिर्च का चूर्ण आध सेर, पोपसका चूर्ण पाव भर, दूध आठ सेर, सब द्रव्योंको सूक्ष्म घोंमें पकाये। एक जाने पर पिपरासूल, सुनक, चाब्य, धनियां, जीरा, काला-जीरा, सोंठ, बड़ी इलायची, दाहचीनी, तालियपत्र, इन सबको खूब वारोक पीम और कपड़ेसे छान कर हरेक चोच आध आध सेर लेना चाहिये। तरबूजके बीज, लवङ्ग और नाग केरको चूर्णकर प्रत्येक द्रव्य चौबीस चौबीस तोले और असली मधु चार सेर डाले। इन सब चीजोंको अच्छी तरह एक साथ मिलाकर इस खण्डको घोंके वरतनमें रख दे। बीच बीचमें धूप देखाना अति प्रायश्चक है। मात्रा दो तोले थोड़े गर्म दूधके साथ सेवन करना।

आमका सुरब्बा भी खानेमें जायके,दार होता है। यह कोठेको खूब साफ रखता है। जिस आममें एकदम रेशा न हो और पकने पर कड़ा रहे, उसके बड़े बड़े टुकड़े करके घोंमें भून ले। फिर उन्हें मिथ्याके रस-जैषी गाड़ी चीनीमें छोड़ भांडमें रख दे। आमका सुरब्बा बहुत दिन नहीं रहता।

वङ्गदेशके अनेक स्थानोंमें जो आमका धवार बनता है, उसे कामुन्दी कहते हैं। इसके बनानेकी रीति यह है,—पहले सरसों और हल्दोको अच्छी तरह धोकर सुखा लेना। सूख जाने पर दोनोंको खूब महीन पीस लेना। उसके बाद दस सेर आमको, छील और अंठली निकाल कर टुकड़े टुकड़े करे। पकी हुई १ सेर इसलीका भी चियां निकाल डाले। फिर दो सेर सरसोंके चूर्ण और आध सेर हल्दोको आम और इसलीके साथ टेंकीमें कूटना चाहिये। एक सप्ताह बाद फिर उसके साथ पूर्ववत् १० सेर आम और ३ सेर इसली कूटे। एक सप्ताहके बाद फिर उसके साथ पहले हीकी तरह १० सेर आम, ३ सेर इसली और २ सेर नमक कूट

अस्वात (सं० पु०) अस्त्रवत् सर्वत्र अत्यन्तं प्राप्यते ;
अस्त्र अत-घञ्, शाक० तत् । अमड़ा, अमड़ेका पेड़ ।

अस्वातक, अस्वात देखो ।

अस्त्र (सं० स्त्री०) अम-वाहुल० क् । तक्र, माठा ।
(पु०) रसविशेष, खटारस । (त्रि०) अस्त्ररसयुक्त,
खट्टा ।

अस्त्र दो प्रकारका है—पार्थिवान्त्र और औद्भिज्जाम्त्र ।
लवण, गन्धक, यवचार प्रभृति खनिज द्रव्यसे जो अस्त्र
प्रस्तुत होता है । उसे पार्थिवान्त्र कहते हैं । इसका
दूसरा नाम द्रावक है । उद्भिज्जमे जो अस्त्र संरुद्धोत्
होता, उसका नाम औद्भिज्जाम्त्र है । उद्भिदकी
नीलवर्ण साध अस्त्ररस मिलनेसे रक्तवर्ण हो जाता है ।
इसीसे कपड़े या कागजपर जवाफूल घिसकर उसमें
नोबूका रस देनेसे लाल रङ्ग निकलता है । कितने
ही ठग पहलसे ही कुरीमें जवाफूल घिस रखते हैं ।
फिर जब कोई प्रीहाका रोगी आता है, तब उस
कुरीको नोबूमें घुसेड़कर दावते हैं ; उससे लाल
रंगका रस टपकता है । वे लोग गंवारोंकी समझा
देते हैं, कि प्रीहा कटा, इसीसे खून टपकता है ।
अस्त्रमें कौड़ी इडो, रूपा या सोना डाल देनेसे
जल जाता है । अङ्गार वायुयुक्त चारद्रव्यके साथ
अस्त्र मिला देनेसे, वह वाहर निकल आता है ।
अधिक वा तेजस्कर अस्त्ररस दांतमें लग जानेसे दांत
गोठिल हो जाते हैं । उस समय कोई वस्तु चवानेसे
कट होता है । यदि दांत गोठिल हो जाय, तो कोई
कड़ो मीठो चीज चवाना चाहिये । अनेक आदमी
कहते हैं, कि जो लोग अङ्गार प्रभृति चार द्रव्यसे
दांत मांजते, थोड़े ही अस्त्ररससे उनके दांत गोठिल
हो जाते हैं ।

विना जल मिलाये द्रावक, सेवन न करना
चाहिये । सेवन करनेसे अस्त्रनाली जल जाती और
उससे प्राणनाश हो सकता है । थोड़ासा अस्त्ररस
सेवन करनेसे पाचक और बलकर होता है । हम
लोग आहारके बाद अस्त्रका व्यञ्जन खाते हैं, वह परि-
पाकके लिये उपकारी है । परन्तु दुर्बल व्यक्तिको प्रति-
दिन या बहुत उद्भिज्जाम्त्र न खाना चाहिये । खानेसे

रक्तके कण नष्ट होते और शरीर और भी दुर्बल हो
जाता है । एकदम कुछ भी अस्त्ररस न खानेसे स्त्रीभिं
और अजीर्ण रोग होता है । सुपथमें नोबू या आम
हो प्रयुक्त है । किसी किमो दिन चालता और
पुरानी इमली भौ खा सकते हैं । नये वृत्तमें अस्त्र
खानेसे प्यास, रक्तकी लघुता और ज्वरका तेज कम
हो जाता है । पुराने ज्वर प्रभृति रोगमें, पाथिवान्त्र
हितकर है ।

वैद्यशास्त्रके मतसे अस्त्र—द्वय, शीतल, धातुनाशक
एवं स्निग्ध है । कडु वसुभूमि यह अधिक तेजस्कर
है । इससे जिह्वा एवं दन्तका उद्वेग उत्पन्न होता
है । पण्डितोंने शाक एवं अस्त्रमें एक प्रकारका दोष
बताया है । अर्थात् इससे शरीर, रक्त, नेत्र सब दूषित
होता, प्रसा और स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है ।
अस्त्र सब रोगोंका घर है, इसलिये इसे परित्याग कर
देना चाहिये ।

अस्त्रक (सं० पु०) अल्पोद्भिः, अल्पार्थे कन् ।
१ मन्दार वृक्ष, अकोड़ेका पेड़ । २ मज्जुवृक्ष, बड़हर ।
अस्त्रकरञ्ज (सं० पु०) करञ्जविशेष, खट्टा किरमान्त ।
इसके फलका गुण पिपासानाशक, गुरु, रुचिकर और
पित्तकर है । (राजवृक्षम्)

अस्त्रका (सं० स्त्री०) १ पालङ्गाक, खट्टा पालक ।
२ पलाशो लता, खट्टी खिरनी ।

अस्त्रकाश्रिक (सं० स्त्री०) काश्रिक, खट्टे कांजी ।
अस्त्रकाण्ड (सं० स्त्री०) अस्त्र अस्त्ररस-विशिटं काण्डं
नालं यस्य, बहुव्री० । १ लवणलवण, लोमिया । (पु०)
शुक्लसोन, सफेद गन्दन ।

अस्त्रकूचि (सं० पु०) हृद्यविशेष, कोई दरखत ।
अस्त्रकेशर (सं० पु०) अस्त्रः केशरो यस्य, बहुव्री० ।
१ मातुलुङ्ग, विजोरा नोबू । २ दाड़िमवृक्ष, अनारका
पेड़ ।

अस्त्रकेशरी (सं० पु०) अस्त्ररसनिव्युक्त वृक्ष, खट्टे
नोबूका दरखत ।

अस्त्रकीर्ण (सं० पु०) निम्बिड़ी वृक्ष, इमलीका दरखत ।
अस्त्रकीर्णक, अस्त्रकीर्ण देखो ।

अस्त्रगोरस (सं० स्त्री०) अस्त्रतक्र, खट्टा मठ ।

रक्षकः (सं० स्त्री०) शार्ङ्गशोभित, चरौ चर्मोती
 ता मेष ।
 रक्षकपुष्पिका (सं० स्त्री०) कर्षंधा० । विद्याकर, चार्द्रे
 पात्रक ।
 रक्षकपत्र (सं० पु०) रक्षकपत्रादेशी ।
 रक्षकशरीर (सं० पु०) रक्षकमनिम्बुकहृत्त, चरौ
 मंडुका दरका ।
 रक्षकहृत्त (सं० पु०) रक्षकनाक हृत्त, रमके र्द्रेमे
 प्राणप्रको मित्ता वन मरती है ।
 रक्षकता (सं० स्त्री०) काषंभ, घटार्द्रे, तुर्गी ।
 रक्षकपत्र (सं० पु०) मियावहृत्त, विरौत्रोका पिट ।
 रक्षकदीपक (सं० पु०) शुक्र, रक्षा पात्रक ।
 रक्षकद्रव्य (सं० पु०) यीजपूरारिचम, विभीरे मीगु
 यमेरुका चर्त ।
 रक्षकद्रव्य (सं० स्त्री०) यीजपूरारिच, विभीरे मीगु चर्त ।
 रक्षकमायक (सं० पु०) रक्षं रसं जयति, रक्षक-मी-
 वान् । रक्षकतम, शुक्र ।
 रक्षकनिम्बुक (सं० पु०) महाकर निम्बुक, रक्षा मोवु ।
 रक्षकनिगा (सं० स्त्री०) रक्षा निगा, कर्मधा० ।
 रक्षकहृत्त, चार्द्रेचरदी ।
 रक्षकवृत्त, रक्षकवृत्त देशी ।
 रक्षकवृत्तम (सं० स्त्री०) वांश चर्द्रे फल । कीम,
 दादिम, हृत्ताका, पुत्रिका एवं रक्षकपेत्तम चयया रक्षकौर,
 मारुता, रक्षकपेत्तम, तिलिङ्गी एवं यीजपुरमी मिनकर
 रक्षकवृत्त वनता है ।
 रक्षकपत्र (सं० पु०) रक्षं पत्रं दद्या, वदुमी० । १ रक्षक-
 नाक हृत्त । २ दण्डामुक्, वाम । ३ सुटपततुममोहृत्त,
 जिम तुममोत्रे पिङ्का चर्तौ कोटी रक्षे । (स्त्री०)
 ४ पुत्रमात्र, रक्षा पात्रक ।
 रक्षकपत्रक (सं० पु०) १ मिला, मिहा । २ रक्षकनाक
 हृत्त । ३ रक्षकभोजिका, भोजिका ।
 रक्षकना (सं० स्त्री०) रक्षकता, मिला ।
 रक्षकपुष्पिका (सं० स्त्री०) चार्द्रेरी, मेष ।
 रक्षकशरी (सं० स्त्री०) रक्षं पत्रं दद्याः । १ रक्षा-
 शीलता, गुणः । २ चार्द्रेरी, मेष । ३ सुटारिचका,
 चर्द्रेरी भोजिका ।

रक्षकपत्रम (सं० पु०) रक्षुः तद्रमः पत्रमः, कर्मधा० ।
 निम्बुकहृत्त, मन्दा ।
 रक्षकपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ हृत्तविशेष, कोर्द्रे दरका
 २ चरपर्वी, गुणर रमका गुण—वात, कफ और
 गुणरोगमायक है । (र्द्रेचरपट्ट)
 रक्षकपर्वी, रक्षकपर्वी देशी ।
 रक्षकपादप (सं० पु०) हृत्ताका, रममो ।
 रक्षकपित्त (सं० स्त्री०) रक्षकान् रक्षकान् चार्तं पित्तम् ।
 रोगविशेष, कोर्द्रे चोमारी । रम रोगमी चाक्षरके वाद
 उदरमें रक्षक मानुस पक्षेगा । क्षारक, खाया हुआ
 पदार्थ पित्तके दोषमें रक्षा हो जाता है । हृत्त, रक्ष,
 कटु और उष्ण प्रकृता भोजन ही रमका उपादान
 निकलेगा। सक्षपमें मिया है,—

" विरहदुःखपरिहारिनिम्बकोपि रक्षकपुष्पेपित्तम् ।
 तिलं कर्द्वेपुष्पं च । रक्षकपुष्पं च रक्षकं च ।
 रक्षकः पुष्पकोटः निम्बोपुष्पकोटौ ।
 रक्षकपुष्पपरिहारिचार्द्रेरी रक्षकपुष्पः ।
 रक्षकपुष्पः—रक्षकपुष्पं रक्षकं " (रक्षकपुष्पः)

चार्द्रेगा यह, कि चविषाक, चरचि, हृदय एवं
 कण्ठके दाह, तिल रक्षके चरार चार्द्रेम रक्षकपित्तको
 पक्षविशेष । रम देशी ।

रक्षकपित्तान्नाकमोदक (सं० पु०) रक्षकपित्तका योम-
 विशेष, जो मट्ट रक्षकपित्तको मिटाता हो । रम मोदक
 के वनामिका विधान यह है,— ८ वन हृत्तौ, ८ वन,
 विष्णुको और ८ वन गुणकचर्तको ४ मरायक हृत्तमें
 काम पक्ष भूमिं । फिर रममें दो-दो तोमै मवहृत्त,
 मवहृत्त, कुठचर्त, नागकेसरचर्त, यमामोचर्त, रक्ष
 चन्दमचर्त, राद्याचर्त, हृत्तमोरकचर्त, यष्टिमपुचर्त,
 त्रिपत्रतमीमाचर्त, मैत्र्य, चन्दुपाकचर्त, चर्द्रेमद-
 पचर्त, चर्द्रेमामोचर्त, रक्ष, रक्ष, रीच्य, मालीम-
 चर्त, पक्षकाटचर्त, मूर्च्छाचर्त, वराचक्षालाचर्त, रंम-
 लोचन, विष्णुमोचर्त, मरायरीचर्त, मगदुचाचर्त,
 योममिष्टीमूचर्त, जतोकोचर्त, जतोचर्त,
 याकोमोमूचर्तविष्णुमोचर्तपरिहृत्त-मगदमानोका चर्त,
 और और एक तोमै चर्त मिलाकर मज्ज चार्द्रे है ।
 (रक्षकपुष्पः)

अम्लपित्तान्तकरस (सं० पु०) अम्लपित्तघ्नरस, जो रस अम्लपित्तको दूर करता है। यथा,—

“अतद्दुर्गन्धीनां गुणान् पच्यते त्रिमंशेत् ।
मायमात्रं निवेत्तु चीद्रेखपित्तप्रमानये ॥” (मेषशरणावचो)

फंके हुये सूत, अर्क और लौहके बराबर हरको रखकर रगड़ लेना चाहिये। इस रसको मायमात्र खानेसे अम्लपित्त दबता है।

अम्लपुर (सं० स्त्री०) हृच्चास्र, इसली।
अम्लपुष्पिका (सं० स्त्री०) आरण्यगणहृत्, जङ्गली सनका पेड़।

अम्लपूर (सं० स्त्री०) अम्लेन पूर्यते; अम्ल-पूर कर्मणि घञ्, इ-तत् । तिन्तिड़ी, इसली।

अम्लफल (सं० पु०) अम्लं फलं यस्य, बहुव्री० ।
१ तिन्तिड़ी हृत्, इसलीका पेड़। (स्त्री०) २ हृच्चास्र, इसली।

अम्लफला (सं० स्त्री०) कल्याणिका, कैषा।
अम्लवन्ध्या (सं० स्त्री०) अम्लं रसं वध्नाति; अम्लवन्ध् उष्ण-यक, स्त्रीत्वात् टाप् । अम्लरसस्कन्ध ।

अम्लमेदन (सं० पु०) अम्लार्थं अम्लरसप्राप्तार्थं भिद्यतेऽसौ, अम्ल-भिद कर्मणि ष्युट् । १ अम्लवेतस, चूक ।
२ सुक्र, खटा पालक।

अम्लमारीष (सं० पु०) अम्लशाकविशेष, खट्टी चीराई।
“अम्लमारीषको दीपकीपनी मधुः पटुः ॥” (वैद्यकनिघण्टु)

अम्लमूलक (सं० स्त्री०) व्युपितकाञ्जिकपकमूलक, पुरानी कालीकी पत्नी जड़।
“कश्चिन्नं व्युपितं पक्वं सूचकं तन्मसूचकम् ॥” (परिभाषापदीप)

अम्लमेघ (सं० पु०) पित्तजन्यमेहरोगमेद, जो पेशाब की बीमारी सफ़रा बिगड़नेसे पैदा हो।

अम्लरस (सं० पु०) अम्लरासो रसयेति, कर्मषो० ।
१ अम्लरस, तुर्गी, खटाई। (त्रि०) २ अम्लरसविशिष्ट, तुर्ग, खटा।

अम्लरुहा (सं० स्त्री०) अम्लाय रोहति, अम्ल-रुह-क-टाप् । मालवदेशप्रसिद्धनागवल्लीभेद, मालविका पान ।
इसका गुण यों लिखा है,—

“अधिकारी दाहरो दुग्धरो वापामहरी च ॥” (राजनिघण्टु)

अर्थात् अम्लरुहा उषा, मधुरा एवं रुचिकरा होती

है। यह दाह, पित्त और गुल्मको मिटावेगी। इसके सेवनसे अग्नि और बल बढ़ता है।

अम्ललोषिका (सं० स्त्री०) अम्लं रसं लाति ष्यन्नाति, अम्ल-ला-क; सुरा० खुसु, स्त्रीत्वात् टाप् । पृषो० वा षत्वम् । अमरुल, सेह।

आँदो पुष्पिका दानमटास्यादम्ललोषिका । (अमर)

वस्त्रादिमें लौह या अन्य कषायका विज्ञ पड़नेपर इससे छुट जायगा। इसके गुणमें बताया है,—यह क्षुधावर्द्धक, रुचिकर, कफ घायु और पक्ष्मणीरोगनाशक, पित्तकर अर्थात् कुष्ठ एवं अतिघार प्रकृति रोग निवारक है। (भाष्यकार)

अम्ललोषी, अम्ललोषिका देवी।
अम्ललोषिका, अम्ललोषिका देवी।

अम्लवती (सं० स्त्री०) अम्लं रसं पक्ष्मास्याम्; अम्ल रसादि० मतुप, मस्य वत्वम् । आमरुललता, सेह।

अम्लवर्ग (सं० पु०) अम्लानां तद्रसवतां वर्गः समूहः, इ-तत् । अम्लरस प्रधान द्रव्यसमूह, खट्टी चीजका जखीरा। इसमें निम्न लिखित द्रव्य सम्मिलित हैं,—

“अम्लवेतसबीरजुहायचकायशाः ।
नागरहं तिन्तिड़ी च निघास्रं च निम्बुलम् ।
आँदो दाहिमर्षं करमदे तदेव च ।
एव चाद्यवः शीको वेतसायसमादुगः ॥” (रसिद्धसारसं०)

कोई कोई दाडिम, आमरुलकी, मातुलह, आमना-तक, कपित्थ, करमदं, बदर, तिन्तिड़ी, कोषाच, भय्य, परावत, धैतफल, सल्लुच, अम्लवेतस, दन्तगठ, दधि, तक्र, सुरा, शक, सौवीरक, तुषोदक एवं चान्याम्रको भी अम्लवर्ग समझता है। वस्तुतः जितना अम्ल द्रव्य हो, वह सब इसमें आ जायगा।

अम्लवसिका, अम्लवती देवी।
अम्लवती (सं० स्त्री०) अम्लं तद्रसवती वती यस्याः, पूर्वपदस्य पुंभेदभावः । त्रिपण्णिकन्द, जवासा। इसके अन्विशिष्ट मूलसे अम्लरस सत्ता निकलती है।

अम्लवाटक (सं० पु०) आमनातक हृत्, अमड़ेका पेड़।

अम्लवाटा, अम्लवाटिका देवी।

आंखकी कोई बीमारी। इससे आंख पकती, लाल पड़ती, जला करती और पानी देती है। (भावविदान) २ अश्वनिम्बूक, नारङ्गी।

अन्तान (सं० पु०) स्त्रै-क्त ऐदात्वं तस्य नत्वञ्च, ततो नञ-तत्त्। १ वन्मुञ्जीवकहृत्च, दोपहरिया। २ महासहा, कोई भाड़ी। 'वन्मुञ्जीव महासहा।' (धमर) ३ भिषिष्टका भेद, किसी किष्कको भाड़ी। 'वन्मुञ्जीवस्य भिषिष्टभेदे।' (धम) 'वन्मुञ्जो भिषिष्टभेदे।' (विप्र) ४ महाराजतरङ्गिणी-हृत्च। (हो०) ५ पद्म। (त्रि०) ६ प्रफुल्ल, फूला हुआ, जो मुरभाया न हो। ७ प्रकाशमान, मेघरहित, खुला हुआ, बादलसे खाली।

अन्ताना (सं० स्त्री०) महासेवतीपुष्पहृत्च, बड़ी सेवतीके फूलका दरखत।

अन्तानि (सं० स्त्री०) १ बल, स्फूर्ति, गुरुता, कु.वत. ताङ्गगी, रीनक। (त्रि०) २ बलवान्. प्रफुल्ल, ताकत-धर, मिगुफूता, खिला हुआ, जो मुरभाता न हो।

अन्तानिन् (सं० त्रि०) स्वच्छ, प्रकाशमान, माफ, चमकीला।

अन्तानिनी (सं० स्त्री०) अन्तानानां समूहः, इनि। १ पद्मसमूह। २ पद्मिनी।

अन्तान्वा (सं० स्त्री०) चाङ्गेरी, ग्रामरुलकी भाजी।

अन्तान्यनी (सं० स्त्री०) मल्लिकामेद।

अन्तिका (सं० स्त्री०) अन्तेषु स्वार्थे कन् टाप् अतो ऋस्वः इत्वञ्च। १ तिमिडौहृत्च, इमलीका दरखत।

'तिमिडौ चिचाम्लिका।' (धमर) २ आन्त, ग्रामया फल। ३ पलाशी लता, टाक, टैसूका पिड़। ४ माघिका, पुदोना। ५ खेतास्त्रिका, कोई भाड़ी। ६ चाङ्गेरो, चोलाईकी भाजी। ७ अन्तोहार, खटो लकार।

'वन्मुञ्जिका तिमिडिकाम्बोदगारपञ्च' रिकाव् च। (विप्र)

अन्तिकापान (सं० स्त्री०) तिमिडौपानक, इमलीका पना। पकी इमलीकी पानीमें अच्छीतरह मलके रस निचोड़ लेते। पीछे शकर, कालीमिर्चकी चुकनी, लौंग और कपूर मिलाकर उसे पीनेपर वातरोग छूट जाता है। (भावप्रकाश पूर्वभाग)

अन्तिकावटक (सं० पु०) वटकविशेष, इमलीका बड़ा। इमलीकी अच्छीतरह पहले पानीमें भिगो

देना चाहिये। जब वह फूल जाये, तब खूब जलसे मलकर उसका रस निचोड़ लीजिये। फिर उसमें ठीक तीरपर नमक, मिर्च और मसाला मिलाकर बड़ेको लुबो देंगे। यही बड़ा अन्तिकावटक कहलाता, खानेमें अच्छा लगता और मूत्रको बढ़ाता है। (भावप्रकाश)

अन्तिमन् (सं० पु०) अन्तता, तुर्गी, खटाईं।

अन्तो (सं० स्त्री०) अन्तो रसोऽन्तास्याम्, अन्त-अर्गं प्रादि०-अच्-डोप्। १ चाङ्गेरी, ग्रामरुल, चोलाईकी भाजी। 'अन्तो आङ्गेरुम्।' (धम) २ जन्तुवैतस, पानीका बेंत। ३ शुक्रिका, लोनिया। ४ तिमिडौ, इमली।

अन्तोका, अन्तिका देखी।

अन्तोकाफल (सं० स्त्री०) तिमिडौफल, इमली। यह शुष्क, उद्दीपन, भेदन, लण्णास्र, लघु और कफ-वातरोगका पथ्य होता है। (भाग्यत एतन्माल) कधी इमली खानेसे अन्त, पित्त तथा ग्राम बढ़ता और दाढ़ होने लगता है। किन्तु पकी इमली वात, ग्राम और मूत्रको मिटाती तथा हृदयको शीतल कर देती है।

(चरित्रविदा)

अन्तोय (सं० पु०) अन्तयेतस, अन्तनवेत, चूका।

अन्तोटक (सं० पु०) अन्तं उटं पदं यस्य। अग्र-न्तकहृत्च, सिद्ध।

अन्तोतज (सं० पु०) चाङ्गेरी, चोलाईकी भाजी।

अन्तोत्तम (सं० पु०) दाडिम, बनार।

अन्तोहार (सं० पु०) अन्त-उद-गु-घञ्; अन्तस्य उहारः, इ-तत्। अन्तरमंस्युक्त उद्गार, खडा डकार।

अन्तोरो (सं० स्त्री०) अंधोरी, कोटो-कोटो फुसी। यह शीघ्र ऋतुमें पसोनेसे लोगोंके शरीरपर उभर पायेगी।

अय (सं० पु०) ईयते प्राप्यते शुभमनेन, इण् करणे अच्। १ पूर्वजन्तुत शुभकर्म, शुभदायक देव, पहले जन्मका किया हुआ अच्छा काम, नेकबख्ती, खुश-किस्मती। 'अय. दमासो विधिः।' (धमर) २ विधान, कायदा। इति जयमनेन, इण् करणे अच्। ३ पामा। यन्ति शावाः द्यूतमाधनोपकरणानि अग्निन्, पाधारो अच्। ४ यतरश्चकी दाढ़नी-धोरवासी चाल।

अयत्नवत् (सं० त्रि०) अकर्तव्य, निश्चेद, शिथिल, नाकाम, वैपरवा, सुप्त, जो तदवीर न सहाता हो ।

अयथा (सं० अव्य०) न यथा तुल्ययोग्यत्वे, नञ्-तत् ।

१ विशुद्धल वा अनुपयुक्त रूपसे, नामुवाफिक्, या नाकाविल तौरपर । (त्रि०) नास्ति यथा तुल्य योग्यता यस्य यत्र वा, बहुव्री० । २ अयोग्य, नालायक ।

अयत्न, धैतदवीर, दीङ्-धूप न लगानेवाला । ४ मिथ्या, भ्रूठ । (पु०) ५ अयोग्य कर्म, नाकाविल काम ।

अयथातथ्य (सं० त्रि०) यथा योग्यं तथा न भवति, नञ्-तत् । १ अयथा, नामुनासिब । २ निष्पयोजन, निरर्थक, वेकाम, वैफायदा, फुजून । (अव्य०) ३ निरर्थक रूपसे, नाकाविल तौर पर । (क्लो०) ४ अयथातथ्य, अयथार्थका भाव, नामुनासिबत ।

अयथातथ्य (सं० क्लो०) अनुपयुक्तताका अभाव, अयुक्तता, अनौचित्य, अयोग्यता, असद्व्ययता, नामुवाफिक्, नामुनासिबत ।

अयथाद्योतन (सं० क्लो०) अनपेक्षित विषयकी सूचना, गैरमुतरङ्गिष्य बातकी सूचर ।

अयथापूर्वः (सं० त्रि०) अभूतपूर्व, अदृष्टप्रतिम, गैर-मामूल, जिसकी नज़ीर न मिले ।

अयथाविल (सं० अव्य०) अपने बलके विपरीत, अपनी ताकतके खिलाफ ।

अयथावाम (सं० त्रि०) मापसे उलटा, नापसे खिलाफ ।

अयथासुधीन (सं० त्रि०) सुंघ फेरे हुआ, जो चेहरा घुमाये हो ।

अयथार्थ (सं० त्रि०) नास्ति यथा अर्थो यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ मिथ्याभूत, मानी या मतलबके सुवाफिक्, न रहनेवाला, वैमानो । २ अयोग्य, नामुनासिब, नाकाविल ।

अयथार्थज्ञान (सं० क्लो०) मिथ्या आभास, भ्रूठी समझ ।

अयथार्थबुद्धि (सं० क्लो०) अर्थव्यभिचारो अप्रमाथ ज्ञान । (तर्कभाषा)

अयथार्थानुभव (सं० पु०) अप्रमाथत् अर्थानुसन्धेय ।

(विद्यालक्ष्मीदय)

अयथावत् (सं० अव्य०) यथा योग्यं रूपमर्हति ;

अर्थाथं वति, ततो नञ्-तत् । अननुपप, गुलतीसे, नाटुरुस्तीमें ।

अयथाशास्त्रकारिन् (सं० त्रि०) शास्त्रके अनुसार काम न करनेवाला, अधार्मिक, बुरा, खराब ।

अयथैत (सं० अव्य०) इष्टमनतिक्रम्य, यथैतन्, ततो नञ्-तत् । १ इच्छाके विरुद्ध, मर्जीके खिलाफ । (त्रि०)

अर्थं प्रादि० अच् । २ अथ, घोड़ा, काम ।

अयथोचित (सं० त्रि०) अनुपयुक्त, नाकाविल, जो मुनासिब न हो ।

अयन (सं० क्लो०) अय-इष् या भावे ल्युट् । १ गमन । २ सूर्य एवं चन्द्रमाका दक्षिणसे उत्तर और उत्तरसे दक्षिण गमन । ३ पथ । ४ गृह, भाग्य । ५ स्थान ।

६ अयननाम्नो संक्रान्ति । "अयने विपुरे चर चक्रानामान्" (ऋत्वि) ७ उक्त अयनसाधन शास्त्र । ८ सैन्यनिवेश रूप ब्यूट्-प्रवेशका पथ । ९ राशिक्रमका क्रान्तिउत्तरार्ध स्थान विशेष । १० अयन । ११ अयनाभिमानो देवताका याग विशेष । १२ सूर्यके उत्तर और दक्षिण दिशामें जानिका काल ।

तीन ऋतुका एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है ।

‘श्री श्री माधदिमाश्रीसाधुसंवरन विनिः ।

अयने वं गतिचरन् द्विविधाके स चतुः ३' (चमर)

पहले सब देशके मनुष्याका ऐसाही विभास था, कि पृथिवी समतल भूमि है । सूर्य, चन्द्र प्रभृति यहगण इस पृथिवीको घेरन कर घूमते फिरते हैं । प्रादिर-हमारे देशके आर्यभटने लोगोका यह भ्रम दूर कर दिया, तो भी यह छद्मकी ठोक गति स्थिर कर न सके । आजकल युरोपमें ही ज्योतिष शास्त्रकी विग्रेष उन्नति हुई है । सूर्य एक स्थानमें है, परन्तु स्थिर नहीं है । यह अपने ही स्थानोंमें पचीस दिनमें एक बार घूम आता है । पृथिवी चन्द्र पथ और भी अनेक यह सूर्यकी चारो ओर घूमते हैं । इन सब विषयोंको युरोपीय पण्डितोंने सुचारुपणे निश्चित किया है ।

पृथिवी वर्ष भरमें एक बार सूर्यकी चारो ओर घूम पाती है । फिर अष्टोत्तरमें आप भी एक बार घूमती

अथनांश (सं० पु०) सूर्यगति विशेषका भाग, जो हिप्सा भागतावको किसी चालका हो।
 अथनांशज (सं० पु०) अथनांशात् जायते, अथनांशजन-ड। प्रथम क्रान्तिहस्तान्तर स्थानको अतिक्रमकर उत्पन्न होनेवाला मास, जो महीना तुक्ता-येतिदान-लैलौनिहारको लांघकर निकला हो।
 अथमान्त (सं० पु०) अथनकी सोमा, तुक्ता-येति-दास-लैलौनिहारका अन्तिमा।
 अथम्ब (वै० क्लो०) १ अथाध्यता, मनमानी। २ अथ-विशेष, कोई इधियार। यह अथ अतिक्रम भोषण होता और शत्रुको रोक रखता है।
 अथन्वित (सं० त्रि०) अथाध्य, स्वतन्त्र, खुद इच्छति-यार, मनमौजी, जो रोक-टोक न मानता हो।
 अथःपान (सं० क्लो०) नरक विशेष, कोई दोष।
 इममें यमदूत पापको तप्त-तरल लौह पिलाते है।
 अथःप्रतिमा (सं० क्लो०) लौहमूर्ति, लोहेका पुत।
 अथम—सुप्रसिद्ध चक्रपट्टपति नक्षत्रपानके मन्वी। वरुण-के जुन्नरगदमें जो शिलालिख मिला, उसपर लिखा है,—इन्होंने एक तालाव खुदवाया और एक भवन बनवाया था। इनका जन्म वत्सगोत्रमें हुआ रहा।
 अथमित (सं० त्रि०) प्रतिबन्धरहित, अनिवारित, रोक न हुआ, जो कटा न हो।
 अथव (सं० पु०) अथो यवः सदृशो वा, नञ्-तत्। १ विद्याजात क्षमिविशेष, गोवरीक्षा कौड़ा। (क्लो०) यु-मिथ्यै-कर्तरि-अच्, ततो नञ्-तत्। २ चन्द्र और सूर्यका वियोजक क्षणपक्ष, अंधेरा पाख। (त्रि०) नास्ति यथो यज्ञसाधनत्वात् यत्न। ३ यवहोन, जिसमें यव न लगे। पिष्टकृत्यादि तिलसाध्य होता, उसमें यथका प्रयोजन नहीं पड़ता।
 अथवक (सं० त्रि०) यवरहित, दुष्टयवसंयुक्त, जिसमें यव न रहे, बुरे यववाला।
 अथवन् (सं० क्लो०) क्षणपक्ष, अंधेरा पाख।
 अथवस् (सं० पु०) न युतः मिलितः चन्द्रसूर्यो यव, यु-आधारे-पसन्। अर्धमास, पक्ष। हमारे शास्त्र-कारोंके मतसे अर्धमास अर्थात् पूर्णिमाको चन्द्र एव सूर्य अति दूरवर्ती सप्तम राशिमें रहता किसी तरह

मिलन नहीं होता; इसीसे अर्धमास अथवा कह-लाता है।
 अथविका (सं० क्लो०) अथक देखो।
 अथव्य (सं० त्रि०) यवके अयोय, जो यवके क्रांतिन न हो।
 अथःगय (वै० त्रि०) लौहमें छेदनेवाला, लोहेका बना हुआ।
 अथःगिप्र (वै० त्रि०) लौह हनु वा नासा विगिट, जिसका जबड़ा या नाक भाङ्गनी रहे।
 अथःशीपेन् (वै० त्रि०) लौह-गिरस्-विगिट, जिसका सर भाङ्गनी रहे।
 अथःशूल (सं० क्लो०) १ लोहमास, लोहेका भागा। २ सव्याज उपाय, धोकेकी तदशोर।
 अथःस्थुण (सं० त्रि०) १ लौहस्तम्भ-विगिट, जिसमें भाङ्गनी खुम्भे लगे। (पु०) २ ऋषिविशेष।
 अथय (त्रि०) अथय, देखो।
 अथयस् सं० क्लो०) अथयते स्थायते; अथ-पसन् युट् च, विरोधे नञ्-तत्। १ यथका विरोधा अपवाद, अकीर्ति, बदनामी। (त्रि०) नास्ति यथो यथ, नञ्-वहुन्नी०। कीर्तिशून्य, बदनाम, नागवार।
 अथयस्कर (सं० त्रि०) यथस्-कृ-ताच्छ्रित्यादौ-ट, ततो नञ्-तत्। अकीर्तिकर, अपवादजनक, बदनाम कारनेवाला, जिससे हिकारत रहे।
 अथयश्च (सं० त्रि०) अथयो हितम्; हितार्थे यत्, विरोधे नञ्-तत्। कीर्तिशून्य बदनाम।
 अथयस्त्री (सं० त्रि०) कीर्तिशून्य बदनाम।
 अथयी, अथयली देखो।
 अथयूर्ण (सं० क्लो०) लौहकिट, लौहज, लोहेका बुरादा या रेत।
 अथयस् (सं० क्लो०) एति आगच्छति अथस्त्नात्-मवि-कर्षणात्। १ लौहमात्र, लोहा। २ कान्तलौहसुम्बक, खेड़ोका लोहा। एति गच्छति अथनीयकादिरूपेण शरीरं ऋक्षद्वय-सम्बिभागादिना वा पुरुषात् पुरुषान्तरं गच्छत्येवम धर्मदानादिना वा। ४ हिरण्य, सोना। भावे असन्। ५ गमन, रवानगी। अथसा निर्मितम्-अथ। ५ आयस, लोहेका हजा वगेरह। (पु०) ७ अग्नि, आग।

अयस, अयस, ईश्वरः।

अयस्रंभ (सं० पु०-स्त्री०) अयो विकारः कंभः अयसो वा कंभः पादं सत्वम् । लोहनिर्मितं पात्रपात्र, लोहेका कटोरा वा चावप्योरा ।

अयस्कूर्णो (सं० स्त्री०) अय इव कर्णावस्थाः, मत्वं स्त्रीम् । लोहतुल्य कठिन कर्णयुक्तं श्रोत्रं, जिम पीरतर्कं कान लोहे-प्रेमं कष्टं रहं ।

अयस्कण्ठ (सं० पु०-स्त्री०) लोहवाण, लोहेका तीर ।

अयस्कान्त (सं० पु०) अयस्य मध्ये कान्तः रज-सोयः, अ-तत् ; अस्त्रादित्वात् सत्वम् । १ कान्तिलोह नामक लोहविशेष, चोड़ीका लोहा । अयसां कान्तः प्रियः, मेकथ्यामात्रेण । २ कान्तापापाण, चुम्बकपत्तर । यह लेखन, ग्रीत पीर मेदीविपन्न होता है पुनश्च श्लो । ३ मन्व उद्धार चिकित्सा, जिम इलाजमें सुभे द्रुये हृदियारके निकालनेका काम रहे ।

अयस्कान्तगिना (सं० स्त्री०) लोहचुम्बक, चुम्बक पत्तर ।

अयस्काम (सं० द्वि०) अयो लोहं कामयते ; अयस्य-कम् अय-उपमं सत्वम् । लोहाभिमायी, जिसे लोहा पानेकी चाहिग रहे ।

अयस्कार (सं० पु०) अयो विकारः करोति ; अयस्य-ल अय-उप-मं सत्वम् । १ लोहकार, लोहार । २ अङ्गाका ऊर्ध्वभाग, टांगका ऊपरी हिस्सा ।

अयस्कैट (सं० पु०) लोहकिट, लोहेका जड ।

अयस्कृष (सं० पु०) अयो विकारः कृषः सत्वम्, शाक-तत् । लोहनिर्मितं घट, लोहेका घड़ा ।

अयस्कृगा (सं० स्त्री०) अयः महिता कृगा, शाक-तत् । लोह महित यन्त्रा, जिम रस्मीमें दुष्-कुक्ष लोहा लगा रहे ।

अयस्कृति (सं० स्त्री०) अयसा कृतिः विकित्सा भेदः, १-तत् । मञ्जापुष्टका विकित्साविशेष ।

अयस्पाप (सं० द्वि०) लोहको लप्य लप्यर्णं बनाने-वासा, जो लोहेको लप्य लप्य कर डालना हो ।

अयस्सूया (सं० स्त्री०) अयो निर्मिता स्यूया, शाक-तत् वा विमर्गसोयः । १ लोहमय अह्वयार्थ, लोहेका अह्वय । 'अयः स्यूया' (अमर-१८) २ लोहप्रतिमा,

लोहेका युत । (पु०) अयो निर्मिता स्यूया अयः १-अह्वयो, गोपि अह्वयः । २ लोहसूयायुक्त अह्वय, जिम पादमीके घरमें पाहनी लप्या लगा रहे । ३ अयविशेष । (द्वि०) ३ अह्वयो । ४ अयामय अययुत, लोहेकी घुरीवासी । अयस्यैव मय्य मित्रादि-गणके मध्य पाया है ।

अयस्कात्र (सं० स्त्री०) अयोमयं पात्रम्, मध्यपदसोरो कर्मधा० । लोहमय पात्र, लोहेका घरतन ।

अयस्त्रय (सं० द्वि०) अयो विकारः, अयस्य-मयत् । अयस्त्रयोर्नि अयसिः पात्रात् १ लोहमय पाहने, लोहेका । (पु०) २ मनु स्मारोचिगके पुत्रविशेष ।

अयस्यो (सं० स्त्री०) असुरस्युके तीन निवास-स्थानमें एक ।

अया (वै० अय्य०) इम रीतिसे, एमे, इमतरह, यो । पदां (अ० वि०) १ प्रकाशित, खुला हुआ । २ माफ़, जो भ्रमामक न हो ।

अयाचक (सं० द्वि०) याचा न करनेवाला, जो मांगता न हो । (स्त्री०) अयाचिका ।

अयाचित (सं० स्त्री०) याच-क्त याचितम्, नञ्-तत् । १ अच्युताय्य हृत्ति, न मांगनेकी इच्छा । (पु०) २ उपययै अयिका नाम विशेष । (द्वि०) ३ अयाचित, न मांगा हुआ, जिमसे कीर्ति चीज मांगी न जाये । (अय्य०) ४ विना याचा, बेमति ।

अयाचितहृत्ति (सं० स्त्री०) याचा हीन भैरव-निर्वाह, बेमति गौरातरप गुजरका करना ।

अयाचितप्रत (सं० स्त्री०) अयाचितनिर्वाह ।

अयाचिन् (सं० द्वि०) याचा न करते हुआ, जो मांगता न हो ।

अयाची, अयचिन् ईश्वरः ।

अयाष्य (सं० द्वि०) याचाके अयोग्य, जो मांगने कृत्विग न हो ।

अयाष्य (सं० द्वि०) न याचयितुमर्हः ; यत्र-विष्-यत्, नञ्-तत् । १ यनिदानके अदीय, जिमके निचे कृत्वाको करना मुनासिब न टहरे । २ पतित, गिरा हुआ । ३ यत्र करनेके अयोग्य । ४ धार्मिक अनुष्ठानमें प्रवेश पानेके अयोग्य ।

अथाव्यत्व (सं० स्त्री०) पतित होनेका भाव, गिर जानिकी हालत ।

अथाव्ययाजक (सं० पु०) पतित व्यक्तिकी यज्ञ करानेवाला पुरुष ।

अथाव्ययाजन (सं० स्त्री०) अथाव्यानां याजनम्, इ-तत् । अथाव्य पतितादिका याजन, पतितादिका यागपूजादि करना, पतितादिगणको याग किंवा पूजादि कराना ।

अथाव्यसंयाच्य (सं० स्त्री०) अथाव्यस्य पतितादेः सम् सम्यक् याच्यम्, इ-तत्; अथाव्य-सम्-यज्ञ-णिच्-यत् । अथायाचन देखो ।

अथातपूर्व (सं० त्रि०) अनुग, अनुयायी, अगला, दूसरा, आसन्दा ।

अथातयाम (सं० त्रि०) यातो गतः यामः प्रहर-कालो यस्य, नञ्-तत् । १ बलिष्ठ, जो कमजोर न हो । २ प्रयोग करनेसे न बिगड़ा हुआ, जो इस्तेमाल करनेसे खराब न हुआ हो । ३ नूतन, टटका । ४ एक प्रहर न विताये हुआ, जिसको एक पहर न लगा हो । ५ विगतदोष, वेदव । ६ जिसका काल वीत न जाये, मौकेका । ७ परिसुख न होनेवाला, जो ख़ाया न गया हो । (स्त्री०) ८ याज्ञवल्कर द्वारा आविष्कृत यजुर्वेदका अंश विशेष ।

अथातयामता (बे० स्त्री०) धनभिभूत बल, नवी नता, ताज़गी, जो ताकत बिगड़ो न हो ।

अथातयामन् (बे० त्रि०) बलिष्ठ, नूतन, ताज़, जो कमजोर न हो ।

अथातु (बे० त्रि०) या-तु, नञ्-तत् । १ राक्षसभिय, अहिंसक, न मारनेवाला, जो शैतान् न हो । (पु०) २ देवता, राक्षस न होनेवाला व्यक्ति ।

अथाथातथ्य, आयाथातथ्य (सं० स्त्री०) न यथातथा-भावः, अञ्, नञ्-तत् । १ मिथ्यात्व, नारास्त्री, भ्रूटा-पन । २ अथथार्थत्व, गैर-सुनासिद्धत, जो बात ठीक न हो ।

अथाथार्थिक (सं० त्रि०) १ अनुचित, अयोग्य, गैर सुनासिद्ध, जो ठीक न हो । २ क्षत्रिम, कल्पित, बनायटो, मसनुयी, जो असली न हो ।

अथाथार्थ्य (सं० स्त्री०) अनौचित्य, अयोग्यता, गैर-सुनासिद्धत, नाकाविलियत ।

अथान (सं० स्त्री०) नास्ति यानं चलनं यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ स्वरूप, प्रकृति, स्वभाव, चरत, कुदरत, तथैयत । २ यज्ञ । नञ्-तत् । ३ गमनाभाव, ठहराव, मुकाम । (त्रि०) नास्ति यानं याहनं गतिर्वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । ४ वाहनहीन, घेसवारो । ५ गतिहीन, न चलनेवाला, जो जाता न हो ।

अथानत (सं० स्त्री०) साहाय्य, सहाय ।

अथानप (हिं० पु०) १ ज्ञानका अभाव, बेपक़्तो, समझ न आनेकी हालत । २ सादालोहो, भोलापन, टेढ़े न पड़नेकी हालत ।

अथानपन अथानप देखो ।

अथानय (सं० पु०) अयः प्रदक्षिणम्, अनयः प्रसव्यम्; प्रदक्षिण प्रसव्यगामिनां शाराणां यस्मिन् परगारैः पदानामसमावेयः । अतएव सर्वदापानं तथा भवति नयेत् । प ३५२ । १ पायकीड़ाका शीर्षस्थान, जिस स्थानमें गोटेके जानेसे विपक्षको गोट कोर्दे अनिट कर न सके । (स्त्री०) २ पायकीड़ा विशेष ।

अथानयीन (सं० पु०) शीर्षस्थानप्राप्त पांसा, जो गोट लं ची जगड पड्च गयी हो ।

अथानी (हिं० स्त्री०) अन्नानी, जिस पीरतकी समझ न रहे ।

अथास (प्रा० पु०) १ केयर, घोड़े पीर गैरके गलेका बाल । (अ०) २ सन्तान-सन्तति, बाल-बधा ।

अथावक (सं० त्रि०) यावकविहीन, महावरसे ख़ाचो, प्रकृत रक्तवर्ण, जो कुदरतन् लाल हो ।

अथावन (सं० स्त्री०) योग करानेका अभाव, जिस हालतमें मिला न सकें ।

अथाथ (बे० त्रि०) अयं अथाति, अय-अम-ठण् । राक्षस, सम्पर्कके अयोग्य, जो साथ रहने काविल न हो ।

अथाम् (बे० अथ०) एति गच्छति सर्वत्र, इष्ट-पाणि । अग्निमें, आगवर । 'अथः अग्निः । अतदि पाठाटमभवत् ।'

(अथानपनः)

अथास्य (बे० त्रि०) यस्-णिच्-यत्, नञ्-तत् ।

१ सेवक करानेको पगवर, जो केंकवा न सकता हो ।
 २ पापन करानेको पगवर, जो विताया न जा सकता हो ।
 ३ सेवक न किया जानेवाला, जिसे केंक न सके ।
 ४ युद्ध द्वारा बग किये जानेको पगवर, जिसे नइकर मातहत न बना सके । (पु०)
 पाप्यात् मुपादयति परिहर्षयति; इत्-पय वा पय्, ततः
 पयो० पदवाच्यः । १ मुपमि परिहर्षांमो वायु,
 जो हवा मुँहमे बाहर निकलती हो । २ पत्रिवा
 वंशजे मुनिविशेष । यह सकल लोकके वन्द्य-
 स्वरूप रहे ।

पद्यासौम्य (वै० स्त्री०) मामपेक्षया मय्य विशेष ।
 पद्याश्च (सं० स्त्री०) कागस धातु, कांसा ।

पयि (सं० चक्ष०) १ दवा, दती । २ पच्छा, प् व ।
 ३ प, यो । ४ प्यारी, प्यारे । ५ पायिषे, पचारिये ।
 यह चक्ष्य मन्त्र, अयुग्म, मन्त्रोपन, अयुग्म एवं
 मध्यम सामन्तलक्ष्मीं पाता है ।

‘पयि विषे ईरिष्यन्तु गृहीतौ’ (अ० निरुक्त)

अयुग्मद (सं० पु०) न युक्तयो समतया अयुग्माः
 ददाः पताप्यस्य । समपके लक्ष, मततो । मततो
 विहर्षो दृष्टेक क्षामिं अयम अयम मात पत्ते रक्षते,
 र्धामे धर्म अयुग्मद कर्तते है ।

अयुक्त (सं० लि०) युक्त-क, निरन्त-तत् । १ अय
 विशेषमें मनोयोग हेतु कर्तव्य विषयमें अन्वयित, जो
 दूसरी बातमें टिक नग जानेपर फर्जमें अन्वयिता
 हो । २ अयुक्त, सुदा, जो मिला न हो । ३ अनियो-
 नित, जो लगा न हो । ४ कसा न हुआ, जिस पर
 काठों धरोरह न पड़े । ५ अयोग्य, नाशायक । ६ परि-
 मुँह, भगा हुआ । ७ युक्तिगम्य, गंवार । ८ पापद-
 गत, मुभीक्ष्णमें पड़ा हुआ ।

अयुक्तम् (सं० लि०) कुक्षमें करमेवाता, जो सुरा
 काम करता हो ।

अयुक्तवार (सं० पु०) सुसुखयुक्तो निमुक्त न करमें
 थाभा, जो आयुष्य न पछता हो, राधा, वादमाह ।

अयुक्तता (सं० स्त्री०) अयोग्य, अनियुक्ति, काममें
 दूरका रहना ।

अयुक्तव्य (सं० स्त्री०) अयुक्तव्य ।

अयुक्तपदायं (सं० पु०) अयुक्त किया जानेवाला
 मध्यम, अयुक्त जो मानी मुहैया किया जाता हो ।
 अयुक्तपय (सं० लि०) अयुक्त, अयोग्य, नाशायक,
 गौरमुनासिध, नाशायक ।

अयुक्ति (सं० स्त्री०) अभावे अन्त-तत् । १ युक्ति
 अभाव, सुदायी, मिला न मिला । २ अन्वय, गौर-
 मुनिकी । ३ अयोग्यता, नाशायक । ४ वंशो
 वंशानेकी चाल ।

अयुक्तपाम (सं० पु०) अयुक्तपाम, किमी दूर-
 पत्तका नाम ।

अयुक्तपादयमक (सं० स्त्री०) अभावे अन्त-तत्, अन्व-
 नीष्ट । अन्वके प्रथम चोर अन्वके पादमें एक ही
 मध्य विभिन्न अर्थका अन्तक रहनेमें यह अन्वकार
 होता है ।

अयुक्तगति (सं० पु०) गिर, मन्वदेव ।

अयुग (सं० लि०) युग्म-मिध, विषय, ताक, अन्वका ।

अयुगघ, अयुक्तेर ईषी ।

अयुगपद (सं० चक्ष०) न युगवत्, अन्त-तत् ।
 क्रम-क्रम, एक-एक, धीरे-धीरे ।

अयुगपदपद्य (सं० स्त्री०) क्रमागत अन्वय, जो
 समझ धीरे-धीरे पाती हो ।

अयुगपदभाव (सं० पु०) अयुगपूर्वता, क्रमानुसारिता,
 निरन्वयवन्दी ।

अयुगिषु (सं० पु०) अयुगवत्, कामदेव ।

अयुगु (सं० स्त्री०) अयुगवत् अन्वयमन्वयमिति
 यावत् अयति गर्भे धारयति, अन्व-अन्व-अन्व । काक-
 अन्वया, मित्रा एकके दूसरा मन्वय न उत्पन्न कराने-
 वालो हो, जो अन्वय एक हो गया होता करता हो ।

अयुग्धातु (सं० लि०) अन्वयको विषय अन्वयमें
 विहित, जिसमें अन्व-अन्वका अन्वय ताक रहे ।

अयुग्म (सं० स्त्री०) अयुग्मते समतया; अन्व-अन्व-
 अन्व, अन्व-तत् । १ अन्वय न होनेवाला अन्वय, विषय,
 ताक, जो अन्वय अन्वय हो । (लि०) अन्व-अन्व-
 २ अन्वय अन्वय-विहित, एक अन्वय अन्वय अन्वय-
 माला, जो पूरा न हो ।

अयुग्मक (सं० पु०) अन्वय-अन्वय, अन्वय ।

अयुग्मच्छेद (सं० पु०) सप्तपर्णं वृद्ध, सतनो ।
 अयुग्मनेत्र (सं० पु०) अयुग्मानि युग्मभिन्नानि नेत्रा
 यस्य, बहुव्री० । १ शिव । शिवके क्लृप्ताटपर अति-
 रिक्त एक नेत्र विद्यमान है, इसीसे उनका नाम
 अयुग्मनेत्र पड़ा । (क्लौ०) युग्मश्च तत् नेत्रञ्च ति,
 कर्तृधा० । २ युग्मभिन्न नेत्र, कपालनेत्र ।
 अयुग्मपत्र, अयुग्मच्छेद देखो ।
 अयुग्मपर्ण, अयुग्मच्छेद देखो ।
 अयुग्मवाण (सं० पु०) कामदेव ।
 अयुग्मवाह (सं० पु०) अयुग्माः विपमा सप्त वाह्य
 यस्य, बहुव्री० । सप्ताह, सूर्य ।
 अयुग्मशर (सं० पु०) अयुग्मा विपमाः पञ्चशरा
 यस्य, बहुव्री० । पञ्चशर विगिट, कामदेव ।
 अयुग्मवाण, अयुग्मशर देखो
 अयुङ्ग (वै० त्रि०) विपम, ताक, बज्रोड़ ।
 अयुञ्ज (सं० त्रि०) न युजयति समतया ; युज-क्विन्,
 नञ्-तत् । अयुग्म, विपम, ताक, बज्रोड़, जो पूरा
 न हो ।
 अयुञ्ज, अयुङ्ग देखो ।
 अयुत (सं० त्रि०) युक्त, नञ्-तत् । १ असंयुक्त,
 असम्बद्ध, मिला न हुआ, जो मिलसिलेमें न हो ।
 (वै० त्रि०) २ अविमर्दित, विच्छेदयुक्त, दखल न
 दिया हुआ, जो परेशान् किया न गया हो । (पु०)
 ३ राधिकके पुत्रविशेष । (क्लौ०) ४ दश सहस्र संख्या,
 दश हजारका श्रमर ।
 अयुतजित्—भजमानके पुत्रविशेष ।
 अयुतनायिन् (सं० पु०) अयुतं पुरुष-मेधानाम् अयुतं
 जयति च्च, नो भूते-ग्निनि । पुरुवंशके नृपतिविशेष ।
 इन्होंने प्रासेनजित्की कन्या सुयज्ञाके गर्भे एवं महा
 भीमके औरससे जन्मग्रहण किया था । अयुत
 सव्यक नरवेध करनेसे इनका नाम अयुतनायी
 पड़ा । पृथुश्याकी कन्या कामाके साथ इनका
 विवाह हुआ था । कामाके गर्भसे अक्रोधन नामक एक
 पुत्रने जन्म लिया । (महाभारत सप्तपर्व २४ अध्याय)
 अयुतशस् (सं० अव्य०) अयुतं अयुतं ददाति, वीर्याय
 कारकात् शस् । अयुत-अयुत, दम-दश हजार ।

अयुतसिद्ध (सं० त्रि०) यत्तं अष्टयगभूतं सत् सिद्धं
 युतसिद्धम् । न यत्तसिद्धम्—नञ्-तत् । उपादान अर्थात्
 समवायी कारण परित्यागकर जिसका उपादान वा
 ध्यान न किया जाय । जैसे कपाल परित्याग कर टेनेसे
 घटकी उत्पत्ति नहीं हो सकती एवं घट कैमी
 वस्तु है, यह भी हमलोग समझ नहीं सकते । इसीसे
 घट और कपालको 'अयुतसिद्ध' अथवा अष्टयक्त्विह
 कहते हैं । (जिन दो भागोंको पहले बना और
 जोड़कर कुम्हार घट प्रसृत कर लेते, उन्हे दोनों
 खण्डोंको कपाल कहते हैं) ।

इसका स्थूल तात्पर्य यह है, जहाँ कुछ भङ्ग प्रत्यङ्ग
 एकत्र कर लेनेसे एक विशेष वस्तुकी उत्पत्ति और
 उसका गुण तथा क्रियादि प्रकाश हो ; परन्तु उची भङ्ग
 प्रत्यङ्गको परित्याग करनेसे फिर उस वस्तुकी उत्पत्ति
 नहीं होती और न उसने गुण या क्रियादिका ही
 प्रकाश होता है । यथा,—हृत्त कैसा होता है, यह
 समझनेके लिये पत्र, शाखा, पद्म, मूल, धड़, काठ
 इन सबको एकत्र ग्रहण करना पड़ता है । इन सबको
 एकत्र ग्रहण करनेसे समझमें आता, हृत्त कैसा
 पदार्थ है । किन्तु पत्र पत्तादिको परित्याग करनेसे
 हम लोग नहीं समझ सकते, हृत्त कैसा होता है ।

ऊपर 'उपादान कारण' कहा गया है । इस
 बातके कहनेका तात्पर्य यह है, कि कुम्हारका दण्ड
 घटका निमित्त कारण है । क्यों कि, जब कुम्ह-
 कार दण्डसे चाककी घुमाता, तब घट निर्माण
 किया जाता है । किन्तु घट निर्माण कर लिये जानी
 पर फिर दण्डके साथ घटका कोई सम्पर्क नहीं,
 दण्ड एक जगह और घट दूसरे जगह पड़ा रहता
 है । घटके कपाल साथ घटका वैसा सम्बन्ध नहीं
 है । उसने पृथक् हो जानेपर फिर घटका अथवा
 नहीं रहता एवं घट न रहनेसे, शक्तवर्ण या कृष्णवर्ण
 इत्यादि गुण भी नहीं रहता । घटका हिलना डोलना
 —किमी प्रकारकी क्रिया भी असम्भव हो जाती है ।
 इस लिये गुण भी घटका अयुतसिद्ध है । किन्तु
 वैद्वान्तिक इस बातकी स्वीकार नहीं करते ।

अयुतसिद्धि (सं० स्त्री०) यु अमिश्रये-त् अयुतम् ;

दुःखः अष्टमस्कण्डेव स्थितयोः निदिः, चभावे नञ्-
तत्। प्रवृत्तं चयमे चनिदि। त्रैमे, चयय चौर चययोकी
दृष्टं चयं चयमे निदि नही होती। चयात् चय
चदादि चयय चयं मनुष्य चययो है, यहां चयय
चयं चययोकी प्रवृत्तमे निदि होती चययय है।
चिर द्रव्य चौर गुण चयं द्रव्य चौर क्रियाकी प्रवृत्त-
चयमे निदि नही हो सकती। चयात् द्रव्य न चयमे
चयका गुण किन्ना क्रिया भी नहीं रह सकती।

- चयुतश्रीम (मं० पु०) यज्ञविशेष।
- चयुताध्यायक (मं० पु०) उत्तम शिक्षक, पण्ड्या उग्राद।
- चयुताष्टम् (मं० पु०) १ अयमेव चाराचिनके पुत्र-
विशेष। २ अतपतुके पुत्रविशेष।
- चयुताग्र (मं० पु०) मित्रुदोषके पुत्रविशेष।
- चयुध (मं० जी०) १ शान्ति, अविरोध, सुमह,
मिन्न, लड़ाईका न रचना। (दि०) २ अपराजित,
सो शीता न गया हो। ३ युद्ध न करते हुए, जो लड़
न रहा हो।
- चयुद्धमेव (पे० पु०) अपराजित मैत्र्येव मध्यय चौर,
त्रिम बह्मादुरकां फोजकी शीत न मके।
- चयुध्वी (पे० अष्ट०) विना युद्ध, के लड़े-भिड़े, मोचे
तोरपर।
- चयुध (मं० पु०) १ युद्ध न करनेवाला स्थिति, जो
अग्रम लड़ता न हो। (दि०) २ पायुध, हथियार।
- चयुध्व (मं० ति०) अपराधीय, जिमे शीत न मके।
- चयुध्विन् (पे० पु०) विजय न दानेवाला चौर, जो
सङ्गनेवाला लोरदार न हो।
- चयुध्वेय (मं० पु०) शिष्य।
- चयुध्व (पे० ति०) न योति, यु द्वाङ्गु क। चयं चयट,
मं चयंगुन्ध, परेशान न क्रिया हुआ, जो हिमा न हो।
- चयुध्व, चयुध्वेयः।
- चयुध्व (मं० ति०) युधि माधु यन्, नञ्-तत्। युध
प्रयुत करनेके अयोग, जो यज्ञोप चयययके चयुध्विन
न हो। मोम, मोमू चयुध्वेय लक्ष्मीं चयुध्व नही
बनाते, इमोमे चमे चयुध्व कर्त्तव्य है। चिर चलान,
चदिर, चिच्य प्रयुध्विर्क जातमे दूष बनता, इमोमे चयु
युध्वकात उचरता है।

चये (मं० अष्ट०) १ अष्ट-पुत्र। २ मावधान, चोनिवार,
स्वरदार। ३ दुःख, हाथ, चयुध्वोम। ४ चये, का,
कहा, चयं, मना। ५ चिये, च्याए, हां। ६ चयुध्वि,
देचिये, इधर, दुःख, मरकार। चोप, गियाद, मंभय,
चयुध्व, चयुध्वोप प्रभृति चयलेमे यष्ट चयुध्व चाना है।
(दि० पु०) १ अशुचिमेव, कोई जानवर। यह अशु
चये-चये योचनेमे ही 'चये' कहलाता है।

- चयोग (मं० पु०) युञ्ज-घञ्, चभावे नञ्-तत्।
१ योगका चमान चयात् विशेष, लुदायी, सु-फारकन,
ककू। २ ध्यानका चभाव, गुणानकी चदममोद्गदमे।
३ चोपधका चभाव, दवाका न मिनना। ४ रोग-
निदानके विद्वद चिकित्सा, जो चकीमी मज्जेके
चामारमे चिन्साक रते। ५ ज्योतिषोक्त तिविशारादि
कात द्रुष्ट योग। ६ दो नचयका योग। ७ कोई
महत्तमो। ८ कतिनोद्यम, लान्दुकिगानी, कड़ी दोड़-
धुप। ९ वमन द्वारा उपगमनीय रोग, जो बीमारी
के करानेमे छूट सकती हो। १० कूट, सुपण्या, शिष्य
यातका मतमध चयानोमे ममम न पड़े। ११ सार्व-
कारकी हयोदी। १२ विद्येय, चकूडा, चयुं।
१३ अयोग्यता, नाकाचिनियत। १४ अयुध्विन
चामी, गौरवाच्चिर चयुध्विन्, रहुवा। १५ चकान,
युवा चयु। १६ गडद, सुमीधत, नकमोपु। १७ चयुध्वि,
गौरवाचिनो; (दि०) १८ चयं युद्ध, जो मिला न
हो। १९ अष्टरौतिमे चयमयद्ध, जो माफ माफ लोडा
न हो। २० प्राणचयमे चेटा करते हुए, जो दिने-
जातमे कोमिग कर रहा हो। २१ चयुध्विन्, चयुध्व,
जो मला न हो। (दि०) २२ अयोग्य, नाकाचिन।
अयोग्युद्ध (मं० पु०) लोडगुद्धिका, लोडकी गोभी।
अयोग्य (मं० पु०) अय इव कठिना गोर्वांमे यध्व,
निपातमे अयु। चैत्र कन्थाके गर्भ चौर मूढके चौरमे
जो गडद जाति उत्पन्न होती है, चमे अयोग्य कहते
है। शाखाकार कहते है, कि अतिमोम जातिमे एक
चयुध्वका अयधान रचनेमे अम जातिको अयु कर सकते
है। चैत्र चयं मूढमे कवच एक चयुध्वका अयधान है,
इमन्चिमे अयोग्य जातिको अयु कर सकते है। इम
मयय प्रकृत अयोग्य जाति निर्धारित करना बहुत

कटिन है। पश्चिम देशमें यह नाना वर्षोंके साथ मिल गये हैं। यह सब कृपिकार्य और पशुपालन करते हैं।

अयोगवाह (सं० पु०) नास्ति योग उल्लेखरूपः सम्बन्धोऽक्षरसमाश्रयसूत्रेषु येषां ते अयोगाः, अयोगा-उल्लेखरूप-सम्बन्धरहिता अपि वाहयन्ति षत्वपत्वकार्यं निर्वाहयन्ति इति वह-णिच्-अच् वाहाः; अयोगाय ते वाहायेति कर्मधा० । १ अनुस्वार और विसर्ग एवं जिह्वामूलीय और उपध्मानीय। पाणिनिने स्वर एवं व्यञ्जन वर्णकी थ इ उण्, ऋ ऌ क् इत्यादि जो समाहार संज्ञा की है, उसमें अनुस्वार विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय इन कईका योग अर्थात् उल्लेख नहीं है। इसीसे इन सबको अयोग कहते हैं; किन्तु योग अर्थात् उल्लेख न रहते भी यह सब षत्वादि कार्य निर्वाह करते हैं, इसलिये वाह नाम हुआ है। जिसमें अयोग और वाह यह दोनों धर्म रहते, उस वर्णको अयोगवाह कहते हैं।

अथवा, योगः आश्रयस्थानं तद्व्यतिरिक्तं न ऊह्यते उच्चार्यते अयोग-वह-वच्, प्राक०-तत् । २ जो वर्ण आश्रयस्थानके योग भिन्न उच्चारित न हो।

‘अयोगवाहा विशेषा चाश्रयस्थानभासिणः’ (निघाण्टु)

विसर्गके जिह्वामूलीय और उपध्मानीय यह दो रूप और भी हैं। ककार खकारके पूर्व अर्ध विसर्ग सट्टम जो चिह्न होता, उसे जिह्वामूलीय कहते हैं। जैसे, +क+ख। फिर पकार फकारके पूर्व जो अर्ध विसर्गके तुल्य चिह्न पड़ता, उसे उपध्मानीय कहते हैं। जैसे >प>फ। वृत्के बाद एक विन्दु रहनेसे उसे अनुस्वार और दो विन्दु रहनेसे विसर्ग कहते हैं। अच् भिन्न हलन्त वर्णके बाद यह प्रयुक्त नहीं होती। जैसे अच् व, अच् वः। ‘+क+ख इति कसाध्यां प्रागर्ध्वविसर्गसट्टमो जिह्वामूलीयः >प>फ इति पफाध्यां प्रागर्ध्वविसर्गसट्टम उपध्मनीयः; अच् वः कलवः परानुस्वारविषयो।

‘‘इथी पूर्वैव रुमन्त्री, मूथी ठ परमात्मिनी।

चतारो योगवाहाण्यः, षत्वकर्मण्यो मनाः इ’’

सु अर्थात् अनुस्वार, वि अर्थात् विसर्ग, इनका पूर्व वर्षोंके साथ सम्बन्ध रहता है, अर्थात् यह पूर्व

वर्णके साथ उच्चारित होते हैं। नू अर्थात् जिह्वा-मूलीय और नौ अर्थात् उपध्मानीयका पर वर्षोंके साथ उच्चारण होता है। इन चार वर्णोंका नाम अयोगवाह है। षत्वकार्यमें यह सब अर्धकी तरह व्यवहृत होते हैं—अर्थात् मूर्धन्य प्रकार, रफ, ऋवर्ण एवं नकारके मध्य अच् व्यवधान रहनेसे निष्पत्त तरह षत्वमें कोई व्याघात नहीं लगता, उसी तरह अनुस्वारदि व्यवधान रहते भी षत्वकार्यमें कोई व्याघात नहीं पड़ता।

अयोगस् (सं० स्त्री०) युञ्-असन्-कुत्वम्, नञ्-तत् ।

१ अस्माधि, दुनियादारो। (त्रि०) नञ्-वहुव्री० ।

२ योगहीन, समाधिरहित, जो योग न जानता हो।

अयोगी (सं० पु०) योग न जाननेवाला, जिसे साधन-भजन मालूम न रहे।

अयोगुड (सं० पु०) अयसा निर्मितो गुडः गुटिका, प्राक०-तत् । लोहमय गुटिका, फोलादाको गोनी।

‘‘परमणोविषयिच’ कथितं तावमेव च ।।

दौलतव्यविषयना भवितो वाप्ययोगुडः इ’’ (चरकसंहिता)

अयोगुल, अयोगुद ईवो।

अयोगू (सं० पु०) अयो लौहविकारं गच्छति, अयम्-गम-ऊङ्-मनोपः। कर्मकार, अयस्कार, लोहार, जो लौहका काम करता हो।

अयोग्य (सं० त्रि०) युञ्-अयत्, नञ्-तत् । १ पक्षम, निष्पूयोजन, नाकाबिल, नादुरस्त, विकार, जो किसी लायक न हो। २ अनुचित, गौरवाजिव। ३ अनर्त, निरवयव, विगल, जिसके अज्ञो न रहे। ४ अनिन्द्य, जो क्राबिल तहकीकू न हो, पदचानमें न जानेवाला।

अयोग्यता (सं० स्त्री०) पक्षमता, नाकाबिलियत, नादुरस्ती, लायक न होनेकी हासत।

अयोग्य (सं० पु०) अयोग्ये मुष्टि यस्य। मुपल, सूमर। मुपलके मुखमें लौह लगता, इसीसे वह अयोग्य कहलाता है। ‘अयोग्यं मुखोपयो म्नात् । (चरक)

अयोग्यक, अयोग्य ईवो।

अयोग्यन (सं० पु०) अयो हन्यतेनिम, अयस्-हन् करणे अच् घनादेश्च। लौहसुमर, हथौड़ा।

अयोच्छिद्य (सं० स्त्री०) लौहकिह, लौहका जड़।

पयोन्नन (मं० स्त्री०) विद्योग, विप्रोष, गुदाघो,
पल्लवदण्डो, धनका न मिलना ।

पयोशाव (मं० स्त्री०) पयोविकारः आमसु, मध्य-
पटलोन्नी कर्मांशः । १ शोथनिमित्तं घाल, शोथेका
कम्पा । (ति०) पय इव दुग्धं ज्ञानं माया यम्य,
वद्भ्यो० । २ दुग्धेय-कण्ट, जिसको चामाकी समझ
न पड़े । ३ शोथशान-विशिट, जिसमें शोथेका फन्दा
पड़ा रहे ।

पयोदंड (मं० ति०) पयोमयो दंडाः पयधारा यम्य,
वद्भ्यो० गोभि सुखाः । शोथमय दंडाविशिट, शोथेकी
टाटवामा, जिसका पयभाग शोथमय रहे ।

पयोदण्ड, वदोद १६० ।

पयोदती (मं० स्त्री०) पयोद १६० ।

पयोदाह (मं० पु०) शोथके जलनेका गुण, जो
वाह, शोथके जलनेमें हो ।

पयोध (मं० ति०) योद्धुं मयगम्; युध-प्यात्, मञ्-त्तु ।

युद्ध किये जानेको प्रयत्न, जिसमें कोई मत्त न सके ।

पयोध्या (मं० स्त्री०) सूर्यवंशी राजाधीकी राज-
धातोः । यह पचा० २६° ४८' २०" उ० और द्राधि०
८२° १४' ४०" पू० पर अवस्थित है । यहाँके
राजाधीकी युद्धमें कोई परास्त न कर सकता था,
इसोमे उसकी राजधानीकी लोग पयोध्या कहते हैं ।

पयोध्या वा पयध प्रदेश पहले कोमल नामसे
प्रसिद्ध था । इसके उत्तर-पूर्वमें देवान राज्य, उत्तर-
पश्चिममें कुरुक्षेत्र, दक्षिण—पश्चिममें मद्रा, पूर्वमें
वल्की और दक्षिण-पूर्वमें वाराणसी विभाग है ।
पयोध्यापुरी कोमलकी प्राचीन राजधानी है । मुसल-
मानोंके समयमें लखनऊ नगर राजधानी था ।

पयोध्या प्रदेशके चार प्रधान विभाग हैं । यथा,—
कपलनऊ, मोतापुर, जौजायद और रायबरेली । कप-
लनऊ विभागके पल्लवगंज कपलनऊ, उगाव और वारा-
धको ; मोतापुरके पल्लवगंज मोतापुर, बदींदे और
गैरो ; रायबरेलीके पल्लवगंज रायबरेली, सुलतानपुर
और धतापनऊ—यह मोन-मोन उपविभाग हैं ।

पति प्राचीनकाल ही भारतवर्षमें पयोध्या
सुदृढिह स्थान हो गयो थी । सूर्यवंशी शृपति यहाँ

राज्य करते थे । रामायणमें लिखा है, कि शत्रुं मनुमे
पयोध्यापुरी निर्मांष की थी । इसकी मध्यादे वारह
योजन और चौड़ाई दो योजन रह्यो । मध्याकरि
वाग्मोक्तिरे इस नगरांका जैसा वर्णन किया, वमके
पटनेमे मान्यम होता है, कि उस समय पयोध्या
राजधानी विगेष मम्बहमानिनी थी । ब्राह्मण एवं
श्रुति गिष्ठीकी विद्या पढ़ाते ; गिष्ठी माना प्रकारके
गिष्पकार्ये चलाते ; और माना देगंगि पाकर
यगित्कण्य पण्यटथ ज्ञय-विक्रय करते थे । कलकत्ता
पादि नगरांकी तरह उस समय पयोध्यापुरीमें भी
मठकीपर पालो लिहका जाता था । मनुमे मया ११०
पीठियोंने यहाँ राज्य किया था । उनके बाद राजा
सुमिदन पयोध्यापुरीकी त्याग दिया । उनके परिव्याग
करनेके बाद मय पदानिकापे गिर पड़ी और पीरे
पीरे चारो और मद्रन हो गया ।

सूर्यवंशियोंके पयोध्या परिव्याग कर देने पर
बहुत दिनेतक यहाँ बौद्ध धर्मका विगेष पादुर्भाव हुआ
था । उनकेबाद विक्रमाजित्नु नामक एक राजा यहाँके
मद्रनकी कटवाकर रामायणकी सुगकोशिका उद्धार
करने लगे । हमारे गाथोंमें पयोध्याको मोक्षदायिका-
पुरी लिखा है । “बनोका बहगंजका चारु बनी बानिना ।
उरी रायबरेली के मरेला पीरे विभाः ३” पयोध्याका धिया
माहात्मा देवकर ही मायद विक्रमाजित्नुने इस पुरी
पर विगेष हटि रग्यो थी । पहले उर्ध्वमें मरयू नदीका
स्थान सुधारा, उसकेबाद मागेश्वर महादेवके मन्दिरका
उद्धार किया । बौद्ध विग्रहके समय यह मन्दिर विनष्ट
न हुआ था ।

कहते हैं, कि राजा विक्रमाजित्नुने पयोध्यामें १६०
देवानय बनवाये थे । परन्तु इन समय ४२ मे अधिक
मन्दिर विद्यमान नहीं हैं । पयोध्याके एक मनुष्य धमा
कहते हैं, कि सुधनमान मरवाटके राजत्वकालमें यहाँ
तीनमे अधिक मन्दिर प्रसिद्ध न थे ; इसीमे साक्ष्य
होता है, कि पयाध मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं है ।

पयोध्यामें रामकोट विगेष प्रसिद्ध स्थान है ।
कहते हैं, श्रीरामबन्धने इसी स्थानमें दुग्ध निर्माण
किया था । इसदुग्धकी चारो ओर दम दुग्ध है । बहुतसा,

सुग्रीव, जाम्बुवान् प्रभृति सेनापति उन्हों बुजों पर रह नगरकी रक्षा करते थे। दुर्गके भीतर आठ राज-प्रासाद थे।

अयोध्या जानिसे रामलौलाके अनेक विवरण देखने में आते हैं; परन्तु यात्रियोंके साथ साथ जाकर उन विवरणोंकी समझा देते हैं। भूमार हरण करनेके लिये श्रीराम पृथिवी पर भवतीर्ण हुये थे। उनका जन्म स्थान अब भी वर्तमान है। यहाँ कोई मूर्ति नहीं है। केवल श्रीरामचन्द्रके ध्वजवज्राङ्गुश-अङ्कित पादपद्मका चिह्न पड़ा हुआ है।

जन्मस्थानके निकट ही सुमलमान मस्जिदकी एक मसजिद है। सन् १५२८ ई०में आखेटके लिये आकर वावर यहाँ कुछ दिन रहे थे, उमो समय यह मसजिद बनी। मसजिदके दो पत्थरोंमें सन् ८३५ हिजरी (१५२८ ई०) खुदा हुआ है। अनेक मन्दिरोंमें पत्थर निकाल निकाल कर यह मसजिद बनाई गई थी। जन्मस्थानका मन्दिर कमीठीके पत्थरका बना था। वावरकी मसजिदमें अभीतक उसके कई स्तम्भ विद्यमान हैं। मसजिद बननेपर कुछ दिनों तक हिन्दुओं और मुसलमानोंमें खूब विरोध चला था। उसके बाद अयोध्या अंगरेजोंके अधिकारमें आयी, तभीसे जन्मस्थान और मसजिदके बीचमें लोहेका वेड़ा लगा दिया गया है। सुतरां हिन्दुओं और मुसलमानोंमें फिर विरोध होनेकी सम्भावना न रही।

स्वर्गद्वार और राम-सीताके स्थानमें भी दो मसजिद हैं। स्वर्गद्वारकी मसजिद और क्लेशको बनवाई हुई है; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता, राम सीताके स्थानकी मसजिद कब बनी थी। इस समय स्वर्गद्वारकी भग्नावशेष है। दो सौ वर्ष हुए कालके राजाने रामसीताके मन्दिरका संस्कार करा दिया था; उसके बाद अहल्याबाईकी दृष्टि इसपर पड़ी। अहल्याबाई इन्दोरके हीलार यशवन्त रावकी पत्नी थीं। सन् १७८४ ई०में रामसीताके निकटका घाट उन्होंने ही बनवाया था। इस समय भी इस देवालयाका व्यय निर्वाह करनेके लिये इन्दोर से प्रति वर्ष २११ रुपयेकी दत्ति मिलती है।

रामचरितकी अन्यान्य मूर्तियां अनेक स्थानोंमें गठित हैं। कहीं तपोवनमें विष्णुमिश्र ऋषि आकर खड़े; कहीं रत्नशालामें सीताजी रोठी बनाती, जिसके वेलन आदि अब भी पड़े हुए हैं। कहीं दगरथसे रूठकर कैकेयी सीती और रामको वन भेजकर प्राणप्रिय पुत्र भरतको राजगद्दी दिवानेके लिये दो वर मांगनेकी आँखोंमें अंसू भरती हैं। प्रतिमूर्तियोंकी बनावट खराब है; उनमें गिह्यनेपुत्र नहीं, फिर भी इन कठिन स्थानोंमें जानिसे अयोध्याके उस पूर्व शोककी स्मृति आज भी जाग उठती है। अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान तो हुआ, परन्तु सीताजी उस समय बनवाममें थीं। बिना सन्त्रोक हुए यज्ञका संकल्प नहीं होता, इसीसे कनकमीता बनवाकर रामचन्द्रजीने यज्ञ किया था। पण्डे अब भी त्रेता-युगकी उन कनकसीताको देखा देते हैं। पहले कहीं हुई मसजिद इसी स्थानमें है।

राम स्वयं राजा हुए। किन्तु उनके प्रधान अट्ट-चर हनुमान्ने प्राण अर्पणकर सीताका उबार किया था, इसलिये भक्तवत्सल रामने महावीर हनुमान्की भी राजा बना दिया। एक स्थानमें वह पपूर्व दृश्य आज भी विद्यमान है। हनुमान् राजविगममें बैठे हैं, गिरपर सुकुट सुशोभित है, पार्श्वमें चमर चल रहा है।

अयोध्यामें प्रवेश करनेपर निकट ही मणिपर्वत मिलता है। गतिमेव लगनेसे जब लक्ष्मणजी मूर्द्धित हुये, तब हनुमान्को विगम्यकरणो लाने गये थे। परन्तु वानरकी जाति, क्या जाने विगम्यकरणी कैसी होती है, इनलिये समस्त गन्धमादन पर्वतको जो उठाये यह शून्यमार्गसे चले जाते थे। जब ये अयोध्याके ऊपर पहुँचे, तब भरतने पनजानमें उनके वाण मार दिया। तोष्य मरके लगते ही व्यथित होकर हनुमानजी भूमिपर गिर पड़े। उससे शायद गन्धमादनका कुछ अंग टूट गया था। यह मणिपर्वत वही भग्नांग है।

मणिपर्वत ४४ हाथ लंबा तथा टूटो फूटी ईंटा और कंकड़ीसे परिपूर्ण है। इसीसे मानम होता

जि पद्मलिजाकीके ई'टपनरीं पीर क'कड़ीको केज
 केकर दह परत बना दिया गया है। इस मूर्तिके
 मोने जिरी ममक एक कलक मिला था। उसमें
 दह गुदा रहा.—समय-राजवं'मके मन्दपहन नामक
 क'क राजाके मन्दपरत निर्माप कराया था।

सुधीसपरत द' कुबेरपरत नामके पीर भी दो
 मूर्त है। सुधीसपरत प्रायः ६ हाथ पीर कुबेर
 परत प्रायः १४ हाथ ऊंचा है। कोरे कोरे अनुमान
 करने, कि वे मय घोड़ोंके मूर्त हैं।

मरुतके किमारे चन्दक घाट है, परन्तु मय यंघे हुए
 नहीं है। रामघाट, भरतघाट, मन्मथघाट, मरुप्र-
 घाट—इसतरह एक एक घाटका एक एक नाम है।
 इस मय घाटोंमें पुर्य'कीति कुल भी नहीं है। रामघाट
 पर चष धाँवी भोग कपड़े धोती है। गुप्तघाटमें एक
 सुरङ्ग है। पण्डे कहते हैं, कि इसी सुरङ्गमें राम-
 चन्द्रजीके मरुतजन्में प्रथम किया था। सर्गघाट
 पहा बंधा हुआ है। ऊपर मनोहर हलधेकी है।
 यात्रीभोग यहाँ छाग, दान पीर भोज्यादि उत्तममें
 करने हैं। यर्षगामे हुए उत्तर कलाभमण्डके पाम
 चमत्कार मुनिका समाधिस्थान है।

पयोध्यामें वैष्णवीकी मात सम्पदावीके मात मठ
 है। प्रसिद्ध मठमें एक एक मङ्गल पीर उतके चैले
 रहते हैं।

जुगमन्मट्टीमें निर्वाणो मम्पदायका मठ है। इस
 मम्पदायके वैष्णव चार श्रेणियोंमें विभक्त है; यथा—
 कन्ददामी, गुजमोदामी, मणिरामां पीर ज्ञानकीमर-
 दामी। निर्वाणो पयोध्यामें प्रायः षः घो चैले है;
 उनमें प्रायः तीन भी मरुदा उपस्थित रहते हैं।

रामघाट एवं गुप्तघाटपर निर्माँकी सम्पदायके वैष्ण
 कीका पचाडा है। कहते हैं, प्रायः दो गो वर्षे हुए
 वैष्णवदास नामक एक बेरामीने जयपुरमें हुए
 निष्कार भूमि पाकर पयोध्याके रामघाटपर एक
 मन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी। उसके बाद गुप्तघाटपर पीर
 एक पलाड़ा स्थापित हुआ। यथा, मनकापुर पीर
 सुधीसघाटमें इस सम्पदायके वैष्णवीकी निष्कार
 भूमि है।

दिगम्बरी पीर एक सम्पदायके वैष्णव है। प्रायः
 दो गो वर्षे हुए श्रीधरनामदासने पयोध्या पाकर यह
 मठ स्थापन किया था। इस पचाट्टीमें १५१५ चैलेमें
 पथिक नहीं रहते। इस लोनीके भी निष्कार भूमि है।

गुप्तघाटोनाके रामनकासमें विष्णुकुटीय दणाराम
 नामक एक मन्त्रिने पाकर मुक्तो सम्पदायके वैष्णवीका
 पचाडा जमाया था। प्रायः है, कि यम ज्ञान ममय
 मन्मथ मर्वाडमें भयन भगाकर रामचन्द्रके मात हुए,
 इसीमें थाकी वैष्णव मर्वाडमें भयन पोते रहते हैं।
 इस पचाट्टीमें प्रायः १०० चैले हैं। उनमें ही प्रायः १०
 चैले मरुदा उपस्थित रहते हैं।

मधानिर्वाणो सम्पदायका पचाडा भी गुप्त-
 घाटोनाके रामनकासमें स्थापित हुआ था। सुधीसनाम-
 दास मङ्गलने कोटामुंदाके पाकर इस पचाट्टीको
 जमाया। इस पचाट्टीमें प्रायः २५ चैले हैं। समी प्रायः
 तीघाँटन किया करते हैं

मन्मथ चर्माधुकि रामनकासमें रतिराम नामक
 एक मङ्गलने जयपुरसे पाकर मन्तोयो सम्पदायका मठ
 स्थापन किया था। किन्तु दा मङ्गलोंने बाद बेरापो
 भोग इस स्थानको त्याग कर चलते गये, पचाट्टी भी
 टूट-फूट गया। समके बाद निधिमि'क नामक एक
 धनवान् सुरधने पुराने मठका स्थापन निर्दिष्टकर यहाँ
 एक मन्दिर बनवा दिया था। यहाँमें कुमलदासनामक
 मन्तोयो सम्पदायके कोरे वैष्णव पाकर एक चर्माक
 हस्तके गये रहने लगे। यहाँ उनकी मूर्त हुई गो।
 मङ्गलकी मूर्तके बाद रामलचाने यहाँ वर्तमान मन्दिर
 बनवा दिया।

गुप्तघाटोनाके दो रामनकासमें श्रीधरनामदासने
 कोटिमें पाकर निरानम्यो सम्पदायका मठ स्थापन
 किया था। किन्तु कुछ दिनोंके बाद यह पचाट्टी छोड़
 दिया गया, समके बाद मुनि'ददास नामक पीर
 एक बेरामीने पाकर वर्तमान मन्दिर बनवाया।

पयोध्यापुरी स्थापित होमेके बाद यहाँ चनेच
 रामविष्णव पीर धर्मविष्णव हो गये हैं। ऊपर विष्णवा-
 भिन्नु राजाकी बान कछो का चुकी है। उनमेंमें पाना
 है, कि उन्केने मण्डप चर्माके वर्षे पयोध्यामें शक्य किया

था। फिर समुद्रपाल नामक एक योगीने अभिचार मंत्र द्वारा उनके प्राणको छड़ा दिया। प्राणषायुके देह छोड़ जाने पर सिद्ध योगीने उस मृत शरीरमें प्रवेश किया था। इस योगीको सात पोट्टीने शायद अयोध्या में राजत्व चलाया। परन्तु उन लोगोंका राजत्वकाल जिस तरह निर्दिष्ट हुआ है, उसपर एक दम विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रवाद है, ६४३ वर्ष तक अयोध्यामें समुद्रपालोंका प्राधिपत्य रहा। अतएव हिसाब करनेसे प्रत्येक राजाका राजत्वकाल ८१ वर्षोंसे भी अधिक हो जाता है।

कौशलमें आवस्ती नामक और एक प्राचीन प्रसिद्ध स्थान है। इच्छाकुसे आठवीं पीढ़ीके बाद युवनायकके पुत्र आवस्त राजाने इस नगरको बसाया था। अनेक दिनों तक यहाँ बौद्ध धर्मका अनुशीलन चला।

कपिलवस्तुमें शाक्यमुनिने जन्म ग्रहण किया था। उसके बाद अयोध्यामें आकर वे धर्मप्रचार करने लगे। सन् ई०से ५५० वर्ष पहले कुशीनगरमें उन्होंने निर्वाण सुक्तिको लाभ किया था।

सन् ४०० ई०में चीनपरिब्राजक फाहियान आवस्ती आये। उस समय शहरपनाह टूट गई थी, उसके भीतर मन्दिर और अष्टालिकाका भग्नावशेष पड़ा हुआ था। कई दरिद्र संन्यासियोंके प्रतिरिक्त नगरमें और कोई भी न रहा। उसके बाद सातवीं शताब्दीमें युधुञ्जुयाञ्ज अयोध्या आये थे। आकर उन्होंने उस समय भी बौद्ध मन्दिर देखे। उन मन्दिरमें प्रायः तीन हजार बौद्ध मज्जन्त रहते थे। उस समय ब्राह्मणोंके भी प्रायः बौद्ध मन्दिर विद्यमान रहे। युधुञ्जुयाञ्जने अयोध्याको अ-यु-त लिखा है।

अयोध्यामें छः जैन मन्दिर हैं। आदिनाथ जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर हैं। यही अयोध्या नगरी उनका जन्मस्थान है। उन्होंने आठु पर्वत पर प्राणत्याग किया था। अयोध्यावाले स्वर्गद्वारके समीप सुरार्द्र टोलेमें एक स्तूपपर उनका मन्दिर बना है। मन्दिरके निकट मुसलमानोंकी कितनी ही कब्र और एक मसजिद भी है। द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हैं। इन्होंने भी अयोध्यामें जन्म ले समेतशेखरपर प्राणत्याग किया

था। इतीरा शरीरके पश्चिम किनारे इनका मन्दिर स्थापित है। अभिनन्दननाथ जैनियोंके चतुर्थ तीर्थंकर हैं। इन्होंने भी अयोध्यामें जन्म ले समेतशेखरमें प्राणत्याग किया। अयोध्याकी शरायके समीप इनका मन्दिर बना है। यह तीर्थंकरका नाम सुमन्तनाथ और चतुर्दशका अनन्तनाथ है। इन सबने अयोध्यामें जन्म लिया और समेतशेखर या पारसनाथ पहाड़पर प्राणत्याग किया था। रामकोटके भीतर सुमन्तनाथका मन्दिर है। अनन्तनाथका मन्दिर गोलाघाटके नाले किनारे है। ये पांच दिग्म्बर जैनियोंके मन्दिर हैं। इनके प्रतिरिक्त खेताम्बर जैनियोंका भी एक मन्दिर है। जैनियोंके मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं हैं।

दर्रगंसिंहके मन्दिरमें लाल पत्थरके एक महादेव हैं। नर्मदा नदीके पत्थरको गढ़कर यह देवमूर्ति तैयार हुई है। मन्दिर चुनारके पत्थरका बना है। यहाँ एक बड़ा भारी घण्टा है। उस घण्टेकी बजानेसे चारो ओर गम्भीर नाद गूँज उठता है। ऐसा बड़ा भारी घण्टा बनानेके लिये दर्रगंसिंहने नेपाली कारीगरोंके पास अपना आदमी भेजा था। घण्टा बनकर तय्यार तो हुआ, परन्तु नेपालसे अयोध्या लाने समय राहमें टूट गया। सुतारों नेपालका नमूना देखकर अयोध्यामें ही वर्तमान घण्टा टला था।

मण्णपर्वतके समीप दो कब्र हैं। मुसलमान कहते, कि इन कब्रोंमें श्रेष्ठ और पैगम्बर गड़े हैं। पहली यहाँ गणेशकृष्ण नामक एक कूप था, अब मोमगिरि नामक दो छोटे-छोटे स्तूप हैं। सोमगिरि क्या हैं, इसका विवेक इत्तान्त जाननेको कोई उपाय नहीं। यहंसि प्राध कोश दूर और एक कब्र देखनेमें पातो है। वहाँ एक दरवेग या संन्यासी रहते थे। ये कहते रहे, कि वहाँ बाइबल-लिखित नोहाका समाधिस्थान है। रुमी महावीर सिकन्दर (अलेक्-सन्दर)ने इस कब्रको बनया दिया था।

बह्वेगमकी कब्र भी एक उत्तम स्थान है। यह वेगम और अथकके नवाबने गवर्नमेण्टके साथ ऐसा प्रबन्ध किया था, कि उनकी सम्पत्तिमेंसे तीन लाख रुपये कब्र बनानेके लिये प्रसंग रख दिये जाते।

उपनि विना कृष्णानाम् को दाईं लोकर रहतो थीर पतिवि पत्नीर वाता. उपनि चर्षकी उपको लुमीन्द्रासोमि वासिक दम हनार बपये निर्दिष्ट होते। मन् १८१६ ई०में वेदमको मन्तु हुई थी। दोहे कृष्णका काम बना। किन्तु बीच बीचमें पनेक पाषाणविर उप-स्थित हुए थे। उपनिं मन् १८५०ई०के सिवाही-विद्रोह बाद कृष्ण तप्यार हुई। इन समय दहाके म्या निवाँह-को मन्मैण्ट वासिक ४८११) मपये देतो थीर कृष्णके मन्त्राको (१०००) हपये पमानत रगतो है।

इम समय पयोध्यामं मय मिलाकर ८६ मन्दिर है। उपनिं ६१ विष्णुमन्दिर थीर ३३ शिवमन्दिर है। इनके पतिविह गुणमामांकी ३६ समजिटे है। प्रतिरयं रामनउमीके उपमन्त्रमें यहाँ मिला मगता है। मियेमें कमी,कम ५००००० पादमी पाते है।

प्राचीन कामके पनेक राद्विप्लवी बाद मन् १८५६ ई०को पयोध्या चर्षकीके पधिकारमें पायो। मयमी पदमे मयंमोय राजा यहाँ राज्य करते थे। उपनि बाद मयप्योके राजापोमि बहुत दिनतक यहाँ राजत बनाया। वोहपमके प्रादुर्भाय समय राजा पयोक्रका यहाँ विमेष पाधिपता था। कागमीरके राजा निषयाहनके समय पयोध्या उपके पयोम थी, पिये पनेक जनमवाट है। विज्जमानित्मि मियषाहनको युद्धमें परास्तकर रामपतिवकी कुतकीतिजा उबार किया था। विज्जमानित्मके बाद गुप्त थीर पाणवंशियोंने ६३६ वर्ष यहाँ राजत बनाया। किन्तु पयोध्या मगरी फिर अहममि पतिपुर्ष हो गई थी।

मन् ई०को पाठनीं मताप्येमें वाट नामकी एक पगम्य जाति हिमालय पर्वतमें था पयोध्याका अहम मय करे मगो। परन्तु मामूम होता है, कि क्षिपानीके गिना उपका थीर कोई वहुंम न था। इमोमि उपनि राज्य केमामिका कमी यव म किया। दोहे मन्त्र-पविमये मोमर्षके राजावंशि पदुंय वाक कोदीकी मार भगाया। मोमर्षमो राजे जेममता-मकमो मी। म्पारहवीं मगान्दीके उपनिं म्पुनीके राजा म्पुदेवेने म्पुर्षमोम राजापीको म्पुकर पयोध्या थीर उतार कोमअपर पयना पधिकार कमा दिया।

उपनि बाद पयोध्यापुरी भइ मय्यो एक पदम्य जातिके पयमें वइ गई। भइ मोग भी जेम मग-वममो मी।

मन् ११८४ ई०में महाबुरीनु मीरोमि फ्मोत्र कोप पयोध्याको मूटा था। उमो मगममि बहुत दिनकी म्पामोम पाये राजपामो गुणमामांके पधिकारमें उमो गई। पयने म्पुकरमय वदमामंका मिसय मपयन वपये हैवी।

पयोध्या मदेममें म्पुता, मोमती, पयंरा एवं राती यही पार नदिवां मगिह है। यहाँ पनेक छोटे-छोटे मगोतर है। यहाँकी भूमि बहुत उपजाऊ है। परन्तु पात्रकन बहुत भूमि जमर हो गई है। यव, मीर्, बना, मकई, गिन्, मारमो, बाजरा, पनेक म्पुकारकी दान, जप, मन्पाऊ, मीम, कपास, मोरा थीर पाम म्पुति मानापकारका फल यहाँ यथेष्ट परिमाणमें उत्पन्न होता है। पदमे यहाँ पययोत लवण बनता था। पय मयमैण्टने उमि वन्द कर दिया है। पदमे यहाँ मकह्यो, मीम, वाप, म्पुकर म्पुति वय पय भी बहुत उपद्रव करते थे। पद मे पाप: दिवां नहोँ देते। परन्तु मोमगाय, हरिप थीर मोर म्पुके भण्डु जमर भूमिमें चरते छिरते थीर बीच बीच किसानोंके मोतमें जाकर उपद्रव मपामे है। म्पुदायनकी मरुह पयोध्यापुरीमें भी पयंम्य मानर भरे हुए है। याती मीम उभे बना थीर म्पुत्तु विमाने है।

पयोध्याके पयमंगत म्पुरागदके मानकी म्पुङ्गी पयम्य विप्लयात है। यह मानरम मयमैण्टके पधिकारमें है। मयमैण्टके पादमी मानके पङ्गीकी काट काट पयंरा नदीमें डेड़ा बांधते थीर वमि म्पुदाकर म्पुसामवाट मे जाते है। उह मय म्पुङ्गीवां कलमें पिलतो है। पयोध्यामं म्पुवे थीर मोममके पङ्गी भी बहुत होत है।

पयोध्याकाण्ड (म० क्री०) पयोध्याकाण्डकटी-हतात्मविभ्रमः काण्डं वमः ६-मत्; तादृजाः काण्डं वमो पयिन्तु पुरके, बहुमो० वा। सातकाण्ड रामो यपवा हितोय काण्ड। इय काण्डमें रामके राजा-भियेक म्पुष्टाकी पतिमूनिके पापममें कनिमक म्पुम्य विपय म्पुति है।

अयोध्याधिपति (सं० पु०) अयोध्याके नृपति, अयोध्याके बादशाह ।

अयोध्याप्रसाद—१ रसतरङ्गिणीटीका एवं हस्त-रत्नाकरकी नौका नामके टीका रचयिता । २ भुवनदीपकके टीका-रचयिता ।

अयोध्याप्रसाद बाजपेयी—युक्तप्रदेशवाले रायबरेली जिले-के साननपुरवा ग्रामवासी कोई प्राचीन कवि । यह सन् १८८३ ई०में जीवित रहे । इन्होंने संस्कृत और हिन्दी भाषाका अच्छा ज्ञान था । इन्होंने सुखादु और चमत्कृत कविता बनायी है । इन्होंने साहित्य-सुधासागर और रामकवितावली इनके रचित ग्रन्थमें उल्लेखयोग्य है । शिवसिंहके कथनानुसार यह महन्त रघुनाथदास या चन्दापुरमें राजा जगमोहन सिंहके साथ रहते थे । इन्होंने अपना उपनाम प्रवध लिखा है ।

अयोध्याराम (बाजूगोसाईं) गोस्वामी विग्रेय । अयोध्या-राम गोस्वामीका निवासस्थान बङ्गालका हालीशहर और पिताका नाम रामराम गोस्वामी रहा, जो संस्कृत शास्त्रके विलक्षण पण्डित थे । बाजू गोसाईं जैसे प्रसिद्ध पुरुष नहीं, परन्तु चरित्र कुछ कौतूकावह रहा । यह-पागल जैसे थे । परन्तु उस-पागलपनके भीतर कुछ कविचमत्कृत क्षिपो हुई थी । कविरञ्जन रामप्रसाद सेन भी हाली शहरके निवासी रहे । अतएव दोनों एक ही जगहके भादमी हुये । जब राजा छाप्यचन्द्र हालीशहर जाते, तब दोनों भादमियोंका बुलाकर कौतुक देखते और रामप्रसाद जब कोई गीत बनाते, तब बाजू गोसाईं दिग्गयी चड़ाकर उस गीतका उत्तर देते थे । अयोध्याराम नामक और एक व्यक्तिने सत्यनारायणको कथा बनायी थी, परन्तु वे उतने प्रसिद्ध नहीं ।

अयोध्यावासिन् (सं० त्रि०) अयोध्याका रहनेवाला, जो अयोध्यामें रहता हो ।

अयोध्यावासी—युक्तप्रदेशका वैश्व-समाजविग्रेय । यह समाज आगरा और इलाहाबादके जिलों तथा प्रवधमें मिलता है ।

अयोनि (सं० स्त्री०) यद्यते मिश्रते यक्रयोपितादि-

कारणसामग्री भयया, नञ्-तत् । १ योनिमिद्वय-स्थान । २ जो मन्त्र सामवेदका न हो । (त्रि०) भास्ति योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य, नञ्—बहुव्री० । ३ भयव्य, योनिसे उत्पन्न न होनेवाला । ४ निव्य, उत्पत्ति और नागधे रहित । (पु०) ५ ब्रह्मा । ६ यिञ् । ७ सुपत्, कुटना ।

अयोनिष्ठा (सं० त्रि०) न आभ्याता योनिर्यस्य, नञ्-बहुव्री० कप् । १ योनि शब्दयुक्त श्लोक न रखने-वाला । २ जिसकी उत्पत्तिका कारण कहा न गया हो ।

अयोनिज (सं० त्रि०) न योनिर्जायते, ५-तत् । योनिसे भ्रजात, जो योनिसे उत्पन्न न हुआ हो । (स्त्री०) २-तीर्थविग्रेय ।

अयोनिजत्व (सं० स्त्री०) योनिसे उत्पन्न न होनेकी स्थिति ।

अयोनिजम् (सं० पु०) शिव ।

अयोनिजेश्वर, अयोनिजेश्वरतीर्थके महादेश ।

अयोनिजेश्वरतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थविग्रेय ।

अयोनिसम्भव, षडोनिर्देश्ये ।

अयोपाठि (वै० त्रि०) लौहनिखविग्रेय, लोहेके नाखून रखनेवाला ।

अयोमय (सं० त्रि०) अयोसे विकार, विकारि मयत् । लौहविकार-जात, लोहेसे बना हुआ ।

अयोमल (सं० स्त्री०) अयोसे मलमिव, ६-तत् । लौहकिट, लोहेका जड़ । 'अयोमलम् अमलम्' (शिवयोग) लोहेको जलानेसे शीशिको ईंट—जैसी जो चीज निकलती, वह अयोमल कहलाती है । इसका गुण लोहे-जैसा ही है । सो वर्षका अयोमल उत्तम, पत्थीका मध्यम और साठका अधम होता है ।

अयोमुख (सं० स्त्री०) अयो विकाररूपं मुखं यस्य । १ लाइलादि, इस वर्ग-रह । (पु०) २ वायु, तीर । ३ दानव विग्रेय । ४ पर्यतविग्रेय । (त्रि०) ५ लौह-मुखविग्रेय, लोहेके मुख-वाला, लोहेको नोक रखने वाला, जिसकी नोक लोहेसे निकली ।

अयोरज, षडोत्पत्तिर्देश्ये ।

अयोरजम् (सं० स्त्री०) लौहकिट, लोहेका शृङ्ग ।

अयोरस (सं० पु०) षडोत्पत्तिर्देश्ये ।

चढ़ता है। गाड़ी भोगनेमें अण्डोका ही तेल पड़ता है।

इसकी खली हिन्दुस्थानमें गाय-भैंसकी भिगोकर भूसके साथ दी जाती है, जिससे दूध ज्यादा और गाढ़ा उतरता है। सिवाय खादके खलीसे एक गैस भी बनती है, जिसकी रोगनी बहुत बढ़िया होती है। इलाहाबादके रेलवे ट्रेगनपर इस गैसके चिराग जलाया जाता है।

खलोकी खाद गन्ने, गेहूं और आलूके खेतमें डालनेसे उपज बढ़ जाती है।

सिवा जुलाबके अण्डोका तेल फोड़े-फुन्सीपर लगानेसे भी बहुत फायदा पहुंचाता है। तम्बाकू और लाल मिर्च मिलाकर इसकी जड़के बकलेसे गाली बनती और पेचिश होनेपर घोड़ेको खिलाते हैं। भारतवासी इसकी पत्ती कूटकर बालप्रसविनी स्त्रीके दुग्धका स्वाव रोकनेको स्नानपर लगाते हैं। सुन्धतमें इसकी जड़ और तेलसे कितने ही औषध बनानेकी बात लिखी है। यह अजोर्ण, उदरा-धमान, ज्वर और शीथपर भी चलता है। वातरोगके लिये यह अतिशय लाभदायक है। कमरका दर्द, फेफड़ेकी सूजन और फूला रह जानेकी बीमारी इससे दूर हो जाती है।

सुसलमान-हकीमीका मत है,—यह दो तरहका होता,—लाल और सफ़ेद। किन्तु लाल बड़े हो कामकी चीज होती है। यह शीघ्रहृत् एवं विरंचक होता है और पक्षाघात, खास, जैत्य, शूल, अन्दाधमान, वातव्याधि तथा जलोदर पर दिया जाता है। शहदके साथ इसके दूध बीजकी मीठी मलकर खानेसे खासा जुलाव उतरता है। सौरदानके समय इसके बीजका पुलटिस वातग्रस्त छातीकी सूजन मिटानेकी चढ़ाते हैं। पत्तीमें यह गुण न्यून परिमाणसे मिलता है। अफीम वगैरह नया ज्यादा चढ़नेसे इसका ताजा अर्क को करानेकी पिलाते हैं। इसके आटेके साथ इसकी पत्तीका पुलटिस पांख भानेपर बांधते हैं।

किन्तु बीजकी मीठी खानेसे प्राण जानेका डर रहता है। दो-एक आदमी इसी तरह मर भी गये हैं।

इसकी पत्ती चरनेसे गाय-भैंसका दूध बढ़ जाता है। बीजका बकला कण्ठके रसको गर्म करनेमें अलाते हैं। लकड़ी काटकर सुखा लेनेसे छानीछपरमें लगाने हैं। इसकी लकड़ीमें कीड़ा नहीं पड़ता। मधुमत्तिका इसे बहुत चाहती और प्रायः इसपर अपना कत्ता बनाती है।

युक्तप्रदेशके भाजमगढ़ जिलेमें यह दो तरहका होता है—रेड़ी और भटरेड़ी। रेड़ी भटरेड़ीसे कुछ लम्बी रहती और एक सालमें ही काट जाती है। किन्तु भटरेड़ीकी दो-तीन साल तक खड़ी रहते हैं। इससे तेल भी बहुत अच्छा निकलता है। अण्डोको इस प्रदेशमें प्रायः खेतकी चारो ओर बो देते हैं। इसकी खेती अलग नहों की जाती। सिर्फ इलाहाबादमें यमुना किनारे धारह-तेरह हजार एकड़ भूमिपर यह बोया जाता है। मकानके पास सेमकी विल चढ़ानेको प्रायः इसे लगाते हैं।

यह औषधके अन्त या वर्षाके आरम्भमें बोया जाता है। खेतमें अड़ारह इंचके फासलेपर इसका बीज बोते हैं। पौधेके चारो ओर पानी इकट्ठा न होनेकी जड़पर मट्टी चढ़ा देते हैं। मार्च और अप्रैल मासमें बीज पकने पर, तोड़कर धूपमें सुखाकर समका छिलका निकाल डालते हैं।

बीजको उवाव कर भुरली तेल निकलता है। तेलो यह काम कभी नहीं करता। पहले बीजको कुछ भून, फिर थोछलीमें कूटकर पीछे पानोमें डाल उवालेते हैं। ऐसा करनेसे तेल ऊपर उठ जाता है। साधारणतः बीजसे आधा तेल निकलता है।

अरंड, (हिं०) आण्ड देण।

अरंडना (हिं० क्रि०) १ शब्द निकालना, आशाज देना। २ शरु करना, आरंभ करना।

अरइल (हिं० वि०) १ टिठक जानेवाला, जो रुकता हो। (पु०) २ हृदयवियोग, कोई दरखूत।

अरंड (हिं० स्त्री०) गाड़ी हांकनेकी कोटी छड़ी। इसके चिरेपर लोहेकी कोल लगे रहती है। नट-छटी देखाने या प्रागे न बढ़नेपर अरंड लगा बैलको चसाते हैं।

पराक (१०० पु०-जो०) १ केपल, मीरर । २ जैन
 ममद विमान, जेनिपिका कपक, जिवा कृपा समय ।
 ३ कसका मकड़, पहिदेका परा । (५० पु०)
 ४ कामरुभमवेम जलारा कृपा सम । ५ सम, निजोड ।
 ६ मरु, परीसा ।

पराकरी (५० पु०) ममदेका कोर टूटका । १ मे
 पोट्टेको पीटरर जला जोन खोचने ई ।

पराकट (परकट)—१ मन्दाक प्राणके उत्तर परकट
 जिनिका एक तपसुज । १ गका ज्योतपम ४३२
 कतेमील ई । २ गका ज्योत पुरीं पयिम
 ३२ पौर पोट्टाई १२ मील ई । जमीन उवकाज
 नहीं ई पौर मिना खुंशामे कट्टके दूगरा भात
 भी नहीं मिलता । मकाज कलामेको पगर भुमिकममि
 पाया जाता ई । मामन्दूर पौर कलशयो तासावीं
 मे टैरको टैर मकमो पककने ई । प्रथम व्यवसाय
 वेता, मुनारं पौर खमदेकी रंगारंका रकता ई ।

२ मन्दाक प्राणके उत्तर परकट जिनिका प्रथम
 मगर । यह मन्द तामिस भाषाका ई । परकटा छः
 पौर कट्टका पच जिला ई । रमतरख परकट मामि
 छः जिनिका महर होता ई ।

एक मगर वाकार मठ किमारे मन्दाकमे माट्टे कपोम
 कोम दूर कपा० १२° ३३' २३" उ० पौर द्रावि० ७८°
 ३४' १३" पू० पर कपा ई । रममें परकट जिनिका
 छेदकाटेर ई । एहमे एहा कपोटक प्राणके
 म्हाकको राजपानी प्रतिष्ठित मी । मिना पदिमतको
 कुट पारल मेने जामेके रम मगरमें दूगरा क्यवसाय
 नहीं कलता पौर म मिना खुट्टीका कलनेके दूगरा काम
 रंग होता ई । यद्यपि कुछ वर्ष एहा सुनहमे मोटा-
 जिनामी पौर कीट कलता-जिनको मी, पामु पर
 रममें ईद जोम दूर कालाजेटे मगरमें एहमे मयदि
 पैला रमका मन्द व्यवसाय विनाक दिया ई ।

ऐतिहासिक दृष्टिसे परकट बहु महत्वको मामको
 ई । किन्तु पूर्वे ममएहा पचिउ विष्ट देण नहीं पडता ।
 मन् १०१३ ई०में महिहरके विरर-दूद खलानेका
 लोकोमली कोलुंख पचिभयक मकाएकतमा-पामु
 एहका ईश मकी लहा भापे ई । एहके पचिहार-माम

कोम मने पौर एनके उतापिकारी होए एहमेके
 मिहाकलाहदु शोनेपर मक मकारो राजधानी रहा ।
 मुहमें दोहाएहमेके मारे खानेपर एहा ममदेकी कट्ट
 कमी । मन् १०४२ ई०में दोहाएहमेके उतापि
 कारो मन्दूरएहमे पौर मन् १०४४ ई०में मन्दूरएहमेके
 उतापिकारी मेयदमुहकटकी हलो मगरमें एका
 दुयो मी । कितनी ही मार दूगरी-दूगरीके पचिकारमे
 एा एकाको मन् १०३१ ई०में रम मगरका जिला
 पंगरेमी जोनके हाप मगा । मन् १०३१ ई०को
 २३वीं पगदाको भाटे क्वाइव मन्दाकमे २०० गुरा-
 पीय पौर १०० भारताय मिपाको उ मदेको तोडीको
 माय मे पागि बहु पौर पंग दिन खाद रम मगरमे
 पाच कोम दूर कपमा छेरा पाजामा । पंगरेमी जोनका
 माएम देव परकट जिनिकी जोन पंग मूटकर
 भाय एको दुयो । दूमरे दिन क्वाइवमे ईमडेमिडे
 जिनिकी मे मिपा । जिला हटनेकी मुवर वा कमी-
 टकके मयाव चांदा माकवमे एहमे पुत्र राता माहके
 एपीम ४०० देमी पौर १२० प्राणीमी मिपाकी
 जिला जेतनेकी मेने पे । २१ वीं वितमरको राजा
 माहवमे जिनकी की पेटल जोन पौर मयाके हाप
 जिनिकी वा थैरा । जिनमें मिकुं ४० टिनका मामान
 कपा, किन्तु एामे बहुत मारापका या । ५० दिन
 तक जिनमें तापका मोला मनेमी जो हेट होता,
 एह रातको भर दिदा जाता रहा । जिनमें कोई कही
 भारी तोप मी, जो ३१ मिया मोला पेटनी मी ।
 क्वाइवमे एही तोप जिनोतरख जिनिके बहु मुहपर
 पटा मयाके महममें रंगु एक मोला पैकला दूद
 किया । चौथे दिन तोप कटो पौर एहमे मयाके
 दिग्मत बहु मयो । एहमे जिनिकी दीवारी मोट्टी
 दूर एक पीसा बना कसपर तोपपाना रवा ।
 किन्तु क्वाइवमे क्वाइव कोनेपर एहमे मी मोने मारे,
 शि मने मरमें जो कट दूट-दूट पर छैर रंग मगा पौर
 एहमें ४० परदमी काम पाये । जिन मुरारि राव
 मकाहदु एहमे मयाकेके माय क्वाइवको माहाण्य
 देवेपर राजा दुये । राजा माहवमे रिया देव क्वाइवमे
 वाकममनेय करनेकी कहा, किन्तु एहमे एहे

साफ़ अस्वीकार किया। रुपये लेनेकी बात भी खुलतीतरपर टाल दी गयी। आत्मसमर्पणको भाया न पा राजा साहबने १४वीं नवम्बरको हमला मारा। एक घण्टे लड़ाई चली। राजा साहबके चार सौ और किलेके पांच-छः आदमी मरे। किन्तु अन्तमें राजा साहबको फौज हारकर पीछे हटी। किलेमें रात बढ़ी चिन्तासे कटी थी। किन्तु सबेरे घेरनेवाले कहीं देख न पड़े।

सन् १७५८ ई०में अरकटका किला फ्रान्सीसियोंके हाथ चला गया। दूसरे वर्ष दो बार उसके लेनेकी अंगरेजोंने कोशिश की, लेकिन कोई काम न निकला। सन् १७६० ई०में अंगरेजोंने किलेको घेर सात रोजको गोलेबारोसे उसे पा लिया था। फिर बीस वर्षतक अरकटका किला अंगरेजोंके दोस्त नवाब मुहम्मद अलीके हाथ रहा। किन्तु सन् १७८० ई०में महिसुरके इस जिलेक बड़ थानेपर अरकट हैदर-अलीको सौंपा गया, जिन्होंने मन १७८३ ई०तक अपने हाथ रकड़ा। टीपू सुलतानने किलेबन्दीको तोड़ गहर छोड़ा था। सन १८०१ ई०में नवाबने कर्णाटकके साथ अरकट भी अंगरेजोंको दे दिया। नगरके समीप नवाबके बंगलोंकी भांज भी सम्पत्ति विद्यमान है। नवाबका महल तो टेर ही गया और न किलेका ही कोई निगान रह्य। महल और किलेके बीच नवाब ग्राघादत उल्लाकी कब्र बनी है, जिसके लिये सरकारकी तर्फसे माहवार खर्च मिलता है। कब्रके पास ही बड़ी जामा मसजिद है।

अरकट-उत्तर—मन्द्राज प्रान्तका एक जिंश। यह अक्षा० १२' २०' एवं १३' ५४' उ० और द्राधि० ७८' १५' तथा ८०' ४' पू०के बीच अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ७२५६ वर्गमील है। इससे पश्चिम महिसुर राज्य, उत्तर कड्यापा एवं नेलोर, दक्षिण सलेम तथा दक्षिण अरकट और पूर्व चिङ्गलपट है।

इस जिलेका उत्तर एवं पश्चिम भाग पार्वत्य तथा सुन्दर और दक्षिण एवं पूर्व अंग समान तथा अप्रधान है। पूर्वघाटकी पर्वतश्रेणी अपने दक्षिण और आधा फैलाती हुयी इससे दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर-पूर्व

है और नागरी उत्तर-पूर्व कोणको पार करती है। पूर्वघाट पर्वत बान्नाघाट और पाचनघाटके बीचमें है। इस जगह पहाड़की मामूली उंचाई समुद्र-तलसे २५०० फीट ऊपर है। दक्षिण-पश्चिम जो जवादी पहाड़ पड़ता है, उसकी चोटो कहीं-कहीं समुद्रतलसे ३००० फीट ऊंची है। बनी-बम्बदी या पालारकी विस्तृत उपत्यका इस पहाड़की पूर्वघाट पर्वतसे अलग करती है। अम्बूरके पास जवादी और पूर्व-घाट दोगो पर्वत मिलकुल मिले हुये हैं। उस पर्वतमें लोहा और तांबा टेरका टेर पाया जाता है। महिसुर राज्यमें जिलेकी सोमाके पास मोना मिन-नेसे उसके इस जिलेमें भी रहनेको सम्भावना है। कोय-लेका कहीं पता नहीं चलता, किन्तु घूना और मकान बनानेका बढिया पत्थर बहुत मिलता है। पालारसबसे बड़ी नदी है। यह जिलेके दक्षिण-पश्चिम या उत्तर और बहती हुई जवादी पर्वतसे पूर्व जा समुद्रमें मिली है। राहमें उससे दो बड़ी नदी चेयैर और पाइनी मिल जाती हैं। अम्बूर और गुदियातम पालारकी छोटी सहायक नदी है। जिलेके पूर्व केन्द्रमें नारयणवन और कोर्त्तलवार प्रवाहित हैं। प्रायः बारहो महीने नदी सूखी रहती है। पानी उसकी गहरी बालूमें डूब जाता है। फिर भी नहरें काट नीचेके पानीसे खेत सींचते हैं। इससे पानीकी कमी कभी नहीं होती। १८०० वर्गमीलपर जङ्गल फैला है, जिसमें तिहाई प्रजाका है। लाल सुन्दरकी लकड़ी बहुत उम्दा होती है। दीमक न मगनेके कारण लोग इससे गाड़ीका टांचा और दरवाजेका खुम्भावनाते हैं। लाल रङ्ग निकालनेको यह युरोप भी भेजी जाती है। जङ्गलमें हायो, भेंसा, चीता, भेंड़िया भालू, तरह-तरहका हिरण, म्याही और सुपर घूमते फिरते हैं।

अविहाल—उत्तर अरकट प्राचीन द्राविड़ देगका अञ्चल है। इसके आदिम निवासो करम्ब ये, जो किसी राजाकी न रखते थे। सबसे पहने पन्न-वंगके कामयु अम्बूरप्रभु राजा बनाये गये। पन्न-व-नृपतियोंका किला पूरलूरमें रहा और काथीवरम

हैं। वर्षा समाप्त होते ही उसका चमत्कार बढ़ जाता है। कुष्ठरोग साधारणतः फेल और फरवरीसे मई तक चेचक चिपट जाता है। मवेशी पैर और मुँहकी बीमारीसे मरती है।

दक्षिण-अरकट—मन्द्राजप्रान्तका एक जिला है। यह अक्षा० ११° १०' एवं १२° २५' ३०" उ० और द्राघि० ७८° ४१' ३०" तथा ८०° ३१' ५०" पू०के मध्य अवस्थित है। इस जिलेका रकबा ४८०३ वर्गमील है। दक्षिण अरकटसे उत्तर चिन्नलपट एवं उत्तर-अरकट, पूर्व बङ्गालकी खाड़ी, दक्षिण त्रिचनापली तथा तन्नोर और पश्चिम सलेम जिला है। यह जिला षाठ तहसिलकमें बंटा है। प्रान्तीयीमें बसतो पुँद्विचेरो इसीके भीतर है। पश्चिममें सिवा कलरायन पर्वतके दूसरी नगह पत्यर नद्यी देखायी देता। समुद्र किनार और पुँद्विचेरी तथा कूडलूरके पास भी कुछ पहाड़ था गया है। इसमें तिरुनमलय पर्वतपर कोई सवारी जा न सकती। उसकी बगल टालू और जङ्गलसे ढरीभरो रहती है। पोर्टो-नोवोसे डेढ़ कोस दक्षिण कोलरुन नदी इस जिलेकी दक्षिण-पूर्व सीमापर अद्धारह कोसके चक्कर लगा, बङ्गालकी खाड़ीमें गिरती है। वेन्नार भी इकतालोस कोस जिलेके भीतर बह और मण्णमुक्का-नदीको ले पोर्टो-नोवोके पास समुद्रसे मिलती है। दोनो नदीमें कोई तीन कोस तक समुद्रकी लहर चढ़ती है। गळ्डलम् या गरुडनदी येगल भीलसे निकल और ५८ मीलका चक्कर मार कूडलूरसे आध कोस उत्तर बङ्गालकी खाड़ीमें गिरती है। पोन्नैयार महिसुरकी समस्थलीसे चलती और ७५ मीलका धाया लगा कूडलूरसे डेढ़ कोस उत्तर खाड़ीमें मिलती है। सेष्ठी नारायणमङ्गलम् भीलसे निकलती और तोण्डैयार तथा पाम्बैयारकी साथ ले परियानकूपम् तथा चिच्चिरामपटनम्के पास दो मुहानि समुद्रसे मिलतो है। सिधा सरकारीके कितना ही अरचित्त जङ्गल भी देखेजाते,जिसमें तन्नोर जिलेसे मवेशी चरने आतो है। हाथी, चीता और भालू तो कम, किन्तु लकड़बग्घा, हिरण, जङ्गली कुत्ता, सूपर और सेह बहुत देख पड़ता है।

सन् १६७४ ई०में जिन्ध्रि(सिन्ध्र)-वृपतिके बसनेको बुलानेपर अंगरेजोंका सम्बन्ध इस जिलेसे लगा था। बातचीत तो चलती रही, किन्तु सन् १६८२ ई० तक कोई काम न बना, तब अंगरेजोंने कूडलूरमें कारवार करनेको एक कोठी खोली। इसमें सफलता न होनेपर कुछ ही महीने बाद पुँद्विचेरीसे पाँच कोस उत्तर कुजीमिडूम अंगरेजी बसतो हुई थी। सिन्ध्रि-यासक हरजा राजाके भूमि देनेपर सन् १६८३ ई० में कूडलूरकी कोठी फिर खुना, और पोर्टो-नोवोमें कोई छोटी बसती बनायी गयी। चार वर्ष पीछे अंगरेजोंने महाराष्ट्रमें सेण्ट-डेविड दुर्गकी जगह खरोदो और कुनिमिडुकी बसती छोड़ दी। कर्णाटकके युद्धमें कूडलूरने बड़ा काम बनाया था। सन् १७५८ ई०में फ्रान्सीसियोंने सेण्ट डेविड दुर्ग और कूडलूरको अधिकार कर किला तोड़-फोड़ डाला। किन्तु दो वर्ष बाद बन्दिवासका युद्ध समाप्त होते सर एयार-कूटने फिर कूडलूरको अधिकार किया, उनके पहुँचनेको खबर पा फ्रान्सीसी दल सेण्ट-डेविड दुर्गसे भाग खड़ा हुआ था। सन् १७८२ ई०में फ्रान्सासी सेनापति और टोपू सुलतानने नगरको फिर जीत तीन वर्ष अपने हाथ रखा। अन्तमें कूडलूर अंगरेजों और पुँद्विचेरी नगर फ्रान्सीसियोंको सन्धिके अनुसार मिला था। सन् १८०१ ई०में अरकटप्रान्त अंगरेजोंके हाथ आनेसे 'अरकटका दक्षिण विभाग' (The Southern Division of Arcot) नामक एक जिला बना।

दक्षिण अरकटके अधिवासी तामिल भाषा बोलते हैं। चिटी या सेठी लोग धनवान् होते हैं। ब्राह्मण समीन्दारी और सरकारो नौकरी करते हैं। कोरवारको चोर बताते। पहाड़ी जमीनमें मलयाली, इस्लार और थिलियार मिलता। तिद्धान-नम्बरके मुसलमानोंने बहुहावी उपनिवेश प्रतिष्ठित है। इस जिलेके प्रधान नगरोंका नाम—चिदम्बरम्, कूडलूर, पणहदि, पोर्टो नोवो, तिण्डिवनम्, तिक्कणमलय, वलवनूर, विल्पुरम् और ह्वाचलम् है। इस जिलेमें सो आदमीमें पचाससे ष्यादा काम करनेवाले

शरगल, चर्म देखो।
 शरगवानी (फ० पु०) १ रक्त, लाल। (वि०) २ गहिर
 लाल रङ्गका।
 शरगाना (हिं० क्लि०) १ पृथक् पड़ना, जुदा होना, अलग
 रहना। २ चुपचाप बैठना, बात न कहना, मौन-
 धारण करना। ३ निर्वाचन निकालना, चुनना, छांटना।
 शरग्वध (सं० पु०) पृथो० आकार ङ्खः। १ आर-
 ष्वधवृत्त, अमलतास, गिरमालह, राजहृत्त।
 यह अतिमधुर, गीतल और शूलघ्न होता है।
 इसके सेवनसे ज्वर, कण्डु, कुष्ठ, मेह, कफ और विटथ
 दूर हो जाता। (सन्निधण्ठ्।)
 यह संसन, शूरा और हृद्रोग एवं उदावर्त नाश
 करता है। इसका फल संमनगुणयुक्त, रुच्य, कोष्ठ-
 शुद्धिकर और कुष्ठ, कफ, एवं च्यरघ्न होता है।
 इसका पत्ता रेचक और कफ एवं मेदको मिटाने-
 वाला होता। पुष्य स्वादु, गीतल, तिक्त, घ्राहक
 और तुवर होता। पाकमें मज्जा मधुर, स्निग्ध,
 अग्निविवर्धन, रेचक और पित्तघातको नाश
 करती है।
 (क्ली०) २ स्वर्णालुफल, किसी किष्कका आलू।
 शरघ, चर्म देखो।
 शरघट (सं० पु०) शरथककाष्ठवत् घटादि घट्यते
 चक्षते यत्र येन वा। १ महाकूप, बड़ो गचका कुर्वा।
 शरं शीघ्रं घट्यते, शर-घट कर्मणि घञ् वा। कूपमें
 जल निकालनेका काष्ठविशेष, रट्ट।
 शरघटक, चरण देखो।
 शरघा (हिं० पु०) अर्घदेनेका ताम्रपात्र विशेष,
 जिस ताँदिके वरतनसे अर्घ देँ। २ जलहरो, शिष्य-
 लिङ्ग स्थापित करनेका पात्र। ३ चंभना, कुयेंको
 गचका पानी निकालनेवाली राह।
 शरघान, चरण देखो।
 शरङ्गुत् (घै० त्रि०) १ सन्तीपमदरूपसे कार्य चलाने-
 वाला, जिसके कामसे जो सुग रहें। २ प्रसृत हो
 जानेवाला, जो पूजारीकी तरह काम करता हो।
 शरङ्गुत् (घै० त्रि०) १ सघट, सञ्जीभूत, तैयार।
 २ सन्तुष्ट, ठस, भासूदा, क्का हुआ।

शरङ्गुति (घै० स्त्री०) सेवा, आराधन, श्रुदमत,
 परमिष्ठ।
 शरङ्ग (सं० पु०) १ मत्स्यविशेष, कोई मछली।
 २ गजना, सेगवा।
 शरङ्गम (घै० त्रि०) १ समोप शानिवाला, जो
 टेखाई दे रहा हो। (पु०) २ गति, चाल। ३ परि-
 मित गमन, घोरा चलना।
 शरङ्गर (सं० पु०) कृत्रिम विष, वनाया हुआ जहर।
 शरङ्गा (सं० स्त्री०) चरण देखो।
 शरङ्गिन् (सं० त्रि०) विरक्त, शान्तराग, धीमा।
 शरङ्गिसत्त्व (सं० पु०) बोद्धेके दिव्यविशेष।
 शरङ्गी (सं० स्त्री०) चरण देखो।
 शरङ्गुदी (सं० त्रि०) माधवेलता, महुवेका पेड़।
 शरङ्गुप (घै० त्रि०) सोत्साह प्रयास करनेवाला,
 प्रकाण्ड शब्द सुनानेवाला, जो हीसलेके साथ तारीफ
 करता हो, बुलन्द भावाज देते हुआ।
 शरचन, चर्म देखो।
 शरचना (हिं० क्लि०) पूजना, परस्त्रिय करना।
 शरचल (हिं० स्त्री०) अडघन, भ्रमेले, रोक, भगड़।
 शरचि, चर्म देखो।
 शरञ्, चरण और चर्म देखो।
 शरजल (सं० पु०) १ चर्मविशेष, कोई घोड़ा।
 इसका दोनो पिछला थोर एक दाहना पेर सफेद या
 किसी एक रङ्गका होता है। इसको ऐवो समझते।
 २ पतित जातिका पुरुष, जो शब्दसु कमीनी फीमका
 हो। ३ वर्षसङ्कर। (घि०) ४ नीच, कमीना।
 शरजम् (सं० त्रि०) रञ्ज-पसुन् न लोपः, नास्ति
 रजोगुणो यस्य। १ रजोगुणके कार्य कामक्रोधादिसे
 शून्य। २ रैणुरहित, जिसमें धूलो न रहे। ३ स्वच्छ,
 शुद्ध, पाक, साफ। ४ भासिक धर्मविहीन स्त्री,
 जिसे महीना न होवे।
 शरजस्त, चरण देखो।
 शरजा (सं० स्त्री०) १ पृतकुमारो, घोकार।
 २ भार्गव ऋषिको कन्या।
 शरजाम् (सं० स्त्री०) नवयौवना वालिका, नौजवान्
 लड़की।

परलो, चरं ईषी।
 परलु, चरं ईषी।
 परलु (मं० क्री०) नास्ति रक्तुः स्वल्पमाधनं यत् ।
 १ स्वल्पमागर, बाधनेको जगह । इम जगहमे रम्भी न
 रहते भी कामर भाग नहीं सकते । (वि०) २ रक्तु-
 रहित, जिममें रम्भी न लगे ।
 परभना (विं० क्रि०) निपट लागी, धंसना ।
 परट (मं० पु०) न रटति गुप्तमन्त्राणां प्रकाश-
 यति, रट-वत्, नञ्-तत् । पृथुशवा शृपतिके मस्त्रि-
 विदोय ।
 परट् (मं० पु०) परं शीघ्रं पटति, पट-धन्, वा-
 छत्, पृषी० माधु । श्लोभा हृद्य ।
 परट् (मं० वि०) १ परट्काहमे निर्मित, जो
 श्लोभका लकड़ोका बना हो । (पु०) २ पृथक् विंगेप,
 किमी चादमीका नाम ।
 परहोम (विं० वि०) गजिगामी, ताकतवर ।
 परव (मं० वि०) रथते गर्जतेऽभिन्नु, रथगण्डे
 पाधारे च, नास्ति रथो युद्धं यथ, नञ्-बहुव्री० ।
 १ गुरगुर्य, जिममें लड़ाई न रहे । नास्ति रथः
 गण्डो यम । २ रिपु देखकर जिमका वावर भयमें
 न पड़े, दुश्मनको देखकर श्योफने न बोलनेवाला ।
 ३ क्रीड़ाहोम, जो रोमता न हो । ४ दुःगित,
 रथोदह । ५ विगत, गया-गुजरा । ६ अपरिचित,
 अजनबी । ७ दूरस्थित, फामनेपर रहनेवाला ।
 (क्री०) ८ गमन, अवस्थिति, चाम, दाघिना ।
 ८ निवेग, निधान, इन्दिराज, इदलाख । ९ गरण,
 पनाह । (पु०) ११ विषकहृद्य, शीतका पेड़ ।
 परणि (मं० पु०-क्री०) रिच्छति गच्छति, चर-
 चति । १ चान्द्रगुत्पादक मज्जनकाह, जिम लकड़ो-
 को विमनेमे चाम निरुमे । २ लकड़ोके जिम दो
 टुकड़ोको विमकर चाम बनाये । (पु०) ३ शूर्प ।
 ४ चन्मि । ५ इन्द्राग्निमन्त्रहृद्य, गनिवार, चंतिपु ।
 ६ श्लोभाकहृद्य । ७ बिदकहृद्य । (श्री०) ८ मार्ग,
 राह । ८ उपपत्ता, बलिपी ।
 परलु चरं ईषी चरं ईषी चरं ईषी । (वि०)
 परलि टन्त्रमे यद्यं चाम बनार्त्तं है । यद्य दो

भागमें विभाह होता—चधरापरि चोर उधारापरि ।
 इमे श्लोभार्थे चामनेमे तैयार करते है । उधरा-
 रणिको चधराणिके छेदमें डाल, रम्भीमे मयाभोको
 तरह गुमानसे छेदके बोधे रथा हुआ कुछ लन
 उठता है । परिण मन्त्रके समय घेद पड़ा जाता
 है । यद्यमें मायः परिणमन्त्रमे निकमो हुई हो चाम
 काम देती है ।
 परलिक (मं० पु०) परपये चन्मिमन्त्राय माधु-
 ठनु । चन्मिमन्त्र हृद्य ।
 परलिका (मं० क्री०) चरिच ईषी ।
 परणिमत् (मं० वि०) १ दोनो परदिमे मन्त्र
 रगनेवाला । २ चरदिमे उत्पव किया जानेवाला ।
 परली, चरि ईषी ।
 परलोकेतु (मं० पु०) परली उन्मरथ्य । मशानि-
 मन्त्र हृद्य, बड़ा गनिवार ।
 परलोसुत (मं० पु०) परलोहय-घर्षनेन सुतः
 जातः । १ शक० तत् । शकदेव । महाभारतमें लिखा
 है, कि वेदव्याम देवताके निकट वर पा परलो-इप
 घर्षण द्वारा चन्द्रगुत्पादनको घेतामे रटे, उसो समय
 रूपवती दुताथो अप्परा देव पड़ी । हमको
 ऐगनेमे हो चरपिके मनमें विकार था गया । घृताथोने
 उमे ममभ शकी पविषीका रूप बनाया था । माय-
 देवने इन्द्रिय दमनके निमित्त धनेक यद्य लगाया,
 किन्तु किमीतरह ऊतकार्य हो न सके । इन्द्रियित
 परलोपर शक गिरते भी उन्मने परलोमन्त्र न
 छोड़ा । उमीये शकदेवका जन्म हुआ चोर परलो-
 सुत नाम पड़ा ।
 परप्य (मं० क्री०) चरते गम्यते पथामात् चरंत्
 परं तदगमरं वा यत् । १ यत्, जन्तु ।
 'चरप्यार' विदित् (चर)।
 माधकारोके पथाम चन्मर पथकम शाद वन
 कामेको व्यवस्था देनेमे लनाका नाम चरप्य पड़ा है ।
 यद्य उवान, महाजन, उपवन चोर प्रमोदनके निदेश
 चार प्रकाशका होता है । उवानमें रागी क्रीड़ा
 करते चोर महाजनमें मिच्छादि पद्य रहते है । उप-
 वन गावडे पासमें चोर प्रमोदन राजाके धर्म

रहता है। (पु०) २ रैवत मनुके पुत्र। ३ कटफुल, कायफल। ४ साध्यविशेष। ५ रामायणका एक काण्ड। रामायण देखो।

अरखक (सं० पु०) १ महानिम्ब, बकौन। २ वन, जङ्गल।

अरखकथा (ध० स्त्री०) १ कटुजीरक, जङ्गली जीरा। २ वनपिपली, जङ्गली पीपल।

अरखकदली (सं० स्त्री०) अरखखैव कदली, ६-तत्। गिरिकदली, पहाड़ी केला। शास्त्रमें लिखा है—यह शीतल, मधुर, वल्य, वीर्यवर्धन, रुच्य, दुर्गर एवं गुरु होती और दाह, शोष तथा पित्तको मिटाती है। इसका फल तुवर, मधुर और गुरु रहता। (वेद्यनिष्यु)

अरखककंठी (सं० स्त्री०) वनजात-कंकटो, जङ्गली ककड़ो। यह उष्ण, तिक्तारस, भेदक तथा पाकमें कटु रहते और कफ, कृमि, पित्त, कण्डू एवं ज्वरको मिटाती है।

अरखकाक (सं० पु०) वनकाक, जङ्गली कौवा। अरखकाण्ड (सं० स्त्री०) अरखस्य काण्डो यत्र बहुव्री०। रामायणान्तर्गत रामके वन व्यापारका वर्णित ग्रन्थ।

अरखकार्पासी (सं० स्त्री०) अरखे अरखस्य वा कार्पासी, ७ वा ६-तत्। वनकार्पास, जङ्गली कपास। यह रुच्य होती और व्रण तथा शस्त्रघातको मिटाती है।

अरखकुङ्कुट (सं० पु०) वनकुङ्कुट, जङ्गली सुर्गा। इसका मांस हृद्य, लघु, और श्लेष्महर होता है। (रात्रनिष्यु)। सतान्तर अरखकुङ्कुटका मांस हृंहण, स्निग्ध, वीर्यवर्ध, वातघ्न और गुरु रहता है। (भायप्रकाश)

अरखकुलत्या, अरखकुलत्याका देखो।

अरखकुलत्याका (सं० स्त्री०) अरखस्य कुलत्याका, ६-तत्। १ वनकुलत्याका, जङ्गली कुलथी। कुलत्याघ्न, काला सुर्मा।

अरखकुसुम्भ (सं० पु०) ६-तत्। वनकुसुम्भ, जङ्गली कुसुम। यह पाकमें कटु, श्लेष्मघ्न और दीपन होता है। (रात्रनिष्यु)

अरखकुलथी, अरखकुलथीका देखो।

अरखकोनि (सं० स्त्री०) वनवदर, जङ्गली वैर। अरखपत्र (सं० पु०) अरखस्यो मज्ज, कर्मधा०। वनहस्ती, जङ्गली हाथी।

अरखगत (सं० त्रि०) वनमें पहुंचा हुआ, जो जङ्गलको चला गया हो।

अरखगवय (सं० पु०) वनगवय, जङ्गलो गाय, सुरागाय।

अरखगान (सं० स्त्री०) अरखे गीयते, अरख-गे कर्मणि ल्युट्। सामवेदके ऋतगत अरखमें गाने योग्य गान विशेष। सामवेद देखो।

अरखघोलिका, अरखघोलिका देखो।

अरखघोली (सं० स्त्री०) १ वनघोली, कोई सज्जो। २ मत्स्यदण्ड, मयानी।

अरखचटक (सं० पु०) वनचटक, जङ्गली कबूतर। इसका मांस लघु, हितावह और चटकके समान गुण रखनेवाला होता है।

अरखभय (सं० त्रि०) अरखे भयति; अरख-भू-भ्यच्, ७-तत्। वनजात, वनोत्पन्न, जङ्गलमें पैदा होनेवाला।

अरखमचिका (सं० स्त्री०) ६-तत्। टंग, डांस, मच्छर।

अरखमार्जार (सं० पु०) ६ वा ७-तत्। वनविडाल, जङ्गली बिलाल।

अरखसुह (सं० पु०) ६-तत्। १ वनसुह, जङ्गली मूंग, मोट। यह कपाय, मधुर, रक्तपित्तघ्न, ज्वर-दाहघ्न, पथ्य, रुचिकर्मु और त्रिदोषहर होता है। (रात्रनिष्यु)। इसे रक्तपित्तकफवातघ्न, उष्ण, कपाय, मधुर, प्रदिष्ट, याहो, सुगीतल और सर्वरोगनाशक कहते हैं। (त्रिबन्जिता) इसकी दाल अल्पवस्त्र, पाचन, दीपन, लघु, चक्षुष्य, हृंहण, हृद्य और पित्त, श्लेष्म, तथापक्षका रोग मिटानेवाला होती है। (इ०५५)

२ सुहपर्णी, सहुद।

अरखसुह्रा (सं० स्त्री०) सुहपर्णी, सहुद।

अरखमेयो (सं० स्त्री०) वनमैथिका, जङ्गली मैथी।

अरखयान (सं० पु०) अरखे यायते यिन, अरख-

गा वारि सुदृ। १ वन जादिका वाहन विमिज, त्रिम
 मयागिमे मेठ अट्टन पदुंनै। (जी०) भावे सुदृ।
 २ वनममन, जट्टनकी रजानगी।
 परम्याद्यक्ष (मं० पु०) परम्या रक्षति; परम्या-
 रक्ष कर्म, १-तत्। वनरक्षक, जट्टनका मुखादिः।
 परम्यारक्षनी (मं० स्त्री०) वनहरिद्रा, जट्टनी
 हजदी।
 परम्यारक्ष (मं० पु०) वनरक्षति, जट्टनका वाद-
 गाह। यह मन्त्र मिहके निधि विगेषवचपमे पाता है।
 परम्यारक्ष्य (मं० स्त्री०) वनमास्याजा, जट्टनकी
 वादगाहत।
 परम्यारक्षि (मं० पु०) परम्यारक्षतः राक्षि, मध्य-
 पदभोगी कर्मधा०। १ मध्यपयजातोव राक्षि, जट्टनी
 क्षानपरका सुष्ट। अतोतिवमातोक्ष मिहदि राक्षि।
 परम्यारक्षित (मं० स्त्री०) परम्ये रक्षितं रोदनम्,
 मममी वा चतुश्च। परम्यारोदन, हया चायेव, विना-
 यदा हमाया।
 परम्यारक्षन, परम्यारक्षि ईषी।
 परम्यारक्ष (मं० अर्थ०) वनक्षी भांति, जट्टनकी तरह।
 परम्यारक्ष्य (मं० पु०) परम्यारक्ष्य वायमः। वनकाक,
 जट्टनी शोया।
 परम्यारक्ष (मं० पु०) परम्ये वायः वसतिः।
 वनवाय, जट्टनमें रक्षता।
 परम्यारक्षिन् (मं० द्वि०) परम्ये वसति, परम्या-
 यम विनि। १ वनवाधी, जट्टनका रक्षनेवाया। (पु०)
 मुनि प्रथति।
 परम्यारक्षिनी (मं० स्त्री०) परम्यारक्षिनी मता,
 परम्यारक्षिनी।
 परम्यारक्षिण, परम्यारक्षिणी ईषी।
 परम्यारक्षिण (मं० पु०) १-तत्। कुचधर, जट्टनी
 हट्टया। यह मधुर, रक्ष, दावन और पावन होता
 है। रमका गाक तिदोमप, मधुर, रक्ष, दोवन, रंयन्
 कपाय, मंदाही और मधु होता है। (रंयन्वच०)
 परम्यारक्षि (मं० पु०) परम्यारक्षतः राक्षि, मध्य-
 पदभोगी कर्मधा०। मीशारक्ष्य, जट्टनी वायम।
 परम्यारक्ष (मं० पु०) वनरक्षक, जट्टनका मुखादिः।

परम्यारक्ष (मं० पु०) परम्यारक्षः सुदृ, मध्य-
 पदभोगी कर्मधा०। वनरक्षक, जट्टनी सुपर।
 परम्यारक्ष्य (मं० पु०) परम्यारक्षतः सुदृ, माक०
 तत्। वनरक्षक, जट्टनी कर्मधा०।
 परम्यारक्ष (मं० पु०) १ रक्षक, भेदिता। २ क्षति,
 वन्दर।
 परम्यारक्षी (मं० स्त्री०) परम्या पूजनाय पठो,
 माक०-तत्। १ अष्टमासकी यज्ञपठो, परम्या पूजा
 पठो। अष्टयज्ञपठोकी उपाय देवो।
 "मोक्षे क्वचि विने एते पठो परम्यारक्षिताः।
 अत्रनेचकारणकमदति विदिते विदः।
 न विधायाप्येति अत्रनेचकारणकमदति च।
 वनरक्षकवचनानि कर्मणि कर्मणि" (परम्यारक्ष्य)
 अष्टमासके यज्ञपठकी पठोको परम्यारक्षी कहते
 है। उस दिन पिया जायमें एक-एक घामर से वनमें
 जातो और विम्यावचनवासिनी पठो देवोको मनातो है।
 कन्द, मूल और फल पाकर वन रक्षनेसे शुभ मन्तान
 मिलता है।
 अन्त-अन्तमें वन तिथिको पठोको प्रतिमा बना-
 कर भी पूजा की जाती है। पठो देवोके ध्यानका मन्त्र
 नीचे लिखतो है,—
 "विष्णुवा वीरवर्चनी वायव्योन्मिताम्।
 वराम्यवदा वधी वनरक्षकमुचिताम्।
 रम्येः वन्द्या देवी क्वचि चरित्पुत्रिणम्॥"
 परम्यारक्ष (मं० स्त्री०) वनमभा, जट्टनी हजदी।
 परम्यारक्ष्य (मं० पु०) कर्कटक, गोमर्कटकर।
 परम्यारक्षिद्रा (मं० स्त्री०) वनहरिद्रा, जट्टनी हजदी।
 यह कुछ और वातरक्षको मिटातो है। (अत्ररक्षक)
 मतान्तर यह कटु, मधुर, रक्ष, चमिदायन, तिष्ठ
 एवं कुष्ठपातनामक जोमो और रक्षदोव, विष, छाप,
 काय तथा दिहाको दूर करतो है। (रंयन्वच०)
 परम्यारक्षनदीकन्द (मं० पु०) परम्यारक्षिणी ईषी।
 परम्या (मं० स्त्री०) चोयधि विगेष, कोई अर्धा-
 पृथी।
 परम्यारक्ष्य (मं० पु०) परम्ये रक्षवादी निदुको-
 ऽध्यक्ष, माक०-तत्। वनरक्षक, जट्टनका कोई वादिम
 त्रिमी परकार प्रकाको रक्षके निधि जट्टनमें रक्षे।

अरण्यानि, अरण्यानी देखी।

अरण्यानी (सं० स्त्री०) महदरण्याम्, अरण्या-डोव्
आनुक् च । १. महदरण्या, वृहत् वन, बहुत बडा
जङ्गल । २ अरण्यापालयित्री षडिदेवता, जङ्गलकी
देवी । प्राचीन समयमें ऋषि वनदेवीका स्तव
-कारते थे,—

“अरण्यान्वराण्यमी या प्रे व नयसि ।
कथा धामं न वृक्षसि न त्वा भीरिव विंदति ॥
इशारवाय वदते वदपयति चिचिकः ।
आवाटिभिरिव चावयन्नरणाग्निर्होषते ॥
उत गाव इवादद्गत वैष्णवं वृहस्पति ॥
उत्ती अरण्यानिः सायं गच्छतीरिव रुर्जति ॥
गामनेय था इत्यति शोभेतेषो वदायतीत् ।
वसवराण्यानां सायममु षदिति मन्यते ॥
न वा अरण्यानिं ईन्त्यायवं प्राभिगच्छति ।
व्यानीः कञ्चल जगन्नाथ यथाहामं नि पयते ॥
आंजनवधिं सुरभिं बहज्जामहरीशोभं ।
प्राहं यथाथां नातरनरण्यानिमसिधेः” (अ० ॥ १॥ १॥ ६)

अरण्यानि, अरण्यानि । आप मानो मिटो जा
रही है । आप ग्रामका पय क्यों पूछ नहीं लेती ?
क्या आप निर्भय रहती हैं ? छपकी पुकारके साथ
जब चिचिकपक्षी घाघकी भांति बोलते-बोलते उड़ता
तब अरण्यानीकी बड़ा आनन्द आता है । गाय-भैंस
चरने और मनुष्यका गृह देख पड़नेसे सायंकालकी
अरण्यानी मानो गाड़ी हांकाती हैं । अरण्यामें रहनेसे
गाय भैंसकी पुकारने और छच्च काटनेपर मालूम
देता, मानो वह बोल्कार कर रही हैं । अरण्यानी
किमीकी नहीं मारतीं । फिर भी कोई दूसरा (वनका
पशु प्रश्रुति) घोट कर सकता है । सुखादु फल खा
लोग उनके राजमें यथाभिलाप रहते हैं । हम
अरण्यानीका स्तव करते, वह सृगादिकी माता है ।
वह आन्नगन्धि, सुरभि और अष्टछेवसे प्रसुर
अन्न पहुंचाती हैं ।

अरण्यचन्द्रिका (सं० स्त्री०) अरण्ये पतिता चन्द्रिका
व्योत्स्रव्य, अ-तत् । निष्कल वेगभूया, विषायादा सजा-
यट । ग्रामकी व्योत्स्राका आनन्द सब कोई लेता,
किन्तु निर्जन वनकी चन्द्रिका किमी काम नहीं

आती, इमीसे वह निष्कल है । जिस वेगभूयाको
देख पतिका मन भूल न जाये, वह भी निष्कल
और अरण्यचन्द्रिका कहाती है ।

अरण्यचम्पक (सं० पु०) वनचम्पक, जङ्गली चम्पा ।
यह शीतल, लघु, धोर दीर्घ एवं बल बढ़ानेवाला
होता है ।

अरण्यचर (सं० त्रि०) अरण्ये चरति, अरण्य-च-
ट, अ-तत् वा अलुक् स० । वनचर, जङ्गली, जो
जङ्गलमें रहता हो ।

अरण्यछाग (सं० पु०) वनछाग, जङ्गली बकरा ।
अरण्यज (सं० त्रि०) १ वनमें उत्पन्न, जो जङ्गलमें
पैदा हुआ हो । (पु०) २ तिलकस्तुप, तिनका
पेड़ ।

अरण्यजार्द्रक (सं० स्त्री०) अरण्याजार्द्रका देखी ।
अरण्यजार्द्रका (सं० स्त्री०) अरण्याजा आर्द्रका,
कर्मधा० । जङ्गली आदरक । यह कटु, अम्ल, हृदिक,
बल्य और आग्नेय होती है । (राश्रुण्यट्)

अरण्याजीर (सं० पु०) अरण्याज जीर, अ-तत् ।
कटुजीरक, जङ्गली जीरा ।

अरण्याजीर उष्य, तुवर एवं कटुक होता, वात
रीकता और कफ तथा व्रणकी मिटाता है ।

अरण्याजीरक, अरण्याजीर देखी ।
अरण्याजीव (सं० त्रि०) अरण्येन अरण्याजेन फला-
दिना जोयति, अरण्या-जीव इगुपधत्वात् क । वनोद्भव
फलादि द्वारा जोवित, जो वनमें पैदा हुए फल
वगैरह खाकर जीता हो । वानप्रस्थादि पाषाणवान्
जन वनमें रहते और कन्दमूलफल खाकर अदना
निर्वाह करते हैं ।

अरण्यादमन (सं० पु०) देवनेका दरदत्त ।
अरण्यादादशी (सं० स्त्री०) मार्गशीर्षकी गुह्या दादशी ।
इस तिथिकी लोग व्रताचरण करते हैं ।

अरण्यादादशीव्रत (सं० स्त्री०) अरण्यादादशी देखी ।
अरण्यातुलसी (सं० स्त्री०) वनतुलसी, अण्यवर्षा,
जङ्गली तुलसी । यह अश्वदोष भेदसे दो प्रकारकी
होती है ।

बड़ी अरण्यातुलसी उष्य, कटु, एवं सुगन्धि

होती थीर शान, लक्ष्मी, विमर्ष तथा विचको दूर करती है। छोटी परनागुलमी कृत्, उष्ण, तिज्ज, रश्च, चन्द्रिटीक, हृद, विदाह, मनुषित्तम, तथा हृत् वृहती थीर लक्ष्मी, विच, हर्षि, पुत्र, स्त्र, मात, हर्षि, लक्ष्, दद्रु तथा रश्चदीपको मिटाती है। इसका शीत हाट थीर जीवमें आमहाटक होता है।

परश्वतपुस्तक (सं० पु०) मन्वत्पुष्प, लक्ष्मी ककरो। पाशवत्पुष्पी (सं० ली०) रश्चदादीनी, रश्चाद्यप। २ मन्वाकाम मन्वा, मन्व हन्वाद्यप।

परश्वतधर्म (सं० पु०-ली०) परश्वे पापरथीयो धर्मः, ८-तत्पुष्पाशकं तत्। वातप्रण धर्मो मन्वत्पुष्पे। परश्वतधाम्य (सं० ली०) मापान् दधानि, धा इति यन् नृती धाम्यम्, परश्वे जातं धाम्यम् शाकं तत् ० तत्त वा। शोध्यादि वनधाम्य, लक्ष्मी पावन।

परश्वतपुष्प (सं० पु०) वनजात गो, लक्ष्मी गाय। परश्वतपुष्पति, परश्वतपुष्पे।

परश्वतपति (सं० पु०) परश्वतानी मन्वत्पुष्पा तत्तप्य थीरानी पतिः वा, पन्वत्-मन्, इ-तत्। १ वनका राजा, उद्गमका मानिक। २ परश्वतर व्याधका पति, लक्ष्मीमें पुद्गनेवना शिखरीका मानिक। ३ इद्र।

इद्रकी भीमाक्रमसे थीरद्वय बनाते पयशा विग्रमय कहाने है। इसलिये थीरदिकी इद्रद्वय समझना चाहिये। दूमरे, थीरदि मरीरमें जीव थीर ईश्वर—दो रूपमें इद्र कहते है। इसमें जीवका जो रूपां थीरदि होता थीर वही जीव ईश्वरद्वय इद्रको मताता है। (४५५)।

परश्वतपान् (सं० पु०) वनजात पन्वास्तु, लक्ष्मी पान्। यह मूलविशेषक, पंचाक्षर थीर पशुप वृहता है। मातामें अधिक ही प्रादेपर हमे वाग्निहत्तु पार मन्वत्पुष्प पाते। शोध, मन्व, कात थीर मूलमन्वमें इद्र काम जाता है। (४५५)।

परश्वतपिप्ली (सं० ली०) वनपिप्लीकाम पुष्प, लक्ष्मी पौषधका पेक्ष।

परश्वतपुष्प (सं० ली०) परश्वे पयर्ष वानप्रस्थधर्म पयर्षिभ्यं पयर्षादि पश्। मन्वत्पुष्पे, मन्वाकामेका धर्मविशेष।

परश्वीय (सं० ति०) वनपुष्प, लक्ष्मी।

परश्वेतिमक (सं० पु०) मन्वत्पुष्प, लक्ष्मी वनतिम, लक्ष्मी तिम। लक्ष्मी तिममे देव लक्ष्मी तिममता। इसलिये जो इत्य रूपवान् रश्च पुष्पादित थी, वक्ष भो इमी नाममे पुकारा जाता है।

परश्वेत्पुष्प (सं० ति०) परश्वे वने पन्वत्पुष्पः मित्त-पायो मन्वी पय्य, पन्वत्पुष्पे। १ परश्वे पातके पाय्य मन्वा दारा संवृत्त। यह मन्व पुरोडासादिका विशेषण होता है। (पु०) २ परश्वका पाय्य मन्वा विशेष।

परश्वीकम् (सं० पु०) परश्वे थीरः एतानं पय्य, वदुषी०। मुनि, वानप्रस्थ, लक्ष्मीमें रश्चनेवना फकीर।

परत (सं० ति०) म रतम्, मन्वत्तत्। १ विरत, दुनियाकी थीरमे दूर रश्चनेवना। २ मन्व, धोमा। (ली०) ३ पयर्षेय, मीरवतदारीकी पदम मीरवत्तमी।

परतवप (सं० ति०) परता विरता तथा लक्ष्मी पय्य, वदुषी०। १ मेटुनमें लक्ष्मी म करनेवना, जिमें मीरवत दारीमें मन्व म लगे। (पु०) २ मन्व, पुशा।

परति (सं० पु०) अक्षरति मन्वत्पुष्प, वदुषी० इत्यति। १ छदंग, तेजस्वतारी, भवट। (४५५)। २ लीध, गुणा। ३ मन्व, रवानगी। ४ पधिकार, दान्। ५ पाकमप, हमना। ६ मन्व, मोकर। ७ पामो, मानिक। ८ शिना, पिज। ९ बुदिमान् व्यक्ति, दाना मन्व। (ली०) रम-क्षिन्, मन्वत्तत्। १० पयर्षवित्त, हावीक मन्वीयत। ११ रागका पमाय, पयर्षका, तर्कीकपर रश्चका म वृहता। १२ रनिविरश्च, सुदारी। १३ इद्रथीय, दिमपाकी थीरका म मित्तवा। १४ पयर्षोय, मन्वत्पुष्पे। १५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे दमा। १६ पयर्षोय, मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। (ति०) लापि रतिपय्य, मन्वत्पुष्पे। १७ पयर्षवत्पुष्पे, धोमा, सुदा। १८ पयर्षवत्पुष्पे, मन्वत्पुष्पे। १९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २० पयर्षवत्पुष्पे, मन्वत्पुष्पे। २१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। २९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ३९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ४९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ५९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ६९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ७९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ८९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९१ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९२ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९३ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९४ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९५ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९६ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९७ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९८ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। ९९ मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे। १०० मन्वत्पुष्पे मन्वत्पुष्पे।

अरतिस, अरतीस (हिं० वि०) तीन दहायी घोर आठ एकायीसे मिलकर बननेवाला । यह शब्द संख्यावाचक विशेषण होता है ।

अरत्रि (सं० पु०) क्रादिं ऋ गतौ कत्रिच् यण् च, नञ्-तत् । १ कनिष्ठाङ्गुलि भिन्न बंधो मुद्रा ।

'बद्धमृत्तिः करी रविः सोऽरविः प्रथताङ्गुलिः' । (छन्दःशास्त्र)

२ कुपेर, कुहनी, कोना । ३ चाड्ड, डाय । ४ कुहनासे कनिष्ठाङ्गुलि पर्यन्त परिमाण । इस मापसे प्राचीनकाल यज्ञकी वेदी बनती थी ।

अरत्रिक (सं० पु०) सारथि कन् । कुपेर, कुहना ।

अरत्रिमात्र (सं० त्रि०) डायभर, जो मापमें एक डायसे ज्यादा न हो ।

अरथ (सं० त्रि०) १ रथरहित, वेगाड़ा, जो रथपर चढ़ा न हो । (हिं०) २ अर्थ देको ।

अरथात, (हिं०) अर्थ देको ।

अरथाना (हिं० क्लि०) अर्थ लगाना, मानो बताना ।

अरथिन् (सं० पु०) रथविज्ञान याज्ञा, जिस सिपाहीके पास लड़नेका रथ न रहे ।

अरथी (वे० पु०) न रथिः सारथिः, नञ्-तत्, वेदे दोषः । १ सारथि भिन्न, जो शस्त्रस गाड़ा न हांकता हो । (हिं० स्त्री०) २ विमान, जनावन, टिखटा । इसे लकड़ीसे सिद्धी जैसी बनाते और सुर्दा ढाँके काममें लाते हैं ।

अरद (सं० त्रि०) न सन्ति रदा दन्ता यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ दन्तविज्ञान बालक, जिस बच्चेके दांत न निकला हो । २ भ्रमदन्त, हठ, पोपला, जिसका दांत गिर गया हो ।

अरदण्ड (हिं० पु०) किसी कृष्णका करील । यह गहवा किनारे उपजता है ।

अरदन, अरद और अरदन देखो ।

अरदना (हिं० क्लि०) १ लातसे मारना, रौंदना, कुचलना । २ मार डालना, कत्तल करना ।

अरदल (हिं० पु०) हृद्य विशेष, कोरे दरख्त । यह मन्द्राज प्रान्तके पश्चिम-घाट और सिंहालद्वीपमें उपजता है । इसका पीला गोंद पानीमें नहीं शरावमें घुलता है । उससे पोले रङ्गका बर्दियाँ बनाईं बनता

है । वीजका तेल भीषधमें दिया जाता है । इसको लकड़ो भूरी होती और उसपर नीली धारी रहती है ।

अरदली (हिं० पु० = Orderly) चपरासी, हाजि-रबाय । यह किसी हाकिमके पास रहता और उससे भाकर मिलनेवाले आदमोकी खबर कहता है ।

अरदावा (हिं० पु०) दलामला भद्र, जो पनाज कुचल डाला गया हो ।

अरदास (हिं० स्त्री०) १ अर्जुदास, निवेदनयुक्त उपहार, जा भेंट बिनतीके साथ चढ़ती हो । २ ईश्वर-प्रार्थना । नानकपत्नी पत्वेक शुभ कार्यके आरम्भमें अरदास लगाते हैं ।

अरध. अर्थ देको ।

अरध् (सं० त्रि०) राध हिंसने कर्मणि रन् झस्य, नञ्-तत् । १ शत्रु-कर्तृक अहिंस्य, जिस दुश्मन् मार न मके । २ कमयोगी, जो सुप्त न हो । ३ समृद्ध, सुशु-सुरम ।

अरन (हिं० पु०) १ किसी कृष्णकी निहाई । यह नोकदार होता है । २ अरना देखो ।

अरना (हिं० पु०) १ जङ्गली भैंसा । यह जङ्गलमें रहता और मामूली भैंसेसे मजबूत होता है । इसके सुडाल शरीर पर बड़ाबड़ा बाल रहता है । सींग लम्बा, मोटा और पंजा होता है । यह बहुत ज़ारदार होता और शरसे भी लड़ता है । (क्लि०) २ अरना देखो ।

अरनाय—अष्टादश तीर्थंकर । बलभद्र रामचन्द्र और नारायण लक्ष्मणके समयमें होनेवाले वीसवें मुनि सुमत् तीर्थंकरसे पहिले हुए थे । इनके पिताका नाम सुदर्शन और माता का नाम मित्रसेना था । ये काश्यपगोत्रो सामंशज राजा थे । फानगुन शक़ा छतीया की रवती नक्षत्रमें जिस समय इन (अरनाय) का श्रौच लयन्त विमान नामा स्वर्गमें चलकर रामी मित्रसेनाके गर्भमें आया, उस समय रामोने मोलह शुभ स्रष्ट देन्ने और इनका फल पतिमें पूछा । उत्तरमें महाराजने उन स्वर्गोका फल तीर्थंकर पुत्र रत्नको प्राप्ति होना बतलाया । गर्भके दिन पूरे होनेपर मार्गशीर्ष शक़ा चतुर्दशीको पुष्पनक्षत्रमें इनका जन्म हुआ । युवा होनेपर राजा सिंहासनपर विराजे ।

इन्द्रोम इन्द्राय वषे पदंल तो ये मन्त्रमेवम रात्रा
 १३. वाट इन्द्रे अत्रातिरिक्ते निष्प्रमदय सुदमंन-
 अत्रादि नय निधि अनुदम रतीत्रा मादुभांय
 दृषा। अेनिदीके भूगोलाजुगार अन्वुहापव्य भरत-
 येम मन्त्रयो एक वाषे पौर वांय वेत्तुष्टुपन्त्रके
 मन्त्रुर्षे राजाषोका आतकर एव वाप्य इत्योके राजा-
 धिराज वननेपासेका अत्राती कहते है। इन्द्रेनयनिधि
 पौर १४ रतीके मिया ८४ अत्रा निगं, १८ करीके
 गोत्रे, ८४ भाष हायो, ८४ भाष रय, तोन कराड
 मोर्षे यो। १२ अत्रा सुकृत्पारी राजा परनांमिं
 नमते यो। १३मि इम विभूतिका २१ अत्रा वषे तक
 भांया। एकदिन गरदु अत्रुके निषोकी एकप्रात् नष्ट
 होमि देव इन्द्रको वेराग्य उत्पद्य दृषा, मांमारिक
 भोग विनाम जगो ममान अत्रुभरमें पाने मी। तत्-
 खान ही उपने पुत्र परविष्णुकारको राजा भोव पाप
 महेतुक नामा वनकी वेजयन्तिका नामक देवीद्वारा
 पाहित पानकोमि विराजमान होकर गये। वहाँ
 मांमोयी गजा दामोके दिन मन्त्रा ममय देवो-
 नपतमें एक अत्रा राजाषोके माय मन्त्र जानकके
 ममान ही तपधारक कर मुनि दृष। उमी ममय
 इन्द्रको भोया मन्त्रःपदंय प्रान (मन्त्रे मन्त्रय पदांमि-
 का नाननेयाना प्रान) उत्पद्य दृषा। तप वष्टव
 करनेके पद्यात् प्रपमयाया (वाहार) अत्रपुत्र नगरके
 वामा अत्राजितके वहाँ किया। इम प्रकार मोनह
 वषंनक भगवानुके मय करनेपर उमा महेतुक वममें
 कातिक दत्ता द्वादशोके दिन पवराज जान देवो
 मन्त्रमें पामहचके मोषे १ उदयाम करनेके पद्यात्
 ४ पानिया अमोका माय पौर इन्द्रे हेरलप्रान
 (मंत्राके भूत भविष्यत् तर्तमानके मन्त्रुके पदांमिंको
 मन्त्रुत् आननेयाना प्रान)का मादुभांय दृषा। उम
 ममय पारो पकारके देव उन्वपके निधे पादे। भा
 वाजुका वममयाज (ममाननय) रया गया। इन्द्रे
 ममममरन्में दृषाय मन्त्रि ३ मपपर (भगवान्
 दिव्यधिका विनेवाषे करेयामे) पौर पुत्रोके
 प्राना ११ मनि, वाप्य इन्द्रके पत्रक मियक मुनि
 ३३८३४, अरविप्रानके भागे २००, मेषमप्रान-

नेत्रके धारक २००, धिक्किटा अरिने धारक
 ३००, मन्त्रःपदंय-प्रानके धारक २०४, अदुगावारी
 मोनह मो, कुन पयाम अत्रा मुनि पौर अरिना
 पादि माठ अत्रा पादिना (मायो), एकभाष
 माठ अत्रा पावक, तोन भाष पाविका, अरंस्तान
 देवदेवी पौर तिपंच ममानदृ रते यो। इम मन्त्रो
 ममममरन्में विराजमान हा पमोविद्य देने यो। शिष
 ममय पादुमें एकमाम मेष था, उम ममय भगवान्
 ममिमिषर वषंन (पामंनय पदाह) पर एक अत्रा
 सुभोगरोके माय प्रतिमा योगी विराजे पौर नेत्र-
 क्षण पमापप्याके दिन देवता नपचमें पुर्व रातिने
 ममय मोचको प्राप्त दृष।

परना (सिं सौं) परवी, उम विनेय। यह
 हिमानपपर होतो है। इमका एक मोग पाने पौर
 गुनमोकी भी काममें जाती है। कामर पौर
 कादुनमें उदयनेयानो परनी बहुत उमदा होती,
 इमकी मन्त्रुके अरुको कितनो री मयां वनयो
 है। यह माय फामुन फुनतो-फनतो पौर प्रावप-
 भाठ माममें पकतो है। जान देवा।

परन्तुक (मं डां) तापविनेय। यह कुर्वेवके
 पन्त्रगत पौर पममपचकका मोमाभूत म्यान है।

परम्यन (मं जों) नन्त्राने पभांय मन्त्रुत्। पात्रका
 पभाय, भोजनका न बनना, पुष्केका न मपना।
 भाठ पौर पावित मामकी मंक्रान्तिकी परम्यनकी
 प्यव्या दो गयो है। परम्यनके पुर्व दिन शिरो
 पच-मपचन पका रवती है। पुष्केका मोर-वीनकर
 पूजा होती है। गोवमें मोग एक दूमा जो निम-
 म्यक देने। मालक-वाणिका भाया वाकर पुनरी
 किरती है। भोगीकी यही मंत्रा है,—परम्यनके
 दिन पुनूदा अनामि पौर भाजन बनानेमे मीय
 आटना है।

परम्यु (मं सिं) भादि रम्यु सिद्धं वष्य, नमः
 वदुमो। १ निविड, वनः। २ सिद्धमूक, शिगापु।
 ३ निदीय, वेवः।

परम्य (मं सिं) १ अरिंविम, मोठ न वाषे दृषा।
 २ पापरहित, एव, वेदुमाद, पाषोकर।

अरपचन (सं० पु०) बहुपक्षक, पांच बुद्धोंका नाम ।

इस शब्दका प्रत्येक अक्षर एक-एक बुद्धकी बताता है ।

अरपचन, अर्पच देको ।

अरपचन-गण्डा (हिं० वि०) असंख्य, वैशुमार ।

अरपना (हिं० क्रि०) देना, बख्शना, भेंट चढ़ाना ।

अरपस् (वै० त्रि०) रघुते चयायं सर्व समचं कथ्यते,

रप कर्मणि षसन्; नास्ति पापं यस्य, नञ्-बहुव्री० ।

पापशून्य, वैगुनाह ।

अरपा (हिं० पु०) १ कोई मसाना । (वि०)

२ दिया, बख्शना ।

अरब (हिं० वि०) १ अर्बुद, सौ करोड़ । (पु०)

२ सौ करोड़की संख्या । ३ घोटक, घोड़ा । ४ इन्द्र ।

(अ० पु०) देशविशेष, एक मुल्क । (Arabia)

यह प्रायोद्दीप दक्षिण-पश्चिम एशियामें अक्षां ३४°

३०' एवं १२° १५' उ० और द्रावि० ३२° ३०' तथा

६०° पू०के मध्य अवस्थित है । इसमें पश्चिम लोहित-

सागर, दक्षिण अदनकी खाड़ी तथा भारतसागर, पूर्व

ओमन तथा ईरानकी खाड़ी और उत्तर सोरियाकी

मरुभूमि है । आकारमें यह प्रायोद्दीप अतुल्य लम्बक-

जसा है । इसका क्षेत्रफल १२००००० वर्गमील होता है ।

भूगोल—साधारणतः अरब जंघी अधित्यका ठहरता,

जो दक्षिण-पश्चिमसे उत्तर-पूर्वको टलता और दक्षिण-

पश्चिमके अन्त खूब जंघा पड़ता है । पश्चिममें यह

४०००से ८००० फीट तक ऊंचे उठता और समुद्रकूल एवं

पर्वतके बीचकी ३० मील भूमि नीची छोड़ता है । पूर्वके

अन्तमें जबील-अख्दर पहाड़ है । इसका भूमिगत

प्रधानतः खानो और सूखा रहता है । इसमें एक-

तिहाई ईशुमान और बाकी बसनेके योग्य जमोन् है ।

यहां पानोको कमो रहते और वर्षा भी कम

होती है । इसके पहाड़ बहुत कम ऊंचे हैं ।

अरब शब्द हिब्रू भाषाका है । इसका अर्थ 'मरु

हीना' है । मतलब यह, कि जो जाति सूर्याप्त

स्थानकी ओर रहते, वह अरब कहलाते हैं । कोई-

कोई इस शब्दको हिब्रूके 'अरावा' शब्दसे निकला

वतलाते हैं । अरावाका अर्थ 'मरुभूमि' है ।

प्राचीन भूगोलवेत्ताने अरबको सीमा कुछ अधिक

निकाली थी । द्विनीके मतमें मेसोपोटैमियाके कुछ

अंग और आरमेनियाकी सीमातक अरबदेश रहा ।

(Hist. Nat. 5-24) जेनोफनने यूफ्रैटिस उपकूलके

वालाकामय स्थान और अरबवंश नदीके दक्षिण तीर

पर्यन्त इसकी सीमा रखी थी । प्राचीन पाषाण भूगोल-

वेत्ताके मतसे अरब देश पांच प्रदेशमें विभक्त है,—

१ यमन, २ हेजाज, ३ तिहामा, ४ नेजद और

५ ऐमामा । इस देशके कितने ही स्वाधीन राज्यांमें

निम्नलिखित प्रधान हैं,—

१ यमन—यह प्रदेश लोहितसागरके उपकूल एवं

हेजाज, नेजद और हदरामोतको सीमातक माना

जाता है । इसमें घाना, माखा, जेविद, याइट-डल-

फको, होदेदा और लोहिया नगर विद्यमान हैं ।

२ अदन—इसमें मयाहर अदन बन्दर मौजूद है ।

३ कोकैवान् राज्य ।

४ बेलोद-उल-कोयायल ।

५ अम् अरिख । यह लोहितसागरके किनारे

बसता और जेजान नामक नगर रहता है ।

६ खोलान् ।

७ शाहान् । इस राज्यमें वेदुयिन लोग रहते हैं ।

८ नेजरान । यह प्रदेश अधिक उर्वर होता, जट

और घोड़ामें विख्यात है ।

९ ओमन । यहां मस्कटके सुलतान्का अधिकार

है । यहां यव, गेहूं, ज्वार, उड़द, अन्न और खजूर

उपजता है । जस्ते और ताँबेकी खानि भी मौजूद है ।

रोसक नगरमें इमामका मकान् है ।

१० हेजाज । यह मुल्क मुसलमानोंको पुण्यभूमि

है । मक्का और मदीना इसीके अन्तर्गत हैं । मुह-

अदके मरने बाद यहां कान्टिप्टनीपनके मानिकका

अधिकार हुआ था । वह इस पुण्यस्थानकी रक्षाके

लिये कोई कर्मचारी रख देते रहे । उसके बाद

बह्हावियोंने मर उठाया और यहांके शरीफने स्वाधीन

बननेको चेष्टा की । उसी समय तुर्कस्थानके पाया

और मक्केके प्रधान शरीफने भगड़ा भी हो गया था ।

शरीफने पायाका जिहानगरस्थ किना तोड़ और

उन्हें विप देकर मार डाला । बह्हावियोंने उसमें

खग्युदार चीज मिलनेसे बहु प्राचीन कालावधि श्रव सर्वत्र प्रसिद्ध है। यहां अक्कीक, मरकत, वैटुय, इन्-नौल प्रभृति मणिमाणिक्य भी पाया जाता है। मोखेमें जेसा कहवा होता, वैसा दुनियामें किसे जगह नहीं देख पड़ता। यट, खजूर, नारियल, ताड़, केला, बादाम, खूवानी, सेब, नाखाती, बिहीदाना, पपोता, इमली, नारङ्गी और बबूल भी खूब उपजता है। जयसिसे तुगखबोन् नामक जो अर्क निकलता, वह श्रव जातिके बहुत काम आता है। जगह-जगह गेहूँ, यव, ज्वार, चड़द, मसूर और तम्बाकू बोयी जाती है। रुई बहुत अच्छी होती है। यहांकी मोनामाखी बड़े ही फायदेकी चीज है। जेविद प्रदेशमें नाल होता है। सिवा इसके रैड, अमलताम, गन्ना, जायफल, तिल, पान, तरह-तरहका खरबूजा, सबजो, और जडी-बूटो भी देखनेमें आती है। जगह-जगह लक्ष्मी और लोहा मिलता है।

जानवरमें ऊंट श्रव जातिका पूरा साथी है। लहकपनसे श्रव जाति जैसे भूपय्यास भारती, उसके ऊंटकी भी ऐसे जो चाल होती है। यह जानवर १५।१६ दिन बे-ग्याये-पिये काम कर सकता है। श्रव जाति इस जानवरका दूध गायके दूधकी तरह पीती है।

श्रवी घोड़ा दुनियामें मशहूर है। यहांका खशर गधा भी खूब तेज होता, जिसपर चढ़कर सिपाही दुश्मन्से लड़ता है। जगह-जगह जङ्गली बैल, नगनाभि-हरिण, हरिण, पहाड़ी बकरा, भिड़िया, हायना और शेर घूमते फिरता है। यमन और अदन प्रदेशमें कुण्डी वैदुमका बन्दर उल्लते देखेंगे। लक़ाव, यालू, चीन वर्ग रूह तरह-तरहकी बिड़िया भी लड़ती है।

श्रवदेशका लोकतन्त्र—श्रव लोग सेमितिक जातिसे उत्पन्न हुए हैं। इनका प्राचीन इतिहास क्यादा न मिलेगा। प्राचीन श्रव जातिके साथ भारतवर्षका वाणिज्य-संस्कार रहा। पुरातन इतिहासलेखक हेरोदोतास्ने लिखा है,—इरान्के बादशाहने दरायान् हैस्तस्मिस् एशियाखण्डसे पश्चिम सह देशी लोगोको जीत लिया था, किन्तु श्रव उस समय

भी स्वाधीन थे। जब कम्बायसिस् मिय जीतने चले, तब उन्होंने श्रव जातिका सहारा लिया था। अलकसन्दर श्रव देशको अधिकार करनेके लिये तैयार हुए थे, किन्तु मर जानेसे उनकी आशा पूरे न पड़ी। दिमोरोदासने कहा है,—यह जाति प्रथम पराक्रान्त घोर इनकी जमाभूमि मरुप्रदेश होती है; फिर इसीको मान्म रहता, मरुमें कहां पानी मिलता है। रोमका कई बार इस देशपर चढ़ चाये, किन्तु खानेकी चीज मौजूद न रहनेसे वापस गये। अगस्तसुके राजत्वकालमें ऐरियानुगनास नामक कोई व्यक्ति श्रव जीतने पाया और शोरोदाम नामक किसे श्रव-अधिवासीने उसे साहाय्य दिया, किन्तु खानेकी चीज हाथ न आनेसे उसको भी श्रव छोड़ना पड़ा था।

श्रव जातिका जो प्राचीन इतिहास मिलता, उससे हमें पूर्वतन अधिपतियोंका नाम ही मान्म देता है। इसका उल्लेख नहीं मिलता—किमने कौन समय कितने दिन राजत्व किया था। भैमितिक ज्ञातीय जोक्तनके पौत्र गेम प्रथम श्रव चाये थे, उसके बाद इसी जातिके इन्नाहीम नामक दूसरे व्यक्तिने श्रवमें घर बनाया।

प्रसिद्ध सुसलमान इतिहास-लेखक अहुनफजूलने श्रव जातिकी दो भागमें बांटा है—प्राचीन और वर्तमान। प्राचीन भागमें चाद, यमूद, तम्म, जादिस, जोहीम, शामलेक प्रभृति नामक कई शाखा है। इस जातिके यत्सामान्य प्रवाद भिय दूसरा कोई ज्ञान नहीं मिलता। चाद जादिके गहाट नामक किसे व्यक्तिने इरम शहर और उसका बागू लगाया था।

वर्तमान श्रव जातिका दो दल होता है, खातो और असनो। प्रथम दल खातन या जोपुतन और द्वितीय दल इन्नाहीमके पुत्र इय्याइलके वंशमें उत्पन्न हुआ है। खातन श्रवके दक्षिण पश्चिम और इय्याइल वंश के जातमें रहता है।

खातनके लहकिका नाम यारव था। कोई-कोई कहता, इसी यारव शब्दसे इस देशका नाम श्रव हुआ है। यारवके यशाव, यगावके अद्दुश साम और

सूर्योपासना करती, जो उसने प्राचीन पारसियोंसे सीखी थी। भूत, प्रेत, पिगाच, अप्सरी, किन्नरी प्रभृतिको भी प्राचीन शरव जाति मानते रहे। शरव-के पुराने लोग सामुद्रिक, इन्द्रजाल, फलितज्योतिष और भौतिक विद्याको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे। नचत्रादिकी गति समझनेको उनके पास मान-यन्त्रादि विद्यमान रहा। कन्या सन्तानपर वध बहुत विमुख थे। कहते हैं, किसीके कन्या होनेपर जोते जो हो उसे जला डालते रहे। (प्राचीन शरव जातिके शरवपर विवरणको Journal of the Bombay Branch, Royal Asiatic Society, Vol. XII देखी।)

प्राचीन शरव जातिके साथ भारतवासो और अप-रापर जातिका वाणिज्य होता था। (J. A. S. Bengal, VII. 519) रामायणार्वादिमें लोहित-सागरका उल्लेख भी मिलता है।

सन् ई०के सप्तम शताब्द शरवका उत्तरांश यूनानियों, यूफ्रेतिस नदीका तटस्थान ईरानियों और दक्षिण भाग इथियोपियोंके अधिकारमें था; सिवा इसके शरव सकल स्थान खाली रहा। सन् ५०० या ५०१ ई०में सुइयदने जन्म लिया था। चाचीस वत्सरके षडःशतकालपर उन्होंने अपना धर्ममत व्यक्त किया। यह धर्म फेलानिमें बारह वर्ष बीता और मक्केमें घोर विद्रोहानल भड़का था। सुइयदके विपक्षगणने उनका प्राण लेना चाहा। सुइयद मक्केसे यात्रेव भाग गये। उसी समय यात्रेव मदीना या मदीनात भल्ल नबी (अर्थात् भविष्यवक्ताका नगर) कहलाया और उनके शिष्यगणने सन् हिजरोकी गणना लगायी। फिर मक्का अधिकृत हुआ और शरव लोगोंकी समझाने लगा,—सिवा अल्लाके दूसरा कोई ईश्वर नहीं, सुइयद उनके पैगम्बर हैं। सुइयदने शरव वालोंको जगतमें अपना धर्म फेलानिका आदेश दिया था। उस समय यह वाहुइल और अल्लाके साहाय्यसे चारो और नव धर्मको धूम उठाने लगे। इनका पूर्वमत और आचार-व्यवहार एककाल ही समय-स्रोतमें डूबा, जिसका कुछ दिन बाद पक्षित तज न रहा।

उसी समय ईरान देश हीनतेज हो गया। अर-युसुफका मत इतना गिथिल पड़ा, कि नव-नव धर्म उसपर अपना आधिपत्य जमाने लगा था। फिर सुइयदका मत ईरानमें फैला, जहां शरवोंकी संख्या बढ़ते गयी। सन् ई०के सप्तम शताब्द अब्बास नवधर्मके प्रधान रक्षक बने। खलीफा मोयावि-यरके भ्रमन देश भाग जानसे कदेविमें उमैयद खलीफाने अपना राज्य जमाया। क्रोट, कर्गिका, सरदनिया और सिसिली द्वीप शरवोंके हाथ जा पड़ा था।

अब्बास वंशके राजगणने बगदादको अपनी राजधानी बनाया। इस वंशमें कितने ही विद्योत्साही राजा हुए थे। उनमें खलीफा मनुसर फारुन्-अल्ल-रसौद और मानून् ममहर हैं। इनके समय नानादेशीय विचक्षण पण्डित बगदादकी राजसभामें उपस्थित रहे। उनमें भारतवर्षीय शास्त्रविद् पण्डित-गणका भी नाम मिलता है। वेन-अल्ल-अन्वा फितल कातुल अतवा नामक ग्रन्थमें देखेंगे,—इन गृप-तियोंकी बगदाद राजधानीमें भारतवर्षीय गणित, ज्योतिष और चिकित्साशास्त्र प्रभृति पढ़ाया जाता था।

शरवोंने वाणिज्यमें विशेष उन्नति पायी थी। ईरान, सीरिया, मौरिनिया और स्पेन देश जीतने बाद यह नाना देशोंमें पहुँच व्यवसाय-वाणिज्य चलाने लगे। सन् ई०के अष्टम शताब्द इन्होंने भारत-वर्षमें पैर रखा था। उसी समय कितने ही हिन्दू नरपतियोंको इसनाम धर्मको दीवा दो गये। इति-हास-रचयिता गिवन साहबने लिखा है,—शरवोंके द्वारा ही रोमक साम्राज्यका पक्षपतन हुआ। कोई-कोई कहता,—सन् ई०के एकादश शताब्द शरवोंने ही सर्वप्रथम अमेरिकाका दूट निकाला था।

शरवमें बहूयिन नामक जाति रहती है। कोई-कोई इसे शरवका आदिम पश्चासी बताते हैं। इसका धर्म दस्युवृत्ति है। इसमें सभी योद्धा और सभी भिषासक रहते हैं। मरुभूमि इसका वास-स्थान है। पहले यह शरवके प्राचीन धर्मको मानती

सो, सुन्दरने घडोवया वाट विलने को कोटीने दव-
 ज्जात घडोको घडन (का)। चव वाट जाति पाठोठिवा,
 धिवाकोठेठिवा, म विवा, रवीं, ज्योवया थीर सोठाम-
 के कलमामे भा रहतो हे। बहूदिन सोन पनपन
 थीर हुवापथीको घडोवया वापीठामाको बहूदा मज
 भने हे। इस जातिमे जव हुन विद्यमान हे। विमो
 को घावेक वाया घडवार मज्जा मापुम होवा थीर
 कोरें घावे। मीलि-मोठिका घडुवापी हे। जिन
 सोमोठि घावेक घटा मज्जा, जममे वक घडा होवा हे।
 इस कर्मका मज्जा कडने हे। मेल, घडने घडिवा
 थीर दाव ठामके मज्जा कायें वाटा होवा हे। विदु-
 वावदु वडुने दुमने मेलुका मावाण जिया वावा हे।
 विमो घडव वडुने मज्जामे भावा ठामके मज्जा मज्जे
 जिन घावे कडने हे। मज्जा मावः घावेक चद कर्मवा-
 रिठिका वावादि देवने दुममा थीर मज्जा कडनेको
 बडन बहूदा मज्जाका हे। बहूदिन विमोको घावे



परयो

देव जमके घाव घडुवता, थीर सुमाकिरने कडता
 हे.—महे ही जावे थीर हुवाके घाव जा वडु ही घडे
 रव हो। ददि वड देवा घडोकार कडता, तो जुरव
 मज्जा माव-घडवार मे मेल, विजु जामने विमोको
 महीमावता। दुमने ठाम भा देवने.—जव कोरें घडिक
 मज्जाजिने वडुके जाम जा थीर वाट मज्जा जावा,
 जव बहूदिन वडुने घडोवयाका काव कडता हे। वडु
 कोरें भा वडु मज्जा घडिक को वाट दिवता, वावावादि
 हे वाव कडता थीर जमो घडोवाथ वावाव कडनेमे

सो जही विवडता। बहूदिन जाति मज्जा घडने थीर
 जाति बहूका कडता घडमने हे। इमने वडु मजे
 मज्जा को मेलमज्जा कोने, जममे मज्जा-घडने को घडव
 थीर जातिन वडु, विवादि कडने हे। बहूदिन वावको
 घडोवया मज्जा हे। जमका वावावादि घडिजिजु
 हे। मज्जाजमने मज्जा-वडु मज्जा, जिने भाव वावव
 घडता काव कडने हे।

- १ परव देमका घाटा, परवो घोडा। २ परव-
 का घडिवापी, श्री परवो कडता को।
- परव (सिं वि०) जमरदिन, धिवाविम, जिमका
 कोरें पर-वो न वडो। ३ परवावाक, मीमावुमी,
 मज्जा।
- परवावा (सिं जि०) १ मज्जाको होवा, (दवका)
 २ जामोठि मज्जा, धव-धव कावा।
- परवो (सिं घो०) मज्जा, वडुमज्जा, परवावट।
- परविद्यान (का० पु०) परव देम, परवोका मज्जा।
 परवो।
- परवो (का० वि०) १ परव देमोव, परवके मज्जाका।
 (पु०) २ परव देमका घोडा। यह जिवावत मज्जा
 म, मज्जाको, मज्जाको जमने थीर वडु मज्जाको
 होवा हे। इसका मावा घोडा, थीव वडो, काव
 कडता, माव-वडु मावा, घुवा कवा, वडु कडको
 घडो, थीर घडाम मज्जाको कडता हे। परवोको
 वावको दुममा घोडा मही का मज्जा। ३ परवो
 कंट। यह बहुत मज्जा; मज्जाको जमने थीर
 विवादि-विने देमजामने कर्मवाका हे। ४ माव,
 विमो जिवाका वावा। ५ परवको भावा।
- परवो मज्जाक भावामे जिवाको हे। सुन्दरने
 मज्जा वडो मावने कडतो घो। इमको विवाववापी
 विमू भावामे को मज्जा हे। मज्जा मज्जाकार मज्जा-
 माव इस भावाका वावर कडने हे। वाववत वडु
 वाव, मीविवा, जिमर थीर मज्जा-घडोवामे कडने
 हे। मज्जाको मज्जा मज्जाको, देवा थीर विदु-
 जावके मज्जाको वडु मज्जाको मज्जा हे। इव
 भावामे वडु-वडु मज्जाको मावा जिवा मजे हे।
 इमको जिवाको को काव मज्जाको विने कडने

भाण्डारमें माह्यभापाके तौरपर लेकर रखी है। छिन्दी
भापामें भी शरवीके कितने छी शब्द चलते हैं।

शरवीला (हिं० वि०) साधारण, मामूली, विसमझ।
शरभक, शरभ देखो।

शरभू (वै० शब्द०) १ शीघ्र, जल्द, फौरन। २ योग्यता-
पूर्वक, माकूलियतके साथ। ३ पर्याप्तरूपसे, काफी।

शरभ (सं० त्रि०) न रम्यतेऽनेनात्र वा; रम करणे
ऽधिकरणे वा अच्, नञ्-तत्। १ शयन, खराब।
२ निरुद्ध, हकीर। (पु०) ३ नेचरोग विषेय, आंखकी
कीई बीमारी।

शरभण (सं० त्रि०) श्रानन्द न देनेवाला, नागवार,
जो खुश न करता हो।

शरभणोय (सं० त्रि०) श्रानन्दशून्य, नागवार।

शरभणोयता (सं० स्त्री०) श्रमियता, नागवारी।

शरभति (सं० स्त्री०) शरा शब्दार्थो मतिः, कर्मधा०
पूर्वपदस्य पुंश्रवावः। १ पर्याप्तबुद्धि, दानायी, सम-
झदारो। २ दीप्ति, चमक। ३ प्रद्योत, जमीन।
४ धन, दौलत। ५ पर्याप्तसुति, काफी तारोफ।
६ सर्वत्रगामिनी, सब जगह जानेवाली।

शरभेदके अनेक स्थानमें यह शब्द पाया और
सायणाचार्यने इसका नाना प्रकार अर्थ लगाया है,—
शरभतिः श्रिता देव शरणम्। (अच्. १।१८४) इसके भाष्यमें
सायणाचार्यने लिखा था, 'शरभतिः श्रमपरतिः। मतस्तव यह,
कि सुखिर न रहनेवाला शरभति कहता है। श नो
नशोमरमतिः। (अच्. १।१८१) भाष्यमें 'श श्रमलात् रमनात्
संज्ञे नलो श' सर्वत्र रमनात्, सब जगह जानेवाली स्त्रा
देवता। श नो श्रमपरतिः। (अच्. १।१८१) 'उपरतिरिति' पर्यात्
स्थिर न रहनेवाली। शर शो नो शरभतिः (अच्. १।१८१)
भाष्यमें 'शरभमार्थं श्रमपरति' यानी भोग करनेका घनादि।
मति नः शोम लक्षा जुयेत शरभमे शरभतिर्ह्युः। (अच्. १।१८१)
भाष्यमें 'पर्याप्तबुद्धिः' पर्यात् जिसकी बुद्धि पर्याप्त रहे।
शरभतिरनर्थावो विभो ईरथ सनथा। (अच्. १।१८१) भाष्यमें
'शरभतिः पर्याप्तसुतिः' यानी काफी तारोफ पानेवाला। इसी
तरह अन्यथा शरभमें भो 'शरभति' शब्दका प्रयोग
देखा जाता है।

शरभसाय (सं० त्रि०) १ श्रमिय, नागवार। (वै०)
२ श्रमिन्, शब्द न देनेवाला।

Vol. II. 41

शरभपिठ (सं० त्रि०) श्रमिय, नागवार।
शरभनी (जा० पु०) शरभेनिया प्रदेशका अधि-
वासी, जो शरभ शरभेनिया मुल्कका वाग्निन्दा हो।
यह श्रमिय रूपवान् होता है।

शरभान (तु० पु०) श्रमिप्रेत, होसला, श्राहिम।
शरयी, शर देखो।

शरर (सं० स्त्री०) श्रच्छति प्राप्नोति द्वारम्, श्र
गती शर। कपाट, किवाड़। 'शर' कपाटम्। (उच्यते)
२ आच्छादन, ढकन। (पु०) ३ श्रमियविशेष। ४ बंग-
कोप। ५ उलक, उलू। ६ यज्ञका भाग विशेष।
७ युद्ध, लड़ाई। (हिं० शब्द०) ८ श्रायं, तपस्सुव।
छोलीमें जो कबीर गाते, उसके पादिमें इसे लगाते हैं।
शररना दररना (हिं० क्रि०) पीसना, दलना, टुकड़े-
टुकड़े करना।

शरराज—विहारप्रान्तके चम्पारन जिलेका एक गांव।
यह अक्षां २६° ३३' ३०" उ० और द्रावि० ८४° ४२'
१५" पू० पर बसा है। इससे दक्षिण-पश्चिम कीई
भाध कोस सुरसुरे पत्थरका श्रायक-स्तम्भ है।
उसपर सुन्दर शरभमें उनका कुछ श्रायन पढित है।
प्रस्तरस्तम्भ ३५ फीट ऊंचा होगा। ब्यास श्राधर
पर ४२ और श्रायं पर ३८ इंच पड़ता है। लोग इस
स्तम्भको 'लौर' कहते हैं। इसीके नामपर पास ही
लौरिया गांव बसता, जहाँ प्रति वर्ष महादेवका मेला
लगता है। प्रतिमा किसी गधरे और सूयि कुयेंमें
मिलेगी। उसी पर विशाल मन्दिर बना है।

शरराना (हिं० क्रि०) १ शब्दके साथ पठित होना,
झोरसे गिर पड़ना। २ चिन्ताना, झोर-झोर भावाज
निकालना। ३ टट पड़ना, एकाएक गिरना।

शररि (सं० स्त्री०) रा दाने कि, मञ्-बहुषी०।
१ सुख, शाराम। २ कपाट, किवाड़। ३ द्वार,
दरवाजा।

शररिन्द (वै० स्त्री०) शररि श्रमः श्रदत्तं सुखमिति
श्रियः ददाति दा-क। १ जल, पाव। २ सोमरस प्रस्तुत
करनेका पात्रविशेष।

शररिया—विहारके पुरनिया जिलेकी एक लक्ष्मील।
यह अक्षां २५° ५६' १५" उ० २६° २०' उ० और

उम्मेदखान्की फौजने फेनी नदीपर पड्डु'च भरा-
कानियोंको युद्धके लिये तैयार पाया था। किन्तु
मुगल सवारोंको देख उनके हक्के छूट गये और पोछे
पैरों चटगांवको भागना पड़ा। हुसेन-वेगने उम्मेद-
खान्की फौज थायी सुन अपना जहाजी वेड़ा सन्धीप-
से भागे बढाया था। कुमरिया नामक स्थानके समीप
भराकानियोंने तीन सौ हथियार बन्द नाव से हुसेन
वेगपर आक्रमण किया। यद्यपि हुसेनवेग पोतुंगीजोंके
सहारे शत्रुको पधात्पद करनेपर हतकार्य हुए,
किन्तु नावकी नयी लड़ाई देख उनके हीम उड़ गये
थे। उन्होंने अपना वेड़ा जल्द-जल्द किनारे लगा
उम्मेदखान्की फौजका सहारा लिया। दूसरे दिन
भराकानियोंके युद्ध आरम्भ करने पर उम्मेदखान्की
ऐसा भोजा मारा, कि उन्हें पीछे ही हटना पड़ा।
उसके बाद दोनों फौज चटगांवको रवाना हुईं।
चटगांवके भराकानो अपने जहाजी वेड़ेको हार देख
रातको किछा छोड़ भागे जा रहे थे। उसी समय
मुगल सवारोंने उनके दो हजार आदमोंके द कर
गुलामके तौरपर बेच डाले। भराकानियोंका
आक्रमण रोकनेको उम्मेदखान् चटगांवमें कितनी ही
फौज छोड़ गये थे।

भराकान योमा—पर्वत अर्षीविशेष। यह नागादेश
और मणिपुरके पर्वतसे पश्चिम त्रिपुरा, चट्टाम और
उत्तर-भराकान तक बङ्गालकी पूर्वसीमा निर्धारित
करता है। उत्तर-भराकानमें इसकी जो शाखा आती,
वह नीलपर्वत कहाती और समुद्रतलसे ७१०० फीट
ऊंची है। उत्तरकी दक्षिणघाटी नीचे ऊंची
रहनेसे खसने-फिरनेके काम नहीं आती। धानकी
घाटी अच्छी है। यहाँ पानी कम मिलता और
तरी ज्यादा रहती है।

भराग (सं० त्रि०) विरक्त, रागहीन, धोमा, ठण्डा,
जिसे जोक न रहे।

भराज (हिं० वि०) १ नृपतिरहित, राजाकी न
रखनेवाला। (पु०) २ भराजकता, बलवा।

भराजक (सं० त्रि०) नास्ति राजा यस्मिन्, नञ्-
बहुव्री० कप्। राजशून्य, विवादाह।

भराजकता (सं० स्त्री०) राजा न रहनेको स्थिति,
जिस क्षत्तमें वादशाह न रहे।

भराजन् (वै० पु०) राजा न होनेवाला व्यक्ति, जो
शख्स वादशाह न हो।

भराजभोगिन् (सं० त्रि०) राजाके व्यवहार भयोग्य,
जो वादशाहके काम अपने काबिल न हो।

भराजस्थापित (सं० त्रि०) राजाकी आस्थासे भ्रम-
तिष्ठित, जिसकी सरकारी नैसन न मिला हो।

भराजिन् (वै० त्रि०) न राजते; राज-विनि, नञ्-
तत्। १ दीमिशून्य, धुंधला, रोगनी न रखनेवाला।
२ अनभिभूत, जो रुक्ता न हो। राजा पछिछाएलें ना-
स्त्रास्मिन्, भ्रौह्मादि० इति, ततो नञ्-तत्। ३ राज-
शून्य, विवादाह।

भराजीव (सं० पु०) भरं रथाङ्गं तद् प्रस्तुतेन आ
सम्यक् जीवति, पर-आ-जीव-धच्। १ रथकार, गाड़ी
बनानेवाला, बट्टर। (त्रि०) नास्ति राजीवं यत्र,
नञ्-बहुव्री०। २ पद्मशून्य, कमलसे खाली।

भराटकी (वै० स्त्री०) अजशुद्धी, मिट्टामिगी।

भराड़ जाना (हिं० क्ति०) गर्भपात होना, हमस
गिरना। यह शब्द पशुके गर्भपातका ही द्योतक है।

भराति (सं० पु०) न राति ददाति किमपि कुशलं
वा। १ शत्रु, दुश्मन। रिपो र्भादि चरिषाति पारति।
(पर) २ ज्योतिषोक्त पठस्थान। ३ कामादि कः
रिपु। ४ कः संख्या। (वै० स्त्री०) ५ दानाभाव,
वर्षाशिशुकी अद्ममौजूदगी। ६ अप्रसन्नता, नाराजी।
७ द्रोह, दुश्मनी। ८ असफलता, नाकामयादी।
९ दुर्दिन, बुरा वक्त। (त्रि०) पतिगमनशील, प्युव
चलनेवाला।

भरातिदूषण (वै० त्रि०) शत्रु वा दुर्दिननाशक,
दुश्मन या बुरे वक्तको दूर करनेवाला।

भरातिदूषी, चरतिदूषश्चेति०।

भरातिभङ्ग (सं० पु०) शत्रुका पराभव, दुश्मनकी हार।
भरातिष्ठ, चरतिदूषश्चेति०।

भरातीयत् (वै० त्रि०) १ विद्रोही, लपथ, हसदी-
बधुल। २ शत्रुवत् पाचरव-करनेवाला, जो तत्र-
लोफ देनेकी फिक्रमें लगा हो।

शरातोयु (वै० त्रि०) शरातिरिवाचरति, शराति-
कल्प-उ। मद्यमुष्य चाचरणमोन, दुग्मनकी तरह
काम करनेवाला।

शरातोयन्, शरातोयु शब्दोः।

शराधि (वै० स्त्री०) शराध, टोप, पाप, गुनाह,
इजाय, रिव।

शराधन, शराधन शब्दोः।

शराधना (हि० स्त्री०) १ शराधन लगाना, उपा-
सना करना। २ पुलना, शरचना। ३ जप करना,
ध्यान साधना।

शराधम् (वै० त्रि०) राधा धनं तयास्ति यय्य,
बहुमी०। १ धनरहित, वैदीनत। २ कृपारहित,
नामिहरवान।

शराधी, शराधी शब्दोः।

शराना, शराना शब्दोः।

शरावा (अ० पु०) १ रथ, गाड़ी, बहल। २ तोप
रखनेकी गाड़ी। ३ लहावी तोपीका साथ-साथ एक
घोरकी दागा जाना।

शराम, शराम शब्दोः।

शराय (वै० त्रि०) रायते यन्नादी दीयते दक्षिणा
दित्वेन वा, रा कर्मणि घञ् युक् घ, नञ् बहुवो०।
धनग्रन्थ, दानहोग, गुरोष, बखीन।

शरायक्षय (वै० त्रि०) १ पिशाचादिको नाग
करनेवाला, जो गैतानकी नापेद कर देता हो।
(स्त्री०) २ पिशाचादिका नाग, गैतानका मटियामेट।

शरायघातन, शरायघातन शब्दोः।

शरायस—गुल्लप्रदेगके इलाहाबाद जिलेका एक घाम।
यह यमुनाके दक्षिण किनारे गङ्गाके सङ्गमपर घमा है।
यहां हिन्दुओंका कोई बहुत पुराना शहर रहता, जिसके
बर्तनकी तारीख गुप्त ही गयी। एकबर चादगाहने
किरसे बनवा इसका नाम जलालाबाद रखा था।

शरायी (वै० पु०-स्त्री०) पिशाचादि, गैतान।

शरायट, शरायट शब्दोः।

शरायोट (हि० पु०) हृष-विमिष, तीसुर। (Ar-
rowroot, Maranta arundinacea) यह पहने
अमेरिकाके डोमिनिका, बारबेडोस और जामैका प्रांत-

में मिला था। कहते हैं, सन् १७५६ ई०में लोग
इसे जामैकाके वागुमें बोते और इसकी जड़से घामा
भोजन बनाते रहे। सबसे पहले यह मिलहटमें
लगया गया था। भारतमें तीसुर कल्पवृक्ष होते भी
कितने ही लोग इसे अमेरिकाका ही हृष बताते हैं।
किन्तु पूर्ण समय भारतका तीसुर युरोपमें प्रसिद्ध था।

मई मास इसकी जड़ जमीनमें गाड़ी जाती है।
खारी तीन-चार इंच गहरी दो फीटके फर्क पर
रहती, जिसमें डेढ़-डेढ़ फुट दूर जड़ गड़ती और उस
पर टांकनेको मछी चढ़ती है। दोमट और बतुई
जमीन इसके लिये फ़ायदेमन्द है। पोषको जगमें
पर पालूकी तरह निराते हैं। इसको पानीको बड़ी
जुहरत रहती है। यह पगक्षमें फूलता और जनशरी
फरवरोमें काम लायक होता है। किन्तु फूल तैयार
होनेसे एक या दो महीने पहले इसमें पानी नहीं देते।
योंकि उस समय सींचनेसे इसकी लड़ कधी रह
जाती है। पत्ती भड़नेसे लड़को खोदकर निकालते हैं।

इसके बनानेकी तरकीब बहुत सीधी है। लड़को
पच्छी तरह धो और लकड़ीकी बड़ी चोखलोमें फूट-
कर लेयी बना लेते हैं। फिर बड़ी लेयी पानीसे भरे
बरतनमें रखी जाती है। ऐसा करनेसे रोग पानीपर
तेरने लगता, जो फिर फूटा और उभी बर्तनमें छाना
जाता है। रोगको गाद पच्छी तरह निकल जानेसे
फेंक देते हैं। अन्तकी बर्तनका पानी दूध-जंभा
देख पड़ता है। उस पानीको मोटे कपड़ेमें दूधसे बर्तन-
में छान लेना चाहिये। गाद नीचे बैठ जानेसे मैसा
पानी फेंक साफ पानी भरते हैं। जब गाद पच्छी
तरह जम जाता, तब बर्तनका पानी धीरेसे छान देते
हैं। उसके बाद बड़ी गाद कागज पर धूपमें सुधानेसे
परारोट बनता है।

यह रोगी और ग्रिगके लिये मद्योपकारी श्राव्य है।
इसके हजम होनेमें कोई खट-खट नहीं। भारतपर्यंके
हनवायी इसमें तरह-तरहकी मिठाई बनाते, जिसे
लोग प्रतके दिन खाया करते हैं।

शरान्न (सं० पु०) शरं शीघ्रं पान्नाति शृङ्गाति मग्न,
शर-पा-ना-क। १ मद्यश्रायी हस्ती, मत्तवासा ह्ययी।

२ सर्जरस, राल, धूना । ३ शालग्रह । (वि०) ४ वक्र, टेढ़ा । ५ पड़ियेके आरों-जैसा फैला हुआ । 'अरालः समर दिशि । वक्रं सर्जरसं च ।' (धन)

अरालपञ्चमनयन (वि० त्रि०) टेढ़ी पलकवाला ।

अरालय—बम्बई कोल्हापुर राज्यवाले चमारोंके पूर्व-पुश्प । कहते हैं, कि इन्होंने अपनी शालका जता बना महादेवजीको पहननेके लिये दिया था । उसीसे नाराज हो महादेवजोने इन्हें जन्म भरके लिये मोची बना डाला ।

अराला (सं० स्त्री०) १ अपवित्र स्त्री, नापाक भीरत ।

२ सरल स्त्री, हलीम भीरत ।

अरावन् (वै० त्रि०) रा-वनिप, नञ्-तत् । अदाना, कृपण, बखील, बखूगिय न करनेवाला ।

अरावल, अरावल देवो ।

अरावली—पर्वतश्रेणी विद्येय, एक लम्बा पहाड़ । यह अक्षां २५° एवं २६° ३०' उ० और द्राधि० ७३° २०' तथा ७५° पू०के मध्य अवस्थित है । इसका अन्न तीन सौ मील राजपूताने राज्य और अजमेर जिलेके बीच फैला है । इसमें कितनी ही खड्डो चटानें और घोटियां मौजूद हैं । उनको चौड़ाई छःसे साठ मील और उंचाई एक हजारसे तीन हजार फीट तक है । सबसे बड़ा पहाड़ भावू ५६५३ फीट उंचा है । अरावलीमें भुरभुरा, टोस काला नीला, विघ्नोरी और रंगदार पत्थर मिलता है । इसकी छोटी श्रेणी-जैसी चमका करती है । उत्तर औरने लूनी और सखी नदो निकल कच्छके रत्नमें जा गिरती है । दक्षिण और भी कितनी ही नदो बहती, जिसमें चम्बल यमुनाकी बड़ी सहायक है । इस पर्वतमें छपि क्षेत्र था यन अधिक नहीं मिलता । कितनी ही जगह डेरका डेर पत्थर और रेत पड़ा, फिर कितनी ही चमकीला पत्थर भी भरा है । चटानदार पहाड़के बीचकी उपत्यका रतीला जङ्गल है । कहीं-कहीं तर जगह पर खेती भी होती है । अजमेर नगरके निकटकी भूमि अतिशय उर्वर है । पर्वत पर मेर लोग दूर-दूर बसते हैं । यह पर्वतश्रेणी कुछ-कुछ दिशि तक चली आयी है ।

अरास—गुजरात प्रान्तका खान विद्येय । यह पानन्द और महीके बीच जो मैदान पड़ता, उसपर अवस्थित है । मन् १७२३ ई० को यहां हमीद खान् भीर सरतके सूबेदार रक्षामु भली खान्से घमासान नड़ाई हुई थी । अन्तको पीलाजी गायकवाड़के साहाय्यसे रक्षामु भलीने हमीद खान्को मार भगाया ।

अरासलार—मन्द्राज प्रान्तके तन्धोर जिलेके कावेरी नदीका मुहाना । यह प्रधान धाराके दक्षिण तट अक्षां १०° ५६' उ० एवं द्राधि० ७८° २२' पू०से फैलता और पूर्वकी ओर बीस कोस बह करिकालपर समुद्रमें जा गिरता है । इन मुहानेमें हजारों एकर भूमि सिंचती और लाखों रुपया आता है ।

अरि (सं० पु०) ऋष्यति गच्छति अनिष्ठार्यम् ।

१ शत्रु, दुश्मन । २ रथाङ्ग, गाड़ीका हिस्सा । ३ चक्र, पहिया । ४ विदुखदिर, दुर्गन्ध खैर, परिमद । यह कपाय, कटु, तिक्त और रक्तपित्तप्र होता है । (रा०निघण्टु) ५ काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य—यह छः वृत्ति । ६ छः संख्या । ७ ज्योतिषोक्त लग्नसे छठां स्थान । ८ ईश्वर । ईश्वर अपराधीको शास्ति देनेसे इस नाम पर पुकारा जाता है । ९ ज्योतिष शास्त्रोक्त परस्पर परिग्रह । रविका शुक्र एवं मनि, मङ्गलका बुध, बुधका चन्द्र, बृहस्पतिका बुध तथा शुक्र, शुक्रका रवि एवं चन्द्र और शनिका परि रवि, चन्द्र तथा मङ्गल होता है । चन्द्रका कोई भी ग्रह परि नहीं । शिवा इसके कोई रामिष्य ग्रह अन्य राशिग्रहसे प्रथम, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम और नवम स्थानमें रहनेसे उसका तत्कामोन्न परि व्रमता है । अकथह और अकथम चक्रके चतुर्थ कोष्ठ एवं चतुर्थ कोष्ठस्य मन्त्रकी भी परि कहते हैं ।

अरिपा कंध—उड़ीसा प्रान्तके पट्टन जिलेकी एक जाति । इसने अपने प्राचीन पहति नहीं छोड़े । इस जातिके लोग भैंसेको बलि चढ़ाते, विशाखमें सूपरका मांस खाते और हरिष्य एवं पक्षीकी भी मार अपना पेट भरते हैं । बौद्धकंधने अपना सम्पूर्ण सामाजिक व्यवहार इस जातिसे बन्द कर रखा है ।

परिन्द (हि० पु०) इन्द्र-जैमा प्रथम शत्रु, जो दुश्मन निहायत जोरदार हो।

परिकर्षण (सं० पु०) शत्रुको र्शुचनेवाला व्यक्ति, जो शत्रुम दुश्मनको सुनी बना लेता हो।

परिकुन (सं० स्त्री०) शत्रुका शत्रु, दुश्मनका शत्रुमान्।

परिकेशरी—१ इन्द्रई प्राक्तवाले उत्तर कोहिन जिलेके गिनाहारवंशज नृपति विशेष। सन् १०१७ ई०की यह ममथ कोहिनमें अपना राजत्व फैलाये थे। इनका दूसरा नाम केशोदेव रहा। २ सपादनचवाले चातुष्य नृपति प्रथम सुधमलके पुत्र। यह जोसेमें राजत्व चलाते रहे। यह प्राक्त शय धारवाह जिलेमें मिला गया है। इन्होंने शक ८६३ में पम्पा नामक जन कविसे कलाड़ी भाषामें 'विक्रमाजुंनविजय' वा 'पम्पा-भारत' लिखाया था। इनके पुत्रका नरसिंह और घोत्रका नाम दुग्धमल रहा।

परिकेशी—केशीके शत्रु श्लोक्षण।

परिकोद—मन्द्राज प्रांतके मलवार जिलेका एक नगर।

यह अक्षा० ११° १४' १०" उ० और द्राघि० ७६° ३' २१' पू० पर अवस्थित और विपुर नगरसे दश कोस पूर्व विपुर नदीके ही दक्षिण किनारे बसा है। अरि कोद अपनी लकड़ीवाले व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है।

परिक (सं० त्रि०) पूर्ण, भरा-पूरा, जो खाली न हो।

परिक्रमार्ज (सं० त्रि०) ऋक्ष्यं पिष्टपैतामहादि क्रमागतधनं भजते पतितादिना न सभते; अरिश्य-भङ्ग-पिच, अचूर्दस्यशा इति वदसमर्थममा०। अर्नग, नावारिम, जो बुराकाम करनेसे अपने वाप-दादेकी जायदाद पा न सकता हो।

परिक्रमार्ज, अरिश्यमत्त श्लो०।

परिक्रिप—अकलके एक पुत्र।

परिक्रुर्ण, अरिश्ये श्लो०।

परिक्रुते (वै० पु०) परये तदुपाय गृहं उद्यतः, शक० तन्। शत्रुको मारनेपर उद्यत, जो दुश्मनका कल्ल करनेको तैयार हो।

परिक्र (सं० पु०) शत्रुको नाग करनेवाला व्यक्ति, जो शत्रुम दुश्मनको मार डालता हो।

परिक्रान्त (सं० स्त्री०) १ शत्रुके विरुद्ध किया हुआ पह्यन्त्र, जो माजिग दुश्मनके विनाश की गयी हो। २ परराष्ट्र-प्रबन्ध, गैरसुखी मामलेका हस्तजाम।

परिक्रान्ता (सं० स्त्री०) अरिचिन्ता श्लो०।

परिता (सं० स्त्री०) परेर्भावः, तद् टाप्। शत्रुता, दुश्मनी।

परित (वै० पु०) ऋच्छति गमयति पारान्ताम्। नाविक, कर्षधार, मसाह, कियट, मांभी।

परित (वै० स्त्री०) अर्थसंनिव, षट् करणे इत्। नौका चल्निका उष्टग, डाह,। केनिपातक, पत-वार, सुक्रान। 'अरिच' केनिपातकम् (अरि) ३ अक्षाश, नाय। ४ सोमपात्र। ५ गमनसाधन वाहनदि, चटुनेकी सवारी। (पु०) ६ व्यक्तिविशेष, क्लिषी शत्रुमका नाम। (त्रि०) ७ जाता हुआ, जो हांक रहा हो। ८ शत्रुसे बचानेवाला, जो दुश्मनसे हिंसा-जत रक्षता हो।

परित (सं० स्त्री०) अरिता श्लो०।

परिदमन (सं० त्रि०) १ शत्रुको दमन करनेवाला, जो दुश्मनको दबा देता हो। (पु०) २ दमनके पुत्र और लक्ष्मणके लघुभ्राता शत्रुघ्न।

परिदाम्ना (वै० पु०) अरिः शत्रुः दाम्नाः दमितो येन, बहुव्री०। शत्रुको अभिभूत करनेवाला, जो दुश्मनको डराता हो। २ यदुर्वर्गीय क्षत्रियविशेष।

परिद्विदादय (सं० पु०) अरीणां प्रहाराणां परस्परं दाम्नां द्वादय प्रहाः यत्र। अजन्त बहुव्री०। विवाहका निषिद्ध योगविशेष। धनु मकर, कुम्भ मीन, मेष वृष, मिथुन कर्कट, सिंह कन्या, तुला वृश्चिक—इन सबके परस्पर मिलनेसे अरिद्विदादय योग होता है। अर्थात् वरका राशि यदि धनु और कन्याका मकर हो, तो विवाह निषिद्ध है। इसीतरह कुम्भ मीनादि भी निषिद्ध हैं। द्विदादय कक्षनेका तात्पर्य क्लिषी राशिसे दूसरे राशिका वारहवें स्थानमें पड़ना है।

परिधायम् (वै० त्रि०) अरिभिरोग्गरेर्धायेते, अरिधा-असुन्। १ ईश्वरधायं। २ प्रसन्नतासे दुग्ध प्रदान करने-वाला, जो राजीसे दूध देता हो। ३ बहुमूल्य, कीमती।

चरिन् (सं० स्त्री०) चक्र, पहिया ।
 चरिनन्दन (सं० त्रि०) चरोन् शत्रून् नन्दयति तोप-
 यति ; चरि-नन्द-णिच्-लुप्त, उप-समा० । १ शत्रुको
 मन्तुष्ट करनेवाला, जो दुश्मनको खूब करता हो ।
 २ इन्द्रियासक्त, नफूसपरस्त । ३ व्यसनासक्त, बढ
 चादत ।
 चरिनिपात (सं० पु०) शत्रुका आक्रमण, जो
 हमला दुश्मनने मारा हो ।
 चरिनुत (सं० त्रि०) शत्रु, क्षारा भी प्रशंसामात्र,
 जिसको तारोफ दुश्मन् भी करे ।
 चरिन्दम (सं० त्रि०) चरोन् शत्रून् दाम्यति शम-
 यति दमयति वा, दमि शमनायां खच् सुम् च ।
 १ पराभिभावक, दुश्मनको जीतनेवाला । २ काम-
 क्रोधका निवारक । (पु०) ३ व्यक्तिविशेष, किसी
 शत्रुसका नाम । ४ सुनिविशेष ।
 चरिपु—नल राजाके पिता ।
 चरिपुर (सं० स्त्री०) शत्रुका नगर या देश, दुश्मन्-
 का शहर या सुष्क ।
 चरिपूरिम (सं० पु०) विट्खदिर, दुर्गन्ध खैर ।
 चरिप्र (सं० त्रि०) रिप्रं पापं तत्रास्ति यस्य, नञ्-
 बहुव्री० । १ पापरहित, बेगुनाह । (स्त्री०) रिप्रं
 कुत्सितं, ततो नञ्-तत् । २ कुत्सित न होनेवाला,
 जो खराब न हो ।
 चरिफित (सं० त्रि०) रिफ न बननेवाला, जो
 बदल कर 'र' न हो । यह विसर्गका विशेषण है ।
 चरिम (सं० पु०) चरिप्रति शब्दो ।
 चरिमर्दं (सं० पु०) चरिं चनिष्टकारित्वात् रोग-
 विशेषरूपं मृदनाति नाशयति ; चरि-मृद-षण्, उप-
 समा० । १ कासमर्दं हृत्, कर्षोदी । इसका पत्र
 रुचिकर, हृथ, विषकासरलघ्न, मधुर, वातकफघ्न,
 पाचक एवं कण्डूघोघन होता, विशेषतः कास तथा
 विषको दूर करता और धारक एवं लघु रहता है ।
 (भावप्रकाश) (त्रि०) २ शत्रुको दमन करनेवाला,
 जो दुश्मनको कुचल डालता हो ।
 चरिमर्दन (सं० त्रि०) चरोन् मृदनाति, मृद-लुप्त ।
 १ शत्रुको मर्दन करनेवाला, जो दुश्मनका कुचल

डालता हो । (पु०) २ शत्रुके सहीदर । यह शत्रु-
 रुकके औरस और गान्दिनीके गर्भसे उत्पन्न रहे ।
 ३ कैकय नरेश भानुप्रभातके भाई । यही गाण-
 वय कुम्भकर्ष हुए थे ।
 चरिमित्र (सं० पु०) शत्रुका सहायक, दुग्मन्का
 दोस्त ।
 चरिमेजय (सं० पु०) चरोनेजयति कम्पयति ; चरि-
 एज-णिच्-खग् सुम्च, उप-समा० । १ शत्रुको कंपाने-
 वाला शत्रुस, जिससे दुग्मन् कापे । २ शत्रुके सही-
 दर ।
 चरिमेद (सं० प्र०) चरिं रोगद्वयं मेदति द्विनस्ति
 मिद-भच् । १ विट्खदिर, दुर्गन्ध खैर । चरिमेदोऽव-
 खदरे (चर) यह कपाय, लण्य, तिह्र, मूत्रघ्न, शोकाति-
 सार-कासनाशक और विसर्पघ्न होता है । (राजनिषध)
 इसके व्यवहारसे मुख एवं दन्तरोग, कण्डू विष, श्लेष्मा,
 क्षमि, कुष्ठ और व्रण मिट जाता है । (मद्रास)
 २ क्षमिविशेष, कोई कीड़ा ।
 चरिमेदक, चरिमेद शब्दो ।
 चरिमेदाद्यतैल (सं० स्त्री०) तेलीपधमेद । यह मुख-
 रोगको हितकर है । मूर्च्छित तिसका तैल ८ गराय,
 चरिमेद (विट्खदिर)की त्वचा १२, गराय, ६४ गराय
 जलमें क्वाय करे । जब १६ गराय शेष रहे, तब भाग
 परसे उतार और कपड़ेसे छान मञ्जिष्ठादिका कम्क
 द्रव्य प्रत्येक दो तोला और तैल यह सब तैल-
 पाककी विधिसे पचाना चाहिये । (चक्रपाणिदत्त ३१३ सं०)
 चरियनकाज—मन्दाज प्राप्तवाले तिखवाकोड़ राश्र्यके
 शङ्कोको जिसका एक गांध, घाटी और पुष्पस्थान । यह
 घाटीको घाटीसे पाध कोस हत्ताकार उपव्यक्ताने
 पचा ८ ५८ ४५ ८० और द्राघि ०० ११ १५
 पू० पर भवस्यत है । अष्टमेयूमं कृष्टवैका कारवार
 खुननेपर तिखेनीसे तिखन्दरम् जाने-पानेको यह
 घाटी बड़ी राह बन गयी है ।
 चरियाकूपम्—मन्दाज प्राप्तके दक्षिण-चरकाट जिज्ञेका
 एक किला और सुहाना । यह पुंदिशेरीसे डेढ़
 मील दक्षिण-पश्चिम प्रान्सीनी पश्चिमारेके पत्तगंत
 पचा ० ११ ५५ ८० और द्राघि ०८ ४२ ५० पर

पत्रव्यित है। मन् १०४६-६० ई०की पुंदिचेरीमें जो पृष्ठ हुआ, उसमें हम विने पौर मुहानेने पड़ा काम किया दिया था।

परियाना (हिं० लि०) पत्र-तथे करना, नूतनकाज निकालना, निरन्तरारयुक्त वाक्यमें सम्बोधन लगाना।

परियाःपाद—मन्द्राज प्रान्तके तिरुवाङ्कोड राज्यका पवित्र देवालयतन। यह पचा० ८° १७' उ० पौर द्राधि० ७६° २८' ३१' पू० पर अवस्थित है। इसका भवन उल्लेख-योग्य है। दूसरे जो कमरे पाराम नेने वगैरह को बने, उनके सबसे भी कितने ही लोग यहां आ पड़ते हैं। अपने माममें घटे समारोहमें वार्षिकी-सूत्र होता है। राज्यमें कितना ही धन मन्दिरके व्ययनिर्वाहार्थ दिया जाता है।

परियान पान्—मिथ वङ्गानदेगका नद्विगीय। यह पचा० २२° १०' ३०" एवं २१° २६' उ० पौर द्राधि० ८०° ०' ३०" तथा ८०° ३३' ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। इसे फरोदपुर नगरके पास पद्मामे निकल फरोदपुर पौर बाकरगञ्ज ज़िलेमें घड़ते पायेंगे। योषमें इसकी चौड़ाई १००० पौर वर्षामें ३००० गज रहती है। पपमो कितनी ही गाढा फेना यह मोरगञ्जके पाम मेघना नदीमें जा मिला है। इसमें हर जगह पड़ी नाय चल सकती है।

परिराट्ट (मं० क्ली०) गजुका देग, दुग्मनका सुल्क।
परिना (सं० प्री०) परिरपि नायते म्छन्ते गमना-शिवार्थेने यया, परि-ला करये लिप्। मात्रावृत्त विगीय। इसमें मोलह माचा रहती है। पन्तमें दो मनु वर्ष या एक गणय लगता है। जगय इसके बोध नहीं पड़ता। इस वृत्तको कहनेमें गजुका मन भी विघन जाता है।

परिमोक (सं० पु०) विद्रोही जन या गजुका देग, दुग्मनी रघनेवाकी कोम या दुग्मनका सुल्क।

परिस (हिं० पु०) परिना शीघी।

परिवन (हिं० पु०) उषका, फंमरी, रग्गीके पगने छोरका फन्दा। इसमें मोटे या घड़ेको फंस कुयेंमें पानी निकालते हैं।

परिय (सं० पु०) नाम्नि रियो मरुष्य बाधको यष्ताम्; रिष हिंसाया क, नञ्-वद्भी०। १ पपान-

मांसज रोग विगीय, जो बीमारो दम्भको रोक देती हो। (क्ली०) न रियते केनापि प्रकारेण बाधने; रिष कर्मणि क, नञ्-तत्। २ पविष्यद्य धारावर्षेण, जो वारिग हकती न हो।

परियड्टक (सं० क्ली०) पट्ट च पट्टकश्च दम्भ० ततः पश्चिभूतं, मध्यरदनीपो कर्मधा० वद्भ्रु० वा। विवाहनिषिद्ध योग विगीय। यर एवं कन्या उभयहा रागि गणनासे पट्ट या पट्टम होनेको पड्टक कहते हैं। इस योगमें विवाह करनेसे दम्भतोका मूल्य या कलह होता है। व्योतिपमें दो प्रकार का पड्टक लगता है,—परियड्टक पौर मियपड्टक। उसमें सिंह-मकर, कन्या मेघ, मोन-तुला, कर्षट-कुम्भ, हय-धनु पौर मियुम् हृदिकवालेका नाम परियड्टक है।

परियड्डुर्ग (सं० पु०) परीषां पन्तः गजुषां कामकोधा-दीनां पड्डुर्गः, मिथभागयतवत् सामाः। काम, मोध, लोभ, मोह, मद, मानस्य नामक छः पन्तः गजु।

परियण्य (वे० लि०) न रियति द्विनन्दि, रिष हिंसायां पन्त्यक, नञ्-तत्। पश्चिमक, जो किमोको तकलीफ न पड़ुंवाता हो।

परियषत् (वे० लि०) हिंसा न क्रिया लानेवाला जिनको तकलीफ न पड़ुंवाती जाती हो।

परिट (सं० पु०) रिष हिंसायां क, नञ्-तत्। १ रीठेका हच। इसका गुण यह है—कट्ट, तोर्य, उष्य, लेखन, गर्भपातकर, विग्ध, त्रिदोषनागक पौर पड्डोहा-दाह मूलनाशक। (रेवचनिष्य) २ मधुन। ३ निम्बहच। ४ गुडुषी। ५ काक। ६ कद्द। ७ हयभासुर। ८ रम हाथने मार डाला था। ८ पलिशा पुत्र दैत्य विगीय। ८ पनितघृत्तक भूकम्पादि उन्पात। १० पनित सानका रवि प्रथति यह। ११ पौषध विगीय।

पौषधसे बने हुए मयको घामय पौर जायकी परिट कहते हैं। गुडुषी, चमया, चित्रक, दम्भो, पिष्य-मादि पनेक पौषधियोंमें बना हुआ जाय भी परिट कहलाता है। इसका गुण पार्श्व, मोघ, पड्डो, ओषादि रोग नायक है।

अनेक द्रव्य सात दिन तक पानीमें फुना करके रमकी बख्खसे छान लिया जाता है। उसको चिकित्सक लोग अरिष्ट एवं श्लोपधि जलमें पकाकर सिद्ध हुये मद्यकी भी अरिष्ट कहते हैं। यह त्रिदोष नाशक, और गर्भभावक होता है। (स्त्री०) १२ सूतिका गार। नास्ति रिष्टं यस्मात्, नञ्-बहुव्री०। १३ मरण चिह्न। १४ शुभदायक विधान। १५ सुखावस्थान, मजेकी बैठक। १६ शुभ, भलाई। १७ अशुभ चिह्न, बुरे आसार। १८ तक, मठा। (त्रि०) १९ अविनाशी, लज्जाल।

अरिष्टक (सं० पु०) १ फिनिल ह्वज, रीठेका पेड़। २ निम्बहज, नीमका दरखूत। ३ रीठाकरञ्ज. बड़ा रीठा। ४ सरलद्रुम, चीड़का पेड़। (स्त्री०) ५ मद्य, शराब।

अरिष्टकर्म्म—अभ्युद्योगके नृपति विशेष। इनका वर्णन विष्णुपुराणमें विद्यमान है। अशुभकर्म देखो।

अरिष्टगात (वै० त्रि०) अरिष्टं अहिंसितं गच्छति, गम तु नियातनात् आकारादेशः। अहिंसित-गमन, मजेसे चलने या रहनेवाला।

अरिष्टगु (वै० त्रि०) अहिंसित पशु रखनेवाला, जिसके मवेशी छोट ष्वाये न रहे।

अरिष्टहृद (सं० स्त्री०) पड़ा हुआ कमरा।

अरिष्टग्राम (वै० पु०) पर्याप्त संख्यक सैन्य-समूह, जिसकी फौज शमारमें पूरी रहे। यह शब्द मरुतम्का विशेषण है।

अरिष्टहाति (वै० स्त्री०) अरिष्टस्य भावः, अरिष्ट-तसिन्। सुखका भाव, रचा, हिकाजत। (त्रि०) २ शुभ, अच्छा, भलाई करने या धाराम देनेवाला।

अरिष्टत्रय (सं० स्त्री०) तीन अरिष्ट। यह तीन प्रकारका होता है—स्वप्नारिष्ट, वेधारिष्ट, कीटारिष्ट। उसमें स्वप्नारिष्ट पांच प्रकारका है—भोजनारिष्ट, प्रायाद्यरिष्ट, दर्शनन्द्रियाद्यरिष्ट, अक्सेन्द्रियाद्यरिष्ट, रसनन्द्रियाद्यरिष्ट। प्रथम भोजनारिष्टमें रोगके बिना ही हीन-वर्षता, दुर्मनस्कता, और भोजनमें अनिच्छा होती है। दूसरमें प्रायासाङ्गमुषता (दो मालूम होना) और प्राया हृदयशुक्लता जान पड़ती है। तृतीयादिमें नाक,

सेद, नेत्र, पायु इन स्थानोंसे प्रकृष्णत् रक्तघाव होने (खून चूने) लगता तथा रोगी कर्णवधिर, जिह्वा-कठिन और स्तब्ध हो जाता है। शरद् ऋतु सूर्यके ताप और वर्षाकाल मकानसे बाहर बाहों खुली जगहमें रहनेसे वेधारिष्ट उत्पन्न होता है। उससे होनेसे मनुष्योंको ध्वर, नीचे मुग रहना, श्याम-काम, चङ्गलकड़ना, याने सर्वाङ्गमें पीड़ा रोग लगता है। कीटारिष्टसे वालियोंके घेठमें कीटका गुच्छा हो जाता, जिससे यह कष्ट पाने लगते हैं। (जयदत्त चरने० २१ २३-५०)

अरिष्टदृष्टी (सं० त्रि०) अरिष्टन मरणसूचकनिमित्तन दृष्टा असाधो धोतुं हियंय्य, बहुव्री०। १ पामस मरणसूचकनिमित्त दृष्ट बुद्धियुक्त, मौतसे खौफ खाने-वाला। २ पामसकालमें विपरीत बुद्धियुक्त, जिसको समझ मौकोंपर बिगड़ जाये।

अरिष्टनेमि—१ विनताके गर्भ और कल्पके धोरमसे उत्पन्न पुत्रविशेष। २ जिनविशेष। यह वर्तमान अव-सर्पिणीके चौबोस तीर्थंकरमें बार्द्धक्ये ये। अशुभगण देखो।

अरिष्टफल (सं० पु०) कटुनिम्बहृद, किसी किष्ककी कड़वो नीम।

अरिष्टभर्मन् (वै० त्रि०) संरक्षक, हिंसाजत करने-वाला।

अरिष्टमयन (सं० पु०) असुरनाशन विशु।

अरिष्टरथ (दे० त्रि०) अहिंसित रथयुक्त, जिसके रथ बिगड़ा न रहे।

अरिष्टनक्षत्र (सं० स्त्री०) अत्युलक्ष्ण, मीतका निशान।

अरिष्टवीर (दे० त्रि०) अप्रताडित वीर रखनेवाला, जिसके घायल सिपाही न रहे।

अरिष्टगय्या (सं० स्त्री०) पड़ा हुआ पक्षी।

अरिष्टसूदन, अरिष्टनवन देखो।

अरिष्टहन्, अरिष्टनवन देखो।

अरिष्टा (सं० स्त्री०) १ कटुकी। २ पटोलादि। ३ नागवसा, गुलमकरी। ४ मद्य, शराब। ५ पशु, पक्षी। ६ दक्षकी कन्या। यह कल्पकी व्याहोयीं।

अरिष्टासु (वै० त्रि०) अहिंसित शक्तिसम्पन्न, जिसकी अक्षयी ताकतमें बल न पड़े।

परिष्ठाङ्ग (सं० पु०) रीठाकरञ्ज, बड़ा रीठा ।
 परिष्टि (सं० स्त्री०) रिप-क्षिन्, पमाये नञ्-तत् ।
 रिष्टि वा चिंमाका पभाव, चोटकी पदम-मोनुदगो ।
 परिष्टिका (सं० स्त्री०) १ रीठा । २ कटुकी ।
 परिष्ठ (वै० द्वि०) परये परी वा तिष्ठति, परि-
 ष्या-क षेटे षत्वम् । गदुनागके निमित्त स्थित, जो
 दुग्धमको मारने पड़ा हो ।
 परिमिष्ट—काव्यकल्पलताघट्ट-रचयिता ।
 परिह (सं० पु०) पुह्यंभीय ऋच विभेप ।
 परिहन (हिं० पु०) १ गदुपुत्र । २ वीतराग ।
 ३ रैहन ।
 परिहा (सं० द्वि०) १ गदुमंहारक, दुग्धमको
 कत्न करनेवाला । (पु०) २ गदुपुत्र, सच्यवके छोटे
 भाई ।
 परी (हिं० ष्य०) पयि, परी, पोरौ, । (स्त्री०)
 २ पड़ो, मोक्ष, जिम यत्न कोई काम पटक रछे ।
 (वि०) ३ पटकौ हुई ।
 परोठा (हिं० पु०) परिष्ठ, रीठा ।
 परीट्ट (सं० द्वि०) निष्ठ चास्त्रादे ऋ, नञ्-तत् ।
 १ गदु द्वारा पनभिभूत, जो दुग्धमसे दवा न हो ।
 २ पनास्त्रादित, जो चखा न गया हो ।
 परीत (हिं० स्त्री०) १ रीतिका पभाव, चालके
 विकास काम । २ कुरीति, बुरी चाल ।
 परोरुष्ट (वै० द्वि०) चाटान दृषा, जो चाटान न
 गया हो ।
 परोहन (सं० पु०) राजा विभेप, कोई बादमाह ।
 परीहपादि (सं० पु०) परीहण पादिर्यस्य, बहुभौ० ।
 निर्दूत अर्थात्से बुध् प्रत्ययके निमित्त पाणिन्नुक्त
 गदुममूह । इसमें निम्नलिखित गदु होते हैं,—
 परीहण, दुधय, द्रहय, भगम, उल्ल, किरण, माय्य-
 रायय, कोट्टायय, चोट्टायय, त्रैगतायय, मैतायय,
 आस्तायय, वैमतायय, गौमतायय, भीमतायय, धीम-
 तायय, मोमायय, ऐन्द्रायय, कौन्द्रायय, पाट्टायय,
 माण्डिन्द्रायय, रायस्येय, विपय, विषाय, वरुण्य,
 वद्वयन, वाण्डवीरय, कीरय, कागङ्गय, जाम्वयन,
 मिश्रय, रैवत, वैस्य, सुयय, गिरीय, पथिर, जम्बु,

पथिर, सुमर्मन्, दमय, भमन्दन, यफ, कनन,
 यश्रदत घोर मार ।
 परु (सं० पु०) १ पारगृष्य दृष; सट्टश्रीरा ।
 २ रक्तपथिर, मान घेर । ३ पतत्रण, चोटका जल्पम् ।
 ४ मर्म, जिधकी नासुक्त जगह । ५ सन्धिरान, गाँठ,
 जोड़ । ६ सूर्य, पाफताव । (हिं० ष्य०) ७ घोर ।
 परुयिका (सं० स्त्री०) परुयि मर्मस्थानाभ्यधि-
 क्षय जाता, ठन् प्रपो० सुम् । सुद्रोगविशेष, कोई
 घीमारी । इसमें साधपर कई सुंइवाले जोड़े उभर
 पाते हैं ।
 परुई, परौ ईषी ।
 परुक् (सं० द्वि०) सुस्य, जिसे घीमारी न रहे ।
 परुकटि, परुण्ट ईषी ।
 परुगृष्य, परुण्ट ईषी ।
 परुङ्गनिमेष (सं० स्त्री०) नेत्ररोग विशेष, चाँपकी
 कोई घीमारी ।
 परुष् (वै० द्वि०) नास्ति रुक् दोसिर्दस्य, बहुभौ० ।
 दीसिहोन, धीरोगनी, जिममें चमक न रहे ।
 परुचि (सं० स्त्री०) नास्ति रुचिर्भोजनाभिलाषो
 यत्; रुच्य-इति, नञ्-यदुभौ० । भोजनानिच्छा, पाने
 की जीका न चाहना । २ सुषधीडावियेय, सुंइकी
 कोई घीमारी । इसमें पानेसे कोई चीज पचरी नहीं
 लगती । ३ दृषा, मकरत । (द्वि०) नञ्-तत् ।
 ४ निराभिलाष, शिखाङ्गिग । ५ निम्बुष्ट, मापरवा ।
 ६ इच्छाहीन, शितवीयत । ७ पामसिहोन, मीज न
 रखनेवाला । ८ दीसिहोन, धीरोगनी । परुण्ट ईषी ।
 परुचिकर (सं० वि०) परुचि उगृष्य करनेवाला,
 जिसे पानेकी जो न पचे ।
 परुचिर (सं० द्वि०) पपाद्य, दृषित, जानवार,
 मपरत पत्रेज् ।
 परुच्य, परुचिर ईषी ।
 परुज् (सं० द्वि०) १ न पकनेवाला, जो पोष न
 देता हो । २ सुस्य, तन्दुवफ ।
 परुज (सं० पु०) न दजति; दन्-ञ, नञ्-तत् ।
 १ पारगृष्य दृष, सट्टश्रीरा । २ दानय विशेष । (स्त्री०)
 ३ कुटुम्ब, उभर । ४ मिन्दू । (द्वि०) नास्ति रु-

की रोगो येन यस्माद्वा, नञ् १।५-बहुव्री० । ५ रोग-
नाशकारी वस्तु, वीमारी मिटानेवाली चीज। नास्ति
रुजो रोगो यस्य, नञ् ६-बहुव्री०। गोपे ऋत्विः। ६ रोग-
शून्य, तन्दुरस्त ।

अरुभाना (हिं० क्लि०) १ उलभाना, मिलकर एकमें
हो जाना। २ ठिठकाना, चलते-चलते रुक जाना।
३ भगड़ा डालना, बहस करना।

अरुभाना (हिं० क्लि०) १ उलभाना, फन्दा लगा
देना। २ सपट-भपट करना।

अरुण (सं० पु०) ऋच्छति इयति वा सततं गच्छति,
वृत्-उनन् । १ सूर्य, आफुताव। “अरुण उदय अरुणोऽपि वाता”
(ऽन्ये)। २ सूर्यका सारथि। ३ गरुड़। ४ सम्भ्या-
राग, शामकी लाली। ५ निःशब्द, बेधावाजी। ६ दानव
विशेष। ७ कुष्ठरोग विशेष, किसी किष्का का कोढ़।

८ अरुणराग, पोथीदा रङ्ग। ९ अरुणमिश्रित रक्त वर्ण,
स्याही-मायल सुर्ख रङ्ग। १० आदित्यविशेष, बारहमें
कोई सूर्य। माघमासके सूर्यको अरुण कहते हैं। “अरुणो
माघमासि वै” (आदिशुद्धय) ११ ऋषिविशेष। यह लोग
प्रजापतिके भांससे उत्पन्न हुए थे। “लगीरुणाः केवली पाल-
रमना अरुण उदतिष्ठन्” (वैश्वदेव आरण्यक १।१।१) १२ देव
विशेष, कोई सुषक। १३ अरुण वर्ण, लाल रङ्ग।

१४ प्रातःकाल, तड़का। १५ विषयुक्त क्षमि विशेष,
कोई लहरीला कोड़ा। यह छोटासा होता है।

१६ गुड़। १७ नदविशेष, कोई दरया। १८ कोक-
लाचभेद, किसी किष्का का तालमखाना। १९ अतिविषा।

२० श्रेणीकावृक्ष। २१ मच्छिडा, मजीठ। २२ अर्क
वृक्ष, अकोहेका पौधा। २३ पुष्पागवृक्ष, किसी किष्कके
अभ्येका पेड़। २४ चित्रकवृक्ष, चीतका पौधा।

२५ रक्षापामार्ग, लाल लटजारा। २६ रक्तकरवीर,
लाल कनेर। (स्त्री०) २७ अहिफेन, अफीम।

२८ रक्तोत्पल, लाल कमल। २९ रक्तविहता, लाल
द्विरनपही। ३० कुडुम, केसर। ३१ सिन्दूर।
३२ माणिक्यभेद, लाल। ३३ वै सोवचिन्तामण्यः रस।
यह अय रोगपर दिया जाता है। ३४ पुच्छल तारा।
इसकी गिच्छा आमरवन् होती है। रङ्गमें यह स्याही
लिय सुर्ख नजर आता है। इसका फल अच्छा नहीं।

संख्यामें यह ७० होता है। इसे वायुपुत्र भी कहते हैं।
३५ मन्दारपर्वतस्य सरोवर।

अरुण—एक प्राचीन संस्कृत वैयाकरण।
अरुणकपिय (सं० पु०) द्वाचामेद, किसी किष्का
किगमिय।

अरुणकमल (सं० स्त्री०) अण्यसर्पवत् नित्य-कर्मधा०।
रक्तोत्पल, लाल कमल।

अरुणगिरिनाथ—संस्कृतभाषामें योगानन्दब्रह्मचरन-रक्ष-
यिता।

अरुणचूड़ (सं० पु०) ताम्रचूड़ पत्ती, सुर्गा।
अरुणज्योतिष (सं० पु०) शिव।

अरुणतण्डुलीय (सं० स्त्री०) रक्ततण्डुलीय शाक,
लाल चोलाईकी भाजी।

अरुणता (सं० स्त्री०) सुर्खा, लसाई, लाल रङ्ग।
अरुणदत्त—१ प्राचीन संस्कृत वैयाकरण और कौप-
कार। उज्जलदत्त और रायसुकुटने इनका उल्लेख
किया है। २ मनुष्यालयचन्द्रिकारचयिता।

अरुणदांगी—मद्राज प्रान्तके तक्षोर जिलेका एक किसान
और जनपद। प्राचीन समय इस जिलेकी मद्राज
प्रान्तमें बड़ी धूम रह्यो। सन् ई०के १५वें शताब्द
पाण्डा नृपतिके सेनापति सितुपतिने इसे छोन अपने
राज्यमें मिला लिया था। सन् ई०के १७वें शताब्द
यह तक्षोरके अधिकारसुक्त हुआ, जिसे सन् १६४६ ई०

में रघुनाथ राव तैवानने अपने हाथ किया। सन्धिके
अनुसार तक्षोर राज्यकी दुबारा मिशनर सन् १६८८
ई०में कुछ छिड़नेसे फिर यह द्विन गया था। सन्
ई०के १८ वें शताब्द रामनादवाले ‘किलावन’ के
लड़केका यह जनपद घुसा बना। फिर इसे कई
बार विभिन्न नृपतियोंने अधिकार किया था।

अरुणदांगी (सं० स्त्री०) अण्यसर्पवत् नित्यकर्मधा०।
रक्त दूर्वा, लाल दूब।

अरुणनाग (सं० पु०) सुदामाङ्ग, सुरदामंज।
अरुणनेत्र (सं० पु०) १ पारावत, कबूतर। २ कोकिल,
कोयल।

अरुणदूर्वा (सं० स्त्री०) अण्यसर्पवत् नित्यकर्मधा०।
रक्त दूर्वा, लाल दूब।

अरुणनाग (सं० पु०) सुदामाङ्ग, सुरदामंज।
अरुणनेत्र (सं० पु०) १ पारावत, कबूतर। २ कोकिल,
कोयल।

अनुसुप्पि (मं० स्त्री०) अनुसुप्तक हृद्य, मान दुप-
 शरीका पिट् ।
 अनुसुप्पिया (मं० स्त्री०) अनुसुप्त मिया, इ-तत् ।
 १ शूर्पकी भार्या। मंधा, पीर वाया शूर्पकी भार्या मानो
 मदी है। २ अपमरा ।
 अनुसुप्पु (वे० स्त्रि०) अनुसुप्तः रत्नपत्रं; पुंसुः कर्प
 यत्, बहुमी० । रत्नपत्रविमिट, मान रत्नवाला ।
 अनुसुप्पु (वे० स्त्रि०) अनुसुप्तविमिट पीतवर्ण,
 सुर्पो मिये पीना ।
 अनुसुप्तमिका (मं० स्त्रि०) रत्नमिका, मान साडी ।
 अनुसुप्तमहार (मं० पु०) महार विमेष। इसके
 ममप पुर गृह रहते है ।
 अनुसुप्तजू (वे० स्त्रि०) रत्नकरिषामाविमिट, जिम
 पर मान खिरचकी गोगनी पड़े ।
 अनुसुप्तोवन (मं० पु०) अनुसुप्त रत्ने मोचने यद्य,
 बहुमी० । १ पारायत, कपूरतः । २ कोकिल, कोयल ।
 (स्त्रि०) १ रत्नपत्रं चतुसुक्त, सुर्प, चाँचवाला ।
 अनुसुप्तिया (मं० पु०) कुकुट, मुर्गा । "उत्ते नपथ
 त्ति विन वृत्ति अनुसुप्तिया इति मान ।" (सुपरी)
 अनुसुप्तमये (मं० पु०) तथक मये, अहरीसा नाय ।
 अनुसुप्तार (मं० पु०) हिङ्गुल, होंग ।
 अनुसुप्तारयि (मं० पु०) सुर्प, जिमका गाड़ीवान्
 अनुसुप्त रहे ।
 अनुसुप्ता (मं० स्त्री०) अनुसुप्तन् टापु । १ चति-
 विद्या । २ गुड़ । ३ मदारारिरम । ४ मन्दिता,
 मन्तीठ । ५ नाचातेल । ६ मपोच्छरीक, पांडरी ।
 ७ तिहता, मान सोमार्ह । ८ जवा, कदम्बका फूल ।
 ९ ग्यामाजता । १० इन्द्रवादी जता, मान इन्द्रा
 यत् । ११ मुष्ठा जता, मुंघधी । १२ पुनचंदा ।
 १३ मुच्छीरी, मोरघसुच्छी । १४ रत्नपत्रां गो, मान
 गाव । १५ मदी विमेष ।
 अनुसुप्ताई (स्त्रि० स्त्री०) अनुसुप्ता, सुर्पा, मानो ।
 अनुसुप्ताज (मं० पु०) गहड़, विष्णुका वाहन ।
 अनुसुप्ताम (मं० पु०) अनुसुप्त्य आम्रतः, इ-तत् ।
 सुर्पुव मधि, मानपंसुप्त, कर्प, सुप्रीम, धम, पत्रिमो
 कुमारदय पीर अटामुकी लोग सुर्पका पुत्र मानने है ।

अनुसुप्ताम्रा (मं० स्त्री०) अनुसुप्त्य आम्रता वरु-
 सेप जायने, लज-ठ-टापु, इ-तत् । सुर्पकम्पा । यमुना
 पीर तपतीको सुर्पकम्पा कहते है ।
 अनुसुप्तामिका (मं० स्त्री०) कुमरिच, मान मिषे ।
 अनुसुप्ताज (मं० पु०) सुर्पके भाई गहड़ ।
 अनुसुप्ताम (मं० स्त्री०) पथमीर, रोड़ीका लोहा ।
 अनुसुप्ता, अनुसुप्ता देवी
 अनुसुप्ताई (मं० पु०) रत्नाई, मान पकोड़ा । यद्
 वात, कुठ, कफ, विष, तप, ड्रीडा, गुन्म, चर्म, कफ,
 उदरमन, छमि, भिद मीय, एवं विमर्षको मिटाता
 पीर कटु, तिक्त तथा उष्ण होता है । इसका पुष्प
 छमि, कुठ, कफ, चर्म, विष, रत्नपत्र, गुन्म तथा
 गोयकी दूर करता पीर मधुर, तिक्त एवं धारक
 रहता है । (मानवचम)
 अनुसुप्तायिन् (मं० पु०) सुर्प, चाँक, ताव ।
 अनुसुप्तायरज (मं० पु०) अनुसुप्त्य पयरजः । गहड़ ।
 अनुसुप्ताय (वे० स्त्रि०) मान घोड़े जोतनेवाला । यद्
 महत्सुका विमेषय है ।
 अनुसुप्तायित (मं० स्त्रि०) अनुसुप्त क्रियते धः ; अनुसुप्त
 ज्ञत्वयै विष्णु, कर्मणि न्न तारकादि० इतत् वा ।
 १ मान रंगा कुषा, लो रत्नकर सुर्प बनाया गया हो ।
 २ रत्नपत्रं, सुर्प, मान ।
 अनुसुप्तायिन् (मं० पु०) अनुसुप्ता, सुर्पा, मानो ।
 अनुसुप्ताया, अनुसुप्तायिन् देवी ।
 अनुसुप्तायुक्त, अनुसुप्ता देवी ।
 अनुसुप्तायु—अनुसुप्तदेवता पत्नीमयां उपनिषत् ।
 अनुसुप्तायुग, अनुसुप्ता देवी ।
 अनुसुप्तायुध, अनुसुप्ताय देवी ।
 अनुसुप्ताद (मं० स्त्री०) अनुसुप्त रत्नपत्रं उदकं जलं
 यद्य, बहुमी० उदकम्पोदादेयः । १ मरीचरविमेष,
 कादे तावाव । २ मन्दरपर्वतमे निःसृत मदी विमेष ।
 ३ समुद्रविमेष । जेन इन समुद्र द्वारा पृथिवीको
 आग्निदित मानते है । ४ मोहितगावर ।
 अनुसुप्तादक (मं० स्त्री०) अनुसुप्त रत्नपत्रं उदकं यद्य,
 बहुमी० समुद्रविमेषेरेनिष्कृतापोदादेयः । मन्दर पर्वत-
 स्थित मरीचर ।

चरुषोदधि (सं० पु०) लोहित सागर । (Red Sea) यह मित्र और शत्रुके बीच भवतिष्ठत है । सुएज डमरुमध्य रहने पर पहले यह डमरुके सागरसे चलन था, किन्तु उसके टूट जानेसे अब दोनों एक हो गये । इङ्ग्लेण्ड और भारतके बीच जहाज इसी राह भाते-जाते हैं ।

चरुषोदय (सं० पु०) चरुषस्य सूर्यसम्बन्धात् तत्किरणस्य उदयः आकाशे यत्र, बहुव्री० । सूर्योदयसे पूर्व चार दण्ड समय, तड़का ।

“चरुषो धटिकाः मान्तरुषोदय उच्यते ।” (कृ०ति)

“चरुषोदय सङ्घे सुप्रद उच्यते न्योति मन्वते ।” (श्रु०गी)

चरुषोदयविहा (सं० स्त्री०) चरुषोदयात् सूर्योदयात् प्राक् वक्तृत्वावलोकनसमये विहा, ऽ-तत् । चरुषोदयके समय दशमीसे विहा एकादशी ।

“दशम्याः शेषसंयुक्तो यदि स्यादचरुषोदयः ।

नेत्रोपार्थं वैश्वेय तद्दिनेकादशोत्तमम् ।” (गृह्यसूत्राय)

यदि सूर्योदयके अथवाचित पूर्व ही दशमी सञ्चित एकादशीका योग हो, तो उस दिन वैश्वको व्रत रहना न चाहिये । किन्तु उपरोक्त नियम शक्यपक्षके लिये ही किया गया है,—

“एकादशी दशविहा वर्षमाने विवर्तयेत् ।

पचदशमी स्थिते सोमि बहुवेदयवोऽनुताम् ।” (कृ०ति)

पर्यात् शुक्यपक्षमें यदि एकादशी दशमीविहा पड़े, तो उस दिन वैश्व व्रत न रहे ; किन्तु कृष्यपक्षमें दशमी विहा एकादशीका व्रत करना चाहिये ।

चरुषोदयसप्तमी (सं० स्त्री०) चरुषोदयकालमें पुण्यविशेषसाधना सप्तमी । माघमासके शक्य पक्षकी सप्तमी ; माकरी सप्तमी । भविष्यपुराणमें लिखा है कि चरुषोदय सप्तमीमें गङ्गास्नान कर अर्थादि दान करनेसे आयु, आरोग्य, सम्यत् एवं कीटि सूर्यप्रदृश्य-कालीन गंगास्नानका फल होता है ।

चरुषोऽनुखयति (वै० पु०) ब्राह्मणवैपधारी अक्षर विशेष, जो राक्षस ब्राह्मण बनकर प्रमत्ता हो । ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा, कि इन्द्रनेहन राक्षसोंकी शृगालादिसे भक्षण कराया था ।

चरुषोपल (सं० पु०) चरुषः रक्षाभ्रमध्यः उपलः

प्रक्षरः । १ प्रक्षरविशेष, कोई पत्थर । २ चरुषवर्षमणि विशेष, शुद्धी । ३ पक्षराग, लाल ।

चरुतद्वयु (वै० त्रि०) जिसके गाल या जवड़े टूट न सकें ।

चरुह (सं० त्रि०) अनिवारित, रोका न हुआ ।

चरुन, (हिं०) चरुण देखो ।

चरुनाना (हिं० स्त्री०) १ सुख पड़ना, लाल निकलना । २ सुख बनाना, लालो चढ़ाना ।

चरुनायी, (हिं०) चरुणा देखो ।

चरुनारा (हिं० वि०) चरुण, सुख, लाल ।

चरुनोदय, (हिं०) चरुणोदय देखो ।

चरुनुद (सं० त्रि०) चरुः भर्म नूदति, चरुस्-तुद-खग्-सुम् अन्तलोपय । १ दुःखकर, तकलीफ़दिव । २ मर्मवेदना देनेवाला, जो गहरी चोट पहुंचाता हो । ३ तीक्ष्ण, तेज ।

चरुनुदत्व (सं० स्त्री०) १ दुःख देनेकी स्थिति, तकलीफ़दिवी । २ तीक्ष्णता, तेजी ।

चरुन्वती (सं० स्त्री०) न कामपि कन्वति रुध-शय-डीप् । नख-तत् । १ जिह्वाप, जीभकी नोक । २ जो स्त्री किसीको रोध नहीं करती । ३ शक्तिपत्नी, कर्दम सुनिकी कन्या ; नक्षत्रविशेष । कहते हैं, परमायु श्रेय ही जानेपर चरुन्वती नक्षत्र दिखाई नहीं पड़ता ।

“दीपनिर्वाचनमथ चरुन्वतीमथचरुन्वतीम् ।

न त्रिजलि न यद्वर्णि न पयजलि नतापुः ।”

जिनकी प्रायु श्रेय हो पार है, उनकी नासिकामें दीपनिर्वाणका गन्ध नहीं लगता, वे लोग बन्धुओंकी बात नहीं सुनते और चरुन्वती नक्षत्र भी नहीं देख सकते ।

चरुमाला भी शक्तिकी पत्नीका नाम है । वे शूद्र-कन्या थीं, पतिके सङ्गुच और अपने पतिपरायणताके लिये सबमें पूजित हुईं । मान्नुम होता है, चरुमाला और चरुन्वती एक ही स्त्रीका नाम है । आकाशमें सप्तविंशत्यक्षरमें शक्तिके निकट चरुन्वती वास करती है । विवाहमें सप्तपदी गमनके बाद जामाता बहुको चरुन्वती नक्षत्र दिखाया जाता है ।

महाभारतमें लिखा है, शक्तिप्रिय शक्ति

दे। किन्तु परम्यतो मन ही मन जानतो, कि वसिष्ठके मनमें व्यभिचारका दोष उत्पन्न हुआ; इसीनिधि से पतिका पवना करतो थीं। सभी पापसे उनको प्रभा धूम्राक्षकी तरह मलिन हो गई है; उनसे भी नहीं है; कभी वे दिप्यारं देतो है और कभी पनल होकर दुर्निमित्तकी भांति लोगोंके दृष्टिगोचर होतो है। (भावि० १११ व०)।

४ दक्षकन्या धर्मकी पत्नी। दक्षके पथाम कन्यायें थीं। उनमेंसे दस धर्मकी, तेरह क्षत्रपकी और सत्तारंभ चन्द्रकी प्रदान की गयीं।

धर्मकी जो कन्यायें ग्याहीं गईं थीं। उनके नाम ये हैं—परम्यती, वसु, यामी, मन्ना, भागु, मरुत्वती, गहन्या, मुग्धती, वाध्या, विद्या और जिह्वा। परम्यती का पारिभाषिक नाम जिह्वा है। शल्यकास निकट पानेपर लोगोंकी जिह्वाका अर्धभाग नहीं दिप्यारं देता। पतएव शल्यके पूर्व परम्यती दिप्यारं नहीं देती। यह बात नक्षत्र और जिह्वाके अर्धभाग दोनोंमें घटती है।

परम्यतीजानि (म० पु०) परम्यती जाया यक्ष, निह, सम०। परम्यतीके सामी वसिष्ठ सुनि।

परम्यतीदर्मन्याय (म० पु०) परम्यत्या दर्मन-मिष न्याय, शाक०तत्। परम्यतीके देखने जैसे चान। परम्यती नक्षत्र देखनेमें पहले म्मू म् दर्मन द्वारा स्थानकी ठहरा, पीछे सूक्ष्म दर्मन द्वारा समपर दृष्टि होलते है। इसीतरह प्रथम म्मू म् दर्मन द्वारा किमी चीजकी देख पीछे सूक्ष्म दर्मन द्वारा उनके रूपमें मन्म होगा परम्यतीदर्मन्याय कहाता है।

परम्यतीनाय, परम्यतीनि देवः।

परम्यतीशयी—भग्नराज प्रान्तवासि मटुरा जिनेके रामनाद राज्याका एक गाँव। इसमें वसतीकी पनोपो जाति परम्पूट्टर रहते है, जो दूसरी ब्रह्मस जातिसे नहीं मिलतो। इस जातिके लोग किमी कियकी नौकरी याकरी करनेमें दूर रहते है। दूसरे लोगोंसे विवाह करना भी इनमें निषिद्ध है।

परम्यैष, परम्यैषि देवः।

परवा (ई० पु०) पर, सताविदेव। इसका पता

पान-जैसा होता और लड़के कन्द बैठता है। सताकी गाँठमें जो घृत निकलता, वह चार पाँच पद्मम बड़कर मोटा हो कन्द बन जाता है। कन्दकी तरकारी बनाते है। धानिसे यह बनकना सगता है। बरयो पानके गाय रसे होता है। २ रत्न विद्विया।

परगहम् (म० पु०) रत्नवर्ष भिषकी नायकरने-वासे रत्न

परम् (म० ति०) नाश्टि कट, यक्ष; रपू-क्षिप्। पक्षीध, गु.घा न करनेवाला, जिसका मिश्राज सुसा-यम रहे।

परव (म० ति०) १ रत्नवर्ष, सुष्यं मास। (पु०) २ ज्वाला, सपट। ३ सुष्यं, दिन। ४ रत्नवर्ष भिष, मास वादस। यह तूफान् धाने समय देख पड़ता है।

परवा (म० पि०) भूम्यामकी।

परयो (म० यो०) इयति गच्छति वादित्तयोदे-नासं प्रतिदिनं प्रापयति वा स्तोत्रम् ऐश्वर्यादि; अ-उपन्। पिप्यसादेराक्षतिगपत्यादौकारः अथवा पा-रुष् दोसो दुपष्, टिभीयः पाहो इक्षय; अरोवते परयो अथवा परवमिति उपनाम मामयोंदत्त शुक्र-विषयं, शुक्रवर्षां परयो। १ उपा, तड़का। २ रत्न-वर्ष चम, मास घोड़ो। ३ ज्वाला, सपट। ४ मगु-की कन्या और घोषकी माता। महाभारतमें लिखा है, कि मगुकी कन्याका नाम परयो रहा। शत्रुपुत्र अवनके माघ इनका विवाह हुआ था। परयोके पुत्रको घोष कहते रहे। यह जननीका लक्ष्मदेय तोड़ कर निकसे ये।

परयो नु मर्तः कन्याया इती वरजनी।

परयोका कर्मरूप, विना कर्मरूपः। (पर्यट० १०।१)

परुष्क (म० शो०) परममंस्थानपर्यन्तं क्वायति व्यययति, परम्यै-क पलम्। भग्नराज हच, भिभा-येका दरपूत। भिभायेका पूर गावमें कर्मनेसे अत यद् जाता, इसीसे वह परुष्क यामी दुःख दिनेवाला कहाता है।

परुष्कर (म० पु०) परः प्रपं पीडां या करोति; परम्-कट, उपसमा० पलम्। १ भग्नराज हच

मिलार्थका पेड़। शेरदूधोऽरुणरोऽपिमुचो भ्रजलकी निपु । (५५२)
 २ पीड़ादायक वस्तु, तकलीफदिह चीज। ३ बुध शब्दो
 ऽरुणरः । (५५२) ३ अरुणिका, माघेकी फुनसी।
 (क्री०) ४ भ्रजलक फल, भिलावां। ५ पश्चतिक्त
 घृत। ६ चतुःसम सौह।
 अरुणकृत (सं० त्रि०) आहत, जख्मी, घायल,
 जो चोट खा गया हो।
 अरुःमाण (वे० क्री०) व्रणका औषध विशेष, ज-
 ख्मकी कोई दवा।
 अरुम् (सं० पु०) ऋच्छति सततं गच्छति, ऋ-उम्।
 १ सूर्य, आफताव। २ रत्नखदिर, लाल खैर।
 (क्री०) ३ भर्मस्थान, नाजूक जगह। ४ व्रण, घाय,
 चोट। ५ चत, जख्म। ६ नेत्र, पांख। (चि०)
 ७ आहत, जख्मी।
 अरुसिका (सं० स्त्री०) मरुकाकी त्वक्का दुःखदायी
 व्रण, खीपडेवाली खालकी तकलीफदिह फुनसी।
 अरुहा (सं० स्त्री०) न किमपि रोहित, रुह-क।
 भूमि आमलकी, भुयिंपायला।
 अरुच (वे० त्रि०) न रुचम्, विरोधे नञ्-
 तत्। सिग्ध, मच्छण, चिकना, मुलायम, जो रुखा
 न हो।
 अरुचता (वे० स्त्री०) सिग्धता, चिकनायी, मुला-
 यमियत।
 अरुचित, ५६७ देखो।
 अरुचा, ५६७ देखो।
 अरुट, ५६६ देखो।
 अरुप (सं० त्रि०) नास्ति रूपं यस्य, बहुव्री०।
 १ रूपशून्य, शिगळ, जिसके सूरत न रहे। २ कुरूप,
 बदशरळ, जिसके अच्छी सूरत न रहे। (क्री०)
 ३ सांख्योक्त प्रधान। ४ वेदान्तोक्त ब्रह्म। कुत्मितार्थे
 नञ्-तत्। ५ कुत्मित रूप, खराब शरळ।
 अरुपक (सं० त्रि०) १ चलद्वार-रहित, वे इन्दोवार।
 यह शब्द कविताका विशेषण है। (पु०) शीह
 योगीकी भूमि वा पत्रस्या। यह चार प्रकारका होता
 है,—आकाशायतन, विज्ञानायतन, अविज्ञानायतन
 और नैवसंज्ञा संज्ञायतन।

अरुपता (सं० स्त्री०) १ रूपशून्यता, शिगळी।
 २ असमानता, नाहमवारी।
 अरुपवत् (सं० त्रि०) ५६७ देखो।
 अरुपहार्य (सं० त्रि०) रूपेण ह्रियते; रूप-ह्र-प्लुत्-
 श-तत्, ततो नञ्-तत्; यद्वा रूपेण न हार्यम्, असमर्थ
 समा०। शीन्द्यादि द्वारा वग न होनेवाला, ली
 ख्, बसुरती वगैरहसे काबूम न पाता हो।
 अरुपावचर (सं० पु०) बौद्ध दर्शानुसार चित्तवृत्ति
 विशेष। इससे अरुपलोक देख पड़ता है। यह कुशल,
 विपाक एवं क्रियाके चार-चार प्रकार वृत्तिभेदसे बारह
 तरहका होता है।
 अरुपिन (सं० त्रि०) ५६७ देखो।
 अरुना (हिं० क्लि०) क्रोध उठाना, पोड़ा पहुँचना।
 अरुलना (हिं० क्लि०) विदारत होना, लग जाना,
 घुसना।
 अरुप (सं० पु०) ऋच्छति गच्छति, ऋ-उपन्।
 १ सूर्य, आफताव। 'ररः ररः। (उल्लसदन) २ सर्प,
 सांप।
 अरुस, ५६५ देखो।
 अरि (सं० अर्थ०) १ ए, शो, देख, चुन। २ पाप-
 यं, तपञ्जुष, आष्ट, भगवान्। यह अव्यय सर्वोधन
 वाक्य विशेष होता है। क्रोध या पापयुक्त समय
 और नीच व्यक्तिसे बोलते इस शब्द द्वारा सर्वोधन
 किया जाता है।
 अरिण (वे० त्रि०) १ रिणुरहित, वैधूम। (क्री०)
 २ रिणुरहित वस्तु, धूलसे खाली चीज, धाकाग,
 आसमान्।
 अरितम् (सं० क्लि०) वीजविहीन, योजन न रहने-
 वाला, वैतुज्म, जिसमें तुलुज्म न रहे।
 अरिपम् (सं० क्लि०) रिपः पापं तच्चास्ति यस्य, नञ्-
 बहुव्री०। निष्पाप, पापशून्य, निर्मल, धैरुनाह,
 पाकीजा।
 अरिरेना (हिं० क्लि०) भसना, घिसना।
 अरिरे (सं० अव्य०) अरिरे वाप्यायां द्विभ्रांः।
 पधे, शीधे। यह नीचकी बुलाने और क्रोध देषा-
 नेमें पाता है।

चीना चार पत्र—सद्य चोर्जाको एक साथ पीसे । फिर थोड़ा थोड़ा चूर्ण सु'हमें रख धीरे धीरे निगलनेसे शरुचि रोग नष्ट होता है ।

शरीरचक्र रोग होनेपर रोगोको यथासम्भव व्यायाम और निर्मल वायुसेवन करना चाहिये । परन्तु त्वर और कासादि रोग रहनेपर व्यायाम मना है । सहज ही परिपाक होनेवाला और मुष्टिकर द्रव्य भोजन करना उचित है । शरीर दुर्बल होनेके उर ज्वरदंष्ट्री अधिक भोजन करना कत्तव्य नहीं, कारण उससे उदरामय उठ सकता है ।

शरीरचिकित्सा (सं० त्रि०) शरुचि रोगसे पीड़ित, जिसे भूख न लगनेको बोमारी रई ।

शरीरचिकित्सा (सं० त्रि०) दोसिगुण्य, धुंधला, जो चमकता न हो ।

शरीरचिकित्सा, शरीरचिकित्सा देखो ।

शरीरहृ (हं० वि०) घोर, बड़ादुर, कहर ।

शरीरहृ—पञ्चाशकी कोई जाति । यह अपनेको खत्रीके बराबर समझती है ।

शरीरदन (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ रोदनका अभाव, अशक्तवारीको अदममौजूदगी, जिस हालतमें न रोये । (त्रि०) नास्ति रोदनं यस्य, नञ्-बहुव्री० । २ रोदनगुण्य, जो रोता न हो ।

शरीरधन (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ रोधाभाव, रोककी अदममौजूदगी । (त्रि०) २ धारण रहित, वेपदा, जो खुला हो ।

शरीरध्व (सं० त्रि०) न रोध्यम्, नञ्-तत् । शवाध्व, वेरोक, मनमाना, जिसे कोई रोक न सके ।

शरीरपण्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ रोपणका अभाव, लगाये न जानेकी हालत । (त्रि०) नास्ति रोपणं यस्य, नञ्-बहुव्री० । रोपणगुण्य, लगाया न जानेवाला ।

शरीरपन, शरीरचक्र देखो ।

शरीर—सिन्धु प्रान्तके शिवारपुर जिलेकी रोहरी तहसीलका एक टटा-फूटा गांव । यह रोहरीसे पूर्व टांके कोस अक्षां २७° ३६' उ० और द्राधि० ६८° ५८' पू० पर अवस्थित है । पहले यहाँ सिन्धुके हिन्दू नृप-

तियोंकी राजधानी थी, मन् ७११ ई०में मुसलमानोंने इसको उनसे छीन लिया । यह पहले सिन्धु नदीके किनारे बसा था । ध्वंसावशेषमें पानम गोरकी मसजिद है । कानिका देवीको गुहाका हिन्दू पवित्र मानते और प्रति वर्ष धूमधामसे उसका मेला मगाते हैं ।

शरीर (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ क्रोधभाव, गुण्यकी अदममौजूदगी । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ क्रोधगुण्य, वेगुण्य, जिसे गुण्य न हो ।

शरीरहन, शरीरचक्र देखो ।

शरीरहना (हिं० क्रि०) शरीरहण करना, चढ़ना ।

शरीरहृ, शरीरचक्र देखो ।

शरीरद्र (सं० त्रि०) न रोद्रम्, विरोधे नञ्-तत् । १ भीषणभिव, जो भयङ्कर न हो । २ सुन्दर पालति, खुबधरत । ३ रागहोपादिगुण्य, खटखटसे वाहर । (पु०) ४ विष्णु ।

शरीरन—मध्य-भारतवाले म्वान्जियर राज्यके गूना मुखेका एक परगना । यह परगना जागीरमें अग्रा है ।

शरीरक (सं० पु०) अर्थात् शरीर, अथ कर्मणि कः यद्वा अर्कयति उपतापयति, चुरा० अर्कं कतरि अच्; अर्कयति स्तूयति वा, कर्मणि अञ् । १ सूर्य, चाक्रताव । २ इन्द्र । ३ विष्णु । ४ पण्डित, इन्द्रदार गजस । ५ ज्ञाथ, काटा । ६ अर्थ, बड़ा । ७ रविवार । ८ अथ, पनाज । ९ वज्र । १० मन्त्र । ११ हथ, दरखत । १२ सप्तमी तिथि । १३ उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र । १४ हादय मन्त्र्या । १५ वैशोष्यडम्बर रस । १६ किरण, विद्यतुवभा । १७ धनि, पाग । १८ हथ विगेष, पाक, मन्त्रार । यह अंत शरीर रक्त भेदसे दो प्रकारका होता है । एकका गुण कटु, उष्ण, वातजित्, दीपनीय, शोक, प्रण, कण्ठ, कुष्ठ, क्षमि, कफ, अग्नि, विष, रक्त, पित्त, गुल्म, शोयादि रोगका नाशक है । १९ ताम्ब । २० विश्वामिचिरस । २१ स्फटिक । २२ रक्त पुष्प । (हिं०) २३ अर्क, रस । (त्रि०) २४ अर्कनीय, परस्मिन् किये जाने काविल ।

शरीरकला (सं० स्त्री०) शरीरकलाके अर्थसे कला

विशेष। इसका प्रयोग शरीरों तथा मनुष्यों पर होता है। संस्कृत में यह शब्द रक्षणी है। इसका रूप पीत और चन्द्रककारादिमें टकार पर्यन्त पर्यभूयति है। इसको अन्तर्गत नाम तद्विनी, ताविनी धूम्रा, शरीरि, क्षारिनी, वृषि, सुसुखा, भोगदा, विद्या, बोधिनी, धारिनी और चामा है।

पर्यकाला (सं० स्त्री०) पर्यः सूर्यः सूर्यकिरणों का कालः प्रियो यन्तः, बहुव्री०। १ खादित्यभावा, कल-पटो, हुलहुल। २ सूर्यप्रिया। ३ संज्ञा, नाम। ४ दाया, माया। ५ पद्य, कर्मण।

पर्यकान्ति—अत्र सुह विशेष। अस्मिन् प्रान्तावासे कनारो ज्जिनेके मानवेष्वा-राट्टकट्ट श्रुति यतीव गोविन्दने विमलादित्यके मनिषवृद्धो गान्धिकाको कृष् भूमि अत्र मन्दिष बनयानिके निधि तान्त्रिकनकपर निष इतके नाम उत्तममंकी थी। तान्त्रिकनकपर गक संवत्के ज्येष्ठ शुक्लपक्षको दशमी तिथि तथा सोमवार पद्धि है।

पर्यकौर (सं० स्त्री०) पाकका दूध, अक्षरका दूध। यह क्षमि और प्रण नागक तथा कुट्ट, पर्य, उदर-रोगादिमें द्रव्यकर है। (१००७५५)

यह तिष्ठ, मयण, उज्ज्वोयं (गर्म) मधु, विष्य, गुण्य, उदर, कुट्ट करण करनेवाला तथा विरचनमें द्रव्यकारक है। (१००७५५)

पर्यकौश (सं० स्त्री०) पर्यक्य कौशम्, १-तत्। १ विंहरामि। २ माद मास। ३ उड़ीसा प्रान्तका तीर्थ विशेष।

पर्यकभ्रिका (सं० स्त्री०) चौरविटारो, लब्ध भूमि कृष्णात्, क्षान्ता विनारोकम्।

पर्यकभद्र (सं० पु०-स्त्री०) पर्यक्य प्रियाः प्रियं वा चन्द्रः चन्द्रं वा, माक० तत्। रत्न चन्द्र, मान चन्द्र।

पर्यकभद्र (सं० स्त्री०) पर्यक्य, पाककी लड़।

पर्यक (सं० पु०) पर्यक्यायने, पर्यक्यन ट, १-तत्। १ राम। २ मनि। ३ अग्निशोकमाहव। ४ सुपौत्र, ५ कर्ष। उपरोक्त अर्थ सुपुत्र पुत्र ज्ञानि पर्यक कहामें है।

पर्यका (सं० स्त्री०) १ यमुना। २ तपती। उप-रोक्त नदी सूर्यको कन्या ज्ञानिमें पर्यका कहामें है।

पर्यकतप (सं० पु०) १-तत्। १ कर्ष। २ वेद-व्रतमनु। ३ माहर्षिमनु।

पर्यकतप्या, पर्यक दधीः।

पर्यकैम (सं० स्त्री०) कुठाधिकारका तैल विशेष, कोटका कोई तैल। ८ पन कपुवा तैल, ८ पन पाकके पत्तेका रस, १ पन जिया पीर १ पन ममः शिवा एकमें घोटनेमें यह तैल बनता है। (१००७५५)

पर्यक्य (सं० स्त्री०) दोति, चमक।

पर्यकलिय (सं० स्त्री०) प्रकाशका किरण, सूर्यको दोति, पाकतावको रोगनी।

पर्यकदन (सं० पु०) १ खादित्यपत्र सुप, कनक-टिया। २ पर्यकृष्ण, पाकका पेड़।

पर्यकदिन (सं० स्त्री०) गौर पार, सूर्यका दिन।

पर्यकदुग्ध (सं० स्त्री०) पर्यक्य तन्नामक दुग्धण दुग्धं दुग्धवत् शुभ्रत्वात् नियांनः, १-तत्। अक्षरका रस, पर्यकैका दूध।

पर्यकन्दन, पर्यक दधीः।

पर्यकनयन (सं० पु०) पर्यः सूर्यो नयनं यन्, बहुव्री०। विराट् पुहय। पुराणमें लिखने, कि विराट् पुहयके सूर्य, चन्द्र और चन्द्र यह तीन जेठ हैं।

पर्यकनामन् (सं० पु०) पर्यक इति नाम यन्, बहुव्री०। रक्षाके, मान पर्यकैका पेड़।

पर्यकनामा, पर्यकान् १को।

पर्यकपत्र (सं० पु०) पर्यक्य प्रगद्यो पर्यं यन्, बहुव्री०। १ पर्यकृष्ण, पर्यकैका पेड़। २ खादि-त्यपत्रसुप, कनकटिया। (स्त्री०) पर्यक्य पत्रम्, १-तत्। १ पर्यकृष्णका पत्र, पर्यकैका पत्र।

पर्यकपत्ता (सं० स्त्री०) १ ईश्वरसूत्र लब्ध, लता विशेष। यह विपका बीजध ज्ञानी है। २ सुन्दर। ३ पर्यक्यूल।

पर्यकपत्रिका, पर्यक दधीः।

पर्यकपती, पर्यक दधीः।

पर्यकपर्य, पर्यक दधीः।

अर्कपर्णिका (सं० स्त्री०) मायपर्णी ।
अर्कपाद (सं० पु०) १ सूर्यकान्तमणि, आतमी
श्रीश्या । २ निम्बहृत्, नीमका पेड़ ।
अर्कपादप (सं० पु०) पादैर्भूतैः पिवति पादेभ्यः
सूर्यकिरणेभ्यः पाति रचति वा, पा-क पादपः, अर्कः
अर्कहृत् इव उग्ररसः पादपः, शाक० तत् । १ निम्ब-
हृत्, नीमका पेड़ । कर्मधा० । २ अर्कहृत्, अर्क-
हृत्का पेड़ ।

अर्कपुत्र, अर्कपुत्रिका ।

अर्कपुष्पा (सं० स्त्री०) चौरकाकोली, दूधदार
कन्द । यह हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होती है ।

अर्कपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ सूर्यवज्रो, अड़हल ।
२ चौरहृत्, चौरकाकोली, रक्षापराजिता ।

अर्कपुष्पी, अर्कपुष्पिका ।

अर्कप्रभागुटिका (सं० स्त्री०) रसायनाधिकारिनि
रसकौ कोटि गोलौ । इसका विधान इस तरह किया
है—शुद्ध पारा २ निष्क, शुद्ध ताम्बूचूर्ण १ निष्क—
इसको विश्वाकूल वा फलकी काष्ठमें १ प्रहर तक
अच्छोतरह खसमें विमर्दन कर, गोलाकार बनाकर,
तक और विश्वाफलकी साथ दोलायत्तमें चार
प्रहर पर्यन्त पाक कर, पीछे बटिका बनानी चाहिये ।
इसको १ पैसे भर पन्नाशुबीजका तैल और गौका
दूध मिलाकर एक वर्ष सेवनकरनेसे मनुष्य दश
वृद्धीके समान बलयुक्त बन सूर्यकेसा प्रभागागो हो
जाता है । (प्रयोगवलय)

अर्कप्रिया (सं० स्त्री०) अर्क प्रीणाति, अर्क-प्री-क ।
१ आदित्यभक्ता, कनकटिया । २ जवापुष्प, जवांसिका
फूल । ३ सूर्यप्रिया संज्ञा, काया प्रश्रुति ।

अर्कवन्धु (सं० पु०) अर्कस्य बन्धुः स्वसंशोयत्वान् ।
विद्याविष्यादा, अर्क-वन्धु उ । १ गौतम । यह इत्याकु-
कुलोद्भव शाश्वतश्रीय सुह रहे । 'दीपनपाक' बन्धु ।
(चर) अर्को बन्धुरस्य, वहुश्री० । २ पद्म । कवि
कहता, कि सूर्यकी देखनेसे पद्म फूलता इसीसे
अर्कवन्धु पद्मका नाम है ।

अर्कवन्धव, अर्कवन्धु ।

अर्कभ (सं० स्त्री०) अर्कण युक्तं आक्रान्तं वा भं

नक्षत्रम्, शाक० तत् । १ सूर्यकान्त नक्षत्र, सूर्यके
साथ एक हो रागिमें पड़ा हुआ नक्षत्र । १-तत् ।
२ सूर्यस्वामिक मिंहरागि । ३ उत्तरफल्गुनी नक्षत्र ।
(वि०) अर्कस्यैव भा दीप्तिर्दृश्य, बहुश्री० ।
४ तेजस्वी, चमकदार । ५ रक्तवर्ण, सुदृ, माल ।

अर्कभक्ता (सं० स्त्री०) अर्कस्य अर्कं वा भक्ता आसक्त्या
अर्ककिरणसम्बन्धेन स्वसौन्दर्यात् । १ कनकटिया
सता । २ ब्राह्मी । ३ सूर्यकी उपासना करनेवाली स्त्री ।

अर्कभूति (सं० स्त्री०) १ ताम्रभय, तापिका कुम्भता ।
यह क्षमि, कफ, मूत्र, पित्त, और मनोविकारादिका
नाशक होती है । २ और, ताम्ररस ।

अर्कमण्डल (सं० स्त्री०) सूर्यका हृत्, आफताबका
दायरा ।

अर्कमूर्तिरस (सं० पु०) रसविशेष, यह रस साक्षिपातिक
व्यवहार प्रयोग किया जाता है । इसमें इतने द्रव्य
दिये जाते हैं,—सोडा ८ भाग, पारा २ भाग, गन्धक
द्विगुण, पोडगाम विष, यह सब द्रव्य एकत्र खूब
घोंट कर अर्कमूर्तिरस बनाया जाता है । द्रव्यका
त्रिदोषदावानल भो कहते, जब उक्त द्रव्य ताम्र-
पात्रमें रखते और कागजी नोमु पित्तवर्ग (मत्स्य,
महिष, मयूर, भृग, अश्व इन सबका पित्त पित्तवर्ग
कहाता है), कण्टकारी, एवं आद्रकके रसमें इन
करके बनाते हैं । (मेरुभारती)

अर्कमूल (सं० पु०) अर्कं मर्पनियारणं प्रयुक्तं मूलं
यस्य, बहुश्री० । ईश्वरमूल, अहिगन्ध । इसका मूल मर्प
एवं हृदिकदंश पर लपकार करता है । उसे फूट पीस
कर पिलाते और घात पर भी लगाते हैं । उमके
सेवनसे स्त्रीका मासिक धर्म खुल जाता है । विष्णु-
विज्ञा, अतीसार प्रश्रुति रोगमें भी उसे कानो मिर्चके
साथ पीसकर पिला देते हैं । पत्तोक रसमें कुल नगा
रहता है । पेटकी बीमारीमें अर्कमूलकी काष्ठ
बहुत फायदा पहुँचाती है । इसका रस तौसमें गो
बूँद तक देना चाहिये । (स्तो०) अर्कमूला ।

अर्करेतोज (सं० पु०) अर्कस्य रेतसः जायते, अर्क-
रैतम्-जन-उ । सूर्यके पुत्र विशेष । इनका दृष्टरा
नाम रश्मि, अथवा और सूर्यवाहन है ।

पर्वनाथ (सं० छा०) पर्वदार, त्रिभुं विष्णुका
मयः ।

पर्वशय (सं० पु०) श्रुतपति यज्ञं यज्ञं विमदित्,
पर्वः पवित्रतयाभौ श्रुतपति कर्मधा० । अविनिमित्तः ।

पर्वशय (सं० ति०) विष्णुपुत्राभिहित, त्रिभुं
विष्णुभौषायाज निरुपे ।

पर्वशय (सं० पु०) शीर यत्पुत्रः ।

पर्वशय (सं० पु०) पर्वशय वरुणः प्रियः पर्व-
पुत्रादयस्वरुणवर्षयुक्तानाम् । १ यज्ञकृत् हय, पर्व-
दुलका धृत् । (पु० छी०) पर्वी वरुणो यत्,
वदुमी० । २ पद्य ।

पर्वशय (सं० स्त्री०) पारिव्यमन्त्रा, पर्वदुल ।

पर्वशय (सं० पु०) पर्वशय कल्याणो कल्पि-
तय विवाहः, (सं०) अतोय विवाहमिच्छे निमित्त
पर्वं हृत्तको कल्याणकर विवाहः । तीवरा विवाह
अरुनेमे पर्वमे पर्वोद्धेके माय विवाह करमा पादिये ।
(१०००००००)

पर्वशय, १००००००० ।

पर्वशय (सं० पु०) पर्वशय पर्वशयवेव येषो
येषामं यत् । तामोमयत् हय । त्रिभुं सकालका मयत्
पूर्व-पवित्र मया पदता, यद्य भौ पर्वशय कदाता है ।

पर्वशय (सं० पु०-स्त्री०) पर्वशयमायं यत् प्रतो या,
१ गत् । १ माय मायको यत्तमायको कृष्ण जनि-
याना प्रतविमेष । २ पारोष्यमत्तयादि श्रुतयत् ।
पर्वी यथा एविव्या रथं यत्तानि तदत् शत्रुः करयद्य-
दयं प्रतम् । ३ करयद्य, शत्रुमपद्यत्, विराजका
मेता । श्रुतको तरह प्रतययो धन शिखर पीडे उमे
मयद्यो दाहमे दे देना शत्रुका पर्वप्रत कदाता है ।

पर्वशय (सं० पु०) किरणकी दोगि, ययाको
ययत् ।

पर्वशय (सं० स्त्री०) पद्याविष्णु, अविताको
अतं कला, मायरोका योर ।

पर्वशय (सं० स्त्री०) १ कल्याणराजिता, कामो
विष्णुकाया । २ पदता ।

पर्वशय (सं० स्त्री०) पर्वशय, पर्वोद्धेका
दुप । यद्य श्रुतरोमको मितायो है । (१००००००)

पर्वशय, १०००००० ।

पर्वशय (सं० पु०) पर्वशय इत्यत्र शीतशयने
उपकारकस्यात् । १ पर्वशयकदा । २ मयत्तक
पर्वि, शीतशय मयत्त, त्रिभुं देवनेमे इर मने ।

पर्वशय (सं० स्त्री०) १-गत् । १ पर्वशय
पददुल । (ति०) २ श्रुतको दितकर, पायताकदा
कायता पदुपानेयानो ।

पर्वशय (सं० पु०) मयविमेष । पर्व, यमहे, जाम-
दलो, विगल्या, भागी, शय्या, इत्युपयो, हृदि-
कानो, करय, मयत्तपुयो, यमयथा, मायत्तक,
यम मयको पर्वशयय कदने है । यद्य कज, मेट,
विम, कुत्त, मय प्रभृति शोभाको शोधन तथा दमन
करनेयाना है ।

पर्वशय (सं० पु०) यमोति श्यायति संदलि
याः पर्व-यम-मतिन्, माक० गत् । १ श्रुतकात्मनि,
यातयो मोगा । यद्य ययत्त श्रुतका किरण पदनेमे
कनने मयता है । पर्व इव रथा ययता, माक० गत् ।
२ पर्वशयन, जाम, श्रुतौ ।

पर्वशय, १००००००० ।

पर्वशय (सं० पु०) १ तामोमयत् । २ श्रुतकात्म-
नि, यातयो मोगा । ३ पर्वशय, पर्वोद्धेका धृत् ।
पर्विन् (सं० ति०) पर्वशयने मयत्त, पर्वं करय
यम् शीतशयि इति । पर्वशयमायत्त मयत्तक,
त्रिभुं पर्वशयमायत्त मयत्त रथं ।

पर्वी (सं० पु०) मयत्त, शीर ।

पर्वी (सं० ति०) पर्वशयश्रीय, पायताकदा
तामत्तक रथनेयाना ।

पर्वशय (सं० पु०) पर्वशय इत्यत्र शयः मयत्तो
मिभं यत्, वदुमी० । यमायया त्रियि, श्रुतं योर
पर्वका मिभन ।

पर्वशय (सं० पु०) यम विमेषः यद्य शत-
शयिभे श्रुतमत्तयां दौ पकारका शाना, यतोय रक-
विन योर यत्तुयं श्रुतको मयत्त करता है । पदता
यम मकार कनाया जाता है—पारा ३ भाग योर
मयत्त १० भाग तावेके पायत्त निष्ठाभिसुत्त मयत्तकं
कर मयत्तमे मयत्त कृत्वा १ माकोका कर्तन रथि । वि

अच्छो तरह यत्नपूर्वक १ प्रहर तक उसे आगमें जलाना चाहिये । आगसे निकलने और शीतल होने पर तंबिका बरतन खोल पारे और गन्धककी खूब चूर्ण करे । पीछे मन्दारकी दूधका पुट दे दे कर १० बार खल्लमें घोटनेसे अर्कोत्तरस तैयार होता है । (रहेन्द्रसार६४)

दूसरा प्रकार यह है ।—पारसे द्विगुण गन्धककी खुद तपाये हुए ताम्रचक्रसे रगड और चक्रमें लगे हुएको भी ले एकत्र करे । पीछे सबको चूर्ण बना मन्दारकी दूध और त्रिफलाके जलका पुट दे दे १२ बार खल्लमें घोटनेसे यह तय्यार होता है । इसकी मात्रा २ रत्तो है ।

तीसरा प्रकार—पारद, सृतताम्र, सृत-अभ्रक, मासिक इन सबको गुडूचीके रसमें घोट, पुट बना, और आगमें डालकर २१ बार पकानेसे यह तैयार होता है । इसकी घासाके दूध और विदारोकन्दकी साथ ४ रत्तो प्रमाण प्रतिदिन सेवन करना चाहिये ।

(रहेन्द्रसार६४)

चौथा प्रकार—पारा ४ पल, गन्धक १२ पल ताम्रको चक्रिका रसके ऊपर एक शरावक दे, मट्टीके पात्रमें रख, भस्मसे भर, उक्त पात्रको खूब हट्ट बन्द और आगमें दो प्रहर पकाकर निकाल ले । पीछे ठण्डा होनेपर सबको चूर्ण बना, १२ बार मन्दारकी दूधमें सान और पुटमें बन्द फरके पकाना चाहिये । पुनः त्रिफला, चित्रक, और भृङ्गराजके रसमें तीन बार घोटनेसे यह तय्यार होता है । इसका नाम अर्कोत्तरस है । यह रक्तमण्डल कुष्ठका विघातक होता है । (रहेन्द्रसार६४)

अर्कोत्तमा (सं० स्त्री०) वर्षी, बबई ।

अर्कोपल, अर्धमन् देही ।

अर्क (सं० स्त्री०) अर्क कर्मणि वा यत् । अर्चनीय, परस्तिगके काविल । २ स्तवनीय, तारीफ करने लायक ।

अर्गला, अरग्रा देही ।

अर्गड, अर्ग देही ।

अर्गट (सं० पु०) कण्टकहृद्यविशेष, आर्तगल,

कोई कंटीली भाड़ी । यह तुवर, शोतबीज, त्रय-विशोधन तथा वृणरोपण होता और इधका फल तिक्त, ल्वरचित्त एवम् कफरक्तके रोग नाशकरनेवाला है । (अयकनिषध्)

अर्गल (सं० स्त्री०) अर्जते षट्सुतया तिष्ठति, अत्र-धनञ्च न्यङ्गादिष्यात् कुचम् । १ कपाट बन्द करनेका काठदण्ड, किवाडू लगानेको लकड़ीका छण्डा, बेंडका । २ प्रतिबन्ध, रोक । ३ कपाट । ४ चिटखनी । ५ कसौली । ६ रंगदार वाटन । यह सुबह-गाम देख पड़ता है । ७ मांस, गोशत । ८ देवीमाहात्म्य पाठके पछलेका स्तोत्र विशेष । मार्कण्डेयने ब्रह्मामे पूजा था—

“अर्धन् केन पश्चात्तु दुर्गमाहाभ्यामुत्तमम् ।

शौचं निश्चिन्तितं तन् सर्वं कथयन् महाप्रभो ॥”

हे महाप्रभो ! दुर्गामाहात्म्य किसतरह पाठ करनेमें शोध फलप्रद होता है ? ब्रह्माने कहा,—

“वर्षं कौमुदिकादीं पठित्वा अर्घं पठेत् ।

अपेन सप्तशतीं पठान् क्रम एव सिद्धिर्दिता ॥”

शिवने वतया है, पहली अर्गल एवं कौमुदिक और पीछे कथक पढ़के सप्तशतीको पाठ करना चाहिये । (स्त्री०) अर्गला, अर्गलो ।

अर्गलिका (सं० स्त्री०) चिटखनी, बिसा, दरवाजा बन्द करनेका छोटा खटका ।

अर्गलित (सं० स्त्री०) अघरोपपत्ति पावड, चिटखनी-से बंधा हुआ ।

अर्गलो (स्त्री० स्त्री०) मिथ, श्याम प्रकृति देखकी भेड़ । (सं०) अर्ध देही ।

अर्गलोय (सं० स्त्री०) प्रतिशब्ध-सम्बन्धीय, चटके-में तालुक् रखने वाला ।

अर्गस्य, अर्धो देही ।

अर्ध (सं० पु०) अर्धो मायुः । आरग्वध हृष, सटकीरका पेड़ ।

अर्घ (सं० पु०) अर्घते क्रियेवद्भूतः मूर्धत्वेन दीयते अर्घं कर्मणि धञ् । (अथर्ववेदशास्त्रम् । पृ ७१३४ एव भाति) १ मूल्य, दाम, जो रुपया-पैसा कोई चीज खरीदनेको दिया जाता हो । अर्घ पूजायां

करने प्रमत्त, अद्भुतविद्या, प्रवृत्तम् । ३ पूजाका उपचार
दृष्टो, तन्मूल्य उपनि । ३ पूजनीयवार अर्घट ।
वर्षमें जल, दूध, कुशाद, दधि, मधु, तन्मूल्य और दण्ड
पड़ना है । ४ जलदान, सामने धानीका छोड़ना ।
५ अन्नदानसामग्री जल पदान, खाद्य धोनेको धानीका
दिया जाता । ६ अन्नदानसामग्री, खाद्य धोनेका
दान । ७ मुखारविण्ड, जोई मीना । ८ उपचार,
घेंट, बढाया ।

अर्घट (मं० स्त्री०) भक्त, कुशाता ।
अर्घदान (मं० स्त्री०) अर्घ समर्पण, घेंटका बढाया ।
अर्घदान (मं० पुं०) अर्घ देनेका बरतन, अर्घा ।
यह तदिका होता और देवताको जल देनेके काम
पाता है ।

अर्घसमाह्वन (मं० स्त्री०) मूल्य निर्धारण, दामका
निर्णय, शक्तिव कर्मगत, भागको घटा-बढा ।

अर्घसंन्यासन (मं० स्त्री०) अर्घ-मूल्य निर्धारण,
बोधके दामका निर्णय । बोधारण्य बोधका दाम
संन्यास गणनाका काम है । यह गणना या अर्घके
माममें एक बार पठना होता पाहिये ।

अर्घा (स्त्री० पुं०) १ जलपानी । २ अर्घपात्र ।

अर्घाई (मं० स्त्री०) अर्घ देने योग्य ।

अर्घांग (मं० पुं०) अर्घः पूजोपचार विधीयमान
मन्त्रदेवता, अर्घ-रत्न रत्न, कर्मधा । मुख्य देव
ताके मध्य पुरुषता महादेव ।

अर्घा (मं० स्त्री०) अर्घांत पूजने अर्घ-प्राप्त अद्भुत
कृतम् अर्घांशुति अर्घ-पत्नी वा । १ पूजनीयः अर्घांशुटे
यत् । २ पूजा करनेको दूधों जल अर्घांशु उपकरण ।
देवताके पूजा करनेके समय पाद्य अर्घांशु देकर
पूजा होती है । उन समय धामे अर्घांशु वा पूजनीय
अर्घांशु धामे अर्घांशु अर्घांशु पाद्य अर्घांशु देकर उमकी
पूजा करते है ।

(स्त्री०) अर्घे मूल्यमधिक मर्त्ति यत् । ३ अर्घांशु
हय वनका उपकरण यत् । अर्घांशु मूल्यमद् धोनेके
कारण है अर्घांशु कहते है ।

अर्घांशु (स्त्री०) अर्घांशुको अर्घका सामाज्य और
विधेय भेदों को प्रहार है । सामाज्य अर्घांशु निवम

यह है,—आजयो दासको बाईं ओर धरने एक
तिरकोपुरुष बनाये । पीछे धामे आचार्यमहिको
पूजा करनी होती है । आचार्यमहिकी पूजा हो जाने
पर दासको अर्घांशु धो जाने । धोनेके बाद अर्घ-
पात्रि मन्त्र उचारण-पूर्वक उम दासमें जल भरना
आवश्यक है । उसके अनंतर अद्भुतमुद्राद्वारा
‘अर्घांशु’ इत्यादि मन्त्रपाठ करनेकरने अर्घांशु
मोटेको आवाहन करे । अर्घांशु अर्घांशु द्वारा मन्त्र-
पुष्पादिमें पूजा करके धेनुमुद्रा दिवाजा और पाठ वा
दण्ड पार अर्घ पाठ करना पाहिये । यही सामाज्य
अर्घ है ।

विधेय अर्घांशु निवम यह है,—धोनेको बाईं
ओर तिरकोपुरुष बनाकर उसके ऊपर तिपटिका-
को रखे । उसके बाद मन्त्रको अर्घांशु धोकर धम
तिपटिकाके ऊपर रख एवं उमटी ओर माथका
मन्त्र पढ़ और मन्त्रपुष्पादि ज्ञान मन्त्रमें जल भर दे ।
इन सब प्रक्रियाओंके समाप्त हो जाने पर तिपटिकाके
अर्घांशु अर्घांशु, मन्त्रों अर्घांशु अर्घांशु एवं जलमें
मोममन्त्रको पूजा करनी पड़ती है । उसके बाद
अद्भुतमुद्रा द्वारा अर्घांशु अर्घांशु मन्त्रा गणित मोटेका
आवाहन करे । मन्त्रादि मोटेका आवाहन हो जाने
पर मन्त्रपाठपूर्वक हृदयमें देवताका आवाहन करना
पड़ता है । हृदयमन्त्र द्वारा अर्घांशु अर्घांशु
द्वारा शक्तिमुद्रा दिवा एकबार उम जलको देखे ।
अर्घांशु अर्घांशु मन्त्र द्वारा विधानकर मन्त्रपुष्पादिमें
देवताकी पूजा करनी होती है । देवताकी पूजा
समाप्त हो जाने पर मन्त्रमुद्राद्वारा उम पर हाथ
ठक दे एवं पाठ वा मूलमन्त्र करे । उसके अनंतर
धेनुमुद्रा दिवाकर मन्त्र मोठामा जल अर्घांशु जल
देना पाहिये ।

अर्घांशु (मं० अर्थ०) अर्घांशु मूल्यपर, शक्तिव
दानध ।

अर्घांशु (मं० पुं०) अर्घांशु, सामाज्यपात्र ।

अर्घांशु, अर्घांशु है ।

अर्घांशु, अर्घांशु है ।

अर्घांशु (मं० पुं०) अर्घांशु हय ।

अर्चक (सं० त्रि०) अर्चति अर्चयति या, अर्च-खुल् ।
 पूजक, परस्तिग करनेवाला । (स्त्री०) टाप्-इत्वम् ।
 अर्चिका ।
 अर्चत्रि (वै० त्रि०) शब्दकर, आवाज निकालने-
 वाला, जो गरज रहा हो ।
 अर्चत्रय (वै० त्रि०) अर्चनमर्चति यत्, अर्च भावे
 अत्रि । पूजनीय, पूजने योग्य, जो परस्तिग किये
 जानके काबिल हो ।
 अर्चद्वय (वै० त्रि०) दोसिमान धूमविशिष्ट, जिसके
 धुवां चमकदार रहे ।
 अर्चन (सं० स्त्री०) अर्च भावे ख्युट् । पूजन,
 परस्तिग ।
 अर्चना (सं० स्त्री०) चुरा० अर्च-युच्, टाप् । पूजा,
 परस्तिग ।
 अर्चनानस् (वै० पु०) ऋषि विगेष ।
 अर्चनीय (सं० त्रि०) अर्चति, अर्च-अनीयर् । पूज-
 नीय, परस्तिग पाने काबिल ।
 अर्चमान, अर्चनीय शब्दो ।
 अर्चा (सं० स्त्री०) अर्च आधारे च । १ प्रतिमा,
 मूर्ति । 'अर्चा प्रतिमा' । (कार्त) भावे च । २ पूजा,
 परस्तिग । 'अर्चा पूजाप्रतिमयोः' । (विच)
 अर्चावत् (सं० त्रि०) पूजित, जो परस्तिग किया
 गया हो ।
 अर्चाविडम्बन (सं० स्त्री०) मिथ्या पूजा, झूठी
 परस्तिग ।
 अर्चि (सं० स्त्री०) अर्च-इन् । १ अग्निगिखा,
 आगकी लपट । २ कान्ति, चमक ।
 अर्चिंत (सं० त्रि०) अर्चि-क्त । १ पूजित, परस्तिग
 पाया हुआ । २ भक्तिसे प्रदत्त, जो इच्छतसे दिया
 गया हो ।
 अर्चिन्तिन् (सं० त्रि०) सम्मान देता हुआ, जो
 इज्जत कर रहा हो ।
 अर्चिष्ट (सं० पु०) पूजक, परस्तिग करनेवाला
 शब्द ।
 अर्चिन् (वै० त्रि०) पूजा करता हुआ, जो परस्तिग
 कर रहा हो । २ दीसिमान, चमकदार ।

अर्चिनी (सं० पु०) १ प्रकाशका किरण, रोगनीकी
 शब्द । २ व्यक्तिविगेष, किसी शब्दका नाम ।
 अर्चिनेत्राधिपति (सं० पु०) यच्च विगेष ।
 अर्चिमत (सं० त्रि०) दोसिमान, चमकदार ।
 अर्चिमान् (सं० पु०) व्यक्तिविगेष । (त्रि०)
 अर्चिमत शब्दो ।
 अर्चिमाख्य (सं० पु०) महर्षि मरीचिके पुत्र ।
 वाष्ठीकिने इष्टे बन्दर बताया है ।
 अर्चिरादिमार्ग (सं० पु०) अर्चिरादिभिस्तदभि-
 मानिदेवैः उपलक्षितो मार्गः, याक० तत् । देवतादिके
 गमनागमनका उत्तर पथ, उत्तरकी जिम राह
 देवता पायें-जायें ।
 अर्चिवत् (वै० त्रि०) दोसिमान, भमकते हुआ ।
 अर्चिषत् (सं० पु०) अर्चि-इत् मत्तुप् । १ छ्यै ।
 २ अग्नि । ३ अग्निदेव । (त्रि०) ४ दोस, चम
 कौला ।
 अर्चिषती (सं० स्त्री०) १ अग्निपुरी । २ मोह
 मतानुसार—दयमें एक छयिषी ।
 अर्चिषान्, अर्चिषन् शब्दो ।
 अर्चिस् (सं० स्त्री०) अर्चते अर्चते, अर्च-इति ।
 १ गिखा, चोटो । 'अर्चिर्इतिः गिखा किरणम् ।' (१११)
 २ कथाप्रकीर्णनी भौर धूमकेतुकी माता । (पु०)
 ३ मयूष, किरण । 'अर्चि मयूष-अपयोः' । (१११) ४ अग्नि,
 आग । (स्त्री०) ५ दीसिमात्र, चमक-दमक ।
 'आत्मासाक्षीनेत्रु-अर्चिः' । (१११)
 अर्च्य (सं० त्रि०) अर्चि-तुमर्च्यम्, भादि अर्च-एवत्,
 चुरा० अर्च यत्, ऋच स्तुती एवत्, वा । १ पूजनाय
 अर्चनीय, स्तुत्य, परस्तिगके काबिल, जो तारीफके
 काबिल हो । 'अर्च्यं सागर-विषमं जलम् ।' (१११ । १०)
 (अर्थ) २ पूजकर, परस्तिगके माय ।
 अर्च्य (सं० स्त्री०) १ मार्यना, निवेदन । २ पायतन,
 चौड़ाई ।
 अर्च्य-हरमाल (सं० स्त्री०) राजकोपमें धन पट्टुचाने-
 का आभाराय, जिम कागजके जुरिये रूपया सरकारी
 चरुनिमें दाजिल करे ।
 अर्चक (सं० पु०) अर्चयति मिथ्यादयति एवाचि

वशादि वा महात्मसुखेन, चर्च—विष्-कृतम् ।
 १ आर्योम ह्यथ, अयामका पिङ्ग । २ अथ मुचमीहृष-
 भेद, प्रथयो । ३ अनेन सर्वेदी, मादो मथयो । ४ अनेन
 अयाम ह्यथ, मयुंटे टिगुवा पिङ्ग । (सि०) चर्चति
 चर्चन्, चर्च-चर्च-रि-कृतम् । ५ अयार्चक, पेदा चर्च-
 वाना, श्री कवदा कमाना वा ।

चर्चक (मं० पु०) चर्चक ह्यथ, मत्र, चर्चका ।
 चर्चकाम् (च० सो०) निवेदनमत्र, दरशात् ।
 चर्चन (मं० लो०) चर्च भावे कृतम् । १ चर्चतुभूत
 आचार विमोच, अयार्चन, चर्चने चर्चने कामको
 पेदायाम् । २ चर्चक, अर्चक । अमुने मान प्रकाशके
 धननामको धर्मगुणत चर्चन वतावा है—

“चर्चकचर्चकः सति कर्मः कर्तुं शकः ।
 सति चर्चकैरेव चर्चकित्तव चर्चकः” (म० १०१११)

पेदाके धन, मन्वित धन, (श्री धर्मोदर कोरे रचके
 मर प्राप्ति चौर विमोचका दूरा दारिदार न को) कृत्य-
 वाच्य कर्तके दान धन चौर कृत्य दारा कीत यमु
 साध्य प्रथति चार चर्चके चलने धर्मगुणतुचर्चन है ।
 दूरको श्रीत श्री धन मिमला, ललितके चलने वद भी
 धर्मगुणत चर्चन होता है । आच, लवि, वाचिल्य
 प्रथुनिमे आ धन वाता, वद पेदाके को चलने धर्मगुणत
 चर्चन कहताता है । मन्वितवक साध्यके चलने चर्च-
 गुणत चर्चन है । चिर साध्य वाचन चौर अध्यायनी
 श्री धन वाता, वद भी धर्मगुणत चर्चन ही कहताता है ।
 कृत्य तर्प मन्व ललितके चलने साध्यके दारा धन
 धन धर्मगुणत चर्चन होता है ।

चर्चनीय (मं० सि०) १ प्रामय्य, चाभिम करने
 कर्चिक । २ मंवेदनाय, इकटा करने लायक ।
 चर्चमा (सि०) चर्चकैः ।
 चर्चित (मं० सि०) १ अयार्चन ठिपा कृपा, श्री
 कमाना मदा को । २ मंवेदनीय, इकटा किय
 कृपा ।
 चर्चि, चर्चकैः ।
 चर्चि दारा (च० सो०) दारिको चर्चि, श्री दरशात्
 दीर्घादीं ललित करनेको दो कर्मो को ।
 चर्चि साध्य (च० सो०) मन्वितका चर्चकैः ।

श्री दरशात् चर्चो दरशात्को विन्दो वात कमाने-
 को दो कर्मो को ।

चर्चन (मं० पु०) चर्चकति यमा चर्च-विष् ।
 १ चर्च, वाच्यकृतम् । २ चर्चन यात । ३ ईव चर्च-
 योयि । ४ चर्चको । ५ मयुंटे । ६ अनेन सर्वे । ७ अथ ।
 चर्चकोग विमोच । ८ अथ पुत । ९ चर्चन ह्यथ ।
 (सि०) ११ यथगुणविमोच ।

चर्चन वाच्य रामके लनीय पुत रई । इकके
 चोरेमी कर्चको मर्मने इकका मय कृपा या । यथ
 चर्चने एक इक है । पीरे साध्यके चर्च हीनवन
 हीकर हिमानयको एक गुणमें रचने लते । चलने
 महादेवको वाच्यके चर्चकार मन्वकोचर्च वाच्य
 इकमें लय चर्च किय ।

चर्चन दोषाचार्यके प्रिय मिथ रई । यथ महा-
 धनुषे चौर महादारा है । इकके याम चर्चन गुणी,
 माच्यो चर्चन एवं कविचर्च रच विद्यामान वदा । चर्च
 याच्य इकके मारयो है । चर्चनका चोचन चर्चको
 विद्याय है । इकके मय विष्कर दोषाच्यो मया
 चौर वाच्यचर्चन कलाकर चर्चको गुट किय था ।
 कुचकेचर्च सुचर्च इकमें चर्चनमा चोचन दिव्याय ।
 चर्चने दोषो, गुणदो चौर विद्यादारा वाचि-
 चर्च किय था । चर्चनम्, चर्चनके पुत चर्च
 चर्चन चोचन है ।

महाभारतके विराटपुत्रके चर्चनके दान नाम लिखे
 है । यथा—चर्चन, पातन, विष्, किराटी, मंग-
 यादन, वीमन्व, विचय, लय, मयमाचो चौर धन-
 चय । इकके चर्चन इकके चौर भी चर्च लय
 मयनित है । यथा—चर्च, मन्व, माच्यो,
 मयमयाच्य, मन्वमाचो, लविचर्च, वाच्यो, गुण-
 दाय, गुणार्च्य चौर इककेन ।

चर्चन चर्चन दान नाम को चर्च है, यथ
 नाम चर्चने विराटपुत्र चलने मयं चर्चो ही—
 चर्चको मर्मने मय लेया इक चौर विमोच
 लको है चौर भी मन्वेदा विचर चर्चका चर्च-
 नाम किय करना है, चर्चो को मय गुण चर्चन
 चर्चने है ।

‘पुष्पिका चतुरमया वर्षा मे दुर्लभः समः ।

करोमि वनं सुखं मयात्मानमुभयः विदुः ॥’

(विराटपु० ३३ अ० १० श्लो० ।)

नीलकण्ठने इसकी टीकामें लिखा है,—‘अर्जुन इति ऋज गतिस्थानार्थनोपार्जनैषु इत्यत उन्नत् प्रत्यये भवति वर्षा दीप्तिः सम ऋजुः दीप्तिमत्वात् समत्वात् यद्दकर्मकरत्वात् अर्जुन इत्यर्थः ।

यह समस्त देवको जीत केवल धनग्रहण करते हुए उसीमें रहते थे, इससे इनका नाम धनश्रय हुआ । युद्धमें जाकर बिना जय किये, यह कभी श्रौटते न थे, इसलिये इनका नाम विजय पड़ा । रणक्षेत्रपर अर्जुनके रथमें सफेद रंगके घोड़े जुते रहते थे, इसीसे लोग इन्हें श्वेतवाहन कहने लगे । हिमालयप्रद्वपर दिनके समय उत्तरफाल्गुनो एवं पूर्वफल्गुनी नक्षत्रोंके सन्धिस्थानमें इनका जन्म हुआ था, इसीसे यह फाल्गुन नामसे विख्यात हुए । दानव-युद्धके समय इन्होंने इन्हें उज्ज्वल रत्नकिरीट पहना दिया था, इसलिये लोग इन्हें किरीटी कहकर पुकारने लगे । अर्जुनने युद्धक्षेत्रमें कभी घृणितकर्म नहीं किया, इसीसे धीमत्सु नाम पाया था । यह दाहने हाथको तरह सब्य अर्थात् श्रेयसे हाथमें गाण्डोवकी चट्टाकर बाण छोड़ सकते थे, इससे इनका दूसरा नाम सब्यसाधो रहा । (सव्येन वामेनापि हस्तेन सचितुं ध्याकर्षथादि-क्रियायां मन्वन्तं शीलमस्येति सब्यमाची इत्यर्थः) । अर्जुनको कोड़े हरान सकता था, इसीसे इन्होंने जिष्णु नाम पाया । देवनेमें अर्जुन उज्ज्वल लक्षण वर्णके रहे, इसलिये सधपनमें या पाण्डुराज इन्हें प्र्यारसे लक्षण कहकर पुकारा करते थे ।

अर्जुनक (म० वि०) १ अर्जुनसम्बन्धीय, अर्जुनमें ताम्रक रवनेवाला । (पु०) २ अर्जुनपूजक, जो अर्जुनको पूजता हो ।

अर्जुनकाण्ड (वै० त्रि०) श्वेतानुबन्ध-विगिष्ठ, सफेद जामेवाला, जिसके सफेद तितथा रहे ।

अर्जुनघृत (म० श्लो०) घृतोपध मीद । यह हृद्दोगमें दित है । इसके वतानेका विधान हम प्रकार है— अर्जुनका त्वक् ६४ पल, जल ६४ ग्रायक, एकत्र ले

पाक करे । जब चतुर्थांश यानी १६ ग्रायक ग्रह रहे तो उतारकर कपड़े में छान ले । पीछे इसमें अर्जुनकी छानका कल्क १ ग्राय, सूक्ष्मित घृत ४ ग्राय मिलाकर एकत्र पचाडासे ।

(चक्रवर्तिपदमङ्गल शं० ४८)

दूसरा प्रकार—घृत ४ ग्राय, अर्जुनखरस ४ ग्राय, कल्कार्थ अर्जुनत्वक् १ ग्राय छोड़ते हैं । वतानेकी रीति पूर्ववत् ही ममभना चाहिये ।

(मेघभरवाचने)

तीसरा प्रकार—सूक्ष्मित गायका घो ४ सेर, कायार्थ अर्जुनको छाल ८ सेर, जल ६४ सेर, किशो वरतनमें छान पकाना चाहिये । ग्रह १६ सेर रह जानसे उतार लेते हैं । कल्कार्थ अर्जुनको छान १ सेर, यह सब रख घीके माघ पकाये । मात्रा १ से २ तोले तक है । सब तरहके हृद्दोगमें यह विशेष उपकार करता है ।

अर्जुनक्षवि (सं० त्रि०) श्वेत, सफेद ।

अर्जुनतम् (सं० अथ०) अर्जुनको योग्य ।

अर्जुनखक् (सं० श्लो०) अर्जुनवत्कान, अर्जुन पेड़का थकला ।

अर्जुनध्वज (सं० पु०) १-तत् । अर्जुनके रथ-ध्वज इन्साम्ना ।

अर्जुननामास्थ (सं० पु०) अर्जुन हृष ।

अर्जुनपाको (म० श्लो०) अर्जुनः शुभः पाकः फलादियेभ्याः गोषे जानित्वात् ङीप् । श्वेतपाकी, सता विशेष । इसका फल सफेद होता है ।

अर्जुनरोग (म० पु०) नेत्ररोगमिद । (Syc or hard-olum) विलतो । यह सामान्य स्कोटक रोग भिय और कुछ भी नहीं । दुर्लभ मनुष्यके एक किनारे एक फोड़ा निकलता है । उष्य जलका खेद और अलसोका प्रनेप ऐनेसे फोड़ा एक जाता है । फिर उसका ऊपरों भाग कुछ काट डालनेमें पीय निकलतो है । हिन्दुस्थानमें अर्जुन जोड़नेमें लोग पुरानी दीवारका काँयना चिपकर नगा देते हैं । एक फोड़ा होनेसे और तीन चार फोड़े निकल सकते हैं ।

५-तत् । १ समुद्रफेन । २ मत्स्य विशेष । (त्रि०)
 ३ समुद्रजात, बहरसे पैदा ।
 अर्णवजमल (स० पु०) समुद्रफेन ।
 अर्णवपोत (स० पु०) जहाज, नाव ।
 अर्णवफेन, अर्णवजमल देखो ।
 अर्णवमन्दिर (स० पु०) अर्णवः मन्दिरमिव यस्य
 अर्णवे मन्दिरं यस्य वा, बहुव्री० । वरुण, लिसके
 समुद्र ही घर रहें ।
 अर्णवमल, अर्णवजमल देखो ।
 अर्णवयान (स० स्त्री०) जहाज, नाव, समुद्रपर
 चलनेकी सपारी ।
 अर्णवान्त (स० पु०) समुद्रका छोर, बहरका
 सिरा ।
 अर्णवोद्भव (स० पु०) अर्णवः उद्भवः उत्पत्तिस्थानं
 यस्य, बहुव्री० । १ अग्निजार वृक्ष । २ चन्द्र, चाँद ।
 (स्त्री०) ३ अमृत, भावहृयात ।
 अर्णवोद्भवा (स० स्त्री०) त्र्यो, समुद्रसे निकली
 हुई लक्ष्मी ।
 अर्णव् (स० स्त्री०) ऋच्छति गच्छति, ऋ-असुन्
 नृट् च । १ जल, पानी । २ तरङ्ग, लहर । ३ समुद्र,
 बहर । ४ वायुमण्डल । ५ नदी, दरया ।
 अर्णव (स० पु०) अर्णविरत्यस्य, अर्णव्-अर्ण
 भादि० अच् । १ समुद्र, बहर । (त्रि०) २ जल-
 विगिष्ट, पानीदार ।
 अर्णवत् (वै०) अर्णव देखो ।
 अर्णा (स० स्त्री०) नदी दरया ।
 अर्णासुन् (स० पु०) अर्णासि सन्त्यस्मिन्, अर्णव्-विनि ।
 अर्णव देखो ।
 अर्णोद (स० पु०) अर्णासि ददाति, अर्ण-दा-क ।
 १ मेघ, बादल । २ सुप्तक, सोया । (त्रि०)
 ३ जलदाता, पानी पहुँचानेवाला ।
 अर्णोद्भव (स० पु०) अर्णसि भवति; अर्ण-स-भू-पच् ।
 ७-तत् । १ शङ्ख । (त्रि०) २ जलजात, पानीसे पैदा ।
 अर्णोदित् (वै० त्रि०) जलविगिष्ट, पानीदार ।
 अर्णमल, अर्णमन (स० पु०) अर्णस्य षोडितस्य
 इव गलः गलनं पत्रपुष्पादेः यस्मात्, यदा अर्णा इव

गला चीषकण्ठमानी यस्य; बहुव्री० प्रया० वा इत्सः ।
 नीलमिक्षुटी, नीली भाड़ो ।
 अर्णन (स० स्त्री) ऋतस्य, ऋ पचे इयङ्भासः ।
 १ निन्दा, हिकारत, बुराई । (त्रि०) २ निन्दक,
 हिकारत करनेवाला ।
 अर्णति (स० स्त्री०) अर्ण-ञिन् । १ पोड़ा, दर्द ।
 अर्णति येन, कारणे ञिन् । २ धनुष्कोटी, कमानका
 सिरा । 'अर्णः शोकाद्भुष्कोटीः' (अमर)
 अर्णिका (स० स्त्री०) ऋत-पुन्-टाप् । नाय्योश्च
 ल्येष्ट भगिनो, खिलको बड़ो बहान ।
 अर्णक (स० त्रि०) ऋत वाङ् उक्त् । स्पष्टक,
 खधांकारी, हसदी, भगडान् ।
 अर्ण (स० पु०) अर्णति ऋट्- (अर्ण-उत्ति-नाति-अर्णन् । उप् ११६)
 इति धन् । यदा अर्णते अर्ण-भावे कर्मणि वा अच् ।
 अर्णधेय, वाच्य, मानो । शब्दका शक्ति द्वारा बोध्य
 पदार्थ अर्णात् 'घट' ऐसा शब्द उच्चारण करनेसे जो
 वस्तु समझो जाता, वही घट शब्दका अर्थ है । अल-
 हारिकोंके मतमें अर्ण तीन प्रकारमें विभक्त है—
 वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ । जिस शब्दमें जो अर्ण
 प्रतिपन्न होता है, उसे वाच्यार्थ कहते हैं । जैसे 'शङ्ख'
 कहनेसे घर समझा गया । लक्ष्य द्वारा जो अर्ण
 समझते, उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं । जैसे, गङ्गामें
 गापगण बास करते हैं । गङ्गाके जलमें मनुष्य बाध
 नहीं कर सकते, अतएव लक्ष्य द्वारा गङ्गाके शून्यवर्ती
 गोपगण समझ पड़ते हैं । काव्यमें व्यङ्ग्यना शक्तिद्वारा
 जिस अर्णका बोध होता है, उसे व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं ।
 २ धन, दौलत । सब कोई धनकी प्रायना करना
 इससे धनका नाम अर्ण हुआ है । अर्ण तीन प्रकारका
 है—शुद्ध अर्ण, अशुद्ध अर्ण एवं लक्ष्य अर्ण । शुद्ध अर्ण
 अथवा ऐहिक कार्य करनेसे देवल, अशुद्ध अर्ण
 अथवा मनुष्यत्व और लक्ष्य अर्ण अथवा तिर्यक्
 योनित्व नाम होता है । अर्णवर्णके निज निज हात-
 द्वारा उपाजित अर्णका नाम शुद्ध है । जैसे ब्राह्मणका
 याजन पश्यापनादिद्वारा अर्णित, अर्णवर्णका लक्षण,
 वैश्यका कृषि वाणिज्यादि लक्षण और शूद्रका दास्य-
 पाजित धन है ।

है। इसलिये न्युतिका शब्दक्रम छोड़ अर्थक्रमसे पहले यंत्राङ्गको ही एकता है।

अर्थगत (सं० त्रि०) अर्थगतम्, २-तत्। १ गताय, वेफायदा, वेमतलव। (पु०) २ अलङ्कार शास्त्रोक्त अर्थान्वित दोष विशेष, गायत्रीमें मानो विगड जानिका ऐव।

अर्थगरीयस् (सं० त्रि०) अर्थान्वित, अभिप्रायगर्भ, मानीदार, जिसमें मतलब खुद भरा रहे।

अर्थगौरव (सं० स्त्री०) १-तत्। अल्प कथामें अर्थका आधिक्य, थोड़ा बातका बड़ा मतलब। इसी प्रकारका शब्द प्रशंसनीय होता है। भारवि कविकी रचना प्रायः अर्थगौरवसे भरी है, जिससे जनसमाजमें चर्चा बनाया किराताजुं नोय पति आदरकी मामग्री ठहरा है।

अर्थघ्न (सं० त्रि०) अर्थ हन्ति, ताच्छीष्यादौ ट।

अर्थनाशक, रूपया बरबाद करनेवाला, फूजूलखर्च।

अर्थधर्मिका (सं० स्त्री०) कर्कटशुद्धी, ककरासिङ्गी।

अर्थचिन्तक (सं० पु०) रात्र्यके आय-व्ययकी चिन्ता रखनेवाला मन्त्री, जो वज्जिर बादशाहीके पामद-खर्चका ख्याल रखता हो।

अर्थचिन्ता (सं० स्त्री०) अर्थानां मन्त्रिकर्तव्य तन्त्रायव्ययादीनां चिन्ता, १-तत्। मन्त्रीके कर्तव्य राजाद्रत्नम शौर आयव्ययादिकी चिन्ता, अपनी धोर दूसरेकी यादगाहीमें किये जानेवाले कामका ख्याल।

अर्थजात (सं० स्त्री०) अर्थानां जातम्, १-तत्। १ अयसमूह, दौलतका टेर। (त्रि०) अर्थः जातो यच्च, बहुव्री०। २ धनसम्पन्न, दौलतमन्द। ३ अभिप्रायगर्भ, मानीदार।

अर्थघ्न (सं० त्रि०) अर्थं जानाति, अर्थ-घ्ना-क। प्रयोजनज्ञ, मानो समझनेवाला, जो मतलब निकाल लेता हो।

अर्थतत्त्व (सं० स्त्री०) १ सत्य, नून विषय, राक्षी, असली मतलब। २ किमो विषयको सची दया, मामलैकी जो हालत पसलमें रहे।

अर्थतम् (सं० अथ०) अर्थ—तस्मिन्। १ किसी प्रधान

विषयपर, खास मतलबसे। २ अर्थानुसार, मानीके मुवाफिक। ३ पसुतः, पसलमें सच-सच। ४ अर्थानुयानो।

अर्थद (सं० त्रि०) अर्थान् धनानि ददाति, अर्थ-दा-क १ धनद, दौलत देनेवाला। २ उपयोगी, फायदेमन्द। ३ उदार, सखी। (पु०) ४ धनदान दार मन्त्राय-कारी गिद्य वा छाव, जो गार्गिद या तालव-इत्य दौलत दे खुग करता हो। ५ कुबेर।

अर्थदण्ड (सं० पु०-स्त्री०) जुमाना, दौलतकी सजा, जो रूपया किसे मुजरिमसे सजाके तौरपर सज्जुन हो।

अर्थदूषण (सं० स्त्री०) अर्थानां दूषणम्, १-तत्। अर्थके धनका अपहार, दूसरेकी दौलतका बिगाड़। सम्पत्तिका अनुचित घसन, दौलतको गेरवाजिब गिरफ्तारी। २ अनुचित व्यय, फूजूलखर्ची। ३ वाक्यार्थ में दोषारोपण, फिकरेके मानोमें ऐशओयो।

अर्थना (सं० स्त्री०) अर्थ-युक्-टाप्। याचा, मांग। २ भिन्ना, भौल। ३ अर्थना, तकछीफुदिही।

‘याचा निपायं गार्ग्या।’ (चर)

अर्थनिवन्धन (सं० त्रि०) धनसे प्रयोजन रखनेवाला, जिसका सबब दौलतमें रहे।

अर्थनियय (सं० पु०) अभिप्रायका निर्णय, दरादाका फैसला।

अर्थनीय (सं० त्रि०) याचाके योग्य, मांगने काबिल।

अर्थपति (सं० पु०) अर्थानां पतिः, १-तत्। १ राजा, बादशाह। २ कुबेर। ३ अधीश्वर, दौलतमन्द शख्स।

अर्थपर (सं० त्रि०) १ धनोपात्रनपर कटिबद्ध, जौ दौलत कमानीमें लगा हो। २ व्ययपराहमुत्र, कपूस, जो खर्च करनेमें मुँह चौराता हो।

अर्थपिशाच (सं० त्रि०) धनका प्रेत, दौलतका शैतान्, जो रूपयेके निवे शैतानी करनेमें चुकता न हो।

अर्थप्रकृति (सं० स्त्री०) अर्थानां प्रयोजनानां प्रकृतिः कारणम्, १-तत्। प्रयोजनहेतु नाटकान् कारणाकारण पक्षक।

अर्थप्रयाग (सं० पु०) अर्थानां धनानां तन्त्रायव्ययादीनां

वाद, परकृत्यर्थवाद एवं पुराकल्याणवाद । “द्वितित्वा
परकृतिः पुराकृत्य इत्यर्थः वादः ।” (गो० सू० १४६१)

जिस कार्यकी विधि कौ गई है, उसी विहित
कार्यका फल दिखाकर प्रशंसा करनेकी सुल्यर्थवाद
कहते हैं। जैसे, ‘संख्यावन्दनादि करनेसे दैनिक
पापघ्नय एवं निरापद ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।

किसी कार्यमें शान्ति दिखाकर विहित कार्यमें
प्रवृत्त करनेकी निन्दा कहते हैं। जैसे, ‘अमावस्या
प्रभृति पर्षद्विनमें स्त्री तैलादि व्यवहार करनेसे स्त्रीग
नरकगाम्नी होती हैं।’ यहाँ पर्षद्विनमें स्त्री तैलादि
व्यवहारकी निन्दामें उसके निवारणकी विधि कौ गई।

जो किसी व्यक्तिके लिये कर्तव्य और किसीके
लिये अकर्तव्य हो, वेद परस्पर विरुद्ध वाक्यका नाम
परकृति है। जैसे, शास्त्रके लिये मद्यमांस द्वारा
पूजा करनेकी व्यवस्था है, परन्तु येष्यके लिये वह
मना है।

पूर्वके आवरित वाक्यका नाम पुराकल्प है।

स्मार्तने लिखा, विधियाक्य भी किसी किसी जगह
अवसर हो जाता है। यैसै स्थलमें सुल्यर्थवाद
द्वारा कार्य करना पड़ता है। फिर किसी किसी
स्थलमें विधि वाक्यके साथ एकत्र पाठ रहनेसे अर्थ-
वाद प्रामाण्य भी होता है। श्रीकृष्ण तर्कालङ्कार कहते
है, विधिके साथ अस्ममभिब्याहृत वाक्यका नाम अर्थ-
वाट है। अनुवाद देखो।

अर्थविज्ञान (सं० स्त्री०) अर्थस्य विज्ञानम्, ६-तत् ।
अर्थशास्त्रिता, मानकी समभटारी। यह बुद्धिके भाटमें
एक गुण होता है,—

“अ. १. १. १. अर्थस्यैव अर्थस्यैव धारणं तथा ।
उक्तोऽप्योऽर्थविज्ञानं मत्तस्मान्मय धीमुच्यते ॥” (६५)

गुरुकी सेवा, शास्त्रोपदेशका श्रवण, यज्ञ तथा
धारण, तर्क छोड़ समभटारी और नियत करण
बुद्धिके यह भाट गुण होते हैं।

अर्थविद् (सं० वि०) अर्थ कार्यप्रयोजनादि वा
वेत्ति, अर्थ-विद् क्तृः। कार्याभिप्रा, मत्तस्त्व समभने-
वाला, शोशियार।

अर्थविक्रमर्ष (सं० पु०) अर्थस्य अर्थबोधस्य विक्रमर्षः

दूरत्वं विलम्ब इति यावत्, ६-तत् । विनम्बमें अर्थ-
बोध, गौघु अर्थबोधन होना, पूर्वपूर्वको अपेक्षा उत्तर
उत्तरका विलम्बमें अर्थबोध, मानकी कल्प समभ
न पढ़ना।

वाक्यमें जो सब पद रहते हैं, स्वल्पविशेषमें उनके
बोध पहले कारक बोधि निन्दादिका अर्थबोध होता,
इसीसे कारककी अपेक्षा निन्दा और वाक्यादिका अर्थ
समभनेमें विलम्ब लगता है।

आहविवेककी टोकामें श्रीकृष्ण तर्कालङ्कारने
लिखा है,—“अथ त्रैविण्यं श्रुतिविद्-वाच-प्रकरण-प्राप्त-वशा-
ख्यात् समन्वाये पादोर्लम्बव विनम्बान् ।” श्रुति, लिङ्ग, वाश्व,
प्रकरण, स्थान, समाख्या, ये सब न्याय यटि एक ही
स्थानमें उपस्थित हों, तो क्रम-क्रममें न्यायका दोहरा
होता है। इसके भाष्यमें कहा है—

“त्रैविण्योवा समता च लिङ्गं
वाक्यं यदाव्ये च च इति तानि ।
या प्रक्रिया वा कथमिदमेवा
प्राप्तं इती शोचयन् वनाख्या ॥”

द्वितीय प्रकृति कारकका नाम श्रुति है। चनेक
स्थलोंमें प्रकृत भाव प्रकाश करनेके लिये विशेष शब्दका
प्रयोजन नहीं पड़ता, केवल द्वितीयादि विभक्ति ही
वह उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। जैसे ‘पच पचति’
भात पक रहा है। यहाँ अथ शब्दमें केवल द्वितीया
विभक्ति देखकर ही पच धातुका कर्मबोध होता है।
इस कर्मको समभनेके लिये दूसरे पदका प्रयोजन
नहीं है।

फिर उपपदमें भी द्वितीयाभि ऐसे अर्थका बोध
होता है। जैसे,—‘मासमधीते’—एक मास कास
पढ़ते हैं। यहाँ सब बात ठीक प्रकाश करके बोधने-
में,—‘मासव्याप्य अर्धाति’ एक महीनेमें पढ़ते हैं,
इस तरह खोलकर कहना चाहिये। पतएव ‘वे एक
महीनेमें पढ़ते हैं’ ऐसा बात कहनेमें ‘एक महीनेमें’
इसमें अन्वयपदको अपेक्षा रहती, इसलिये विलम्बमें
यथायं बोध होता है। इसके रोकनेके लिये जो
कारककी बात कही गई है।

उपपदके भाष्यमें केवल द्वितीयाको बात विधो

अक्षपटलका गणनिक्य अधिकार, युक्तसे अपहत समु-
 दयका प्रत्यायन, उपयुक्तपरीक्षा, शासनका अधिकार.
 कोशमें रखने योग्य रत्नकी परीक्षा, आकर कर्मान्तका
 प्रवर्तन, अक्षगालामें सुवर्णका अध्वच, विगिणामें
 सौवर्णिक प्रवार, कीटके भागारका अध्वच, पण्य
 (धात्री)का अध्वच, कुप्यका अध्वच, चायुधके भागारका
 अध्वच, तुलाके मानका पौतय, देशकालका मान,
 शुल्कका अध्वच, शनकका व्यवहार, सूत्रका अध्वच,
 सौताका (चोरो) अध्वच, सुराका अध्वच, सूनका
 अध्वच, गणिकाका अध्वच, नौकाका अध्वच, गायका
 अध्वच, अश्वका अध्वच, हस्तोका अध्वच, हस्ताका
 प्रचार, रथका अध्वच, पतिका अध्वच, सेनापतिका
 प्रचार, सुद्राका अध्वच, विव्रीतका अध्वच, समाहताका
 प्रचार, रथपति वेदेहक-तापसका व्यञ्जन प्रणिधि,
 नागरक प्रणिधि। तोसरे धर्मस्त्रीयाधिकारमें—व्यव-
 हारको स्थापना, विवादके पदका निवन्ध, विवाहका
 संयुक्त, विवाहका धर्म, स्त्रीके धनका कल्प, आधि-
 वेदनिक, शूद्र्या. भर्म, पारुष्य, हेप, भतिवार,
 उपकार, व्यवहारका प्रतिषेध, निव्यतन, पथनुसरण,
 हस्तप्रवास, दीर्घप्रवास, दायका विभाग, पुत्रका
 विभाग, दायका क्रम, पंगका विभाग, वालुक,
 रथका वालुक, वालुका विक्रय, सौमाका विशाद,
 मर्यादाका स्थापन, बाधाका बाधिक, विधेय चेत्रके
 पथकी हिंसा, समयका अनपाकर्म, ऋणका
 धादान, धौपनिधिक, दास-कर्मकरका कल्प, स्वामीका
 अधिकार, भूतकका अधिकार, मन्थय-समुत्थापन,
 विक्रीत क्रीतका अनुगय, दत्तका अनपाकर्म, पश्चातिक
 विक्रय, स्वस्वामीका मर्याद, साहस, वाक्-पारुष्य,
 दण्डपारुष्य, दूतका समाह्वय, प्रकीर्णक। चौथे
 कण्टक शोधनाधिकारमें—कारुक्का रक्षण, वेदे-
 हकका रक्षण, उपनिपातका प्रतीकार, गूढाजीवोको
 रक्षा, सिद्ध व्यञ्जनसे माणव प्रकाश, शठारूप
 कसेका अभिपक्ष, पाग भूतककी परीक्षा, वायुक्रमका
 अनुयोग, सर्वाधिकरणका रक्षण, एकाहके वधका
 निव्यय, सुह-चित्र (पनेक) दण्डकल्प, कनयाका
 प्रकम, भतिवारका दण्ड। पाँचवें योग हर्षाधि-

कारमें—दाण्डकार्मिक, कोशका अभिसंहरण, भृत्यका
 भरणीय, अनुजोषीका हत, समयका पारारिक,
 राज्यका प्रतिस्वान, एकेव्य। छठे मण्डल योग्याधि-
 कारमें—प्रकृतिकी सम्पत्, शमका व्यायामिक। सातवें
 पांडुगुण्यधिकारमें—पांडुगुण्य समुद्देश, चयके स्थानकी
 हदिका नियय, संगयकी हति. समहीन ज्ञायमूर्ते
 गुणका अभिनिवेश. हानमन्थि, विष्टद्यासन. मन्था-
 यसन, विष्टहर यान. मन्थाय यान, मन्थय प्रयाण,
 यातव्य धौर भमितके भमितवहकी चिन्ता. चय-नाभ
 विराम हेतु प्रकृतियोंका सामवायक विपरिमग. सहित
 प्रयाणिक, परिपणित, धपरिपणित, धपसृत, मन्थि;
 हेधोभाषिक, मन्थि विक्रम, यातव्य हति, अनुपाह
 मित्रविशेष, मित्रमन्थि, हिरण्यमन्थि. भूमिमन्थि,
 अनवसित मन्थि, कममन्थि, पार्ष्णपाहविन्ता,
 हीनयक्ति-पूरण, धनवानसे विषय करके उपरोध हेतुक
 दण्डोपगत हत, दण्डका उपनायो हत, मन्थिका कर्म,
 मन्थिका भोष, मध्यम चरित, उदासीन चरित, मण्डन
 चरित। आठवें व्यसनधिकारमें—प्रकृतिके व्यसनका
 वर्ग, राजा धौर राज्यके व्यसनको चिन्ता, पुत्रकी
 व्यसनका वर्ग, षोडशका वर्ग, कोशके मद्रका वर्ग,
 स्तम्भका वर्ग, धनके व्यसनका वर्ग, मित्रके व्यसनका
 वर्ग। नवें भयियास्वतृकमाधिकारमें—गति, देश
 धौर कालके वलासनका ज्ञान, यात्राका ज्ञान, धनके
 उपादानका काल, मन्थाहका गुण, प्रतिफल करके
 पथानु कोपकी चिन्ता, बाध धौर अभ्यन्तरका प्रकृतिके
 कोपका प्रतिकार, चय, व्यय धौर लाभका विपरिमग,
 याह धौर अभ्यन्तरकी पापत्, दूष्य गतुका संयुक्त,
 चय, धनके एवं संगयमे युक्त धौर उपाय तथा
 विकल्पमे उत्पन्न सिद्धि। दशवें मंगामाधिकारमें—
 स्तन्धवारका निवेश, स्तन्धवारका प्रयाय, धन-
 व्यसनके पवस्वन्दकालका रक्षण, कूट सुहका विकल्प,
 स्वमेवका उत्साहन, स्वधन धौर पथ धनका
 योग, सुहकी भूमि, पति-धन-रथ धौर हस्तोका
 कर्म, पक्षकचरोका वलापमे व्यह विभाग, धार-
 गुण्यका धनविभाग, पति-धन-रथ धौर हस्तोका सुह,
 दण्डभोगके मण्डनका पधंद्धत व्यहन, धनके प्रति

है। वस्तुतः उसमें सब कारकोंकी ही ममभङ्गा होगी। कारण, कारकोंमें जो विभक्ति रहती है, वही सब प्रकृतिके साथ पन्वित होकर अपना अपना अर्थ प्रकाश करती है। एवं अर्थ प्रकाश करते समय वे अन्य पदोंकी अपेक्षा नहीं करती। वाचस्पतिमिश्रने वेदान्तकी टीकामें इन बातोंकी निम्ना पौर तर्कानुद्धारने यों उदाहरण दिया है,— 'श्रीह्रीन् वरन्ति'। प्राग्धान्य अर्थधान करेगा अर्थात् कूटेगा। यहाँ 'श्रीहि' शब्दमें द्वितिया विभक्ति रहनेसे धानकी कूटकर भूषी रहित करना होगा, ऐसा घात्वर्थ प्रकाश होता है। यहाँ इस अर्थके प्रकाशनकी अन्य पदकी आवश्यकता नहीं पडी।

भाषामें निम्न शब्दका अर्थ समता बताया गया है। समता शब्दमें अर्थका सामर्थ्य समझ पड़ता है। जैसे,— 'हृदित्वसदने दामि'। इस मन्त्रको कहां नियोग करना चाहिये, यह निश्चान रहनेपर भी— 'दाप् नवणे'—इस छेदनायं दा धातुसे निष्पन्न दामि पदके हृदित्वछेद सामर्थ्य हेतु हृदिशब्दमें ही इसका विनियोग समझा जाता है।

परस्पर अन्वययुक्त तिङन्त और सुबन्त पदमभूहका नाम वाच्य है। कौन काम किसतरह करना होता, इस अर्थवाका नाम प्रक्रिया या प्रकरण है। समान देग वा क्रमकी स्थान कहते हैं। योगक्षल या यौगिकका नाम ममाप्या है।

लिङ्गकी अपेक्षा श्रुतिका अर्थ बलवत् है। जैसे, 'पायनेन दग्ना क्षुहोति'। (श्रुति)। पायन (पयः प्रकाशक मन्त्र, पयः पृथिव्या इत्यादि) और दधि द्वारा होम करे। यहाँ दधि द्वारा ही होम करना श्रुतिमग्नत है। उसमें अन्य किसी पदकी अपेक्षा न रहनेमें पहले उभौका अर्थबोध होता, अतएव वही प्रधान कहा जाता है। पीके पयः पृथिव्या इत्यादि मन्त्र द्वारा होम करनेका बोध, मन्त्रके सामर्थ्य हेतु बिलम्बमें होता है। इसलिये श्रुतिकी अपेक्षा इसे दुर्बल कहते हैं। इस तरह लिङ्ग वाच्यदिकी अपेक्षा समझान् है।

अर्थ हृदि (सं० स्त्री०) धन मन्त्र, दौलतका अर्थार।

अर्थवेद (सं० पु०) गिह्यशास्त्र, कारोगरीका इन्द्र।
अर्थवेकल्प (सं० स्त्री०) १ मत्वातिक्रम, बातकी पंगीदगी। २ वाक्छल, वकीलि, निन्नाफ-बयानो।
अर्थव्यप्रायय (सं० पु०) अर्थस्य प्रयोजनस्य व्यप्राययः स्थानम्, इ-तत्। १ प्रयोजन मन्त्र, अभिधेयका प्रायय, मतलबकी जगह, मानीका ठिकाना (त्रि०) २ समयोजन, मतलबी।

अर्थव्यय (सं० पु०) धनोत्सर्ग, दौलतका खर्च।
अर्थव्ययज्ञ (सं० त्रि०) अर्थस्य धनस्य व्ययप्रधानी जानाति; अर्थव्यय-ज्ञा-क, इ-तत्। व्यायव्ययो, कायदेसे सुचं करनेवाला।

अर्थव्ययसह (सं० त्रि०) मितव्ययो, किन्नायतो।
अर्थशास्त्र (सं० स्त्री०) अर्थस्य मन्वादिप्रणीत राज-नीत्यादि दृष्टविषयस्य शास्त्रम्, इ-तत्; तत्प्रतिपादक शास्त्रम्, भाक० तत् वा। अर्थ नीतिविषयका शास्त्र, जिस इन्द्रमें दौलतका बयान् रहै। यह रूपसे कमाने, बचाने और बढ़ानेकी बात बताता है।

सम्पत्ति चाणक्य वा कौटिल्यका अर्थशास्त्र प्रकाशित हुआ है। उसे देखकर हम समझ सकते हैं, मन्त्रोंमें चार-पाँच अक्षरों तक पहले हिन्दुओंकी राजनीति कैसी रही। अर्थशास्त्रमें जिस प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयकी आलोचना निकली, उसको सूची नीचे लिखी है,—प्रथम विनयाधिकारमें राजहृत्ति, विद्यामसुहृग, आन्वोलिकी-स्थापना, तयोस्थापना, वार्तास्थापना, दण्डनीति-स्थापना, हृदमंयोग, इन्द्रियजय, परिपहृग्वर्गत्याग, राजधिष्ठित, प्रमात्वीत्पत्ति, मन्त्रिपुरोहितोत्पत्ति, उपधासे अमात्यका गौघागोचरान्, गृहपुरुषोत्पत्ति, संस्थोत्पत्ति, गृहपुरुषप्रणिधि, मन्त्रारोत्पत्ति, स्वविषयमें हत्याक्रत्यके पक्षका रक्षण, परविषयमें क्रत्याक्रत्यके पक्षका उपयह, मन्त्राधिकार, दूतप्रणिधि, राजपुत्ररक्षण, प्रथमह हरा, अथरह अथस्याकी हृत्ति, राजप्रणिधि, निगम्य प्रणिधि, आन्तरचित्तक। दूसरे अध्याय प्रवाराधिकारमें—जनपदका निवेग, भूमिके छिद्रका विधान, दुर्गका विधान, दुर्गका निवेग, मन्त्रि-धाताका चयन, समाहृद्यं नमुदयका प्रत्यायन,

अचपटलका गणनिका अधिकार, युक्तसे अपद्वत ममु-
दयका प्रत्यायन, उपयुक्तपरीक्षा, गामनका अधिकार,
क्रोशमें रखने योग्य रत्नकी परीक्षा, आकर कर्मान्तका
प्रवर्तन, अक्षगालामें सुवर्णका अर्धच, विगिछामें
सौवर्णिक प्रचार, कोठके भागारका अर्धच, पण्ड
(धात्री)का अर्धच, कुप्यका अर्धच, चायुधके भागारका
अर्धच, तुलाके मानका पोतव, देशकादका मान,
शुल्कका अर्धच, शुल्कका व्यवहार, सूदका अर्धच,
सीताका (चोने) अर्धच, सुराका अर्धच, सूनका
अर्धच, गणिकाका अर्धच, नौकाका अर्धच, गायका
अर्धच, शत्रुका अर्धच, इन्द्रोका अर्धच, इन्द्राका
प्रचार, रथका अर्धच, पतिका अर्धच, सेनापतिका
प्रचार, सुद्राका अर्धच, विवोतका अर्धच, ममाहर्ताका
प्रचार, रथपति वेदेहक-तापसका व्यञ्जन प्रणिधि,
नागरक प्रणिधि। तीसरे धर्मस्वीयाधिकारमें—व्यव-
हारको स्थापना, विवादके पदका निबन्ध, विवाहका
संयुक्त, विवाहका धर्म, स्त्रीके धनका कल्प, पाधि-
वेदनिक, शून्युदा. भर्म, पारुष्य, हेप, पतिचार,
उपकार, व्यवहारका प्रतिषेध, निष्यतन, पथनुसरण,
इक्षप्रवास, दीर्घप्रवान, दायका विभाग, पुत्रका
विभाग, दायका क्रम, श्रंगका विभाग, वासुक,
रथका वासुक, वामुका विक्रय, मौमाका विवाद,
मर्यादाका स्थापन, वाधाका बाधिक, विवोत चक्रके
पथकी हिंसा, समयका अनपाकर्म, वृथका
आदान, भौवनिधिक, दास-कर्मकरका कल्प, स्वामीका
अधिकार, भृतकका अधिकार, मन्थय-समुत्थापन,
विक्रीत क्रीतका अनुगय, दत्तका अनपाकर्म, प्रस्वामिक
विक्रय, स्वस्वामीका सम्बन्ध, माहस, वाक्-पारुष्य,
दण्डपारुष्य, सूतका समाह्वय, प्रकीर्णक। चौथे
कण्टक शोधनाधिकारमें—आरूकका रचण, वैदे-
हकका रचण, उपनिपातका प्रतीकार, गूढाजीवोकी
रक्षा, सिंह व्यञ्जनमे माणव प्रभाग, शङ्करुप
कर्मका अभिप्रेत, प्राय भृतककी परीक्षा, पात्यकर्मका
अनुयोग, सर्वाधिकारका रचण, एकाङ्गके वधका
निष्कृय, शूद्र-चित्त (चनेक) दण्डकल्प, कनकाका
प्रकम, पतिचारका दण्ड। पाँचवें योग हत्ताधि-

कारमें—दाण्डकार्मिक, कोशका अभिसंहरण, श्रुत्वका
भरणीय, अनुजोषीका हत, समयका आचारिक,
राज्यका प्रतिस्थान, एकैश्वय। छठें मण्डन योग्याधि-
कारमें—प्रकृतिकी सम्पत्, श्रमका व्यायामिक। सातवें
पाण्डुग्याधिकारमें—पाण्डुगुण समुह्य, चयके स्थानकी
हस्तिका नियय, संगयकी हत्ति, समझीन व्यायाममें
गुणका अभिनिवेश, होनमन्थि, शिष्टह्यापन, मन्था-
यसन, शिष्टह्य यात, मन्थाय यान, मन्थय प्रयाण,
यातव्य शौर अभिवर्तके अभिप्रेतकी चिन्ता, चय-मोभ
विराग हेतु प्रकृतियोंका सामशायक विपरिमयो, सहित
प्रयाणिक, परिपणित, अपरिपणित, अपस्तुत, मन्थि;
हेधोभाषिक, मन्थि विक्रम, यातव्य हत्ति, अनुपाह्य
मिन्नविशेष, मिन्नसन्थि, शिष्टसन्थि, भूमिमन्थि,
अनवसित मन्थि, कर्मसन्थि, पार्ष्ण्यपाहचिन्ता,
हीनगति-पूरण, बलवानने विशद करके उपरोध हेतुक
दण्डोपनत हत्त, दण्डका उपनायो हत्त, मन्थिका कर्म,
मन्थिका मोक्ष, मध्यम चरित, उदासोच चरित, मण्डन
चरित। आठवें व्यसनाधिकारमें—प्रकृतिके व्यसनका
वर्ग, राजा शौर राज्यके व्यसनको चिन्ता, पुरुषके
व्यसनका वर्ग, घोड़नका वर्ग, क्रोशके मन्थका वर्ग,
स्नानका वर्ग, बलके व्यसनका वर्ग, मित्रके व्यसनका
वर्ग। नवें अभियास्यकर्मोंधिकारमें—शक्ति, टेग
शौर कानके बलायनका ज्ञान, याताका कान, बलके
उपादानका काल, मसाहका गुण, प्रतिबन्ध कार्यके
पचात् कोपकी चिन्ता, बाह्य शौर पारुष्यरकी प्रकृतिके
कोपका प्रतिकार, चय, व्यय शौर नामका विपरिमयो,
बाह्य शौर पारुष्यरको आपण, दूष्य शयुका संयुक्त,
पर्य, अनय एवं संगयमें युक्त शौर उपाय तथा
विकल्पमे उत्पन्न सिद्धि। दशवें संपामाधिकारमें—
स्वन्त्याचारका निषेध, स्वन्त्याचारका प्रयाण, बल-
व्यसनके धवस्वन्दकालका रचण, कूट युद्धका विकल्प,
स्वमेत्यका उत्साहन, स्त्रियन शौर पथ्य बलका
योग, युद्धको भूमि, पति-पथ्य-रथ शौर इन्द्रोका
कर्म, पक्षरुचोका बलायमे शूद्र विभाग, मार-
गुल्फका बलविभाग, पति-पथ्य-रथ शौर इन्द्रोका युद्ध,
दण्डभोगके मण्डनका पदद्वत व्यहन, उभके प्रति

ब्रह्मका स्थापन। ग्यारहवें सद्वृत्ताधिकारमें भेदका उपादान, उपायका दण्ड। बारहवें चातुर्वर्ण्यमाधिकारमें दूतका कर्म, मन्त्रका युद्ध, सेनाके मुख्यका वध, मण्डलका प्रोत्साहन, मन्त्र-पत्नि और रसका प्रणयि, वोषधामारका प्रसारवध, योगका प्रतिग्रहान, दण्डका प्रतिग्रहान, एक विजय। तेरहवें दुर्गन्धोपायाधिकारमें—उपजाप, योगका वामन, अर्पणका प्रणयि, पर्युपासनका कर्म, अथमर्द, लब्धप्रमनन। चौदहवें शौचप्रक्रियाधिकारमें—परघातका प्रयोग, प्रलम्भन, अद्भुत उत्पादन, भैषज्य और मन्त्रका प्रयोग, स्वस्वके उपादातका प्रतीकार। पन्द्रहवें तन्त्रयुक्त्यधिकारमें—तन्त्रको युक्ति।

अर्थशौच (सं० कौ०) अर्थानां अर्थोपार्जनानां शौचं शुचित्वम्, ६-तत्। अर्थार्जनको शुद्धि, दौलत कमानीकी पाकीजगी। मनुने मकन प्रकारके शौच मध्य न्यायार्जनको ही प्रधान माना है।

अर्थसंपद (सं० पु०) अर्थानां संपदः, ६-तत्। धन-सम्पद, दौलतका इकट्ठा करना।

अर्थसंस्थान (सं० कौ०) अर्थानां संस्थानं स्थिति र्थेष्वात् येन वा, अर्थ-सम्-स्था अपादाने करणे वा लुपट्। १ धनोपार्जनमाधन प्रतिपद्यति, दौलत कमानीका काम। भावे लुपट्, ६-तत्। धनकी स्थिति, दौलतकी दानत, लुजाना।

अर्थसंचय (सं० पु०) अर्थानां धनानां संचयः समुच्चयः समूहश्च, ६-तत्। धनसंचय, धनसमूह, दौलतका अन्वय, रूपसे पैसिका टेर।

अर्थसमाज (सं० पु०) अर्थानां धनानां अभिधेयानां कारणानां वा समाजः समूहः, ६-तत्। धनसमूह; अभिधेयसमूह; कारणसमूह।

न्यायशास्त्रके मतसे, जहाँ द्रव्यका कीर्ति विधेय धर्म अर्थात् गुण उत्पादन करनेको अन्वय्य कारणोंके साथ दूरसे भी किसी विधेय कारणकी आवश्यकता होती है, वहाँ उभय कारणसमूहको अर्थसमाज कहते हैं। एवं दो मध्य कारण मिलकर जिस धर्मविशिष्टको उत्पादन करते हैं, उसका नाम अर्थसमाजपद है। जैसे, कपड़ा बुननेके लिये माल, करघे और

सूतकी आवश्यकता होती है। नीले रङ्गका कपड़ा बुननेमें नाल चादि चाहिये, माल कपड़ा बुननेके लिये भी विना नाल वर्गेरह काम नहीं चल सकता। अतएव नाल, करघा और सूत कपड़े मात्रके ही सामान्य कारण हैं—अभी कपड़ेके बुननेमें इन कई उपकारणोंकी आवश्यकता पड़ती है।

जो कारण, सब तरहके कपड़ोंकी उत्पत्तिसे पहले विद्यमान रहता, वह अन्तर्मात्रका प्रति-कारण कहा जाता है। नाल, सूत प्रभृति यदि नीले वस्त्रके ही प्रति कारण होते, तो माल रङ्गका कपड़ा बुनते समय इन सबकी आवश्यकता न पड़ती। इससे माल प्रभृति अन्तर्मात्रके सामान्य कारण हैं नहीं, परन्तु वर्षके सामान्य कारण नहीं हैं। अतएव नीले प्रभृति वर्षोंके उत्पन्न करनेको अन्य कारणका विद्यमान रहना आवश्यक है।

देखा जाता है, कि सूत नीलेवर्ण होनेसे वस्त्र भी नीलेवर्ण होता है। परन्तु केवल सूत नीले वर्णका होनेसे वस्त्र नीले वर्णका नहीं बनता। सूत, सूतका नीला रङ्ग, माल और करघा ये सब कारण एकत्र मिलनेसे नीले वस्त्र उत्पन्न होता है। अतएव नीले वस्त्रका कोरे-पृथक् कारण न रहते भी दोनों कारणोंके मिल जानेसे वह बन जाता है, इसलिये नीलेवस्त्रके अर्थसमाजपद हुआ। इसीसे ला धर्म पृथक् कारणका कार्यतापच्छेदक न ठहर सामान्य दोनों कारणोंके मिलनेसे सिद्ध होता है, उस धर्मको अर्थसमाजपद कहते हैं।

अर्थसमाहार (सं० पु०) अर्थानां धनानां समाहारः सम्यक् साहरणम्, ६-तत्। १ धनार्जन, धनसंपद, रूपकेका पैदा करना, दौलतका अन्वय। अर्थानां अभिधेयानां समाहारः संघेयः, ६-तत्। २ अर्थका संघेय करना, मालीका मुकुटनिर।

अर्थसम्बन्ध (सं० पु०) अर्थानां धनानां सम्बन्धः संसयः, ६-तत्। १ धनसम्बन्ध, अर्थसंघर्ष, दौलतका तात्पत्र। शास्त्रकारोंने कहा है,—जिसके साथ विधेय प्रपद्य अर्थनेकी इच्छा हो, उससे किसी प्रकारका अर्थ-सम्बन्ध रहना न चाहिये।

पर्येद्वारा विग्रेयार्थका समर्थन; कारण द्वारा कार्यका समर्थन एवं कार्य द्वारा कारणका समर्थन। किन्तु ये चात प्रकार समान धर्म और विधर्म द्वारा दो भागोंमें विभक्त किये गये हैं।

विग्रेय द्वारा सामान्यका समर्थन, यथा—

“इन्द्रवज्रायः कार्वाणं कीदृशमपि मन्वति।

सञ्जुहोः विधर्मैः सहाजया मन्वत्यसः॥”

पति सद्गतर व्यक्ति भी महत्की महायत्नासे कार्यका पार पा जाता, इसीसे गिरि-निर्भरिणो, महा-नदी गङ्गाके साथ मिलकर समुद्रको प्राप्त होती है।

यहाँ श्लोकके दूसरे पादमें—गिरि-निर्भरिणो, इन्द्र महाराज गङ्गाके साथ मिल समुद्रको प्राप्त होती,—इस विग्रेयद्वारा, सद्गतर व्यक्ति महत्का प्राप्य पानेसे कार्य उद्धार कर सकता, यह सामान्य समर्थन किया गया।

सामान्यद्वारा विग्रेयका समर्थन, यथा—

“यारद्वेषो वाचमरुणद्वेषो माधवः।

विरागम रुचीदीप्तः इन्द्रो मितमाधिवः॥”

महत् व्यक्ति स्वभावसे ही चल्पभाषी होते हैं। इसीसे माधव ऐसे पर्यायुक्त एक बात कहकर चुप हो गये।

यहाँ श्लोकके दूसरे पादमें,—महत् व्यक्ति अधिक नहीं बोलते,—इस सामान्यद्वारा श्लोकके प्रथमपादमें माधवने सारवान् चल्प बात कही—यह विग्रेय समर्थन किया गया।

कारण साधर्म्यद्वारा कार्यका समर्थन, यथा—

“इति जित्वा मरु मुनइम धारणेन।

न कुर्मराज महिर्दं विलये इतीयाः।

दिव्युचरतः कुहन मन्विमधे दिवोर्षां

भाषेः शरीरि चरकानुं कमागतम्युं॥”

जगत्कामयने जब रामचन्द्र शिवधनु भङ्ग करनेकी छटे, तब सत्प्रायने पूयिनी प्रादिने कहा—हे वृद्धिभि। तुम स्थिर हो। चमत्। तुम हमे धारण करो। कुर्मराज। तुम वृद्धिनी और नागराज दानोंकी माधो। हे अटदिगुलज। तुम लोग वृद्धिनी, चमत् और कुर्मराज इन तीनोंकी ही धारण

करनेकी इच्छा करो। क्योंकि प्राय रामचन्द्र धनुषको चढ़ा रहे हैं।

यहाँ, रामचन्द्र धनुषको चढ़ा रहे हैं—इस कारण द्वारा वृद्धिनी प्रभृतिके स्थिर होने इत्यादि कार्यका समर्थन किया गया।

कार्यसाधर्म्यद्वारा कारणका समर्थन, यथा—

“सहसा विदधीत न जितान्तरिक्षः परमावराण्यरे।

इधमे हि विषमकारिषु गुणगुणाः स्युर्धमेव चम्यरेः॥”

महमा कोई काम न करे। कारण, पविधे-चना ही परम पापदका स्वाम है। गुणानुरागिणी सत्मी विवेचक मनुष्यको भावही वरप करती हैं।

यहाँ, सत्मी पाप ही वरप करती हैं—इस कार्यद्वारा, महमा कोई काम न करे—इस विवे-चना रूप कारणका समर्थन किया गया।

ऊपरके सब श्लोक समान धर्मविधितके उदाहरण हैं। ऐधर्म्यविगिट यथा,—

“विलसाराण्यभागीभि जितानि सुखमनसम्।

सत्येन प्रत्युपकारिषु जीवकारिषु दुर्जनैः॥”

तारकासुर इस तरह पूज्य होनेपर भी विभुवनको कट देता है। कारण, दुर्जन अपकार करनेसे शान्त होता है।

यहाँ, दुर्जन अपकार करनेसे शान्त होता—इस ऐधर्म्य द्वारा, दुर्जन मद्यावरण करनेसे शान्त नहीं होता, यही समर्थित हुआ। इस श्लोकमें, दुर्जनका अपकार करनेसे शान्त होता सामान्य एवं दुर्जनका अनुकूलारण करनेसे शान्त न होना विग्रेय है। और पूर्व श्लोकमें,—महमा कार्य न करना पापदकर नहीं है, यह कार्य वैधर्म्याका समर्थन करता है।

पर्यान्वित (गं० वि०) १ धनसम्पत्त, दीनतमम्, जिसके पास रूपया रहे। २ अभिप्रायगर्भ, मानो-दार।

पर्यापत्ति (गं० स्त्री०) पर्यप्य अनुहार्यस्य पापतिः प्राप्तिः सिद्धिरिति यावत्। भौमासकके मतमें, जो विषय प्रकाश करके नहीं कहा गया, किन्ती मन्त्रद्वारा उसी विषयको सिद्धि। यथा,—‘सृजकाय देवदत्त दिनमें भोजन नहीं करता’। देवदत्त दिनमें भोजन

नहीं करता, तो भी उसका शरीर सून्न है। सुतरां सूखलत्व देख यह समझा जाता, कि यह रातमें भोजन करता है। कारण, एकदम अपनाहार रहनेसे वह जग हो जाता। देवदत्त जग हो जाता—यह अनुपपत्तिज्ञान, देवदत्त रातमें भोजन करता है, इस ज्ञानका जनक हुआ। इसलिये देवदत्त रातमें भोजन करता है, यह ज्ञान चर्धापत्ति कहा जाता है। नैयायिक व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानसे इसे अनुमानका अन्तर्भूत घताने हैं, अतिरिक्त प्रमाण नहीं ठहराते। जो आदमी रात और दिनको भोजन नहीं करता, उसका शरीर भोजन नहीं रख सकता—इसे ही वे लोग व्यतिरेकव्याप्ति कहते हैं।

चर्धापत्तिचर्ध्यात्, ५-बहुव्री०। चर्धापत्तिक साधन; उपपाद्य ज्ञान। जिसके बिना किसी द्रव्य आदिकी उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम उपपाद्य है। रातको बिना भोजन किये सूखता नष्टो रह सकती, इसलिये सूखता उपपाद्य है। फिर जिसके अभावमें किसी वस्तुको अस्तित्व होता है, उसे उस वस्तुका उपपादक कहते हैं। रात्रिभोजनके अभावमें सूखता नहीं रह सकती, अतएव रात्रिभोजन ही उपपादक है। रात्रिभोजन कल्पनारूप प्रतीति ज्ञानका विषय है।

३ चर्धालङ्कार विशेष ।

“हृत्प्रापृत्तिश्चापार्धभोजनमौर्ध्वपत्तिश्चैव । (सहितदर्पण)

दण्डापूपन्यायद्वारा जिन चर्धकी सिद्धि हो, उसे चर्धापत्ति कहते हैं। जैसे, किसी जगह कुछ पूजा और एक लठ रख था। सबेरे सबने देखा, कि पूजा नष्टो और लठमें चूड़ेके दांतका चिह्न बना था। इसलिये लठमें चूड़ेके दांतका चिह्न देखकर यह स्थिर हुआ, कि पूजाको चूड़ा खा गया। इसीका नाम दण्डापूपन्याय है। ऐसे न्याय द्वारा जो ज्ञान सिद्ध होता है, चर्धापत्ति वही है। इससे कभी प्रस्तावित चर्धद्वारा अप्रस्तावित चर्धकी और कभी अप्रस्तावित चर्धद्वारा प्रस्तावित चर्धकी उपस्थिति होती है।

प्रस्तावित चर्धसे अप्रस्तावित चर्धकी उपस्थिति, यथा—

“आतीर्थं इतिवाचीनां मुञ्जति स्तनमग्निः ।

सुप्तागमव्यवस्थेर्धे के चर्ध करविहाराः” (सहितदर्पण)

यह हार रमणीके स्तनपर लोट रहा है। मुक्ता-पत्नी हीकी जब यह दमा है, तब हमलोग तो कन्दर्पके दाम हैं, हमारो बात कौन चलाये; चर्धात् हम लोग तो उसपर लोट हो जा सकते हैं।

इस श्लोकमें ‘मुक्ताग’ इस पदके दो चर्ध हैं। पहला—मुक्ता चर्धात् रत्नममूढका और दूसरा—सुक्त चर्धात् मुक्तिपानेशालेका। मुक्तावनी पचेतन पदार्थ है। उससे रमणीका पालिङ्गन समभव है। किन्तु समभव होनेपर भी वह जय स्त्रीको पालिङ्गन करता, तब हम लोगके लिये तो यह नितास्त सम्भवपर है। इसीको चर्धापत्ति कहते हैं। यहां मुक्तावली यगनीय होनेसे प्रस्तावित और कामपोद्भूत ध्यत्तिकी बात अप्रस्तावित विषय है।

अप्रस्तावित चर्धद्वारा प्रस्तावितकी उपस्थिति यथा,—

“विनशार स्यात्पदार्थं सङ्गमव्यवस्थाय औरताम् ।

अतितनयोऽपि सङ्गं प्रकृत्यै केव क्त्वा शरीरिवात् ॥” (१५)

स्त्राभाविक धैर्ये परिव्यागकर अत्रराजने वायु-गद्गद स्वरसे विलाप किया था। अति तन होनेसे लोहा ही जब गल जाता, तब शरीरधारीकी कोम बात; चर्धात् यह तो पक्क्य चखन हो सकता है। अति तन लोहा हो जब गलकर चखन हो जाता, तब प्राणी तो चखन होगा ही—यहां यही चर्धापत्ति है। वर्णनका विषय न होनेसे लोहा अप्रस्तावित और शरीरधारी प्रस्तावित है। (तत्तद्वृत्ते)

अविधीयमान (बिना करे हुए) चर्धमें जो दूसरा चर्ध सहजा प्राप्त हो जाता, वह भी चर्धापत्ति कहाता है। जैसे,—मिथ न रहनेसे हटि कीने होगी। ऐसा कौननेपर स्पष्ट मामलम पडता कि, मिथ रहनेसे हटि होती है। इसमें, रहनेसे यह चर्ध प्रसज्य ठहरता है। (कल्पवृत्त-आश्रयक ५५५)

कोई कोई मोमांशक चर्धापत्तिकी दूसरा प्रमाण मानते हैं। नैयायिक और वैशेषिक कहते हैं, कि

अर्थोपत्ति अनुमान ही से अन्तर्गत है; दूसरा कोई प्रमाण नहीं।

अर्थोपत्ति, दो प्रकारको होती है—दृष्टार्थोपत्ति, और श्रुतार्थोपत्ति। इसमें, देयदत्त दिनको नहीं पाता—ऐसा देयनेपर दृष्टार्थोपत्ति और विदित होनेपर श्रुतार्थोपत्ति होती है। दृष्टार्थोपत्तिका उदाहरण, यथा—जीवित देयदत्तका निजामय (गृह) में रहना न देयकर बाहर रहना कल्पना किया जाता है। यदि घरमें न रहनेमें बाहर रहना भी न माना जाय, तो जीवित रहनेकी उपपत्ति (विभास) नहीं हो सकती, इसलिये बाहर रहनेकी कल्पना होती है। श्रुतार्थोपत्ति, यथा—स्यम देयदत्त दिनको भोजन नहीं करता यहां दिनके भोजन न करने-पानिको, रात्रिमें भी भोजन न पानेमें स्थूलत्व जैसे हो सकता, इसलिये रात्रिमें भोजन करनेकी कल्पना होती है। श्रुतार्थोपत्ति भी अनुमितानुमान है। जैसे, स्थूल देयदत्त इत्यादि वाक्यके द्वारा स्थूलत्वका अनुमान लगा उसी चिह्नसे रात्रिका भोजनका अनुमान किया जाता है।

अर्थोपत्तिसम (सं० पु०) जाति। अर्थोपत्तिसे प्रतिपक्ष (अन्वय) की सिद्धिको अर्थोपत्तिसम कहते हैं। (गी. १. १. ११)

शब्द प्रयत्नान्तरीयक अर्थोत् प्रयत्नसे उत्पन्न होने कारण, घटके महत्त्व अनित्य होता है। ऐसा पक्ष स्थापित करनेपर, अर्थोपत्तिके द्वारा प्रतिपक्ष (नित्य) को साधन करनेवाला अर्थोपत्तिसम कहा जाता है। यदि प्रयत्नान्तरीयकत्व और अनित्य साधर्म्यके हेतु शब्द अनित्य होता, तो नित्य साधर्म्य रहनेसे वह नित्य भी हो सकता है। क्योंकि इसके नित्यत्वमें अन्वयत्व साधर्म्य है। (अ. १. १. ११)

अर्थोपत्तिके आभासमें, प्रतिपक्ष साधनको प्रत्यक्षमान अर्थोपत्तिसम होता है। अर्थोपत्ति ही उत्तरमें अनुक्तको आशेष करती अर्थोत् जाती है। यह शब्द अनित्य ठहरता, ऐसा कहने ही से विदित होता, कि अन्वय नित्य है। एवं दृष्टान्तकी अतिरिक्त और विरोध भी होता है। अन्वयत्व (पानी

प्रकृतियन्वयसे नित्यत्व होने)के कारण शब्द अनित्य है—ऐसा कहनेपर अर्थोत् उत्पन्न हुए दूसरे हेतुमें बोध या अनुपपत्ति पड़ जाता है। फिर यदि अनुमानसे अनित्य कहा जाय, तो प्रत्यक्षमें नित्य बोध होता है। (गी. १. १. ११)

अर्थोत् (सं० अर्थ०) कारण वश, वसवश।

अर्थोत्तिन् (सं० अर्थ०) धनका मान करने वा विषय प्राप्तिको इच्छा रखनेवाला, जो दोलतकी इच्छा करता या कोई मतलब निकालना चाहता हो।

अर्थोत्तद्वार (सं० पु०) अर्थद्वार विमेष। इसमें अर्थका गौरव रहता है।

अर्थोत्त (सं० पु०) अर्थयति; अर्थद्वार चुरा० अर्थ-विषु-णिनि कुत्सितार्थे कन्। प्रातःकाल निद्रित राजाको स्तुति पाठकर जगानेवाला, जो सुषेरे मोते हुए वादगायको तारीफ करके जगाता हो।

अर्थोत्त (सं० अर्थ०) अर्थद्वार चुरा० अर्थ-विषु-गौपि कर्मणि क्त। १ याचित, जिससे कुछ मांगा जा चुके। (कौ०) २ इच्छा, आदिग, दरवाजा।

अर्थोत्तव्य (सं० अर्थ०) याचना किये जाने योग्य, जो माने जाने काविल हो।

अर्थोत्ता (सं० स्त्री०) १ याचना, कामना। २ भिक्षुकको दया, मांगनेवालेको इनाम।

अर्थोत्त (सं० स्त्री०) अर्थोत्त देवी।

अर्थोत्त (सं० पु०) अर्थयति; अर्थद्वार चुरा० अर्थ-विषु-णिनि, विषु-भोषः। १ याचक, मांगनेवाला। २ सेवक, विदमतगार। ३ अनुजीवी, मातहत।

अर्थोत्त (सं० अर्थ०) अर्थोत्त धनसंस्थापित, अर्थोत्त अर्थोत्त धन। ४ धनगामी, दोलतमत्त। ५ धनधामी, दोलतका मालिक। ६ कार्याकाङ्क्षी, गर्जमत्त। ७ पादो, सुहृद।

अर्थोत्तात् (सं० अर्थ०) अर्थोत्त देयमधीन करीति, अर्थोत्ततात्। याचकको औरसे, मांगनेवालेको अर्थोत्त। अर्थोत्त, अर्थोत्त देवी।

अर्थोत्त (सं० अर्थ०) कारण वश, वसवश।

अर्थोत्त (सं० अर्थ०) १ कार्यरत, परिश्रमी, काम करनेवाला, मिहनती। २ आचकारी, लक्ष्मण।

अर्धपस (सं० त्रि०) धनाभिलाषयुक्त, दौलतका
खाद्विगमन्द ।

अर्धपसुता (सं० स्त्री०) धनाभिलाष, दौलतको
खाद्विग ।

अर्धेष्टा, अर्धेष्टता देखो ।

अर्धोपचेपक (सं० पु०) अर्धान् प्रयोजनानि उप-
क्षिपति, अर्ध-उप-क्षिप-ण्युल् । नाटकका अर्ध
विशेष, खेलका कोई हिस्सा । विष्कम्भक, प्रथेशक,
चूलिका, अद्वावतार और अद्भुतको नाट्यशास्त्रमें
अर्धोपचेपक कहते हैं ।

अर्धोपमा (सं० स्त्री०) अर्धोपमा देखो ।

अर्धोपमा (सं० स्त्री०) अर्धनेत्र उपमा न तु शब्द-
नोक्ता । उपमालङ्कार विशेष ।

“बाधोत्कसमानायास्तुभ्यार्थो २म वा प्रतिः ।” (साहित्यदर्पण)

यदि तुल्य वा समानादि शब्द रक्षे अथवा
नेत्र तुल्य किया वा प्रतिः । वा ३।१।११-इस सुत्रके अनुसार
तुल्यार्थमें यदि रक्षेगी, तो उसका नाम अर्धोपमा वा
आर्धो उपमा होगी । तुल्य समानादि शब्द रहनेसे
'कमलके तुल्य सुख।' यह वात कहनेपर उपमेय
सुखमें कमलका, 'कमल सुखके तुल्य' यह वात कहने-
पर उपमान कमलमें सुखका और 'कमल एवं सुख
तुल्य' इस वातके कहनेपर दोनोंमें दोनोंका सादृश्य
समझा जाता है । ऐसे अर्थके अनुसन्धान हेतुसे ही
सादृश्य भूलकता, इसीसे उसका नाम आर्धो उपमा वा
अर्धोपमा है । तुल्यार्थमें विहित यति रक्षनेपर
भी ऐसे अर्थानुसन्धानसे सादृश्यका बोध होता है,
अतएव वहाँ भी आर्धो वा अर्धोपमा कहना हीगा ।

विशेष अर्थमें उपमा शब्दमें देखो ।

अर्धोपार्जन (सं० पु०) धन वा सम्पत्तिकी प्राप्ति,
दौलत या जायदादकी कमायी ।

अर्धोपान् (सं० स्त्री०) धन, धनाभिमान, धनिकता,
दौलत, दौलतका गृह, दौलतमन्दी ।

अर्धधि (सं० पु०) कोषाध्यक्ष, खज़ाची ।

अर्ध्य (सं० त्रि०) अर्धात् प्रयोजनात् अनपेतम्,
अर्ध-यत् । १ न्याय्य, बाजिव । २ सार्यक, बामागो ।
३ सप्रयोजन, मतलबी । ४ धनवान्, दौलतमन्द ।

५ पण्डित, इन्तजदार । अर्ध्य कर्मणि यत् । ६ यावत्,
सांग जाति काविल । ७ प्रायेणीय, अर्जु किये जाने
नायक । अर्ध्याय साधु यत् । ८ अर्धमाधन, दौलत
देनेवाला । (स्त्री०) ९ गिलाजतु । १० गिर, साल
मटो ।

अर्धन (सं० स्त्री०) अर्ध-स्यूट् । १ याचन, अर्जु ।
२ पौडन, तकनोफदिहो । ३ इनन, कृत्न । ४ गमन,
रवानगी । (त्रि०) ५ विचनित, गमनगोल, ली
वैचैन धूमता हो । ६ पौडक, तकनोफदिह ।

अर्धना (सं० स्त्री०) अर्ध-शुग० भाये युष् ।
१ भिन्ना, भीख । २ अथ, हिंसा, कृत्न, तकनोफ-
दिहो । (त्रि० स्त्री०) ३ पीडा पट्टवाना, मारना-
कृतना, तकनोफ देना ।

अर्धनि (सं० पु०) १ अग्निरोग, हाज्मिकी बीमारी ।
२ यादृजा, मांग । ३ अग्नि, आग ।

अर्धलो, अर्धली देखो ।

अर्द्धित (सं० त्रि०) अर्द्ध-क । १ याचन । २ गत ।
३ पौडित । (स्त्री०) ४ वायुव्याधिविशेष, सुप्तमण्डलका
पक्षाघात (Facial paralysis), गिरके अर्धभागका
अवग हो जाना ।

सुप्तमण्डलका दो प्रकारके स्रायुद्वारा अर्द्धन कार्य
सम्पन्न होता है। यथा,—पोर्त्रियो डिदरा (Portio
dura) वा सप्तमयुगल स्रायुकी सुप्तमण्डलस्थित शाखा
अर्ध पश्चम युगलस्रायुके अर्धोपार्जनकी गनगण्डविहीन
(Non ganlionic) शाखा । पश्चमयुगल स्रायुकी प्रथम
अर्ध द्वितीयोश्च और अर्धोपार्जनकी गनगण्डयुक्त शाखा
द्वारा अर्धोपार्जनकी कार्य निकलता है ।

पोर्त्रियो डिदरा अर्ध पश्चम युगलके अर्धोपार्जनकी
अर्द्धनकारी शाखाके अर्ध कोर्ध पक्षाघात नगने अथवा
दूरका कारण पड़नेमें इस स्थानका अर्द्धिक्रम बढ़नेपर
सुप्तमण्डलमें पक्षाघात होता है । सप्ताथपर सुप्त-
मण्डलकी एक ही ओर पक्षाघात पड़ता है । जिस
ओर पक्षाघात नगता है, रोगी उस ओरकी पार्श्वी
मूँद नहीं सकता । सुप्तको दोना ओरका भाग
मिलानेमें बहो विलम्बता दियाई देती है । अर्द्ध
ओरकी नासिकाका अर्द्धन नहीं होता, रोगी उस

घोरको निकोड़ भी नहीं सकता। हनु पर्याप्त मात्रा में हड्डों को कुछ लटक जाती घोर सुपके प्रियभागसे सार घोर घाघद्रम्य गिर पड़ता है। रोगीके हंसने पर चमुस्य घोर कुछ टेटो हो जाता घोर बहुत चुराव दिखार देती है। रोगी मात्र बोन घोर शोडवर्षका उचारण कर नहीं सकता। किन्तु सुपका ऐसा प्रतिक्रम होनेपर भी रोगी चनायाम प्राथ द्रव्यको धवा सकता है। इससे समझा जाता है, कि चमुस्य घोर चेतन्य न रहता सही, परन्तु पचम युगल छाया में कोई वेसलण नहीं पड़ता। प्रायः सुपको दोनो घोर पचाघात देखनेमें नहीं आता। फिर भी किसी किसी पादमोके वेसा हो सकता है। उस दगामें पांच घोर नाकके ऊपर विगेष दृष्टि रखनेसे रोग समझ पड़ता है।

गारौरिक दुर्बलता बढ़ने एवं दुर्बल मनुष्यके भांते समय सुपमें श्रोतल पायु लगनेसे यह रोग हो जाता है। मड़े दांत, छायागूल, खोपड़ीके भीतरकी चर्बुद, खानके निकटवर्ती गद्गावियसित प्रस्तरांगीय रोग प्रभृति एवं चन्वान्य नाना कारणोंमें सुप-मण्डलमें पचाघात लग सकता है। यह रोग प्राय सांघातिक नहीं होता, परन्तु मस्तिष्कमें पीड़ा रहनेसे विपद् भा सकती है।

निष्कर्ष—यदि कोई मूल रोग हो, तो उसका प्रतीकार करना गितात्त प्रायशक्य है। शोडघटित वनकर शोषण, वनका लुभाव, पायोडिड-पय पोटाग प्रभृति शोषणमें विगेष उपकार पड़चता है। रागियोंकी विजनीका शोर देने शोर घिसनेसे भी श्यादा पाराम मिलता है।

चर्चित नामसे चर्दंगोर चर्दंगोर—नेवलेकी चर्बी, सुवरकी चर्बी, बकरकी चर्बी, मैत्रय नमक, चम्रगन्धाकी लानका रग पांच पुराना घी—चाधा चाधा पाय शौर कुचिनाका पीज लाये। पचसे सभ घी शौर चर्बीकी किसी पटरके बरतनपर मिला धूपमें ज्ञायसे रगडे। दूसरे दिन धूपमें शंधा नमक देकर सब चर्बी घिसे घिसे, कि नमकका शाम मात्र भी न रहे। उसके बाद कुचिनेके एक एक पीजसे चर्बीकी रगड़ना चाहिये।

घिसने घिसने सब पीज चुक जाये, तब चम्रगन्धाका रस देकर चर्बीको धूपमें फिर रगड़े। इसतरह हर रोज पहर भर घिसकर चर्बीकी धूपमें रच दे। चम्रगन्धा-रसके लसका चंग सूय जाने पर शोषण व्ययकारके योग्य होता है। इस पचाघात पर मानिग करनेमें शीघ्र प्रतीकार पड़चता है।

होमियोपैथिक चिकित्सक सुपके पचाघातमें वेलेडोना, एकोनायिट, वाराविटा कार्बोनिजा शौर काटिक वगैरह दवा देते हैं। चांगकी ऊपरी पनकके स्पन्दनगून्य हो जानेका मधोपध शीघ्र-सिम्निम है।

वैद्यशास्त्रमतसे—खेद, चभ्यङ्ग, गिरोषमि, पाग, नस्य शौर भोजनके अनन्तर छतवान करनेसे चर्दित रोग दूर हो जाता है।

सुपके पचाघातमें साधारणतः येश्मोग कटुतेल मट्टन, चम्रगन्धाका प्रलेप, छत मट्टन एवं मान-भोजनकी वायस्या करते हैं। अनाथ दिखारित विरच पचाघात कथ्ये देवी।

चर्दितित्नु (मं० पु०) चर्दितमक्षि चस्य इति। सुपके पचाघातका रोगी, जिसके सुंङमें लक्ष्वा लग गया हो।

चर्दीयमान (सं० त्रि०) दुःग्मित, पीडित, आजुर्दा, यका-मांदा।

चर्दंगोर—ईरानी शहर मीस्तानवासी बहमानके लड़की। मन् ११८४ ई०में इन्होंने पारसी धर्मोपन्य शब्दिटाटकी एक नकल उतारी थी। हरबद महद्वार भारतमें मीस्तान जा उस नकलको ले पाये। मन् १२२३ ई०को कस्ये मगरमें ईरानवासी के पुगद शौर कसम निहरवानमें उसी देख दूमरी भी नकल उतारी थी।

चर्दंगोर नौगियांन्—ईरानी शहर किरमानके पुरोहित। मन् १५०८ ई०में चकवर बादशाहके प्रायना करने पर पारसी धर्मोपदेगकोंने इन्हे भारत अपना मत फैलानेकी भिजा था। इन्होंने यहाँ था चकवरकी पयने धर्मका सम्पूर्ण कर्मकाण्ड सिखाया शौर मीस्रो-भिम्नना भी पचमायी। चकवरने इन्हींके उपदेगानुसार धर्ममें ज्ञानवानमें धर्मदेवका मन्दिर बनाया शौर

चर्टेशोर पपकान—धर्धचन्द्र

बहुलपुत्रको उसे सौंप कहा था,—क्या रात का दिन, किसी समय इस मन्दिरकी पवित्र अग्नि बुझने न पाये।

चर्टेशोर पपकान—प्राचीन समयके कोई मिययासी व्यापारी। यह मियसे जहाजपर चोर्जे साद प्राचीन समयमें भारत ध्वजने पाते रहे। कुगानोंसे मिल कण-पल्लवोंने एक बार इनपर सिन्धुनदके समीप घोर आक्रमण किया था।

चर्टेशी—काठियावाड़के गोंडल-नरेशकी प्राचीन राजधानी। इसे गोंडलसे उत्तर-पूर्व और राजकोटसे दक्षिण-पूरव कीस दूर पायेंगे। इसकी पूर्य और एक बुज बना है। सन् १६५४-५५ ई०में कोटरा सन्नानी राज्यके प्रतिष्ठाता सांगोलीको यह जागोरमें दे दी गयी थी। यहां को जमीन् बहुत अच्छी और पास ही गोंडल नदीमें गिरनेवाला नाला बहता है।

चर्धमान (सं० त्रि०) पीड़ित, आजुदा, जिसको तकलीफ मिल रही हो।

धर्ध (सं० पु०) षष्ठ हस्त भाये घञ् । १ हृदि, बटनी। आधारे घञ् । २ गृह प्रश्रुति, मकान बगैरह। करणे घञ् । ३ एकदेग, खण्ड, टुकड़ा, हिस्सा। ४ हृदि-प्राप्तिका आधार, बटनेकी मुनियाद। ५ यायु, हवा। ६ समीप, पास। (त्रि०) षष्ठ-णिच् कर्मणि षच् । ७ खण्डित, टटा-फूटा। (क्लि०) षच्' गृ' भ' कन् । ८ समानागि, दो बराबर टुकड़ेमें एक।

धर्धक (सं० पु०) अससर्प, पनिहा सांप।

धर्धकघातिन् (सं० पु०) रुद्र।

धर्धकपाटसन्धिक (सं० पु०) वाह्यदीर्घकपालीत-रास्पपान्निकर्षमन्थनाकृति विगेष।

धर्धकाल (सं० पु०) शिव।

धर्धकूट, धर्धकण द्वेषी।

धर्धकृत (सं० पु०) धर्ध कृतम् । असम्युर्ध सम्भा-दित, पूरा न किया हुआ, जो अधूरा बना हो।

धर्धकेतु (सं० पु०) रुद्र विगेष।

धर्धकेशिकी (सं० पु०) छिदनार्थ शफ्तधारा विगेष, फाटनेके लिये हथियारकी खाम गान।

धर्धकोटी (सं० स्त्री०) पाषा क

धर्धकोश (सं० पु०) पाषा क

धर्धकौडविक, धर्धकौडविक (कुडव-परिमाणमईति, धर्ध-कुडव वके परिमाणयोग्य, जो सोलह तोले

धर्धक्रोग (सं० पु०) पाध कोम,

धर्धक्षार (सं० स्त्री०) धर्ध खारि,

समा०। खारीमानार्ध, पाधो खारी (स्त्री०) धर्धखारी।

धर्धगङ्गा (सं० स्त्री०) धर्ध गङ्गा तत्। कावेरी नदी। कावेरी नहानेसे

पाधा फल भिन्नता है।

धर्धगर्भ (सं० द्वि०) धर्ध वत्सरध्याधे

पीयादो वा ब्रह्माण्डध्याधे गमने वा गर्भे मुदकं घेन। सूर्यके किरण विगेषसे सम्भ

वाला। प्रपहायण एवं पीयादि मास क किरणसे धृषिकीका जन खोंष पाकागके

मध्यस्थनमें धूम्रादि मन्थार लगता है।

धर्धगुच्छ (सं० पु०) धर्धः चन्द्रममः कर्मधा०। चतुर्विंशति गुच्छक क्षार, खोषीस

माना। धर्धगुच्छा (सं० स्त्री०) धर्ध गुच्छायाः, एक तत्। पाधो रती।

धर्धगीत (सं० पु०) हस्तका धर्ध भाग, दायर

पाधा टुकड़ा, निष्क, दुनिया।

धर्धचक्रवर्तिन् (सं० पु०) मो काले वासुदेव र्धे विष्णुके नौ शत्रुका नाम। (सं० पु०) कर्धरह द्वेषी।

धर्धचक्र (सं० पु०) धर्ध चक्रथ, एकदेगी तत्। चक्रका धर्ध भाग, चांदका निष्क, टुकड़ा।

२ नपका चतचिद्र, नासूनका दाग। ३ मसहस्त, क्षयसे गलेकी टीप। कर्धका मसा दधाने पमय

चट्टनीमें धर्धचक्रकी पाकृति देव पट्टी है। ४ बाय विगेष, कोर्ध तीर। यह धर्धचक्र जेता बनता है।

५ चठनी। चतनी बोनोमें मदे

भी अर्धचन्द्र कहते हैं। १ मयूरविच्छ, मोर-
पक्षी चांच। २ विपुत्र, विगेय। यह अर्धचन्द्र
केना नगता है।

अर्धचन्द्रक (मं० पु०) अर्धचन्द्र इव मयूरव्य,
सुप्त० समा०। मयूरविच्छका चन्द्र, मोरपक्षका
चंद्रोवा।

अर्धचन्द्रा (मं० स्त्री०) १ विद्वता, निमोत।
२ लक्ष्यविद्वता, कालानिमोत।

अर्धचन्द्राकार (मं० पु०) अर्धचन्द्राति शेषी।

अर्धचन्द्राकृति (मं० स्त्री०) अर्धचन्द्रव्य चालतिरिव
चालतिर्यस्य। १ अर्धचन्द्राकार काच, निस्फ, चांद-
शेमा गीगा। (त्रि०) २ अर्धचन्द्राकार, निस्फ
चांद-शेमा।

अर्धचन्द्रिका (मं० स्त्री०) १ कर्णरूपोट सता, कन-
फोड़ा। २ लक्ष्यविद्वता, कालानिमोत।

अर्धचोलाक (मं० स्त्री०) अर्धं चोलास्य, एकदेगी
गत, मंत्रायां कम्। चाधी चंगिया, छोटी चोली।

अर्धजरतीयन्याय (मं० पु०) नौकिकन्यायमिदं।
इमका तात्पर्यम्यहो है, कि एक वस्तु एक ही समयमें
दो विपरीत धर्मयुक्त नहीं हो सकता। जो हह है,
उर्गीका फिर तद्वत् होना असम्भव नगता है।
सुर्गीका कोई चंग पकाया जाता, फिर यही सुर्गी
किमी चंगमें चण्टे दे रही है—ऐसा कभी हो नहीं
सकता।

अर्धजरतीयन्याय—इस वाक्यकी व्युत्पत्तिके
विषयमें एक हटाना है। किमी हह नैयायिकके पास
एक गाय थी। वे उस गायको बंधनेके निधे डाटमें
ले गये। सूरीदार भोग चारकर उनमें पूछने लगे,
गाय कितने वर्षकी है। ब्राह्मणने मन ही मन
गोचा,—“हहका ही अधिक पादर होता है।
निमन्यचको जाननेमें समामें सब कोई भेरा मग्नान
करता और मर्षत ही मुझे अधिक विदाया भी
मिलती है।” यही समझकर उन्होंने कहा,—इमको
उम बहुत है। इही गाय किस कामकी। सुतरां
किमीने उसे न सूरीदा।

नैयायिकने गायके माघ पर मोट ब्राह्मणसे

सब हान कहा था। उस पर ब्राह्मणकी कुंभनाजर
घोल उठी,—“तुम्हारी कैसी बुद्धि है, तुमने ऐसी
गायकी बुद्धि बनी बताया। हह कहनेमें उसे कौन
मोल लेगा।”

दूसरे दिन ब्राह्मण फिर उस गायकी बाजार
से गये। सूरीदारने जब गायकी उम पूछी, तब
उत्तरमें उन्होंने कहा—“बाबू! यह तो अभी
कुछ ही दिनकी और भिर्क पहली बार बियागो
है।” यह सुन वे भाग हंसकर कहने लगे,—कल
चापने इस हह और पात्र तद्वत् बताया, ऐसा कभी
हो सकता है। इसपर ब्राह्मणने उत्तर दिया,—“यह
बात असम्भव नहीं है। भेरो गाय हह और तद्वत्
भी है। शास्त्रकार चालाकी पुरातन कहते हैं।
अतएव इस गायके नवीन शरीरमें पुरातन चाला
विद्यमान है। सुतरां गो शब्द कहनेमें गोदेहावष्टिच
पुरातन चाला एवं तद्वत् गाय समझी जाती है।”
किन्तु चला चबाना और गहनयोका मजाना एक ही
साथ नहीं हो सकता,—

“एकसाय नहिं होहि सुभाबू।

हंकरु उभाव नरापु माबू।” (दुपरी)

अर्धजल (मं० स्त्री०) जलक्रिया विगेय, सुर्दका
नहलाना। चितापर पक्षुचानेसे पहले गयको जो
नहलाने और चाधा पानी चाधा जमीनमें रखते, उसे
अर्धजल कहते हैं।

अर्धजाह्नवी (मं० स्त्री०) अर्धं जाह्नव्याः, एकदेगी
तत्। अर्धगङ्गा, कावेरा नदी।

अर्धज्योतिका (त्रि० स्त्री०) ताल विगेय।

अर्धतत्रु (मं० स्त्री०) अर्धं तरार, निस्फ, जिम्प।

अर्धतिष्ठ (मं० पु०) अर्धम्युक्तः तिष्ठः। निम्वत्प
विगेय, नैपामी नमका पक्षु।

अर्धतूर (मं० पु०) वादित विगेय, किमी किम्पका
बात्रा।

अर्धदग्ध (मं० त्रि०) अर्धजन, पाधा जना, सुभावा
दृषा।

“अर्धदग्धं ननु नरानो रिषु नृनिमन कोर।” (दुपरी)

अर्धदिन (मं० स्त्री०) अर्धं दिनस्य, एकदेगी।

तत् । १ आधा दिन, दोपहर । २ बारह घण्टेका दिन ।

अर्धदिवस (सं० पु०) अर्धदिन देवी ।

अर्धदेव (सं० पु०) अर्धं समोप देवानाम् । देवताके समोप वर्तमान व्यक्ति, फरिश्तेके पास रहनेवाला शख्स ।

अर्धद्रोणिक, आर्धद्रोणिक (सं० त्रि०) अर्धद्रोणिन क्रीतम्, उच्यते । आधे द्रोणसे खरीदा हुआ ।

अर्धधार (सं० स्त्री०) अर्धं धारा अस्त्व । यैद्य-शास्त्रोक्त ऋषावियेष, किसी कृष्णका नक्षत्र ।

अर्धधारक, अर्धधार देवी ।

अर्धनयन (सं० स्त्री०) तृतीय नेत्र, ज्ञानचक्षु, तीसरी आंख । यह लसाटमें रहता और बड़े पुष्पसे खुलता है ।

अर्धनाराच (सं० पु०) १ वाण विशेष । २ मर्कट-बन्ध और कोलक प्रागसे आबद्ध अस्त्रि । जैनशास्त्रमें इस षड्डीका उल्लेख है ।

अर्धनारायण (सं० स्त्री०) अर्धं अर्धपरिमितं स्थानं यस्य तादृशो नारायणो यत्र । १ गङ्गा प्रवाहमें चार हाथ दूर नारायणस्वामिक स्थानविशेष । २ विशु विग्रह ।

अर्धनारीश्वर (सं० पु०) अर्धाङ्गो वा नारी तस्या ईशः स्वामी । महादेव, आधे पुरुष और आधी स्त्रीकी आकृतिवाले शहर । इनका नियासस्थान कण्ठदेशवर्ती विशुहपद्म माना गया है । ध्यान धरनेका मन्त्र नीचे लिखा है—

“कोलप्रदानवतिरं विरुधत्तनेनं
पादावधोगुणपञ्चपादकण्ठदेशकम् ।
अर्धंविष्टमनिशं प्रतिमन्त्रमूर्धं
अर्धंशुबहुमुष्टं यस्यानि यत्पुं । (तन्त्रसार)

अर्धनारीश्वर, अर्धनारी देवी ।

अर्ध-नारीश्वर-रस (सं० पु०) औषधभेद । यह रस आसिपातिक ज्वरपर गुञ्जामात्र नस्यकमेंमें दिया जाता है । कोई कोई कीर्ण विषमज्वरमें भी यह नस्य हितकर बताते हैं । इससे तंतुषणमें ही वामाङ्गज्वर नाम होता है । इसके प्रस्तुत करनेका विधान यह है—पारद,

गन्धक, विष, टङ्गुण, यह सब द्रव्य समभाग यानो बराबर बराबर से एकत्र कल्पकी बनाकर छापके सुखमें रख दे और उसके मुखकी महीसे बन्दकर किसी मट्टोके ही पात्रमें नीचे जपर सवप ढाल बीजोबीज स्थापित करे । पीछे उक्त पात्रको भी खूब बन्दकर तीव्र अग्निपर ४ प्रहर पर्यन्त जलानेसे यह तैयार होता है । (भेषजप्रकाशने)

इसका प्रचार—पारा और गन्धक, यह दोनों सम-भाग, इन दोनोंके बराबर शह विष एवं जेपाल और मिर्च चतुर्गुण लाये । इन द्रव्योंको एकत्र कर त्रिकला रसके साथ घोंटना चाहिये । रसकी भावना पांच दो जाती है । (रक्षेदधारावर्णन)

गोष्ठ-शह पारा, शह गन्धक, विष, तास्त्रका भस्म, समभाग घषण कर लकके साथ खूब पीये । पीछे सब को चक्राकार बना सर्पके मुखमें भर दे । मुखको लेपन कर, एक महीके पात्रमें नीचे जपर सवप और बीजमें उक्त सर्प रख सिकता-(वान्, रेत)से परिपूर्ण करना चाहिये । ४ प्रहरतक मन्द मन्द आंधसे पाक करके पात्र उतार से । जब शीतल हो जाय, तब उससे गोलक को निकान, लेपन हटा, भस्म उठा यद्रसे खुनमें विमर्दन करना होता है । यद्यत्त यह चूर्ण मध्यमें मिलाकर दिया जाता है । (प्रयोगवत् अरविदिग्धा)

अर्धनाय (सं० स्त्री०) अर्धं नायः, एकदेगी तत् उच्यते । नौकाका अर्धांग, किछीका निम्न, हिम्मा ।

अर्धनिया (सं० स्त्री०) अर्धं निमायाः, एकदेगी तत् । अर्धरात्र, आधीरात ।

अर्धपञ्चामत् (सं० स्त्री०) अर्धविंशति, पथिस, पचासका अर्ध ।

अर्धपथ (सं० स्त्री०) अर्धं पथ्यम्, एकदेगी तत् । पथका अर्ध, काकिनोदय, दम गण्डा ।

अर्धपथ (सं० स्त्री०) अर्धं पथः, एकदेगी तत् अजन्ताः । पथका अर्धांग, आधी रात । (अथ०) रात्रमें, बीजोबीज ।

अर्धपल (सं० स्त्री०) कर्पटय, चार तोला ।

अर्धपाञ्चालक (सं० त्रि०) अर्धपञ्चाले मयः, इन्द्र ।

अर्धपद्यान्-देशज्ञान, जो अर्धपद्यात् देशमें पंदा
दुपा हो।
अर्धपादा (सं० स्त्री०) भूम्यान्को, भुयीं पावना।
अर्धपादिक, आर्धपादिक (सं० द्वि०) अर्धपाद
तच्छेदमर्चति, ठञ्। अर्धपादच्छेदयोग, अर्धपाद
परिमाण, दमड़ी भर।
अर्धपारावत (सं० पु०) अर्धेन अद्भुत पारावत
रवः। १ वनकुट्ट, जङ्गलकी मुर्गा। २ तिसिर
पक्षी, तीतर।
अर्धपुत्रायित (सं० स्त्री०) अग्नीको एक गति,
मोठा पोयिया।
अर्धपुत्र्या (सं० स्त्री०) मद्यावना, कारे पोधा।
अर्धपूर्य (सं० द्वि०) पाधा भरा, निस्सु, गुानी।
अर्धपोहन (सिं० पु०) हृद्य विगेष, कोई पोधा।
इमकी पत्तो मोटो होती है।
अर्धप्रस्थिक, आर्धप्रस्थिक (सं० द्वि०) अर्धप्रस्थेन
क्रीतम् ठञ्। अर्धप्रस्थ-परिमित द्रव्य द्वारा क्रीत,
जो पाधे प्रस्थमें खरीदा गया हो।
अर्धप्रहर (सं० द्वि०) पाधा प्रहर, छेड़ छप्टा।
अर्धप्रादेश (सं० पु०) १ पाधा विज्ञा। २ पाधा
भेद। ३ पाधा मुक्त।
अर्धभाग (सं० पु०) अर्धे भागस्य एकदेशी तत्।
१ पाधा हिम्सा। २ पाण्ड, टुकड़ा।
अर्धभागिक, अर्धभाग द्वेषी।
अर्धभागिन्, अर्धभाग द्वेषी।
अर्धभाज् (सं० द्वि०) अर्धे भजति, भज-पिठ,
उप० गमा०। अर्धांगका अधिकारी, पाधका
द्विषेदार।
अर्धभान्धर (सं० पु०) दोपहर।
अर्धभोजन (सं० स्त्री०) अर्धांगन, पाधे पिटका
पाना।
अर्धभोटिका (सं० स्त्री०) किसी किस्मकी रोटी।
अर्धभ्रम (सं० स्त्री०) अर्धे चरणाधपयन्तं भ्रमो
वचंभाज्यात्पात् पाठक्रमेण पावर्तनेयत, षड्धी०। जिन
श्लोकमें पाधे अर्धके अक्षर एक एक करके बाएँ
ओरसे दाहिनी पदमा दाहिनी ओरसे बाएँ किया

ऊपरसे नीचे या नीचेसे ऊपरको पढ़नेपर एक ही
अंसा पाते, उसे अर्धभ्रम कहते हैं,—

“आदर्शं नम आदर्शं भवति।” (अरुणगीतपारायण)

यह मन्त्रानुसार विगेष है। इसमें मन्त्र श्रुत्यनेके
मिथा कोई अर्धध्वित्वा नहीं जाता। ऐसे श्लोकमें
ऊपर लिखे हुए मतके अनुसार आना ओरसे अक्षर
गिरनेपर भी अर्ध अनेका अंसा हो पना रहता है।

अ	भी	क	म	ति	छि	ने	हे
मो	ता	न	ऋ	स्य	ना	म	मे
क	न	तुम	का	म	से	ना	छि
म	ऋ	का	म	क	म	स्य	ति

(आष १/१५)

इस श्लोकमें प्रथम अक्षरके प्रथमार्धका अक्षर
अक्षर बायीं ओरसे दाहिनी ओर पढ़ जानेपर
'अभीकम' होता है। फिर प्रत्येक अक्षरका अक्षर
अक्षर ऊपरसे नीचेकी ओर पढ़नेपर भी 'अभीकम'
ही आता है। द्वितीय अक्षरके प्रथमार्धका अक्षर
अक्षर बायीं ओरसे दाहिनी ओर पढ़नेपर 'भीतानऋ'
ओर प्रत्येक अक्षरके प्रथमार्धका दूसरा अक्षर ऊपरसे
नीचेकी ओर जाते भी 'भीतानऋ' ही पड़ता है।
तीसरे अक्षरके प्रथमार्धका अक्षर अक्षर बायीं ओरसे
दाहिनी ओरको पढ़ जानेपर 'कनतुमका' ओर प्रत्येक
अक्षरके प्रथमार्धका तीसरा अक्षर ऊपरसे नीचेकी
पढ़नेपर भी 'कनतुमका' ही बैठता है।

चतुर्थ अक्षरके प्रथमार्धका अक्षर अक्षर बायीं ओरसे
दाहिनी ओर पढ़ जानेपर 'मन्काम' ओर प्रत्येक
अक्षरके चौथे अक्षरको ऊपरसे नीचेकी ओर पढ़नेपर
भी 'मन्काम' ही बनता है।

सब अक्षरके प्रथमार्धका अक्षर दशोत्तरव बाएँसे
दाहिने ओर ऊपरसे नीचेकी ओर जाने भी एक ही
अंसा रूप होता है।

दूसरे प्रथम अक्षरके शिवाधका अक्षर अक्षर
बाएँसे दाहिनी ओरको पढ़ जानेपर 'तिकेनेहे' ओर
प्रत्येक अक्षरके शिवाधका अक्षर अक्षर नीचेसे
ऊपरकी ओर भी 'तिकेनेहे' ही लगता है।

द्वितीय अक्षरके शिवाधका अक्षर अक्षर बाएँ

घोरसे दाहिनी घोरको पद जानेपर 'स्यनाशने' घोर प्रत्येक चरणके शेषार्धकी उल्टी घोरका दूसरा अक्षर नीचेसे ऊपरको पदते भी 'स्यनाशने' ही मिलता है।

द्वितीय चरणके शेषार्धका चार अक्षर बाईंसे दाहिनी घोर पद जानेपर 'मसेनाके' घोर प्रत्येक चरणके शेषार्धकी उल्टी घोरका तीसरा अक्षर नीचेसे ऊपरको पदते भी 'मसेनाके' ही गंठता है।

चतुर्थ चरणके शेषार्धका चार अक्षर बाईंसे दाहिनी घोर पद जानेसे 'कमस्यति' घोर प्रत्येक चरणके शेषार्धकी उल्टी घोरका चौथा अक्षर नीचेसे ऊपरको पदते भी 'कमस्यति' ही निकलता है।

अर्ध 'अर्ध' चरणमें अक्षरका इस रीतिसे भ्रम अर्थात् भ्रमण वा भावर्तन होनेपर श्लोकको अर्धभ्रम कहते हैं। अग्निपुराणमें अर्धभ्रम श्लोक 'अर्धभ्रमक' कहा गया है। अर्धभ्रम वा अर्धभ्रमक श्लोक षण्डुष्टु भिन्न घोर किसी छन्दमें नहीं रचा जाता।

ध	भी	क	म	ति	के	ने	हे
भी	ता	न	न्द	स्य	ना	ग	नी
क	न	त्स	का	म	से	ना	के
म	न्द	का	म	क	म	स्य	ति

अग्निपुराणमें इस तरह लम्बी पांच घोर तिरछे नी रेखा खींचकर बत्तीस कोठ बनानेकी व्यवस्था है। एक एक कोठमें श्लोकके अक्षरोंको यथाक्रम रखकर ऊपर कही हुई रीतिमें पढ़ना पड़ता है। परन्तु माघ घोर भारविमें इस तरह रेखा खींचकर कोठ बनानेकी व्यवस्था नहीं है।

अर्धभागधो (सं० स्त्री०) प्राकृत भावा विशेष, कोई पुरानी ज्वान। पद्यमें यह मयुरा घोर पटनाके बीच चलती थी। मान्यो देखो।

अर्धभाष्य, अर्धभाष्य देखो।

अर्धभाष्यक (सं० पु०) अर्ध भाष्यकस्य, एक-

देगो तत्। हादय यटिका मासा, वारह नहीका हार। अर्धमात्रा (सं० स्त्री०) अर्ध मात्रायाः, एकदेगी तत्। १ विन्दुर्ध-चन्द्राकार मग्न। २ अर्धपरिमाण, पाधा वजन। ३ सङ्गीतशास्त्र घोर पद्यको अर्ध-मात्राका उच्चारण काल। (त्रि०) ४ इत् वर्ष, व्यञ्जन।

अर्धमात्रिक (सं० पु०) निरुद्देशाधिकारका यत्न विगेष, पिचकारीसे दिया जानेवाला कोई लुनाय। दगमूलोय कपायसे यताहाचको पोम डाले। फिर दो-दो पल सैन्यवाच एवं मधु घोर एक पल तंल मिलानेसे यह तैयार होता है। इसके सेवनसे सर्धरोग मिटता है। (पञ्चतन्त्रसंग्रह संवत्)

अर्धमार्गे (सं० अश्व०) पाधी राहनें।

अर्धमास (सं० पु०) अर्ध मासस्य, एकदेगी तत्। एक पक्ष, पन्द्रह दिन, पाधा महीना।

अर्धमासतम (सं० त्रि०) १ प्रति पक्ष किया जाने वा होनेवाला, जो हर पक्षवारं हो। २ एक पक्ष रहनेवाला, जो एक पक्षवारं टिकता हो।

अर्धमासशम् (सं० अश्व०) प्रतिपक्ष, पन्द्रह दिनमें, पक्षवारं-पक्षवारं।

अर्धमासीक, अर्धमासतम देखो।

अर्धमासुरी (सं० स्त्री०) सेखनार्य पद्मधारा विगेष।

अर्धसुष्टि (सं० पु० स्त्री०) पाधी सुष्टी, जो सुष्टी पाधी बन्द घोर पाधी खुली हो।

अर्धयाम (सं० पु०) अर्ध यामस्य प्रहरस्य, एकदेगी तत्। दिया तथा रात्रिका पटांग, दिन घोर रातका आठवां विष्णु, छेड़ घण्टा।

अर्धरथ (सं० पु०) अर्धः अन्वयः रथः। अन्वयः रथी, अर्धरा मिपाही। जो घोर रथपर बैठ मुह करनेमें दूसरे रथीकी सपेला रखता, वह अर्धरथ कहाता है।

अर्धरात्र (सं० पु०) अर्ध-रात्रेः, एकदेगी अत्रतः।

१ रात्रिका अर्धभाग, दो प्रहर रात्रि, पाधी रात।

२ निर्गोय, महाजिग, अथमरासय, निद्रम्यात, सुप्तजन, चौबीस घण्टेकी रात।

“अर्ध रात्र मय कथं ज्ञेयं कथं वा” (दुर्गा)

अर्ध रात्रसमय (अं० पु०) रात्रिके अर्ध भागका समय, चायोरात्रका षष्ठ ।

अर्ध रात्रार्ध दिवस (अं० क्री०) विपुत्र, विपुत्रम्, दिनरात्र वराहर ज्योतिष्का समय ।

अर्धर्ष (अं० पु०-क्री०) अर्ध षष्ठः, एकदेमी अर्ध समा० । षष्ठका अर्धभाग ।

अर्धर्षमम् (अं० अक्ष०) प्रत्येक पदपर, हरिक मिमरीमै ।

अर्धर्षादि (अं० पु०) अर्धर्ष इति शब्द पादो देवाम् । अर्धर्षः पुंल्लिङ्गः पाशरात्रः । पाणिनिका कक्षा कृपा शब्द गणनीद । इम गणने निरखलिखित शब्द रक्षता, जो पुंलिङ्ग एवं क्लोवनिङ्ग भी होता है,—

अर्धर्ष, गोमय, कषाय, कार्यापच, कुतप, कपाट, मङ्ग, चक्र, शूय, द्यु, ध्वज, कवच्य, पद्म, यष्ट, सरक, कर्म, दिवस, युव, अन्धकार, दण्ड, कमण्डलु, मण्ड, भूत, दीप, द्युत, धर्म, कर्मन्, मोदक, शतमान, यान, नद्य, नगर, शरण, पुच्छ, दाडिम, द्विम, रजत, मङ्ग, पिधान, मार, पाय, हृत, सैन्य, शौच, चाटक, चपक, टोच, खमोन, पात्रीय, यष्टिक, मार, वाच, प्रोच, कपिल, यष्ट, मोन, यन्त्र, शोध, कवच, रेशु, कपट, मोकर, सुमन, सुवर्ग, द्युप, चमम, वर्ष, सौर, कर्ष, चाकाग, घटापद, मङ्गल, निधन, निर्यास, कृष्, हस्त, पुस्त, स्तोत्रित, यष्ट, यष्टन, मधु, मूल, मूलक, गराव, शाल, वप, विमान, मुग, प्रवीच, शूल, वल्ल, कपट, मिशर, कष्ट, नाट, मष्टक, वलय, कुष्ठम, यष्ट, पद्म, कुष्ठन, किरौट, अर्धुद, पद्मग, तिमिर, पायम, भूपच, इष्टन, सुकुम, वमन्त, तद्गम, पिटक, विष्ट, भाव, कोम, फल, दिन, देवत, विनाक, समर, स्थापु, पनीक, उपवास, शाक, कर्षास, चपाक, खल, दर, विष्ट, रच, वन, मज, मृषाल, इष्ट, श्रु, ताण्ड, गाण्ठीय, मल्लप, पटव, शोध, पाय, शरीर, कर्म, पुर, राष्ट, विष्, अन्वर, कुष्ठिम, मल्लन, कष्ट, तोमर, तोरच, मचक, पुष्ट, मध्य, वान, यष्टोक, वर्ष, वद्य, देष्ट, उद्यान, उद्योग, इष्ट, स्वर, मङ्गल, निष्ठ, चोम, मूक, दय, पयित, योगन, पालक, भूयिक, वरुदल,

कुष्ठ, विहार, मोहित, विवाच, भवन, चरण, पुनित, हट, धामन, शरावत, शूय, शीय, शोमग, तमान, मोहदण्डक, शयय, प्रतिमर, दाह, धनुम्, मान, यष्ट, वितह, मय, मक्षय, चोदन, प्रवात, गकट, चपराह, मोड, गकन, कुणय, शरव, पुष्ट, सुल, निगड, ख्य, नाम, कटक, कण्डक, कुमुद, इष्याप, विष्ट, पिष्ट्याक, विमान, पाट, इन, योष कुष्ट, कुष्ट, खण्डन, पञ्चक, छान, वद्य, शोन, शान, चत, कण्ड, वर्ष, ताण्ड, तण्डुल ।

अर्धर्षादि (अं० पु०) अर्धर्षाद्या चाकारे यत्प्र ताहो हरिः । मष्टी मञ्जित मिनित विष्णु ।

“मणिः मन्मति कथं मारको रेशता पुनः ।
अर्धर्षादि (अं० पु०) शीतोन्न वरुदकम् ।” (नीतमोचन)
इनके ध्यानका मन्त्र यह है,—
“उद्युपद्योतनवतर्षि तर्षे मारवानं
वर्ष इत्ये कल्पितुनवा विषयवया च वृष्टम् ।
मारकोऽहनिशविषाचक्यमापोनवकम्
विष्णुं वन्दे वरुदकमर्षीतोदको चक्रवर्तिम् ॥”

अर्धर्षासंघीत (अं० अक्ष०) अर्धपरिच्छदविगिट, चाधे कपड़े पहने कृपा ।

अर्धर्विसर्ग (अं० पु०) अर्धर्विसर्गस्य एकदेमी तत् । चाधे विसर्ग—जैसा जिज्ञासूनीय शीर उपधमासीय ।

अर्धर्वोचण (अं० क्री०) अर्धर्वोचणस्य, एकदेमी-तत् । चपाह दर्शन, तिरका मजारा ।

अर्धर्वीरच्छा (अं० क्री०) छप्पा दूर्वा, कानी दृष्ट ।

अर्धर्वृत्त (अं० क्री०) १ वृत्तका अर्धर्ष, दायरेका पाधा द्विमा । २ वृत्तके परिधिका अर्धर्ष, दायरेके धरेका पाधा द्विमा ।

अर्धर्वृष्ट (अं० अक्ष०) पाधा बुष्ट, दरमियानी उर्य-वासा ।

अर्धर्वृष्टती (अं० क्री०) अर्धर्वृष्ट, चाधी मांम ।

अर्धर्वैनामिक (अं० पु०) अर्धर्वैनामिकः वैनामिकः शोध विधेयः । वैमिषिक शास्त्र-प्रदीता ।

अर्धर्वैगम (अं० क्री०) अर्धर्वैगमस्य यधः । अर्धर्वैनाम, निष्क, कर्तुन ।

अर्धर्व्याम (अं० पु०) वृत्तकी त्रिधा, दायरेका निष्क, कर्तुर ।

अर्धगत (सं० स्त्री०) १ पचागत, पचास। २ गत एवं पचागत, छिट्ठ सौ।

अर्धशन (सं० स्त्री०) अर्धं भयनस्य, एकदेगी तत्, नि० माधु। अर्धभोजन, आधो सुराक।

अर्धगफर (सं० पु०) अर्धः भ्रमस्य र्धः गफरः। सुदृढ मत्स्य विगेष, दण्डपाल, कीरिं छोटी मछली।

अर्धशब्द (सं० त्रि०) मन्द शब्दविशिष्ट, धीमी आवाजवाला।

अर्धशराव (सं० पु०) प्रसूति दय, बत्तिस तोला।

अर्धशरावक, अर्धशराव देखी।

अर्धशेप (सं० त्रि०) आधा बाकरी, जो सिर्फ आधा बच गया हो।

अर्धश्याम (सं० त्रि०) आधा बदरीला, जो बादल से निस्क, घिरा हो।

अर्धश्लोक (सं० पु०) अर्धं श्लोकस्य, एकदेगी तत्। श्लोकका अर्धभाग, प्रथम पादद्वय।

अर्धमञ्जरा (सं० त्रि०) आधा जगा डूपा, जिसमें आधो फसल पैदा हो चुके।

अर्धसफर, अर्धसफर देखी।

अर्धसम (सं० त्रि०) अर्धेन समः। अर्धके समान, आर्धके बराबर।

अर्धसमवृत्त (सं० स्त्री०) वृत्तविशेष, सोरठा। इसमें प्रथम छतौथ और द्वितीय चतुर्थ पाद समान रहता है।

अर्धमह (सं० पु०) पंचक, उलू चिड़िया।

अर्धसीरिन् (सं० पु०) अर्धसीरस्य हलजटगस्यादिफलस्य अस्ति पत्र्य, अक्षरार्थे इति। अन्त्यके लेखमें खेती कर उपजका अर्ध भाग पानेवाला रूपक, जो किसान दूसरेका खेत कमाता और फसलका आधा हिस्सा पाता हो।

अर्धहार (सं० पु०) अर्धः हारः। चौंठ या चालीस लड़कीका हार।

अर्धह्रस्व (सं० स्त्री०) अर्धाक्षर, आधा ह्रस्व।

अर्धश (सं० पु०) अर्धं अंगस्य, एकदेगी तत्। अर्धभाग, आधा हिस्सा।

अर्धाग्निन् (सं० त्रि०) अर्धभागका अधिकारी, निस्क हिस्सा पानेवाला।

अर्धाग्निजन (सं० स्त्री०) अर्धाग्निजन एक जन, जो पानी जनकर आधा रह गया हो। यह वातपित्त को मिटाता है। (साधनिक्यु)

अर्धाकार (सं० पु०) १ अक्षरका अर्ध भाग। २ अक्षरप्रह, समासके पदका विभाग।

अर्धाङ्ग (सं० स्त्री०) १ शरीरका अर्ध भाग, निस्क, जिम्ब। २ पचाघात, फ्रांसिज, मकवा। इस रोगमें आधा अङ्ग मारे पड़ता है। ३ शिव।

अर्धाङ्गिनी (सं० स्त्री०) पत्नी, बीवी।

अर्धाङ्गी (सं० पु०) शिव।

अर्धाध (सं० पु०) अर्धं अर्धस्य तुल्यांगस्य, एकं तत्। समान भागका अर्धांग, अतुयींग, आधेका आधा, चौथायी।

अर्धाक्षरिणी—विहारके बनोधिया और लैसवार बसवारकी एक गावा।

अर्धाङ्गि (सं० पु०) जलमर्प, पदिहा माप।

अर्धावभेदक (सं० पु०) गिरारोग विशेष, अर्ध-ऊपानी, आधाशोगे। इसका उत्पत्ति और सचचा इस प्रकार लिखी है—ऊपान्तु धाने, अन्नजन प्राग्वातावश्याय, मैथुन, वेगसम्भारण (भ्रूयादिक अवरोध करने), अधिक परित्यम, ध्यायाम प्रभृति कारणोंसे वायु कुपित हो केवल या कफसे मित्त, गिर, भू, नेत्र, कर्ण, नलाटके अर्धभागमें जो शस्त्र साङ्ग मद्ग मोक्ष वेदना (घोड़ा) उत्पन्न करता, उसको अर्धावभेदक कहा जाता है। (साधनिक्यु)

२ समान अंगमें विभाजन, बराबर हिस्सेका तर्कसाम।

अर्धावगेष, अर्धवगेष देखी।

अर्धांगन, अर्धवगेष देखी।

अर्धाटम—गुजरात प्रान्तका कीरि प्राचीन जिला। मन् ११४१-११०४ ई०में पण्डितप्रवर इमचन्द्र केन चातुर्व्यटपति कुमारवामके मन्त्री रहते। कहते हैं, कि विक्रमादित्य संवत् ११४५ की कार्तिकपूर्णिमाको ऐनचन्द्रने इस जिलेके धनुक गांवमें चाण्डिग नामके द्विषे मोदी बलियेके घर जन्म लिया था। माता पाहिनी चासुण्डी गौतमी रहते, इमचन्द्रको सचइपनमें लोग

श्रीदेव कहते थे। मन् १०८८-११०० ई०में जेनाथाय देवचन्द्र पाटनमें पञ्चक गये, जिनमें देव शङ्खोदेव बोटे जा बैठे। मङ्गलको शीतहार या देवचन्द्र चक्रगये और कोर्गीको चपने साथ से चापिगके मन्त्रान् पढ़ये थे। उग समय चापिग घरमें न रहा, किन्तु उसको पक्षीने चादरके साथ चाथायंका हागत क्रिया और मानने पर अपना पुत्र शङ्खोदेव उन्हे मौप दिया। जेनाथायंने पुत्रको कर्षावती पढ़ूँवाया और उदयन मन्त्रीके लड़कीसे साथ जा रखा था। चापिग मन्त्रान्में लड़के को न था बहुत धराया और बिना देने पचजन पदच न करनेका मगप उठाया। कर्षावती पढ़ूँल उगने सुदककर चाथायंमें लड़केको वापम मांगा था। किन्तु उदयनके कहनेमें वह उन्हे देवचन्द्रके पास जा छोड़नेपर राजी हो गया। मन् १०८० ई०में चापिगने पुत्रको पाठ वर्षकी पचस्यापर दोला टिला सोमचन्द्र नाम रखा था। जब वह पढ़-निखकर धुरधर विद्यान् रूप, तब देवचन्द्र उन्हे ऐमचन्द्र कहने लगे। मन् १११० ई०में कोई रत्नीम वर्षकी पचस्यापर ऐमचन्द्रने चपनी प्रकपे विद्याके कारण 'सूरि' उपाधि पायो थी। मिहाराजने उनको बात सुनते ही चाथायंमें जा गिरहर कहके सम्मानित किया। मिहाराजके साथ ऐमचन्द्र सोमनाथपाटन पढ़ूँये और गिरन्दिशके नामने पूज्य दृष्टिमें भूके थे। उन्हीं 'सिद्धऐमचन्द्र' नामक व्याकरण ग्रन्थ चपने और महाराजके नामपर बहुत ही चम्पू बनाया है। 'वसिष्ठान-चिन्तामवि' और 'चनेकार्यनाममाला' पुस्तक भी उन्हींका लिखा है। उन्हींने कुमारपाल गृपतिमें चर्हिमा रचनेकी प्रतिष्ठा करा ली थी। जब कुमारपालने धर्मका सबसे बड़ा काम करनेको पूजा, तब ऐमचन्द्रने सोमनाथके मन्दिरका और्षाहार ही बना दिया। उनके कहनेमें कुमारपालने मय-मानका व्यवहार छोड़ और चपने राजमें श्रीवर्द्धमा न होनेका टिंठोरा पिटाया था। कहते हैं, चन्द्रिन्मात्रके किमी बन्धियोंको कुल आप-दाह एक जूँ मारनेके कारण ज्वल हुई रहीं। कुमार-पालने समय उन्हींने पच्छे-पच्छे माहिसिक और धार्मिक धर्म लिखे। उनमें चम्पाकोपनिषद् वा

योगमाहा, विपहिगनाकापुत्र-परिम, परिगिट-पर्व, प्राज्ञत शब्दानुगामन, निङ्गानुगामन, चापय, हन्दीनुगामन, देगीनाममाला और चमहार-पुङ्गा-मवि उन्नेष-योग्य है। मन् ११०२ ई०में ८४ वर्षकी पचस्यापर ऐमचन्द्र मरे थे। कुमार-पाल गृपति उनको मृत्युपर फूट-फूट रोये और भाषी चादमी धिताकी भण्य मन्त्रकपर लगानेकी ने गये।

पर्यायन (मं० क्री०) चर्धे पाममय्य, एक० तत् ।
१ पामनका चर्धे भाग । चर्धे सम्पत् चर्धनेत्याग ।
२ खेददान, वञ्चनका सन्नाम । ३ चक्रुत्तम, ४५-जामकी सुवाफो ।

पर्यिक (मं० लि०) चर्धमर्हति, टिटन् । चर्धभाग-विगिट, निस्व, द्विगंमे ताज्ज् रचनेवाला ।

पर्यिन् (मं० लि०) चर्धे पहीद्वत्येन चम्पाम्य, इति । चर्धे भाग नेनेवाला, गिस्का द्विगोदार ।

पर्यिकरय (सं० क्री०) चर्धे भाग बनानेकी क्रिया, चाथा द्विग्या निकालनेका काम ।

पर्युक (सं० लि०) चर्धे वापु० एकम् । हर्हिमीन, सम्पत्, कामयाम ।

चर्धेन्दु (मं० पु०) चर्धे इन्दोः, एक० तत् ।
१ चम्पूका चर्धे भाग, चाथा चर्दि । २ मय चिञ्ज, माधुनका निगान । ३ चर्धेचन्द्र वाच । ४ गनद्वत्, गल बर्हिया । ५ चर्धिमोद खोको योनिमें चर्धुलि प्रयोग ।

चर्धेन्दुमीनि (मं० पु०) चर्धेन्दुः मीनो मन्त्रके यत् । चम्पूचर्धे मय ।

चर्धेन्दुयकमा (मं० स्त्री०) १ नामारोग विरोध, नाककी कोई बीमारी । २ कषामरोगमेद, योगर्धे का कोई पाञ्जर । ३ चोठ रोग, चोठकी बीमारी । ४ चर्धेदरोग, जोड़ा पुनो । ५ गनरोग, गर्दनका पाञ्जर । ६ कर्धेरोग, कानकी बीमारी ।

चर्धेन्दु (मं० लि०) जिनमें चाथा द्विग्या चम्पू का र्धे ।

चर्धेञ्ज (मं० क्री०) चर्धे एकम् । १ चर्धे, कथन, निस्व, कलाम । (लि०) २ चाथा कहा रूप, जो माद-माद बनाया न गया हो ।

अर्धोक्ति (सं० स्तो०) अर्धकथन, निष्क कलात्म ।
 अर्धोदक (सं० स्त्री०) अर्धदेहव्यापक उदकम्, शाक०-तत् । देहके निम्नार्धभाग पर्यन्त जल, जो पानी निम्नके आधे हिस्से तक पहुँचता हो ।
 अर्धोदकक्षीर (सं० स्त्री०) अर्धोदकश्च दुग्ध, आधे पानीमें पका हुआ दूध ।
 अर्धोदय (सं० पु०) अर्धम्य ममृहस्य पुष्यस्य उदयो यत्र, वङ्गो० । योग विधिप । साधमासकी अमावस्याको रविवार, व्यतीपात और अयन नक्षत्र पहुँचनेसे यह योग लगता है । इसमें स्नान करनेसे परम पुण्य मिलता है । अर्धोदय दिनमें ही होता, रात्रिको कभी नहीं पड़ता ।
 अर्धोदयानन (सं० स्त्री०) अर्धम्य उदयेन ऊर्ध्व-क्षेपेण आसनम् । साधनकालका आसनविधिप ।
 अर्धोदित (सं० त्रि०) १ आधा निकला हुआ, जो आधा छटा हो । २ आधा कड़ा हुआ, जो पूरा न बताया गया हो ।
 अर्धोदक (सं० स्त्री०) अर्धोदक तत्र यागते, काग-ठ । १ छोटा घाँघरा । (त्रि०) २ उरुके मध्य भाग तक पहुँचनेवाला ।
 अर्ध (सं० त्रि०) अर्धस्य इदं तत्र भव वा, अर्ध-यत् । १ अर्धसम्बन्धी, निष्कसे तालुक रखनेवाला । २ पूरा किया जानेवाला । ३ प्राप्त्य, जो हासिल किये जानेको हो ।
 अर्धोदय—वस्वर्देके घूरत प्रास्ताका एक ग्राम । यह धर्मपुरसे कोई साढ़े चार कोस दूर है । यहां गर्म पानीका एक झरना चलता, जिसपर प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल षोणमासीको मेला लगता है ।
 अर्धोदय—वस्वर्दे प्रास्तोय घाना जिनकी बमारन तट-सोसके चगागी गांवका एक किला । मुसलमानोंके राज्यकाल पोतंगीजोंने इसे बनाया था । यह वैतरण नदके सुंझानेपर अवस्थित है । गुम्वद, मेहराव और कमरा वगैरह मुसलमानों डरका रहते भी इसके भीतर हिन्दू अधिकारका चिह्न देखेंगे ।
 अर्धोदय—वस्वर्देके अहमदाबाद जिलेकी घोस्का तट-सोसका एक गांव । इसका मालाना आमदनी

दामाजो गायकवाडके प्रबन्धानुसार पंगरेज-सरकार भूत-भयानी मन्दिरके मन्दापतकी हो टेटो है । प्रतिदिन प्रातःकाल साधुओंकी मन्दापत मिलता है ।
 अर्धोदय—गुजरातस्थाने सांभर प्रांतके उदयति विधिप । घालुष्य उदयति कुमारपालको इन्होंने युद्धमें परास्त किया था । अन्तको कुमारपालने अर्धनी कन्दा इन्हें व्याहटी । इनके नातो यौरधयन भोम नरगके उत्तराधिकारी बने थे । भोम नरगके विरुद्ध बनवा होनेपर इन्होंने गद्दुका सुंघ तोड़ अपना प्राण छोड़ा ।
 अर्धोदय (सं० स्त्री०) अ-विष्-पुष्-सुग्-त् । १ प्रदान, वलुग्मिग, सुपुदंगो, निकाम । २ निक्षेप, टाल, फेंक-फांक । ३ स्थापन, जमाव, लगाव । ४ त्याग, छूट । कर्मणि सुग् । ५ हरि प्रभृति । अधिकरणे लुग् । ६ अग्नि प्रभृति । मग्दाने लुग् । ७ देवता प्रभृति । अर्धोदय (सं० त्रि०) प्रदान वा स्थापन किया जानेवाला, जो देने या रखनेको हो ।
 अर्धोदय, अर्धोदयः ।
 अर्धोदय—मध्यप्रदेशके बांदा जिलेका एक परगना । यह अक्षांश १८° २८' १५" पर्व १८° ४८' ४५" उ० और द्राधि० ७८° ४८' १५" तथा ८०° ११' १०" पू०के मध्य अवस्थित है । इसके कितने ही गांवमें घोट सबसे बड़ा निकलेगा । जड़न और पहाड़ बहुत मिलता है । किन्तु जगह-जगह तानाब भरे और नाले बहा करते हैं ।
 अर्धोदय (सं० त्रि०) अ-विष्-पुष्-त् । १ प्रदान, दिया हुआ । २ स्थापित, जो रखा गया हो । ३ गच्छित, गया हुआ ।
 अर्धोदयकर (सं० त्रि०) १ हाथ फैलाने या बढ़ाने हुआ । २ विवाहित, जिसको शादी हो चुके ।
 अर्धोदय (सं० पु०) अ-विष्-पुष्-इमम् । १ पच-मांस, पागिका गोश । २ हृदय, दिन ।
 अर्धोदय (सं० त्रि०) अ-विष्-पुष्-यत् । १ त्याग, छोड़ने काविल । २ निवेगनीय, लगाने लायक ।
 अर्धोदय (सं० पु०) द्रव्य, मय्यति, दोषत, मास टाल ।
 अर्धोदय (सं० स्त्री०) अ-विष्-तपे उदयति उद-इच-ठ । दग कोटि संख्या, १०,००००००

“विश्वरूपीं चक्रं तत्र रत्नरत्नं चक्रम्, चक्रमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्
रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्, रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्, रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्—
रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्, रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्” (विश्व
रत्नमण्डलं चिद्रत्नं चक्रम्)

इसको टीका में हम तरह लिया गया है,—

‘चक्रवर्तिनम्’ अर्थात् राजा होता है, अर्थात् ‘चक्रवर्ति’ अर्थात् ‘विश्व
चक्रवर्ति’ अर्थात् राजा होता है, अर्थात् ‘चक्रवर्ति’ अर्थात् ‘विश्व
चक्रवर्ति’ अर्थात् राजा होता है, अर्थात् ‘चक्रवर्ति’ अर्थात् ‘विश्व
चक्रवर्ति’ अर्थात् राजा होता है। (द्वैतशास्त्र)

चक्रवर्ति दृष्टान्त चक्रवर्ति-ज, महारथ्य रिकः ।
२ निय । ३ चक्रवर्ति विमोय । चक्रवर्ति । ४ चक्रवर्ति विमोय ।
(पु०) ५ चक्रवर्ति मन्त्रान्त मर्षवियेय । ६ रोगमेट ।
ऊपर सामने के नीचे भाग, मम, मांसी एवं छठी आदि
माना मन्त्रान्त ओ गूमड़े निकल आते और सन्तत्य
भावी बढ़ते रहते उनको चर्बुद (tumor) कहते हैं ।

यह राग धर्म प्रकारका होता है । उसमें एक
सामान्य चर्बुद है । सामान्य चर्बुद रोगमें प्राय
नष्ट नहीं होता । फिर कोई सांघातिक भी है ।
जैसे कर्कट प्रभृति रोग । रहमें कोई विमोय दीप
नगनें। हम जातिका गूमड़ा निकलता है । देहमें
कर्कट आदि जातिके गूमड़े निकलनेपर प्राय रक्षाका
ओरे उपाय नहीं । हमके चरित्रिक दूर प्रकाशका भी
गूमड़ा होता है । पचने उत्कृष्ट नहीं साम्य
पड़ता, परन्तु चर्ममें सांघातिक ठहरता है ।

महाराज गूमड़के भीतर एक गोलाकार कोष
रहता, जिसे काट डालनेपर चर्ममें कुछ रस
निकलता है । किमा किमा जगद वाम, दांत,
हाडू, रक्त, मेट और एक प्रकारका काला गलित
पदार्थ भी निकल आता है ।

पथव्यन्, मूत्रागय, मन्त्रिष्क, कान, नाक, यक्ष्म,
त्रिष्ठा, चण्डाधार, योनि एवं जरायु प्रभृति शरीरके
नामा मन्त्रान्त चर्बुद उठता है ।

उपदंत रागको जेव पथव्या चणवा कोलिक
उपदंत रागमें हाडूपर गूमड़ा पड़ता है । दांतकी
त्रुष्ठा हाडू भी कभी कभी बढ़ जाता और उसमें एक
प्रकारका प्राय निकल आता है । चर्मरोगमें रक्षि
एविसलित कहते हैं । बिना हाडू निकले ऐसा

गूमड़ा दूर नहीं होता । परन्तु यह विक्रम
पतियय उत्कृष्ट है । बड़ी बड़ा धमनियोगि भी
गूमड़ा फूटता है । चर्मरोगमें इसे एमुरिकम् कहते
हैं । यह रोग बहुत कठिन है । पुत्रपके पच्छ
कोयमें जो गूमड़ा निकलता है, उसे हम मोग लम
दीप वा कोपुष्टि कहते हैं । किमा किमी विक्रमका
गूमड़ा पचने एक जगद उठता है, फिर धीरे धीरे
दूमरी जगद विमसक जाता है । ज्वरीमा गूमड़ा
पचने काट देनेपर बार बार उसी जगद पदवा
शरीरके किमी दूरमें म्यानमें फूट पड़ता है । यह
किर चर्ममें काट न दिया जानेपर जगदगः गमकर
रोगोका प्राय ले नेता है ।

सामान्य गूमड़ा निकलनेपर भी चण विक्रम
मिच प्रायः दूरमें कोई प्रतीकार नहीं । गूमड़ा फूटने-
पर सुचिकित्सकका परामर्श लेना उचित है । चण-
वमायी गूमड़ेपर अनेक प्रकारको दवा लगाकर
जुष्टम बना डालता, परन्तु सन्तवियोगमें उसमें
विपद पड़ सकती है ।

६ मघा भी एक प्रकारका चर्बुद रोग है । किमी
किमीके मारे शरीरमें फुन्नीरे जेमा बड़ा बड़ा काला
मघा निकलता है । किमी किमी मनुष्यको पीठका
ऊपरी भाग काला पड़ता, उस मनुषीपर कीड़ेके
जने जेमा जंवा भीगा और कहीं कहीं फुन्नीरेके
माकिर मघा उतरता है । हम पैगिक चर्बुद कहते
हैं । किमी किमी मनुष्यके कपाल एवं शरीरके
पथव्या म्यानमें धर्म धर्म पर एविसलियम् अमकर
भेड़के छोटे भीग-जेमा चर्बुद उठता है ।

चक्रुदाकार (सं० पु०) चक्रुदाकार, चालतेका धिड़ ।
चक्रुदात्रि (सं० पु०) मियुष्टी, मेढ़ामोमी ।
चक्रुदि (सं० पु०) चर्बुद दवाचरति, चक्रुद-
किप-रत्न । १ मय्यथापक ईमान । २ चक्रुद विमोय ।
यह पाकारमें सांघ-जेमा रक्षा । इन्में हम मार
काला घा ।

चक्रुदिम् (सं० वि०) चक्रुदमघ, जो मूत्र गया घा ।
चक्रुद (सं० की०) १ पाह्यवा नामसुद, लगरका धिड़ ।
धर्म (सं० पु०) चक्रुदित मच्छति काल्यं माश्रानि

सुखं वा, ऋ-भन् । १ बालक, बच्चा । २ कुम्भ ।
३ पञ्चजात शिग्रु, पन्द्रह दिनका बच्चा । (त्रि०)
४ चम्प, योड़ा, कम ।

भर्मक (मं० पु०) ऋध्वति वर्धते, ऋधु-भुन् भकार-
यान्तादिगः । भर्मकइरुक् षाका वयसि । उष् १ । ११ ।
१ बालक, बच्चा ।

“वर्मकं चर्मकं दन्त परशु भोर चति भोर ।” (गुणो)

२ मूखे, विचित्र, डेयकूफ, दीवाना । (त्रि०)

३ सूक्ष्म, धारीक । ४ कृग, कमजोर । ५ सदृश,
बराबर ।

भर्मक—कोई प्राचीन संस्कृत कवि । सुभाषितायसीमें
इनका उल्लेख है ।

भर्मग (वै० त्रि०) भर्मं चल्पं गायति, गेगथे टक् ।
बालक, बच्चा ।

भर्मा (सं० स्त्री०) गुग्गुलु ।

भर्माथी—दम्बई प्रान्तके धैलगांव जिलेका एक छोटा
गांव । यह गोकामसे उत्तर दो कोस रायबागकी
सड़कपर बसा है । कहते हैं, सन् १८६१ ई०के समय
यहां एक सुन्दर भवन बना, जिसकी चारो ओर
पामका बाग लगा था । कप्तान मूरने सद्-तरागीकी
बड़ी तारीफ़ की है ।

भर्म (मं० पु०-स्त्री०) ऋध्वति चक्षुधम् ऋ-भन् ।
भर्मिइरुक् चक्षुध्वत् चक्षुध्वत् इति चोभा मन् । उष् १ । १० ।
१ नेत्ररोगविशेष ।

भर्मरोग (Pterygium) पाँव प्रकारका होता
है । यथा,—प्रसारी भर्म, शुक्र भर्म, रक्त भर्म, मांस
भर्म एवं स्नायु भर्म ।

पाँवकी सफेद जगह पर एक तरहका पतला
चमड़ा चढ़ जाता है । साधारण बोलचालमें इसे
नाखूना कहते हैं । यह चमड़ा नाकके निकटवर्ती
चक्षुकोषमें लीकर प्रायः सब जगह विकसित हो
जाता है । एलोपाथीमतमें भिन्नो जैत पतले मांसे
की प्रसारी भर्म (membranous) कहते हैं ।
परन्तु यही नाखूना मोटा हो जानेपर मांस भर्म
(fleshy) कहता है । ऊपर लिखे अनुसार
वेद्योंने इसे पाँव प्रकारमें विभक्त किया है ।

१ । नाखूना यदि पतला, फेना हुआ, हलका
नीला ओर कुछ सांसी नियो होता, तो उसे प्रसारीमें
कहते हैं ।

२ । नाखूना यदि कुछ सफेद ओर कोमल रहता,
तो वह शुक्रार्म कहा जाता है ।

३ । नाखूना यदि कठमके फूलकी पत्रों
तरह कुछ सांसी ओर कोमल होता, तो उसका नाम
रक्तार्म है ।

४ । धूस कोमल, पतले तथा यज्ञकी तरह
वर्णयुक्त नाखूनीको मांसार्म कहते हैं ।

५ । कठिन, शुक्रवर्ण, बहुमांसयुक्त एवं प्रसारी
भर्मने उल्लेख नाखूनीका नाम स्नायु भर्म है ।

इस रोगपर वैद्य लोग पाँवमें मगानेके लिये पन्द्र-
प्रभावती, मयनसुखावती आदि औषधकी व्यवस्था
करते एवं त्रिफलाद्यत घानिको देते हैं ।

एलोपाथीमतमें प्रथमावस्थापर नेत्रमें मगानेके
लिये सद्कोषक औषध उत्तम है । १ बूंद
टिंक्चर आयोडिन ओर ४ ग्राम शुक्रार्म-रस एक
साथ मिलाकर पाँवमें डालनेसे बहुत लाभ होता है ।
मांस बढ़कर पाँवकी पुतली पर जानेकी मज्जावना
होनेसे नयन देकर उसे निकाल डालना पड़ता है ।

(स्त्री०) २ शृङ्खलामके पाम एवं गगरादि ।

भर्मक (सं० त्रि०) १ सदीर्घ, सूक्ष्म, तद्र, पतला ।
(स्त्री०) २ सदीर्घता, तद्रो ।

भर्मगांध—मन्दाज प्रान्तके नेमूर जिलेका टिप्पू ओर
चिरागघर । (Light House) यह ८५० ११ ३६
० ओर द्राघि० ८० १० पू० पर अवस्थित है ।
चिरागघरसे पूर्व उत्तर-जन-दिशि ०३ फीट ऊपर
टिप्पू बड़ता, जो पाँच-छः कोसमें देवनेमें जाता है ।
सन् १९२८ ई०को कोरोमण्डल मार्गतरट पर पहली
पंगरेजो बसती पहनेमें भरभूगम मूदलपरने बड़ा
साहाय्य दिया था, छद्मिक नामपर यह स्थान परि-
द्वित किया गया ।

भर्मण (मं० पु०) ऋ वाहुं मन् । १ द्रोण
परिमाण, ३२ मिर । २ कुट्टनावशेष । यह धर्मो-
धारको भारता है । (धर्मपरिमाण)

चर्मन् (मं० स्त्री०) चरुचरि चरुचर्म, च-र्मनिन् ।
 चरुचर्म विभक्त, चरुचर्म कोरे चरुचर्म, विभक्तो ।
 यह पांच प्रकारका होता है,—प्रस्ताचर्म, प्रस्ताचर्म
 रक्षाचर्म, मोक्षचर्म, व्याधुचर्म । चर्म १६५ ।

चर्मन्, चर्मन् १६५ ।

चर्मोर्गि—मध्यप्रदेशके बांदा जिलेका एक नगर । यह
 बांदा महार्ग उत्तर-पूर्व कोरे ४० कोस बाबागढ़ा
 नदीके बायें तरफ पर स्थित है । यहां बहिया मोटा
 कपड़ा, तमर, माड़ी तंगार होती थीर लकड़ो
 मवेगो, मांकेका बघो डाट मगती है ।

चर्म (मं० पुं० स्त्री०) चर्मने मर्मने धननीभाय रोग-
 नाभाव वा, वा मतो कर्मनि यत् । चर्म-चर्मिणोः । ल
 १११०००० । १ रामी, मानिक । २ वैश्य, बनिधा ।
 (ति०) ३ अंत, मटिया, चरुचर्म । ४ पूजनीय, पर-
 शिग पाने काबिन । ५ मत्व, मिय, मघा, प्यारा ।
 ६ जगत्, महरवान् । चर्म १६५ ।

चर्मकारा (वै० स्त्री०) चर्मको पत्रो ।

चर्मपत्रो, चर्मपत्र १६५ ।

चर्मपट्टिका (मं० स्त्री०) चरुचर्म विपुप्रिया ।

चर्मन् (मं० पुं०) चर्म चेत माति मिर्मोति वा,
 चर्म-मा-कर्मिन् । १ शूय, चरुचर्म । २ उत्तर
 कर्णना मत्त । ३ चरुचर्म, चर्मकोका चिड़ ।
 ४ पिप्लवके राजा । ५ यम । ६ चरुचर्मके मध्य
 चादिय विभोय । इनका चरुचर्म वद्व चौर मित्रके
 माय प्रायः होता है । ७ चार्दिक मित्र, दिनी दोस्त,
 अतोडिहा चार ।

चर्ममा, चर्मन् १६५ ।

चर्मन् (वै० पुं०) चर्मन्के, चर्मन् वेदे यत् ।
 १ शूय । २ चार्दिक मित्र, दिनी दोस्त । (ति०)
 ३ चार्दिक, दिनी, निहायत प्यारा ।

चर्मवापो (मं० स्त्री०) चर्मको मर्म, चर्मको
 चौरगका भुक्त ।

चर्मन्—मध्यप्र प्रांतके विचरुचर्मो जिलेका एक
 नगर । यह चर्मा ११° ८' २०" उ० थीर द्रावि-
 ७८° ६' ४०" पू० पर पर स्थित है । यहां पिरान्चूर
 पत्रे उदियचर्मोमके चिपटो-कर्मचरुचर्म के चरुचर्म,

डाकर पर चौर दशरुचर्म वना, चरुचर्म चरुचर्म
 मगता थीर पिरान्चूर तथा चरुचर्मको चर्मा
 मरुचर्म गयी है ।

चर्मो (मं० स्त्री०) १ चरुचर्मो, मानिक ।
 २ चरुचर्मो, चर्मको चौरत ।

चर्मोर्गि—मध्यप्रदेशके धारवाड़ जिलेका दोटागा गांव ।
 यह कोट्टी टापी कोम उत्तर पड़ता है । इसमें
 प्राचीन कलाचिर्वाके तोन मिन्ना-मिन्ना विद्यमान है ।

चर्मोर्गि—मध्यप्रदेशके धारवाड़ जिलेका दोटागा गांव ।
 यह चरुचर्मो टापी कोम उत्तर-पूर्व मगता है ।
 कटवेगर्के मन्दिरमें तोन पायाच-लेख मिन्ना है ।
 यहमें मूर्तिमें दक्षिण स्तम्भपर मन् १००६ ई०
 लिखा है । मन्दिरको चरुचर्म-मिन्नापर मूर्तिमें
 मन् १०८८ ई० अङ्कित है । प्रधान द्वारके सामने
 स्तम्भपर जो तीमरा लेख है, उसकी तारोचर्मा
 कोरे ठिकामा मर्था ।

चर्मट (मं० स्त्री०) भ्रम, चर्मा ।

चर्मच, चर्मच १६५ ।

चर्मती (मं० स्त्री०) १ चरुचर्मा, चोड़ी । २ चरुचर्मा,
 कुटनी ।

चर्मन् (मं० पुं०) चरुचर्मि गच्छति, चरुचर्मो प्रायचर्मा
 चरुचर्मः चरुचर्मि वा, चरुचर्मिन् । १ चोर्टक, चोर्टा ।
 २ मोर्कण परिमाण, छोटा चरुचर्मि । 'चर्मोर्गि' (मं०
 पुं०) ३ मति, चरुचर्म, चोर्टा । ४ चरुचर्मके दग्धमें
 एक चोर्टा । ५ चरुचर्म । (ति०) ६ गमनगोम, तेज-
 रक्तता । ७ चर्मच, चरुचर्म ।

चर्मन् (मं० ति०) चोर्टक महम नाधिकामुक्त,
 चरुचर्मके चोर्टे-जेमी नाक रई ।

चर्मन् (मं० पुं०) चरुचर्मके प्रधान नातमें एक चरुचर्म ।

चर्मन् (वै० ति०) चोर्टक, तेजुरक्तार, चरुचर्म-
 चरुचर्म चरुचर्मना ।

चर्मो, चर्मो १६५ ।

चर्मांक (मं० चर्मा०) चर्मा-चर्म-चर्मा । १ चर्म, चर्म
 चोर्ट । २ चर्म चरुचर्म, चर्म चरुचर्म । ३ चर्म
 चिर्मो, चिर्मो मुक्तते । ४ चरुचर्म, चरुचर्म । ५ चर्मा-
 चोर्ट । ६ चरुचर्म भागमें, चोर्ट । ७ चर्मोच, चरुचर्म ।

शर्वाके (घे० अथ०) समीप, पास ।
 शर्वाक्काल (मं० पु०) शर्वाक् अथः कालः, कर्मधा० । १ शबरकाल, पथात् काल, पिच्छला वल्ल । (त्रि०) २ पथात्कालजात, पोछि पैदा हुआ ।
 शर्वाक्कालिक (सं० त्रि०) आसन्न काल सम्बन्धीय, नय, ज्ञानकी जमानेने तालुक रहनेवाला, नया ।
 शर्वाक्कालिकता (सं० स्त्री०) नवीनता, नयापन, वल्लको ताथीर ।
 शर्वाक्काल (मं० स्त्री०) नदीका सामन्न तट, दरि-येका नज्दीक किनारा ।
 शर्वाक्कामान् (घे० पु०) सोमयाग करनेका तीन दिन ।
 शर्वाक्कस्रोतम् (सं० पु०) शर्वाक् अधोगामिस्रोतो रैतः स्रायो यस्य, बहुव्री० । १ ऊर्ध्वरैता न होनेवाला व्यक्ति, जिसके वीर्य निकल पड़े । शर्वाक् निम्नगामो स्रोतः प्रवाहो यस्य । २ नट, दरया । (त्रि०) शर्वाक् अधोगामिस्रोतो रैतः स्रायो येन । ३ नीचेकी ओर वायं छोड़नेवाला । यह शब्द लिङ्ग एवं योनिका विशेषण होता है ।
 शर्वाग्विल (घे० पु०) शर्वाग्विलो यस्य, बहुव्री० । १ चमस । २ यज्ञका पात्रविशेष । (त्रि०) ३ निष्ठा-मिमुख, जिसके नीचेकी ओर मुँह रहै ।
 शर्वाग्वसु (घे० पु०) शर्वाक् मध्ये वसु जलरूपं धनं यस्य, बहुव्री० । १ मेघ, बादल । (त्रि०) २ धन प्रदान करनेवाला, जो दीक्षत दे रहा हो ।
 शर्वाच् (सं० त्रि०) शर्वन् श्वभं अश्वति प्राप्नोति, शर्वन्-अश्व-किन् अश्नाति; तस्य लुक् । १ पथात् कालवर्त्ती, पिच्छली वल्लवाला । २ आधुनिक, नूतन, नया । ३ अश्व, नादान् । (अथ०) शर्वाग्देशे देशात् देशो शर्वाक् काले कालात् कालो वा, अश्नातिः तस्य लुक् । ४ पथाद् देशसे, पिच्छले मुल्लसे । ५ पथाद् कालसे, पिच्छली वल्ल । ६ मध्यमे, बीचसे । (स्त्री०) डोप । शर्वाक्कनी ।
 शर्वाचीन (मं० त्रि०) शर्वन्तमश्नति, प । १ पथात् काल जात, जो पिच्छली वल्ल, पैदा हो । २ आधुनिक, नूतन, नया । ३ अश्व, नादान् । (अथ०) ४ इम-पाथसे, इस ओर । ५ बह्मि, आगे ।

शर्वाचीनता (सं० स्त्री०) नूतनत्व, नयापन ।
 शर्वाचीनत्व (सं० स्त्री०) शर्वाचीनता ईको ।
 शर्वावत् (घे० त्रि०) शर्वा अथम उत्तर इति यावत् कालः अस्तस्य जन्मकालत्वेन; शर्वन्-मत्तु, मस्य वः न लोपः पू० दीर्घप । १ शर्वाचीन, नया । (स्त्री०) २ शर्वाचीनता, नयापन ।
 शर्वावसु (घे० पु०) शर्वा लक्षण्या अथवा क्रिय-माणोऽश्वमेधयागादिरक्षिन् वा मस्यगुरुपेण वसति, शर्वन्-वस-उ । १ देवताका होयविशेष । २ होम-कर्ता ।
 शर्वा—१ मध्यप्रदेशके शर्वा जिलेको तहसील । यह अक्षा० २०° ४५' एवम् २१° १' १५" उ० पौर द्राधि० ७८° १०' १०" तथा ७८° ४०' पू०के मध्य अवस्थित है । क्षेत्रफल ८७७ वर्गमील निकलेगा । २ मध्य प्रदेशके शर्वा जिलेका शहर । यह अक्षा० २०° ५८' ४५" उ० तथा द्राधि० ७८° १६' १६" पू०पर अवस्थित और शर्वा नगरसे उत्तर-पश्चिम मध्य कोम दूर है । मछाराष्ट्र शासन-समयमें यहां अश्वी परगनेके शासक-ने अपनी कचहरी लगायी । कहते हैं, सत्रा तीन मो वर्ष पहले तेनहू राव यानीने यह शहर मयावा था । तेनहूरायको कोई हिन्दू और कोई मुसलमान बताते हैं । किन्तु उनकी कथको हिन्दू और मुसल-मान दोनों ही पूजते हैं । व्यापारका नाम धूम-घड़ाका क्षेत्र पड़ता है ।
 शर्वाक (सं० पु०) शर्वति हिनस्ति शतृन्, शर्वं हिसिने बाहु० उक्तम् । आटविक दक्षिण दिग्मस्य उपविशेष । सहदेवने दिग्बिजयको ज्ञा इहे जोन किया था ।
 शर्वा (सं० त्रि०) शर्वाति गच्छति प्रायं शीतम्, शर्वा-अच् । १ शर्योल, दुहम । २ पाण्डि, गुनह-गार । (स्त्री०) ३ शानि, तुक्मान् । ४ शर्मारोग, यशमीरकी बीमारी ।
 (अ० पु०) ५ शर्वाक, आममान् । ६ शर्म, जसत ।
 शर्वाकुठाररस (मं० पु०) रमार्द्र । यह रस अर्श-यात्री यशमीर रोगमें हितकर है । इसके यशमीरकी

रोगि दृक् ई—दृक् दाग १ पल, दृक् मन्त्र २ पल, शूल मन्त्र, शूलभोज प्रत्येक १ पल, (मोठ, मिर्च, पीपल) मातृमी, टर्मी, शितक, पुष्कर, प्रत्येक २ पल, यश्यार, टडुप, मैथुन, प्रत्येक २ पल, गोला मूत्र २२ पल, दुधरका दूध ११ पल, इन सब द्रव्योंकी एकत्र करके मृदु-धर्मिमें सब तक घिण्टन हो पकाना चाहिये। मातामें दो माप दिया जाता है। (श्री-रघु-)

दूग्गा—दूग्गा १ पल, दृक् मन्त्र २ पल, शूलभोज २ पल, मत्त मन्त्र २ पल, टर्मी, ब्रायण (मोठ, मिर्च-पीपल) शूर्य, वंशभोजन, टडुग, यश्यार, मैथुन, प्रत्येक १ पल, दुधरका दूध ८ पल, गोमूत्र ३२ पल, इन सब द्रव्योंकी पूर्ववत् पाक करके दो माप बराबर प्रति दिन भोजन करना चाहिये। (श्री-रघु-)

धर्मः सूदन (मं० पु०) दूर्य, जर्मोक्तम् ।

धर्मपादि (मं० पु०) धर्मम् इति शब्द पादियेषाम्, बहुवी० । धर्मं धर्मोत्तमः १७३२२१२२ चम्पार्यके चतुःप्रत्यय निमित्त शब्दसमूहः । इमं निम्नलिखित शब्द समिलित है—धर्मम्, उपमम्, तुम्, चतुर, पक्षित, घटा, वाटा, पप, धर्म, धर्म, लघ्व, धीय, धर्मार्थ, भाय, धर्म, पाहतिगप ।

धर्मोपाय (मं० पु०) धर्मः शुद्ध्याधिः पायो येवाम्, बहुवी० । अतिदायोद्भव रोग समूह, बहु पापं येदा होनेवासे ब्रह्मापीर वर्ग रक्षकी बीमारो ।

धर्मम्, धर्मम् (मं० मी०) चक्षुति प्राप्नोति शुद्धम् च धर्मोत्तमः १७३२२१२२ इत्यमृतम् शुद्ध च दृक् मन्त्र-रोगिणः । शुद्धरोगविशेषः । धर्म रोगके माय-दित्तमें ३८४०० बीड़ी विन्ना उन्के दास बराबर चाँदी वा सोना दास करना पड़ता है ।

धर्मोग (Hemorrhoids) सरलाक्षमें शींसे सम-हारके बाहर और भीतर भी होता है । इममें मूत्रके मूल जैसी छोटी छोटी कणियाँ निकलती हैं । इन कणियोंकी चकती होसोमें मग्ना कहते हैं । किन्तोंके यह मग्ना मलहारमें बाहर, जिमीके भीतर तथा दिपाके बाहर और भीतर दोनों समूह निकलता

है । होल बीदमें धर्मोग चन्द या अधिक हृषिर मित्त करता है । धर्मो कर्मो जलन होनेमें मग्ना शुद्ध चकता और चर्ममें दूषित रग तथा पेश पड़ता है । उम समय रोग कठिन हो जाता है ।

बायकमान वा योवनावस्थामें यह रोग प्रायः जिमीकी नहीं होता । योवनाम शीत जनिपर ही धर्मो रोग पैदा होता है । पुरुषोंकी चपेला दिपाकी यह रोग अधिक मताता है । ब्रभावतः जिनका छोटा माफ नहीं रहता और लो शारीरिक परिश्रम नहीं करता, उमीके धर्मो रोग होनेकी अधिक सम्भावना है । फिर माता पिताके रहनेमें मन्नामकी भी लग सकता है । अतिविरलक शीघ्र शीघ्र जर्म, माना प्रकारका ममाना देकर मत्प्य, मीन, व्यञ्जन पादि मने और सर्वदा शोकमें रहनेमें धर्मो रोग होता है । जिन रोगीमें यक्ष्णकी क्रिया गिणित पड़ जाती, अथवा मलहारमें सुपाकपय रक्त मद्दाभित नहीं होता, उनमें यह रोग लगनेकी पागदा है । येमें पाय पड़ने और गर्भावस्था पानेसे दिगी किमी शोके धर्म हो जाता है ।

धर्मममें धर्म कोई वतन्य नहीं, दूरर रोगका उपमर्ग मात है । सुतराँ इसका मूल कारण दूर करना ही चिकित्साका प्रधान उद्देश्य है । जो शीघ्र ब्रभावमें ही पानभी है, उन्के दासः काल पर मन्ना समय निर्गम मायुमें बहुत देरतक टुहलना चाहिये । उपदृष्ट व्यायाम भी रग रोगके निये बहुत ही पण्डा है । किन्तु ही मने पादमी वरके भीतर कन्धेपर मोह डोवा करते हैं । उमा प्रवाद है, कि धर्मोपर शोभ टोनेमें चन्नाम कठिन धर्म रोग भी पण्डा हो जाता है । विगम पाता, कि व्यायामादिमें यह उद्देश्य मिह हो सकता है । उपने यक्ष्ण और चन्नाका रक्षाधिक्य मितता, ललमदपमें रक्त मद्दाभित होता रहता, मूत्रागयकी अथवा कम पड़ जाती और परिपाक शक्ति बढ़ती है । सुतराँ धर्म रोगका मूल कारण फिर नहीं रह सकता ।

और एक बात पर ध्यान रखना चाहियक है ।

ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे हर रोज सड़क हो कोठा साफ हो छाया करे। मलत्याग करनेके समय जोर देकर न काँखना और सुपथ्य द्वारा रोगीको कोठा साफ रखना चाहिये। बारबार तुलाव लेनेसे पांत तेजहीन हो जाती है। हिन्दुस्थानमें खूब पका हुआ नारियल, पपीता, पालक शाक, मूँगकी दाल, आम एवं दूध आदि सुपथ्य खानेसे हर रोज कोठा साफ हो सकता है। विग्रेय आशयक होनेसे बीच बीचमें हलका तुलाव ले लेना चाहिये। वैद्य शास्त्रके मतमें जमीकन्दमें अर्श रोग दूर हो जाता है।

अवधौत औषधमें कानी घुगियाके मूल अथवा अर्शोकी जड़की तधिके यन्त्रमें रख कर कमरसे बांध लेनेपर कितनी ही का अर्श रोग अच्छा होता देखा गया है। घुघरके दूध साथ थोड़ीसी हल्दी मिलाकर लगाने अथवा घोपाफलका चूर्ण मलनेसे मखा गिर जाता है। कोड़ेका दूध, यहरका दूध, कड़वे कड़का पत्ता, पतिहा करंदिका फल, सब बराबर बराबर ले बकराके दूध साथ पीकर मखेपर लेप चढ़ानेसे उपकार होता है। परन्तु जब किसी तरहके उपायमें फायदा न हो, तब अच्छे डाक्टरसे मखेको कटवा डालना चाहिये।

अर्शस (सं. द्वि०) अर्शो गुदव्याधिरम्प्राप्त्य, अर्शस, अक्षय्ये अक्ष । अर्शोरोगयुक्त, जिसे वयासीरकी बीमारो रहे। 'अर्शोरोगयुक्तः' (अनर) अर्श रोग होनेपर जो व्यक्ति प्रायश्चित्त करनेसे दूर रहता है, उसे किसी वैध धर्म कार्यका अधिकार नहीं होता।

अर्शसान (सं. पु०) ऋष्यति नागयित्वा गच्छति, ऋ-असानश् गुणः शूद्र ष । १ अग्नि, आतिय । 'अर्शसानोऽर्थः' (उल्लसदन) २ मन्देह नामक असुर । (द्वि०) ३ वाधक, शिंसक, चोट पड़नेकी योगिय करनेवाला।

अर्शान् (सं. द्वि०) अर्शमस्त्यस्य इति । अर्शश् अक्षो ।

अर्शो, अर्शश् अक्षो ।

अर्शोद वैग—टीपू सुस्तानके माली हाकिम । सन् १७८४ ई०की इन्होंने मन्दाजके मलवार प्रान्तमें

रैयतवारो नियम चनाया, जिसपर कागदकारकी अपनी पैदायशका पाधसे कुछ व्यादा दिख्य सरकारकी देना पड़ता था ।

अर्शोघ्न (सं. पु०) अर्शो गुदव्याधिं हन्ति ; अर्शम-हन्-क्, उप० ममा० । १ सूर्य, जमीकन्द । २ भस्मातक, भेलावां । ३ सजिंघार, सज्जी मही । ४ तीजवल । ५ अतमर्षय, सफेद मरसी । ६ कटु सूरण, कड़वा जमीकन्द । ७ तक्र विग्रेय, किसी किष्कका मठा । इसमें तीन दिग्गो पानो और एक दिग्गो मठा रहता है । (द्वि०) ८ अर्शोरोगहर, वयासीर मिटानेवाला ।

अर्शोघ्नवर्ग (सं. पु०) अर्श विग्रेय, दयाका कोई जूचीरा । इसमें निम्नलिखित द्रव्य रहते हैं,—कुटज, गिल्ल, नागरा, आतिविया, धन्व्यामक, दाहहरिद्रा, वषा और चय्य । यह वर्ग वयासीरकी दूर करता है ।

अर्शोघ्नवल्कला (सं. स्त्री०) तैजवम ।

अर्शोघ्नी (सं. स्त्री०) १ तालमूली, कानी मूर । २ भस्मातक, भेलावां ।

'अर्शोघ्नी तालमूली नागमोः हस्त्वोऽर्थः च ।' (वि०)

अर्शोज (सं. पु०) भगन्दर राग ।

अर्शोयन्त्र (सं. स्त्री०) यन्त्रविग्रेय, कोई चासा । यह गोस्तनाकार होता और अर्शोरोग देखनेके काम आता है ।

अर्शोयुज्, अर्शश् अक्षो ।

अर्शोरोग (सं. पु०) अर्शश् अक्षो ।

अर्शोरोगयुत, अर्शश् अक्षो ।

अर्शोवर्कन् (सं. स्त्री०) नेत्रवर्कमगत रोग विग्रेय, चाँछकी पन्कका कोई रोग । इसमें चाँछकी पन्क पर ककड़ोके बीज-जैसी, कुछ कुछ दर्द करनेवाली, धिकनी और गर्म जूनी पड़ जाती है। यह रोग सधिपातसे उत्पन्न होता है । (अनर विरज)

अर्शोहरस (सं. पु०) रमविग्रेय । यह वयासीरका दवा देता है। गुडाम्ब, कालाम्ब एवं गन्धकको बराबर से और ताने, पनारके अर्धमें घोट इसे तैयार करते हैं। एक भावा माता पानेसे अर्शोरोग दूर होगा । (हरशार)

सर्गाहित (सं० पु०) सर्गांति तन्मो विताः तत्प्रायः-
सत्त्वं, अ-तत्त्वं । १ भस्मान्त्र, मोक्षार्थी । २ स्यात्,
सर्गाहितम् । (ति०) १ सर्गाहितकर, ब्रह्माभोरभं
प्राददा पदुगानेवासा । सर्गांति पवित्रम्, अ-तत्त्वं ।
४ सर्गांतिगत ब्रह्मदेवासा, त्रिभिः पद्माभोरको ब्रह्माभोरी
हृत्ते ।

सर्पव (सं० स्त्री०) सर्प गतो भावे ष्युट् । १ गमन,
रथगार । सर्पमेजित, करदं ष्युट् । २ गमनसाधन
गृहटाडि, गाडो बगु रश्च सवारो । (ति०) १ गमन-
गोल, पक्षमे विरमेवासा ।

सर्पयो (सं० स्त्री०) भोपय षोड्वा, गहरा दट्टं ।

सर्पम्, सर्पे न ईषोः ।

सर्पा, सर्पा ईषोः ।

सर्पि, सर्पे ईषोः ।

सर्पाकिर—महिषुर राश्वके वृमन त्रिभेका गाव । यद्
सर्पा० १३ १८ ३८ ७० चौर द्राघि० ०१ १०
४१ पूरपर पवस्यित ईः यदां पायाप-मेपरी
पद्मिन मन्दिर बने, जिनमे चातुका-मिष्वके विष्ट वर्त-
मान ईः । होयमन ब्रह्मन श्रुतियेके भी कितने हो
ग्यारक देव पडते ।

सर्पे (सं० पु०) सर्पानं पृथ्वतेः; सर्पं पुरा०
सर्पेति चत् । १ सृति सर्पं नमस्कार प्रभृति दारा
पाराधनीय ईश्वर । २ विष्णु । ३ इन्द्र । ४ पुता,
परशिम । ५ गति, जाल । ६ योग्यत्, काविसियत ।
७ मूख, दाम । ८ सुवर्ष, मोना । (ति०)
९ पूजनीय, परशिम पाने सायज् । १० योग्य,
काविस । ११ मूखवाज्, जोमतो ।

सर्पेव (सं० स्त्री०) सर्पे भावे ष्युट् । १ पूजा,
पारशिम । सर्पेमेजित, करदं ष्युट् । २ सक्ता
साधन इत्य, इत्यत ब्रह्मदेवासा नामान ।

सर्पेवा (सं० स्त्री०) १ पूजा, परशिम । २
सर्पेवा (सं० स्त्री०) १ पूजा, परशिम । २
योग्यताके पदुमा, ठोङ-ठोङ । ३ साधनके
पदुमार, शैवियतके मुवापिङ्क ।

सर्पेवोद (सं० स्त्री०) सर्पेते, सर्पे कर्मणि पनीयत् ।
१ पूजनीय, परशिमके काविस । सर्पेमेजित, करदं

पनीयत् सर्पेते माय् ल वा । २ पूजासाधन, त्रिभिः
किमोको परशिम करे ।

सर्पत् (सं० ति०) सर्पे परांगामं यत् । १ पूज,
पूजने सायज् । २ योग्य, काविस । ३ सर्पांति, सम-
गुर । (पु०) ४ जिनदेव, जेनिदेके देवता ।

जैनमतो—जोवकी इस संगारभं दुःख देनेवाले
प्राणावरण, दर्शनवरण, मोक्षयोग, पत्नाराय, वेदनीय,
पापु, नाम, मोत ये पाठकर्म ईः । इनमेके पहिले चार
कर्मोको धातिया (पाप्याके चमत्प्राण, सर्वप्राण,
पत्नत्प्राण, चमत्प्राण, चमत्प्राणको प्राप्त करने-
वाले) चौर मिय चारको पचातिया कर्म कहते ईः ।
तपके प्रमायभे जिन समय यद् पाप्या धातिया
कर्मोको नट कर देता, उस समय इगके पुर्वीक
चारो गुणोका भाविभाव होता ईः । उसमे सर्व-
मान, भूत, भविष्यत् कालके सम्पूर्ण पदादोको
पाप्या युगपत् ज्ञानता चौर रागदेवविहीन (बीत-
राग) हो जाता ईः । येमे पाप्याको सर्पत् (सर्पत्)
केवली, सर्वप्रा, बीतराग आदि नामोमे पुकारते ईः ।
सर्पत् (केवली) दो प्रकारके होते ई—एक सामान्य,
दूसरे तीर्थहर । तीर्थहर केवलियोके केवलप्राण
होनेमे पहिले गर्भ, जन्म, चौर तपके समय देवता
प्राणमे पाकर उत्पन्न किया करते ईः । फिर
सामान्य केवलियोके केवलप्राण होने समय ही देवता
उत्पन्न करते ईः । जिन समय केवलप्राण होता ई, उस
समय कुपेर इन्द्रको आश्राभि समयमरुत (धर्मममा)
को रचना बनते ईः । उसमे १२ येवी (दर्शा) होती,
जिनमेमे एकमे सुनि, एकमे धारियोका, एकमे भाविका,
एकमे श्रावक, एकमे पद्युपवी, इमे चारो तरहके (भवन-
पामी, धनार, ज्योतिषी, वैमानिक) देव, चौर चारभे
चारो प्रकारको देवाङ्गनाये चेटकर भगवान्का पवित्र
उपदेग चुनते ईः । भगवान्के विराजनेका एक
प्राय स्थान होता, त्रिभिः मन्त्रकुटी कहते ईः । कुपेर
रक्षमय विंदासनवर सुवर्षके कामल रचना ई, भगवान्
उमपर भी चार पद्म पत्नारिय विराजते ईः । देव
उमपर चौर टुरते ई, कण्ठयोके कुलोको चारो
होती ईः । देवीदारा ब्रह्माये नये दुःखि भावोके

शब्दोंसे आकाश पूर्ण हो जाता है। उर्ध्वमय भगवान्के शरीरका तेज एकमात्र उगे हुए अनेक सूर्योंके तेजसे भी अधिक चमकता है। उनके वैसे समयकी विभूति दर्शनीय और अति विशिष्ट है। भगवान्के प्रभावसे चारों तरफ, सौ सौ योजन (चार सौ कोस) तक दुर्भिन्न नहीं पड़ता, परस्पर विरोधी जीव किछीकी किछो प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाते, भगवान्पर किसी तरहका उपसर्ग नहीं उठता, उनको सुधा हवा नहीं लगती, उनके शरीरकी परछाईं नहीं पड़ती, आँखोंके पलक नहीं झपके, क्रोध और नख नहीं बढ़ते। उनका शरीर स्फटिकसा निर्मल रहता है। घातिया कर्मोंके नाश होनेसे भगवान्के ये पतिग्रह प्रकट होते हैं, भगवान्का उपदेश अर्धमासको भाषा में होता है जिसे सब अपनी अपनी भाषा में समझ लेते हैं। समयकरणमें कुत्ता, बिल्ली, सिंह, गाय, साँप, नैवला आदि परस्पर विरोधी जीव भी रहते हैं, परन्तु उन सबमें अर्धमास प्रेम होता है, कोई किसीको कष्ट नहीं देता। भगवान् जहाँ जहाँ विहार करते, वहाँ वहाँ सब ऋतुओंके फल फूल लग जाते हैं। काँचके समान पृथिवी निर्मल देखती है। वायुकुमार देव यह एक योजन (चारकोस) भूमिकी साफ करती हैं। मेघकुमार देव शीतल, मन्द, सुगन्धित जल बरसाते हैं। स्वर्गके देव भगवान्के चरखोंके नीचे सुवर्णके कमलोंकी रचते जाते हैं, सब दिगार्ये स्वच्छ हो जाते हैं। देवतालोग भगवान्का जयकार बोलते हैं, धर्मचक्र भगवान्के आगे चलता है। सब बीहड़ देवकृत पतिग्रह भगवान्को केलसन्धान उत्पन्न होनेसे बनते हैं। भगवान् भूज, व्यास, राग, हंस, लक्ष्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, आशय, निद्रा, यकापट, पक्षोना, घमण्ड, मोह, चरति (अर्हत्) और धिन्ता इन अठारह दोषोंसे रहित और आधिकमय्यकत्व, आधिकचरित, केलसन्धान, केलस-दर्शन, अन्त-दान, अन्तलाभ, अन्तभोग, अन्त उपभोग, और अन्तवीर्यसे शोभायमान होते हैं। इनका पर्याय नीचे लिखते हैं,—अर्हत्, जिन, पारगत,

विकानवित्, सोषाटकर्म, परमेष्ठो, अयोधर, गन्ध, स्वयम्भू, भगवान्, जगत्पुत्र, तीर्थहर, तीर्थकर, जिनेश्वर, वादी, अमयद, सार्ध, सर्वज्ञ, सर्वदेवी, कवनो, देवाधिदेव, बोधद, पुरुषोत्तम, वीतरागात्।

५ बुद्धविद्येय। ६ बौद्धोंके सबसे बड़े पुरोहित।

अर्हत् आचार—काठियावाड़के वमर्भी या वानीष्ट नगरनिवासी प्राचीन महापुरुष। सन ६१० ई०को इन्होंने वानोड नगरसे थोड़े दूर बौद्धविहार बनाया था, जिसमें बोधिमल्य गुणमति और स्थिरमतिने अपने अमणके समय ठहर सुप्रसंगित निबन्ध लिखा।

अर्हत्तम (सं० वि०) पतिग्रह योग्य, सर्वोत्तम, पति पूजनोय, निहायत काविल, सबसे अच्छा।

अर्हन्त (सं० पु०) अर्हत् यादृ० अर्हत्। १ जैन देव, अर्हत्। २ बुद्धविद्येय। ३ बौद्ध साधु। ४ गिव। (वि०)

५ योग्य, लायक।

अर्हत्स्वप्नि (सं० वि०) शत्रुकी हस्तानेनाला, जो दुश्मनको हता देता हो।

अर्हा (सं० स्त्री०) सुरा० अर्हत्-अ टाप् च। १ पूजा, परस्त्रिय। २ दायमाणा जता।

अर्हत् (सं० वि०) अर्हत्-ह। पूजित, परस्त्रिय पाये हुआ।

अर्हत् (सं० वि०) अर्हत्ते; आदि अर्हत्-यत्, सुरा० अर्हत्-स्वत्। १ योग्य, काविल। २ पुण्य, इज्जतदार।

३ अचित, सुनासिद्ध, वाजिब।

अल (सं० स्त्री०) अलति भूपयति वारयति पर्याप्तोति वा, अल-अच्। १ हयिकपुच्छकपटक, बिच्छुकी पूँछका काँटा, डह। २ हरिताल। ३ मनःमिनादि धूमपान। ४ क्लोम। ५ काक, कुन्द।

अलंग (हिं० पु०) पात्र, वस्तु।

अलक (सं० पु०-स्त्री०) अलति भूपयति गुणम्, अल-कृन्। १ काक, कुन्द।

‘अलक इति लोके अलकरहते।’ (दुर्गावतः)

२ अल भान्, पागल कुत्ता।

३ एक प्राचीन संस्कृत पत्रकार। यह अयालकके पुत्र रहे। अलहारमर्त्यक्षमें सबकृष्णने इनका उल्लेख किया है। इन्होंने काव्यरत्नागको परिहर अर्ध्यापने

पुं० उल्लास था। विष्णुपदोद्योत थीर हरविष्णुटीका नामक पुस्तक रचि विने है।

फलकतरा (पं० पु०) पदार्थविद्ये, कौरं चीन। यह पदार्थ जोपला मलाकर मैदार किया जाता है। पदार्थ जोपमैला नैम अथ मयकेमि मिश्रता, अथ जो माटो जोइ बनती, वही फलकतरा होती है। हममें मकड़ीको फलकर रंगते है। कारण, यह जोइके लिये लहर है; दोमक, पुन गगोरथ किर अग मर्ही मजता। हममें किलने ही लमिनामक जोपथ थीर रङ्ग बनाये जाते है।

फलकान (मं० लो०) काक किमल, कुम्ह, रच-मैकी नामत।

फलकान्दा (मं० लो०) नन्दति छादते; नन्द-पत्-टाए, फलका कुवेरपुरी मन्दा पानन्दिता यथा, यद्गुप्तो० पूर्ववदव्य पुंयहायः यदा फलके मिश्रैम-वपामि नन्दते; पत्-टाए, ०-तत्। १ भारतवर्षिय मन्दा। २ सुदमदेमके मद्रुवाल श्रिमेकी नदी। मन्दाकी यह पथान माया हिमालयमें निकल मद्रुवाल श्रिमेके ऊपरो भागमें बहती थीर भारतको पवित नदियोंमें किमोम भी कम नहीं ठहरती। बदरी-नाथ जति समय यामें प्रगल्-प्रगल् हमके किनारे विद्याम सेते है। योनी तथा मरुतानी नदी मिलनेमें यह बहती थीर राहमें विन्दर, नन्दाकिमी एवं मन्दा-किमीका जल पौ सेते है। देवपथामें भागोरयोके संयोगमें हमको ही मन्दा कहने मयते है। हमके किनारे मद्रुवालमें योग्यर सुगोमित है। यहमें हमको बाल्मि भीला निकाला जाता था, किन्तु यह फलक अगरेमें भीमोनि छोड़ दिया। ३ कुमागो, पाठ-दम वर्षकी मद्रुकी।

फलकप्रभा (मं० लो०) फलका पयोमा प्रभा यथा, यद्गुप्तो०। कुवेरपुरी, पसका।

फलकपिप (मं० पु०) फलकाना पूर्वकुलमनामि पिपः १-तत्। १ लक्ष्मणनतक, कामा मिलवर्त। २ बीमकउप, विष्णुपाराथा पित्त। ३ दोनमाम कुल, निदायःनका दरमत्त।

फलकम् (मं० लो०) निष्कपोत्रक, देव्यापदे।

फलकमहेतो (मं० लो०) पिप, प्यार, दुःखता, मादना।

फलकमंरति (मं० लो०) काकडेम पंक्ति, गुम्हका मयता।

फलकमयोरा, पत्त-पं-देवोः।

फलका (मं० लो०) १ कुवेरपुरी। यह हिमालय पर पवणित है। हममें मिश भी रहते है। २ कुमागो, पाठ-दम वर्षकी मद्रुकी। ३ मया, वर्षी।

फलकाधिप (मं० पु०) फलकाया अधिपः यामो, १-तत्। कुवेर।

फलकाधिपति, पत्त-पं-देवोः।

फलकानन्दा—मन्दाके नवदीवाधिपति राजा लक्ष्मणन रायका स्थापित कुम्ह विनेय। यह नवदीवा कीरे एक कोम दूर मन्दाके भीचे बना है। यहमें हमके पाम मन्दा रहीं, हमोमें लक्ष्मणन राजाने कुम्ह किनारे एक कुटीर थीर किलने ही देवमूर्ति स्थापित करायी थी। यहाकी हरिहर मूर्ति पति मनोहर है। हमका एक भाग मादे पत्तर थीर दूगारा कमीटीमें मैदार पुषा है। फलकानन्दा कुम्हके पलमें रहनेयाने मिशका नाम जंमयाहन है। कौरं-कौरं अथे जंमयदन भी कहता है। मिशमूर्ति बाए मझोने अलके भीतर ही रहती, ऊपल यद्गुप्तयुवाके समय संख्यामें बाएर निकामता है। यद्गुप्त-पुषा पुरी जति वेगाग सामके पक्षमें ही दिन किर मिश मूर्ति जलमें दूया दी जाती है।

फलकानल (मं० पु०) काकडेमकी सीमा, गुम्हका मिरा।

फलकापति, पत्त-पं-देवोः।

फलकापुरी—उद्गोमा मानस्य पुरोके अगवाम मन्दि-की एक गुहा। यह ही मंजिला बनी है। ऊपर एक बड़ा थीर भीचे ही छोटा जगाम मिलता है। यह हममें लडा मिहगमदार हल थीर बरामदा र्थिया है। फलकागें देगकर मम मोहित हो जाता है। अगुप्कोय म्हाअके बुद्धावर पत्तरके सरदार हीर थीर पादमोके मंरजामे जानवर बैठे है। किरि यथेकी दीवारमीरीपर हाथियोका राजा भी देव

पड़ता। उसके शिरपर दूसरा हाथो हाता तान और तीसरा पट्टा भल रहा है।

फलकायम—वरवरीकी फातिमा जातिके २१ खलीफा। सन् ८२४ ई०में इन्होंने अपने पिता अबीदुल्लाहका उत्तराधिकार पाया था। इनके शासनधिकार समय यकीद इब्र कोदतने ही सिर्फ बलवा उठाया। यह बीस वर्ष राज्य चला सन् ८४५ ई०की खर्गशासी हुए थे। अन्तको इनके पुत्र इब्नाइल फल मन्घूर खलीफा बने।

फलकायम बिल्लह—अब्बास बंशके २८वें खलीफा। इनका उपनाम अबुजफर अबदुल्लाह रहा। सन १०११ ई०की बगदादमें इन्होंने अपने पिता कादिर-बिल्लहका उत्तराधिकार पाया और ४४ चान्द्र वत्सर ८ मास तक राज्य किया। सन १००५ ई०की इनके गतायु होने पर सुलतान मलिक शाह सल्जूकी सिंहासनारुढ़ हुए थे। इन्होंने अपने प्रधान मन्त्री निजामुलमुस्तका मददका बगदाद भेज फलकायमके पीछे अन्त मुकुतदीकी राज्यका उत्तराधिकारी बना दिया।

फलकाहिर बिल्लह—ईरानी अब्बासी जातिके १८वें खलीफा। यह मोतजिद बिल्लहके सड़के रहे, सन् ८३२ ई०के अगोबर मास अपने भाई अन्तमुकुतदिरकी जगह बगदादमें सिंहासनारुढ़ हुए। इन्होंने सिर्फ एक वर्ष पांच महीने और इक्कीस रोज ही हुकूमत की थी, कि इब्र मल्ल, बजौरने सन् ८२४ ई०की २३ वीं अग्रेस्त बुधवारकी जन्तरी मोहरेकी सलाईसे इनकी पाँच फीट मुकुतदिरके सड़के फलराजी बिल्लहको गद्दीपर बैठा दिया। कहते हैं, फिर एक मर इन्हें बगदादकी मसजिदमें भीष मांग दिन काटना पड़ा था।

फलकाहय (स० पु०) कटुनिम्ब, कड़वी नीम।

फलह (स० पु०) नास्ति रक्तः सोहितवर्षो यष्मात्, ५ बह्वी०। साधा, साख, लाह। यहाँ रके स्थानमें विकल्पसे लकार हो गया है, पक्षमें धरह रूप भी होता है।

पीपल, पाकर, पनाय प्रथति नामा प्रकारके हथौकी पतली पतली छानियोंके पक्षभागमें एक किष्क्रे पराङ्गुष्ट कीड़े पैदा होते हैं। इस

जातिके कीड़ोंका पक्षभाग सूख रहता, उसीमें ये सब पेड़का रस चूस लेते हैं। प्रोदायस्थानमें नरोंके चार पंख निकलते हैं। दो पंख शरीरकी दाहिनी ओर रहते और दो बाईं ओर। दोनों ओरके भागके पर पतले और सूच्छ रहते हैं। फिर दोहके सौंधे और मोटे होते हैं। मादोनोंके पर नहीं होते। मादोने नर प्रायः दूना बड़ा होता है। अनेक मनुष्योंने विशेष परीक्षा करके देखा है, कि एक एक नरके पास कमसे कम पाँच हजार मादोने रहते हैं। इसलिये नरोंकी संख्या बहुत ही कम होती है।

यह कीड़ा पेड़की कोमल छालको छेद कर उसमें घुस जाता, फिर उसी छिदमें पेड़का रस और दूध निकलता है। उसी रसको कीड़े खाते हैं। धीरे धीरे यह दूध फूल और भोजकर खाँसा हो जाता है। तब सब छसमें घास करती है। मादोने अण्डा देनेके बाद मर जाती है। अण्डोंके फूट जानेपर नन्हे नन्हे बच्चे मरे हुए कीड़ोंके शरीरोंके कोषोंमें घास करते हैं। ऐसे ही समय मायाकीपके भीतर लाल रङ्ग पैदा होता है। किसी पेड़में एकबार नाह लगनेसे धीरे धीरे वह सारे पेड़ोंमें फैल जाती है। छानिदानाकी तरह नाह कीड़ोंके शरीरका रङ्ग नहीं होता। रासायनिक परीक्षा द्वारा यह नियत हुआ है, कि साहके कीड़े पेड़के रसमें ऐसे रङ्गका द्रव्य उत्पन्न करते हैं। इसके मिया यह भी देखा जाता है, कि पेड़का रस साहके कीड़ोंके पानेकी सामग्री है। कारण साह निकालकर गोधु हो सब कौटोंकी मार न छालनेसे ये भीतरके रसकी खा छानते हैं, इसलिये अच्छा रङ्ग पैदा नहीं होता। अनेक ही कहते हैं, कि मादोनेकी देखते एक किष्क्रे गुमावे रङ्गका रस निकलता है। पेड़के दूधके साथ मिस्र-कार मही साधारण हो जाता है।

श्याम, चामाम और बह्रदेगमें वं; पक्षिक नाह पैदा होती है। बह्रदेगमें सानभरमें दो बार नाह उत्पन्न होती है; एक बार वेग्राह और अन्धमें और एकबार कार्तिके और अग्रहायणमें। जिन पतली

के दांत, पक्षीके पर, पशुकी पूंछ, उन लोगोंकी सभा-
वना है। फिर मध्य लोग काठ, कांच, पत्थर, वस्त्र
आदि नाना प्रकारके द्रव्योंसे घरकी मजते हैं। उन
सब द्रव्योंमें कितनी ही प्रकारकी विचित्र चित्रकारी
रहती है। उनके अङ्गके फलदार भी मनोहर होते
हैं। मोना, चांदी, मोती, मणि, विचित्र वस्त्र प्रभृतिसे
वे लोग अङ्गको मजते हैं।

अति प्राचीन काल ही भारतवर्षमें नाना प्रकारके
बहुमूर्त्य फलदारोंका चलन हुआ था। यह देश
उष्णप्रधान है, इसलिये सर्वाङ्गकी वस्त्रमें टक रखने-
की आवश्यकता नहीं होती, सर्वाङ्गमें आभरण
पहननेका श्रद्ध सुभीता पड़ता है। परान्त देवमन्दिरों-
में जो मठ स्तूपियां खुदी हुई हैं, उनमें अनेक प्रकारके
फलदार देखे जाते हैं। उगनीमें चंगूठी, गलेमें
मोतीकी मासा, हाथमें कढ़ण, कानमें कुण्डल—घोर
कितने नाम लें। प्राचीन संस्कृत पुस्तकोंमें अनेक
प्रकार फलदारके नाम हैं। देवत्वधके समय देवता-
ओंने नाना प्रकारके फलदारोंसे देवीकी विभूषित
किया था। शकुन्तलाकी प्रतिग्रह जानेके समय
अच्छ अच्छे वस्त्र आभूषण पहनने थे। परन्तु
अनसूया और प्रियव्रदा वनवासिनी थीं। वे चिर-
कालसे धनमें रहें, अतएव भूषण पहनाना जानती
न थीं। तथापि चित्रपटमें यह देखकर, कहां
कौन फलदार था, उन लोगोंने सखी शकुन्तलाकी
माज दिया। संस्कृत भाषाके मानमोक्षाम, अमर,
हमचन्द्र प्रभृति पुस्तकोंमें भी फलदारका विशेष
विवरण है। इसीसे मालूम होता है, कि अति-
प्राचीन काल भी इस देशमें बहुमूर्त्य वस्त्रालदारका
विशेष चलन था। संस्कृत पुस्तकोंमें इन सब फल-
दारोंका विवरण है,—

१। मस्तकके फलदार—माल्य, गर्भक, लनामक,
पापीड़, वानपाश्या, पारितय्या, हंसतिलक, दण्डक,
चूडामण्डन, च्छिंकालम्बन, सुकुट।

माल्य—इसका दूसरा नाम मासा वा सूक्ष् है।
स्त्रियां फूलोंकी मासा गूँथकर जुड़ेमें बांधती है।

गर्भक—इसका दूसरा नाम प्रभटक है। कोई

कोई कहता, कि यह जुड़ेकी मासा विशेष है। किन्ती-
के मतानुसार यह पाञ्चकलनी पुण्ड्रीटार सूक्ष्-जैसा
एक प्रकारका कांटा होता है। स्त्रियां इसे जुड़ेमें खोम
देती थीं। अमरकी टीकामें मङ्गलने लिखा है, कि
बाजोंके बोधमें जो मासा पहनी जाती, उसका
नाम गर्भक और गिच्छामे जो मासा लटकती रहती
है, उसे प्रभटक कहते हैं। “इदमप्ये इति नामा मन्त्र
इत्युच्यते। यन्माल्यं विद्यायां मन्त्रमात्रं तन् प्रभटकम्”।

लनामक—अमरकीपमें यह फलदार भी एक
प्रकारकी मानामें गिना गया है। इसकी जमीनपर
तोन धारी सीधे मोतीके पत्ते, बीचमें मधिमय चांद,
जिमकी दोनों ओर जड़े हुए रत्न ओर नाचे मोतीकी
भावर रहती है। देखनेमें यह ल्यादातर बेदी जैसा
होता है। स्त्रियां इसे मस्तकके सामने पहनती हैं। इस
फलदारकी दोनों ओर ओर मध्यस्थमके चांदका ऊपरी
भाग जुड़ेमें लगा रहता है। इसके मोतीकी भावर
मलाटपर लटकती, इसीसे इसे लनामक या भूमङ्क
कहते हैं।

“उरोक्त्वं लनापदक्यं चित्रं लनामकम्” (अमर)

पापीड़—इसका दूसरा नाम शंकर है। गिच्छामें
पहननेकी मासाको पापीड़ वा शंकर कहते हैं।

वानपाश्या—मङ्गलके मतमें यह भी मांगका
फलदार है। परन्तु भ्यामी वानमें लगानेकी मोती
मानाकी वानपाश्या कहते हैं।

“सामो तु ध्वजं वानं वनमे सुवाश्रीयामिकाह” (अमर)

पारितय्या—यह फलदार पाञ्चकलनी सेदा है।
यह मानेकी होती। और इसमें रत्न जड़े रहते
हैं। अमरमें अङ्क मतमें वासपाश्या एवं पारितय्या
दोनों एक ही फलदार है।

हंसतिलक—यह मोनाका ओर देखनेमें पीपनके
पत्ते जैसा होता है। इसके बीचमें मधिसुखा जड़े
रहते हैं। स्त्रियां इसे मलाटके ऊपर पहनती हैं।

दण्डक—यह फलदार बाना जैसा होता है।
यह मोतीके पत्तरका बनावत ओर इसपर मोती लड़ा
जाता है। इसमें सुनसुन् मण्ड निकलता है।

चूडामण्डन—दण्डके ऊपरी भागमें मोमाके लिये

गुच्छ—बसोम लड़ीकी मोती-मानाको गुच्छ कहते हैं। “वर्तिमदयदिकी गुच्छः।” (महेवर)

गुच्छार्ध—चीबोम लड़ीके मुक्ताहारका नाम गुच्छार्ध वा अर्धगुच्छ है। “वर्तिमदयदिकी गुच्छार्धः।” (महेवर)

गोस्तन—चीलड़े मुक्ताहारका नाम गोस्तन है। “वर्तिमदयदिकी गोस्तनः।” (महेवर)

अर्धहार—बारह लड़ीके मुक्ताहारको अर्धहार कहते हैं। “वर्तिमदयदिकी अर्धहारः।” (महेवर) किन्तु मतान्तरमें ६५ लड़ीके हारको अर्धहार कहते हैं।

माणवक—बीस लड़ीके मुक्ताहारका नाम माणवक है। “वर्तिमदयदिकी माणवकः।” (महेवर) परन्तु मतान्तरमें २४ लड़ीके मुक्ताहारका माणवक और १२ लड़ीके हारका नाम अर्धमाणवक है।

एकावली—एक लड़ीकी मोती मानाका नाम एकावली है।

नक्षत्रमाला—२० मोतियोंके एकावली हारका नाम नक्षत्रमाला है। “वर्तिमदयदिकी नक्षत्रमालाः।” (महेवर)

भ्रामर—बड़े बड़े मोतियोंका सुन्दर एकावली हार बनाया जाता, मध्यमाकार मोतियोंकी माना भ्रामर है।

“एतन्मुक्ताहरेः शार्था जष्टे त्वेकार्थो रतः।
सन्धुक्ताहरेः कृप्याइषापरं श्वेतवचसम्।” (मानवोवाच)

नीलनवणिका—यह पाँच, सात अथवा नौ लड़का मुक्ताहार है। इसके अन्तर्गत मनोहर नीलमणि जड़ा रहता है। इसके दाने मोनिके तारमें गुँथे जाते हैं। फिर एकके बाद दूसरे दानेको क्रमशः छोटा रख भव तारके अन्तर्गतकी एक अण्डा मिलाकर बांध देना जाता है। बांधकर सम-पर इन्द्रनील मणि जड़ा जाता है। इसकी प्रत्येक लड़ीके मध्यमें मोलकान्त मणिकी धुकधुकी लटकता रहती है। इसे हारका नाम नीलनवणिका है।

वर्षसर—नीलनवणिका ऊँचा मुक्ताहार गुंथकर उसमें इन्द्रमणि एवं नीलमणि लगा देनेसे उसे वर्षसर कहते हैं।

मरिका—गनेमें ठीक घंटेने भावज्ज नौ वा दस मोतीके हारकी मरिका कहते हैं।

वध्यमद्वयिका—मरिका-हारके बाहर नोनकान्त-मणिका गुच्छा लगायेने उसे वध्यमद्वयिका कहते हैं। वैकथिक—गनेमें जो माना यज्ञोपवीतको तरह टटो होकर वध्यमनके ऊपर था पडती है, उसे वैकथिक कहते हैं।

४। पदक एवं बन्धूक ये दोनों वध्यमनके पनहार हैं। पदक कई तरहका होता है। इस पनहारका भाज भी भव अण्डा बनन है। यह मोनिके अन्तर्गत या घटकोने फून वा पत्रके आधारका बनता है। वहुमूल्य पदक देवनेमें पत्र जैसा होता है। उसके किनारे किनारे चौर बीचमें हीरकादि जड़े रहते हैं। रत्नरत्नमें लटकाकर वध्यमनपर जो पदक धारण किया जाता है, उसे बन्धूक कहते हैं।

५। केशर, पञ्चका, कटक, पनय, शूड एवं कङ्कण—ये सब बाहुके अलङ्कार हैं।

केशर—पनल जैसा रत्नअक्षित बाधमुँह कड़ेकी के यूर कहते हैं। यह बाहुमें पहना जाता है। हिन्दुम्यानेमें इसे वाञ्छवन्द कहते हैं। केशरका दूसरा नाम पञ्च है। मतान्तरसे केशरमें भन्ना न रहनेमें उसे ही पञ्च कहते हैं।

‘वृषदेवमर्षित्वसमुत्तान्तनवन्दम्’ (वृषदेव)

पञ्चका—मोने पादिके वने हुए विविध धाकारके अलग अलग दानाको एकत्र गुंथ देनेसे उसे पञ्चका कहते हैं। इसका हिन्दुम्याने नाम पञ्चुंही है।

कटक—रत्नअक्षित मोनिके पत्रका नाम कटक है। पनय—हिन्दुम्यानेमें इसे कड़ा कहते हैं। यह पनेक प्रकारका होता है। गुरोव पादमो सीमे, पीतल और चाँदाके कड़े पहनते हैं। मध्यम श्रेणीवाये मोनिका कड़ा बनाते और धनी लोग उसमें मोमाकारो कराकर अनेक प्रकारके हीरकादि जडाते हैं। हाथके कर्णोंमें कड़ा पहना जाता है। वहुदेवमें इसे केशर शिखा, परन्तु संयुक्तान्त, पञ्चाव पादिके हीपुत्रव दोनों ही पहनते हैं। यह गहना मोल होता है। अर्धे कड़ेकी दोनों चौर बाध, तिँह या साँपके मुँह बने रहते हैं।

सोनेकी बनाई जाती है। इसके भीतर लकड़ रहता, इसीसे चलनेके समय बजती है।

मुद्रिका—यह रत्नकी बनी, चौड़ी और लान रहती है। चलनेके समय यह भी बजती है।

नूपुर—यह सोनेका बनता, और इसमें नाना प्रकारके रत्न जड़े रहते हैं। एडीके दोहेसे लंग-नोको जड़तक घेर रहता है। इसके भीतर भी लकड़ रहता, इसीसे चलनेके वक्त इससे भी शब्द निकलता है। भाजकल गृहस्थकी स्त्रियां नूपुर नहीं पहनतीं। नाचनेवाली ही नाचनेके समय इसे पहन लेती हैं।

मनुष्यकी पादिम पचस्यामें सोना चांदी या मणिमुक्ता नहीं थे। यदि कहीं किमोके यहाँ ये सब रत्न रहते भी, तो उस समय लोग इनका व्यवहार और धादर न करते थे। इसीसे प्रथमावस्थामें मनुष्य पस्वि प्रभृतिके फलहार प्रयुक्त करते थे। धातुओंमें सोहा ही पहले मनुष्यके व्यवहारमें आया है। अब भी देखा जाता है, कि पर्वतके पश्चिम और पश्चिमिधत पादमी चाँद और कुछ भी न जाने, पर खानिसे सोहा निकालकर पत्र धादि बना लेते हैं। इसीसे मानस होता है, हमारे देशके पादमी सबसे पहले शह और सोहेके गहने बना सके थे। इसीलिये इन दोनों गहनोंकी पश्तक इतनी मर्यादा है। स्त्रियां चाँद जितना बहुमूल्य फलहार क्यों न पहने हों, परन्तु हाथमें सोहा पचस्य रहना चाहिये। सोहा न रहनेसे पतिके लिये बहुत पमद्वल समझा जाता है। शह पहननेकी प्रथा दिन दिन ठठती जाती है। परन्तु इन फलहारको इस समय भी जो स्त्रियां पहनतीं, ये इसका विगैध धादर करती हैं। शहकी चड़ी पहननेके समय उसपर सिन्दूर, दूब और धान चढ़ाकर सम्मान करना पड़ता है। इसके सिवा चूड़ि हारिनकी एकबार खिजा भी देती हैं। इससे साफ, ही मालूम होता है, कि सोहा और शह ही हम लोगके देशका प्रथम फलहार था।

अब बह, विहार, संयुक्तप्रान्तादि स्थानमें नाना प्रकारके फलहारका चमन हो गया है। . ४०१० वर्ष

पहले इस देशकी स्त्रियांका गिरोमूयच कुछ भी न था। केवल धालक, बालिका और युवतियां चूड़ा बांधकर उसमें बड़ी बड़ी पुष्पी लगा देती थीं। पुष्पीका आकार मल्लिका फूलकी फलीके समान रहता, परन्तु यह लहने भी कुछ मोटी और बड़ी होती, पच-स्यानुमार पुष्पी मोने और चाँदीकी बनायी जाती थी। पच भी हिन्दुस्थानके नाना स्थानोंमें पुष्पीका चमन है और कितनी ही स्त्रियां केशनिन्यास करके लहने शेषभागमें फूल जैसी एक बड़ी भी पुष्पी बांध देती हैं।

अब बहान और संयुक्तप्रान्तकी स्त्रियोंके गिरके कितने ही प्रकारके फलहार हो गये हैं। बालिका और युवतियां मांगमें कौंधी गहना पहनती हैं। इसका आकार टोक सीमन्तकी तरह होता है। यह कानके ऊपरमें गिरके मध्यस्थ तक तक होकर आता है। इसकी जमीन सोनेकी होती है। बीच बीचमें रत्न जड़े रहते हैं। मीचकी और किनारे-किनारे मोतीकी भांशर लगती है। बीचमें सगाई हुई हुक्-धुको कपालपर था लटकती है। ऊपरकी ओर एक पेटी चूहेसे बंधो रहती है।

नटमें बांधनेके लिये चाँदी वा सोनेकी त्रिचोर रहती है। जूहेमें लगानेके लिये पुष्पीदार नाना-प्रकारके फूल, तितलियां, लरीका गोटा और फोता होता है। इनके सिवा गिरके और अधिरु फलहार नहीं देखे जाते।

मालूम होता है, प्राचीन काल भारतवर्षमें नाकका फलहार न था। पमरादिकी पुस्तकोंमें इसका उल्लेख नहीं है। नय, शिपर, बुमाक, बुम्दा प्रभृति नाकके फलहार लहने चने हैं—यह कदा नहीं ला सकता। नय सोनेके गोलाकार तारका बनता है। इसको एक ओर बंधीको तरह एक प्रकारका टिंदा काँटा रहता और दूसरी ओर इस काँटिकी फंसानेके लिये एक बंद रखकर तारके कुछ चंगकी मदमें लपेट देना पड़ता है। इसीसे बंदकी तरह दूसरी ओरसे मोटी हो जाती है। इस मोटी ओर लोग पचनी पचस्याके पनुसार मूंगा वा मोती लगा देते हैं। उससे बाद नदके बीचमें

‘सुननेमें’ मोठा लगता है, यह ज्ञान मनुष्यके मनमें पड़ने उदय हुआ था ।

परन्तु केवल सुननेमें मोठा लगनेसे ही वाक्य सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं होता, मनमें भी कुछ सुभना चाहिये । अतएव भावका रचना आवश्यक है । किन्तु अत्यन्त घमभ्य अवस्थामें मनुष्य गूढ़ भाव नहीं ला सकता, इसलिये कुछ कुछ प्रहेलिका धारण करनी पड़ती । फिर इन सब गुणोंमें साजिश होकर काव्यरूप धारण किया । यथायै भावमय्यस काव्य, न तो अत्यन्त घमभ्य अवस्थाको सम्पत्ति है, और न तो अत्यन्त सभ्यममाज ही में इसका विकास है । जिस समय मनुष्य प्रथम गिञ्चित होता और उसका हृदय उदार एवं कोमल रहता, उसी समय कविता सुन्दरीकी मधुर सुरली सुननेमें आती है ।

काव्यका अलङ्कार दो प्रकार है,—शब्द एवं अर्थघटित । शब्दालङ्कारसे कानकी सुप्त मिलता और अर्थालङ्कारसे हृदय पुलकित होता है । अनुप्रास, यमक एवं कर्तृणादि रसोंमें अल्प और दीर्घ-प्राणादि वर्णविन्यास करनेसे कविता सुननेमें मधुर लगती है । रसोंको शब्दालङ्कार कहते हैं । इसके अतिरिक्त कवि लोग अनेक प्रकारके कौशलसे शब्दोंको सजकर कविता रचते हैं, अर्धभ्रम जिसका एक उदाहरण है । यह भी शब्दालङ्कार कहा जाता है । जिसमें अर्थका समस्कार रहता है, उसे ही अर्थालङ्कार कहते हैं ।

काव्यमें मोचे लिखे हुए अलङ्कारोंका व्यवहार अधिक देखनेमें आता है ।

अतिशयोक्ति, अधिक, अन्वय, अनुकूल, अपगुण, अनुज्ञा, अनुप्रास, अनुमान, अन्यान्य, अपहृति, अपस्तुत-प्रशंसा, अमिधाईतु, अर्थान्तरन्यास, अर्थोपपत्ति, अल्प, अवज्ञानहृति, अमहृति, अमदर्शनदर्शना, असम्भव, आह्वित्तिदीपक, आक्षेप, उत्प्रेषा, उत्तर, उदात्त, उपमा, उपमेयोपमा, उज्ज्वल, उल्लेख, एकावली । कारकदीपक, कारणमात्रा, काव्यनिष्ठ, चित्र, कल्प, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टान्त, निदर्शना, निश्क्ति, परिकर, परिकराद्भर, परिचाम, परिहृति,

परिसंख्या, पर्याय, पर्यायोक्ति, विहित, पुनरुक्तवदाभास, पूर्वरूप, प्रतिवस्तुपमा, प्रतिषेध, प्रतीप, प्रत्यनामक, प्रस्तुताद्भर, प्रहर्षण, प्रौढोक्ति, भाविक, भावसमावेश, भ्रान्तिमान्, मुद्रा, यमक, युक्ति, रत्नानुबो, रूपक, ललित, लेख, विकल्प, विशिष्ट, विधि, विभावना, विरोध, विरोधाभास विगेष, विगेषोक्ति, विषम, विषादान, व्याघात, व्याञ्जनिन्दा, व्याञ्जमुक्ति, व्याप्पोक्ति, व्यतिरेक, श्लेष, सन्देह, सम, समाधि, समामोक्ति, समुच्चय, मन्भावना, सामान्य, सार, सूत्र, स्तोकोक्ति, स्मृतिमान्, स्वभावोक्ति, हेतु, हेतुपद्धति इत्यादि अलङ्कार अलङ्कार । तत्तन्मन्में विवरण देखो ।

४ साहित्यविषयक दोषगुण-प्रतिपादक साध्या-विगेष । ५ सरसती कण्ठाभरण, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण प्रभृति ।

अलङ्कारक (सं० पु०) भूयण, शृङ्गार, श्लेष, सजावट ।

अलङ्कारवत् (सं० त्रि०) अलङ्कृत, सजा हुआ ।

अलङ्कारसुवर्ण (सं० स्त्री०) शृङ्गीकनक, श्लेष बनानेका सोना ।

अलङ्काररत्न (सं० पु०) बौद्ध मतानुसार—ध्यान विगेष ।

अलङ्कारहोन (सं० त्रि०) भूयपरहित, श्लेषरसे श्यामी, लो गहने न पहने हो ।

अलङ्कारि (सं० त्रि०) अल्पपर्याय कुमार्ये अति-वाङ्मताकन्याभरणाय । अतिवाङ्मता कन्यासे भरण-पोषणका उपयोगी, जो लारो मङ्गुकी परवरिण करने कावित हो । यह शब्द घन प्रभृतिका विगेषण होता है ।

अलङ्कृत (सं० त्रि०) अलङ्कृत कर्मणि ल । १ भूयित, आराम्ना । २ मनन, लो तैयार हो गया हो ।

अलङ्कृति (सं० स्त्री०) अलङ्कृत भावे त्रिन् । १ अलङ्कार, भूयण, श्लेष, गहना । करणे त्रिन् । २ काव्यका उपमादि अलङ्कार, शायरीकी तन्मन्त्रोद्यय विमृश ।

अलङ्किया (सं० स्त्री०) अलङ्कृत-ग । भूयित-कारण, भूया, मात्र, सजावट ।

एक लटकन लगा रहता है। नाकको बार्दें पोर नय पहना जाता है। हिन्दुस्थानका नय बहुत बड़ा पोर भारो होता है। उसे नाकमें पहने रहना कठिन है।

नक्षत्ररका गढ़न प्रति मामान्य है। यह पतले तारकी बनाई जाती है। इसकी एक पोर लपेटकर एक छेद रखना पड़ता; दूसरी पोर कुछ सटी रहती; उसीमें यह बांध दी जाती है। लड़कियां नाककी बार्दें पोर या नाकके दोनों छेदके बीचवाले खंगमें इसे पहनती हैं। बेशर पोर बुलाक दोनों नाकके छेदोंके बीचवाले खंगमें पहनी जाती हैं। बेशरकी बनावट कई तरहकी होती है। मचराचर सोनेके तारमें पईचन्द्राकार पेटोके नीचे छोटी छोटी भालर लगा रहतो है। बुलाकके बीचमें कुन्दकनोकी तरह गोमर पोर एक सुख पतले मोतीके भोतर सोनेका तार पिरोया जाता है। इस तारका नीचेवाला मूँह सटा पोर ऊपरवाले भागसे पटा रहता, वही नाकमें लगाया जाता है।

श्रुतयक्षा श्लोके मस्तान उत्पन्न होनेपर कितनी ही स्त्रियां स्तिकागठहमें जो सम मयःप्रसूत गिराकी नाक दाहिनी पोर छेदकर मोहे, चांदी या सोनेकी बेशर पहना देती हैं। प्रयाद है, उससे गिराकी आवनरचा होती है।

कानके पलहारोंमें बाला, सुरकी, पात, भूमका, कर्णकन, बाली, बिजली प्रभृति पलहार अधिक प्रसिद्ध हैं। इन सबमें आजकल सम्प्रय धरकी स्त्रियां नाना प्रकारके कर्णकन, भूमके पोर बाली ही अधिक व्यवहार करती हैं। कर्णकन प्रभृति गहनोंके पहननेके निये कानके नीचेके भागमें बड़ा छेद करना पड़ता है, इसलिये भले धरकी स्त्रियां प्रायः उन्हें नहीं पहनतीं। इन सब पलहारोंमें कर्णवेधके बाद लड़के कुछ दिनोतक सुरकी पोर बाली पहनते हैं, परन्तु यह प्रया दिन उठती जाती है।

कण्ठमाला, पचनड़ी, मतमड़ी, चार, गोप, बम्पाकली, सुतिया, हंसली, बाहट्टड़ी, यंत्र, पदक, मुस्तामाला प्रभृति गलेके पलहार हैं। इनमें बाह-

ट्टड़ी सीसिका बनता है। यह छोटा पोर गोल होता है। छूत या रोगके तारिमें सूँटकर इसे बर्षोंको पहनाते हैं। प्रयाद है, कि बार्दें ही गलेमें रहने पोर बीच-बीच उसे चूम लेनेसे बर्षोंको कोई रोग नहीं पकड़ता। आजकल इस पलहारकी चलन प्रायः उठ गया है।

बंगला, पहना, पट्टी, लला, चूड़ी, कड़ा, पेरे, बाजू, बन्द, ताबीज़, जोगन, कंगन, रत्नचूड़, पंगूठी, हयफूल, कवच, धनस्त, करपत्र प्रभृति हाथके पलहार हैं। इन सब पलहारोंमें लड़के लड़कियां ताड़, बालुबन्द पोर बाला पहनती हैं। स्त्रीपुरुष सभी पंगूठी पहनते हैं। धनस्त पोर कवच पुरुषोंको भी पहनते देखा जाता है।

चन्द्रहार, सूर्यहार, करधनी, जञ्जीर, बिचे, कमरपेटो, नीमफूल ये सब कमरके पलहार हैं। इनमें यह देगकी इतर जातिके पुरुष भी करधनी पहनते हैं।

बिहिया, धनपट, लला, तोडा, कड़ा, पाजेब, लड़ा, धरपपत्र, घुंघरू—ये सब पैरके पलहार हैं। हिन्दुस्थानकी मध्यान्त स्त्रियां बिहिया-धनपट पहनती हैं। हिन्दू प्रायः पैरमें सोनेके गहने नहीं पहनते। बाण, मणि, सौंख प्रभृति रत्न देखो।

१ वासकका गुण विमोच ।

मुकुट, कैयूर, चार प्रभृति पलहार जिस तरह पद्मोंकी गोभा बढ़ाते पोर देखनेसे नेत्रोंकी धानन्द देते हैं, उसी तरह वासकके भी पलहार हैं। धनहार सुशोभित वासकको सुनने या पढ़नेसे कान पोर मनको धानन्द होता है। वनवासो पदम्भ लोमोंके अच्छे पलहार नहीं हैं। अच्छे अच्छे गहने बनाये लोम पद्मोंकी सजाना नहीं जानते। पहने लोम अच्छे अच्छे पलहारसे भाषाकी सजाना भी न जानते थे। सबसे पहले मामान्य पद्यमें मिलाकर बात कहनेसे ही लोमोंको प्रिय लगता था। यदि कोई हंसो दिग्गो या धानन्दकी बात कहना चाहता, तो वह उसे पद्य ही में कहता था। पश्चर संस्कारा निर्दिष्ट परिभाष पोर वर्षका मेल रहनेसे वास-

सुननेमें मोठा लगता है, यह ज्ञान मनुष्यके मनमें पक्षसे उदय हुआ था।

परन्तु केवल सुननेमें मोठा लगनेसे ही वाक्य सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं होता, मनमें भी कुछ शुभना चाहिये। अतएव भावका रचना आवश्यक है। किन्तु अत्यन्त असभ्य अवस्थामें मनुष्य गूढ़ भाव नहीं ला सकता, इसलिये कुछ कुछ प्रहेलिका पारश्व हुयी। फिर इन सब गुणोंमें मार्जित होकर काव्यरूप धारण किया। यथायं भावसम्पन्न काव्य, न तो अत्यन्त असभ्य अवस्थाको सम्पत्ति है, और न तो अत्यन्त सभ्यसमाज ही में इसका विकास है। जिस समय मनुष्य प्रथम गिञ्चित होता और उसका हृदय उदार एवं कीमल रहता, उसी समय कविता सुन्दरीकी मधुर सुरली सुननेमें आती है।

काव्यका अलङ्कार दो प्रकार है,—शब्द एवं अर्थघटित। शब्दानलङ्कारमें कानको सुख मिलता और अर्थानलङ्कारमें हृदय पुलकित होता है। अनुप्रास, यमक एवं कदथादि रसोंमें अल्प और दीर्घ-प्राथादि वर्णविन्यास करनेमें कविता सुननेमें मधुर लगती है। इसीको शब्दानलङ्कार कहते हैं। इसके अतिरिक्त कवि लोग अनेक प्रकारके कौशलसे शब्दोंको सजकर कविता रचते हैं, अक्षरम जिसका एक उदाहरण है। यह भी शब्दानलङ्कार कहा जाता है। जिसमें अर्थका समत्कार रहता है, उसे ही अर्थानलङ्कार कहते हैं।

काव्यमें नीचे लिखे हुए अलङ्कारोंका व्यवहार अधिक देखनेमें आता है।

अतिशयोक्ति, अधिक, अन्वय, अनुकूल, अपगुण, अनुज्ञा, अनुप्रास, अनुमान, अन्वय, अपह्नुति, अपस्तुन-प्रगंसा, अभिधाहेतु, अर्थान्तरन्यास, अर्थोपत्ति, अल्प, अवप्राप्तद्धति, अस्त्रति, अमदर्यनिदर्शना, अमश्रय, आहत्तिदीपक, आक्षेप, उत्प्रेक्षा, उत्तर, उदात्त, उपमा, उपमेयोपमा, उल्लाम, उल्लेख, एकावली। कारकदीपक, कारणमाना, काव्यनिद्र, चित्र, तद्गुण, तुल्ययोगिता, दीपक, दृष्टान्त, निदर्शना, निरुक्ति, परिकर, परिकराद्भर, परिनाम, परिहृति,

परिसंख्या, पर्याय, पर्यायोक्ति, विचित्र, पुनरुक्तवदाभास, पूर्वकृप, प्रतिवस्तुपमा, प्रतिषेध, प्रतोप, प्रत्यनाक, प्रस्तुताद्भर, प्रहर्यण, प्रौढोक्ति, भाविक, भाषा-समावेश, आत्मिमान्, सुद्रा, यमक, युक्ति, रत्नावली, रूपक, अलित, निग, विकल्प, विचित्र, विधि, विभावना, विरोध, विरोधाभास विगेष, विगेषोक्ति, विग्रह, विषादान, व्याघात, व्याजनिम्दा, व्याजमुक्ति, व्याख्योक्ति, व्यतिरेक, श्रेय, सन्देह, सम, समाधि, समामोक्ति, समुच्चय, सभावना, सामान्य, मार, रूप, स्त्रीकोक्ति, धूमिमान, स्वभावोक्ति, हेतु, हेतुपद्धति, अन्वय, अन्वय-व्यपार। अलङ्कारमें अतिरिक्त शब्दों।

४ माहिल्यविषयक दोषगुण-प्रतिपादक शाब्द-विगेष। ५ सरस्वती कण्ठभरण, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण प्रभृति।

अलङ्कारक (मं० पु०) भूषण, शृङ्गार, ज्वर, सजावट।

अलङ्कारवत् (सं० वि०) अलङ्कृत, सजा हुआ।

अलङ्कारसवर्ण (सं० स्त्री०) शृङ्गीकणक, ज्वर धनानेका सोना।

अलङ्कारर (सं० पु०) बोद्ध मतानुसार—ध्यान विगेष।

अलङ्कारधोन (सं० वि०) भूषणरहित, ज्वरधे पाली, जो गहने न पहने हो।

अलङ्कारि (मं० वि०) अलंकारोंमें कुमायें अति-पाठिताकन्याभरणाय। अतिपाठिता कन्याके भरण-पोषणका उपयोगी, जो कानो मङ्गलकी परवरिण करने काविन हो। यह शब्द धन प्रभृति का विगेष-पण होता है।

अलङ्कृत (सं० वि०) अलङ्कृत कर्मणि क् । १ भूषित, पारास्ता। २ मन्द, जो लेंपार हो गया हो।

अलङ्कृति (सं० स्त्री०) अलङ्कृत भावे क्तिन् । १ अलङ्कार, भूषण, ज्वर, मङ्गल। करके क्तिन् । २ काव्यका उपमादि अलङ्कार, शायरीकी तमशैली या मित्राङ्क।

अलङ्किया (सं० स्त्री०) अलङ्कृत-म। भूषित-करण, भूषा, मार, सजावट।

चलद्दामिन् (सं० त्रि०) चलं पर्याप्तं गन्धति,
चलम्-गन्धं चिनि । १ प्रचुर गमनशील, खूब चलने-
वाला, जो हमेशा चलता हो । २ शब्दोंके प्रति गमन-
शील, दुःखानुको तर्क बदलनेवाला ।

चलद्दाम् (सं० स्त्री०) चलनक्रिय, चलन्यय, चमद्द,
अस्मृतजाविज्ञी, न भाषनेकी हासत ।

चलद्दानीय, चल्दाक्षी ।

चलद्दानीयता, चल्दगदक्षी ।

चलद्द्वय (सं० त्रि०) न चलद्द्वयम्, लक्ष्-ख्यत् ।
चलनिक्रम्य, जो साधने लायक, न हो ।

चलद्द्वयता (सं० स्त्री०) १ चलनिक्रम्यता, जिन
ज्ञानतमें साध न सके । २ गौरवान्वितता, इज्जत-
दारी । ३ अधिकारयुक्त नियम, फर्दे कायदा ।
४ श्रेष्ठता, बहाई ।

चलद्द्वय (त्रि०) चल्दाक्षी ।

चलद्द्वय (सं० पु०) १ पक्षविशेष, कीर्तं विद्धिया ।
(त्रि० वि०) २ निर्दल, शर्म ।

चलद्द्वय (सं० स्त्री०) चला पर्याप्तं सती जायते,
जम-ड गौरा० डीय् । १ प्रमेहपिट्टिकारोग, जिरि-
यानुकी कुम्भीका भाजार । यह रक्त, मित, स्फोट-
वती और दाह्य होती है । (वृहत्) २ नेत्रसन्निभ
रोग, पाँखके जोड़की बीमारी । ३ शूकदोष विशेष ।
जो बीमारी निद्रा बढ़ानेकी दवा समानसे पैदा हो ।

चलद्द्वय (सं० त्रि०) निर्दल, शिष्टया, जिन शर्म न लगे ।

चलद्द्वय (सं० पु०) चलं पर्याप्तं क्षुत्पानि, ज-
चद् । ऊर्ध्वभर, पानी रखनेको महीका बरतन ।

चलद्द्वयिक (सं० त्रि०) चलं पर्याप्तं लीविकाये ।
जीविका निर्वाहकी यष्ट, जो गुजर करनेकी काफी
हो । यह शब्द धनादिका विशेषण है ।

चलद्द्वय (सं० त्रि०) चलं पर्याप्तं क्षुत्पाने, धनम्-
क्षुत्पाने वाद् । कर्मणि क । भक्षण करनेकी पर्याप्त,
शानिके नियं काफी ।

चलद्द्वय (सं० पु०) चल बाहु० चलिच् । गीत
विशेष, कीर्तं जगमह ।

चलद्द्वय—बहालके तांतियों और सुरगिदाबादके कैव-
र्तोंकी एक शाखा ।

चलद्द्वय—वधुके सुमतानुपुर जिलेका परगना ।

कहते हैं, पहले यह परगना भारीके अधिकारमें रहा,
जिनके चन्दे नामक नरेशने गोमतीके वामतटपर
झिला बनाया था, उसीसे परगनेका यह नाम पड़ा ।
कितने ही पुराने किले और टूटे-फटे गढ़र भार
अधिकारके चिन्हस्वरूप विद्यमान हैं । राजकुमा-
रोंका प्रभाव यहाँ फौला, जिनका देरे, भिवापुर, जानामो
और पारसपत्तोमें राज्य है । इस परगनेका क्षेत्र-
फल ३४८ वर्गमोल है । इसमें कितने ही सुखी
और रहते हैं ।

चलन्तम (सं० त्रि०) योग्य पर्याप्त, शक्तिशाली,
नायक, काफी, ताकतवर ।

चलन्तराम (सं० अर्थ०) चलम्—तरप् चासु । अति-
शय, ल्यादातर, बहुत ।

चलन्दी—बम्बईके पूना जिलेका शहर । प्रत्येक वर्ष
कार्तिक कृष्ण एकादशीकी यहाँ प्रानिश्वरके मन्दिरमें
बड़ा मेला लगता और सिर-कर (Poll tose) से
बहुत रूपया घाता है । मन्दिरका प्रथम द्वारः द्वा-
र्योके द्वारमें रहता, जिन्हें अधिनासियोंकी अनुमतिसे
कलकर चुन लेता है । मन्दिरमें तीन द्वार लगा—
चन्दूलाल, सिंधिये और गायकवाड़का दूसरा द्वार
प्रधान और बाजारके सामने है । मन्दिरकी चारो
और जो भिहरावदार परिक्रमा खिंचा उसे चब लोगोंने
अपने निवासका स्थान बना लिया है । मच्छप भी
बड़ा और भिहरावदार है । प्रानिश्वरके समाधिपर
नाम कपड़ेवाले साधुकी मूर्ति बैठी और उसके पीछे
विठोवा तथा सखमायो देवताकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है ।
प्रानिश्वर विष्णुका अवतार समझा जाता और अर्ध-
निंग दोषक जसा करता है । कहते हैं, तीन सौ
वर्ष पहले मन्दिर अम्बेकर देगपांडे, सवा भी वर्ष
पहले मच्छप सिंधियाके दीवान रामचन्द्रराव शेरवे,
परिक्रमा एवं पवित्र भित्ति पेशवा और बरामदा
निजामके दीवान चन्दलालने बनवाया । कीर्तं कः
सौ वर्ष हुए प्रानिश्वर साहूने इस जगमें जन्म लिया
था । इनके माईका निवृत्ति तथा सोपान और बह-
नका नाम सुखा बायी रहा । पिता चेतन्यके शिष्यों-

हीनेसे यह लोग वर्षेभर समझे जाते थे। किन्तु इन्होंने गोदावरी तटस्थ पैठान तीर्थ जाकर ब्राह्मणोंसे अपना संस्कार कराना और कलङ्क छोड़ाना चाहा। पड़ले उन्होंने इनकी बात बिलकुल सुनी न थी। अन्तको ज्ञानेश्वरने जब भैसेसे वेद पढ़ाये और आहमें पितर बुलाये, तब अमत्कार देख यह संस्कार करनेपर मन्मत हुए। ज्ञानेश्वरके अलम्बे वापस आते राहमें वेद पठनेवाला भैसा मरा और उन्होंने उसे ममाधि दे भूसावा नाम रखा था। लुभार ताश्रुकके कोलवाड़ी गांवमें भैसेका समाधि बना, जिसका पूजन चैत्र शुक्ल एकादशीको वड़े ममारोहसे होता है। चन्द्रदेव साधु जब आकाश मार्गसे मिहणपर चट मापका चायुक फटकारते पहुंचे, तब ज्ञानेश्वर किसी दीवार पर बैठ और उसे उडा बहुत कंचे उनसे ज्ञा मिले थे।

अलम्बन (सं० त्रि०) अलं प्रभुतं धनमम्बुद्रव्य, अर्थ आदित्वात् अल् । मम्बुद्रव्यानी, बाफी दौलत रखनेवाला।

अलम्बुम (सं० पु०) अलं पर्याप्तः धूमः । धूममम्बूह, काफी धुवां।

अलप (हिं० वि०) १ अल्प, थोड़ा। (स्त्री०) २ मरणसमय, मौतका वक्त।

अलपत् (सं० त्रि०) भाषण न करती हुआ, ज़मोग, जो बोलता न हो।

अलपतगौनु—बुधवारके प्रधान गिष्टजन। यह मामान ग्राहके समय पुरासानमें शासक-पदपर प्रतिष्ठित रहते। सन् ८६२ ई० की इन्होंने पट छोड़ अपने अनुयायियोंके साथ गुज्जनीकी यात्रा की। अमीर मन्सूर मामानाके सिंहासनाफड़ होनेका विरोध बढ़ाना ही इनके वापस लानेका प्रधान कारण था। इन्होंने अपना छोटा राज्य स्थापित कर गुज्जनीको राजधानी बनाया। सन् ८७१ ई० में इनके भरनेपर राष्ट्रपका अधिकार अबू इसहाक नामक पुत्रको मिला था।

अलपाका (सं० पु०) अमेरिकाका ऊंट। (Alpaca) यह दक्षिण-अमेरिकाके पेड़ प्राक्तमें होता है। इसका बाल लम्बा और मुलायम रहता है। २ अलपाकाका

ऊन। ३ अलपाके, कोरें कपड़ा। यह अलपाका ऊनके साथ रेशम या सूत मिलानेसे बनता और प्रायः काले रङ्गका होता है।

अलफ (सं० पु०) आगेके दोनों पैर उठा विद्यसे पैरोंके बल धोड़का पडा होता।

अलफखान्—दिल्लीके तुर्की बादशाह अनासुद्दीन अलफखीके मीनापति या मिहणशाह। सन् १२८० ई० में इन्होंने गुजराती राजपूतोंको राजधानी पाटनको विध्वंस किया था।

अलफा (सं० पु०) परिच्छेदविशेष, किसी किशकका कुरता। यह बहुत घेरेदार और लम्बा रहता है। बाँह लगाये नहीं जाते। सुमनमान् अकीर इसे अकसर पहना करता है।

अलवही (हिं० स्त्री०) कमर, टेंट, गाँठ।

अलवसा (सं० अर्थ०) १ निःसन्देह, विशुद्ध। २ हाँ, ठीक ठीक, समसुध। ३ परन्तु, लेकिन।

अलवम (फ्रा० Album) चित्र रचनेका पुस्तक, जिस किताबमें तस्वीरें रहें।

अलवेना (हिं० वि०) १ बाँकातिरवा, कैलखीना। २ अलुपम, शिरोह। ३ निहंय, शिरवा, भ्रमता हुआ। (स्त्री०) अलवेनी।

अलवेनापन (हिं० पु०) १ ठाटवाट, चिकनपट। २ अलुपरी, सुघरायो। ३ निर्वैभता शिरवायो, टाल-मटोल।

अलव्य (सं० त्रि०) अमात, हाथ न पाया हुआ, जो मिला न हो।

अलव्यनाय (सं० त्रि०) मित्ररहित, शिरोह, जिसके कोई सहायक न रहे।

अलव्यभूमिशुत्व (सं० स्त्री०) ममाधिको अमागि, जिस ज्ञानतमें ममाधि न पाये।

अलव्याभीक्षित (सं० त्रि०) अमाग, अलम्ब, जिसका दोमना मारे पड़े।

अलव्यमान (सं० त्रि०) माभ न उठाने हुआ, बिदे फायदा न पहुंचे।

अलव्य (सं० त्रि०) दासिने अयोय, जिसे पा न सके।

फलम् (मं० पद्य०) पन्थ बाहू० पन्म । १ भूयित
रुपमे, सजावटमें । २ पर्याप्त प्रकारमें, काफी तौरपर ।
३ वारण करके, रोकते हुए । ४ निरर्थक, बेफायदे ।
५ गतिमें, लचरन् । ६ पतिगय, निहायत । ७ सम्पूर्ण
रुपमें, पूरा-पूरा । ८ प्रचुर, बूब । ९ नहीं, बघ ।
१० गाथाग ।

फलम् (च० पु०) १ पयासाप, पफसोम । २ पताका,
भण्डा ।

फलमनक (चं० Almanac) जन्मी, पन्ना ।

फलमर (हिं० पु०) हृष विमेष, कोर्र पीषा ।

फल मधुदी—प्राचीन सुसन्मान ऐतिहासिक । इन्हीं
जमर बादशाहके भारतमें घुषा करनेका कारण यह
लिखा है, किमो भविष्यकालमें उनसे भारतको पति
दूरस्थ देग और बलवायियोंका घर बसा दिया था ।

फलमस्त (फा० वि०) १ मदीमस्त, मतथाना ।
१ निर्दंष्ट, धिपरवा ।

फलमारी (पोर्तगोत्र Ulmaria शब्दका अपभ्रंश)
किसी किष्कका सन्दूक या पाला । यह लकड़ीकी
बनती है । चीज रखनेके लिये इसमें कई दर रहते
और इसे किषाड़के बन्द करते हैं । पकसर दीवारमें
भी तथ्यता लगाकर यह बना दी जाती है ।

फलमाम (फा० पु०) हीरक, हीरा ।

फल-मुक्तमी-वि-पमरिज्ञाह—पब्बाम वंशके ३१ वें
पुनीफा और फल-मुन्नाजुहरके लड़के । सन् १११८
ई०को यह अपने भतीजे फल-रगोदको जगह गद्दी-
पर बैठे और कीई २४ वत्सर राज्यकर सन् ११६०
ई०को मरे थे । इनके लड़के फल-मुन्नाजदने पीछे
बग्दादकी गृन्नाफत पायो ।

फलमुत्तवद्विम-फल-पज्ञाह—पब्बामवंशके १०वें पुनीफा
और फलमोतमिम-विज्ञाहके लड़के । इनका पहला
नाम फलमुत्तवद्विम जफर रहा । इन्होंने सन् ८४०
ई०को अपने भाई फलमोतमिमका उत्तराधिकार पा
बग्दादमें शुल्ककी धूम उठा दी । भूतपूर्व पुनीफाके
वज्जीरने इनके सिंहामनाहड़ होनेपर पहले भगड़ा
लगाया था, जिससे इन्होंने उधे कई कग और पीछे
गर्म काटोंसे भरो लोहेकी भोमें केकवा बुरे तौरपर

जनाकर मरवा डाला । इनके शासनकाल ईरा-
नियोंमें गुनानियोंके विरुद्ध कई बार विजय पाया
था । यह यहदियों और ईसायियोंको बहुत घृणित
समझते और फटकार देते रहे । किन्तु उनमेंसे ही
इन्हें शान्ति म मिली, इन्होंने मोर्गीका करबला लागू
बन्द और इसन बग्दरह गद्दीदोकी याक जिन
कत्रोंमें रखी थी, उनको बरबाद किया । यह १४
वर्ष ८ मास और ८ दिन राज्य चलाते रहे । सन्
८६१ ई०की २४ वीं दिम्बरकी इनके लड़के फल-
मुन्नामरमें इन्हें मरवा लिनाफतका उत्तराधिकार
अपने हाथ लिया । मयुने इनका गरीर काट मात
टुकड़े कर दिया था ।

फल मुनीय विज्ञाह—पब्बाम जातिके २१ वें पुनीफा
और मुक्तदिर विज्ञाहके लड़के । सन् ८४६ ई० को
फलमुत्तकफीके मरने बाद बग्दादके तपूनपर बैठे
यह २० वत्सर ४ मास राजा रहे और सन् ८०४
ई० को मर गये । इनके लड़के फलतयने पीछे बग्-
दादकी गद्दी पायी थी ।

फलमुत्तकी विज्ञाह—पब्बाम वंशके २५ वें पुनीफा और
फल मुक्तदिरके लड़के । सन् ८४१ ई० को यह
अपने भाई फलराजोकी जगह बग्दादके तपूनपर
बैठे और तीन वर्ष ११ मास ८ दिन राज्य कर सन्
८४५ ई० को मर गये । पीछे इनके भतीजे और
फलमुत्तकीके लड़के फलमुत्तकफीको राज्यका उत्त-
राधिकार मिला था ।

फल मुनकिफक विज्ञाह—बग्दादवाने पुनीफा मुनव-
द्विम-विज्ञाहके लड़के और फल-मातमिम-पुनीफाके
भाई । फलमातमिम पुनीफाको इन्होंने मृत्यु
समय बड़ी मदद पहुँचायी थी । सन् ८८१ ई० को
यह कुछ रोगमें घोड़ित हो मर गये । मरने समय
इन्होंने कहा था,—मैं एक लाख निपाहियोंका सेना-
पति हूँ, किन्तु उनमें अपने-जैसा हतभाग्य किसीकी
नहीं पाता । सन् ८८२ ई० को फलमोतमिमके
मरनेपर इनका लड़का बग्दादमें सिंहामनाफद हुआ ।

फलमुन्नामी विज्ञाह—पुतिमा वंशके १६ वें पुनीफा ।
यह अपने बाप फलमुन्नामर विज्ञाहकी जगह निश्च

घोर सिरियाके खलीफा बने थे। इनके समय फातिमा वंशका अधिकार घट घोर राजनीतिक प्रभाव मिट गया। एक घोर तुर्कों घोर दूसरी घोर फूटने सिरियाका कितना ही प्राप्त होन निया था। मन् १०८७ ई० के फलोवर मास इन्होंने सिरिया पक्षुध पन्तिपोकके सामने डेरा डाला घोर मन् १०८८ ई० को २० बो जूनको उभे अधिकार किया। दूसरे वर्ष यह भारतून नोमान घोर गुलायी मास ४० दिन अवरोध बाद जेरुसलमके मानिक बन बैठे थे। जेरुसलम गुरुवारको सवेरे छूटा। सत्तर हजारसे ज्यादा मुसलमान अल पक्षुधा मसजिदमें मारा गया। इन्होंने मन् १०७६ ई० को २४ वीं अगस्तको कायरी नगरमें जन्म निया था। मन् १०८४ ई० की २८ वीं दिसम्बरको यह खलीफा बने घोर मन् ११०१ ई० को १० वीं दिसम्बरको मर गये। इनके पुत्र अमर वि अफकाम-उल्लाहने खलाफतका उत्तराधिकार पाया था।

अलमुस्तेन विद्वाह—अब्बास वंशके १२ वें खलीफा, सुह्रगदके लड़के घोर मोतसिम विद्वाहके पोते। मन् ८६२ ई० को बगदादमें यह अपने चचेरे भाई अल-मुस्तानसिर विद्वाहके मरनेपर गद्दी बैठे थे, किन्तु इनके भाई अल-मोतिज् विद्वाहने मन् ८६६ ई० को जबरन इन्हें तख्तसे उतारा घोर पीछे जुपके जुपके मरवा डाला।

अलमुस्तामिम विद्वाह—अब्बास वंशके १० वें घोर अन्तिम खलीफा। इनका उपनाम पयू अहमद अवदुल्लाह रहा। मन् ११४२ ई० को यह अपने बापकी जगह बगदादमें तख्तनशीन हुए थे। इनके समय मुगल शाहशाह घोर सन्नीज् गानके पोते हमाजू पान्-हो मछीने बगदादकी घेरे पड़े रहे। इन्होंने इन्हें घोर इनके चार लड़कोंको पाठ लाप अधिवासियोंके साथ पकड़ बहुत घुरे तीरपर मरवा डाला। इन्होंने १५ अक्टूबर घोर ७ मास राज्य किया था।

अलमुस्ताफ़ी विद्वाह—अब्बास वंशके २२ वें खलीफा, अलमुस्तफ़ीके लड़के घोर अल-मोतजिद विद्वाहके पोते। मन् ८४५ ई० को इन्होंने अपने चाचा अल-

मुस्तफ़ीका उत्तराधिकार पाया था। किन्तु बगदादमें १ वर्ष घोर ४ मास राज्य करने बाद मन् ८४६ ई० को इनके वजीरने इन्हें तख्तसे उतार धनमुतोय विद्वाहको खलीफा बनाया।

अलमुस्तानसिर विद्वाह—फातिमा वंशसे मिश्रके ५ वें खलीफा घोर ताहिरके लड़के। मन् १०४६ ई० को इन्हें अपने पिताका उत्तराधिकार मिला था। इन्होंने बसासिरो नामक किमी तुर्कके साहाय्यसे मन् १०५४ ई० को बगदाद जीता घोर अलकायम विद्वाहको क़द किया। छेड़ वर्ष तक यह मुमनमानोंके एकमात्र खलीफा मसबे जाते रहे। ६० वर्ष राज्य करने बाद मन् १०८४ ई० को इनको मृत्यु हुई थी। इनके लड़के अल-मुस्तामो विद्वाह अलमि फातिम पीछे तख्तपर बैठे।

अल-मुस्तानसिर विद्वाह प्रथम—अब्बास वंशके ११ वें खलीफा। मन् ८६१ ई० के दिसम्बर मास यह अपने पिता अलमुतवक्किनकी हत्या बाद बगदादके तख्तपर बैठे थे। ऊः मछोने राज्य करने पीछे ही मृत्युने इन्हें धर दबाया। चचेरे भाई अलमुस्तेज् विद्वाहको इनका उत्तराधिकार मिला था।

अल-मुस्तानसिर विद्वाह द्वितीय—अब्बास वंशके ३६ वें खलीफा। इनका उपनाम पयू जफ़र अलमन्शूर रहा। मन् १२२६ ई० को अपने पिता ताहिरके मरने बाद बगदादमें यह सिंहासनादरु हुए थे। कीई १० वर्ष राज्यकर मन् १२४२ ई० को इन्होंने शरीर छोड़ा। इनके लड़के अल-मुस्तज्जो राज्यका उत्तराधिकार मिला था।

अल-मुस्तफ़िर विद्वाह—अब्बास वंशके २८ वें खलीफा घोर अलमुस्तफ़ीके पुत्र। मन् १०८४ ई० को ईरानके सुलतान बरकवारक मन्जुकीने इन्हें बगदादकी गद्दीपर बैठाया था। मन् १११८ ई० को २५ अक्टूबर राज्य करने बाद यह मरे घोर इनके लड़के अलमुस्तारमोद जिनाकतके मानिक हुए।

अल मुस्ताफ़ी वि अमर विद्वाह—अब्बास वंशके १३३ वें खलीफा। मन् ११०१ ई० को यह अपने बाप अल-मुस्तानजदकी जगह बगदादमें गद्दीपर बैठे थे।

इन्होंने कोई ० वर्ष राज्य कर मन् ११०६ ई० को
 'पंचना गरीर छोड़ा। इनके लड़के चलनामिर
 विशाहको सिंहासनका उत्तराधिकार मिला था।
 चलम्यट (मं० पु०) १ भयनवा भीतरी भाग,
 मजानका चन्द्ररत्नी विष्णा। २ चलःपुर, जगान-
 क्षाना। (ति०) ३ जितेन्द्रिय, पाकदासन, जो
 परस्वांगामी न हो।
 चलम्यह (मं० पु०) चलं यज्ञे निरर्थकः पयः।
 १ यज्ञके लिये अप्रयत्न पयः। (ति०) २ पयु पानने
 योग्य, जो मयेगी रख सकता हो।
 चलम्यरुपीष (मं० पु०) चलं समर्थः, पुरुषाय,
 चलम्यरुष स्वार्थे ष। १ प्रतिमन्त्रादि पुरुष, जो
 जगत्स हृमरेम कुशो नड सकता हो। (ति०)
 २ पुरुषके योग्य, जो खादमी बन रहा हो। ३ पुरुषके
 चर्च पर्याप्त, जो खादमीको काफ़ी हो।
 चलम्यमुष्कक (मं० पु०) मुष्कक हृष, मोखिका
 येष्ट, वनपनास।
 चलम्यन (मं० पु०) १ पर्याप्तवनयुक्त, खूब ताक-
 तवर। २ शिव।
 चलम्या (मं० स्त्री०) १ तिष्ठानाम्, कहूयी मौकी।
 २ न्यावर विद्यास्तर्गत पत्रविष, पत्तीका लहर।
 चलम्युजा (मं० स्त्री०) गोरघमुष्टी, गोरघमुष्टी।
 चलम्युद (मं० स्त्री०) बालक, बचा।
 चलम्युहि (मं० स्त्री०) चलं ध्यायं पर्याप्ता वा
 वृद्धिः। १ निरर्थक वृद्धि, फलून फल्लम, जो समर्थ
 किसी कामकी न हो। २ पर्याप्त वृद्धि, काफ़ी फल्लम,
 ज्ञा समर्थ पूरी हो।
 चलम्युप (मं० पु०) चलं पुण्याति, चलम्-पुष्प-क
 पुषोः पक्षारप्य वकारः। १ यान्तिरोग, फूँकी
 बीमारी। २ प्रहस्त, फेलो हुई मुट्टी। ३ रावपके
 एक मन्थो। ४ राक्षस विमेष। छटौत्कचने इसे
 मार जाना था। ५ भूकदम्बहृष, चलवायनका पेड़।
 चलम्युषा (मं० स्त्री०) १ मज्जायती मत्त। यह
 मधुर, सपु चीर लामि, कफ तथा पित्त मिटानेवाली
 होती है। (भाष्यचक्र) २ भूकदम्ब, चलवायन।
 ३ महाशायपी, गोरघमुष्टी। ४ गुग्गुलु। ५ सुगव-

पाय मोक्ष। ५ मोहमस, मोछिका बड़ा। ६ चूर्ण
 विमेष। यह पामवातको दूर करता है। (चक्रवर्ति-
 ३००५) ७ चपुमरी विमेष, कोई परी। ८ गच्छीरी,
 घेरा, गोक। इन जलरेखाकी कोई लीप नही
 सकता। वर्षमृग मारनेको जाने समय रामचन्द्र
 मोताकी चारो चीर यही रेखा खींच गये थे, जिससे
 बाहर ही रावपने लम्बे हरण किया।
 चलम्युषाद्यचूर्ण (मं० स्त्री०) शीपवविमेष। यह चूर्ण
 पामवातमें दित है। बनानेका प्रकार यों है—चलम्युषा,
 गोपुर, गुडूची, हृददारक, पीपल, विवृत्ता, सुस्ता,
 वरुण, पुनर्ववा, तिकला, भागर, इन सब द्रव्योंको
 सूख महीन चूर्ण बना चूर्णके बराबर मधुर
 चूर्ण मिलाता चाहिये। इसका चमुपान दधि,
 मण्ड, काण्डिक, दूध, तक्र, मांसका रस प्रथित है।
 इनमें समय पर जो मिला जाये, उसीके साथ सेवन
 करे। (चक्रवर्तिरत्न ६५५)
 चन्वमकार—चलम्युषा, गोपुर, वरुणमूल,
 गुडूची, इन सबका क्रमशः भाग बढ़ाकर सबके धम-
 भाग हृददारकका चूर्ण मिलाता होता है।
 (चक्रवर्तिरत्न ६५५)
 तीसरा—चलम्युषा, गोपुर, वरुणका मूल, गुडूची,
 भागर यह सब बराबर एकत्र करके चूर्ण बनाता
 चाहिये। (भाष्यचक्र)
 चलम्युषा, चलम्युषा शेषीः।
 चलम्योर्धस्तर्ना (मं० स्त्री०) जिस स्त्रीका स्तन
 लम्बा चीर उभरा न हो, छोटे चीर भुके हुए स्तनोंको
 चीरत।
 चलम्योठी (मं० स्त्री०) जिस स्त्रीके लम्बा चीठ
 न रहे, छोटे चीठवाली चीरत।
 चलम्युष्ट (मं० ति०) चलम्-मू-गुष्ण्। समर्थ,
 काबिल, पूरा।
 चलय (मं० पु०) १ चवित्तयन, मनातमल,
 मयात, टिकाय,। (ति०) २ भयनविहीन, सामकान्,
 जिसके घर न रहे।
 चलर-वसर (ति० वि०) पुराव, पुरा।
 चल-रगौद—चलवास धमके १६ स्त्रीकीया चीर सिद्धीके

पुत्र। इन्हें खोग श्वाङ्ग-फल रगोद भी कहते थे। यह फलिक लैसाके प्रधान मायक रहे और सन् १७० ई०को अपने बड़े भाई फलहादीकी जगह गद्दीपर बैठे। बगदादमें ऐसा अच्छा और होशियार बादशाह दूसरा नहीं हुआ। यद्यपि इन्होंने अपना राज्य अधिक न बढ़ाया, तथापि जिस काममें हाथ लगाया, सबी पूरा उतर गया। इनके समय सुसल-मानो साम्राज्य अतिशय सम्यक् रहा। इन्होंने अपना विशाल राज्य तीन सड़कोंमें नीचे लिखे तीरपर बाँट दिया था, यहा सड़का फल्-फमीन सीरिया, इराक, तीनों अरब, मेसोपटेमिया, असीरिया, मिडिया, पैलेस्टिन, मिय, इथियोपिया, जिब्राल्टरका एकीका हुआ, मंभले फल्-मामूनको ईरान, किरमान, इण्डो, खुरासान, तबरिस्तान, काबुलिस्तान, कुबलिस्तान, माघदघर मिला; और छोटे फलकासिमने पारमेनिया, नतोलिया, लुरजान, आरजिया, सरके-शिया और युक्वायिन देग पाया। उपद्रव उठानेपर इन्होंने प्रत्येक वार युनानियोंको युद्धमें डराया था। सन् ८०३ ई० को युनानसम्राट् नीमफोरसने इनके पास निम्नलिखित भाषयका एक पत्र भेजा,—“चापने इरान सम्राज्ञीमें जितना धन छीना है, उसे शीघ्र वापस दीजिये; वरं हमारी फौज जाकर आपका राज्य विध्वंस कर डालेगी।” यह पत्र पाते ही इन्होंने अपनी फौजको घटोरा और हैरेकली पर धावा मारा था। राहमें जो नगर या घाम पड़े, उनको यह भाग या तलवारसे सड़ाते गये। कुछ दिन इनके हैरेकली नगर हट्ट रूपमें घेरनेपर युनानसम्राट् वार्षिक कर देनेको राजी हुए। सन् ८०४ ई० को फिर युद्ध बढ़ा और युनान-सम्राट् नीमफोरसने बहुत बड़ी फौजके साथ इनपर धावा मारा। किन्तु वह ४० हजार सिपाही जो हार गये, त्रिधर्म तीन लक्ष्म सगे और सुसलमान उनके सुल्तको बरबादकर मृतसे मासोमाल लौट पड़े। दूसरे वर्ष यह फिलीजिया पर चढ़े, युनानकी माही फौजके दात तोड़े और मृतके देगको नाग कर बगदाद वापस पाये थे। सन् ८०५ ई० को इन्होंने १११००० सिपाहियों और

कितने ही स्त्रैष्कामेवकाके साथ फिर युनानपर धावा मारा और हैरेकलीको से १५००० युनानियोंको बन्दी बनाया। चायिमस हीपर इनकी मृत्युमारसे विशकुल तबाह हो गया था। इस विषयसे नीमफोरसम भोतचकित हो वार्षिक कर उसी समय भेज दिया, जो युद्धका प्रधान कारण रहा। इन्होंने २३ वर्ष राज्य किया और सन् ८०८ ई०की २४ वीं मास गनिवारको सन्ध्या समय खुरामान्में शरीर छोड़ा था। इनके बड़े सड़के फल्-फमीनको सिंहासनका उत्तराधिकार मिला।

फल-रगोद विज्ञाह—अध्यास बंधके १३वें खलीफा। इन्होंने अपने बाप फल्-सुखरमदके मरने बाद सन् १११५ ई०को राज्यका उत्तराधिकार पाया था। सन् १११६ ई०को यह मरे और फल्-सुखरमदके सड़के फल्-सुखतमी गद्दीपर बैठे।

फल राजी विज्ञाह—अध्यास बंधके २०वें खलीफा और फल्-सुखतमीके पुत्र। सन् ८१४ ई०के चतुस मास वजोर हम मकूलने इनके चाचा फल्-जाहिर विज्ञाह-को तख्तसे उतार इन्हें खलीफा बनाया था। सन् ८१६ ई०में इन्होंने अपनेको खदखीरोम धिरा पा और कोई सायक वजोर न देख फमीर-उस-उमराका गया पद निकाला। इस पदके अधिकारी हमाद-उद-दौला असो बोयाको राजस्वका पचण्ड घाल प्राप्त था। खलीफा भी उससे बहुत खपवा-पैसा ले-दे न मकते रहे। सन् ८१७ ई०को सुमलमानोंका विगाल साम्राज्य निम्नलिखित लोगोंमें बंट गया था,—

फमीर हीदी नामक किसी बलशायीके हौन भेते और निखाले न निकलते भी वमत, बमरा, फूफा और चरही इराक फमीर-उस-उमराकी सन्धि समझा गया। हमाद-उद-दौला फमीर इन्म बोयान फार और फारि-स्तान (ईरान) पाया, जिनका निवाग श्रीराज्में रहा। हमाद-उद-दौलाके भाई इल्-उद-दौलाका फल्-जहन्, ईरानो ईराक और पारसियोंका प्रधान देग मिला। यह इस्लाममें रहते थे। देगका दूसरा एग वाग्रमजिनके हाथ लगा। हमीदिया बंधके महतादे दयार रबिया, दयार बिल, दयार मादर और मोयक

अमक सामनें कागज बनाता है। राजाके पास १००० मगर, ८०४० घेदल, १० बड़ी घोर २८० छोटी तोप रहती है।

२ फलवर राज्यकी राजधानी—इस नगरका एक घोर पहाड़ घोर तीन घोर चहारदीवारी बनी है। लोग कहते हैं, कि निकुम्भ नामक राजपूतोंने चहारदीवारी छठवायी थी। नगरमें पांच फाटक भगे हैं। मङ्गलें भी सब घोषता बनी हैं। प्रधान भवन यह है—१ महाराजका प्रासाद, २ महाराज ब्रह्मनाथर सिंहकी उत्तरी, ३ जगन्नाथका मन्दिर, ४ कचहरी, तहसीलदारी घोर ५ त्रिपोलिया यानी कीरोज ग्राह बादगाहके भाई तरङ्ग सुलतानको पुरानी कब्र। मुसलमान इमारतमें भोजनकी मिज-दहगाह बहुत अच्छी बनी है। त्रिपोलियाके ठीक १००० फीट ऊपर जिला खड़ा, जिसमें नरक नरगोंका प्रासाद घोर दूसरी इमारत उठी है। शहरकी चहारदीवारी पहाड़ो चोटीके साथ घाटी पार कर कोई दी मील तक घनी गयी है। कहते हैं, कि वहां भी निकुम्भ राजपूतोंने ही उठाया था। जैनियों घोर सरानियोंके भी पांच बड़े-बड़े मन्दिर बने हैं। सौलोमिद भीम पाष कोममें ज्योदा मया घोर चोमनमें ४०० गज चौड़ा बैठता है। भीलमें इस नगरतक साढ़े चार कोम बरगो नहर लगी, जिसमें धर उधरकी शोभा बढ़ गयी है। मङ्गलो बहुत देव पढ़ती है। भीलके पाम-पाम गिकारका कोई कमी नहीं। लोग प्रायः उसके किनारे पानन्द करने जाते हैं। घाणीबिलास प्रासाद घोर उद्यान नगरमें पाष कोम दूर घोर चपनी विविध शोभाके लिये मगहर है। रबीडफ़ीके पाषका तालाब बहुत अच्छा है। इस नगरमें चारो घोर पक्की मङ्क गयी है।

फलवत् (हिं० पु०) मान, अपरा, टकोमला।
फलवांती (हिं० स्त्री०) प्रपुता, ज़पा, जो घोरत बंसा जन पुकी हो।

फलवांसिक विज्ञाह—प्याम बगलें ८वें खूमीका घोर फल मोतमिस विज्ञाहके पुत्र। मन् ८३२ ई०की १वीं जनवरीकी यह बगदादकी गरीपर बैठे थे। दूसरे

ही वर्ष इन्होंने पाकमच कर मिथिनीकी जीत लिया। यह ५ बत्तर ० मास १ दिन खलीफा रहे घोर मन् ८४० ई०को मर गये। इनके भाई फलमुन-वकिमने राज्यका उत्तराधिकार पाया।

फलवान् (प० पु०) पञ्जीने या उनकी बादर। यह पञ् मर सादा रहता है, मोटा किनारी कुष्ट नहीं लगता। फलवायी, चरवाती ईको।

फलवाल (सं० स्त्री०) नव जमकचा न धामानि श्रद्धाति रहिभूमियेप्रात्; सव-पाल-क, ततो मन्-तत्। यलहा, पेड़की चारो घोर पानी रोकनेको महीका बना हुआ घेरा।

फलम् (सं० त्रि०) दीप्तिहीन, धुंधला, जो धमकता न हो। फलम (सं० त्रि०) न लप्यति क्खिंपित् कार्ये व्याप्रियते; मम पच् ततो मन्-तत्। १ दीर्घवो, क्रियामन्द, सुप्त, टानमटोल करनेवाला, जो ज़ररी काम छोड़ बैठता या पड़ा रहता हो। 'मदमच दीपन पालः सोमभोऽयः' (पञ्) (पु०) २ पादरोग विगेष, चरवा। चराव कीचड़ मगनेमें घेरकी पंगुलोके बीचका मड़ना गलना फलम या चरवा कहाता है। (वृष) ३ विगृचिकाका पचस्यामेद, किसी क्षिपका ईजा। ४ सुटकुठरोगमेद, किसी क्षिपका कोद। ५ व्यान जाति ज्वर, कोई बुच्चार। ६ जिह्वारोग, ज्वानुका पाज़ार। ७ वृषमेद, कोई पेड़। 'पचः परतोके मन् विपलन्द इमलरे।' (विच) ८ मुनि विगेष।

फलसक, फल ईको।
फलमगमन (सं० स्त्री०) १ मन्दगमन, सुदा वास। (त्रि०) फलमें गमनं यध्य, बहुव्री०। २ मन्दगामी, धीरे-धीरे चलनेवाला।

फलमता (सं० स्त्री०) पालय, सुपुती।
फलमत्त (सं० स्त्री०) चरवाती ईको।
फलसा (सं० स्त्री०) न लपति व्याप्रियते; मम-पच्, ततो मन्-तत् टाप। १ कार्य करनेमें पचम घी, जो घोरत थाम करनेमें होशियार न हो। २ ईमपटौलता, लाजबली। 'वशा इवपच' (त्रि०)

फलसामा (हिं० स्त्री०) फलम चोना, सुष्ट पड़ना, सुकना, भपकी सेना।

पलसी (हिं० स्त्री) पतसी, तीसी। इसका वृष कोई गज-पीन-गज जपर छठता है। शाखा अधिक नहीं होती। छोटी पत्तीसे भरी दो-तीने टहनियाँ पातो, जो लम्बी, सुसायम और सीधी रहती है। फूल नीला और खूबघूरत लगता है। उसके टूट जानेपर छोटी गांठ पड़ती, जिसमें बीज बैठता है। इसका तेल जलाने, रंग बढ़ाने और स्याही बनानेका काम देता है। तेल निकलने बाद बीजका बचा हुआ अंग गाय-भैंसको खिलाते और खमी कहते हैं। पलसीका बीज फूट और गर्मकर पुस्तिसि बनाया जाता, जो फोड़े-फुन्सीको बैठता या पकाकर अच्छा कर देता है। पलसी देखो।

पलसीचपा (सं० स्त्री०) मन्द दृष्टि हाननेवाली, जो औरत सुन्द नज़र फेंक रही हो।

पलसैट (हिं० स्त्री०) १ विलम्ब, वक्फ़ा, देर। २ धोकाधड़ी, हेरफेर। ३ विघ्न, दिक्कत।

पलसीटिया (हिं० वि०) १ मन्द, टीसा, सुप्त। २ बाधक, रोकनेवाला।

पलसीलुका (सं० स्त्री०) रत्न लज्जातु, साम लाजवन्ती।

पलसीहाँ (हिं० वि०) पलस, सुप्त।

पलसहदा (सं० वि०) प्रयत्न, छुदा, दूर।

पलसहन (हिं० पुं०) गामत, घुरा वल्ल।

पलसहिया (हिं० स्त्री०) रागिनी विगेष। यह हिण्डोल रागकी स्त्री और दीपककी पुत्रवधू है।

इसमें समय भर कोमल रहता है। कल्पना देखानेमें यह गायी जाती है।

पलशैरी (सं० पुं०) लड़विगेष, कोई घरकी छत। इसके एक ही कूबड़ रहता है। चलनेमें यह बहुत तेज़ पड़ता है।

पलसार्द, पलसी देखो।

पलागर—मन्द्राज प्रांतके मद्रुरा जिलेकी निम्न पर्वत-श्रेणी। यह पहाड़ अम्बार्डमें वः कोम बैठता और चोमतपर समुद्रतलमें १००० फीट ऊँचा पड़ता है। हममें मुरभुरा पत्थर भरा, किन्तु पाषाणपर मृगमं-सम्बन्धी वधु भी मिलता है। यह पचा० १०३ १६

स० पौर द्राधि० ७८ १० १३ पू०पर पवस्थित है। मद्रुरासे वः कोस उत्तर-पूर्व इसके नीचे पलसी या कन्नारोंका 'कन्नार पलागर कोविल' नामक प्राचीन मन्दिर बना है।

पलागलाग (हिं० स्त्री०) १ नृत्यविगेष, किमी किष्किका नाच। २ साफ़ खेल, चनोखा तमाशा।

पलाण्टी—बम्बईप्रान्तके पूना जिलेका एक हिन्दू तीर्थ-स्थान। यह पचा० १८ २० ३० पौर द्राधि० ७१ ६ ३ पू०पर पवस्थित है।

पलाण्डु (सं० पुं०) हिंस कौट वा जन्तु विगेष, कोई जहरीला कीड़ा या खंसार जानवर।

पलात (सं० पुं०-स्त्री०) न मन्वते पावन्वते; मत मोक्ष कर्मणि घञ्, घपो वा क्लोवत्वम्। १ पहाड़, धूमरहित पागका टिमा। २ कोयला।

पलातचक्र (सं० स्त्री०) १ पागका षेरा। यह किमी जनती सक्कीको जन्म-जल्द घुमानेमें पाकागमें धिंध जाता है। २ बनेठी। ३ नृत्यविगेष, किमी किष्किका नाच।

पलाटप (सं० वि०) पलम्-यद हिंसायां वः दकारलोपो गुणामावीज्जमो मकारस्य पकारस्य निपात्यते, पलं पर्याप्तभातटं हिंसा यत्। (३०००) १ पातटंनमीन, पीड़नमीन, हिंसक, तत्रकीफ़ डेन-वासा, जिसमें कोई जायदा न पड़ते। (पुं०) २ भिष, बादल।

पलात (हिं०) पालन देखो।

पलाप (हिं०) पालन देखा।

पलापना (हिं० स्त्री०) १ विग्रह स्वरमें गान करना, ऊँची पावाज़में तान सड़ाना।

पलापो (हिं०) पालन देखो।

पलापुर—१ विहार प्रांतके दरभंगा राज्यका परगना। पहले यहाँ जड़नी शायो बहुत रहते, जिसकी मूट-छमोटमें सचलिके मधकास रहते थे। अब यह परगना अतिमय सुगन्ध बन गया है। इस परगनेका प्रायः समय विहार प्रांतमें प्रसिद्ध है।

२ यूप्रप्रांतके बदायुं जिलेका नगर। यह पचा० २० ३४ ४३ ३० तथा द्राधि० ७८ १० ६०

फल्गुमासमें मन्दापार उत्तरमेंको मात्र घड़ी रहती है। पश्चिमको घोर बल्लर मील पड़ता, जो टण्ठी मील लम्बा घोर दो मील चौड़ा है। प्रतापपुर, देवरिया घोर राजपुरमें पत्तर निकलता है। चकवर बाद-माधने प्रतापपुर घोर देवरियामें ही पत्तर संग पलाहावादका जिम्मा बनवाया था।

१८११—महाभारतमें पलाहावादके इधर उधरकी भूमि 'वारणासत' बतायी गयी है। पाँचों पाण्डवने अपने-अपने-अपने समय ही प्रान्तमें बिताया। राम-चन्द्रके वनवास समय भी चण्डाल-मृपति सुबकने मित्र-रोहिमें इनका आगत किया था। मन् ६० में २४० वर्ष पड़ने बौद्ध मृपति चमोकका पलाहावादके किन्हींमें जो गिम्मा-क्षेत्र घड़ा, उसपर हम प्रान्तका मया घोर पुराना हान लिया है। उसमें चमोकके नाम साथ मन् ४५० ई० बाने समुद्रगुप्तके विजयका भी विध्वारित विवरण मिलता है। मन् १६०५ ई० को सुगल बाद-शाह जहांगीरने फिर क्षत्र घड़ा करवा फ़ारसीमें अपने मिहामनाउदु ज़ोनेका वर्दन दिया है। मन् ४१४ ई० में चीनके बौद्ध-परिव्राजक फ़ाहियानने हम प्रान्तकी कीयन-नरेशके पधीन पाया था। दो गताब्द बाद उनके देगवामी युष्नुपुषुने प्रयागमें पाकर दो बाह मठ घोर कितना ही हिन्दू मन्दिर देखा। फिर मन् ११८४ ई० तक कोई डाल न गिमा, जब महाबुद्दीन गोरीने हम प्रान्तपर आक्रमण किया था। उस समयमें चन्द्रेजी राज्य पारध होमैतक यह प्रान्त सुमनसामोंके हाथ रहा। मन् ६० के १३ वें घोर १४ वें गताब्द पलाहावाद कोड़ेका परगना समझा जाता, जहाँ शासक पधित्त था। मन् १२८६ ई० को कोड़ेमें मुर्दुगीर्घु घोर उनके पिताका सुप्रसिद्ध मिनन हुआ। पुत्रने उगी समय बल्लनके स्थानमें दिल्लीके मिहामनका पधिकार पाया घोर पिता उसका विरोध करने दोड़ा था। किन्तु पलाह दोनों मिल लुलहर राजधानी पहुँचे। मन् ६० के १३ वें गताब्द पलाहावाद पला-बुर्दीनके अधीन रहा, जिधोंने कोड़ेमें अपने इष्ट पाषा सुलतान पोरुघु शाहकी भोकेम मरवा हाना था।

घोटे हम प्रान्तके शासकोंमें पूब मारकाट पमी। मन् १५२८ ई० को बाबरने पठानोंमें हम हौना था, चकवरने पलाहावाद नाम रच दिया। अपने पिताके समय शाहजहाँने हमीम शासक बनकर पलाहावादमें रहते थे। सुगल बागुका मक़बरा हमीमके बन्-बायी मङ्गुके याद दिनाता है। मन् ६० के १८ वें गताब्द मुँदेनों घोर महाराष्ट्रमें करे वार पलाहा-वादपर धावा मारा, जब यँदेनलण्डके महाराज दरसासने सुगल शासकोंपर अपने तलवार उठायी थी। घीसे पराजकता फ़ैनेपर किमी समय चपके नवायों घोर किमी समय महाराष्ट्रका हम प्रान्तपर पधिकार रहा, पलाहको मन् १०६५ ई० में चंगरेजोंने पलाहावाद नगर दिल्लीके नामधारी मन्नाद शाह पालमकी वापस दिया। कुछ वर्ष तक पलाहावादमें शाही दरवार लगा था, किन्तु मन् १००१ ई० की शाह पालम दिल्ली फिर पहुँचे घोर महाराष्ट्रके हाथ ला पड़े। चंगरेजोंने पलाहावाद चपके नवायोंके पक्षम लाप रूयवे मङ्गुदे दे हाना था। नवायोंने पिलाज पदा न कर सकनेपर गढ़ा घोर यमुनाके बीचका कितना ही देग चन्द्रेजीको सोपा, जिधे एकमें मिलाकर पलाहावाद जिम्मा बनाया गया। मन् १८५० ई० की ६ठीं जूगका पलाहावादके गिमा-हियोंने बनवा उठा अपने बहूतमें राजपुहोंकी बध किया था। उगी बौध नगरवामियोंने भी चरुच हो अलके जँदियोंकी छोड़ा घोर ज़िरी युरोपीय था युरोपीयकी पाया, उगीकी मारपीट ठिकामें लगाया। किन्तु मिपोंके साहाय्यमें जिम्मा चंगरेजोंके हाथ रहा। फिर ११वीं जूगकी फ़ैने भीलमें बल्लवायिपोंकी उठा नगर घोर टेगन से लिया था। घोड़े पलाहा-वादके प्रबन्धमें कोई भगड़ा न पड़ा।

पलाहावाद जिनेमें कोई पन्द्रह लाख पादमी रहते, जिनमें साद्रुष बहूत मिलते है। पलाहावाद ही हम जिल्लेमें ऐसा नहर है, जिनमें पाँच ज़रामी ब्यपादा पादमी रहता है। जिधेमें जामो युरोपीय जीव पड़ी है। यमुना जिम्मा कुछ टूटे पड़े पुरामें जिम्माका अधभावमें भी देख पड़ता है। ध्यावार्दी

घोर अमजीवियोंको अपनी अपनी पन्थायतके अनुसार काम करना होता है।

इस जिलेमें पड़ती जमीन बहुत कम मिलेगी। खादका व्यवहार बढ़ा घोर नहर निकलनेमें खेत सोंपनेका सुभीता बंध गया है। पलाहावाद शहरके पासपास भमरुद, नारङ्गी, शरीफे, बनार, मोडू, केले, करोंदे, जामन बगैरइका बाग, लगा, जिससे खूब फल उतरता है। यामोंमें चाम, महुवा, इमली घोर प्रांबला बहुत है।

पलाहावाद जिलेका व्यवसाय-वाणिज्य ठाकुरों घोर बनिवियोंके ही हाथ है। सिवा कद्दू घोर सब्जी महीके दूसरा धातु यहाँ नहीं मिलता। माघमें किलेके सामने त्रिवेणी सङ्गमपर बड़ा झेला जगता है। ईष्ट इण्डियन रेलवेने इसे पूर्व-पश्चिम इस क्षौरसे उस क्षौरतक पार किया है। नैनीमें यमुनापर लोहेके गहतीरोका जो पुल बंधा, यह १११० गज लम्बा घोर नदीसे १०६ फीट लंबा है। इस जिलेमें लहवायी, सिरसा रोड, करखाना, नैनी, पलाहावाद, मनोरो, भारवारी, घोर सिरायू ईष्ट इण्डियन रेलवेके स्टेशन हैं। पैण्ड ट्यू रोड नामक पक्की सड़क पड़तीस कीसतक पलाहावाद जिलेमें रेलवेके समानान्तर निकली है। यमुनाके उसपार वाले पारगनेमें बड़ी गर्मी पड़ती घोर धुमकी रहती है।

१ इस जिलेकी तहसील। इसका क्षेत्रफल ११२ वर्ग मील है।

४ इस प्रान्तकी राजधानी। इसका पचा० २५' २६' उ० घोर द्राधि० ८१' ५५' १५" पू० है। यह नगर यमुनाके बाम तटपर बसा है। यमुना घोर गङ्गा मिलनेमें जो त्रिकोण बना, उसी पर किला खड़ा है। सन् १५७५ ई० को चक्रवर्ते क्लिमा बनवाया था। किन्तु त्रिवेणी सङ्गमपर एक पुराना किला भी रहा। सन् ६० से पहले ३१ शताब्द सलजुकके दूत मिगास्तेनिस यह नगर देखने धार्य थे। सन् ६० के ७ वें शताब्द चीन-परिभाषक यूचनू गड, इस नगरको देख लिख गये हैं,—“प्रयाग गङ्गा-यमुनाके सङ्गमपर बड़े-रेतीले मैदानसे पश्चिम बसा है। नगरके

मध्य बाह्यपोका मन्दिर मिलता है। उसमें एक कपया चढ़ानेसे दूसरो जगह हजार कपय चढ़ानेका फल होता है। मन्दिरके प्रधान भवन समुद्र एक हथ देख पड़ता, जिसको शाशापशाशा इधर-उधर धूँध फेकी है। जोग उसे नरभक्षक प्रेतका भ्यान बताते हैं। हथकी चारो घोर उन यात्रियोंके पत्थिका टेर लगा, जिन्होंने मन्दिरके समुद्र अपना प्राण विभ्रम किया है। शरीर छोड़नेकी प्रथा अपनादि समयमें बनी पाती है।” फिर जनरल कनिङ्गमने कहा है,—“हमारी सभ्यमें चीन-परिभाषकने त्रिम प्रसिद्ध हथका वर्णन किया, वह निःसन्देह पचयवट है। प्राणकम यह हथ जमीनके नीचे खभेदार दासानमें १२५१ जो चीनपरिभाषकके बताये मन्दिरका ध्वंभावयोग मान्य होता है।” रघोदुरीनने पचयवटको गङ्गा यमुनाके सङ्गमपर पवस्थित बताया है। उसमें महमूद गज-नवीकी तारीफ़ पाती है।

प्राचीन समय पलाहावादकी कोई चंय भीलाके हाथ रहा। सन् ११८४ ई० को पहले पहल मुसल-मानोंने इसे महादुरीनको देखरेखमें लीता था। सन् १५२८ ई० को बाबरने यह नगर पठानोंमें लीता घोर १५७५ को चक्रवर्ते क्लिमा बनवा इसका नाम पलाहावाद रखा। चक्रवर्ताक शासन समाप्त होने श्राव-आदे सलीम पलाहावादके क्लिसेमें शासन बनकर रहे थे। सलीम जब दिल्लीके सिंहासनपर बैठे, तब उनके लड़के सुगुलने बनवा छठाया; किन्तु मीरा जो कौदकर अपने बड़े भाई सुरमकी मीया गया। सन् १६१५ ई० को सुगुलके मरनेपर अरपाय पलाहावादमें एक मक्बरा बनवाया गया था। सन् ६० के १८ वें शताब्द सुगुल मालि नष्ट होने समय पलाहावादने बहुत बुरे दिन देखे। सन् १०१६ ई० को यह महाराष्ट्रके हाथ जा पड़ा, जिन्होंने सन् १०५१ ई० तक राज्य किया था। किन्तु पीछे पड़पाहावके पठानोंने शहर तोड़कोड़ दिया। सन् १०११ ई० में पचयके जवाब सफ़्टर जूझे पलाहावाद से १०६४ तक अपने हाथ रखा। सन् १०६४ ई० के फ़रोबन शासक बहमरने लीत होनेपर फ़ारेसेने पलाहावाद

बादमाह माह चालमको भौप टिया था। किन्तु सन् १७०१ ई० को माह चालमके महाराष्ट्रोंमें जा मिलनेपर चंगरेजोंने थोका समझ पचाम माव कपड़े पर इन्हे चपपके नवाबको दे दिया। किन्तु नवाबके घर न दे सकनेपर उनमें अलाहाबाद नगर और जिला चंगरेजोंमें पाया था। सन् १८३३ में १८३३ ई० तक अलाहाबाद युद्धप्रदेशकी राजधानी रखा, पीछे सरकार चंगरेजों को गयी। सन् १८५८ ई० को सिपाहियोंका बनवा मिलनेपर यह नगर फिर अपने प्राचीन राजधानी बना है।

सन् १८५० ई० के विद्रोह समय इस नगरमें बड़ी मारकाट हुई। भरतमें बनवा उठनेकी पहर १२ वीं मईको अलाहाबाद पहुँची थी। ६ ठीं जूनको मन्था समय सिपाहियोंने खुले तौरपर उपद्रव उठा कितने ही चंगरेजोंको मार डाला और गुलामा म्रुट लिया। बनवाके पक्ष, कितने ही लड़ी और मामी चंगरेज किनेमें रहें। मृतमारमें गहरके लोगोंने सिपाहियोंको माय दिया, ईसायियोंका मथान बनाया और इरेक बुरीघीयको पकड़ ठिकाने लगाया था। कौदपाना तोड़ा और कौदों बाँटा गया। कौरे भोजकी नगरके नरंग बने थे। ११वीं जूनको जनरल बीनके न पहुँचनेतक किनेकी फौज बनवा-घियोंका सामना पकड़ने रही। उद्योगे पाते ही दारागछुबे दलकी मार भगाया। १५ वीं जूनको किनेकी तोपने गोले मार कीडगघ और मूसनफपर फूँटा किया था। १८ वीं जूनको मधेरे अलाहा-बाद बनवाघियोंमें पुराने हुए।

जिन्ना पात्र भी देखने योग्य बना और गद्दा-दमनके महमयपर मस्जिद उठाये पड़ा है। इकानेमें चकमरीका मकान, बाबुदगाना और चारिक है। पुराने महलमें पक्षामार रखा गया है।

बड़ी-बड़ों इमारतमें मरकारी दरजर, कचहरी, बुरीघीय चारिक, अलाहबादना और मारिगी है। अलाहाबादका मूर सिप्टाल कासेज युद्धप्रदेशकी दिवाका प्रधान स्थान है। सन् १८०४ ई० में साठ कोर्से हुकने इसकी भौर डाली थी। मेनोका अलाहा-

बाद सिप्टान जिन जेमा बड़ा कदवाना भारतमें हुमाी जगह देख नहीं पड़ता।

यद्यपि इस नगरमें कौरे बड़ा व्यापार नहीं होता, तथापि उत्तरभारतकी रेल गुज जानेमें कितना ही मास पाया जाता करता है। १८४२ मन्थ अलाहाद विरलक ईश्वरः

पलिंग (वे० पु०) विगाच, गौताज।

पलि (मं० पु०) पलति टंगे, पल-इ। १ भ्रमर, भौरा। २ उचिक, बिच्छू। ३ काक, कौया। ४ कोकिल, कौयल। ५ मटिया, गारा। (हिं० को०) ६ मदी, सईना।

पलिक (मं० की०) पलति भूषणे, पल कपिलका-दित्वात् इकन्। १ नमाट, मत्ता। 'नमनमनिकम्' (च०) २ कपोल, गाल।

पलिकमत्स्य (मं० पु०) १ पलंग। २ भिखनिल। ३ तैलभट्टमांस। ४ पिटक।

पलिकमन्दर, ११३५५५ ईश्वरः।

पलिकुल (मं० की०) पलिकी पंक्ति, भौरिका भुच्छ।

पलिकुलविद्या (मं० की०) काष्ठमेवतो, चमेरी।

पलिकुलसकुल (मं० पु०) पलिकुलेन भ्रमरमगू-इने महुनः प्यातः। १ कुलक हथ, चरनिवारका घेड़। (वि०) २ भ्रमरमगू-प्यात, भौरिके भुच्छमे भरा हुआ।

पलिकुलसकुला (मं० की०) १ कण्ठकमेवतो, कंठीको मेवतो। २ कुलक हथ, चरनिवारका घेड़।

पलिरव (वे० पु०) पलिविगेय, किमी किष्की निङ्गिया। यह सुदाँकोर होता है।

पलिंगट (मं० पु०) पलिरिव हथिक इव गृध्रति दंष्टुमाकाहति, पलि-रथ-पच्। जलमर्ष, पलिहा मां।

पलिंग (मं० पु०) पलिभ्रमरख्ये मधुरा गौर्वाषो कान्तिर्वा यथ, बहुवी०। गगोटिके पलमर्षत पलि-विगेय।

पलिङ्ग (मं० वि०) नादि लिङ्गं प्रापकईतु विङ्गं यथ, मन्-बहुवी०। १ अनुमान लगानेके इतुमी गुल्, क्रिये पर्ण करनेकी कौरे मबब न मिले। २ लिङ्ग

रहित, जो कोई जिम्मन रहता हो। (पुं०) १ वेदान्त मतमें सिद्ध परमात्मा। नञ-तत्। ४ सिद्धभित्त, जो कोई जिम्मन न हो। ५ दुष्टविद्, बुरा निग्रह।

अलिङ्गिन् (मं० त्रि०) न लिङ्गी वेगधारी, नञ् तत्। धर्मध्वजी, सच्चा।

अलिङ्गिद्धा (सं० स्त्री०) सुद्रुजिह्विका, गन्धिका कौषा। (Uvula) यह मुखमें कठिन तालुके प्राग्भागपर ऊपरसे नीचेको अटकती और मानमय होती है। सुक्लम या खांसी होनेसे अलिङ्गिद्धा आकारमें कुछ बढ़ जोभकी जड़के नीचे और गलेके पास पट्टुं च जाती; इसीसे खांसीका जोर ज्यादा पड़ता है। ज्यादा बढ़नेसे हमारे देगकी ओर सञ्जी महो और चना एकमें मिला इसके अग्रभागपर लगा देती है। एतो पेयो चिकित्साके मतसे इसपर काटिक लोगन लगाना चाहिए। किन्तु बहुत ही बढ़ जानेसे इसके अग्र-भागका कियत् अंग काट डालना आवश्यक है।

मृच श्लोः।

अलिङ्गिद्धिका, अलिङ्गिद्धा श्लोः।

अलिञ्जर (सं० पुं०) अलीन् मक्षिकादीन् जरति त्रुह्यति तिरस्करोति वा; अलि-ञ्-अच्, प्रथो० गुन्। १ मृगस्य जलाधार, पानो रचनेको महीका छोटा बरतन, भ्रमभर, सुराही। २ फल विग्रेय, किसी किष्का खरबूजा। यह रुच, गीतल, भेदक, तुवर, मधुर, धार, तिक्त, स्वादिष्ट, वातकृत् एवं पकने पर कटु निकलता और ग्राम काम तथा प्रोषाको दूर करता है। (वेदवचिष्यः)

अलिता (सं० स्त्री०) अलिहक, अचरा; यद् उष्ण एवं तिक्त होती; व्यङ्ग, अरुचि, कण्ठद्वज, अश-रोय, कफ तथा वातको दूर करती और दूसरे गुणमें साक्षात् रहती है। (वेदवचिष्यः)

अलिदूर्वा (सं० स्त्री०) अलिद्वि अलिता दूर्वा, कर्मधा०। मालादूर्वा, किसी किष्मकी दूर्वा।

अलिदूर्वा श्लोः।

अलिन् (मं० पुं०) अलिं ह्यिक पुच्छस्यकण्टकं तदाकारं कण्ठकं वा विद्यतेऽप्य, अलिन् अलि। १ ह्यिक, विच्छः। २ अमर, भौरा।

अलिन् (सं० त्रि०) अलि बाहु० इन्। १ पयोत्त, काफ़ी। २ इष्ट, प्यारा। ३ यथेच्छित, मनमाना। ४ तपस्याद्वारा अलि ह्यिक-प्राप्त। (दे० पुं०)

५ जाति विग्रेय, कोई कौम।

अलिनो (मं० स्त्री०) अमरमसूह, भौरिका भृङ्ग।

अलिन्द (सं० पुं०) अल्पते भूयते, अलि कर्मणि बाहु० किल्धच्। १ द्वारप्रकोष्ठ, दरवाजेका कमरा।

२ अलिन्दारम्य अलिन्द. बाह्य दरवाजेका अलिन्दार।

३ द्वारदेग, बरामदा। ४ देग विग्रेय, कोई सुन्द।

५ तद्देगवामी, अलिन्दका बागिन्दा। महाभारतके उद्योगपर्वमें अलिन्द नृपतिका नाम लिखा है।

अलिपक (सं० पुं०) न लिप्यते एकत्र मदाकल्पते; लिप कर्मणि क्नुन्, नञ् तत्। १ अमर, भौरा। २ कोकिल, कोयल। ३ कुकर, कुसा। ४ अलि-पिण्डक, गाड़ीवान्।

अलिपदा, अलिपिका श्लोः।

अलिपिका (सं० स्त्री०) अलिर्ह्यिक इय पदं यस्याः, बहुव्री०। ह्यिकपदाप्य मता, विदुषाका पिन।

अलिपर्णिका, अलिपर्णा श्लोः।

अलिपपी, अलिपर्णा श्लोः।

अलिप्रिय (सं० स्त्री०) अलिः अमरस्य प्रियः, इ-नत्।

१ रत्नोत्पल, मान कमल। २ धाराकटस्य हृद्यः।

३ धाम्बहृद्य, धामका पेड़। ४ अदम्बहृद्य, कदम्बका दरभूत।

अलिप्रिया (सं० स्त्री०) १ पाटलाहृद्य, पांडरीका पेड़। २ भृङ्गस्य हृद्य, जइसी आमनका दरभूत।

अलिप्या (सं० स्त्री०) अलिभिनाय, अलिपिर्ह्यो, मानसका न रहना।

अलिमक (सं० पुं०) अलिद्वि अलिने विरहप्रभङ्ग-त्वेन, अलि-मन् कर्मणि क्नुन्। १ भेक, भेकक। २ कोकिल, कोयल। ३ अमर, भौरा। ४ मधुहृ-हृद्य, दोपहरियाका पेड़। ५ अलिप्यगर, कमलका देगा। 'अलिप्यद्विदे देके मधुहृदप्यदेरे' (विप)

अलिमाला (सं० स्त्री०) अमरमसूह, भौरिका अहृद्य।

(१००) चमोन् भमरान् मोटयति
 बलि-मोट-बिष्-पच, उप० समा० ।

बलि-मोट-बिष्-पच ।

(१०१) केयिका पुष्यस्य, केच
 बलि-केयिका-पुष्य-स्य ।

बलि-केयिका-पुष्य-स्य ।

बलि-केयिका-पुष्य-स्य ।

(१०२) चामय, कोरि चीज् रचनेकी
 चामय-कोरि-चीज्-रचने-की ।

(१०३) अथ्यति मततं श्युषे परि-
 अथ्यति-मततं-श्युषे-परि-
 चामय-कोरि-चीज्-रचने-की ।

(१०४) चमोना चक्रमः प्रियः,
 चमोना-चक्रमः-प्रियः, साम पांडुरीका पेङ् ।

बलि-चमोना-चक्रमः-प्रियः ।

(१०५) चमोन् माहयति मोर-
 चमोन्-माहयति-मोर-
 चमोना-चक्रमः-प्रियः ।

(१०६) भमरमंगोत, मोरिची
 भमरमंगोत-मोरिची ।

(१०७) चरितार देवा ।

(१०८) पुष्यस्य विमेष, किमी
 पुष्यस्य-विमेष, किमी ।

१ मघी, महेमी । २ पत्ति,
 ३ मोरा ।

चमोन् भमरान् मोटयति ।
 चमोन् भमरान् मोटयति ।
 चमोन् भमरान् मोटयति ।
 चमोन् भमरान् मोटयति ।
 चमोन् भमरान् मोटयति ।

पङ्कता पीर दारवावाटमि इदोना जनिवालो मङ्गल
 बमता है । पङ्कने चमो-पावाट चपने करयो पीर
 कपङ्के चामोके निर्ये मयहा या । इममें श्वःदान
 गुनाहे रहने है ।

चमो इमाहीम चान्—विहार प्राप्तीय सुमेर जिलेवाले
 इमीनावाट गांवके कोरि मन्थाना पुष्य । दिजीके
 वादशाह गाह चामनुने मरोपाव, मगहजारीकी अमह
 पीर चमोना-उद्-दोना चमोन्-उल-मुल्काका वितार
 दिया या । 'मेर-उल-मुत्तपरोन्' में इनकी बड़ी
 तारीफ् निगी है । पङ्कसे चमोवदी चानुने इके
 सुरगिदावाट गुना बड़ी उपाधि दी गीके यह
 नवाब मोर कामिम चमो चानुके एतवारी सुभा-
 हब बन गये थे । इमोंने उके म्यानपर चढ़ने पीर
 चंगरेजीमे लड़नेको रोक। पटनेमें मोर कामिमके
 हार जानेपर भी यह स्वाभिमत बने रहें । बख्तरमें
 हार मोर-कामिमके उत्तरकी पीर भागनेपर इमोंने
 सुरगिदावाट वापस पा नवाब सुबारक-उद्-दोनाके
 दीवानका पद पाया । चमोको इमोंने सुहृद्द रवा
 चानुको बह-सुनकर के देम छोड़ा दिया या । नवाब,
 मुमो शैम पीर गवरनर-जनरलके अंधी प्रगह
 देते भी यह उमसे चमग रहें । किर इकानि वीर
 इच्छिमके माय वा वेतमिहका उपदन माना चोमि-
 पर मन् १०८१ ई० को बतारमको अमी पायी
 थी । भारिका नाम चमोकासम रहा । इमके लड़के
 नवाब चमो चानुको सरकारने चानु बहादुरका पितार
 दिया या ।

चमोक (१०९) चमति इत्
 चमोक (११०) चमति इत्
 चमोक (१११) चमति इत्
 चमोक (११२) चमति इत्
 चमोक (११३) चमति इत्

को बचप-मुकरीके हावावही नि
 को बचप-मुकरीके हावावही नि

इस। पिष्टक विशेष, तिल द्वारा बहारपर भूना हुआ मापपिष्टक, तेलमें भुनी हुई चड़दकी पकोड़ी। अलीकिन् (सं० त्रि०) १ अमिय, नागवार, जो भना मालूम न होता हो। २ असत्य, झूठ, धोका देनेवाला।

अलीका, अलीकिन् शब्द।

अलीगढ़—१ युक्तप्रदेशके पटा जिलेकी तहसील। यह गढ़ा और कालीनदीके मध्य अवस्थित है। इसमें चार परगने लगते हैं,—पाजमनगर, वरना, पटियाली और निधिपुर। इसका भूमिपरिमाण प्रायः ५२५ वर्गमील है। २ इसी तहसीलका नगर। यहां पक्की सड़क, बाजार और बड़ा-बड़ा मकान बना है। इसमें सन् १८८१ ई०को बनी याकूत खानकी मसजिद और मस्जिद क़िला प्रधान है।

अलीगढ़—युक्तप्रदेशका एक जिला। यह अक्षांश २०° २८' ३०" तथा २८° १०' ३०" और द्राघि० ७०° ३१' १५" एवं ७८° ४१' १५" पू० के मध्य अवस्थित है। अक्षफल १८५५ वर्गमील है। इसमें उत्तर बुलन्दशहर जिला, पूर्व पटा, दक्षिण मथुरा जिला और पूर्व मथुरा जिला तथा यमुना नदी पड़ती है।

भौतिक दृश्य—यह जिला गढ़ा और यमुनाके बीच लघु बड़े कच्चारका प्रधान अंग होता, जो साधारणतः दोबाव कच्चाता है। धरातल चौड़ा और पूरा मैदान है, जो समुद्रतलसे ६०० फीट ऊंचा पड़ता और दक्षिण-पूर्वकी कुछ उन्नत है। दोनों ओर नदीकी घाटी मौजूद है। बीचमें गढ़ाकी नहर निकली, जो मैदानकी सींच देती और अकरामादके पास दो गांधामें बंट फानपुर तथा इटाषिकी चली जाती है। नहरमें घेत सदा हरे-भरे रहते, जिनके पास अच्छे-बच्छे गांव बसते हैं। अंगरेजी राज्य होनेसे इस जिलेका सड़क काट डाला गया है। फीट ५१०६ एकर भूमिमें धाम वगैरहका बाग है। कृषिकी लघु लगानेका शौक नहीं दिखते। सरकारने अपनी ओरसे कितना ही बाग लगाया है। महीमें जूरेल, ल पिंडोल मिलता, जो पानी पानेमें कड़ा पड़ता, किन्तु उधर-उधर मानद्वार जमीन भी मौजूद

है। दक्षिणकी ओर उपज सबसे अच्छी होती है। धरातलमें कुछ ही फीट नीचे प्रत्येक स्थानमें कच्चा निकलता है। यह मकान बनाने और मच्छकपर विधानके काम आता है। जमीनी जगह जंगल पड़ता, जिनमें कुछ उपज नहीं मकता। दिनको जंगल बरफ-जैसा चमकता है। नहर निकलनेसे लघुकी बढ़ती हुयी है। दक्षिण-पूर्व गढ़ा और पश्चिम यमुना नदी बहती है। नदीकिनारे पशु चरते हैं। काली नदी इस जिलेमें उत्तर-पश्चिममें दक्षिण पूर्वकी बहती हुयी पटा जिले जा पड़ती है। इसपर दो जगह पुल बंधा है। नीमनदी कालानदीमें ही जाकर गिरती है। मलसारी और भोकमपुरमें पुल बंधा, और पानी घेत सींचनेके काम आता है। कचनदी, ईमान, सेमर और रिन्द गर्मीमें सूख जाती है। साधारणतः इस जिलेका मैदान बहुत उपजाव है।

विकास—इस जिलेके प्राचीन इतिहासमें कोयल नगरका कुछ उल्लेख मिला, जिनके पास जिला और रैनवे-स्टेशन बना है। कहते हैं किंगराव किसी चन्द्रवंशीय नृपतिने उसे अपने नामपर बनाया, किन्तु बलरामने कोल देवको मार वर्तमान नाम रखा था। फिर कोई इस जिलेको राजपूतोंकी सम्पत्ति बताया, जिनमें बैरनके राजाने सन् १० के १२ वें शताब्दीतक अपने अधीन रखा। सन् ११८४ ई० को कुतब-उद्दीन दिल्लीमें कोयलपर चढ़े थे। मुघलमान ऐतिहासिकका कहना है—'उम समय जो लोग होमियार रहे, यह मुघलमान हो गये; किन्तु जिनमें अपनी पुरानी चाल न छोड़ी, वह तलवारमें भार पड़े।' फिर नगरमें मुघलमान शासकोंका प्रभाव बढ़ा, किन्तु हिन्दू राजाओंने भी अपना वन बनाये रखा था। सन् १० के १४ वें शताब्दीतकूरके शासनमें इस बड़े प्रति ठठाना पड़े। सन् १५२६ ई० को मुगलोंके दिवंगे सेने बाद बाबरने अपने भाया कश्क अपनीको कोयलका शासक बनाया था। अकबरके समय इस जिलेमें बड़े ही प्रभुधाम रहे। दिल्लीकी मसजिद धाम भी पड़ी और मुगलोंके समयकी याद दिखाने है। किन्तु औरजेबके मरने बाद यह जिला अल-

अभिज्ञान (सं० स्त्री०) अनीक मतान् मोक्षयति
आत्मादयति; अभि-मुद-बिच्-पच्, उप० मता० ।
अविज्ञानी ह्यच्, परमोक्षा विद् ।

अभिज्ञानि (सं० स्त्री०) विज्ञाना पुष्पहृत्, विज
दंशे दुःखका दारुणम् ।

अभिज्ञान, अविज्ञान इत्येते ।

अभिज्ञान, अविज्ञान इत्येते ।

अभिज्ञा (हि० स्त्री०) आलय, खोई चीज् रचनेकी
कला । यद् यत्कर्म दीवारमें बनायो जाती है ।

अभिज्ञ (सं० पु०) अच्यति मततं सूय परि-
श्राव्यति, अ-इलच् रच्य लः । विद्याप्रसिद्ध मगम-
विज्ञानी यस्मि विज्ञेय, खोई सूयामी परिन्द ।

अभिज्ञान (सं० पु०) अनीकान् यत्रमः प्रिय,
१ मत् । रक्षपाटला ह्यच्, आल पांडरीका विद् ।

(स्त्री०) अभिज्ञाना ।

अभिज्ञानि (सं० स्त्री०) अनीक शब्दयति नीर-
यत् इतस्तानी अमयति, अभि-वच्-बिच्-विनि ङीप् ।

विज्ञाना ह्यच्, विद्वेका विद् ।

अभिज्ञान (सं० पु०) अमरसंगीत, भौरीकी
धनकार ।

अभिज्ञान (सं० स्त्री०) अविज्ञान इत्येते ।

अभिज्ञानक (सं० पु०) पुष्पहृत् विज्ञेय, विज्ञी
विज्ञकी विज्ञानीका विद् ।

अनीक (हि० स्त्री०) १ मयो, महीनी । २ पंक्ति,
कृत्वार । (पु०) १ भौरी ।

अनीक अक्षर—अक्षरं प्राज्ञाने कस्ये चीर धृत
विज्ञेयं मासक । पक्षे यद् घोड़ेके सीढागर रहें
चीर ईरानके इच्छ, हान प्राज्ञाने मात अनीको परबो
घोड़े आनेके इच्छे लाये हैं । गाहजहाने कः घोड़े
अनीक हत्तार कपटमें घरीके चीर मातमें अनीक
असक ही अक्षर हत्तार कपटे दिवें । मन् १६६६
ई०को इतके विज्ञी विज्ञू हारा भारे आनेपर
सुशब्द-उत्-मुष्ककी मासक कतराधिकार मिला
था ।

अनीक वाद्य—दुहरेमें बाराबहो विज्ञेका गाँव ।
यद् यथा० २६; ११० मदा दाधि० ८१; ६१० पु०म

पक्षता चीर दरवाजाके हदीना आनेवालो मङ्कल
बमता है । पक्षे अनीक वाद्य अनेक करवों चीर
कपटके आनीके निधे मगह था । इममें अद्यादान
सुनाई रहत है ।

अनीक इलाखीम यान्—विचार आनीक सुनेर जिनेकाते
दुखीनावाद गाँवके खोई मन्थान पुष्य । दिज्ञीके
बादगाह गाह यान्में सरोपाय, गायजहानीकी जगह
चीर अनीक उद्-दोला अनीक-उत्-मुष्कका विचार
दिया था । 'सं-उत्-सुतपरीक' में इतकी बहो
तारीक विज्ञी है । पक्षे अनीकदीं यान्में इन्ने
सुरमिदावाद सुना बहो उपाधि दी घोड़े यद्
नगाह नीर आनिम अनीक यान्में एतवारी सुना-
ह बन गये हैं । इन्नेमि उन्नें गेवापर कटने चीर
पंगरीकेमि अङ्कनेकी रोका । पक्षमें नीर आनिमके
दार आनेपर भी यद् आनिमल बने रहें । इन्नेमि
दार नीर-आनिमके अक्षरकी चीर भागनेपर इन्नेमि
सुरमिदावाद मास था नगाह सुहारक-उद्-दोलाके
दीवाजका पद पाया । अनीकी इन्नेमि सुहकद रत्ना
यान्की कट-सुनकर कटनेको छोड़ा दिया था । नगाह,
सुनी शैम चीर गवरनर-अनरनके ऊँची कगह
देते भी यद् उममि अक्षर रहें । फिर इन्नेमि वीर
इतिहृमके माय का चेतमिइका उद्यय माता कोने-
पर मन् १०८१ ई० को बनारसको जज्ञी पायी
थी । भारतका नाम अनीकामस रत्ना । इतके अङ्कने
नगाह अनीक यान्की सरकारने यान्कहादुरका विचार
दिया था ।

अनीक (सं० स्त्री०) अच्यते अच्यते अच्यति इत्
निवारयति वा, अनीकान् । अनीकान् । अनीकान् ।
१ अनाट, मता । २ मिया, मारादी, भुङ् ।
'अनीकान् अनीकान्' (१०) १ दार्ग, विदिष्ट ।
(ति०) अनीकमतय । ३ अच्य, मादकर ।
३ मियाविदिष्ट, मारात् । (हि० स्त्री०) ३ शैरके,
कुरीति । (वि०) ० शैरक, मासके विचरित ।
अनीकता (सं० स्त्री०) मिया, मारादी,
अनापन ।
अनीकमतय (सं० पु०) अनीकः अक्षः मन्थ

इव। पिटक विग्रह, तिल द्वारा पद्मपर भूना
हुषा मापपिटक, तिलमें सुनी हुई उड़की पकीड़ी।
पलीकन् (सं० वि०) १ अमिय, नागवार, जो
भला मानूम न होता हो। २ अमल, झूठ, धोका
देनेवाला।

पलीक्य, पलीकन् इव।

पलीगढ़—१ युक्तप्रदेशके पटा जिलेकी तहसील। यह
गढ़ा और कानीनदीके मध्य अवस्थित है। इसमें
चार परगनें लगते हैं,—प्राज्ञमनगर, वरना, पटियाली
और निधिपुर। इसका भूमिपरिमाण प्रायः ५२५
वर्गमील है। २ इसी तहसीलका नगर। यहाँ
पकी सड़क, बाजार और बड़ा-बड़ा मकान बना है।
सबसे सन् १८८१ ई०की बनी याकुत खान्की
मसजिद और मदीना किला प्रधान है।

पलीगढ़—युक्तप्रदेशका एक जिला। यह अक्षा०
२०° २८' १०" तथा २८° १०' ४०" और द्रवि० ७०°
११' १५" एवं ७८° ४१' १५" पू० के मध्य अवस्थित
है। क्षेत्रफल १८५५ वर्गमील है। इसमें उत्तर
बलरामपुर जिला, पूर्व पटा, दक्षिण मथुरा जिला
और पूर्व मथुरा जिला तथा यमुना नदी पड़ती है।

भौतिक इत्य—यह जिला गढ़ा और यमुनाके बीच
उभ बड़े कटारका प्रधान भूग होता, जो साधारणतः
दोषाव कहलाता है। धरातल चौड़ा और पूरा
मेदान है, जो समुद्रतलसे ५०० फीट ऊंचा पड़ता
और दक्षिण-पूर्वको कुछ टलता है। दोनों ओर
नदीकी घाटी मौजूद है। बीचमें गढ़ाकी नहर
निकली, जो मेदानको सींच देती और चकरावादेके
पास दो गावामें बंट कानपुर तथा इटायेकी चली
जाती है। नहरमें खेत सदा हरे-भरे रहते, जिनके
पास अच्छे-बच्छे गांव बसते हैं। पंगरजी राज्य
होनेसे इस जिलेका अन्नल काट हाला गया है।
कोई ५६५ एकर भूमिमें आम वगैरहका बाग है।
किसीको हल नगानेका शौक नहीं देखते। सरकारने
अपनी ओरसे कितना ही बाग लगाया है। महीमें
जखेज पिंडोल मिल्ता, जो पानी पानेमें कड़ा
पड़ता, किन्तु दहर-उपर बानुदार जमीन भी मौजूद

है। दक्षिणकी ओर छत्र सबने चर्चा होती है।
धरातलमें कुछ ही फीट नीचे प्रत्येक स्थानमें कच्चा
निकलता है। वह मकान बनाने और सड़कपर
बिहानेके काम आता है। लंबी जगह ऊपर पड़ता,
जिसमें कुछ छत्र नहीं सकता। दिनको छत्र
बरफ-जैसा चमकता है। नहर निकलनेमें समझी
बढ़ती हुयी है। दक्षिण-पूर्व गढ़ा और पश्चिम
यमुना नदी बहती है। नदीकिनारे पथ चरते हैं।
काली नदी इस जिलेमें उत्तर-पश्चिममें दक्षिण पूर्वको
बहते हुयी पटा जिले जा पड़ती है। इसपर दो
जगह पुल बंधा है। नौमनदोंकामानदोंमें ही जाकर
गिरती है। मसगायी और भोकमपुरमें पुल बंधा, और
पानी खेत सींचनेके काम आता है। कर्णनदी, इगान,
सेमर और रिन्द गर्मीमें शुष्प जाती है। साधारणतः
इस जिलेका मेदान बहुत उपजाव है।

इतिहास—इस जिलेके प्राचीन इतिहासमें कोयल
नगरका कुछ हिसान्त मिला, जिनके पास किला और
रक्षये-रक्षण बना है। कहते हैं किंगराव किंगो
चन्द्रगोय श्रुतिने उसे अपने नामपर बसाया, किन्तु
बलरामने कोल देवको मार बर्तमान नाम रखा था।
फिर कोई इस जिलेको राजपूतोंकी सम्पत्ति बताता,
जिनमें बेरनके राजाने सन् १० के १२ वें शताब्दान्त-
तक अपने अधीन रखा। सन् ११८४ ई० की कुतब-
उद्दौन दिल्लीने कोयलपर चढ़े थे। सुसनमान शक्ति-
हामिकका कहना है—'उम समय जो लोग शोगि-
यार रहे, वह सुसनमान हो गये; किन्तु जिन्होंने
अपनी पुरानी चान न छोड़ी, वह तमवाररी भारे पड़े।'
फिर नगरमें सुसनमान शासकोंका प्रभाव बढ़ा, किन्तु
हिन्दू राजावोंने भी अपना हल बनाये रखा था।
सन् १० के १४ वें शताब्द तैमूरके पालनमेंसे इस बड़ी
शक्ति छाना पड़े। सन् १५११ ई० की मुगलोंके दिल्ली
सेने बाद बादने अपने साथी कचक पलीकी कोय-
लका शासक बनाया था। चक्रवर्तके समय इस
जिलेमें बड़ी ही धूमधाम रही। कितनी ही मसजिद
बाग भी बड़ी और सुगन्तोंके समयकी याद
है। किन्तु ओरछत्रके मरने बाद यह

वादिनीके बाव का पड़ा था। पक्षमे महराराष्ट्री घोर
 पीछे अटोका पत्रिका रखा। मन् १०१० ई० को
 मारकम नामक किमी अट-नेताने घोषणपर कसा
 कर बहने-भिन्नेका एव सामान लुटाया था। किन्तु
 मन् १०१८ ई० को पन्नामेंने काटोको मार भगाया
 घोर भीम एवं तत्र दोनोमें मारकाट चली। मन्
 १०२४ ई० को विंध्याने पचना दण्डन क्रमाया था।
 मन् १०२६ ई० तत्र महराराष्ट्रीका इमपर पधिकार
 रवा। किन्तु ४ वी मितम्बरको पंचदशैने पलो-
 मद्रका किमा भी लिया। मन् १०३० ई० को यहाँके
 निवाहियेने भी बलवा किया था।

इम त्रिसेम पनात्र, एकी घोर भीम बाहर भेजा
 जाता है। हादरम, कोदम, पतरोनी, सिखन्दरा-
 राव घोर इन्द्रायामधुमें पनात्रका बाजार लगता है।
 एकदे माघिन भी चारो घोर फेकी है।

२ इमी त्रिका मगर। यह पचा० २०" ५५"
 ४१"०" घोर द्रावि० ०८" ६" ४३" पर पचवित्त है।
 पुराने घोर किसेपर माघिन पान्की ममजिद पूरने
 देग पक्षमी है। पनीगद-इन्टिक्ट नामक पुस्त-
 का मयमें होत मरवमी पधिक पुस्तक रवा है।

३ एत त्रिकेकी तक्षमील। इसका चेतकम १८०
 वर्ग भीम है। ४ पचने तक्षमीलका मौर। इसका
 लम दूवित्त चोनेमि भीमीका माल्य विगड़ जाता है।

५ छोटे त्रिकेका माल। यह कलकत्तेमें टापी कोम
 दक्षिण पूर्ण है। मन् १०३६ ई० को ३० वी दिमम्ब-
 रको साठे हारवने इमी पधिकार किया था।

पल्लोवर्द्ध, पचिसां रवा।

पलोका (वि० वि०) पलोकाह, प्यादा, बहल,
 पचना।

पलाम (वि० पु०) १ हारकी दोनो घोरका
 बान्। इमीमें किवाड़ लगता है। २ एतभविमिय,
 कोरि पक्षा। यह बरामदेके पाम दोवारने मिला
 रचता है। (वि०) ३ पनुचिन, मुँवशासिन,
 पुराव।

पलोमक (मं० लो०) पक्ष, मीचपान्, भीषा।

पलोपुर—१ बडाल प्रदेशकी बीबीम परमनेका पनात्र

विभाग। भूमिपरिमाण मादा ४२० वर्गमील है।
 २ एत विभागका मगर। यह कलकत्तेमें दक्षिण
 पक्षता है। छोटेकाटका प्रायेश प्रायाट घोर पूरने
 कितने को पनासिका पक्षी है। यहाँको पचामना
 (बिहियापाना) भारतमें प्रधान है। ३ अक्षपाकी-
 मोड़ोका मयवर्ने मूमाग। यह कल्यापी नदी
 किनारे पचवित्त है। यहाँ मजदूके महतीरोंकी
 पाड़न चलती है। ४ पक्षाव प्रायके मुन्नुपरकद
 त्रिका मौर। यहाँमि मिनू घोर पुरामानकी
 मया, एवं भीम भेजते हैं। ५ सुंदेनपण्डका मूमाग।
 यह देमी राजाके पधिकारमुक्त है। पक्षाके राजा
 हिन्दूवतने इमी पचममिन्द्रको दे हामा था। ६ इमी
 मूमागका प्रधान मगर। यहाँ देमके पधियतिका
 वाम घोर किमा है।

पनीबाग—पचमे प्रायके पुना त्रिकेका बन्दरगाह।
 मन् १६६२ ई०को गिवाभीने यहाँ पचना महराष्ट्रीके
 तेषार किया था। मन् १६६४ ई०को रग केरुने पक्षा-
 तको पक्षांमें पक्षुं व मडे आनेवामे दो मुगल बहार
 पक्षका घोर चने चलग से लाकर लूट लिया।

पनीस (प० वि०) पीहित, बीमार।

पनीवर्द्धी पान्—बडालके एक मयाव। यह मित्रों
 मुहयटके पुव घोर नवाव मीरान्-उद्-दोनाके
 मातामह रष्टे। पनीवर्द्धीका पुर्व नाम मुहयट पनी
 था। इनके पिता एक मुकं रष्टे, जो राजपुत्र पान्म
 माहके निकट भीकरी खरते थे। पचने सामीषा
 परमोक वाम हो आनेपर ये दिन्नीके बटक मये।
 यहाँ मुहिंद-कुर्मी पान्के नामागा राजा-उद्-दोनाके
 इनके पिताकी योष्ट माल मयांदा की घोर उमके
 पुवकी राजमहमकी घोड़दारी दो। लोमि दत्र
 करके दिन्नीके पादमाइने मुहयट पनीकी 'पनी-
 वर्द्धी पान्' उपाधि दिलवाया था। मन् १६६१ ई०को
 पनीवर्द्धी बटकके माधनकर्ता हुए। १०१० ई०को
 विहार-माधनकर्ताकेकिमी पक्षराव वम पदपुत्र कोने
 पर माघन-ममिन्तिके पनुरोपने पनीवर्द्धी खान्ने की
 उम पटकी भी पाया। मूलन मयावने मयावित्त वी
 यह पाव हतार भेन्व माप से पटतामें उदकित हुए।

उस समय घटनेमें बड़ा विभाट् उपस्थित था। बख्शारा नामक एक घोरीके दमने पक्ष खरी-दनेके छलसे नगरमें घुस घोर मूट-पाट लोगों-की व्यतिथस्त कर दिया। इस तरह उपद्रव मचा, कि सरकारो खोजानेका रूपया भी डाकू मूट-लेते थे। अलीवर्दीने उन दुष्टों घोर कितने ही दुर्दान्त जमींदारोंको दमन करनेके लिये अनेक पाफगान-मैन्य भंगवह की। अक्टुनकरीम खान् उसके पथघ रड़े। बहुत परिश्रमसे घोरो घोर जमींदारोंको दमन कर, उनका अधिक धनरदादि इन्होंने पहण किया। इनकी रणदक्षता एवं सुघतुर बुद्धि देख दिल्ली-सम्राट्ने 'महाराजकु' उपाधिसे विभूषित किया था।

जो लोग बहुत घतुर होते, वे प्राय अधिक सन्दिग्ध रहते हैं। इन्होंने भी सन्देशके फन्देमें पड़ अपने प्रिय सैन्याध्यक्ष अक्टुन करीम खान्की हत्या कर डाली। सन् १०४० ई०को सम्राट् मुहम्मद शाहके प्रधान मन्त्री रिजाक् खान्ने इनको बङ्गाल, बिहार घोर उड़ी-साका शासनभार संपण किया। उक्त वर्षही अलीवर्दी खान्ने नवाब सरफराज् खान्के विरुद्ध युधयात्रा की। उमो समय सरफराज्की मृत्यु हुई। अलीवर्दी सर-फराज्का अधिक वहुत द्रव्य प्राप्त किया, तथा मुहम्मद शाह घोर दिल्लीके प्रधान वजीरकी प्रसन्न रखनेके लिये १ करोड़ ७० लाख रूपया नज़रानाके तीरपर पड़वा दिया। उस समय सम्राट्ने इनको बङ्गाल, बिहार घोर उड़ीसाका सूबेदार एवं सात हजार सैन्यका नायक बना, राजा चन्न सुन्क घोर हिंसाम-उद्-दौला प्रशस्ति कतिपय उपाधि प्रदान किये थे।

अनुप्यका मन सब समय समान नहीं रहता। अलीवर्दी एक समय सम्राट्की संपर्कमें चरक गये। १०४१ ई०को सम्राट्ने मुरीद खान्को सरफराज्का समस्त अधिकारदादि एवं दो वर्षकी आमदनी सप्ल करनेके लिये बङ्गाल भेजा। किन्तु अलीवर्दी कोशकमें मुरीदकी राजमहलमें रात्रि व्यय कई मस रूपया नगद ले उनके समीप उपस्थित हुई। इस घटनासे कुछ दिन बाद उड़ीसाके शासनकर्ता सुगिंद-कुर्मीके विरुद्ध

युधयात्रा की। सुगिंद-कुर्मी पराजित हो जामाता सहित बानेश्वर भाग गये। अलीवर्दी अपने अग्रपुत्र सैयद अहमदको उड़ीसाका भार दे सुगिंदावाट चले गये।

कुछ दिन बाद सैयदके पत्न्याचारसे प्रजा-विद्रोह उठा। लोगोंने सैयदको कैदकर कुहर खान्पर शासनभार डाला। यह समाचार सुनते ही अलीवर्दी सैन्य महानदीके तीरपर उपस्थित हुए, घोर कुहर खान्को परास्त कर मुहम्मद मामून् खान्को शासन भार सौंपा। सन् १०४१ ई०को रघुजी भोमनाने बङ्गालका सत्तुर्ग कर सेने भास्करपण्डितको अर्धस्य बङ्गाल भेजा।

वर्षमानमें महाराट्के साथ युध हुआ था। उन्होंने प्रस्ताव किया, कि दश लाख रूपये धानसे मौट जाते। अलीवर्दी पहले उनके प्रस्तावसे मन्त हो गये थे। किन्तु भोभीकी पाशाऊषा श्रांघ नहीं जाती, अर्धलोभुय महाराट् करीब रूपया मांगने लगे। अतथाव प्राथमा सुन इन्होंने रूपया देना अस्वीकार किया था।

सन् १०४२ ई०को भास्कर पण्डितके सैन्यसभने हठात् जगतसेठका धनागार मूट लिया घोर हुगली, वर्षमान, बीरभूम, राजगढ़ी, राजमहल, मिदिनोपुर तथा बालेश्वर पर्यन्त अधिकार किया। उमो समय अलीवर्दीखान्ने कलकत्तास्य अङ्ग्रेजोंको कलकत्तेकी घारो तर्क नामा खांदनेकी पाशा दी थी, उमि अब 'मरदा-डिब' कहते हैं। सन् १०४३ ई०को रघुजी भोमने नवाबसे अङ्ग्रेजोंको उमो समय पेशवा बानाश्री राव भी सम्राट्में प्राप्य प्यारह लाख रूपये लेने इनके पास पहुंचे। पेशवासे रघुजीको पुरानो शत्रुता रही। समय पाकर यह अलीवर्दीमें मिल गये, घोर रघुजीके घेर उखाड़ दिने। सन् १०४४ ई०को भास्कर पण्डितने फिर इनके विरुद्ध युध उठाया था। किन्तु अलीवर्दी यह रणमें निहत हो वैकुण्ठधाम गियारे।

सन् १०४५ ई०को धेनापति मुहम्मद खान्ने इनमें विवाद बड़ा बिहार पर आक्रमण मारा था। अलीवर्दी खान्के पादश्री अब तदाकार शासनकर्ताने

वायव्यदिशि हाथ का पड़ा था। पहले महाराष्ट्रों और पीछे जाटोंका अधिकार रहा। मन् १०५० ई० को सूरजमल नामक किसी जाट-नेताने कोयलपर कब्जा कर लड़ने-भिड़नेका शुरू सामान छुटाया था। किन्तु मन् १०५८ ई० को चण्डगानोंने जाटोंको मार भगाया और बीस वर्ष तक दोनोंमें मारकाट चली। मन् १०८४ ई० को सेंधियाने अपना दखल जमाया था। मन् १८०१ ई० तक महाराष्ट्रोंका इसपर अधिकार रहा। किन्तु ४ वीं सितम्बरको चंगरेजीने अलीगढ़का किला ले लिया। मन् १८५० ई० को यहाँकि सिपाहियोंने भी सलाह किया था।

इस जिलेमें अनाज, रुयी और नील बाहर भेजा जाता है। हायरम, कोयल, पतरोली, सिकन्दराराय और हरदुवागञ्जमें अनाजका बाजार लगता है। रेलवे मायिन भी चारों ओर फैली है।

२ वीं जिलेका नगर। यह अक्षा २०° ५५' ४१" उ० और द्राधि ७८° ६' ४५" पर अवस्थित है। पुराने 'डोर' किलेपर साबित खान्की मसजिद दूरसे देख पड़ती है। अलीगढ़-इन्स्टिट्यूट नामक पुस्तकालयमें तीन सहस्रसे अधिक पुस्तक रखा है। १ उच्च जिलेकी तहसील। इसका क्षेत्रफल १८० वर्ग मील है। ४ अपनी तहसीलका गाँव। इनका जल दूषित होनेसे लोगोंका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। ५ छोटे किलेका स्थान। यह कलकत्तेसे टायी कीम दक्षिण-पूर्व है। मन् १०५६ ई० की १० वीं दिसम्बरकी साईं झाड़वने इसे अधिकार किया था।

अलीगढ़, बनिरं १६०।

अलीजा (६० वि०) अलीजाह, व्यादा, वहुत, पच्छा।

अलान (६० पु०) १ दरकी दोनो ओरका बाजू। इसीमें किवाड़ लगता है। २ सभविषेय, कीरं अन्धा। यह बरामदेके पास दीवारसे मिला रहता है। (वि०) ३ अनुचित, गैरवाजिब, सुराब।

अलीनक (सं० स्त्री०) वह, गोपधतु, सीसा।

अलीपुर—१ बहाल प्रदेशकी बीबीस परगनेका प्रधान

विभाग। भूमिपरिमाण प्रायः ४२० वर्गमीन है। २ उच्च विभागका नगर। यह कलकत्तेसे दक्षिण पड़ता है। छोटेनाटका प्राचीन प्रसाद और दूसरी कितनी ही पहालिका खुड़ी है। यहाँकी पणगाला (चिड़ियाघाना) भारतमें प्रधान है। ३ जलपायी-गोड़ीका मध्यवर्ती भूभाग। यह कल्याणी नदी किनारे अवस्थित है। यहाँ लकड़ीके शहतीरोजी प्रादुत चलती है। ४ पञ्चाब प्रान्तके मुजफ्फरगढ़ जिलेका गाँव। यहाँसे सिन्धु और सुरामानकी गन्ना, एवं नील भेजते हैं। ५ मुँदिलखण्डका भूभाग। यह देशी राजाके अधिकारभुक्त है। पञ्जाके राजा हिन्दूयतिने इसे अचलसिंहकी दे लासा था। ६ इसी भूभागका प्रधान नगर। यहाँ देशके अधिपतिका बास और किला है।

अलीबाग—बम्बई प्रान्तके पूना जिलेका बन्दरगाह। मन् १६६२ ई०को शिवाजीने यहाँ अपना जहाजीबेड़ा तैयार किया था। मन् १६६४ ई०को इस बेड़ेने अन्धा-तकी खाड़ीमें पड़-प मक्के जानेवाले दो सुगल जहाज पकड़ा और उन्हें अन्न ले जाकर लूट लिया।

अलील (प० वि०) पीड़ित, बीमार।

अलीवर्दी खान्—यद्दालके एक नयाव। यह मिर्जा मुहम्मदके पुत्र और नयाव शीरान्-उद्-दौलाके मातामह रहे। अलीवर्दीका पूर्व नाम मुहम्मद अली था। इनके पिता एक तुर्क रहे, जो राजपुत्र पात्रम शाहके निकट नौकरी करते थे। अपने स्वामीका परलोक पास हो जानेपर ये दिल्लीमें कटक गये। यहाँ सुगिंद-कुली खान्के जामाता शजा-उद्-दौलने इनके पिताकी घबैट मान मर्यादा की और उनके पुत्रको राजमहलकी फौजदारी दी। उन्होंने यत्न करके दिल्लीके यादगाहमें मुहम्मद अलीकी 'अलीवर्दी खान्' उपाधि दिलावाया था। मन् १६२५ ई०को अलीवर्दी कटकके शासनकर्ता हुए। १०१० ई०को विहार-शासनकर्ताके किसी अपराध वग पदच्युत होने पर शासन-भूमितिके अन्तरीधसे अलीवर्दी खान्ने ही उध पदकी भी पाया। नूतन सम्मानमें सम्मानित हो यह पाँच हजार सैन्य साथ ले पटनामें उपस्थित हुए।

उस समय घटनेमें बड़ा विभ्राट् उपस्थित था। बख्शारा नामक एक खोरीके टलने पर खरी-दूनेके छससे नगरमें घुम खौर मूट-पाट मोगी-की व्यथिथखा कर दिया। इस तरह उपद्रव मचा, कि भरकारी खाजानेका रूपया भी छाफू मूट लेते थे। अलीवर्दीने उन दुष्टों खौर कितने ही दुर्दान्त जमींदारोंको दमन करनेके लिये अनेक चाफगान-मैन्व मंग्रह की। अब्दुलकरीम खान् उसके पथ्यच रहे। बहुत परिश्रमसे खोरो खौर जमींदारोंकी दमन कर, उनका मखित धनरत्नादि इन्होंने पहण किया। इनकी रणदक्षता एवं सुचतुर बुद्धि देख दिल्ली-सम्राट्ने 'महावत्जह' उपाधिसे विभूषित किया था।

जो लोग बहुत खतुर होते, वे प्राय पधिक सन्दिग्ध रहते हैं। इन्होंने भी सन्देशके फन्देमें पड़ अपने प्रिय मैन्वाध्यच अब्दुल करीम खान्की हत्या कर छानी। सन् १०४० ई०को सम्राट् मुहम्मद शाहके प्रधान मन्त्री एजाक् खान्ने इनको बद्दाल, विहार खौर उड़ी-माका शासनभार परंपण किया। उक्त वर्षको अलीवर्दी खान्ने नवाब सरफराज् खान्के विरुद्ध युद्धयात्रा की। उसी समय सरफराज्की मृत्यु हुई। अलीवर्दी सर-फराज्का मखित बहूत द्रथ्य प्राप्त किया, तथा मुहम्मद शाह खौर दिल्लीके प्रधान यजीरकी प्रसन्न रखनेके लिये १ करोड़ ७० लाख रूपया नज़रानाके तौरपर पड़ुंवा दिया। उस समय सम्राट्ने इनकी बद्दाल, विहार खौर उड़ीमाका खुरैदार एवं सात हज़ार मैन्वका नायक बना, गुजा खल मुन्क खौर हिसाम-उद्-दौला मश्रति कतिपय उपाधि प्रदान किये थे।

मनुष्यका मन मय समय समान नहीं रहता। अलीवर्दी एक समय सम्राट्की पांछमें झरूक गये। १०४१ ई०को सम्राट्ने सुरीद खान्को सरफराज्का समस्त मखिरत्नादि एवं दो वर्षकी आमदनी वसूल करनेके लिये बद्दाल भेजा। किन्तु अलीवर्दी कौमनमें सुरीदकी राजमहलमें रख स्वयं कई जण रूपया मगद से उनके मनीष उपस्थित हुए। इस घटनासे कुछ दिन बाद उड़ीमाके शासनकर्ता मुर्गिंद-कुमीके विरुद्ध

युद्धयात्रा की। मुर्गिंद-कुमी पराजित हो क्रामाता सहित बालेखर भाग गये। अलीवर्दी अपने शत्रुपुत्र सैयद अहमदको उड़ीमाका भार दे मुर्गिंदाबाद चले पाये।

कुछ दिन बाद सैयदके पत्न्याचारसे प्रजा-विद्रोह उठा। मोगीने सैयदको कैदकर बुकर खान्कर शासनभार छान्ना। यह समाचार सुनते ही अलीवर्दी सैन्य महानदीके तीरपर उपस्थित हुए, खौर बुकर खान्को परास्त कर मुहम्मद मामून् खान्को शासन भार मौपा। सन् १०४१ ई०को रघुजी भोंमनाने बद्दालका खतुरांग कर लेने माफ्तरपण्डितको ममेंव बद्दाल भेजा।

वर्धमानमें महाराष्ट्रोंके माय युद्ध हुआ था। उन्होंने प्रस्ताव किया, कि दस लाख रुपये पानेसे लोट जाते। अलीवर्दी पहले उनके प्रस्तावसे मख्त हो गये थे। किन्तु मोमीकी पाशाह्सा; गांधु नहीं जाती, पर्यंतोतुप महाराष्ट्रकोरुद्ध रूपया मांगने लगे। परश्वर मायना सुन इन्होंने रूपया देना पत्नीखार किया था।

सन् १०४२ ई०को भाफ्कर पण्डितके मैन्वगवने हठाम् जगन्मिठका धनागार मूट मिया खौर हुगली, वर्धमान, खौरभूम, राजगोहा, राजमहल, मेदिनीपुर तथा बालेखर पर्यन्त पधिकार किया। उसी समय अलीवर्दीखान्ने कलकत्तापर अहमदजीको कसकत्तेकी खारो तर्फ नाना खोदनेकी पाशा दी थी, उसे धर 'मरदा-डिब' कहते हैं। सन् १०४३ ई०को रघुजी भोंमने नवाबमें झड़ने पाये थे। उसी समय पेशवा बालाजी राव भी सम्राट्में माय प्यारह लाख रुपये लेने इनके पास पहुँचे। पेशवासे रघुजीकी पुरानी ममूला रही। समय पाखर वर अलीवर्दीमें मिय गये, खौर रघुजीके पैर उपाड़ दिये। सन् १०४४ ई०को भाफ्कर पण्डितने खिर इनके विरुद्ध पण्ड उठाया था। किन्तु पत्ताहो वर इन्में निरुत हो सेकुण्डपाम मियारे।

सन् १०४५ ई०को मेनापति मुस्तफा खान्ने इनमें विवाद बड़ा विहार पर पाहमव माय था। अलीवर्दी खान्के पादेमसे जव मयाकार शासनकर्ता

नीचा देखाया, तब उन्होंने सुनारमें जा पायय लिया। मन् १०४४ ई० को रघुजी भोंसलेने फिर इनके विरुद्ध पत्ता उठाया, किन्तु विहार और कटकके युद्धमें पराजय पाया था। उद्यो बत्सर पत्नीवर्दीके दोहिय मीराज्-उद्-दौमाका महात्ममारोहसे विवाह हुआ। मन् १०४० ई० को इन्होंने मीराजापर खान्की कटकके महाराष्ट्रपर आक्रमण करनेको भेजा था।

उद्य समय मगधमें खान् विहारके शासनकर्ता रहे। उन्होंने खेन्-उद्-दीनको मार डाला और पत्नीके भाई छाजी पद्मद एवं उनकी कन्याको बन्दी बना विहारपर अधिकार जमाया। विद्रोहीको दधानेके लिये यह खय मसैन्य विहार पाये और भागसपुरमें महाराष्ट्रमें लड़ पड़े थे। फिर जामोजी और मीर दशोबने पानीस हजार सवारोंके साथ विद्रोहियोंमें मिस जानेकी चेष्टा चलायी। किन्तु, सुचतुर और विचक्षण पत्नीवर्दीके रण-नैपुण्यसे उनकी धामा पूरे न उतरो। घोरतर युद्ध हुआ। विद्रोहियोंके पश्चिमापक भरदार खान् और मगधमें खान् खेत पाये थे।

मन् १०५० ई० को इन्होंने कटकमें महाराष्ट्रको मार भगाया। किन्तु उन्होंने फिर इस प्रदेशको लोत लिया था। महाराष्ट्रके अत्याचारसे बङ्गदेशमें पावान-हृद-वनिता सभी व्यतिव्यस्त हुये। इतना उपद्रव बढ़ा, कि अन्तःपुरकी रमणी बालकोंकी महाराष्ट्रोंका डर देखा-देखा सुनाते रहीं।

उपद्रवसे प्रजा वचानेके लिये यह महाराष्ट्रोंको कटक प्रदेश और बङ्गालका चतुर्थांग करारूप देनेपर मगध हुये। इसी पर महाराष्ट्रोंके उत्पत्तसे बङ्ग देश छूटा था। इन्होंने भयभीत प्रजाको फिर अपने अपने देश ला ब्रह्मादि बनानेका आदेश दिया और जमीनमें प्रचुर मस्य उत्पन्न होनेपर ध्यान लगाया। १६ वर्षके राजत्व बाद मन् १०५६ ई० को इन्होंने अपनेकी मवाब पत्नीवर्दी खान् ८० वर्षकी अवस्थापर छदरीरोगसे पाक्रात हो मर गये।

पत्नीवर्दी प्राणी और कार्यकुशल रहे। यह बाल्यकालमें सभी हया पत्तस-पामोदने समय विताते

न थे। प्रातःप्रात होनेसे दो घण्टे पहले गध्यासे उठते और ईश्वरका भजनार्थ कर-सयेरे राजकाय देवने समामें जा पङ्कजते। इन्हे पद्य और इतिहास बहुत प्रिय था। कहते हैं, इन्होंने राजा लक्ष्मणन्दसे बारह लाख रुपया नजराना मांगा और रुपया न पानेसे उन्हें क्रोध किया। पीछे लक्ष्मणन्दकी वैययिक बुद्धिसे मन्तुट हो इन्होंने उन्हें बध्याहति दी और उनसे धर्ममस्यभ्यीय नामा विषय पर सर्वदा बात की थी। लक्ष्मणन्द प्रायः प्रति रजनीके प्रथम भाग नवावके पास रहते और मध्य-मध्य उत्तु भाषामें, महा-भारत प्रभृतिकी अनुवाद कर सुना देते। मवाब इससे बहुत पामोदित होते थे।

इनमें सर्वप्रथमका टोप रहा। किन्तु उससे यह प्रजाका सर्वनाम कर धन बटोरनेकी चेष्टा न चलाते थे। मरनेसे कुछ दिन पहले यह अपने उत्तराधिकारी श्रीराज-उद्-दौमाको समझाने लगे,—“श्रीराज् ! विदेशी लोगोंका विनाश न करना। बह किसी तरह इस देशमें बढने न पाये। साथधान। उन्हें इस देशमें कहीं किना बनाने न देना।”

पत्नीमाह—मूर जातिके वीर विगीप। मन् १५२८ ई० को पत्नी गुजरातो नाय से यह चौस नदोपर पहुँचे और पद्मदनगरकी भूमि तथा पोर्तुगीज व्यवसायको बड़ी चति दी।

पत्नीट (सं० पु०) तिलकहृद, तिलका पेड़। पत्नीह (हिं०) पत्नीहृदो।

पत्नु (सं० स्त्री०) १ सुदृ कनसी, छोटा घड़ा, गरी। २ तुलसी हथ। (स्त्री०) ३ मूल, लड़। पत्नुक् समास (सं० पु०) नाश्रि विभक्तिर्मुत्तु यद्, बहुव्री० पत्नुक् चासी समासयेति, कर्मधा०। पत्नुकर पद। पत्नु१।१। विभक्तिके मुक्तुस गृह्य समास, जिस समासमें विभक्ति बनी रहे। दो प्रभृति पदमें समास सजानेसे मध्य पदकी विभक्तिका लोप हो जाता है। जिस स्थानमें विभक्ति बनी रहती, वह पत्नुक् समास कहनाता है। ‘जले बरतीति जल-वर’ असा समास अगानिमें जल शब्दकी समासो विभक्तिका लोप हो गया, किन्तु ‘जलेवर’ रूप स्थानमें यह

बनी रही; सुतरां यह अलुक् समान ठहरा। इच्छाके अनुसार सकल स्वयंमें अलुक् समाप्त नहीं कर सकते। वैधाकरणमें हमका विशेष नियम बना दिया है। अलुक् समाप्त अवसरमें ही आता है।

अलुक् (सं० स्त्री०) १ आलकसाधारण, जमौकन्द। यह गीतल, पाय्नेय, मल्लभाजन, मधुर, जड, रुच, हृद्य, दुर्भर, बलवर्धन, स्वस्थवर्धन, मल-मूत्र कफ-वात-हृदिकर और रक्तपित्तघ्न होता है। (वेदवज्रिपद्य) २ आलुघोस्युरा। ३ आसिप, मांस।

अलुभना, ललभना देखो।

अलुटना (हिं० स्त्री०) आगे-पीछे पांव पहना, डग मगाना।

अलुन्दा—बम्बई प्रान्तके सतारा जिल्लाका गांव। यह सतारामें उत्तर दायी कोम शिवगङ्गाके टलिय-नट पर बसा है। सतारामें जो प्राचीन ताम्रफलक निकला, उसमें लिखा है, कि अलुन्दा विष्णुवर्धन प्रथमने ब्राह्मणोंको आगौरमें दे डाला था।

अलुम (सं० स्त्री०) अक्षत, जो गुम या कम न हुआ हो।

अलुममहिमन् (सं० स्त्री०) अक्षत कीर्तिविशिष्ट, जिसकी कीर्ति बिगडी न हो।

अलुभ्य (सं० स्त्री०) अलुभ्यम्, नञ्-तत्। जीभ-शुभ्य, जो मालवी न हो।

अलुभ्यत्व (सं० स्त्री०) जीभशुभ्यता, मालवी न होनेकी हानत।

अलुभ्यत् (स्त्री०) अलुभ्य देखो।

अलुच (वै० स्त्री०) अलुचम्, वेदे रप्य मः। अरुच, अरु, चिहण, सुसायन, चिकना, जो रुखा न हो।

अलुचमि (स्त्री०) अक्षत, साधित, जो कटा न हो।

अलुना—लवण भक्षण न करनेवाला शैवसम्प्रदाय विशेष, जो शैव साधु नामक न खाता हो।

अलुप (हिं० वि०) लुप्त, गुम, टेल न पडनेवाला।

अलुबारी—बङ्गाल प्रान्तके दारजिलिङ्ग जिल्लाका गांव। सन् १८५१ ई०की ईश गाँवमें कार्मियङ्ग और दार-जिलिङ्गकी बाह-कम्पनेने पहले-पहले बाहका बाग लगाया था।

अलुमिनियम (प० पु०) धातुविशेष, किमी

किष्का फुङ्ग। (Aluminium) यह मफेट और कुछ कुछ नीला होता है। धूप और पानीमें रखनेमें भी यह सफे, तबिये या पातलकी तरह ल्पदा नहीं बिगडता। हमके बरतनमें पानीकी कोई चीज रखनेमें लैथीकी तैसी ही बना रहती है। हममें कथा मोडा और ईंधान माफ किया जाता है। हममें रसोयोंके बरतन भी बहुत बनते हैं। टारपीटो नाथ, जहाज और मोटारमें यह बहुत काम देता है। हममें तार भी तैयार होता है। हममें हमके बरतनमें लोहोंको मोहित कर लिया है।

अलुय—बम्बई प्रान्तवासे कनाडा जिल्लेके नृपति विशेष। ऐहोसे ताम्रफलकमें लिखा, कि अलुय-तनय मकाराज चितवाहके कहनेमें सन् १०८ ई०की साम्बियोगे धाम उत्पन्न किया गया था। पुमिकेगि द्वितीयने अलुयके वंशजोंकी रणमें पराजित कर पदमें अधीन बनाया।

अलुया—उडोना प्रान्तके मय्यनपुर जिल्लाका ब्राह्मण समाज विशेष।

अलुर—१ मडिहुर राज्यके हसन जिल्लाका गांव। यहां चावलका बड़ा बाजार लगता है। २ मन्नाज प्रान्तके बिसारी जिल्लाकी तहसील। इसका क्षेत्रफल १५६ वर्गमील है। कामी जमीन फयोजी पैदावारके लिये बहुत अच्छी है। किन्तु खेत सीपनेका सुभोता नहीं पडता। उक्त तहसीलका महर। यह इन्डो-रोडपर बसता और कोई प्रधानता नहीं रखता है।

अलुना (हिं० पु०) तरङ्ग, लहर।

अले, अरे देखो।

अलेक्सन्दर—अगदियात महराजौर। सुमनमान लोग इसे निकन्दर कहते हैं। सुप्रसिद्ध ग्रीकमिथमें 'अलिकमन्दर', 'अलिकमर' और 'अलमर' नाम मिलता है। मकदूनिया-नृपति क्रियके पौरम और पोनिसियाके गर्भमें इसका जन्म हुआ था।

एक समय खेरवर क्रिय पोनिसियाक रणजोड़ामें जीते रहे। उनके सेनापति पार्मेनेने भी इतिरोव युद्धमें जेत और प्रभुके निवट पक्ष में मरका मुकाया—अकपात् अकिसह नगर ही डायना देगेका मन्दिर

गिर गया। उसी समय मकदूनिया-गृपतिने सुना, कि उनके महाका हुआ था। फिलिपने आकर पुत्रका मुँह देखा। देवरा भोग कहने लगे,—यह पुत्र एदिथीका राजा होगा। फिलिपने कुमारका नाम पलेक्सन्दर रख दिया।

पलेक्सन्दरने शैशवस्था बिता डाली। प्रथम निपोनिदासु नामक व्यक्ति इनके प्रधान गिचक बने थे। ११ वर्षे यद्यःक्षमके समय फिलिपने प्रसिद्ध दार्शनिक परिष्टटनको पुत्रकी गिचामें भगा दिया। परिष्टटनके सुविद्यागुणसे पलेक्सन्दरकी मनोवृत्ति सुन गयी थी। उसी गिचके फलसे यह भविष्यत्में पिथीयं भास्वाज्यको शासन कर सके। समयानुसार परिष्टटनने राजनीतिके सम्बन्धपर कोई पत्र लिखा, जिसका प्रधान उद्देश्य पलेक्सन्दरकी गिचा देना था। इनके भाष्यमें श्रेया गिचक रखा, वैसा किभी दूसरे युरोपीय राजाकी न मिला।

पठन समय पलेक्सन्दरके हाथमें सर्वदा ही इतिवट रहता और आकिनेसके वीरत्वकी कहानौ सुनना बहुत पसन्दा लगाता था। जब आकिनेसका वीरत्व इनके धृतिपर्यमें उदय होता, तब वीरमद चढ़ जाता; तनवार भङ्गभङ्गना उठती। भोग कहते, पलेक्सन्दर ही पक्षमें आकिनेस रहे। वस्तुतः ड्य-वीर आकिनेसके संयमें इनकी माताने जन्म लिया था।

वीरत्वके परिचय देनेका समय था पड़ुंवा। फिलिप इन्हे राज्य भोग युद्धकी चले गये। उस समय इनका वयस १६ वर्ष रहा। फिर किने ही भोग विद्रोही भी बने थे। किन्तु इन्होंने उन्हें दबा दिया। उसी समयमें भोग इन्हे राजा और फिलिपको सेनापति कहने लगे। फिलिप इनका बड़ा प्यार करते और यह भी उन्हें बहुत चाहते थे।

वयस बढ़नेमें लोगोंकी मतिगति पनट जाती है। उसीमें ऐसा उपयुक्त पुत्र रहते भी फिलिपने क्रिषोपेटाकी प्याह लिया था। विवाह करनेपर यह पितामें मन ही मन कुछ विरक्त हुए। छोड़े दिन बाद फिलिप गुप्त रूपमें मार डाने गये थे। भोग

कहने लगे, निकन्दर उस इत्याकार्यमें जित रहे। पीछे यह स्वाधीन भावसे मकदूनियाके अधिपति बने, किन्तु निरापद रह न सके।

पद्याभास नामक क्रिषोपेटाके छोटे मामाने क्रिषोपेटाकेगर्भमें उत्पन्न फिलिपके दूसरे सड़केको राज्य दिनात्मिकी चेष्टा लगायी थी। उसी समय उत्तर पोर अधिमको पक्षस्थ जातिने भी स्वाधीन होनेकी पक्षा उठाये रहे। डिमस्थानिसु मकदूनियाके विपक्ष हुए, जिससे ममस्त यमान देगमें हन चन्न पड़ गयी। पलेक्सन्दरने देखा,—चारों पोर महा विपद् है; यदि हम इस महाविपद्में न हूटे, तो राज्य, धन, मान सब कुछ हाथसे निकल जायेगा। बुद्धिमान् महावीर पति भत्तर कोई निष्पत्ति टूँठने लगे। इन्होंने डिकेटम् सेनापतिकी पादेग दिया—पाप फोत्रके साथ एगिया जायें और जैसे हो सके, दुर्गति पद्यानामका मार या पकड़ हमारे पास ले जायें। महावीरका पादेग प्रतिपालित हुआ, डिकेटम् पद्यासासुका पराजित और निहत किया। पद्य पलेक्सन्दर सेनापतिकी पादेग सुना फोत्रके साथ युनाग जा पड़ुंवे थे। यिसेनो विना युद्ध ही हाथ पा गया। यहाँमें यह विधोसियाकी और चल पड़े थे।

खिष्यके भोग ध्वजमें देखते रहे,—हम फिर स्वाधीन होंगे, पधीनताका क्रिय चव उठाना न पड़ेगा। किन्तु उनका सुषस्त्र टूट गया, सुननेमें पाया, महावीर पलेक्सन्दर दिव्यके काडमिया दुर्गपर आ पड़ुंवे। पद्येसके अधिवासी इन्हे पागल बना उपहास उठाने रहे, किन्तु पद्येसाम् पागमन सुन सब डर गये। सभा पद्यस्तुत थे, उतना मीत्र युद्धका पायाजन लगा न सके। उस समय उन्होंने विभोत भावसे इनके पास दूत भेजा, जिसने पाकर कहा,—सभी पद्येसवासो महावीरके पागमनसे पानन्दित हैं; दुःख केवल हमी बातका है, कि महावीरके पारप्य पाक्रमणको उपयुक्त सेन्स इच्छा कर नहीं सकते। इन्होंने दूतको समादर दिया था। युनागके मनमें भोग इनमें भुक्त गये, केवल खाटांनीने इनके पधीन रहता न चाहा।

पलेक्सन्दर मकदूनिया वापस भावे घे। फिर यह रीतिमत रणसञ्जा भग्य असभ्य लोकोको दबने उत्तरको घोर चल पड़े। दानियुध नदीके तीर मौर-मुम् नामक असभ्योके पक्षपति हार गये थे। उमी जगह परपरपर चनेक जातिने इनको अधीनता स्वीकार की।

इधर स्वाधोनता-प्रिय युनानी हिमखानिसके उत्-साहवाक्यमें प्रबोधित पड़ उत्तेजित हा गये थे। इन्होंने स्वदेशकी स्वाधीनताके उद्धारको जीवन उत्सर्ग करनेका सङ्कल्प किया। उमी समय युनानमें गप उड़ी,—पलेक्सन्दर इतिरीय युद्धमें मारे गये हैं। शिबसथानी मकदूनियावालोंको अपने देशमें भगाने और युनानके परपरपर स्थानमें दूत भेज सबको भड़काने लगे। पीछे संवाद मिठा,—पलेक्सन्दर मरे नहीं, आज भी जाते और शिवसमें था पड़ुं हैं। पहले इन्होंने सन्धिका प्रस्ताव फेलाया, किन्तु लोगोंने उसे हंसो-दिङ्गोमें उड़ा दिया था। पलेक्सन्दरके सेनापति पारदिकाम् उन्हें समुचित शाक्ति देनेको चांगे सड़े। भोषण समर हुआ था। परसत्य युनानी मरे और रक्तको नदी बह चली। युनानके इतिहासमें ऐसा भीषण काण्ड कभी हुआ न था। कोरे छः हजार शिवसके लोग मरे और साठ हजार सन्ध भरके लिये गुलाम बने। युनानके दूरमें लोग इस दृष्टान्तसे भुके घोर जन्मभूमिके स्वाधीन करनेकी प्राया मिलकुल छोड़ बैठे थे।

पलेक्सन्दर मकदूनियाको मोट पड़े। इस बार यह गुहतर प्रतके उद्योगधनेमें यत्नशुं हुए। बालककानने इनके मनमें इस बातकी प्राया रखी,— ईरान राज्य जिते और एशियाएण्डके अधीनर बनें। इनके पिताने बहुत दिनमें ईरान जीतनेकी नानाप्रकार प्रायोजन लगाया था, किन्तु लतकार्य ही न सके। फिर भी यह प्राय पर्यन्त मौर ईरान जीतनेको चांगे पड़े थे। उमी समय इनके कनिष्ठ बन्धुने विवाह कर लेनेका कहा, किन्तु इन्होंने उनको कोरे बात न होने और अपना जो कुछ धनादि था, सब बन्धुवोंको दे हाता। इंसम महाकायंसेधमें ज्ञानमें

पारदिकामने इनसे कहा,—पापने सब मामान तो दूरमेंको दे हाता, अपने लिये क्या उजाय भीचा है इन्होंने हंसकर उत्तर दिया,—प्राया हमारे प्राय है। इनकी पशुपक्षितमें पक्षिपेतर मकदूनियाके शासनकर्ता हुए थे।

यसम्बन्धमें पलेक्सन्दर एशियासमुच्च बद्, मायमें पांच हजार मवार घोर तीस हजार पैदल थे। सब लोग प्राविहसमें जा पड़े। प्राविहसके पास ही प्राविमरो नामक स्थान भो है। जहाँ इनका मृत देह शक्तिकाके मध्य गाड़ा गया था। यह लेखन हिफाटियानको प्राय ही पाकिलेगका समाधिस्थान देखने पड़े है और उमें देखते ही बीसप्रदम उत्तेजित हुए। पूर्वपुरुषके वीरत्वका बात माचते मोरने इन्होंने यह स्थान छोड़ा घोर फोजमें मिल मीघू ईरान जीतनेका कदम बढ़ाया।

नानास्थान प्राय यह प्राकिस नदी किनारे पड़े थे। उन नदीके पूर्वकुल ईरानके बादशाहकी फोज मरुकी राह देखते रहने। इन्होंने उमी पक्ष, ईरानकी फोजपर हमला मारा। मकदूनियावाने वीरके युद्धमौलमें ईरानियाके पैर लपट गये थे। पलेक्सन्दरकी ही तलवारसे ईरान-राज दरामुचके जामाता धरागाये हुए।

उमी समय रोहम दीवके शासनकर्ता शिमन् नामक कोरे युनानी ईरानकी घोर मकदूनियामें बहुत मड़े थे। इन्होंने उन्हें भी भीचा देखाया। परसत्य युनानी घोर ईरानी फोज काम पाये घे। कोरे दो हजार मियाही कैद हुए। घेरे इन्होंने एशिया माइनर, लाइडिया, प्राइपोनिया, करिया, पाफ्फाइनिया घोर काप्योदिया नामक जगह जिते थे। किङ्गना नदी किनारे पड़े यह बामार पड़े। इस पक्षधामे इनके बन्धु पार्मेनियाने शिंभे लिखा था,—'सावधान। कोरे शक्तिमक प्रायको विवाह भीषण दिना मार न हाते।' इन्होंने बन्धुका पत्र पाते ही अपने शक्तिमक कनिष्ठको बुला भेजा घोर उनमें दया पानेकी कहा। कोष पानेसे कनिष्ठ मर गये। लोगोंने समझ लिया

गिर गया। उसी समय मरुदूतिया-शृपतिने सुना, कि इनके लड़का हुआ था। किन्तुपने जाकर पुत्रका सुँद देखा। देवप्र भोग करने लगे,—यह पुत्र क्षत्रियोका राजा जागा। किन्तुपने कुमारका नाम पत्तिकुसुन्दर रच दिया।

पत्तिकुसुन्दरने भोगराज्यका बिना छापी। प्रथम लिपिनिदानामक व्याजि इनके प्रधान मित्रक बने थे। १३ वष वयःक्रमके समय किन्तुपने प्रसिद्ध दार्शनिक परिष्टटनको पुत्रकी मित्राभे भगा दिया। परिष्टटनके सुमिद्याशुचने पत्तिकुसुन्दरकी मनोवृत्ति सुन गयी थी। उसी मित्राके फलसे यह भविष्यत्में विद्योत्तं महाशयकी मानन कर भके। समयानुसार परिष्टटनने राजनीतिक सम्बन्धपर कोई पात्र निष्ठा, त्रिसका प्रधान उद्देश्य पत्तिकुसुन्दरकी मित्रा देना था। इनके भाग्यमें श्रेया मित्रक रखा, येभा किमी दूरमें सुशोभाय राजाकी न मित्रा।

पठने समय पत्तिकुसुन्दरके हायमें मर्षदा ही दृग्निष्ट रहता और पाकिस्तेमके वीरत्वकी कहानी सुनना बहुत पसन्दा करता था। जब पाकिस्तेमका वीरत्व इनके स्मृतिपथमें उदय होता, तब वीरमद चढ़ जाता; तनहार भ्रमभङ्गा ठहता। भोग कहते, पत्तिकुसुन्दर ही पढ़ने पाकिस्तेम रई। पत्तुतः द्यु-धौर पाकिस्तेमके वंशमें इनकी माताने जन्म लिया था।

वीरत्वके परिचय देनेका समय था पढ़ूँवा। किन्तुप इन्हें राज्य मौव युद्धकी लगे गये। उस समय इनका वयस १५ वर्ष रहा। फिर कितने ही भोग विद्रोही भी बने थे। किन्तु इन्होंने उन्हें दशा दिया। उसी समयमें भोग इन्हें राजा और किन्तुपका सेना-पति कहने लगे। किन्तुप इनका बड़ा प्यार करते और यह भी उन्हें बहुत चाहते थे।

वयस बढ़नेमें भोगोंकी मतिगति पलट जाती है। उसीही श्रेया उपयुक्त पुत्र रहते भी किन्तुपने लिपो-पेटाकी प्याह लिया था। विवाह करनेपर यह विताभ मन हो मन कुछ विरह रूप। योड़े दिन बाद किन्तुप पुत्र रूपमें मार जाने गये थे। भोग

कहने लगे, निकुन्दर उस इत्याचार्यमें लित रहे। योड़े यह स्थापित भारभी मरुदूतियाके पक्षिपति बने, किन्तु निरापद रह न सके।

पदाचार्य नामक लिपोपेटाके छोटे मामाने लिपो-पेटाकेगर्भमें उत्पन्न किन्तुपके दुसरे लड़केको राज्य दिनामिकी पेटा भगायी थी। उसी समय उत्तर पौर पवित्रको पमभ्य जातिमें भी स्थापित होनेकी पक्ष उठाये रहे। सिमन्दिनिम् मरुदूतियाके विरघ्न रूप, जिनमें समय यमान देगमें हल चन पड़ गये। पत्तिकु-सुन्दरने देवा,—चारो पौर महा विपद है; यदि हम हम महाविपदमें न डूटें, तो राज्य, धन, मान सब कुछ हायसे निकल जायेगा। सुदिमान् महावीर पति भलर कोई निष्ठाति दूँकेने लगे। इन्होंने ऐकेटम् सेनापतिकी पादेम दिया—चाव कोत्रके साथ एगिया जायें और लेवे हो मके, दुष्टि पहा-नामका मार या पकड़ हमारे पाम से बायें; महा-वीरका पादेम प्रतिपालित हुआ, ऐकेटम्ने पहा-नाम्की पराजित और निहत्त किया। इधर पत्तिकु-सुन्दर सेनापतिकी पादेम सुना फोत्रके माव युनाम जा पढ़ूँचे थे। पत्तिकु विना युद्ध ही हाय पा गया। यहाँसे यह विपोषियाकी पौर चल पड़े थे।

विश्वके भोग छान्रमें देखते रहे,—हम फिर स्थापित होंगे, पधीनताका जोग पच उठाना न पड़ेगा। किन्तु उनका सुपुत्रस्र टूट गया, सुनमें पाया, महावीर पत्तिकुसुन्दर विश्वके बाटमिया दुर्गपर भा पढ़ूँचे। पत्तिकुसे पवित्राभी इन्हें पागल बना उपहास उढ़ाने रहे, किन्तु पकण्यान् पागमभ सुन सब टर गये। ममा चरसुत थे, उतना शीघ्र युद्धका पायाजन भगा न सके। उस समय उन्होंने दिर्भान भावमें इनके पाम दूत भेजा, जिनमें पाकर कहा,—ममी पदभवाभी महावीरके पाग-मनमें पामन्दित है; दुःख केवल हमी बातका है, कि महावीरके पारण्य पात्रमपको उग्रश्र संन्य रहना कर नहीं सकते। इन्होंने दूतका समादर दिया था। दुनागके सभी भोग इनमें भुक्त गये, देवन ब्याटोंमें इनके पधीन रहना न चाहा।

अलेक्सन्दर मकदूनिया वापस आये थे। फिर यह रीतिमत रणसत्वा लगा असभ्य लोगोंकी दबने उत्तरको घोर चल पड़े। दानियुव नदीके तीर सीर-मुसु नामक असभ्योंके अधिपति हार गये थे। उसी जगह अपरापर अनेक जातिने इनकी अधीनता स्वीकार की।

इस स्वाधीनता-प्रिय यूनानी डिमस्थिनिसके उत्-साहवाक्यसे प्रभावित पड़ उत्तेजित हो गये थे। उन्होंने स्वदेशकी स्वाधीनताके उद्धारको जीवन उत्सर्ग करनेका सङ्कल्प किया। उसी समय यूनानमें गप उड़ी,—अलेक्सन्दर इलिरिय युद्धमें मारे गये हैं। शिवसवासी मकदूनियावालोंको अपने देशसे भगाने और यूनानके अपरापर स्थानमें दूत भेज सबको भड़काने लगे। पीछे संवाद मिला,—अलेक्सन्दर मरे नहीं, आज भी जीते और शिवसमें था पड़ुं हैं। पहले इन्होंने सन्धिका प्रस्ताव फेलाया, किन्तु लोगोंने उसे हँसी-दिल्लगीमें उड़ा दिया था। अलेक्सन्दरके सेनापति पारदिकस उन्हें सन्तुष्टि प्राप्त देनेको भागे बढ़े। भोषण समर हुआ था। असंख्य यूनानी मरे और रक्तको नदी बह चली। यूनानके इतिहासमें ऐसा भोषण काण्ड कभी हुआ न था। कोई छः हजार शिवसके लोग मरे और साठ हजार सन्ध भरके लिये गुलाम बने। यूनानके दूसरे लोग इस दृष्टान्तसे भुके और जन्मभूमिके स्वाधीन करनेकी आशा बिलकुल छोड़ बैठे थे।

अलेक्सन्दर मकदूनियाको लौट पड़े। इस बार यह गुदतर व्रतके चहोचनमें यद्धान् हुए। वासककालसे इनके मनमें इस बातकी आशा रही,— ईरान राज्य जीते और एशियाखण्डके अधीश्वर बनें। इनके पिताने बहुत दिनोंसे ईरान जीतनेकी नानाप्रकार आयोजन लगाया था, किन्तु कृतकार्य हो न सके। फिर भी यह प्रायः पर्यन्त सौंप ईरान जीतनेको आगे बढ़े थे। उसी समय इनके कतिपय बन्धुने विवाह कर लेनेकी कहा, किन्तु इन्होंने उनको कोई बात न सुना और अपना जो कुछ धनादि था, सब बन्धुवोंको दे डाला। इस महाकार्यक्रममें जानेसे

पारदिकामने इनसे कहा,— आपने सब मामान तो दूमरेको दे डाला, अपने लिये क्या उपाय सोचा है इन्होंने हंसकर उत्तर दिया,—आशा हमारे साथ है। इनकी अनुपस्थितिमें पन्थिपेतर मकदूनियाके शासनकर्ता हुए थे।

वसन्तके प्रारम्भमें अलेक्सन्दर एशियामिमुख बढ़े, साथमें पांच हजार सवार और तीस हजार पैदल थे। सब लोग घाबिडसमें जा पहुँचे। घाबिडसके पाम ही भाबिसरी नामक स्थान भी है, जहाँ इनका शूत देह स्तिकाके मध्य गाड़ा गया था। यह क्लिबन डिफाटियातको साथ ले पाकिलेयका समाधिस्थान देखने पड़ुं थे और उसे देखते ही वीरमदसे उत्तेजित हुए। पूर्णपुरुषके वीरत्वको बात सोचते सोचते इन्होंने यह स्थान छोड़ा और फौजमें मिल शीघ्र ईरान जीतनेका कदम बढ़ाया।

नानास्थान लांघ यह घानिकस नदी किनारे पड़ुं थे। उस नदीके पूर्वकूल ईरानके बादशाहकी फौज गद्दुकी राह देखते रही। इन्होंने उसी पक्ष, ईरानकी फौजपर हमला मारा। मकदूनियावाले वीरोंके युद्धकोयत्नसे ईरानियोंके पैर उखड़ गये थे। अलेक्सन्दरकी ही तलवारसे ईरान-राज दरायुसके नामाता धरायाये हुए।

उसी समय रोडस दीपके शासनकर्ता मिमन् नामक कोई यूनानी ईरानकी ओर मकदूनियासे बहुत लड़ुं थे। इन्होंने उन्हें भी नीचा देखाया। असंख्य यूनानी और ईरानी फौज काम आये थी। कोई दो हजार मियाठी कैद हुए। पीछे इन्होंने एशिया माइनर, साइगिया, पाहचोनिया, करिया, पाम्फाइनिया और कापदोकिया नामक जनपद जीते थे। किड़ना नदी किनारे पड़ुं थे यह बीमार पड़े। इस अवस्थामें इनके बन्धु पारमैनिधोने चिट्ठीमें लिखा था,—‘सावधान! कोई विकृतसक पापको विपत्त भोषण जिला मार न डाले।’ इन्होंने बन्धुका पत्र पाते ही अपने विकृतसक कनिष्कको बुना भेजा और उनसे दवा खानेकी कहा। भोषण खानेसे क्लिब मर गये। लोगोंने समझ लिया,

विश्व दरागुप्तके लक्ष्मीका वा पद्मेकस्मन्दरका मन्त्र-
भाग अन्तर्गत उदात्त हुए थे।

पद्मेकस्मन्दर चण्डे होति ही ईशानके बादमाहनि
सङ्गतिको बन पड़े। मारुतिमिदिया नामक ज्ञानमें
घारें पांच भाष्य प्रोज मान्य ही ईशानके बादमाहने
इतना मानना पड़ता था। मन् ई-० मे १३३ वर्ष
पचने मरंत और लज्जदार घोरतर मुह हुआ। दरा-
गुप्त वीरे वट गये। उनका परिवारवर्ग और धन
व्यापि (विप्रेताके हाथ ला पड़ा था। विजयी मन्-
दूनिपा-पतिने दरागुप्तके परिवारवर्ग प्रति यथेष्ट
मन्मान देयाया।

दरागुप्तने युधिष्ठिर किमारि भाग दो बार मन्त्रिका
प्रसाध उठाया था। किन्तु इन्होंने उनको बान न
मान कइना मना,—यदि पाप हमें समय परिचायाका
अधिपति शोकार करे, तो हम पापके प्रसाधको रख
सकते हैं। उनके बाद यह मिरौया और किनिगि-
याकी और पानी बड़े थे। राजमें दामास्त्रम और
लमका राजकोपस्य रत्नरागि इनके हाथ लगा।
तायरीमें पदुचने पर यहाके लोगोंने लज्जदार तनकार
उठाये थे। मन् ई-० मे १३२ वर्ष पचने मात
मन्नेने अयोधके बाद इन्होंने तायरको धूममें
मिनाया। यहामें यह पालेदारनकी बसे थे।
शुम्भस्य मागरका तीरवर्ती स्यामसूह इनके अधि-
कारभूत हुआ।

दूरमें वर्ष पद्मेकस्मन्दर मिश्रमें जा पड़े। यहाके
भोग बहुत दिन ईशानके अधीन रह बिलकुल निव-
साध हो गये थे। पद्मेकस्मन्दरको देव और लज्ज-
कारो समझ मन्ने अधीनता शोकार की। सभी
समय मिश्रमें इन्होंने पद्मेकस्मन्दरका नगर बनाया था।

मिन्नेके भोग ईशानके अधिकारमें पचने प्रानेन
प्रयाजा अनुदायी धर्म-कर्म कर न सकते थे, किन्तु
पद्मेकस्मन्दरने उनको पूर्ण प्रयाजो मान लिया।
इन्होंने मिश्रमें पामनदेवके मन्दिमें जा पुरोहितोंका
बड़ा पादर-मन्मान किया था। इन्होंने भी इन्हे
देवपूज मन्मान किया। सभी जगह देवराजो सुन
चरो ही,—'पद्मेकस्मन्दर इतिराके राजा होमि।'

देवादेव सुन महावीर पद्मेकस्मन्दर और भा लक्ष्-
मीकित हुए और यहामें लम पामिरीया ला पड़े।

उपर ईशानके बादमाह दरागुप्त पांच भाष्य प्रोज
कोइ पारश्वामके रचयेतमें लतर पड़े थे। किन्तु
शिमका पट्ट पच्छा होता, मनुष्य लमका बरा कर
सकता है। इतनी ज्यादा प्रोज रचते ही दरागुप्त
इतने फिर हार गये। इन्होंने दरागुप्तको पकड़नेकी
चेता बनायी थी, किन्तु वह गुप्त भावमें धन लन
खोड़ भाग पड़े हुए।

उन समय वास्तिन और शुना परिचा-पच्छाका
रख-भाण्डारखटप रहा। इन्होंने पचाध दोनो स्याम
ने निदा था। पीछे यह ईशानको राजधानी पामि-
योनिम नगरकी ओर बड़े। उमो जगह इनका
अरिच कुह बदन गया था। जो महावीर मुह शिख
दूरमा पामोद न समझते और देहके स्वाध्यायिधान-
को मधंटा मथेष्ट रचते, वही अमनामक एवं रमणी-
गर्भ वेदित ही मध्य पीते पीते मत्तपाने बने।
येमो अथस्यामें एक वेग्राका यह बड़ा पादर करने
बने थे। किमी दिन उमो धारविषामिनीने इतनी
पामिपोनिम जला क्षामने कहा। इन्होंने वेग्राकी
मनसुष्टिकि निये ईशानकी बहुजनाकीर्ण मनीहर
राजधानीको लना म्नाकमें मिना दिया था।

पीछे जब इन्हे चेतव्य पाया, तब दृष्ट लमेंके
निमित्त पनेक दुःख देयाया। विमस्य न मगा यह
ईशानके बादमाहकी टूटने निकले थे। राजमें शुना,
शेमान नामक वासिहकके हतपतिने दरागुप्तको कैद
कर रखा है। और ही वारकी मन्मान देना जानता
है। पद्मेकस्मन्दरने लभ शुना कि शेमान नामक किमी
मामास्य हतपतिने मधन पराक्रान्त ईशानके पाद-
माहकी कैद कर रखा था, तब मन्ने बहुत बट
पाया और दरागुप्तकी छोड़ने अविनस्य वासधमें जा
पड़े। यहा लाकर देवा, दरागुप्त लमसाध रहे,
शेमानमें लभे दाखल इतनी घाटन किया था। पद्मेक-
स्मन्दर लभे बना न मन्ने। इन्होंने ईशानपीछे
प्रयागुप्तार महाममारोइम दरागुप्तका ममाधिकार
पूर उतारा था। पीछे दुर्जन शेमानको लसुधिन

शास्त्रि देनेके निमित्त आगे बढ़े। उस समय वेसास हिकोनिया, ईरान, बाबिल और सगदियानाके अधिपति बन बैठे थे।

चारो और खबर फैल गयी,—‘अलेक्सन्दर वेसासको शास्त्रि देने आते हैं। सगदिनियाके छत्रपतिने वेसासको पकड़ा दिया। वेसासने समुचित शास्त्रि पायी थी। उसी समय पार्मेनिओके पुत्रने अलेक्सन्दरके विरुद्ध पड़यन्त्र लगाया। महावीर मकडूनियापतिको उसकी खबर मिल गयी थी। इन्होंने गुप्तमें भा पितापुत्र दोनोको मार डाला। सेनापति पार्मेनिओ निर्दोष रहे, उन्हें अपने पुत्रके पड़यन्त्रको बात मालूम न थी। सब लोग इस बातपर अलेक्सन्दरसे नाराज़ हुए, कि विना दोष ही सेनापति मारे गये। प्रवाद रहा,—जिस व्यक्तिके किसी समय चिकित्सकके विषपात्रसे अलेक्सन्दरको बचाया, उसे क्या यही पुरस्कार मिलना था।

सन् ई०से ३२६ वर्ष पहले इन्होंने शक लोगोंको जीत लिया, दूसरे वर्ष सगदियाना जा पहुँचे। वह स्थान पर्वतमय रहा। शीतके समय युद्धकी विशेष सुविधा न मिलनेसे यह नौतक नामक स्थानमें ठहर गये थे। वसन्तकालमें पर्वत-पर्वत अधिव्यान्त्र युद्धके बाद अलेक्सन्दरने सगदियानाको अधिकारमें लाया। इस युद्धमें बाबिलकवर्गीय कोई राजपुत्र और रक्षणा नामक उनकी कन्या बन्दी बनी थी। इन्होंने रक्षणाके भनुपम रूपसे सुग्ध हो विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद हर्मेलिस कालोस्थेनिस नामक थरिष्टलके किसी ग्रिथने इनके विषय तलवार उठायो था। इस बार मकडूनियाकी कितनी ही फौज मारी गयी, किन्तु वीरकेशरी अलेक्सन्दरने उन्हें यथोचित शास्त्रि दे दी।

सन् ई०से ३२७ वर्ष पहले यह भारतपर आक्रमण करनेकी आगे बढ़े थे। साथमें १,२०,००० फौज रही। अलेक्सन्दरने सेनापति टलेमी और हिकोनिया कितनी ही शुनिन्दा फौज ले सिन्धुकी ओर पहले ही दौड़ पड़े थे।

‘अलेक्सन्दर ससैन्य कावुर नामक स्थानमें जा

पहुँचे। वहाँइन्होंने कुलिगी (Choaspes) और गौरी नदी (Gyræus) पार हो बरणा (Aornos) को अधिकृत किया। पीछे यह सिन्धुनद पार भटक गये थे। सन् ई०से ३२६ वर्ष पहले इन्होंने पञ्चावधमें घेर रखा। राहमें सिन्धुनद-तीरयती कितने ही पहाड़ी लोगोंसे लड़ना पड़ा था। उस समय तक्षिलाराज बहुमूख्य उपहार ले और इनके पास पहुँच पहाड़ियोंके विरुद्ध साहाय्य दिया। इन्होंने वितस्ता (Hydaspes) नदीतीर जा देखा, कि पुरुष (Porus) नामक कोई प्रबल पराक्रान्त हिन्दू नापति प्रसंख्य सैन्य ले युद्ध करने आगे बढ़ा था। अविचल्य ही रणवाद्य बजने लगा। हिन्दुओं और यवनोंमें घोर-तर संग्राम उपस्थित हुआ था। अथर्वयमें पुरुषराज हार गये। अलेक्सन्दर हिन्दू राजाका वीरत्व देख अतिशय सन्तुष्ट हुए और उनके साथ मित्रता स्थापन की। युद्धसे पहले पुरुषराज वितस्ता और चन्द्रमागाके जनपद पर ही शासन चलाते थे, पीछे अलेक्सन्दरने दूसरे भी कितने ही जनपद जीत उनको सौंप दिये। इस कामसे पुरुषराज पर तक्षिला-नृपति बहुत नाराज हो गये थे।

एकमास यह वितस्ता किनारे रहे, उसके बाद बुकेफल और निकाया नामक दो नगर बसा चन्द्रमागाके पार जा पहुँचे। इरावती किनारे काथी नामक प्रबल जातिके साथ इन्हें कई बार लड़ना पड़ा था, किन्तु यह किसी तरह अधीन न हुई। इन्होंने काथी जातिका राव्यादि जीत उन लोगोंको बांट दिया, जो वयमें आ गये थे।

घघरा नदी किनारे आ इन्होंने सुना, कि उसमें पूर्व और दूसरा भी रक्षाकर समृद्धियाली जनपद है। यह खबर पा इन्हें सोभ लगा। किन्तु इनके किसी सैन्य सामन्तने आगे बटना चाहा न था। सिपाही बहुत दिनसे जन्मभूमि छोड़ घूमते रहे, उस समय उन्हें घर वापस जानेकी उत्कण्ठा हुई। अलेक्सन्दरको बेमन नौटना पड़ा। इन्होंने अपने भारत-आक्रमणका धरणाचिह्न बना रखनेको घघरा नदी किनारे बड़े-बड़े बारह बुर्ज बनवाये थे। लाले समय

यह चंपरा नदी पर्यन्त पधित्त राजस खान पुन-
राजकी भीषण थी।

इसमें वितस्ता नदी तैर पापम का सिन्धुनदके
सुधानेमें पक्षुपमेकी जहाजपर चढ़ दक्षिणाभिमुख
जाता थी थी। गर्तमान मूलतानके निकट मानव
(Mall) नामक जामिनी भीषण मुह दृष्या, जिसमें
इतके मुहपर पायात पाया था। उस घटनार्थ मैथ्यागण
भी भयभीताह ही गया था। किन्तु इन्होंने भीषण
पारोप्य पाया। इनके पारोप्यका समाचार सुन
पपरापर भाव्यगण बहुमुख्य उपटोक्त भिन्न वयो
भूत बना था।

इन्होंने वितस्ता खोर सिन्धु-नदके मद्मव्यानपर
हई जिने खोर जहाजी चले निर्माण कराये। उस
जगह मूषिक (Musicians)-राज इतके लड़ पड़े
थे। किन्तु उत्थानमात्र ही यह चेत पाये।

सिन्धु खोर करारोंके पामका मनुदय स्थान भीत
यह ईरान पापम पक्षुये थे। वहाँ इन्होंने दरायुमकी
कन्या स्नातिरागे विशाह किया। उस समय कोई दम
हजार मकदूनियाके सिपाही ईरानी मकदूनियोंको
प्याह प्रभुके पनुयती दृष्य थे। इन्होंने उक्ते कितना
ही योतुक दे टाका।

तारपीन नदीतौर पक्षुय इन्होंने बुढ़े सिपा-
हियोंको रोग पापम जाने कहा था। उसी समय
द्विपाटियान नामक इनके बन्धु खोर प्रिय सेनापति
मर गये। बन्धुके मरनेमें यह बहुत ही कातर पड़े,
माने उनके साथ इनका पौर्यपुं भी पक्षुसित
दृष्य। बादमाईक तरह बड़ी भूमधाममें द्विपाटि-
यानको मारी दी गयी थी।

पलेकसन्दर बाबिलनकी खोर बड़े। राजमें
जिसने ही हवापाने इन्हें वहाँ जानेमें रोक था।
किन्तु यह उनको पान न मान बाबिलन या पक्षुय।
उस जगह यूनान, इटली, कापेंज, स्विट्सीया, पाइयो-
निया प्रभृति स्थानके राजदूतगणमें इनको मन्थान-
रथाकी थी।

बाबिलन राजधानी बनाया गया। उसी जगह
पलेकसन्दर महाकार्यमें आरत दृष्य थे। इन्हें इच्छा

रथों—ममपत्र जगत् कीते खोर सभ्यताके पामोक्तमें
विषयमल्लकी पामपायेमें। किन्तु मनकी गामना
मनमें ही रह गयी। फिर जगत्का पक्षीग जगती-
मगाते पक्षित दृष्य खोर १२ वर्ष ८ मास राजसत्त कर
जगत्मुख्य महावीर सिक्न्दरके कामका पानिय
भीकार किया। महाममारोहमें इनका महदेह
सुवर्ण पाधारमें रचित रह पलेकसन्धिया नगरमें
माड़ा गया था।

इस पातपर बड़ा भगड़ा उठा,—'पक्ष राजा खोम
खोग'। किन्ती समय कई बन्धुमें इनमें पूजा था,—
पापका उत्तराधिकारी खोम खोग। मौरवरमें उत्तर
दिया,—'योग्य स्थिति'। लोग इनका पक्ष देनेकी योग्य
स्थिति टूटने लगे। उस समय रथका गर्भवती रथी।
मृत्युके समय यह चपमो राज पक्षुरो पारदिकासकी
भीषण गये थे। उसमें सबने समझ लिया,—रथपाके
पुत्रको गैराभावस्थाने पारदिकात् रथकक्षरूप रह
राजकायें बनायेगे। रथपाके पुत्र खोमपर वहाँ बात
पागे थाये।

ऐसा कहना ठीक नहीं पड़ता, कि पलेकसन्दरने
मनुष्यरज्जमें भिदिनी भर पपना पाधियस्य जैसाया था।
इन्होंने पायास्य सभ्यता, पायास्य भाषा खोर पायास्य-
नीति पक्षमें पधित्त राजसम्बन्धमें बाँट दी। पक्षिम
गतेहीय खोर पूषं खोनराज्यके प्राग्दग तक सकस
स्थानके महाकायमें मकदूनिया-खोरका नाम मिलता
थे। विद्योपतः पारया (ईरान) प्रगति स्थानमें इनके
सम्बन्धपर कितनी ही पक्षुत-पक्षुत उपकथा निकली
थीं। यहाँतक, कि प्राचीन कालके लोक इन्हीं देवता
माननेमें पक्षुकरत न थे। वस्तुतः इन महावीरों ही
प्राचीन भूतरन, प्राचितस्य, मुक्तात्म प्रभृति पक्षमें
पापस्यकेय विषय उदाहित दृष्य थे। फिर इन्हीं
महावीरका पनुसरथ जगा युरोपीयजन रज्जपर
भारतपर्यंका पक्ष टूट गया था।

पलेक (हिं० पि०) १ पल्लव, पल्लव, ममभूमि
न पानेयाना। २ लिखनेके माध्यामिक, शिवाटाट,
सिवाका हिमाच न लगे।

२ उद्धोना पामोय पापस्यपर जिनेके पुत्र

पट्टिकाकी धर्म। सन् १८६४ ई०को अलेखस्वामीने इसी कटकमें फँलाया था। जहसि शीघ्र सम्बलपुर जिलेमें था पहुँचा। मरिनाथकी देखो।

अलेखा, अलेख देखो।

अलेखी (हिं० वि०) न्यायविहीन, ज्ञानिम, गैर-वाजिब काम करनेवाला।

अलेख—अख्यईके काठियावाड़ राज्यका पर्वतविशेष। यह धार्कके खागसरौतक फेंसा और दक्षिण-पश्चिम भागि जा उंचाईमें बढ़ गया है।

अलेपक (सं० त्रि०) नास्ति लेपः कुत्रापि कृत्तिर्यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ निःसम्बन्ध, तात्तुक, न रखनेवाला। २ निर्लेप, बेदार, जो फँसा न हो। निष्कृत्, नञ्-तत्। ३ लेपन न करनेवाला, जो लेपता न हो। (पु०) ४ परमात्मा।

अलेले, अरे देखो।

अलेग (सं० त्रि०) १ अधिक, ज्यादा, बहुत, जो कम न हो। (अध्य०) २ विलकुल नहीं।

अलेखैज (सं० त्रि०) दृढ़, मजबूत, कायम, जो डिगता न हो।

अलेया, अलिया देखो।

अलोक (सं० पु०) न लोक्यते प्राणिभिरोच्छरते; लोक कर्मणि घञ्, ततो नञ्-तत्। १ पातालदि, ज्मोनुके भीतरका सुख। २ लोकका अभाव, दुनियाकी अदम-मौजूदगी। ३ जगत्का अन्त, दुनियाका अन्तिमा। ४ अदृश्य लोक, गैरसुखसिद्ध दुनिया। ५ जनका अभाव, लोगोंको अदम मौजूदगी। ६ अदृश्य वस्तु, देख न पढनेवाली चीज। (हिं०)

७ मिथ्या कलह, झूठो बदनामी। (त्रि०) नास्ति लोको यत्र, नञ्-बहुव्री०। ८ निर्जन, वीरान्, जहाँ लोग न रहें। ९ अज्ञातपुष्ट्यपुष्ट्य न करनेवाला। १० न देखनेवाला। (अध्य०) लोकस्याभावः, अभावे अध्ययी०।

११ लोकाभावेन, लोगोंके न रहते, एकात्मनः।

अलोकन (सं० क्ली०) अस्तधानं, तिरोधान, अदर्शन, अदमरूपत, देख न पढ़नेकी हालत।

अलोकना (हिं० क्ति०) दृष्टि डालना, नजर लड़ाना, देखना-भालना।

अलोकनीय (सं० त्रि०) अदृश्य, गुम, देख न पढ़नेवाला।

अलोकसामान्य (सं० त्रि०) लोकसामान्य इतर-जनमाधारणं न भवति, अन्यार्थे नञ्-तत्। असाधारण, महत्, गैरमामूली, बड़ा, जो दूसरे लोगोंके बराबर न हो।

अलौका (सं० स्त्री०) नास्ति लोको दृष्टिर्यत्र वृषं-वालुकादिभिराच्छादनात्, स्त्रीत्वात् टाप्। १ इटक विशेष, किसी किष्ककी ईंट। २ मितिस्य इटक, दीवारमें लगी हुई ईंट।

अलोकित (सं० त्रि०) अदृष्ट, देखा न हुआ।

अलोक्य (सं० त्रि०) लोकाय स्वर्गादि लोकभोगाय हितं तत्र साधु वा; इतिार्थे साध्यं वा यत्, ततो नञ्-तत्। १ असाधारण, अप्राम-भाषा, गैरमामूनी, वैदुष्य। २ स्वर्गादि लोकको असाधन, जिसे करनेसे स्वर्ग न मिले।

अलोक्यता (सं० स्त्री०) स्वर्गादि प्राणिकी अयोग्यता, विद्विष्य पहुँचनेकी नाकाबिलियत, जिस हालतमें स्वर्ग न जा सके।

अलोना (हिं० वि०) १ अलक्षण, वेनमक, नमक न पड़ा हुआ। २ फीका, वैजायका, खादरहित।

अलोप (हिं०) नोर देखो।

अलोपा (हिं० पु०) अन्नविशेष, कोरें दरखत। यह हमेशा हरा-भरा रहता है। इसकी मकड़ी सुर्षं सुसायम धीर मजबूत होती है। यह नाप, गाड़ी, घर बनानेमें काम आती है और पानीमें पड़ी रहनेसे भी नहीं बिगड़ती।

अलोपाङ्ग (सं० त्रि०) दूषित अङ्ग न रखनेवाला, जो वैषय अज्ञा रखता हो।

अलोभ (सं० पु०) लोभो धनादिवृत्तिषु हा तस्य अभावः, नञ्-तत्। १ धनादिकी अतिभ्रूहाका अभाव, दोस्त धरें रहके सान्त्वकी अदममौजूदगी। (वि०) नास्ति लोभो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ मोभरहित, साधक न रखनेवाला, अलोभी।

अलोभिन् (सं० त्रि०) लोभोऽस्त्राग्निन् इति ततो नञ्-तत्। लोभगुण्य, साधकसे आत्मी।

पद्मोदय (मं० पु०) मन्मथ विदित. किमी
त्रिभुक्तो मन्मथः। पद्म विमल-परिमल, खेताङ्ग
एवं मन्मथस्य स्त्रीता ई। इमका नाम इमवीये
बदासा श्री सुदिकर उदरना ई। (मन्मथस्य)

पद्माभय (मं० श्री०) तुष्यविदित, कोई दरस्य।
पद्माभयस्य (मं० श्री०) शोभरीममं पानस्य म
भयभेगामा, तिममं सुदीपे शोभते न चठे।

पद्मान (मं० त्रि०) न सोमसु मन्मत्तत्। १ पव-
पव, उदरा दुपा, श्री दानता न हो। २ वपा-
रहित, भोलाभयो न हो।

पद्मोभा (मं० श्री०) हृद्योविगीय, कोई बहर।
इमके प्रदेक चार एतमं चोदह चोदह पचार
इमके ई।

पद्मोनिश (विं० पु०) पचदपता क्याम।
उदराय।

पद्मोत्त (मं० त्रि०) प्रत्येक विषयमे निरपेक्ष,
आदिह शातकी परया न रचनेवासा।

पद्मोद्भूत (मं० श्री०) प्रत्येक विषयमे निरपेक्षता,
आदिह शातकी विपरयायी।

पद्मोद्भूत (मं० त्रि०) मन्मत्तत्। १ पत्नभिसाय,
विश्वरिहस्य, पन्थी शोभ नामने पठते भी त्रिमका दिन
न चने। २ भोभशूय, नामक म करनेवासा।

पद्मोद्भूत (मं० पु०) न सोदित रिदिक-धनादि
कथमिच्छति म्द कर्त्तरि पद्म, ततो मन्मत्तत्।
१ पारिभाष्य म्दार्दिकं पद्ममंत वापि-विगीय।
(श्री०) मन्मत्तत्। २ भोदभिय पद्म, श्री शोभ
भोदा न हो।

पद्मोद्भूत (मं० त्रि०) मन्मत्तत्। १ इहशूय,
सूत्रमं सुधी। २ पद्म, श्री नाम न हो। (पु०)
३ इहपद्म, नाम कयम।

पद्मोद्भूत—हृद्य-पदेगशाने पेगु त्रिभुके मांतमाकी
धामाधिय। मन् १०३३ ई० त्रिभुक्तो बनवा मभाने
इमंनि हरा वाया राजधानीमें पद्मना राजवंग प्रसि-
हित विद्या, १०३८ में देगुकी जीत पश्चिम त्रिभुके
क्षुदति व्याहमेइमंशोभकी कोटी बनवाया। यह पद्मने
शौर्य सुचके कारण पश्चिम प्रमंशामाजन श्री म्दी ई।

पद्मोद्भूत (मं० त्रि०) कोविपु विदितं तम्।
मन्म-मन्म। कोकमं पविदित, त्रिभु श्रीमं मदी
ज्ञानने। वैद्याधिक मन्मथिह पद्म प्रभाति इन्दिपके

निहटप्य न होमिपर भी पद्मके प्रत्येक शोता ई। भेमे
एक घटको मन्मथ देवनेमें पदिविंके मर घटोंका ज्ञान
शोता ई। वैद्याधिक भोग प्रत्येककी भौतिक चोर

पद्मोद्भूत घटकी दो प्रकारका कहते ई। एममें निह-
टप्य जो घट देना जाता ई, एमका नाम भौतिक
प्रत्येक ई। चोर जो घट मन्मथ मदी देना जाता

पद्मघ घटस्य रूप एक धर्माज्ञानकेतु मभो ई, विना
ज्ञान शोता ई, एमका नाम पद्मोद्भूत प्रत्येक ई।

पद्मोद्भूत (मं० श्री०) मन्मका पद्मव्य लयागम,
त्रिभु ज्ञानतमं मन्मत्त पद्मीह मदी।

पद्मोद्भूतमधिकर्ष (मं० पु०) न सोविपु विदित:
मविषयः। मन्म-मन्म। पद्मनापममविषयके इन्दिप
चोर विषय पद्मार्थ प्रत्येककी विषयीभूत श्री वस्तु ई,
इम दोनोंके मन्मथका नाम मविषयके ई। सामान्य

मन्मथ, ज्ञान मन्मथ एवं योग्य-पद्मो तान प्रकारका
पद्मोद्भूतमधिकर्ष ई। एममें त्रिभु किमी एक घटके
नेमके निहटप्य होनेमें घटस्य रूप सामान्यपद्मकारा

मन्मथ घटोंका जो ज्ञान शोता ई, यह सामान्य
मन्मथके समान ई। घट देवनेमें को ज्ञान घटविमिह
ममभा जाता ई, यह ज्ञान मन्मथके समान ई। एवं

योगिनीके योगदारा श्री मन्म घटपटादिका ज्ञान शोता
ई, तमें योगम कहते ई।

पद्म (मं० पु०) १ त्रिभुविगीय, कोई पद्म।
२ मदीरका पचपय, त्रिप्यामी पद्म।

पद्म-पद्म—हृद्यई प्रामाथे मामिक त्रिभुका व्याम-
विगीय। मन् १०३३ ई०को मन्मथकीके मनाउनि
पद्मनाशानाम्ने पद्मनी-तदया त्रिभुके वाप इमंभी
शोन लिया था।

पद्मनाभ—मूलाम पद्मनाभके मभमे बडे पुत्र चोर ११
घटान बाटमाह। इमंनि मन् १२११ ई० १२३३ ई० तक
दिशोमें बुकुमत की। निहटप्य चोर मन्मथके मन्मथकी-
की व्यापिन बननेके इमके चार्दी मंथा देवना उपा
मा। किन्तु मन्मथ पाकमपमे एह मने मरने कहे।

चन्नीज खान्की फौज किसी अफगान शाहजादेको टूटने सिन्धु तक घुस आये थी, परन्तु दिखी पछुव न सकी। सन् १२२६ ई० में इनकी मृत्यु हुई और शाहजादी रजिधाकी दिल्लीकी गद्दी मिली थी।

अल्ता—बम्बई प्रान्तके कोल्हापुर राज्यकी तहसील। सन् १८६७-६८ ई०की इसकी पैसायय, बन्दोबस्त गुरु और १८६८-७० को खतम हुआ था। इसमें इकतीस गांव बहुत अच्छे हैं।

अल्ताय विज्ञाह—बगदादके २५वें खलीफा और अल् सुतौय विज्ञाहके पुत्र। सन् ८७४ ई०की यह अपने बापकी जगह गद्दीपर बैठे थे। १७ वर्ष ८ मास राज्य करनेके बाद सन् ८८१ ई०को बहा-उद्-दीलाने इन्हें सिंहासनसे उतार कादिर विज्ञाहको खलीफा बनाया।

अल्ताहिर वि-अमर-विज्ञाह मुहम्मद—अब्बास दंशके ३५वें खलीफा और अल्-नासिर-विज्ञाहके पुत्र। सन् ६२२ ई०की यह अपने बापकी जगह बगदादको गद्दीपर बैठे थे। इन्होंने ८ मास ११ दिन राज्यकर अपना प्राण छोड़ा और इनके लड़के २२ अल्मुस्तानसरकी सिंहासनका उत्तराधिकार मिला।

अल्तावर—बम्बई प्रान्तके धारवाड़ जिलेका ग्राम। यह धारवाड़से दग कोस पश्चिम बेलगांव हलियाल तथा धारवाड़-गांव सड़कके नाके पर बसता है।

अल्प (सं० त्रि०) अल्पवयसवाला अल्पवयसवाला । पा ॥ ११२३ ।
१ सुद, छोटा । २ ईपत्, कम । ३ मरपाई, जो मरनेवाला हो । ४ अप्राप्य, नायाब, काम मिलनेवाला । ५ अचिरस्थायी, ज्यादा न टिकनेवाला । (अव्य०) ६ थोड़ा, कम ।

अल्पक (सं० त्रि०) अल्प-स्वार्थ कन् । १ सुद, ईपत्, छोटा, कम । (अव्य०) २ न्यून रूपसे, थोड़ा-थोड़ा । (पु०) ३ पसाव, जवासा । ४ भूमिजम्बूज, जङ्गली जामन ।

अल्पकार्य (सं० स्त्री०) सुद विषय, छोटा काम ।

अल्पकेशिका, अल्पकेशी देखी ।

अल्पकेशी (सं० स्त्री०) अल्पः सुदः केश इव पत-मस्याः, स्वाहात् ङीप् । १ भूतकेशी, सफेद दूब ।

२ ईपत् केश-युक्त स्त्री, जिस औरतके बाल छोटे रहें ।

अल्पक्रीत (सं० त्रि०) ईपत् धनसे क्रय किया हुआ, सस्ता, जिसकी खरीदमें थोडा रुपया लगे ।

अल्पगन्ध (सं० स्त्री०) अल्पो गन्धो यस्य, बहुरी० । १ रत्नकैरव, लाल बघोला । २ रत्नकमल । ३ अल्प-गन्ध-युक्त वस्तु मात्र, जिस चीजमें ज्यादा खुशबू न रहे । (त्रि०) ४ अल्पगन्धि, अल्प-गन्ध-युक्त ।

अल्पगोधूम (सं० पु०) अल्पगोधूम, जङ्गली गेहूं ।

अल्पघण्टिका (सं० स्त्री०) अल्पघण्टिका, मनयी ।

अल्पचेष्टित (सं० त्रि०) जड़, अनास, सुवत्तल, सुस्त ।

अल्पच्छद (सं० त्रि०) ईपत् संयोग, बकित्त-पोय, अच्छीतरह कपड़े न पहने हुए ।

अल्पजीविन् (सं० त्रि०) अल्पायु, ज्यादा न जीने-वाला, जिसे मीत जल्द पाये ।

अल्पज्ञ (सं० त्रि०) ईपत् ज्ञान-युक्त, कम समझ ।

अल्पज्ञता (सं० स्त्री०) ईपत् ज्ञान होनेकी स्थिति, कम समझी, जिस हालतमें कम समझें ।

अल्पतनु (सं० त्रि०) अल्पा सुदप्रमिमाणा तनुः शरीरं यस्य, बहुरी० । १ खर्ब, वामन, छोटे जिख-वाला । २ दुर्बल, अल्प अस्थियुक्त, दुबला ।

अल्पता (सं० स्त्री०) १ न्यूनता, अल्पता, छोटाई बारीकी । २ अधीनता, मातृहता ।

अल्पत्व (सं० स्त्री०) अल्पता देखी ।

अल्पदक्षिण (सं० त्रि०) न्यून-दक्षिणा देनेवाला, जो ज्यादा भेंट चढ़ाता न हो ।

अल्पदृष्टि (सं० त्रि०) परिमित ज्ञानयुक्त, महदृष्ट दृष्टा रखनेवाला, जिसके निगाह बढ़ी न रहे ।

अल्पधन (सं० त्रि०) ईपत् धनसम्पत्, थोड़ी दौलत रखनेवाला, जिसके पास ज्यादा रुपया न रहे ।

अल्पधी (सं० त्रि०) ईपत् बुद्धियुक्त, कमसमझ, जिसे ज्यादा अज्ञ न रहे ।

अल्पनायिकाचूर्ण (सं० स्त्री०) अल्पधीमें हितकर औषध विधेय । अल्पवयस १ मास अल्पवयस (मिश्रं,

कीं, दोषन) कर्मिक लीन माय, विष्णु इ माय, बंधक व माय, वाता न माय, इन्द्रात्म एक दम चौर लीन माय, एव मन्त्रो वर्षे कर्त्तव्य प्रसादिका १ माय परिमाण बाह्यके दीर्घ काश्चि योगा काश्चि।

(११००००००)

अभ्यनिद्रा (सं० श्लो०) विप्रसन्न निद्रासदशा-
योग, नींद काम चक्रेकी बीमारी।

अभ्यस (सं० पु०) अभ्यं पसं यत्न, बहुमी० ।
१ सुदृढत लुप्तगी हृद्य, सुन्दरीके शिम पीथिकी पनी छोटी रहे। २ रक्तपत्र, सालकमल। ३ अभ्यस-
सुक्त हृद्य मात, छोटी पसीसा कोई भी पोषा।

अभ्यसक (सं० पु०) निरिक्त मधक हृद्य, पद्माक्षी
दुदरदिहा पोषा।

अभ्यसिका (सं० स्त्री०) रक्त यवामांशं पुष,
काम लटकीया।

अभ्यसगी (सं० स्त्री०) मिथंया, भौकका पोषा।
२ मुपमी, मूपरका वेङ्ग।

अभ्यसग (सं० श्लो०) अभ्यं यमयूषं पद्मम्,
कर्मशा० । रक्त कामल, काम कामल।

अभ्यसगीभार (सं० श्लो०) ईयन् अनुपाविषर्-विमिट,
त्रिमर्दि हनु प्रथति काम रहे।

अभ्यसिका, अभ्यसं ईश० ।
अभ्यसगी (सं० स्त्री०) मुरपची, मयूर।

अभ्यसद (सं० श्लो०) अभ्यं पदसुक्त, छोड़े मयेमी
रक्षमेवाभा

अभ्यसद (सं० श्लो०) सुद्र धर्मकार्यविमिट, मन्-
चरके छोटी काम करनेशाला।

अभ्यसुधिका (सं० श्लो०) पीन करपोर, पीना
कनेर।

अभ्यससम् (सं० श्लो०) ईयन् मलान वा प्रसादम्,
शिमके पीलाद वा रैदम काम रहे।

अभ्यसमार (सं० श्लो०) अभ्यं, सुष्य, ईयन्,
कर्मशील।

अभ्यसभावन (सं० श्लो०) सुष्यम्, दिकान्त।
अभ्यसभाय (सं० पु०) अभ्यं समाप्तं यत्न, बहुमी० ।
१ कर्मसम, तावुम् । २ शिवात्मक, धारवुम् ।

(श्लो०) अभ्यं मुद्रतावुम्, शिमके काम चक्रेन रहे।
इ चक्रेन प्रसादविमिट, शिमके ल्यादा सुक्त न दिधि।

अभ्यसभावन, अभ्यसम् ईश० ।
अभ्यसभाय (सं० श्लो०) ईयन् निद्रुक्त, ल्यादा रक्षी-
मालीन न कामेशाला।

अभ्यसाय (सं० पु०) अभ्यसागो प्रायः प्राय-
यागोः भावमयप्रतिवेद्येति, कामशा० । १ वर्षे
विमियके उपायविमियकी मृषये कर्त्तव्यत प्रायसायका
प्रयत्न विमिय, य, र, ल, य, क, म, द, य, च, म, ट,
द, न, म, द, न, य, क, चौर म दम चयरीकी मुद्रये
निकामनेकी कोमिम।

“अभ्यसभावनं कर्त्तव्यं विनाः कर्मणः कर्मिणी कर्मणः कर्मणः
अभ्यसगी अभ्यस्य चक्रेः सुदृढ, अभ्यसं वि०” (विष्णुसंहिता)
अभ्यः प्रायः प्रायक्रिया यथोपायार्थं, बहुमी० ।
२ वर्षेविमिय, अभ्यसायक्रियामि श्री निरुक्तनेशाला वर्षे,
त्रिम चक्रेके कोलनेमि ल्यादा कोमिम करना न चक्रे।
यंगका प्रयत्न, हरीय वर्षे चक्रेन वर्षं तथा य, र, ल, य,
चौर चक्रेन लज्जे वेयाकर्म, विदमिह कर्मका यम-
कामक चक्रेन वर्षं मद्रुह दिवसेके मध्यस्थित पूर्व मद्रुह
प्रदम चौर हरीय लज्जे वर्षेकी अभ्यसाय कर्त्तव्ये ई।
(श्लो०) अभ्यः प्रायः वर्षं वायु रैष्य तथा वा, बहुमी० ।
३ अभ्य-सम-सुक्त, काम तावुम्।

अभ्यसल (सं० श्लो०) निर्वम, कामजोर।

अभ्यसाध (सं० श्लो०) अधिक बाधा न कामनेशाला,
को काम दिक् करता हो।

अभ्यसुद्धि (सं० श्लो०) सुष्यं, लादान, काम ममार।
अभ्यसाय (सं० श्लो०) ईयन् चैत्रशुक्ल, काम-
चक्रेन।

अभ्यसायिन् (सं० श्लो०) ईयन् मभायन करने
वाभा, कामचक्रेन, श्री ल्यादा न कोकता हो।

अभ्यसध्याय (सं० श्लो०) सुद्र कर्त्तविमिट, यत्नेः
कर्मसाया।

अभ्यसस्यक (सं० पु०) विरक्तसुष्य, शैलका
पोषा।

अभ्यससिका (सं० श्लो०) मन्त्रिकाविमिय, छोटी
माडी।

अल्पमात्र (सं० स्त्री०) १ न्य नता, कमी। २ ईपत् समय, थोड़ी देर।

अल्पमारिष (सं० पुं०) मारिषति न कमपि जिनस्ति, इगुपधात् क, अल्पः चुद्रकायवासी मारिष-हेति, कर्मधा०। चुद्रमारिष, छोटी चौलाई। 'तच्छुचौशोऽल्पमारिषः'। (चमर) इसका शाक लघु, शीत-धौर्य, रुच, पित्तघ्न, कफनाशक, मल-मूत्र-निःसारक, रुच्य, दीपन और विपन्न होता है। (भावप्रकाश)

अल्पमूर्ति (सं० त्रि०) न्यून शरीर-विशिष्ट, छोटे जिह्वावाला।

अल्पमूर्तिसु (सं० स्त्री०) न्यून संख्यक पदार्थ, कोई छोटी चीज।

अल्पमूल्य (सं० त्रि०) न्यून मूल्यविशिष्ट, कम-कीमत, सस्ता।

अल्पमेधस् (सं० त्रि०) अल्पा ईपत् मेधा धारणा शक्तिर्यस्य, अस्तिजन्त-बहुव्री०। अल्प धारणा-शक्ति-युक्त, दुर्मेध, अधिक धारण न रखनेवाला, कमसमझ, नावाक्किफ, पागल।

अल्पम्वच (सं० त्रि०) अल्पं अल्पपरिमाणं पचति, अल्प-पच कर्तरि ख्य सुम् च, उप०समा०। १ अल्प परिमित पाक करनेवाला, हलपण, लालची, जो पेट काटता हो। (स्त्री०) २ अल्पपाकसाधन पात्र, छोटी हांडी।

अल्परसा (सं० स्त्री०) हेमवती, सोनलुही।

अल्पवयस् (सं० त्रि०) न्यून अवस्थावाला, कम-सिन, जो उम्रमें ज्यादा न हो।

अल्पवयस्क, अल्पवयम्।

अल्पवर्तक (सं० पुं०) तिन्त्रिपरघी, तीतर।

अल्पवादिन् (सं० त्रि०) ईपत् भाषण करनेवाला, कम सखुन, जो ज्यादा बोलता न हो।

अल्पविद्य (सं० वि०) न्यून ज्ञानविशिष्ट, भूर्ख, कुशिक्षित, अधिक्षित, कम इलम, जो सीखा-पढ़ा न हो।

अल्पविषय (सं० त्रि०) परिमित परिमाणवाला, तुच्छ विषय-संज्ञान, महद्दृढ गुणायिका, जो छोटी बातमें पड़ा हो।

अल्पयः, अल्पयन् दिशो।

अल्पयःपंक्ति (सं० स्त्री०) ह्रन्दीविशेष, कोई बहर।

अल्पयस्ति (सं० त्रि०) न्यून बलविशिष्ट, कम ताकत, कमजोर।

अल्पयमी (सं० स्त्री०) अल्पा चासी शमी वेति, कर्मधा०। चुद्र शमीहृत्।

अल्पयस् (सं० अर्थ०) १ निम्न परिमाणमें, हलके दरजेपर, कुछ, कम। २ प्रयक्-प्रयक्, भलग-भलग, दूरसे। ३ समय विशेषपर, कमी, जब, तब।

अल्पयुक्रता (सं० स्त्री०) पित्त-जन्य गुणार्थता रोग, सफुरा विगड़नेसे पैदा हुई धौर्य कम प्रदू जानकी बीमारी।

अल्पशोक (सं० पुं०) सर्वाधिरोग, आंखकी कोई बीमारी।

अल्पसरस् (सं० स्त्री०) अल्पं सरः, कर्मधा०। चुद्र जलाशय, छोटा तालाब।

अल्पसरोवर—बड़ीदा राज्यस्थ कांडा जिलेके सिहपुर स्थानका पवित्र तालाब।

अल्पसायु (सं० त्रि०) ईपत् सायु-विशिष्ट, जिधके नमें कम रहें।

अल्पाकाहिन् (सं० त्रि०) ईपत् अभिलाष-शाली, कमखाहिय, जो थोड़ेसे ही खुश हो।

अल्पान्नि (सं० त्रि०) सूक्ष्म चिह्न विशिष्ट, जिवमें बारीक धब्बे पड़ें।

अल्पायु (त्रि०) अल्पायुर् दिशो।

अल्पायुस् (सं० पुं०) अल्पम् आयुजीवितकालो ऽस्य। बहुव्री०। १ बकरो। मानस होता है, इस स्वल्पमें चौपायोंमें ही आयुका परिमाण रखकर बकरीको अल्पायु कहा गया है। बहाली डाकपुरपरके मता-नुसार—'मत्त मत्ता विमे दय, मत्त चरेक मधि दय। मत्त मत्त मत्तो मत्तका, मुने मे वे मत्त पाजका।' बकरीकी परमायु, तेरह वर्ष होती है। पर कितने ही छोटे छोटे कीड़े एक घण्टेसे अधिक नहीं बचते। अतएव उन जैसे अल्प-जीवी और कोई नहीं है।

कर्मधा०। २ जिस प्राणीका जितने समय जीवित रहना उचित है, उसकी अपेक्षा न्यून काल। मनुष्यकी परमायु न्यूनधिक सो वर्ष है। परन्तु पुराणादिमें

कोठ, पोपन) प्रत्येक तीन माघ, विघ् १ माघ, मन्थक ८ माघ, पारा ४ माघ, इन्द्रामन एक पन पौर तीन माघ, इस सबको चुर्च करके एकत्र मिलाकर १ माघ परिमाण खाकरके पीड़े काष्ठि पीना चाहिये।
(रहस्यनामनि)

अल्पनिद्रता (सं० स्त्री०) पित्तजन्म निद्राल्पता-रोग, भीद कम पढ़नेकी बीमारी।

अल्पपत्र (सं० पु०) अल्प पत्रं यस्य, बहुम्री०। १ सुद्रपत्र तुलसी हृत्, तुलसीके जिस पौधेकी पत्ती छोटी रहे। २ रत्नपत्र, खानकमन। ३ अल्पपत्र-युक्त हृत् मात्र, छोटी पत्तीका कोई भी पौधा।

अल्पपत्रक (सं० पु०) गिरिल मणक हृत्, पहाड़ी दुपहरियेका पौधा।

अल्पपरिका (सं० स्त्री०) रत्न अणामार्गं सुप, ज्ञान सटजीरा।

अल्पपत्रो (सं० स्त्री०) मियेया, सौफका पौधा। २ सुपनो, सूसरका पेड़।

अल्पपद्म (सं० स्त्री०) अल्पं अमम्यूर्धं पद्मम्, कर्मधा०। रत्न कमल, जाल कमल।

अल्पपरीशर (सं० स्त्री०) ईषत् अनुयायिवर्ग-विमिष्ट, जिसके बन्धु प्रश्रुति कम रहे।

अल्पपरिका, अल्पशो ईषो।

अल्पपर्षी (सं० स्त्री०) सुमपर्षी, मसूर।

अल्पपद्म (सं० स्त्री०) न्यून पद्मयुक्त, छोड़े मवेगो रखनेवाला

अल्पपुत्र (सं० स्त्री०) सुद्र धर्मकार्यविमिष्ट, मज्जवके छोटे काम करनेवाला।

अल्पपुष्पिका (सं० स्त्री०) पीत करवीर, पीला कनेर।

अल्पप्रभस् (सं० स्त्री०) ईषत् सन्मान वा प्रजायुक्त, जिसके पीलाद या रैयत कम रहे।

अल्पप्रभाय (सं० स्त्री०) अगुक्त, तुच्छ, विवजन, भाषीज।

अल्पप्रभावत् (सं० स्त्री०) तुच्छता, हिकारत।

अल्पप्रमाण (सं० पु०) अल्पं प्रमाणं यस्य, बहुम्री०। १ सत्तापनन, तरङ्ग। २ सेतानक, परपूजा।

(स्त्री०) अल्प गुरुतायुक्त, जिसके कम वजन रहे। ४ न्यून प्रमाणविमिष्ट, जिसमें अणुदा सुवृत्त न देखे।

अल्पप्रमाणक, अल्पप्रमाण ईषो।

अल्पप्रयोग (सं० स्त्री०) ईषत् नियुक्त, अणुदा इक्षी-मानमें न धानेवाला।

अल्पप्राण (सं० पु०) अल्पप्राणो प्राणः प्राण-वायोः वाह्यप्रयत्नविमेषयति, कर्मधा०। १ वर्षं विमेषके लक्षण-विषयमें सुखमें रहिगैत प्राणवायुका प्रयत्न विमेष, य, र, ल, व, क, ग, ल, च, ज, श, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, पौर म इन अक्षरोंको सुंइसे निकालनेकी कोमिय।

“शाठ्यवदन्ने कादन्वा विहारः संघाट् प्राची नातो वायो अयो-इत्यादी महामाघ उदानीतुदरतः भरितर्षेति।” (विद्यालक्षणे)

अल्पः प्राणः प्राणक्रिया यस्योच्चारणे, बहुम्री०।

२ वर्षेविमेष, अल्पप्राणक्रियामे ही निकलनेवाला वर्ष, जिस ऋषके बोलनेमें अणुदा कोमिय करना न पड़े।

वर्गका प्रथम, द्वितीय एवं पञ्चम वर्षं तथा य, र, ल, व, पौर षट्पुत्र लघु वेद्याकरण, वेदसिद्ध वर्गका यम-नामक पञ्चम वर्षं संदुक्त दिग्गते मध्यस्थित पूर्वं मह्य प्रथम पौर द्वितीय लघु वर्षको अल्पप्राण कहते हैं।

(स्त्री०) अल्पः प्राणः बलं वायुं यंस्य यत्न वा, बहुम्री०।

३ अल्प-वन-युक्त, कम ताकत।

अल्पबल (सं० स्त्री०) निर्बल, कमजोर।

अल्पबाध (सं० स्त्री०) अधिक बाधा न डालनेवाला, जो कम दिक् करता हो।

अल्पबुद्धि (सं० स्त्री०) मूर्ख, नादान, कम समझ।

अल्पमाय (सं० स्त्री०) ईषत् ऐश्वर्ययुक्त, कम-बलत।

अल्पमायिन् (सं० स्त्री०) ईषत् मन्त्रायण करने-वाला, कमसपुन, जो अणुदा न योजता हो।

अल्पमध्यम (सं० स्त्री०) सुद्र कटिविमिष्ट, पतकी कमरवाला।

अल्पमद्रक (सं० पु०) चित्रकसुप, शीतवा पौधा।

अल्पमच्चिका (सं० स्त्री०) मच्चिकाविमेष, छोटी माकी।

अल्पमात्र (स० स्त्री०) १ न्य नता, कमी । २ ईपत् समय, थोड़ी देर ।

अल्पमारिय (स० पु०) मारियति न कमपि हिनस्ति, इगुपधात् क, अल्पः चुद्रकाययासौ मारिय-चेति, कर्मधा० । चुद्रमारिय, छोटी चौलाई । 'चुद्रुःशौचोऽल्पमारियः' । (चमर) इसका शाक सजु, शौच-वीर्य, रुच, पित्तघ्न, कफनाशक, मल-मूत्र-निःसारक, रुच्य, दीपन और विपन्न होता है । (भाष्यभाष्य)

अल्पमूर्ति (स० त्रि०) न्यून शरीर-वशिष्ट, छोटे जिह्मवाला ।

अल्पमूर्तिधु (स० स्त्री०) न्यून संख्यक पदार्थ, कोई छोटी चीज ।

अल्पमूत्र्य (स० त्रि०) न्यून मूत्र्यविशिष्ट, कम-कौमत्, सस्ता ।

अल्पमेधस् (स० त्रि०) अल्पा ईपत् मेधा धारणा शक्तिर्यस्य, अस्मिजन्त-बहुव्री० । अल्प धारणा-शक्ति-युक्त, दुर्मेध, अधिक स्मरण न रखनेवाला, कमसमझ, नावाकिफ, पागल ।

अल्पम्यच (स० त्रि०) अल्प परिमाणं पचति, अल्प-पच कर्तरि खय् सुम् च, उ० समा० । १ अल्प परिमित पाक करनेवाला, क्षपण, लालची, जो पेट काटता हो । (स्त्री०) २ अल्पपाकसाधन पात्र, छोटी हाडी ।

अल्परसा (स० स्त्री०) हेमवती, सोनजुही ।

अल्पवयस् (स० त्रि०) न्यून अवस्थावाला, कम-सिन, जो उम्रमें क्यादा न हो ।

अल्पवयस्क, अल्पवय् ।

अल्पवर्तक (स० पु०) वित्तिरपची, तीतर ।

अल्पवादिन् (स० त्रि०) ईपत् भाषण करनेवाला, कम सखुन, जो क्यादा मौलता न हो ।

अल्पविय (स० वि०) न्यून ज्ञानविशिष्ट, मूर्ख, कुशिक्षित, अशिक्षित, कम इल्म, जो सीखा-पढ़ा न हो ।

अल्पविषय (स० त्रि०) परिमित परिमाणवाला, तुच्छ विषय-संलग्न, महदूढ गुणाध्ययका, जो छोटी बातेंमें पढ़ा हो ।

अल्पयः, अल्पय् द्विवी ।

अल्पयःपंक्ति (स० स्त्री०) हृन्दोविशेष, कोई बहुर । अल्पयःशक्ति (स० त्रि०) न्यून बलविशिष्ट, कम ताकत, कमजोर ।

अल्पयमी (स० स्त्री०) अल्पा चासी यमी चेति, कर्मधा० । चुद्रु गमीहच ।

अल्पयस् (स० अ०) १ निम्न परिमाणमें, हलके दरजेपर, कुक, कम । २ प्रथक्-प्रथक्, अलग-अलग, दूरसे । ३ समय विशेषपर, कमी, जब, तब ।

अल्पयुक्तता (स० स्त्री०) पित्त-अन्य शुक्लाश्रता रोग, सफ़रा विगड़नेसे पैदा हुई थोरे कम पड़ जानेकी बीमारी ।

अल्पयोफ (स० पु०) सर्वाक्षिरोग, आंखकी कोई बीमारी ।

अल्पसरस् (स० स्त्री०) अल्प सरः, कर्मधा० । चुद्रु जलाशय, छोटा तालाब ।

अल्पसरोवर—बड़ोदा राज्यस्य काडा जिलेके सिद्धपुर स्थानका पवित्र तालाब ।

अल्पसायु (स० त्रि०) ईपत् सायु-विशिष्ट, जिसके नमे कम रहे ।

अल्पाकाह्विन् (स० त्रि०) ईपत् अमिलाप-शाली, कमखादिय, जो थोड़ेसे ही खुद हो ।

अल्पाक्षि (स० त्रि०) सूक्ष्म चिह्न विशिष्ट, जिसमें बारीक धब्बे पड़े ।

अल्पायु (त्रि०) अल्पयु द्विवी ।

अल्पायुस् (स० पु०) अल्पम् आयुजीवितकालो ऽस्य । बहुव्री० । १ बकरो । मालम होता है, इस स्थलमें चौपायोंमें ही आयुका परिमाण रखकर बकरीको अल्पायु कहा गया है । बङ्गाली हाकपुरपर्व मता-दुसार—'नरा मना विमे मय, तर बनेक बने इय । राधक क्लृता शरो बालना, मुने मे वे रा पालना ।' बकरीकी परमायु तेरह वर्ष होती है । पर कितने ही छोटे छोटे कीड़े एक छपट्टेमें अधिक नहीं बचते । अतएव उन जैसा अल्प-जीवी और कोई नहीं है ।

कर्मधा० । २ जिस प्राणीका जितने समय जीवित रहना उचित है, उसकी अपेक्षा न्यून काम । मनुष्यकी परमायु न्यूनधिक सो वर्ष है । परन्तु पुराणादिमें

को अधिक परमायुकी बात लिखी है, वह बचाना वादव्य भिन्न घोर कुछ भी नहीं है।

इसारे देमके कितने ही पादमियोंकी धारणा है, विधातामि जितनी प्रायु निर्धारित कर दी है। उसका पच्य नहीं होता। पर शाश्वकारों घोर प्राचीन वैद्य-शास्त्रका वैसा मत नहीं है। याचवन्वय कहते हैं,—

“वन्देभारं वदोमाइ वया दीपय कल्पितः ।
विक्रियादि च इदं वदन्वापि वाच्यं च यः ॥”

जैसे वसी,आधार और तेलके संयोगमें दीप जलता है, पर तेल हुआ बादि जगनेसे तेल रहनेपर भी प्रदीप बुझ जाता है, उसी तरह क्रिया विकार होनेसे पर-मायु रहते भी प्राचीका जीवन नष्ट हो जाता है।

परकमें भी लिखा है, कि नियति एवं परिमित प्रायुपर विग्राम करना प्रमाथु है। जो भोग ऐसा विग्राम करत है, वे भोग भी मन्व, स्वस्वययन और व्यवहार करतें देते जाते हैं। तथा प्रचष्ट या उन्मत्त जन्तुके निकटसे भाग जाते हैं। अतएव ऐसे पादमी सुष्ठसे नियति एवं निर्दिष्ट परमायुकी बात कहते हैं, परन्तु वाद्वयमें मन ही मन उसे स्वीकार नहीं करते।
वाचः बुद्धि एव परववा विररच प्रायु रन्वमं देवी।

अल्पारम्भ (सं० पु०) नियमित आरम्भ, कायदेका आग्राज, मिसलमिलेवार शुद्ध।

अल्पारम्भ (सं० त्रि०) अल्पः प्रकारः अल्पः द्विवक्तिः ।
१ अति अल्प, निहायत क्लील, बहुत थोड़ा। अल्पं वादः तष्ठादल्पं अर्थम्, ५-तत् वा। २ अर्थ, निस्त्र, आधा। (अल्प०) १ थोडा-थोड़ा, घीर-घीर।

अल्पारम्भक, अल्पारम्भकः ।
अल्पारम्भ (सं० स्त्री०) अल्पक फल, फालसा।

अल्पारम्भ (सं० पु०) १ लघु भोजन, हलका आना। २ अल्पाचरण, परहेज। (त्रि०) १ अल्पसे रहने-वासा, परहेजगार।

अल्पारम्भारिन् (सं० त्रि०) लघुभोजन करनेवाला, परहेजगार, जो कम खाता हो।

अल्पिका (सं० स्त्री०) १ वनमसिका धाति, कोई लहसुनी माको। २ सुहृदपत्नी, मधुर। ३ अल्पमात्रा, थोड़ी खराक।

अल्पित (सं० त्रि०) अल्पं क्रियते वा, अल्पं कृत्यं निष्कर्मणि क्त। अल्पीकृत, कम किया हुआ, जो घट गया हो।

अल्पित (सं० त्रि०) अतिग्रयेन अल्पम्, इतनीदिह हावात् अल्पव्य टिलोपः। अतिग्रय अल्प, निहायत कम, बहुत थोड़ा।

अल्पितकीर्ति (सं० त्रि०) न्यून प्रशंसाविशिष्ट, कम शोहरत, जो श्वादा मगहर न हो।

अल्पीकृत (सं० त्रि०) १ सुदृढ बनाया हुआ, जो छोटा किया गया हो। २ चूर्णकृत, कुचला हुआ। ३ घटाया हुआ, जो अददमें कम किया गया हो।

अल्पीभूत (सं० त्रि०) १ न्यून पड़ा हुआ, जो छोटा पड़ गया हो। २ घटा हुआ, जो अददमें कम पड़ा हो।

अल्पीयम् (सं० त्रि०) इदमनयोः अतिग्रयेन अल्पम्। अल्पता, श्वादा कम। जब दो दृशमें एक श्वादा कम पड़ता, तब यह शब्द आता है। (स्त्री०) अल्पीयसी।

अल्पेष्टु, अल्पाशक्तिस्त्वं देवी।
अल्पेतर (सं० त्रि०) हलत्, बड़ा, जो छोटा न हो।

अल्पेमास्य (सं० त्रि०) सुदृढ आणाविशिष्ट, कमीना श्वादान्, जो अच्छे घरानेका न हो।

अल्पोन (सं० त्रि०) ईपत् न्यून, कुछ कम, जो बिस्कुल पूरा या तैयार न हो।

अल्पोपाय (सं० पु०) सुदृढ उद्योग, हकीर करिया। अल्पं धान्—व्यक्ति विशिष्ट, सन् ११०० ई० को इन्हीं गुजरातका सोमनाथ मन्दिर जोड़ा था। पाटनवासे

भद्रकाली मन्दिरकी दीवारमें जो टूटा-फूटा पत्थरोला शिला-खेच मिला, उसमें सोमनाथके मन्दिरका इत्तान्त अविवरण लिखा है। इसमें सन् ११६८ ई० या बज्रभो ८५० पग है। सेवमें देसमें, —सोमेश देवका मन्दिर पड़से सोमने सोने, रावपने चांदी, लक्ष्मणे लकड़ी और भीमदेवने पत्थरका बनाया था। कुमारपालके अधीन गण्ड हृदयतिने फिर मन्दिरकी पूर्वा-धरमा स्थापन किया। गण्ड हृदयतिने जिये शिवा

फलकमें निम्नलिखित विषय अर्द्धित है,—'वह पाथ-पत पाठयात्राके कान्यकुब्ज ब्राह्मण, मालव नरैशके शिष्यक और सिद्धराज जयसिंहके मित्र रहे। सोमनाथमें उन्होंने कितने ही मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया और नया देवालय बनवाया था। खासा नृपतिके हाथ न लगते यह कुमारपालके केदारेश्वरका मन्दिर भी ठीक करा गये; कुमारपालका समय बीतनेपर गण्ड वृहस्पतिके सन्तान सोमनाथके, धार्मिक सञ्चालक रहे।'

अल्बोखनी—अरब देशके कोई प्रत्यकार। सन् १०१०-१३ ई० को इनका मूलग्रन्थ 'तारीख हिन्द' भारतमें संग्रह किया गया था। अरबदेश अल्बोखनी देखो।

अलबुकार्क—पोतगोज़ भारतके द्वितीय शासक। सन् १५०८ ई० को इन्हें फ़ारसिस्तो ही अलमौदासे पोर्तगोज़ भारतका शासनभार मिला था। इन्होंने पोर्तगोज़ प्रभाव भारतमें बहुत फैलाया और कालीकट जीतन सकनेपर सन् १५१० ई०में गोवाको धर दबाया। सिंघलकी चारो ओर जलयात्रा कर यह मलक्काके मालिक बने और श्याम तथा स्यायिस द्वीपके साथ व्यवसाय चलाने लगे थे। सन् १५१५ ई० को इन्होंने ईरानी खाड़ी और लोहित-सागरकी जलयात्रासे लौट गोवामें शरीर छोड़ा।

अल्मवाडे—मन्दाज प्रान्तके कोयम्बटूर जिलेका नगर। यह कावेरीके बामतट औरङ्गपट्टनसे साढ़े बत्तीस कोस पूर्व, अक्षा० १२° ८' ७" और द्राधि० ७०° ४८' ५०" पर अवस्थित है। सन् ई०के १७वें शताब्दीमें यह स्थान प्रतिग्रय प्रधान रहा। सन् १०६८ ई० को कुछ दिन इस नगरमें अंगरेजी फौज पड़ी, हैदर अलीका दल आते ही इसे छोड़ गयी थी।

अल्महदी—अब्बास वंशके ३२ खलीफ़ा। सन् ७०५ ई० की ८वीं अहमदको यह बग़दादमें अपने बापकी जगह गद्दीपर बैठे थे। अलमकनाका बलवा ही सबसे बड़ी बात हुआ। इनके सिंहासनारूढ़ होनेपर छः वर्ष तक यूनानियोंसे युद्ध चला, किन्तु किसीका पक्ष गिरा न था। मक़माका बलवा दस ज़ानेसे इन्होंने अपने लड़के हाफ़्ज़ अल् रगीदको ८५

हज़ार सिपाही ले यूनानी राज्यपर आक्रमण करनेको कहा। यह यूनानी फौजको हरा और देशको भाग और तलवारसे छड़ा कान्टपिट्टनेपल तक जा पहुँचे थे। यूनानी महारानीने भयभीत हो और ७०००० अगर्फी वार्षिक कर देनेको कह सन्धि कर ली। हाफ़्ज़ लुटसे मालोमाल बन बग़दाद वापस गये थे। कहते हैं, सन् ७८२ ई० को किसी दिन सवेरे सूर्य पक़ष्मायु घुंघला पड़ा और दोपहर तक अंधिरा काया रहा। इसना नामक किसी विश्वाने अज्ञान वश इन्हें विष दे दिया था। उसने अपनी प्रतिद्वन्द्वी विश्वाको जुहरसे भरी नासपाती नज़र का, जिसने उसे खलीफ़ाको सौंपा। यह नासपाती खाते-खाते मर गये थे। इनके बड़े लड़के अल्हादी सिंहासनके उत्तराधिकारी हुए।

अल्मामून—अब्बास वंशके ७३ खलीफ़ा और हाफ़्ज़ अल् रगीदके द्वितीय पुत्र। इनका उपनाम अलदुहा रहा। सन् ८१३ ई०की ६४वीं अहमदको अपने भाई अल्-अमीनके मारे जानेपर यह बग़दादके खलीफ़ा बनाये गये। सन् ८२० ई०की इन्होंने अपने सेनापति ताहिर इब्न हुसैन और उनके मस्तानको खुरासान राज्यका समग्र अधिकार सौंप दिया था। दूसरा अहमद न उठते भो अफ़रीफ़ाके सुसन्मानोंने सिसिली पर हमला मार कितने ही स्थान छीन लिये। इन्होंने क्रोटका अंग विगोप जीता, अच्छे-अच्छे यूनानी पुस्तकका अरबीमें अनुवाद कराया और बहुमूल्य ग्रन्थका संग्रह लगाया था। इन्हें बग़दादमें ज्योतिषकी पाठशाला स्थापन करनेका भी यश मिला। खुरासानकी राजधानी तुसमें यह रहने लगे। इनके ही उत्साहसे खुरासान विद्वानोंका स्थान और तुस बग़दादका प्रतिद्वन्द्वी हो गया। सन् ८३३ ई०की १८वीं अहमदको एगिया मादनरमें २० वर्ष और कुछ मास राज्य करने बाद यह मरे और तरसुसमें गईं थे। इनकी पत्नी पीछे ५० वर्ष खीकर सन् ८८४ ई०की २२ वीं सितम्बरको चल बसीं। राज्यका उत्तराधिकार इनके भाई मौतमिम-बिहाहको मिला था।

हूँके मरनेपर हूँके बगदादकी गद्दी मिली थी। मन् ८८५ ई०को मियुके पृथ्वीपूजा रामरावियाकी मङ्ग-कोमे बड़ी धूमधामके साथ इनका विवाह हुआ। हूँकेन कर्मतिथीमे मुह तो किया, किन्तु कितनी ही धीमे मारी गयी और मनावति पल्ल पन्नाम के दूए से। अपने विवाहके बाद ही हूँकेने रामरावियाके लठके हाकनूकी मटाके सिधे पवामम और किविध रौनूका ग्रामक बनाया, जिन्हे उसने ४५ हजार दोनार (पयर्जी) वार्षिक कर देनेपर मियु और मिरियामें मिला लिया। मन् ८०२ ई०को ८ वर्ष ८ मास और २५ दिन राज्यकर यह भर गयी। इनके लड़के पल्ल सुफा-तकी बिसाहकी राज्यका उत्तराधिकार मिला था।

पल्ल (हिं० पु०) बंगकी संज्ञा, प्लान्डानूका नाम। पल्लक (मं० पु०) १ ककौनविगीय, किसी किष्ककी शीतलघोमी। २ धान्यक, धनिया।

पल्लका (मं० स्त्री०) धान्यक, धनिया।

पल्लम-गल्लम (हिं० पु०) १ झुड़ा करकट, पल्ल-बनर। २ बाही-तवाही, पाय-बाय।

पल्लम प्रभुदेव—प्राचीन संस्कृत योगशिल्पक। स्वात्म-रामने 'हठयोगप्रदीपिका'में इनका उल्लेख किया है।

पल्लहगद्य—गुरुप्राप्तके फलस्वाभाव जिलेकी पन्नीगद तहसीलका नगर। यह फतेहगढ़ महरसे साठे कः कीम उत्तर-पूर्व पवस्थित है। इसमें घाना, डाकघाना, मराय और स्कूल बना है। मसाहमें दो बार बाजार लगता है।

पल्लहबन्द—बगई पालीय मियु मीमाका मटिका टेर। यह पचा० २४°२१'०" और द्राघि० ६८° ११'५०"पर पवस्थित है। इसमें बालू और घोघेमे मिनी खारी मही मरी है। मय्याईमें पचीम और कहीं-कहीं चोड़ाईमें यह पाठ कोस बैठता है। मन् १८१८ ई०को भूकम्प होनेमे पल्लहबन्द ऊपर उठ पाया था। मन् १८२५ ई०को मियुनद बड़नेपर यह बन्द टूटा और पानीने नीचे टनकर एक भीस बना दिया।

पल्ला (मं० स्त्री०) १ माता, मा। २ धान्यक, धनिया। (का० पु०) २ पामेखर, मल्ला। पल्लोपनिषत्में पल्लाके मन्त्रकी बात लिखी है,—

‘‘नीं पल्लां उरुं विवाहयो विष्वाभि वरुं ।

उरुंके वरुंको राजा पुनर्दुः ।

उरुंमि मिरी उरुं उरुं सि ।

उरुंमो वरुंको मिरी उरुंमामद ।

उरुंमामिन्दो उरुंमामिन्दो मरुंमामिन्दोः ।

उरुंको म्मे उं म्मे उं परुंको म्मे उंमामदः ।

उरुंको उरुं म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे उरुंको ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको उरुं म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको राजा पुनर्दुः ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

उरुंको म्मे म्मे म्मे म्मे म्मे ।

पल्लाना (हिं० स्त्री०) विज्ञाना, गला फाड़-फाड़के पायाज निकालना, गुल्ल मथाना, मोर करना।

पल्लामा (मं० स्त्री०) कलह करनेवाली गी, मद्राका धौरत।

पल्लायी (हिं० स्त्री०) पयका कण्ठगत रोग, धीपयके गलेकी बीमारी, घंटियार।

पल्लू (मं० स्त्री०) पालुक, पालूबीजा।

पल्लूर—मन्द्राज प्रायिके नैलूर जिलेका नगर। यह पचा० १४° ४१' १०" उ० और द्राघि० ८०° ५' २१" पू०पर पवस्थित है। इसमें प्रधानतः धान बोनेवामे किसान रहते हैं। तीन उम्दा ताकाबोंमें खेत मीचे जाते हैं। सब-मीनिष्टेटकी कपहरी और डाकघाना मौजूद है।

पल्ले प्यी—मन्द्राज प्रायिके विशाखोड़ राज्यका बड़ा बन्दरगाह और महर। यह पचा० ८° २८' ४१" उ० और द्राघि० ७१° २२' ११" पू०पर पवस्थित है। मन्द्राजसे ४६४ और कोचिनसे ११ मील दक्षिण-पश्चिम पर ४६ मील पाते हैं। यह मसुद और बामके

खेत बीच पड़ा तथा सामने बड़ासा भौल भरा है। वारहो महोने लड़ड़ डालनेका सुभीता है। यहाँसे साखों रूपिका चनाज, कड़वा, इलायची, अदरक, मिर्च, गारियन, रस्सी और मखलो बाहर भेजते हैं। इस नगरमें त्रिवाहोड़ राज्यके कल्लका माल इकड़ा होता और रस्सी बनानेका दो कारखाना चलता है। छिद्र मील लम्बा जो मधुका हीप है, वह समुद्रके जोरको रोकता और जहाजोंकी क्षिफाजत करता है। २५ फीट ऊँचे वत्तोघरका आलोक समुद्रपर नौ कोमसे देखा पड़ता है। भौलसे नहर नगरमें पाटी, जिसपर सात पुन बना है। महाराजका प्रासाद, कचहरी, मुनमिको, अस्पताल, स्कूल धर्मरक्ष सब कुछ मौजूद है। सन् १८०८ ई०की इस नगरमें कुछ युगोवीय मिपाही नैयर्ने मार डाने थे।

अलोपनिषत् (सं० स्त्री०) वादशाह अकबरके समयमें रचित एक उपनिषत्। अल्पा और अवबेद शब्द १०१ शब्दों विवरणको देको।

अल्पा—गुजरात प्रान्तके रेवाकण्ड राज्यकी जागीर। इसमें सात ग्राम लगते हैं। अल्पाके उत्तर और दक्षिण बोरपुर, पांटलावडो; पूर्व गायकवाड़के गांव, पांटलावडी; और पश्चिम देवसिया ग्राम पड़ता है। चंद्र फल पाँच वर्गमील है। इसके जागीरदार सड़मठ रूपये साल गायकवाड़को कर देते हैं। यहाँ सूख भौल ही ख्याता रहते है।

अल्पाजा (हिं० पु०) अलहजल, बातका बतलड़, गुपग्रप, वेतुकी।

अल्पाड़ (हिं० वि०) १ अल्पवयस्क, कममिन। २ अनुभवरहित, वेतजर्वा। ३ अकुशल, वेगू, फू। ४ निर्दह, वेपरवा। (पु०) ५ छोटा बड़ड़ा।

अल्पाहृषन (हिं० पु०) १ अल्पवयस्कता, कमसिनी। २ अनुभवराहित्य, लातजर्वाकारी। ३ अकुशलता, नादानो। ४ निर्दहता, वेपरवायी।

अल्पाहृदी—अध्यास यंत्रके ४थे खलीफा और अल्पाहृदीके पुत्र। सन् ७८५ ई०की ४थी अगस्ताको यह अपने पिताकी जगह बगदादेमें गद्दीपर बैठे थे। इन्होंने एकवर्ष और एक महोने राज्य किया। सन् ७८६

ई०के सितम्बर मास अपने हाँटे भाई हादनु अल्पाहृदीको मार डालनेकी चेष्टा करनेपर यजीने इन्हें लहर दिनाया था। इनके मरनेपर सुप्रसिद्ध हादनु अल्पाहृदीने राज्यका उत्तराधिकार पाया।

अव (सं० अथ०) अव-पत् १ अवश्य, लहर। २ निधोगमे, मेलमें। ३ तिरस्कारमें, भिड़ककर। ४ असम्यूर्ण रूपसे, अघरे तीरपर। ५ गुड होकर, सफायेसे। ६ परिभवमें, नीचेसे। ७ साहाय्य रूपसे, बराबर। 'अवमनविभ्रजविशमन्विशविश्व'।

ईवर्धे परिभवेत्तवीवर्धे' (वि०)

यह चादिगणोय अथय है। इसके बाद अन्य शब्दका समान पड़नेसे अकार विकल्पमें उठ जाता है। जैसे—अव-गाह—वगाह, अवगाह। (वं वि०) ७ अमिलापयुल, खादिशमन्द, प्यार करनेवाला। (हिं० अथ०) ८ और।

अवयं (सं० पु०) १ नीच अंग, कमीता पान्दान्। (वं०) २ निराधार, बेसहारा, जो किसीपर टिका न हो।

अवकट (सं० स्त्री०) 'अवै, अव स्याथे' कटत्। देहप्य, मुखसिफत, उलट पुलट।

अवकटिका (सं० स्त्री०) माया, छल, कप धोका, फुरव। अवकम्पित (सं० वि०) अत्र-कामि चनने कर्तेरि ह। १ विचलित, परेयान्, अवराया हुआ। (पु०) २ बुधवियेप।

अवकर (सं० पु०) अव-कृ भावे अत् १ उप-हति, हनन, माय, ज्वाल, कृत्न, मर्त्यामेट। अवशीर्यते, अव-कृ कर्मणि अत् २ मया'ने प्रभृति द्वारा विविध धूलि, जो कूड़ा-ककट भाड़ये निकाला गया हो।

अवकर्षण (सं० स्त्री०) अव-हाप-ल्यट्। वनपूर्वक प्राकर्षण, जोरकी कशिप।

अवकलन (सं० स्त्री०) १ अंधकण, लाइतोड़। २ दृष्टि, नज़र। ३ ज्ञान, समझ।

अवकलना (हिं० स्त्री०) बुद्धि धाना, समझमें धेठना, ज्ञान मिलना।

अवकलित (सं० वि०) अव-कल ह। दृष्ट, ज्ञान, दृष्टीत, देखा सुना या लिया हुआ।

अथका (सं० स्त्री०) अथ-कुन्, विपकादित्वात् न इत्यन् । शैवाल, शिपार ।

अथकाट (सं० स्त्री०) अथका भोजन करनेवाला, जो शिपार खाता हो ।

अथकाग (सं० पुं०) अथ-काग-अण् । १ विशाम शैलेका समय, पारामका वल्ल । २ अथमर, मोका । ३ समय, वल्ल । ४ व्यान, सुकाम । ५ अतिरिक्त समय, फुरासत । ६ दृष्टिपात, मज्जर । ७ अन्तो-विमेष, कोई बहर । ८ न पढ़ने समय अथर विमेष-पर दृष्टि रखना पड़ती है ।

अथकागवत् (सं० स्त्री०) विस्तृत, सुभादा, सम्या-बोदा ।

अथकाग्य (सं० स्त्री०) अथकाग अन्त पढ़ने समय प्रथम पाया हुआ ।

अथकरव (सं० स्त्री०) फेलाव, बिघेरना ।

अथकीर्ण (सं० स्त्री०) अथ-का कर्मणि क्त । १ व्याप्त । २ अर्चल्लत, जो अर्चु किया गया हो । ३ ध्वस्त । ४ मट । भाषे क्त । ५ मट अक्षरवर्ष, जिस अक्षरपारीका अक्षरवर्ष-मत भङ्ग हो गया हो ।

अथकीर्णन् (सं० पुं०) अथकीर्ण अक्षरवर्षमत-विरोधितः अथमनेन (अन्तः) न शान्तः इति इति । अक्षरवर्षमत-भङ्गकारी जन । जो अक्षरपारी स्त्रीसद्भादि द्वारा मत भङ्ग करता है । 'अथकीर्ण-वतः' (अन्तः) स्त्रीसद्भादे अतिरिक्त भी रितः श्राव होने-पर मत भङ्ग होता है, परन्तु अथकीर्णत्व नहीं होता । अथमावधिमाने ही यह दोष छूट जाता है । यदि अक्षरपारी इच्छावमतः स्वीकृत करे, तो उसको मज्जम्य द्वेषनिर्मुक्तिके निवे निम्नलिखितानुसार प्रायश्चित्त कर्तव्य है । यन् या अथुअथमे जा शौकिक अग्निने रथोदेवत गर्दभको मार किंवा नेष्टत देवत यह पाप करके, 'कामाय छाहा, कामकामाय छाहा, निरत्ये छाहा, रथो-देवताभ्यो छाहा' इम मज्ज-द्वारा पाह्वित प्रदान करनेसे यह श्राव कर सक्ती है । अनिच्छावमत पदोंगु अक्षरवर्षमते यदि अक्षरपारीका एक श्राव हो जाये, तो वह मज्जपुत्र्य द्वारा अर्चुकी पूजा कर फिर (अन्तः) इम अथकाकी तीन बार अथ

मे । यही अथका प्रायश्चित्त और इतिने यह श्राव भी होता है । यथा—

"अथविना अथकाकी रितः अथमकामयः । अथमांशुदित्वा निः पुनश्चिन्तयन् अथम्" (मज्ज १५८)

अथकुण्ड (सं० पुं०) १ समेटना । २ घटोना । अथकुटार (सं० स्त्री०) अथ अर्चु कुटारण् । १ अत्यन्त-निष्ठ, बहुत मोचा । (क्तः) २ वैदव्य, निरुत्, बह-सुत्, जिसको कालि अक्षु न हो ।

अथकट (सं० स्त्री०) अथ-कट्-क । १ दूरीकृत, दूर किया हुआ । २ निष्क-वित्त, निकामा हुआ । 'निका' अन्तःकटः सन्' (अन्तः) ३ निगमित, मोच उतारा हुआ । ४ शीघ्र, मोच जाति । अथकटं अक्षरवर्षमते-दिना अथकर्मवमक्षयस्य अर्चु-पादि-अण् । (पुं०) ५ अर्चुने अथु अर्चुनिवाला दास या शौकर ।

अथकथ (सं० स्त्री०) अथ-कथ्-कर्मणि अथक् । १ आक-र्षणेय, आकर्षण करने योग्य, जिसे खींचकर ले पाये । २ दूरीकरणीय, त्याग्य, जो छोड़ देने लायक हो । (अण्) अथ कथ्-अण् । ३ आकर्षण करके ।

अथकृति (सं० स्त्री०) अथ-कृ-प्-लित् । सम्भावना ।

अथकेमिन् (सं० स्त्री०) अथ अथम्युत्तम केन सुपेन ईगते पिअर्षवान् भवति अथवादि सत्येयि अथवादि-त्वात् अथक-ईम-ईनि । १ अथ अथ, जिस अथमे फल लगता न हो । 'अथमांशुदित्वा निः पुनश्चिन्तयन्' (अन्तः) अथ अथम्युत्तमः केमा विद्यन्ते अथ इति । अथकेममुत्त, जिसके बात छोड़ा रहे ।

अथकीकन (सं० स्त्री०) अथ-कृ-त्-कोकिलया प्रादि० सं० । १ कोकिलकी तरह वाचनेमाना । (पुं०) २ कोकिलका शब्द, कोदसही शोभो ।

अथकृण (सं० पुं०) देवता ।

अथकृष्ण (सं० स्त्री०) न अथकृष्ण, मज्ज, तत् । १ शोभनेके अयोग्य, जो वाचने लायक न था । २ अथोत्त । ३ निविह । ४ निष्ठा ।

अथक (सं० स्त्री०) नास्ति अथ् मुचं अण् । मज्ज, बहुमी० । अथविमेष, किसी विषयका छोड़ा । जिसको छोड़के मुचं न रहे ।

अवगीत (सं० त्रि०) अव-गै-ज्ञ ऐकारस्य आत्वम्
 भात ईत्वं । १ निर्वाद । २ विवादश्च्युत् । ३ अपवाद-
 ग्रहः । ४ दुष्ट । ५ गदितं, निन्दितं । सुदुष्टं, जो
 बारंबार देखा गया हो । (अवगीतनु निर्वादि वादं
 विनाशिते । विष) (क्ली०) भावे ऋ । निन्दा । अपवाद ।
 अवगुण्य (सं० पु०) अव-गुण्य-क । १ दीप, दूषण,
 ऐत्र । २ अपराध, गुनाह, खोटाई ।
 अवगुणहन (सं० क्ली०) अव-गुणह-ल्युट् । १ मुख
 आवरण करना, मुख ढंकना । २ घूँघट डालना ।
 करके ल्युट् । सुखाच्छादनका वस्त्र, जिस कपड़ेसे सुँह
 ढाँका जाये, पर्दा, घूँघट, बुर्का ।
 अवगुणहनमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्रा विशेषः । तजनी
 अङ्गुली दीर्घ श्रीग उसका अग्र भाग थोड़ा वक्र बना
 बाहर रखकर वाम हाथकी मुठ्ठी बांध इधर उधर
 भ्रमिंत करने (घुमाने)को अवगुणहनमुद्रा कहते हैं ।
 अवगुणहनवती (सं० स्त्री०) घूँघटवाली स्त्री, जो
 स्त्री सुँहपर घूँघट डाले हो ।
 अवगुण्डिका (सं० स्त्री०) अवगुण्डयति आच्छा-
 दयति । अव-गुण्ड-णिच्-खुल् णिच् लोपः स्त्रीत्वात्
 टाप् षत् इत्वम् । १ जो स्त्री मुख आहत करे
 (छिपावे) करणकी कर्तृत्व विषयानि वस्त्रको भी
 अवगुण्डिका कहते हैं । २ घूँघट । ३ लवणिका,
 पर्दा, चिक ।
 अवगुण्डित (सं० त्रि०) अव-गुण्ड-णिच्-त्त इट् णिच्
 लोपः । १ आच्छादित । २ आहत । ३ चूर्णकृत,
 जा चूर्ण किया हो ।
 अवगुण्डय (सं० त्रि०) अवगुण्डयते आच्छादयते
 अव-गुण्ड-ञुरादि णिच् कर्मणि यत् णिच् लोपः ।
 १ आच्छाद्य, आच्छादन करने योग्य, जो छिपाने लायक
 हो । (अव्य०) अव-गुण्ड-ल्यप् णिच् लोपः । २ आच्छा-
 दन कर, छिपाकर ।
 अवगुम्फन (सं० पु०) गुंघन, गुहन, घन्यन,
 गुंघायी ।
 अवगुम्फित (सं० त्रि०) अव-गुम्फ-कर्मणि ऋ ।
 घन्यित, गुंघा हुआ, गुहा हुआ ।
 अवगुर्म्य (सं० त्रि०) अवगुर्म्यते उत्सृष्यते अव-गु-

ल्युट् । १ मारनेको उठाया जानेवाला । (अव्य०)
 ल्यप् । २ मारनेको उठाकर । ३ उद्यम करके ।
 अवगृह्य (सं० क्ली०) अवगृह्यते सन्धिकार्यं निषिध्यते
 अव-ग्रह-ध्वप् । १ अवग्रह, विच्छेद, पद पाठ कालमें
 किञ्चित् अवसान । अर्थात् जिन समय सन्धि न हो ।
 अवगोरण (सं० क्ली०) अव-गुर-ल्युट् । वध कर-
 नेके निमित्त भस्त्रादि ग्रहण, भारनेके लिये हथियार-
 का उठाना ।
 अवग्रह (सं० पु०) अव-ग्रह-ध्वप् । १ विच्छेद ।
 दो पदके मध्य किञ्चित् अवसान अर्थात् सन्धिका
 प्रतिबन्ध । जैसे 'विगोजा' यहां 'विडौजा' ऐसा रूप
 नहीं होता है । २ वृद्धिरोध, अनाहृदि, वर्णाका
 अभाव । ३ प्रतिबन्धक । ४ इक्षिका लनाट,
 हाथिका माया । ५ गजसमूह, गजयूथ । ६ अभाव,
 प्रकृति । ७ ज्ञान विशेष । ८ रुकावट, अटकाय,
 अड़चन, बाधा । ९ बांध, बन्द । १० अनुपग्रहका
 उलटा । ११ शाय, कोसना ।
 १२ जिनमतानुसार ज्ञानके मति, न्यून, अवधि,
 मनःपर्यय केवल ये पांच भेद हैं । पांच इन्द्रिय और
 मनकी सहायतामें जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान
 कहते हैं । उसके मूलमें ४ भेद हैं—अवग्रह, ईहा,
 अघाय, धारणा । इन्द्रिय और पदार्थके योग्यज्ञानमें
 (मौजूद जगहमें) रहनेपर सामान्य प्रतिभासरूप
 दर्शनके पोके अवाप्सर सत्ता सहित वस्तुके विशेष
 ज्ञानको अवग्रह कहते हैं । मतिज्ञानके पहिले होने-
 वाली सामान्य अवलोकन (प्रतिभासमात्र)को दर्शन
 कहते हैं, जैसे कि रास्तेमें चलते हुए किसी मनुष्यको
 छणका अग्रं हुआ तो "कुछ पदार्थ लगा" इस प्रकारके
 सामान्य प्रतिभासको तो दर्शन कहते हैं और कोमल
 कठोर आदि विशेष जानना अवग्रह है इसके दो भेद
 हैं । अक्षनावग्रह, अर्थावग्रह । अव्यक्त पदार्थके
 ज्ञानकी अक्षनावग्रह कहते हैं जैसे—कोरा (नवोग)
 सराफामें जल दो चार विन्दु डालनेमें गोला नहीं
 होता परन्तु चार चार सींचनेमें पार्श्व हो जाता है
 अर्थात् उसमें जल व्यक्त होने लगता है । उसी प्रकार
 श्रोत्रादि इन्द्रियोंके अवग्रहमें अक्षय होनेवाला अर्थात्

वस्तुमें दण्डत्व नहीं रह सकता। और भी दण्डमें जो सब धर्म हैं, उनमें प्रतिरक्त चन्द्र धर्मको वह विभिन कर देता है, इसलिये वह घटादिका कारणता-पक्षेदक होता है। इसमें उभयें द्वारा दण्डका निरूपण किया जाता है।

जिसका अभाव है वही उस अभावका प्रतियोगी है। जैसे, 'घटका अभाव,' ऐसा कहनेमें घट ही उस अभावका प्रतियोगी है। प्रतियोगीके धर्मका नाम है प्रतियोगिता। 'घटका अभाव' कहनेमें, वह प्रतियोगिता घटमिच चन्द्र किसी वस्तुमें रह नहीं सकती। सुतरां वह घटादिमें अभावको प्रतियोगिताको व्यवच्छेद कर देता है। इसलिये घटत्व उसका अवच्छेदक है। अतएव वह प्रतियोगिता ही घटत्वावच्छिन्न है।

परिभाषादिमें इच्छा करनेको अवच्छिन्नत्व कहते हैं। जिस वस्तुको इच्छाकी जाती है, वही वस्तु उसका परिभाषावच्छिन्न है। जैसे, द्रोणप्रीति, द्रोण परिभाषावच्छिन्न प्रीति; चर्यात् द्रोणपरिमित प्रीति।

विभिन्न चर्यात् स्थित चर्यामें भी 'अवच्छिन्न' मध्य प्रयुक्त होता है। जैसे,—'भृशवच्छिन्न आकाश,' अक्षविभिन्न चर्यात् अक्षमें स्थित आकाश।

वेदान्त-मतमें, अन्तःकरणवच्छिन्न चेतन्य जीव, चर्यात् अन्तःकरणविभिन्न वा अन्तःकरणमें स्थित चेतन्यका नाम जीवात्मा है।

अवच्छिन्नवाद (सं० पु०) अवच्छिन्नस्य अन्तःकरणविभिन्नतया जीवस्य यादो व्यवस्थापनं यत्। बहुव्री०। वेदान्तमें ऐसा मत स्वीकार किया गया है, कि अन्तःकरणमें चेतन्य रूप जीवात्मा है। अतएव उसके प्रतिपादक मतको 'अवच्छिन्नवाद' कहते हैं।

यह अवच्छिन्नवाद दो प्रकारका है। कोई कोई कहते हैं, कि अन्तःकरणमें प्रतिविम्बविभिन्न चेतन्यका नाम जीवात्मा है। और किंवा कि मतमें, अन्तःकरणविभिन्न चेतन्यका ही नाम जीवात्मा है। इन दोनों अर्थोंमें अन्तःकरणवच्छिन्नवादी, अन्तःकरण प्रतिविम्बवच्छिन्नवादीको यह कहकर दोष देने हैं, कि अक्षविभिन्न वस्तुका ही प्रतिविम्ब होता है। किन्तु

अतन्व-रूपमन्व निरवयव वस्तु है, सुतरां समस्त प्रतिविम्ब रहना असम्भव है। अधिकतम, प्रतिविम्ब पाप कुछ भी नहीं है, वह चन्द्र वस्तुकी छाया मात्र है, उसका अथवा अस्तित्व कुछ भी नहीं है। सुतरां प्रतिविम्बको जीवात्मा कहनेमें जीवात्माका भी कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता। अतएव जो वस्तु कोई भीज नहीं है, उसका अन्व और मोचन केमें सम्भव हो सकता है।

न्यायिकको तरह वैदानिक भी स्वीकार करते हैं, कि आकाश एकके सिवा दो या उसमें अधिक नहीं है। पर उन्हीं एक आकाशके व्यापकत्वमें विभिन्न प्रकारके नाम होते हैं। उन्हीं तरह ऐतन्य भी एक ही है, केवल अन्तःकरणप्रभृति आधारविभिन्न कहनेमें उसका भिन्न भिन्न नाम होता है। घटके चारों ओर आकाश घटित रहता है, पर उस घटकी व्यापकत्वमें अन्तःकरणके चारों ओरका आकाश उसके साथ साथ नहीं जाता। जीवात्माको भी ठीक वही दया है। इहलोक और परलोकमें उसकी प्रतिविधि नहीं है। केवल अन्तःकरणमें ही उन्हीं 'इहलोक गमन' किंवा 'परलोकगमन' ऐसा नाम दिया जाता है। उन्हीं कारणमें जीवात्माके अन्व अथं मोचनमें कोई व्याघात नहीं लगता।

जो अन्तःकरणद्वारा हम अज्ञानापीन संसारमें प्रवृत्ति होते हैं, उसीका नाम जीव है। उस जीवका अन्व होता है। जिस अन्तःकरणमें परमात्माद्वयमें संसारमें प्रवृत्ति नहीं होती, उसका अन्व भी नहीं होता, सुतरां मोच होता है।

अवच्छिन्नत्व (सं० छी०) १ व्यापकत्व। यथा मरो-धरमें वडिमत्ता (अन्तःकरण) युक्त वस्तु निरूपित प्रतिबन्धकता रहनेपर, मरोधर वडिमत्ता नहीं है, ऐसा निययोभूत नियमको अवच्छिन्नत्व कहते हैं। (१८५१)

२ सामानाधिकरण्य। जैसे वडिमत्ता अन्तःकरणमें अन्तःकरण परामर्शनिर्दिष्ट धर्मनिष्ठ दो विषय (अन्तःकरण और अन्तःकरण) का अवच्छिन्न तथा अवच्छेदक भाव है। ३ अन्तःकरणविषय विषय, जैसे आने (अन्तःकरण)

हृत् कपिसंयोगी है मूलमें नहीं—इत्यादिमें कपि-संयोगका अग्रभाग अवच्छिन्नत्व है। ४ 'यह इसके युक्त रहनेपर ऐसा होता' ऐसा प्रतीतिमासिक स्वरूप सम्बन्ध विशेष। (वह संसर्ग भयार्द्रासि प्रविष्ट रहता है) यथा "तद्विनिष्टविशेषकलावच्छिन्नतत्प्रकारकत्वं प्रामाण्यम्" (मनुस्मृत्या) इत्यादिमें रजत (चांदी) रहनेपर 'यह रजत' ऐसा ज्ञाननिष्ठ यह विशेष्यक, रजत प्रकारकका अवच्छेद्य अवच्छेदक भाव होता है। यहां पर यह नियम है, जिन दो विषयमें निरूप्य निरूपक भाव रहता, उन्हीं दो विषयोंमें अवच्छेद्य-अवच्छेदकभाव भी होता है। यह एतद्विशेष्यकत्व अंशमें एतदप्रकारक होता, इस तरह प्रतीतिसाक्षिकस्वरूप सम्बन्धविशेष यथा "तद्विशेषकलावच्छिन्नतत्प्रकारतायाश्चतुर्भयसत्प्रमेयत्वात्।" (मनुस्मृत्यायां)

५ विशिष्टत्व, जैसे घटत्वावच्छिन्न घट इत्यादिमें घटका घटत्वावच्छिन्नत्व अर्थात् घटत्वतिल (घटमें रहनेवाला) सिद्ध होता है। ६ साहित्य, यथा—शरीरावच्छिन्न अर्थात् शरीरयुक्त आत्मानं भोग होता—इत्यादिमें आत्माका शरीरावच्छिन्नत्व है। ७ अनुसृतत्व या प्रयोजकत्व। जैसे फलावच्छिन्न व्यापारका धात्वर्थ—इसमें व्यापारका फलावच्छिन्नत्व है।

अवच्छुरित (सं० क्ली०) अव-दुर-भावे क्त। १ उच्छ्वास, ऊँरसी हंभना। स्वार्थे कन् अवच्छुरितक। अट्टहास। (त्रि०) कर्मणि क्त। २ मिश्रित।

अवच्छेद (सं० पु०) अव-च्छिद-भावे घञ्। १ छेदन। अलगव, भेद। २ सीमा। ३ विशेष करना। ४ इयत्ता। ५ अवधारण, नियम, छानबोन। ६ व्याप्ति। अवच्छिद्यते अनेन करणे घञ्। ७ इयत्ता साधन, नापनेका यन्त्र (पात्र)। ८ संयोगीतसम्बन्धीय सट्टकके वारह प्रश्नोंमें एक प्रश्न। ९ परिच्छेद, विभाग। जो वस्तु किसी आधारके एक दिगमें रह, दूसरे किसी अवयवमें न हो, उसको अव्याप्य-वृत्ति कहते हैं। जैसे घट यहां है, वहां नहीं; तो इस जगह आधारके अवयव द्वारा निरूपण कर अवयव बोला जायगा—यही अव्याप्यवृत्तिका निरूपक है। जैसे वानर हृत्के अग्रभाग पर रहता, तो हृत्के अग्रभाग ही

के साथ वानरका संयोग होता, हृत्के मूलके साथ संयोग नहीं रहता, इसलिये इस स्थलमें वानरका संयोग अव्याप्य वृत्ति ठहरता है। शास्त्रकार इसको कपिसंयोग कहते हैं। हृत्के मूलमें वानरका संयोग नहीं होता, इस वास्ते हृत्क मूल अव्याप्यवृत्तिका नियामक, अतएव यही हृत्कमूल और अग्रभागको अवच्छेद कहा जाता है। अवच्छेद देग्वायो और कालव्यापी होता है। उसमें देग्वायो होने भी सर्वत्र कालव्यापी नहीं रह सकता। इसलिये काल ही अव्याप्यवृत्तिका निरूपक है। जैसे, जाग्रत आत्मानं ज्ञान होता; किन्तु सो जानने आत्मा रहते भी ज्ञान चला जाता है। इसलिये यहां निद्राकाल ही ज्ञानकी अव्याप्यवृत्तिका निरूपक है।

अवच्छेदक (सं० त्रि०) अविच्छिनति स्मृत्वात् अन्वतो-वा-प्रयक् करोति, अव-च्छिद-श्लु-म्। छेदक, तोड़नेवाला, जो अलग कर देता हो। २ इयत्ता-कारक, सीमाकारक, हृद बांधनेवाला। ३ अवधारक, यकीन् रहनेवाला। ४ अवच्छेदक मध्य द्वारा वतायी हुई अव्याप्यवृत्तिका विषय निरूपक।

विशेष विवरण अवच्छिन्न शब्दमें देखो।

अवच्छेदकता (सं० स्त्री०) १ अवच्छेद करनेकी स्थिति, अलग रखनेकी हालत। २ इयत्ता लगानेकी बात, हृद बांधनेका काम।

अवच्छेदकत्व (सं० क्ली०) १ स्वरूपसम्बन्ध विशेष। यह कहीं प्रतियोग्यप्रकारोन्मूल धर्मवान् होता है। जैसे—प्रमेय धुमाभावप्रतियोगिताका अवच्छेदकत्व धूमत्वमें नियम किया गया अर्थात् "धूमनिष्पीडरी तदभावात्" इस नियम द्वारा प्रमेयत्वविशिष्ट धूमत्वमें अवच्छेदकत्व न मान गृह धूमत्वमें ही अवच्छेदकत्व स्वीकार किया गया, फिर किसी स्थलमें धूमतिरिक्त वृत्तित्व रहता है। यह दो प्रकारका होता है। प्रथम—"तच्छ्वादिनिष्ठे इति तदविशेषाद्यथाप्राप्तदिविनिवृत्तम्।" जैसे घटा-भाव प्रतियोगिताका अवच्छेदकत्व घटत्वमें है। दूसरा व्यापकत्व—यथा घटकारणताका अवच्छेदकत्व दण्डत्वमें है। फिर किसी जगह—"तदविशेषाद्यथाप्राप्तदिविनिवृत्तम्" यथा "हृदे इत्येव कपिसंयोगः साधकत्वम्।"

पुराणादिभिं समन्व्य चवतारोको वात निघो षे ।
 उभमं धि करं समिह षे,—महा, मारद कदिम,
 टभावे, यद, चयभदव, वृपु, मत्प्य, कूम, वराह,
 मृमिह, वामन, परगुराम, राम, विटप्याम, धम्यन्तवि,
 मोहिनी, राम, वनराम, लक्ष्म, नरनारायण, बुह यमं
 कल्को ।

वृथिथी चोर विटकं लयाः तथा दुष्टेकि दमनके
 निचे विष्णुमं दग वार भूमण्डलमं चवतार चदण
 विद्या याः । विष्णुके दग चवतार यथा,—१ मत्प्या-
 मदार, २ कूमवतार, ३ वराह चवतार, ४ मृमिहवा-
 तार, ५ वामन चवतार, ६ परगुराम चवतार,
 ७ रामानतार, ८ लक्ष्म चोर वनराम चवतार, ९ बुह
 चवतार, १० कल्को चवतार ।

मुण्डमाला तन्त्रके मतानुसार प्रकृतिभिं चो यं मम
 चवतार उत्पद्य इय धी—लक्ष्मरुपा कामी, रामरुपा
 तारिणी, कूमरुपा वगला, मोनरुपा धमावती, मृमिह-
 रुपा लिचमन्ता, वराहरुपा भैरवी, परगुरामरुपा
 सुन्दरी चर्वात् वीरुगौ, वामनरुपा सुयनेश्वरी, बुहरुपा
 कमला चोर कल्कीरुपा मातङ्गी । रत्नमणरुपेक्षी ।

चवतारण (सं० क्री०) चव-व-विष्-क्युट् । १ भूत
 को भाङ् । २ चवके चखमं भूतका चधम ।
 ३ चवकी प्रस्तावना । (क्री०) करले म्णुट् चवतारणी ।
 'चवतारण्युदि दरे वलाचण' (वि०)

चवतारना (चिं० क्रि०) १ लपय करना, रचना ।
 २ उतारना, लम्प देना ।

चवतारित (सं० वि०) चव-व-विष्-ण । १ चव-
 रोपित । २ रचित ।

चवतारी (चिं० वि०) १ उतारनेवाला, चवतार
 चदण करनेवाला । २ देवांमपारी ।

चवतार्य (सं० वि०) चव-व-कर्तरि ङ । १ लता-
 यगाहन, जो नदी प्रधति मंभा चुका हो । २ लता-
 यरोहण, जो लपय मंषि चा गया हो । ३ चवदण-
 विगिह मादुर्म, जो दूमरा रूप घर चाया हो ।

चवतारम (सं० क्री०) चव-तूल चवघटनायें
 विष् भावे क्युट्-विष्-वीयः । तूलद्वारा चवघटन
 विद्या कृपा, जो करे मं तोला गया हो ।

चवतोका (सं० क्री०) चवगतितं ममंन्यायणं चव्याः ।
 प्रादि ६-वदुमी । जिम कोके मं न रके, चवदुमं,
 मं गिरामेवाणी को । 'चवतोका चवतारणी' (चव)

चवता (सं० वि०) चव-दा-ण । १ चविङ्गता ।
 २ दत्त, टिया कृपा । ३ टिकर पुनः रङ्गीत । च
 लचमंनः । च चवतार । वितां प्रक तकारादि प्रत्यय परे
 रङ्गेमं चखम उचममं पर पु मं प्रक दा म्नामं
 तकार होता है ।

चवतित (सं० वि०) चवतमस्ताव्य चवता (च
 रङ्गी । च १ । २ । ३ । ४ । ५) । जो चविङ्गता हो गया
 हो, जिमकी चागा नष्ट हो गयी हो ।

चवतमार (सं० पु०) न वतुं मन्तामं चरचरति
 मभते वतुं-च-चञ्-ततो मन्-तत् । चखेदोम
 चरवि विगोय । 'चवतारम क्युट्-व-व-विष्-ण' (चव
 १ । २ । ३ । ४ । ५)
 'चवतारण्ये चवतारणी' (वि० मण्य)

चवदंग (सं० पु०) चवदंगमते मद्यपानान्तरं
 चर्यते चव-दंग-कर्मणि घञ् । मद्यपानके दधिकर
 द्रव्य, मद्यपानके समय जो बड़े पादि ब्राण जाते हैं,
 गञ्ज, चाट, गृहि ।

चवघात (सं० वि०) चव-घा-ण । १ चनाहन,
 तिरचहन, शेरचन, जो भिङ्का गया हो ।

चवदत्त (सं० वि०) चवदात्तं दत्ता पुनर्यं होतुं
 दात्तुं वा चादि कर्मणि कर्तरि ङ दट् चादेमः ।
 १ चविङ्गता, जो टिकर फिर से लिया गया हो ।
 २ दत्त । चदि कर्मणि कः कर्मणि च । च १ । २ । ३ । ४ । ५ । चादि-
 कर्म चर्वात् कर्मके पुंनं क्रियाका वनेय रङ्गेम पर कर्म
 माण्य ङ प्रत्यय होता है । भाव एवं कर्मवाच्यमं
 यथाविहित ङ प्रत्यय होता है । चादि कर्म कर्तरि
 प्रथतिभे ङ विधानं, यथा—प्रकृतः कटं देवदत्तः ।
 प्रकृतः कटो देवदत्तः । प्रकृतं देवदत्तं न । से वणे ।
 च १ । २ । ३ । ४ । ५ । चवतुमं प्रक तकारादि प्रत्यय परे रङ्-
 गे मं कर्म प्रक दाके म्नामं दट् चादेम ही जाता है ।
 (चव वर चवत कर्म दि०)

चवदत्ता (सं० पु०) वामक, वधा ।

चवदरण (सं० क्री०) चव-द-भावे क्युट् । विदा-
 रण, मारकाट ।

अवदलित (सं० त्रि०) भड़का, फटा, टूटा, चिटखा, जो फट पड़ा हो।

अवदाघ (सं० पु०) अवदघरते प्राणिनींछिन; अव दघ आधारे घघ, नद्वादित्वात् इष्य घत्वम्।
१ निदाघ, घूप। २ घीषकाकाल, गर्मीका मौसम।

अवदात (सं० पु०) अवदेट् गोघे क्त। १ शुभ, सफेद रङ्ग। (त्रि०) २ सफेद, उजला। ३ सख्ख, साफ। ४ पीत, हरिद्राम, पीला, वसन्ती। ५ सुन्दर, खूबसूरत।

‘अवदातं सिने पीते विचदते प्रवेदति च’ (विभ)

अवदान (सं० स्त्री०) अवदो देप् वा ल्युट्।
१ प्रशस्त कर्म, अच्छा काम। २ खण्डन, तोड़ फोड़। ३ पराक्रम, ताकत। ४ अतिक्रम, सबकृत। ५ शुद्धिकरण, सफाईका काम। ६ उमीर, खस।

‘अवदानवतिष्ठते खण्डने प्रशकर्मणि’ (दिन)

अवदान्त (सं० पु०) मिग्रहृत्, घौधा।
अवदान्य (सं० त्रि०) १ लपप, कछूस। २ पराक्रमशाली, ताकतवर। ३ उलझनकारी, लांच जानिवाला।

अवदारक (सं० त्रि०) अवदारयति, अवद-णिच्-कर्मणि क्त। १ विदारक, फोडनेवाला। २ खन्ता, बेलचा, कुदाल।

अवदारण (सं० स्त्री०) अवद-णिच्-भावे ल्युट्।
१ विदारण, अवयव-विभाग, तोड़-फोड़, टुकड़े-टुकड़े उहाना। अवदार्यते खन्त्यते गर्तायनेन, करणे ल्युट्।
२ खनित्र, खन्ता, बेलचा।

अवदारित (सं० त्रि०) अवदार्यते ख, अवद-णिच्-कर्मणि क्त। १ विदारित, फटा हुआ। २ विभाजित, तक्कसोम किया हुआ।

अवदावद (वे० त्रि०) असत् प्रयास न रखनेवाला, जो बुरा नाम न रखता हो।

अवदाह (सं० पु०) अवगतो दाहो गात्रत्वाना येन, प्रादि वधुम्नी०। १ उमीर, खस। २ सामञ्जक वण। अवदाह भावे घञ्। ३ खरादि जन्य गात्रदाह, खुहार वगैरहसे पैदा हुई शिखकी जलन। ४ अग्नि द्वारा दहन, आगसे जल जाना वगैरह।

अवदाहेट (सं० स्त्री०) वीरणमूल, खस।

अवदाहेटकापय (सं० स्त्री०) उमीर, खस।

अवदोणं (सं० त्रि०) अवद-क्त ईर दीर्घः तकारस्य नकारः। १ विदीर्ण, फटा हुआ। २ द्रवीभूत, पिघला हुआ। ३ आघर्षान्वित, ताज्जुबने पड़ा हुआ। ४ विभक्त, बंटा हुआ।

अवदोह (सं० पु०) अवदुघरते, दुध-कर्माथ-घञ्। १ दुग्ध, दूध। भावे घञ्। २ दोहन, दुधईर।

अवय (सं० त्रि०) न मद महार्ये यत् निपात्यते। ‘अवयं पापम्’ (सिद्धान्तकोशसे) १ अधम, पाजी। २ पापी, गुनहगर। ३ निन्द्य, हिकारतके काजिन। ४ कथना-योग्य, निलसट। ५ प्रतिशुट, बरा। (स्त्री०) ६ शर्वा, चन्द्रके दशमे एक घोडा। ७ रेफ।

अवयगोहन (वे० त्रि०) अमिलाय मिटा देनेवाला, जो खादिसि दूर कर देता हो।

अवयमी (वे० स्त्री०) पापका भय, इजाइका खौफ।

अवय्यत् (वे० त्रि०) कुत्सित, पपामृतपशारी, वदनुमां, चफूसीमनाक।

अवयोतन (सं० स्त्री०) अवद्युत-णिच् भावे ल्युट्। प्रकायन, रायनीदिही, उजालेका फेलाव।

अवयोतिन् (सं० त्रि०) प्रकाय फेलांनिवाला जो चमक रहा हो।

अवदङ् (सं० पु०) डाट, बाज़ार।

अवध (सं० पु०) १ वधका अभाव, कतूनकी पट्टम-मोजूदगी। २ कोयल, पयोधा। यह अक्षा० २५° २४' एवं २८° ४२' उ० पौर द्वावि० ७८° ४४ तथा ७३° ८' पू० के मध्य अवस्थित है। यह प्रदेगके छोटे लाट इमका प्रबन्ध करते है। क्षेत्रफल २४२४६ वर्गमील है। इससे उत्तर नेपालता सप्तस्य राज्य, उत्तर-पश्चिम रोपेलखण्ड विभाग, दक्षिण-पश्चिम गङ्गा नदी, दक्षिण-पूर्व बनारस विभाग और पूर्व दमती जिला पड़ता है। इसकी राजधानी लखनऊ शहर है।

अवध खुसा मैदान है। यह दक्षिण-पश्चिम गङ्गा नदीसे हिमालयकी तराई तक फैला है।

उत्तर भीमापुर कुछ जङ्गल रहने भी बाकी बचनेमें
रहे। बिजाने पीर घाटको भ्रमर है।

गङ्गा, गोमतो, पाचरा पीर रामो प्रधान नदी है।
गोमतो पौलोभीत जिनैति निकलती पीर मध्यतः,
सुभानपुर, भोमपुर जामे कुं भेयदपुरके पास गङ्गामें
गिरती है। कदना, मरायन, मायो पीर गन्ध
गोमतोको गायः है। प्रतापगढ़में रहती पीर
हरदोईमें मांटी बड़ी भौल है। गोंडा पीर बहरा-
ईन जिनमें रामो रहती है। पाचराके दक्षिण
तटपर फेजाबादका जिला पाबाद है। गरी, नीता-
पुर पीर हरदोई जिला मारागढ़ जङ्गलमें गङ्गा जिनारे
क्षोत्र तक फैला है। मध्यतः, बाराबंकी पीर उभाव
कोनका जिला है। रायबरेली, प्रतापगढ़ गङ्गाके पास-
तट पीर सुभानपुर गोमतोको दोनों पीर बसा है।

पंचमकी जमीन् अधिक उपजाऊ है। कर्षी-
कर्षी जिनमें मही या बामू देवते हैं। साधारणतः
पानी २३ फीट गहरे निकलता है। खरमें मगतमें
मग्नत पास जगती है। हम मानमें कोई मूलवान्
धातु नहीं होता। पुराने समय नमक बहुत बनता
था, जिसे खंगरेज सरकारने बन्द कर दिया।
कड़ड़ ल्पादा होता पीर मडक कूटनेके काम जाता
है। मानमें कितनी ही कुमल होती पीर तानाच,
पामका बागु या पामको कीठी भी जगह जगह मौजूद
रहती है। गौबीके घरीपर हमनीके पीड़ छाया किये
है। जेला, पमरुट, कठपन, लोबू पीर मारुपी गांवकी
गोभा बढती है।

भरकारी जङ्गल बहुत अच्छा है। पैरागढ़में
सायुके अई बने पीर बहराम घाटमें उनके तपुमें
चिरते हैं। गोमम पीर दूसरो लकड़ी बत घाटनेके
काम पातो है। महुवेका फल-फल पीर लकड़ी-
खाट मर कुछ अच्छा होता है। भोलीमें जङ्गली
चारन, कमल गङ्गा पीर सिंघाड़ा उपजाता है।

पहले गोंडके जङ्गलमें जायो घुमता था, किन्तु अब
कही भी देख नहीं पड़ता। इसी तरह जङ्गली भेंडा
पीर बीता भी गुम हो गया है। किन्तु भिड़िया इधर-
धर घुमा करता है। लोमगाय बहुत होता पीर

पमनको बर जाता है। गङ्गा पीर गोमतोके ऊपरमें
जिन लनमि भरा करता है। भोलीमें सुरगरो
पीर बतवू तेरती है। मांय काटनेमें कितने ही
घाटभी मानमें मरते हैं। घाराज जगवरोंमें पीड़,
मवेनी, भेन, गधा, गुपर, भिड़, बकरा पीर गुमां
प्रधान है।

रंगभ—फेजाबादके पास हिन्दुघोंका पवित्र तीर्थ
पयाप्यापुरी विद्यमान है। पुराने कालमें पाचरामे
उत्तर पीड़ी दूर करनमगधके पास पनम्या मुनिजा
समाधि बना है। आयसीमें गाय मुनिने कितने ही
बोध घेने सूँठे हैं। कर्मोर्मि गङ्गाधिपति कलिचक्रके
पेया मणोमन करनेपर आयसीमें टा पण्डित भिने
गये। आयसीका पतन ज्ञानेपर विजयादिपाने कर्मो-
के रामा मेघशङ्कनको छरा पंचम पतन्य कर दिया।
मनु ४०० ई०को पानपरिभ्राजक फादियानने आयसी
नगरमें ऊँची दीवार पीर टटा-कूटा मन्दिर तथा
प्रामाद पाया, किन्तु बोध मङ्गलाका और घट गया
था। मनु ई०के ७वें शताब्द गुपड़-गुपड़नें आय-
सीको विनशुन वामी दिया।

मनु ई०के ८-वें या ९-वें शताब्द ताङ्गरीने जङ्गल
साफ कराया था। कोई भी वर्ष बाद जिनो गोम-
पंगीयने पचना प्रभाव जङ्गली पश्चिमतिघोंवर हान
दिया। मनु ई०के ११ वें शताब्द क्षोत्रके राठोर-
नृपतिने पंचमके क्षेत्रियोंको कराया था।

पीठ भारोका राज्य फैल बना। किन्तु मनु
१२४६ ई० का दिनाके बादगाह नमीर-उद्-दीन्
सुल्तानने उन्ने मोबा देखाया। मनु ११८४ ई० का
क्षोत्रके गिनेपर महासुल्तान गोरोंने पंचमको बड़ा
मारया था। सबम पहने सुल्तान बदायियाए विजयनें
पचना अच्छा चला जमाया। सुतुसुल्तानके मरनेपर
उन्नेमें पनममकी पञ्जाता पनोहार को पीर उनके
बहनके गियासुद्दीन् बङ्गालके मुसोमो नामक बन बंटे।
पीठ हिन्दुघोंने बनया बडा कर १२०००० मुसलमान
मार हामि ये। माहजादे नमीसुल्तान बनया दशनें
भिने गये पीर मनु १२४२ ई०को खमसुल्तान के गो
पयोधोके नामक बने। लोमपुरके नगर इधरकांम

शाह शरकीनि नगर नगरमें सुसलमान शासक रख दिये थे। उनके समय बड़े-बड़े नृपति भाग खड़े हुए। किन्तु उनके मरनेपर राजा वैलोक्यचन्द्रने सुसलमानोंके विरुद्ध उपद्रव उठाया था। सुसलमानोंके पेर उखड़े और वैलोक्यचन्द्र राजा बग बैठे। वावरने हमला मार अयोध्यामें मसजिद बनवायो था।

महाराष्ट्रोंके अभ्युदय समय औरङ्गजेबको बादशाहत बियड़ी और अवध स्वतन्त्र हो गया। मन् १७३२ ई० को गद्दादत फली खान् अवधके सूबेदार बने थे। मन् १७४३ ई० को उनकी मृत्यु हुई और दामाद सफ्दर जङ्गने नवाबी पायी। किन्तु मन् १७५३ ई० को सफ्दर जङ्गके लड़के गजा-उद्-दौलाके समय एक नयी बात पड़ोयो। उन्हें बङ्गालमें मौर काश्मिको अंगरेजोंसे लड़ते देख विहार प्रान्तपर अधिकार करना चाहा। इसलिये वह भगेडू बादशाह शाह फालम और बङ्गालके निर्वासित नवाबको ले पटनेपर भागपट पड़े। किन्तु उन्हें अल्लत-कार्य ही धक्करको हटना हुआ। मन् १७६४ ई० के अक्तोबर मास मेजर मनरोने वहां उन्हें पूरे तौरपर हरा अवधपर अधिकार जमाया था। नवाब बरेलीको भाग और इतभाग्य बादशाह अंगरेजोंसे भा मिले। मन् १७६५ ई० को जो सन्धि हुई, उसके अनुसार अवध प्रान्तका कोड़ा, अलाहाबाद बादशाह और बाकी देश गजाउद्दौलाको दिया गया। कोड़ा और अलाहाबाद बादशाहसे ले लेनेकी इच्छा देख मन् १७६८ ई०को नवाबको फौज १५००० रखी गयी और उसे रणकीशल सीखनेकी आज्ञा न हुई।

मन् १७७५ ई० को गजा-उद्-दौला मरे और उनके लड़के अशफ-उद्-दौला गद्दीपर बैठे थे। उसी समय अंगरेजोंने उनमें सन्धि की, जिसके अनुसार उन्हें कोड़ा, अलाहाबाद दिया और बनारस, औनपुर, गजौपुर, राजा चेतर्मिहका राज्य लिया गया। किन्तु अशफ-उद्-दौलाने खर्चसे तद्रु या अपनी मा बहू बेगमका धन छीनना चाहा था। बेगमके प्रार्थना करनेपर अंगरेजोंने बीचमें पड़ भगड़ा मिटा दिया। पीछे अशफ-उद्-दौला अलाहाबादसे लखनऊमें आकर

रहने लगे थे। मन् १७८१ ई० को बुनारमें नवाबसे मिल वारेन हेस्टिङ्गमने फिर सन्धि की, जिसके अनुसार एक हंगीडको छोड़ सारी अंगरेजोंकी फौज अवधसे हटा ली गयी। लखनू देखो।

मन् १७८८ ई० को अशफ-उद्-दौलाका उत्तराधिकार सौतेले भाई गद्दादत फली खान्ने पाया था। संधियाके दवानसे उन्हेंनी अपना आधा राज्य अंगरेजोंको इस लिये भौप दिया, कि वह संधियाके आक्रमणसे देशको बचायेंगे। गद्दादत फलीके उत्तराधिकारी गाजी उद्-दीन् हैदरने पहले पहले मन् १८१४ ई०को राजाका उपाधि पाया था। पीछे मन् १८२७ ई० को नवीर-उद्-दीन हैदर, १८३७ को सुहम्बद फली शाह और १८४१ को फमजद फली शाह गद्दी पर बैठे। मन् १८४७ ई० को अवधके अन्तिम नवाब वाजिदफली शाह राजा हुए थे। मन् १८५६ ई० के फरवरी मास अंगरेजोंने अवधपर अधिकार किया और वारस लाव रूपया याचिक वाजिद फलीके व्ययनिर्वाहार्थ बांध दिया।

मन् १८५७ ई० के मार्च मास लखनऊमें बनया फूटा और जूनके मध्यतक समग्र अवध बलवायियोंके हाथ जा पड़ा था। ४ थो जुलायोको सर डेनरी लारेन्स गोलीके घावसे मरे, किन्तु २५ थीं मितम्बरको श्रीतराम और देवलकने लखनऊकी फौजको जाकर उधार किया, जो तोग महीने किलेमें घिरी रहीं थी। (वि०) ३ न सारने योग्य।

अवध वख्त—एक हिन्दुस्थानी कवि। प्राय मन् १८४७ ई०की इन्होंने जन्म लिया था। इनके पदमें साहित्य भरा है। गियविंघ मरोजमें इनका परिचय है।

अवधातथ्य (सं० वि०) अव-धा-कर्मणि तथ्य। १ मनोयोगका विषय। २ बोधका विषय, जिससे मनोयोग किया जाये।

अवधान (सं० क्तो०) अव-धा-भ्यट्। १ मनोयोग विषय। २ मनका योग, चित्तका नगाव, चित्तकी वृत्तिकी निरोधकर उसे एक चोर नगाना। ३ समाधि। ४ ध्यान। ५ सावधानी, चौकसी।

अवधार (सं० पु०) अव-धु-विष्-धत् । निघण्टु ।

अवधारण (सं० स्त्री०) अव-धु-विष्-ल्यट् ।

१ परिच्छेदः । २ निरुद्धयः । ३ संख्यादि द्वारा इत्यन्ता करणः । ४ अवधार विभिन्न रूपमें व्यवसायन होना ।

१ निघण्टु, विचारपूर्वक निर्धारण करना ।

अवधारणोप (सं० स्त्री०) अव-धु-निष्-कर्मणि

उभेयम् । निरुद्धय करने योग्य, निर्धारणके योग्य, निरुद्धयोग्य ।

अवधारणः (सं० स्त्री०) धारण करणः । अवध

करणः ।

अवधारित (सं० वि०) अव-धु-विष्-कर्मणि क्तः ।

निर्धारित, निश्चित ।

अवधारण (सं० स्त्री०) अव-धु-विष्-कर्मणि क्तः ।

१ निघण्टु करणें योग्य, अवधारणोप, अवधारण करने योग्य । २ निर्धेय, निर्धेय करने लायक । (अर्थ०)

अव-धु-निष्-ल्यट् । ३ अवधारण कर ।

अवधि (सं० पु०) अव-धा-कि । १ मीमा । २ काम,

३ निष्ठाभिनिवेश, अवधान, मनोयोग, अपादान, निमग्न मीमा को जाय । पूर्ण और पर मीमा यही दो प्रकारकी है । ऐमि, कलकला अवधिमें कामी अवधिका माडोमाडा इतना है । यही कलकला पूर्ण अवधि

उपे कामी पर अवधि है ।

प्रकारान्तरमें अवधि तीन प्रकारकी है—दमलत, कामलत एवं बुद्धिकल्पित । दमलत, कलकला अवधिमें इत्यादि । अर्थात् काम अवधिमें मीमा अवधि

नर रूप करना । यही कामकाल अवधिकी कालकृत पूर्ण अवधि, एवं मीमाकाल अवधिकी कामलत पर

अवधि कहते हैं । कृष्णकामिनी ओ काम कहती है, वर मन्त्रीवर्षावधि अर्थात् इतना धीरे धीरे कि

वह आरम्भः मन्त्री ही पुन सकती, दूसरा कोई नहीं । मन्त्री कृष्णकामिनीके मुखको कविका बुद्धिकल्पित

है, उस

निर्णयके पदात्त प्रत्यय (अट्) प्राप्ति होते । वर अवधिज्ञान देव और मारकियोकी तो अवधि ही

होना है । मनुष्य तथा तिरुंतीको तदवस्था प्रत्य निघण्टु द्वारा प्राप्त होता है । मनुष्य और निघण्टुको भी

अवधिज्ञान होता है, उमके ३ भेट है—अनुगामी, अनुगामी, परमान, होयमान, अवस्थित, अवस्थितः ।

का अवधिज्ञान अर्थ जन्ममें या जन्ममें ही माय जाय, वह अनुगामी है, जो माय न जाय, जिन जन्ममें वा

अभि चेतनमें उत्पन्न हुआ हो, उमो जन्म या चेतनक रहे, सो अनुगामी है । ओ परिचामाको विगदिमि

अभिने दृश्य, चेत, काम, भावकी ममांदादि उत्पन्न हुआ हो, उममें बढ़ता ही रहे घटे नहीं, सो परमान, और जो मन्त्रोम परिणामोमि घटना ही रहे, सो होय-

मान है । ओ कामी न घटे और न बढ़े एकता ही रहे, सो अवस्थित और जो घटना बढ़ता भी रहे, सो अवस्थित है । (दृष्टिको, जल, अग्नि, पवन,

अव्यक्त और छाया आदिमें अवस्थित दृष्ट्याका अत्यन्त तथा आकाका भी प्राप्त हैं ।

अवधि दर्शन (सं० पु०) कलमास्तानुमार अवधिज्ञान द्वारा पदात्तोंके ज्ञाननेमें पहिले सामान्य मत्ताका प्रतिभास होता । अवधिज्ञान ।

अवधिमत (सं० स्त्री०) अवधि अन्तरण मतम् । अवधि विगिह । अर्थात् निर्धारित समय युक्त । तत्र

नैवाधिक अवधिको ही अवधीका अर्थ व्योहार करते हैं ।

अवधिमान (सं० पु०) मनुष्य । अवधी (सं० स्त्री०) १ अवध-मन्त्रिणी, अवधी । २ अवधी बीमो । अवधीका भाषा । विद्यार्थके

मुमलमान और कायल यही भाषा होती है । मन्त्र मन्त्रावधमें भी इमीका अवधारण होता है । मन्त्री इमके बोधनेवाले इजारी पाठमें

भी प्रद है । अवधीयमान (सं० स्त्री०) अव-धा-कर्मणि मानव

इत्यम् । ओ विघण्टु मनोयोग करने

लट् श्रवधोरयति । लुङ् श्रवधोरत् सिट् श्रवधोर-
यामास । क्त्वा श्रवधोरयित्वा ।

श्रवधोरणा (सं० स्त्री०) श्रवधोर-णिच्-भावे युच् ।
श्रवघ्ना, तिरस्कार ।

श्रवधोरित (सं० त्रि०) श्रवधोर-णिच्-कर्मणि क्त ।
श्रवघ्नात्, तिरस्कृत, प्रपमानित । जिसका तिरस्कार
किया गया हो । "श्रवधोरितमुद्रवागवा ।" (पद्यतन्त्र)

श्रवधूत (सं० त्रि०) श्रव-धू-क्त । १ कम्पित । २ छाप्य
यजुर्वेदात्म्यगैत उपनिषद् विशेष । ३ अभिमृत्, निव-
सित, घनाहृत । (पु०) ४ संन्यासिविशेष ।

श्रवधूत संन्यासियोंमें कुछ शैव और कुछ वैष्णव रहते
हैं । महानिर्व्वाणतन्त्र एवं योगमारमें शैव श्रवधूतोंका
विवरण लिखा है । हठहृत्-शङ्करविजयमें भी इसी
सम्प्रदायका विवरण देखा जाता है । महानिर्व्वाण-
तन्त्रमें प्रधानतः चार प्रकारके श्रवधूत संन्यासियोंकी
कथा पाई जाती है,—ब्रह्मावधूत, शैवावधूत, वाराव-
धूत एवं कुलावधूत । ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यका
ब्रह्मोपासक होनेसे यति वा ब्रह्मावधूत कहते हैं । इस
श्रवधूतमें वे श्लोक गृहस्थाश्रममें रह श्रवधूत संसारधर्म
त्यागकर संन्यासी हो सकते हैं । विधिपूर्वक पूर्णाभि-
पिक्त हानिपर संन्यासी शैवावधूत कहा जाता है ।

वारावधूतोंके गिरमें दीर्घ और अर्धस्कृत केश
रहते हैं । कोई रुद्रास और कोई डाडूकी भाला
पहन रहता है । उनमें कोई विवस्त्र, कोई केवल
कौपीन धारण किये हुए, एवं किसीके चङ्गमें भ्रम
और किसीके रक्तचन्दन लिस रहता है । उनके
हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी, काष्ठदण्ड, मृगचर्म, परशु,
खट्वाङ्ग, डमरू एवं भ्रमर रहता है । उनमें कोई
कोई गेरुपा यज्ञ भी पहनते हैं । सभी वीराधूत
गांजा और मद्य सेवन करते हैं ।

कुलाचारके अनुसार अभिपिक्त होकर जो साधक
गृहस्थाश्रममें रहता है, उसे कुलावधूत कहते हैं ।

शङ्करद्विजयमें दश प्रकारके श्रवधूतोंकी बात
लिखी है,—तीर्थ, श्रायम, वन, श्रम्य, गिरि, पर्वत,
सागर, सरस्वती, भारती एवं पुरी ।

जो संन्यासी त्रिवेणी प्रभृति तीर्थ स्थानोंमें रह

स्थानादि करते, उन्हें तीर्थ जो श्रायविवर्जित है
और साधनद्वारा पुनर्जन्मसे मुक्तिप्राप्त करते, वे
श्रायम कह जाते हैं । जो वन एवं निर्मरमें वास
करते, उन योगियोंको वन कहते हैं । जो श्रम्यमें
वास करते और सर्वदा धानन्दिन रहते हैं, उनका
नाम श्रम्य है । जो संन्यासी गिरिमें वास करते
और गीताभ्यासमें निरत रहते एवं जिनको बुद्धि
गम्भीर और भवन होती है, उन्हें गिरि कहते हैं ।
जो पर्वतके मूलमें वास करते हैं, ध्यानमें प्रवीण
एवं सारात्सार परब्रह्मतत्त्वज्ञ हैं, वे पर्वत कह
जाते हैं । जो संन्यासी सागरमदृश्य गम्भीर भावसे
बैठकर ईश्वरकी धाराधना करते हैं, उनका नाम
सागर है । स्वरवादी एवं सुकवि संन्यासीका सरस्वती
कहते हैं । सहिद्वान् एवं दुःखविवर्जित संन्यासी भारती
कह जाते हैं । तत्त्वज्ञ एवं परब्रह्मनिरत संन्यासीका
नाम पुरी है ।

श्रवधूत वैष्णव रामानन्दके शिष्य हैं । इस समय
भी बङ्गदेशके नाना स्थान एवं भारतवर्षके किसी किसी
प्रदेशमें इसदुःखेपीके वैष्णव बहुते पाये जाते हैं । इनका
आचार व्यवहार प्रतिगम्य कुत्सित है । इस सम्प्रदाय-
वाले जातिभेद नहीं मानते और न उनके पान
भोजनका ही कोई नियम है । उनके गिरमें बड़े
बड़े बाल, गलेमें स्फटिक प्रभृतिकी माला, कमरमें
कौपीन, देखमें धस्त्रियोंका कुरता और हाथमें नारि-
यलकी किशा रहती है । ये श्लोक सर्वदा अत्यन्त
अपरिष्कार भावसे रहते हैं । श्लोक इन्हें वापसे भी
कहते हैं । बङ्ग देशके स्थान स्थानमें इनके चत्वारें
हैं । एक एक चत्वारेंमें दो तीन श्रवधूत और उनकी
कोई टाकियां रहती हैं । ये श्लोक रूप बदन सभी
जातिकी अपने सम्प्रदायमें मित्रा लेते हैं । गोपीयन्त्र
और एकतारा प्रभृति इनके वाद्ययन्त्र हैं । भिक्षा
मांगनेके समय गृहस्थके द्वारपर जाकर पक्षसे ये श्लोक
और श्रवधूत का नाम श्रम्य करते, फिर वाश
वजाकर गीत गाते हैं । इनमें कितने ही गृहस्थांकी
सहायियोंको नष्ट करनेकी चेष्टा करते, इसीसे समाजके
घृणापात्र हैं ।

श्वधार (सं० पु०) श्व-धृ-णिच्-प्त् । नियय ।
 श्वधारण (सं० ली०) श्व-धृ-णिच्-ल्प् ।
 १ परिष्कृत । २ निरूपण । ३ संस्थादि द्वारा दयता
 करना । ४ परस्पर विभिन्न रूपमें व्यवस्थापन होना ।
 ५ नियय, विचारपूर्वक निर्धारण करना ।

श्वधारणीय (सं० लि०) श्व-धृ-णिच्-कर्मणि
 षनीयत् । निरूपण करने योग्य, निर्धारणके योग्य,
 नियययोग्य ।

श्वधारणा (लि० लि०) धारण करना, पक्ष
 करना ।

श्वधारित (सं० लि०) श्व-धृ-णिच्-कर्मणि णि
 निर्धारित, नियत ।

श्वधार्य (सं० लि०) श्व-धृ-णिच्-कर्मणि यत् ।
 १ नियय करने योग्य, श्वधारणीय, श्वधारण करने
 योग्य । २ निर्णय, निर्णय करने लायक । (श्व्य०)
 श्व-धृ-णिच्-स्वप् । ३ श्वधारण कर ।

श्वधि (सं० पु०) श्व-धा-कि । १ मीमा । २ कान्त,
 ३ चित्ताभिनिवेश, श्वधान, मनोयोग, श्वपादान,
 जिससे मीमा की जाय । पूर्व श्वीर पर सीमा यही दो
 प्रकारकी है । जैसे, कलकत्ता श्वधिसे काशी श्वधिका
 गाडीमाडा इतना है । यहाँ कलकत्ता पूर्व श्वधि
 एवं काशी पर श्वधि है ।

प्रकारान्तरमें श्वधि तीन प्रकारकी है—देशज्ञत,
 कान्तज्ञत एवं बुद्धिकल्पित । देशज्ञत, कलकत्ता श्व
 धिसे इत्यादि । चन्द्रके ग्राम श्वधिसे मीमा श्वधि
 तक लप करना । यहाँ वासकाल श्वधिको कान्तज्ञत
 पूर्व श्वधि, एवं मीमाकाल श्वधिको कान्तज्ञत पर
 श्वधि कहते हैं । कुलकामिनो जो बात कहती
 है, वः मन्त्रीकर्षाश्वि श्वधाम् इतना धीरे धीरे कि
 वर वासकी मर्गो ही गुन सकती, दूसरा कोई नहीं ।
 यहाँ कुलकामिनोके मुण्डको कविका बुद्धिकल्पित
 पुः श्वधि श्वीर जो मन्त्री उसकी बात सुनती है, उस
 मन्त्रीके कामको पर श्वधि कहते हैं ।

श्वधिज्ञान (सं० ली०) ज्ञेय शास्त्रानुसार ज्ञान
 विमेष । जिस ज्ञानके द्वारा इन्द्रियोंकी सहायताके
 बिना द्रव्य, चेतन, काल, भावकी श्वधि (मर्यादा)को

निर्दिष्ट किये पदार्थ प्रत्यक्ष (स्पष्ट) ज्ञाने जाये । श्व
 श्वधिज्ञान देव श्वीर मारकियोंकी तो जन्मसे ही
 होता है । मनुष्य तथा तिर्यक्षोंको तपस्वरण तप्त नियम
 द्वारा प्राप्त होता है । मनुष्य श्वीर तिर्यक्षोंको श्रो
 श्वधिज्ञान होता है, उसके ६ भेद हैं—भनुगामी,
 भनुगामी, वर्द्धमान, श्वीयमान, श्वस्थित, श्वनश्वित ।
 जो श्वधिज्ञान श्वन्य जन्ममें या चेतनमें भी साय जाय,
 श्व भनुगामी है, जो साय न जाय, जिस जन्ममें या
 जिस चेतनमें उत्पन्न हुआ हो, उसमें जन्म या चेतनक
 रहे, सो भनुगामी है । जो परिणामांकी विग्रहमें
 जितने द्रव्य, चेतन, काल, भावकी मर्यादांनि उत्पन्न
 हुआ हो, उसमें बढ़ता ही रहै घटे नहीं, सो वर्द्धमान,
 श्वीर जो संज्ञेय परिणामोंसे घटता ही रहै, सो श्वीय-
 मान है । जो कभी न घटे श्वीर न बढ़े एकमा ही
 रहै, सो श्वस्थित श्वीर जो घटता बढ़ता भी रहै, सो
 श्वनश्वित है । (दृष्टिबो, जल, अग्नि, पवन,
 श्वन्कार श्वीर छाया आदिसे व्यवहित द्रव्योंका प्रत्यक्ष
 तथा श्वामाका भी ज्ञान हो ।

श्वधि दर्शन (सं० पु०) जनशास्त्रानुसार श्वधिज्ञान
 द्वारा पदार्थोंके ज्ञाननेमें पहिले नामान्य सत्ताका
 प्रतिमास होना । श्वधिज्ञान ।

श्वधिमत् (सं० लि०) श्वधि रक्षणार्थ मत्पु ।
 श्वधि विगिष्ठ । श्वधाम् निर्धारित समय युक्त । नश्य
 नैयायिक श्वधिको हो पक्षमीका श्वधे स्वीकार
 करते हैं ।

श्वधिमान (लि० पु०) समुद्र ।
 श्वधी (सं० लि०) १ श्वध-सम्बन्धी, श्वधका ।
 २ श्वधो बोधो । श्वधकी भाषा । विहारके
 मुसलमान श्वीर कायस्थ यही भाषा बोलते
 हैं । मध्य मध्यापचमें भी इसीका व्यवहार होता
 है । गद्यमें इसके बोधनेवासे हजारों पादमी
 मौजद हैं ।

श्वधीयमान (सं० लि०) श्व-धा-कर्मणि श्वानश्
 वाकारार्थ इत्यम् । जो विषय मनोयोग करने
 लायक हो ।

श्वधीर—श्वधायी श्वन्तपुरादि प० म० भेद ।

लट् श्वधीरयति । लुङ् श्वधीरत् लिट् श्वधीर-
यामास । ज्ञा श्वधीरयित्वा ।

श्वधीरणा (सं० स्त्री०) श्वधीर-णिच्-भावे युच् ।
श्वघ्ना, तिरस्कार ।

श्वधीरित (सं० द्वि०) श्वधीर-णिच्-कर्मणि क्त ।
श्वघ्नात, तिरस्कृत, अपमानित । जिसका तिरस्कार
किया गया हो । “श्वधीरितमुद्राकाण्यः” (पञ्चतन्त्र)

श्वधूत (सं० द्वि०) श्व-धू-क्त । १ कम्पित । २ कृष्ण
यलुर्वेदान्तर्गत उपनिषद् विशेष । ३ अभिभूत, निव-
र्त्तित, घनादृत । (पु०) ४ संन्यासिविशेष ।

श्वधूत संन्यासियोंमें कुछ शैथ और कुछ वैष्णव रहते
हैं । महानिर्व्यापतन्त्र एवं शांगसारमें शैथ श्वधूतोंका
विवरण लिखा है । बृहत्-शङ्करविजयमें भी इसी
सम्प्रदायका विवरण देखा जाता है । महानिर्व्याप-
तन्त्रमें प्रधानतः चार प्रकारके श्वधूत संन्यासियोंकी
कथा पाई जाती है,—ब्रह्मावधूत, शैथावधूत, वाराध-
धूत एवं कुलावधूत । ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यका
ब्रह्मोपासक होनेसे यति वा ब्रह्मावधूत कहते हैं । इस
श्वधूतोंमें वे लोग बृहस्पत्यायममें रह श्वधूत संसारधर्म
त्यागकर संन्यासी हो सकते हैं । विधिपूर्वक पूर्वाभि-
यिक्त होनेपर संन्यासी शैथावधूत कहा जाता है ।

वाराधधूतोंके गिरमें दीर्घ और श्व-स्कृत केश
रहते हैं । कोरं रुद्राच और कोरं डाड़की मासा
पहन रहता है । उनमें कोई विवस्त्र, कोई केवल
कौपीन धारण किये हुए, एवं किसीके भद्रमें भय
और किसीके रक्तघन्दन सित रहता है । उनके
हाथमें मनुष्यकी खोपड़ी, काठदण्ड, भृगुचर्म, परशु,
खट्वाङ्ग, डमरु एवं भभरं रहता है । उनमें कोई
कोई गुरुवा वस्त्र भी पहनते हैं । सभी वाराधूत
गांजा और मद्य सेवन करते हैं ।

कुलाचारके अनुसार श्वधूतोंको साधक
बृहस्पत्यायममें रहता है, उसे कुलावधूत कहते हैं ।

शङ्करद्विजयमें दश प्रकारके श्वधूतोंकी बात
लिखी है,—तीर्थ, पायम, वन, शरणा, गिरि, पर्वत,
सागर, शरणा, भारती एवं पुरी ।

जो संन्यासी त्रिवेणी प्रथति तीर्थ स्थानोंमें रह

स्नानादि करते, उन्हें तीर्थ जो श्रामाविर्जित है
और साधनद्वारा पुनर्जन्मसे मुक्तिप्राप्त करते, वे
पायम कहे जाते हैं । जो वन एवं निर्भरमें वास
करते, उन योगियोंको वन कहते हैं । जो शरणा
वास करते और सर्वदा शानन्दित रहते हैं, उनका
नाम शरणा है । जो संन्यासी गिरिमें वास करते
और गीताभ्यासमें निरत रहते एवं जिनकी बुद्धि
गभीर और श्वचल होती है, उन्हें गिरि कहते हैं ।
जो पर्वतके भूमिमें वास करते हैं, ध्यानमें प्रवीण
एवं सारात्मार परब्रह्मतत्त्वज्ञ हैं, वे पर्वत कहे
जाते हैं । जो संन्यासी सागरमध्य गभीर भावसे
बैठकर ईश्वरको आराधना करते हैं, उनका नाम
सागर है । श्वरवादी एवं मुक्ति संन्यासीका शरणा
कहते हैं । सहिदान एवं दुःखविजित संन्यासी भारती
कहे जाते हैं । तत्त्वज्ञ एवं परब्रह्मनिरत संन्यासीका
नाम पुरी है ।

श्वधूत वैष्णव रामानन्दके शिष्य हैं । इन समय
भी वज्रदेगके नाम स्थान एवं भारतवर्षके किसी
प्रदेशमें इसदुःखीके वैष्णव बहुत पाये जाते हैं । इनका
आचार व्यवहार श्रमिगय कुत्सित है । इन सम्प्रदाय-
वाले ज्ञातिभेद नहीं मानते और न उनके पान
भोजनका ही कोई नियम है । उनके शिरमें बड़े
बड़े बाल, गलेमें स्फटिक प्रथितकी माना, कमरमें
कौपीन, टहलमें ध्वजियाका कुरता और हाथमें नारि-
यलकी किशा रहती है । ये लोग सर्वदा श्वन्त्र
अपरिष्कार भावसे रहते हैं । भोग इनके श्वचल भी
कहते हैं । वज्र देगके स्थान स्थानमें इनके पत्ताड़े
हैं । एक एक पत्ताड़ेमें दो तीन श्वधूत और उनकी
कई टाशियां रहती हैं । ये लोग रूप बदल समो
जातिको अपने सम्प्रदायमें सिद्धा लेते हैं । गोपीयन्त्र
और एकतारा प्रथति इनके श्वचल्यन्त्र हैं । भिषा
मांगनेके समय बृहस्पत्यके श्वरपर जाकर पहले ये लोग
‘वीर श्वधूत’ का नाम श्वरण करते, फिर बाजा
बजाकर गीत गाते हैं । इनमें कितने ही बृहस्पत्यकी
सङ्कियोंको नष्ट करनेकी चेष्टा करते, इनमें समाजके
घृणापात्र हैं ।

५ एक पाद्योम संस्कृत कवि। सुभाषितावनीमें इनका उल्लेख है। ६ भगवद्भक्तिस्तोत्ररचयिता।
 अवधूनन (मं० स्त्री०) अव-ध-निष्-नुक-भ्यृट्।
 १ चामन, भटाड़। २ निकृत्तमा विशेष।
 अवधूनन (मं० स्त्री०) हुनि करोति अव-धुनि-
 छत्स्ये निष् भावे भ्यृट्। अवचूर्णन, चूर्ण करना,
 बुकमी बनाना।
 अवधृत (मं० त्रि०) अव-धृ-कर्मणि ङ। अवधारित,
 नियत, नियमित, व्यवस्थापित।
 अवधृत्य (मं० त्रि०) अव-धृप् कर्मणि क्यप्। १ अव-
 धृत्येयीय, तिरस्कारयोग्य। २ पराभयनीय। (अद्य०)
 अव-धृत्य-न्नाप्। ३ तिरस्कारकर, अपमानकर।
 अवधेय (मं० त्रि०) अव-धा कर्मणि यत्। १ निये-
 तय, ध्यानदेने योग्य। २ निवेग्य, स्वापनीय। ३ अह्येय,
 अह्यकी योग्य। ४ ज्ञातव्य, जानने योग्य। (स्त्री०) भावे
 यत्। ५ मनोयोग।
 अवधेश—सु० दिनवण्डके प्रसिद्ध कवि। यह ब्राह्मण चर-
 मारी राशयके रङ्गनेयाले थे। मनु १८४० ई०की इन्होंने
 इहलोक छोड़ा। कहते हैं, इनकी कविता रसोत्ती
 रही। शिवसिंहने निघा, कि उन्हें इनकी कविताका
 कोई पूर्ण पुस्तक मिला न था।
 अवध (मं० त्रि०) अव-वध-रञ्ज-नञ्-तत्। अर्धिसक।
 'अवधं नीतिरदिश चलातोदिशम्।' (अष्ट. अ०५।०) 'अवधम्
 अर्धिसकम्।' (भाष्य)
 अवध्वंस (मं० पुं०) अव-ध्वंस-घञ्। १ परित्याग,
 छोड़ना। २ नाश। ३ चूर्णन, चूर चूर करना। ४ निन्द्या,
 कमन्द। 'अवध्वंसं परिवासे निन्द्यामेव चर्चते।' (विश्व)
 अवध्वस्त (मं० त्रि०) अव-ध्वन्स-ङ्। १ नष्ट।
 २ निन्दित। ३ क्षणित। ४ त्यक्त। 'अवध्वन्स्य ध्वंसि,
 अन्निनिधयोवा।' (ईश)
 अवध (मं० स्त्री०) अव-धृट्। १ प्रीचन, प्रसन्न
 करना। २ रक्षण, रक्षा करना, बचाव। ३ प्रीति।
 ४ हृद्य। 'अवधं रक्षयतेः।' (ईश)
 अवधत (मं० त्रि०) अव-धन्-ङ्। १ अधोमुख।
 २ चामन, मोचा, भुका हुआ। ३ पतित, गिरा हुआ।
 ४ कम। ५ क्षतनमस्कार, प्रयास किया हुआ।

अवनति (सं० स्त्री०) अव-नम-ङ्। १ पीछेपछा
 पमान, अर्थ, विनय, नम्रता। २ घटती, कमती,
 घाटा, न्यूनता, हानि। ३ अधोगति, हीनदया, तन-
 ल्नी। ४ भुजाव, झुकना।
 अवनह (मं० त्रि०) अव-नह-ङ्। १ अक्षित,
 रोषित, वैष्टित, वह। (स्त्री०) २ मृदङ्गादि वाद्य।
 नवीण १११। भूज परे या पदान्तमें। वर्तमान नह
 धातुका हकारके स्थानमें धकार होता है।
 अवनम् (मं० त्रि०) अव-नम-र। अतिगय नम्।
 अन्व २२में २२ हीको।
 अवनय (मं० पुं०) अव-नी भावे अच्। अपधःपतन,
 नीचे गिरना।
 अवनयन (मं० स्त्री०) अव-नो-सुट्। अवस्थापन,
 गर्तमें प्रोक्षणका शेष जल टालना।
 अवना (हिं०) चामा।
 अवनाट् (मं० त्रि०) नासिकायाः नतम्। अव-
 नतार्थे नासिकायाः नाटच् प्रत्ययः। चिपटी नाकवाना,
 जिमके नाक चिपटी रहें।
 अवनाय (मं० पुं०) अव-नी घञ्। अधोयन,
 अधोप्रापण, नीचे खेजाना। अरंतीर्षिः। पा ३।१।२।
 अव और अत् यही दा उपसर्गसे पर मो धातुके उत्तर
 अच् प्रत्यय होता है। 'अवनायोऽपोनवनम्।' (वि० बी०)
 अवनाम (मं० पुं०) अव-नम-अच्। अवनति, मत्था
 नमाकर नमस्कार करना।
 अवनि, अवनो (मं० स्त्री०) अवति रचति प्रजाः अद्यत्ते
 या भूयेः अव-अनि (अतिप्रथमव्यञ्जित्वादिनि। अष्ट. ५।०।१। रनि
 अदि) 'अदिवातानाम् वा जीवि अवनीयदि।' १ भूमि, मड्डी,
 मिट्टी, पृथ्वी, जमीन। २ त्रायमाणा जला। अवनि
 जगत् स्वोदकं, अद्यत्ते प्राणिभिस्तरादिनिर्माणं
 अव-अनि। ३ नदी। (निह०) वेदमें अवनीका अर्थ नदी
 होता और प्रायः बहुवचनान्त रूप देखा जाता है।
 'अदिअनोऽवनयः बहुवच्।' अष्ट. ३।२।२। 'अवनो नद्यः' (भाष्य)
 अवनि कर्मणि। ४ अङ्गुलि। 'दक्षप्रमिथो दक्षप्रमिथो' अष्ट
 १।०।०।३। 'अवनिप्रमिथः अष्टप्रमिथः। अष्टप्रमिथोऽङ्गुलिः।' (भाष्य)
 अवनिह (मं० त्रि०) अव-निह-ङ्। क्षान्त, धीन,
 मोहित, धोया हुआ (यत्तु विशेष)।

भवनिनाय (सं० पु०) ६-तत् । राजा, नृप ।
भवनिपति, भवनीपति (सं० पु०) ६-तत् । नृप,
राजा ।

भवनिसिंह—मन्द्राजप्रान्तस्थ कनाड़ा जिलेके एक प्राचीन
नृपति । काञ्चापुरके पास कूरममें जो ताम्रफलक
मिला, उसमें लिखा है,—‘इहं सिंहविष्णु भो कहति
थे । इहंनि मलय, कालाभ्र, मालय, चोल, पाण्ड्य,
सिंहल और केरल नरेशोंको नोच दिहाया था ।
सन् ७८४ ई०वाले विनयादित्यके ताम्रफलकमें लिखा
है,—सन् ४५४-५५ शोर ४६६ ई० को यह अपन
राज्यपर अधिकृत रहें ।

भवनीपाल (सं० पु०) ६-वत् । नृप, राजा ।

भवनीय (सं० पु०) भवनीयान् शब्दो ।

भवनेजन (सं० स्त्री०) भव-निज्-शुधी ल्युट् ।
१ प्रचालन, धोना । २ आहमें पिण्डदानकी वेदीके
विक्षाए हुए कुशोंपर जल सींचनेका संस्कार विधेय ।
पार्षण आहके भव दान प्रवृत्ति अनेक कार्यमें
अर्थात् पिवादि या मातामहादि तोनके उद्देश्यसे
एक वाक्यमें तौनीका नाम ले एकवार उल्लंघन करनेकी
विधि है । अर्घ्य, अक्षयोदक, पिण्डदान, भवनेजन,
स्वधायजन इन कितने कार्यमें प्रत्येकके निमित्त पृथक्
पृथक् रूप मन्त्र पढ़ते हैं । यथा—

‘‘अर्घ्योदके चैव पिण्डदानेऽभवेजनम् ।

मन्त्रा विविधैः प्यात् स्वधायजन एव च ॥’’ (अग्नि)

भवन्ति (सं० पु०) भव-भित् । भवतिप । उच् १।१० ।
मानववदेय एवं उसकी प्रधान नगरोका नाम ।

यनकथा कीविद्यमानहाण ।

पूर्वादिपाननुर उरी भोविद्या विद्यामान ।’’ (नैषध)

वत्सराजका इतिहास जाननेवाले हृद भोग जिस
भवन्ति प्रदेशके गाँव-गाँवमें रहते हैं वहाँ पदुच पूर्व
कथित महा श्रोमस्यत्र विद्याला नगरीमें जाओ ।

इस श्लोकमें कालिदासनं भवन्ति प्रदेश और उसकी
नगरीको पृथक् रूपसे देखाया है । यहाँ भवन्ति
शब्दसे भवन्तिप्रदेश समझा जाता, इससिधिये वह
बहुवचनान्त है । पूर्व श्लोकके २० वें श्लोकमें कालि-
दासने लिखा है, ‘‘धीधोतुवद्वयविद्यो भाव मूढमविद्या ।’’

उल्लेनकी भटालिकाके ऊपरसे एकवार परिचय
करके जानेंमें विमुक्त न होना । अतएव कालिदासके
समयमें भवन्ती, उज्जयिनी एवं विद्याना ये तीनों ही
नाम चलते थे ।

हैमचन्द्रने भवन्तीके ये कई पर्याय लिखे हैं,—
उज्जयिनी, विद्याला, भवन्ती एवं पुष्पकराण्डिनो ।
‘‘उज्जयिनी मविद्यानाऽवनी पुष्पकराण्डिनो ।’’ भवन्ती नगरीको
किसने किस समयमें स्थापित किया और इसके दूसरे
दूसरे नाम किस समयमें चले आते हैं, यह जाननेका
कोई उपाय नहीं है ।

भवन्ती नगरी भवन्ती नदीके किनारे बनी है ।
भवन्ती नदीका दूसरा नाम शिवा है । उज्जयिनी
नगरीके वर्णनमें कालिदासने इस नदीका नाम भी
लिखा है, ‘‘शिवाननः पिवतम एव इत्यादि । मत्स्य-
पुराणमें लिखा है, कि भवन्तीमें मङ्गलपङ्कका जन्म
हुआ था । ‘‘अपत्याप उग्रः शत्रो मागधे च षडायज ।’’ पक्षी
भवन्ती नगरीमें कानिका एवं महाकास नामक
महादेवका मन्दिर था । शक्तिसम्प्रदायमें निष्ठा है,—

‘‘तावप्यौ वनावाप येनैतद्विद्योत्तमः ।

अप्यौमंथको दीपो कानिका तव निरुध्न ॥’’

कालिदासके मेघदूतमें महाकालका विवरण पाया
जाता है,—

‘‘पुच्छं शाश्वतसुवन्गुरोधाम चगीवरम् ।

अप्यकित्त्वं कवचमङ्गलकानलाद्यं ॥ इति ॥’’

भवन्ती नगरी महाराज विक्रमादित्यकी राजधाना
थी । प्राचीन समयमें यह शौभौन्द्य एवं विद्याके
निये विशेष प्रसिद्ध थी । रामजन्म भवन्ती नगरीके
साम्नेपन आचार्यके निकट अथविद्या भीगने गये
थे । ‘‘ततः साम्नेपनिं कामसन्तोपुराणमिदम् । अवादे अन्वम् कोरी
वन्देवन्तान्दो ॥’’ (विश्व १।१।८) परन्तु यह कौन
भवन्ती है, सो ठीक नहीं कहा जा सकता ।

भवन्तीका वर्तमान नाम उज्जैन है । यह उज्ज-
यिनी शब्दका अपभ्रंश है, इस समय यह नगरी
सेविद्याके अधिकारमें है । इसका परिधि प्रायः तोन
कोस है । इस नगरीकी चारो ओर मङ्गलपङ्क
बना हुआ है, बीच बीचमें उसके ऊपर गीम पुष्पत्र

अवपात्र (सं० त्रि०) अव भोजनो निरुद्धत्वात्, स्वाभ्य पात्रं यस्य, बहुव्री०। पतित किंवा स्नेच्छ जातिका मनुष्य, जिस शख्मके खानसे बरतन भूडा हो जाये।

अवपात्रित (सं० त्रि०) अव-पात्र कृत्यर्थे णिच्-क्व इट्-णच् लोपः। अपान्नेय, जिसको जातिवालेने अपने साथ बैठाकर खिलाना छोड़ दिया हो।

अवपाद (सं० पु०) अव-पद-घञ्। अधःपतन, नीचेको गिराव।

अवपाण (सं० स्त्री०) अव-पा-ण्युट्। १ पिलाया। २ दूरस्थ पानीय द्रव्य, तालाव।

अवपाणित (सं० त्रि०) अरक्षित, गैर-महफूज, जिसकी खबर न लो जाये।

अवपाशित (सं० त्रि०) अव समन्तात् पाशो जातोऽस्य तारकादि० इतच्। पायबध, जालमें फंसा हुआ, जो फन्दमें पडा हो।

अवपीड (सं० पु०) पांच प्रकारके नखमें दूसरा गिरोनख। यह मोधन और स्नायन मीदमें दो प्रकारका होता है। अवपीडते यन्मात् स अवपीडः, अर्थात् जिससे अवपीडित हो। अवपीडन करके टेने कारण इसे अवपीड कहते हैं। खूब फूट-पीमके तीक्ष्ण द्रव्यको छान लेते हैं। गलरोगादिमें यह बड़ा उपकार करता है। (परिभाषाप्रदीप)

गलरोग, सन्निपात, निद्रा, विषमञ्जर, मनो-विकार, कृमि प्रभृति रोगमें अवपीडन देना चाहिये। (वैद्यकणिसिद्ध)

अवपीडन (सं० स्त्री०) अव-पीड-णिच्-स्युट्। १ निष्पीडन, सम्यक्त तकलीफदिही। २ मध्यविशेष, किसी विषयकी सुधनी। (स्त्री०) अवपीडना।

अवपूर्य (सं० त्रि०) भरा हुआ, नबरेज।

अवप्रज्जन (सं० पु०) दुनाघटके तानिका छातिमा।

अवप्रुत (सं० त्रि०) अव-प्रु-क्व। १ सकल दिक् सिक्क, चारो ओर सींवा हुआ। २ पाद, भोगा। ३ अवतीर्थ, छतरा हुआ। ४ उपस्थित, मौजूद।

अवप्रुत्य (सं० अथ०) नीचे कूद कर।

अवफ (सं० पु०) बादी, नफूष, घंटका फूलना।

अवफव (सं० पु०) कुत्तित्त समाचार, खराब खबर।

अववधा (सं० स्त्री०) त्रिकोणके आधारका छप्प, सुसप्तसके क्वायदेका टुकड़ा।

अववन्ध (सं० पु०) अववन्धते धान्निगते चक्षुस्तेजोऽनेन, अव-वन्ध करणे घञ्। १ दृष्टि-पावरक रोग विशेष, मांडा, फूली बगैरह। भासे घञ्। २ मय्यक्-वन्धन, खासी जकड़।

अववाधा (सं० स्त्री०) अव-वाध-घ स्त्रीत्वात् टाप्। १ सकल दिक् वा सकल प्रकार वाधा, सब तरफ या सब तरहसे चाफत। २ प्रतिबन्धन, धरपकड़।

अववाहुक (सं० पु०) अव वहा वाह्येन, प्रादि बहुव्री०। १ वायुरोगविशेष, भुजस्तम्भ, तशब्दुज वाज्। (त्रि०) अवगतो वाह्येयस्य, प्रादि-बहुव्री०। २ वाह्यविहीन, धवाज्, जिसके हाथ न रहें।

अवबुध (सं० त्रि०) अव-बुध कर्मणि क्त्वात्। १ छत, जाना हुआ। कर्तरि क्त्वात्। २ प्रबुध, जागरित, जागा हुआ।

अवबोध (सं० पु०) अव-बुध भाये-घञ्। १ जागरण, जागना। २ ज्ञान, बोध। ३ न्यायपरता, सुनिष्ठी। ४ मिष्ठा, तानीम।

अवबोधक (सं० पु०-स्त्री०) अव बोधयति अव-बुध-णिच्-स्युट्। १ सूर्य। सूर्यदिपके पूर्व ही भोग जागते और उनको देखकर समय जानते हैं। इस लिये सूर्यका नाम अवबोधक है। २ ज्ञापक, जनाने-वाला, जो किसी बातको जना दे। ३ बन्दी, चारण। ४ चौकीदार, पाहर, जो रातको पहरा देता हो।

अवबोधकत्व (सं० स्त्री०) मिष्ठा, पदप्रदर्शन, वर्षान, तानीम, रहनुमाथी, बयान्।

अवबोधन (सं० स्त्री०) अव-बुध-णिच्-स्युट्। ज्ञापन, जनाना, वितावनी, समझाना।

अवमण्य (सं० अथ०) तोड़ फाड़कर।

अवमज्जन (सं० स्त्री०) तोड़-फाड़।

अवमर्जित (सं० त्रि०) अवभ्रंश-णिच् भर्जिदिगः क्त्वात्। भूजा वस्तु, भूजी वस्तु को।

अवभाषण (सं० स्त्री०) अव-भाष-स्युट्। १ कथन, बात। २ मन्त्र कथन, दुरी बात।

अवमोचन (सं० स्त्री०) अव-मुच, भावे लृट् ।
 १ उन्मोचन, खोलना । २ व्याजप्रदान, पात्राद
 कर देनेकी वृत्त ।

अवमोटन (सं० स्त्री०) अव-मुट्-विच्-लृट् ।
 मोच, वल ।

अवयजन (सं० स्त्री०) अव-यज गतो करणे लृट् ।
 १ अयजमानसाधन, लक्ष्य जानिका काम । २ अयज्
 याग, निरासा यज्ञ ।

अवयव (सं० पु०) अवयुयते कार्यद्वयेण सम्पद्यते,
 अव-यु मिट्-वे कर्मणि च्च् । १ अंग, भाग, जिस उपा-
 दानकी कोई दृश्य वस्तु, हिस्सा, टुकड़ा । यु च्चि-
 यवे च्च् । २ अक्ष, उपकरण, समुदायका एकद्वय,
 चन्द्रो ज्योतिरिका कोई हिस्सा । ३ वाक्य विंगेय,
 किसी कियका कर्मला ।

व्यायमन-प्रसिद्ध परार्थके अनुमानसाधन वाक्यको
 भी अवयव कहते हैं । इनकोके मतमें वह पांच
 प्रकारका होता है । किन्तु कोई-कोई उसे तीन
 प्रकारका भी बतलाता है । पांच प्रकार यह हैं—
 १ प्रतिष्ठा, २ हेतु, ३ उदाहरण, ४ उपमय, ५ निगम ।
 परमको च्चिनिविगिष्ट बताना प्रतिष्ठा वाक्य है ।
 धूमरेण हेतुवाक्य होता है । भद्रीषी तरह किसी
 वस्तुमें धूम होनेसे च्चिनि रचना उदाहरण कहलाता है ।
 धूमको च्चिष्ठा व्याप्य बताना उपमय वाक्य है ।
 किसी स्थानमें धम रहनेसे च्चिनि होनेका जो निहास
 निकलता, वही निगम कहलाता है ।

अवयवगम् (सं० अर्थ०) अंग-अंग, टुकड़े-टुकड़े ।
 अवयवव्याज (सं० स्त्री०) शरीर, जिघ्र, अज्ञा
 रहनेकी जगह ।

अवयवार्थ (सं० पु०) शब्दके सिमित अर्थोंका
 अर्थ, लक्ष्यके सुगह हिस्सोंका भागी ।

अवयवित् (सं० स्त्री०) अवयवः कारचत्वेनास्य-
 य् इति । १ अवयव रहनेवाला । जैसे, दो कदाम
 अवयवसे घड़ा बलता और अवयवकी कच्चाता
 है । जम्बू द्रष्टव्यता नाम अवयवित् है । नैयायिक
 अवयवित्को अवयवसे सिद्ध और च्चिनिरिक्त पदार्थ
 मानते हैं । सुहावसेमें अवयवोका प्रमाप देखाया गया

है । यथा,—बहु परमाणु, एकत होनेसे ही अवयवो-
 मानना पड़ता है । किन्तु चापत्ति चातो, परमाणु
 द्रष्टव्यता न रहनेसे घटाई केसे प्रत्यक्ष हो सकता
 है । इसका उत्तर है,—एक परमाणुसे प्रत्यक्ष न
 पड़ते भी परमाणु-समूहको साक्ष-साक्ष देपते हैं ।
 जैसे, दूरसे एक केग दृष्टिगत नहीं होता; किन्तु
 अधिक केग किसी स्थानमें रहने पर दूरी ही भल-
 कता है ।

अवयवी (सं० पु०) पत्नी, पिड़िया । अवय्वि-
 वला । १ निकन जाने या बन्द होने-
 वाला । २ शत्रुके वर्जन निमित्त समनकारी, जो
 दुश्मनको रोकने जाता हो ।

अवयव (सं० स्त्री०) अवयुच्य प्रयत्न्य इत्यते,
 अव-यज कर्मणि च्च् । १ अवयजन, अयज् याग,
 अलगसे च्चिनिर्माग स्थापन । (स्त्री०) २ अयज्य
 यागकारी, अराध यज्ञ करनेवाला ।

अवयवहेतुम् (सं० पु०) कौषिको ग्रासा किते
 दृष्टे व्यति, जो शब्दम अयना युष्मा ठण्डा कर शुका
 हो ।

अवयव (सं० स्त्री०) अव-या-लृट् । १ अयज्-
 कर्ता, अलग करनेवाला । २ शास्त्रियायक, जो
 ठण्डा पड़ जाता हो ।

अवयान (सं० स्त्री०) अव-या-लृट् । १ अयजम,
 उत्तर, उदाय । २ शास्त्रि, मदक ।

अवयुन (सं० स्त्री०) शास्त्रि अयुमें अय्य, नज्,
 बहुव्री० । १ शास्त्रिगुण्य, वेगौनक । २ प्रशासुण्य,
 वेचक । नज्-तत् । ३ अयजान, समझमें न आने-
 वाला ।

अवर (सं० स्त्री०) न वरम्, नज्-तत् । १ अवे-
 तामे अर्थ न होनेवाला, जो परिश्रमसे अथवा न हो ।
 २ अथप्रिय न होनेवाला, जो कम धारा न हो ।
 ३ अरम, बड़ा । ४ अथम, धारी । ५ अर्वासीन,
 नया । ६ अयादनी, पीछे रहनेवाला । शास्त्रि अरः
 अर्थो अथान्, ५-बहुव्री० । ७ अतिअर्थ, बहुत बड़ा ।
 (पु०) ८ अयादनी देय, पीछेका सुख । ९ अथा-
 दनी कास, पीछेका पत्र । न वरः, नज्-तत् ।

१० वर न हीनेवाला व्यक्ति, जो शत्रुस दृष्ट्या न हो। (स्त्री०) ११ इस्तिनह्वाका पयादभाग, हाथीकी जांघका पिछला हिस्सा। (स्त्री०) १२ पयादवर्ती दिक्, पीछेकी दिक् ।

अवरचक (सं० द्वि०) पालक, मुहाफिज, जो देखभाल रखता हो।

अवरज (सं० पु०) अवरधि काले जायते अवर-जन-ड। १ कनिष्ठ सहीदर भ्राता, छोटा भाई। 'जघनत्रे धुः कनिष्ठ वहीशोऽपरःशत्रुणाः।' (चर) २ शूद्र। ३ नीच कुलात्पन्न, अधम। (स्त्री०) टाप्। अवरजा। कनिष्ठ सहीदर भगिनी, छोटी बहिन। ४ शूद्रा। अवरस्था जायते जन-ड। पुंस्वद्भावः। ५ छोटी बहिनका लड़का, भागिनेय, भाष्ठा। (स्त्री०) टाप्। भागिनेयी।

अवरत (सं० त्रि०) अवर-रम्-क्त अनुनासिकलोपः १ विश्रान्त। २ विरत, प्रेम न रखनेवाला। ३ अलग, प्रयक्। ४ स्थिर, ठहरा हुआ। ५ अनवरत, सतत, हरवक्त।

अवरतम् (सं० अर्थ०) अवर-तसिल्। अवर, अवरकी, अवरद्वारा, अवरकी उद्देश्य, अवरमें, अवरका, अवरमें इत्यादि। सम्पूर्ण विभक्तिके स्थानमें तसिलस, प्रत्यय होता है।

अवरति (सं० स्त्री०) अवर-रम्-क्तिन्। १ विराम, ठहराव। २ निवृत्ति, छुटकारा। 'आत्मवरति विरतोय परमै।' (चर)

अवरदारुक (सं० स्त्री०) स्यावर विपान्तर्गत पत्र-विषावशेष, किमा पत्तीका जड़र।

अवरपरम् (सं० अर्थ०) एकके बाद दूसरा, एक-एक।

अवरपुरुष (सं० पु०) मन्थान, भौलाद, बालबच्चे।

अवरवर्ष (सं० पु०) अवरः शेषीभूतो वर्षः। कर्मधा०। शूद्र।

अवरवर्षक, अवरवर्षेण देखो।

अवरवर्षज (सं० पु०) अवरवर्षे जायते अवर-वर्षे-जन ङ। १ शूद्र। २ निकटपर्यन्त जात रङ्ग।

अवरव्रत (सं० पु०) नास्ति वरं श्रेष्ठं यस्मात्

तदवरं तयोक्तं व्रतं नियमो यस्य चटुव्री०। १ सूर्ये। सूर्यकी जगत्में प्रतिनियत किरण द्वारा प्रयुक्तो जल खींचकर पुनर्वा रयाकाल देना पड़ता है। यह दोनों काम सूर्यके पति उत्कृष्ट व्रत बन गये हैं। इसीसे सूर्यका नाम अवरव्रत है। २ पर्कहच, अकीड़ेका पेड़। (द्वि०) अवरं अधमं व्रतमस्य। ३ हीनव्रत, मन्दनियमयुक्त, अधम।

अवरशाना (सं० स्त्री०) बौद्ध मठ विशेष।

अवरशैल (सं० पु०) अवरः पयादवर्ती शैलः कर्मधा०। १ अस्ताचल। २ एक प्रसिद्ध बौद्धविहार। अवरशानात् (सं० अर्थ०) अवर प्रमथाचार्यं अश्नाति। पयात् देय, काल किंवा दिक्।

अवरशर (सं० द्वि०) १ सबसे पिछला अगला रखने-वाला, जो शैलमें पाषिरोका काविज्ञ हो।

अवरहस (सं० स्त्री०) अय अवरतं रङ्गः अजन्तप्रा० सं०। पति निर्जन, जहाँ कोई भी जीव न रहे।

अवराचक (द्वि०) १ आराधना करनेवाला, जो पूजा करता हो। २ दास, सेवक।

अवराधन (द्वि० पु०) आराधन, उपासना, पूजा, सेवा।

अवराधना (द्वि० क्रि०) उपासना करना, पूजा, सेवा करना।

अवराधी (सं० पु०) पूजक, उपासक, आराधक।

अवराधे (सं० स्त्री०) अवरच तत् अर्धश्चेति, कर्मधा०। १ अवर भाग, ऊपरी हिस्सा। २ देहका पयादभाग, जिघ्रका पिछला हिस्सा। ३ नाभिमें पाद अर्धन्त देहका निच भाग, तौंदीसे पैरतक जिघ्रके नीचेका हिस्सा। (अर्थ०) ४ क्रमः, धारि-धीरे।

अवराधेत्तम् (सं० अर्थ०) निच भागसे, नीचे-नीचे।

अवराधेयं (सं० वि०) अवराधे भवं यत्। १ शेष भाग जात, पाषिरो हिस्सेमें निकला हुआ। २ म्युन, कम। ३ अल्प, थोड़ा। ४ निच वा निकटस्थित, नीचे या पान पड़ा हुआ। (स्त्री०) ५ अल्पतम भाग, काटसे छोटा हिस्सा।

अवराधेयम् (सं० अर्थ०) अवरवर्षे जायते अवर-वर्षे-जन ङ। १ शूद्र। २ निकटपर्यन्त जात रङ्ग।

अवराधेयः (सं० पु०) नास्ति वरं श्रेष्ठं यस्मात्

अवराधेयः (सं० त्रि०) प्रतिगय निच, निहायत छाटा।

अपरिका (मं० स्त्री०) अन्धाकार, धनिया ।
 अपरोध (मं० स्त्री०) अथ अपरुद्ध रीत्येत्यम् ।
 अपरी कर्मविज्ञ । तिरस्कृत, धिक्कृत, छटकारां
 द्रुष्या, ओं क्रांटा-छपटा गद्या हो ।
 'अपरोधोऽपिच्छत्' (अ०)
 अपरोधम् (मं० स्त्री०) न वरीया, मञ्जुत् । १ नीध,
 कमीना, ओ अन्धा न हो । २ अति अल्प, बहुत
 छोड़ा । (पु०) ३ मारण मनुके पुत्रविनेय ।
 (स्त्री०) अपरीयमी ।
 अपरुद्ध (मं० स्त्री०) अथ अरुद्ध-ज्ञ योदित्वात्तस्य
 नः । अल्प, मरीज्ज ।
 अपरुध्य (मं० अर्थ०) तोड़-फोड़ कर, टुकड़े
 टुकड़े छोड़के ।
 अपरुद्ध (मं० स्त्री०) अथ अरुद्ध-ज्ञ अथ-
 रुद्ध कर्मविज्ञ । १ प्रतिरुद्ध, रुंधा हुआ । २ दूध,
 भंडा हुआ । ३ गुम, छिपा हुआ ।
 अपरुद्धा (मं० स्त्री०) १ रथनी, नीचे बैठे हुए
 अथनी जातिकी स्त्री । २ छटरी, जो चौरत नीचे बैठ
 गयी हो ।
 अपरुद्धि (मं० स्त्री०) अथ-रुध भावे क्तिन् ।
 १ अपरोध, घेरा । २ नाम, फ़ायदा ।
 अपरुध्यमान (मं० स्त्री०) अपरोधमान, घेरा
 हुआ ।
 अपरुद्ध (मं० स्त्री०) अथ-रुद्ध-ज्ञ । १ छातावरोक्षण,
 छतरा हुआ । २ उत्पटाटित, उछाड़ा हुआ ।
 अपरुध्य (मं० स्त्री०) १ कुद्वय, बदमाश । २ अर्थ-
 मद्दर, लोभोगी ।
 अपरुत्तना (हिं० स्त्री०) १ तपोर छोड़ना, रूपा
 अगना । २ हटि जानना, देवना भ्रमना । ३ अनु-
 मान नगाना, अन्धाज्ञ बांधना । ४ स्त्रीकार करना,
 समभ्रमना-बुझना ।
 अपरुत्त (मं० अ०) निम्न भागमें, नीचे ।
 अपरुत्त (हिं० पु०) १ वज्र अजन, निगली रफ्तार ।
 २ अरुद्धके तिरका काट । ३ अन्धा । ४ मुग्धजन,
 धुरापी । ५ अल्प, लफंगर । ६ सोनीठोनी, ताना-
 ज़मी ।

अपरुत्तदार (हिं० स्त्री०) १ तिरहे काटका ।
 २ चोनामा ।
 अपरुत्ती, अपरुत्तार स्त्री ।
 अपरोक्तिन् (मं० स्त्री०) प्रकाशमान, रोगन, अम-
 कीना ।
 अपरोधक (मं० पु०) अथ अनादरे रोधयति ;
 अथ-रुध्-विष्-प्राप्, विष्-भापः । अर्थविकारक
 रोगविनेय, जिम धामारीमें कोई चीज पानेमें अन्धी
 न लगे ।
 अपरोध (मं० पु०) अथ-रुध भावे घञ् । १ विरोध,
 सुझानकृत, भगड़ा । २ कंद, घेरा । अथ-रुध
 कर्मवि घञ् । ३ तिराधान, गुम पड़नेको हालत ।
 ४ राजाके अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्री । अथ-रुध
 आधार घञ् । ५ राजाका अन्तःपुर, बादशाहका
 महल । 'अपरोधितोऽपि अन्तःपुरे' (१५)
 ६ टकन । ७ बाड़ा । ८ चौकीदार । (स्त्री०) ९ उतार,
 नीचेको आना । १० पोषेकी अङ्गमें निक्षेपों हुई
 कायदा ।
 अपरोधक (मं० स्त्री०) १ रोकनेवाला । (पु०)
 २ रक्षक, रक्षुमां । (स्त्री०) ३ घेरा, बाड़ा ।
 अपरोधन (मं० स्त्री०) अथ-रुध भावे ल्युट् । निरोध,
 रोकटोक । २ कंद, फंसाव । अपरुध्यन्ते राजयोपिता
 यस्मिन्, अथ रुध आधार ल्युट् । ३ राजाका अन्तः-
 पुर । (स्त्री०) ४ छतरनेकी छरकत, उतार ।
 अपरोधना (हिं० स्त्री०) १ पिड़ा बांधना । २ रोक-
 टोक करना ।
 अपरोधायन (मं० स्त्री०) अपरोधय्य प्रतिरोधय्य
 राजयोपिता वा अयं गृहम्, १-तत् ; राजाका
 अन्तःपुर, बादशाहका महल ।
 अपरोधिक (मं० पु०) अपरोधे राजास्तःपुरस्य राज-
 योपिता वा अयं गृहम् ; राजकी प्रसादका रक्षक,
 मुद्राधिक्य द्विरम ।
 अपरोधिक (मं० स्त्री०) अन्तःपुरवासीको
 राजाकी स्त्री, जो रानी महलमें रहती हो ।
 अपरोधिक (मं० स्त्री०) घेरा हुआ, रोधा
 गया ।

अवरोधिन् (सं० त्रि०) अवरुणहि, अव-रुध-धिनि ।
 १ रोकक, रोकनेवाला । २ आवरक, टांकनेवाला ।
 अवरोधी रचकलेनास्त्रास्य । ३ राजाके अन्तःपुरका
 रचक, शाही महलका मुहाफिज ।
 अवरोधिनी (सं० स्त्री०) अन्तःपुरवासिनी राजाकी
 स्त्री, घरमें रहनेवाली बादशाहकी बेगम ।
 अवरोधी, अवरोधिन् देखो ।
 अवरोपण (सं० स्त्री०) अव-रुह-णिच् घः ह्युट्,
 णिच् लोपः । १ उत्पाटन, उखाड़पछाड़ । २ धक्का,
 उतार देनेकी हालत । ३ झीनझान । ४ उतार,
 गिराव । ५ अक्ष, गु.रुव ।
 अवरोपणीय (सं० त्रि०) अवरोपणके योग्य, उखाड़
 डालने काबिल ।
 अवरोपित (सं० त्रि०) अव-रुह-णिच्-घः क्त इट्
 णिच् लोपः । १ उत्पाटित, उखाड़ा हुआ । २ उतारा
 हुआ, ओ नीचे गिरा दिया गया हो ।
 अवरोप्य (सं० अर्थ०) १ उतार कर, नीचे गिराके ।
 २ उत्पाटन करते या उखाड़ते हुए ।
 अवरोह (सं० पु०) अव रुह घञ् । १ अवतरण,
 उतार । अवरोहति ह्यशास्त्रातः अधोमुखे नावतरति,
 कर्तारि संज्ञायार्थः । २ शाखाग्रिका, डालका अग्रभाग ।
 'शाखाग्रिकावरोहः क्षान्' (अमर) अवरोहति तरोमुखतः
 अग्रपर्यन्तमारोहति, कर्तारि घः । ३ गुल्म प्रभृति
 लता, गुडूच वर्गैरहकी विल, जो विल पिड़की जड़से
 ऊपरकी चंदतो हो । अवरोहति स्वपुण्यफलभोगात्
 परं मनुष्यलोकं अवतरत्यस्मात्, अपादाने घञ् ।
 ४ स्वर्गादि लोक, त्रिद्विष्ट वर्गैरह । शास्त्रकारोंका
 कथन है, जिनका जैमा पुण्य होता, वह समके
 अनुसार स्वर्गादि लोकमें सुख उठा फिर पृथिवी
 पर भा जन्म लेता है । ५ धनद्वार विशेष ।
 यह धनु विशेषके मौन्द्य वा श्लेष्मकी घटाते चला
 जाता है ।
 अवरोहक (सं० पु०) अग्रगत्या, अग्रगंध ।
 अवरोहण (सं० स्त्री०) अव-रुह भावे ह्युट् ।
 १ अवतरण, उतार । २ चढ़ाव ।
 अवरोहना (हिं० क्रि०) १ अवतरण करना, उत-

रना । २ आरोहण करना, चढ़ना । ३ उतारना,
 खींचना, रद्द करना । ४ रोकना, बाड़ लगाना ।
 अवरोहवत्, अवरोहसिन् देखो ।
 अवरोहशास्त्रिन् (सं० पु०) अवरोहति द्विषोपि
 पुनः प्ररोहति, अव-रुह-घच् । १ वट हृत्, वरगदका
 पेड़ । वटकी डाल काट कर गाड देनेसे भी हृत्
 उपजता, इसीसे यह अवरोहशास्त्री कहाता है ।
 (त्रि०) २ कटी हुई शाखासे उत्पन्न होनेवाला,
 जो कलमसे पैदा होता हो ।
 अवरोहशास्त्री (सं० पु०) अहृत्हृत्, पाकरका
 पेड़ ।
 अवरोहिका (सं० स्त्री०) अवरोहति ह्यशास्त्रातः
 अधोमुखेन गच्छति, अव-रुह-शुन् टाप् । अग्रगत्या,
 अग्रगंध ।
 अवरोहिणी (सं० स्त्री०) १ उच्च स्थानसे निम्न-
 देशमें आया हुई स्त्री, जो भारत जंघिने नाचे प्रतरो
 हा । २ ज्योतिषात्त दया विशेष ।
 अवरोधिन् (सं० पु०) अवरोहः शाखाग्रिका अग्रग-
 त्या, अवरोह-घनि । १ वट हृत्, वरगदका पेड़ ।
 २ उतरता हुआ स्वर । (त्रि०) ३ उतरनेवाला ।
 अवरोही, अवरोधिन् देखो ।
 अवर्ण (सं० पु०) स्वरत्वेन अकारस्य सजातीयो
 यमः शाक० तत् । १ मकल स्वरवर्ण, कुल हफ-
 इक्षत । (त्रि०) नास्ति वर्गः समूहो यम्य, नञ्-
 बहुव्री० । २ वर्गान्य, जिनके समूह न रहे ।
 अवर्णस् (वै० त्रि०) ज्योतिःधोन, प्राकृतिमें तृष्य,
 कुष्प, वीरानक, सूरत-शकलमें हृत्, यदनुमान् ।
 अवर्जिम् (वै० त्रि०) रोकटाक न करते हुए,
 जो रोक न सकता हो ।
 अवर्ण्य (सं० पु०) अकारस्यैकस्यानोयो यमः
 अक्षरम्, शाक० तत् । १ इत्य, दीर्घ, वृत्, उदात्त,
 अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, दीर्घ निरनुनासिक
 भेदसे अष्टादश मंत्रक अवर्ण, हफ-इक्षत । मुख्य-
 बोधके मतसे इत्य, दीर्घ, दीर्घ वृत्त अकार ही अवर्ण
 होता है । वर्ण्यते जनमनो वण्यनेनेन, वर्ण्यं दुरा-
 णिच् करये घञ् णिच् लोपः, वर्ण्यः प्रलादि ततो मन्त्र-

तन्मूः २ प्रथममिष, त्रिम दिन प्रथम न रश्ते । ३ प्रथममा-
मिष, त्रिन्ना, ब्रह्मामो ।

‘अथर्वशास्त्रेऽथर्वशास्त्रम् ।’

‘अथर्वशास्त्रेऽथर्वशास्त्रम् ।’ (अथर्व)

(ति०) ४ कुक्षुप, बट्याक । ५ ब्राह्मणादि चार
वर्षमं मिष, जो ब्राह्मण यगुरेह चार वर्षमं न हो ।
६ यक्षादि वर्ष मिष, जो मर्कट यगुरेह रक्ष न
रच्यता हो । ७ नर्चं या रोष्य मिष, जो सोना-चादी
न हो । ८ अथर्व मिष, जो इर्क न हो । ९ गुण
मिष, जो मिर्क न हो । १० अतिक्रम मिष,
जो मानिके ऊपरदेमं चरन हो । ११ चित्र मिष, जो
तरांर न हो । १२ यगोमिष, जो नामवरी न हो ।
१३ तान विगिय मिष, जो तान तान न हो ।
१४ अथर्वमिष, जो तान-कुमेन न हो । (क्री०)
कुक्षुममिष, जो चीज केमर न हो ।

अथर्वशास्त्र (सं० पु०) कटाच, अथर्वग, पाक्राश,
तामाङ्गी, ब्रह्मामो, गामी ।

अथर्व (सं० ति०) वर्णिके अथर्व, जो अथर्वके
सायक न हो । (पु०) २ प्रधान विषय, उपमान, बड़ी
बात ।

अथर्व (सं० पु०) १ प्रकारमशुभ वस्तु, जिम चीजके
नश्वर धार न जा सकें । २ अंधर, धामीका धरदार
फिरा । ३ हुमाव, अंधर ।

अथर्वान (सं० क्री०) इत-सुरा अथर्वे नश्व तत् ।
१ अर्तमानका अभाव । २ उपस्थितिका न रचना,
अदममोक्षदगो, अस्थित, रथानगी । (ति०) अर्तते
आयति अर्तते करि-सुराट् । अर्तते जाविका ततो
नश्व-अथर्वोः । ३ अथर्विकाशुभ, जिमके काम न
रहे ।

अथर्वमान (सं० ति०) १ अथर्वस्थित, अथर्वान,
अथर्व । २ अथर्व या अथर्व ।

अथर्व (सं० क्री०) प्रायश्चित्त अथर्वे अथर्व, इत-
करि इत अर्तते तता नश्व-तत् । दरिद्रता, अथर्व-
शास्त्र, जिम अथर्वको कारि अथर्वे न रहे । ‘अथर्व नः
अथर्वः’ (अथर्वशास्त्रेऽथर्वशास्त्रम्)

अथर्व-गुणशास्त्रके अथर्वशास्त्र एक अथर्व । यह

आथर्वशास्त्रे विवाहादि सम्बन्ध अथर्वाना, जिन्म अथर्वे
अथर्वे अथर्व शास्त्रा अथर्वे सम्बन्धना है ।

अथर्व (सं० ति०) इत-सुरा अथर्वे अथर्वे अथर्वे अथर्वे,
अथर्व-तत् । अथर्वशास्त्र, जो अथर्वे अथर्वे अथर्वे अथर्वे ।

अथर्वमान (सं० ति०) न अथर्वमाने विरोधे अथर्व-तत् ।
१ अथर्वशास्त्र, जो अथर्वे न हो । २ अथर्वमान, अथर्व
अथर्वे अथर्वे ।

अथर्वान् (सं० ति०) अथर्वशास्त्र, अथर्वे अथर्वे अथर्वे ।
अथर्व (सं० पु०) अथर्वशास्त्र ।

अथर्व (सं० क्री०) न अथर्वशास्त्र, अथर्वे अथर्व-तत् ।
१ अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र । (ति०) २ अथर्वशा-
स्त्र, अथर्वशास्त्रे अथर्वे ।

अथर्वक (सं० ति०) न अथर्वशास्त्र ।

अथर्व (सं० ति०) अथर्वशास्त्र अथर्वे अथर्वे अथर्वे
अथर्वशास्त्र, जो अथर्वे अथर्वशास्त्रे अथर्वे अथर्वे अथर्वे
काम करता हो ।

अथर्व (सं० पु०) अथर्वशास्त्रे अथर्वशास्त्र-अथर्व-
अथर्व, अथर्वे अथर्वे । ‘अथर्वशास्त्रेऽथर्वशास्त्रम्’ (अथर्व) (ति०)
अथर्वशास्त्र-अथर्व-तत् । २ अथर्वशास्त्रे अथर्वे, अथर्वशास्त्र ।

अथर्व (सं० पु०) अथर्वशास्त्र-अथर्व-तत् । अथर्वशास्त्र-
न । १ अथर्वशास्त्र-अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्रे अथर्वशास्त्रे अथर्वे ।
(ति०) २ अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्रे अथर्वे ।

अथर्वशास्त्र (ति० ति०) अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र, अथर्वशास्त्र
अथर्वे ।

अथर्वशास्त्रिका (सं० क्री०) अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका

अथर्वशास्त्र (सं० पु०) अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका

अथर्वशास्त्र (सं० पु०) १ अथर्वशास्त्रिका, अथर्वशास्त्रिका
अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका अथर्वशास्त्रिका

अवलीपन (मं० स्त्री०) अव-लिप्-भावे ऋट् ।
 १ विमेषन, जगामा, पोतना, सोपना । २ मन्त्रम् ।
 ३ मर्षं, धमण्ड । ४ दूषण । करणं ऋट् । ५ अन्धत्वादि
 वद बोध ओ लगार्थं वा ङीषो जायं, उपटन वगरह ।

अवलीह (मं० पु०) अव-लिह भावे घञ् । १ बोध-
 विरोध, ओ बोधघ्न विद्याके द्वारा घाटकर पाया
 जाये । २ घटनी । ३ मातृम । ४ विद्यापद्धतारा पाघ्ना-
 टन करने योग्य वस्तुमात्र । पर्याय् जो योज्ज् न बहुत
 गढी घोर न अधिक पतनी हो तथा घाटी जाये ।

अवलीहन (मं० पु०) १ घाट, लामको लोक लगा-
 कर पाना । २ घटनी प्रभृति ।

अवलीह्य (मं० स्त्रि०) अव-लिह्य कर्मणि प्लृप् ।
 विद्यापद्धतारा पाघ्नादनीय, घाटने योग्य । जो वस्तु
 घाट-घाटकर पाया जाना हो, जैसे गृहद प्रभृति ।

अवलीक (मं० पु०) अव-लृक् लोके वा घञ् ।
 दग्गं देवता, वासुप प्राण ।

अवलीकक (मं० स्त्रि०) देवनेपाना ।

अवलीकन (मं० स्त्री०) अव-लृक-लोक वा घञ् ।
 १ दग्गं, देवता । २ अनुप्रस्थान करना । ३ विवि-
 चना जगामा । करणं ऋट् । ४ नेत्र । ५ देवमान,
 जाघ पद्धताप, गिरीधप ।

अवलीकना (हिं० स्त्रि०) देवता, जाघना, अनु-
 प्रस्थान करना ।

अवलीकनि (हिं० स्त्री०) नेत्र, दृष्टि, पांश ।

अवलीकनीय (मं० स्त्रि०) देवने योग्य, दग्गनीय ।

अवलीकित (मं० स्त्रि०) अव-लृक कर्मणि-लृ ।
 १ दृष्ट, देगा दृषा । (स्त्री०) भावे ऋ । २ दग्गं ।
 (पु०) अवलीकित मन्त्राण्य पच् । बुध विरोध ।

‘अवलीकिते बुधे इ (बुधे माघाधिकृतम्) । (वि०)

अवलीकित—गुत्रराजके प्राचीन मन्त्रकार । सन् ८२०
 ई०को इनके लड़के योगेश्वरने राहुकूट-गुफनि गोविन्द-
 का काशी-माशकलक लिखा था ।

अवलीकितेश्वर (मं० पु०) बोधघ्नस्त्र विरोध । महा-
 यान घोर उपरि परवर्ती विभिन्न बौद्ध मन्त्रदायका
 उपाय देवता मिद । बिपी बिपी प्रकृतविवदके
 मतमे महायान मन्त्रदायके मन्त्र जैसे प्राधान्यके

साथ इन अवलीकितेश्वर वा लीकेश्वरकी पूजा अभी
 थी । इसीमे विभिन्न अवलीकितेश्वर वा लीकेश्वरकी
 मूर्तियोंमे संवतस्याक पञ्चानन या महागिरका
 भाव देव पद्धता है । यहाँ तक, कि चनेक स्थानमें
 अवलीकितेश्वर मिय मानकर भा पूजे गये । जो
 देवता स्वर्गमे सुगुप्तुवैके उदारको सर्वदा देवा करते
 है, इसीमे उनका नाम अवलीकितेश्वर रखा गया ।
 किर्पा-किर्पा बौद्ध तन्त्रके मतमे अवलीकितेश्वर ध्यानो
 बुद्ध परमितामके पुत्र रहें । साधनमालातन्त्रमे अवली-
 कितेश्वर वा लीकेश्वरकी साधन विद्यमान है ।
 यथा—

“पूर्वतु कर्मदीयेव लोचनवर्णं कर्षणम् ।
 ओ.कारावराहभूमं कटासुहृदमभिरम् ॥
 ववर्षकं बालः स्वर्णं च देवतामन्त्रम् ॥
 वरं दक्षिणे कक्षे यानि पद्मवर्णं तथा ॥
 लालितार्थं चर्तुं तु महावीर्यं कलापारम् ॥
 सर्वोत्पत्तका भावाः सात दक्षिणतः स्थितः ॥
 वन्दारवराहकृत्वा देवतायाः नामतः ॥
 एतत्पूर्वं महावीर्यं व्याप्योपासयित्वा ॥
 एषं विधिं समाप्तुं कालमन्त्रं प्रयासेत् ॥
 सर्वत्र मन्त्राणां मन्त्रं पूज्यमनोवत् ॥
 अथ मन्त्रं बोधुं ओः शान्तिः” (साधनमालातन्त्र)

साधनमाला, साधनमसुधय प्रभृति बौद्ध-तन्त्रमे
 तीम प्रकारके अवलीकितेश्वरकी मूर्ति बनाने घोर
 पूजनेकी बात है । इसीमे प्रत्येक मूर्तिका भिन्न दण,
 भिन्न ध्यान घोर भिन्न मीत्रमन्त्रा देवनेमें पाता है ।
 इन सब विधि-विधिये अवलीकितेश्वरकी मूर्तियोंके
 बीच स्वर्ण-लीकेश्वर, ललाहम लीकेश्वर, सिंहनाट-
 लीकेश्वर, हरि-हरि हरि-वाहनोद्भव-लीकेश्वर,
 दोमोदयगृह-लीकेश्वर, रत्नलीकेश्वर, पद्मनर्तकेश्वर-
 लीकेश्वर, लोचकपुत्रावलीकितेश्वर, मायाजालकमाया-
 वलीकितेश्वर, यज्ञविष्णु लोचकनाय, महद्यमुत्र लोच-
 नाय, गीन लोचकनाय, जयगुह लोचकनाय, महाविष्णु
 लोचकनाय प्रभृति प्रधान है । नैपाथमे वाविष्णुम
 ताजिक बौद्ध तन्त्रके प्राचीन पुस्तकमे मन्त्रके कर्वात-
 र्ण, निदानके प्रयुक्तार्थ, परमण्ड, सिंहलसीय,
 गाभ्यारामार्ग कूटपर्वत, सुवर्णदीपके विजयपुर, कटाह-

दीपान्तर्गत वलवतिपर्वत, दक्षिणापयका मूलशय, महाशौनके बुधरूपक ग्राम, राढ़के धन्तर्गत कन्याराम, धार्मराजिक चैत्य और वेत्तवन, कोद्वयस्य शिवपुर और शीखडिरवन, मगधके जारुह पर्वत, नालन्दा, अन्दीकोट, बरेन्द्रके तुलाचैत्र, वेदकोट वा वेदपुर, पोतलक इत्यादि प्राचीन स्थानमें अधिष्ठित अवशो-कितेश्वरकी मूर्तिका सम्मान मिलता है। आजकल तिव्यतमें अवशोकितेश्वर अधिष्ठाण-देवता मानकर पूजे जाते हैं। लोकेश्वर और शेषेश्वर देखो।

अवलोकित् (सं० त्रि०) अवशोकिते पश्यति अव-लुक् लोक् वा णिनि । १ दर्शक, देखनेवाला, जो देखे । २ अनुसन्धानकारी, खोज करने वाला । ३ विवेचनाकारी। (स्त्री०) डीप् । अवलोकिनी । जो स्त्री अवलोकनादि करे ।

अवलोकना (ङि० क्ति०) दूर करना ।

अवलोक्य (सं० पु०) अव-लुप-घञ् । १ खण्डन । २ नाशकरना, विनोप ।

अवलोक्य (सं० क्लो०) मानसिक, अभिलाष, दिली, सुराद ।

अवलोक्य (सं० पु०) अवनह सोम-भानुकृत्य अवन्त प्रा० तत् । अतुक्ल ।

अवलोक्य (सं० स्त्री०) कथा सोमराजी, काली वकची ।

अवलोक्य (सं० पु०) मेपशुद्धी, मेडा सौगी ।

अवलोक्य (सं० पु०) अवलोक्यशोभनात् जायते जन-ड । १ सोमराजी, वकची । २ कथासोमराजी, काली वकची ।

अवलोक्य (सं० क्लो०) सोमराजी वीज, वकची का सीका तुष्टम् ।

अवलोक्य (सं० स्त्री०) विद्याल कोट विद्येय, कोई लहरीला कीडा ।

अवलोक्य (सं० पु०) विचारसे बोलने वाला, मुग्धिक ।

अवलोक्य (सं० स्त्री०) छत्र धर्यण, सर्वत्र वर्पा चीना, हर जगह पूरे यानीका बरसना ।

अवलोक्य (सं० पु०) अव-वद्-घञ् । १ निन्दा । २ विम्वस । ३ आघ्रा । ४ अवलम्बन ।

‘अवशादपु निन्दायानाघातिसवशोरधि’ (१२४)

५ निर्देश, ग्रामन, श्रिति ।

‘अवशादपुनिर्देशो निर्देशः मानस्य चः । श्रितिषादा च’ (१२४)

अवशिष्ट (सं० त्रि०) जेका हुआ, जो गिरा दिया गया हो ।

अवशय (सं० पु०) टुकड़ा, किरच, फांस, रैजा, छिपती ।

अवश (सं० पु०) न उग्रते अभिलष्यते वय घ, नञ्-तत् । पराधीन, विषय, परवय, लाचार, कामादिके वशीभूत, जो वयतापच पर्यात् वयमें न हा ।

अवशक्यिका (सं० स्त्री०) जानुदेश, जाघ ।

अवशक्यिका (सं० स्त्री०) वक्षविशेष, कपड़ा यह बैठनेमें पैर और पीठसे बंधता है ।

अवशङ्कम (सं० त्रि०) दूधरेकी इच्छापर कार्य न करनेवाला, जो दूधरेकी न सुनता हो ।

अवशम् (सं० त्रि०) अव-शम्-क्लिप् । अवशाद, अप-वाद ।

अवशसन् (सं० त्रि०) मियाभिन्नाय, भूठी पाश्चिम ।

अवशा (सं० स्त्री०) १ गोभिन्न, जो गाय न हा । २ अधम गी, खराब गाय ।

अवशातन (सं० स्त्री०) अव-शद-णित्-शुट् । नाम पाना, शार्पता करण । अदेशको नः । ल ५२४२१ ।

अवशिरस् (सं० त्रि०) अवनत गिरीण्य प्रादि-वृद्धी० । अवाडमस्तक, जिसका मत्स्या नीचे और पैर उपरकी हो ।

अवशिष्ट (सं० त्रि०) अव-शित्-क्लिप् । १ पतिरिक्त, परिशिष्ट, अधिक, गेघ, कोई कार्य सम्भव होकर बचा हुआ । अथ अवशतं श्रितं पतिशान्तं तत् । अव शम्-क्लिप् । करनेपर भी यह पद सिद्ध जाता, परन्तु उभयका अर्थ श्रितके प्राप्त जाता है । २ अवश श्रित, श्रित नहीं ।

अवशौन (सं० पु०) श्रितिक, श्रितिक ।

अवशीभूत (सं० त्रि०) न वशीभूतम् अवशतम्-भावे चि चत इत्वम् । अनाद्यत, जो वयतापच न हो, जो अवशा करके कथा अर्थात् बात न सुने, अतन्व ।

अवशोर्ध (सं० त्रि०) अवनत शीर्षे यथ, प्रादि-

बहुमो वा बहुः । १ अवाहमस्तक, मुह अटकादि
दुपाः । २ सुहमर, त्रिमके वर मोषे धोर घेर उपर
रहे । (पु०) ३ निरसोम, चायका चाहार ।

अथशब्दविद्या (सं० वि०) मन धोर इन्द्रियपर
यम न रचनेवासा, त्रिमके दिन धोर च्वा कावुं
न रहे ।

अथशब्द (सं० पु०-क्री०) अथ-शब्द भाषे घञ् । १ लत-
कारं वा लतपदार्थका शेष, जिये हुये कामका
जातिमा । कर्मणि घञ् । २ अथशब्द, वशी-वनायो
शोः ।

अथशब्द (सं० वि०) अथशब्द, वाकी, वषा दुपा ।

अथशब्द (सं० पु०) अथ शब्द भाषे घञ् । अत्यन्त
दुष्क शक्तिको वात, निहायत सुशुकी ।

अथशब्द (सं० वि०) अथ-शब्द । १ अनायत, जो
ताकिं न हो । २ अशुभ, चात्राट रचनेवासा ।
(अथ०) ३ नियत, सुदर, विभाजक ।

अथशब्द (सं० वि०) १ निघण्टुमात्र, सुदरी । (पु०)
२ गुणार, पाना । ३ अर्थावधीदक शिरोरोग, चाधा-
योमी । ४ सुद ।

अथशब्दता (सं० शी०) नियत, सुदरत ।

अथशब्दरथ (सं० शी०) अथशब्द करणम्, मकार-
भाषः । १ नियत करण, सुदर करणको वात ।
२ अकारणकी निरुधि, न करणका दूर होना ।

अथशब्दकार्य (सं० वि०) निःसन्देह कर्तव्य, जिने
करना सुदर रहे ।

अथशब्दहारिन् (सं० वि०) सुदरी काम चरनेवासा ।

अथशब्दाथ (सं० वि०) निःसन्देह पाक किया
जातिवासा, त्रिमके पकाकिं छोड़े गरु न रहे ।

अथशब्दपुत्र (सं० पु०) अथशब्दायो पुत्रपेति, कर्मपा० ।
जियो प्रकार मातल किया न जानेवासा पुत्र, छोटा
बेटा, जो मूत्रका दायम शिवाय निकल गया हो ।

अथशब्दम् (सं० अथ०) अथ-शब्द हम् । १ नियत,
सुदर । २ शिल्प, इमिया । ३ पदत्र, मज्जयोर्भुमि ।
'अथ' 'निघण्टु' (वि०) ४ मूत्र, शीरमि । ५ वाट,
हुमन्, चाशाभीम । ६ अतिमाय, निहायत । 'अथ'
'शुभ' (अथ०) (वि०) ७ अनायत, शिवायु ।

अथशब्द (सं० अथ०) निःसन्देह; सुदर विल-
सुदर ।

अथशब्दाथिन् (सं० वि०) निःसन्देह शोभितान्,
जो सुदर हो हो ।

अथशब्द (सं० शी०) अथशब्दादि शीवं चाशोति,
अथ शो-क टाप् । १ कुञ्जभटिका, सुदरा । २ अशो-
भूत शो, जो शीरत कावुं न हो ।

अथशब्द (सं० पु०) अथ-शब्द-व । १ कुञ्जभटिका,
सुदरा । २ शोदार, धोम । 'अथशब्द शोदार' (अथ०)
३ अभिमान, घमण्ट । ४ दर्प, शीयो । 'अथशब्द शो'
व' (श०) ५ शिगिर, ठण्डक ।

अथशब्दा (सं० शी०) कुञ्जभटिका, सुदरा ।

अथशब्द (सं० शी०) अथ-शब्द-सुदर । सुदरी
अथार व्यानात्तरमं रचना ।

अथशब्द (सं० अथ०) अथ-शब्द-शुभ । अथ-
शुभ, मरामर ।

अथशब्दार्थी, अथशब्दार्थिनी (सं० शी०) अथशब्दार्थ
चिह्नेति जागति दुग्धदादादिना अथशब्द-सुदर-
हो । अथ शब्दार्थी अथशब्दार्थी मकारण्य यकारः ।
अथशब्द अथशब्दार्थी वत्सः माशब्दार्थः इति शीप्,
अथ-शब्द । अथशब्दार्थी गो, अथ शब्दार्थी श्यादी गाय,
त्रिम गांके घोड़े दिनका वषा हो । 'अथशब्दार्थी'
(अथ०) 'अथ शब्दार्थी' अथ शब्दार्थी । 'अथ शब्दार्थी'
अथः' (अथ०)

अथशब्द (सं० वि०) अथ-शब्द-शुभ अथम् । १ आमथ,
मज्जदीको, अगा दुपा । २ आशान्त, मज्जदीक वादा
दुपा । ३ अथित, सुदरा । ४ अथशब्दित, अथ
अथके दुपा । ५ अतिवद, वका दुपा ।

अथशब्द (सं० अथ०) १ अथशब्द, अथमि, अथ
कर । २ शीकत हुये, निरकृतारोमि ।

अथशब्द (सं० पु०) अथ-शब्द-अथ, अथम् । १ अथशब्द,
आशान्त, सुदर । २ अथशब्द, सुदरा । ३ अथशब्द,
अथार । कर्मणि घञ् । ४ अथशब्द, अथम् । ५ अथशब्द,
शोमा । ६ सुदरा, अथशब्द । ७ अथशब्द, अथशब्द ।
८ शीक, अथशब्द । ९ अथशब्द, अथशब्द ।

अथशब्द (सं० शी०) अथ-शब्द-शुभ ।

अवष्टम्भमय (सं० द्वि०) सोनेका, जो सोनेसे बना हो।
अवस्थाप (सं० पु०) अव-स्थान-वच्। आयाजसे
भोजन, सघाद।

अवम् (सं० स्त्री०) अव भावे असुन्। १ रघा,
हिमाजुत। कर्मणि असुन्। २ यज्ञः, नामवरी।
३ धन, दौलत। ४ गमन, रवानगी। ५ छति, प्रस-
न्नता, पासुदगी, खुशी। ६ अभिलाष, खाडिष।
(अर्थ०) ७ निम्न देशमें, नीचे।

अवस (सं० पु०) अवति रक्षति, अव-असच्।
अवविभक्तिवि०० भक्तिभोऽसच्। उष् ३।१०। १ राजा, वाद-
गाह। २ सूर्य। ३ अन्न, पनाज। ४ रक्षक, मुहा
फिज्। ५ पाथिय विगेष तोयह, रसद। ६ आकन्द
हृद्य।

अवसक्त (सं० द्वि०) अव सञ्च-क्त। १ संलग्न,
लगा हुआ। २ अभिलाषयुक्त, खाडिगमन्दः। (स्त्री०)
भावे क्त। ३ संसर्ग, लगाव।

अवसक्तिका, अरसक्तिका देखो।

अवसक्तिका (सं० स्त्री०) अवसक्ते अवसक्ते सकथि-
नी लरु यस्याम्, बहुव्री० कप् टाप्। १ पर्यङ्कवन्ध, अद-
वाहन। २ योग करनेका आसन विशेष। ३ लंगोटी,
चिट।

अवसन्न, अवसन्न देखो।

अवसन्न (सं० स्त्री०) आलिङ्गन, हमायोगी,
सुहृद्व्येतमें छातीसे छातीका मिलाप।

अवसण्डीन (सं० स्त्री०) अव-अम्-डी-क्त षोदित्वा-
त्स्य नः। पश्चिमीकी आकाशसे उतरनेकी कोई गति,
जिस चालसे चिडियां नीचे उतरें।

अवसय (सं० पु०) १ जनपद, बसती। २ ग्राम,
गांव। ३ कानिज, स्कूल, मटरसा, पाठशाला।
(स्त्री०) गृह, मकान।

अवसय्य, अवसय्य देखो।

अवसय (सं० द्वि०) अव-सद् कर्तरि क्त। १ विधाद-
प्राप्त, नाशुश। २ विनायीशुश, बरबाद जानि-
वाना। ३ निजके कार्यमाधनमें अहम, जो अपना
काम बना न सकता हो। ४ समाप्त, खत्म। ५ अनु-
पयुक्त, नाकाबिल।

अवसयता (सं० स्त्री०) १ दुःख, रक्ष। २ अनु-
खाह, दिलगिरी। ३ समाप्ति, खातिमा।

अवसचत्व (सं० स्त्री०) अवसयता देखो।

अवसभ (वै० द्वि०) समाप्ति पृथक्, जो महफिलसे
निकाल दिया गया हो।

अवसर (सं० पु०) अव-सृ अघिकरणे घ।
१ प्रदाय, तख्तियेकी बात चीत। 'अवसायः सारवसरः'
(अर०) २ सङ्गति विगेष, मौका। ३ वस्त्र, कान।
४ मन्त्र विगेष। ५ वर्षण, पानीका बरसना।
६ छटि, वारियः ७ समयका अवकाश, पुरसत।
८ कान, वस्त्र। ९ उतार, नीची जगह। १० अल-
द्वार विगेष। इसमें किसी विषयके सामयिक सङ्-
घटनका वर्णन करते हैं।

अवसरवाद (सं० पु०) दार्शनिक मिहान्त विगेष,
कोई मन्त्री बसून्। यह वाद विन्यायतियाका है।
इसके अनुसार जीव नहीं, ईश्वर ही कर्ता घोर प्राता
होता; यह समय गारीरिक कार्य चलाता है।

अवसरालय (सं० पु०) अवसराय आनयो यत्र,
बहुव्री०। अघेराव, आघेराव।

अवसरी वदरुक्त—वस्यई प्रान्तके पूना जिल्हका नगर।
यह खडसे साढ़े सात कोस दूर पडता है। पश्चिम
द्वारके पास भैरवका मन्दिर खड़ा है, जिसे शङ्करसेठ
नामक किमी बनियेने भी वर्ष हुये बनवाया था।
दालानमें हिन्दुधोके कितने ही पौराणिक चित्र खचित
हैं। द्वारके गणपति प्रतिपदमें नाना प्रकारके वर्षसे
रक्षित किये जाते हैं। दीपक रखनेकी दो प्दाभ भी
द्वारके सम्भूषण पति सुन्दर बने हैं मजारखानेपर पत्थ-
रका जो घोड़ा खड़ा, वह मानो इशामे बात कर
रहा है।

अवसय (सं० पु०) अव-सृ अ-अच्। १ अघतिबन्ध,
रोक-टोककी अघममाप्रदगी। २ अघतत्वता, आ-
जादी। ३ स्वेच्छाचार, मनमानी।

अवसज्जन (वै० स्त्री०) मुक्ति, घुटकारा।

अवसय (सं० पु०) अवसर्पति पयादुमच्छति हा-
मिनः, अव-सृ अ-अच्। १ अर, जाएन। २ मन्त्र,
मोकर। ३ दाम, गुनाम।

पञ्चमर्षिणी (सं० स्त्री०) पञ्चम, नीलिकोंका लुटमका रमना ।

पञ्चमर्षिणी (सं० स्त्री०) १ नीलिकोंका दूग विमोच । २ पञ्चोत्तमिणी स्त्री, नीलि पञ्चमर्षिणी स्त्री ।

पञ्चमर्षिन् (सं० लि०) पञ्च-मर्ष-निनि । पञ्चो-त्तमा, निच्यमासे, नीलि कर्मिणना ।

पञ्चमर्षि, पञ्चमर्षि-२४० ।

पञ्चमस्य (सं० लि०) पञ्चमस्य, दक्षिण, दाहना, ओ बायी न ची ।

पञ्चमा (सं० स्त्री०) पञ्चमत्वा, पञ्चमिष्यत्वात्, कृट-काया, पाश्यादी ।

पञ्चमस्य (सं० पु०) मुक्तिदाता, कृटकारा देविशाला, श्री लोङ् देता च ।

पञ्चमाष्ट (सं० पु०) पञ्च-मष्ट-पञ्च । १ नाम, ब्रह्मादी । २ विषाद, श्च । ३ वक्राद्यं पञ्चमस्य, पञ्चमा काम कर न मकरिनी शालत । ४ पञ्चमपता, पञ्चमुदरं । ५ काराकी पुराणी, मन्वकी पुराई । ६ ममागि, प्वातिमा ।

पञ्चमाष्टक (सं० लि०) पञ्चमाष्टयति, पञ्च-मष्ट-पिष लुट-पिष् लोयः । १ पञ्चमस्यकारक, कृष्णशाला, श्री काम विगाह देता च । २ कायं पञ्चमता-मम्याष्टक, पञ्चमशाला, श्री मन्वत् च । ३ ममाग जोदिशाला, श्री लुङ् च । ४ गोटशारी, शचीदा कर्मिणना ।

पञ्चमाष्टन (सं० स्त्री०) पञ्च-मष्ट-पिष् भावि लुट् । १ विनामन, मन्वादी । २ कायं पञ्चमता मम्याष्टन, पञ्च शालनकी माल । ३ लुट्गोत्र प्रपथिकित्सा, पुष्पे दुर्ध लुट्गोत्रो पञ्चमा ।

पञ्चमाष्टनी (सं० स्त्री०) मष्टाकारश्च, बहा करीदा ।

पञ्चमाष्टित (सं० लि०) कृष्णाया, मकाया, मुर-भ्रमाया वा मताया कृष्णा ।

पञ्चमान (सं० स्त्री०) पञ्च-मो-लुट् । १ विनाम, ठहराव । २ ममागि, पञ्चाम । ३ लोमा, बह । ४ ममाग, लोमा । ५ मेष, पञ्चो । ६ मेष, लोम । पञ्चमति तिष्ठति पञ्चिन्, पञ्चो लुट् । ७ ममाग, मन्व । ८ पञ्चम शाल, पञ्चमिका लुट्म । ९ मन्व, मन्व । १० पञ्चम

पञ्चमत्वा" (पञ्च) १० मष्टका पञ्चिम भाव, मष्टका पञ्चिमी दिशा । ११ कृष्णा पञ्च, बह-रका पञ्चिमा । (सं० लि०) १२ पञ्च पञ्चम * कर्म दुर्ध, श्री योगाक पञ्चम बहा न ची ।

पञ्चमानक (सं० लि०) मेष जोदिशाला, विनामाम्बु चो पञ्च पञ्च या मर रका चो ।

पञ्चमानदर्मा (सं० लि०) विमोचै वागव्यातपर हृदि शालता कृष्णा, श्री शमीकी मन्वित-मष्टकको देव रका चो ।

पञ्चमान्य (सं० लि०) कृष्णके पञ्चमै मन्वय श्चमै-शाला ।

पञ्चमान (सं० स्त्री०) पञ्चरं माम पञ्चम श्चि-तत् । पञ्चम माम, श्री माम मरपञ्चमै माया जाता चो ।

पञ्चमाय (सं० पु०) पञ्च मो च । १ ममागि, प्वातिमा । २ मेष, यात्री । ३ निचय, पोपुतनी । (पञ्च०) लुट् । ४ ममागन करके, पूरे उत्तारके । ५ निचय करके, ठहराके । ६ विमोचन करके, लोङ्के ।

पञ्चमायक (सं० लि०) पञ्च-मा कृष्ण् । १ निचय-कारक, ठोकठाक कर्मिणना । २ ममागन, पूरे उत्तारनेशाला ।

पञ्चमायिता (लि० स्त्री०) श्चि ।

पञ्चमायिन् (सं० लि०) पञ्चिशापी, श्चिमा ।

पञ्चमाय्य (सं० पञ्च०) पुष्पे करके, पूरे उत्तारके ।

पञ्चमारच (सं० स्त्री०) कृष्णाया, मकाया ।

पञ्चमि (लि० लि० लि०) निचय, मन्व ।

"पञ्चमि चो २४० मन्व" (लुट्)

पञ्चमिक्त (सं० लि०) पञ्च-मिक्-क । १ लुट्मैक ।

पञ्चमि कोटिं मारि कृष्णा । २ पञ्चम, मीवा कृष्णा ।

३ शाल, मकाया कृष्णा ।

पञ्चमिक्त (सं० लि०) पञ्च-मो-लुट् । १ ममाग, पञ्चम ।

२ श्च, लुट्-पञ्चम । ३ लोमा, लुट् (कृष्णा कृष्णा ।

४ शाल, मकाया । ५ निचय, ठहराया कृष्णा । ६ मन्व, मिला कृष्णा । (स्त्री०) ७ पञ्चम चोर मन्वा कृष्णा कृष्णा ।

श्री भावन एक चोरे मन्व कृष्णा चो । ८ पञ्चमका, ९ पञ्चमका मन्वाम ।

अवसितमति (सं० त्रि०) इताय, दिलगौर, जो अपना काम कर न सका हो।
 अवमी (हिं० पु०) अपक दगमैं काटा हुआ अण्ड, जो अनाज कच्चा हो काट लिया गया हो, गहर।
 अवसुप्त (सं० त्रि०) सोया हुआ, जो नींदमें हो।
 अवसृष्ट (सं० त्रि०) अव-सृज-त्। १ दत्त, दिया हुआ। २ व्यक्त, छोड़ा हुआ। ३ निःसृत, निकाला हुआ।
 अवसे (सं० अव्य०) अव तुममें असन्। रचा करनेके निमित्त, सिद्धाजत रखनेके लिये।
 अवसेक (सं० पु०) अव-सिच्-घञ्। १ सकल दिक्-सेकका काम, चारो ओर छिड़काव। २ निवृत्ति रोग-विशेष, खाँसका कोई आजार। ३ रक्तमोक्षण, खुरेजी।
 अवसेकिम (सं० पु०) अवसेकेन निर्घृत्तः, अव-सेक-इमन्। घटकविशेष, बड़ा या सुगोडा।
 अवसेख (हिं०) अरब देना।
 अवसेचन (सं० स्त्री०) अव-सिच्-ल्युट्। १ सकल दिक्-सेचनका काम, चारो ओर सिंचाई। २ अधो-दिक्-रक्तप्रसायक रोगविशेष, नीचेकी ओर खून बहाने वाला आजार। ३ रक्तमोक्षण, खुरेजी। अवसेचन जोक या भीगी लगाने और नष्टर देनेसे होता है।
 अवसेय (सं० त्रि०) अवसातुं शब्दं अर्हं वा, अव सो शब्दार्थ अर्हार्थे वा यत्। १ निर्णयको शय्य, जो फूसल किया जा सकता हो। २ समाय, पूरे उतरने काबिल। ३ अयमेय, इत्तम होने लायक।
 अवसेर (हिं० स्त्री०) १ विलम्ब, बकूफा। २ विन्ता, फिक्र। ३ दुःख, परेशानी।
 अवसेरना (हिं० क्रि०) क्रोध पहुंचाना, तकलीफ देना।
 अवस्कन्द (सं० पु०) अवस्कन्दते युद्धादनन्तरं विश्रामाय प्रतिगम्यतेऽस्मिन् आधारे घञ्। १ अयच्छुके सैन्यनिवेशका स्थान, जिस अगड़ लड़नेवालेकी फौज पड़े। २ गिरि, छेरा। ३ तम्बू। भावे घञ्। ४ अथतरसा उतार। ५ अथगाहन खान, पानीमें घुसकर की नानेवाली सलगु। ६ आक्रमण, हमला।

अवस्कन्द (सं० स्त्री०) अव स्कन्द-ल्युट्। १ सकल अङ्ग डुब जाने वाला खान, जो गुप्तन सब अङ्ग डुबानेसे हो। २ अथगाहन, पानीका संभाना। ३ अथतरण, उतार। ४ आक्रमण, हमला।
 अवस्कन्दित (सं० त्रि०) १ आक्रमण किया गया, जो मारा गया हो। २ अथः पतित, नीचे पड़ा हुआ। ३ अभियात्रमाणित, जो झूठा ठहरा हो। ४ खात, नहाया हुआ, जो नहा रहा हो।
 अवस्कन्दिन् (सं० त्रि०) १ ऊपर हनांग मारता या टाकता हुआ। २ आक्रमण करता हुआ, जो हमला मार रहा हो।
 अवस्कयनी (सं० स्त्री०) बहुत दिनके अन्तर प्रसूता गौ, जो गाय बहुत दिन बाद ध्यायी हो।
 अवस्कर (सं० पु०) अवकीर्णते कोटादधो विचिष्यते, अव-कर्मणि अच्-ल्युट्। १ उधार, तलफूज। २ शमन, तकलीफ। ३ अङ्कत्, गोबर। ४ पुरीय, मैला। ५ अर्चरक, कूडाककैट। ६ विष्टा, गूंगावर। ७ विष, जहर। ८ मनमात्र। अवादाने अच्। ९ गुह्यदेशः। "अवस्करात्पुत्रयथाः" (वि०)
 अवस्करक (सं० त्रि०) अवस्करे जातः तुन्। १ विष्टा-जात, गूंगावरसे पैदा। २ गोपनोपस्थान जाद, पोगीदा मुकामसे पैदा हुआ। (पु०) ३ क्षमि-विशेष, कोई कीड़ा। ४ भट्टी, मेहर। ५ भ्लाङ्ग।
 अवस्करमन्दिर (सं० पु०) १ टट्टी, पाखाना, नानी।
 अवस्कर्य (सं० त्रि०) अव वेपरोत्ये स्फुनाति रज्जुनोति वा, अव रज्जु उद्धृती कर्तारि अच्। १ विषद्वेष उधार न करनेवाला, जो आफतमें बचता न हो। २ हिंसक, कातिल। (पु०) ३ क्षमि-विशेष, कोई कीड़ा।
 अवस्तारण (सं० स्त्री०) अव-रट् भावे ल्युट्। विस्तार, आवरणके नीचे फैलाव।
 अवस्तात् (सं० अव्य०) अवरास्तिन् अवराप्तात् अवरे रत्येतेषु अर्थेषु अस्ताति तस्मिन् अवादेगः। नीचे निष्प भागमें।
 अवस्तात्प्रपदन (सं० त्रि०) नीचेसे प्राप्त हुआ, जो नीचेसे मिला हो।

चदमार (सं० द०) चदमिगने, चद म्नु चर्मदि
चद, १ चदमिका, कृपा, दाया, विद, २ मया,
दर्मन।

चदम (सं० मी०) च दम, चदामे, मन्-मन् ।
१ चदमण चद, माकाविक मी, २ तुम चद,
कृपा मी, ३ चमुरा चमार, मी, चो चदम
मी, ४ चिदात्मनः—चदामादि चदममू, च
दमिगने मी, चो चदमानी, चामादायी।

चदमार (सं० मी०) चदमविका।

चदम (सं० मि०) १ चदमिगन, मन्, चदमे
चामे, मी।

चदमता (सं० मी०) चद म चोनेको चाम, चदमा
म चामेको चाम, म्नुचम।

चदमः (सं० मी०) चद-मः (चामचोऽभिव्याम्)
दमि म्नु चाममन् चदः चामाम् टाप् । चामचन
दिवादिनी दमा, चामार, चयव्याम, चिमि, चामचन
माव विचार विमय। चामके मन्तुमार चद चः
चदमको है। मया—१ चदमता। २ चिदमाम
चदमः। ३ चदि चोमा। ४ चिदमोम चोमा। ५ चोच
चोमा। ६ चाम चोमा।

चोमामाचक मन्तु चदम्या चोच चदमको है।
मया,—चदिवा, चमिगता, चाम, देव एवं चमिनिविम।
"चदिवाचामाचक मन्तु चोमः" चदम चयव्या २०३।

चदिवा, चमिगता, चाम, देव एवं चमिनिविम—
चमिको मन्तु चदम है।

"चदिवा चोचकोम चदम चदिवाचामाचक" चदम चयव्या २०३।

चोच चाम् चमामाचक मन्तु चामामिगताको
चदिवा चदम है। चदम चदिवा,—चदममन्तु
चिमिच एवं चदम चद चाम चदामे चिमिच चमि
ताको, चदममि चाम चदामे चिमिच चाम, चोच
एवं चमिनिविमको चदम मन्तु है।

चदम चामके चदमेका चाम चको है, चि मी
म चदम चामे चमिगताको चदम चमि चोमो
चमिच चदिवाचो चदिवा चदिवाः ही चाम है।

"चदिवा चदम चोचकोम चदिवाचामाचक" चदम चयव्या २०३।

चमिच चामे मन्तु चमिचो मन्तु, चामे चदम
चामिच चामे चामा चि मी चामेचामा चोचका
चाम चदिवा है।

"चदिवाचामाचक मन्तु चोमः" चदम चयव्या २०३।

चदमिच चमिच मन्तु चदम एवं चिम चमिच
चिवा चामा है, चम चोमोम चमिच चिमाम चमिचो
चमिगता चदम है। चमि,—चामा चोच देव चम चो
चिमिच चोनेच मी चामा एवं चिचको चमिच चोच-
का चम चोम चद चदम चामे है—"मि म्नु।"

"चदमचो मन्तु" चदम चयव्या २०३।

चुचको चामा चमिचो चाम चदम है।

"चदमचो मन्तु" चदम चयव्या २०३।

चो चदमार चदम चोम चम है, चिच चिमम चोच
म चामे, चमिचो चदमचर चदामको चदमने चमिच
मन्तु चो चोच चोमा है, चद चिचोच चदम चामा है।

"चदमचो मन्तु चोचकोम चदम चामिचोमः" चदम चयव्या २०३।

चदमको चामाम् चोच चमिचो मन्तु चोच चो, चमो
चोचको चदम चर, चोमोम चमिच चदमच चो चिवा
चो चम चोमा है चि, चम चमिचो मन्तु चोच चिचदि
चिमिच म चो, चमः चमः चमके चमिचको चमिचिचम
चदम है।

चामिचो मन्तु चदम्या चोच चदमको है। मया,—

चमाम, चमिचम, एवं चिमोचाम। चामिचो
चमाम चामके चदम चद मन्तु चाम चामे चामिचो
चमिचि चमो है। चोम चमाम चमामको
चमाम चदम्या चदम है। चमके चद चामके
चामिचोम चो चम चमाम चोमा, चमिचम
चदम्या चदम है। चोम चामके चमको चिमो-
चाम चदम है।

चिदमिचोम मन्तु—चोचमोम चाम, चम,
चमिचोम चोच चोच, चमो चाम चदमको
चदम्या है। चम चमके चदम चाम चामचाम चमिचो
चमाम है।

चमिचोम चदम चामके चोमो है, चमिचोम
चमका चिचम चिवा चम है। मया,—चम चमको
चम चम चोमामचाम, चम चम चम चोचामचाम।

पन्द्रह वर्ष तक कौशोरावस्या, उसके बाद यौवनावस्या ।
मतास्तरसे, सोलह वर्ष तक वास्यावस्या । उसके बाद
तरुणावस्या । सत्तरसे नब्बे वर्ष तक हृदावस्या ;
भन्तमें वर्षीयावस्या ।

द्वैद्याग्निके मतसे पन्द्रह वर्षकी उम्र तक वास्या-
वस्या, तीस वर्षतक कौमारावस्या, पचास वर्ष तक
यौवनावस्या, उसके बाद हृदावस्या ।

भलहारिकोंके मतसे भवस्या दश प्रकारकी है ।
यथा—नायक नायिकाके सम्बन्धमें अभिलाष, चिन्ता,
धृति, गुणकथन, उद्वेग, संलाप, उन्माद, व्याधि,
जडता एवं मरण । मतास्तरसे, पाँचसे साँध और
मनसे मनका मिलन, संकल्प, जागरण, कृपता,
रति, लज्जात्याग, कामोन्मत्ता, मूर्च्छा एवं मरण
यही कई कही गई हैं ।

भवस्याचतुष्टय (सं० स्त्री०) भवस्याके चार भेद,
उम्रकी चार हालतें । बचपन, लडकपन, जवानी
और बुढ़ापाको भवस्याचतुष्टय कहते हैं ।

भवस्यात्रय (सं० स्त्री०) भवस्याके तीन भेद,
उम्रकी तीन हालतें । जागने, स्वप्न देखने और
सोनेका गाम भवस्यात्रय है ।

भवस्याद्वय (सं० स्त्री०) भवस्याके दो भेद, उम्रकी
दो हालतें । सुख और दुःख भवस्याद्वय कहा
जाता है ।

भवस्थान (सं० स्त्री०) १ स्थिति, ठिकाण । २ गृह,
मकान । ३ स्थितिकाच, ठहरनेका वरु । ४ स्थान-
विशेष, सुकाम ।

भवस्थापन (सं० स्त्री०) भव-स्था-पिच्-ल्युट् पुक्
पिच् लोपः । १ निवेशन, लगाव । २ स्थापन, जमावट ।
३ रक्षण, हिंसाजत ।

भवस्थापित (सं० स्त्री०) भव-स्था-पिच्-पुक्-ङ इट्
पिच् लोपः । १ निवेशित, लगाया हुआ । २ स्थापित,
रखा हुआ । ३ रक्षित, महफूज ।

भवस्थाय (सं० स्त्री०) भव-स्था-पिच्-पुक् यत् पिच्
लोपः । १ निवेशनीय, रखने लायक । (धव्य०)
३ स्थापन करके, लगा या जमाके ।

भवस्थाय (सं० धव्य०) ठहर या रह कर ।

भवस्थायिन् (सं० वि०) भवतिष्ठते, भव-स्था कर्तरि
णिनि युक् । १ भवस्थानयुक्त, ठहरनेवाला । २ स्थापित,
रखा हुआ । (स्त्री०) भवस्थायिनी ।

भवस्थित (सं० स्त्री०) भव-स्था कर्तरि क्त पात
इत्वम् । १ यतमान, हाज़िर । २ स्थित, ठहरा हुआ ।
३ भवस्थितिविधि, लगा हुआ । ४ दृढ़, जमा
हुआ ।

भवस्थिति (सं० स्त्री०) भव-स्था-क्तिन् पात इत्वम् ।
भवस्थान, ठहराव, सुकाम ।

भवस्थर्त (सं० स्त्री०) भवसा रक्षणेन पापद्वयः पार-
यितः, भवस्-पृ-णिच् वाङ् तन् पिच् लोपः । पापद-
से रक्षा करनेवाला, जो पापतसे बचा लेता हो ।

“भवस्थर्तरिषकारणवपुः” (अङ् २।१।८)

भवम्यन्दन (सं० स्त्री०) भव-म्यन्द-ल्युट् । १ चरण,
बुधाव, गिराव । २ गमन, रवानगी । ३ गलेसे
गलेका मिलाना, गलयेहाँ ।

भवम्यन्दनीय (सं० स्त्री०) चरणजात, घुने या टपक-
नेसे पैदा हुआ ।

भवस्यु (सं० स्त्री०) भव-स्य-ल्युट्-उ । रक्षणेच्छु, जो
हिंसाजत चाहता हो । ‘कामरुप्य च ३’ (अङ् १।१।१८)

भवस्रमन (सं० स्त्री०) भव-स्रन्-ल्युट् । १ भव-
पतन, नीचेकी गिराव । २ चरण, बुधाव ।

भवसंसित (सं० स्त्री०) भव-स्रन्-पिच्-ङ इट्
पिच् लोपः । ३ दलित, दला-भला । २ पानित,
गिरा-पड़े ।

भवस्रम् (सं० स्त्री०) भव-स्रन्स क्तिप् (भव-स्रन्-
क्तिप् । अ १।१।१८ कर्त्तिके ।) १ भ्रंशमशील, गिरनेवाला ।
२ खण्डित, जो गिरा हो । ‘जानरवकः’ अ १।१।१८ ।

भवस्रत् (सं० स्त्री०) भवो रक्षयं तदप्राप्त्य मतुप्-
मय्य वः । रक्षणयुक्त, महफूज ।

भवस्रन्थ (सं० स्त्री०) घोर शब्द करता हुआ, जो
मुलन्द धावाज़ लगा रहा हो ।

भवह (सं० स्त्री०) न वहति वह-धच् मञ्-तत् ।
१ नधादि स्रोतःशून्य, जो नदी नालेसे पानो हो ।
(पु०) २ छठीय स्तन्यम्य वायु, आकामके छठीय
स्तन्यपर रहनेवाला वायु ।

पन्द्रह वष तक कौशोरावस्था, उसके बाद यौवनावस्था ।
मतान्तरसे, सोलह वर्ष तक वास्थावस्था । उसके बाद
तर्षणावस्था । सत्तरसे अठारह वर्ष तक वृद्धावस्था ;
अन्तमें वर्षीयावस्था ।

वैदाशास्त्रके मतसे पन्द्रह वर्षकी उम्र तक वास्था-
वस्था, सोलह वर्षतक कौमारावस्था, पचास वर्ष तक
यौवनावस्था, उसके बाद वृद्धावस्था ।

अलङ्कारिकीके मतसे श्वस्था दश प्रकारकी है ।
यथा—नायक नायिकाके सम्बन्धमें अभिलाष, चिन्ता,
धृति, गुणकथन, उद्देश, संलाप, उन्माद, व्याधि,
जडता एवं मरण । मतान्तरसे, आँखसे आँख और
मनसे मनका मिलन, संकल्प, जागरण, ह्यगता,
रति, लज्जात्याग, कामोष्मत्ता, मूर्च्छा एवं मरण
यही कहे कही गई हैं ।

श्वस्था-चतुष्टय (सं० स्त्री०) श्वस्थाके चार भेद,
उम्रकी चार हालतें । बचपन, लडकपन, जवानी
और बुढ़ापाको श्वस्थाचतुष्टय कहते हैं ।

श्वस्थात्रय (सं० स्त्री०) श्वस्थाके तीन भेद,
उम्रकी तीन हालतें । जागने, स्वप्न देखने और
सोनेका नाम श्वस्थात्रय है ।

श्वस्थाद्वय (सं० स्त्री०) श्वस्थाके दो भेद, उम्रकी
दो हालतें । सुख और दुःख श्वस्थाद्वय कहा
जाता है ।

श्वस्थान (सं० स्त्री०) १ स्थिति, टिकाव । २ रहन,
मकान । ३ स्थितिकाच, ठहरनेका वक्र । ४ स्थान-
विशेष, मुकाम ।

श्वस्थापन (सं० स्त्री०) श्वस्था-श्विच्-स्युट् पुक्
श्विच् लोपः । १ निवेशन, लगाव । २ स्थापन, जमावट ।
३ रक्षण, हिफाजत ।

श्वस्थापित (सं० स्त्री०) श्वस्था-श्विच्-पुक्-त् इट्
श्विच् लोपः । १ निवेशित, लगाया हुआ । २ स्थापित,
रखा हुआ । ३ रक्षित, महफूज ।

श्वस्थाप्य (सं० स्त्री०) श्वस्था-श्विच्-पुक् यत् श्विच्
लोपः । १ निवेशनीय, रखने लायक । (श्व्य०)
३ स्थापन करके, लगा या जमाके ।

श्वस्थाप्य (सं० श्व्य०) ठहर या रह कर ।

श्वस्थापिन् (सं० वि०) श्वस्थिते, श्वस्था कर्तारि
श्विनि युक् । १ श्वस्थानयुक्त, ठहरनेवाला । २ स्थापित,
रखा हुआ । (स्त्री०) श्वस्थापिनी ।

श्वस्थित (सं० वि०) श्वस्था कर्तारि ङ भात
इत्वम् । १ वर्तमान, द्वाजिर । २ स्थित, ठहरा हुआ ।
३ श्वस्थितिविशिष्ट, लगा हुआ । ४ दृढ़, जमा
हुआ ।

श्वस्थिति (सं० स्त्री०) श्वस्था-श्विच्-भात इत्वम् ।
श्वस्थान, ठहराव, मुकाम ।

श्वस्थित (सं० वि०) श्वस्था रक्षणेन श्वपदः श्व-
यितः, श्वस्-पृ-श्विच् वाङ् नन् श्विच् लोपः । श्वपद-
ने रक्षा करनेवाला, जो श्वपदसे बचा लेता हो ।

“श्वस्थिते रक्षिते श्वपदः” (श्व १।१।२०)

श्वस्थ्यन्दन (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्द-स्युट् । १ श्वस्थ-
सुपाव, गिराव । २ गमन, रवानगी । ३ गलेसे
गलेका मिलाना, गलवैद्य ।

श्वस्थ्यन्दीय (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्त, धुने या टपक-
नेसे पैदा हुआ ।

श्वस्थ्यु (सं० स्त्री०) श्वस्थ्युच्-उ । श्वस्थ्युच्, जो
हिफाजत चाहता हो । ‘तन्मन्त्राय च’ (श्व १।१।२१)

श्वस्थ्यमन (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् । १ श्व-
पतन, नीचेकी गिराव । २ श्वस्थ, सुपाव ।

श्वस्थसंश्रित (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-श्विच्-त् इट्
श्विच् लोपः । ३ दलित, दन्त-मला । २ पातित,
गिरा-पड़ी ।

श्वस्थसत् (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् श्विच् (श्वस्थ्यन्-
श्विच् वा श्वस्थ्यन्-श्विच्) । १ श्वस्थ्यन्-स्युट्, गिरनेवाला ।
२ श्वस्थित, जो गिरा हो । ‘श्वस्थ्यन्-स्युट्’ श्व १।१।२२ ।

श्वस्थसत् (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् श्विच्-त् इट्
श्विच् लोपः । ३ दलित, दन्त-मला । २ पातित,
गिरा-पड़ी ।

श्वस्थस्य (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् श्विच् (श्वस्थ्यन्-
श्विच् वा श्वस्थ्यन्-श्विच्) । १ श्वस्थ्यन्-स्युट्, गिरनेवाला ।
२ श्वस्थित, जो गिरा हो । ‘श्वस्थ्यन्-स्युट्’ श्व १।१।२२ ।

श्वस्थस्य (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् श्विच्-त् इट्
श्विच् लोपः । ३ दलित, दन्त-मला । २ पातित,
गिरा-पड़ी ।

श्वस्थस्य (सं० स्त्री०) श्वस्थ्यन्-स्युट् श्विच्-त् इट्
श्विच् लोपः । ३ दलित, दन्त-मला । २ पातित,
गिरा-पड़ी ।

अवह्वर (मं० त्रि०) अव-ह्व-अच् । १ कुटिल, टेढ़ी । (पु०) २ वक्र पथ, टेढ़ी राह । ३ हुनर, पेश । ४ छल, धोका ।

अवां, अवां ईको ।

अवांसी (हिं० स्त्री०) फसलमें सबसे पहले कटने-वाला बीज, ददरी । यह नयावमें काम आती है ।

अवाई, अवासी देवा ।

अवाक् (सं० त्रि०) १ मौन, खामोश । २ निस्ताब्ध, चकराया या घबराया हुआ । (अर्थ०) ३ निश्चिन्त, नीचेकी ओर । ४ दक्षिण ओर, जनूषकी तर्फ ।

अवाकर (सं० पु०) १ टकमानघर । २ खुजाना ।

अवाक्नि (सं० त्रि०) सन्नायण न करता हुआ, जो बोल न रहा हो ।

अवाह (वे० पु०) अवकाशे साधनको बना हुआ शब्द । (त्रि०) २ मौन, खामोश ।

अवाक्पुष्पी (मं० स्त्री०) अवाक् अधोमुखं पुष्प-मस्याः, बहुरी० । १ हिमपुष्पी, मोफ । २ गतपुष्पी, मलाधर । ३ चौरपुष्पी, चौरायी ।

अवाकशास्त्र (सं० पु०) अवाची शास्त्रा यस्य, बहुव्री० । भगवद्गीतोक्त संसार हृद्य ।

अवाकगिरिम् (मं० त्रि०) अवाक् गिरी यस्य, बहुव्री० । अधोमुख, सर लटकाये हुए ।

अवाकश्रुति (मं० त्रि०) नास्ति वाक् च श्रुतिय यस्य, बहुव्री० । वाक्शक्ति एवं श्रवणशक्ति न रहने-वाला, जो बोल और सुन न सकता हो ।

अवाच (मं० त्रि०) वचक, पथप्रदर्शक, रहस्य-मान्, सुहायिज् ।

अवागी (हिं० वि०) मौन, खामोश, चुपका ।

अवाय (सं० त्रि०) अवनतमयं यस्य । १ नन्व, मुलायम, झुका हुआ । २ अवनत अथवा विगिट, झुको हुई चौटी वाला ।

अवायभाग (सं० त्रि०) निम्नभाग, नीचेका हिस्सा ।

अवाह्छान (मं० स्त्री०) अपमान, बेदखली ।

अवाह्वरक (मं० स्त्री०) जिज्ञा हृदिनका टण्ड, ज्वान काट लेनेकी सजा ।

अवाह्वरक (मं० पु०) वाक् च मनस्य वाह्वरकमने तयोर्गोचरो न भवति । यावत् श्रौत मनसि अगोचर परमात्मा, जो परमेश्वर न ता वाक्मे कहा श्रौत मनसि समझा जा सकता हो ।

अवाह्वमुख (मं० त्रि०) अवाह्वमुखं यस्य । १ अधोमुख, मुँह लटकाये हुए । (पु०) २ अन्तर्विशेष, कोई हथियार ।

अवाच् (सं० त्रि०) अवाश्रुति, अच-अच्-क्तिप् । १ अधोगत, नीचेकी ओर पड़वा हुआ । २ मौन, खामोश । ३ निम्नको ओर दृष्टि डालनेवाला, जो नीचे ताक रहा हो । नास्ति वाक् यस्य । (पु०) ४ दक्षिण, जनूष । ५ पाद्वरहित, जो शरीरत बोल न सकती हो । ६ वागैन्द्रियशून्य, बेजवान् शरीरत । ७ ब्रह्म ।

अवाची (मं० स्त्री०) १ दक्षिण दिक्, जड़वा । २ अधोमुखी, नीचेकी मुँह लटकाये हुई स्त्री । ३ भगवती ।

अवाचीन (सं० त्रि०) १ त्रिपयस्य, नीचेकी निगाह डालता हुआ । २ दक्षिणिय, जनूषो । ३ अधःपतित, नीचे गिरा हुआ । (पु०) ४ नृपति विगेष, किमी राजाका नाम ।

अवाचिद्य (मं० अर्थ०) भ्रष्टकं, छीनकर ।

अवाच्य (सं० स्त्री०) वच शब्द न कृतवन्, नञ्-तत् । १ मन्वाच्य, गानो-गलोच । २ वचनके अयोग्य, जो बात कहने काबिल न हो । ३ निन्दा, हिकारत । ४ उपदेशमें कहा न जानेवाला, जो मित्रानेके तीरणर न कहा जाता हो । ५ परिधेय-मिथ, नाम न लिया जाने वाला । (त्रि०) अवाच् भाशयै यत् । ६ अथर कानादि ज्ञान, विज्ञाने वक्, पेशा हुआ । ७ परिधेय हति द्वारा समझाया न जा सकनेवाला, जिसे नाम लेकर न बता सकें । ८ उद्देश्य करके बोला न जानेवाला, जो मतलबमें कहा जा न सकता हो । ९ दक्षिणिय, जनूषो ।

अवाच्यता (मं० स्त्री०) १ अयोग्य कर्म, नाकाबिल काम । २ अशीलता, मुद्दम, गानीपुद्गता ।

अवाच्यदेश (मं० पु०) १ स्त्रीका अधोदेश, योनि ।

परिचय (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । १ साधुन २
 वरुणवामन, जो वैश्वेन म वा । ३ दुर्ग, धरापुत्र ।
 ४ विद्वान्, विद्यापुत्र, प्राण । ५ परिचयमात्रे ।
 परिच्छद (सं० छो०) विच्छन्नप्राण, विच्छिन्न ।
 अन्वित, मन्त्रेणो परिचय, विधि विधी तरुका
 मन्त्रेण न हरे ।
 परिहार (सं० पु०) मन्त्र-तन्त्र । १ विहारका
 धाम, होवका न रचना । (ति०) भाषि विचारो
 मन्त्र । २ विहारगुण, विहारवहित, निर्दोष, जिनमें
 द्वेष न हो ।
 परिहारिन् (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । विहार
 न आर्धवाला, जो विहारमन्त्रक न हो ।
 परिहारो (सं० पु०) परिहारदेवता ।
 परिहार्य (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । विहायगुण,
 जिनमें परिचयार्थ कोर् विहाय न रहे । विहायें दा
 पकारका होता है । जिनो मन्त्रे पूर्ण प्रकृतिका एक-
 टम विनष्ट हो जाना अर्थात् अस्तित्व न प्राप्त कर भेजा
 और गुणका कुछ परिवर्तन होता ।
 परिहृत (सं० ति०) प्रकृतगुणवृत्त, जो अ-
 स्थावित न हुआ हो, जो विगडा न हो । जिन्
 परिहृति (सं०) विहारका अभाव ।
 परिहृत्य (सं० ति०) १ अतुलनीय, जो बराबरो
 करके जायक न हो, अनुपम । २ दुर्गम, अ-
 ज्ञेय ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) मन्त्र-वृत्तौ । विहा-
 यण, जिनमें विहार न मन्त्र हो, वेदात् ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । जो विच्छिन्न न
 हुआ हो । जो वैश्वेन म गया हो ।
 परिच्छेप (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । विच्छेप अर्थात्,
 जो वैश्वेन भाग्य न हो ।
 परिच्छेप (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । परिच्छेप, जो
 जोर अंतर न हुआ हो, दर, अन्वित ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) भाषि विच्छिन्न अर्थ अर्थात्
 मन्त्र । विच्छेप अन्वित, जो परिच्छेप न हुआ
 हो । अन्वित-परिच्छिन्न । अन्वित-मन्त्र ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) विच्छिन्न मन्त्र विच्छेप ।

विच्छिन्न अर्थों अन्वित, जो अन्वित कर न अन्वित
 हो ।
 परिच्छिन्न, अन्वित-मन्त्र ।
 परिच्छिन्न (सं० पु०) १ जो विच्छिन्न न हो ।
 २ अन्वित, अन्वित अर्थात् । ३ परिच्छिन्न-मन्त्र, जिनका
 अर्थ न हो मन्त्रे । ४ नाम गुण, नियन्ता नाम न
 होता हो, निम्न ।
 परिच्छिन्ना, परिच्छिन्निका (सं० छो०) अन्वित
 हृत्, जोर् देह ।
 परिच्छिन्नित (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । परिच्छिन्न,
 जिनको निम्न न जो जा मन्त्रे, अन्वित-मन्त्र ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) मन्त्र-तन्त्र । परिच्छिन्न,
 अन्वित-मन्त्र ।
 परिच्छिन्न (सं० पु०) विच्छेप, मन्त्र-तन्त्र । १ अ-
 रथा । २ अन्वित हृत् । ३ धामी अन्वित । ४ जो
 परिच्छिन्न न रहता हो ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) भाषि विच्छिन्न अन्वित-मन्त्र
 मन्त्र । १ अन्वित-मन्त्र जिन अर्थों निम्न अन्वित-मन्त्रे ।
 भाषि विच्छिन्न-मन्त्र अर्थों मन्त्रे । २ अन्वित, जो
 विच्छिन्न अर्थों अन्वित न गया हो । भाषि विच्छिन्न-मन्त्र
 मन्त्रे । ३ अन्वित-मन्त्र, निरवयव, निराकार, जिनके
 गौरव न हो । ४ मोक्ष-मन्त्रों विच्छिन्न-मन्त्र देवता,
 धारीकर ।
 परिच्छिन्न (सं० पु०) विच्छिन्न-मन्त्रे विच्छिन्न-मन्त्रे-
 क निम्न, मन्त्र-तन्त्र । १ विद्याभाव, विच्छिन्नो अन्वित
 मन्त्र-मन्त्रे । मन्त्र-वृत्तौ । २ विच्छिन्न, जिनो विधी
 तरुका विच्छिन्न न हो । (अन्वित) ३ विच्छिन्न-मन्त्रे ।
 परिच्छिन्न (सं० पु०) विद्याभाव अन्वित, विच्छिन्न न
 होता ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) विच्छिन्न-मन्त्रे विच्छिन्न-मन्त्रे ।
 मन्त्र-तन्त्र । अन्वित, मन्त्र, गुण, वैश्वेन, जो विच्छि-
 न्न न हो ।
 परिच्छिन्न (सं० पु०) अन्वित, अन्वित, अन्वित, जो विच्छि-
 न्न न हो ।
 परिच्छिन्न (सं० ति०) अन्वित-मन्त्रे विच्छिन्न-मन्त्रे
 परिच्छिन्न-मन्त्रे, जो मन्त्र-तन्त्र । परिच्छिन्न-मन्त्रे

रहित, जो बहुत ज्यादा चलता न हो। 'अविचारि-
पापिनः। (नञ्-१०। १७१। १।)

अविचार (सं० पु०) १ अन्याय, अत्याचार।
२ अज्ञान, अविवेक। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ विचार-
शून्य, जिसे विचार न रहे, मूर्ख, बेवकूफ। अथवा
मेधापां चारी यत्र बहुव्री०। ४ जहाँ भेड़ चरता
हो। न विगतचारी दूती यस्य। ५ दूतशुल, जिसके
भृत्यादि रहे।

अविचारित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अविचेचित,
विना विचार, जिसके विषयमें कुछ विचार न
गया हो।

अविचारिन् अविचारी श्लो।

अविचारी (सं० पु०) १ विचारहीन, अविवेकी,
बे समझ। २ अत्याचारी, अन्यायी। (स्त्री०)
अविचारिणी।

अविचात्य (सं० त्रि०) न विचात्यम् अन्यथाकार्यं
नञ्-तत्। स्थिर, ठहरा, टिका।

अविचेतन (त्रि०) विमेषेण चेतनो प्रादि तत्. ततो
नञ्-बहुव्री०। १ संचाररहित, बदहोय, बेहवास।
२ विज्ञानरहित। "अदन्वविचेतनादि।" अञ्-५। १०।

अविच्छेद (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। १ अविच्छेद,
जिसका विच्छेद न हुआ हो। २ सन्तत, जो बीचमें
खासी न हो। ३ अटूट, निरन्तर लगातार, जो टूटा
न हो।

अविच्छेद (सं० पु०) अभावि-नञ्-तत्। १ विच्छेदका
अभाव। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ विच्छेदशून्य।

अविध (सं० त्रि०) अनियुक्त, जो प्रयोग न हो।

अविज्ञात (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अज्ञात, जो
अच्छी तरह जाना न हो, अनजाना, बेसम्भान-
शुभा।

अविज्ञात (सं० त्रि०) विज्ञाता जीवस्तदितलक्षणः।
परमेस्वर।

अविज्ञेय (सं० त्रि०) दुर्ज्ञेय, जाननेके अयोग्य, जो
जाना न जा सके।

अविज्ञेय (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। पक्षियोंका सम्मुख
दिशामें गमन।

अवित (सं० त्रि०) अवन्तः। पासित, जो पाना
गया हो। रक्षित, रक्षा पाये हुए।

अवितत् (वि०) विरुद्ध, प्रतिबुद्ध, उलटा, जो
इच्छाके मुताबिक न हो।

अवितत्करण (सं० पु०) १ पापगत दर्शनके अनु-
सार कर्म जो अन्य मतवालोंके विचारमें निन्दित
हो। २ सैन्याप्तानुसार कार्याकार्यकी विवेचनामें
अहिम्न पुरुषकी तरह लोकनिन्दित कर्म करना।
३ विरुद्धाकरण।

अवितत्य (सं० वि०) असत्य, मिथ्या, झूठ।

अवितय (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। १ सत्य। (त्रि०)
२ सत्यविशिष्ट, जिसमें सत्य रहे।

अवितहावण (सं० पु०) व्याहत और निरयक्त
शब्दोंका उच्चारण, उलटा-सुलटा कहना, अण्ड-वण्ड
बकना।

अवितर्कित (सं० वि०) १ तर्कशून्य, जिसमें तर्क
न किया गया हो। २ निःसन्देह, विना तर्कज्ञा।

अवितर्क (सं० स्त्री०) तर्कयितुमशक्यम्। नञ्-
तत्। तर्क करनेकी अशक्य, जिसमें तर्क हो न सके।

अवितारिन् (सं० त्रि०) वितारी वितरणं अस्मत्प्रत्य
भूति, नञ्-तत्। ठहरनेवाला, टिकायू, धियां डीपू,
अनपायिनी। अविचारिणी श्लोः अञ्-५। १०।

अविष्ट (सं० त्रि०) अव-ष्टच्। रक्षक, रक्षा करने-
वाला।

अवित्त (सं० त्रि०) विद-ज्ञ-नञ्-तत्। १ अविष्यात,
जो समझ न हो। नञ्-बहुव्री०। २ धनरहित, धन
हीन, निर्धन, जिसके धन न रहे।

अवित्ति (सं० स्त्री०) विद-ज्ञिन् अभावे नञ्-तत्।
१ लाभका अभाव, अलाभ। २ ज्ञानाभाव, ज्ञानका न
होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ ज्ञानशून्य, जिसके
ज्ञान न हो। ४ लाभशून्य, जिसकी लाभ न हो।

अवित्यज (सं० पु०) न विमेषेण त्यज्यते रसायना-
दियु त्यज्-कर्मणि वाङ्-क, नञ्-तत्। पारद, पारा।

अविद्युत् (सं० त्रि०) व्यय-हरत् सम्प्रसारणं क्रिय।
नञ्-तत्। अविद्युत्, वियोगशून्य, जिसे वियोग न
रहे।

अधिकम् (सं० द्वि०) मञ्-तत्। १ व्याकुल न रहनेवाला, जो शेष न हो। २ पूर्व, भरा-पूरा। ३ नियम, चिन्तागूढ, गान्ध। ४ अधिचम्पादी।

अधिकम्प (सं० स्त्री०) विकल्पतागूढ, नियत। अमन्दिष, मन्दिषने रहित, जिसे किसी तरहका मन्दिष न रहे।

अधिकार (सं० पु०) मञ्-तत्। १ विकारका अभाव, होयका न रहना। (द्वि०) मास्ति विकारो यम्। २ विकारगूढ, विकाररहित, निर्दीप, जिसमें एव न हो।

अधिकारिन् (सं० द्वि०) मञ्-तत्। विकार न करनेवाला, जो विकारजनक न हो।

अधिकारी (सं० पु०) अरिचरिन् देखो।

अधिकार्य (सं० द्वि०) मञ्-तत्। विशायगूढ, जिसके परिचयमें कोई विकार्य न रहे। विकार्य दो प्रकारका होता है। किसी वस्तुके पूर्व प्रकृतिका एक-दम विनष्ट हो जाना पर्याय अधिस्तान्तर प्राप्त कर लेना और गुणका कुछ परिवर्तन होना।

अधिकृत (सं० द्वि०) प्रकृतगुणयुक्त, जो अधिस्तान्तरित न हुआ हो, जो विगड़ा न हो। त्विन् अविहति (स्त्री०) विकारका अभाव।

अधिक्रान्त (सं० द्वि०) १ अतुलनीय, जो बराबरी करने सायक न हो, अनुपम। २ दुर्बल, कम-जोर।

अधिक्रिय (सं० द्वि०) मञ्-बहुव्री०। विकार-गूढ, जिसमें विकार न लगा हो, वेदाग।

अधिक्रीत (सं० द्वि०) मञ्-तत्। जो विक्रीत न हुआ हो। जो शेष न गया हो।

अधिक्रिय (सं० द्वि०) मञ्-तत्। विक्रयके अयोग्य, जो शेष न सायक न हो।

अधिघत (सं० द्वि०) मञ्-तत्। अधिनष्ट, जो जोड़ घटाव न हुयी हो, यथ, एतच्छ।

अधिचित (सं० द्वि०) मास्ति विगेषे चितं चयो यम्। विगेष रूप अधिगूढ, जो अधिक नष्ट न हुआ हो। अन्तर्को अरिचरिन्: अञ्. ५११५

अधिचिप (सं० द्वि०) विघेत् न यत् चिप-क।

विघात करनेमें अयत्न, जो घास कर न सकता हो।

अधिचोच, अरिचरिन् देखो।

अधिगत (सं० पु०) १ जो विगत न हो। २ अज्ञात, जाननेके अयोग्य। ३ अनिर्वचनीय, जिसका वर्णन न हो सके। ४ नाग गूढ, जिसका नाग न होता हो, नित्य।

अधिगत्या, अधिगन्धिका (सं० स्त्री०) अज्ञगत्या हृष, कोई पेड़।

अधिगर्हित (सं० द्वि०) मञ्-तत्। अनिन्दित, जिसकी निन्दा न की जा सके, प्रशंसनीय।

अधिगीत (सं० द्वि०) मञ्-तत्। अनिन्दित, प्रशंसनीय।

अधिग्न (सं० पु०) विज-त्, मञ्-तत्। १ अम-रत्। २ करमर्दक हृष। ३ पानी पावना। ४ जो उद्विग्न न रहता हो।

अधिग्रह (सं० द्वि०) मास्ति विघ्नो समाप्तवाचं यम्। १ व्याकरणको जिस पदमें नित्य समाप्त रहे। मास्ति विगेषरूपेण पद्यो यम्। २ अज्ञात, जो विगेष रूपसे जाना न गया हो। मास्ति विघ्नो मूर्ति यम्। ३ मूर्तिगूढ, निरवयव, निराकार, जिसके शरीर न हो। ४ मीमांसकोल विग्रहगूढ देवता, परमेश्वर।

अधिग्रह (सं० पु०) विह्वत्येति चिन् विह्वन-व्यपार्थ-क विग्रः, मञ्-तत्। १ विग्रहभाव, विघ्नकी पदम मीमांसगी। मञ्-बहुव्री०। २ विग्रहगूढ, जिसे किसी तरहका विग्रह न हो। (अच्य०) ३ विग्रहभावसे।

अधिघात (सं० पु०) विघातका अभाव, विग्रह न होना।

अधिघचप (सं० द्वि०) वि-चप-श्चट्ट विघचपन्। मञ्-तत्। अघट्ट, मन्दि, मूर्ध, श्वकू, फ, जो विघ-चप न हो।

अधिघल (सं० पु०) स्थिर, अचल, अटन, जो विघ-कित न हो।

अधिचाचलि (सं० द्वि०) अच-यद्-कि चिन् वा; अतिगयेन चाचरिन्: ततो मञ्-तत्। अतिगय चलन-

रहित, जो बहुत ज्योदा चलता न हो। 'अपविष्टावि-
पातविः। (अञ्० पु० १०२:११)

अविचार (सं० पु०) १ अन्याय, अत्याचार।
२ अपमान, अविवेक। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ विचार-
शून्य, जिसे विचार न रहे, मूर्ख, बेवकूफ। अवीनां
मेवाणां चारो यत्र बहुव्री०। ४ जहाँ भेड़ घरता
हो। न विगतचारो दूतो यस्मि। ५ दूतयुक्त, जिसके
भृत्यादि रहे।

अविचारित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अविचेचित,
विना विचारा, जिसके विषयमें कुछ विचारा न
गया हो।

अविचारिन् अविचारी हो।

अविचारी (सं० पु०) १ विचारहीन, अविवेकी,
बे समझ। २ अत्याचारी, अन्यायी। (स्त्री०)
अविचारिणी।

अविचार्य (सं० त्रि०) न विचार्यम् अन्यायाकार्यं
नञ्-तत्। स्थिर, ठहरा, टिका।

अविचेतन (त्रि०) विमोक्षेण चेतनो प्रादि तत्-सतो
नञ्-बहुव्री०। १ संचाररहित, बंदहोश, बेहवास।
२ विज्ञानरहित। 'अदन्तविचेतनादि।' अञ्० पा० १०१।

अविच्छेद (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। १ अविच्छेद,
जिसका विच्छेद न हुआ हो। २ सन्तत, जो बीचमें
खाली न हो। ३ अटूट, निरन्तर लगातार, जो टूटा
न हो।

अविच्छेद (सं० पु०) अभावे-नञ्-तत्। १ विच्छेदका
अभाव। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ विच्छेदशून्य।

अविघ्न (सं० त्रि०) अनियुक्त, जो प्रबोध न हो।

अविघ्नत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अघ्नत, जो
अच्छी तरह जाना न हो, अनजाना, बेसमझा-
शुभा।

अविघ्नत (सं० त्रि०) विघ्नता जीवस्तदित्येषः।
परमेश्वर।

अविशेष (सं० त्रि०) दुर्धरेण, जाननेके अयोग्य, जो
जाना न जा सके।

अविहीन (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। पश्यांका, सम्पुष-
द्विशामे गमन।

अवित (सं० त्रि०) अव-तत्। पातित, जो पाया
गया हो। रक्षित, रक्षा पाये हुये।

अवितत् (वि०) विरुद्ध, प्रतिकूल, उलटा, जो
इच्छाके सुभाविक न हो।

अवितत्करण (सं० पु०) १ पाश्र्वत दर्शनके अन्व-
सार कर्म जो अन्य मतवालोंके विचारमें निन्दित
हो। २ धैर्यासाधुसार कार्याकार्यकी विवेचनाने
उद्दिष्ट पुरुषकी तरह सोचनिन्दित कर्म करना।
३ विरुद्धाचरण।

अवितत्य (सं० वि०) असत्य, मिथ्या, झूठ।

अवितत्य (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। १ सत्य। (त्रि०)
२ सत्यविशिष्ट, जिसमें सत्य रहे।

अवितज्ञापण (सं० पु०) व्याहत और निरपेक्ष
शब्दोंका उच्चारण, उलटा-सुलटा कहना, अण्ड-अण्ड
बकना।

अवितर्कित (सं० वि०) १ तर्कशून्य, जिसमें तर्क
न किया गया हो। २ निःसन्देह, विना तर्कका।

अवितर्क (सं० स्त्री०) तर्कयितुमशक्यम्। नञ्-
तत्। तर्क करनेको अशक्य, जिससे तर्क हो न सके।

अवितारिन् (सं० त्रि०) वितारो वितरणं अस्मरत्य
इति, नञ्-तत्। उहरनेवाला, टिकाशू, घियां कीपू।
अनपायिनी। अविचारिणो हरेः। अञ्० पा० १०१।

अविष्ट (सं० त्रि०) अव-तत्। रक्षक, रक्षा करने-
वाला।

अवित्त (सं० त्रि०) विदुः नञ्-तत्। १ अविष्यात्,
जो भगद्वर न हो। नञ्-बहुव्री०। २ धनरहित, धन
हीन, निर्धन, जिसके धन न रहे।

अवित्ति (सं० स्त्री०) विद-श्चिन् अभावे नञ्-तत्।
१ लाभका अभाव, अलाभ। २ ज्ञानाभाव, ज्ञानका न
होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ ज्ञानशून्य, जिसमें
ज्ञान न हो। ४ लाभशून्य, जिसको लाभ न हो।

अवित्यज (सं० पु०) न विशेषेण त्यज्यते रसायना-
दियु त्वज्-कर्मणि बाहु० क्, नञ्-तत्। पारद, पारा।

अविद्युत् (सं० त्रि०) व्यय-हरत् सम्प्रसारणं क्रिय।
नञ्-तत्। अविद्युत्, वियोगशून्य, जिसे वियोग न
रहे।

लिये योगाभ्यासका विरोध हो जाता है। कारण, पहले हो यदि, बन्ध मिथ्या टहरनेका ज्ञान उत्पन्न हो, तो बन्ध मोचनके निमित्त लोग बहू आयाससाध्य योगादिका अनुष्ठान किम लिये करते हैं। वेदान्ती कहते हैं, कि अविद्या ज्ञानविरोधो अज्ञान-रूप अपर पर्याय-धारी पदार्थ विशेष है। यह अविद्या भूलाविद्या एवं तूलाविद्या भेदसे दो प्रकारकी है। उसमें चिरस्थगर्भ नामक भूलाविद्या एवं प्रतिजीवमें नामा माया नामक तूलाविद्या है। यह माया भूलाविद्याकाही काम है। इसीसे उसे अविद्या भी कहते हैं। अतएव 'अविद्यिको जीवः' अर्थात् जीव मायाविशिष्ट है, भाष्यमें ऐसा ही लिखा हुआ है। जिनके अन्तःकरणमें तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति होती है, चन्द्रीकी अविद्याविमुक्त होती है। इसलिये अविद्यानिवृत्तं व्यक्त हो सुखिलाभ करते हैं। अतएव एककां मुक्ति होनेसे दूसरेकी नहीं होती। वेदान्तीमतसे बन्ध एवं मोक्षकी ऐसी ही व्यवस्था निरूपित हुई है। वैशेषिक अविद्याको विपर्ययका संग्रहज्ञान कहते हैं। और वह इन्द्रियदोष एवं संस्कारदोषसे उत्पन्न होता है, यही उन लोगोंका विश्वास है। वे लोग ऐसी भीमांसा करते हैं, कि वातपित्तादि-जनित शरीरकी अपटुता हो इन्द्रियदोष है। संस्कार-दोष विशेष शास्त्रादिके अर्थान् इन्हें दोनों दोषोंमें मिथ्याज्ञान उत्पन्न होता है।

अविद्विय (वे० त्रि०) १ करगून्य, विकाराया। २ चनीभूत, ठोस, जो पोला न हो।

अविद्विया (सं० स्त्री०) वि-द्रा कुत्सायागतो कि शौषादिकः। विद्रिः निन्दा न विद्रिः अविद्रिः अनिन्दा तां याति पति या-विच्। १ प्रगस्त। २ अनिन्दा-गामी, जो निन्दा न पाये। "अविद्रिः अविद्रिः।" अच् १५५। १५५

अविद्विता (सं० स्त्री०) मूर्खता, धैवकुक्षी, लाइली। अविद्वान् (सं० पु०) मूर्ख, नाखाँदा, जो इन्धम-दार न हो।

अविद्विप् (सं० त्रि०) घृषा न करनेवाला, जो नफरत न रखता हो।

अविद्वेप (सं० पु०) न विद्वेपः, अभावे विरोधे वा नञ्-तत्। १ विरोधका अभाव, अनुराग, अमदकी अदममौजूदगी, सुहृद्व्यत। (त्रि०) नास्ति विधेयो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ विरोधगून्य, सुहृद्व्यती।

अविध (सं० त्रि०) नास्ति विधा प्रकारो यस्य, नञ्-बहुव्री० गौषि ङ्ङस्। प्रकारगून्य, अतरह, जिसमें कोई सिद्धत न पाये।

अविधवा (सं० स्त्री०) न विगतो धवः पतिर्यस्याः, नञ्-बहुव्री०। सधवा, सुहागन, जी रांड न हो।

अविधा (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। प्रकारका अभाव, तरहकी अदममौजूदगी।

अविधान (सं० स्त्री०) न विधानम्, अभावे नञ्-तत्। १ विधानका अभाव, तरीकेकी अदममौजूदगी। (त्रि०) नास्ति विधानं यत्र यस्य वा। २ विधान-गून्य, अतरीके।

अविधानतः (सं० अथ०) विना विधान, अतरीके।

अविधि (सं० पु०) न विधिः, अभावे नञ्-तत्। १ विधिका अभाव, क्रायदेकी अदममौजूदगी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ विधानगून्य, अतरीके।

अविधिपूर्वक (सं० त्रि०) विधिविरुद्ध, अक्रायदे, अतपटांग।

अविन (सं० पु०) अविन रक्षति यत्रम् यथाविध्य-गुणानेन। अक्षयुः, यत्तुवदघ्नाता, यागकर्ता।

अविनय (सं० पु०) न विनयः, अभावे नञ्-तत्। १ विनयका अभाव, अज्ञकी अदममौजूदगी। विरोधे नञ्-तत्। २ दुर्नय, दुर्निति, बदमासी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ विनयगून्य, नागाविस्था।

अविनयत् (सं० त्रि०) नट न होनेवाला, जो मर न रहा हो।

अविनयत्तर (सं० त्रि०) विरोधे-नञ्-तत्। १ अविनायो, चिरस्थायी, साङ्गमात्र, सुदामो, जो क्षभी निरता न हो। (पु०) २ कृतक परमेश्वर।

अविनाभाव (सं० पु०) विना व्यापकगुणैर्न भावः स्थितिः, नञो भावेन सम्बन्धात् घृदं न पश्यति, अघृदं-म्यगो इति यत् पदसमर्प-समा०। व्यापकस्थितिको अघृदो-धो अत्वारूपं स्याति, व्याप्य चौर व्यापक भावसम्बन्धः।

पविनाभायिन् (मं० त्रि०) व्यापकं विना न भवति.
भू-विनि पविनाभाववत् शाक् चममयं ममा० ।
व्याप्य, जिनमें कोई चीज़ पुन लाये ।

पविनाभूत (मं० द्वि०) व्यापकं विना न भूतम्.
पविनाभाववत् शाकं चममयं-ममा० । व्याप्त,
मासूर, पुना हुआ ।

पविनाग (मं० पु०) रक्षा, विनाशका अभाव.
ब्रह्माजत, अक्षनाशुदीकी अदम-भोगुदगी ।

पविनागिन् (मं० त्रि०) न विनशति, वि-नाश-गिन्नि,
नश-तत् । पविनागर, नित्य, लाजपाल, सुदामी ।

पविनागो, पविनागिन् इषो ।

पविनामी (द्वि० वि०) १ पविनागो, लाजपाल ।
(पु०) २ ईश्वर ।

पविनिगम (मं० पु०) न्यायविरुद्ध विधि, मन्त्रि-
कृद् विनाशक मतीजा ।

पविनिर्माक (मं० त्रि०) कूटसे श्वाप्नो, जिनमें कुल्लन पुटे ।

पविनिवर्तिन् (मं० त्रि०) पयादपद न होनेवासा,
पाने बदेनेवासा ।

पविनीत (मं० त्रि०) न विनीतम्, नश-तत् ।
१ विनयशून्य, मागाधिपति । २ अगिस्तित, सूर्य,
शेवकूफ, ३ कुकियामल, बुरे काममें लगा हुआ ।

४ अक्षत, बचोड़िया । 'पविनीतः नद्वयः' (चर)

पविनीता (मं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, व्यभिचारिणी,
जा खोरत भनी न हो ।

पविनीय (मं० पु०) वि-नी क्वप् निपातभात्; नञ्-
तत् । १ कर्तृभिय, जो पोषयिणीका निचोरा कम
न हो । २ विष्ट पोषय भिय, जो कूटी पीसी दवा
न हो । ३ पापभिय, जो पाप न हो । (त्रि०)
नास्ति विनीयो यस्य, नञ्- बहुव्री० । ४ चूर्ण
पोषय-शून्य, जिनमें कूटी-पीसी दवा न रहे ।
५ पापशून्य, शत्रुनाश । (अम्य०) ६ विनय न
कर, ७ अज्ञ गुजारी ।

पविनेय (मं० त्रि०) विनेतुमशक्यम्, वि-नी
प्रकार्यं यत् ततो नञ्-तत् । दुर्दमनीय, कहर ।

पविन्या (मं० पु०) राक्षस विगेष, कोई राक्षस ।
यद् राक्षसका एक मन्त्रो रक्षा ।

पविन्या (मं० स्त्री०) विन्यापनःस्रता नदा
विगेष, कोई दरवा ।

पविपलिकरचूर्ण (मं० स्त्री०) पश्रपिसाधिकारका
चूर्ण, गफूफ, यद् भेदेकी सुर्मा पर दिया जाता है ।

शिकटु (मोंठ, मिर्च, पीपल), शिकमा (चारना,
हर, बड़ेरा), मुस्ताक, शीत्र, विहङ्गज, एवं एसा एक

मशकी बराबर-बराबर से कूट-पीसके छान टांसे ।

किर मशके बराबर इममें मयद् डासना चाहिये ।
पन्तमें मित्रचूर्ण सबसे दूना छान पीछे मशके बराबर

चीनी छोड़े । इस चूर्णकी बिकने बरतनमें रखते खोर
पश्रपिसापर भोजनके खाटिमें मधु या छत मिलाकर

खाते हैं । (श्रीरक्षारसच)

पविपक (मं० त्रि०) अपक, कच्चा, जो पका न हो ।

पविपक्तवृद्धि (मं० त्रि०) पशुभयरहित, शैतत्रयी,
जिनमें सकृद्वियत न रहे ।

पविपच (मं० त्रि०) गतशून्य, शैदुश्रमन् ।

पविपट (मं० पु०) पयोर्ना विस्तारः, पयि विस्तारि
पटच् । शेषका विस्तार, ऊर्ध्वामय वक्ष, छनी कपड़ा ।

पविपत्तिकरचूर्ण, शरिर्निशरचूर्ण इषो ।

पविपद् (मं० स्त्री०) ऐश्वर्य, पानन्द-मङ्गल, पुग-
कानी, अमनचैन ।

पविपन्न (मं० त्रि०) १ पप्रताडित, जिनके चोट
न लगे । २ विदुष, ज्ञानिन्स, साङ्ग ।

पविपयंय (मं० पु०) विपयंयका अभाव, निम-
निनेवन्ती ।

पविपयित् (मं० त्रि०) न विपयित्, विरोधे नञ्-
तत् । विपारशून्य, पविषेकी, नाजूदा, शेषकूफ ।

पविपात्र (मं० पु०) विगेषेण पथ्यते फलरूपेण,
वि-पथ-घत्र ततो नञ्-तत् । १ अपरिपाक, बदेबजरी ।

२ फल रूपमें अपचित धर्म खोर पथमें प्रथति ।

पविपान (मं० त्रि०) पबोन् पानयति, पवि-पा-
निच्-लः । शेषपानक, गड़रिया ।

पविपित्तक (मं० पु०) चूर्णविगेष । यद् पश्र-
पित्त रोगको दूर करता है । शरिर्निशरचूर्ण इषो ।

पविपुन (मं० त्रि०) न विपुनम्, विरोधे नञ्-
तत् । चूट, छोटा, नाशोत्र ।

विप्र (वं० पु०) अमेधावी, जो पूजन न करता
हो। "अविप्रोना यदविप्रतिषेः।" अक्ष० ११।१८।

विप्रकृत (सं० वि०) न विप्रकृतम्, विरोधे नञ्-
तत्। निकटस्थ, नजदीकी, जो दूर न हो।

विप्रिय (सं० पु०) न विप्रियं भयकारः, नञ्-
तत्। १ अनपकार, भलाई। २ भानुकृत्य, मेहर
वाणी। अवीनू मेषान् प्रीणाति, अवि-प्री-क। ३ श्या-
माक टण, सार्वा घास। (त्रि०) नास्ति विप्रियं
प्रथ, नञ्-बहुव्री०। ४ भयकारग्रन्थ, वुरायी न
करनेवाला, नेक।

विप्रिया (सं० स्त्री०) १ श्यामालता, सार्वा।
२ खेतान्तताचपु, सफेद घेल।

विप्रुत (सं० त्रि०) न विप्रुतं नष्टम्, नञ्-तत्।
अविनष्ट, जो विप्रुवयुक्त न हो। राजग्रन्थ युद्धका
नाम विप्रुव है।

विभक्त (सं० त्रि०) वि-भज्-क्त, नञ्-तत्।
१ विभागरहित, जो बंटा न हो। अविभक्त वस्तुके
ब्राह्मीकी भी अविभक्त कहते हैं। "अविभक्ता विभक्ता वा
अविभक्ताः स्यादरे सनाः।" (कृति) २ संसृष्ट, मिला हुआ, जो
अलग न किया गया हो। ३ अभिन्न, एक। ४ भेद-
रहित, एकभाषापत्र। ५ अथाहत। ६ अनिरा-
कृत, जो निकाशा न गया हो।

विभावित (सं० त्रि०) न विभावितम्, नञ्-
तत्। १ अलक्षित, जो लक्ष्य किया जा न सके।
२ अविन्तित, बिना विचारा।

विमुक्त (सं० त्रि०) वि-मुच्-क्त, नञ्-तत्।
१ जो मुक्त न हो अर्थात् मुक्तिनाम न कर सके,
बद। २ कनपट्टी, लाशाल उपनिषद्के अनुसार यह
ब्रह्मका स्थान है। ३ कामीघेद। कामीछुष्टमें
लिखा है, "न विमुक्तं विद्यायां अदविमुक्तं मनो विदुः।" अर्थात्
गिय और गियाके परित्याग न करनेसे कामीकी अवि-
मुक्त कहते हैं। ४ मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र) और चिह्नक
(दाढ़ी)का मध्यवर्ती स्थान। कोई कोई कामीके
निकटस्थ गद्दातटसे पांच कोम पर्यन्त स्थानको
अविमुक्त-ध्वज कहते हैं।

वियोग (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ वियो-

गका अभाव। विरोधे नञ्-तत्। २ संयोग, मिनाप।
(त्रि०) नास्ति वियोगो यस्य नञ्-बहुव्री०। १ वियोग-
ग्रन्थ, संयुक्त।

अवियोगव्रत (सं० स्त्री०) स्वामिना अवियोगजनकं
व्रतम्, शाक० तत्। कल्किपुराणके अनुसार एक
व्रत, जिसके करनेसे स्वामीका वियोग नहीं होता है,
अधेधव्यव्रत। यह व्रत अष्टाहायण शकृ-द्वतोयाको किया
जाता, दसमें क्षत्रियां खान और चन्द्र दर्शन करके दूध
पीने हैं।

अविरण (वै० स्त्री०) विरमणं विनाशः, नञ् तत्
वेदे नस्य लुक्। १ अविनाश। २ अविगतस्थ।
३ संघाम नाश। "न भावित्स्थाय पूर्ण।" अक्ष० १।१२।४।

अविरत (सं० स्त्री०) विरम् भावे क्त अनुनासिक
लोपः विरामः नञ्-तत्। १ विरामका अभाव, सतत,
निरन्तर, अनवरत, अथान्त, सन्तत, अनिग, निरन्त,
नगातार सततेनररकाकायवभगविरतादिभम्। (अर)
यह सब शब्द क्रियावियोगपरमें प्रयुक्त होता है। (त्रि०)
कर्तारि क्त नञ्-तत्। २ विश्रामग्रन्थ, सन्तत कार्यसे
अनिवृत्त।

अविरति (सं० स्त्री०) विरामो विरतिः, विरम्
भावे क्तित् चभावे नञ्-तत्। १ निवृत्तिका अभाव,
नीनता। २ विषयासक्ति, विषयादिमें क्षिरचित्तता,
विषयमें लक्षणाका होना। ३ विरामका अभाव,
अथान्ति। (त्रि०) नास्ति विरतिः यस्य नञ्
बहुव्री०। ४ विरामग्रन्थ। जैनशास्त्रानुसार धमं-
शास्त्रकी मर्यादासे रचित बताने करना। यह धर्म
नके चार हेतुओंमें एक और वारह प्रकारका होता
है। पांच इन्द्रियाविरति, एक मनोविरति और
छः काया विरति।

अविरथा, अथा शेषः।

अविरम (सं० त्रि०) नञ्-तत्। घन, मयन, निविष्ट,
मिना हुआ, मध्यविच्छेदरहित। अथवच्छेद।

अविराम (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ विरामका
अभाव, प्रसतकी अदम मौजूदगी। २ अविच्छेद,
सगाव। (त्रि०) नास्ति विरामा यस्य। नञ्
बहुव्री०। ३ विरामग्रन्थ, सन्तत, निरन्तर।

अविवेक (सं० लि०) न विवेकं । नञ्-तत् । १ विरोध
शून्य, जो विवेक न हो । २ अप्रतिकूल, अनुकूल,
दुर्गाधिक । ३ एकतमहाव्यभिक्त । ४ व्यत्ययरहित ।

अविरोध (सं० पु०) न विरोधः, नञ्-तत् ।
२३१, अविद्वेष, एकता अवयमान, विजादका अभाव-
अनुकूलता, भेद, अगति, सुवाङ्मिकत, साधर्म्य, सम-
ानता अविरोधी । (लि०) जो विरोधी न हो, अनुकूल,
मित्र, दित ।

अविमत्त (सं० लि०) विमत्तयो विजातीयः
नञ्-तत् । अविजातीय, जो दूसरी जात न हो,
भेदक धर्मशून्य ।

अविमत्त (सं० लि०) नास्ति विमेषेण सत्तारं व्याजः
अज्ञं गण्यं वा यस्य, नञ्-तत् । १ व्याजशून्य,
कपटमि रहित । २ अज्ञशून्य । ३ शब्दशून्य, जो
मिथ्या न हो । ४ प्रतिकारशून्य, निमका प्रतिकार
हो न करे । (अर्थ) ५ मत्त न करके, निगाना न
बैठाकर ।

अविनाश (सं० लि०) वि-नवि-ञ, नञ्-तत् ।
विनाशशून्य, स्वया युक्त । (अर्थ) गोप्त, मत्वर,
अपम, अम्प ।

अविना (सं० स्त्री०) अविं मियं स्नाति पतित्वेन
शुद्धाति अवि-ना-क-श्लोत्वात् टाप् । १ मियो, भेड़ी ।
(लि०) नास्ति विन् यत् नञ्-वद्भूमि० । २ गत-
शून्य, लडा गद्वा न हो ।

अविनाम (सं० पु०) न विनामः, नञ्-तत् ।
१ विनामका अभाव । २ अमकाग जावभाव पादि
कनाका अभाव । ३ शीमाका अभाव । (लि०) ४ जाव-
मावादि रहित ।

अविमोक्त, अविमोक्तं देवीः ।

अविमोक्त (सं० लि०) नञ्-तत् । वीमोक्तं अवि-
मोक्त, जो तापयके विपयोक्त न हो ।

अविवर (सं० स्त्री०) न विवरम्, नञ्-तत् ।
१ विवर न होनेवाला, जो छिट न हो । (लि०) नास्ति
विवरं यत्, नञ्-वद्भूमि० । २ नीरम् । ३ धन ।
४ गर्तशून्य ।

अविवाच (सं० स्त्री०) नास्ति विमेषेण वाचो

मन्वादिष्यं नञ्-वद्भूमि० । अविमोक्तं यथा सा द्वि-
दम दिन, इम दिन यथा करनेवाला जोई समक
कमादि न करे, ऐसा श्रुति श्रुतिमें निषेध है ।

अविवाद (सं० पु०) विवदो वादः वाचं व्य-
हारविशेषय विवादः, अभावे नञ्-तत् । १ विवद
वाचका अभाव, एक वाच । २ व्यवहार विशेषका
अभाव । ३ विरोधका अभाव । (लि०) नञ्-वद्भूमि० ।
४ विवद वादादि शून्य, विवादरहित, निर्विवाद ।

अविवाहित (सं० लि०) विवाहमप्यातोष्य विवा-
हितम्, नञ्-तत् । अगूढ, कारा, जो व्याह न हो ।
विवाहित पुरुष यदि किसीसे प्रसक्त हो, तो उस स्त्रीसे
भी अविवाहित कहा जायेगा ।

अविवाहित (सं० लि०) १ विवाह न करनेवाला,
जा शादी न करता हो । २ विवाह सम्बन्ध, शादीसे
ताज्जु रहनेवाला । ३ विवाहाद्ये निषिद्ध, जो शादी-
के निये मना हो ।

अविवाहित (सं० लि०) न विवाहितम्, नञ्-तत् ।
१ असम्पूह न होनेवाला, जो अलग न हो । २ अजी-
भूत, गंठा दुषा । ३ अविवा, नापाक । ४ जगज्जुन,
आवाद, जो उजाड़ न हो । ५ अविवेकी, जो परचेन
गार न हो ।

अविवाहित (सं० लि०) असम्पूह न होनेवाला, जो अलग न हो । २ अजी-
भूत, गंठा दुषा । ३ अविवा, नापाक । ४ जगज्जुन,
आवाद, जो उजाड़ न हो । ५ अविवेकी, जो परचेन
गार न हो ।

अविवाहित (सं० लि०) असम्पूह न होनेवाला, जो अलग न हो । २ अजी-
भूत, गंठा दुषा । ३ अविवा, नापाक । ४ जगज्जुन,
आवाद, जो उजाड़ न हो । ५ अविवेकी, जो परचेन
गार न हो ।

अविवाहित (सं० लि०) असम्पूह न होनेवाला, जो अलग न हो । २ अजी-
भूत, गंठा दुषा । ३ अविवा, नापाक । ४ जगज्जुन,
आवाद, जो उजाड़ न हो । ५ अविवेकी, जो परचेन
गार न हो ।

अविवाहित (सं० लि०) असम्पूह न होनेवाला, जो अलग न हो । २ अजी-
भूत, गंठा दुषा । ३ अविवा, नापाक । ४ जगज्जुन,
आवाद, जो उजाड़ न हो । ५ अविवेकी, जो परचेन
गार न हो ।

कहाता है। सांख्यवादी समझाता, अन्योन्य तादा-
त्म्य ज्ञानरूप मिय्याज्ञान ही अविद्येक है। (त्रि०)
२ विद्येकशून्य, वेद्यकूफ, गंधार।
अविद्येककृत (म० त्रि०) अविद्येचनासे किया हुआ,
जो बे-सोचे समझे हो।
अविद्येकता (सं० स्त्री०) अविद्येचना, वेद्यकूफी,
नादानी।
अविद्येकत्व (सं० स्त्री०) अविद्येकता देखो।
अविद्येकिकृ (म० त्रि०) अविद्येक देखो।
अविद्येकी, अविद्येक देखो।
अविद्येचक (सं० त्रि०) नञ्-तत्। कर्तव्याकर्तव्य
विद्येचनारहित, जिसे भला-बुरा समझ न पड़े।
अविद्येचना (सं० स्त्री०) अविद्येकता, वेद्यकूफो,
नादानी, भला-बुरा समझ न पड़नेकी हालत।
अविद्येन (घं० त्रि०) वि-द्येन पुंमि सञ्चार्यां घ, नञ्-
तत्। १ इच्छाशील, अविगतकाम, युयाकाम,
खाडिगमन्द, चाह रखनेवाला। "विद्येन मन्वेषिष्येन्।"
अ० ११। २। २ सिधावो न होनेवाला, जो अस्त-
मन्द न हो। (अथ०) ३ इच्छाशील होकर, क्षुशी-
क्षुशी।
अविद्येद् (सं० त्रि०) निर्भय, वेदोफ, निडर, जिसे
शङ्का न रहे।
अविद्येद्वा (सं० स्त्री०) न विद्येयेण शङ्का, प्रभावे
नञ्-तत्। विद्येय शङ्काका प्रभाव, एतवार, भरोमा।
अविद्येदित (सं० त्रि०) वि-शक्ति कर्त्तरि ङ; विद्ये-
येण शङ्का सञ्चारतोष्येति तारकादित्वादिहत्त्वात्। ततो
नञ्-तत्। विद्येयरूप शङ्कारहित, जिसे खौफ न लगे।
अविद्येस्तु (वै० त्रि०) नञ्-तत्। श्रमिता, विग-
सनमें अकुशल, जो यत्नमें भन्ने भांति पशुवध कर न
सकता हो।
अविद्यिर (सं० स्त्री०) सूर्यावर्तका फल, अटजीरेका
बीज।
अविद्यिद् (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। १ विद्ये
न होनेवाला, जो खालिस न हो। २ अपविध,
नापाक।
अविद्यिदि (सं० स्त्री०) विरोधे नञ्-तत्। शुद्धिके

विपरोत, द्रोप, नापाकी, हुवाइत। पद्यिष्ठाचार्यका
मत है, कि मोमादि यत्नमें पशु एवं यवसुदगादि बीजके
नाशका कारण होनेसे अविद्यिदि हिंसादोषकी माधिका
ही कहौ जायेगी। ज्योतिषामादिमें यद्धि भिद्ये
कोयी प्रधान पदार्थ एवं पत्रादि हिमाज्जित दुरदृष्ट
निकलता है। किन्तु अल्प प्रायश्चित्तसे ही यह दुर-
दृष्ट मिट जाता है।
अविद्यिय (सं० पु०) न विद्येयः, प्रभावे नञ्-तत्।
१ भेदक धर्मका प्रभाव, प्रभेद। २ ऐस, एका।
(वि०) नास्ति विद्येयो यस्य यस्य वा। ३ विद्येय-
शून्य, तुल्य, बराबर।
अविद्यियज्ञ (म० त्रि०) विद्येयं न जानन्ति, विद्येय-ज्ञा-
क। विद्येयानभिज्ञ, भेदक-धर्मानभिज्ञ, जो ज्ञादा
जानता न हो।
अविद्येयित (सं० त्रि०) न विद्येयितम्, नञ्-तत्।
जिमें अन्य वस्तुसे विद्येयरूप भेद न जाने, जो दूसरी
बीजसे ज्ञादातर अलग की न गयी हो।
अविद्येयान्त (सं० त्रि०) वि-द्येय-क्त दीर्घत्वं मन्व-
नत्वच्, ततो नञ्-तत्। विरामरहित, मन्वत, जो
रुकता या यकता न हो।
अविद्येष्ट (म० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। विद्येष्ट
न होनेवाला, जो मिला न हो।
अविद्येष्टमित्र (वै० त्रि०) मय वस्तुमें व्यात न होने-
वाला, जो सब चीजमें भरा न हो।
अविद्येष्टविष (वै० त्रि०) प्रत्येक स्थानमें प्रजात, जो
हरिके अगच्छ मान्म न पड़ता हो।
अविद्येष्टमनोय (सं० त्रि०) वि-द्येष्ट-प्रमोय, नञ्-
तत्। विग्राम करनेके अयोग्य, जो पतवार करने
नायक न हो।
अविद्येष्टस्त (सं० त्रि०) नञ्-तत्। विग्रामकी
योग्यतासे हीन, मन्दिग्, एतवारकी निवाकृतषे
झाली, जो पतवारी न हो।
अविद्येष्टाम (सं० पु०) न विग्रामः, प्रभावे नञ्-
तत्। १ विग्रामका प्रभाव, मन्दिग्, एतवारकी पदम-
सोद्गमो- (त्रि०) २ विग्रामशून्य, पेशवराद,
जिसे कोयी पतवारी न समझे।

अपिञ्जामा (मं० स्त्री०) निरवयुक्त लो, जो माय बहुत दिनको मारी हो।

अपिञ्जामिन् (मं० द्वि०) न पिञ्जामिति, पिञ्जाम्-त्सिनि। पिञ्जाम न करनेवाला, जिसे पतवार न पाये।

अपिञ्जामो, अर्थात् १५०।

अपिच (मं० पु०) अपचि रसादीन् जनात् वा, अपच रचयि कर्त्तरि टिप्। १ समुद्र। २ राजा। ३ पाकागम। (द्वि०) ४ रचक, रचयामा। ५ विषयगुण्य, लुङ्गरेण्युप्यो।

अपिचक (मं० द्वि०) न विपचकं विचिष्टम्, नञ्-त्तत्। चर्मन्त्य, चर्मगुण्य, जो लगा या मिला न हो।

अपिचम (मं० द्वि०) न विपचम्, विरोधे नञ्-त्तत्। १ विपच न होनेवाला, मम, एमवार, जो माह-मवार न हो। २ मंगुल, मिला हुआ। ३ सुगम, सीधा, जिसमें पामे-जानिमें कोई घटका न रहे।

अपिचय (मं० पु०) न विपचयः, नञ्-त्तत्। १ अगोचर, गुम हो जानेकी द्वागत। २ अपतिपाय माया, दुनियाकी भूठो चोज। ३ अनुपस्थिति, गौर दार्जिती। (द्वि०) ४ अट्टग, गुम। ५ इन्द्रिया-नीत, मानस न होनेवाला।

अपिचयोकरण (मं० स्त्री०) हया चेटा, बकामका काम।

अपिचय (मं० द्वि०) न विमिषेण मद्यम्, नञ्-त्तत्। १ मद्य करनेकी योग्य, जो सहा न जाता हो। (अण्य०) २ मद्य न करके, शि-वरदास किये।

अपिचा (मं० स्त्री०) १ अतिविद्या। २ निर्विष-यस्य, अहार। यह पास हिमालयपर उत्पन्न होती है। हममें मज्जेद कन्द निकलता है। कन्दको छतपर धिसकर लगा देनेसे मांष-बिच्छुका लुङ्गरेण्युप्युत्तर जाता है। अपिचा मृदाक असा पाकार रचती है।

अपिचाद (मं० पु०) १ प्रमथता, पातन्-मङ्गल, चुम्बो, शैल-पाल। (द्वि०) २ प्रमथ, प्या।

अपिचक (मं० पु०) अभावे नञ्-त्तत्। १ पात-म्भाभाव, पातयका अभाव, पनाइकी अदममोत्रदगो। (द्वि०) नञ्-बहुती०। २ पातम्भनग्या, शिमहारा।

अपिच (मं० द्वि०) अतिमघिन अविता अविता, अपिच-रठन् अयोभोयः। १ अतिमघ रचक, बड़ा मुहाइन्। २ अतिमघ प्रमथ, निहायत राजी। ३ अतिमघ ध्यान देनेवाला, जो बहुत गौर करता हो।

“यो अपिचो मद्यनिर्वाहः” अण् १०। १५। १।

अपिचा (ये० स्त्री०) अपच-गतौ-इत्तन्, अपिचमि-मिच्छति क्वच् भावे च स्त्रीत्वात् टाप्। १ अमिभाव, मूर्खता। २ गमनेच्छा, जानेकी तभीयत। “अपिच-मद्यमो” अण् १०। १५। १।

अपिच्यु (मं० द्वि०) अपिच-यत्-उत्। रथा कर-नेकी दृष्ट्या रचनेवाला, पालनशाला। “अपिच्यु-अपिच्यु” अण् १०। १५। १।

अपिच्यु (मं० स्त्री०) अपच-भावे-इत्तन्। १ रचय, विद्या-गत। २ गति, चाल।

अपिचंवाद (मं० पु०) न विमिषेण संवादः अभावे नञ्-त्तत्। १ प्रमाथके अनुमरचका अभाव, सुवृत्तके सुवाकिक न चलना। न विमंवादः विरोधे नञ्-त्तत्। २ प्रमाथका अनुमरच, सुवृत्तकी हमराही। ३ यथार्थ विद्यार्थक, वाजिब बातका मानना।

अपिचंवादिन् (मं० द्वि०) न विमंयदति चिनि विरोधे नञ्-त्तत्। १ प्रमाथानुयायी, सुवृत्तपर चलने-वाला। २ यथार्थवादी, वाजिब बोलनेवाला। ३ मफल पदार्थ, पता पाये हुआ।

अपिचमिन् (मं० द्वि०) मंन्यन्, लगा हुआ, जो छोड़ता न हो।

अपिचोद (मं० स्त्री०) अचेदुंशम् अपि-मोदन् न पातम्। मीपी दुग्ध, भेड़का दूध।

अपिचर (मं० द्वि०) विस्तारशून्य, छोटे मिष्-दार या दाघरेवाला, जो फेला न हो।

अपिचर (मं० पु०) विस्तारका अभाव, रफो-मानकी अदममोत्रदगो।

अपिचोर्ष (मं० द्वि०) महुचित, अमिगुल, वि-स्ताररहित, छोटा, फेला न हुआ, निकुड़ा हुआ, जो काममें न लगा हो।

अपिचूत (मं० द्वि०) लुट्, मंन्यन्, मिला हुआ, जो घटा हो।

अविस्मयल (सं० स्त्री०) महाभारतोक्त प्राम विगेष ।
उद्योग पर्वमें अविस्मयल प्रभृति पांच प्रामका उल्लेख
किया है ।

अविस्मष्ट (सं० त्रि०) न विगेषेण स्मष्टम्, नञ्-
ःत्त् । अस्मष्ट यावत्, जो साफ न बोला गया हो ।

अविस्मरण (सं० स्त्री०) न विस्मरणं अभावे नञ्-
ःत्त् । १ विस्मरणका अभाव, याद न रहनेकी प्रथम-
मौजूदगी । २ स्मरण, याद ।

अविस्मृत (सं० त्रि०) न विस्मृतम् नञ्-ःत्त् । भूला
न हुआ, जो विस्मृत न हो ।

अविस्म (सं० त्रि०) पूतिगन्ध रहित, जिससे साफ
बू न निकले ।

अविस्मृत (सं० त्रि०) अवरोधशून्य, जो रोक न
गया हो ।

अविस्मृतमति (सं० त्रि०) गमनमें अवरोध न रखने-
वाला, जिसे जानमें रोक न रहे ।

अविस्मर (द्वि० वि०) १ विस्मर न होनेवाला, जो
टूटा न हो, अखण्ड, अनश्वर ।

अविस्मृतक्रतु (सं० पु०) इत्यति प्रेषाकर्म्म
इति यास्कः । इत्यंतिगतान्तरोः कान्तिरभिलापः ।

वि-इत्य-अतच् विस्मृतोऽभिलपितः । अविस्मृतोऽन-
भिलपित इत्यर्थः । तादृश क्रतु कर्म यस्य । १ अन-
भिलपितकर्म्म, जो अभिलाषसे काम न करता हो ।

२ इन्द्र । "दिवाविस्मृतक्रतो अविस्मर ।" अच् १।११।१ ।
"१ अविस्मृतक्रतो अविस्मरमिन्द्र ।" (शापथ)

अविस्मृत (सं० त्रि०) न वेदादि-शास्त्रेण विस्मि-
तम्, नञ्-ःत्त् । १ निषिद्ध, जिसे शास्त्र न करने-
की कष्ट । २ अज्ञत, जो किया न हो । अविस्मृतम्
६-त्त् । ३ भेड़का हितकर । (पु०) ४ भ्रामाक
घास ।

अविस्मृत (सं० त्रि०) वि-इ-वा उत्तच् किञ्च तेन
न गुणः नञ्-ःत्त् । अविस्मृत, वि-इ-वाके अयोग्य, जो
मारने लायक न हो । "तर्हि अविस्मृतम् ।" अच् २।१८।४ ।
"अविस्मृतमिन्द्रम् ।" (शापथ)

अविस्मरत् (वै० त्रि०) पतनशून्य, जो किसलता या
गिरता न हो ।

अविस्मरत् (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-ःत्त् । १ व्याकुल न
होनेवाला, जो वैचैन न हो । २ ध्वंस्य, तनहुत्वात् ।

अवी (सं० स्त्री०) अवत्याध्वानमन्यस्वार्थात् । अथ
रक्षणं अविष्णु, तत्रिथी ६ । अच् ४।११८ । इति द्वि ।
१ अतुल्यमती स्त्री, रजस्रवा स्त्री । २ वनकुलस्य, अङ्गुली
कुल थी । 'वनेर्गांती रजस्रवा' (विश्वाम्नीश्वरी)

अवीकाग (सं० पु०) वि-काग-भावे-अच् उत्प-
सर्गदीर्घः प्रकागः ततो नञ्-ःत्त् । १ प्रकागका अभाव,
रोगनीकी अथममौजूदगी । (त्रि०) नञ्-वद्भ्रुवी० ।
२ प्रकागशून्य, अन्धरा ।

अवीक्षण (सं० स्त्री०) न वीक्षणम् नञ्-ःत्त् । १ दर्श-
नका अभाव, देख न पडना । (त्रि०) नञ्-वद्भ्रुवी० ।
२ दर्शनशून्य, जो देख न पडता हो । अवीर्णा ईक्षणं
६-त्त् । ३ मेषका दर्शन, भेड़का देखना ।

अवीक्षित (सं० त्रि०) न वीक्षितम् नञ्-ःत्त् ।
अदृष्ट, जो देखा न गया हो । भावे अ अभावे-नञ्-
ःत्त् । (स्त्री०) २ घोषणाभाव, दर्शनाभाव । अविना
मिषेण इक्षितम् । १-त्त् । ३ मियदृष्ट, जो भेड़में देखा
गया हो ।

अवीची, अवीचि (सं० पु०-स्त्री०) अयति मततं
अयति वेज्-ईच् इक्ष । न वीचिः वीची वा, नञ्-
ःत्त् । १ जो अतुल्य श्रेणी या कतार न हो । २ जो तरङ्ग
या लहर न हो । ३ अविनामिष, जो श्रे मीक्षा
न हो । ४ सुखमिष, पाराम न होनेवाली चीज ।
५ अनस्य, अङ्गी चीज । ६ एक नरक । भागवतके पद्मम

स्कन्धमें उक्त नरकका विगेष विवरण लिखा है ।
(त्रि०) ७ नास्ति वीचिभरदो यत् । तरङ्गशून्य
जलाशय, लहरसे रहली ।

अवीज (सं० त्रि०) नास्ति योजनम्य, नञ्-
वद्भ्रुवी० । १ वीजशून्य फलादि, कदमी, केरा प्रभृति,
वैतुष्यम् । (स्त्री) २ द्राक्षा, किगमिग । (त्रि०)
३ वीजका अभावायक, जो वीज न रखता हो । नञ्-
ःत्त् । ४ अग्रमस्त, पुराव । ५ अदुरोत्पादनके अयोग्य,
तीन वर्षका वीज जिससे कोयल निकल न सके ।
(स्त्री०) वीजं दृक् तदास्ति यच्च नञ्-वद्भ्रुवी० ।
६ दृक्चैन, स्त्रीयादि, नामर्द । ७ कारपयस्य,

विज्ञान, वैश्व (पुं०) व योगदासोक्त निर्गोत्र विष्णु
 कृत्तिका चरित्रानि निराय, योग भिन्न चन्द्रत विष्णु
 कृत्तिका निरायक ।
 पवीकक (वं० वि०) १ वीरगुण्य, गुण्यमभि
 धारणे । २ चरित्ररहित, जो सोया न गया हो ।
 पवीककमी (मं० वि०) वीरका धर्म न रचने-
 कला, जो गुण्यमयी गुण्यमती धारणी हो ।
 पवीकका (मं० स्त्री०) गोष्ठमौल्यगुण्य द्राघा, किममिम ।
 पवीक (मं० स्त्री०) न वीर्य विज्ञादवगतम्, मन्त्र-
 तत् । चतुमान, पुत्र, चन्द्राज ।
 पवीकद्वय (मं० स्त्री०) मीथीद्वय, मीथुका द्वय ।
 पवीकगुण्य (मं० स्त्री०) मीथीगुण्य, मीथुका मूत्र ।
 पवीर (मं० वि०) न वीरम् । १ जो वीर न हो ।
 २ जो वनयान् न हो । वीरः पुत्रादि म नास्ति यस्य
 मन्त्र-वृद्धीः । ३ पुत्रादिगुण्य, जिनसे मन्त्रका वगैरेह
 न रहे ।
 पवीरघो (वं० स्त्री०) पवीर-वृद्धीः ।
 पवीरगा (वं० स्त्री०) पुत्रका चभाव, विमरकी
 चदममौल्यगुण्य, धानवर्षका न होना ।
 पवीरघ्न (वं० वि०) सुगुण्यव न करनेवाला, जो
 चादमिषीकी मारता न हो ।
 पवीर (मं० स्त्री०) १ पुत्र वीर पतिसे रहित घी,
 जिन वीरतर्के अष्टका वीर म्पविन्द न रहे । २ अतन्त्र
 घी, चाभाद वीरग ।
 पवीर्य (वं० वि०) मिथ्य, प्रभावरहित, कामकोर,
 वैवमर ।
 पवीर (वि० वि०) चामय, मिष्टर, जो उरता न हो ।
 पवु (मं० वि०) पव-उ । जो हविर्दोषा तपेण करता हो ।
 'पवोःपवोःपवः पवः पवः पवः पवः' चण्ड १० । १११ । ३ ।
 'पवोःपवोःपवः पवः पवः पवः पवः' (१११)
 पवुष्ट (वं० पुं०) हाग, यकरा ।
 पवुष्ट (वं० वि०) हनीमि ममलाद्वाराश्रीनि, ह-उक्त
 ततो मन्त्र-तत् । १ अगमिध, जो हिरण न हो । नास्ति
 ह्रस्वः चावर्षः मूनी वा यस्य यत् न, मन्त्र-वृद्धीः ।
 २ अगम्य, हिरण्यमि धारणी । ३ हिनक रहित,
 कदा वांवार हाववर न रहे । ४ गया, राया ।

५ रहित, मण्ड-तत् । (स्त्री०) ६ रता, यागि, विष्णु-
 उक्त, मीध । 'पवोःपवोःपवः' चण्ड १० । १११ ।
 पवुष्ट (मं० वि०) हचमूय, दरपान्ते धारणी ।
 पवुष्ट, वर-वर्षः ।
 पवुष्टि (वं० वि०) हच म करनेवाला, मन्त्र, जो
 चपने दोषका वल पर होइता न हो । यह मन्त्र
 चादित्यमूका विषयण है ।
 पवुष्ट (वं० वि०) १ चरित्ररहित, जो रीका न गया
 हो । २ चधीन न बना हुआ, जो टबाया न गया
 हो । ३ चनिर्वाचित, जो गुना न गया हो । ४ चर-
 चित, जो मथाया न गया हो ।
 पवुष्टि (मं० स्त्री०) हचिपतंगदि, मन्त्र-तत् ।
 १ स्मितीका चभाव, अठहरने की हावत । २ चोपि-
 काका चभाव, रीकाकी चदममौल्यगुण्य । ३ चिरव-
 का चभाव, तपुष्ठीनका चदममौल्यगुण्य । (वि०)
 नास्ति हचिः स्मितीकादिर्षयः । ४ स्मितीका, वैदि-
 काना । ५ श्रीविहागुण्य, धरोत्तारा । ६ चिरव-
 रहित, धिनकमीन ।
 पवुष्टितर (मं० स्त्री०) चरित्रर, चदम-मौल्यगुण्य ।
 पवुष्टा (वं० चण्ड०) हचकायं होकर, मन्त्रनाथे,
 कामयावोके माय ।
 पवुष्टाय (मं० वि०) हचकायं, मन्त्रमनोरथ,
 कामयाव ।
 पवुष्ट (मं० पुं०) पुष्यहचमेड, हिमी दिव्यका
 कुन्दार वैष्ट ।
 पवुष्टिक (मं० स्त्री०) नास्ति हचिः कामयाव
 यस्मिन्, मन्त्र-वृद्धीः ; मयादिभावेति वा च्यत् ।
 हचिपीन मूलधन, गुदमे धारणी वमा । (वि०)
 २ हचिरहित, न चदनेवाला । ३ ध्यान न चदनेवाला,
 त्रिमये गुद न लमी ।
 पवुष्ट (वं० वि०) न चपते, हच-वर्षीर-व । हचि-
 गुण्य, वेवाड । 'पवोःपवोःपवः' चण्ड १० । १११ ।
 पवुष्टि (मं० स्त्री०) चभावे मन्त्र-तत् । १ हचिका
 चभाव, चादिमकी चदममौल्यगुण्य । २ हचिध, कृत्त ।
 (पुं०) नास्ति हचिर्षये च्यत् । मन्त्र-वृद्धीः ।
 ३ हचिधम्य मीध, जो चादन चरयता न हो ।

अष्टादशसंस्कृत (सं० पु०) नास्ति हृष्टवर्षव्य
संस्कृतः संवेगो यस्मात्, नञ् ५-वद्बुद्धौ० । अति वेगने
न वरसनेवाला मित्र, निश्चिद्व मित्र, हृष्टिमे पूर्वकान्तवर्ती
गम्भीर मित्र, जो दादल ल्यादा वरमता न हो ।

अष्टादश (सं० पु०) बौद्ध देव-विग्रह; बौद्ध देव-
तावीकी एक श्रेणी ।

अष्टादश (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत् । हृष्टादश,
घुट्ट, क्रीटा, जो बडा न हो ।

अष्टादशक (सं० वि०) अष्टादशते विशेषणालोकयति,
अष्ट-ईश-खलुत् । १ दर्शक, देखनेवाला । २ पर्यालोचक,
सुवायिना करनेवाला । ३ प्रायश्चित्तादिका अष्टादश,
आमद-खर्चका हिसाब रखनेवाला ।

अष्टादश (सं० स्त्री०) अष्ट-ईश-खलुत् । १ दर्शन,
देखभाल । २ पर्यालोचन, सुवायिना । ३ अवधान,
गौर । ४ प्रतिजागरण, चौकीदारी ।

अष्टादशीय (सं० त्रि०) अष्टादशते, अष्ट-ईश-अष्टौ-
यत् । १ दर्शनीय, देखने लायक । २ आलोचनीय,
सुवायिनिके काविल ।

अष्टादशी (सं० स्त्री०) अष्ट-ईश भावे-अ-टाप् ।
१ दर्शन, देखभाल । २ अवधान, गौर, ख्याल ।
३ पर्यालोचना, सुवायिना ।

अष्टादशित (सं० त्रि०) अष्ट-ईश कर्मणि क्त । १ हृष्ट,
देखा-भाला । २ पर्यालोचित, सुवायिना किया हुआ ।

अष्टादशित (सं० त्रि०) अष्टादशते, अष्ट-ईश-लृच् ।
१ दर्शक, देखनेवाला । २ पर्यालोचक, सुवायिना
करनेवाला ।

अष्टादशित्, अष्टादशित् ।

अष्टादश (सं० त्रि०) अष्ट-ईश कर्मणि क्त ।
१ हृष्ट, देखने लायक । २ पर्यालोचनीय, लोचने
काविल । (अष्टौ) लृच् । ३ देख या विवेचना
करके, गौरके साथ, सुवायिनिके सुवायिज् ।

अष्टादश (सं० पु०) एषज्, वदना ।

अष्टादश (सं० त्रि०) १ गूया न हुआ, जो मोड़
मोड़के बनाया न गया हो । २ लहरदार न होनेवाला,
जिसमें दरयाकी तरह लहरें न उठें । यह शब्द
अलकका विशेषण है ।

अष्टादशात्र (सं० त्रि०) वेदनां न जानाति; अष्ट-
दशा-आ-क, अष्टमर्ष-अमा० । वेदनातमिष, जो
दर्दको जानता न हो ।

अष्टादशान (सं० त्रि०) अष्टान, नादान, जो जानता
न हो ।

अष्टादशविद् (सं० पु०) वेद न पढ़नेवाला ब्राह्मण ।

अष्टादशवित (सं० त्रि०) वेदमें न मिलनेवाला,
जो वेदमें पाया न जाता हो ।

अष्टादश (सं० स्त्री०) वेदिवेदनम्, अभावे नञ्-
तत् । १ ज्ञानाभाव, इत्यको अष्टम-भौत-दुग्गो । वेदि:
परिष्कृता भूमि; सा न भवति, नञ्-तत् । २ अपरि-
ष्कृता भूमि, माफ न की हुई जमीन ।

अष्टादश (सं० त्रि०) विद्यते प्रायते, विद कर्मणि
लृच् ततो नञ्-तत् । १ अष्टौ, जाना जा न सकने-
वाला । विद नामि लृच्, नञ्-तत् । २ अनाथ,
नायाव, जो मिल न सकता हो । ३ व्याघात न जाने-
वाला । (पु०) ४ गोवत्, गायका बहुरा ।

अष्टादश (सं० स्त्री०) अष्टादशा स्त्री, जिस भोरतमें
शादी हो न सके ।

अष्टादश (सं० त्रि०) अष्टान, वेदोप, जिसमें कुछ
मालूम न पड़े ।

अष्टादश (सं० त्रि०) नास्ति यस्मात् मीमा यन्म यत्
वा, नञ्-वद्बुद्धौ० । १ मीमारहित, वेदद । २ निर्म-
र्याद, वेदव्यत । (पु०) ३ अष्टानाप, भूठ, इत्यकी
पोशीदगी ।

अष्टादश (सं० स्त्री०) १ गुणकष्ये चर्वितपूग,
सुपारीका दोहरा । 'अष्ट-नञ्-लृच्-आदेशना लृच्-वर्द्धे' (विव)
नवेना, नञ्-तत् । २ अष्टमस्त काल, बुरा वक्त ।
३ अष्टुचित काल, नासुनामिव वक्त । अस्ति भाषामें
त्रिप देसाकी ही अष्टौ कहेते हैं ।

अष्टादश (सं० पु०) १ अष्टौ, लोग, भद्रक ।
२ अष्टौ, पुरता, होम । ३ अष्टौ, अष्टौ, अष्टौका
साया ।

अष्टादश (सं० त्रि०) अष्ट-यज्-लृच् अष्ट-यज्-लृच् ।
१ नागित, अष्टौनाबुद । नास्ति वेदा यत्, नञ्-
वद्बुद्धौ० । २ अष्टौ, अष्टौ, अष्टौ, जो अष्टौ न हो ।

अव्यक्तगणित (सं० त्रि०) वीजगणित, जन्त्रो-
मुक्तावला ।

अव्यक्तगति (सं० त्रि०) गुप्तरीतिसे गमन करने-
वाला, जो चुपके-चुपके जाता हो ।

अव्यक्तपद (सं० पु०) १ जिम पदका तास्वादि स्थानों
द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके, जैसे पशु पक्षियोंकी
बोली । (त्रि०) २ उच्चारणशून्य, गुरमन्त्र-
जो ।

अव्यक्तमार्ग, अज्ञानमार्ग देखी ।

अव्यक्तमूर्ति (सं० त्रि०) गुप्त रूप रखनेवाला,
जिसके अङ्ग देख न पड़े ।

अव्यक्तमूलप्रभव (सं० पु०) प्रभवत्वस्मात् प्र-
भूत्वादाने-अणु प्रभवः कारणं मूलञ्च तत् प्रभवयति
कर्मधा० ततः अव्यक्तं प्रधानं अविद्या वा मूलप्रभवो
यस्य, बहुव्री० । संसार-इच्छ, दुनियाका दरखत ।

अव्यक्तराग (सं० पु०) न व्यक्तः स्पष्टप्रतीतः रागो
रक्तिमा, नञ्-तत् । १ ईषद्वरक्तवर्ण, जो रङ्ग कुछ ज्ञान
हो । २ अक्षयवर्ण, लाल रङ्ग । 'अव्यक्तरागस्तवः' (५५२)
(त्रि०) अव्यक्तः रागो यस्य, बहुव्री० । ३ अक्षयवर्ण
विगिट, सुर्ष, लाल ।

अव्यक्तरागि (सं० स्त्री०) वीजगणितमें—अज्ञात
अङ्क वा अलचित परिमाण, नामान्तर अदद या
सिक्दार ।

अव्यक्तलक्षण (सं० पु०) शिव, जिन महादेवकी
वात मालूम न पड़े ।

अव्यक्तलिङ्ग (सं० स्त्री०) अव्यक्तव्य लिङ्गमनुमापकम् ।
१ भाष्यमतसिद्ध महत्त्वत्वादि । (त्रि०) अव्यक्तं लिङ्गं
चिह्नं यस्य, बहुव्री० । २ अव्यक्तविद्, जिसके
कोई निगान् मालूम न पड़े, अर्थात् जो पहिचाना
न जाय । न व्यक्तं दार्थिकत्वेन प्रकाशितं लिङ्गं यस्य,
बहुव्री० । गुप्ताश्रमयुक्त, योगोद्घाटाज्ञानमें रहनेवाला ।

अव्यक्तवर्कन् (सं० त्रि०) गुप्तमार्गास्तुयायी,
जिसकी चाल समझ न पड़े ।

अव्यक्तवाक् (सं० त्रि०) स्पष्ट रीतिसे न बोलने-
वाला, जो साफ-साफ बात न कहता हो ।

अव्यक्तवाक्य, अज्ञानवाक्य देखी ।

अव्यक्तसाम्य (सं० स्त्री०) वीजगणितके अतुसार

अव्यक्त रागि या वर्णका समीकरण, जो मित्रान
जन्त्रोमुक्तावलासे छिपी अददका हो ।

अव्यक्ता (सं० स्त्री०) छाया गोकर्षि, कालो अप-
राजिता ।

अव्यक्तादि (सं० त्रि०) अलचित आरम्भविगिट,
जिसका भागाङ्ग समझ न पड़े ।

अव्यक्तानुकरण (सं० पु०) शब्दका अस्फुट अनु-
करण, आवाजकी गोरमनफुजो नकल । जैसे मनुष्य
पवीरकी बोली साफ बोल नहीं सकता, परन्तु
उसकी नकल करके 'विनु कछां' कहता है ।

अव्यय (सं० त्रि०) १ ध्यानविगिट, ख्याल रखनेवाला,
जो इधर-उधर देखता न हो । २ स्थायी मात्र, मञ्जोदा,
ठण्डा, जो डावांडोल न हो । ३ मनुष्ट, वैपरवा ।

अव्यङ्ग (सं० स्त्री०) अक्षररङ्ग शृङ्गमिवाङ्गं यस्याः,
बहुव्री० । १ शूकगिम्बि, केशवः । (त्रि०) न विक्रमं
अङ्गं यस्य । नञ्-बहुव्री० । २ विकलाङ्गभिन्, पूर्व,
जो पूरे अङ्गसे युक्त हो । नञ्-तत् । ३ अव्यङ्ग,
छिपा हुआ । ४ शाकल्यीय शेर ब्राह्मणका धारणोप
पवित्रध्वज भेद । २०० अङ्गुल उत्तम घौर १२०
अङ्गुलका अव्यङ्ग मध्यम होता है । इसे पहन सूर्यकी
पूजा करनेसे अधिक पुण्य मिलता है । इसका भविष्य
यर्जन भविष्यपुराणके ब्राह्मणधर्ममें इस प्रकार लिखा है ।

“अव्यङ्गधारिणोन्मां पूजयन् दिवसदिम् ।

इहा व्यङ्गुन्मांशो बौद्धमगमयितः ॥

शिवः प्राह मन्मथं च भूय नववतीगुणम् ।

अथं बरीरदमन्मथः अविनी दुनिमलम् ॥

कुन एव सन्मथं बकाह न शक्तिः कृतः ।

अपतोय अदा पातं विमर्षं चैव शान्तिम् ॥

विमलापच मरकतशुभ्रार्थं विदुष्यम् ॥

(भविष्य० शास्त्रम् १०१ प०)

एक समय भगवान् श्रेष्ठव्यङ्गमूर्त्तिके पौत्र माव्य
अव्यङ्गधारण किये, स्य भगवान्की पूजा करने
हुए ब्राह्मणोंका देख, कौतूहलान्वित हो मुनिगान्धर्व
श्रेष्ठान्जोके समीपमें जा प्रणाम कर बोले,—
मुनिजसम ! यह अव्यङ्ग येठ क्या है ? इसकी उत्पत्ति
किससे हुई है ? बोले यह एकाक्षर पवित्र उठरता,
एवं कथं घोर किमं ब्रह्मो धारणं विद्या जाता

जदा त्रिम परिमाणया होता चौर व्यङ्ग्यं चो
 कलाया है ? मन्त्रके दम दण्डको मुनिकर मन्त्रिं भग
 वान् व्यामने जलर दिना, — मी व्यङ्ग्युका परिवर्तन
 कलाय कलाया है, मुनी। निवता, वायि, भाग, मन्त्रे,
 व्यङ्ग्युका, मन्, शक्यम प्रभुति दण्ड मन्त्रे। देवता चतु-
 क्रममे भगवान् श्रुतिके मन्त्रेमे व्याम करति है। उनमे
 वास्तुविमे तर्वा पधने एकवार श्रुतिय होता है,
 हिम पधने व्यामपर या मीष्ट दिवाकरको मन्-
 व्याम करके मन्त्रिमे भुयिम दयनूतदुत मन्त्र
 'व्यङ्ग्य' श्रुतिके मन्त्रेमे मन्त्रेमे किया। भग-
 वान् प्रभाकरमे भी मन्त्रेमे विमलताके भिषि उक्त
 व्यङ्ग्यको पधने मन्त्र भागमे वगि निदा। यह
 भागताके व्यङ्ग्ये उतुपय चौर भागु दाग धारण
 किया गया, पतपय श्रुतिके मन्त्रि रधनेमाने पुरुष
 श्रुतिके प्रमलताके विमे दमको धारण करति है। तत्र-
 विभागेमे भागक दधि होता है। दमके निज धारण
 करनेमे, श्रुति प्रमय चोति है। श्रुतिवाक्यको जो भीत्रक
 दधि धारण नहीं करति, ये मोरकोन पुत्रके पयोग्य एवं
 अविष्ट मन्त्रि ज्ञाति चौर श्रुतिके पुत्र नहीं मकति है।
 दधि चडात् ये श्रुति भगवान्को पुत्रने, तो रोरेय मरकमे
 पकति है। यह ज्ञानकर व्यङ्ग्यके विना श्रुतिवाक्यको
 मन्त्रि न ही, न चडा हो, चौर न पुत्रा करे पयोग्य
 पधमासमे उमको व्यङ्ग्यकीन नहीं रचना पाहिये।
 यह एक सर्वका बनवा जाता है। २०० व्यङ्ग्यका उचाम,
 १२० व्यङ्ग्यका मध्यम चौर १०० व्यङ्ग्यका उचाम है, दममे
 पधिक दम न रचना पाहिये। रमी पालितिका व्यङ्ग्य
 निमकमेमे बनवाया या। मध्यमायनामे भीत्रकीके
 १०० व्यङ्ग्यका भी हो सकता है। मन्त्रेमे पयोग्य
 धाम मन्त्रादि मोषदुक्त भी दमके विना पधित नहीं
 होता, कि दमके धारणमे रमी मन्त्र पधित की
 जाता है। एवं पधितमादि उमको सब सिदाये
 दम हो जाती है। है शक्य व्यङ्ग्य, पतितादा,
 धार, दम मन्त्रेमे पधयाने ज्ञाति है।

जदा व्यङ्ग्यमे पधयाने पधयाने पधयाने चौर पध-
 याने 'मुक्ती' खरने है। यह एक पधारका शुक होता,
 त्रिममे पधयानेके 'दमक' नामक पुत्रमे 'दामक'

या मन्त्रिमे पधयाने पधयाने है। दमे मन्त्रेमे पधयाने
 तैवार करति है। काटनेमे पधने पुत्राके पधयाने
 पनी, पध चौर पधने दुरीपर मन्त्रेमे मन्त्रेमे
 दिना है। 'पधयानेमे' या पधयानेमे मन्त्रेमे
 मन्त्रेमे मन्त्रेमे पनी मन्त्रेमे मन्त्रेमे चौर कर धाम-
 मन्त्रेमे पनी बनयो जाती है। किर कः पधयानेमे पध
 मन्त्रेमे दम चौर चौर मन्त्रेमे दम चौर रध विमो धिरे
 पर गाठ मन्त्रेमे है। उमके काट दाधने चौरके
 मन्त्रेमे एक विष्ट चौर धामो चौरके मन्त्रेमे दमका
 विष्ट जोरमे मन्त्रेमे जाता, त्रिममे मन्त्रेमे रधनेमे
 दोमे विष्ट मुक्तर पध शुक बनता चौर किर दमके
 निरिपर गाठ मन्त्रेमे दम हो जाता है। दमतर
 तैवार चोनेमे व्यङ्ग्य मन्त्रेमे कर्मकाण्डके विमे
 'दामक' पर रधति है।

- भारतीय पधे मन्त्रेमे त्रिम प्रकार पधयानेमे पध-
 नते चौर विना उमके विमो कर्मकाण्डके पधयाने
 नहीं चोति, रमी प्रकार मोर मन्त्रेमे श्रुतिवाक्य चौर
 पधयाने भी व्यङ्ग्यके विना पधयाने नहीं कर सकता।
- पधयाने (मं० वि०) मन्त्रेमे पधयानेमे, पुत्र,
 श्रुतिके, मन्त्रेमे, त्रिमके पधो पूरा रधे।
- पधयाने (मं० चो०) व्यङ्ग्य 'मोषदुक्त' दमका,
 बहुरी० पधयाने होय। मन्त्रेमे मन्त्रेमे पधो, किर
 कीके विमो व्यङ्ग्यमे विकार न हो।
- पधयाने (वे० वि०) पधयाने, मन्त्रे, जो मन्त्र-
 मोक्ष न हो।
- पधयाने (मं० चो०) मन्त्रेमे मन्त्रेमे मन्त्रेमे
 पधयाने 'श्रुति' मन्त्रेमे मन्त्रेमे मन्त्रेमे। १ मन्त्रेमे पधो, किर
 मन्त्रेमे (वि०) २ मन्त्रेमे मन्त्रेमे, त्रिमके चोरे
 मन्त्रेमे मन्त्रेमे न रधे। ३ मन्त्रेमे मन्त्रेमे, ४ मन्त्रेमे मन्त्रेमे मन्त्रेमे।
- पधयाने (मं० चो०) मन्त्रेमे मन्त्रेमे मन्त्रेमे मन्त्रेमे।
 १ मन्त्रेमे मन्त्रेमे, २ मन्त्रेमे मन्त्रेमे, मन्त्रेमे पधयाने।
- पधयाने (वे० चो०) १ मन्त्रेमे, पधयाने, बहुरी०
 मन्त्रेमे, २ पधयाने, मन्त्रेमे।
- पधयाने (मं० पु०) मन्त्रेमे मन्त्रेमे, १ मन्त्रेमे मन्त्रेमे,
 मन्त्रेमे मन्त्रेमे न रधता। (वि०) मन्त्रेमे मन्त्रेमे, २ मन्त्रेमे
 मन्त्रेमे, ३ मन्त्रेमे।

अव्यतिक्रमोप (स० त्रि०) वि-प्रति-कृ-त्, नञ्-
तत् । अक्षरार्थ, भिन्न, सुदा, जो मिला न हो ।

अव्यती (वै० स्त्री०) सपत्नीभिः सह पर्यायेण पति-
भागच्छ्रुति साधयती वि-प्रत-ई शोषादिकः । न तादृशीः
अव्यती । जो स्त्री सपत्नी सहित पतिके पास जाती
हो । 'नै चत्वे इति' अच् १०२३।५ ।

अव्यय (सं० पु०) न व्यथ्यते विभेति व्यय कर्तरि
अच् । १ सर्प । (स्त्री०) नास्ति व्यथा किमपि दुःखं
यस्याः सेवनेन, नञ्-बहुव्री० । २ हरीतकी, हर ।
३ सींठ । ४ पद्मचारिणी वृक्ष । (त्रि०) ५ व्यथा-शून्य ।

'अव्ययाद् धरितर्वा पतने निर्याधिपि च' (विच)

'अव्ययादिभिरा दमा धारटी पद्मचारिणी' (अचर)

अव्ययमान (वै० त्रि०) अस्थायी भावसे गमन न
करनेवाला, जो कांपता न हो ।

अव्ययय (सं० पु०) न व्यययन्ति अभि संशामिषु
व्यय (संशयामुगे इत् । अच् ३।१०) इत् । अथवा व्ययिरिति
स्त्रीध नाम, धारोह्य-ताडन-धन्यादिभिर्न क्रुध्यन्ती-
त्यर्थः, नञ्-तत् । १ घोड़ा । यह शब्द बहु वच-
नान्त है । 'अचन्दे हार्वेनेपदादौनि बहुवचनान्ति नामानि' (निरुक्त)

अव्यथा (सं० स्त्री०) न व्यथा नञ्-तत् । १ वा-
द्याका अभाव, बीमारीका न होना । (त्रि०) नञ्-
बहुव्री० । २ सींठ । ३ हरीतकी, हर । ४ पद्म-
चारिणी वृक्ष । ५ भांवला । ६ गोरखमुष्ठी ।

अव्ययि (वै० त्रि०) न व्ययते क्लिश्यति वाय-इत् ।
१ वायामुन्य, जिसे पीडा न रहे । २ दुःखमुन्य,
जो दुःखी न हो । ३ दुःख न देनेवाला । (स्त्री०)
४ अय्य, घोड़ा । "सहस्रव्ययिर्नमन्वात्" अच् ११११।१ ।

अव्ययिणी (सं० स्त्री०) १ पृथिवी, ज़मीन ।
२ रात्रि, रात ।

अव्ययिन् (सं० त्रि०) न व्ययते वाय वा इत् ।
नञ्-तत् । १ निर्भय, बैलौफ । २ वायामुन्य, जिसे
तकलीफ न रहे ।

अव्ययिष (सं० पु०-स्त्री०) न व्ययते, वाय-टिप् ।
१ अय्ये । २ समुद्र । 'अव्ययिषोऽभिषुहयोः' (विदात्मबोधरी)

अव्ययिणी (सं० स्त्री०) १ पृथिवी, ज़मीन ।
२ अर्धरात्र, आधीरात । 'अव्ययिणी धारणयोः' (विदात्मबोधरी)

अव्ययी (सं० पु०) अय्य, घोड़ा ।

अव्यय्य (सं० त्रि०) न व्यय्यते, वाय कर्तरि यत्
ततो नञ्-तत् । १ वायामुन्य, वेददं । २ दुःखित न
होनेवाला, जो रक्षीदा न हो ।

अव्यय्या (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर ।

अव्यया (सं० स्त्री०) दुष्टगिरावेचन, खराब नामका
चीरफाड़ ।

अव्ययान् (वै० त्रि०) ध्यासप्रध्यासरहित, निर्जोष,
सांस न लेनेवाला, वेदम ।

अव्ययपदेश (सं० त्रि०) न व्ययपदेशते विभेये-
षादिग्रन्थे, वि-प्रप-दिम कर्मणि प्ल्यात् ततो नञ्-तत् ।
१ सङ्ख्य-वाक्यमें प्रयोग किया न जानेवाला, जो उच्-
राया जा न सकता हो । २ पादेय किया न जाने-
वाला, जिसे डुकन दिया जा न सके । ३ पनर्वचनीय,
कहा न जा सकनेवाला । (स्त्री०) ४ न्याय मतमिद्ध
निर्विकल्प ज्ञान, जिस इत्थमें द्वितीयत्व न रहे ।
जाति गुण क्रियाका अन्य हेतुक निर्देश हो न सकनेमें
परमप्रको भी अव्ययपदेश कहते हैं ।

अव्ययपेक्षा (सं० स्त्री०) विभेयेण अपेक्षा वापेक्षा,
ततः अभावे नञ्-तत् । १ किसी पदमें दूसरे पदके
विभेय रूप सम्बन्धका अभाव, एक लफ्फुसे दूसरे
लफ्फुके मतलबका चलगाव । जैसे, 'राजाका बट्ट
घोर परिच्छेद'—यहां बट्ट घोर परिच्छेदका राजासे
सम्बन्ध है, किन्तु आपसमें दोनों अलग है । इसीमें
बट्ट घोर परिच्छेदमें अव्ययपेक्षा पातो है । (त्रि०)
नञ्-बहुव्री० । २ अपेक्षामुन्य, येनिश्चय, जो लगाव
रखता न हो ।

अव्यभिचारित (सं० त्रि०) अव्यभिचारितम्, नञ्-
तत् । व्यभिचारमुन्य, आचारगोषि पार्त्ता । साध्यके
अभावविशिष्ट पदार्थमें रहनेवालेकी व्यभिचारित घोर
साध्यके अभावविशिष्ट पदार्थमें न रहनेवालेकी अव्य-
भिचारित हेतु कहते हैं । जिनमें धर्म लोभोंमें अग्नि
रहता है । पतएव जिस हेतु पर्वतमें धूम देनें,
लमी हेतु पर्वतको अग्निविशिष्ट भी मानेंगे । इस
अगह पर्वत पच, अग्नि साध्य घोर धूम हेतु है ।
साध्यविशिष्ट पर्वतमें हो धूम रहता है । साध्यका

विभक्तिका लुक् नहीं होता। किन्तु उसके स्थानमें अम् आता है। यथा,—क्ष्णस्य समीपम् उपक्ष्णम्। यहाँ विभक्तिके स्थानमें अम् हो गया है। 'उपक्ष्णान् नञः।' क्ष्णके समीपसे चली गयी है। यहाँ पञ्चमी विभक्तिका लुक् एवं उसके स्थानमें अम् भी नहीं हुआ। पञ्चम्यन्त अकारान्त शब्दका ही रूप हुआ है। ततोऽपचयधोर्हन्। पा १४५२। अकारान्त अव्ययोभावको परस्वित ततोऽप्या एवं सप्तमीका बहुलभाव अर्थात् ततोऽप्या और सप्तमीके स्थानमें अम् होता, कभी ततोऽप्यान्त अकारान्त शब्दका ही रूप धारण करता, और कभी नित्य अम् आता है। यथा—अपदिग्मम् अपदिग्मिन्। अपदिग्मं अपदिग्मे। 'नञ्चपदपत्तुं सप्तम्यन्तप्रत्ययान्तो नियमधारः।' (विद्याल चौधरी)

अव्ययैत (सं पु०) यमकानुप्रासमेव। इसमें यमकाक्षरोंके बीच दूसरा पद नहीं पड़ता।

अव्ययै (सं पु०) नञ्-तत्। १ मफल, सुकीद, जो विकायदे न हो। २ सार्थक, यामानी, पुर-असर। अव्ययैक (सं त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। १ प्रिय, प्यारा, सुगमवार। २ मत्त, रास्त, सच्चा।

अव्ययवधान (सं स्त्री०) नञ्-तत्। १ अव्ययवधानका अभाव, फर्ककी अदममौजूदगी। २ नैक्य, कुर्ब, पडोस। (त्रि०) नास्ति अव्ययवधानं यस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ अव्ययवधानशून्य, भाड़ेसे खाली। ४ निकटस्थ, पासका।

अव्ययमाय (सं पु०) नियय उद्यमय अव्ययमायः। अभावे नञ्-तत्। १ निययका अभाव, यकोनका न होना। २ उद्यमका अभाव, अव्ययमायका न रहना। (त्रि०) नास्ति अव्ययमायो यस्य, नञ् बहुव्री०। ३ निययशून्य, उद्यम रहित, आनमी।

अव्ययमायिन् (सं त्रि०) न अव्ययस्यति वि-अव सो णिनि एच धात्वं युक् च, नञ्-तत्। १ उद्यमशून्य, निरहमी। २ अनुद्यत, आनमी, पुरुषार्थहीन। ३ निययशून्य।

अव्ययमायो, अव्ययमायिन् द्वौ।

अव्ययवस्था (सं स्त्री०) वि-अव-स्था अह्-टाप्, ततो नञ्-तत्। १ कर्तव्यकर्तव्यके नियमका अभाव,

यह करना और यह न करना चाहिये जैसे विचारका न होना। २ शास्त्रादि-विरुद्ध व्यवस्था, अव्ययि। (त्रि०) नास्ति अव्ययवस्था यस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ मर्यादाशून्य, विकायदा। ४ अव्ययित। ५ व्यतिरहित, चञ्चल।

अव्ययव्ययित (सं त्रि०) नञ्-तत्। १ शास्त्रादि मर्यादारहित, विमर्याद। २ अनियतरूप, अटिका-निका। ३ अस्थिर, चञ्चल।

अव्ययव्ययै (सं त्रि०) वि-अव-व्य-व्यत्, नञ्-तत्। जो व्यवहारके योग्य न हो। ब्रह्महत्यादि महापातक द्वारा कोई मनुष्य पतित होनेमें जब तक प्रायश्चित्त नहीं करता, तबतक अव्ययव्ययै रहता है। ऐसी अव्ययव्ययै उसका याजन, उसके साथ वेदपाठ और भोजनादि करना न चाहिये। किन्तु उस पतित व्यक्तिके प्रायश्चित्त करनेपर सविष्ट आतिथ्यासे उसके साथ पवित्र जनाश्रयमें ध्यान करके जन्मपूर्व नशान पट प्रक्षेप और कुटुम्बवाले उसे ग्रहण करेंगे। फिर उसका याजन, उसके साथ वेदपाठ और पढ़नेका तरह भोजनादि सब लोग कर सकेंगे। कोई कभी उसकी निन्दा न करेंगे। परन्तु बिना प्रायश्चित्त किये उसके साथ व्यवहार करना उचित नहीं।

"आव्ययै तु अव्ययै पूंङ्गुभ्यो नञ्।
तेषु चाहं प्रायश्चुः क्त्वा पुंषु जगाम्।" मनु ११।१००।
"एतन्निमित्तमिच्छेत्तन्मार्गं विचिन्तु वसाचरेण।
तन्निमित्तमार्गं न नृणाम्पि विचिन्तु ॥" मनु ११।१२०।

प्रायश्चित्तके बाद व्यवहारके विषयमें याज्ञवल्क्य-संहितामें ऐसा प्रमाणवाक्य निम्ना दृष्टा है,—

"आव्ययैरेतेनो पदप्रत्ययान्तं भव नृ।
आप्तोऽव्ययव्ययै नञ्-तत् प्रायेण।" शारदाम्भार-संहिता ३।१।१०।

विद्वान्मन्वरेने इमं श्लोकको ऐसी व्याख्या की है,—प्रायश्चित्त करनेमें अज्ञानजन्य पाप दूर होता है, फिर ज्ञानजन्य तथा कामजन्य पापका उपशुद्ध प्रायश्चित्त करनेसे दोषी मनुष्य हम संसारमें व्यवहारके योग्य हो जाता नहीं, परन्तु उसका पाप दूर नहीं होता। प्रायश्चित्तविधायक श्रुतिवचन द्वारा यही नियत हुआ है।

शूलपाणिका प्रकार प्रश्रेय करना असद्रवत जान पड़ता है।
 भव्यवहित (सं० त्रि०) वि-भव-धा-ल; नञ्-तत् । व्यवधान रहित, लगा हुआ । जिन दो द्रव्योंके बीच कोई वस्तु नहीं होता, उन्हें भव्यवहित कहा जाता है।
 भव्यवद्धत (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ व्यवहारसे बाहर, जो ईश्वरमार्गमें न आया हो । २ भोगादि द्वारा दूषित, जो काममें लगनेसे विगड़ा हो । ३ बोल-चालसे बाहर, जो बोलनेमें न आता हो ।
 भव्यवाय (सं० पु०) भवकाशका अभाव, संयोग, धक्केकी अदममौजूदगी, विमाल, पुरस्वतका न मिलना, समी रहनेकी क्षमता ।
 भव्यवसन (सं० स्त्री०) न वसनम्, नञ्-तत् । १ वसनाभाव, बुरी आदतकी अदममौजूदगी, अच्छी चाल । (त्रि०) नञ्-वहुव्री० । २ वसनरहित, बुरी आदत न रखनेवाला, परहेजगार, अच्छा, भला, जो बुरा काम करता न हो ।
 भव्यवसनिन् (सं० त्रि०) नञ्-तत् । वसनशून्य, वे देव, भला । (स्त्री०) भव्यवसनिनी ।
 भव्यवस्त (सं० त्रि०) न वस्तं विचित्तं विपर्यस्तं पृथग्भूतं धा, नञ्-तत् । १ विचित्त, जो धराया न हो । २ विपर्यस्त, जो विधरा न हो । ३ समस्त, समुच्च, जो टूटा-फूटा, सड़ा-गला या विगड़ा-विगड़ाया न हो । ४ अष्टयग्भूत, मिला हुआ, जो बल्य न हो ।
 भव्यवकुल (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ निराकुल, जो धराया न हो । २ स्वच्छन्द, आजाद, जो बंधा न हो । ३ स्वल्प, तन्दुल ।
 भव्यवहृत (सं० त्रि०) वि पा-ल-ह, नञ्-तत् । १ अप्रकाशित, जो जाहिर न हो । (स्त्री०) २ वेदान्त मतसे—अप्रकटीभूत एवं वीजरूप जगत्का कारण । ३ अज्ञान, नादानी । ४ सांख्यदि मतसे—प्रधान, मुख्य वस्तु ।
 भव्यव्या (सं० स्त्री०) व्याख्याका अभाव, वर्णकी स्वच्छताका अभाव, गोपन; बयान्को सफायीका न होना, पोशीदगी ।

भव्याख्यात (सं० त्रि०) व्याख्यारहित, शुभ, बे-बयान्, पोशीदा, जो खोसकर बताया न गया हो ।
 भव्याख्यान (सं० स्त्री०) व्याख्या देखो ।
 भव्याख्येय (सं० त्रि०) १ व्याख्याके अधोग्य, बयान्, जिसे कोई समझ न सके । २ व्याख्याकी आवश्यकता न रहनेवाला, सरल, आसान्, जिसके बयान् करनेकी जरूरत न पड़े ।
 भव्याघात (सं० त्रि०) १ व्याघातरहित, रोक न जानेवाला । २ समूचा, भरा हुआ, लगातार, जो टूटा-फूटा न हो ।
 भव्याज (सं० पु० स्त्री०) न व्राजम्, अभावे नञ्-तत् । १ अलका अभाव, धोकेकी अदममौजूदगी । "रदं विद्यायागमनोदरं वदः ।" (मङ्गलम्) २ ग्राह्यका अभाव, बदमासीकी अदममौजूदगी ।
 भव्यापक (सं० त्रि०) व्याप्नोति खुम्, ततो नञ्-तत् । १ व्यापक न होनेवाला, जो मामूर न हो । २ परिच्छिन्न, घिरा हुआ । ३ इयत्ता-विगिट, महदूद ।
 भव्यापकता (सं० स्त्री०) व्यापकता देखो ।
 भव्यापकत्व (सं० स्त्री०) १ व्यापक न होनेका विषय, मामूर न होनेकी बात ।
 भव्यापन्न (सं० त्रि०) लीवित, जिन्दा, जो मरा न हो ।
 भव्यापार (सं० पु०) न व्यापारः, अभावे नञ्-तत् । १ व्यापारका अभाव, कामकी अदममौजूदगी, धिकारी । २ अकार्य, जो अपना काम न हो । (त्रि०) नञ्-वहुव्री० । ३ व्यापारशून्य, धिकार । अकार्य देखो ।
 भव्यापारी (सं० पु०) १ अद्यमरहित, धिकार । २ सांख्यमतमें—क्रियाजनक संयोगसे रहित, जो काम कर न सकता हो ।
 भव्यापिता (सं० स्त्री०) व्यापकता देखो ।
 भव्यापित्व (सं० स्त्री०) व्यापकता देखो ।
 भव्यापिन् (सं० त्रि०) न व्राप्नोति, वि पाय-पिन्, नञ्-तत् । १ अत्रापक, जो गयाया न हो । २ परिच्छिन्न, घिरा हुआ । ३ इयत्ता-विगिट, झोटा मोटा ।

१ व्याघातका अभाव, रोकका न पड़ना । २ याग्युष
विशेष, किसी किस्मकी कृषानुदायी ।
अध्याहारिन् (सं० वि०) उच्चारण न करनेवाला,
जो बोलता न हो ।
अध्याहित (सं० वि०) निर्द्वन्द्व, निर्दिष्टाद, वैभ-
गड़ा, जिमपे कोई भंगड़ा न उठे ।
अध्यच्छिन्न (सं० वि०) अध्याहत, वैरोक ।
अध्युत्थिति (सं० स्त्री०) न विशेषण उत्थितिः नञ्-
तत् । १ उत्थिका अभाव, न उठनेकी बात । २ वाक्य-
का गुण विशेष ।
अध्युत्पन्न (सं० वि०) न व्युत्पन्नम्, नञ्-तत् ।
१ अनभिन्न, अतुल्यशून्य । २ शब्दकी पदका अर्थ न
समझनेवाला, जिसे लुमलेका मतलब समझ न पड़े ।
३ अर्थेयाकरण, व्याकरणन जाननेवाला । ४ व्युत्पत्ति
या सिद्धिशून्य, जो धन-चुन सकता न हो ।
अध्युष्ट (सं० वि०) प्रत्युक्तं सट्टन न चमकनेवाला,
जो तड़केकी तरह रौशन् न हो ।
अध्युक्ति (सं० स्त्री०) सफलता, कामयाबी, न
सूक्ष्मेकी हालत ।
अध्येयत् (सं० वि०) अन्तर्धान न होनेवाला, जो
गुम पड़ता न हो ।
अत्रय (सं० वि०) नास्ति त्रयो यस्य, नञ्-बहुव्री० ।
१ त्रयगून्य, वेदांग । २ घटादि रहित, शून्य ।
अत्रयशुद्ध (सं० पु०) नेत्रके ज्ञाप्यभागका रोग-
विशेष, जो बीमारी खांखकी स्याहीमें हो । यह अमि-
ष्यन्दन, ज्वानायुक्त, शब्देन्दुकुन्दसंज्ञक वर्षे, नभस्य तनु-
मेघाकृति और सुसाध्य होता है । (४२५)
अत्रत (सं० वि०) नास्ति त्रतं त्रियमो यस्य, नञ्-
बहुव्री० । १ शास्त्रविहित नियमगून्य, मञ्जुहवी काम
न करनेवाला । २ न्यायगून्य, उद्यत, पापी, शिष्टायदा,
नाश्रुतानुहरदार, दुरा । (पु०) १ जैनमतमें
व्रतका त्याग । यह पांच प्रकारसे होता है,—हत्या,
असत्य भाषण, अदत्तदान, ब्रह्मचर्यत्याग और परिग्रह ।
अत्रत्व (सं० वि०) व्रतय दितं यत्, नञ्-तत् ।
१ व्रतकाचरमें अनाचरणीय, जो व्रतमें किया न जाता
है । (स्त्री०) २ व्रतका दोष ।

अत्रद्वय (सं० स्त्री०) ब्रह्मणि वेदे साधु धात्वर्थे
यत् ब्रह्मद्वयं वेदमिदं कर्म सा विद्वान् कर्ता भूतानोऽनु-
सर्भूत हिंसाभाववर्यं तत्तद्व्यगम्, माहृग्ये नञ्-
तत् । नात्यविषयकी अवधोक्ति, तमाद्येन न मारनेकी
बात । 'अत्रद्वयमत्रयो' (अत्र)
"अत्रद्वयमत्रयो" (अत्र)
अत्राजिन् (सं० वि०) साधुयत् अत्रमण न करने-
वाला, जो फकीरकी तरह घूमता न हो ।
अत्रात्य (सं० पु०) अत्रात्य न होनेवाला पुरुष, जो
दोहशसंस्कारसे युक्त हो ।
अत्रयन (सं० वि०) प्रथम, पहना, जो सबसे पहना
हो । २ अर्थ, वड़ा, सबसे अच्छा । (पु०)
३ प्रारभ, आगाज, शुरु ।
अत्रयलन (सं० वि०) प्रथमतः, पहली-पहल,
सबसे पहना ।
अत्रयुक्त (सं० स्त्री०-पु०) न शुकुनम्, अत्रयुक्तो
नञ्-तत् । दुर्निमित्त, अनिष्टघटक काकादि दग्नं,
फाल-वद, दुरा शिगून । यह दो प्रकारका होता है,
साधारण और असाधारण । हममें अस्त्रापातादि
साधारण और काकादि दग्नं असाधारण है । हमारे
देगमें कहीं जाते या कोई कार्य आरम्भ करने समय
होकर होना, खाली घड़ेका देखना आदि अत्रयुक्त,
फिर भरे घड़े मिनना, वाजारसे मीठा लिये पाद-
मीका पाना आदि शुकुन समझा जाता है ।
अत्रयुक्ती (सं० स्त्री०) अत्रयति पापं यत्तो
ध्यात्रोति, अत्र-अच्-टाप् अत्रा; कुक्षयति जलमाच्छा-
दयति, कुक्ष भुरा० णिच् अच् णिच् णोपः गीरादि०
होपु कुक्षी; अत्रा वासो कुक्षी षिति विभेदपयो
कर्मधा; पूर्वपदस्य पुं वदभावः । पानीयोपरिच हच,
जलकुक्षी, ताकापाना ।
अत्रय (सं० वि०) अत्रोय्य, अत्रम, नाकात्रिम,
नामुकम्बिल, ताकूत न रखनेवाला ।
अत्रयता (सं० स्त्री०) अत्रयते ।
अत्रयत्व (सं० स्त्री०) अत्रोय्यता, अत्रयता, निर्ध-
रता, अत्रयता, कमजोरी नाकाबिसियत, ताकूत न
रखनेकी हालत ।

पयसायी, चन्द्रः २५०।

पयसात (सं० त्रि०) न पयसम्, नञ्-तत्। परि-
क्षिप्त, महद्दृष्ट, जो ममाया न हो।

पयसाति (सं० स्त्री०) न पयसिः, पभावे नञ्-तत्।

पयसातिका पभाय, मासूर न होनेकी यात। चन्द्रः २५०।

पयसाय (सं० त्रि०) १ वयाय न होनेवाला,

जिममें युग न मके। २ मं पूर्ण विषयमें प्रयत्न, जो

हर हानमें लग न मके। ३ पद्भुत, निराशा, युग।

(पया०) ४ वयास न होके, विधुमें।

पयसाय्यवृत्ति (सं० त्रि०) पयसाय्य सर्वावच्छेद-

मयाय्य वृत्तिः स्थितिर्यस्य, बहुव्री०। चन्द्रः २५०।

इत्यर्थः इति (मत्प्रभाष्य)। निज अधिकरणके अंग

विशेष वा काल विशेषमें स्थित पदार्थ, जो पदार्थ

अधिकरणदिमें वरापक न रहता हो। जैसे घट और

उसका संयोग ब्रह्मके मय स्थानमें जैसे ही आत्मानमें

ज्ञान भी सर्वदा भरा नहीं रहता। अतएव स्वाधि-

करणमें अंगभेद और कालभेदसे ही संयोगादि रहते

हैं, इसीमें उसका नाम पयसाय्यवृत्ति है। एवं वृत्तिके

अंग कथित संयोग है, किन्तु मूलमें नहीं,—इसे दैयिक

पयसाय्यवृत्ति कहते हैं। आत्मानमें इस समय सुखादि

हैं, परन्तु दूसरे समय नहीं रहते—यह भी पयसाय्य-

वृत्ति कहा जाता है।

अतएव देग और काल व्याय्यवृत्तिके नियामक

हैं। उनमें देगमें रहनेसे देग, वा कभी काल भी

उसका अवच्छेदक होछ है, जैसे गोठमें इस समय

गो हैं; यहाँ गोठ और समय ये दोनों ही गो अव-

स्थिति संयोगके नियामक होते हैं। एवं इस समय

आत्मानमें सुखादि हैं, यहाँ कालस्थित पदार्थ जो सुखादि

हैं, उनका नियामक प्रभुमारूप देग हुआ। इसीसे

संयोग विभागादिरूप जो अध्याय्यवृत्ति है, वह दैयिक

और कालिक है। उन्हीं तरह आत्मानमें सुख दुःख

इत्यादि देग यत्न धर्म अधर्म भावनाइय संस्कार देहाव-

च्छेदमें रहनेपर भी घटावच्छेदमें नहीं रहते एवं

आत्मानमें भी सर्वदा नहीं रहते, इसलिये ये अध्याय्य

वृत्ति हैं, एवं ब्रह्म जिस देग और जिस कालमें रहता,

वही देग और वही काल उस शब्दका नियामक

होता है। गत्यादि भी कालिक अध्याय्यवृत्ति है,

ये स्वाधिकरणमें ही उत्पत्तिकालमें नहीं रहते।

नैयायिक लोग कहते हैं, कि घटादिके उत्पत्तिकालमें

गत्यादि नहीं रहता। उसके बाद उसकी उत्पत्ति

होती है। फिर वही गत्यादि प्रलयपर परमात्मानमें भी

नहीं रहता। अतएव वह अध्याय्यवृत्ति है। संयोग

सम्बन्धमें घटादि भी उसी तरह दैयिक एवं कालिक

अध्याय्यवृत्ति है।

अध्यायत (सं० त्रि०) अनधिकृत, टिका हुआ, जो

हीना न गया हो।

अध्यायाम (सं० पु०) न वयायामः, नञ्-तत्।

१ वयायामका अभाव, कसरतकी पदममोजुदगी।

२ विगैयरूप विस्तारका अभाव, बड़े जैसापका

न रहना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ परि-

त्यमादि व्यापारगून्य, कसरत योगरहके काममें

खाली।

अध्यावर्तक (सं० त्रि०) न व्यावर्तयति इतरेभ्यो

निवारयति; वि-पा-वृत्त-णिच्-वृत् लृ, णिच्-लोपः, ततो

नञ्-तत्। १ अज्ञतनिवारण, निवारण न करनेवाला,

जो रकता न हो। २ अन्यसे भेद न करनेवाला, जो

सबको बराबर समझता हो।

अध्यावर्तक (सं० स्त्री०) वि-पा-वृत्त-णिच्-वृत् लृ,

लोपः ततो नञ्-तत्। १ अन्यको निवारणका न करना,

दूसरेको न रोकना। २ प्रत्यावर्तनका अभाव, वापस

न आनेको हालत। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ व्या-

वृत्तिगून्य, अन्यके निवारणमें शून्य, वापस न आने-

वाला, जिसे कोई न रोक।

अध्यावृत्त (सं० त्रि०) १ संयुक्त, लगा हुआ।

२ जैसेका तैसा, जो उलटा-सुलटा न हो।

अध्यावृत्त (सं० स्त्री०) न व्यावृत्तम्, नञ्-तत्।

१ व्याघातका अभाव, रोकका न लगना। (त्रि०)

नञ्-बहुव्री०। २ व्याघातगून्य, धरोक। व्यावृत्त

मिथ्याचर्क तत्र भवति। ३ सत्यविगिर, सचा, जो

भ्रूटान न हो। ४ नूतन, नया। ५ इत्याद्य न होने-

वाला, जो मातृभेद न रहे।

अध्यावृत्तत्व (सं० स्त्री०) अध्यावृत्तत्वं भावः ख।

१ व्याघातका अभाव, शोकका न पड़ना। २ यागगुण विशेष, किसी किष्काकी लवानुदाभी।

अध्याहारिन् (सं० त्रि०) उच्चारण न करनेवाला, जो बोलता न हो।

अध्याहित (सं० त्रि०) निर्द्वन्द्व, निर्विधाद, धैर्य-गड़ा, जिसमें कोई भंगड़ा न उठे।

अध्वच्छिन्न (सं० टि०) अध्वहृत, शिरोक।

अध्वलिति (सं० स्त्री०) न विशेषेण उल्लिखितः नञ्-तत्। १ उल्लिखित अभाव, न उठनेकी बात। २ वाक्य-का गुण विशेष।

अध्वस्यन्न (सं० त्रि०) न अध्वस्यन्नम्, नञ्-तत्।

१ अन्नभिक्ष, अन्नभक्षणम्। २ शब्दके पदका अर्थ न समझनेवाला, जिसे लुप्तलिका मतलब समझ न पड़े।

३ अध्वेयाकरण, व्याकरण न जाननेवाला। ४ अध्वस्यत्पत्ति या सिद्धिग्रन्थ, जो धन-धुन सकता न हो।

अध्वष्ट (वै० त्रि०) प्रत्ययके सदृश न समझनेवाला, जो तड़केकी तरह शैथिल्य न हो।

अध्वष्टि (वै० स्त्री०) अफलता, कामयाबी, न धुकनेकी क्षमता।

अध्वेष्यत् (वै० त्रि०) अन्तर्धान न होनेवाला, जो गुप्त पड़ता न हो।

अध्वण (सं० त्रि०) नास्ति ध्वणो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ ध्वणग्रन्थ, वेदांग। २ अन्तादि रहित, वैजृम्भ।

अध्वणशुक्ल (सं० पु०) नेत्रके लक्ष्यभागका रोग-विशेष, जो बीमारी आँखकी स्याहीमें हो। यह अमि-थ्यन्दन, ज्वानाशुक्ल, शङ्खेन्दुकुन्दसदृश वर्ण, नमस्य तनु-मीक्षासति पीर सुसाध्य होता है। (४५५)

अध्वत (सं० वि०) नास्ति ध्वतं नियमो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ शास्त्रविहित नियमग्रन्थ, मञ्जुवैकी काम न करनेवाला। २ न्यायग्रन्थ, उद्धत, पापी, वैजायदा, नाफरमानुवरदार, बुरा। (पु०) ३ कौनमतसे ध्वतका त्याग। यह यांच प्रकारसे होता है,—हत्या, असत्य भाषण, अदत्तदान, ब्रह्मचर्यत्याग पीर परिषद।

अध्वत् (सं० त्रि०) ध्वत्तया धितं यत्, नञ्-तत्। १ ध्वतकाकर्म अगाधपर्याय, जो ध्वतमें किया न जाता हो। (स्त्री०) २ ध्वतका दोष।

अध्वत् (सं० स्त्री०) अध्वत्तया धितं यत्, नञ्-तत्। १ ध्वतकाकर्म अगाधपर्याय, जो ध्वतमें किया न जाता हो। (स्त्री०) २ ध्वतका दोष।

“अध्वत्तया धितं यत्।” (४५५)

अध्वजिन् (सं० त्रि०) साधुवत् भ्रमण न करने-वाला, जो फकीरकी तरह घूमता न हो।

अध्वत् (सं० पु०) ध्वत्तया न होनेवाला पुरुष, जो पोढ़गर्भकारसे शुद्ध हो।

अध्वन (सं० वि०) प्रथम, पहला, जो सबसे धामे हो। २ थोड़ा, बड़ा, सबसे अच्छा। (पु०) ३ धारण, धारा, शर।

अध्वस्यन् (सं० त्रि० वि०) प्रथमतः, पहलसे-पहल, सबसे धामे।

अध्वकुन (सं० स्त्री०-पु०) न गजकुनम्, अग्रागच्छी नञ्-तत्। दुर्निमित्त, अनिष्टसूचक काकादि दर्शन, फाल-वद, बुरा शिष्टम्। यह दो प्रकारका होता है, साधारण पीर असाधारण। इसमें लक्षापातादि साधारण पीर काकादि दर्शन असाधारण है। हमारे देशमें कहीं जाते या कोई कार्य धारण करते समय धौक होना, खाली घड़ेका देखना पादि अध्वकुन, फिर भरे घड़े मिलना, बाजारमें मीदा नियो पाद-मीका धाना पादि गजकुन समझा जाता है।

अध्वकुम्भी (सं० स्त्री०) अद्याति पाय्य सर्वतो ध्याप्रोति, अग-अच्-टाप् अया; कुम्भयति अणमाच्छा-दयति, कुम्भ शुरा० णिच् अच् णिच् ङीप् गौरादि० ङीप् कुम्भी; अया धासी कुम्भी वेति विगेषणयो कर्मधा; पूर्वपदस्य पूर्वभावात्। पानीयोपरिज हृष, अणकुम्भी, ताकापाना।

अध्वक (सं० त्रि०) अद्योग्य, अद्यम, नाकाविव, नामुक्तिवत्, ताकत न रखनेवाला।

अध्वकता (सं० स्त्री०) अद्यम शरीर।

अध्वकत् (सं० स्त्री०) अद्योग्यता, अद्यमता, निर्ध-मता, अद्यमयता, कमजोरी नाकाविवियत, ताकत न रखनेकी क्षमता।

अशक्ति (सं० स्त्री०) अयोग्यता, निर्धनता, मनु-
मकता, नाकाबिनियत, कमजोरी, नामदी। सांप्य-
मतमें—दृष्टि एवं इन्द्रियके विषयमें अशक्ति नाकाब
हो जानिकी भी अशक्ति कहते हैं। यह अशक्ति अहा-
याम प्रकारकी होती है,—ग्यारह इन्द्रिय घोर सत्रह
दृष्टिकी। दृष्टिकी सत्रह अशक्तिमें नव तृप्ति घोर घाट
मिष्टिकी अशक्ति पाती है।

अशय (सं० स्त्री०) न शयम्, शक-यत्, नञ्-तत्।
१ असाध्य, असम्भव, गुरुसुमकिन, जो यत्न न सकता
हो। २ अकरणीय, किया न जानेवाला। (पु०)
३ काव्यामदार विग्रह। इसमें वाधा यत्न किसी
कार्यके हो न सकनेका भाव देखाते हैं।

अशयार्थ (सं० स्त्री०) निष्कृष्टयोजन, प्रभावगून्य,
शेषायदा, वेतासीर, लाघामित्त, जिनमें काम न बने।

अशय—ग्रन्थिपुराण रचयिता प्राचीन संस्कृत कवि।

अशय (सं० स्त्री०) १ निर्भय, निर्द्वन्द्व, श्रेष्ठोष्, जिनमें कोई डर न रहे। २ रक्षित, निश्चित, महफूज, पक्का।

“निपट निरदुःख अशय चन्द्रः।” (४५वी)

अशय (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ संग-
यका अभाव, शकको अदममौजूदगी। २ अयका
अभाव, श्रौणकी अदममौजूदगी।

अशयित (सं० स्त्री०) शक्ति-तत्, नञ्-तत्। १ अ-
भीत, श्रौण न खाये हुआ। २ अन्दर रहित, शैयक,
पक्का।

अशय (सं० स्त्री०) पुण्यात्मा, नेक, भला, जो बुरा
न हो।

अशय (सं० पु०) न शयः कर्मणि, नञ्-तत्।
१ अन्दर। २ मित्र, दोस्त। ३ युधिष्ठिर। (स्त्री०)
नास्ति शयःशय्यं, नञ्-वद्भूती०। शय रक्षित, वेदुशयन्,
जिन किसीसे दुश्मनी न रहे।

अशय (सं० पु०) १ कैककर मारनेका पत्थर।
२ शिघ्र, शब्दस।

अशन (सं० स्त्री०) अश्न-न्त्युः। (पु०) अश्न-न्त्युः।
१ पीतमाल वृक्ष। साधारण शोसवालेमें इसे आसनका
पेड़ कहते हैं। असन जैसा दन्तार सकारका भी प्रयोग

होता है। २ व्यासि। ३ भोजन। कर्मणि-न्त्युः।
४ भोज्य। (स्त्री०) ५ अश्न।

आसन विशेषसे अनेक प्रकारके वृक्ष अशन वा
आसन नामसे प्रसिद्ध हैं। यथा—(*Pterocarpus*
Marsupium) इसका मारवाड़ी नाम आसन है।
हिन्दूमें मज्ज घोर उडिया भाषामें इसे पियामान कहते
हैं। इसका पेड़ बहुत बड़ा होता है। संयुक्तप्रदेशमें
बांदा प्रश्रुतिसे उत्तर यह बहुत पैदा होता है।
अपरकी लकड़ी सूरी, काले दाग पाने, अत्यन्त
कठिन और स्यायी होती है। पक्की आसनकी लक-
ड़ीमें पालिग अच्छी लगती है। इसके भीतरकी लक-
ड़ीमें नाल दृढ़ रहता, लकड़ी भोग जाने वा
कचो रहनेपर उसमें पीला दाग पड़ जाता है।
इसकी लकड़ीके दरपाने, त्रिङ्कियां, काड़ियां, भीकाये,
गाड़ियां पादि बनती हैं। रेलगाड़ीके त्रिपर बसा-
नेमें यह बहुत काम पाता है।

(*Terminalia tomentosa*) इसे हिन्दूमें आसन
कहते हैं। इसका बंगला नाम भी आसन वा पिया-
सान है। पश्चाद, दक्षिण भारतवर्ष और मध्यदेशमें
यह बहुत उत्पन्न होता है। इसके अपरकी लकड़ी
कुछ मफेद और लाल होती एवं भीतरकी लकड़ी सूरी
अच्छी, कठिन, और लहरदार रेखा अक्षित रहती
है। इसकी पक्की हुई लकड़ीमें पालिग अच्छी मालूम
देती है। सब लोग इसे ‘काला आसन’ कहते हैं।

(*Populus ciliata*) इसका पश्चाधी नाम
सफेदा, आसन इत्यादि है। शिमला पहाड़पर इसे
केतुन और नेपाली ‘बहोकाठ’ कहते हैं। इसका पेड़
बड़ा होता है। लकड़ी धूमर वर्ण, अत्यन्त और
कामल होती है।

(*Briedelia retusa*) इसका भी मारवाड़ी नाम
आसन है। पश्चादमें इसे पापर कहते हैं। अशय,
अशय, दक्षिण भारत एवं मध्यदेशमें यह बहुत पैदा
होता है। इसकी लकड़ी धूमर रंगकी होती और
उसमें पालिग अच्छी लगती है।

अशनक, अशनक (सं० पु०) अशन पुष्पाकार शाय-
विशेष, अशनके फूल-जैसा धान।

अशनकृत (वै० त्रि०) भोजन बनाते हुआ, जो खाना पका रहा हो ।

अशनपति (वै० पु०) भोजनका प्रभु, सुराकका मालिक ।

अशनपर्णी (सं० स्त्री०) अशनस्य पीतमानस्य पर्णमिष पर्णमस्याः ; बहुव्री० पर्णान्तिजातित्वात् डीप् ।
१ विजयसार । २ गोकर्णिलता, अपराजिता ।

अशनपुष्य (सं० पु०) अशनपुष्याकारशालि, अशनाके फूल-जैमा घान ।

अशनमल्लिका (सं० स्त्री०) शास्त्रोक्ता, सामान्य अपराजिता ।

अशनवत् (वै० त्रि०) भोजन रखनेवाला, जिसके पास सुराक रहे ।

अशना (सं० स्त्री०) अशनमिच्छति; अशन इच्छार्थं वषच् प्रयो० अशनाय; ततः क्विपः सर्वाभावः अकारपकारयोलोपथ । १ भोजनेच्छा, खानेकी खाहिश ।
२ शक्त निषाया, सफेद सेम ।

अशनाया (सं० स्त्री०) अशनमिच्छति, अशन इच्छार्थं वषच् प्रयो० अशनाय; ततः अ-टाप् । १ भोजनेच्छा, खानेकी खाहिश । “अशनायाः वनरिभ्याम्” (मड) २ शक्तनिषाया, सफेद सेम ।

अशनायित (सं० त्रि०) अशनमिच्छति; अशन-वषच् प्रयो० अशनाय, कर्तरि क्त्वा इट् अती लोपः ।
१ भोजनेच्छायुक्त, खानेकी खाहिश रखनेवाला ।
२ सुधित, भूखा । (स्त्री०) भायि क्त्वा । १ भोजनेच्छा, खानेकी खाहिश, भूष ।

अशनायुक्त (सं० त्रि०) अशनां भोक्तुमिच्छां याति प्राप्नोति, अशनाया-क्त्वा अकारलोपः ततः स्वार्ये कन् ।
भोजनेच्छायुक्त, खानेका खाहिशमन्द ।

अशनि (सं० पु० स्त्री०) अशुते व्याप्नोति तेजसा विश्रम, अशुत्थासौ अशि । १ शीघ्रोत्पन्न तेज, बाद-लमे निकली चमक । २ इन्द्र । ३ अनुयाज, अन्तिम यज्ञ । ४ इन्द्रका अक्ष । ५ उल्का विगेष । ६ विद्युत् ।
७ अग्नि । ८ विद्युदग्नि । ९ हीरक, हीरा

‘अशनिः क्षीपुःशयोः क्षाचकान्यां अशरिभिः’ (मनोरमा)

- भागवतके पठस्काधर्मैः सिद्धा है,—इन्द्रने हस्ता-

सुरकी मारनेके लिये दधीचि मुनिका अग्नि लेकर विभ्रकमसि अग्नि यनवाया था ।

अशनिप्रभ (सं० पु०) राक्षस विगेष, किसी आदमखोरका नाम ।

अशनिमत् (वै० त्रि०) विद्युत् फेकनेवाला, जो बिजलीसे भरा हो ।

अशनीय (सं० त्रि०) अशनके योग्य, भोजनके उप-युक्त, खाने लायक ।

अशपत् (वै० त्रि०) गाप न देते हुआ, जो काम न रहा हो ।

अशब्द (सं० पु०) नञ्-तत् । १ शब्दभिय अर्थ, लक्ष्मसे जुदा मानी । २ वाच्य, बोला ठोला । (त्रि०) नास्ति शब्दो वेदादौ वाचकशब्दो वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । ३ शब्दहीन, धावाङ्गने खाली ।

अशम् (वै० अथ०) अशुयनतामे, वैश्वेत्वाफियत्, तुक्मान्तम् ।

अशम (सं० पु०) अशमन, अशान्ति, भद्रक, लोम खुरीय, बेकरारी ।

अशम्भु (सं० पु०) अशम, अशमन, सुरारि ।

अशरण (सं० त्रि०) अरण्यगम्य, शैपनाह, जिसके कोई बचाव न रहे ।

अशरणी (फा० स्त्री०) १ मोहर, माहरिन, गिनी । यह सिक्का मोनेका बनता था । २ पुष्यविगेष, गुल्म-अशरणी । यह पीला होता है ।

अशराफ (अ० वि०) भद्र, भला, शरीफ, जो बद-माय न हो ।

अशरीर (सं० त्रि०) आदि शरीरं तदभिमानो वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ देहगम्य, गैरमुजष्टिम, जो जिध न रहता हो । (पु०) २ परमात्मा । ३ शरीरका अभिमान न रहनेवाले जीवभूत शक्त-नारदादि । ४ मोर्मांशक देवमात्र । ५ कामदेव ।
अशरीरत्व (सं० स्त्री०) शरीरस्य भावः त्व । १ शरीर-सम्बन्ध-राहित्य, जिसके तात्त्विकता न रहना ।
२ मोक्ष, जीने-मरनेसे छुटकारा ।

अशरीरिन् (सं० त्रि०) देहगम्य, गैरमुजष्टिम, जिसके जिध न रहे ।

पशर्म, पशर्म-दो।

पशर्मन् (सं० स्त्री०) विरोधे नञ्-तत् । १ पशुप, दुःख, दर्द, तक्रलीफ । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ सुषुम्न्य, दुःखी, कमपत्त, तक्रलीफ पानेवासा । पशम् (वै० त्रि०) पागोर्वाट न देनेवाना, पशुभ-विनाश, प्रशंसा न करनेवासा, बटप्राङ, बटदुवा देनेवासा, जो गारीफ करता न हो ।

पशम्ना (वै० त्रि०) पशुप, पशुप, जो पशुप न हो ।

पशम्नवार (वै० त्रि०) १ पशुपनीय कोपसे सम्पत्, जिमके पाम वयान्मे बाहर पशुपाना रहै । २ स्वेषामे धन देनेवाना, जो धेमागे दीनत वपु-गता हो ।

पशम्नि (वै० स्त्री०) १ गाप, बटदुवा । २ गाप देनेवानो, जो बटदुवा देतो हो ।

पशम्निधन् (वै० त्रि०) गाप छोड़नेवाना, जो बटदुवाको रद कर देता हो ।

पशम्ना (सं० त्रि०) गशरचित, वैद्यधियार, जो तनवार यगोरह न बांधे हो ।

पशापा, पशापा-दो।

पशापा (सं० स्त्री०) नाशित गापा यखा; नञ्-बहुव्री० । १ शूलीखण, सोमा घाम । २ शाखाशून्य मता, जिम बेलमें छानि न रहै । नारियल, ताड़ पौर पञ्जरको पशापा कह सकते हैं ।

पशान्त (सं० त्रि०) न गान्तम्, विरोधे नञ्-तत् । १ दुःख, पशन्तुट, पन्थ, भयहर, नापुग, पशुपार, सङ्घनी, पीपनाक, जो ठण्डा न हो । २ प-विरत, सन्देहयुक्त, बेधैत, जिहमन्ध, जो घबरा रहा हो । ३ पशार्थिक, वेमङ्गल, जो पवित्र न हो ।

पशान्ता (सं० स्त्री०) शान्त न होनेका भाव, शमताराहित्य, शोग पुरोग, भङ्गभङ्गिवापन ।

पशान्ति (सं० स्त्री०) पशामे नञ्-तत् । १ ग-निका पशाम, पशुपता । २ शमताका पशाम, पशिर-ता, हनपल । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । ३ शमता-शून्य, सद्दवाज ।

पशान्तिन (सं० वि०) प्रगल्भ, ठोठ, निर्भय ।

पशान्तिता (सं० स्त्री०) धृढता, टिठार ।

पशामत (सं० त्रि०) न गाम्भतं नञ्-तत् । १ प-नित्य, उत्पत्तिविनागमगानो, पैदा पौर गाम होने-वासा । २ पशिर, हरवक्त न टहरनेवाना ।

पशामन (सं० स्त्री०) पशामे नञ्-तत् । १ शाम-नका पशाम, दुःखमरानोकी पदममोजुदगी । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ शामनशून्य ।

पशामायेदनीय (सं० पु०) जैनशास्त्रानुसार कर्म-विशेष । इमके प्रादुर्भावे दुःखका पशुपव होता है ।

पशाम्य (सं० त्रि०) गाम-वापुषः स्यत् नञ्-तत् । गामन करनेके पशामव, जिमको किसी प्रकार गामन किया न जा सके ।

पशामित (सं० त्रि०) न गमितम्, विरोधे नञ्-तत् । १ गित्याशून्य, जो गित्ता न पाया हो, वेपदा-निगा । २ पशिवीत, पशमट, पनाङ्ग, गंवार, सूर्व, वेवकु, फ । ३ गति नैपुण्यहीन, जो पच्छी पाल न चलता हो ।

पशामि (सं० त्रि०) पश-कर्मणि-श । १ भचित, खाया हुआ । कतेरि-श । २ भोजनमे खस, पाछदा । भावे शः (स्त्री०) ३ भक्षण, खाना ।

पशामि (सं० पु०) पश संसृती (पशिरदित्य लोकी । पशुप-१०) इति इव । पौर, चौर । पशामे दे-भंछाने, पश भोजने कर्मणि इव । देवभञ्जक, देवताके खाने योग्य पौर ।

पशामिन् (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत् । जो गित्तिन न हो, दृढ़, फुरतोला ।

पशामिपद (सं० त्रि०) न श्रौपदः पादरोगमेदः; येदे-पुपो न शोपः; नञ्-तत् । १ श्रौपदरोगका पशाम, फीलपावे बीमारोकी पदममोजुदगी । (त्रि०) नाशित श्रौपदो रोगो यस्य, नञ्-बहुव्री० । २ श्रौपद-रोगशून्य, जिमके फीलपावा न रहै । "पशिर-मरणः" पशु १। १०। १० ।

पशामिद (सं० त्रि०) गिति संघकर्मां गितिं चिंसां ददाति, गिति-दा-क ; ततो नञ्-तत् । पशिम-क, जो किसी जीवको मारता न हो । "पशिर-मरणः" पशु १। १०। १० ।

पशिर-पगिर, (सं० पु०) पशामि सर्वे मुङ्गले;

अशिरस्—(अशिरस् इति किरच् णित्पञ्चे
 वृद्धिः। १ राक्षस। अत्राति व्याप्नोति विग्रम्।
 २ सूर्ये। ३ अग्नि। ४ हीरक। (अशिरस् राक्षसं अशिरस्
 अशिरस् च। विच) (स्त्री०) टाप्। व्यापिका स्त्री, हर
 जगद् जाने या रहनेवाली शौरत।
 अशिरम् (सं० पु०) नास्ति शिरो मस्तकमस्य,
 नञ्-बहुव्री०। १ कवचम्, मस्तकहोत पीर। (त्रि०)
 २ अश्रुगुण्य, जिसका अग्रभाग न हो। वा कप्।
 अशिरस्त। कवचम्, शिररका धड़, जिसका भाषा
 न हो।
 अशिरस्तान् (सं० स्त्री०) शिरसा सङ्घं स्नानमय-
 गाहनम्, शाक० तत् ततो नञ्-तत्। शिरसि डुवाये
 स्नान, गला पर्यन्त डूबा कर स्नान।
 अशिर (सं० स्त्री०) न शिरसि विरोधे नञ्-तत्।
 १ मङ्गल न होनेवाला, अमङ्गल। (त्रि०) २ जो
 मङ्गल युक्त न हो, उद्य। नास्ति शिरसि कल्याणमस्मात्,
 नञ्-पु बहुव्री०। अमङ्गलसूचक। अमङ्गल शब्द देखी।
 अशिरशिरा (सं० स्त्री०) अशिरशिरा, अशिर-मन्
 हिर्भाव इत् भावे अ-टाप्। भोजनच्छा, खानेको
 खाइय।
 अशिरशिर (सं० पु०) न शिरसि, विरोधे नञ्-तत्। १ शिरसि
 न होनेवाला, जो बचा न हो, युवा। कोई कोई
 कहते हैं, पाठ वर्ष तक शिरसि—फिर नवसे पन्द्रह वर्ष
 पर्यन्त अशिरशिर कहलाता है। (त्रि०) नास्ति शिरसि,
 यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ शिरसरहित, शेषोलाद, जिसके
 बाल-बचा न रहे। (स्त्री०) अशिरशिरा, शिरसि रहिता
 स्त्री। अशिरशिरा भाषाया। वा भाषाया इति सूत्रे सखी
 शिरसि अशिरशिरा यद्दे शीप् प्रत्ययात् शब्द निपातन
 द्वारा सिद्ध होता है। नास्याः शिरसरहिता इति अशिरशिरा।
 वेदमें "अशिरशिर" ही रूप बनता है।
 अशिरा (सं० त्रि०) न शिरसि, नञ्-तत्। १ जो
 उपदेश पाये न हो। २ जो शासन किया न गया
 हो। शिरसि साधु, विरोधे नञ्-तत्। ३ असाधु,
 दुःशील, अविनीत, अशुभ, शिरसा। ४ नास्ति क।
 ५ वर्षसङ्करकारक व्यभिचारविशिष्ट, जो सब वर्षोंका
 असाधु भक्षण करता हो।

अशिरता (सं० स्त्री०) १ असाधुता, दुःशीलता,
 शिरसा, ठिठार।
 अशिरा (सं० त्रि०) अशिराति अशिर-भोजने अशिर-
 अतिशयने इत्। १ अतिशय भोजन, बहुत खाने-
 वाला। (पु०) २ अग्नि। सबको भक्षण करने
 कारण अशिराको भी अशिरा कहते हैं।
 अशिरा (सं० त्रि०) शिरसि, शिरसि-कर्मणि अशिर-
 अति इत् पत्वञ्च शिरसि, ततो नञ्-तत्। शासनका
 अशिरा, जिसके प्रति या शिरसि विषयमें कोई नियम
 न हो। अशिरा संज्ञा प्रमाणात्। वा भाषाया। पुनश्च अशिर-
 अशिर न अति संज्ञाना प्रमाणात्। (शिरसि-शिरसि) पाणिनि
 प्रथम सूत्र बनाया—अशिरशिरा नञ्-तत्। वा भाषाया।
 प्रत्ययके लुप् होनेपर प्रकृतिका लिङ्ग शिरसि वचन आता
 है। उधेके बाद 'तदशिराशिरा' इत्यादि सूत्र किया।
 इसका तात्पर्य यह है कि लुप् करने पर प्रकृतिके
 लिङ्ग शिरसि वचन होनेका शासन अशिरात् नियम मही
 रहता। कारण संज्ञा ही उभका प्रमाण है अशिरात्
 पूर्वाचार्योंने प्रत्ययके लुप् करनेपर शिरसि सकल शब्दमें
 प्रकृतिका न्याय लिङ्ग शिरसि बहुवचन प्रयोग किया है,
 वे ही सब शब्द बहुवचनात् होने एवं उभो प्रकार
 साधित पदके स्थानमें जहाँ एकवचनात् प्रयोग किया
 है वहाँ एकवचनात् ही प्रयोग होगा। 'अशिराशिरा
 शिरसि जनपद अशिराशिरा' यहाँ बहुवचनात् शिरसि
 'अशिराशिराशिरा शिरसि जनपदः अशिराशिरा' यहाँ
 एकवचनात् ही प्रयोग हुआ है। अशिराशिरा-
 शिरसि कानिदासने भेदवृत्तमें उभय प्रकार प्रयोग
 प्रकृत किया है। जैसे—'अशिराशिरा' (पु० शिरसि १०।)
 यह बहुवचनात् पदका निर्देश है। 'अशिराशिरा' अशिर-
 अशिर अशिराशिरा' (पु० शिरसि १०) यहाँ एकवचनात्
 पदका निर्देश है। इसीनिये शिरसि शिरसि अशिरा-
 शिरसि कहे एक बहुवचनात् जनपद शब्द शिरसि करके
 अशिराशिरा कहे कि उभसे अशिराशिरा भी होता है।
 अशिराशिरा (सं० स्त्री०) अशिराशिरा, शिरसि शिरसि
 शिरसाद न रहे।
 अशिरा (सं० स्त्री०) न शिरसि, विरोधे नञ्-तत्।
 १ अशिरा, गर्मी। २ अशिराशिरा, गर्मी शिरसि। (त्रि०)

कान्तमिदं नास्ति शीतं यव्य, मन्-बहुप्रो० । १ शीत-
शुष्य, मर्दति प्लासी, जिमं ठण्डक न मामुस पट्टे ।
किमी प्राचोम कविने कदा है,—

“अशोतकरो नामं वानुदे वदन्विचः ।

वेने कल्पनाः नरे वेनेने नरकपालः ॥”

माघ माममें ठण्ड, फाल्गुनमें पशु-पक्षी, चैत्रमें
जलधर और वैशाखमें नर-वानरका शीत छूट जाता
है । ४ अग्निवा, अग्नीका, जो गिननेमें अग्नीकी
लगव पड़ता हो ।

अशोतकर (सं० पु०) अशोतः उष्यः करः किरणो
यव्य । उष्याय, शुष्य, चाफताम ।

अशोतकिरण, अशोतकर देखो ।

अशोतम (सं० पु०) अश्याति, अश भोजनं इन् ततः
मनुष्य । भोजनप्रधान अग्नि, मवकी या कानिवासी
पाग ।

अशोतकृष्, अशोतकर देखो ।

अशोतल (सं० त्रि०) उष्य, गर्म, जो ठण्डा न हो ।

अशोता (सं० स्त्री०) भूमिकुष्पाण्ड, सुईं कुण्डा ।

अशोति (सं० स्त्री०) अशानां दगतां अग्नीभावः
ति प्रत्यय, अशो दगतः परिमाणमव्य । अशु विदति
विश्वकर्मिणम् अशुणम् अशुणकर्मिणोति-नरतिणम् । वा ३१।३२ ।

१ अग्नी संख्या । २ अग्नी संख्याविगिट, जो चीज
अग्नीकी अदत रखती हो । (त्रि०) १ अग्नी संख्या
परिमित ।

अशोतिक (सं० त्रि०) अग्नी वर्षयाता, जो अग्नी
मानकी छत्रका हो ।

अशोतिभाग (सं० पु०) अग्निवां भाग या हिष्ठा,
अग्नीमें एक टुकड़ा ।

अशोत्ते (सं० त्रि०) शीर्षं न होनेवाला, महा न
बुधा, जो कमशीर पड़ा न हो ।

अशोपन्, अशोपन देखो ।

अशोपिक (सं० त्रि०) नास्ति शीघं यव्य । १ मस्तक-
रहित, सर न रखनेवाला, जिमके मट्या न रहे ।
२ अघातव्य, अघियारने वालो ।

अशोम (सं० स्त्री०) न शीसम्, विरोधे नञ्-तत् ।
१ दुष्ट गीम, बुरा मिजाज । २ दुष्टसभाय, बुराज

अमनत । (त्रि०) नास्ति शीमं यव्य, मन्-बहुप्रो० ।
१ शीमतामव्य, नागायिक्ता । ४ दुष्टगीम, द-
मिजाज ।

अशुक्तज्ञा, अशुक्ता, अशोत देखो ।

अशुष् (सं० स्त्री०) न शुष् अभावे नञ्-तत् ।
१ शोकका अभाव, अफमोसकी अदममोदुदगी ।
(त्रि०) नास्ति शुग्म्य, मन्-बहुप्रो० । २ शोकव्य,
अफमोस न रखनेवाला, जो रघोदा न हो ।

अशुषि (सं० त्रि०) १ अग्नि न होनेवाला, जो
पाग न हो । २ आपाद माग न होनेवाला, जो
पसाद न हो । ३ कृपावर्ष, काना, जो शुक या मरिद
न हो । ४ शृङ्गाररस न होनेवाला । ५ शीघ्रव्य,
पार्श्वजगोमि खाली । ६ अशुषित, नापाक, मैसा
कुषेना ।

अशुषिता (सं० स्त्री०) अशुषितता, नापाकीजगो,
गन्दगी ।

अशुषित्य, अशुषिता देखो ।

अशुष्य (सं० त्रि०) न शुग्म्य विरोधे नञ्-तत् । शु
नहीं, दोषयुक्त, अशुषित्य । कोई भी विषय नागा
प्रकारमें अशुष्य हो सकता है । किमी पदकी निपनेके
समय व्याकरणवादि अशुष्यानुसार विहित कार्य न
करनेसे दुष्ट वा अशुष्य कहते हैं ।

शास्त्रनिषिद्ध कर्मके अशुष्ठानका नाम दीप है ।
उक्त दीपमें दृषित वाह्नि वा द्रव्यको दुष्ट वा अशुष्य
कहते हैं । जिम द्रव्यके अग्नि करनेमें बिना घान
किये शोहसाम नहीं होता, उसका नाम दुष्ट और
उम द्रव्यके अग्नि करनेवाले व्यक्तिको दुष्ट वा अशुष्य
कहा जाता है । व्याख्येके अभावमें शारीरिक जो
वातपित्तादिका दीप होता है, उस दीपयुक्त व्यक्तिसे
भी दुष्ट वा अशुष्य समझेंगे । उदाहरण होनेपर कहा
जाता, कि स्त्री अशुष्य है । उदाहरण एवं शुकके
वाक्य, अस्त धीर वाक्यादिमें काल अशुष्य होता है ।
किमी अशुष्यके निपनेमें निषिकरप्रमाद वा अशुष्यवादि
दीप हो जानेसे वह भी अशुष्य कहलाता है ।

अशुष्यवासक (सं० पु०) मन्दिग्य आचरन्व्याक,
आपारा, जिसके कोई ठौर-ठिकाना न रहे ।

अशुद्धि (सं० स्त्री०) नञ्-तत् । १ शुद्धिका अभाव, पाकीझमीकी अदममोजुदगी । २ दोष, ऐव । (त्रि०) नास्ति शुद्धिर्द्यम्, नञ्-बहुव्री० । ३ शुद्धिहोन, पाकी-जमीसे बाहर । ४ दुष्ट, बदमास । ५ अशुद्ध, नापाक ।

अशुद्ध (हिं०) अशुद्धि देखी ।

अशुभ (सं० स्त्री०) नञ्-तत् । १ अमङ्गल, बद्-वङ्गती । २ अशुभसूचक मङ्गलादि पापपङ्क । ३ पाप, इजाब । (त्रि०) नास्ति शुभं यस्मात् नञ्-५-बहुव्री० । ४ अशुभविगिष्ट, खराब, बुरा । यात्राकालमें काकादि-का बोलना और शून्य कलसी प्रश्रितिका देख पडना-भी अशुभ समझा जाता है ।

अशुभोदय (सं० पुं०) अपपङ्कन, बदगिगुनी ।

अशुभ (सं० पुं०) नञ्-तत् । १ शुभ न होने-वाला वर्ष, जो रङ्ग सफेद न हो । २ कष्ट, काला रङ्ग । (त्रि०) ३ कष्टवर्ण, स्याह, काला ।

अशुभपा (सं० स्त्री०) १ शुभपाका अभाव, कम-तबजोही, नौकरी या अदब करनेमें चुकका पडना ।

अशुभ (सं० त्रि०) न श्रुपति; इगुपधलात् कः, नञ्-तत् । १ भक्षण करता हुआ, जो खा रहा हो । २ अशुभक, जो सुखाता न हो । ३ शुक न होने-वाला, जो सुखता न हो ।

अशुभक (सं० त्रि०) भरस, नय, हरित, तर, ताजा, हरा, जो सुखा न हो ।

अशुभक (सं० पुं०) सुपडगालि, शुकगन्ध धान्य, किसी किछका आवन ।

अशुभक, अशुभ देखी ।

अशुभ (सं० पुं०) शूद्र न होनेवाला व्यक्ति, जो शत्रु स शूद्र न हो ।

अशुभ (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ अशुभ, जो खासी न हो । २ पूर्ण, भरा-पुरा ।

अशुभग्रयन, अशुभग्रयन देखी ।

अशुभग्रयनद्वितीया, अशुभग्रयन देखी ।

अशुभग्रयनव्रत (सं० स्त्री०) न शून्यं ग्रयनं शय्या येन यथाहा, नञ्-बहुव्री० । व्रत विशेष । पुरुषके यह रखनेसे उसकी शय्या भार्याशून्य और स्त्रीके यह व्रत रखने उसकी भी शय्या पतिशून्य नहीं होती ।

भविष्यपुराणमें लिखा है,—यद्यो कालस्य चातुर्मास्यके मध्य यावत्समाप्तवासे हस्तपंचमी द्वितीयामे व्रगा प्रतिहस्तद्वितीयाके कार्तिक मास पर्यन्त यह व्रत रखना पडता है । यह विष्णुव्रत चार वक्तारमें समापन होता है । नियतेन्द्रिय बन जो यह व्रत करता है, उसकी शय्या शून्य नहीं होती ।

अशुभ (सं० स्त्री०) संभालू ।

अशुभ (सं० त्रि०) अशुभ, मीग या चोटी न रखनेवाला ।

अशुभ (सं० पुं०) अशुभयन्त्रक अशुभविगिष्ट । (त्रि०) पालनके अयोग्य, नया, कष्ट, जिमें कोई पाल न सके या जिसके लगाम न भगे ।

अशुभ (सं० त्रि०) न श्रुतं पङ्कम्, नञ्-तत् । १ अपक, जो पका न हो । अविज्ञित, जो सुनायन न हो ।

अशुभ (सं० त्रि०) शोड्-स्वप्ने वन्, नञ्-तत् । अशुभकर, तकनीफुदिह । २ अशुभकर, दट्ट-पट्टेज ।
“अशुभं विदुः विवामनेका” अञ् ०-१-१११

अशुभ (सं० पुं०) अशुभ नञ्-तत् । १ शोभाभाव, बाकीकी अदममोजुदगी । (त्रि०) नास्ति शोभाऽस्ती यस्य, नञ्-बहुव्री० । २ शोभशून्य, गेरमहदूद, जिमके छोर न रहे । ३ शोभरहित, बाकी न रखनेवाला, पूरा, समूचा ।

अशुभतम् (सं० अशुभ०) सम्युच्यं रूपमे, पूरे तौर-पर ।

अशुभता (सं० स्त्री०) सम्युच्यता, तमामों, कुजियत ।

अशुभम्, अशुभ देखी ।

अशुभम् (सं० त्रि०) समानशून्य, शै-धीलाद, जिमके बामबचे न रहे ।

अशुभमान्वाज्य (सं० पुं०) शिव, जिन महादेवके राज्यका छोर न है ।

अशुभिय, अशुभ देखी ।

अशुभ (सं० पुं०) अशुभ विगिष्ट, जेनियंके छोरे देयता ।

अशुभ (सं० पुं०) नास्ति शोको यस्मात्, नञ्-बहुव्री० । १ अनामस्यगत हचविगिष्ट । अशुभनो

वर्षम किया करती है, कि क्षिरयोथा वाटापात पानसे शुभोक्तहृत् फल पड़ता है। 'पदाघाताद्गोकः, इत्यादि। परन्तु इस वर्षमका खारण बड़ा है, भी कुछ भी गिर नहीं किया जाता

शुभोक्त दुर्गाजयकी नवपत्रिकामें लगता है। यथा,—

"हरती हरिणी शर्व हरिता जलसं वपुः।
स्त्रीःश्रीको हरणी च विषं वा नरपतिव्याः।"

शुभोक्तका फूल लाल और पीला होता है, इसीमें उरुके हृत्तका नाम भी रक्षाशुभोक्त एवं पीताशुभोक्त है। गाझाकारोनि जिया है कि चंद्रमासकी शक्राटमीकी शुभोक्तकी घाठ कजियोंकी खा छेमेंसे फिर गोक नहीं रहता। शुभोक्तपानका मंत्र—

"शामोक्त इतमीष्ट मयुनाममहदभर।
विपति मोक्षमन्त्री शामोक्तं मया हुह।"

इ वैषमामजात शिवके इष्टमाधन शुभोक्त में गोक-मन्त्रा होकर तुम्हें पान करता हूँ, तुम मर्षदा सुभे गोकरहित करो।

२ वकुलहृत्त। (श्री०) ३ पारा। (श्री०) ४ कटुकहृत्त। (श्री०) नञ्-वह्वी। ५ गोकशून्य। (पु०) ६ विष्णु

(Sarcia indica) शुभोक्तके ये कई पर्याय देखे जाते हैं,—शोकनाग, विगोक, वधुमदुम, वधुल, मधु-पुष्य, पपशुभोक्त, कटुसि, केनिक, रक्तपुष्य, चित्र, विचित्र, कर्णपूर, शुभग, देहली, ताम्रपुष्य, रोगि-तह, ऐमपुष्य, रामाचामादि, घातन, विष्णुपुष्य, मय, पमवट्ट।

शुभोक्तका हृत्त देखनेमें ठीक भीषी या भागकेमरके पिहू छेमा होता है। वसन्तऋतुमें यह फुलता है। फूल गुच्छेदार, इनका गुनाथी रंगका और देखनेमें बहुत कुछ रक्तनके फूलके मारिं होता है। जब फूल चिक्ते हैं, उनके मोन्द्यांसे संभार शामोक्तित हो जाता है।

भावप्रकाशके मतमें इसकी हान शीतल, तिक्त एवं कषाय है। इसमें लप्ता, दाह, छमि, शोष एवं विषक नाम होता है। देह लोग क्षिरयोके रजो-

दोषमें इसकी हान व्यवहार करते हैं। २ मसिह शोयंसम्राट्। [शुभोक्त-विरहोईशोः।]

शुभोक्तजागन, शोभरदिका ईशो। शुभोक्तहृत्त (मं० श्री०) घृतमीद, कोरिं घी। यह मद्राधिकारपर दिया जाता है। ४ शरायक मस्य-घृत और २ शरायक शुभोक्तमूलका बजला १६ शरायक जलमें पकाये, ४ शरायक शीघ्र रहनेपर भीषे छतार से। फिर २ शरायक जीरक १६ शरायक जलमें गरमकर ४ शरायक बाकी बचनेसे छतार और ४ शरायक छेमाजरस, ४ शरायक तण्डुलीदक एवं ४ शरायक क्षामदुध उषमें मिलाये। अन्तकी चार-चार तीसे जीवक, षटपभक, भेदा, मन्नाभेदा, काकोली, घोरकाकोली, मुद्गवर्णा, मायपर्णी, जीवन्ती, यष्टि-मधु, पियानवीज, पदुपकफल, रसाधन, यष्टिमधु, शुभोक्तमूल, द्राक्षा, गतापरी और तण्डुलीयकमूलका वृष्णं हानते हैं। इन सब यणुषोके एकमें एक जाने-पर गरकरा देना चाहिये। (शेवमरवचनी)

शुभोक्ततह (मं० पु०) शुभोक्तहृत्त, शुभोक्तका पिहू। शुभोक्तनीर्य (मं० श्री०) शुभोक्तनामकं तीर्यं, शाक० तत्। कामोषेत्रके चरामंत तीर्यविगेष।

शुभोक्त-विरास (सं० श्री०) शयो रासयः समाहृतः त्रयाणां रात्रीणां समाहारी वा चक्षु ममा० ततः पमाकास्यां विरासं शाक० तत्। मासि गोकौ येन ताह्यं विरासं वा। इमाद्रिके प्रतंपपुमे, उहृत विष्णु-धर्मोत्तरोत्तराह्वयिषे। यह प्रत अपहृत्त, ल्वेष्ट, या भाद्र मासकी पूर्णिमामें पारश्व करके एक वर्षके बाद उद्यापन किया जाता है। इसमें प्रत्येकदिन एक बार ही भोजन करना पड़ता है। विधिपूर्वक इस प्रतकी कारमेंसे गोकका मय नहीं रहता।

शुभोक्तलग, शोभरदिका ईशो। शुभोक्तशुपति, शोभ-विरहोईशो।

शुभोक्त-पुष्पमचारी (मं० श्री०) दृष्टकं हृत्तभेद। इस हृत्तमें २८ पत्तर रहता और मधु गुरुका कोरिं नियम नहीं ठहरता है।

शुभोक्तपूर्णिमा (मं० श्री०) मासि गोकौ यथा, नञ्-वह्वी० ततः तयोहा; पूर्णिमाः क्षर्मं वा पूर्वपदक

पुष्पद्रुमायः । फाल्गुण पूर्णिमासे लेकर एक वर्ष पर्यन्त करने योग्य हेमाद्रि-प्रतल्लुप्तत विष्णुधर्मा-चरोक्त व्रताङ्ग विगेष । यह व्रत फाल्गुण मासकी पूर्णिमासे प्रारम्भ करने १ वर्ष तक किया जाता है । इसमें फाल्गुण, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ यह ४ महीनाकी पूर्णिमाको उपवास करते और थापाड़ादि ४ महीनाकी पूर्णिमाकी केवल जल खाकर रहते हैं । फिर कार्तिकादि ४ मासकी पूर्णिमाकी केवल जल पान करना पड़ता है । इसतरह १ वर्ष पर्यन्त व्रत करके माघकी पूर्णिमाको उद्यापन कर देना चाहिये ।

अशोक-प्रियदर्शी (पियदर्शी) भारतके एक विख्यात मौर्य-सम्राट्; अशोक नामसे ही सर्वत्र परिचित है, किन्तु यह 'अशोक' नाम उनके किसी अनुयायन पर या सामयिक ग्रन्थमें नहीं पाया जाता । इसीसे एक दिन अध्यापक बिलसन साहबने प्रियदर्शी और अशोक दोनोंकी अभिन्नताके सम्बन्धमें सन्देह प्रकाश किया था । किन्तु सिंहलके 'दीपवंश' नामक प्राचीन पालिग्रन्थमें अशोकके 'पियदर्शि' एवं 'पियदस्सन' ये दो नामान्तर पाये जाते हैं और संप्रति मासकी अनुयायनमें अशोकनाम मित्रा ।

दो विभिन्न शोरसे अशोक वा प्रियदर्शीको संज्ञित जीवनी मिलती है । एक तो उनके राजत्वकालमें उन्होंनेकी आश्रासे उत्कीर्ण बहुमंस्यक गिलानिविषे एवं दूसरे वीह और जेन धर्मग्रन्थोंसे । परन्तु दुःसका विषय है, कि ग्रन्थगत विवरणके माथ उनके अनुयायन लिपिसमूह की एकता नहीं है, इसीसे मान्य होता है, कि प्रियदर्शी और अशोकके अभिधत्त सम्बन्धमें किसी किसीने सन्देह प्रकाश किया है ।

सोहदन्तमें अशोकका परिचय ।

अशोकावदान और दिव्यावदानके मतसे श्राव-बुद्धके समसामयिक मगधके राजा विम्बिसार थे । उनके पुत्र अज्ञानगयु, उनके पुत्र उदायी वा उदायीग, उनके पुत्र मुण्ड, उनके पुत्र काकवर्षी, उनके पुत्र सङ्गलि, उनके पुत्र तुल्लकूचि, उनके पुत्र महामगल्ल, उनके पुत्र प्रमेगजित्, उनके पुत्र नन्द और उनके पुत्र विन्दुसार थे । इसी विन्दुसारके पुत्र अशोक थे ।

बड़े ही धारयंत्री बात है, कि अवदानग्रन्थमें अशोकके सुप्रसिद्ध पितामह चन्द्रगुप्तका नाम तक छोड़ दिया गया है । चन्द्रगुप्तका नाम न रहनेसे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि चन्द्रगुप्तके माथ भोर्व्यवंगका भाविभाव वा तिमोभाव होता है । अशोकके माथ चन्द्रगुप्तका कोई सम्बन्ध न था । इधर हिन्दू, जैन और पासिवोध ग्रन्थोंमें चन्द्रगुप्तके अशोकके पितामह होनेका स्पष्ट उल्लेख रहनेपर भी प्रियदर्शीके निज अनुयायनसमूहमें कही भी उनके पिता वा पिता महका नाम नहीं पाया जाता ।

प्रकथन ।

पूर्वीक दोनों अवदानोंमें निष्ठा है,—अग्या नगरीमें किमी ब्राह्मणके यहां एक परम सुन्दरो कन्या

(१) सुदानी जनीय ब्रताष्टीमें दिव्यावदानका अनुवाद 'वेनी अन्तर्ग' हुआ, (Beal's Chinese Tripitakas) सुदानी मूल दल अन्तर्ग बहू पहने चलतः ३० के परनी वा सुदरी ब्रताष्टीमें किसी समय रहा गया होगा, इसमें सन्देह नहीं । इसीसे अशोककी ब्रताष्टीके सम्बन्धमें प्राचीन समाच समाच कर उल्लेख किया । यह पाठदेखा फिर है, कि अवदान ग्रन्थके माथ हिन्दू, जैन, वहाँ तक कि बौद्धोंके यदि ग्रन्थोंका भी विषय नहीं है । यह बात शीघ्रका शीघ्रपन इसमें ही मान्य हो सकती,—

विष्णुपुराण ।	परिचिदन्त ।	परिचिदन्त ।
१ विष्णुपुराण ।	(१) परिचिदन्त ।	
२ काकवर्षी ।		
३ सेनवर्षी ।		
४ अशोक ।		१ विम्बिसार ।
५ विम्बिसार ।	१ विम्बिसार ।	२ अज्ञानगयु ।
६ अज्ञानगयु ।	२ उदायी ।	३ उदायीग ।
७ मुण्ड ।	३ उदायी ।	४ अनुयायन ।
८ उदायी ।	(निःसम्बन्ध) ।	५ मुण्ड ।
९ उदायी ।	४ उदायी ।	६ अज्ञानगयु ।
१० अज्ञानगयु ।	५ अज्ञानगयु ।	७ उदायीग ।
११ अज्ञानगयु ।	६ अज्ञानगयु ।	८ अज्ञानगयु ।
१२ अज्ञानगयु ।	७ अज्ञानगयु ।	९ अज्ञानगयु ।
१३ अज्ञानगयु ।	८ अज्ञानगयु ।	१० अज्ञानगयु ।
१४ अज्ञानगयु ।	९ अज्ञानगयु ।	११ अज्ञानगयु ।
१५ अज्ञानगयु ।	१० अज्ञानगयु ।	१२ अज्ञानगयु ।

हुई। एक श्लोतिर्पौने उस कन्याको देगकर कहा,—
‘यह कुमारी राजधानी और राजमाता होगी।’ धन-
का भंडा बढ़ा भारी लौम है। ब्राह्मण मानसमें
पट गये। कन्याको योगनाथस्नाना प्राप्त देग में उसे
गण्ड भेकर पाटनीपुत्र पाये और राजा विन्दुमारको
प्रदान कर दिया। विन्दुमारने ब्राह्मणकन्याको
पत्न्या:पुरमें भिज दिया। उसका मौन्द्य्य देवकर
राजमण्डित्पिपीको टकटकी मग गई। उन लोगोंने
सोचा, कि एभी सुन्दरी पाकर राजा क्या फिर हम
लोगोंको पुदेंगे। हमलिये पापममें मसाहकर उन
लोगोंने उनी नारन बनाकर रखा और और कमी
मिगाने मगी। कुछ दिनोंके बाद यही ब्राह्मण-
कुमारी राजा विन्दुमारका राजामत बनाने लगी।
एक दिन परम प्रमथ होकर राजाने कहा,—‘मैं तुम-
पर बहुत प्रमथ हूँ, सोनो क्या मांगती हो। मैं
तुम्हारी अभिमाय पुर्ण करूँगा।’ यह सुन विम-
कन्याने गिर भुंकाकर धीरे धीरे कहा,—‘मैं भावकी
चाहती हूँ।’ इसपर राजाने कहा,—‘सो क्या, मैं
अतियमूर्खोभिमिल और तुम नारन, तुम्हें भना कौन
यह कहें।’ इसके उत्तरमें उस विमकुमारीने कहा,
‘मैं नारन नहीं, ब्राह्मणकी कन्या हूँ। पापकी
पत्नी होनेके लिये ही पिताजी टे गय हैं। पुरमण्डिना-
चोने मुझे यह काम सिखाया है।’ यह सुन
राजाने उसको कामना पूर्ण की। फिर यही दरिद्र-
कन्या पटरानी हो गई। सञ्जाममें उसके दो पुत्र
हुए—१ म चमोक, २ य विगतमोक या वीतमोक।

चमोकमें पचने पटरानीके गर्भमें सुमीम नामक
विन्दुमारका बड़का पेदा हुआ था।

तक्षगिन्नावासियोंने विन्दुमारके विरुद्ध अन्न धारण
किया। विन्दुमारने चमोकको पत्नी छोड़ दिया।
मार्गमें दमनस भंयहकर चमोक तक्षगिना पाये।

• “यदि राजा चमिकी कुल्लिचिचः चर्चः क्वा माईः कन्याको वरि-
त्तः” (विभासण १४ बः)। एतः विन्दुमार चमिकी वरिच
दोनाका वरिचर है रई है। एतः चमिकी चमिकी और “चमिकी” के नामके
वरीचर वरीः हूँ। चमिकी चमिकी चमिकी वरिचर है। [चम-
िकी वरीः]।

विना युद्ध ही मगरवासियोंने उनके लिये तक्षगिनाको
हाथ दिया और उनकी पट्टे चम्प्यमा की।

उपर विन्दुमारके प्रधान मन्त्री चञ्जटकने लूठ
राजकुमार सुमीमके पापरथमें कुछ विराह होकर
उन्हें ही तक्षगिना भेजनेका प्रवन्ध किया एवं चमोक-
की राजा बनानेके लिये उन्हें राजधानीमें बुला भिजा।

विन्दुमारकी पायु मिय हो पाई। पमात्यवप
गुव सञ्जथनकर चमोककी राजाके मध्यम से गये
और पनुरोध किया, कि जबतक सुमीम शौटकर न
पाये तबतक चमोक उनके पदपर विराजे। यह
सुनकर विन्दुमार बहुत ही हट हुए। यह देव
चमोकने कहा, कि यदि धर्म है, तो मैं ही राजा
हूँगा। तुरत ही चमोकका पदग्रह हुआ। देगने
देखते विन्दुमारने रक्त वमन कर प्राणत्याग दिया।

अब चमोक पाटनीपुत्रके राजमिंहामनपर विराजे।
राधगुप्त उनके प्रधान मन्त्री हुए। यह ममाभार
तक्षगिना भेजा गया। सुमीमने पिताको शत्रु और
चमोकके राजमिंहामन अधिकार करनेकी बात
सुनी। इसके बाद तुरत ही उन्होंने समेव पाटभि-
पुत्रकी याचा की। इपर चमोक भी प्रसुत थे।
गहरके मंदर फाटकर पर नान ममुथ, तीसरेपर
राधगुप्त, धीचेपर स्वयं चमोक उपस्थित थे। हारके
सामने साह खोद और उसमें खदिर एवं अन्नार भर-
कर एक चमोकमूर्ति उसपर बैठा दो गई।

सुमीमने सोचा, कि चमोककी मार हासनेके ही
राजमिंहामन मिल जायगा। यह विचारकर चमोककी
युद्ध करनेके लिये पूर्वद्वारमें प्रवेग किया। प्रवेग
करते ही अन्नार भरी हुई चाईमें गिर पड़े। तुरत
ही उनकी जान निकल गई।

चमोक प्रतिष्ठित हुए मर्षी, परन्तु वे पमात्यवपकी
और विगीय पचका प्रकाम करने लगे। एकदिन
राजाने पमात्योमें कहा,—‘तुम लोग कलककका
पेड़ फाटकर कठिके पेड़की मीच रहे हो।’ पमात्यो-
में इसका उत्तर राजाके प्रतिक्षण दिया। उत्तारमें
अप्यग्न हट होकर चमोकने तुरत ही पांच मनुष्योंके
गिर काट डाले।

धीरे धीरे 'अगोक्षकी' प्रवृत्ति भीषणसे भीषणतर हो उठी। उन्होंने एक रमणीय वधागार स्थापन किया और चण्डगिरिक नामके एक लुकाहेकी उमका रक्षक बनाया। मनुष्यका प्राण हरण उमका परम-प्रिय कार्य था। सैकड़ों मनुष्य अनजानमें उस वधागारमें जाकर भूखसे सुखकर मर गये। कुछ दिनोंके बाद समुद्र नामक एक साधु भिष्माकी इच्छामें उस वधागारमें गये। उम घरमें लो जाता था वह फिर याहर न निकलता था। पर कई दिन बीत गये, उस साधुके प्राण न निकले। यह देख दुर्लभ चण्डगिरिक श्रवाक हो गया। उसने उम साधुके प्राणनाश करनेकी यद्येष्ट चेष्टा की, पर किसी तरह साधुके प्राण न निकले। अन्तमें चण्डगिरिकने इस बातकी खबर राजाको दी। राजा स्वयं साधुको देखने चाये। आकर उन्होंने देखा, कि उस भिष्मके पाये शरीरमें जल बह रहा और पाधमें चाग धधक रही है, तथा सारा शरीर शून्यमें ढटक रहा है। यह देख राजाने विस्मयके साथ उस साधुका परिचय पूछा। भिष्मने उत्तर दिया,—“मैं वही परम कारुणिक धर्मान्वय बुधपुत्र हूँ; संसारके सहाय्य भय-वन्धनसे मुक्त हो गया हूँ। महाराज। सुनिये। भगवान् कह गये हैं, कि मैं परिनिर्वाणके मो ययें बाद पाटलिपुत्रमें अगोक्ष नामक एक राजा होगा। वट चतुर्भाग चक्रवर्ती धर्मराज मेरा शरीर धातुविस्तार करेगा। ८४००० धर्मराजिका प्रतिष्ठा करेगा। अतएव ऐ नरेन्द्र! उस नायको पूजा करके धर्म विस्तार करो।”

यह सुन राजा विचलित हुए। बुद्धके नामसे उनके हृदयमें चित्तप्रसाद उपस्थित हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर भिष्मसे कहा,—“दमस्तुत! मुझे चामा कीजिये। मैंने बुधगण और धर्मकी शरण ली।” इसके बाद राजाने सम्मानसहित भिष्मको विदाय किया। अब अगोक्षकी रुधिरपिपासा दूर हो गई। उस नरपिशाच चण्डगिरिक वा उस रमणीय वधागारका अस्तित्व नोप हो गया। अब वह चण्डागोक्ष धर्मागोक्षके नामसे गिना जाने लगा।

अजातशत्रुने जो द्रोणरूप निर्माण किया था, अगोक्षने उसे खुदवा डाला और उसमेंसे शरीरधातु निकालकर नागोंकी सहायतासे रामधाममें एक बड़ा भारी स्तूप प्रतिष्ठित किया। इसके बाद नामास्थानमें नानाधातुगर्भ सुवर्ण, रजत, स्फटिक एवं दैत्यूंरचित चौरामो सहस्र कण्ठकी स्थापना की।

अगोक्ष धर्मान्धत हो उठे। एकदिन उन्होंने स्वविरययाकी कहा, कि मैं एक दिनमें चौरामो हजार धर्मराजिका स्थापन करना चाहता हूँ। स्वविरयमाने भी बुजुर्गी दिखाई। अगोक्षराजका मनोरथ पूर्ण हुआ। तबसे धे धर्मागोक्षके नामसे प्रसिद्ध हुए।

एक दिन अगोक्षने सुना, कि मयुरामें उपगुप्त नामका म्यविर है। उसके ऐसा म्यायगाक्षत्र और बुद्धमत्त और कीर्ति नहीं है। राजाने उसे देखनेकी इच्छा प्रकटकी मन्त्रियोंने उपगुप्तको आनेके लिये दूत भेजना चाहा। परन्तु यह बात राजाकी पच्छुं न लगी। उन्होंने स्वयं आकर उपगुप्त नाममें मिननेकी इच्छा प्रकट की। अवर उपगुप्तने भी सुना, कि मौर्य-सम्राट् मरे निकट आना चाहते हैं। अगोक्षके धर्मागु-रामसे मन्तुष्ट होकर उन्होंने तुरत ही नावपर बैठ मयुरामे पाटलिपुत्रकी यात्रा की। उपगुप्तके पदुंष ज्ञानवर राजपुत्रपने अगोक्षको यह शुभ समाचार दिया। उपगुप्तके पागमनका समाचार घोषणा करनेके लिये मौर्यराजने घण्टा बजानेको आज्ञा दी। राजाके पादेशसे पाटलिपुत्र-नगरी खूब मञ्ज हो गई। पिपती रातमें उठकर स्वयं राजा नगरमें आगे आकर उन्हें ले चाये। उपगुप्तके भगमनसे अगोक्ष क्षतार्थ हुए। अगोक्षको साथ ले जाकर उपगुप्तने कविलवास्तु, भार्गवायम, वाराणसी प्रवृत्ति बुद्धके भीमापेतोंकी दिखाया। उन सब पत्रित बुद्धपेतोंमें सम्राट्ने बुद्धकी परधान एवं धरपायें स्तुपादि निर्माण कर दिये।

जिस समय अगोक्षने ८४००० धर्मराजिका प्रतिष्ठित की, उसी समय देवी पद्मावतीके गर्भमें 'धर्मवन्दन' नामक एक परम रूपवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके

• ३४५-३४६-कावचन 'पर' दिव्यराज-मंत्र अर्थात् 'परम' ३४५ है।

नेत्र टोंक कुचाल पक्षीके नेत्र थे। यही नेत्र कुचालके मग्न हो उठे। कुचालने दीवतमीमांश परदारण किया। पगोकको प्रधान मन्त्रियो तिवरचिता उन नेत्रोंको देखकर हमदर्द पागल हो गईं। एकदिन कुचालकी एकात्ममें पा कर रानीने अपनी पमद्विष्टा प्रकट की। हमदर्द उन्हेंने दोनों कानोंपर हाथ रखकर कहा,—“मा! वेगो धर्मविरुद्ध बात सब न कहियेगा। पपमंको पपेसा भिरी गस्तु ही ग्ये है।” तिवरचिताकी मनस्वामना पूर्ण न हुई। उसी समयमें रानी कुचालका छिट्ट पोजने लगी।

उधर तसगिनामें विद्रोह मच गया। वहां जानेके लिये पगोक मयं प्रभुत थे, परन्तु मंत्रियोंके परामर्शमें महामाराजेके माघ कुचालको वहां भेज दिया।

कुछ दिनोंके बाद पगोकको दाक्ष घ्याधिने पसा। उनके मूषधे विठा निकलने लगी। इस रोगकी चिकित्सा कोई भी न कर सका। यह देख राजाने कुचालको बुलाकर राजमिंहामनपर बैठानेकी इच्छा की। यह सुन तिवरचिताने सोचा, कि यदि ऐसा होगा, तो भिरी आन न बचेगी। यह विचार कर उन्होंने राजासे कहा, कि मैं पापका रोग पच्छा कर दूंगी, परन्तु किमी वेधको यहां न पाने दूंगी। राजा इस बातपर राजी हो गये। सब रानीने वेधको बुलाकर कहा,—“देखिये, यदि ऐसा होर कोई रोगी हो तो उसे भिरे पाग ले पाइये।” वेध राजा दृढ़कर एक स्वामिको ले गये। उसकी भी पपम्या राजा ही लेमी थी। एक गुप्त म्याममें ले लाकर रानीने उसका घंट पाइकर पाकामयको प्रीणा की, ता देया, कि उसको पंतड़ीमें पमंन्य कोड़े किन्विन्-किन्विन् कर रहे थे। मरिच, पिपली, कृद्वेय पादिम कोड़े न मरे। पन्तमें पिगात्रका रस देने ही कोड़े मर कर मयहारसे निकलने लगे। यह देख रानीने पगोकमें आशर कहा, कि सब पाप कोई चिन्ता न कोत्रिये। पीपध मिल गई है। पापको पिगात्र घाना पड़ेगा। यह सुन राजाने कहा,—“यह क्या। मैं पत्रिय हूँ। पिगात्र कैम घालंगा।” हमदर्द तिवरचिताने कहा,—“मापरपाके लिये पीपधघरुप

पिगात्र पानेमें कोई दोष नहीं है।” पीके पिगात्र पाकर राजा पच्छे हो गये। होर परम प्रभव होकर उन्हेंने तिवरचिताको सात दिनके लिये राश्वमार भोग दिया।

दुष्ट तिवरचिताको सब वेर शुक्रामेका सुभेता हो गया। उसने पगोकके मामने तसगिनासिंधीको पात्रा दी, कि भौटकुनकनद कुचालकी पाले निकाल लो।

इस दाक्ष पादेगको पाकर तसगिनाके सभी पादमो नितान्त दुःखित हुए। कुचालका चरित पति विग्रह, मान्य होर सबको प्रिय था। उनका चरित्र करनेसे सभी विमुक्त हुए। सभी राजाको निन्दा करने लगे। पयात् कुचालने उस पत्रको पाया। उन्हेंने पपने हाथमें पपने पांशोंको निकालकर पिताको पात्रा पानन की। यह देख सभी दादा-कार कर उठे। पर उस मान्यमूर्ति हटपेता कुचालका मन विचलित न हुआ।

तसगिना पानेके पइने काश्तमानाके माघ कुचालका विशाद हो गया था। माचत्रमके उन चित्तविमोहन नेत्रकी पपहत होते देख वह मूर्च्छित हो गईं। पीके श्रीको मान्यकर कुचालने मिषारीका वेग धरा होर पसीका हाथ पकड़कर तसगिना त्याग किया। सब कुचाल वेध चताने हुए राठ राठ घूमने लगे। माघमें क्षिप्र काश्तमाना यो। भिया ही दोनोंकी उपशोविका यो। रने तस कुचाल पाटनिपुत्र पड्डे। उन्हें कोई पत्राल न मका। यहांतक, कि दरपानेने भो उन्हें राजपामादमें सुभने न दिया। एक दिन घ्य मरेरे राजभवतके निरुट बैठ कुचाल थोपा मत्रा, मत्राकर गाने लगे,—“यदि भयमें दुःखमें पीड़ित हो, यदि इस संसारका दोषज्ञा जानते हो, यदि धुपसुपपानेकी इच्छा रखते हो, तो मोक्ष इस पावतनको म्यामकरा—त्याग करो।”

यह सुखर पगोकके कानमें पडा। उसी समय उन्हें निधय हो गया, कि यह बार तो भिरे प्रिय पुत्र कुचालका है। उन्हेंने कुचालको पानेके लिये तुरत ही पादमी भेज दिया। कुचाल मश्रीक विनाके

पाप पाये। अगोक नयनरञ्जन पुत्रकी नेत्रविहीन देखकर मूर्च्छित हो गये। कुछ देरके बाद जब मूर्च्छा टूटी, तो कुणालकी गादमें बैठकर राजाने पूछा,—
“बतापो बैठ। तुम्हारे ये दोनों सुन्दर नेत्र किस तरह नष्ट हुए।”

इसपर कुणालने कहा,—“वीथी वातके लिये शोक-मत्त कीजिये। सभी अपना अपना कर्मफल भोग करते हैं, मैं भी भोग करता हूँ। क्यों किसीको दीप दूँ।”

अन्तमें जब राजाको मालूम हो गया, कि यह काम तियरचितका ही है, तब उन्होंने उसे बुलाकर सास लाल खांछि करके कहा,—“केवल तैरी खांछि ही नहीं, नाक, पांख, सुह सब अङ्गको काट डालूंगा, तब तुम्हें मानम छोगा, कि तूने मेरे हृदयको कैसा कष्ट दिया है।”

पच कुणालने हाथ जोड़कर वितर्षि कहा,—
“राजन्। तियरचिता अगार्थककर्मा है, पाप पार्थक-कर्मा होकर स्वीयध न कीजिये। मेरी और अमाकी अपेक्षा और कोई धर्म नहीं है। मेरी खांछिं निक-नवाकर यदि माता मधमुच ही प्रसन्न हुई हैं, तो उसी मत्वके गुणसे मेरी खांछिं फिर हो जायंगी।” विम्बा-समें क्या नहीं होता। भ्रुवविश्रामके प्रभावसे तुरत ही कुणालकी खांछिं पड़ले ही की तरह हो गईं, पर अगोकने तियरचिताको क्षमा नहीं किया। उस पापिष्ठाकी देह जन्तुगृहमें दग्धीभूत हुई।*

जिस समय राजा अगोकने ८४००० धर्मराजि-काको प्रतिष्ठा और पञ्चवार्षिकप्रतका अनुष्ठान किया उसी समय उनके भार्द वीतगोक तीर्थकीपर अगुरक्ष हो गये। वे लोग उन्हें समझते, कि अमण शाक-पुत्रोंका मोक्ष नहीं है। वीतगोक भी वही समझते, पर अमणके माघ कितनी ही बार उनका विरोध हो जाता था। अगोकका यह अच्छान न क्षमता था।

उन्होंने वीतगोकको बुद्धमतमें खानेका एक अणुयं उपाय निकाला। अपने मन्त्री उपयज्ञकी बुलाकर पूछा, कि किसी तरह वीतगोकको सिंहासनपर

बैठा सकते हो। एकदिन अमात्यगण अगोकका परमैली लेकर खानागारमें गये और वीतगोकके कहा,—“राजाकी मृत्युके बाद पाप हो राजा होंगे। इस समय अजधजकर सिंहासन पर बैठिये, तो देखें, कि पाप कैसा शोभते है।” वीतगोक मन्त्रियोंकी पटोमें आ गये और अगोकके राजदरबारपरको पहनकर सिंहासनपर विराजे। ठीक उसी समय अगोक आ पहुँचे। ‘कोई है?’ अगोकके इनना कहते ही अगोष्ठ घातकोंने आकर वीतगोकको धारो औरसे धर लिया। पच अगोकने गम्भीर स्वरने कहा,—“देखो वीतगोक! मेरो उपाय करके तुम सिंहासनपर बैठे हो। अच्छा सात दिनके लिये मैंने राज्य छोड़ दिया, इसके बाद घातकोंके हाथसे तुम्हारे मृत्यु होगी।”

सात दिनके लिये वीतगोक राजा हुए। नाच गान और पानन्दकी नदी वह चला। सातथे दिन घातकोंने आकर उनके अन्तिम दिनकी बात सुना दी। राजवेगमें वीतगोक अगोकके पाम पाये। अगोकने पूछा, “भारै। इन कई दिनोंमें कैसा सुख भोग किया। नाच गानमें कैसा पानन्द पाया।” इसपर वीतगोकने कहा,—“सुख कहा है। नाचगान देखा नहीं, सुना नहीं, गन्धमें आग्राण पाया नहीं, रसास्वादन किया नहीं। देखा है केवल यही, मागे नीमवन्तधारी घातकगण हारपर अड़े है।”

अगोकने कहा,—“भारै। यदि मृत्युमें इनना डरते हो, तो उसकी चिन्ता क्यों नहीं करते त्रिममें मरण हो हो नहीं।” वीतगोकने कहा,—“मैंने उसी मन्थकूमसुदको मरण ली। धर्म और भिक्षु-महकी मरण ली।” वीतगोकने उसी समय प्रवन्दा पहण की। धुली, धीवर और हथमून ही वीत-गोकका प्रायवस्थान हुआ। वे भिखा मांगकर जो माते उसीसे अपने शरार रक्षा करते। जानादेम, जाना नगरोंमें होते हुए वे प्रवन्त देगमें पहुँचे। यहां वे महाश्याधिपक्ष हुए। यह समाचार पाने ही अगोकने उनकी चिकित्साके लिये औषधार्दि भिक्ष दिये।

इसी समय पुस्तक धर्म-नामधारी निर्णय प्रणामकीने
 २८वें अध्याय 'जिनदेवके पादभूमिमें बुद्धदेवकी मूर्ति
 पाक दी थी।' शीर्षकी साक्षर यह समाचार चमोकर-
 को दिया। इसपर चमोकर झुठ होकर चमोकरने
 पुस्तक धर्मके सब पात्रोंकी मार टागनेकी आज्ञा
 दी। एक दिनमें चटारह हजार पात्रोंके मार
 काले गये।

इसके बाद पाटलिपुत्रके निर्णयोंने भी जिनदेवके
 पादभूमिमें बुद्धप्रतिमाका चित्र चित्रित किया था। उन
 कोशिके जिसे भी चमोकरने देखा वह दण्डविधान किया
 था। यद्यत्कि, कि चमोकरने उन्को घोषणा कर दी
 थी, कि जो निर्णयका गिर काटकर लायेगा वह
 दोषार पायेगा।

इस समय चोतगोक महाप्राधिपत्ता होकर एक
 बारभारके यहां रात काटते थे। उनके मध्ये मग
 पौर हाथीको देख चामोरपत्नीने उन्हें निर्णय समाभा
 पौर यह बात अपने नामांशु कहती। माला चोत-
 गोकका गिर काटकर दीमार जानेकी आज्ञामें
 चमोकरके पास गये। उन गिरको देख चमोकर
 मुर्विर्त हो गये। जब वे प्रकृतिय दृष्ट तब चमोकरने
 ने कहा,—“वीतरागोंकी तुम कट हो रहा है।
 मधकी चमय दे दीजिये।” उसी दिन राजाने
 घोषणा कर दी, कि चमोकरने शब्दमें कोई हिंसा
 न करे। इसके बाद चमोकरने अपना मर्त्य बौद्ध-
 मर्ममें चर्चय कर दिया। (चमोकरनाम)

अध्याय २२ वें अध्याय

निश्चयके महाप्राधिपति चोतगोककी परिषद पाया
 जाता है। प्रथम चमोकर 'कामागोक'के नामसे प्र्यात
 है। बुद्धनिर्णयके भी पंचे वाट वर्षों कामागोक
 प्रयागमें राज्य करते थे। इन्को प्रथम चमोकरके समय
 महाप्राधिपतिमें बुद्धके उपदेशानुसृत शासनमुद्र
 प्राप्त हुए थे।

इन कामागोकके दस पुत्रोंमें एकमें २२ वर्ष, फिर

८ पुत्रोंमें २२ वर्षतक राज्य किया। उनके मर्त्य
 होते लड़केका नाम चमनन्द था। चापसके कोटक
 में चमनन्दने राज्य था दिया पौर मोरियरप्रमण्ड
 चमनन्दने राज्यनाम किया। इन्को १४ वर्ष राज्य
 किया था। उसके बाद उनके पुत्र विन्दुमारने २८ वर्ष
 राज्यभोग किया। उनको मोल्ल रात्रिके मर्ममें १०२
 पुत्र हुए थे। उनमें मधकी बहकर चमोकर ही पुत्र-
 तन्त्रा पौर महाप्राधिपत्यमें थे। वे पिताकी चमो-
 कतामें लज्जितगोका शासन करते थे। जब उन्को
 पिताके मृत्युश्राव्यपर पड़े रहनेका समाचार सुना,
 तो तुरत ही पाटलिपुत्र चमोकर राजनिर्णयमें चमि-
 कार कर लिया पौर ८८ भादव्योकी विनाशकर
 जम्बुद्वीपमें एकाधिपत्य करने लगे। बुद्धनिर्णयके
 २१८ वर्ष बाद उनका चमिपेक हुआ। राज्यनामके
 चौथे वर्ष महाप्राधिपतिके मरण उनका चमिपेक-
 कार्य श्रम्य हुआ था। चमिपेकके समय उनके
 छोटे भाई तिमकी 'उपरान्त'की पदवी दी गई थी।

चमोकरके पिता ब्राह्मणभक्त थे। वे प्रतिदिन मात
 हजार ब्राह्मणोंकी भोजन कराते थे। चमोकरने भा
 तीन वर्षतक ऐसा ही किया था। चमिपेक हो
 जानेके बाद उनको मति गति फिर गई। वे अपने
 मामां सब मन्त्रार्थोंके चमोकरकी साक्षर शास-
 विचार करने लगे पौर सबकी समभाषी भिन्न
 दिनकी व्यवस्था कर दी।

यमश-श्रमोपकी देखकर बौद्धधर्मकी चोत
 उनका चित्त चक्रेत हुआ। यह व्यवस्था पौर कोई
 नहीं उनका भतीजा ही था। चमोकरने जिस समय
 विन्दुमारके बड़े लड़के सुमनकी हत्या की थी, उस
 समय उनको गर्भवती पत्नीने चण्डालके बच्चेमें प्राण
 लिया था। उनके गर्भमें मन्त्रोपका जन्म हुआ पौर
 अपने पूर्व शत्रुके बलने मन्त्रोप नाम किया।

चमोकरके ब्रह्मर्षि एक पौर ब्राह्मणधर्मके प्रति
 चोतभाग पौर दूसरी पौर बौद्ध धर्मके प्रति चमोकर
 प्रवृत्त होने लगा। अब वे प्रतिदिन मात हजार
 चमोकरकी सेवा करने लगे।

इन चोत धर्मोंकी उपराज तिम, चमोकरके

० चमोकरनामके चमोकरने किया है, कि चमोकरने भी चमोकरने
 १०२ वर्षों के, चमोकरने चमोकरने चमोकरने चमोकरने चमोकरने
 चमोकरने चमोकरने चमोकरने चमोकरने चमोकरने चमोकरने

भास्त्रे और सद्मित्राके स्वामी अग्निब्रह्मने संन्यास धर्म अवलम्बन किया। उनकी देवादेवी हजारों मनुष्य बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए थे। अगोककी धर्म-आत्ता क्रमसे प्रवल होने लगी।

उपराज तियाके संन्यासधर्म ग्रहण कर लेने पर अगोकने अपने मियपुत्र (महिन्द्रो) महिन्द्रको उपराज बनानेकी इच्छा की थी, पर कुछ ही दिनोंमें महिन्द्रने भी संन्यास ग्रहण कर लिया। स्वविर महादेयने महिन्द्रको दीक्षित किया। स्वविर भाध्वन्तिकने उनके लिये कर्मवचन अनुष्ठान किया। इसी समय धर्मपति सद्मित्राके उपाध्याय एवं चायुपाली उनके आचार्य हुए। अगोकके पठवर्षमें महिन्द्र और सद्मित्रा दोनोंने प्रव्रज्या ग्रहण किया।

कहायत प्रसिद्ध है, कि बहुतसे योगी मठ उजार। धीरे धीरे बीच आचार्य और उपाध्यायोंकी संख्या द्रुतनी बढ़ी एवं इतना मतभेद होने लगा, कि पत्तमें नीलमाल मच गया और भारतके सर्वत्रके बौद्धारामोंमें उपाध्याय एवं प्रावरण बन्द हो गया। इस तरह मात वर्षे भीत जानेपर इसकी खबर अगोकको लगी। उन्होंने कहला भेजा, कि मेरे अगोकाराममें जितने भिक्षु रहते हैं सभी उपाध्यायत पालन करें। इसपर भिक्षुसङ्घने उत्तर दिया, कि तीर्थिकोंके साथ हम लोग उपाध्यायत पालन न कर सकेंगे। राजाकी यह समाचार मिला। धर्मपालन न करनेसे किये धर्म हुए। राजाके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ। उन्होंने मोगलि-पुत्र तियाके निकट जाकर अपने मनका कट कहा। तियाने 'तित्तिरजातक' सुनाकर सम्राटकी कहा,— 'प्रतीक्षा न रहनेसे पाप नहीं होता।' मोगलिपुत्रके उपदेशसे राजाकी ज्ञान हुआ।

अब अगोकके अधीन राजगण एवं अनुगण सम्राटकी परामर्शमें स्तुपादि बनवाने लगे। सम्राटने भी बौद्धधर्मके प्रचारके लिये महिन्द्रक सिंघन भेज दिया।

सिंघनराज प्रियतियाने महिन्द्रसे बौद्धधर्मकी दीक्षा की। उसके बाद धर्मप्रचारके उद्देश्यसे सद्मित्रा भी सिंघन गई थी और सिंघनराजमहिन्नाथोंने उनसे दीक्षा की थी।

अगोकके उत्पन्न होने पर।

हैमचन्द्ररचित विषयिगसाकापुष्यचरितके मतसे, —विन्दुसारसे अगोककीने जमानाम किया। विन्दुसारकी मृत्यु हो जाने पर अगोकको राज्य मिला था। अगोकके कुपाल नामक एक पुत्र हुआ। अगोकने कुपालको उज्जयिनीपुरी दी। ये वहाँ जाकर रहने लगे। उनकी रचाके लिये कुछ भरोररचक नियुक्त हुए। इस तरह कई वर्षे भीत जानेपर एकदिन राजा अगोकने एक नौकरसे सुना, कि कुपालका अध्ययनकाल उपस्थित हुआ है, यह सुनकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुए और तुरत ही उन्होंने अपने हाथसे कुपालको एक पत्र लिखा। सङ्घ ही समयमें पा जानेके लिये यह पत्र प्राकृत भाषामें ही लिखा गया। उसमें एक जगह 'अध्ययन करो' के स्थानमें 'अधीत' लिखा गया था।

जिस समय राजा पत्र लिख रहे थे, उस समय उनके पास कुपालकी एक विमाता बैठी हुई थी। पत्रकी धीरे धीरे राजाके हाथसे निकर उसने पढ़ा। पढ़नेपर उसके मनमें हिंसा उत्पन्न हुई। कुपालको राज्यमें अहित कर अपने पुत्रकी राजसिंहासनपर बैठानेके लिये वह मन ही मन कोई उपाय सोचने लगी। उसी समय राजा कुछ धनमने हो उठे। अथमर पाकर कुपालकी विमाताने अपनी वामना पूर्ण की। पत्रमें जहाँ 'अधीत' लिखा था, उसमें अपनी आँखके काजससे एक विन्दु बैठकर 'अधीत' को उसने 'अधीत' बना दिया। राजाने भ्रष्टगने दूसरी बार पत्रकी नहीं पढ़ा, अपने नामकी मुहर देकर बिहीकी उच्छयिनी भेज दिया।

उधर कुपालने पित्रनामाहित पत्रको पाकर पढ़ने से माये पर चढ़ाया, फिर एक वाचकमें उसे पढ़ाने लगे, पत्र पढ़कर एकदम विपन्न हो गया। उसे विपन्न देख कुपाल आप ही पत्र पढ़ने लगे। पत्रमें 'अधीत' देख उन्होंने सोचा, कि हमारे मौर्यवंशमें कभी किसीने गुप्तकी प्राप्ति सहन नहीं की। पत्रपत्र यदि मैं कढ़, तो सभी मेरे हटानापर चर्चेंगे। सुतर्ग में गुप्तकी प्राप्ति सहन न करूँगा। इतना वह उच्छयि

श्रीशैला राज और राजकुमारों के खबर निम्न विमु-
 खना इत्यादि कहते हैं, कि नहीं, हमपर क्या रचना
 होना । प्रजापति इत्यादि, चमत्कार वा उदात्तका
 विचार ना ठगोकी बात सुननेके लिये प्रतिवेदकमन्य
 कर पाईं उन्हें धाम आ भजेंगे । जब काम गीत
 सुनकर ही शान्तिके लिये ही मन्त्रार्थमें विना चाहे
 दिया था ।

उस समय भी यद्यप्यमें घटित पश्यता होता था,
 यज्ञके लिये यद्यप्य करना ब्राह्मणधर्ममें निम्न नहीं
 परं यद्यप्य है । मन्त्रार्थमें शीघ्रता कर दो,—“वाचा-
 र्थे जिते किमी शीघ्रता कर करना पक्षार्थ है ।
 यद्यप्यमें भी शीघ्रता करना उचित नहीं । रात्र-
 रत्नगामांमं वाचारके लिये किमी शीघ्रता इत्या न
 होनी ।”

प्रियदर्शीनि निम्न रूपमें और दूरदर्शीय विभिन्न
 शापीतराश्यांमि भी मनुष्य एवं माधाराय यज्ञकी प्राच-
 र्थाके लिये दो प्रकारके विधिकानाम्य संस्थापन किये
 थे । जहां शीघ्रता न मिलती थी, यहां महीन वीज
 रोपन कराया था । उनको प्राज्ञाने सर्वसाधारणके
 लिये कुर्यं सुदवाये गये थे ।

उनके धर्मशास्त्रानका प्रचार होता है, कि नहीं
 और सर्वसाधारण तकके अनुसार काम करते हैं कि
 नहीं, यह देखनेके लिये प्रियदर्शीने अपने अभियेकके
 तैरह वर्षके बाद ‘धर्ममहामान्य’ नामका पुत्र अमा-
 लीकी नियुक्त किया था ।

इस समय सर्वसाधारणके हितके लिये प्रियदर्शीका
 विना चापरी धारण हुआ था, दूसरेके लिये उनका
 हृदय व्याकुल हो उठा था । इस समय उन्होंने ली
 गधर्म प्रचार किया, उसको मूल नीति यही थी,—

- १ शीघ्रताके परिणत, २ पितामाताको पश्यता,
- ३ यज्ञ और ज्ञानिजके साथ सहायकार, ४ ब्राह्मण
- एवं धर्मशैलीको दान देना और उनको श्रद्धा करना,
- ५ दीन और शर्मलीके साथ सहायकार, ६ विधर्मियोंके

• • • • •
 • • • • •

प्रति निम्नविमुखता, ० यम, भाग्यवि, कतहना और
 इदमस्ति ।*

गिरिनिधिमालाको चामोचना करनेमें विना नहीं
 मान्य होता, कि ये राजस्यके शीघ्रदर्शं एवं तत्र
 मन्त्रार्थकपी बोध हो गये थे । ब्राह्मणधर्ममें मानित
 मानित शोभनेके कारण ब्राह्मणधर्मपर भी उनका अनु-
 राग काम न हुआ था । पगोकाके पितामह यद्यप्य
 जेनधर्मशास्त्री थे । पथिक मन्थर है, कि चाभीरह
 और जेनधर्मधर्म उन्हीं यद्यपि परिणाममें गीता हो,
 और यद्यप्य एवं प्रागजुहिके साथ साथ शीघ्रदर्शीके
 प्रभावसे वे और भीर बोध हो गये हैं ।

दाशियास्यमें शीघ्रताके अन्तर्गत पितृननुर्गं अर्थात्
 निहापुरमें पाथिष्कृत गिरिनिधिमं लिया है,—

“देवगणके प्रिय (प्रियदर्शी) ने यह कहा है, कि
 टारि पर्यं पथिष्क मं उपासक था, किन्तु (इस समय
 भी) कोई चेता नहीं थी । छः वर्षकी, हमने भी
 पथिष्क समय तक मं मन्त्रमें उपगत था । उस समयमें
 (धर्म) की हृदिके लिये चेता की थी । जो सब
 मनुष्य (ब्राह्मण) मन्त्रशोषमें मन्त्र अनुमित थे, वे सब
 इस समय देवगणमन्त्रित असत्य प्रतिपन्न हुए ।” *

प्रियदर्शीने ठीक किस समय शीघ्रधर्म प्रकृत किया,
 यह जाननेका उपाय नहीं । उनकी तैरहवीं गिरि-
 निधिमं प्रकट है, कि उन्होंने अभियेकके अठार्वे वर्षके
 बाद (मन्त्रधर्ममें) कल्पित विजय किया । वहां बहुतने
 प्राचिरीकी इत्या देवकर उनके मन्त्रमें अनुगत हुआ ।
 उन्हीं अनुगापमें उनका मन धर्मपर धर दीक्षा । ऐं
 स्वधर्ममें विना मान्य पड़ता है, कि अभियेकके दस
 वर्षों में उपासक हुए ।

पानिमहावर्गके मतसे, राष्ट्रकामके बार वर्ष
 पगोकाका अभियेक हुआ । यदि यही मन्थ है, तो
 राष्ट्रकामके अन्तः शीघ्रदर्शं वर्ष बाद उन्होंने शीघ्रधर्म-
 प्रकृत किया । निम्नोक्तिमें अनुगापमें लिया है,
 अभियेकके शीघ्रदर्शं वर्ष बाद प्रियदर्शीने शीघ्र-
 धर्म नामक मन्त्रवृत्ते पूर्वकृत मन्त्रकी ब्रह्मणः

• • • • •

पदेरियाकी गिरिलिपिसे भी मालूम होता है, कि षष्ठशतके बीस वर्ष बाद उन्होंने प्राक्बुद्धके जन्मस्थान सुम्बिनी ग्राममें जाकर बुद्धकी पूजा की और उस ग्रामको बुद्धके उद्देशमें करारहित कर दिया।

प्रियदर्शीने बौद्धशास्त्रके प्रचारके लिये भी विगेष चेटा की थी। जयपुरके अन्तर्गत भावामे षष्ठशतक गिरिलिपिमें ऐसा ही लिखा है,—

‘राजा प्रियदर्शी मागधसङ्घकी षष्ठिवादन करके कहते हैं, निरायद सगुहिकी इच्छा करते हैं। पाप लोगोको मालूम है, बुद्ध, धर्म और सङ्घका प्रसाद और श्रमकामना करता हूं। भगवान् बुद्धने जो कुछ कहा है, सभी सुभाषित है। जहाँतक मैं चादेश कर सकता हूं वहाँ तक मैं उनकी घोषणा करना इमनिये उत्तम समझता हूं, कि उससे सहर्ष चिरस्थायी जोग, धर्मपर्याय यही हैं—विनयसमुत्कर्ष, धर्मव्यवस्था, अनागतभय, सुनिगाथा, मोनियसुख, उपतित्यप्रश्न और साधुलोधादमें नृपावाद, भगवान् बुद्ध कर्षक परिभाषित हैं। मेरी इच्छा है, कि बहुतसे भिक्षु और भिक्षुणियाँ अविरत इन धर्मपर्यायोंकी सुनें और ध्यान करें; उपासक और उपासिकायें भी ऐसा ही करें। इसी षष्ठिमाससे यह लिखवाया, जिसमें सर्व माधारणकी मेरी इच्छा मालूम हो जाय।’

उक्त धर्मपर्याय या धर्मशास्त्रोंमें कुछका आभाव पाया गया है। विनयसमुत्कर्ष—विनयपिटकका सारांग प्रातिमोक्ष (पातिमोक्ष), अनागतभय—सुखपिटकके पद्मसुरनिकायशास्त्रका ‘चारण्यकानागतभयसुख’, उपतित्यप्रश्न—विनयपिटकका महावग्गपत्रके ‘शारिपुत्र-प्रश्न’, सुनिगाथा—सुखपिटकके सुत्तनिपातके अन्तर्गत ‘सुनिगाथा’ नामक १२वाँ सुख, साधुलोधादमें नृपावाद—मज्झिमनिकायका पम्बनट्टिका राहुलोवाद नामक ११वाँ सुख।

सिंहलके दीपवंग और महावंगमें भी लिखा है, कि षष्ठशतके समयमें दूसरी धर्मसङ्गति हुई थी और उसमें बुद्धके उपदेशमूलक शास्त्रोंका संरक्षण हुआ था।

केवल स्वराज्यमें ही नहीं, विदेशमें भी धर्मप्रचार करनेके लिये प्रियदर्शीने विगेष यत्न किया था।

जहां अन्तिओक (Antiochus), तुलमय (Ptolemy), अलिकसुदर (Alexander) आदि यवराज राज्य करते थे। मिय, प्रोस प्रभृति सुदूरदेशोंमें भी प्रियदर्शीने धर्मप्रचारक भेजे थे। समेरामकी गिरिलिपिमें २५६ विबुध वा धर्मप्रचारकोंका उल्लेख है। सिंहलके दीपवंगमें दस प्रधान धर्मप्रचारकोंके नाम और उनमेंमें कौन किस देशमें भेजे गये थे, उल्लेख है। यथा,—कागमौर और गान्धारमें भग्नस्तिक (अध्यात्मिक), महिष (महिषुर) में महादेव, वन्यासी (वा उत्तर कामडा) में रक्षित, अपरान्त देशमें वास्तिक-देशीय धर्मरक्षित, महाराष्ट्रमें महाधर्मरक्षित, योन्देश (सिरीय और अन्त्यान्व चोकराण्यो) में महाधर्मरक्षित, इमवत्प्रदेशमें मज्झम (मध्यम), सुवर्णभूमि (ब्रह्म मलय आदि स्थानों) में मैन और उत्तर एवं सिंहलमें महेन्द्र (महिन्दे)।

बयोद्धि और राज्यवृद्धिके भाय माय प्रियदर्शीको दया भी विस्मय्यापिनी हो गई थी। उनके पक्ष में अज्ञानिपिमें लिखा है,—

‘देवगणके प्रिय राजा प्रियदर्शी यह कहते हैं, षष्ठशतके अन्त्यमें वर्ष बाद नीचे लिखे हुए जीनेका वध बन्द कर दिया गया—शुक, मारिका, पसुन, चक्रवाक, हंस, नान्दीमुख, गिनाट, जतुका, अम्बाक-पोलिका, ददी, अनाठिकामत्स्य, वेदवेयक, गङ्गापुत्रक, संयुद्धमत्स्य, कफटगण्यक, पक्षसग, रामर, पण्डक, चोक्रविण्ड, पलसत, खेतकपोत, धाम्यकपोत, और दूसरे दूसरे घोषाये, जो भोगमें नहीं पाते और स्वयं नहीं जाते; अजका (बकरी), एडुका (भेड़ी), शकरी, गर्भिणी वा दुग्धपती ये सभी पशुधर्म हैं। उनके हः महीनेमें कमके पक्ष भी पशुधर्म हैं। वधि-कुक्कुट न काटना, सुपमें जीव दण्ड न होना। अन्ति-टार्य वा सिंहाद्यं वनको न जलाना। जोषद्वारा पशु जीवका पोषण न करना। तीन चातुर्मास्य, पौष-पूर्वमा, चतुर्दशी, पञ्चदशी एवं प्रतिपदा और प्रति उपवासके दिन मत्स्य पशुधर्म हैं। इन सब दिनोंमें महासोकी बिक्री भी न होगी। उस दिन शाय-वन और खेवटभोगमें जो और और जीव रहेंगे, वे

जीर्वाका दान और पाखण्डियोंके ऊपर निन्दा-विमुखता इत्यादि चरते हैं, कि नहीं, इसपर सख्य रखना होगा। प्रजाकी इच्छा, अमात्य वा पञ्चायतका विवाद या ठगीकी बात सुनानेके लिये प्रतिवेदकगण जब चाहें उनके पास जा सकेंगे। सब काम गीन समझ्य हो जानेके लिये ही सम्राट्ने ऐसा आदेश किया था।

उस समय भी यज्ञयूपमें यथेष्ट पशुबध होता था, यज्ञके लिये पशुबध करना ब्राह्मणधर्ममें निन्दित नहीं वरं अनुष्ठेय है। सम्राट्ने घोषणा कर दी,—“आहारके लिये किसी जीवका बध करना अकर्त्तव्य है। यज्ञयूपमें भी जीवनशय करना उचित नहीं। राज-रन्धनशालामें आहारके लिये किसी जीवकी हत्या न होगी।”*

प्रियदर्शीने निज राज्यमें और दूरदेशीय विभिन्न स्थाधीनराज्योंमें भी मनुष्य एवं साधारण पशुकी प्राण-रक्षाके लिये दो प्रकारके चिकित्सालय संस्थापन किये थे। जहां शौपथ न मिलती थी, वहां नवीन वीज रोपन कराया था। उनकी आज्ञासे सर्वसाधारणके लिये जुये खुदवाये गये थे।

उनके धर्मानुशासनका प्रचार होता है, कि नहीं और सर्वसाधारण उसके अनुसार काम करते हैं कि नहीं, यह देखनेके लिये प्रियदर्शीने अपने अभियेकके तरह वर्षके बाद ‘धर्ममहामात्य’ नामक कुछ अमात्योंको नियुक्त किया था।†

इस समय सर्वसाधारणके हितके लिये प्रियदर्शीका चित्त आपही आलस्य हुआ था, दूसरेके लिये उनका हृदय ध्याकुल हो उठा था। इस समय उन्होंने जो सहर्म प्रचार किया, उसकी मूल नीति यही थी,—

१ जीवकी अहिंसा, २ पितामाताकी श्रद्धा,
३ वन्धु और प्रातिवर्गके साथ सहव्यवहार, ४ ब्राह्मण एवं अमर्याको दान देना और उनकी श्रद्धा करना,
५ दीन और श्रुत्योके साथ सद्व्यवहार, ६ विधर्मियोंके

प्रति निन्दाविमुखता, ७ अयम, भाववृद्धि, छतप्रता और दृढभक्ति।‡

गिरिलिपिमाताको भावोचना करनेसे ऐसा नहीं मालूम होता, कि वे राजत्वके चौदहवें वर्ष तक सम्पूर्णरूपसे बौद्ध हो गये थे। ब्राह्मणधर्ममें स्थापित पालित होनेके कारण ब्राह्मणधर्मपर भी उनका अनु-राग जास न हुआ था। अशोकके पितामह चन्द्रगुप्त जैनधर्मानुशासी थे। अधिक सम्भव है, कि आजीवक और जैनसंसर्गसे उन्होंने पहले अहिंसाधर्म मीठा हो, और वयोवृद्धि एवं ज्ञानवृद्धिके साथ साथ बौद्धाचार्योंके प्रभावसे वे धीरे धीरे बौद्ध हो गये हों।

दाक्षिणात्यमें मैसूरके अन्तर्गत चित्तलदुर्गके अधीन सिहापुरसे आविष्कृत गिरिलिपिमें लिखा है,—

“देवगणके प्रिय (प्रियदर्शी) ने यह कहा है, कि ठाढ़े वर्षसे अधिक मैं उपासक था, किन्तु (उस समय भी) कोई चेष्टा नहीं की। छः वर्ष कहीं, उससे भी अधिक समय तक मैं सहर्म उपासक था। उस समयमें (धर्म) की हृदिके लिये चेष्टा की थी। जो सब मनुष्य (ब्राह्मण) लभ्युद्धीपमें सत्य अनुमित थे, वे सब इस समय देवगणसहित असत्य प्रतिपन्न हुए।”§

प्रियदर्शीने ठीक किस समय बौद्धधर्म ग्रहण किया, यह जाननेका उपाय नहीं। उनकी तैरहवों गिरिलिपिसे प्रकट है, कि उन्होंने अभियेकके छाठवें वर्षके बाद (नववर्षमें) कलिङ्ग विजय किया। यहां बहुरूपे प्राणियोंको हत्या देखकर उनके मनमें अनुताप हुआ। उसी अनुतापसे उनका मन धर्मपथपर दीड़ा। ऐं स्थलमें ऐसा मालूम पड़ता है, कि अभियेकके दसवें वर्ष वे उपासक हुए।

पालिमहावंशके मतसे, राज्यलाभके चार वर्ष बाद अशोकका अभियेक हुआ। यदि यही सब है, तो राज्यलाभके अन्ततः चौदह वर्ष बाद उन्होंने बौद्धधर्म ग्रहण किया। निम्बीवके अनुशासनमें लिखा है, अभियेकके चौदह वर्ष बाद प्रियदर्शीने कोषा-गमन नामक गतबुद्धके पूर्वस्थित स्तूपको बढ़ाया।

* • • शी' गिरिलिपि।

† पथम गिरिलिपि।

• गिरिलिपि। † पथम गिरिलिपि। ‡ सधम गिरिलिपि।

पदेरियाकी गिरिलिपिसे भी मालूम होता है, कि अभियेकके बीस वर्ष बाद उद्धेनि शास्त्रबुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनी ग्राममें जाकर बुद्धकी पूजा की और उस ग्रामको बुद्धके उद्धेगमें कररहित कर दिया।

प्रियदर्शीने बौद्धशास्त्रके प्रचारके लिये भी विग्रेष चेटा की थी। जयपुरके अस्तगत भावामे आबिष्कृत गिरिलिपिमें ऐसा ही लिखा है,—

‘राजा प्रियदर्शी मागधसद्वकी अभिवादन करके कहते हैं, निरापद समृद्धिकी इच्छा करते हैं। आप लोगोको मालूम है, बुद्ध, धर्म और सद्गुणका प्रसाद और शुभकामना करता है। भगवान् बुद्धने जो कुछ कहा है, सभी सुभाषित है। जहाँतक मैं आदेश कर सकता हूँ वहाँ तक मैं उसकी घोषणा करना इसलिये उत्तम समझता हूँ, कि उससे सधर्म विरहायी लोग, धर्मपर्याय यही हैं—विनयमसुत्तार्थं, आर्य्यवम, धनागतभय, सुनिगाया, मोनियसूत्र, उपतिथप्रश्न और साधुलोवादमें न्यायाद, भगवान् बुद्ध कर्त्तव्य परिभाषित हैं। मेरी इच्छा है, कि बुद्धतमे भिक्षु और भिक्षु शिष्या अविरत इन धर्मपर्यायोंको सुनें और ध्यान करें; उपासक और उपासिकायें भी ऐसा ही करें। इसी अभिप्रायसे यह लिखवाया, जिसमें सर्व साधारणको मेरी इच्छा मालूम हो जाय।’

उक्त धर्मपर्याय या धर्मशास्त्रोंमें कुछका आभाव पाया गया है। विनयमसुत्तार्थं—विनयपिटकका सारांश प्रातिमोक्ष (पातिमोक्ष), अनागतभय—सूत्रपिटकके अष्टसत्तरनिकायशाखाका ‘धारणकानागतभयसूत्र’, उपतिथप्रश्न—विनयपिटकका महावग्गपत्रके ‘गारिपुर-प्रश्न’, सुनिगाया—सूत्रपिटकके उत्तनिपातके अस्तगत ‘सुनिगाया’ नामक १२वां सूत्र, साधुलोवादमें न्यायाद—मज्झिमनिकायका पम्बसत्तिका राहुलोवाद नामक ६१वां सूत्र।

सिंहके दीपवंश और महावंशमें भी लिखा है, कि अशोकके समयमें दूसरी धर्मसङ्गति हुई थी और उसमें बुद्धके उपदेशमूलक शास्त्रोंका संघट्ट हुआ था।

केवल स्त्राण्वमें ही नहीं, विदेशमें भी धर्मप्रचार करनेके लिये प्रियदर्शीने विग्रेष यत्न किया था।

जहां अन्तिओक (Antiochus), तुलमय (Ptolemy), अलिकसुदर (Alexander) आदि यवनराज राज्य करते थे। मिय, प्रोस प्रभृति सुदूरदेशमें भी प्रियदर्शीने धर्मप्रचारक भेजे थे। मसेरामकी गिरिलिपिमें २५६ विद्यु या धर्मप्रचारकोंका उल्लेख है। सिंहके दीपवंशमें दश प्रधान धर्मप्रचारकोंके नाम और उनमेंमें कौम किस देशमें भेजे गये थे, उसका उल्लेख है। यथा,—कागमीर और गान्यारमें मज्झनिक (मध्यनिक), महिप (महिपुर) में महादेव, यनगामी (या उत्तर कानडा) में रचित, पपरामा देशमें आन्तिकदेशीय धर्मरचित, महाराष्ट्रमें महाधर्मरचित, योनदेश (सिरीय और अन्धान्य चौकराण्य) में महाधर्मरचित, हिमवत्पदेशमें मज्झम (मध्यम), सुवर्णभूमि (ब्रह्म मलय आदि स्थानों) में मैन और उत्तर एवं सिंहलमें महेन्द्र (महिन्दो)।

वयोवृद्धि और राज्यवृद्धिके साथ साथ प्रियदर्शीको दया भी विद्यव्यापिनी हो गई थी। उनके पद्यम अश्वभिनयिमें लिखा है,—

देवगणके प्रिय राजा प्रियदर्शी यह कहते हैं, अभियेकके छत्तीस वर्ष बाद नीचे लिखे हुए जीवोंका बध बन्द कर दिया गया—शूक, सारिका, धनुज, चक्रवाक, हंस, नाग्योसुख, गिनाद, जतुका, अम्बाक्योलिका, ददी, अनटिकामत्स्य, वेदवेद्यक, गङ्गापुत्रक, संयुद्धमत्स्य, कफटगण्यक, पचसम, श्मर, पण्डक, चोकपिण्ड, पलमत, श्वेतकपोत, धाम्यकपोत, और दूसरे दूसरे पौषाद्य, जो भोगमें नहीं जाते और खाये नहीं जाते; अत्रका (बकरी), एहका (भेड़ी), गूकरी, गरुडिणी वा दुग्धयती ये सभी पशु हैं। उनके छः महीनेमें कमठे पचे भी पच्य हैं। बधिकुण्ड न काटना, गुपमें जीव दम्भ न होना। अनिष्टार्थ वा हिंसायें बनको न जलाना। जीवद्वारा अन्न जीवका पोषण न करना। तीन आतुमस्य, दोषपूर्विका, अतुदमी, पचदमी एवं प्रतिपद और प्रति उपवासके दिन मत्स्य पच्य हैं। इन सब दिनोंमें महसोकी बिक्री भी न होनी। उस दिन नागधन और केवटभोगमें जो और और जीव रहेंगे, वे

जीविका दान और पाषण्डियोंके ऊपर निन्दा-विमु-
खता इत्यादि चलते हैं, कि नहीं, इसपर लक्ष्य रखना
होगा। प्रजाकी इच्छा, अमात्य या पञ्चायतका
विवाद वा ठगीकी बात सुनानेके लिये प्रतिवेदकगण
जब चाहें उनके पास जा सकेंगे। सब काम शीघ्र
सुसम्पन्न हो जानेके लिये ही सम्राट्ने ऐसा आदेश
किया था।

उस समय भी यज्ञयूपमें यथेष्ट पशुवध होता था,
यज्ञके लिये पशुवध करना ब्राह्मणधर्ममें निन्दित नहीं
वरं अनुष्ठेय है। सम्राट्ने घोषणा कर दी,—“आह्वार
के लिये किसी जीवका वध करना अकर्तव्य है।
यज्ञयूपमें भी जीवनाश करना उचित नहीं। राज-
रत्नशालामें आहारके लिये किसी जीवकी इत्या न
होगी।”*

प्रियदर्शीने निज राज्यमें और दूरदेशीय विभिन्न
स्वाधीनराज्योंमें भी मनुष्य एवं साधारण पशुकी प्राण-
रक्षाके लिये दो प्रकारके चिकित्सालय संस्थापन किये
थे। जहाँ औषध न मिलती थी, वहाँ नवीन वीज
रोपन कराया था। उनकी आज्ञामें सर्वसाधारणके
लिये कुये खुदवाये गये थे।

उनके धर्मानुयासनका प्रचार होता है, कि नहीं
और सर्वसाधारण उसके अनुसार काम करते हैं कि
नहीं, यह देखनेके लिये प्रियदर्शीने अपने अभियेकके
तेरह वर्षके बाद ‘धर्ममहामात्य’ नामका कुछ अमा-
त्योको नियुक्त किया था।†

इस समय सर्वसाधारणके हितके लिये प्रियदर्शीका
चित्त आपसी आझट हुआ था, दूसरेके लिये उनका
हृदय व्याकुल हो उठा था। इस समय उन्होंने जो
सहर्म प्रचार किया, उसकी मूल नीति यही थी,—

१ जीवकी अहिंसा, २ पितामाताकी श्रद्धा,
३ धनु और ज्ञातिवर्गके साथ सहयवहार, ४ ब्राह्मण
एवं अमर्षोको दान देना और उनकी श्रुत्या करना,
५ दीन और शत्रुको साथ सद्व्यवहार, ६ विधर्मियोंके

प्रति निन्दाविमुखता, ७ अम, भावशक्ति, उक्तज्ञता और
दृढभक्ति।*

गिरिलिपिमालाकी आलोचना करनेसे ऐसा नहीं
मालूम होता, कि वे राजत्वके चौदहवें वर्ष तक
सम्पूर्णरूपसे बौद्ध हो गये थे। ब्राह्मणधर्ममें लालित
पालित होनेके कारण ब्राह्मणधर्मपर भी उनका अनु-
राग झस न हुआ था। अशोकके पितामह चन्द्रगुप्त
जैनधर्मानुरागी थे। अधिक सम्भव है, कि आजीवक
और जैनसंसर्गसे उन्होंने पहले अहिंसाधर्म सीखा हो,
और वयोवृद्धि एवं ज्ञानवृद्धिके साथ साथ बौद्धाचार्योंके
प्रभावसे वे धीरे धीरे बौद्ध हो गये हों।

दाक्षिणात्यमें मैसूरके अन्तर्गत चित्तलदुर्गके अधीन
सिंहापुरसे आविष्कृत गिरिलिपिमें लिखा है,—

“देवगणके प्रिय (प्रियदर्शी) ने यह कहा है, कि
टाई वर्षसे अधिक मैं उपासक था, किन्तु (उस समय
भी) कोई चेष्टा नहीं की। छः वर्ष क्वीं, उससे भी
अधिक समय तक मैं सद्धर्ममें उपगत था। उस समयमें
(धर्म) की वृद्धिके लिये चेष्टा की थी। जो सब
मनुष्य (ब्राह्मण) जन्मदोषमें सत्य अनुमित थे, वे सब
इस समय देवगणसहित असत्य प्रतिपन्न हुए।”†

प्रियदर्शीने ठीक किस समय बौद्धधर्म ग्रहण किया,
यह जाननेका उपाय नहीं। उनकी तेरहवीं गिरि-
लिपिसे प्रकट है, कि उन्होंने अभियेकके आठवें वर्षके
बाद (नववर्षमें) कलिङ्ग विजय किया। वहाँ बहुतसे
प्राणियोंकी इत्या देखकर उनके मनमें अनुताप हुआ।
उसी अनुतापसे उनका मन धर्मपथपर दौड़ा। ऐसे
स्थलमें ऐसा मालूम पड़ता है, कि अभियेकके दशवें
वर्ष वे उपासक हुए।

पालिमहावंशके मतसे, राज्यलाभके चार वर्ष बाद
अशोकका अभियेक हुआ। यदि यही सच है, तो
राज्यलाभके अन्ततः चौदह वर्ष बाद उन्होंने बौद्धधर्म-
ग्रहण किया। निम्नीवके अनुयासनमें लिखा है,
अभियेकके चौदह वर्ष बाद प्रियदर्शीने कोणा-
गमन नामक गतबुद्धके पूर्वस्थित स्तूपको बढ़ाया।‡

* १० गी' गिरिलिपि।

† पथम गिरिलिपि।

* द्वितीय गिरिलिपि। † पथम गिरिलिपि। ‡ सप्तम गिरिलिपि।

पदेरियाकी गिरिलिपिसे भी मालूम होता है, कि अभियेकके बीस वर्ष बाद उन्होंने शाक्यबुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनी ग्राममें जाकर बुद्धकी पूजा की और उस ग्रामको बुद्धके उपदेशमें करारहित कर दिया।

प्रियदर्शीने बौद्धशास्त्रके प्रचारके लिये भी विशेष चेष्टा की थी। जयपुरके अन्तर्गत भाद्रासे आविष्कृत गिरिलिपिमें ऐसा ही लिखा है,—

‘राजा प्रियदर्शी भागधसहको अभिवादन करके कहते हैं, निरापद सन्निहिकी इच्छा करते हैं। आप लोगोंकी मालूम है, बुद्ध, धर्म और सहका प्रसाद और शुभकामना करता है। भगवान् बुद्धने जो कुछ कहा है, सभी सुभाषित है। जहांतक मैं आदेश कर सकता हूं वहां तक मैं उसकी घोषणा करना इसलिये उत्तम समझता हूं, कि उससे सहमें चिरस्थायी होगा, धर्मपर्याय यही है—विनयसमुत्कर्ष, आर्य्यवस, अनागतभय, सुनिगाथा, मोनेयसूत्र, उपतिथ्यग्रन्थ और लाघुलोवाद्में श्रुपावाद, भगवान् बुद्ध कष्टक परिभाषित हैं। मेरी इच्छा है, कि बहुतसे भिक्षु और भिक्षुणियां अविरत इन धर्मपर्यायोंको सुनें और ध्यान करें; उपासक और उपासिकायें भी ऐसा ही करें। इसी अभिप्रायसे यह लिखवाया, जिसमें सर्व साधारणकी मेरी इच्छा मालूम हो जाय।’

उक्त धर्मपर्याय वा धर्मशास्त्रोंमें कुछका आभास पाया गया है। विनयसमुत्कर्ष—विनयपिटकका सारांश प्रातिमोक्ष (पातिमोक्ख), अनागतभय—सूत्रपिटकके अश्रुत्तरनिकायशाखाका ‘आरखकानागतभयसूत्र’, उपतिथ्यग्रन्थ—विनयपिटकका महावग्ग ग्रन्थके ‘शारिपुत्र-ग्रन्थ’, सुनिगाथा—सूत्रपिटकके सुत्तनिपासके अन्तर्गत ‘सुनिगाथा’ नामक १२वां सूत्र, लाघुलोवाद्में श्रुपावाद—मज्झिमनिकायका अम्बलट्ठिका राहुलोवाद् नामक ६१वां सूत्र।

सिंहलके दीपवंश और महावंशमें भी लिखा है, कि अशोकके समयमें दूसरी धर्मसंज्ञाति हुई थी और उसमें बुद्धके उपदेशमूलक शास्त्रोंका संग्रह हुआ था।

केवल स्त्रारण्यमें ही नहीं, विदेशमें भी धर्मप्रचार करनेके लिये प्रियदर्शीने विशेष यत्न किया था।

जहां अन्तिओक (Antiochus), प्लेमस (Ptolemy), अलिकसुदर (Alexander) आदि यवनराज राज्य करते थे। मित्त, यौस प्रकृति सुदूरदेशोंमें भी प्रियदर्शीने धर्मप्रचारक भेजे थे। सहैरामकी गिरिलिपिमें २५६ विधुव धर्मप्रचारकोंका उल्लेख है। सिंहलके दीपवंशमें दश प्रधान धर्मप्रचारकोंके नाम और उनमेंसे कौन किस देशमें भेजे गये थे, उसका उल्लेख है। यथा,—काशमीर और गान्धारमें भग्गन्तिक (मध्यान्तिक), महिप (महिसुर) में महादेव, वनवासी (वा उत्तर कानड़ा) में रचित, अपरान्त देशमें वाल्किदेशीय धर्मरचित, महाराष्ट्रमें महाधर्मरचित, योनदेश (घिरीय और अन्यान्य श्रीकरान्त्यों) में महारचित, हिमवत्पदेशमें मज्झम (मध्यम), सुवर्णभूमि (ब्रह्म मलय आदि स्थानों) में सेन और उत्तर एवं सिंहलमें महेन्द्र (महिन्द्र)।

वयोवृद्धि और राज्यवृद्धिके साथ साथ प्रियदर्शीकी दया भी विश्वव्यापिनी हो गई थी। उनके पञ्चम स्तम्भलिपिमें लिखा है,—

‘द्वैगणके प्रिय राजा प्रियदर्शी यह कहते हैं, अभियेकके छत्तीस वर्ष बाद नीचे लिखे हुए ज्योंका वध बन्द कर दिया गया—शुक, सारिका, अतुन, चक्रवाक, हंस, नान्दीमुख, गिलाट, जतुका, अम्बाकपीलिका, ददी, अण्टिकामत्स्य, वेदवेयक, गन्नापुवक, संयुद्धमत्स्य, कफटशल्क, पन्नसस, समर, पण्डक, भोकपिण्ड, पलसस, श्वेतकपोत, घाम्यकपोत, और दूसरे दूसरे चौपाये, जो भोगमें नहीं आते और खाये नहीं आते; अजका (वकरी), एहका (मेडी), शूकरी, गर्भिणी वा दुग्धयती ये सभी अवधय हैं। उनकी छः महीनेसे कमके वधे भी अवधय है। यधि-कुक्कट न काटना, तुपमें जीव दण्ड न होना, अग्नि-घात वा हिंसार्थ वनकी न जलाना। जीवहारा अन्य जीवका पोषण न करना। तीन घातुर्मास्य, पौष-पूर्णिमा, चतुर्दशी, पशुदशी एवं प्रतिपद् और प्रति उपासके दिन मत्स्य अवधय है। इन सब दिनोंमें मछलीकी बिक्री भी न होगी। उस दिन नाग-वन और केवटभोगमें जो और और जीव रहेंगे, वे

भी अथर्व है। अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा, तिय और पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त दिन, तीन चातुर्मास्य, और पर्वदिनमें द्रप, अज, भेष, शूकर और अन्यान्य जीव खासि न किये जायंगे। तिय और पुनर्वसु, चातुर्मास्य पूर्णिमा और चातुर्मास्य पक्षमें पशु वा गोको स्थावित न करना।

वे बौद्धधर्मावलम्बी और बौद्धोंपर अनुरक्त होनेपर भी ब्राह्मण और अमणपर समान भक्ति दिखाते थे। बौद्ध होनेके बाद उन्होंने यज्ञमें पशुबध होनेकी निन्दा की है और 'जो सब मनुष्य जन्मूद्योपमें सत्य अनुमित होते भव देवगणसहित असत्य प्रतिपन्न हुए' इत्यादि उक्ति द्वारा ब्राह्मणधर्मपर कटाक्ष करनेपर भी वे विद्वान् ब्राह्मणका यथेष्ट समादर करते थे।

वे जीवनके अन्ततक बौद्ध रहे, कि नहीं, सो नहीं कहा जा सकता। वे अभिषेकके बीस वर्ष बाद प्राजीवक जैनियोंपर भी सदैव हुए थे, यह बराबरकी लिपिसे प्रकट होता है। इसीसे कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अशोकने अन्तमें प्राजीवकधर्म अवलम्बन किया था। जैन ग्रन्थोंसे भी मालूम होता है, कि अशोककी जीवहार्म राज्यकाल शेष हो जानेपर और उनके शिशुपौत्र सम्यतिके उनके द्वारा राजपद लाभ करनेपर पाटलिपुत्रमें श्रीसङ्घ बुद्धा था, और पहले बौद्धशास्त्र जिस तरह संरक्षित हुआ था, इस श्रीसङ्घमें उसी तरह जैनाचार्यों ने जैनशास्त्र संग्रह किया था।

अशोक प्रियदर्शीका कालनिर्णय।

'तीत्युगलिय-पयव' और 'तीर्थोद्धारप्रकीर्ण'।

- 'ज' स्वर्णं सिद्धिगणो अरुं तित्थ'करो महावीरो ।
तं रथविमर्षतिराचमिषिणो पाणथो राया ॥
पाण्यगरथो सरो पथपथसय विषाय नंदाथं ।
मरुथायं अइसयं तोसापुष पूयनिपाथं ॥
बलमिष-भातुमिषा सरोषपाय होति मरुसेवे ।
महमसयमंगं पुष पणिवथो तो सरोराया ॥
पंचयमासा पंचयवासा अये वहुंति पासयथां ।
परिमिषयथ अरुहो उपांथो सरो राया ॥ (तीत्युगलियपयवग)
- † 'ज' स्वर्णं स्थाण्यो अरिहा तित्थ'करो महावीरो ।
तं रथविं अर्थति वरं अमिषिणो पाणयो राया ॥ १ ॥

नामक प्राचीन जैन-शास्त्रके मतसे जिस रातको तीर्थोद्धार महावीर स्वामीने सिद्धि पायी, उसी रातको पालक राजा अश्वतीके सिंहासनपर बैठे थे। पालकवंश ६०, उसके बाद नन्दवंश १५५, मौर्यवंश १०८, पुष्यमित्र १०, बलमित्र एवं भातुमित्र ६०, नरसेन वा नरवाहन ४०, गर्दभिल ११ और शकराजने ४ वर्ष राजत्व किया। महावीरस्वामीके परिनिर्वाणसे शकराजके अभ्युदयकाल पर्यन्त ४०० वर्ष बीते थे। इधर सरस्वती-गच्छकी पट्टावलीसे देखते, कि विक्रमने उक्त शकराजको हराया सही, किन्तु सोलह वर्ष तक राज्याभिषिक्त न हुए। उक्त सरस्वती-गच्छकी गायामें अष्ट लिखा है,—'वीरात् ४८२, विक्रमजन्मान्त वर्ष २२, राज्यान्त वर्ष ४' अर्थात् शकराजके ४०० और विक्रमभिषेकाब्दके ४८८ अर्थात् सन् ६०० से ५४५-४ वर्ष पहले महावीरस्वामीको मोच मिला था।

पूर्ववर्ती ऐतिहासिक वीरमोचके ४०० वर्ष बाद शकराजका पराजय और विक्रमका अभिषेक-मान सन् ६०० से ५२७ वर्ष पहले वीरमोचाब्द ठहराते रहे। किन्तु अब हम सरस्वतीगच्छकी गायामें अच्छी तरह समझते हैं, कि वह भी १७ वर्ष बाद अर्थात् सन् ६०० से ५४५ वर्ष पहले वीरमोच हुआ था। आश्चर्यका विषय है, कि सिंहल, ब्रह्म, श्याम प्रभृति बौद्ध-समाजमें उक्त वीरमोचके दूसरे वर्ष ही बुद्धका निर्वाणाब्द निर्णीत किया गया। सिंहलवाले पाली महावग्गके मतसे बुद्ध-निर्वाणके २१८ वर्ष बाद अशोकका राज्याभिषेक हुआ था। इधर जैनाचार्य हेमचन्द्रके परिशिष्टपर्वमें लिखा है,—'वीरमोचाब्दके

सही पालय रानी पथपथसयंतु होई मंदाथं ।
अइसयं सुरियाणं तीर्थविषि पुषु अमिषसु ३ १ ॥
बलमिष-भातुमिषा सरो वरिमाविं अये मरुवाधो ।
तथ महमिषरणी तिरुवरिहा सयसु स वर ३ १ ॥
(तीर्थोद्धारप्रकीर्ण)

‡ 'जिननिम्बानतो पञ्चापुरे तसु सामिषिकतो ।

अट्टारसुं असुसयं इयमं विज्ञानिथं ॥

(महावंश ३ म परि०)

१५५ वर्ष बाद चन्द्रगुप्तका अभिषेक हुआ। महा-
वंश और परिशिष्टपर्वके उक्त प्रमाणको मान हमने
किसी समय सन् ई०से ३०२ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त
और ३२५ वर्ष पहले अशोकका राज्याभिषेक स्थिर
किया था। किन्तु आजकल तीस्युगालियपयत्र,
तीर्थोद्धारप्रकीर्ण एवं सरस्वती प्रभृति गच्छुकी प्राचीन
गाथासे देखते, कि वीरमोक्षके दिन ही अर्थात् सन्
ई०से ५४५ वर्ष पहले पालकराजका अभिषेक हुआ
और पालकवंशने ६० वर्ष राज्य किया। हेमचन्द्रके
अपने परिशिष्टपर्वमें पालकवंशका ६० वर्ष एक-
वारगी ही छोड़ देनेसे उनकी गणनामें भूल पड़ी।
हम वृहस्प-खरतरगच्छु एवं तपागच्छुकी पट्टावलीसे
समझ सकते, कि नन्दवंशके लच्छेद और चन्द्रगुप्तके
अभिषेक-वर्ष ही पट्टधर स्थूलभद्रने मोक्ष पाया था।
वीरमोक्षके २१८ वर्ष बाद ही यह घटना हुई।
जैन ग्रन्थ देखो: ऐसे स्थलमें प्राचीन जैनसम्प्रदायके
मतसे (५४५-२१८) सन् ई०के ३२६-२५ वर्ष पहले
चन्द्रगुप्तका अभिषेक हुआ था।

इधर सिंघलके दीपवंशमें विनयाचार्य स्वधिर-
गणका इसी तरह काल माना गया है। उपाली ७४,
दशक ५०, सोमक ४४, सिंगव ५५ और तिस्र
मोगलपुत्तका ६८ वर्ष काल बताते हैं। सिंघलके
महावंशमें लिखा है शाक्यबुद्धके परिनिर्वाण बाद
उपाली ही विनयाचार्य हुए थे। उधर दीपवंशमें
लिखा है,—अशोकाभिषेकके २७म वर्षमें मोगलि-
पुत्तने मोक्ष पाया। सुतरां दोपवंश और महावंशके
आचार्यपरम्परासे समझ सकते, कि बुद्धनिर्वाणके
(७४+५०+४४+५५+६८) २८१ वर्ष बाद अशो-
ककी बात है। इस गुरुपरम्पराके अनुसार बुद्ध-
निर्वाणके २१८ वर्ष बाद अशोकका अभिषेक ही नहीं
सकता। राजकीय विवरणोंकी अपेक्षा धर्माचार्यगण
गुरुपरम्परासे इतिहासकी भति सावधान हो रक्षा
करते थे। ऐसी दशामें गुरुपरम्परासे इतिहास सम-
धिक विश्वासयोग्य है। पूर्वमें जैनशास्त्रानुसार बता
दिया है, कि सन् ई०से ३२६-२५ वर्ष पहले चन्द्र-
गुप्तका अभिषेक हुआ था। ठीक उसी समय बुद्ध-

निर्वाणार्थ २१८ वर्ष होता है। उल्लसकी खण्ड-
गिरिस्थ हाथी-गुफावाले खारवेण-भीखुराजके मिला-
लेखसे समझ सकते हैं, कि उक्त कतिहराजके समय
पर्यन्त मौर्याब्द चलता रहा। कछनेसे क्या है—
चन्द्रगुप्तके अभिषेकसे ही मौर्याब्द चला था। सभ-
वतः महावंशकारने भ्रमक्रमसे चन्द्रगुप्तका अभि-
षेकाब्द वा मौर्याब्द ही अशोकका अभिषेकाब्द समझ
लिया होगा। जो हो, अब बौद्ध और जैन उभय
शास्त्रसे मालूम पड़ता, कि वीरमोक्ष २१८ एवं बुद्ध-
निर्वाणके २१८ वर्ष बाद चन्द्रगुप्तका अभिषेक हुआ
था। हिन्दू, बौद्ध और जैन—इन तीनों सम्प्रदायकी
विवरणों देखनेसे समझ पड़ता, कि चन्द्रगुप्त २४,
उनके पुत्र विन्दुसार २५ और उनके पुत्र अशोकने
३६ वर्ष (अभिषेकसे ४ वर्ष पूर्व) राजत्व किया।
ऐसे स्थलमें सन् ई०से २७७-७६ वर्ष पहले अशो-
कने राज्य पाया और सन् ई०से २७३-२७२ वर्ष
पहले राज्याभिषेक हुआ था। [चन्द्रगुप्त और मौर्यवंशमें
विलुप्त विवरण देखना चाहिये।]

अशोकके चरितकी समीक्षा।

वीहके प्राविर्भावकालसे अबतक भारतमें जितने
राजा राज्य कर गये हैं, उनमें किसीके साथ प्रिय-
दर्शीकी तुलना नहीं होती। जीवनके प्रथमभागमें जो
उच्चत प्रकृति, भरोशीणतलिसा एवं स्वगणविद्देशके
कारण समाजकी दृष्टिमें अतिदृष्ट्य और निन्दास्पद हो
उठा था, वही दुष्टप्रकृति सभोग और सभुद्धिकी गोदमें
लान्जितपालित होनेपर भी कैसा संशोभित एवं विग्रह
होकर अतुलनीय और भादृग्स्वरूप हो सकता है,
अशोकका चरित उसका प्रकट प्रमाण है। राज-
नीतिक कार्यकुशलता, युद्धनिपुणता एवं लोकचरित-
गिज्ञानमें उन्होंने भारतविभूत अकबरको भी पराजित
कर दिया था। वीर्यवत्ता और राज्यदृष्टिमें कोई
मोगल-सम्राट् उनके समकक्ष नहीं है। अकबर
जिस तरह विदेशियोंसे संस्त्र रखते, देगी विदेशों
सभी पण्डितोंका आदर सम्मान करते और हिन्दू,

सुसलमान, खूटान, पार्सी प्रभृति सभी प्रजाकी सम-
भावसे देखते थे, उसी तरह अशोक भी ग्रीस प्रभृति
दूरदेशीयोंके साथ सम्बन्ध रखते, ब्राह्मण या अमण
सभी पण्डितोंकी यथेष्ट अज्ञानता करते एवं हिन्दू,
बौद्ध, वैदिक प्रभृति सभीके उपकारके लिये समान यत्न
करते थे। बुद्धदेवका प्रचार किया हुआ धर्म भारतके
केवल कुछ ही अंशमें था, किन्तु इन्हीं अशोकके
समयमें बुद्धके विमल उपदेश समस्त एशिया, यहां
तक, कि युरोपखण्डमें भी प्रचारित हो गये।
अशोकके समयमें भी बौद्धधर्ममें विशेष जटिलता एवं
सुटिनाटीकी स्थान न मिला था। उनके अतुयासनमें
सबकीबीपर दया एवं साधारणकी प्रतिपाल्य साम्य-
नीति ही उपदिष्ट हुई है।

युरोपीय पुराविद्वगणने अशोकके साथ कनूटएटा-
इन, सोलोमन, लुई दी पायस् प्रभृति प्रातःधारण्य
धार्मिक राजगणकी तुलना की है।

अशोकमञ्जरी (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष। यह
पण्डक छन्दके अन्तर्गत है। इसमें २८ अक्षर होते
हैं और लघुगुरुका कोई नियम नहीं रहता।

अशोकमञ्ज—प्राचीन संस्कृत कवि। इन्होंने नृत्या-
ध्याय नामक ग्रन्थ लिखा था।

अशोकमञ्ज राजन्—निघण्टुसार नामक ग्रन्थ-रचयिता
प्राचीन संस्कृत-कवि।

अशोकरोहिणी (सं० स्त्री०) अशोक इव रोहति
या अशोक-रूढ-शिति। कटुका, कुटकी।

अशोकवन, अशोकवाटिका देखो।

अशोकवाटिका (सं० स्त्री०) १ अशोककी वाटिका,
जो फुलवारी अशोककी हो। २ रम्य उद्यान, जो
फुलवारी रञ्ज मिटाती हो। ३ रावणका प्रसिद्ध
उद्यान। जगज्जननी सीता इसीमें रहती थीं।

अशोकपट्टी (सं० स्त्री०) नास्ति शोको यस्याः,
नञ् ५-बहुव्री० ततः कर्म० पूर्वपदस्य पुंशब्दभावः।
चैत्रमासकी शुक्लपट्टी। चैत्र मासकी कृष्ण और
शुक्ल दोनों पट्टीकी पूजा की जाती है। इस
व्रतकी करनेसे शोक नहीं होता। किन्तु हम
लोगोंके देशमें स्त्री ही चैत्र मासकी शुक्ल पट्टीको

पूजन एवं छः अशोककी कली पान करती हैं, इसीको
अशोकपट्टी कहते हैं। इस दिन स्त्रियां न तो खेतसे
पेदा कोई चीज खातीं और न जोती जमीन पर पैर
ही रखती हैं। कहावत, है,—‘शोक खातीं न जोती रोतीं।’
‘आज मेरे बरतों में दो दो।’

अशोका (सं० स्त्री०) नास्ति शोको दुःखसेवनेन
यस्याः, नञ् ६-बहुव्री०। कटुका, कुटकी। चैत्र
शुक्ला पट्टी।

अशोकारि (सं० पुं०) अशोकौ हर्षतेऽनेन क-इन्
गुणः ततः पञ्चमी-तत् १ अशोकदायक, आराम
देनेवाला। २ कदम्बवृक्ष, कदम्बका पेड़।

अशोकाष्टमी (सं० स्त्री०) नास्ति शोकः यस्याः,
नञ्-५-बहुव्री०। चैत्रमासकी शुक्लाष्टमी। हेमाद्रिके
व्रतखण्डमें लिङ्गपुराणका एक वचन गृहीत हुआ है,
उसका अर्थ यही है, कि पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त चैत्र
मासकी शुक्ल अष्टमीमें जो अशोककी पाठ कलिका
पान करेगा, वह शोक प्राप्त न होगा। इसमें अशोक
कलिकाद्वारा रुद्रकी अर्चनाका विधान है।

जिस दिन ठाई पहरके समय अष्टमी हो उसी
दिन अशोककलिका पान करनेकी विधि है। पुन-
र्वसुनक्षत्रमें फलाधिक्य मात्र है। पुनर्वसुनक्षत्रका
योग न हो, तो केवल अष्टमीमें ही अशोकपान करना।
पुनर्वसुनक्षत्रयुक्त चैत्रमासकी शुक्ल-अष्टमीके वृषभमनमें
ब्रह्मपुत्रनदके जलमें स्नान करना आयत्तक है। पृथि-
वीमें जितने तीर्थ, नदी या सागर हैं, सभी उस
तिथिमें ब्रह्मपुत्रनदमें आते हैं। इसीसे उसमें स्नान
करनेसे समस्त पाप दूर हो जाता है। स्नानका मन्त्र,
यथा—

ब्रह्मपुत्र महाभाग शालगीः कुशमन्दन।

अशोकाष्टमिपूत पापं शीघ्रिण मे हर ॥

इस तिथिकी ब्रह्मपुत्रमें स्नान करनेके लिये बहुत
यात्री आते हैं। वहाँकी पुलिस विशेष यत्नके साथ
यात्रियोंकी हिफाजत करती है।

लौहित सरोवरसे ब्रह्मपुत्र निकला है, इसीसे
उसका नाम लौहित्य है। कालिकापुराणमें और
एक विधान यह है, कि नियतेन्द्रिय होकर चैत्रमास

भर लौहित्यके जलमें स्नान करनेसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है। विष्णुके मतसे यदि ब्रुधवारको पुनर्वसु नक्षत्र युक्त चैत्रमासकी शुक्ल अष्टमी हो, तो सब नदियोंमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल लाभ होता है।

अशोच (सं० पु०) शुच-अच् नञ्-तत्। शोका भाव, रक्षकी अटममौजूदगी।

अशोच्य (सं० त्रि०) शुच-कर्मणि-श्वत्, नञ्-तत्। १ शोकानर्ह, रक्ष न करने काबिल। २ धाम-घाती।

अशोधनेत्रपाक (सं० पु०) विना शोथ नेत्रपाकरोग, जिस आँखके फोड़ेमें सृजन न रहे।

अशोधन (सं० क्ली०) अभावे नञ्-तत्। १ शोध-नाभाव, सफाईकी अटममौजूदगी, गन्दगी, मैला-पन। २ भूलचक्र, गलती। (त्रि०) नाम्नि शोधनं यस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ शोधनशून्य, मैला-कुचैसा, गन्दा। ४ अशुद्ध, गलत।

अशोधित (सं० त्रि०) शुध्-णिच्-क्त इट् गुणः णिच् लोपः, ततः नञ्-तत्। १ जलादि द्वारा धीत न किया हुआ, मैला, गन्दा, जो पानी वगैरहसे भाफ, किया न गया हो। २ परिशोधन किया हुआ, जो अटा न किया गया हो। ३ शुद्ध न किया हुआ, जो सही न किया गया हो।

अशोभन (सं० क्ली०) शुभ-भावे-ल्युट्, अभावे नञ्-तत्। १ भङ्गलका अभाव, खुशीकी अटममौजूदगी। (त्रि०) कर्तरि ल्यु नञ्-तत्। २ कुरूप, जो खूबसूरत न हो। ३ कुत्सित, खराब, बुरा।

अशोरी (अशोरी) बर्षर्षे प्राप्सका याना जिलेके मडिम-ताङ्गुकका किला। यह पर्वतके शिखरपर अवस्थित है। इसके इधर उधर ऐसा उच्च स्थान नहीं पड़ता, जिसपर तोप लगाया जा सके। पर्वत काट कर एक सहीर्ण मार्ग निकाला गया है। इस मार्गमें दो मनुष्यके साथ आ-जा नहीं सकती। थोड़े ही वीर इसकी रक्षाको यथेष्ट होते और पाषाण लुढ़काकर कितनी ही सेनाको नाश कर सकते हैं। अस्सी वर्ष तक महाराष्ट्रका हमपर अधिकार रहा था। अशोरीपीय, अशोरीदेवी।

अशोथ्य (सं० त्रि०) शुष्-णिच्-श्वत् णिच् लोपः, नञ्-तत्। शोपण किये जानेको अशक्य, जिसे कोई सुखा न सके।

अशोच (सं० क्ली०) शुचिर्भावः शीचं ततो नञ्-तत्। शुद्धिका अभाव, शुचित्वका अभाव, अतिशास्त्रमसिद्ध विहित कर्ममें अनधिकारसम्पादक अशुभावस्था।

निकटके ज्ञातिकुटुम्बमें किसीकी मृत्यु होजाने किन्वा किसीके पुत्र-कन्या उत्पन्न होनेसे शरीर कुछ दिन अशुद्ध रहता है। इसीको हम लोग सचराचर अशोच कहते हैं।

शास्त्रमें दो प्रकारका अशोच निर्दिष्ट हुआ है,— कालकृत एवं वस्तुका स्वाभाविक धर्मकृत। शरीरमें व्रण आदि हो जानेसे जबतक वे सब अच्छे न हो जायें तबतक देह अशुचि रहती है। निकट ज्ञातिके किसीके पुत्र कन्या जन्मने या किसीकी मृत्यु होनेसे कुछ दिनके लिये शरीर अशुचि हो जाता है; इसका नाम कालकृत अशोच है। मल-मूत्र, चाण्डालादि जाति स्वभावतः अशुद्ध हैं।

ज्ञातिके पुत्र कन्या उत्पन्न होनेसे जो अशोच होता, उसे शुभ अशोच कहते हैं। ज्ञातिकी मृत्यु होनेसे जो अशोच होता है, उसका नाम अशुभ अशोच है।

अतिप्राचीन कालसे सब देशोंमें सभी जाति गुरु-जनकी मृत्युके बाद किसी न किसी तरहसे अशोच ग्रहण करती आती है। अशोचके समय शोक प्रकाश करनेके लिये कितने ही शोकसूचक वस्त्र धारण करते हैं। हमारे देशके हिन्दू मातापिताकी मृत्युके बाद गलेमें नये कपड़ेका टुथाहा बांधते हैं। अशोचके समयमें वे लोग तेल नहीं लगाते, जूता नहीं पहनते, छाता नहीं लगाते और हजामत नहीं बनवाते। दिनमें केवल हविष्यान्न भोजन करते और रातमें थोड़ासा दूध आदि पी लेते हैं। ऐंमें समयमें स्त्रीसं-र्गादि सब तरहके सुख भोग निषिद्ध हैं।

प्राचीन यहूदियोंमें अशोचकाल केवल सात दिन था, कोई कोई तीस दिन अशोच मानते थे। अशोचके समय सभी हजामत बनवा डालते, बन्ध फाड़

झासते, जूता न पहनते, तेल न लगाते और स्नान न करते थे। मंथम सञ्चित सभी भूमिपर सो रहते थे। ग्रौम देशवासी तीस दिन अशौच मानते थे। केवल स्पार्टावासीमें दश ही दिन अशौच माननेकी प्रथा थी। अशौचके समय वे लोग हजामत बनवाकर काला कपड़ा पहन लेते और किसीके सामने बाहर न होते थे। रोमदेशमें स्नामोके मरनेपर स्त्री एक वर्ष तक अशौच मानती थी, पर पुरुषोंका अशौच थोड़े ही दिन रहता था। अशौचके समय स्त्रियाँ सफेद और पुरुष काला कपड़ा पहनते थे। पहले स्पेनदेशवासी भी अशौचके समय सफेद कपड़ा ही पहनते थे। आजकल युरोपवासी अशौचके समय काला कपड़ा पहनते हैं; कोई-कोई हाथपर काला कपड़ा लगा लेते हैं। पत्र लिखनेके समय जो कागज और लिफाफा व्यवहार करते, उसके चारो ओर काली लकीर छपी रहती है। तुर्क लोग अशौचके समय गहरे नीले रङ्गका कपड़ा पहनते हैं।

हिन्दूओंके जनन और मरण अशौचका नियम यों है,—सात पुरुषतक ब्राह्मणका १० दिन, क्षत्रियका १२ दिन, वैश्यका १५ दिन और शूद्रका एक महीना। चाण्डाल, मेहतर, मोची आदि नीच जातिवाले केवल दश ही दिन अशौच मानते हैं।

अशौचके कुछ दिन बीत जानेपर यदि ज्ञाति कुटुम्बियोंको वह समाचार मिले, तो उन्हें बाकी कई दिन ही अशौच मानना होता है। मरणका अशौच बीत जानेके बाद यदि एक वर्षके भीतर ज्ञातियोंको वह समाचार मिले, तो तिराव अशौच रहता है। एक वर्षके बाद मरणाशौच सुननेसे सपिण्डगण स्नान करके शुद्ध हो जाते हैं। किन्तु एक वर्षके बाद मातापिताका मृत्यु-समाचार पानेपर पुत्रके लिये एक दिन अशौच रहता है। एक वर्षके बाद पतिकी मृत्युका समाचार पानेसे स्त्रियोंको एक दिन अशौच होता है। दूसरे वर्ष सुननेसे सद्यः अशौचान्त हो जाता है। किन्तु शुभ अशौच वा खण्डाशौच बीत जानेके बाद उसकी खबर मिलनेपर फिर अशौच नहीं मानना पड़ता।

दीर्घाशुक्की मृत्युके बाद तिराव अशौच होता है। जिससे वेदवेदाङ्गादि शास्त्र पटा जाता है, उसकी मृत्युका अहोरात्र अशौच होता है।

सब वर्षोंके लिये दश पुरुषतक जनन और मरण अशौच तिराव होता है और चोदह पुरुषतक पक्षिणी अर्थात् दो दिन और एक रात। (पूर्व दिन एवं मध्यकी रात और उसके बादका दिन, इसीका नाम पक्षिणी है)।

जन्मनाम स्मरणतक अर्थात् उभय पूर्वपुरुषोंके नाम स्मरणतक सब वर्षोंका एक दिन अशौच होता है। उसके बाद स्नान करके ज्ञातिगण शुद्ध हो जाते हैं। मातामहकी मृत्युमें तिराव।

मौसिरा भाई, फुफेर भाई, ममेरा भाई, भाञ्जा, पितामहीभगिनीपुत्र, पितामही-भ्राह्मपुत्र, दौहित्र, भगिनी, मामी, मातुल, मौसी, फूफू, गुरुपत्नी, माता-मही एवं एक ग्रामवासी खसुर सासकी मृत्युमें पक्षिणी। मातामह भगिनी पुत्र, मातामहीभगिनीपुत्र, मातामहीभ्राह्मपुत्र, और एक ग्रामवासी खसोत्र व्यक्तिके मरनेमें अहोरात्र। पितामाताकी मृत्युमें विवाहिता कन्याका तिराव अशौच। (विशेष विशेष कारणसे विशेष विशेष अशौचकालका विवरण शुद्धितत्त्वमें देखो)।

अशौचका समय बीतजानेपर सञ्जाति हिन्दू भोजन बनानेकी हांडी बर्गैरहको फेंक देते हैं। मरणाशौचके अन्तवाले दिन चौरकमादि करना पड़ता है। ज्ञातिगण घरसे कुछ दूर अथवा गांवके किनारे जाकर हजामत बनवाते; उसके बाद स्नान करके सब कोई घर आते हैं। मातापिताके मरणाशौचमें पुत्र इसी दिन पूरक पिण्डादि देते हैं। अन्तमें चौरकमेंके उपरान्त स्नानादि करके स्त्रियोंके साथ घर आते और पूर्णघट तथा पद्मव्यञ्जनादिका दर्शन करते हैं।

पूर्वकाल पापोंमें अशौचान्तके दिन जो मूढ क्रियायें प्रचलित थीं, अब उनमें एक भी नहीं है। तैत्तिरीय आरण्यकमें इसे 'याज्ञिककर्म'के नामसे लिखा है। आश्वलायनने इस क्रियाको अज्ञानमें सम्यक्

करनेकी व्यवस्था दी है। ज्ञातियोंमें स्त्रोपुत्र्य सभी मिल कर रक्षवर्ष हृषचर्मपर बैठते थे। इस चर्मका शिर पूर्वकी ओर रखा जाता और बाल उत्तरकी ओर फिरा दिये जाते थे। हृषचर्मपर बैठनेका मन्व यह है—

“आरोहोपुत्रं रक्षं रक्षका अशुपूर्वं घनमाना शक्तिः।
इह लघटा सुजनिना सुरको दीर्घमायुः करोतु जीवसे वाः।
यथाऽङ्गान्यशुपूर्वं भवति यथंच चतुर्भिर्धेनि क्रूयः।
यथा न पूर्वमपरो जहात्ये वा धातराद्यं वि कल्पयेथा ॥”

तुम लोग दीर्घकालतक जीनेकी इच्छा करते हो, इस आयुष्कर चर्मपर आरोहण करो। इस कर्मकी सुजात एवं सुरद्रभूषित अग्नि तुम लोगोंको दीर्घायु दान करे। जिस तरह दिनके बाद दिन और ऋतुके बाद ऋतु आती है, जिस तरह व्येष्ट कनिष्ठकी नहीं परिख्या करतें, हे धातः। उसी तरह तुम भी इन लोगोंकी परमायु हृदि करो।

इसके बाद ऋतुव्यक्तिका पुत्र भाग जलाकर वरुण-काठके सुक्से चार बार आहुति देता था। फिर ज्ञातिगण अग्निसे उत्तर पूर्व मुख खड़े होकर रक्षवर्ष हृषचर्म स्पर्शपूर्वक एक मन्त्र पढ़ते थे। अन्तमें स्त्रियां “इमा नारीरविषवाः” इत्यादि * मन्त्र पढ़कर आंखमें काजल देती थीं। यह काजल हिमालय पर्वतके त्रैककुटका बनाया जाता और कुशकी नोकसे आंखमें लगाया जाता था। †

स्त्रियोंके आंखमें काजल लगा लेनेके बाद सभी हृषका चलाते चलाते पूर्वकी ओर जाते। जानेके समय यह मन्त्र पढ़ना पड़ता था,—

“इमे जीवा वि सुतेरवधन्ति नमूदमद्रा दिवहन्ति। अथ।
प्रशोऽग्राना श्रुते इमापद्राशौचं आयुः प्रतरां रक्षानाः ॥” ‡

* शोधायकके मतसे शानिकर्ममें आंखमें काजल लगानेके समय ‘इमा नारीरविषवाः’ इत्यादि मन्त्र प्रयुक्त होता था। अनुमत्त एवं अनु-मत्ता मन्त्र देखो।

† “वदायनं वै ककुटं” ज्ञानं दिनवत्परि।

त्रैककुटस्य मूले शारंगोऽश्वत्थसि।” (शैलशौच चारुचक्र ४।। १।४।)

‡ अथर्ववेदके १० वें मण्डल १८ वें सूक्तमें यह मंत्र है। यहाँ उक्तका क्रम भिन्न देखा जाता है।

ये लोग ऋतुव्यक्तिकी परिव्यागकर लौटे जाते हैं। हम लोगोंके कल्याण, जय और आल्हादके निमित्त अपने देवताओंको भाह्वान करते हैं। हम लोग दीर्घायु लाभकर पूर्व मुख जाते हैं।

इस तरह मन्त्र पढ़कर स्त्रियां सबके आगे आगे घर जातीं। मृतव्यक्तिका पुत्र शमीशाखासे हृषके पदचिन्होंको भेटता जाता। उसके बाद अर्धवृत्त मन्त्र पढ़ते हुए सबके पीछे लोट्टहारा हृष्ट करते थे। परिधि बनाकर तुरत ही यह मन्त्र पढ़ना पड़ता था—

“इमं जीवेमः परिधि दधामि मानोऽनुमदपरो बहं मेतं।
मत् जीवन्तु मरुः पुत्रोऽपि किरु अथुः दमर्षं पंगं न ॥”

‘जीवित मनुष्याके लिये मैं यह परिधि देता हूँ। अर्धवयसमें हम लोगोंको किधवा और किसीकी जिम्मे इसे अतिक्रम करना न पड़े। इस पर्वताकार लोट्ट-हारा ऋतुको धीरेमें रखकर हम लोग जिसमें मी शरत्काल (सौ वर्ष) जीते रहें।

अन्तमें घर आकर सभी यथागू धीरे छागमांस खाते थे।

अशौचत्व (सं० क्री०) अशुद्धता, नापाकी, गन्धगी, मैलापन, साफ न रहनेकी हालत।

अशौचसङ्घर (सं० पु०) अशुचि अवस्थामेत। जनन एवं मरण अशौचके मध्य पुनर्बारे जनन एवं मरण अशौच आनेसे अशौचसङ्घर कह्यता है। ग्रहलक्षमें इसका विचारित विवरण बताया है।

अशौचान्त (सं० पु०) अशौचकालके कूटनेका दिन। दयम दिन ब्राह्मण और द्वादश दिन क्षत्रियका अशौचान्त होता है।

अशौच्य (सं० क्री०) अभावे नञ्-तत्त्वं। १ वोर-त्वका अभाव, बहादुरीकी अदममोज्ज्वली। (वि०) नञ्-सङ्घुत्री०। २ पराक्रमगुण्य, वैद्विग्रत, जो बहा-दुर न हो।

अशु (वे० त्रि०) अशुते व्याश्रुति अशुनाति था, अशु-नञ्। १ व्यापक, सामूर, समा धानिवाला। २ भोजनशील, खाज, पेटू। ३ व्याप्त, समाया हुआ। (पु०) ४ असुर विरोध। ५ सीमलता कूटनेका पत्थर। ६ मिघ, वादल।

“मदृष्टवैश्वं को नाम्नो वति यन्मुमुषात्” । (अ० ॥१०१११)

अश्रया (वै० स्त्री०) क्षुधा, भूख ।

अश्रनीतपिथता (सं० स्त्री०) अश्रनीत पिवत इत्युच्यते यस्मात् निर्देशक्रियायाम्, मयूरव्यं समा० । भोजन एवं पानका आदेश, खानि-पीनेकौ आश्ना ।

अश्रम (सं० पु०) १ पर्वत, पहाड़ । २ स्वर्ण-माचिक, सोनामासी । (वै०) ३ मेघ, बादल ।

अश्रमक (सं० पु०) अश्रमे व स्थिरः निश्चलत्वात्, इवायं कन् । धान्याश्रयवप्रत्ययवचनकुटाश्रमकादिषु । पा ३।१।१०५ । ऋषि विगेष । २ देश विगेष, कोई मुल्क । महाभारतमतेने यह देश भारतवर्षके दक्षिण अश्र-स्थित । किन्तु हृदत्-संहितामें इसे उत्तर-पश्चिम माना है । किमी-किमीने इसे भारतके मध्यस्थलमें बताया है । अश्रम देखो ।

अश्रमकदली (सं० स्त्री०) अश्रमते अश्रमनिन् व र्मधा० । काष्ठकदली, पहाड़ी केला ।

अश्रमकर (सं० स्त्री०) स्वर्ण, सोना ।

अश्रमकुट्ट (सं० पु०) अश्रमनि प्रस्तरि धान्यादिकं कुट्टयति, कुट्ट-अण्, उप०-समा । १ वानप्रस्थविशेष । इनके पास ऊखल प्रभृति नष्ट रहता, प्रस्तरसे ही धान्यादि कुटते हैं । (त्रि०) २ पत्थरसे कुटने पौमनेवाला । ३ पत्थरसे कूटा-पीसा ।

अश्रमकुट्टक, अश्रमक देखो ।

अश्रमकच्छुष्का (सं० स्त्री०) विलन्तरहस, कोई दरखत । यह कटौली होती है ।

अश्रमकेतु (सं० स्त्री०) अश्रमे व केतुरस्याः । सुद्र पापाणभेद क्षुप, कोई खुशबूदार पेड़ ।

अश्रमगन्धा (सं० स्त्री०) अश्रमन एव गन्धो लेशोऽस्याः । धरिनपर्णी लता, पथरचटा ।

अश्रमगर्भ (सं० पु०) अश्रमे व कृतो गर्भो यस्य । मरकत, हरित्मणि, पन्ना ।

अश्रमगर्भक (सं० पु०) तिनिश हस, ऊफलका पेड़ ।

अश्रमगर्भज, अश्रमक देखो ।

अश्रमगुह (सं० पु०) अश्रमनिर्मितो गुहः । १ पत्थरका गोला । २ पत्थरका घटा ।

अश्रमघ्न (सं० पु०) अश्रमानं हन्ति, हन्-टक् । पापाणभेदनहस, कोई पेड़ ।

अश्रमचक्र (सं० त्रि०) पापाण-परिधि-वेष्ठित, पत्थरके दायरसे घिरा हुआ ।

अश्रमज (सं० स्त्री०) अश्रमनो जायते, जन-ड । १ शिलाजतु । अश्रमे व जायते । २ लौह, लोहा । ३ गेरू ।

अश्रमजतु (सं० स्त्री०) अश्रमनो जायते, जन-तनुं डिञ् । शिलाजतु ।

अश्रमजतुक, अश्रमक देखो ।

अश्रमजाति (सं० स्त्री०) अश्रमनो जातिः सामान्य-मस्य । मरकत मणि, पन्ना ।

अश्रमदारण (सं० पु०) अश्रमानं दारयति, ङ-श्चिच्-ल्यु । १ प्रस्तर तोड़नेका यन्त्र विशेष, टांकी, जिस औजारसे पत्थर फोड़ें । २ प्रस्तर विशेष, जिस पत्थरसे धक्की उड़े ।

अश्रमदियु (वै० त्रि०) अतिशयेन द्योतते, यद्-लुक् द्युतिगमिषुसोतीनां हे च । पा ३।१।१०८ एवं वार्तिक, तथा, द्युतिस्तयो मन्सारणम् । पा ३।३।११ । इति सम्प्रसारणे बाहु० लु प्रत्ययः दियु आशुधं अश्रम व्यापकं अश्रममयं वा दियु यस्य । १ व्याप्त आशुध, जो हथियार चला रहा हो । २ अश्रममय आशुध, बहुत कड़े हथियार रखनेवाला । “दियु मरुसी नरो अश्रम दियवः” । (अ० ३।३।३।३।)

अश्रमन् (सं० पु०) अश्रम व्याप्तौ अश्रम भोजने मनिन् । १ पापाण, पत्थर । २ पर्वत, पहाड़ । ३ चकमक पत्थर । ४ चटान । ५ मेघ, बादल । ६ विषुयु-विजली । ७ आकाश । ८ ब्राह्मण विशेष । (त्रि०) ९ व्यापक, मानूर, समाया-हृषा । (वै०) १० भोजन करता हुआ, जो खा रहा हो । अश्रमन् शब्द-उत्तरादि गणके मध्य पठित है ।

अश्रमन्त (सं० स्त्री०) अश्रमनोऽन्तोऽन्न, शाक० पर-रूपत्वम् । १ अश्रम, बुरा । २ मरण, मौत । ३ चूल्हा, भट्टी । ४ अनवधि, मरमहवृद्ध वस्तु । ५ क्षेत्र, मैदान, खेत ।

अश्रमन्तक (सं० स्त्री०) अश्रमानं अश्रमयति, अश्र-श्चिच्-प्लुक् शकन्वादित्वात् पररूपत्वम् । १ चबूटा,

भङ्गी । २ मल्लिका आच्छादन । ३ दीपाधार, दीपट ।
(पु०) ४ अश्वत्थवृक्ष, कोई पेड़ । ५ छणविशेष,
कोई घास । ६ अश्वत्थपत्र । ७ कौविदारक वृक्ष ।
अश्वत्थमय (वै० त्रि०) अश्वत्थो विकारः, मयद् वदे
न नलोपः । पाषाणमय, पथरीला, पत्थरका बना
हुपा ।

अश्वत्थवत् (वै० त्रि०) प्रस्तरका, पथरीला ।
अश्वत्थती (वै० स्त्री०) ऋग्वेदीय नदीभेद । पार्थिव्यन्धे
निराण देखो ।

अश्वत्थपुष्प (सं० स्त्री०) अश्वत्थः पुष्पमिव । शैलज,
शिलाजस्तु ।

अश्वत्थमाल (सं० स्त्री०) अश्वत्थ भाजयति चूर्णितं
करोति, भज-पिच-अण् द्वयो० जकारस्य लत्वम् ।
लोहभाण्ड विशेष, इमामजिस्ता, खल ।

अश्वत्थमिदं (सं० पु०) अश्वत्थानसुद्विय जायते ।
१ पाषाणभेदी वृक्ष, जो दरखूत पत्थरके भेद कर
सकता हो । यह मूत्रकच्छुके लिये उपयोगी
होता है । पाषाणभेदी देखो ।

अश्वत्थभेदक, अश्वत्थभेदक, अश्वत्थभेद देखो ।

अश्वत्थमय (सं० त्रि०) अश्वत्थमय देखो ।

अश्वत्थयोनि (सं० पु०) अश्वत्था योनिरस्य । १ मर-
कत मणि, पन्ना । २ अश्वत्थान्तक वृक्ष ।

अश्वत्थर (सं० त्रि०) अश्वत्थं चतुर्थ्यां र । प्रस्तर-
सम्बन्धीय, पथरीला ।

अश्वत्थरी (सं० स्त्री०) अश्वत्थानं राति रा-क गौरादित्वात्
स्त्रीप् । मूत्रकच्छु, रोग विशेष, पथरी । यक्षुत्, पैक्लि-
यम् एवं मूत्रयन्त्रमें पथरी हो सकती है । मनुष्य एवं
गोरु, घोड़ा, भेड़ा, शूकर, शशक प्रभृति और और
पशुओंके हृकमें भी पथरी होती है । किर मूत्रवा-
नुप्रणालीसे वह मूत्राशयमें पा जाती और धीरे धीरे
वदती रहती है । कभी कभी कोई बड़ी पथरी
तौलमें आधसेर तक होती है ।

हृकमें पथरी होनेसे ऐसा लक्षण दिखाई देता
है,—कटिमें पीड़ा, ऊपर दाबनेसे कृष्ण कीमल मालूम
होता है, पेशाबका रङ्ग खुराब हो जाता है ; मूत्र-
स्थान करनेके समय कभी कभी खून निकल आता

और शरीर क्षय एवं असुख हो जाता है । कभी
कभी हृकमें भी पथरी बड़ी भारी हो जाती है ।
ऐसी दशामें अरुसन्धिस्यानके निकट फूल और पाक
उठता है । तब नस्तर देकर पथरीको निकालना
पड़ता है ।

हृकसे मूत्रप्रणाली होकर मूत्राशयमें पथरीकी
शानके समय रोगीको अत्यन्त कष्ट होता है । बार
बार पेशाब करनेकी इच्छा होती है । पेशाब थोड़ा
और खून सहित आता है । अण्डकीपमें दर्द होता
है और वह सिमटकर ऊपर उठता है । उदके भीतर
भी बहुत पीड़ा होती है । ऐसी पथस्थानमें रोगी कभी
कभी वमन भी करता है ।

मूत्रानुप्रणालीसे मूत्राशयमें पथरीके आश्रानेपर
रोगीको बार बार पेशाब करनेकी इच्छा होती है ।
मूत्रपथ, पुरुषाङ्ग एवं अरुसन्धिस्यानमें पीड़ा होती
है । कभी कभी पथरीके मूत्रपथके मुहपर भा जानेसे
हठाल पेशाब बन्द हो जाता है । पथरीकी उग्रतासे
कभी कभी पेशाबके साथ खून भी आता है । हृद-
यसे नीचे न आकर पथरी मूत्राशयमें ही पड़ती हो से
उत्पन्न होती है ।

मूत्रयन्त्रकी पथरी अनेक प्रकारकी होती है ।
उनमें छः प्रकारकी बहुत देखी जाती है । यथा,—

१। इचरिट् अम् एमोनिया । यह प्रायः श्रेयावा-
पस्थानमें होती है । इस पथरीका रङ्ग काढ़े जैसे
होता है ; ऊपर समतल, कभी कभी दानेदार भी
होती है । फुफानलमें कर्कश शब्द होता है ; लिंकर-
पोटाधीयम्के साथ एमोनिया निकलता है । कार्बोनिट
अम् पीटास वा सोडाके सहयोगसे गन्ध जाती है ।
इचरिक्-एसिडकी पथरी उसे द्रव नहीं होती । इस
जातिकी पथरी बहुत कम देखनेमें आती है ।

२। इचरिक् एसिड वा लिथिक् एसिडकी पथरी ।
यह कटा रत्नवर्णकी होती है । ऊपरों माग समतल
और कभी कभी दानेदार होता है ; फुफानलसे
विजल हो जाती, तब उष गन्ध निकलता है,
अन्तमें दग्ध हो जानेपर घोड़ासा भय रह जाता है ।
पीटास द्रवसे गन्ध जाती है । इस द्रवमें सिंकाय

मिला देनेसे श्वेतवर्ण सूर्य गिरता है। इस जातिकी पथरी सचराचर देखी जाती है।

३। अग्नोलिट् अथ् लाइम—यह कटा कृष्य वर्षकी होती है। ऊपरी भाग ऊंचा नीचा होता है। फुकानलसे विकृत हो जाती है। लवण-द्रावकसे द्रव होती है।

४। फस्फेट अथ् लाइम—पांसुट कटावर्ण। समतल। फुकानलसे द्रव नहीं होती। लवणाम्लसे द्रव हो जाती है।

५। एमोनिया मेगनेसियम फस्फेट—प्रायः श्वेतवर्ण। उच्चनीच। फुकानलसे एमोनिया निकलता है। जलमिश्र द्रावकसे यह द्रव जाती है।

६। सिटिक् अक्साइड—इसका रङ्ग श्वेत होता है। ऊपरी भाग उच्चनीच। फुकानलसे धूम निकल जाता है। जलमिश्र लवणद्रावकसे द्रव हो जाती है।

मूत्रागयमें शलाकाखण्ड वा और कोई द्रव्य पड़ा रहनेसे उसके चारों तरफ भा जाना प्रकारके पदार्थ जम जाते हैं। उसका लक्षण भी पथरी ही जैसा है।

एलोपैथी चिकित्सा—इस रोगकी चिकित्सामें तीन उद्देश्य साधन करने पड़ते हैं। १—रोगीका बल बढ़ाना और कष्ट दूर करना। २—जिसमें नई पथरी पैदा न हो और पैदा हुई पथरी बढ़ने न पावे।

३—मूत्रागयसे पथरी निकालना।

प्रथम उद्देश्य साधनके लिये रोगीको पुष्टिकर लघु पथ्य देना। कमरमें दर्द रहनेसे वेलीडोनाके पलस्तरसे बहुत कम पड़ जाता है, मूत्रागयसे खून निकलता हो तो टिश्चर हील दम यूँद जलके साथ अथवा पाँच छः घेन गैलिक एसिड सेवन कराना। हृदयसे मूत्रानुप्रणाली होकर पथरीके मूत्रागयमें उतरनेके समय प्रतिगय कट होता है। ऐसी अवस्थामें गर्मजलसे स्नान, यकका माँड़, ७ यूँद अफीमका परिष्ठ सेवन प्रभृति व्यवस्थासे उपकार होता है।

द्वितीय उद्देश्य साधनके लिये पथरीके विधानोपादानकी अवस्था समझकर चिकित्सा करनी पड़ती। उच्चरिक्त एसिड धातुसे निरामिश्र पथ्य प्रशस्त है। यवके

माँड़से यिलक्षण उपकार होता है। ऐसा उपाय करना चाहिये जिसमें नित्य कोष्ठ परिष्कार हो। इस तरह पथरीमें चार औषध बहुत उपकार करती है। उसमें वाइकार्बोनेट अथ् पोटाससे बहुत फायदा होता है। लिकर पोटाससे भी विशेष लाभ होता है। फस्फेटाघिक्य धातुमें नाइट्रोमिडरटिक द्रावक सेवनसे रोगका प्रतीकार होता है। इसमें अधिक मानसिक चिन्ता करनी उचित नहीं। भाग्यजित्क एसिड पाघिक्य धातुमें शर्करा सेवन करना मना है। इसमें भी नाइट्रो-मिडरटिक द्रावक उपकार करता है।

३—पथरीके मूत्रागयमें भा जानेपर अथवा मूत्रागयमें पथरी पैदा होनेपर पहली बहुत देरतक पेगाव न करना। उसके बाद जोरसे पेगाव करनेसे छोटे छोटे कट्टर निकल सकते हैं। पथरी बड़ी हो तो नस्तर दिलाना चाहिये।

हमारे देशके वैद्य वरुण छालका ज्ञाय सेवन कराते हैं। इससे पथरी गल जाती है। मूलतन्त्र देखो। अश्वरीकच्छू (सं० पु०) मूत्रकच्छू, जिस बीमारीमें पेगाव न आये या कम उतरे।

अश्वरीघ्न (सं० पु०) अश्वरीं हन्ति, इन्-टक् वरुणहृच्च, विलासी।

अश्वरीप्रिय (सं० पु०) मद्वाशालिधान्य, बड़ा धान।

अश्वरीभेद (सं० पु०) पापाणभेद हृच्च, जो पेट पत्थर भेद कर सकता ही।

अश्वरीमिदन (सं० क्तो०) पापाणभेदक, अश्वरीघ्न, जिससे पेगाव न उतरने या कम आनेकी बीमारी मिटे।

अश्वरीरिसु (सं० पु०) १ हृच्चणक, बड़ा चना। २ ज्वार।

अश्वरीशर्करा (सं० स्त्री०) मूत्रकच्छू विशेष, पेगावकी कोई बीमारी। इस रोगमें ज्वलीड़ा, संक्थिसदन, कुचिशूल, कम्प, लघ्णा, लघ्ग पनिल, काथ्यं, दोषैष्य, पाण्डुता, अरोचक, अविपाक आदि लक्षण देख पड़ता है। (घृच्च)

अश्वरीहर (सं० पु०) अश्वरीं हरति, ह-अथ्। १ देवधान्य, ज्वार। २ वरुण हृच्च, विलासी।

अश्रमयाहरणयन्त्र (सं० स्त्री०) अश्रमरी नामक मृदवस्तुच्छुके सशय कारनेका यन्त्र, जिस आलेसे शिगड़ा पेशाव इकट्ठा होवे।

अश्रमलाच (सं० स्त्री०) शिलाजित। (स्त्री०) अश्रमलाचा।

अश्रमवत् (सं० त्रि०) अश्रमा अस्थयत् मनुष्य मका-रस्य वकारः। १ पापाणविशिष्ट, जिसमें पत्थर रहें। २ पापाणकी तरह कठिन, जो पत्थर जैसा कड़ा हो।

अश्रमवर्मन् (वै० स्त्री०) पत्थरकी दीवार या ढाल।
अश्रमव्रज (सं० त्रि०) पापाण-सम्बन्धीय, जो चटानमें शामिल हो।

अश्रमसम्भव (सं० स्त्री०) शिलाजत।
अश्रमसार (सं० पु० स्त्री०) अश्रमनः सार इव। १ लौहादिघातु, लोहा। २ सारलौह, इषात।

अश्रमसारमय (सं० त्रि०) लौहनिर्मित, लोहेका बना हुआ।

अश्रमसारा (सं० स्त्री०) काष्ठकदली, पहाड़ी केला।
अश्रमसुता (सं० स्त्री०) पाठा, आकनादि, हरज्योरी।
अश्रमइन् (सं० पु०) पापाणभेद, पत्थरचटा।

अश्रमइन्मन् (वै० स्त्री०) इन्मते अनेन इन्मनिन् इन्म आयुधम्, अश्रमनिर्मितं इन्म शाक० तत्। १ लौहनिर्मित अस्त्र, लोहेका बना हुआ।
“दिव्यवर्षमि तद्वि मियुं वनमश्रमइन्मिः।” (अश्र० ७।१०।१३) २ विद्युत्-ताघात, बिजलीकी कड़क।

अश्रमहा, अश्रमन् देखो।
अश्रमहत् (सं० पु० स्त्री०) १ कवाटवक्रतुप, किसी किसका दरखुत। २ शिलाजत।

अश्रमादि—(अश्रमादिगो रः। पा ३।३।०) चातुर्थिक र प्रत्ययके निमित्त पाणिनि उक्त शब्दगणविशेष। अश्रमन्, युध्, ऊप, मीन, नद, दर्भ, वृन्द, गुद, खण्ड, नग, शिखा, कोट, पाम, कन्द, कान्द, कुल, गङ्ग, गुड़, कुण्डल, पीन, गुह।

अश्रमार्म (सं० स्त्री०) अश्रमकारक मर्म, पथरी रोग।
अश्रमास्य (वै० त्रि०) चटानसे बहनेवाला।
अश्रमरीर (सं० पु० स्त्री०) अश्रमास्थस्य इन्। पथरी रोग।

अश्रमोत्थ (सं० स्त्री०) अश्रमनः उत्तिष्ठति, उत्थ-स्या-क। शिलाजत।

अश्रामा (सं० स्त्री०) खेतविवृता, सफेद विवृता।

अश्र (सं० स्त्री०) अश्रुते नेत्रम्, अश्र-वाधुं-रक्। १ चक्षुजल, आंखका पानी, आंशु। २ रुधिर, खून। ३ कोण, कोना।

अश्रह (सं० त्रि०) १ अश्राहीन, एतवार न रखनेवाला।

अश्रहधान (सं० त्रि०) अश्र-धा-शानच्। अश्राहीन, एतवार न रखनेवाला, जिसे अश्रा न रहे।

अश्रहा (सं० स्त्री०) अश्र-धा-शब्ड्। अश्रमलोपसम्बन्ध-वदहतिः। पा १।३।०।४ अश्रा। नञ्-तत्। १ अश्रमन्ति, ना एतवारी, दृढ़ विश्वास या प्रेमका न होना। २ अश्रो-चक, भूख न लगनेकी बोमारी। (त्रि०) नञ्-वहन्ती०। ३ अश्राशून्य, धैर्यवारी।

अश्रहेय (सं० त्रि०) अश्र-धा-यत्, नञ्-तत्। आदरके अयोग्य, जो इज्जतके फायिल न हो।

अश्रप (सं० पु०) राचस, भादमखोर, जो धून पीता हो।

अश्रम (सं० पु०) १ अश्रमगत, ताश्री। २ अश्रमका अभाव, मेहनतकी अदममौजूदगी, सुप्ती, काहिली। (वै० त्रि०) ३ अश्रमान्त, जो अश्रम-मांदा न हो।

अश्रमण (वै० त्रि०) १ अश्रमान्त, शैतकान्, श्रो-यका-मांदा न हो। (सं० पु) २ साधु वा बौद्ध महात्मा न होनेवाला व्यक्ति।

अश्रमवण (सं० स्त्री०) अश्रमका अभाव, न सुनना, गरानी-गोश, बहरापन।

अश्रमात् (वै० अर्थ०) अपक रीतिसे, धैर्यप्राये, कभी हालतमें।

अश्राह (सं० त्रि०) आह न करनेवाला, आहसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो आह कर न सकता हो।

अश्राहभोजिन् (सं० त्रि०) आह न करनेवाला, अश्राह-भोजिन् अश्रमस्य समा०। आहमें भोजन न करनेवाला, जो आहमें खाता न हो।

अश्राद्धिन् (सं० पु०) श्राद्धं भुक्तमनेन श्राद्ध इति ततो नञ्-तत्। अश्राद्धभीतिन् देखो।
 अश्राद्धेय (सं० पु०) नञ्-तत्। श्राद्धके अयोग्य, जो श्राद्धके लायक न हो। पिताके घर भनद्राघस्यामिं ऋतुमती होनेवाली कन्या साय जो विवाह करता, वह ब्राह्मण अश्राद्धेय और अपाह्नेय ठहरता है।
 अश्रात्स (सं० त्रि०) अश्रु कर्तारिक्त, नञ्-तत्। १ अमरहित, शेतकान्, जो यक्षा-मांदा न हों। (अथ०) २ अविश्राम, अनवरत, नित्य, लगातार, बराबर, हमेशा।
 अश्राथ्य (सं० त्रि०) श्रवण वा कथनके अयोग्य, जो सुनने या कहने लायक न हो।
 अश्रि (सं० स्त्री०) आ-श्रि-इष्, ङस्वी डिङ्ङा-वय। १ गृहादिका शोष, मकान वगैरेहकी कोना। २ अक्षादिका अपभाग, हृदियार वगैरेहकी नोक।
 अश्रित (सं० त्रि०) १ कठिन प्रवेश, जिसमें कोई पहुँच न सके। २ अनवरत, जो रुकता न हो।
 अश्रिन् (सं० त्रि०) आँसू बहानेवाला, जो रो रहा हो।
 अश्रिमत् (सं० त्रि०) शोषविशिष्ट, तुकीला।
 अश्री, अश्री देखो।
 अश्रीक (सं० त्रि०) नास्ति श्रीयस्य, बहुव्री० वा षष्प। १ शोभाशून्य, बदनुमान, जो देखनेमें खूबखरत न हो। २ हतभाग्य, कमवधूत, जो अच्छा न हो।
 अश्रीमत् (सं० त्रि०) हतभाग्य, कान्तिशून्य, बदवधूत, धीरोक्त, जो चमकीला न हो।
 अश्रीर (सं० त्रि०) न श्री अश्री अस्मार्थे र। १ कुम्भित, खराब। २ अमङ्गल, अशुभ, नागवार। बदनुमान, जो अच्छा लगता न हो। "अश्रीरं विन् ऋतुवा" अन्. १।१५५।
 अश्रील (सं० त्रि०) असम्बद्ध, हतभाग्य, बदवधूत, जो बढ़ता न हो।
 अश्रु (सं० स्त्री०) अश्रुते व्याप्नोति नेत्रमदग्नाय अश्रु-व निपात्यते, अथवा अश्रु-ङुन्-इट् च। नेत्रजल, अश्रु, आँसू, जो पानी आँसूके निकलता है। काव्यके नव सात्विक अश्रुभागोंमें यह भी आता है।

अश्रुकथा (सं० स्त्री०) नेत्रजलका विन्दु, अश्रुका कतरा, आँसूका बूँद।
 अश्रुत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ सुना न जाने-वाला, जो सुन न पढ़ता हो। २ वेदविरुद्ध, जो वेदसे मिलता न हो। (पु०) १ ऋणके पुत्र विगेष। ४ द्युतिमत्के पुत्र।
 अश्रुतपूर्वं (सं० त्रि०) पहले सुना न जानेवाला, जो पेशर सुन न पढ़ा हो।
 अश्रुतवत् (सं० अथ०) न सुनेकी तरह, गोया सुन ही न पढ़ा हो।
 अश्रुति (सं० स्त्री०) १ श्रवणका अभाव, सुन न-पढ़नेकी हालत। २ वेद द्वारा अमतिपादित विषय, जो बात वेद बताता न हो।
 अश्रुतिधर (सं० त्रि०) १ श्रवण पर आघात न लगाता हुआ, जो सुननेपर चोट मारता न हो। २ वेद न जाननेवाला।
 अश्रुनाली (सं० स्त्री०) भगन्दर रोग।
 अश्रुपरिपूर्णाक्ष (सं० त्रि०) नेत्रमें जल भरा हुआ, जिसके आँखमें आँसू भरे।
 अश्रुपरिभ्रुत (सं० त्रि०) नेत्रजलसे नहाया हुआ, जो आँसूसे तर पड़ गया हो।
 अश्रुपात (सं० पु०) इ-तत्। क्रन्दन, नेत्र-जलका प्रवाह, रुलाई, आँसूका गिरना।
 अश्रुपूर्ण (सं० त्रि०) नेत्रजलसे भरा हुआ, अश्रुसे लबालब, जो आँसूसे भरा हो।
 अश्रुपूर्णाकुल (सं० त्रि०) रोते और दुःख उठाने हुए, जो रोते और सुख रहा हो।
 अश्रुपूर्णाक्ष, अश्रुपरिपूर्णाक्ष देखो।
 अश्रुमुख (सं० त्रि०) अश्रुपूर्ण मुखं यस्य। १ नेत्र-जलपूर्ण मुखयुक्त, जिसके मुखमें आँसू भरा-रहे। (पु०) २ गतिविगेष, कोई चाल। ज्योतिषमें—मङ्गल जब अपने उदय-नक्षत्रसे दग्धे, ग्यारहवें और बारहवें मन्त्रपर टेढ़ा चलता, तब अश्रुमुख निकलता है।
 अश्रुलोचन (सं० त्रि०) नेत्रमें अश्रु रखनेवाला, जो आँखमें आँसू भरे हो।

अथूपहत (सं० त्रि०) अथु द्वारा ताड़ित, जो अंशसे सताया गया हो।

अथ्येयस् (सं० त्रि०) न थ्येयान्। १ हीनतर, बदतर, खराबसे खराब। २ अकल्याण, बुरा, नाकाम, जो फायदेमन्द न हो। (ह्री०) ३ हीनतर होनेकी अवस्था, बदतरी, खराबी, बुराई।

अथेष्ट (सं० त्रि०) १ अनुत्तम, नौधतर, अथतर। २ कुत्सित, खराब, जो भला न हो।

अथोत्रिय (सं० पु०) १ वेद न पढ़नेवाला ब्राह्मण, जो ब्राह्मण वेद पढ़े न हो। २ ईश्वरका ज्ञान न रखनेवाला व्यक्ति, जो वेदान्ती न हो।

अथोत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। ऋतिविरुद्ध, जो वेदसे मिलाता न हो।

अथाघनीय, अथाघ देखो।

अथाघा (सं० स्त्री०) शाघाका अभाव, शील, सौजन्य, खुदगिनासीकी अदमनीजदगी, शायस्तगी लिखाकृत।

अथाघ्य (सं० त्रि०) १-अप्रशंसनीय, निन्द्य, नाकाम, जो तारीफकी लायक न हो। २ नीच, कमीना।

अथिष्ट (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ असङ्गत, नामु-नासिब, जो ठीक न हो। २ असम्बन्ध, वैसिलसिद्धा, जो मिला-जुला न हो। ३ अशुभ, भावरहित, जो पेचीदा न हो।

अथीक, अथीक देखो।

अथील (सं० ह्री०) श्रियं शान्तिं ष्टङ्गाति, सा-क रेफस्य लकारः, श्रीरस्तास्य सञ्च् वा, पूर्ववत् रेफस्य लब्धं नञ्-तत्। १ कुत्सित, कुरूप, नागवार, बदनुमान्। २ गालीगुफते धाला, खराब, फट्ट। (ह्री०) ३ गालीगुलीज, गूतड़ाका, अथे-तथे। ४ सज्जाजनक वाक्य, शर्कीकी बात। ५ आम्यभाषा, गंवार बोली। ६ काव्यका दोष विशेष।

अथीलता (सं० स्त्री०) गाली-गुलीज, फट्टपन।

अथोषा (सं० स्त्री०) न श्रियते, आदिष्टते पित्रा-दिभि यदोत्पवः शिष्टराषण्मासं, श्रिय-घञ्, नञ्-तत्। १ सत्ताईसके अन्तर्गत नवम ऋषयः। यह

चक्राकार और धञ्-नचवात्मक है। सर्प इसका अधि-देवता है। अथोषा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मनुष्य दुष्ट और लोकोत्प्लोहक होता है। यदि इसी नक्ष-त्रमें पुत्रोत्पन्न हो, तो छः मासतक उसका सुख देखना न चाहिये। उपरोक्त कारणसे ही इस नक्ष-त्रको अथोषा कहते हैं। २ अनेक, प्रयत्न, लुटार, सुफारकृत, अलाहदगी।

अथोपाज (सं० पु०) अथोपा नक्षत्रे जायते; जन-ह, ७-तत्। कर्तुप्रह, दुमदारमितारा।

अथोपाभव, अथोपाज देखो।

अथोपाभू, अथोपाज देखो।

अथोपाशान्ति (सं० स्त्री०) अथोपायां जनन-निमित्ता शान्तिः, शाक० तत्। अथोपा नक्षत्रमें जन्म-निमित्त शान्ति कर्म। अथोपाज देखो।

अथोन (द्वि० त्रि०) अपङ्, जो लंगड़ा न हो।

अथ (सं० पु०) अश्रुते व्याप्नोति अध्वानं अथ- (अथपि अथिकनिष्ठादिभ्यः ङन्। अथ् १।१८) इति ङन्। घोटक। अथ अश्रुते ये कई पर्याय पाये जाते हैं,—पौति, पोती, पौति, घोट, घोटक, तुरग, तुरङ्ग, तुरङ्गम, बाजो, वाध, अर्वा, गन्धर्व, हय, सेन्धव, सति। निरुद्धमें अथके ये २६ नाम लिखे हैं,—अथः हयः, अर्वा, वाजो, सतिः, अर्वाः, दधिक्राः, दधिक्रावा, एतम्बा, एतमः, पेहः, दौर्गाहः, उच्चैःश्रवसः, ताचरः, पाथः, व्रधः, अरुथः, मांथलः, अथ्यथयः, खेनासः, सुपर्णाः, पतगाः, नरः, ह्यार्याणाम्, इंसासः, अथाः।

कौन अथ किस देवताका है, निरुद्धमें यह भी कहा गया है। १—हरी इन्द्रस्य। २—रोहितोऽग्नेः। ३—हरित आदित्यस्य। ४—रासभावशिनोः। ५—अजाः पूषः। ६—पृथ्वी मरुताम्। ७—पृथ्वी गाव उपसः। ८ श्यावाः सवितुः। ९—विश्वरूपा वृहस्पतेः। १०-नियुतो वायोः।

१ इन्द्रके अथका नाम हरि है, २ अग्निका रोहित, ३ आदित्यका हरित, ४ अश्विनीकुमारका रासम, ५ पूषाका अजा, ६ मरुत्तका पृथ्वीगव, ७ अथका पृथ्वी गो, ८ सवितका श्याम, ९ वृहस्पतिका विश्वरूप, १० वायुका नियुत।

भन्तादि सप्त स्थानसे घोड़ेकी उत्पत्ति हुई है। हमलिये भग्नोत्पत्तिस्थान कहनेसे सात संख्या समझी जाती है।

घोड़ा किस स्थानका प्रादि जन्तु है, इस विषयमें बहुत मतभेद है। घेदमें घोड़ेकी बात लिखी है। पतएव पहले ही एशियाके नाना स्थानोंमें घोड़े पाये जाते थे और आर्यगण घोड़ोंको रयमें जोतते थे, इसमें सन्देह नहीं। कोई कोई कहते हैं, कि अफ्रिका घोड़ाका प्रादि वासस्थान है और मियेके प्रादमियोंने पहले पहल घोड़ा पोसना शुरू किया था। एशिया, अफ्रिका, युरोप और अमेरिकामें बहुत दिनोंके भरे हुए समय और गेड़ेकी हड्डियोंके साथ घोड़ोंको हड्डियां भी पाई जाती हैं। कोलम्बसने जिस समय अमेरिका प्राविष्कार किया था, उस समय वहां घोड़े न थे। इसीसे हड्डी देखकर विश्वास होता है, कि पहले अमेरिकामें घोड़े थे, परन्तु कोलम्बसके समयमें वहांके घोड़ोंका नाश हो गया था। युरोपियोंके वहां घोड़ा छोड़ देनेसे अब फिर वहां बहुतसे जङ्गली घोड़े हो गये हैं।

स्थानभेदसे घोड़ोंकी आकृति और वर्ण नाना प्रकारका होता है। कोई घोड़ा बड़ा और कोई छोटा होता है। सचराचर भव्य रक्तवर्ण, श्वेत एवं कृष्ण वर्णके घोड़े देखनेमें आते हैं। अष्ट्रेलिया, भारत, और बरबरीके घोड़ेही अधिक प्रसिद्ध हैं। कच्छ देशका घोड़ा मम्होसे डोलका होता है। और ब्रह्मदेशका छोटा घोड़ा बलवान्, कष्टसहिष्णु, बुद्धिमान् और प्रभुमत्त होता है। अरबी घोड़े इन्हीं सब गुणोंके लिये अधिक विख्यात हैं।

पहले आर्यगण घोड़ा काटकर यज्ञ करते थे, उसका नाम अश्वमेध है। यज्ञ समाप्त हो जानेपर याज्ञिकगण उसके हृदयकी बसा और मांससे जोम करते और कुछ मांस खाते भी थे। आजकल किसी किसी देशके प्रादमी घोड़ेका मांस खाते हैं। फ्रांसमें इसका बहुत बखन है। सण्डनमें कुत्ते और बिल्लियोंके खानेके लिये घोड़ेका मांस बिकता है। कितने ही जातिवां घोड़ेका दूध पीते हैं। काश्मिर लोग

घोड़ेकी दूधसे एक प्रकारकी मदिरा तय्यार करते हैं। घोड़ेके केशर और पूरुके बालसे चिड़िया फसानेकी फन्दा, जाली, पापीप और एक प्रकारका कपड़ा बनाया जाता है। इसके चमड़ेसे मेज मढ़ी जाती है।

अस्तबलको साफ सुवरा और सूखा रखना और ऐसा बनाना चाहिये, जिसमें हवा खूब आती हो। चना, यव, गेहूँ, यव और गेहूँकी भूसी, सूखी घास घोड़ेका खास खुराक है। हमारे देशके धनी धी, चोनी और गुड़ भौ घोड़ेको खिलाते हैं। डाकपुरवके बचनानुसार घोड़ा साठ वर्ष जोता है। पास्तू घोड़ा तीस, रेंतोस और चालोस वर्ष तक जीता रहता है।

घोड़ा चौपाया है। शरीरके परिमाणानुसार गदड़ेसे इसके कान छोटे होते हैं। देह और पूरुमें बाल होते हैं। इसके खुर लुड़े रहते हैं। चारा पेरामें घुटनके ऊपर भीतरका चार अस्थिमय चिन्ह होता है। इसीसे लोग कहते हैं, कि पहले घाहूँ के पंख होते थे। वे पंख अब कट गये हैं, केवल उनके चिन्ह मात्र रह गये हैं। वृद्धे प्रादमी पक्षी-राज घाड़ेका किष्ठा भी कहते हैं। पक्षीराज घोड़ेके पर होते हैं, उधेसे वह शून्यमें उड़ सकता है। घोड़ा खड़ा खड़ा साता है।

प्रादन्-इ-अकबरांमें घोड़ा सात श्रेणियोंमें विभक्त किया गया है,—परधो, पारधो, सुअचसो, तुर्की, भादू, ताजो और जङ्गलो। घोड़ेके पैर ऊंचा कर दोबंभावसे चलनेको टाप कहते हैं। पैरको कर धीरे धीरे चलनेका नाम कदम है। पीठकां हिलाकर दौड़नेको दुल्को कहते हैं। सोहेके त्रुससे घोड़ेका खरहरा किया जाता है। घोड़ेके टापमें सांहेकी नाल बांधी जाती है, इससे दौड़नेके समय पैरोंमें घोट नहीं लगतो। घोड़ेकी पीठपर बैठनेके पास-नका नाम जीन है। जीन घमड़े या कपड़ेका बनता है। जीनके दोनों ओर पैर रखनेके लिये रिकाव लटकतो रहतो है। घोड़ेके मुँहके लगामको खीचकर हयारा करनेसे चाहे जिधर ले जा सकता है। पहले सूतजातिवाले ही घोड़ेका रथ हाकते थे। राजा नर अश्वविद्यामें विभिन्न

द्वय है। (महाभारत वन०)। जयादित्यके 'अश्ववेद्यक' और नकुलके अश्वचिकित्सामें सर्वप्रकार अश्वके रोगकी चिकित्सा सविस्तार वर्णित हैं। शोष्क देखो। रति-शास्त्रानुसार अश्वजातीय पुरुष। उसका लक्षण—काठके समान देह, घृष्ट, निर्भय, मिथ्यावादी, दरिद्र और हादगाङ्गुल मेट्टयुक्त।

अश्वक (सं० त्रि०) १ अश्वक सदृश, अश्व-जैसा, घोड़ेके मानिन्द, जो घोड़ेकी तरह काम करता हो। (पु०) २ टट्ट, छोटा घोड़ा। ३ खराब घोड़ा, जो घोड़ा अच्छा न हो। ४ आवारा घोड़ा, जिस घोड़ेके मालिकका पता न मिले। ५ कोई घोड़ा। ६ कुलिङ्ग पची, गरमैया। ७ कोई प्राचीन जनपद। भारतके उत्तरपश्चिमप्रान्तमें अवस्थित था। ग्रीक पुराविदोंने Assakani नाममें उल्लेख किया।

अश्वकन्दक (सं० पु०) अश्वगन्धा, असगंध।

अश्वकन्दा (सं० स्त्री०) अश्वस्य गन्धः इव गन्धः कन्दे यस्याः बहुव्री० वा क्वप्। १ अश्वगन्धा, असगंध। २ वनस्पति विशेष, कोई जड़ी बूटी।

अश्वकन्दिका, अश्वकन्दा देखो।

अश्वकर्ण (सं० पु०) अश्वस्य कर्ण इव पत्रं यस्य। १ अश्वका कर्ण, घोड़ेका कान। २ शालहृद्य विशेष, किसी किष्कके शालका पेड़। ३ लतागाल। इसका अपर पर्याय जरणहृद्य, तार्क्ष्यमसव, शस्यसम्बरण, धन्य, दीर्घपण, सुशिक और कौशिक है। ४ पलाय भेद, किसी किष्कके टाकका पेड़। ५ पर्वत विशेष, कोई पहाड़। (स्त्री०) ६ काण्डभग्नानां पश्चिमङ्ग विशेष। हल्डियोंका खास किष्कसे टूट जाना।

अश्वकर्णक, अश्वकर्ण देखो।

अश्वकर्णका (सं० स्त्री०) अश्वकर्ण देखो।

अश्वकातरा (सं० स्त्री०) हयकातरा, घोड़ाकापर। यह तिष्ठ, यातन और दीपन होती है। (राजनिष्य)

अश्वकातरिका, अश्वकातरा देखो।

अश्वकाथरिवा, अश्वकातरा देखो।

अश्वकिनी (सं० स्त्री०) अश्वस्य कं मुखं तत् सदृश, कौरोड स्त्रस्य इति स्त्रीत्वात् डीप्। अश्विनी नक्षत्र।

अश्वकुटी (सं० स्त्री०) तवेवा, अस्तबल, घोड़ोंके रहनेकी जगह।

अश्वकुप्राल (सं० त्रि०) घोड़ा पहंचानेनेवाला, जो घोड़ेपर खूब चढ़ता हो।

अश्वकोविद, अश्वकुप्राल देखो।

अश्वक्रन्द (सं० पु०) १ देववेनापति विग्रेय। २ पची, कोई चिड़िया।

अश्वक्रान्ता (सं० स्त्री०) १ सङ्गीतशास्त्रोक्त मूर्च्छना विशेष। इसका सरगम इस तरह बंधा है,— गमपधनि सरिगमपधनि। २ तन्त्रोक्त जनपदभेद।

अश्वखरज (सं० पु०) अश्वय खरी च, अश्वत्था अ खरय वा ताभ्यां जायते पुं वद्भावः। अश्वतर, खसुर।

अश्वखुर (सं० पु०) अश्वस्य खुरमिव पाद्मतिरस्य। १ नखीनामक गन्धद्रव्य, नख। २ घोटकखुर, घोड़ेका सुम।

अश्वखुरा (सं० स्त्री०) श्वेतापराजिता, कौवाठेंठी। अश्वखुरो, अश्वर देखो।

अश्वगति (सं० स्त्री०) १ घोटककी गति, घोड़ेकी चाल। २ हृन्दोविग्रेय, कोई बहर। इसमें चार चरण और प्रत्येक चरणमें सोलह अक्षर रहता है।

अश्वगन्धा (सं० स्त्री०) अश्वस्य गन्ध इव गन्धो मूलै यस्याः। हृद्यविग्रेय। (Withania Somnifera) अश्वगन्धाका अपर पर्याय यह है—हयगन्धा, वाजिगन्धा, अश्वगन्धिका, वस्या, तुरगगन्धा, कम्बुका, अश्वारोहिका, कम्बुकाष्ठ, अश्वरोहिका, याराहकर्षी, यातनो, श्यामला, कामरूपिणी, काला, प्रियकरी, गन्धपत्री, हयप्रिया, वराहपत्री।

वेद्यशास्त्रके मतमें—यह कटु, हृद्य, तिष्ठ, वलहर और शक्तविकारी है। इससे वायु, कांश, श्वय, मूत्र, ज्वर प्रकृति अनेक रोग मट्ट होता है। यह पेट और तबकके लिये एक श्रेष्ठ खांनमें उत्पन्न होता है। यहां बङ्गलादि देशमें भी कहीं-कहीं देखा जाता है। अधिकतर यहां इसके परिबलेतमें (पट्टया) हृद्य व्यवहृत होता है कि अश्वगन्धा और आङ्गु

अश्वत्थगन्धाके मूल यत्नकर, धातुपरिवर्तक, शुक्रवृद्धि-
कर होता है। यह चय, काग, बालकोंका दौर्बल्य-
रोग एवं वातकी पीड़ामें विशेष उपकार करता है।
कोई-कोई कहते हैं, कि इससे प्रस्राव और निद्रा
होती है। शृष्ठाघात, पुरातन चत एवं किसी स्थान
कम उठने पर इसके पत्ते और छालका सेप देनेसे
उपकार होता है। अस्थिमद्ग (इड्योट्ट) हो जाने
पर या वातपीडा, ग्रन्थिपीडादिमें इसका सेप यन्त्रणा
निवारण करता है। इसका फल मूलकर होता है।
इससे अश्वत्थगन्धाद्यत, अश्वत्थगन्धातेल प्रशुति नानाप्रकार
पौषध प्रशुत होता है।

अश्वत्थगन्धाद्यत (सं० स्त्री०) पौषध विशेष ।
यह चार प्रकारका होता है। इसमें पहला बाल-
रोगाधिकारमें गुणद है। बनानेकी रीति यह है—
घृत ४ शराव, अश्वत्थगन्धा कल्क १ श०, दूध ४ शराव,
जल १६ शराव। यह सब चीज एक साथ पचानेसे
तैयार होता है। मतान्तरसे इसमें दूध ४० शराव
मिलानेको भी लिखा है। (चारकोवदी, मेघनगरजायकी)

दूसरा वातव्याधिहितकारक । अश्वत्थगन्धा १६
शराव ६४ शराव जलमें पाककरके श्रेय १६ शराव
कपाय तैयार करना चाहिये। पीछे घृत ४ शराव
और दूध १६ शराव मिलाकर विधिपूर्वक पचाया
जाता है। (चक्रपद—वातव्याधिषिषिक्का)

तृतीय और चतुर्थ प्रकार—वातव्याधि एवं हृष्यमें
उपकारक है। इसे प्रशुतकरनेकी विधि—अश्वत्थगन्धा
१२० शराव जल ६४ शरावका पादश्रेय १६ शराव
सुपवित्र क्षाय एवं क्षागमांस २५श० जल १२० शरावमें
खुब पाक करके श्रेय रस ३२ श०, गन्ध दूध १६ श०
तथा काकोली, चीरकाकोली, मधुक, मेदा, मद्यमेदा,
जीवन्ती, जीवक, बला, इलायची, शतावरी, द्राक्षा,
विदारो, छणजीरक, सुन्दरणी, शुक्रशिव्ठी, पोपलो,
शृष्यभक यह सब द्रव्य प्रत्येक १ कर्ष, एकत्र मिलाकर
पाक करना चाहिये। जब पाक सिद्ध हो जाय, तब
भागपरसे छतार शीतल होनेपर चीनी ४ पल और
मधु २ पल मिलाता होता है। (श्रीयोगवत्)

चौथी जगहमें उत्पन्न भया हुआ अश्वत्थगन्धा १००

पल ग्रामदिनमें लाकर खूब मचीन कूटकरके १ द्रोण
जलमें धीरे धीरे पाक करना, जब चतुर्थांश श्रेय रह
जायतो छतारकर कपड़ेसे छान लेना चाहिये। फिर
घृत १ प्रख्य एवं गौका दूध १ प्रख्य तथा २०० पल-
मांसका पूर्वोक्त प्रकारसे निकाला हुआ कपाय ।
काकोली, चीरकाकोली, मेदा, मद्यमेदा जीरक,
छणजीरक, स्वयंगुता, शृष्यभक, एला, मधुक, मूद्गीका,
शूर्पपर्णी, जीवन्ती, चपला, बाला, नारायणी, विदारो
यह सब पौषधियोंका खूब मचीन पीसा हुआ चूर्ण
ढालकर एकत्र पाक करना चाहिये। पाकसिद्ध तथा
शीतल हो जानेपर मधु एवं चीनी मिलाने होती है।

(रघुनाथर, मेघनगरजायकी)

अश्वत्थगन्धातेल (सं० स्त्री०) पौषधभेद। यह दो प्रकारका
होता है। पहला वातव्याधिमें हितकार है। इसके
तैयार करनेकी रीति इस तरह है—तिलका तैल ४
शराव अश्वत्थगन्धा १२४० शराव और जल ६४ शरावका
श्रेय १६ शराव क्षाय, शृष्णालादिका मिला हुआ कल्क
१ शराव एक साथ विधिपूर्वक पकाना चाहिये। (चक्रपद)

दूसरा रसायनाधिकारमें उपकारक । इसमें
कल्कके लिये अश्वत्थगन्धा, कुष्ठ, मांसी, सिंहीफल यह
सब १ शराव, दूध १६ शराव, तिलका तैल ४ शराव ।
एकत्र पचानेसे तैयार होता है। (चक्रपद)

अश्वत्थगन्धाद्यचूर्ण (सं० स्त्री०) पौषधविशेष । यह
चूर्ण स्वरभङ्गनाशक है। अश्वत्थगन्धा, अजमोदा, पाठा,
द्विकटु (सोठ मिर्च पोपल) द्विक, शतपुष्प, ब्रह्म-
वीज, सैन्धव यह सब सम भाग और इसके पूर्व
भाग वचकी एक साथ पीस कर चूर्ण तैयार
करना चाहिये। फिर मधु और चीकी साथ १ कर्ष-
मात्र प्रति दिन सेवन करनेसे बहुत फायदा दिख-
लाता है। (रघुनाथर)

अश्वत्थोप भद्रन्त—एक प्राचीन वीर्य पाचायं। सुभाषिता-
यन्त्रीमें इसके कितने ही कविता उद्धृत हुआ हैं।

अश्वत्थदेय—प्राचीन संस्कृत कवि । सुभाषितायन्त्रीमें इनका
उल्लेख है।

अश्वत्थमोयुग (सं० स्त्री०) अश्वत्थ हिले मोयुग ।
अश्वत्थ, घोड़ेकी जोड़ी।

अप्रतगोष्ठ (सं० स्त्री०) अश्वानां स्थानम्, स्थानार्थे गोष्ठम् । अश्वयाला, अश्ववल, घोड़ेघाल ।

अश्वघोष (सं० पु०) अश्वस्य घोषा इव घोष यस्य ।
१ विष्णुष्टोत्रा असुर विशेष । यह कश्यपकी दसु नाभी स्त्रीसे पैदा हुआ था । २ हयघोष नामक विष्णुका अवतार विशेष । हयघोष देखो ।

अश्वघास (सं० पु०) अश्वका गृहल, घोड़ेकी चरागाह, जिस मैदानमें घोड़े चरें ।

अश्वघोष—एक सुप्रसिद्ध बौद्धाचार्य और दार्शनिक कवि । इन्होंने बुद्धचरित, चतुःशतिका प्रभृति बहुत संस्कृत ग्रन्थ और अनेक संस्कृत कविता लिखे हैं । दार्शनिक बौद्ध-समाजमें 'अश्वघोष-भदन्त' नामसे प्रसिद्ध हैं । यह सुप्रसिद्ध आचार्य पाश्वर्कके शिष्य थे । सुतरां माध्यमिकाचार्य नागार्जुनके पूर्व हुए थे । महायान-सम्प्रदाय उनको पूर्वाचार्य धीमते हैं । ४०५ ईस्वीमें कुमारजीव चीनभाषामें अश्वघोष-चरितका अनुवाद किया था ।

२ परवर्ती बौद्धाचार्य, यहांकी आर्यशूर कहते हैं । इनकी रचो अनेक संस्कृत कविता प्रचलित हैं ।

३ कश्मीरके कर्कोटक-राजवंशका प्रतिष्ठाता दुर्लभवर्धनके पूर्व पुत्र । ऐसीभाटिक सोसाइटीसे प्रकाशित राजतरङ्गिणीमें 'अश्वघाम-कायस्य', ग्रे इन साइबके प्रकाशित राजतरङ्गिणीमें 'अश्वघाम-कायस्य' एवं काश्मीरके संशुद्धीत विश्वकोष-कार्यालयमें रचित ३०० वर्षका प्राचीन हस्तलिखित राजतरङ्गिणीकी पोथीमें अश्वघोष-कायस्य नाम भी परिचित होता है ।

अश्वघ्न (सं० पु०) अश्वं हन्ति, हन्-टक्, उप० समा० । श्वेतकरवीर हृत्, सफेद कनैरका पेड़ ।

अश्वचक्र (सं० स्त्री०) १ जयाचार्योक्त चक्र विशेष । इसमें अश्वके चिह्नसे शुभाशुभ देखते हैं । २ घोड़ेका फेरा । यत्रतत्रमें मात न दे घोड़ेकी चालसे बाद-गाहको सुमाते रहना भी अश्वचक्र कहाता है । ३ अश्वसमूह, घोड़ेका झुंड़ी । (पु०) ४ अश्वर दैत्यके सेनापति विशेष । जाम्बवतीपुत्र शम्भुने इन्हें मार डाला था ।

अश्वचलनमाला (सं० स्त्री०) घोड़ेदोड़का मैदान, जिस जगह घोड़े दौड़ाये जायें ।

अश्वचिकित्सक (सं० पु०) अश्ववैद्य, सलोतरी, वितार, घोड़ेकी दवा देनेवाला इकीम ।

अश्वचिकित्सा (सं० स्त्री०) घोड़ेके रोग निवारणका उपाय, वितारी, सलोतरीपन । ग्रालिहोत्र, नकुल, जयादित्य प्रभृति रचित कर प्राचीन अश्व-चिकित्सा ग्रन्थ विद्यमान हैं ।

अश्वचेदित (सं० स्त्री०) अश्वस्य चेदितम्, ६-तत् । १ अश्वका चेदित, घोड़ेका रूढ़ । २ अश्वका काय-हृत व्यापार विशेष, जो काम घोड़ा करता हो ।

३ देव शुभ और अशुभसूचक चिह्न, घोड़ेके जिस निशानसे आगिका भसादुरा जान पड़े । हृहृत्-संघि-तामें इसका विवरण भी लिखा है,—घोड़ेका सर्वाङ्ग जल या अग्निक्वणायुक्त हो जानसे दो वर्ष तक हृष्टि नहीं पड़ती । मेढ़ जलनेसे राजाका अन्तःपुर गट होता है । उदर प्रदेश होनेसे धनागार शून्य पड़ता है । गुह्य और पुच्छमें भाग लगनेसे छार होती, एवं मुख और श्रेय अङ्गजलनेसे जय मिलता है ।

अश्वजघन (सं० पु०) नरसुहृद्, जिम अश्वसके जिम्माका निचला हिस्सा घोड़े-जैसा रहें ।

अश्वजित् (वै० द्वि०) १ विजय द्वारा अश्व पाने-वाला, जो जीतसे घोड़े लेता हो । (पु०) २ वीह भिष्म विशेष ।

अश्वजोषन (सं० पु०) चणक, घना, जिसे खाकर घोड़ा जीता है ।

अश्वतर (सं० पु०) अश्वतरश्च, अश्व-तद्वले टरच् । २ अश्वखरज, खर । इसका मांस बन्ध, हं-हृष और कफपित्तकर होता है । (मदनपाच) २ सर्प-विशेष । यह भूतलवासी नागोंके प्रधान हैं । ३ गन्धर्व विशेष । ४ बड़ेहा । स्त्रियां ङीप् । 'अश्वतरो, यह अग्निकी वाहन । (ऐतरेयब्राह्मण ३।१०४)

अश्वतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थविशेष । यह स्थान गङ्गा किनारे कान्यकुब्जके निकट अवस्थित है ।

अश्वत्य (सं० पु०) अश्वे पथंतादिव्यासे प्रदेगे तिष्ठ-तीति स्या-क सकारस्य तकारः । स्वनामस्थान हृष-

विशेष। (Ficus religiosa) इसका हिन्दी नाम पीपल या पोपल है। पीपल शब्द पिप्पल शब्दका अपभ्रंश है। पनेक स्थानोंमें यह पांकड़ नामसे प्रसिद्ध है, परन्तु पांकड़ स्वतन्त्र वृक्ष है।

अमृततंत्रके ये कई पर्याय देखे जाते हैं,—बोधिद्रुम, चलदल, पिप्पल, कुश्वरागन, अणुतावास, चलपत्र, पवित्रक, श्मश्रु, बोधिहृत्, याज्ञिक, गजभक्षण, श्रीमान्, सीरद्रुम, विप, मङ्गल्य, श्यामल, गुह्यपुष्प, सेव्य, सत्य, शक्तिद्रुम, धनुहृत्।

अमृततंत्रक कई प्रकारका होता है। यथा—गर्भाण्ड, गजहण्ड, वेत्तिया पिप्पल, नन्दोहृत् इत्यादि। अमृततंत्रका वृक्ष बहुत बड़ा होता है। चारो ओर इसकी शाखा प्रगाथगै फेल जाती है, चैत्र वैशाखके महीनेमें लव नये पत्ते निकलते और वायुके भोकेसे भर भर झिलते हैं, तब इस वृक्षकी अपूर्व शोभा दिखाई देती है। किसी किसी पोपलके नये पत्ते हरित मिश्रित श्वेतवर्णके और किसीके लाल होते हैं; इसीसे कवि लोग स्त्रियोंके कारपत्रके साथ इसकी तुलना करते हैं। पीपलके पेड़में घाघात करनेसे सफेद दूध निकलता है। चिड़ोमार इसीसे चिड़िया फसाते हैं। इसके दूधसे गटापाचर्न बन सकता है। यह वृक्ष हृमर जातिका है, इसीसे इसमें फूल नहीं लगते। यह एक वर्षमें दो बार फलता है। फल जब पकते हैं तो चिड़िया उन्हें खाती हैं। हाथी, गोरू, भैस, बकरी, भेड़ आदि जन्तु इसके पत्तेको खाना बहुत पसन्द करते हैं।

अमृततंत्रक हमलोगोंके देशका पवित्र वृक्ष है। न इसका पत्ता तोड़ना चाहिये और न इसे काटकर लकड़ी बनानेो चाहिये। पर इस नियमका प्रति-पामन सब कोई नहीं करते। वैशाख महीनेमें जो कितने इसका पत्ता नहीं तोड़ते और शूद्र लोग प्रायः उस पेड़की काटना नहीं चाहते। अमृततंत्रक स्वयं विष्णुरूपी है। पद्मपुराण उत्तरखण्ड १६० अध्यायमें लिखा है, कि एकदिन गौरीगङ्गा एकान्तमें झीड़ा-कोतुक कर रहे थे, उसी समय देवताधीनि पन्निकी ब्राह्मणके वेगमें वहाँ भेज दिया। पन्निके वहाँ पहुँचने

पर सुखमें बाधा पड़नेके कारण पापंतीने क्रुद्ध होकर देवताओंको यह श्राप दिया,—‘तुमचोग वृक्षयानि प्राप्त हो।’ उसी श्रापसे ब्रह्मा पलायहृत्, विष्णु अमृततंत्रक एवं रुद्र वटहृत् हुए। भगवद्गीतामें भी लिखा है, कि श्रीकृष्णने अर्जुनकी कक्षा था,—‘सर्व वृक्षानि मुभे अमृततंत्रक समभन्ता।’

अमृततंत्रकके मूलमें याला बनाकर वैशाख मासमें जल देनेसे महा फल होता है। पीपलके पेड़को देखकर प्रणाम करनेसे प्रायु और सम्पद् बढ़ता है। अगर वांयां चढ़ करके पथवा और कोरें अश्रम लक्षण दिखाई पड़े, तो पीपलके मूलमें जल देनेसे कोरें भनिट नहीं होता। जल देनेका मन्त्र,—

‘‘वपःपन्दं मुत्रपन्दं तथा दुःखप्रदमेनम्।

भव वाच सतुत्यापनत्रय शमथाप मे ॥’’

वेद्यशास्त्रके मतानुसार अमृततंत्र मधुर, कपाय और शीतल हैं। इससे कफ, पित्त और दाह नष्ट होता हैं। इसका फल शीतल और अतिशय हृद्य है। इससे रक्त, पित्त, विष, दाह, छर्दि, शोथ, चर्हचि एवं योानदोष नष्ट होता है।

इसकी छाल सद्योषक है। कोमल छाल और पत्तेको कानोंसे पुरातन प्रमेह रोगमें उपकार होता है। फलको चूर्ण कर खानेसे भूख बढ़ती और कोठा साफ होता है। इसका बीज शीतल एवं धातु-परि-वतक है। चर्मरोगमें इसको छालका ताप सेवन करनेसे उपकार होता है। इसका नवोन पल्लवाद्भुर विरेचक है, अथघृत लोम हरिताल भक्ष करनेके समय अमृततंत्रक व्ययहार करते हैं। होमादि कार्योंमें पीपलकी लकड़ी लगती है। शार्दिहृत्पर जो पापल जन्मता है, ऋषिपण्य उसकी अरणि बनाते थे। पीपलका तत्पता बहुत दिन नहीं टिकता और न उसपर अच्छी पालिश हो होती है।

अमृततंत्रक (सं० पु०) अमृततंत्रक कूलं अमृततंत्रकः लड-युक्तः कामोप्यमृततंत्रकः, तस्मिन् देयमृततंत्रक इत्यर्थे (कामव-जन्मपदुसप्तम्, पा ३३।१०) १. अमृततंत्रका फल लगते समय देने योग्य ऋषयः। स्वार्थे कन्। २. अमृततंत्रक, पीपलका पेड़।

अप्रवृत्त्यकुण्ड (सं० पु०) अप्रवृत्त्यस्य पाकः (द्वौत्वादि-कर्षादिभ्यः) कुण्डम् । पा ३।१।१३) पके हृद्ये पीपलका फल, पकुडा ।
 अप्रवृत्त्यफलका (सं० स्त्री०) हृद्युपा ।
 अप्रवृत्त्यफला, अप्रवृत्त्यफलका देखी ।
 अप्रवृत्त्यभित्, अप्रवृत्त्यभेद देखी ।
 अप्रवृत्त्यभेद (सं० पु०) अप्रवृत्त्यस्य भेदो विशेषो यत् । नन्दी वृक्ष, किंशो किष्कका पीपर ।
 अप्रवृत्त्यसन्निभा (सं० स्त्री०) अप्रवृत्त्यिका, किंशो किष्कका पीपर ।
 अप्रवृत्त्या (सं० स्त्री०) १ पूर्णिमा तिथि । २ सुद्रा श्वत्यवृक्ष, किंशो किष्कका पीपर ।
 अप्रवृत्त्यामन् (सं० पु०) अप्रवृत्त्येव स्याम शब्दोपस्य पु० सकारस्य तकारादेभ्यः । १ कृषीके गर्भं और द्रोणाचार्यके औरससे जात एक महावीर । इन्होंने मूमिष्ठ होते ही उच्चैःश्रवा अप्रवृत्ती तरह शब्द निकाला था, इसीसे इनका नाम अप्रवृत्त्यामा पड़ा । “अप्रवृत्त्ये वाद्य यत् स्यात् नन्दतः प्रद्विषो मतम् । अप्रवृत्त्यामेव बालीउपे महाप्रत्याया भविष्यति ॥” (महाभारत भाविवर्षे १२।१३०-३८) अप्रवृत्त्यामाने कुरुक्षेत्रके युद्धमें महावीरत्व देखाया था । कहते हैं, इनकी मृत्यु नहीं, यह अमर है । २ पाण्डवपक्षके मालव राज इन्द्रवर्माका हाथी । कुरुक्षेत्रके युद्धमें द्रोणाचार्य, महाविक्रमसे पाण्डवोंकी सैन्यको विनष्ट कर रहे थे । इसलिये श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनसे बोले, ‘द्रोणाकी उम्हना करके विना मारे और कोई रक्षा नहीं है । अतएव सब कोई उनके निकट यह सभ्यादः दीजिये, कि अप्रवृत्त्यामा इत हो गया ।’ पाण्डव पक्षके लोगोंने ऐसा ही किया, परन्तु द्रोणाचार्यने किसी की बात न मानी । वे बोले—युधिष्ठिरके मुखसे यह समाचार विना सुने इसको विश्वास नहीं हो सकता । युधिष्ठिर सत्यवादी रहे, मिथ्यावातमें उन्हें नरकवत् घृणा थी । इधर अप्रवृत्त्यामा मारागया यह, विना बोले युद्धमें पराजय होते रहा । ‘उसी समय मालव राजके अप्रवृत्त्यामा नामक हस्तोकी मृत्यु हुई थी । इसीसे युधिष्ठिर कौमल करके ‘अप्रवृत्त्यामाहतः’ कुण्ड उच्चैःश्रवसे कहके ‘इति गज’ यह बात अल्प धीरे धीरे बोले । सुतरां द्रोणाचार्य श्रेय कथा सुन न

पानसे समझे, कि सत्यही उनका पुत्र अप्रवृत्त्यामा विनष्ट हो गया ।
 अप्रवृत्त्यामा, अप्रवृत्त्यामन् देखी ।
 अप्रवृत्त्यिक (सं० त्रि०) अप्रवृत्त्येन चरति, अप्रवृत्त्यन् । (पा ३।३।१०) अप्रवृत्त्य फल धानेवाला जन्तु, जो जानवर पीपरका फल खाता हो ।
 अप्रवृत्त्यिका, अप्रवृत्ती देखी ।
 अप्रवृत्ती (सं० स्त्री०) पिप्पलादेराक्षतिगणत्वात् ङोप् । १ सुद्रपदाप्रवृत्त्यवृक्ष, पाकर । यह मधुर, कषाय, रक्तपित्तघ्न, विपन्न, टाहघ्न और गर्भिणीके लिये हितकर होती है । (राघवविचष्ट) २ वृक्ष-विशेष, कोई पौधा । यह वनमें उत्पन्न होती और पीपलजैसी छोटे-छोटे पत्ते रखती है । इसका पर्याय—लघुपत्नी, पविता, इक्षुपत्रिका, पिप्पलिका, वनस्या, अप्रवृत्तिका ।
 अप्रवृत्त (सं० त्रि०) अप्रवृत्तदान करनेवाला, जो घोड़ा वधुयता हो ।
 अप्रवृत्तद्रुक (सं० पु०) १ गोक्षुर वृक्ष, गीखुरुका पेड़ । २ हिंस्रजन्तु विशेष, कोई खूखार जानवर ।
 अप्रवृत्तद्रु (सं० स्त्री०) अप्रवृत्त्य दंष्ट्रा इव भाकारेण तत्सादृश्यात् । गोक्षुरवृक्ष, गीखुरुका पेड़ ।
 अप्रवृत्ता (सं० पु०) अप्रवृत्तदान करनेवाला पुत्र, जो शस्त्र घोड़ा वधुयता हो ।
 अप्रवृत्तावन, अप्रवृत्ता देखी ।
 अप्रवृत्तवृत् (सं० पु०) घोड़सवार हरकारा, जो शस्त्र घोड़ेपर चढ़कर खबर देता हो ।
 अप्रवृत्तनाय (सं० पु०) अप्रवृत्त नयति, अप्रवृत्त-नी-अप्-उप० समा०; यद्वा नयति, कर्तरि णः नायः; अप्रवृत्त्य नायः । इ-तत् । अप्रवृत्तपालक, संघीस, जो शस्त्र घोड़ा पालता हो ।
 अप्रवृत्तनाय (सं० पु०) श्वेतकरवीर, मर्दे कनेर ।
 अप्रवृत्तनिवन्धिका (सं० स्त्री) अप्रवृत्तपालिका, संघीस ।
 अप्रवृत्तनिर्णय (सं० त्रि०) अप्रवृत्तनिर्णयित, घाड़ोंसे मजा डुभा ।
 अप्रवृत्त (सं० त्रि०) अप्रवृत्त्य घोटकस्य वज्रैः स्यापकस्य धर्मस्य वा चन्तो भागी यत्, शकन्धादि टैर्त्तपः

वट्टी० । १ अश्वत्थ, बुरा । २ मृत, मुर्दा । (पु०)
३ क्षेत्र, मैदान । ४ सुखी, चूल्हा, भट्टी । ५ अश्वत्थ,
मुहतकी पदममौजूदगो । ६ सरप, मीत । ७ प्राणि-
प्रभाका स्थान, मङ्गल, जिस जगहमें छानघर मारि
जाये । अश्वत्थमें सेमें पुत्रालम्बणी वही । (ई०)
अश्वत्थ (सं० पु०) अश्वत्थ पति रक्षति, अश्वत्थ-पा-
थ । १ अश्वत्थपालक, सयीस । २ अग्निपालक, भागकी
द्विफाजत करनेवाला । ३ मानिक, जो भागके
साथ हो ।

अश्वत्थपति (वै० पु०) १-तत् । १ अश्वत्थपालक,
सयीस । २ रामायणप्रसिद्ध कैकेय राजविशेष । यह
भरतके मातुल रहै । ३ असुरविशेष । ४ राजीपाधिभेद ।
अश्वत्थपत्वाटि (सं० पु०) अश्वत्थतिरिति शब्द आदि
येषाम्, वट्टी० । अश्वत्थप्रतिभाष । पाशापाशा प्रागदी-
व्यतीय अर्थमें यष् प्रत्ययके निमित्त पाणिन्युक्त शब्द-
समूह । यथा,—अश्वत्थपति, छानपति, शतपति, धन-
पति, गणपति, स्थानपति, यज्ञपति, राष्ट्रपति, कुल-
पति, गृहपति, धान्यपति, वन्धुपति, धर्मपति, सभा-
पति, प्राणपति, क्षेत्रपति, पशुपति, अश्वपति ।

अश्वत्थपर्ण (वै० त्रि०) अश्वत्थानां पर्णं गमनं यत्,
वट्टी० । अश्वत्थके पर्णवाला, जिसमें घोड़ेके बाजू
रहै । यह शब्द रथ एवं मेघका विशेषण है ।
“समथ पर्णाशरणि ।” शब्० १।३।११।

अश्वत्थपर्णिका (सं० स्त्री०) भूतकेशीलता, भूतकेस ।
अश्वत्थपर्णी, अश्वत्थपर्णा देखो ।

अश्वत्थपत्ता (वै० त्रि०) व्याप्तगृह । “अश्वत्थपत्ता-
वशरणा” शब्० १।५।१३। “अश्वत्थपत्तावशरणा” (सायण)

अश्वत्थपाद (सं० त्रि०) अश्वत्थ पाद इव पादो यस्य,
वट्टी० । अश्वत्थके पैरकी तरह पादयुक्त, जिसके
घोड़ेजैसा पैर रहै ।

अश्वत्थपाल (सं० पु०) अश्वत्थान् पालयति, पा-णिच्-
नृक्-पञ्च् अच् वा, णिच् लोपः । घोटकरक्षक,
सयीस ।

अश्वत्थपुच्छक (सं० पु०) अश्वत्थगता, कांस, कुग ।
अश्वत्थपुच्छा (सं० स्त्री०) १ अश्वत्थपर्णी, पठोनी ।
२ मापपर्णी, किसी किसके दालदार पनासकी भाठी ।

अश्वत्थपुच्छिका, अश्वत्थोक्षी ।

अश्वत्थपुच्छी (सं० स्त्री०) अश्वत्थपुच्छमिव पुच्छं
केसरो यस्याः, वट्टी० । मापपर्णी हृत्, किसी
किसके दालदार पनासका पेड़ ।

अश्वत्थपुटभायना (सं० स्त्री०) दार्दिशत्प्रनपरि-
मित द्रव्यकी भावना, दशना वायोस मिनट तक
धाव-जुलान ।

अश्वत्थपुत्रो (सं० स्त्री०) १ मल्लकी हृत्, कुंदरुका
पेड़ । २ द्रव्यकी ।

अश्वत्थपृष्ठ (सं० स्त्री०) घोटकका पृष्ठ, घोड़ेकी पीठ ।

अश्वत्थपेज (सं० पु०) अश्वत्थविशेष ।

अश्वत्थपेजिन् (सं० वि०) अश्वत्थपेज अश्वत्थ-प्रणेत
यस्य पठनीयत्वे । यह शब्द बहुवचनान्त है ।

अश्वत्थपेगम् (वै० त्रि०) अश्वत्थपेगस रूपं निरूपणीयं
यस्य । अश्वत्थ द्वारा निरूपणीय, जिसे घोड़ा देखे-भासे ।
“अश्वत्थपेगसम् ।” शब्० १।१।१।

अश्वत्थवल्गु (सं० पु०) अश्वत्थस्य वल्गु वा च, इन्द्र० ।
विभाषा इव-अश्वत्थ-वल्गु-वाच-वल्गु-वल्गु-वल्गु-वल्गु-वल्गु-वल्गु-वल्गु-वल्गु-
वा १।१।१। अश्वत्थ एवं अश्वत्था, घोड़ा-घोड़ी ।

अश्वत्थवन्ध (सं० पु०) १ अश्वत्थपालक, मायोस, घोड़ा
बांधनेवाला । २ पदविशेष, कोई बहुर । चित्र-
काव्यके अनुसार यह अश्वत्थ घोड़ेकी मूर्तिमें दसतरह
मिखा जाता, जिसमें अश्वत्थ अश्वत्थ-प्रत्यय तथा आभू-
षणादिका नाम निकलता है ।

अश्वत्थवन्धन (सं० स्त्री०) १ घोटकका बन्धन, घोड़ेकी
पगाडी-पिछाड़ी । (वि०) २ घोटकके बन्धनमें काम
पानेवाला । जो घोड़ा बांधनेमें काम आता हो ।

अश्वत्थवला (सं० स्त्री०) १ मेथिका, मेथी । २ मारीकी
भाजी ।

अश्वत्थवाल (सं० पु०) अश्वत्थवालः केसर इव तदा-
कारमुप्यत्वात् । काशक, कांस ।

अश्वत्थवाह (सं० पु०) अश्वत्थो दोर्घो वाह यस्य, वट्टी० ।
यदुवंगीय चित्रकके पुत्र । हरिवंशमें इनका विशेष
विवरण है ।

अश्वत्थवृध (वै० त्रि०) अश्वत्थपर अश्वत्थ, घोड़ापर
टिका हुआ ।

अश्वबुद्ध (वै० त्रि०) अश्वोंपर अवस्थित, जो घोड़ेके रोजगारसे अपना काम चलाता हो ।

अश्वभा (सं० स्त्री०) विद्युत्, बिजली ।

अश्वमहिषिका (सं० स्त्री०) अश्वमहिषयोर्वैरम्, वृन् । अश्व और महिषका वैर, घोड़े और भैंसेकी दुश्मनी ।

अश्वमार (सं० पु०) अश्वं मारयति ; अश्व-न्-णिच्-अण्, उप० समा० । १ करवीर वृक्ष, कनैरका पेड़ । २ खेतकरवीर, सफेद कनैर । ३ उपादिका, बड़ी पोय । ४ पालङ्क श्राक, पलाककी भाली । ५ खेतकरवीरमूल, सफेद कनैरकी जड़ ।

अश्वमारक, अश्वमार देखो ।

अश्वमाराध्य (सं० पु०) खेतकरवीरवृक्ष, सफेद कनैरका पेड़ ।

अश्वमाल (सं० पु०) सर्पविशेष, किसी किसिका सांप ।

अश्वमिष्टि (वै० त्रि०) १ अश्वामिष्ठापी ; घोड़ेकी तलाश करनेवाला । २ अग्निदेव ।

अश्वमुख (सं० पु०) अश्वस्य मुखमिव मुखमस्य, बहुव्री० । किन्नर । कहते हैं, कि किन्नरका मुख घोड़े-जैसा और अन्य अङ्ग मनुष्यके समान होता है ।

अश्वमुच् (सं० पु०) अश्वहरण करनेवाला, जो शस्त्र छोड़ा चोरता हो ।

अश्वमूत्र (सं० स्त्री०) घोटकमूल, घोड़ेका पेशाब । यह तिक्त, वष्य, तोष्य, विषय, वात-क्षोप-श्रमन, पित्तकर और दौषण होता है । (राजनिघण्टु) अश्वमूल भेदक एवं कफ, दहू और छमिकी दूर करनेवाला है । (मदनपान)

अश्वमूषिका (सं० स्त्री०) शलकी वृक्ष, शलगमका पेड़ ।

अश्वमूषी, अश्वमूषिका ।

अश्वमेध (सं० पु०) अश्वो घोटकः प्राधान्येन मिथ्यते हिंस्यतेऽत, मेध हिंसने आधारि घञ् । १ पूर्वकालका प्रधान यज्ञविशेष । इस यज्ञमें घोड़ेका बलि चढ़ता था । अश्वमेधके घोड़ेका वर्ष-मेध-जैसा ऋण, सुख सुवर्णके तुल्य, उभय पार्श्व अर्धचन्द्राकार चिह्नसे षड्दित, पुच्छ विद्युत्-जैसा प्रमायुक्त, उदर कुन्दके

फूल-जैसा खेतवर्ण, पैर हरा, कर्ण सिन्दूर-जैसा रक्तवर्ण, जिह्वा प्रवृत्तित अग्निके सदृश, चक्षु स्वयं-जैसा तीजस्कर एवं सर्वाङ्ग सुगन्धयुक्त रहता और वेगवान् होता था ।

प्राचीन समय राजा ही अश्वमेध यज्ञ करते थे । पहले निव्यानवे यज्ञ करके शेषमें अश्व छोड़ना पड़ता था । घोड़ेके कपालमें जयपत्र बांधते और उसके साथ सेनासामन्त भेजते थे । कहते हैं, अश्वमेधका घोड़ा अपनी इच्छासे पृथिवी घूम आता था । किसी पराक्रान्त राजाके घोड़ा बांध रखनेपर रक्षक उससे मड़ते रहे ।

इस यज्ञमें २१ यूप बनाया चाहिये,—६ बेल, ६ खदिर, ६ पलाय, २ देवदारु एवं एक श्लोमातक काष्ठका । इस यज्ञमें गो, छाग और भेप सर्व समेत तीन सौ पशु यूपमें बांधे जाते थे । पाँछे घोड़ा मारकर प्राङ्गण लोग उसके वचःस्वल्का भेद अग्निमें संस्कार करते थे । देहके अवशिष्ट अङ्गद्वारा होम होता रहता था । कहा है कि उससमय याज्ञिक कदाचित् यज्ञके बाद अश्वका कुङ्कु-कुङ्कु मांस भी खाते थे । अश्वमेध यज्ञ करनेसे मोक्ष और स्वर्ग मिनता एवं मद्ग्राह्यत्वादि सकल पाप मिट जाता है ।

“यथाश्वमेधः क्रतुराद् सर्वपापानोदनः ।
तदाचम्यं बं स्वर्गं सर्वपापनीदनम् ॥” (मनु १।१।१११)

अश्वमेध यज्ञके अनुकल्प पृथिवीके सर्पूष्णतोर्यांका भ्रमण है ।

श्राकक्षीप वा पूर्वं स्काईथीया प्रवृत्ति स्थानमें भी अश्वमेध यज्ञ प्रचलित था । स्काईथीय वा शक लोग अपनेक प्रकार अनुष्ठान करनेके बाद यथीय घोड़ा छोड़ देते थे । पीछे रावा प्रवृत्ति किसी प्रधान व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसी घोड़ेको मार यज्ञ करते रहे । कायरसुके समय गिदसरा भी कदाचित् अश्वमेध यज्ञ करते थे । स्कन्दनेत्रियामें भी पूर्वं कदाचित् यह प्रथा प्रचलित रही ।

महाराज दशरथने अश्वमेध यज्ञ किये थे । उसका सविस्तर विवरण रामायणके पादिकोण्डमें इस प्रकार लिखा है—

वसन्त काल उपस्थित होनेपर बोर्यवान् राजा दगरथ पुत्रसामर्थ्य अश्वमेध यज्ञ करनेकी प्रतिज्ञापूर्वक शपथ वशिष्ठजीके निकट गये। वशिष्ठ शपथिने यज्ञकर्मकुशल हृष्ट ब्राह्मण, परमधार्मिक हृष्ट स्थापत्य-कर्म-कुशल ध्यक्षि, कर्मकारक मृत्यु, चर्मकार प्रभृति गिन्धो, चिन्नादि गिन्धकार, सूत्रधार, धनक, गणक, नट, नर्तक और बहुभुत शास्त्रज्ञ शपथि पुरुषोंको कहा, कि तुम लोग राजाको आश्रामे यज्ञोपयोगी समुदाय कार्य निर्वाह करो, तथा बहु सदस इन्ट लाकर अनेक गुणमन्वित राजयोग्य अनेक गृह, ब्राह्मणोंके वासयोग्य बहुविध भवनपानयुक्त सुदृढ़-उत्तम गृह और अनेक देशसि भानेवाले नृपति तथा अन्याय्य ग्रामवासी प्रभृतिवर्गोंके लिये यथायोग्य गृह निर्माण करो। * * * मद्य लोग मिल करके पाये और वशिष्ठजीसे बोले, आपका प्रतिमत समस्त कार्य सुविहित हो गया, कोई एक कार्य भी अङ्गहीन न हुआ।

अनन्तर वशिष्ठ शपथिने सुमन्वको बुलाकर यह बात कही, पृथिवीमें जितने धार्मिक नृपति एवं समस्त देशीय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन सबको आदर-सत्कारपूर्वक बोला नायो। सुमन्वने वशिष्ठजीकी बात सुनकर, राजाओंको अयोध्यानगरीमें भानयनाद्यं कार्यदक्ष पुरुषोंको आदेश किया। पीछे स्वयं भी शीघ्र ही गमन किया। अनन्तर कष्ट एक दिनमें मङ्गी-पालनोग राजा दगरथके निमित्त अनेक रत्न-लेकर अयोध्यानगरीमें समागत हुए। परे वशिष्ठ प्रधान हिमोत्तमके साथ शत्रुघ्नकी भागी करके यज्ञभूमि पर गये और यथाशक्त विधिसे यज्ञकर्म आरम्भ किये। श्रीमान् राजा दगरथ पत्नियोंके सहित दीक्षित हुए। अनन्तर मन्वत्सर पूर्ण होनेपर अग्नि प्रत्यागत हुआ और मरुतु नदीके उत्तरतीरपर यज्ञ आरम्भ किया गया। वेदधारण याज्ञकोनि गायत्री-नुमा विधिपूर्वक अनुष्ठान करने लगे। प्रथम और उपसद नामक दो कर्म यथाविधि करके, अन्यान्य कर्म सकल निर्वाह किया। पीछे सप्त देवताओंकी पूजा करके मन्तोपपूर्वक प्रातःभजन प्रभृति कर्म निर्वाह

किया। तदनन्तर मन्तरसे सोमलताको कूट करके रम निकाला। फिर मध्यदिनका भजन अनुष्ठित हुआ। श्रेष्ठ वर्षी ब्राह्मण-महात्माने दगरथका तृतीय भवन भी गायत्रीनुसार यथायत् समाधान किये। उस समय सकलदिवसमें एक ब्राह्मण, या परित्यान्त क्षुधित नहीं रहे। इन यज्ञके उप-सर्जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तापस, संन्यासी, हृष्ट, बालक, महिला, एवं व्याधित सभी ध्यक्षि भोजन करते थे। पशुधन पुनः पुनः चरस एवं विविध वस्त्र प्रदान करते थे। इस प्रकार सप्तर्षि सोत्साह यज्ञ हुआ। यज्ञरूप उत्थापनके समय गिन्ध्याशास्त्राभिन्न ध्यक्षिगण विश्वकाष्ठ निर्मित ६, खदिर निर्मित ६, वैश्वयूपके समीप स्थापनके लिये पलायनिर्मित ६, त्रेपातक निर्मित १, अक्ष वायु परि-मित देवदारु काष्ठका बनाया हुआ २। यह सब मिल करके २१ यूप विधिपूर्वक विन्यास किया गया। यह अक्ष स्वर्गयुक्त रूपगामी अष्टकीर्णमन्वित सुदृढ़ एक विशति यूप काष्ठनसे भूषित प्रत्येक एक विशति वस्त्रसे अलङ्कृत और गन्धपुष्पसे पूजित हो करके ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे दोसिगानी सप्त-महर्षि स्वर्गमें विराजमान रहते हैं। इसके बाद गिन्धियोंने इन्टसे गायत्री परिमाण चयनोय अग्नि-कुण्ड निर्माण किया, जो गङ्ङकी तरह त्रिकोणाकृति और स्वर्णनिर्मित पचषमन्वित एवं षट्पादग इस्त परिमित हुआ था। अनन्तर इस यज्ञमें गायत्रि कर्म उपस्थित होनेपर शपथियनि, गायत्री जोन जोन देवताको जो जो वलि विहित है, उन देवताओंके उद्देश्यसे वही वलि प्रोक्षण किये। उस समय बहुतर जनवर, भुवङ्ग, पशु, पक्षी और वही अग्नि प्रभृति सकल वलि प्रोक्षण करके वे ही सब यूपोंमें तीन सो (३००) पशु और श्रेष्ठ अग्नि रत्नके यन्त्रन किये। पीछे कोगत्यादेशोनि परम प्रमोदके साथ मद्य भावसे उस श्रेष्ठ अग्नि की परिचर्या करके तीन खण्ड तलवारसे छिदन किये। छन्दोंने धर्मकामनासे सुखिर चिन्तासे उन अग्निके सहित एक रात्र व्यतीत की।

अनन्तर दोता, उद्गाता, पशुधु अतिवृ प्रभृतिने

शास्त्रमें अश्वका जो अङ्ग हवनार्थं विहित है उसको यथाविधि ऋग्निमें हवन किया। इसके बाद राजा दशरथने न्यायानुसार यज्ञ समापन होनेपर, हीताके पूर्व देश, अध्वर्युके पश्चिम देश, ब्रह्माके दक्षिण देश एवं उद्दगाताके उत्तरदेश, दक्षिणा प्रदान की। ऋत्विक् प्रभृति ब्राह्मणोंको समय पृथिवी दक्षिणा प्रदान करके पत्न्यन्ता हर्षं हुये थे। अनन्तर सब कोई बोले, हे भूपते ! हम लोगकी राज्यका प्रयोजन नहीं, सुतरां पृथिवी पालन कर नहीं सकते हैं। अतएव आप इसका भूख्य देकर ले लीजिये। मणि, रत्न, वसन, गौ इनमें जो उपस्थित हो, वही देकर पृथिवी ले लीजिये। उस समय प्रजापालक दशरथने वेदपारग ब्राह्मणको दस लाख गौ और दस कीटो सुवर्ण प्रदान किया और इसी तरह ऋत्विग् प्रभृतिकी भी दिया। अनन्तर अभ्यागतोंकी कोटि सुवर्ण प्रदान किया। उस समय ऐसा कोई याचक न रहा जो दान न पाया हो।

(रामायण आदिकाण्ड ११३ और १३३ सर्ग)

ऐतरेय-ब्राह्मणमें जनमेजय पारिचित, शार्यात मानव, शतानीक सात्राजित, शास्वठ्य, युधांश्रौठि औप्रसिन्य, विश्वकर्मा भोवन, सुदाम् पैजवन, मरुत्त आविचित, अङ्गराज वैरोचन, भरत दापन्ति, दुसुंख पाञ्चाल, अत्यराति जानन्तपि प्रभृति राजाश्रोका अश्वमेध यज्ञका प्रसङ्ग है। (ऐतरेय-ब्राह्मण ८ पृ० १८ पं० १३ ८ खण् देखिये) रामायणमें राजा दशरथ और रामका, महाभारतमें युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ सविस्तृत वर्णित है। हिन्दुराजगणमात्र ही किसी न किसी समय अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान अवश्य करते थे, इसका आभास पाया जाता है। बौद्ध और जैन प्रभावकाल सौर्धदेशके समय वैदिक क्रिया सहित अश्वमेध यज्ञ बन्द हो गया था। शुद्धवंश-प्रतिष्ठाता पुष्यमित्रने फिर अश्वमेध यज्ञका प्रवर्तन किया, नाना पुराण और मालविकाग्निमित्र नाटकमें इसका परिचय मिलता है। इसके बाद शकाधिकार कालमें पुनः अश्वमेधयज्ञ बन्द हो गया, पीछे चतुर्थ शताब्दीसे गुप्त-सम्भ्राट् समुद्रगुप्तने पुनः अश्वमेधयज्ञ प्रवर्तन किया। इस उपलक्षमें उनका अश्वमेध-मुद्रा प्रचलित है। गुप्त-

वंशके बाद उत्तरभारतमें अश्वमेध यज्ञानुष्ठान एक प्रकार लोप हो जाने पर भी दाक्षिणात्यमें चालुक्य, यादव प्रभृति वंश बराबर अश्वमेधयज्ञ करते रहे। नाना भिलालिपि और ताम्रलेखसे इसका आभास पाया जाता है।

प्रधान प्रधान राजपुत्र नरपतियोंने अश्वमेध यज्ञ करते हैं। बङ्गदेशीय ध्मार्ते रघुनन्दन कलिमें अश्वमेध यज्ञका निषेध किये, तथापि हिन्दुराजगण यज्ञ करनेसे विरत नहीं हुये। जयपुरका सुप्रसिद्ध नरपति सवाई जयसिंह ई०के १८३३ शताब्दीमें अश्वमेध यज्ञ किये थे। महानन्द-पाठक रचित 'अश्वमेध-पद्य-तो'में इसका परिचय पाया जाता है और उस अश्वमेध यज्ञके विषयमें कथिकलानिधि क्षण भद्र कर्तृक राज-पुतानाका छिद्दल भाषामें रचित प्राकृत गाथा भी गीत हुआ करती है। यह गाथा अश्वमेधपदतिसे सङ्गत हुई है। राजेन्द्रवर्मा नामक एक मामन्तराजाने अश्वमेधयज्ञ करनेकी भूमिलापसे याज्ञिक पण्डित महानन्दपाठकके द्वारा उक्त अश्वमेधपद्यति सङ्कलन कराये थे। यह पद्यति अति सङ्गत है। इसमें अश्वमेध-यज्ञमें जो जो द्रव्यका प्रयोजन तथा जिस जिस अनुष्ठानका आवश्यक है सो सबका विस्तारपूर्वक वर्णन है। कलकत्ता एसोसिएटिक मोसाइटोंमें इसकी हस्तलिखित एक पोथी है।

पूर्व कालमें साधारणतः सार्वभौम नरपति अश्वमेध यज्ञ करते थे। किन्तु इस समय जब हिन्दु समाजमें कोई सार्वभौम नरपति नहीं हैं तो किस तरह अश्वमेधयज्ञ हो सकता है ? इसके उत्तरमें पद्यतिकार महानन्द पाठक ऐसा प्राचीन प्रमाण उद्धृत किये है, "य काल्यायनम् अश्वमेधः। राजपुत्रीश्वमेध सर्वकामयः। पवित्रोऽतिगुणवान् सविवी राजेश्वर्युक्ते। आदत्तस्वर्गो राजा सार्वभौम अश्वमेधेन यजेते। सार्वभौम इत्याह माण्डनिकन्यायधिकारः। इति केषां चविद्वय इति केलाजसूक्तं पवित्रमादत्तमाधिकारः। ००० सिद्धान्त-संग्रहं बघायां बघांनानधिकार एकः।" अर्थात् काल्यायन-श्रौतसूत्रके मतसे अश्वमेध राजयज्ञ है। अर्थात् सर्व फलकामनाके लिये राजा मात्र ही अश्वमेधयज्ञ कर सकते हैं, अग्निपितृ और गुणवान् सविव्यमात्र ही

सूचक चिह्न विशेष, जिस निशानसे घोड़ेका भला-बुरा समझ पड़े।

अश्वललित (सं० स्त्री०) हत्तरनाकरोक्त तैरिस अक्षरकी पादका पूर्ण हत्त विशेष। जिस हत्तमें यथाक्रम न ज भ ज भ ज भ ल ग नामक गण रहता और जिसके आठ तथा बारह अक्षरमें यति पड़ता, उसका नाम अश्वललित है। छन्दोमञ्जरोकारने इसीको अद्रितनया कहा है।

अश्वलाला (सं० स्त्री०) अश्वस्य लालेव आकारेण। १ ब्रह्मसर्प। २ इलाहल सर्प, जहरीला सांप। अश्वलोमन् (सं० पु०) १ घोटकलोम, घोड़ेका रोयां। २ सर्पविशेष, किसी किष्कका जहरीला सांप। अश्वलोमा, अश्वलोमन् देखी।

अश्ववक्त्र (सं० पु०) अश्वस्य वक्त्रमिव वक्त्रमस्य, शाक० बह्व्री०। १ किन्नर, किम्पूरुप, देवयोनि विशेष। २ हयग्रीव, विष्णुमूर्तिविशेष। तन्वसारमें इनका ध्यान इस प्रकार है—

“अश्वशालाप्रमथवक्त्रं सुहृत्प्रमथैरामरुः प्रदीम”।
रथाश्वशालाचिन्तवाङ्मुक्ताम् जायुष्यवक्त्रकरं भगवाम् ॥”

अश्ववत् (सं० त्रि०) अश्वाना सन्तस्य भूमि मत्पुमस्य व। १ अश्वयुक्त, जिसके पास घोड़ा रहे। (अथ) अश्वे इव अथ वा वति। २ घोड़ेकी तरह। अश्वमर्हति वति। अश्वपानिके योग्य, घोड़ा पाने लायक।

अश्ववदन (सं० पु०) किसी देशका प्राचीन नाम। इयसुल देखी।

अश्ववह (सं० पु०) अश्वेनोह्रते, अश्व-वह कर्मणि वा अच्। १ अश्वके वहनीय, घोड़ेके ले जाने लायक। २ अश्वारोही, घोड़ेपर चढ़नेवाला या घोड़ेपर चढ़े हुए।

अश्ववार (सं० पु०) अश्वं वारयति, अश्व-चूरा० ह-णिच्-प्रण्। १ हयनिवारक, घोड़ेको रोकनेवाला। २ अश्वारोही, घोड़ेसवार। खुल्, अश्ववारक, सुहसवार। खुल्, अश्ववारण, अश्वारोही।

अश्ववाल (सं० पु०) १ वैश्वजातिका खनामप्रसिद्ध येभिन्नेद, योसवाल। शिक, देखी। २ घोड़ेका लोम। ३ गुल्मभेद। अशवाल देखी।

अश्ववाह (सं० पु०) अश्वं वहति उद्दिष्ट-यज्ञस्थानं प्रापयति, अश्व-वह-खि उपधा हृदिः। अश्वको यज्ञशालामें ले जानेवाला, जो अश्वमेधके घोड़ेको यज्ञस्थलमें ले जाता हो।

अश्ववाह (सं० पु०) अश्वं वाहयति चालयति, वह-णिच्-प्रण्-णिच् लोपः। घोड़ेसवार, जो घोड़ेपर चढ़ता हो। खुल्। अश्ववाहक, घोड़ा हांकनेवाला। खुल्। अश्ववाहन, जिसकी घोड़ेपर सवारी रहे। अश्वविक्रयिन् (सं० त्रि०) अश्वं विक्रतुं शीलमस्य, विक्रि-शोलाधे णिनि। घोड़ा बेचकर जीविका करनेवाला, जो सोदागर घोड़े बेचता हो।

अश्वविद् (सं० पु०) अश्वं लक्षयया तन्मानसं वेत्ति विद्-क्तिप्-इ-तत्। १ नलराज। महाभारत—यनपर्वके ७२ अध्यायमें राजा नलकी अश्वतल्लक्षताका विषय वर्णित है। (वे० त्रि०) २ अश्वलाभकर्ता, जो घोड़ा लाता हो।

अश्ववैद्य (सं० पु०) अश्वस्य अश्वानां वा वैद्यः चिकित्सकः इ-तत्। अश्वचिकित्सक, जो घोड़ेकी चिकित्सा करता हो। नकुल, शालिहोत्र, जयदत्त प्रभृतिके बगाने अश्वशास्त्रमें अश्वचिकित्साका वर्णन है।

अश्वगद्गु (सं० पु०) अश्वस्य गद्गु, इ-तत्। १ घोड़ा बांधनेका खंटा। अश्वस्य गद्गुरिव। २ दनुके पुत्रविशेष। महाभारत आदिपर्व ६० अध्यायमें दनुके चालीम पुत्र मध्य अश्वगद्गुका ही नाम परिच्छेदित हुआ है।

अश्वशाला (सं० स्त्री०) अश्वस्य अश्वानां वा शाला गृहं, इ-तत्। १ घोड़ेका घर, सुइसाल, अश्वशाल। जयदत्तकृत अश्वशास्त्रमें घोड़ेका गृह निर्माण करनेके लिये ऐसा विधि लिखा है—अश्वशालको पूर्व धीर उत्तर तरफ, कुछ टालू होना चाहिये। उसमें बाल, काष्ठ, किन्वा कोई टुट फीट रहने न पाय। घरके भीतर पूर्ण रूप सूजा हो। अश्वशालको एक तरफ, बरीके काष्ठकी पाड़ रखी जाती है। घोड़ेके सम्मुख इहातमें बाल पड़ता है। इच्छा होनेपर घोड़ा उसी जगह लोटपोट लेता है। बनेक लोग अश्वशालमें बानर बांध देते हैं। उन्हें विस्वाम है, इससे घोड़ेकी किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती।

सूचक चिह्न विशेष, जिस नियान्से घोड़ेका भला-बुरा समझ पड़े।

अश्वललित (सं० स्त्री०) उत्तरद्वारोक्त त्रेदस अक्षरके पादका पूर्णवृत्त विशेष। जिस वृत्तमें यथाक्रम न ज भ ज भ ज भ ल ग नामक गण रहता और जिसके आठ तथा बारह अक्षरमें यति पड़ता, उसका नाम अश्वललित है। छन्दोमञ्जरोकारने इसीकी अद्वितीयता कहा है।

अश्वलाला (सं० स्त्री०) अश्वस्य लालेय आकारेण। १ ब्रह्मसर्प। २ हलाहल सर्प, जहरीला सांप।

अश्वलोमन् (सं० पु०) १ घोटकलोम, घोड़ेका रोंयां। २ सर्पविशेष, किसी किष्कका जहरीला सांप।

अश्वलोमा, अश्वलोमन् देखो।

अश्ववक्त्र (सं० पु०) अश्वस्य वक्त्रमिव वक्त्रमस्य, शाक० बह्वृत्ती०। १ किन्नर, किम्पुरुष, देवयोनि विशेष। २ हयग्रीव, विश्वात्मूर्तिविशेष। तन्वसारमें इनका ध्यान इस प्रकार है—

“अश्वशालाप्रममवक्त्रं सुज्ञामधेरावर्यः प्रदीतः।

रथाशशुचिनाशुदुग्धं जातुहयवक्त्रकरं भजामः॥”

अश्ववत् (सं० त्रि०) अश्वो मन्त्रस्य भूभि मत्तुपमस्य व। १ अश्वयुक्त, जिसके पास घोड़ा रहे। (अथ) अश्वे इव अस्य वा वति। २ घोड़ेकी तरह। अश्वमर्हति वति। अश्वपानेके योग्य, घोड़ा पाने लायक।

अश्ववदन (सं० पु०) किसी देशका प्राचीन नाम। इत्युत्प देखो।

अश्ववह (सं० पु०) अश्वेनोद्यति, अश्व-वह कर्मणि वा अच्। १ अश्वके वहनीय, घोड़ेके ले जाने लायक। २ अश्वारोही, घोड़ेपर चढ़नेवाला या घोड़ेपर चढ़े हुए।

अश्ववार (सं० पु०) अश्वं वारयति, अश्व-चुरा० वृ-णिच्-अण्। १ हयनिवारक, घोड़ेको रोकनेवाला। २ अश्वारोही, घोड़ेसवार। युल्ल, अश्ववारक, घुड़सवार। ल्यु, अश्ववारण, अश्वारोही।

अश्ववाल (सं० पु०) १ वैश्वजातिका खनामप्रसिद्ध ऐषिभेद, घोसवाल। लब्धि, देखो। २ घोड़ेका लोम।

इ शुक्लभेद। अश्वगान देखो।

अश्ववाह (सं० पु०) अश्वं वहति उद्दिष्ट-यज्ञस्थानं प्रापयति, अथ-वह-णिच् उपधा वृद्धिः। अश्वकी यज्ञशालामें ले जानेवाला, जो अश्वमेधके घोड़ेको यज्ञस्थलमें ले जाता हो।

अश्ववाह (सं० पु०) अश्वं वाहयति वालयति, वह-णिच्-अण् णिच् लोपः। घोड़सवार, जो घोड़ेपर चढ़ता हो। युल्ल, अश्ववाहक, घोड़ा हांकिनेवाला। ल्यु, अश्ववाहन, जिसकी घोड़ेपर सवारी रहे।

अश्वविक्रयिन् (सं० त्रि०) अश्वं विक्रतेुं शीलमस्य, विक्रि-शोलाथे णिनि। घोड़ा बेचकर जीविका करनेवाला, जो सौदागर घोड़े बेचता हो।

अश्वविद् (सं० पु०) अश्वं लक्षणया तन्मानसं वेत्ति विद्-क्लिप् इ-तत्। १ नलराज। महाभारत—वनपर्वके ७२ अध्यायमें राजा नलकी अश्वतत्त्वज्ञताका विषय वर्णित है। (वे० त्रि०) २ अश्वलामकर्ता, जो घोड़ा लाता हो।

अश्ववैद्य (सं० पु०) अश्वस्य अश्वानां वा वैद्यः चिकित्सकः इ-तत्। अश्वचिकित्सक, जो घोड़ेकी चिकित्सा करता हो। नकुल, शालिहोत्र, जयदत्त अश्वतिके वनाथे अश्वशास्त्रमें अश्वचिकित्साका वर्णन है।

अश्वगङ्गु (सं० पु०) अश्वस्य शङ्खु, इ-तत्। १ घोड़ा बांधनेका खुंटा। अश्वस्य शङ्खुरिव। २ दनुके पुत्रविशेष। महाभारत आदिपर्व ६० अध्यायमें दनुके वालीस पुत्र मध्य अश्वगङ्गुका ही नाम परिगृहीत हुआ है।

अश्वशाला (सं० स्त्री०) अश्वस्य अश्वानां वा शाला गृहं, इ-तत्। १ घोड़ेका घर, घुड़साल, अस्तबल। जयदत्तकृत अश्वशास्त्रमें घोड़ेका गृह निर्माण करनेके लिये ऐसा विधि लिखा है—अस्तबलको पूर्व और उत्तर तरफ, कुक टाल होना चाहिये। उसमें बाल, काष्ठ, किम्वा कोई दृष्ट कीट रहने न पाय। घरके भीतरपूर्ण रूप सूखा हो। अस्तबलको एक तरफ, बेरीके काठकी आड़ रखी जाती है। घोड़ेके सम्मुख दृश्यात्में बाल पड़ता है। दृच्छा होनीपर घोड़ा उसी जगह लोटपोट लेता है। अनेक लोग अस्तबलमें वानर बांध देते हैं। उन्हें विश्वास है, इससे घोड़ेको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका लक्ष्मणपुत्रक
शास्त्र, शास्त्रं तत् । शास्त्रिहोत्रकृत घोड़ाके लक्ष-
णादिका शास्त्रक शास्त्र । मनुज पौर लयदत्तका
भगवा भी कीर्ति अष्टाशतिका है ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका गिरः १-तत् ।
१ घोड़ेका मन्त्रक । अष्टाशतिका गिर इव गिरी यन्त्र,
बहुश्रीः । २ दानव विगेष, कीर्ति देव्य । महा-
भारत मध्य दशुके चामीस पुत्रोर्मि दशका नाम स्थीत
दृष्टा है । ३ इयश्रीय नामक विष्णुकी मूर्ति ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिकायोर्वरं दन्तात्
वेदे-पुनू टाए पत इत्वम् । घोड़े पौर शृगालकी लड़ाई ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका चन्द्रति आल्हा-
दयति, अष्टि-पिच-रष-पिच श्लोपः टाए । ३ तत् ।
वेदे पृथोः सुडागमः । घोड़ेसे आल्हाद लेनेवाली स्त्री,
जो पौरत घोड़ेमें मजा पाती हो ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका पट्कं, अष्ट
पट्के पट्-गवष् । (महापदं पट्के पट्गवष् । अष्टिंश,
पा ३११२ इति) । छः घोड़ा ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका मनुते ददाति, मनु
मन्वापुत्री इत् । अष्टाशतिका इति इन् १-तत् । अष्टा-
दाता, जो घोड़ा देता हो ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका मनुते अष्टा-मन जन-
कनकनकनकीर्ति । पा १११ । १०० इति विट् । विष्णोपलक्षि-
कनकम् । पा ११११ । इति आत्वम् । अष्टादाता, घोड़ा
दान करनेवाला, जो घोड़ा देता हो ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका सादयति गमयति,
अष्टा-सद-पिच उपधासहिः अष्ट-पिच श्लोपः उपस० ।
अष्टाशतिका, घोड़ा हाकनेवाला, पुङ्गवपार ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका मीटति गच्छति,
सद-पिचि १-तत् । अष्टाशतिका, घोड़ेपर चढ़नेवाला,
घोड़सवार ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) घेदका सूक्त विगेष । इधमें
घोड़ेका बयान है ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका शिवा यन्त्र, बहुश्रीः ।
१ जिनविद्यविगेष । २ नृप विगेष, कीर्ति राजा ।
इमके पुत्र सनत्कुमार है । ३ सनत्कुमार सपविगेष ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) १-तत् । सनत्-
कुमार ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) श्रीभवः शम्-पु, गुट, अष्टाशतिकाः
नञ्-तत् । केवल वर्तमान दिन जात, दूसरे दिन न
रहनेवाला ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका मत्वर्थे
ठन् नञ्-तत् । जो बृहस्प केवल वर्तमान दिनके
योग्य धन सख्य कर सक्ता हो, जिसके धन दूसरे
दिन न रह सके ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका श्लोमं श्लुति-
रक्षि, अष्टा मत्वर्थे छ । अष्टाशतिका श्रुतिमें युक्त सूक्त
विगेष । अष्टाशतिका १३१ मण्डलका १३२ सूक्तमें
अष्टाशतिका श्रुति है—

“मा नो विरो बहवो अष्टाशतिका अष्टाशतिका मन्त्रः परि लम् ।
अष्टाशतिका श्लोमं श्लुतिरक्षि अष्टाशतिका श्रुतिरक्षि ॥”
(अष्टाशतिका)

इस अष्टाशतिका श्रुति करनेको प्रवृत्त हुए हैं । मिय,
बहव, अष्टाशतिका, अष्टाशतिका, अष्टाशतिका, मन्त्र प्रवृत्ति
देवता जिसमें निम्न न करे । इस हेतु बहु अष्टा-
शतिका देवजात अष्टाशतिका यत्र विषयमें श्रुतिकी कथा
इस कहेंगे । इसी तरह २२ अष्टाशतिका भी घोड़ेकी श्रुति
की गई है ।

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) १-तत् । अष्टाशतिका अष्टाशतिका
अष्टा, जहां घोड़े बांधे जायें, अष्टाशतिका ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका इति, इन्-तत् ।
१-तत् । करवीर फलका अष्टा, कनेरका पेड़ ।
(स्त्री०) अष्टाशतिका, घोड़ेको गाय करनेवाला ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका द्विनोति गच्छति, हि-
कर्तरि अष्ट । अष्टाशतिका रथ पर सर्वदा गमन करने
वाला, जो घोड़ागाड़ीपर चलाता हो । “अष्टाशतिका
अष्टाशतिका रथः ॥” (अष्टाशतिका)

अष्टाशतिका (सं० स्त्री०) अष्टाशतिका इदं मनोगत
भावादि । १ अष्टाशतिकाविगेष । २ अष्टाशतिकाप,
घोड़ेकी आदिम ।

अष्टाशतिका (सं० पुं०) अष्टाशतिका अष्टाशतिका अष्टाशतिका ।
श्लोमरिचका अष्टा, मरसिका पेड़ ।

अश्वत्थि—गोवापत्य अर्थमें फल् प्रत्यय होनेके लिये पाणिन्युक्त शब्दगणविशेष । अश्वत्थिः फल् । वा ४।१।१०।
अश्व, अश्वत्, गड्, ख्य, विद, पुट, रोहिण्य, खर्जर, खर्जुल, पिच्छुर, भडिल, भण्डिल, भडित, भण्डित, भण्डिक, प्रहृत, रामोद, छव, श्रौवा, काश, गोसाहच्य, अर्क, खन्, ध्वन, पाद, अक्र, कुल, पवित्र, गोमिन्, श्याम, धूम, धूम, वाग्मिन्, विखानर, कुट, श्रेय, आश्रये, नक्ष, तड, नड, घोष, अर्ह, विश्वय, विशाला, गिरि, चपल, सुनम, दासक, वैल्य, धर्म, अनडुह्य, पुंसिजात, अर्जुन, शूद्रक, सुमनस्, दुर्मनस्, धाम्न्, प्राच्य, कित, काण, शुम्भ, श्रविष्ठा, वीर्य, पविन्दा, आश्रये भरद्वाज, भरद्वाज आश्रये कुत्स, आतथ, कितथ, शिव, खदिर, पथ, काण्ड, श्रुय, सुत, फर्कटक, रुच, तर्क, तल्लुच, प्रचल, विलम्ब, विशुज ।
यही शब्द अश्वत्थि हैं ।

अश्वत्थामघ (वै० लि०) अश्वत्थे मघं धनं यस्य, वेदे दीर्घः । १ अश्वत्थय धन रखनेवाला, जिसके घोड़ा ही धन रहे । २ घोड़ा दानकरने वाला, जो घोड़े ही दान करता हो । “अश्वत्थामो नवावर्षा इवेम ।” अन् ७०।१।

अश्वत्थयुर्वेद (सं० पु०) अश्वत्थ आशुर्विद्यते अनेन, विद्-पिच्-घञ् । घोड़ेकी आयु और चिकित्सा बताने वाला शास्त्र विशेष । पहले शानिहोत्रने अपने पुत्र सुश्रुतको यह विद्या सिखायी थी । पीछे जयदत्तने यह विद्या सहजान की । गर्गऋषि नकुलगण प्रभृतिने अश्वत्थयुर्वेद रचना किया ।

अश्वत्थारि (सं० पु०) १-तत् । १ घोड़ेका शत्रु । २ अहिण्य, भैंसा ।

अश्वत्थारुढ (सं० पु०) अश्व आरुढः अनेन, बहुव्री० । घोड़ेपर चढ़ा हुआ, घोड़ेसवार ।

अश्वत्थारोह (सं० पु०) अश्वत्थारोहति आ-रुह-अण्, लप्० समा० । १ अश्वत्थारुहक, घोड़ेको हाँकने वाला, घोड़ेसवार । (स्त्री०) अश्वत्थगन्धा ।

अश्वत्थारोहण (सं० पु०) घोड़ेकी सवारी ।

अश्वत्थारोही (सं० पु०) घोड़ेका संघार, संघार ।

अश्वत्थवतान (सं० पु०) अश्वत्थ इव अवतानो यस्य । ऋषिबिषय, कोई ऋषि ।

अश्वत्थवतारी (सं० पु०) वृत्तविशेष, कोयी छन्द । इसमें एकतीस मात्रा होती और औरछन्द पढ़ता है ।

अश्विन (सं० पु०) द्विव० । अश्वः सन्ति ययोः इति । अश्विन्यां नक्षत्रे भवौ (अश्विनैकायुगपत्तुभवेत्तौ इति वा ४।१।११) इति अण्, ततः स्त्रीप्रत्ययस्य लुक् । अश्वत्थ उत्पत्तिः स्यान्त्वेन सन्त्वात्स इति वा । सर्गवैद्य अश्विनिकुमारद्वय ।

निरुक्तमें अश्विन शब्दका ऐसा विवरण मिलता है—
“अप्यतो धृष्टाना देवता काशानाश्रितौ प्रथमगामिनौ भवतोऽश्विनौ यथाश्रुतानि सर्वे रसेनाथो आतिथान्त्वोऽर्च्ये रश्मिनाश्रित्यां नमसक्युः काशश्रितौ । यथाश्रित्याश्रित्ये केऽशोरावाश्रित्ये केऽश्वानाश्रित्ये केऽश्वानाश्रित्ये के । राजानो पुण्यकृतानि चित्तिहासिकाश्रयः काशः ऊर्ध्वमर्शरावात् प्रकाशोभवत्तानुविष्टभ्रमन्तमो-मागो हि मध्यमो ज्योतिर्भाग आदित्य नवोरिवा भवति ।” (निरु० १।१।११)

अनन्तर अन्तरीक्षके देवताओंका वर्णन करते हैं । उनमें अश्विन प्रथम हैं । उनमें एक रसहारा और दूसरे ज्योतिः द्वारा सर्वत्र व्याप्त हैं । इसीसे उन्हें अश्विन कहते हैं । शीर्षधाभके मतसे, अश्वत्थयुक्त पुण्यवान् राज ह्यका नाम अश्विन है । किन्तु यह अश्विन कौन है—किसीके मतसे, पृथिवी एवं अन्तरीक्ष उडरते हैं । कोई कोई कहते, दो दिन और रात हैं । किसी किसीका कहना है, कि वह सूर्य और चन्द्र हैं । ऐतिहासिक बतते हैं, कि वे पुण्यवान् राजा हैं । आलोकप्रकाशमें कुछ विलम्ब रहते अर्धरात्रके पूर्व उन लोगोंका समय निर्दिष्ट है । अन्धकार भाग मध्यम एवं ज्योतिर्भागको आदित्य कहते हैं । उन लोगोंका समय सूर्योदय तक ही है ।

महाभारतके अनुशासन पर्वमें लिखा है,—अश्व-नने इन्द्रसे कहा, अश्वान्य देवताओंके साथ अश्विनको भी सोमरस पीनेकी मिले । इन्द्र इस बातपर राजी न हुए । उन्होंने कहा,—अश्विन देवताओंके वरावर नहीं हैं, इसलिये हम लोग उनके साथ सोम पान नहीं कर सकते । इसपर अश्वनने फिर कहा,—अश्विन सूर्यके सन्तान हैं; अतएव वे देवता हैं, इसलिये उनके साथ सोमपान करनेमें हानि नहीं है । फिर भी इन्द्र राजी न हुए । इसके बाद अश्वनने एक यज्ञ आरम्भ किया । उसी यज्ञसे

तैत्तिरीय-संहितामें “अश्विनौ वै देवतामनुजावरौ” (७।४।७।१)

अश्विन् और और देवताओंसे छोटे कहे गये हैं। ऋत्विक्के (१।१।१।७।) भाष्यमें मायणाचार्यने लिखा है, कि सविताकी कन्या सूर्याके साथ अश्विन्का विवाह हुआ था। ऐतरेय-ब्राह्मणमें (१।०) इस इतिहासका कुछ विवरण देखनेमें आता है।

अश्विनौ (म० स्त्री०) अश्वस्तदुत्तमाङ्गाकारोऽस्त्रास्य, इति ङीष् । १ सत्ताईस नक्षत्रके अन्तर्गत प्रथम नक्षत्र । २० नक्षत्र दक्षकी कन्या हैं, इसलिये अश्विनौको दाक्षायणी कहते हैं। इनका दो पर्याय देखा जाता है—अश्वयुक् और दाक्षायणी। अश्विनौ चन्द्रकी भार्या हैं। इनका आकार घोड़ेके मुखकी तरह और अधिष्ठात्री देवता अश्वारूढ पुरुष है। अश्विनौ नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ मनुष्य विनीत, सम्पत्तिशाली, सत्वान्वित एवं पुत्रवान् होता है। इनके मन्त्रके ऊपर उदित होनेसे कर्कशमनका १ दण्ड ३० पल गत हो जाता है। २ घोड़ी।

अश्विनौकुमार (सं० पुं० द्विव०) सूर्यके दो पुत्र। यह वारुणधारिणी सूर्यपत्नी त्वाष्ट्री (खटाकी पुत्री) प्रभाके गर्भसे अन्तरीक्षमें अश्विनौकुमार इयने लम्बा लिया था। यह स्वर्ग (देवताओं)के देव हैं। उक्त अर्थमें अश्विनौपुत्र, अश्विनौसुत, स्वर्ध्व, दस,

नामत्य, अश्विनिय, नासिक्व, गदागद, पुष्करस्रज् प्रभृति नाम ध्वजहत होते हैं।

अश्विय (सं० त्रि०) १ अश्वसम्बन्धीय । (पु० ब्रह्मव०) २ अश्वारूढ सैन्य ।

अश्वियुग (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त कालविशेष । यह पांच वर्षका होता है। इसमें ययाकम पिङ्गल, काल-युक्त, मिथार्थ, रौद्र और दुर्मति संवत्सर पड़ेगा।

अश्वोष्ठ (सं० स्त्री०) घोटकौ (घोड़ी)के दूधसे निकला घृत। इसका गुण वाटु, मधुर, कषाय, ईषत् दौषण, गुरु, मूर्च्छाहर और वाताश्लीकरण है।

(राजनिषध्.)

अश्वीन (सं० स्त्री०) अश्वके एक दिन गमनयोग्य पथ ; जो पथ अश्व एक दिनमें प्रतिवाहन कर सके।

अश्वीय (सं० स्त्री०) अश्वानां समूहः छ । १ अश्वका समूह, घोड़ेका झुण्ड । (त्रि०) द्विताय अष्टप० छ, यत् च । २ घोड़ेको दितकर, जो अश्वके लिये सुफंद हो।

अश्वोरस (सं० स्त्री०) अश्वानामुर इव सुख्यम्, अच् समा० । प्रधान घोड़ा, उत्तम अश्व।

अश्वोच्चोण (सं० त्रि०) अश्विद्यमानानि षडशी-ण्यस्येति बहुव्री० । (बृहन्नोर्मां सकृद्यथाः साजाम् बच् । पा ३।४।१।२) इति षच् ततः ख प्रत्ययः । जो मन्त्रणा दो जनने को हो, जो मन्त्रणा करनेके समय छः श्चु न रहे अर्थात् तीन जनने जिस मन्त्रणाको न किया हो।

अपाद्, अशाद् (सं० पुं०) अपादया नक्षत्रेषु या युक्ता पौर्णमासी आपाटी सा यत्र मासे अण् वा ङस्त्वः । १ मासविशेष, जिस महीनेकी पूर्णिमा पूर्वा-पाठ नक्षत्रमें पड़े, आपाद्, असाद् । आपाटी पूर्णिमा प्रयोजनमस्य, प्रयोजनार्थे अण् । २ ब्रह्मचारीका पलाशदण्ड ।

अपादक (सं० पुं०) सार्ये कन् । चपात देवो ।

अपादा, अपादा (सं० स्त्री०) पादि साहजं सङ्घिचि-क्तिन् ढत्वम् अर्गं अच्, नञ्-तत् प्रपो० वा शत्वं ङत्वच् । अश्विनौसे पूर्व विंश एवं उत्तर एकविंश नक्षत्र ।

अष्ट (सं० त्रि०) अष्ट संख्या, जो संख्यामें अष्ट हो।

अष्टक (सं० पुं०) अष्टौ अध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य, अष्टन् संज्ञायाम् सार्ये कन् । १ पाणिनिका

ततः सरस्वतीं ज्ञाने ते वसवस्यो विवस्वतः ।
तावन्धुमी यमावेव ऋत्विक् यथा च वै वसः ॥
सुधा भर्तुः परीचन् सगन्धुः सहस्रो जित्वे ।
जित्स्वमि विचु नं तन्धातवा मूला प्रचक्रमे ॥
अविज्ञानाद्विक्रमोस्तु तन्वामन्नवपश्चत् ॥
राजर्षिरामोत् स मनुर्बैवस्यानिच तेजसा ॥
स विज्ञाय अपकाणां सरस्वतीमायदविधी ।
त्वष्ट्रे प्रतिजगामाय भागी मूला सलक्षयः ॥
सरस्वती विवस्वतं विज्ञाय ह्यदविधिः ।
केचु साशीपचक्राम साच तवावरीड् सः ॥
तसहस्रोस्तु देविन षक् तदपतर्जुनः ।
उपाजिग्रह सा त्वया तच्छुक् गर्भजाप्यथा ॥
आज्ञापमानाश्चुक् तन् कुमारी सम्भवतुः ।
नाभस्येव न दस्यथ यो सुतावचिनावधि ॥

देवता परास्त्र होती है। उस यज्ञका अनुष्ठान देख इन्द्र एक पहाड़ उखाड़कर अपनी सज़ समित ध्वनकी धोर दी है। परन्तु महर्षिका योगवल असामान्य था; उन्होंने तुरत ही जल छिड़ककर इन्द्रको पकड़ लिया। फिर उनके यज्ञकुण्डसे मद्द नामक एक राक्षस उत्पन्न हुआ। उसके स्वर्गसे मर्त्यतक सुँह पसारनेसे उसमें इन्द्रादि देवता चले गये। लाचार और कोई उपाय न देख देवताओंने अग्निवन्की साथ सोमपान किया।

इस उपाख्यानसे अनुमान होता है, कि आर्योंने प्रथमतः सृष्टि ही अग्निवन्की देवता नहीं स्वीकार किया। इधर अनेक ऋषिजनोंमें (१।३।५६; ५७; ५८; ५९-६०-६१) मिलता है, कि सोमपान करानेके लिये ऋषियोंने अग्निवन्की यज्ञस्थलमें बुलाया था।

ऋग्वेदमें अग्निवन्की जन्मका विवरण यों लिखा है,—‘त्वष्टाने अपनी कन्या सरण्युका विवाह करनेकी इच्छा की। यह समाचार पाकर जगत्के देवतादि आ उपस्थित हुए। विवस्वान्की विवाहिता भार्या यमकी माता भाग गईं। उसके बाद मर्त्य-लोगोंसे अमरकन्या (सरण्यु) छिपा दी गईं। अन्तमें सरण्यु जैसी ही और एक कन्या उत्पन्न कर देवता-ओंने विवस्वान्को समर्पण की। उसी अश्वरूपिणी सरण्युके गर्भ और विवस्वान्की औरससे अग्निवन्का जन्म हुआ।’*

यहाँ सायणाचार्यने लिखा है, कि सरण्यु एवं विवस्वान्ने अग्निनी एवं अश्वरूपमें सभोग किया था, उसीसे अग्निवन्का जन्म हुआ। (‘यद्यदा तन्वायापतिभ्यामश्वरूपाम्ना सभोगकासि रितः पवित्रमासीत् तदाग्निनी जगयामसिन्धवेः’ इति सायणः)।

निरुक्तमें (१।३।१०) इन दो ऋक्का ऐसा विवरण लिखा है,—‘तव इतिवाचः कनापचते, त्वाद्गो सरण्युविषसत आदि।

- * ‘त्वष्टा इतिने ऋग्’ इत्येतेषां विषयं सुवर्णं समिति।
- यस्य माता षण्ं सभोगा रुदो आया विवस्वतो ननाय।
- अपान्मूलस्थो मर्त्येभ्यः क्वतो सवर्णामरदृष्टिं वसते।
- उताग्निनापमरदयत्वादीदशदृष्टा विभुया सरण्युः।’

(अज् १०।१५-१६)

यमी विष्टुभी अनयाचकार। सा सवर्णान्मं प्रतिनिधायार्णं षण्ं कृत्वा प्रददात्। स विवस्वापादित्योऽवर्णं षण्ं कृत्वा-तामनुपत्य सवर्णम्। तयोऽग्निनी अग्रते सवर्णार्थां मनुः।’

त्वष्टाकी कन्या सरण्युके गर्भ और आदित्य विवस्वान्की औरससे यमज सन्तान उत्पन्न हुआ था। फिर वे अपनो ही जैसी और एक स्त्रीकी रख और खुद घोड़ीका रूप धर कर भाग गईं। विवस्वान्ने घोड़ेका रूप धर पीछ पीछे जाकर उनके साथ सभोग किया। उसीसे अग्निवन्का जन्म हुआ। सवर्णार्थके गर्भ और सूर्यके औरससे मनुका जन्म हुआ था।

ऋग्वेदके ७ मण्डलके १२ सूक्तके २ ऋक्के भाष्यमें सायणाचार्यने अग्निवन्का जन्मस्थानत यों लिखा है,—‘त्वष्टाके दो यमज सन्तान हुआ, उनमें सरण्यु कन्या और त्रिशिरा पुत्र सन्तान था। उन्होंने विवस्वान्के साथ सरण्युका विवाह कर दिया। उनके गर्भ और विवस्वान्की औरससे यम और यमी नामकी यमज पुत्रकन्या उत्पन्न हुई थी। सरण्युने स्वामीसे छिपाकर अपनी ही जैसी एक स्त्री उत्पन्न कर उसीके पास अपना यमज सन्तान रख दिया। फिर वह घोड़ीका रूप धरकर भाग गईं। विवस्वान्ने बिना जाने ही उस काल्पनिक सरण्युके साथ भोग किया, उसीसे मनुका जन्म हुआ। मनु अपने पिताकी ही भांति तेजस्वी राजर्षि हुए थे। किन्तु पीछे जब विवस्वानको मालूम हुआ, त्वष्टाकी कन्या प्रकृत सरण्यु कहीं चली गई है, तब सरण्युकी तरह उन्होंने भी घोड़ेका रूप धरकर उनका पीछा किया। स्वामीको पहचानकर सरण्यु सभोगकी इच्छासे उनके पास गईं। अश्वरूपी विवस्वान्ने उनकी इच्छा पूर्ण की। उस समय अतिशय वेगसे भूमिपर शक़्पत हुआ। अश्वरूपिणी सरण्युने गर्भकी कामनासे उस शक़्कको सूँघा। सूँघते ही दो पुत्र जन्मे। उनमें एकका नाम नासत्य और दूसरेका दस हुआ। अग्निवन्के नामसे नहीं दोनोंकी स्तुति की जाती है।’*

† ‘अमरविष्टु मं त्वष्टः सरण्यु त्रिशिरा सः।

स षे सरण्यु प्रायश्चत् सवर्णम् विवस्वते ॥

तैत्तिरीय-संहितामें "अश्विनौ वे देवतामश्विनौ" (अश्विनौ) अश्विनू भीर भीर देवताभोमि छोटे कह गये हैं। ऋक्के (११११(१०) भाष्यमें मायणाचार्यने लिखा है, कि सविताकी कन्या सूर्यके साथ अश्विनूका विवाह हुआ था। ऐतरेय-ब्राह्मणमें (३०) इस इतिहासका कुछ विवरण देवनेमें आता है।

अश्विनौ (सं० स्त्री०) अश्वस्तदुत्तमाङ्गाकारोऽस्तास्य, इति ङीप् । १ सत्तार्द्धम नक्षत्रके अन्तर्गत प्रथम नक्षत्र। २७ नक्षत्र दशकी कन्या हैं, इनमेंसे अश्विनौकी दासायणी कहते हैं। इनका दो पर्याय देखा जाता है—अश्वयुक् भीर दासायणी। अश्विनौ चन्द्रकी भार्या हैं। इनका आकार घोड़ेके मुखकी तरह भीर अश्विदात्री देवता अश्वारूढ पुरुष है। अश्विनौ नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ मनुष्य यिनीत, सम्पत्तिशाली, मत्वान्वित एवं पुत्रवान् होता है। इनके मस्तकके ऊपर उदित होनेसे कर्कलनका १ दण्ड ३० पल गत हो जाता है। २ घोड़ी।

अश्विनौकुमार (सं० पु० द्विव०) सूर्यके दो पुत्र। बह्वारूपधारिणी सूर्यपत्नी त्वाष्ट्री (त्वष्टाकी पुत्री) प्रभाके गर्भसे अन्तरोक्षमें अश्विनौकुमार द्वयने जन्म लिया था। यह स्वर्ग (देवताओं) के वैद्य हैं। उक्त गर्भमें अश्विनौपुत्र, अश्विनौसुत, स्ववैद्य, दस,

नामव्य, अश्विनिय, नासिका, गदागद, पुष्करस्त्रज् प्रश्रुति नाम व्यवहृत होते हैं।

अश्विय (सं० त्रिव०) १ अश्वमन्वन्थीय । (पु० बहुव०) २ अश्वारूढ सेन्धु ।

अश्वियुग (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त कालविशेष । यह पांच वर्षका होता है। इसमें यथाक्तम पिङ्गल, कालयुक्त, मिहाद्ये, रौद्र भीर दुर्मति संबत्सर पड़ेगा।

अश्वोष्टत (सं० स्त्री०) घोटक्री (घोड़ी) के दूधसे निकला घृत। इसका गुण कटु, मधुर, कषाय, ईषत् दोषन, गुरु, मूर्च्छाहर भीर वातास्पीकरण है।

(राजनिघण्टु)

अश्वीन (सं० स्त्री०) अश्वके एक दिन गमनयोग्य पथ ; जो पथ अश्व एक दिनमें प्रतिवाहन कर सके।

अश्वीय (सं० स्त्री०) अश्वानां समूहः छ । १ अश्वका समूह, घोड़ेका झुण्ड । (त्रिव०) हितार्थे अपृप० छ, यत् च । २ घोड़ेको हितकर, जो अश्वके लिये सुफीद हो।

अश्वोरस (सं० स्त्री०) अश्वानामुर इव सुख्यम्, अश् समा० । प्रधान घोड़ा, उत्तम अश्व।

अपडचीण (सं० त्रिव०) अविद्यमानानि पडचीण्यस्येति बहुव्री० । (बहुव्री०) अश्वयोः साहाय्यं च । अश्वारोः इति पच् ततः ख प्रत्ययः । जो मन्त्रणा दो जनने को हो, जो मन्त्रणा करनेके समय छः चतु न रहे अर्थात् तीन जनने जिस मन्त्रणाको न किया हो।

अपाद, अशाद (सं० पु०) अपादया नक्षत्रेण या युक्ता पूर्णमासी आपाटी सा यत्र मासे अष् वा ऋक्षः । १ मासविशेष, जिस महीनेकी पूर्णिमा पूर्वाषाढ नक्षत्रमें पड़े, आपाद, अशाद। आपाटी पूर्णिमा प्रयोजनमस्य, प्रयोजनार्थे अष् । २ ब्रह्मचारीका पलायणदण्ड।

अपादक (सं० पु०) स्वार्थे कन् । अपाद देवः । अपादा, अशादा (सं० स्त्री०) पादिसाहनं सह-शिक्षित्वात्त्वम् अश्वं अश्, नञ्-तत् प्रयो० वा शत्वँ इत्वश्च । अश्विनौसे पूर्व विंग एवं उत्तर एकविंश नक्षत्र।

अष्ट (सं० त्रिव०) अष्ट संख्या, जो संख्यामें भाड हो।

अष्टक (सं० पु०) अष्टौ अथाद्याः परिभाषणमस्य सूत्रस्य, अष्टन् संज्ञायां स्वार्थे कन् । १ पाणिनिका

ततः अश्विनौ ज्ञाने ते वसन्त्यौ विवभतः ।
तावन्म भी यमावेव ज्ञाना यन्मा च वे यनः ॥
अष्टा मस्यः परोक्षन् मरुत्, अष्टौ शिवः ।
निचिष्य मित् नं तन्मामत्रा भूत्वा प्रचक्रम ॥
अश्विनौविवभतः सन्त्यामत्रमश्विनौ ।
राजशिरासोत् स मनुर्विषसाजिव तेजसा ॥
न विज्ञाय अश्विनानां सरणमाकदपिर्षी ।
त्वष्टी प्रतिश्रमाया वानो भूत्वा सनक्षयः ॥
अश्विनौ विवभतः विज्ञाय इयदपिच ।
मेधु मावीपचक्राम ताश् तवाश्वरौः मः ॥
तवस्वीन्तु देशेन अश्वं तदपनह ॥
उपाश्रितश्च सा त्वडा तप्युक् गर्भकाप्या ॥
आश्रापमावाचुकं तन् कुमारी उरुभूरुतः ।
नाश्वयवे दशय शो मुलावश्विनावधि ॥

अष्टाध्यायी सूत्रग्रन्थ । २ अष्टाध्याययुक्त ऋग्वेदका अंगविशेष । ३ आठ चीजका एकत्र संग्रह । यथा—
द्विद्वयष्टक । ४ आठश्लोकवाला स्तोत्र वा काव्य ।
जैसे रुद्राष्टक, गङ्गाष्टक, भ्रमराष्टक । ३ मनुके अनुसार
अवगुणविशेष । इसमें १ वैशून्य, २ साहस,
३ द्रोह, ४ ईर्ष्या, ५ असूया, ६ अर्थदूषण, ७ वाग्दण्ड,
और ८ पारुष्य ये आठ अवगुण हैं । (त्रि०) ८ अष्ट
संख्या-परिमित ।

अष्टकटूरतैल (सं० क्लो०) तैलविशेष । यह तैल
वातरक्त और ऊरुस्तम्भमें हित है । तैल ४ शरावक,
दही ४ शरावक, तक्र ३२ शरावक, पौपल एवं सोंठ
प्रत्येक २ पल (मतान्तरसे मिला हुआ दो पल)
यथा विधि पकाना चाहिये । (रघुव्याकरण)

अष्टकर्ण (सं० पु०) अष्टौ कर्णौ यस्य । चतुर्मुख
ब्रह्मा । ब्रह्माके चार मुख और प्रत्येक मुखमें दो दो
कर्ण हैं, अतएव उनकी अष्टकर्ण कहते हैं ।

अष्टकर्मन् (सं० पु०) अष्टौ कर्माण्यस्य । आठ प्रकार
कर्मयुक्त राजा । अष्टागतिक शब्दसे भी यह अर्थ
मालूम पड़ता है । राजाका आठ प्रकार कर्म
यह है—

“आदाने च विसर्गे च तथा प्रेषित्वे धयोः ।

पचने चार्धवचने व्यवहारस्य चेषवोः ।

दक्षयथ्योः सदा रक्तले गण्डगतिको द्यपः ॥”

१ करदािका लेना, २ विसर्ग अर्थात् भृत्यादिको
धन देना, ३ प्रेष यानी अमात्यादिका दृष्टादृष्ट
अनुष्ठान, ४ निषेध—अर्थात् दृष्टादृष्टके विरुद्ध क्रिया,
५ अर्थवचन—कार्यमें सन्देह होनेके निमित्त उसका
नियम करना, ६ व्यवहारका ईक्षण अर्थात् प्रजादिको
ऋण देनेके प्रति दृष्टि । ७ दण्ड अर्थात् पराजित
व्यक्तिसे अर्थग्रहणादि व्यापार, ८ शुक्ति अर्थात् पापादि
करने पर उसका प्रायश्चित्त । मेधातिथिके मतमें—
अह्नतारम्भ, अह्नतानुष्ठान, अनुष्ठित विशेषण, कर्मफल-
संग्रह, साम, दान, भेद, एवं दण्ड ।

अष्टकमल (सं० पु०) षष्ठयोगके अनुसार सूला-
धारसे ललाट पर्यन्त ये आठ कमल भिन्न भिन्न
स्थानमें माने गये हैं । सूलाधार, विग्रह, मणिपूरक,

स्वाधिष्ठान, अनाहत, आघ्राचक्र, महामारचक्र, और
सुरतिकमल ।

अष्टका (सं० स्त्री०) अश्नन्ति पितरोऽस्यां तियो
अश् इच्छिभान् तक्रन् । अण् ३११८८८ इति तक्रन् । १ आठ
विशेष । २ तिथिविशेष, अष्टमी । ३ गौणचान्द्र, पीप,
माघ एवं फाल्गुन मासको कृष्णाष्टमी । ४ अष्टमीके
दिनका कृत्य अष्टका याग । ५ अष्टकामें कृत्य आठ ।
अष्टका आठ तीन प्रकारका होता है—अपूपष्टका,
मांसाष्टका एवं शाकाष्टका, यह यथाक्रम गौणचान्द्र
पीप, माघ एवं फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीको किया
जाता है ।

अष्टकाङ्ग (सं० क्लो०) अष्टमङ्गं यस्य । चीसर खेलनेका
पासा । इसकी प्रत्येक पङ्क्तिमें आठ घर रहनेसे
इसको अष्टाङ्ग कहते हैं ।

अष्टकिक (सं० त्रि०) अष्टकाऽस्यस्य, त्रीह्या० ठन् ।
अष्टकायुक्त । उक्त अर्थमें ‘अष्टकी’ शब्द भी प्रयुक्त
होता है ।

अष्टकुल (सं० क्लो०) कुलविशेष । पुराणके अनुसार
सर्पोंके आठकुल हैं—शेष, वासुकि, कम्बल, कर्की-
टक, पद्म, महापद्म, और शङ्ख, तथा कुलिक तक्षक,
महापद्म, शङ्ख, कुलिक, कम्बल, अश्वतर, छतराद्र और
बलाहक ।

अष्टकुली—अष्टकुल सम्बन्धीय, जो सर्पोंके आठ कुलमें
उत्पन्न हो ।

अष्टकृष्ण (सं० पु०) आठ प्रकारके कृष्ण । वल्लभ
कुलके लोग आठ कृष्ण मानते हैं—१ अनाथ, २ नव-
नीतप्रिय, ३ मथुरानाथ, ४ विद्वलनाथ, ५ द्वारकानाथ,
६ गोकुलनाथ, ७ गोकुलचन्द्रमा और ८ मदनमोहन ।

अष्टकत्वम् (सं० अर्थ०) अष्टन् संख्यायाः क्रियाभावात्तिनचर्त्
कत्वस्य् । पा ३३१।० इति कत्वसुच् । आठवार ।

अष्टकोण (सं० क्लो०) अष्टौ कोणा यस्य । १ अष्ट-
कोणयुक्त चक्र, जिस खेतमें आठ कोने रहें । २ यन्त्र
विशेष, तन्त्रानुसार कोई यन्त्र । ३ कुण्डल विशेष,
अठकोना कुण्डल । चलित भाषामें इसको अठकोना
कहते हैं । (त्रि०) ४ आठ कोनेका ।

अष्टक्य (सं० त्रि०) अष्टकेन क्रीतः, गवा० यत् ।

भाठ संख्यक द्रव्यसे क्रय किया हुआ, जो भाठ संख्यक द्रव्यसे खरीदा गया हो।

‘अष्टखण्ड—ऋग्वेद भाठ अष्टकमें ऋक्संहिता विभक्त है।

अष्टगुण (सं० पु०) भाठ खगुवृदार चीजोंका मिलान।

अष्टगव (सं० स्त्री०) अष्टानां गवां समाहार; अच्। भाठ गौ। भाठ बैलगाड़ीके अर्थमें ‘पठगव’ रूप होगा।

अष्टगुण (सं० त्रि०) अष्टभिर्गुण्यते, गुण अभ्यासे कर्मणि क। भाठगुण। ५×८, ६×८ इत्यादि।

अष्टगुणमण्ड (सं० पु०) मण्डविशेष। भुने मूंग और चावलको दण्डगुण जलमें पाक करना चाहिये। पाक तैयार हो जानेपर उसमें नौचे लिखे द्रव्य मिलाना पड़ता है—इङ्गु, सैन्धव, धान्य, मोठ, मिर्च और पोपलका चूर्ण। इसका गुण क्षुधावर्धन, बलकर और वस्तिशोधन है। (वैद्यक-निघण्टु)

अष्टशहीत (सं० त्रि०) अष्टश्लो शहीतम्। भाठ बार ग्रहण किया हुआ, जो आठबार लिया गया हो।

अष्टचत्वारिंशत्, अष्टाचत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) अष्टाधिका चत्वारिंशत् (विभाषाचत्वारिंशत् प्रथमी सत्वे शम्। पा ६।१।४६)

४८, अष्टतालीस संख्या।

अष्टतय (सं० त्रि०) अष्टावयवा अस्य, अष्टन्-तयप्। १ भाठ अवयवयुक्त, जिसके आठ अवयव रहे। (स्त्री०) २ भाठ संख्या।

अष्टतारिणी (सं० स्त्री० बहुव०) कर्मधा०। भगवतीकी आठमूर्ति—तारा, उषा, मङ्गला, वज्रा, कालो, सरस्वती, कामेश्वरी, शामुण्डा।

“तारा शोभा मङ्गला च वना कान्ती सरस्वती।

कामेश्वरी च शामुण्डा इत्यष्टौ तारिणी मताः” (नवसार)

अष्टताल (सं० पु०) भाठ तरहकी ताल—१ आड़ २ दीज, ३ ज्योति, ४ चन्द्रशेखर, ५ गज्जन, ६ पञ्चताल, ७ रूपल और ८ समताल।

अष्टत्रिक (सं० स्त्री०) अष्टाहृतं त्रिकम्। ८×३ भाठ गुणित तीन अर्थात् २४ चौबीस। (त्रि०) २ चौबीस संख्यायुक्त।

अष्टत्व (सं० स्त्री०) अष्टानां भावः त्व। भाठ संख्या, ८।

अष्टदंष्ट्र (सं० पु०) ६-बहुव्री०। ऋग्वेदीय दानव-विशेष, कोई राक्षस।

अष्टदल (सं० पु०) अष्टौ दलानि यस्य। १ अष्टपत्र पत्र, भाठ पत्तेका कमल। (त्रि०) २ भाठदलका, अठकीना, अठपहलू।

अष्टदिकरिणी (सं० स्त्री०) बहुव०। अष्ट दिक्षुस्थाः करिण्यः। आठ दिशाको रहिनी। अश्वत्थ, कपिला, पिङ्गला, धनुषमा, ताम्बकर्णी, शुभदन्ती, अङ्गना और अञ्जनावती यह आठ ऐरावतकी पत्नी।

अष्टदिकपाल (सं० पु०) अष्टो दिग्ः पालयति, पा-षिन्-अण्, उप० समा०। दिककी आठ रक्षक इन्द्र, अग्नि, यम, निवृत्ति, वरुण, वायु, सोम, और इशान। यह अष्ट दिकपाल हैं।

अष्टदिग्गज (सं० पु०) बहुव०। अष्टदिक्षुस्थाः गजाः। आठ हाथो—ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुण्यदन्त, सार्वभौम और सुप्रतीक। यह आठ दिग्गज हैं।

अष्टदिग् (सं० स्त्री०) बहु०। आठ ओर; पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैऋत, पश्चिम, वायु, उत्तर, और इशान, यही आठ दिगयें हैं।

अष्टद्रव्य (सं० स्त्री० बहुव०) आठ चीज; अमृत्य, उदुम्बर (गूलर), प्रच (पाकर), न्यग्रोध (बट), तिल, सिंहायें (सरसों), पायस (खोर) और आल्य (ची) यह आठ द्रव्य कहलाते और इवनमें काम आते हैं।

अष्टधा (सं० अर्थ०) अष्टन्-प्रकारे धाप्। आठप्रकार, आठ तरह, आठ दफे।

अष्टधाती (द्वि० वि०) १ अष्टधातुसे प्रसृत, जो आठ धातुओंसे बना हो। २ दृढ़, मजबूत। ३ उत्पत्ती, उपद्रवी।

अष्टधातु (सं० पु० बहुव०) अष्टौ धातवः, कर्मधा०। आठधातु—सोना, चाँदी, ताँबा, रांगा, जसता, सोना, पौतल, सोडा। कोई-कोई पारिकी भी धातु मानता है।

अष्टनाग (सं० पु०) आठ सर्पराज १ अनन्त, २ वासुकी, ३ कम्बल, ४ कर्कोट, ५ पद्म, ६ महापद्म, ७ शङ्ख, और ८ कुनिक।

अष्टपद (सं० पु०) अष्टपद इति।

अष्टपदी (सं० स्त्री) १ आठ पदांका समूह । २ गीति-विशेष, कोई गीत । इसमें आठ पद रहते हैं । ३ विलापुष्पाका गाथा । यह गीत, लघु एवं कफ, पित्त, और विषका नाशक है ।

अष्टपर्वत—१ महेन्द्र, २ मलय, ३ सहय, ४ शक्तिमान्, ५ ऋचवान्, ६ विन्ध्य, ७ पारिपात्र और ८ हिमालय, यह अष्टकुलाचल है । पद्मपुराणमें केवल सात ही कुलाचल गृहीत हुआ है ।

अष्टपाद—अष्टपात् (सं० पु०) अष्टौ पादा यस्य, बहुव्री० वा अन्तर्लोपः । १ माकड़ी, लूता । २ गरभ, टिड्डीपक्षी । ३ शार्दूल ।

अष्टपादिका (सं० स्त्री०) लता विशेष । १ काष्ठ-मक्षिका । २ हापरमाली ।

अष्टपुष्पी (सं० स्त्री०) अष्टानां पुष्पाणां समाहारः । पुष्पाटक । अष्टपुष्पी, भी रूप होता है ।

अष्टभाव (सं० पु०) स्वप्न, स्वद, रोमाञ्च, खरभङ्ग, वैश्वर्यं, कम्प, वैवैश्य, और अश्रुपात । (वैश्वक निघण्टु)

अष्टभुजा (सं० स्त्री०) अष्टौ भुजाः अस्याः । देवोकी मूर्तिविशेष, दुर्गा ।

अष्टभुजी (सं० स्त्री०) अष्टभुजा देवी ।

अष्टम (सं० त्रि०) अष्टानां पूरणः उट् मयट् च । आठ संख्याका पूरण, आठवां ।

अष्टमकालिक (सं० त्रि०) अष्टमः कालः भोजने ऽस्त्राय, ठन् । जो वानप्रस्थ तीन दिन उपवास करके चतुर्थदिनकी रात्रिमें भोजन करते हैं ।

अष्टमङ्गल (सं० स्त्री०) अष्ट प्रकारं मङ्गलद्रव्यम्, शाकं तत् । आठ प्रकार मङ्गल द्रव्य वा पदार्थ—सुगराज (सिंघ), हृप, नाग, कलग, चामर, वैजयन्ती, भेरी और दीपक । किसी किसीकी मतमें—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, स्वर्ण, घृत, सूर्य, जल एवं राजा । दुर्गात्मव और विवाहादि कर्ममें अष्टमङ्गल द्रव्य लगता है । (पु०) श्वेतवर्णं सुख वचः खुर केग पुच्छ-युक्त घोड़ा भी अष्टमङ्गलमें गृह्यते है ।

अष्टमङ्गलघृत (सं० स्त्री०) बाल-रोग-हरघृतीयघ, वस्त्रोकी बीमारी बुझानेवाला घी । वच, कुष्ठ, ब्राह्मी, सर्पप, शारिवा, सैन्धव और पिपलीके एक शरावक

कल्कमें ४ शरावक घृत डाले, फिर घृतपाकविधिसे एक आठक जलमें इन मध चीजोंको पका ले । यह घी वस्त्रोके लिये बहुत अच्छा होता है । (भावप्रकाश)

अष्टमान (सं० स्त्री०) अष्टौ सुटयः ; परिमाणमस्य । प्रसृतिद्वय, एक कुड़व, वत्तीस तोला ।

अष्टमासिक (सं० त्रि०) प्रति अष्ट मासमें एक बार होनेवाला, अठमासी, हठमाही, जो आठ महीनेमें एक बार हो ।

अष्टमिका (सं० स्त्री०) शक्तिपरिमाण, तोलचतुष्टय, चार तोला ।

अष्टमी (सं० स्त्री०) अष्टानां पूरणी । तिथि विशेष, चन्द्रकी मोलह कलाके मध्य प्रतिपत्से अष्टम कला, आठवीं । शुक्राष्टमी एवं कृष्णाष्टमी दो अष्टमी होती है । पञ्चपर्वके मध्य रहनेसे अष्टमीको वेदपाठ, स्त्रीसङ्ग, तैलाभ्यङ्ग, मांसभोजन प्रथति निषिद्ध है । इस तिथिकी नारियल और अरहरकी दाल खाना न चाहिये । पहले अष्टमीकी किसी अपराधीकी परीक्षा की न जाती थी । अष्टमीको प्रायश्चित्त करना भी मना है ।

अशु-क्त, अष्ट स'घातं व्याप्तिं वा भाति ; मा-क गौरा० डीप । २ घोर काकोली, एक जड़ी ।

अष्टमुष्टि (सं० पु०) अष्टौ सुटयः परिमाणमस्य, अणु द्विगोत्रुक् । सूची वरावर नाप ।

अष्टमूत्र (सं० स्त्री०) गोच्छागमपमहिषाम्बुह-स्ताद्गृहर्दभीमूत्र, गाय, बकरी, भेड़, भैंस, घोड़ी, हथिनी, उंटनी और गधोका पेशाव ।

अष्टमूर्ति (सं० पु०) अष्टौ भूम्यादयो मूर्तयो यस्य, बहुव्री० । भूमि प्रभृति अष्टमूर्तिधर गिव ।

अष्टमूर्तये इत आठ मूर्तियोंका विवरण देखो ।

(स्त्री०) कर्मधा० । २ आठ मूर्ति ।

अष्टमूर्तिधर (सं० पु०) अष्टानां मूर्तिनां धरः ।

भूमि प्रभृति आठ प्रकार मूर्तिधारी गिव । अष्टमूर्तये इत आठ मूर्तियोंका विवरण देखो ।

अष्टमूल (सं० त्रि०) लग्नांसगिराच्चावस्थिसन्धि-कोष्ठामर्म-मूल ; त्वग्, मांस, गिरा, स्राव, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ और मर्म यह आठ मूल ।

अष्टमौक्तिकस्यान (सं० स्त्री०) शङ्ख-हस्ति-सर्प-मत्स्य-
मेघ-वंश-शुकर-शक्ति, मोती पैदा होनेकी आठ जगह,
घोंघा-हाथी-सांप-मछली-वादन बांस-सुधर सांप ।

अष्टरत्नि (सं० त्रि०) अष्टौ रत्नयः कर्त्तव्यमानमस्य ।
आठ सुण्डा हाथ बराबर (आठ फीट) ।

अष्टरसाश्रय (सं० त्रि०) कविताके आठ रससे
भरा हुआ ।

अष्टर्च (सं० पु०) आठ पदका भजन ।

अष्टलौहक (सं० स्त्री०) बहुव० । अष्ट घातु
विशेष । यथा,—१ सुवर्ण, २ रजत, ३ ताम्र, ४ रङ्ग,
५ शीय, ६ पित्तल, ७ कान्तलौह, ८ सुण्डलौह; या
१ सोना, २ चांदी, ३ तांबा, ४ रांगा, ५ सीसा,
६ पीतल, ७ लोहा, ८ फौलाद ।

अष्टवर्ग (सं० पु०) अष्टविधानामौषधिद्रव्यानां
वर्गो गणः । १ आठ प्रकार औषधि विशेषका गण ।
यथा,—१ मेद, २ महामेद, ३ ऋद्धि, ४ वृद्धि, ५ जीवक
६ ऋपभक्त, ७ काकोली, ८ क्षीरकाकोली । अष्ट-
वर्गके मध्य समस्त द्रव्य अब नहीं मिलता और यह
भी कहा जा नहीं सकता, यह क्या पदार्थ है । अष्टवर्ग
शीतल, अति शुक्ल, हृदय, दाह-पित्त-रक्तशोषघ्न,
स्तन्यक्त और गर्भदायक होता है । (मदनमाल) यह
रक्तपित्त, मूत्र वायु और पित्तको मिटाता है ।

(राजनिघण्टु) मत्तान्तरसे यह हिम, खाद, वृद्धय, गुरु,
भस्मसम्बानकत् एवं कामविलास-बल-वर्द्धन होता
और लघ्व, दाह, ज्वर, मेद तथा चयकी दूर करता है ।
(भावप्रकाश) अष्टवर्गप्रतिनिधि देवी ।

अष्टादीनां राहुभिन्नरव्यादीनां वर्गो यत्र, बहुव्री० ।
२ शुभाशुभ फलसूचक जन्मकालीन राहुभिन्न अष्टग्रह,
समुदायका चक्र । जैसे,—सूर्य तिहसे २,४,७,८,८,
१०, ११ और कर्कटसे ३,६,१०,११ राशियर रहनेसे
शुभ फल देता है । इसी तरह अन्यन्य ग्रहके फला-
फलकी कथा ज्योतिष शास्त्रमें लिखी है ।

अष्टवर्गप्रतिनिधि (सं० पु०) अष्टवर्गका प्रतिनिधि, जो
चौत्र अष्टवर्गकी जगह काम आती हो । मेदामहा-
मेदाके अभावमें गतावरी, जावक ऋपभक्तके स्थानमें
भूमिभूषणका मूल, काकोली औरका कोलीकी

जगह अश्वगन्धाका मूल और ऋद्धि-वृद्धिके स्थानमें
वाराहीकन्द पड़ता है । (भावप्रकाश) मत्तान्तरसे
मेदाकी जगह अश्वगन्धा, महामेदाके स्थानमें शारिवा,
जीवकके लिये गुड़ूची, ऋपभक्त न मिलनेसे वंशलोचन,
ऋद्धिके वदसे बला और वृद्धिके अभावमें महाबला
छालना वाहिये ।

अष्टविध (सं० त्रि०) आठ तरहका, आठ तरह-
वाला ।

अष्टविधान (सं० स्त्री०) चर्च्य-बोध्य-लेह्य-पेय खाद्य,
भोज्य-भक्ष्य-निधेय-रूप भोजनद्रव्य ।

अष्टशत (सं० स्त्री०) आठ सौ ।

अष्टश्रवण (सं० पु०) अष्टौ श्रवणानि श्रवसि वा
यस्य । ब्रह्मा । इनके चार मुख रहनेसे आठ श्रवण
होते हैं ।

अष्टश्रवसु, अष्टश्रवण देवी ।

अष्टसाहस्रिक (सं० त्रि०) अष्टसहस्र परिमित, आठ
हजारवाला ।

अष्टसिद्धि (सं० स्त्री०) आठ प्रकार सिद्धि, अष्टसिद्धि
यथा—१ अहिमा, २ महिमा, ३ लहिमा, ४ प्राप्ति,
५ प्राकाम्य, ६ ईशित्य, ७ वशित्य, एवं ८ कामाव-
सायिता ।

अष्टकपाल (सं० त्रि०) अष्टासु कपालेषु संस्कृतम्,
अथ तस्य लुक् । १ अष्टकपालमें संस्कृत पुरोडा-
शादि, मंडीके आठ खप्परमें पका हुआ पुरोडाशादि ।
२ यज्ञ विशेष । इस यज्ञके लिये आठ कपालमें
पुरोडाशादि पका देवताको बुलाते हैं ।

अष्टाक्षर (सं० त्रि०) अष्टाक्षराणि यत्र पादे ।
१ आठ अक्षरका, जो आठ हफ्त रखता हो । (पु०)
२ अन्यकार विशेष । ३ आठ अक्षरयुक्त अष्टदुभु
जातीय वर्षहस्त विशेष ।

अष्टांगव (सं० स्त्री०) आठ बैलकी गाड़ी, जिस
गाड़ीमें आठ बैल चुते ।

अष्टाङ्ग (सं० पु०) अष्टौ अङ्गानि यस्य । १ यम-नियम-
वासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि
इत्यादि । अष्टाङ्ग योगविशेष । २ घुटना, पैर, हाथ,
छाती, गिर इन सबको भूमिपर रख और प्रथम

व्यक्तिकी और देख सादर सम्भाषणपूर्वक प्रणाम करना।

“पदमां जातुभासुरसा मिरसा इया।

मपसा मन्वापैति प्रणामोऽथाङ्ग ईरितः।” (मन्वापर)

दोनों पांव, दोनों हाथ, दोनों घुटने, घचखल और मस्तककी भूमिमें टिकानेके बाद एक बार मस्तक घटाकर नमस्वकी भक्तिभावसे दर्शन करना, फिर प्रणामका मन्त्र कहते कहते गहद मनसे भूमिठ होना। कोई कोई कहते हैं, घचनस्य ‘दृश्या’ पदसे ऐसा समझा जाता है, कि प्रणाम करनेके समय पहले दाहिनी बांह फिर बाईं बांहके कोनीकी भूमिमें छुवाये। ३ जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, घृत, तण्डुल, यव, खेतसरसी—इन सबका घटाङ्ग अर्घ्य। सूर्यके अर्घ्यके द्रव्य ये हैं,—जल, दुग्ध, कुशाग्र, घृत, मधु, दधि, रत्नचन्दन और रत्नकरवीर।

४ शारीरसक अर्थात् पाया खेलनेका चौखट। इस चौखटकी प्रत्येक पंक्तिमें आठ वर रहते, इसीसे इसे घटाङ्ग कहते हैं। ५ घटाङ्ग चिकित्सा, यथा—१ शल्य, २ शालाक्य, ३ कायचिकित्सा, ४ भूतविद्या, ५ कौमार-भृत्य, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र, ८ वाजीकरण।

१। शल्य—शरीरके किसी स्थानमें तीर आदि अस्त्र या और कोई चीज चुभ जानेपर उसका विधान।

२। शालाक्य—जर्बजद्रुप्रदेशस्थित (Supra-claricular region) एवं नेत्र, कर्ण, मुख, नासिका प्रभृति स्थानोंकी चिकित्सा।

३। कायचिकित्सा—सकल शरीरके कटों, यथा खर, उदरामय, उन्माद आदि रोगोंकी चिकित्सा।

४। भूतविद्या—भूत पिशाचादिकी चिकित्सा।

५। कौमारभृत्य—शिशुपालनके लिये धात्री-विद्या एवं दुग्धादिका दोष संशोधन।

६। अगदतन्त्र—सर्प कौटादिके उस लेनेपर भाङ्गक और औषध प्रयोग।

७। रसायनतन्त्र—ऐसा उपाय जिसमें शरीर शीघ्र ही हृह लीसा न बने एवं प्रायु और बल बढ़े।

८। वाजीकरण—शरीरकी शीघ्र और शक्त प्रवृत्ति दुर्बलताके लक्षण प्रकाम होनेका प्रतिविधान।

घटाङ्गघृत (सं० स्त्री०) वाजीकरणका घृत।

घटाङ्गधूप (सं० पुं०) कर्मधा०। धूपविशेष। गुग्गुलु, निम्बपत्र, वच, कुष्ठ, हरीतकी, यव, खेतसरपं और घृत इन सब चीजोंको एकत्रकर कपड़ेमें मजबूतीसे बांधे। फिर रोगीके सारे शरीरको कपड़ेसे ढक और निर्धूम अङ्गारके ऊपर इस पीटलीकी रखकर धूप दे। इससे विषमज्वर नष्ट होता है।

घटाङ्गनय, अथाङ्ग देवी।

घटाङ्गपात, अथाङ्गप्रणाम देवी।

घटाङ्गप्रणाम (सं० पुं०) घटाङ्गद्वारा प्रणाम, सिजदा, झुक-झुकके की जानिवाली बन्दगी।

घटाङ्गमैथुन (सं० स्त्री०) मैथुनके आठ अङ्ग विशेष। अरण, कौतन, केलि, दर्शन, गोपनीय वार्ता-लाप, सङ्कल्प, अध्ववसाय, और क्रियानिव्यक्ति—यही मैथुनके आठ अङ्ग हैं।

घटाङ्गयोग (सं० पुं०) आठ अङ्गसे होनेवाला योग।

१ यम २ नियम ३ आसन ४ प्राणायाम ५ प्रत्याहार ६ धारणा ७ ध्यान एवं ८ समाधि। यमादिका विवरण अपने-अपने मन्त्रमें देखो।

घटाङ्गरस (सं० पुं०) रसविशेष। यह अर्घ्यमें उपकारक है। लौहकिट, मण्डूर, फलत्रय (त्रिफला) यह सब एकत्र मिलानेसे घटाङ्गरस तैयार होता है। (रुद्रसार-४/४४) गन्धक, रसेन्द्र (पारा), स्रुतलौहकिट, तीन पल तूपण, यङ्गिष्टङ्ग, इन सबको बराबर लेकर प्राणमली और गुडू चौकी रसमें ३ पहर अच्छी तरह घोटनेसे यह बनता है। मात्रा निष्कमात्र है। (रुद्रसार-४/४४)

घटाङ्गलवण (सं० स्त्री०) कफसे उत्पन्न मदात्यय-नायक औषध विशेष। इसे बनानेका क्रम यह है। सेंचरलवण (सखीमाटी), कृष्याजीरक, अन्धवेतस, अन्धलोणिका, इन सबका अर्घ्य समभाग एवं दालघोनी, एलायची और मिर्चका अर्घ्य प्रत्येक अर्धभाग तथा चीनी एक भाग यह सब चीज एकत्र मिलाना चाहिये। (अथर्वविद्या-४/४४)।

घटाङ्गवेद्यक (सं० स्त्री०) वेद्यकके आठ अङ्ग, दया करनेके आठ तरीके, १। यथा,—शालाक्य,

काय, भूत, अगद, बाल, विष, याजी और रसायन ।
पद्या देखो ।

अष्टाङ्गार्थ (सं० पु०) 'आठ वस्तुसे दिया जानिवाला
अर्थ । यथा—जल, दुग्ध, कुश, दधि, घृत, शालि, यव
एवं सर्पप । कहीं कहीं शालि, यव और सर्पपके
स्थानमें मधु, रक्तकरवीर पुष्य एवं चन्दन छोड़
देते हैं ।

अष्टाङ्गावलेह (सं० पु०) पद्यावलेहिका देखो ।

अष्टाङ्गावलेहिका (सं० स्त्री०) अवलेहविशेष । कटफल,
कुष्ठ, ककड़ागुल्ली, सोंठ, पीपल, मिर्च, दुरालभा,
कासाजीरा इन सब चीजोंको अच्छी तरह फूट-पीस
मधुके साथ अवलेह करनेसे अत्यन्त कठिन सन्धि-
पात ज्वर, हिक्का, श्वास, कास, कण्ठरोग दूर हो
जाता है । किन्तु ऊर्ध्वग्लेष्मानें उष्ण खेदादिकी
आवश्यकता होनेपर मधु न देकर अदरकके रससे
अवलेह तय्यार करना चाहिये ।

अष्टाङ्गी (सं० त्रि०) अष्ट अङ्गयुक्त, आठ अङ्गवाला,
जिसके आठ अङ्ग रहे ।

अष्टातय (सं० त्रि०) १ अष्ट अंग विशिष्ट, आठ
हिस्से रखनेवाला । (स्त्री०) २ अष्ट वस्तुका समुच्चय,
आठ चीजका जूथीरा ।

अष्टादंष्ट्र, अष्टदंष्ट्र देखो ।

अष्टादश (सं० त्रि०) अष्टादशांगं पूरणः षट् स्थियां
स्त्रीप् । १ अष्टारह संख्याका पूरण, अष्टारहवां । अष्टौ च
दशश्च, अष्टाधिका दश वा, अष्टादशन् । २ संख्याविशेष,
अष्टारह । ३ अष्टारह संख्याविशिष्ट, जो अष्टारह हो ।
विद्या, पुराणं, स्मृति एवं धान्य इनमें प्रत्येककी
संख्या अष्टारह है । इसलिये इन सकल शब्दसे अष्टारह
संख्या मालूम पड़ती है ।

विषय—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः,
न्यायतिथि, यज्ञ पंडित, चतुर्वेद, मीमांसा, न्याय, धर्म-
शास्त्र, पुराण, आसुर्वेद, चतुर्वेद, गान्धर्ववेद, अथर्वशास्त्र
यही अष्टारह प्रकार विद्या है ।

उपपत्ति—१ ब्राह्म, २ पाण्ड, ३ वैष्णव, ४ शैव, ५ भाग-
वत ६ नारदीय, ७ सारंगदेय, ८ शान्देय, ९ भविष्य,
१० ब्रह्मवैवर्त, ११ लिङ्ग, १२ वाराह, १३ स्कान्द,

१४ वामन, १५ कौर्म, १६ भावस्य १७ गारुड,
१८ ब्रह्माण्ड ।

भूतिका—१ विष्णु, २ पराशर, ३ दत्त, ४ संवत्,
५ व्यास, ६ हारीत, ७ शातातप, ८ वशिष्ठ, ९ यम,
१० आपस्तम्ब, ११ गौतम, १२ देवल, १३ शङ्ख,
१४ भरद्वाज, १५ उग्रना, १६ अत्रि, १७ शौनक,
१८ याज्ञवल्कर । पुनश्च, १ मनु, २ अत्रि, ३ विष्णु,
४ हारित, ५ याज्ञवल्कर, ७ अङ्गिरा, ८ यम, ९ प्राप-
स्तम्ब, १० सम्यतं ११ कात्यायन, १२ बृहस्पति,
१३ पराशर, १४ व्यास, १५ शङ्ख और लिखित और
१६ दत्त, १७ गौतम, शातातप, १८ वशिष्ठ ।

आय—१ यव, २ गोधूम, ३ धान्य, ४ तिल,
५ कज्जु, ६ कुष्ठिका, (कुलथी) ७ माष (उर्द),
८ मुद्ग (मूंग) ९ मसूर, १० निष्याय, ११ सर्पप
(संरसो), १२ गवेषुक, १३ नीवार, १४ आदक्य
(अरहर), १५ सतीनका, १६ चराक १७ अमिक,
१८ श्याम ।

अष्टादशान्य (सं० स्त्री०) अष्टादश देखो ।

अष्टादशभुजा (सं० स्त्री०) अष्टादश भुजा यस्याः ।
देवी-माहात्म्योक्त महालक्ष्मी । महालक्ष्मी देखो ।

अष्टादशभूज (सं० स्त्री०) विस्व, अग्निमन्त्र, श्लोणाक्ष,
गाम्भारी, पाठा, पुनर्णवा, वाव्या, धलक, माषपर्णी,
जीवक, एरण्ड, ऋषभक, जीवन्ती, शतापरी, शरत्तु,
भर्म, कास और शालिधान्यकी लड़ ।

अष्टादशविवादपद (सं० स्त्री०) बहुव्री० । ऋणदानादि
अष्टारह प्रकारके विवादका स्थल । (अ० १३०) यथा,—
१ ऋणदान, २ निवेप, ३ अस्त्रामिन्निय, ४ सम्भूय-
समुत्थान, ५ दत्ताप्रदानिक, ६ वेतनादान, ७ सम्बिद्-
ध्यतिक्रम, ८ क्रयविक्रयानुग्रह, ९ स्वामिपाल,
१० सौमाविवाद, ११ वाक्पाठ्य एवं दण्डपाठ्य,
१२ स्तेय, १३ साहस, १४ स्त्रीसंघर्षण १५ श्लोसुं सधर्म,
१६ विभाग, १७ द्यूत, १८ पाण्डय ।

१ ऋणदान—पर्याप्त कर्ज देना लेना । शास्त्र-
कारोंने इसे सात प्रकारमें विभक्त किया है । किस
तरहका ऋण हुकाना उचित है और किस तरहके
ऋणके लिये धुवादि दायी नहीं, इन्हीं सब विषयों-

को लेकर सात विभाग किया गया है। जैसे,—
 १ पिताके ऋण लेनेपर पुत्र उसे चुकावेगा। २ परन्तु पिता सुरापानादि दोषमें आसक्त होकर कर्ज ले, तो पुत्र उसके लिये दायी नहीं। ३ जो पुत्र पिताके धनका अधिधारी न होगा, वह पिताका ऋण भी परिशोधन करेगा। ४ जो पुत्र पिताके धनका अधिकारी होगा, वही पिताके ऋणके लिये भी दायी ठहरेगा। ५ विदेशस्थ पिताका ऋण बौस वर्षके बाद और जो ऋण हृदिके साथ लिया जाता, उसे हृदिके साथ ही परिशोध करना आवश्यक है। ६ उत्तमर्षमें ऋणदान। ७ उत्तमर्षमें ऋण आदान। सब मिलाकर यही सात प्रकार हैं।

२ निक्षेप—अपना धन दूसरेके पास जमा रखनेको निक्षेप कहते हैं।

३ अस्वामिधिक्रय—जिस धनमें जिसका स्वत्व नहीं होता, उसी धनको वह यदि बेच देता, तो अस्वामि-धिक्रय कहा जाता है।

४ सम्भूय-समुत्थान—अनेक आदमी मिलकर जो वाणिज्यादिका अनुष्ठान करें, तो उसका नाम सम्भूय समुत्थान है।

५ दत्ताप्रदानिक—जो वस्तु एकवार किसीको दे दी गई है, क्रीधादि करके यदि वह हीन ली जाय, तो उसे दत्ताप्रदानिक कहते हैं।

६ वेतनादान—मृत्यु प्रभृतिके वेतन न देनेका नाम वेतनादान है।

७ सन्निवृत्त्यतिक्रम—सब लोग मिलकर कीयी कार्य करनेकी प्रतिज्ञाके बाद यदि उसके विरुद्ध चले, तो वह सन्निवृत्त्यतिक्रम कहा जाता है।

८ क्रयधिक्रयानुगम्य—किसी द्रव्यको खरीदकर उसे बेचनेके बाद यदि अधिक लाभकी आशाकी अनुशोचना की जाय, तो उसे क्रयधिक्रयानुगम्य कहते हैं।

९ स्वामिपाल—स्वामी और पशुपालकके साथ जो विवाद होता, उसका नाम स्वामिपाल है।

१० सीमाविवाद—भूमि प्रभृति सीमाके लिये प्रजामें जो भगड़ा होता है, उसे सीमाविवाद कहते हैं।

११ वाक्पाकृत्य और दण्डपाकृत्य—अर्थात् गाली-गुफ़ा और मारपीट।

१२ स्तेय—दूसरेके वस्तु चुरानेको स्तेय कहते हैं।

१३ साहस—वस्तुपूर्वक किसीकी चीजको हीन लेना साहस है।

१४ स्त्रीसंग्रहण—किसी स्त्रीके साथ परपुरुषका अनुराग होनेसे उसका नाम स्त्रीसंग्रहण है।

१५ स्त्रीपुंसधर्म—दम्पतीमें जैसा सद्भाव और नियम रहना आवश्यक है, वह स्त्रीपुंसधर्म कहा जाता है।

१६ विभागविवाद—पैटक धनके विभाग करनेमें जो विवाद उपस्थित होता, उसका नाम विभाग-विवाद है।

१७ द्यूत—बाजी लगाकर जूवा पाया वगैरह खेलनेको द्यूत कहते हैं।

१८ पाद्वय—बाजी लगाकर घेड़ा या घिड़िया लड़ानेका नाम पाद्वय है।

अष्टादशशतिकमहाप्रसारणी-तेल (सं० ली०) तैलीपध विशेष। यह तैल वात व्याधिमें उपकारक होता है। प्रस्तुत करनेकी रीति यह है—तिलका तैल १६ सेर, कायके लिये मूल और पत्र सहित १७० सेर, गन्ध-प्रसारणी १२० सेर, क्षिण्टीमूल १२० सेर, गताधर १२० सेर, पञ्चगव्या १२० सेर, दग्धमूल प्रत्येक १२० सेर, कीतकी १२० सेर—इन सब द्रव्योंको प्रत्येकके ४ गुण जलमें पाक करके घृयक् घृयक् काय प्रस्तुत करना चाहिये। फिर दहीकी काष्ठी १६ सेर, छागके मांसका काय १६ सेर, घूर्ण १६ सेर, दूध १६ सेर दही १६ सेर। कर्कार्य तगर, मदनफल, कुष्ठ, नागेश्वर मुस्ता, गुहृत्वक् राक्षा, सैन्धव, पीपल, जटा-मांसी यष्टिमधु, मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, शलफा, नखी, सोंठ, देवदारु, काकोली, चीरकाकोली, यक्ष और भिलाषेकी मीठी यह सब प्रत्येक ८ तोला एकत्र करके पका ली। (वैद्यप्रसारणी)

अष्टादशाङ्ग (सं० पु०) कषायविशेष। यह सन्निपात च्वरमें हित और चार प्रकारका होता है—दग्धमूलादि, भूमिम्बादि, द्राक्षादि, मुस्तादि। पक्ष-

लेमें दशमूल सोंठ, शङ्खो, पौष्कर, दुरालभा, भार्गो, कुटजबीज, पटोल, कटुरोहिणी इतने द्रव्य रहते हैं। दूधरमे—भूमिम्ब, देवदारु, दशमूल, मही पधाब्द, तिक्ता, इन्द्रबीज, धनियां, और इभकण (गजपीपल) यह सब द्रव्य पड़ता और यह कपाय तन्द्रा, प्रलाप, अरुचि, दाह, मोह, ज्वर प्रभृति रोगोंको शीघ्र नाश कर देता है।

तीसरेमें—द्राक्षा, अमृता, सोंठ, शङ्खो, मुस्तक, रत्नचन्दन, नागर, धनिया, बालक, कण्टकारी, पुष्कर, और पिशुमर्द इतने द्रव्य पड़ते हैं।

चौथा—मुस्ता, पर्यट, स्रग्, देवदारु, महीपध, त्रिफला, धन्वयास (दुरालभा), नीली, कम्पिलक, त्रिदत्त, किराततिलक, पाठा, बला, कटुरोहिणी, मधुक, और पीपलसूल, यह सर्वद्रव्योसि बनाया जाता है।

(चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली)

अष्टादशाङ्गलौह (सं० श्लो०) पाण्डुरोगाधिकारका लौहविशेष। इसको प्रसृत करनेकी रीति यह है—चीराइता, देवदारु, दारुहस्ते, मोथा, गुडुच, कुटकी, पटोल, दुरालभा (जवासा), पर्यटक (धनपापर), निम्ब, त्रिकटु (सोंठ पीपल मिर्च), वट्टिफलत्रिक, विडुङ्गफल, जटामांसो, यह सब द्रव्य सम यामि बराबर ले अच्छीतरह घूर्ण बना घृत और मधु (सङ्घ)-के साथ बटिका बनानी चाहिये। तलकी साथ इसे सेवन करनेसे सब प्रकारका पाण्डुरोग निम्नूल होता है। (भाष्यकाल—म० १२०)

अष्टादशोपचार (सं० पु०) बहुव०। तन्त्रोक्त पूजाका अष्टारह प्रकार उपचार। यथा,—१ आसन, २ स्नागत, ३ पाद्य, ४ अर्घ, ५ आचमनीय, ६ स्नान, ७ वस्त्र, ८ उपवीत, ९ भूषण, १० गन्ध, ११ पुष्य, १२ धूप, १३ दीप, १४ अन्न, १५ तर्पण, १६ मात्यानुलीपन, १७ नमस्कार और १८ विसर्जन।

अष्टादशाष्टिक (सं० पु०) शब्द-वेत्ति अधीति या शाष्टिक; आदिभूतः शाष्टिकः, शाक-तत्। ततः अष्टौ च त आदिशाष्टिकाचेति, कर्मधा० संज्ञात्वान्न द्विगुः। आठजन प्रसिद्ध शाष्टिक। यथा,—इन्द्र, चन्द्र, कायकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन, पाणिनि,

अमर और जैनेन्द्र। इन आठ लोगोंने प्रथम शब्द-शास्त्रको प्रणयन किया था, इसीसे इनका यह नाम पड़ा।

अष्टाध्यायी (सं० स्त्री०) १ गतपथ-ब्राह्मणका एकादश काण्ड। इसमें आठ शासन सम्मिलित हैं। २ पाणिनि-व्याकरण।

अष्टानयत (सं० त्रि०) अष्टानवे संख्या-सम्बन्धीय, अष्टानवेवां।

अष्टापद (सं० पु०-स्त्री०) अष्टो अष्टौ पदानि पंक्तौ विद्वान्ते अस्मिन्, संख्या शब्दस्य षोष्ठायां शाल्वं अर्ध-चादिः। १ चौपर खेलनेको कपड़ेका बना घर, बिसात। अष्टसु धातुषु पदं प्रतिष्ठा यस्य। २ स्वर्ण, सोना। ३ शरभ। यह आठ पैरका पत्नी होता और अपने चङ्गुलमें सिंहको भी दबाकर उड़ जाता है। ४ मकड़ी। ५ धनुरा। अष्टं यथा स्यात् तथा पद्यते।

६ क्षमि, कौड़ा। ७ चन्द्रमङ्गिका। अष्टसु दिक्षु प्रापद्यते। ८ कील, कांटा। ९ कैलासपर्वत। अष्टाभिः सिद्धिभिरापद्यते। १० अणिमादि अष्टसिद्धि।

अष्टापदपत्र (सं० स्त्री०) सुवर्णपत्र, सोनेका पत्रक।

अष्टापदी (सं० स्त्री०) चन्द्रमङ्गिका, चांदनोका पेड़।

अष्टपाद (सं० पु०) आठ पैर वाला, जिसमें आठ रुदर रहे।

अष्टपाद (सं० त्रि०) आठसे बंटा हुआ जिसकी आठ जड़में रहे।

अष्टापाद्य (सं० त्रि०) अष्टाभिरापद्यते गुण्यते, आ-पद कर्मणि खलत्। अष्टगुण, अष्टगुणा, अठहरा, जिसमें आठ तह रहे।

अष्टाविंशति (सं० स्त्री०) अष्टाविका विंशति, आत् अन्तादेशः। १ अष्टाईस संख्याविशिष्ट। पूरणे षट्। अष्टाविंश। पूरणे तमप्। अष्टाविंशतितम।

अष्टाविंशतितत्त्व (सं० स्त्री०) अष्टाविंशतिस्थानेषु तत्त्वम्। रघुनन्दनमहाचार्य-प्रणीत मलमासादि अष्टा-विंशति विषयक स्मृतिनिबन्ध विशेष। यथा,—मलमास, दायतत्त्व, संस्कार, अग्निनिर्णय, प्रायश्चित्त, विवाह, तिर्थि, जन्माष्टमोत्रत, हुगोत्सव, व्यवहार, एकादशों प्रभृतिका निर्णय, तङ्गागोत्सर्ग, गृहोत्सर्ग, हपोत्-

मर्ग, दोषा, सामवेदीका याह, यजुर्वेदीका याह, षार शूद्रका कृत्यतत्त्व ।

अष्टार (सं० त्रि०) अष्टौ भरा इव कोषा यस्य । अष्टकोणयुक्त, अठकोना । इस अर्थमें 'अनाथ' 'अष्टकोण' इत्यादि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं ।

अष्टारचक्रवत् (सं० पु०) अष्टारं अष्टकोणं चक्रमस्यस्य, मत्तुपु मस्य वः । जिन विगेष । हाथमें अठकोन चक्र रहनेसे इन्हें 'अष्टारचक्रवान्' कहते हैं । इनके अपर पर्याय यह हैं,—मञ्जुथी, ज्ञानदर्पण, मञ्जुभद्र, मञ्जुघोष, कुमार, गिरचक्र, वषट्कर, प्रज्ञाकाय, वादिराट, नीलोत्पली, महाराज, नील, शार्ङ्गलवाहन, धियाम्यति, पूर्वजिन, खड्गी, दण्डी, विभूषण, बालव्रत, अङ्गचौर, सिंहकली, शिखधर, वागोम्बर । यह जैनसाधु और नृपति भी रहें ।

अष्टारथ—भीमरथके पुत्रविगेष ।

अष्टावक्र (सं० पु०) अष्टकृत्यो वक्रः वृत्तौ संख्यासुजर्ध परा (अष्टन. शंशामान् । पा १।१।१५) इति दीर्घः । ऋषिपविगेष । सुमतिके गर्भ और कछोड़के औरससे इनका जन्म हुआ था । उद्दालकसे कछोड़ शास्त्रादि पढ़ते रहे । शिष्यकी सेवा शत्रुपामे तुष्ट होकर उद्दालकने उनके साथ अपनी कन्या सुमतिका विवाह कर दिया । सुमतिका दूसरा नाम सुजाता है ।

कुछ दिनोंके बाद सुमति गर्भवती हुई । एकदिन पत्नीके समीप बैठकर कछोड़ वेदपाठ कर रहे थे । पढ़नेमें स्थान स्थान पर कुछ झूल हो रहा था । सुमतिकी गर्भस्थ सन्तानने उन मूर्खकी यत्ना दिया । इसपर कछोड़ने क्रोध करके कहा,—“अभी तू भूमिष्ठ नहीं हुआ । गर्भ हीमें तेरा स्वभाव इतना वक्र है, अतएव तू अष्टावक्र होकर जन्म ग्रहण करेगा ।” उसी शापके प्रभावसे जन्म सेनपर उस शिक्षका शरीर अष्ट जगहसे टेढ़ा हुआ था ।

अष्टावक्र जिस समय गर्भही में थे, उसी समय एकदिन सुमतिने कछोड़से कहा,—“मिरा दशवां मास उपस्थित है । तुम्हारे पास धन नहीं, इसलिये राजा जनकसे जाकर धन मांगो ।” कछोड़ जनकसे धन मागने गये । वहाँ बन्दी नाम बहणके एक पुत्र

थे । वेदमें उनको दक्षता असाधारण थी । वेदविचारमें कछोड़को परास्तकर उन्हें समुद्रमें डाल दिया । समुद्रतलमें बहणके निकट जाकर वे उनके यज्ञमें अभिपिक्त हो गये ।

इधर अष्टावक्रका जन्म हुआ । बारह वर्षकी अवस्थामें पिताकी दुरवस्था सुनकर वे जनकपुरी गये । उनके साथ उनके मामा श्वेतकेतु भी थे । वहाँ वेदविचारमें बन्दीकी परास्तकर वे अपने पिताको उद्धार कर लाये । पुत्रसे सन्तुष्ट होकर कछोड़ने उन्हें समझानेमें स्नान करनेकी कहा । समझामें स्नान करनेसे अष्टावक्रकी वक्रता दूर हो गई, पर वक्र नाम न गया ।

अष्टावक्रने जनकराजको जो उपदेश दिया था, उसका नाम अष्टावक्रमंजिता है । इन्हींके आशीर्वादे भगीरथने दिव्य गङ्गा लाभ किया और इन्हींके शापसे कृष्णकी महिषियां डकूके हाथमें पड़ीं । अष्टार देखो ।

अष्टावक्ररस—शोधित पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, स्वर्ण १ भाग, रौप्य १० भाग, सीसा, तामा, खर्पर, वज्र प्रत्येक १० भाग । इन सब वस्तुओंकी बटकी स्रुरीके रसमें एक पहर और घृतकुमारीके रसमें एक पहर घोटना । फिर ममतल वीतलमें रखकर उसके सुइको चां-खड्डीके टुकड़ेसे बन्द कर बालूभरी हाँड़ीमें इस वीतलको रख देना । बालू वीतलके गलितक भरा रहें । फिर क्रमशः तीन दिन तक उसे भागपर रखना । जर्ह पातित होकर जो शोधित वीतलके गलेमें लग जाये उसे निकाल लेना । इसकी मात्रा दो रत्ती है । पानके रसके साथ खाना होता है । इसके सेवनसे सम्पूर्णरूपसे बलवीर्यकी वृद्धि होती है ।

अष्टावक्रोय (सं० स्त्री०) अष्टावक्रमधिकृत्य कृतः ग्रन्थः छ । अष्टावक्रकी अधिकार करके रचित ग्रन्थ, अर्थात् जिस ग्रन्थमें अष्टावक्रका उपाख्यान हो । महाभारत वनपर्वके १३२से १३५ अध्याय । अष्टावक्रने विचारसे बहणपुत्र बन्दीकी परास्त करके अपने पिता कछोड़को उद्धार किया था । इन कई अध्यायमें अष्टावक्रके शास्त्रार्थका विवरण है ।

अष्टाथि (सं० त्रि०) अष्टकोण-विगिष्ट, अठकोना । (स्त्री०) अष्टकोण गृह, अठकोना घर ।

अष्टास (सं० श्लो०) अष्टकोनाकृति, सुसम्पन्न, अठ-
पहलू ।

अष्टास्य (सं० त्रि०) अष्टकोण-विशिष्ट, अठकोना ।

अष्टाह (सं० त्रि०) अष्ट दिवस पर्यन्त स्थायी, जो
आठदिन ठहरता हो ।

अष्टि (सं० स्त्री०) अथ्यते भूमौ चिप्यते, अस्-क्तिन्
ष्टपो० पत्वम् । १ फनादिका बीज । २ आँठी, गुठी ।

३ सोलह अक्षरका कन्दोविशेष । ४ सोलह म'ख्या ।

अष्टव्याप्तो क्तिन् । ५ व्याप्ति । अग्र-करणे क्तिन् । ६ भोग-

माधन देह । यह अष्टला, अक्षिता, पञ्चमार आदि
भेदमें कई प्रकारकी होती है ।

अष्ट्रिय, अष्ट्रिया, अष्ट्रोङ्गरी—(अष्ट्रिया एवं हंगरीका
नाम्नाञ्च) मध्य युरोपका एक बड़ा साम्राज्य । इसका

क्षेत्रफल (१८०५ ई०में) २३८८७७ वर्गमील है । इसके

उत्तर जर्मन् और रूससाम्राज्य, पश्चिम सुजालन्द और
हौटेनष्टीन हङ्गरी, आष्ट्रियाटिक सागर एवं इटली.

दक्षिण रुमानिया, तुर्की और मोण्टेनिग्रो, और पूर्व
रूस और रुमानिया है । सन् १८०१ ई०की सर्ट्सम-

शुमारीमें अष्ट्रियाकी लोकसंख्या ४५४०५२६७ है ।
अष्ट्रियाके प्रदेश और नगर ये हैं—

प्रदेश ।	नगर ।
उपर अष्ट्रिया और निम्न अष्ट्रिया । इनका दूसरा नाम अष्ट्रियाकी भार्कडची है	वियेना, लिन्ज़, थाया ।
साल्ज़बर्ग	साल्ज़बर्ग ।
ट्रीरिया	थाज़ ।
कारिन्थिया	क्लायनफ़ूर, विलाच ।
कारिन्थोला	केबाच ।
कुन्स्टेनलएड	त्रिष्टि, केपो-दि-इस्त्रिया ।
तिरोल, बोराइलबर्ग	इन्सब्रुक, ट्रेण्ट, बोतज़ेन ।
बोहेमिया	प्राग, रिचेनबर्ग, पिलसेन बूटबोस् ।
मोरेविया	ब्रून, थोलमूस्, अस्तारलिस ।
सिलिसिया	व्रोपाल, तेथेन ।
गालिसिया	लेम्बर्ग, क्रोदी, क्राकौ ।
बकीविना	जार्नोविज़ ।

प्रदेश ।	नगर ।
दाल्मेशिया	लारा, रगुसा ।
हङ्गरी	बुदापेस्त, प्रेंसबर्ग, कोमर्ण
	एराद, तोकि, देब्रेजेन ।
त्रान्सिल्वेनिया—क़सेनबर्ग,	हार्माग़िताद, क़न्सताद ।
साबिंया और तीमिस्का	} तिमेश्वर ।
वानाट	
क्रोशिया एवं	} अग्राम, एसेक ।
शावोनिया	
सेनिक सीमाप्रदेश	कार्लम्ताद, पितर्वर्टिन, स्तेमलिन, वासेंज ।

पर्वत—कार्पेशियान पर्वत, मटेनिक श्रेणी और रिसि-
यान वा ताइरोलिय अल्पस् यहाँके प्रधान पर्वत है ।

अष्ट्रियाका प्रायः बाराह भाग पर्वतसे भरा है । इसके

पूर्ण क्षेत्रफलका $\frac{5}{8}$ भाग समुद्रतलसे ६०० फीट

ऊंचा पड़ता है । अल्पस् पर्वत तीन भागोंमें विभक्त

है, पश्चिम और पूर्व अल्पस् । पूर्व अल्पस् त्रिलकुल

अष्ट्रियामें हो पड़ता और मध्य अल्पस् की भी कितनी

झँ श्रेणी आ पड़ची है । दानूब नदी बोहेमियान

पर्वतसे अल्पस्की अलग करती है । कार्पेशियान

पर्वत इस देशके पूर्व और उत्तर पूर्व मेंहराब-जैसा

लगता है । इसके समग्र क्षेत्रफलमें चतुर्थीगसे कुछ

हैं अधिक भूमिसमतल मिलता । गालिसियामें सबसे

बड़ा समतलभूमि पड़ता है । दक्षिणमें प्रायिषीओकी

और लम्बार्डो-वेनेशियान समतलभूमिका कुछ अंश
अष्ट्रियामें आ गया है । दानूबके पास पास कई छोटे-
छोटे समतलभूमि मौजूद हैं । दूसरी बड़ी नदियोंके पास
जा मैदान हैं, उनमें कुछकी भूमि बहुत ही उपजाऊ है ।
भीच—अष्ट्रियामें बड़ी भील न रहते भी अल्पस्की
किनरी ही पहाड़ी भीलें बहुत सुन्दर हैं । काष्ट
प्रदेशकी भोसमी भील जिर्कनिज़ सबसे बड़ी है ।
गालिसिया और दाल्मेशियामें बड़े-बड़े दल-दल भरे,
किन्तु नदियोंसे नहरें निकलने और सफ़ायीके काम
होने कारण दूसरे प्रांत्तोंके दल-दल बहुत ही काम
पड गये हैं ।

हङ्गरीमें नमिद्लार और प्रातेन भील ही अधिक प्रभिद है। इनमें पहालीका परिमाण ४०० वर्गमील और टूमरोका १०० वर्गमील है। नमिद्लारके ऊपर यारहो महीने वाष्पीय जहाज चलते हैं। इन दोनों भौलौके वारो और अङ्गरके वाग लगे हुए हैं।

नदनी—अष्टौयामें कितनी ही नदियां बहती हैं। किन्तु इष्टिया और कष्टं प्रान्तमें नाला भी टूटू नहों मिलता। इसकी नदियोंकी धारामें तीन औरकी जाती हैं.—उत्तर, दक्षिण और पूर्व। किसी प्रधान नदीका मुहाना इस देशमें नहों पड़ता। दानूब नदीमें जहाजरानी खूब हो सकती है। लिस्त्र और वियेनाके बीच इस नदीकी गोभा देखते ही बनती है।

दानूब नदी प्रायः २३४ वर्गमील अष्टौयाके भीतर बहती हुई भोसोवा होकर चली गयी है। दक्षिण भागमें इन, वीन, एन्स, लिथा, राय, ड्री और सेव, तथा वामभागमें मार्च, ओवाग, मिडत्रा, यान, थिस और वेगाभोथिमिस इसकी शाखाएँ हैं। विद्युत्ता नदी बाल्टिक सागरमें गिरती है। इसकी शाखाका नाम धग है। एख नदीकी शाखाभोके नाम मेलदी और एजार, निस्तर एवं आदिज। राइन नदीका केवल मात कोस अंग कन्सन्स भीलके ऊपर होकर चला गया है। इसोफो, जार्माग्ना, कार्क और नारिन्ता नदी आद्रियातिक समुद्रमें जाकर गिरी है।

पवित्र प्रसवण—अष्टौयाकी तरह अधिक और मूल्यवान् खनिजप्रसवण युरोपके दूसरे प्रान्तमें देख नहों पड़ते। विशेषतः यह बोहेमियामें मिलते, जहाँ कितने ही मनुष्य इन्हें देखने पहुँचा करते हैं। कार्ल्सबड, मेरीनबड, प्रानजेन्सबड और थिलिनके चारस्वभाव प्रसवण मयसे बड़े हैं। गीसलका चारस्वभाव और अस्त्रीकृत जल चौका-वर्तनके काम आता है। सब मिलाकर कोई १५०० प्रसवण अष्टौयामें वर्तमान हैं।

सागरतट—अष्टौयाकी सम्पूर्ण सीमाका दशमांश ही सागरतट है। आद्रियाटिक-तट १०० मील विस्तृत और अधिक टन्तुरित है। इष्टियाका प्रायोद्दीप, विष्ट और कारनेरो अखातके बीच पड़ता, जिनमें बहुत

सुरक्षित खाड़ी है। कारनेरोके अखातमें कारनेरो द्वीप भी मिलते, जिनमें चेरसो, वेगलिया और नूदिन प्रधान हैं। इसोफो मुहानेके पश्चिम तटपर कस्कोकी भरमार है। किन्तु ड्रीटके अखात और इष्टियन प्रायोद्दीपका तट ढालू होनेसे बहुतसे बड़ और पोताश्रय सुरक्षित हैं। अष्टौयाके प्रधान समुद्र पोताश्रय एवं प्रायुधागार ड्रीट, कपोडिष्टिया, पिरानो, परेफो, रोविग्न और पोला हैं। दालमेगिया-तट पर भी कितने ही सुरक्षित बड मिलते, जिनमें जूरा, कटारो और रगुसा मुख्य है। किन्तु कहीं-कहीं यह बहुत ही ढालू है, जहाँ कोई चट्टकर जा नहों सकता। हाँ, तटके साथ दीपोंका समूह लगा, जहाँ गीत ऋतुके समय आद्रियाटिकमें तूफान चलनेपर जहाजोंको लङ्गर डाननेका सुगम स्थान मिल जाता है।

स्तर—अष्टो-हङ्गरीय साम्राज्यमें अल्प और कार्पथियान पर्वत प्रधान हैं। इन दोनोंके बीच हङ्गरीकी समभूमिका टरसियारी स्तर और बाहर उत्तरकी ओर दूसरा प्रदेश पड़ता है। कार्पथियान अल्प पर्वतके बीचके छिद्रने मिबोसीन समयसे इन दोनों प्रान्तोंको जोड़ा है। बाहरी ओर पहले गड्डा रहा, किन्तु अब वह पूर गया है। गालिसियामें नीटरकी पुरानो चटानें निकल पड़ी हैं। सिलूरियान और दिवोनियान गर्भपर भुरभुरा पत्थर भूकक मारता है। मालूम होता है, दिवोनियान समयके बाद भूमि सूख गयी थी। किन्तु उपर क्रिटेगेष समय पारम्भ होते हो किनोमिनियान समुद्र फूट पड़ा। १२।१५ कोसका उन्नतावनत देश नीटरको कार्पथियान उपकण्ठमें प्रथक् करता है। प्रथ उपत्यकामें मिबोसीन समयसे अधिक पुराना गर्भ देखनेमें नहों पाता। उपरोक्त उन्नतावनत देशमें और उत्तर-पश्चिम और पलेभोजिक स्तर क्रिटेगेष गर्भके नीचे टथ गया है। लेमवर्गमें १६५० फीट ऊँचनेपर भी सिनोनियान आधार मिला न था। क्राकोमें पश्चिम क्रिटेगेष गर्भ चुरामिक और त्रियासिक स्तरसे विस्तृत है। साइलेगियामें पलेभोजिक गर्भ फिर धरातल-

पर निकल आया है। झरूरीके बीच पहाड़ मैदान-पर खड़ा और उत्तर-पूर्व ओर कार्पेथियानसे जा मिला है।

क्षपिकार्यमें सुभीतिके लिये अष्टीयामें जगह जगह-पर नहर खोदी गई है। परन्तु ये सब नहरें बहुत पुरानी नहीं हैं। निम्न अष्टीयामें विद्येनासे निउस्ताद तक जो नहर है, वह बीस कोस और झरूरीके अन्तर्गत दानूब एवं धिसके बीचमें जो वाक्सार नहर है, वह पैंतीस कोस लम्बी है। वेगा एवं तेमिसके बीचमें रोमकोंने जो नहर खुदवाई थी, उसे वेगा नहर कहते हैं। उसकी लम्बाई ४२ कोस है।

४१-अष्टीयामें मैहनतका कितना ही काम खुला रहते भी क्षपिकार्य लोगोंकी बहुत लाभ पहुँचाता है। सन् १८०० ई०को इस देशके कोई आधे आदमी क्षपिकार्यसे ही अपना निर्वाह करते थे। भूमि बहुत उपजाऊ है। ७४१०२००१ एकर भूमिमें खेती होती और बाकी दूसरे काम लगती है। बोहेमिया, गालि-शिया, मोरेविया और निम्न अष्टीयामें अधिक क्षपिकार्य चलता है। निम्नलिखित द्रव्य खूब पैदा होते हैं,—गेहूँ, राई, यव, बाजरा, मकई-ज्वार और आलू। किन्तु जो द्रव्य खेत जोतनेसे उपजता, उससे इस देशका पेट नहीं भरता। झरूरीसे बहुतसा गेहूँ और मकई-ज्वार मंगा अष्टीयाके लोग अपना उदरपोषण करते हैं। अष्टीयासे सिर्फ यव और बाजरा बाहर भेजा जाता है। टिरोल और साल्जबर्गमें खेती बहुत कम होती है। यहाँसे कितना ही मीवा बाहर जाता है। टिरोलका सेब, बोहेमियाका बेर और हालमेशियाका अखीर तथा अनार बहुत प्रसिद्ध है। अझूर भी बहुत उत्पन्न होता है।

४२-अष्टीयामें खेतीसे तिहाई जङ्गल पड़ता है। बुकोविनामें सबसे अधिक और गालिशियामें सबसे न्यून जङ्गल है। सिन्दूर, देवदारु, बीच, आग और बूकीजार—जैसे हथौसे राज्यकी बड़ा पाय होता है। जङ्गलका काम वैज्ञानिक रीतिसे चलते हैं।

भूमि-सैकड़े पीछे राज्यका २८वाँ अंश जागीरमें लगा है। बुकोविना, साल्जबर्ग, गालिशिया, सालिशिया,

और बोहेमियामें कितने ही छोटे-छोटे राजा बसते हैं। जागीरकी जमीन ज्यादातर जङ्गली है।

४३-अष्टीयामें रेलका काम बड़ी धूमधामसे चलता है। देश पर्वतमय होनेसे रेल बनानेमें गवर्न-मेंबर्को बहुत मत्या मारना और रुपया खर्च करना पड़ा है। सेमिरिङ्ग रेलवे सन् १८५४ ई०को तैयार हुई थी। यह ऐसे पार्वत्य देशपर पड़ी, कि बनावटको देख लोगोंकी बुद्धि चकरा जाती है। आदिसे अन्त-तक रेलवेका अधिकार अष्टीय सरकार अपने ही हाथ रखती है।

अष्टीया-निच—एन्स नदीके निम्न प्रदेशको निम्न अष्टीया कहते हैं। इससे पूर्व झरूरी, उत्तर बोहेमिया एवं मोरेविया, पश्चिम बोहेमिया तथा उपर-अष्टीया और दक्षिण टैरिया पड़ता है। इसका क्षेत्रफल ७६५४ वर्गमील है। दानूब नदी इसे दो भागमें विभक्त करती है। वाल्डबेरिलका पार्वत्य प्रदेश बोहेमिय और मोरेविय अधित्यकासे सम्बन्ध रखता है। दानूब, पन्स और मार्च नदीमें जहाज आता जाता है। बडेनमें गन्धकी, डिउस-अलटोनवर्गमें फौलादी, पयरा-वर्धमें लोहेका और बोसलीमें उष्ण प्रसवण प्रवाहित है। जल-वायु स्वास्थ्यकार होती भी प्रायः बदलते रहता है। भूमि अधिक उपजाऊ नष्टो ठहरती और न उससे इसके अधिवासियोंका काम ही निकलता है। मवेशी तो अधिक नहीं देख पड़ता, किन्तु शिकार और मछलीका बाजार गर्म रहता है। अल्प्स-पर्वतकी नीचे कुछ कोयला और लोहा निकलता है। किन्तु इस प्रदेशमें काम-काज खूब होता है। बीनरकाल और सेमरिङ्ग प्रदेशमें कितने ही कारखाने खुले हैं। घात, चकी, दवा, कागज़, चमड़े, रेशम, कपड़े और चीनी और तम्बाकूका काम बहुत देव पड़ता है। विद्येना बहुत बड़े व्यापारका केन्द्र है। अष्टीया जैसा घन-जन सम्पन्न प्रदेश दूसरा नहीं निकलता। यहाँ सैकड़ों पीछे निम्नानवे मनुष्य पढ़े लिखे हैं।

अष्टीया-उपर—एन्स नदीके ऊपरका प्रान्त ऊपर अष्टीया कहाता है। इससे उत्तर बोहेमिया, पश्चिम वावैरिया, दक्षिण साल्जबर्ग एवं टैरिया और पूर्व

निम्न अष्ट्रीया पड़ता है। गल्पायिन प्रदेशमें भूरा कोयला बहुत है। सार्वजनिककी महत्त्वसे दानूध और एल्युमिने वीच लड़ाई पाते-जाते हैं। यहाँका जलवायु न तो बहुत अच्छा न बुराब ही है। अधियासी जर्मन क्रांतिके और रोमान देवलिक हैं। हाथिकार्य ऐसी धूमसे चलता, कि अन्न बहुत उपजता है। इस प्रदेशमें चरामाह अष्ट्रीयामें दूसरी जगह नहीं मिलते। मवेशी पैदा और लकड़ी तैयार करनेसे इस प्रदेशको अधिक लाभ होता है। खनिज पदार्थमें स्वर्ण अधिक निकलता है। तीस खनिज निर्भरमें इसचालका मेन्थ और डालका फौलादी स्रोत प्रधान है। टीरमें लोहे और दूसरे धातुका काम बहुत बनता है। कल पुर्वा, नैरू, रुई और कागज भी तैयार होता है। यहाँसे नमक, पत्थर, लकड़ी, जानवर, ऊनी और फौलादी चीज तथा कागज बाहर भेजा जाता है।

अष्ट्रीया-इसका सरकारी नाम अष्ट्रो-हङ्गरीय-मनाकी है। इससे पूर्व रूस एवं रुमानिया, दक्षिण रुमानिया, सर्बिया, तुर्कीस्थान, तथा मण्टेनेग्रो, पश्चिम आस्ट्रियाटिक सागर, इटली, सुजारलेण्ड, लीक-टनटीन एवं जर्मन साम्राज्य तथा रूस पड़ता है। इसका क्षेत्रफल २६६८०० वर्गमील है। सर्वसाधारण अपनी भाषामें इसे ड्युवल मनाकी वा हैतराज्य कहते हैं। सन् १८७८ ई०को वरलिनमें जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार बोसनिया और हरखोगोविना राज्योंका प्रबन्ध अष्ट्रीया-हङ्गरीके हाथ लगा और सन् १८७८ को उन्हें अपनी अधिकारभूत भी किया।

शासन—अष्ट्रीया और हङ्गरी दोनों राज्य पूरे तौरपर एक दूसरेसे स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक अपना अपना पार-लियामेण्ट और शासन रखता है। किन्तु दोनोंका राजा एक ही होता, जो अष्ट्रीया-सम्राट् और हङ्गरीका ईश्वर-मेरित नृपति कहता है। दोनों राज्योंके घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले कुछ कार्योंका प्रबन्ध भी एक ही रीतिसे किया जाता है—जैसे परराष्ट्र विभाग, विदेशमें समर्थक एवं दूतव्ययक निरूपण, सैन्य, रण-तरी और संयुक्त व्ययसे सम्बन्ध रखनेवाला राजस्व।

सम्राट्की सम्पूर्ण सेनाका एकमात्र अधिकार प्राप्त

है। काको, विद्येना, प्राग, बूदापेष्ट, प्रेसबर्ग, कसबो, तमेखर, प्राग, जोजपेटेट, मिजमसल, लेमबर्ग, हर-मनपेटेट, अग्रन्, इन्सब्रक और सरजोवोमें सेना रहती है।

गालेशियाके काको और मिजमसल, हङ्गरीके, पीटर-वारड, वोवरद एवं तमेखर और बोसनिया-हरखोगो-विनाके सराजोवो स्थानमें किला बना है। अल्पसूकी मीमा टिरोलमें भी कितना हो किला पड़ा। जिमका केन्द्र ट्रेण्ट और फ्राञ्जेनफेष्टसे बना है। करिनथियाको जो सामरिक रथपथ पाते, उनपर मन्त्रवरथ, प्रेडिल-पाम आदिमें बहुतसे बचावके स्थान निर्मित हैं। विद्येना और बूदापेष्ट राजधानियोंमें कोई किला नहीं। आस्ट्रियातिक तटपर पाला नौकाग्रयको रक्षा जन और स्थल दोनों ओरसे की गयी है। ड्रीट, जारा और कटारोमें भी किलेबन्दी देख पड़ती है। पोला और ड्रीटमें लड़ाईका बड़ा प्रच्छा है।

अष्ट्रीयामें नाना प्रकारके धातु एवं पार्थिव पदार्थ-की खानि है। उससे प्रतिवर्ष प्रायः १६०५००,०००, रुपयेका खनिज वस्तु निकाला जाता है—पत्थरका कोयला (६०८२०१५) लोहा (१८००००००) नमक (८००००००) और सोना चांदी प्रायः (६००००००) रुपयेका। हङ्गरी, ट्रान्सिलवेनिया, साल्जबर्ग और टिरोलमें सोना होता है। इन सब स्थानों और बोहेमियामें चांदीकी खानें हैं। इट्रिया, हङ्गरी, ट्रान्सिलवेनिया, स्टाइरिया और करिनथियामें पारा पाया जाता है। बोहेमियामें टोन, काको और करिनथियामें जस्ता, करिनथियामें सोसा और यहाँके अनेक स्थानोंमें तांबा और लोहा मिलता है। हङ्गरीमें सुर्मा, साल्जबर्ग और बोहेमियामें गन्धविष; हङ्गरी, डीरिया एवं बोहेमियामें कोबल्ट, गालि-थिया, बोहेमिया, हङ्गरी और साल्जबर्ग प्रशस्ति स्थानोंमें गन्धक, बोहेमिया, मोरेविया और करि-नथिया वगैरहमें याफाइट पाया जाता है।

यहाँ चट्टालिका आदि बनानेकी प्रचुर सामग्री मिलती है। चीनके बरतनकी मही, मार्बल, गिप्सम, खड़िया, गोदस्तमणि, गार्नेट नामक रत्नमणि, चकीक

यगम, फीरोजा, नीलम, जवरज्जद पद्मराग, वैदुयं सफायर, घोखराज प्रभृति अनेक प्रकारके मणि यहाँके भाकरीमें पाये जाते हैं।

अष्टीया और इन्द्रोके पर्वतोंमें यद्येष्ट सेंधानमक होता है। प्रति वर्ष ८१००००० मन नमक निकाला जाता है। इसके सिवा समुद्र और खानिके जलकी गर्म करके भी नमक तय्यार होता है। भारत-वर्षकी तरह अष्टीयाके लघणका व्यवसाय राजाके ही हाथमें है। यहाँ प्रायः १६०० खनिज कुण्ड हैं। उनमें निम्न अष्टीयाके गन्धककुण्ड एवं कान्कर्षवाद, मारिनवाद् और ओफेनके लवणकुण्ड ही अधिक प्रसिद्द हैं। इन कुण्डोंमें स्नान करनेके लिये रोगी लोग जाया करते हैं।

अष्टीयामें अनेक प्रकारके उद्भिद् एवं शस्यादि उत्पन्न होते हैं। गेहूँ, धान, आलू, मारङ्गी, नौबू, पाट, सन, तम्बाकू, हीय, नील आदि यद्येष्ट उपजता है। यहाँ गन्ना भी खूब तय्यार की जाती है। इन्द्रोकी तोके शराव सब जगह प्रसिद्द है।

न्य पशुओंमें भालू, भेड़िया, शृगाल, शिया-गोग, विवर, सामंत, उडिङ्गल, बकरी, सांभर हरिण, सफेद खरहा वगैरह देखनेमें आते हैं। यहाँ रेशमके कोवोंको खेती खूब होती है। पालतू पशुओंमें घोड़ा, गधा, भेड़, बकरा और सूवर ही प्रधान है। फलतः इङ्गलैण्डकी तरह यहाँ पालतू जानवरोंकी लोग उत्तरी देखभाल नहीं करते। गवर्न-मेण्ट घोड़ा और भेड़ पालती है। मोरेविया, बोहिमिया, सिलिशिया, निम्न अष्टीया, इन्द्रो और गालिशियामें कुछ अच्छा पशु पँदा होता, परन्तु विचारकर देखनेसे उसका अधिकांश निहट है। अष्टीयाके बारह आना आदमी खेती करते हैं।

यहाँ शिल्पकर्मकी भाजतक यैसी उन्नति नहीं हुई। कपास, रेशम और पशुके वधादि, कांचके काम, लोहे और ईस्पातकी चीजे ही अधिक बनती हैं। अष्टीया पहाड़ी देग है, सिवा आद्रियाटिक समुद्रके दूसरी राहसे देगान्तर जानिका अच्छा सुभीता नहीं पड़ता। इसीसे यहाँ वाणिज्यकी

उन्नति भी नहीं होती। आद्रियाटिक समुद्रमें वाणिज्यके प्रधान बन्दर ये हैं,—इस्त्रिया, त्रिष्ट, रोविग्न्, पाइरेणो, सिला और निडवा।

अष्टीयाके निवासी एक जातिके नहीं हैं। उनका धर्म और भाषा भी एक प्रकारकी नहीं है। यहाँके अधिसिधियोंमें स्लाव, रोमक, लेटिन, यहुदी, आर्मनी और गिस्पी ही अधिक हैं। अष्टीयाके विद्यालयोंको एक प्रकारसे दातथ्य ही कहना चाहिये। प्रायः सर्वत्र ही कुछ कुछ मूलधन है। उसीके प्रायसे विद्यालयका खर्च चलता है, छात्रोंको प्रायः फीम नहीं देनी पड़ती। यदि कहीं फीम है, तो केवल नामके लिये थोड़ीसी। अष्टीयामें कुछ जातीय विद्यालय हैं। छः वर्षसे बारह वर्षतककी उम्रके लड़कोंको इन विद्यालयोंमें जाना पड़ता है। इनके सिवा हालमें कितनी ही ऐसी पाठशालाये खोली गई हैं, जिनमें लोग सभी कुछ लिखना पढ़ना सीख सकें। वियेना, प्रेग, पेट, इन्सब्रक, प्रेस्य, क्राको, कसेनवर्ग, लेम्बर्ग और जार्पोइच नगरमें विश्वविद्यालय है।

अष्टीयाका शासनभार सम्राटके अधीन है। हास-वर्ग-लोथिन्नेन परिवारके आदमी सम्राट् होते हैं। देवात् राजपरिवारमें कोई वंशधर न रहनेपर बोहि-मिया एवं इन्द्रोके राजकीय मनुष्य नवीन राजा मनो-नीत करते हैं। किन्तु दूसरे विभागोंके श्रेष्ठ राजा अपना उत्तराधिकारी ठोक कर जाते हैं। यहाँके सम्राट्की रोमन-कायलिक मतावलम्बी होना आवश्यक है। इङ्गलैण्डकी हाउस एवं कमन्स सभाकी तरह यहाँ भी उच्च एवं निम्न सभा है। भूस्वामी, आर्कबिशप, बिशप एवं राजा लोग यहाँकी उच्च सभाके सदस्य होते हैं। स्वयं सम्राट् इन सभासदोंको मनोनीत करते हैं। निम्न सभामें ३५३ सभ्य रहते, उनमें बोहि-मियाके ८२, दाल्मेशियाके ८, गालिशियाके ६३, उच्च अष्टीयाके १०, निम्न अष्टीयाके ३०, सालजुवर्गके ५, स्टाइरियाके २३, करिन्थियाके १०, कारिंथोलाके ८, बुकोविनाके ८, मोरेवियाके १६, सिलिशियाके १०, ताइरोलके १०, वीरारलवर्गके ३, इस्त्रिया और क्रिस्तके ४ मनुष्य मनोनीत किये जाते हैं।

अष्टौयाका शासनभार मात मन्त्रिभिभागोंके हाथमें अर्पित है। यथा,—१ साधारणशिक्षा एवं धर्मकार्यका विभाग, २ कृषिविभाग, ३ राजस्वविभाग, ४ राज्यके अन्तर्भूत विषयव्यापार, ५ जातीयरक्षा, ६ वाणिज्य-विभाग, ७ विचारविभाग।

यहांके राजस्वको अथवा अतिशय शोचनीय है। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें लगातार पन्द्रह वर्षतक युद्ध होता रहा, उसमें अष्टौयाका बहुत धन खर्च हो गया। इससे लोगोंका विश्वास बहुत घटा था। सैकड़ों पीछे (२५) रुपये बट्टेपर भी कोई गवर्नमेंटको कर्ज देनेपर राजी न हुआ। अन्तमें (५०) बट्टेपर सैकड़ों पीछे (५) रुद्रके हिसाबसे गवर्नमेंटको कर्ज लेना पड़ा था। उसके बाद क्रिमिया, इटली और एशियाके युद्धमें अण और भी बढ़ गया। सन् १८०५ ई०में समग्र अष्टौया साम्राज्यका आय (११११८५०००) वार्षिक व्यय प्रायः (११११८५०००) और १८०३के अन्त समस्त साम्राज्यका ऋण (२३५०८६००००) रुपये था। हमारे भारतवर्षके साथ तुलना करनेसे अष्टौयाका आय व्यय नितान्त अल्प है।

विकास—पहले अष्टौया इतना बड़ा साम्राज्य न था, एनुस नदके नीचे एक छोटासा स्थान रहा। सन् ८८० ई०को सार्लेमिनके समय इसके दक्षिण-पूर्व अष्टिचमें एक सीमा निर्देश्य की गई। ११५६ ई०में एनुसके ऊपरके देगोंके साथ यह स्थान मिला दिया गया था। उसके बाद १२८२ ई०में हान्सवर्ग परिवारके साथ मिल जानेसे यह राज्य क्रमसे बलवान् हुआ। हान्सवर्गके राजाओंको कहीं विवाहसूत्रसे नया स्थान मिला; कहीं धीरे धीरे नई जगह खरीद ली थी। इस तरह अष्टौया साम्राज्य प्रबल बना। अन्तमें १४०८ ई०से यह लोग जर्मनीके भी अधिपति हो गये। १४२६—२७ ई०में बोहिमिया और हङ्गरी राज्य हाथ आया। अब अष्टौया बड़ा भारी साम्राज्य हो गया है। १८०४ ई०में सुत्र-पीठादि अंशालोकके क्रमसे फ्रान्सिस यहाँके सम्राट हुए थे। दो वर्ष बाद वे जर्मनी और इटालीके भी राजा माने गये।

इस समय जो स्थान अष्टौयाकी उचीके नामसे

प्रसिद्ध है, प्रति प्राचीन समयमें यहाँ तरिचिकम् नामकी कैल्तिक जातिके बादमी पास करते थे। इसा मसीहके जन्मसे चौदह वर्ष पहले रोमकोंने दान्यूब नदके उत्तर नोरिकामको जय किया। मार्का-मरिया उस समय इस प्रदेशके अधीश्वर थे। दान्यूबके दक्षिण रोमकोंका नोरिकम और पानोनिया प्रदेश उस समय ताइरोल रिशियाका एक विभाग माने था। ख्रिष्टीय ५ वीं और ६ वीं शताब्दीमें वो-पाइ, यन्दन, गय, इग्न, लखार्ड, और अचरी प्रभृति जातियोंने इन सब स्थानोंको अधिकार कर लिया। अन्तमें हर्ड जातिवाले जाकर इटालीमें बसे। उस समय एनुस नदके एक ओर अचरी और दूसरी ओर एक जातिके जर्मनोंका अधिकार था। ७८८ ई०में अचरी-योंने वेरियापर आक्रमण किया, किन्तु सार्लेमिनने उन लोगोंको खदेड़ कर एनुस नदके किनारेके प्रदेशको जर्मनीमें मिला लिया। उसके बाद ८०१ ई०में हङ्गरीके राजाने इस स्थानको जीता था। अन्तमें ८५५ ई०को प्रथम ओत्तोनने उसे फिर जर्मनीके अन्तर्भूत किया।

८८५ ई०में सम्राटने वाथेनुवर्गके लिपोपोल्डको इस स्थानका शासनकर्ता नियुक्त कर दिया था। ११४१—११७७ ई०में हेनरी जीसोमिर्गत्सने एनुस नदके ऊपर और नीचेके प्रदेशोंको भी मिला लिया। इस वंशसे छठे लिपोपोल्डने कई बार हङ्गरीके साथ युद्ध किया था। १२४६ ई०में उनके उत्तराधिकारी फ्रेदारिक मगियारोंके साथ युद्ध करनेमें खेत पाये। उनके सम्मान-मन्तित न थी, सुतरां वामेनवर्गका राजवंश यहाँसे भ्रंश हो गया।

द्वितीय फ्रेदारिकके समय अष्टौयामें बहुत उलट-पलट पड़ा, परन्तु अन्तमें हान्सवर्ग परिवारके प्रथम पालमैस्के सम्राट होनेपर अष्टौयाके अभ्युदयका सूत्र-पात हुआ। उन्होंने हङ्गरी और वाथेरियाके साथ युद्ध किया था। अन्तमें राजासैणिके संधाममें जन्म पाये। उन्हें विनष्ट कर दिया। उनके पांच सम्मान थे। उनमेंसे किसी किसीने फ्रेदारिकको सम्राट बनाया था, परन्तु वेथेरियाके डिउकने इस प्रस्तावको

अस्वीकार कर उन्हें परास्त किया। अन्तमें उनकी भाई द्वितीय आलब्रेसे, उनकी मृत्युके बाद तृतीय आलब्रेसे एवं रुदल्फ़ आर १३८५ ई०में ४४^थ आलब्रेसे, डिउक हुए। तत्पुत्र पञ्चम आलब्रेसेने सम्नाट् सिगिसमुन्दकी कन्याके साथ विवाह किया था। उसी सम्बन्धसे वे हङ्गेरी और बोहेमियाके राजा बनाये गये। इधर २५ आलब्रेसेके नामसे वे जर्मनीके भी सम्नाट् हुए। १४५७ ई०में उनके सन्तान लादिस्लेकी मृत्युके बाद अष्टमोऽध्यायका राज-वंश विलुप्त हो जानेपर टैरिया-राजपरिवारके हाथमें उनका स्वत्वाधिकार आ गया।

टैरिया-राजपरिवारके ३५ क्रोदारिक सम्नाट् हुए। उनके पुत्रका नाम प्रथम मचमिलन था। १४७७ ई०में चार्ल्स-दि-बोल्डकी कन्या नेरियाका पाणिग्रहण करनेपर उन्हें नेदरलैण्डका भी अधिकार मिला। क्रोदारिककी मृत्युके बाद मचमिलनने अपने सन्तान फिलिपकी नेदरलैण्डका राजा बना दिया। स्पेनकी जोहानाके साथ फिलिपका विवाह हुआ। उसी सम्बन्ध सूत्रसे हाप्सबर्ग-राजपरिवार स्पेनका अधीश्वर बना था। १५०६ ई०में फिलिप स्वर्ग सिधारि। १५१८ ई०में मचमिलन भी परलोक चले गये। उस समय उनके पौत्र प्रथम चार्ल्स स्पेनके राजा थे। जर्मनीका सिंहासन शून्य होनेसे वे पश्चिम चार्ल्सके नामसे वहाँके सिंहासनपर बैठे। इधर सन्धिपत्रकी शर्तके अनुसार उन्हें नेदरलैण्डके सिवा जर्मनीके अन्यान्य समस्त स्थानोंको अपने भाई प्रथम फार्दिनान्डके हाथमें सौंप देना पड़ा। फार्दिनान्ड हङ्गेरीके राजा द्वितीय लूडके बहनोई थे। लूडकी मृत्यु होनेपर बहुत विवादके बाद फार्दिनान्डकी निम्न हङ्गेरीका अधिकार मिला। अन्तमें पश्चिम चार्ल्सके परलोक गमन करनेपर फार्दिनान्ड ही जर्मनीके सम्नाट् बनाये गये।

१५५६ ई०में सम्नाट्की मृत्यु हुई। ज्येष्ठपुत्र द्वितीय मचमिलन अष्टमोऽध्याय, हङ्गेरी और बोहेमियाके सम्नाट् बने थे। ताइरोल और ऊपर अष्टमोऽध्याय २५ पुत्र फार्दिनान्डके अंशमें पड़ा। छोटे लड़केका नाम कार्ल था।

उन्हें टैरिया और करिन्थिया आदि स्थान हिससे मिले। १५७६ ई०में मचमिलनकी मृत्यु हुई। उनके पांच पुत्रोंमेंसे द्वितीय रुदल्फको राज्य मिला। इनके समयमें साम्राज्यकी अवस्था वैसी अच्छी न थी। रूस और बोहेमियाके साथ विरोध उठ खड़ा हुआ। इधर जीसुतलोग बोहेमियाके प्रोतेस्तान्त मतवलम्बियोंको सताने लगे। यह देख उन्होंने प्रोतेस्तान्तोंको सम्पूर्ण स्वाधीनता दे दी। परन्तु साम्राज्य रुदल्फके हाथमें बहुत दिनोंतक न रहा। उन्होंने अपने छोटे भाई माथियासको साम्राज्यका भार सौंप दिया। इन्हींके समय रोमन काथलिक और प्रोतेस्तान्तोंमें घोरतर विरोध शुरु हुआ था। यह विरोध लगातार तीस वर्ष तक चला। माथियासके बाद द्वितीय फार्दिनान्ड और उनके बाद तृतीय फार्दिनान्डको सिंहासन मिला। इसी समय अष्टमोऽध्यायमें बहुत दिनोंतक धर्मयुद्ध होता रहा। उसके बाद तृतीय फार्दिनान्डके पुत्र प्रथम लिथोपोल्ड सम्नाट् हुए। इस समय स्पेनका राजसिंहासन नृपतिशून्य था, सिंहासनके लिये लिथोपोल्ड और फ्रान्सके सम्नाट् चतुर्दश तुरसे भगड़ा हुआ। परन्तु युद्ध समाप्त होनेके पहले ही १७०५ ई०में लिथोपोल्ड संसारसे चल बसे। उनके बड़े लड़के प्रथम जोसेफ सम्नाट् हो युद्ध करने लगे। १७११ ई०में उनकी भी मृत्यु हुई। इसीसे उनके भाई पठ कार्ल सम्नाट् बने। इनके समयमें सब लड़ाई भगड़ा मिट गया। श्रीवर्षमें पीछे सन्धि हुई। उसी सन्धि-सूत्रसे नेदरलैण्ड, मिलन, माजुया, नेपल्स और सिसिली अष्टमोऽध्यायके अन्तर्गत हो गया। उस समय अष्टमोऽध्यायका भूमिपरिमाण १८००००० वर्गमील, लोकसंख्या २८००००००, सैन्यसंख्या १२०००००, और वार्षिक आय प्रायः २८०००००० रुपया था। किन्तु घोड़े ही दिनोंमें फ्रान्स और स्पेनसे युद्ध छिड़ गया। उसमें अष्टमोऽध्यायके सम्नाट् परास्त हुए। १७३७ ई०को वियेनामें सन्धिपत्र लिखा गया। उसकी शर्तके अनुसार अपने अधिकारसे उन्हें नेपल्स और सिसिली स्पेनके दन् कारलको देना पड़ा। इधर सार्दिनियाके राजाकी मिलानका कुछ अंश देनेसे उसके बदलेमें केवल पारम

घोर पाइसिया मिता । १०३६ ई०की डिनघेडमें घोर एक मन्थि हुई। उसकी शर्तके मुताबिक् हमके सुनतानको डिनघेड, सर्दिया, बसाधिया घोर बोसुनियाका कुछ पंग देना पड़ा ।

१०४० ई०में सम्राट्की मृत्यु हुई। उनके पुत्र न था; केवल एकमात्र कन्या थी, जिसका नाम मेरियाघेरिमा था। नोवेनके डिउक फ्राञ्च-स्कोफानके साथ उसका विवाह हुआ। मेरियाने राज्यका भार अपने हाथमें लिया। परन्तु यह बात सबको पसन्द न आयी। चारों ओरसे आपत्ति उठने लगी और घोरतर युद्ध भारभ हो गया। केवल इङ्ग्लैण्डने मेरियाका पक्ष प्रदण किया। इसी अवसरमें प्रुशियाके द्वितीय फ्रेदरिकने मिलिशियाकी जय कर लिया और भट्टीयाके इलेक्टरको सप्त कारलके नामसे सम्राट बना दिया। किन्तु १०४५ ई०में कारलकी मृत्यु हो जानेपर मेरियाके स्वामी प्रथम फ्राञ्चके नामसे जर्मनीके सम्राट् हुए। मिलिशिया कीटा लेनके लिये फ्रांस, रूस, साइन् और स्विजरलैण्डके साथ परामर्श किया गया। लगातार सात वर्षतक युद्ध होता रहा; परन्तु सब निष्फल गया, भट्टीयाको मिलिशिया न मिला। इसी समय राज्यका स्वर्च प्लानिके लिये पहले पहल भट्टीयामें फरणका कांगज प्रचलित हुआ।

फ्राञ्चकी मृत्युके बाद उनके पुत्र द्वितीय जोसेफ समनोके सम्राट् हुए। जोसेफके बाद उनके भाई द्वितीय लिओपोल्डके नामसे जर्मनीके सिंहासनपर बैठे। लिओपोल्डके लड़केका नाम द्वितीय फ्राञ्च था। १८०४ ई०में ये पुत्रपोतादि यंगालीक्रमसे भट्टीयाके सम्राट् हुए। फ्राञ्च मेरिया-लुइसाके पिता और फ्रान्सीसके प्रसिद्ध सम्राट् नेपोलियानके भ्रमर थे। इन्होंने ही उद्योग लगा अपने दामादको एन्वा दीपमें निर्वासित कर दिया था। फ्राञ्चकी मृत्युके बाद उनके पुत्र प्रथम फार्दिनान्ड सम्राट् हुए। १८६५ ई०में प्रुशियामें युद्ध होनेके बाद सम्राट् फ्रान्सीस जोसेफ जर्मनीके साथ सब प्रकारका सम्बन्ध त्याग देनेके लिये बाध्य हुए थे। उसके दूसरे वर्ष बड़ी धम-धामके साथ ये इटलीके सिंहासनपर बैठे गये।

युरोपमें जो महासमरानल प्रवृत्त हुए हैं, भट्टीया ही उसका प्रवर्तक है। बोसनिया भट्टीयाका भूत राज्य और सरजीबो उसकी राजधानी है। रूस-तुर्की युद्धके बाद १८०८ ई०में अत्यल्प रूखण्ड घाटनेके समय भट्टीयाने जर्मनीकी सहायतासे बोस-निया प्रदेशकी रक्षा करनेके लिये भार प्रदण किया था। भट्टीया सर्वभाषसे बोसनियाके उन्नति साधनके लिये यत्नवान् हुआ। किन्तु बोसनियाके स्वाधीनताप्रिय स्थावण भट्टीयाकी अधीनतासे सुख होनेके लिये अति-शय व्यर्थ हो उठा। संभ्रान्त सुसलमान अधिवासीकी छोड़कर बोसनियाके जन साधारण सब स्थाव हैं। १८०८ ई०में समस्त बोसनिया भट्टीयाके सम्पूर्ण अधि-कारसुख हो गया। स्वाधीनताप्रयासो स्थाव प्रजागण भट्टीयाके विपक्ष अभ्युत्थानके लिये गुप्त समितिसे पड़-यत्न करने लगा। इधर भट्टीयाने प्रजागणन करनेके लिये अनेक उपाय प्रयत्न किये।

भट्टीया-सम्राट् फ्रान्सीस जोसेफके भ्रातृपुत्र युवराज फ्रान्सीस फार्दिनान्ड और उनकी पत्नी लैसि सैजस-वर्गने बोसनियाके दर्शनार्थ सरजीबोको गमन किया। इतिहासमें मनु १८१४ ई०की २८ वीं जनका रविवार एक शिरस्तरणीय दिन है। उसी दिन सरजीबो नगरमें भट्टीयासाम्राज्यके युवराज और उनकी पत्नी ग्रेभोन्-ग्रिन्नेफ नामक सावंश्रातीय एक स्थाव धालककी गोलीसे निहत हुईं। वलकानकी वलसुद्धि भट्टीयाके प्रवल असन्तोषका कारण हुई। इसलिये भट्टीया राज-पुत्रकी हत्या होतें सार्वियाके ऊपर कितने ही पन्डिनेटम (चरमाभिमन्थिपत्र) भेजे गये। सार्वियाने उसमें सब शर्तोंको मान लिया, केवल उसकी स्वाधी-नता विरोधी दो शर्तोंके सम्बन्धमें मीमांसके लिये लोगोंकी सभ्यस्य ठहरना चाहा। सार्वियाका प्रत्युत्तर हस्तगत होनेके बाद भट्टीयाने सार्वियाके विश्व युद्ध घोषणा की। अनन्तर रूसने सार्वियाका पक्ष प्रदण किया। इधर जर्मनीने भट्टीयाका पक्ष ले फ्रान्सीस पर आक्रमण किया। ४थी अगस्तकी वलजियमकी स्वाधीनता भङ्ग होतें देखकर निरपेक्ष इङ्ग्लैण्डने जर्मनीके विश्व युद्धघोषणा की। फिर इटली कुछ

दिनके बाद अष्टीयाके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर उठा। उधर तुर्की और ब्रह्मगारियाने जर्मनी एवं अष्टीयाका पक्षग्रहण किया। जिस सार्वियाने कारण महासमरान्तर प्रवृत्तित हुआ, वही सार्विया राज्य इस समय अष्टीया प्रभृति शक्तिके करतलगत है। सार्वियाने राजा राज्यभ्रष्ट होकर भी सार्वियाने शक्ति और फ्रान्सीसीयोंके साथ अष्टीयाके विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। सन् १८१६ ई०की ४वीं शर्तके इस महासमरका छठीय वर्ष आरम्भ हुआ है। इस महायुद्धकेबाद परिणाम क्या होगा, यह कहना नहीं जा सकता। ऐसा विश्वव्यापी युद्ध किसी इतिहासमें देखा या सुना नहीं गया।

अष्ट्रेलिया, अस्त्रेलिया—पृथिवीके सब हीपोंसे बड़ा द्वीप। यह भारतवर्षके पूर्वदक्षिण प्रगान्त-महासागरमें १०° ४०' एवं १२° १५' दक्षिण अक्षांश तथा ११३° और १५३° ३०' पूर्व द्राचिमाके मध्यमें अवस्थित है। पूर्वसे पश्चिम यह १२५० कोस लम्बा और उत्तरसे दक्षिण ८७५ कोस चौड़ा है। इसका भूमिपरिमाण प्राय ३००००००० वर्ग मील है। इसके उत्तरमें नवगिनि और पूर्व हीपसूत्र, दक्षिणमें तास्मानिया द्वीप, पश्चिममें भारत-महासागर और पूर्वमें प्रगान्त महासागर है।

अष्ट्रेलियाके अधिवासियोंकी उत्पत्ति समझना क्या सीधी बात है? यह निकटवर्ती लोगोंसे आकार प्रकारमें बिलकुल भिन्न भासता पड़ते हैं। फिर इनकी चाल-ढाल भी किसीसे न मिलेगी। खेती करना और घर बनाना इनके लिये स्वप्रका विषय है।

नहीं कह सकते, काव अष्ट्रेलियाका इन्होंने अधिकार किया था। इनके यहां पड़ुचनेका ठीक-ठीक हाल किष्वा-कहानीमें भी नहीं सुन पड़ता। किन्तु आकार प्रकारमें सादृश्य रहनेसे इन्हें स्वतन्त्र जातिके मनुष्य मान सकते हैं। तीन-चारसे अधिक गणना यह नहीं जानते। यह बात साफ़ जाहिर है, अष्ट्रेलियाके अधिवासी पृथक् जातिके मनुष्य ठहरते, निकटवर्ती लोगोंमें किसीसे सम्बन्ध नहीं रखते और बहुत दिनसे इस देशमें रहते हैं।

पहले पहल जब युरोपीयोंने इस द्वीपको आवि-

ष्कार किया था, तब यहांके असभ्य आदिमी देखनेमें हवाशिये जैसे मालम हुये। इसीसे अनेक आदिमियोंका विश्वास है, कि ये लोग अफ्रीकासे आकर यहां बसे होंगे। असभ्य लोग छोटे छोटे नावोंपर चढ़कर समुद्रके किनारे किनारे भ्रमली पकड़ते फिरते हैं। एकाएक तूफान आ जानेसे नावें बहती बहती गहरे पानीमें चली जाती हैं। वैसे दगामें कोई तो डूब जाती और कोई किसी दूरके टापूमें जा लगती है। अष्ट्रेलियाके असभ्य लोग इसी तरह अफ्रीकासे आये होंगे। किन्तु ए० आर० वल्लासके मतसे यह आर्य जातिके मनुष्य ठहरते और जापानियों तथा जलुवीकों अपेक्षा हम लोगोंसे अधिक सम्बन्ध रखते हैं। डाक्टर क्लास (Dr Klatsch) इन्हें दक्षिण-अमेरिका, दक्षिण-अफ्रीका और अष्ट्रेलियाका आदिम अधिवासी बताते हैं। कोयो कोयो इन्हें मन्द्राज प्रान्तके द्राविडियोंकी सन्तान-सन्तति कहता है। कारण, इनकी और द्राविडियोंकी भाषा एवं रीति-नीति बहुत कुछ मिलती-जुलती है। किन्तु इस बातका ठोके उत्तर नहीं आता, इन्होंने भारतीय महासागरको कैसे पार किया था।

अष्ट्रेलियाके अधिवासी उंचाईमें युरोपीयकी बराबर निकलते, किन्तु शरीरके मझठनमें नीचे पड़ते हैं। इनके हाथ-पैर बहुत पतली होते हैं। काले लोगोंके पिंडलियां नहीं देख पड़तीं। खोपड़ा अयोग्य रूपसे मोटा पड़ता, किन्तु मस्तिष्कशक्ति न्यून ही निकलती है। गिर लम्बा तथा कुछ सड़ीप वंशता, मत्था चौड़ा पोष्टिको हटा रहता, भ्रुवटी लटक आती, आंख बड़ी, कानों तथा डूबे हुये होते और नयनोंके पास नाक मोटी एवं बहुत चौड़ी पड़ जाती है। मुंह बड़ा और होंठ मोटा रहता है, किन्तु आंगिको वह छमर नहीं आता। दांत बड़े, सफ़ेद और मजबूत होते हैं। नौचेका कला भारी बैठता, गालको हड्डी कुछ ऊंची लगती और ठुड़ी छोटी रहती है। युरोपीयकी अपेक्षा गर्दन माटी और छोटी निकलेगी। चमड़ेका रङ्ग ताँबे-जैसा और घाल लम्बा तथा काला होता है।

यहकि मनुष्य साधारणतः मध्यमाकार और वनित हैं। अष्ट्रेलियाके अन्तर्गत पापुयाके पादमियोंके गिरके बाल पगम जैसे होते, किन्तु अन्यथा जातियोंके मीधे या घुंघरवाले रहते हैं। अष्ट्रेलियाके प्रायः सभी पुरुष दाढ़ी मूछ रहते हैं। इनकी बुद्धि नितास्त मन्द नहीं है। इनकी भाषामें अनेक



अष्ट्रेलियाके म्बोपुरुष ।

जाते हैं। किन्तु एक जातीय यमुमात्रकी समझानेके लिये सामान्य कोई नाम नहीं है। जैसे,—पेड़ कच्चेमें हम लोग जड़, धड़, शाखा, पक्षव, पत्र सहित द्रव्यको समझते, उसकी वाद एक एक जातीय वृक्षको विशेषरूपसे समझानेके लिये अन्य अन्य शब्द रहते, परन्तु इनकी भाषामें ऐसे शब्द नहीं हैं। इसीसे मय बीजोंके अक्षय अक्षय नाम हैं। संस्कृत भाषाकी तरह इनकी भाषामें भी धातुके अनेक प्रकार रूप होते हैं। क्रियापद, विशेष्य और विशेषणके एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ये तीन वचन हैं।

तात्पर्यानिधामें अब पक्षिके वादमी नहीं हैं। यहाँकी पादिम अशुभ्य जाति निर्मूल हो गई है। समस्त अष्ट्रेलियाके पादिम निवासियोंकी संख्या इस समय १८००००से अधिक नहीं है।

अष्ट्रेलियावासियोंका सामाजिक काम पश्यायत द्वारा चलाया जाता है। प्रयोग मनुष्य ही पश्यायतके योग्य होते हैं। अन्दामानके पादमी देहमें गुदना गुदवाते हैं। यहाँ प्रया यहाँ भी प्रचलित है। ये लोग योवनावयामें गुदना गुदवाते हैं। गुदना गुदवानेके समय पश्यायती ममा बटती है। उसकी सामने युवकयुवतियोंकी छाती और पीठमें गुदना गीदते हैं।

इन लोगोंमें शोभे रहते हैं। किसीकी मृत्यु होनेपर शोभे वहाँ इकट्ठे होते हैं। इकट्ठे होकर जाग्रते पूछते हैं,—“तुम क्यों मरे।” मर जानेपर मनुष्य नहीं बोलता, तो भी बुद्धिमत्से शोभासोग सब समझ लेते हैं। अन्तमें यही नियत होता, कि निकटका कोई शत्रु जाड़ करके भादमियोंको मार डालता है। रोगसे पादमी मरता है, अष्ट्रेलियावाले ऐसा विग्राम नहीं करते। युद्धमें किसीकी मृत्यु हो जानेपर ये लोग उसका मांस खाते और हृदयके मद्दसे यज्ञ करते हैं। ईश्वर या देव देवी क्या हैं, सो अष्ट्रेलियावाले नहीं जानते। तब देवता ही कही जाहे और कुछ कही, इन लोगोंने इतना समझा, कि एक मन्त्रायली पराक्रान्त हृद मनुष्य बहुत समयसे कहीं सो रहा है। उसका शरीर बड़ा भारी और नाम बुद्धि है। यह एक हाथपर गिर रखकर सोता, दूसर हाथकी कुछनी तक बाल जम गई है। एकदिन उसकी नींद टूटती, परन्तु फव, सो कुछ ठीक नहीं है। जागकर वह हम समस्त चराचरको खा डालेगा।

अष्ट्रेलियावासी खेती करना नहीं जानते। इनका न तो कोई स्थायी वासस्थान और न पालतू पशु पक्षी ही है। केवल पाले हुए कुत्ते ये रहते हैं। कितने ही अनुमान करते हैं, कि ये लोग अपने पूर्वनिवाससे कुत्तोंकी साथ लेते पाये थे। अष्ट्रेलियाके कुत्ते भी भोंकरके भूंकना नहीं जानते। इनकी पूंछें मन्वी और उनमें गीड़टके से बाल होते हैं। कान छोटे और मीधे रहते हैं। हम जातिके कुत्ते यहाँके जङ्गलमें भी पाये जाते हैं। ये बड़े तेजस्वी होते हैं।

अष्ट्रेलियाके अमभ्य पादमियोंके घर नहीं हैं। फिर ये लोग एक जगह रहते भी नहीं। जब जहाँ जाते, तब वहीं पेड़ोंके डाल पत्तोंसे भीपट्टे बना मते हैं। ये लोग कुछ भी गिन्यकर्म नहीं जानते। जागवोंके चमड़े और पेड़ोंके बकले ही इनके परिधेय वस्त्र हैं। वस्त्र और जाल गिकारकी चीजें हैं। वस्त्रके निरपर नोहेकी गांभी नहीं रहती; उसकी जगह पत्थर या जानवरकी हड्डो लगती है। पेड़के रस और घासफूसमें

ये लोग चटायीकी तरह एक प्रकारका कपड़ा बुन लेते हैं। पंख भयवा पशुकी पूंछ इनके शिरके भाभूपण हैं। छोटे छोटे शर्द्धों और घोषोंकी ही यह माला है। इनमें किसी किसी जातिके भादमी तरुण हीनेपर सामनेके ऊपरवाले दो दांतोंको तोड़ देते हैं। अङ्गकी और और शोभाओंके साथ इन दो दांतोंका न रहना भी एक बड़ी शोभा है। इनका और एक सम्प्रदाय है। उसमें सुन्नतकी रीति प्रचलित है।

बहामके सिवा ये लोग दाँव और कुदासको भी काममें लाते हैं। परन्तु ये सब लोहेके अस्त्र नहीं होते; वनैले पशुकी हड्डीसे बनाये जाते हैं। इन्हींसे युद्ध और शिकार होता है। इनके पास और एक विचित्र अस्त्र रहता है। उसका नाम है बुमिराङ्ग। वह एक टेढ़ी झकड़ीकी गांभी होता, परन्तु उसके बनाने का ढङ्ग बड़ा ही विचित्र है। सामने हीड़कर मारनेसे वह फिर पीछे लौट आता है। स्त्रियां मरे हुए जानवरोंके नखों और पेड़ोंके रेशोंसे जाल बुनती हैं। इन जानोंसे ये कङ्कर भादि वनैले पशु और मछलियां वगैरह पकड़ती हैं। समुद्रमें मछली पकड़नेके लिये छोटी नाव या डोंगी रहती है। आजकल असभ्य जातियोंकी संख्या धीरे धीरे कम होती जाती है।

यहांके भादमियोंके विवाहका कुछ ठीक नहीं है। किसीके एक और किसीके अनेक स्त्री हैं। किन्तु विवाहिता स्त्रियां प्रायः सभी सती होती हैं; तब ऐसा भी नहीं है, कि इनमें कोई असती नहीं निकलती। यदि कभी किसीका चरित्र खराब होता, तो वह जानसे मार डाली जाती है। परन्तु कुमारियों और विधवाओंका चरित्र-दोष उतना शुरुतर नहीं समझा जाता। युरोपीयों दुष्टोंने बड़ोंको व्यभिचारिणी बना डाला, इसके लिये बीच बीचमें खड़ाई हो जाती थी।

युरोपीयोंकी अष्ट्रेलिया आविष्कार किये तीन सौ वर्षसे कम नहीं हुआ। इसका कुछ ठीक नहीं, पहिले पहल यहाँ कौन आया था। उक्तमाया पन्तरीप आविष्कृत हुआ, पश्चिममें अमेरिकाके ऊपर

भी सभ्य लोगोंकी दृष्टि पड़ी थी। नये देश, नये हीप, ढंढनेके लिये चारो और युरोपीयोंके जहाज, झूटे। ऐसा प्रवाद है, १६०६ ई०में तरिन नामक कोई स्पेनवासी पेरूस अष्ट्रेलिया आया था। उसके बाद यवहीपसे डच लोग यहाँ पहुँचे। १६४२ ई०में तास्मान नामक एक डच अष्ट्रेलियाके नाना स्थानोंकी देख गया। उसीके नामके अनुसार अष्ट्रेलियाके दक्षिणकूलवर्ती हीपका नाम तास्मानिया हुआ है। १६८६ ई०में अंगरेज लोग पहिले पहल यहाँ आये थे। उसी वर्ष कप्तान विलियम दाम्पियार नामक एक समुद्री डाकू इसके उत्तरपश्चिम किनारे होकर लौट गया। दो वर्षके बाद अष्ट्रेलियाका विशेष अनुसन्धान करनेके लिये अंगरेजोंने दाम्पियारको यहाँ भेज दिया। १७६८में १७७७ ई०तक विख्यात नाविक कप्तान कूकने अष्ट्रेलियाकी चारो और समुद्रतटकी अच्छी तरह देखा था। १७८८ ई०में अंगरेज लोगोंने अष्ट्रेलियाके दक्षिण-पूर्व प्रदेश और निउ साउथ-वेल्समें अपराधियोंको निर्वासित करना प्रारम्भ किया। अंगरेज अपराधी जहाँ आकर रहते थे, उस स्थानका नाम जाचन् बन्दर पड़ा। आजकल वही बन्दर प्रसिद्ध सिदनी नगर हो गया है। १८०२ ई०में वान-दि-मान हीपमें भी अपराधी भेजे जाने लगे। कालक्रमसे निर्वासितोंके पुत्रपौवादिक स्वाधोन हो गये। वे दुष्ट लोगोंकी सन्तान हैं, यह परिचय देनेमें उन्हें बड़ी छुणा होती थी; इसीसे उन लोगोंने वान-दि-मान हीपका नाम तास्मानिया रख दिया। १८२५ ई०तक तास्मानिया निउ-साउथ-वेल्सके अधोन था, उसके बाद पृथक् हो गया।

१८३५ ई०में तास्मानियाके कुछ भादमियोंने समुद्रकी खाड़ी पार करके निउ-साउथ-वेल्सका दक्षिणी भूभाग अधिकार कर लिया। पहिले इस स्थानका नाम फिलिप बन्दर था। अब यह विक्टोरिया नामका एक पृथक् प्रदेश हो गया है। इसके प्रधान नगरका नाम मेलबोरन है। १८२७ ई०में एक अंगरेज वणिकसम्प्रदायने पश्चिम अष्ट्रेलिया प्रदेश संस्थापित किया था। इसके प्रधान नगरका नाम पार्थ है। दूसरे वणिक

सम्प्रदायने दक्षिण अष्ट्रेलिया प्रदेश संस्थापित किया, उसके प्रधान नगरको आदिलेड कहते हैं। १८५८ ई० में नव दक्षिण अष्ट्रेलियाका उत्तर भाग प्रथक् प्रदेश हो गया। यह अब क्वीन्सलैण्डके नामसे प्रसिद्ध है। त्रिमयेन् उसकी राजधानी है।

इन समय अष्ट्रेलियाके प्रदेश और प्रधान प्रधान नगर यह हैं,—

प्रदेश।	नगर।
क्वीन्सलैण्ड (पहला नाम मोर्तन)	त्रिसवेन, वीयामतन, मेरिथर्ग।
निउ-साउथ-वेल्स	सिडनी, पारामेत्ता और विन्दगर, लियरपुल, वायर्ट।

विक्टोरिया मेलबोरन, गिलड्र, वासारात।

दक्षिण अष्ट्रेलिया ... आदिलेड।

पश्चिम अष्ट्रेलिया ... पार्थ, क्रिमास्ल।

पर्वत—मैलपर्वत, लियरपुल-थेथी, अष्ट्रेलियाका पत्थ, इसका दूसरा नाम वरगड्ग पर्वत है; याम्पियन, पिरिनिस्, फ्रिन्दार्म, ट्रुयाटर्थेथी, मौसाराथेथी, विक्टोरिया पर्वत, दार्लिङ्गथेथी।

नरनो—हैकेसपरी, हण्टर, ड्रेटिङ्ग, त्रिसवेन; मरे और इसकी शाखा—माकोहरि, दार्लिङ्ग, लचलान, मरम्बिजी, टडममेरा, यरयर, सीयान, विक्टोरिया, पालघाट, फ्रिन्दार्म, गिलघाट, मिचेल, थैगरी, लिचघाट।

भोर—विक्टोरिया वा चलेकम्प्रेया, तोरैन्स, गेयार्डनार, एयार, होप।

चन्तरीप—युर्क, मेलविस्की, फ्लातारो, सन्दी, हाउ, विलसन, भोतवे, खेनसार, वायाम, लिउविल, उत्तर-पश्चिम-पन्तरीप, देविक, लन्दनदारो, देस।

उपनगर—पूर्वमें मेलबोरन्, त्रिन्सैस गार्कीतो, हालिफाथ, ब्रड साउण्ड, धार्वि, मोर्तन, माकोयारो वन्दर, डेफेन्स वन्दर, जासन वन्दर; दक्षिणमें पश्चिम वन्दर, क्रिलिप वन्दर, पोर्तलेण्ड, एनकाउण्डर, सेण्ट विन्सेण्ट, खेन्सार, हण्ट अष्ट्रेलियान वाइट, किङ्ग जार्जेका साउण्ड; पश्चिममें—फ्रिन्दार्म, जिपो-पाकी, केसिलस वन्दर, गार्क, एडमाउथ, किङ्ग

साउण्ड, कोनियार, पादमिरालटी, काम्ब्रिज, वाम-दिमान, पम्पेण्ड वन्दर; उत्तरमें—कासलरियाग, पारनूहेम, लेविस्की, कार्पेन्सारिया।

ताफनियन प्रदेशके प्रधान नगर होयार्त और लसे-एण्ड हैं।

उपनगर—हण्टर् म्थोयान् वन्दर, एरम, नरकोल्ड, इन प्रदेशमें दालरिम्पल वन्दर, देवी वन्दर, माकोयार वन्दर।

चन्तरीप—पिनार, दक्षिण चन्तरीप, दक्षिण-पश्चिम चन्तरीप, सोरेस, पश्चिम पट्टण्ड, प्रिम।

पर्वत—वेनलोमन्ड, वेलिण्टन, पश्चिमगिरि, काम्पेन थेथी, हम्बोल्ड।

नद—दावेण्ड, तमर, जर्दान।

अष्ट्रेलियाके उत्तर अंगकी बहुतसी जमीन खाली पड़ी है, आज भा अच्छी तरह नहीं बसा। एक तो उत्तर अंग यों ही गर्म है, उसपर जलका अभाव, इसीसे युरोपीयोंने वहां उपनिवेश नहीं बनाया। इस हीपकी दक्षिण दिशा ही अधिक समृद्धियालसी है।

अष्ट्रेलियामें ख.।दा क'चे पहाड़ नहीं हैं। पश्चिम ओर पूर्व किनारे दो पर्वतश्रेणियां हैं, उनमें पूर्व ओरकी पर्वतश्रेणी ८५० कोस लम्बी और १५०० फुट क'ची है। इसके पूर्व किनारेसे अनेक छोटी छोटी नदियां निकली हैं। वे पश्चिम ओर बहती हुईं अष्ट्रेलियाके मध्य भूमीको ओर चरमोंमें जा गिरी हैं। अष्ट्रेलियाका ऐसा आकार देख भूतत्वविद् पण्डित अनुमान करते हैं, कि पहले यहाँ समुद्र था। पीछे समुद्रगर्भमें चम्बत्पात हुआ, इसीसे क्रमगः मही उभर आयी है। परन्तु मध्यभागमें अभी तक पच्छी तरह मही नहीं निकली, इसीसे यह स्थान नार्को और भीर्लीमें भरा हुआ है।

अष्ट्रेलियाका जनबाहु गरीरके लिये गुणकर है। परन्तु हीप बहुत बड़ा होनेसे सब स्थानोंकी व्यवस्था एक ही नहीं है। उत्तर ओर मध्यभाग उष्ण, दक्षिण ओर न पतिशीत न उष्ण है। मध्यभागमें जलका अतिव्यय अभाव है। गर्मीके दिनोंमें वहाँ न चलती और भूमि तपकर तथा हो जाती है।

प्रमान्त-महासागरसे जलवायु उड़कर आता है, इसीसे उत्तर-पश्चिम धोर वर्षाकाल होता है। यहां वर्षाकाल अग्रहायणसे फाल्गुन तक रहता है। अट्टेलियाकी दक्षिण धोरकी समुद्रसे भी जलवायु उड़ कर आता है। परन्तु जंघे पहाड़ नहीं है, इसीसे वध किसी चीजमें अटक और जम जाता तथा जल नहीं होने पाता। हमारे देशके राजपूतानेमें जिस तरह कभा कभी थोड़ी वर्षा होती, यहां भी उसी तरह पानी बरसता है। दक्षिण अट्टेलियाके आदिलेद नगरमें हटिका परिमाण मैदानपर १५—२० इंचसे अधिक नहीं पड़ता। किन्तु विकटोरिया और निव-सावय-वेल्लसमें पर्वत है, इसीसे वहांकी हटिका परिमाण गढ़में ४४—४८ इंच पड़ता है। क्वीन्सलेण्डमें हटि ५० इंच होती है। फिर उत्तरमें बड़े बड़े पहाड़ हैं, इसीसे वहांका हटि परिमाण प्रायः ८० इंच है।

विकटोरिया प्रकृति स्थानोंकी कृतु यों है,—आधे भाद्रसे आधे अग्रहायण तक बसन्त, आधे अग्रहायणसे आधे फाल्गुन तक शीत, आधे फाल्गुनसे आधे ज्यैष्ठ्य तक गरम, आधे ज्यैष्ठ्यसे आधे भाद्रो तक शीत।

हम लोगोंके देशकी तरह अट्टेलियामें अधिक जीव जन्तु नहीं होते। वहाँके चौपायोंमें कङ्गरू ही प्रधान है। इसके आगेके पैर छोटे और पोछेके बड़े होते हैं। इसीमें दूसरे जन्तुओंकी तरह यह अच्छी तरह दौड़ नहीं सकता, किन्तु इसकी पूंछमें बहुत ताकत रहती है। दौड़नेकी आवश्यकता आ पड़नेपर यह पूछपर जोर देकर एक एकवार १८२० हाथ कूद सकता है। यदि कोई घोड़ेपर सवार होकर कङ्गरूका शिकार खसता, तो वह घोड़ेको टपकर भाग जाता है।

कङ्गरूके पेटके निचले हिस्से में एक घँसी होती है। छोटे छोटे बच्चे उसी घँसीमें छिपे रहते हैं। घँसीके ऊपर बसखलमें स्नान निकलता है। भूख लगनेपर बच्चे दहीमें बैठे ही अनायास दूध पिया करते हैं। दूसरे चौपायोंके पेटमें बच्चे होनेके बाद बच्चेकी नाड़ीके साथ मादिके फूलका संयोग रहता है। उसी फूलका राह माताके शरीरका रस बच्चेके देहमें आता, जिससे वह छटपुट होता है। कङ्गरूमें वह

बात नहीं है। इसके गर्भाशयमें एक घँसी रहती है, उसीसे बच्चेके भरण-पोषणका काम चलता है।

अट्टेलियामें और एक प्रकारका जन्तु होता है। इसे एकगुच्छ कहते हैं। गोमियादिके मलमूल त्याग करनेके पय भिन्न भिन्न हैं, परन्तु एकगुच्छमें ऐसा होता। यह पक्षियोंकी तरह एक ही राहसे मलमूल त्याग करता है। इसके स्नान नहीं होता। कङ्गरूकी तरह इसके पेटमें भी घँसी रहती है। इस घँसीसे आप ही दूध टपक पड़ता है। उसे ही बच्चे पीते हैं। इस हीपमें प्रायः ६८० प्रकारके पत्तों हैं। काकातुआ और तोते अनेक रङ्गके हैं। एम्बू नामक एक बड़ा भारो पत्ती है। यह देखनेमें घँसीकाके उट्टक पत्ती जंघा ही होता है। इस हीपमें ६३ किष्मके सांप हैं। उनमें ४२ किष्मके जहरीले हैं। पांच प्रकारके साँपोंका विष ठीक इस देशके काले जंघा ही मारामक है।

अट्टेलियामें गाय भेड़ आदिके चरने लायक बहुत जमीन खाली पड़ी है। पशुओंके चरने लायक ऐसी भूमि संघारमें और कहीं नहीं है। अंगरेज लोग दूसरे देशोंके जानवरोंको इस हीपमें ले भाये है। भेड़की पैदावार चारो धोर है। प्रति वर्ष यहाँसे बहुत सा पशु दूसरे देशोंके भेजा जाता है। भेड़का मांस भी यथेष्ट है। पहिले अट्टेलियामें इतना मांस होता, कि खाने न चुकता, बहुतसा नष्ट हो जाता था। अब जहाजमें एक प्रकारको कल बना दी गई है। उसमें कितने ही कमरे उत्तर-मेरु प्रदेश जैसे बहुत ही ठण्डे रहते हैं। उनमें मांस रख देनेसे बहुत दिनोंतक नष्ट नहीं होता। इसी सब कमरोंमें मांस भरकर रोजगारी लोग इङ्गलैण्ड भेज देते हैं, इससे प्रतिवर्ष बहुत लाभ होता है। अट्टेलियाके घोड़ेकी पैदावार भी प्रसिद्ध है। पहिले यहां घोड़े न थे। अंगरेजोंने यहां घोड़ा लाकर पैदा करने लगे। अब अट्टेलियासे अनेक स्थानोंको घोड़े भेजे जाते हैं। यहांकी नद-नदियोंमें भी अनेक प्रकारकी मछलियां छोड़ी-दोई गई हैं।

हवादिमें एककालितम् हल ही प्रधान है। इसके

पक्षोंमें व्याप्त तैला एक प्रकारका तेल बनता, जो यातरोगकी दवा है। इस पेड़का गोंद बहुत मंहगा विक्रता है। यहाँ भाऊके पेड़की छायासे बसनेमें रद्द दिया जाता है। बसुलकी तरह दो किण्वके पेड़ होते हैं। उनकी छायामें भी खूब रद्द रहता है। रद्दके लिये हरमास बहुत सी छाया इत्रलेण्ड भेजी जाती है। अब हम द्वीपमें गेहूँ, जव, मकई, मरसी, मटर, लख, आलू, नाना प्रकारकी शाकसब्जी और फल खूब पैदा होता है।

अष्ट्रेलियामें सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, कोयला, टीन आदि नाना प्रकारका धातु मिलता है। सोनेके कारण ही यह स्थान इतना मन्दिशाली है। १८५१ ई०में यहाँ सोनेकी खान निकली थी। खानिके निकलते ही लोग चपना चपना काम काज छोड़ सोना खानेके लिये दौड़े, जिससे कुछ दिनों तक अष्ट्रेलियामें बहुत खालवमी रही। १८५१ से १८८० ई० तक सर्वसमेत २८६०००००० रुपयेका सोना निकला था।

अष्ट्रेलिया और नयजीलन्ड अंगरेजोंके उपनिवेश है। यहाँके आदमी इस देशका शासन आपसी करते हैं। इनकी पार्लियेण्ट सभा है। सभाके सभ्योको ये लोग पाय ही मनोनीत करते हैं। अष्ट्रेलियाके प्रत्येक प्रदेशमें इन्फ्रान्टसे शासनकर्ता भेजे जाते हैं। शासनकर्ता महासभाके मत विरुद्ध कीये काम नहीं कर सकते। राज्यशासनप्रणाली ठीक इन्फ्रान्ट ही होती है। यहाँके प्रत्येक विभागकी सभा घुयफ् घुयफ् होती है। एक विभागके साथ दूसरे विभागका कोई सम्पर्क नहीं है। इन्फ्रान्टके साथ अष्ट्रेलियाका सम्बन्ध केवल नाममात्रका है। इन्फ्रान्ट यहाँके शासनकर्ता नियुक्त करे, और यदि कोई जाति इस स्थापण पर आक्रमण मारे, तो इन्फ्रान्ट बचानेकी दौड़ेगा। सम्पर्क यम इतना ही है। अष्ट्रेलियाके प्रत्येक विभागमें अपनी सेना घोड़ी ही है। मिवा इससे यहाँके सभी आदमी और और साहसी है। पहले अष्ट्रेलियाका पाय कुल भी न था, परन्तु अब यहाँकी व्यवस्था रैमी नहीं।

कहते हैं, अष्ट्रेलियाकी भूमि बहुत ही प्राचीन है। इसमें जहाज चलाने योग्य न तो कोई नदी और न भड़कनेवाला आग्नेयगिरि या बरफसे ढंका पर्वत ही विद्यमान है। जिस समय एशिया और युरोप जलमें मग्न था, उस समय भी यहाँ भूमि वर्तमान रही। यहाँ बहुत ऊँचे पर्वत नहीं, चारों ओर मदान-जैसा पड़ा है।

लोकसंख्या—अष्ट्रेलियामें प्रधानतः अंगरेज अंगरेज ही युरोपीय रहते हैं। अंगरेजोंको छोड़ दूसरे युरोपीय मकड़े पीछे मया तीनसे ज्यादा नहीं पड़ते। मनु १८०६ ई०में आदिम अधिवासियोंको छोड़ अष्ट्रेलियाकी लोकसंख्या ४१२०००० रही। मनु १८८१ ई०से दूसरे स्थानके अधिवासियोंका यहाँ आकर रहना रुक गया था, किन्तु अब कुछ-कुछ फिर जारी हो गया है।

रवा—पहले अष्ट्रेलियाकी रवा इन्फ्रान्ट पर ही निर्भर रही, किन्तु मनु १८८८-१८०२ ई०की घोषण-युद्धमें यहाँसे ६१० खंछासैक अग्नारोही जानेपर इस बातकी और लोगोंका ध्यान खिंचा। सिडनीमें जहाजोंका बड़ा बड़ा रहता, जो इस देशके इन्फ्रान्ट पहरा देता है। अब यहाँ लोग खूब फोजमें भरती होते हैं। आजकल जो विश्वव्यापी युद्ध चपता, उसमें अष्ट्रेलियाके योद्धाओंने घोरताके अनोखे उदाहरण देखा जगतको विस्मित कर दिया है।

शिक्षा—अष्ट्रेलियामें शिक्षाका अधिक प्रचार है। प्रत्येक राज्यके युवकको बसयती शिक्षा दी जाती है। मकड़े पीछे ८ आदमी अपढ़ हैं। स्कूलमें छात्रको बिना मूल्य या नाममात्र मूल्यपर शिक्षा मिलती है। मिडनी, मेलबोर्न, एडोलेड और होवर्टमें अच्छे-अच्छे विश्वविद्यालय वर्तमान हैं।

वणिज्य-व्यवसाय—कोई मया दो हजार जहाजोंमें चलता है। ऊन, चमड़ा, चरबी, मांस, मकहन, लकड़ी, गेहूँ, चाटा, फल, सोना, चाँदी, जस्ता, ताँबा तथा टीन यहाँसे बाहर भेजा और कपड़ा, बाफतनी, कल-पुर्जा, लोहा-मन्दि, शराब, भड़कनेवाली चीज, घेला, बीरा, किताब, कागज, पाय एवं तेल रंगाया जाता है।

२५२—अष्ट लेगियाकी समग्र रत्नव गवर्नमेण्टने ऋण लेकर बनाई है। कहीं छोटी और कहीं बड़ी रत्न चलती है। ऋणपर जितना ब्याज देना पड़ता, उससे कुछ अधिक लाभ हो जाता है। डाक और तारका भी खासा प्रबन्ध है।

भूमिका परिमाण		लोकसंख्या
वर्गमील	सन् १८०६ ई०	
निच साउथ वेन्स	३१०००	१३१००००
विक्टोरिया	०८८४	११२१०००
दक्षिण-अष्ट लेगिया	२०३१६०	३२१०००
कौन्सिल	१६८४८०	११४०००
पश्चिम-अष्ट लेगिया	२०३१६०	२०००००
तास्मानिया	२६२१५	१८००००
	२८०२८६	
नवगिनी	८००००	
	३०९२८०६	

अष्ट लेगिया—यह कुछ द्वीपसूत्र है। नव गिनी, अष्ट-लेगिया, तास्मानिया, नव-जिलान्द, नव-ग्रिटानिका, सोलेमान द्वीप, नव-हिन्डाइदिश, नव-कालिदोनिया, लयालटो द्वीप प्रभृति इसके अन्तर्गत हैं। ये सब ५०° दक्षिण अक्षांश एवं ११०° से १८०° पूर्व द्रावि-मांगके मध्यमें अवस्थित हैं। अष्ट लेगिया शब्दका अर्थ है—'दक्षिण एशिया सम्बन्धी' ऐसा नाम होनेका कारण यही है, ये सब द्वीप एशियाके दक्षिण प्रगन्त महासागरमें हैं।

अष्टि, अष्टि देखो।

अष्टिला, अष्टीला देखो।

अष्टिवत्, अष्टीवत् देखो।

अष्टीना (सं० स्त्री०) अष्टिसदृशं कठिनाश्मानं राति। र-क रस्य लकारः दीर्घः। १ गुल्मरोग विशेष, सरक अष्टयी, किसी किस्मका फोड़ा। अष्टीला प्रायः हथौड़ी-जैसी होती और नाभिस नीचे निकलती है। इसकी गांठ कड़ी रहती है। यह कठिन पदार्थ किसी-किसीके पेटमें घूमता फिरता और किसीके पेटमें टिका रहता है। इसकी ऊपरी ओर लम्बी रहती और टेढ़ेपरस किाँधत् उन्नत हो जाती है। इसकी चिकित्सा गुल्मरोग जैसी ही है। नव देखो।

२ वायुरोग विशेष, वातकी कोई बीमारी। ३ शर्त्तुलाकार पापाणखण्ड, गोल पत्थरका टुकड़ा। ४ फलवीजगर्भ, नाक, बीचका हिस्सा। ५ अंठली, गुठली। ६ भावात, ज्वरस।

अष्टीलिका, अष्टीला देखो।

अष्टीवत् (पु० स्त्री०) नास्ति अतिशयितमस्थि यस्मिन्, मतुप् प्रयो० निपातनात् सिद्धः। १ जातु, घुटना। २ श्कररोग विशेष, लिङ्ग बट जानेकी बीमारी।

अष्टीवान्, अष्टीवत् देखो।

अस (हिं० सर्व०) ऐसा, यह।

"अस विचारि जिय लागइ तासा।

निबधि न जगत सरीदर बला ॥" (तुलसी)

(वि०) २ ऐसा, इस प्रकारका।

"अस विचारि जिनके मन मासीं।

बाप सनीप मरीप न आसीं ॥" (तुलसी)

असंक्लिप्त (सं० त्रि०) सम्यक् धार्द्रं न होनेवाला, जो अक्छीतरह भोगा न हो।

असंघ्ना (सं० स्त्री०) नञ्-तत्। १ संघ्नाका अभाव, होशकी अदममौजूदगी, बेहोशी। (त्रि०) नञ्-वद्भूती०। २ संघ्नाग्न्य, ज्ञानरहित, जो इशारा कर न सकता हो।

असंयत् (वे० त्रि०) हृदयमें न चुभनेवाला, जो अक्छा न लगता हो।

असंयत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अवह, बन्धनग्न्य, जो बंधा न हो।

असंयतात्मन् (सं० त्रि०) अवहृद्दय, जिसके कावूर्में रुह न रहे।

असंयत्त (वै० त्रि०) स्थिरभावापन्न, जो ध्वराया न हो।

असंयुक्त (सं० त्रि०) नञ्-तत्। विशुक्त, लुदा, जो मिला न हो।

असंयुत, अशुक्त देखो।

असंयोग (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ संयोगका अभाव, विशानकी अदममौजूदगी, मेलका न होना। (त्रि०) नञ्-वद्भूती०। २ संयोगग्न्य, लुदा, जो मिला न हो।

असंख्य (सं० त्रि०) अन्वयगन्ध, शिरोक, जो घिरा न हो।

असंख्य (सं० त्रि०) नञ्-तत्। विभक्त, अमस्यह, अक्षय, शिखिलमिता, जो ठांक न घेठा हो।

असंख्यतरभूत (ये० त्रि०) पूर्ण वत्सर न रखा हुआ, जो पूरे साल रखा न हो। यह शब्द पवित्र अग्निका विशेषण है।

असंख्यतरभूतिन् (ये० त्रि०) पूर्ण वत्सर (पवित्र अग्निकी) न रखनेवाला, जो पूरे साल (पालिश पाक) न रखता हो।

असंविदान (सं० त्रि०) अप्रधान, मूर्ख, नासम्भ, गंवार। २ असंपन्न, जो धोमहार न हो।

असंहत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अनाहत, जो टंका न हो। २ ईषदाहत, जो अच्छीतरह टंका न हो।

असंख्यद्वित (सं० अद्य०) १ भटित्, फौरन्। २ अविश्वस्य, समयपर।

असंगय (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ सन्देहका अभाव, गककी अदममौजूदगी, खटकेका न रहना। (त्रि०) नास्ति संगयो यत्, नञ्-वद्भूमौ। २ सन्देह-शून्य, शैक, जिसे खटका न रहे। (अद्य०) निःसन्देह, विश्वासक।

असंशय (सं० त्रि०) नास्ति संशयः सम्यक् श्रवणं यत्, वद्भूमौ। १ संशयसे हीन, जो सुन न पड़ता हो। (पु०) २ संशयहीन अस्थित, जिस आक्षतमें सुन न सके। ३ दूरदेश, जो बात सुन न पड़ती हो। (अद्य०) ४ शिसुने, काममें न पड़नेसे।

असंशय्य (सं० अद्य०) शिसुने, सुनाई न देनेसे।

असंश्रित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ विभक्त, संश्लेष-शून्य, अक्षय, लुदा, नगाय न रखनेवाला, जो वाजिभ न हो। (पु०) २ अक्षय इत्यक् रक्षनेशसे अक्षयेश।

असंश्रु (सं० त्रि०) अद्यक्, असंयुत, विभक्त, निरीह, लुदा, सापरवा, जो अलग हो।

असंसर्ग (सं० पु०) अभावे नञ्-तत्। १ असंसर्गा अभाव, सायका न होना। (त्रि०) नञ्-वद्भूमौ। २ सम्बन्धशून्य, भिन्नमे श्वासी।

असंसर्गाद्य (सं० पु०) असंसर्गाद्य परस्परसम्बन्धा-भावस्य अद्यः। मौमांसकके मतानुसार प्राणहृदये परस्पर सम्बन्धाभावका बोध न होना। यथा,—यद् रजत है।

असंसृति (सं० स्त्री०) असंसर्गा अभाव, निरीहता, अनादरगी, सापरवा, नगाय न रखनेकी हालत।

असंसारी (सं० त्रि०) अशौकिक, अक्षय, निरीह, निरस्य, अनोखा, निराला, जो दुनियासे दूर रहता हो।

असंसिद्ध (सं० त्रि०) अपूर्ण, अक्षय, नातमाग, जो पूरे न पड़ा हो।

असंसृजित (ये० त्रि०) समूचा निगलजानेवाला, जो शेषवाशे नील जाता हो। रुद्रके धानकी सुति इस शब्दसे की जाती है।

असंसृति (सं० स्त्री०) जीवनके नव मार्ग, प्रत्या-गमनका अभाव, परमात्मामें लय जिन्दगीकी गयी चालका न पकड़ना।

असंसृष्ट (सं० त्रि०) नञ्-तत्। असंसृष्टित, लुदा, जो किसोके साथ न रहे।

असंसृक्त (सं० त्रि०) १ गर्भाधानादि संस्काररहित, जिसका गर्भाधानादि संस्कार न हुआ हो। २ अपरि-ष्कृत, जो साफ न किया गया हो। (पु०) ३ अप-शब्द, श्राव वात।

असंसृत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अपरिचित, जिससे परिचय अर्थात् ज्ञान अर्थात् न हो। २ उत्तम रूपमें जिसकी सुति को न गयी हो।

असंस्थान (सं० स्त्री०) १ संस्थानका अभाव, इति-शालती, अदममौजूदगी। २ विप्रय, धैर्यहीनी। ३ राहित्य, अज्ञानता, कमी।

असंस्थित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ परलोक न गया हुआ, जो इसी लोकमें हो। २ अक्षय, सुखशुभा।

असंस्थिति (सं० स्त्री०) १ विप्रय, धैर्यहीनी। अज्ञानता, कमी।

असंश्रुत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अक्षय न रखनेवाला, जो इकड़ा न हो। २ असंश्रुत, जो अलग न हो।

असंख्यैय (सं० पु०) उड्ड, प्रचण्ड, नाकाविल-
मुकाविला, जो मारा जा न सकता हो ।
असंहित (सं० त्रि०) वेदकी संहितामें सम्मिलित
न होनेवाला, जो संहितामें न हो ।
असकताना (हिं० क्लि०) ऐंड़ाना, जंभाई लेना,
जंघना, हिचकना, घालख या सुस्तीमें पड़ना ।
असकथा (हिं० पु०) यन्त्रविशेष, एक बीजार ।
इसे अङ्गुलद्वय विस्तृत और यथ परिमित घन लोहेसे
बनाते है । देखनेमें यह रौति-जैसा खुरखुरा होता
और तलवारके न्यानकी भीतरी लकड़ी साफ़ करनेमें
काम आता है ।
असकल (सं० त्रि०) असम्पूर्ण, अधूरा, जो पूरा
न हो ।
असकृत् (सं० अव्य०) नञ्-तत् । पौनःपुन्य, वार-
स्वार, अनेक बार ।
असकृत्ससाधि (सं० पु०) आहत ध्यान, आयतित
भावना, बारबार चित्तकी ईश्वरमें लय करना ।
असकृद्गर्भवास (सं० पु०) आहत जन्म, बारबार
की पैदायश ।
असक्त (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ शक्तिशून्य, जिसे
ताकत न रहे । २ सहशून्य, निराला, साथ न रहने-
वाला । ३ फलामिलापशून्य, सापरवा, जिने किसीकी
चाह न रहे ।
असक्थ, असक्थि (सं० त्रि०) नास्ति सक्थि यस्य,
वा पच् समा० । अङ्गोरी सकथन्तोः साङ्गन् ११ । पा ३।१।११।
ऊह्यन्त्य, वेजान्, जिसके जांच न रहे ।
असक्र (वै० त्रि०) १ बराबर बहनेवाला, जो छूल्ता
न हो । २ दूसरी जगह न जानेवाला ।
असक्राः (वै० स्त्री०) सम्-क्रम-विट् घृषो० समो
उन्तोऽपः, नञ्-तत् । अमाप्तपूर्वा, जो पहले न
मिली हो । "विष्टं न इषं पितृवससदाः" अक् १।१२८ । "असक्रासा
यावन्मौचमनपादिनीमसक्रा सज्जितेप्राप्तपूर्वाभिव्यर्थः ।" (देवराज) 'अस-
क्रामर्ष'कर्मणो' । निघं १।२८ ।
असखि (सं० पु०) न सखा, न टच् समा० ।
धनु न होनेवाला, जो मित्र न हो, शत्रु ।
असखिन्, असखि देखो ।

असगंध (हिं० पु०) अगन्धमा, एक पेड़ । यह सीधी
भाड़ी-जैसा होता है । इसका फल छोटा और गोल
रहता है । इसको मोटी जड़ दवाके लिये बाजारमें
बिकती है । अगन्धा देखो ।
असगोत्र (सं० त्रि०) न समान गोत्रमस्य, वा समा-
नस्य सः । भिन्नगोत्र, जो एकगोत्रका न हो ।
असगुन, अगुन देखो ।
असङ्ख्य (सं० पु०) विरोधे नञ्-तत् । १ सङ्ख्यका
अभाव, पेशवन्दीकी अदममौजूदगी । नञ्-वद्गुनी० ।
२ सङ्ख्यशून्य, जो पेशवन्द न हो ।
असङ्ख्यत् (सं० त्रि०) सङ्ख्य कियान न हुआ, जो
पहलेसे ठीक न ठहरा हो ।
असङ्खुक (सं० त्रि०) नञ्-तत् । स्थिरमान, जो
ठहरा हो ।
असङ्कीर्ण (सं० त्रि०) १ विशुद्ध, एकांत न किया
हुआ, खालिस, बेमेल । परस्पर विरुद्ध ।
असङ्कुल (त्रि०) एक दूसरेसे न मिलनेवाला, खुला ।
(पु०) १ विस्तीर्ण पद्य, खुली रहा ।
असङ्केत (सं० त्रि०) स्थिर न किया हुआ, जो माना
न गया हो ।
असङ्केतित (सं० त्रि०) अनिमन्त्रित, जो बुलाया न
गया हो ।
असङ्क्रान्तमास (सं० पु०) नञ्-तत् । शुक्लप्रति-
पदादि दर्शात्स चान्द्रमासके मध्य सूर्यकी संक्रमण-
शून्य, मलमास, अधिकमास ।
असङ्क्षेप (सं० पु०) नञ्-तत् । संक्षेप न होनेवाला,
जो घटा न हो ।
असङ्ग्र (सं० त्रि०) न संख्यम्, नञ्-तत् । १ असंख्य-
नीय, अगणनीय, जिसे गिन न सकें । २ न विद्यते
संख्या यस्य, बहुनी० । ३ इयत्ताशून्य, वैद्यमार । (पु०)
४ विष्णु ।
असङ्ग्रता (सं० स्त्री०) धानन्व, अमितता, वैदन्ति-
हार्द्र ।
असंख्यात (सं० त्रि०) इयत्ताशून्य, अनेक, बहुत,
वैद्यमार ।
असंख्येय (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ जिसकी

अस्या की जान सके, शिगमार। (पु०) २ शिव ।
 (२० स्त्री०) १ अगणित संख्या, बहुत बड़ी पदत ।
 ४ अमंख्य समारोह, शिगमार भीड़ ।
 असंख्येयगुण (सं० त्रि०) अगणित, शिगमार, जो
 गिना न जाये ।
 असंख्येयता (सं० स्त्री०) आनख्य, अपरिमाणत्व, अद्वैतित्व ।
 असङ्ग (सं० पु०) अभावे मञ्-तत् । १ सम्बन्धका
 अभाव, मगायका न रहना । २ गुणधानके पुत्रविशेष ।
 मञ्-बहुव्री० । ३ सम्बन्धशून्य, किसीमें वास्ता न
 रहनेवाला, ग्यारा । इच्छा, सुदा, अलग ।
 असङ्ग—एक महायानी बौद्ध और बौद्ध तन्त्रपद्धतिके
 प्रतिष्ठाता । महाभद्रके शिष्य पछले यह महीगामक
 और पेशावरके प्रसिद्ध तपस्वी थे । मन् ई०के
 ६ठे शताब्दमें इन्होंने अपने धर्मका मूलग्रन्थ 'योगा-
 चारभूमिशास्त्र' लिखा । चीनपरिव्राजक यूचन
 गुप्पद्धने ७वें शताब्दके आदिमें पेशावर जाके
 देखा, कि इनका मठ टूटा पड़ा था । असङ्गने
 भूतप्रेतोंको बुद्ध और अशोकितेश्वरका पूजक बता
 अपने मतावलम्बियों और बौद्धोंकी भगड़ा मिटाया ।
 किन्तु इनके अनुयायी बौद्ध धर्ममें कोई सम्बन्ध न
 रहते और दिन रात यन्त्र मन्त्र तन्त्र द्वारा सिद्धि
 टूटनेमें लगे रहते थे । तन्त्रपद्धति प्रचलित होनेसे
 बौद्ध मतका ज्ञान हुआ और ध्यानी विभूतियों एवं
 तान्त्रिक देवताओंकी प्रतिमा मठों तथा मन्दिरोंमें
 विराजने लगी । स्थिरमति, दिदमाग और धर्मकीर्ति
 असङ्गके शिष्य रहे । बहरी मूल्यके ८०० वर्ष पीछे
 इनका जन्म हुआ था । मन् ई०के ६ठे शताब्द
 विक्रमादित्य शिलादित्यके समय असङ्ग और इनका
 कनिष्ठ महोदर बहुबन्धुके आश्रयमें बौद्ध साहित्य फिर
 अमक सठा । असङ्ग योगाचारके प्रधान अध्यापक रहे ।
 इन्होंने बहुत दिनतक अयोध्यामें रहे, अन्तमें मगधके
 राजादहमें देह रक्षा किये थे ।
 असङ्गत (सं० त्रि०) मञ्-तत् । अमंख्य । अम-
 ख्यन् । अन्धाय, अगुणित, अगुण, सैठीक । असङ्गत
 वाक्य, जिस वाक्यमें परस्पर बात न मिले । असङ्गत
 वाक्य, जिस वाक्यमें गानके साथ वाजा न मिले ।

असङ्गति (सं० स्त्री०) अभावे मञ्-तत् । अङ्गति का
 अभाव, मगायका न होना ।
 असङ्गम (सं० पु०) अभावे मञ्-तत् । १ मङ्गमका
 अभाव, मेलनका न होना । (त्रि०) नादि अङ्गमो
 य्य, मञ्-बहुव्री० । अङ्गमशून्य, मेलनरहित, जो
 किसीमें मिलाता न हो ।
 असङ्गयत् (सं० त्रि०) असंयुक्त, जो मगा न हो ।
 असङ्गिन् (सं० त्रि०) मञ्-घिगुण्य यच्च गत्वम्
 मञ्-तत् । सम्बन्धशून्य, जो मगा न हो ।
 असङ्घट्टि (वे० त्रि०) १ अपने पूजा न करने-
 वालीको अपराधी बनाता हुआ, जो अपने दुश्मनोंपर
 इनजाम मगाता हो । २ मङ्गशून्य, जिसके दुश्मन
 न रहे ।
 असञ्छाया (सं० स्त्री०) कल्पित शाब्द, असन्धी
 शाब्द, जो डाल मही न हो ।
 असञ्छास्र (सं० स्त्री०) असत् असङ्घट्टियकत्वेन अनिट-
 प्रयोजकं शाब्दम्, कर्मधा० । हिन्दुमतमें बौद्धशास्त्र ।
 इसमें केवल असदर्थ ही प्रतिपादित हुआ है । अतएव
 यह वैदिक कर्मके विरुद्ध है और इसीमें इनका नाम
 असञ्छास्र हुआ है ।
 असञ्जन (सं० पु०) विरोधे मञ्-तत् । मञ्जन न
 होनेवाला, जो सञ्जन न हो । दुर्जन, पुराय पादमी ।
 असञ्जितात्मन् (सं० त्रि०) निर्दोष आत्मा रहने-
 वाला, जिसके दुर्हमें लगाय न रहे ।
 असद्विद्या (हिं० पु०) सर्षधियेय, पतिष्ठा मांय ।
 असकी आकृति लक्ष्मी और पीठ चित्तीदार होती है ।
 यह विपाक नहीं ठहरता ।
 असत्य (हिं० पु०) गर्त, गड़ा ।
 असत् (सं० त्रि०) अस्-शब्द अकारलोपः, ततो
 मञ्-तत् । १ मत् न होनेवाला, असन्धी, जो मका
 न हो । २ असाधु चरित्र । ३ निन्दित, बदनाम ।
 ४ दुष्टाचार, बटमाग । ५ अविद्यमान, जो शक्ति
 न हो । ६ अकिञ्चित्कर, नाधीन । ७ अन्ध,
 पीसीदा । ८ अनित्य, जो टिकता न हो । ९ निश्च-
 पाय्य निःशरदप निषेधरूपके प्रतीयमान अभावता-
 श्रय (अभाव) । १० अज्ञानिक । ११ अकृ, शिहरकता ।

१२ अश्वहासे किया जानेवाला, जो दिलसे न हो।
१३ निष्फल, बेफायदा। (पु०) न चिरं सन् विद्यमानः। १४ इन्द्र। एक इन्द्र चिरकाल नहीं रहते, इसीसे उन्हें असत् कहते हैं।

असत्कर्म (हिं०) असत्कर्मन् शब्दो।

असतायी (सं० स्त्री०) पापकर्म, दुराचार, इजाब, बदमाशी।

असती (सं० स्त्री०) व्यभिचारणी, नापाकदामन, जो शीरत बिगड़ गयी हो।

असतीसुत (सं० पु०) जारज, दासीपुत्र, तुफ्फेहराम, दोगला, जो बिगड़ी शीरतका लड़का हो।

असत्कर्मन् (सं० स्त्री०) असत् तत् कर्म चेति, कर्मधा०। १ वेदादि निषिद्ध कर्म, बुरा काम। (त्रि०) नास्ति सत्कर्मं यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ साधु आचार-शून्य, भला काम न करनेवाला।

असत्कर्मा (सं० स्त्री०) असत्कर्मन् टाप्। असाध्वी, कुलटा, नापाकदामन शीरत।

असत्कल्पना (सं० स्त्री०) १ असत्कर्म, भूठा काम, जो बात कभी न हो।

असत्कार (सं० पु०) १ अपमान, बेदज्जती। २ अपराध, लुभं, जिस बातसे मुकसान् पड़ूँगे।

असत्कृत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। पनाहत, आदर न पाये हुआ। २ बुरे तौरसे किया हुआ, जो अच्छी-तरह किया न गया हो।

असत्कृत्य (सं० त्रि०) पापकर्मा, बुरा काम करने-वाला।

असत्ख्याति (सं० स्त्री०) असतः सत्वशून्यस्य अनिर्वचनीयस्य ख्यातिर्ज्ञानम्, इ-तत्। अनिर्वचनीय-रजत प्रपञ्चका ज्ञान। जैसे सीपमें रजतज्ञान अनिर्वचनीय रूपसे उत्पन्न होता है। एवं परमत्रयमें जैसे जगत् अनिर्वचनीय रूपसे प्रतीयमान है। यह वेदान्तियोंका मत है। 'यह रजत है' ऐसा ज्ञान सभी लोगोंमें प्रसिद्ध और सभी लोगोंको स्वीकार्य है। अथच वह प्रकृत ज्ञान नहीं है। यह चार तरहका होता है—१ ख्याति, २ अन्वयाख्याति, ३ आत्म-ख्याति, ४ असत्ख्याति।

असत्ता (सं० स्त्री०) असतो भावः भावे तल्-टाप्। १ अविद्यमानता, न रहनेकी हालत, अस्तित्व, निस्ती। २ असाधुत्व, बदमाशी। ३ अव्यक्तता, नारास्ती, साफ न मालूम पड़नेकी हालत।

असत्त्व (सं० स्त्री०) सतो भावः भावे त्व नञ्-तत्। १ अविद्यमानत्व, निस्ती। २ अव्यक्तत्व, नारास्ती। ३ असाधुत्व, बदमाशी। सत्त्वं द्रव्यं नञ्-तत्। ४ द्रव्य न होनेवाला, जो द्रव्य न हो, क्रिया। सत्त्वं प्रकाशादि सम्पादकं प्रकृतेर्गुणभेदः ततो नञ्-तत्। ५ रजोगुण। ६ तमोगुण। सत्त्वं जन्तुमात्रं नञ्-तत्। ७ जो जन्तु न हो। (त्रि०) नास्ति सत्त्वं जन्तुर्धत्, नञ्-बहुव्री०। ८ जन्तुशून्य, जिस जगह जीव न हो। सत्त्वं सात्विकः गुणभेदः, नञ्-बहुव्री०। ९ सात्विक गुणरहित, जिसमें सात्विक गुण न हो। १० तामसिक गुणादियुक्त, क्रोधी, तामसी। सत्त्वमयैक्रियाकारित्वम्, नञ्-तत्। ११ प्रयोजनके अनुपयुक्त, कार्यके अयोग्य, जो कामके लायक न हो, बेकाम। १२ निर्वैल, कमजोर।

असत्पथ (सं० पु०) सन् पन्थाः अन् पूर्वश्चः पथामानचे। पा ३।३।०४। इति थः सत्पथः ततो नञ्-तत्। १ शास्त्रादि निषिद्ध कार्यादि, जिस कार्यके लिये शास्त्रमें निषेध रहे। २ मन्दपथ, खराब राह, कुपथ, कापथ, व्याध, दुरध, अपथ, कदधा, विपथ, कुत्सित्त्वर्षम्।

असत्परिग्रह (सं० पु०) परिग्रह्यते, परिग्रह—(यश्च हनिषितमथ। पा ३।१।५८) इति कर्मणि भूप् परिग्रहः परिजनादिः, ततो नञ्-तत्। "परिग्रहः परिग्रहे पत्वात् सौकारमूल्ययोः।" (विच) १ असत् परिवार, दुष्टपत्नी, बुरे बाल-बच्चे। २ मन्दपथका अवलम्बन, बुरी राहका पकडना। ३ अनुचितमूल्य, गैरवाजिब कीमत। (त्रि०) नास्ति सत् परिग्रहो यस्य, नञ्-बहुव्री०। ४ सत्परिवारशून्य, जिसके अच्छा परिवार न रहे। ५ सत्पत्नीरहित, जिसके भली शीरत न रहे। ६ असत्पञ्चायित, जो बुरी राहपर हो। ७ अन्याय मूल्ययुक्त, जो गैरवाजिब दाम ले चुका हो।

असत्पुत्र (सं० पु०) १ निःसन्तान पुत्र, जिसके औलाद न रहे। २ बुरा पुत्र, बदमाश लड़का।

असत्प्रतिपद (सं० पु०) अमतः निविद्यन् तित्नादेः असदभ्योऽगुटादिभ्यो वा प्रतिपदः । १ निविद्यद्द्रव्य पदप, न हने अपकृ चीज मेता, शास्त्रं सेनेकी मना क्रिया दृषा द्रव्य मेता । जैसे—तित्त, उभयमुषी गी, प्रेताय, चण्डालादिका अप । २ असत्पादमे प्राप्रय दारा दान पदप, जो दान प्राप्रय घुरे नोगीमे मेता ही ।

असत्प्रतिपाही (सं० पु०) असत्पादमे दान सेने-याना, जो घुरे नोगीमे अङ्गिम पाता ही ।

असत्य (सं० स्त्री०) न सत्यं विरोधे नञ-तत् ।

१ मिया, भूठ, भी सत्य न ही । २ मियाथाव्यादि, भूठ वात । (सि०) ३ मियायादी, भूठ बोलने-वामा । सीपमें रजत ज्ञान प्रथति मियाज्ञान है । ऐकामिक बाधशून्य ही सत्य उमसे खाली असत्य है । (स्त्री०) टाप, असत्या—संयु प्रजापतिकी एक भायां ।

असत्यता (सं० स्त्री०) मियात्व, माराप्ती, भूठापन ।

असत्यवाद (सं० पु०) मियावाद, भूठ वात ।

असत्यवादिन् (सं० सि०) भूठा, भूठ भाडुनेवाला ।

असत्यवादो, असत्यवादिन् देखी ।

असत्यमय (सं० सि०) असत्ये मियाभूते मया असत्यमानं यथ, गोकियो रूपमूर्जनय इति इत्था, बहुव्री० । १ मिया असत्यभियुक्त, भूठी प्रतिज्ञा करनीयाना । २ विद्यामघातक, दगावाज । ३ नीच, कमीना । ४ अत्यल्पमें स्थित, बनावटो । १ पायाके अत्यल्प अभिमानमे गुरु, जो रुहको कुछ भीर ममभ्रता ही । जैसे—असत्यदेहादिमें पायाभिमान असत्यमया होता, महिमिद ही असत्यमय कहा जाता है । हात्दीप्य उपनिषदमें यही पायाभिमान जिन अत्यंका हेतु होता, यह टटान्तके मचित प्रकाशित किया गया है ।

असत्संमर्ग (सं० पु०) दुष्टमार्ग, घुरी मोहवत ।

असत्सुम्न (सं० सि०) कुसुममें पड़ा हुआ, जो सुंदरमे लगता ही ।

असयन (सि० पु०) ज्ञायकम । यह मष्ट डिङ्गल भायामे लिया गया है ।

असद—(मिर्जा असद-रहा भी) एक विख्यात सुगम-

मान कवि । इनका जन्म पागरेमें हुआ था । दिल्लीके गीप बादशाह बहादुर गाहने इन्हें नवाबकी उपाधि दी । यह फारसी और उर्दू भाषामें बहुत कविता कर गये हैं । खलुसे कुछ पद्यने इन्होंने भारतवर्षके मोगल बादशाहीका इतिहास लिखना आरम्भ किया था । सन् १८५२ ई०की १० वर्षकी उम्रमें इनकी खलु हुई । इनके 'इन्सा' काव्यका सुमसमानोंमें बहुत आदर होता है । इनका साधारण नाम मिर्जा नोगा था ।

असद खूं—तुर्कीवंशोद्भव एक सम्भ्रांत व्यक्ति । इनके पिता ईरानराज गाह अत्यासके अत्याचारसे उक्तता अन्तस्थान छोड़कर भारतवर्ष चले आये थे । यहाँ नरजहाँकी एक कुटुम्ब-कन्याके साथ उनका विवाह और उन्हीके गर्भसे असदका जन्म हुआ । सम्राट् जहाँगीरने असदके पिताको लुप्तकार खाँकी उपाधि प्रदान की । सड़कपनमें असदको मोगल इलाहीम कहकर पुकारते और शाहजहाँ बहुत प्यार करते थे । उन्होंने आसफ् खाँ नामक वजीरकी सड़कमें व्याह इत दूरसे बख्शोंके पदपर निगूक कर दिया । १६०१ ई०की असद खाँ चारहजारी ममवदार हो गये और कुछ ही दिनोंके बाद सातहजारी वजीरका मघामयाग लाभ किया । बहादुरशाहके राजत्वकालमें वकीम मुल्तज्जा पद इन्हें मिला । उन्ही समय इनके पुत्रने भी पसीर-उल्-उमरा लुप्तकार खाँकी उपाधि पाई । फरफ-मियारके बादशाह होनेपर असद पदप्य त एवं अय-मानित हुए । इनका सड़का भी मारा गया था । उन्ही समयमें इन्होंने कैदखानेकी मामाना अयम्यामें पवन दिन मितये । १००१ ई०की ८० वर्षकी उम्रमें असदका खलु हुई ।

२ दूरमें भी एक असद खाँका नाम पाया जाता है । इनका अमल नाम खुशरू था । बखानमें जा और विद्यामघात कर इन्होंने मल्लिकार्जुनपर आर-मग किया और उनके १०४ मन्दिनोंकी तोड़ फोड़कर उन्ही जगह मसजिद बनवा दी । आदिमशाहने इन्हें माम्यगाम और शिलगाम दो स्थान जामोरे दिये थे ।

असदध्येट (सं० पु०) असत् निन्दितं निषिद्धं वा अधीते, असत्-अधि-इङ्-टच्। निन्दित शास्त्र अध्ययनकर्ता, असदध्ययनशास्त्री, वेदकी निज शाखा छोड़ अन्यशाखां पढ़नेमें अम उठानेवाला, जो खराब किताब पढ़ता हो। कण्ठशाखाध्ययनकारी व्यक्ति कौद्यमी शाखा पढ़नेसे असदध्येता या शाखारण्ड कहता है।

असदाचार (सं० पु०) न सदाचारः, अभावे नञ्-तत्। १ सुन्दर आचारका अभाव, बदचलनी, बुरी चाल। (त्रि०) नास्ति सदाचारो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ सदाचारग्रन्थ, बदचलन, जो अच्छी चाल चलता न हो।

असदाचारिन् (सं० त्रि०) सदाचारग्रन्थ, बदचलन, बुरा, खराब। (स्त्री०) असदाचारिणी।

असदि वृत्ती—एक विख्यात सुमलमान कवि। यह गजनीके सुलतान महमूदकी सभामें रहते और प्रसिद्ध कवि फिरदीमीके गुरु थे। सुलतान महमूदने इन्हें शाहनामा लिखनेके लिये कहा, परन्तु बुढ़ापेके कारण यह लिखनेपर राजी न हुए; तब फिरदीमीने शाहनामा लिखा और गजनीसे जानिके समय उसका अविशिष्ट अंग लिखनेके लिये इनसे अनुरोध किया। अरब द्वारा ईरान जयसे लेकर असदिने शेषतक शाहनामा लिख दिया। इसके सिवा इन्होंने फारसीमें और भी कई पुस्तक लिखे थे।

असदृश (सं० त्रि०) न सदृशम्, नञ्-तत्। असुक्त-रूप, अनुरूप, असमान, नाहमवार, बेमिसाल, जो मिलता न हो।

असदृशव्यवहारिन् (सं० त्रि०) असुक्तरूपसे व्यवहार करनेवाला, जो ठीक तौरसे पेश न आता हो।

असदृश (सं० पु०) असति अविद्यमानं वस्तुनि आप्रष्टः, ७-तत्। १ दुष्ट व्याज, बुरी चालकी। २ आप्तव्य, मनोलीष्य, तलब्वन मिजाजी, छिंदीरापन। ३-तत्। ३ मिथ्याज्ञान, झूठी समझ। ४ शुक्तिमें रजतज्ञान, रस्सीको सांधं समझना।

असदृशिन् (सं० त्रि०) दुष्ट व्याज बढ़ानेवाला, जो मरदूद फरेव फैलाता हो।

असदृशाह, अशरवह देवी।

असदृश (सं० त्रि०) विद्वत् चक्षुषिण्ये, बुरी आंखवाला।

असहेतु (सं० पु०) सन् व्यभिचारादि दोषरहितो हेतुः सहेतुः, विरोधे नञ्-तत्। न्यायशास्त्रप्रसिद्ध व्यभिचारादि दोषयुक्त हेतु, झूठा सबब, जो सूत सच्चा न हो। जैसे—धमवान् बहिः, बहिःहेतुक धूमविशिष्ट अर्थात् जहां अग्नि बहां धम भी रहता है। न्यायशास्त्रके मतसे यह असहेतु कारण है। क्योंकि तपाये हुये लोहेमें आग रहते भी धुआं देख नहीं पड़ता। न्यायमतसे हेतुदोष पांच प्रकारका होता है। यथा,—१ अनकान्त, २ विरुद्ध, ३ असिद्ध, ४ कालात्ययीपदिष्ट, ५ हंत्वाभास।

असद्यस् (सं० अथ०) न उषो दिन, न फौरन्, दूसरे दिन, देरसे।

असदवाद (सं० पु०) अनुपयुक्त सम्भाषण, कटपटांग वातचीत। किसी प्रकारकी सत्ताको स्वीकार न करना असदवाद कहाता है।

असद्भाव (सं० पु०) सती विद्यमानस्य भावः अभावे नञ्-तत्। १ अविद्यमान पदार्थमें विद्यमान अभिप्राय, न होनेवालो चीजको मान लेना। विरोधे नञ्-तत्। २ दुष्ट अभिप्राय, बुरा मतलब। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ दुष्ट अभिप्राययुक्त, जो बुरा मतलब रखता हो; चक्षित भाषामें अशय्यकी असद्भाव कहते हैं।

असद्वृत्ति (सं० स्त्री०) सती वेदादिरहिता वृत्तिः स्वभावः व्यवहारः वर्तनं विवरणं वा, अभावे नञ्-तत्। १ मन्दस्वभाव, बुरा मिजाज। २ सदाचारका अभाव, नकचलनकी अदममौजूदगी। ३ सद्व्यवहारका अभाव, अच्छोतरह पंथ न आनिकी हालत। ४ अस-स्त्रीविका, बुरी या झूठी रोजी। ५ मिथ्या विवरण, जो बयान् ठीक न हो। विरोधे नञ्-तत्। ६ निषिद्ध आचारादि, मरदूद काम। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ७ असत् स्वभावयुक्त, बदमिजाज। ८ मन्द व्यवहार-युक्त, जो बुरे तौरसे पेश आता हो। ९ मन्द वर्तन या जीविकायुक्त, बदभाष। १० मन्द विवरण-युक्त, बुरे बयानसे भरा।

अमट्त्वव्यहार (सं० पु०) मन् मापुः व्यवहारः, नञ्-
तत् । १ मन् व्यवहार, धाराव राह-रथ । नञ्-
बहुव्री० । १ द्रुट व्यवहारविगट, धुरे तौरसे वेग
पानेवासा ।

अमट्त्वव्यहारिन् (सं० त्रि०) कुमारगामी, धुरी
राह चलनेवासा ।

अमग (सं० पु०) अम-चेपे ष्य । १ पीतमान हृद्य,
अमनाका देह । अमर ईधो । यह कटु, उष्ण, मारक
तथा तिष्ठ होता धीर वात, गलदोष एव रक्तमण्डन-
को मिटाता है । (अम० ष्य) यह कुष्ठ, वीषर्ष, मित्र,
प्रमिद, गुच्छामि, कफ तथा रक्तपिच्छको दूर करता
धीर त्वथ, केन्द्र एव रसायन निकसता है । (अम० ष्य)
२ शीघ्रकट्टम । ३ यकहृद्य । ४ धीर । भाये ह्युट् ।
५ चेपथ, पेंथ-फाक । ६ निशाना, गोभी, धङ्गाका ।

अमनपरिष्का, अमनर्षी ईधो ।

अमनपर्षी (सं० स्त्री०) अमनव्य पीतमानस्य पर्ष-
मिव पर्षमप्याः, बहुव्री० गीरादि ङीप् । अपराजिता,
गोधी ।

अमनपुष्य (सं० पु०) पटिकधान्य जातिभेद, मठिया
धान ।

अमनपुष्पक, अमनपुष्प ईधो ।

अमना (सं० स्त्री०) १ पाण, गोनी, जो हृदियार
फेंककर मारा जाता धो । (ङि०) २ हृद्यविशेष,
कोई पेड़ । इसका काष्ठ कठोर होता धीर दृढ-
निर्माणमें लगता है । पत्र माघ-फाल्गुनमें झड़ता है ।
अमर ईधो ।

अमनादिगण (सं० पु०) गणविशेष, कोई द्वाप
दवा । इसमें अमन, निमिग, भूज, जेतवार, प्रकीर्य,
वादिर, वदर, भण्डी, शिंशपा, शिवशुद्धी, अमन्दतय,
तान, पनाग, औदगाक, गान, कमुक, धत्र, कुमिद्र,
वागकर्ष धीर अमरकण पड़ता है । इसमें शिवनसे
मित्र, कुष्ठ, लमि, कफ, पाण्डु, प्रमिद धीर निदरोग
दूर हो जाता है । (अम०)

अमनाज (ङि० पु०) धान, गुद्य, नङ्गाना ।

अमनायी (ङि० स्त्री०) प्रीति, मुदम्बत, मनी ।

अमनि (सं० त्रि०) अम-अनि । अेषक, फेंकनेवासा ।

अपादि० अतुरर्षी क । अमनिक, अेषकके निक-
टस्व देगादि ।

अमनो—गुह्यपदेगके अरदोयी त्रिसिका गांथ । यह खान
बहुत पुराना धीर गद्दाके तटपर बसता है । इसमें
अथ कोटिके अनेक कान्यकुल ब्राह्मण प्रतिष्ठित है ।

अमस्तति (सं० स्त्री०) अस्ततिधारा, अभावे नञ्-
तत् । १ धाराका अभाव, धीलादकी पदममौजूदगी ।
(त्रि०) अस्ततिविशेष, नञ्-बहुव्री० । २ धारारहित,
धे-धीलाद, जिसके यान-बधा न रहे ।

अमस्तान (सं० पु०) अस्तानः देवतहः, नञ्-तत् ।
१ देवतहमिव, देवदारको छोड़ दूसरी धीज । अस्तानो
विस्तारय अभावे नञ्-तत् । २ विस्तारका अभाव,
तन्नी । (त्रि०) नाम्नि मगतानो यत्, नञ्-बहुव्री० ।
३ देवतहरहित, देवदारसे द्वामी । ४ विस्तारशून्य,
तद्वा । ५ अंगरहित, ज्ञापसद, धे-धीलाद, जिसके
यान-बधा न रहे ।

अमस्ताप (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ अस्तापका
अभाव, तकनीफकी पदममौजूदगी । (त्रि०) नञ्-
बहुव्री० । २ अस्तापरहित, तकनीक न पानेवासा ।
३ अस्ताप न पड़नेवासा, जो तकनीक देता न हो ।
अमस्तुट (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ अस्तोपशून्य,
नास्तुग, नाराज । २ अधिक धन पाने भी धनाभिन्नाप
रखनेवासा, जो ध्यादा दीनता शामिल कर भी उमके
लिये सरता हो ।

अमस्तुटि (सं० स्त्री०) १ अस्तोपका अभाव, नास्तुगी
नाराजी । २ अद्यति, आद्यता न रहनेकी शान्त ।
३ धन रहने भी धनके लिये सरता, मालथ ।

अमस्तोप (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ अस्तोपका
अभाव, क्लायतकी पदममौजूदगी । २ अस्तिका अभाव,
अधैर्य, अकारारी । ३ अमस्तोपता, नास्तुगी । (त्रि०)
नञ्-बहुव्री० । ४ अस्तोपशून्य, जिसे क्लायत न रहे ।
५ अधिक धनाभिन्नायी, ध्यादा दीनता आहनेवासा ।

अमस्तोयी (सं० त्रि०) अस्तोप न रखनेवासा, जिसे
क्लायत न रहे ।

असन्दिग्ध (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ अन्देहमें अविषय,
जिस विषयमें कोई अन्देह न रहे । २ अन्देहशून्य,

शकमें खाली। ३ स्पष्ट, साफ। ४ प्रकट, जाहिर।
 ५ विश्वासी, एतवारो। (अर्थ०) निःसन्देह, वेगक।
असन्दित (वै० त्रि०) सम-दो अवखण्डने कर्मणि-त्त्वं
 (यत्किञ्चित् इत्यादि। पा० २.४।४०) इति इत्वं, नञ्-तत्।
 १ बन्धनशून्य, जो बंधा न हो। २ अनिश्च, जो दका न
 हो। "एतदसन्दितः" (शब्द० ४।४।२) 'असन्दिनः परेनिबन्धः।' (भाष्य)
असन्दिन् (वै० त्रि०) सन्दा बन्धनमस्त्यस्य, इनि,
 नञ्-तत्। बन्धनशून्य, जो बंधा न हो। "असन्दिन-
 सन्दिन्।" (शब्द० ५।१०२।१४।)
असन्दिष्ट (सं० त्रि०) समाचार न पाये हुआ,
 वैखर, जिसको हाल न मिला हो।
असम्भान (सं० स्त्री०) वियोग, विभेद, फर्क,
 अलाहदगी, सुफारकृत, विद्या।
असन्धि (सं० पुं०) सन्धिका अभाव, पैवस्तगीकी
 अदसमौजूदगी, सटासटी, गमचा।
असन्धित (सं० त्रि०) बन्धनशून्य, स्वतन्त्र, आजाद,
 खुला हुआ।
असन्धेय (सं० त्रि०) सन्धि करनेके अयोग्य, जो
 सुलह करनेके काबिल न हो।
असन्न (वै० त्रि०) व्याकुल, वैधेन, जिसे धाराम न मिले।
असन्नद (सं० त्रि०) सन्नदः स्वकार्ये चमः, नञ्-तत्।
 १ अतृप्त, जो तैयार न हो। २ दृष्ट, गर्वित, अह-
 ह्वारी, घमण्डी, जो अपनेको बहुत लगाता हो।
 ३ परिष्ठताभिमानो, जो यथार्थ परिष्ठत न होते भी
 मन ही मन अपनेको परिष्ठत समझता हो। ४ निरख,
 वैहयियार। ५ उत्पन्न, पैदा।
असन्निकर्ष (सं० पुं०) सन्निकर्षका अभाव, अर्थक्य,
 दूरता, दूरी, फासिला।
असन्निल (सं० त्रि०) १ अनुभवमें न आया हुआ,
 नामालूम, जो जाहिर न हो। २ दूरस्थ, जो
 नजदोक न हो।
असन्नित (सं० त्रि०) दूरस्थ, जो पास न हो।
असन्न्यस्त (सं० त्रि०) सन्न्यास ग्रहण न किये हुआ,
 जो दुनियाको तर्क कर न चुका हो।
असम्भान (सं० पुं०) अपमान, वै-दृष्टी, वै-पदवी,
 गुस्ताखी, थोखी, ठिठायी।

असपन्न (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। १ शत्रु न
 होनेवाला, जो दुश्मन न हो। २ मित्र, दोस्त। नञ्-
 बहुव्री०। ३ शत्रुशून्य, दुश्मनसे खाली। ४ आत्ममण
 किया न गया, जो हमलसे बचा हो। (ज्ञो०)
 ५ शान्ति, सुलह, जिस हालतमें भगड़े न पड़े।
असपिण्ड (सं० पुं०-स्त्री०) साक्षात् भोक्तृत्वेन दाह-
 त्वेन समानः पिण्डः देहारभकावयवमेदस्य येषां वा
 ते सपिण्डाः, नञ्-तत्। समम पुरुष पर्यन्त पुरुष
 और स्त्री।
असबन्धु (वै० त्रि०) असम्बन्धीय, रिश्ता न रखने-
 वाला।
असवर्ग (फा० पुं०) खोरासान मुल्ककी एक बड़ी
 घास। इसमें पीत वा खर्णोभ पुष्प पाते हैं। पञ्चाशो
 इसके शुक पुष्प अफगानोंसे खरीद रिधमके रङ्गमें
 छोड़ते हैं।
असवाव (अ० पुं०) द्रव्य, चीज, सामान, लवाजिमा,
 अटाला।
असभयो (हिं० स्त्री०) असभ्यता, नाशायस्तगी।
असभ्य (सं० त्रि०) सभायां साधुः, साधु-य नञ्-तत्।
 अभावात्। पा० ३।४।१०२। सभाके अनुपयुक्त, जो मह-
 फिलके काबिल न हो। २ असामाजिक, बैठकसे
 तालुक न रखनेवाला। ३ खल, दुष्ट, अशिष्ट, गंवार,
 उजळ, नाशायस्ता।
असभ्यता (सं० स्त्री०) सभ्यताका अभाव, असामा-
 जिकता, खलता, नाशायस्तगी, वैद्ददगी।
असम (सं० त्रि०) नास्ति समो यस्य। १ अतुल्य,
 वैमिमाल, अपनी बराबरी न रखनेवाला। २ असदृश,
 नाहमयार, जो बराबर न हो। समः युग्मसदृशान्वितः
 तद्वन्नम्। ३ विषम, ताक, वैजोड़। मैपादि, हादस्य-
 राशिके मध्य मैप, मिथ्यन, सिंघ, तुला, घुं, और कुम्भ
 विषम है। (पुं०) ४ दुहविशेष। ५ काव्यालङ्कार
 विशेष। इसमें उपमानकी अप्राप्ति देखायी जाती है।
असमञ्ज (सं० स्त्री०) १ अप्रत्यक्ष, गैबत, जिस
 हालतमें देख न सकें। २ अनुमित्यादि ज्ञान, कयास,
 फर्क। (त्रि०) अर्थ आदि अच्। ४ अप्रत्यक्षका
 विषयीभूत, गैर जाजिर, गायब, जो देख न पड़ता हो।

असद्व्यवहार (सं० पु०) सन् साधुः व्यवहारः, नञ्-तत् । १ मन्द व्यवहार, खराब राह-रख। नञ्-बहुव्री० । २ दुष्ट व्यवहारविशिष्ट, दुरी तौरसे पेश आनेवाला ।

असद्व्यवहारिन् (सं० त्रि०) कुमार्गगामी, दुरी राह चलनेवाला ।

असन (सं० पु०) अम-क्षेपे ल्यु । १ पीतशाल वृक्ष, असनाका पेड़। असन देखो। यह कटु, उष्ण, सारक तथा तिक्त होता और वात, गलदोष एव रक्तमण्डल-को मिटाता है। (राजनिघण्टु) यह कुष्ठ, वीसर्प, शिबल, प्रमेह, गुच्छकामि, कफ तथा रक्तपित्तको दूर करता और त्वच्य, केश्य एव रसायन निकलता है। (भावप्रकाश) २ जीवकद्रुम । ३ वकहृत् । ४ वीर । भावे ल्युट् । ५ क्षेपण, फेंक-फांक । ६ निशाना, गोली, धड़ाका ।

असनपर्णिका, असनपर्णी देखो ।

असनपर्णी (सं० स्त्री०) असनस्य पीतशालस्य पर्ण-मिव पर्णमस्याः, बहुव्री० गौरादि ङीप् । अपराजिता, गोधी ।

असनपुष्प (सं० पु०) घटिकाधान्य जातिभेद, सठिया धान ।

असनपुष्पक, असनपुष्प देखो ।

असना (वै० स्त्री०) १ वाण, गोली, जो हथियार फेंककर मारा जाता हो। (हिं०) २ वृक्षविशेष, कोई पेड़। इसका काष्ठ कठोर होता और बृह-निर्माणमें लगता है। पत्र माघ-फाल्गुनमें झड़ता है। असन देखो ।

असनादिगण (सं० पु०) गणविशेष, कोई खास देवा । इसमें असन, तिनिय, भूज, श्वेतवाह, प्रकीर्य, खदिर, कदर, भण्डो, शिशपा, मेपशुद्धी, चन्दनत्रय, ताल, पलाश, जोड़शाक, शाल, क्रमुक, धव, कुलिङ्ग, छागकर्ण और अश्वकर्ण पड़ता है। इसके सेवनसे त्रिबल, कुष्ठ, क्षमि, कफ, पाण्डु, प्रमेह और मेदरोग दूर हो जाता है। (अष्टाद)

असनान (हिं० पु०) स्रान, गुल्ल, नहाना ।

असनायी (हिं० स्त्री०) प्रीति, मुहब्बत, लगी ।

असनि (सं० त्रि०) अस-अनि। क्षेपक, फेंकनेवाला ।

अष्ट्यादि० चतुरर्थी क । असनिक, क्षेपकके निक-टस्थ देशादि ।

असनी—युक्तप्रदेशके हरदोयी जिल्लाका गांव। यह स्थान बहुत पुराना और गङ्गाके तटपर बसता है। इसमें उच्च कोटिके अनेक कान्यकुल ब्राह्मण प्रतिष्ठित हैं।

असन्तति (सं० स्त्री०) सन्ततिर्धारा, अभावे नञ्-तत् । १ धाराका अभाव, भौलादकी अदममौजूदगी। (त्रि०) सन्ततिवैशद्य, नञ्-बहुव्री० । २ धारारहित, वै-भौलाद, जिसके बाल-बच्चा न रहे ।

असन्तान (सं० पु०) सन्तानः देवतरः, नञ्-तत् । १ देवतरभिन, देवदारको छोड़ दूसरी चीज। सन्तानो विस्तारय अभावे नञ्-तत् । २ विस्तारका अभाव, तङ्गी। (त्रि०) नास्ति सन्तानो यत्, नञ्-बहुव्री० । ३ देवतररहित, देवदारसे खाली। ४ विस्तारशून्य, तङ्ग। ५ वंशरहित, लावलद, वै-भौलाद, जिसके बाल-बच्चा न रहे ।

असन्ताप (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ सन्तापका अभाव, तकलीफकी अदममौजूदगी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ सन्तापरहित, तकलीफ न पानेवाला । ३ सन्ताप न पहुंचानेवाला, जो तकलीफ देता न हो । असन्तुष्ट (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ सन्तोषशून्य, नाखुश, नाराज़ । २ अधिक धन पाते भी धनाभिलाष रखनेवाला, जो ज्येदा दौलत हासिल कर भी उसके लिये मरता हो ।

असन्तुष्टि (सं० स्त्री०) १ सन्तोषका अभाव, नाखुशी नाराज़ी । २ अहसि, आसुदा न रहनेकी हालत । ३ धन रहते भी धनके लिये मरना, लालच ।

असन्तोष (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ सन्तोषका अभाव, कनायतकी अदममौजूदगी । २ अहसि अभाव, अधैर्य, वैकरारी । ३ अप्रसन्नता, नाखुशी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । ४ सन्तोषशून्य, जिसे कनायत न रहे । ५ अधिक धनाभिलाषी, ज्येदा दौलत चाहनेवाला ।

असन्तोषी (सं० त्रि०) सन्तोष न रखनेवाला, जिसे कनायत न रहे ।

असन्दिग्ध (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ सन्देहसे श्रविषय, जिस विषयमें कोई सन्देह न रहे । २ सन्देहशून्य,

गकसे खाली। ३ स्रष्ट, साफ। ४ प्रकट, जाहिर।
 ५ विप्लासी, एतवारी। (अर्थ०) निःसन्देह, बेगक।
 असन्दित (वै० त्रि०) सम-दो भवखण्डने कर्मणि-ज्ञ
 (यतिवति इत्यादि। पा० ३।१४०) इति इत्वं, नञ्-त्त्वा।
 १ बन्धनशून्य, जो बंधा न हो। २ अनिश्च, जो तका न
 हो। "पतञ्जलसन्दिताः" (अक्ष० ४।१२) "असन्दिताः परैरनिश्चिताः" (साम्य)
 असन्दिन् (वै० त्रि०) सन्दा बन्धनमस्तप्रत्यय, इनि,
 नञ्-त्त्वा। बन्धनशून्य, जो बंधा न हो। "अनिश्चिताव-
 मन्दिन्"। (अक्ष० ५।१०२।१४।)
 असन्दिष्ट (सं० त्रि०) समाचार न पाये हुआ,
 वैख्यत्र, जिसको हाल न मिला हो।
 असन्धान (सं० स्त्री०) वियोग, विशेष, विभेद, फर्क,
 पलाहदगी, सुफारकत, द्विधा।
 असन्धि (सं० पुं०) सन्धिका अभाव, पैवस्तगीकी
 अदममीजूदगी, सटासटी, गमचा।
 असन्धित (सं० त्रि०) बन्धनशून्य, स्वतन्त्र, आजाद,
 खुला हुआ।
 असन्धेय (सं० त्रि०) सन्धि करनेके अयोग्य, जो
 सुलभ करनेके काबिल न हो।
 असन्न (वै० त्रि०) व्याकुल, वैचैन, जिसे आराम न मिले।
 असन्नद (सं० त्रि०) सन्नदः स्वकार्ये अभावः, नञ्-त्त्वा।
 १ अतत्पर, जो तैयार न हो। २ दृप्त, गर्वित, घट-
 डारी, घमण्डी, जो अपनेको बहुत लगता हो।
 ३ पण्डिताभिमानी, जो यथार्थ पण्डित न होते भी
 मन ही मन अपनेको पण्डित समझता हो। ४ निरस्र,
 वैद्यधियार। ५ उत्पन्न, पैदा।
 असन्निकर्ष (सं० पुं०) सन्निकर्षका अभाव, प्रथकत्व,
 दूरता, दूरी, फासिला।
 सन्निकृष्ट (सं० त्रि०) १ अतुभवर्मे न पाया हुआ,
 नामालूम, जो जाहिर न हो। २ दूरस्थ, जो
 नज्दोक न हो।
 असन्निकृत (सं० त्रि०) दूरस्थ, जो पास न हो।
 असन्न्यस्त (सं० त्रि०) सत्यास ग्रहण न किये हुआ,
 जो दुनियाको तर्क कर न चुका हो।
 असन्धान (सं० पुं०) अपमान, वै-द्वज्जती, वै-अदबी,
 गुस्ताखी, गोखी, डिठायी।

असपन्न (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-त्त्वा। १ यत्र न
 होनेवाला, जो दुश्मन न हो। २ भित्त, दोस्त। नञ्-
 बहुव्री०। ३ यत्रशून्य, दुश्मनसे खाली। ४ प्राकमण्य
 किया न गया, जो हमलसे बचा हो। (स्त्री०)
 ५ शान्ति, सुलभ, जिस हालतमें भगड़े न पड़े।
 असपिण्ड (सं० पुं०-स्त्री०) साचात् भोजित्वेन दाट-
 त्वेन समानः पिण्डः देहारभक्तावयवमेदश्च येषां वा
 ते सपिण्डाः, नञ्-त्त्वा। समम पुरुष पर्यन्त पुरुष
 और स्त्री।
 असवशु (वै० त्रि०) असम्बन्धीय, रिश्ता न रखने-
 वाला।
 असवर्ग (फ्रा० पुं०) खोरासान सुस्ककी एक बड़ी
 घास। इसमें पौत वा खर्णांभ पुष्प भाते हैं। पञ्चावी
 इसके शुष्क पुष्प अफगानोंसे खरीद रखनेके रङ्गमें
 कोड़ते हैं।
 असवाव (अ० पुं०) द्रव्य, चौज, सामान, लवाजिमा,
 अठाला।
 असभयो (हिं० स्त्री०) असभ्यता, नाशायस्तगी।
 असभ्य (सं० त्रि०) सभायां साधुः, साधु-य नञ्-त्त्वा।
 सभायायः। पा० ४।१११।२। सभाके अनुपपुङ्ग, जो मह-
 फिलके काबिल न हो। २ असामाजिक, बैठकसे
 ताकुक, न रखनेवाला। ३ खल, दुष्ट, अशिष्ट, गंवार,
 लज्ज, नाशायस्ता।
 असभ्यता (सं० स्त्री०) सभ्यताका अभाव, असामा-
 जिकता, खलता, नाशायस्तगी, वैहदगी।
 असम (सं० त्रि०) नास्ति समो यस्य। १ अतुल्य,
 धमिसाल, अपनी बराबरी न रखनेवाला। २ असदृश,
 नासमधार, जो बराबर न हो। समः युग्मसङ्गान्वितः
 तद्विभक्तम्। ३ विषम, ताक, वैजोड़। मेपादि, हादश-
 राशिके मध्य मेप, मिथुन, सिंह, तुला, धनु, और कुम्भ
 विषम है। (पुं०) ४ बृहद्विशेष। ५ काव्यालङ्कार
 विशेष। इसमें उपमानकी अपासि देखायी जाती है।
 असमच्च (सं० स्त्री०) १ असत्यच, गैयत, जिस
 हालतमें देख न सके। २ अतुमित्यादि ज्ञान, कयास,
 फर्ज। (त्रि०) अर्थ आदि अच्। ४ अत्यचका
 विधयीभूत, गैर हाजिर, गायब, जो देख न पड़ता हो।

असमग्र (सं० त्रि०) नञ्-तत्। असम्पूर्णं, नातमाम्, जो पूरा न हो।

असमञ्ज, असमञ्जश्चि०।

असमञ्जस्—इच्छाकुर्वन्शके सगर राजाका व्येठपुत्र। इनकी माताका केशिनी और पुत्रका नाम अंशुमान् रहा। यह वास्यकालमें अतिशय दुष्ट थे। पुर-वामिथीको सदा पीड़ित रखनेपर सगर राजाने इन्हें नगरसे निकाल दिया था।

असमञ्जस (सं० पु०) ममञ्जसं युक्तियुक्तम्, नञ्-तत्। १ असङ्गत वा अनुपयुक्त विषय, खँचतान, सकृप, सोच-विचार। (त्रि०) २ असदृश, अतुल्य, गैरसुशावेह, नासुवाफिक, जो मिलता न हो। (अव्य०) ३ असङ्गत भावमें, नासुवाफिक तौरपर।

असमत (अ० स्त्री०) सतीत्व, पाकदामानी।

असमद् (६० स्त्री०) सन्धि, सम्मेलन, सुलह, मेल, लड़ाई न रहनेको हालत।

असमद् (सं० त्रि०) सह मद्देन गर्वेण वर्तते समदः स नास्ति यस्य यत् वा। १ गर्वरहित, फखर न करनेवाला। २ कलहहीन, मिलनसार। ३ विरोध-शून्य, दुश्मनी न रखनेवाला।

असमन (सं० त्रि०) न समं सह नीयते भोजनादौ; सम-नी बाहु० कर्मणि ड, नञ्-तत्। १ विभिन्नवर्ण, गैरजात, जो साथ बैठकर खा न सकता हो। २ अतुल्य, नासुवाफिक। ३ विभिन्न दिक् गमनशाली, इधर-उधर भटकनेवाला।

असमनेत्र (सं० पु०) असमानि अयुरमानि नेत्रा-ण्यस्य। १ त्रिनेत्र शिव। असमलोचनाटि शब्द भी इस अर्थमें आ सकता है। (स्त्री०) असमञ्च तत् नेत्रञ्चेति, कर्मधा०। २ कपालका तृतीय नेत्र, मध्येमें पोषीदा रहनेवाली तीसरी आंख। (त्रि०) ३ सम नेत्र न रखनेवाला, जिसके लुप्त चक्षु न रहे।

असमय (सं० पु०) अप्राग्वह्ये नञ्-तत्। १ अप-शस्तकाल, नादुस्त वक्तु। २ दुष्टकाल, बुरा वक्तु। ३ अनुपयुक्तता, नामाकूलियत, वै-अन्दाजगी।

असमर्थ (सं० त्रि०) असदृश रथ रखनेवाला, जिसके शालवाव गाड़ी रहे।

असमर्थ (सं० त्रि०) समर्थं शक्तम्, नञ्-तत्। १ अशक्त, कामजीर। २ दुर्बल, लागर, जो मोटा न हो। ३ कार्यमें अक्षम, काम कर न सकनेवाला। समर्थः सद्गतार्थः। ४ असद्गतार्थ, वाजिब मानी न रखनेवाला। ५ अयोग्य, असम्पूर्ण, नाकूविल, नातमाम, जो लायक, या पूरा न हो।

असमर्थसमास (सं० पु०) कर्मधा०। जिसके साथ जिसका अन्वय लग सके, उसे छोड़ दूसरे पदसे समासका होना। जैसे—'याह' न भुङ्क्ते। यहाँ भुज धातुके साथ नञ्का अन्वय होना आवश्यक है; किन्तु समास करनेसे अयाहभोजो रूप बनता, जिसमें नञ्का अन्वय याहके साथ लगता है।

असमर्पण (सं० स्त्री०) अमोक्षण, प्रवितरण, अदम-सुपुदंगी, नाहवालगी, दूसरेकी किसी चीजका न सौंपना।

असमर्पित (सं० त्रि०) वितरण न किया हुआ, जो सौंपा न गया हो।

असमवाण (सं० पु०) असमा अयुरमा (पञ्च) वाणा यस्य, बहुव्री०। कन्दर्प, पञ्चशर, कामदेव।

असमवायिकारण (सं० स्त्री०) समवेति सम्-भव-इण्-णिनि, नञ्-तत्, असमवायि च यत् कारणञ्चेति कर्मधा०। आकस्मिक हेतु, नागहानी सबब। न्याय-मतसे द्रव्य समवायिकारण ठहरता, सिवा उसके द्रव्यस्थित गुणादि असमवायिकारण होता है। जैसे तन्तु वस्त्रका समवायी और उसका संयोग असमवायी कारण है। वैशेषिकमें कार्यसे नित्यसम्बन्ध न रखनेवाली को असमवायी-कारण कहते हैं। जैसे हवाके भोंकिने फलका गिरना। ऐसे स्थलमें फल हवाके भोंकिसे ही नहीं, पत्थर मारनेसे भी गिर सकता है।

असमवायित्व (सं० स्त्री०) अनिच्छद् वस्तुकी स्थिति, गैर वातिनी चीजकी हालत।

असमवायिन् (सं० पु०) समवेति, सम्-भव-इण्-णिनि, ततो नञ्-तत्। १ असम्बन्ध, विसिलसिला। २ अमिलित, जो मिला न हो। ३ न्यायोक्त समवाय सम्बन्धशून्य, जिसमें मन्तिके वातिनी तात्तुक न रहे।

असमहत्त (सं० स्त्री०) न समानि भिन्नलक्षणकत्वात्
अतुल्यानि पदानि यत्र तदसमं तथोक्तं तत् इत्यर्थे ति,
कर्मधा०। छन्दःशास्त्रोक्त विषय इत्त, जिस इत्तके
पूर्वापर पादमें समान अक्षर न रहे।

असमवेत (सं० त्रि०) असंयुक्त, असम्बद्ध, प्रत्यक्,
अलाहदा, जुदा, अलग, जो एकठा न हो।

असमवेतरूप (सं० अव्य०) असङ्गत, अनव्यय,
विमरोपा, वेठीरठिकाने।

असमशर, असमशय देखो।

असमष्ट (सं० त्रि०) सम्-अच-क्त कलोपः, नञ्-तत्।
अव्याप्त, जो मामूर या समाया न हो।

असमष्टकाव्य (वै० त्रि०) अप्राप्तव्य प्रज्ञाविशिष्ट,
जो हासिल न होने लायक होशियारी रखता हो।

असमसायक, असमसाय देखो।

असमस्त (सं० त्रि०) सम्-अस-क्त, नञ्-तत्। १ असं-
युक्त, प्रत्यक्, भिन्न, अलग, जुदा, जो मिला न हो।
२ एकत्र क्रिया न हुआ, जो मिलाया न गया हो।
३ असम्पूर्ण, अधूरा, नातमाम, जो पूरा न हो।
४ व्याकरणोक्त समासग्रन्थ। ५ विभक्त्यादि कार्ययुक्त।

असमाप्ति (वै० त्रि०) समं साम्यमतति, अत-इन्,
नञ्-तत्। अतुल्य, विसिद्ध, जिसके बराबर कुछ न
रहे।

असमान (सं० त्रि०) १ अतुल्य, नामुवाक्फिक, जो
बराबर न हो। २ विजातीय, गैरजात, जो स्वजातीय
या अपनी जातका न हो।

असमानकारण (सं० त्रि०) विभिन्न हेतुयुक्त, जो
वही सबब न रखता हो।

असमानयानकर्मन् (सं० पु०) न समानं तुल्यकालिकं
यानकर्म गतिक्रिया यत्र। सन्धिविशेष, प्रागे-पौष्टे
पङ्चनेकी बात। तुम प्रागे जावो, हम पौष्टे आते
है—ऐसा नियम करके पूर्वापर गमनेच्छुक दो व्यक्ति
जो गमन करें, उस गमनकर्मरूप सन्धिविशेषका
यह नाम पड़ा है।

असमाप (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ असमाप्ति,
नातमामी, अधूरापन। (त्रि०) नञ्-वहुमी०।
२ समाप्तिशून्य, नातमाम्, अधूरा।

असमापित, असमाप्त देखो।

असमाप्त (सं० त्रि०) नञ्-तत्। असम्पूर्ण, नातमाम,
अधूरा, जो पूरे पडा न हो। २ सम्यक् रूपसे अप्राप्त,
जो अच्छीहरसे मिला न हो।

असमाप्ति (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ समाप्तिका
अभाव, नातमामी, अधूरापन। २ सम्यक् रूप अप्राप्ति,
जो प्राप्ति अच्छीतरहसे न हो। ३ समाप्तिशून्य,
जो पूरा न हो।

असमावर्तक, असमावर्त देखो।

असमाहृत्त (सं० पु०) नञ्-तत्। गुरुगृहमें रहने-
वाला ब्रह्मचारी, पूर्वसमय उपनयनके बाद ब्रह्मचर्य
अवलम्बन कर गुरुके मकान पर वेद, वेदान्त, वेदाङ्ग
प्रभृति शास्त्र पढ़ना पड़ता था। पीछे कृतविय हो
गृहस्थ धर्म प्राशय करनेके लिये जो गुरुकी अनुमति
लेकर अपने घर आता, उसीका नाम समाहृत्त था।
फिर जिसका ब्रह्म समय उपस्थित न होता, अथवा
जो यावज्जीवन गुरुके घर ही पर रहता, वह असमा-
हृत्त कहता था। स्वार्थे कन्। असमाहृत्तक।

असमाहार (सं० पु०) समाहारो मेलनं संघातः
सम्यगाहरणश्च, अभावे नञ्-तत्। १ मेलनका अभाव,
फर्क, अलाहदगी। २ संघातका अभाव, निर्दन्डता,
सधाटा। ३ आहरणका अभाव, फिर हाथ न
आनेकी बात। (त्रि०) मिलनादिग्रन्थ, अलाहदा,
जो लगा न हो।

असमाहार्य (सं० त्रि०) पुनरन्वय, नाकाविल उखल,
हुदा हुआ।

असमाहित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। समाधिशून्य,
चित्तकी एकाग्रतासे रहित, योगशून्य, असन्धिविशिष्ट,
जो रचित न हो।

असमीच्य (सं० अव्य०) एकायक, वेदेखिभाले, अन्व-
पनसे।

असमीच्यकारिन् (सं० त्रि०) समीच्य विविच्य न
करोति, असमीच्य कृ-णिनि। विना विवेचना किये
कार्य करनेवाला, जो बेसोचे काम करता हो।

असमीचीन (सं० त्रि०) अयुक्त, अनुचित, गैरवाञ्छित,
गलत।

असम्भवा (द्वि० वि०) १ असम्पूर्ण, अधूरा ।
२ किञ्चित्, थोड़ा, कुछ ।

असम्बद्ध (सं० त्रि०) १ अलक्ष्मीवत्, नाकामयात्र, जो हारभरा न हो । २ हताश, दिलगीर, जो हार बैठा हो ।

असम्बद्धि (सं० स्त्री०) सम् सस्यक् ऋद्धिः सम्बद्धिः नञ्-तत् । १ सम्बद्धिका अभाव, अदम-द्रक्वालमन्दी, बढ़तीका न होना । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ सम्बद्धि-शून्य, नाकामयात्र, जो हारभरा न हो ।

असम्पत्ति (सं० स्त्री०) सदृशात्मलाभः लक्ष्मीय सम्पत्तिः नञ्-तत् । १ सदृश आत्माका अभाव, नाकामयात्री । २ धनका अभाव, बढ़बध्ती । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । ३ सम्पत्तिशून्य, बढ़बध्ती, जिसकी पास दौलत न रहे ।

असम्पन्न (सं० त्रि०) सम्पन्नः सम्पद्गुणः अतुरूपान्त-स्वरूप लाभश्च ततो नञ्-तत् । सम्पत्तिशून्य, जिसके पास रूपया न रहे ।

असम्पर्क (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ सम्बन्धका अभाव, सुफारकत, भलाहदगी । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० । २ सम्बन्धशून्य, भलाहदा, जुदा ।

असम्पर्कीय (सं० त्रि०) सम्बन्धरहित, जो तालुक रखता न हो ।

असम्पूर्ण (सं० त्रि०) नञ्-तत् । अनिप्यन्न, साव-श्रेय, नातमाम, अधूरा ।

असम्पृक्त (सं० त्रि०) असम्बन्ध, बेसिलसिला, जो लगा न हो । २ अशंयुक्त, भलाहदा, जो मिला न हो ।

असम्प्राज्ञात (सं० त्रि०) न सम्यक् ज्ञातः ज्ञातव्यादि-भेदे यत्, नञ्-बहुव्री० । भली भांति न समझा हुआ, जिसमें कुछ भी समझ न सकें । पातञ्जलोक्त निर्विकल्प समाधि दो प्रकारका होता है,—सम्प्राज्ञात और असम्प्राज्ञात । जिस समाधिमें ज्ञेय, ज्ञान एवं ज्ञाताका भेदज्ञान रहता, वह सम्प्राज्ञात (सविकल्प), और जिसमें यह सब मिट जाता, वह असम्प्राज्ञात (निर्विकल्प) समाधि कहाता है ।

असम्पत्ति (सं० अर्थ०) तिष्ठद्गु प्र० सम्य० । तिष्ठद्गु प्रथकीति च । पा ३।१।१८। १ अयोग्यकाल, बुरे वक्त ।

२ अनुपस्थितकाल, बेवक्त । ३ विपरीतकाल, दूसरे वक्त, बेमौकी ।

असम्प्राप्य (सं० अर्थ०) विना प्राप्ति, वेपहुंच, वेपाये । असम्बद्ध (सं० स्त्री०) सम्बन्धं परस्परमन्वितं न भवति सम्-बन्ध-क्त, नञ्-तत् । १ अर्थका अशोधक अनन्वितार्थ वाक्य । (त्रि०) २ सम्बन्धशून्य, बेसिलसिला, जो मिला न हो । ३ अयथार्थ, गौरमुनासिव । ४ निरर्थक बोलनेवाला, जो फिजूल बक रहता हो ।

असम्बद्धप्रलाप (सं० पु०) कर्मधा० । असङ्गत वाक्य, अप्रस्तुत वाक्य, निष्प्रयोजन कथन, बेहृदागोयी, सल्ल-रानी, बक-बक । यह स्मृतिशास्त्रीक दण्ड प्रकारके पापमें पापविशेष होता है ।

असम्बन्ध (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ सम्बन्ध-का अभाव, भलाहदगी । २ प्रदके परस्पर अन्वयका अभाव, जुमलोंकी सुफारकत । (त्रि०) ३ सम्बन्ध-शून्य, बेसिलसिला ।

असम्बाध (सं० त्रि०) न सम्यग् वाधा परस्परं व्यथा प्रतिबन्धो वा यत् । परस्पर सहर्षरूप पीड़ा-रहित, वसोय, जो तङ्ग न हो । २ विरल, प्रयत्न, अलग, जो घना न हो । ३ बाधारहित, जिसे कोई तकलीफ न रहे । ४ असंघत, खुला । (वै० स्त्री०) ५ अशंघतस्थान, कुशादा जगह ।

असम्बाधा (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ सम्यक् वाधाका अभाव, किसीतरहकी तकलीफका न रहना, दिक्,तकी अदमभौजूदगी । २ चौदह अक्षरके पादसे युक्त वर्णसंज्ञविशेष । इसका लक्षण यों लिखा है—जिस वृत्तमें क्रमसे मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु रहता एवं पांच और नव अक्षरपर यति पड़ता, उसका नाम असम्बाधा है । (अक्षरमाकर)

असम्भव (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ सम्भवका अभाव, अदमचस्ती, न. होनेकी बात । २ न्यायीक लक्ष्यमात्रमें लक्षणकी अप्राप्ति । ३ काव्यालङ्कारविशेष । इसमें असम्भव विषयका होना प्रकट करते हैं । (त्रि०) न सम्भवति, अच् नञ्-तत् । ४, असङ्गत, विरल, खिलाफ, नासुमकिन । ५ असत्, अविद्यमान, नैस्त-नावृद्, जो कहीं न हो ।

असम्भय (सं० त्रि०) भवत्यसौ भव्यमनेनेति वा ; सम्-भू कर्तरि निपातनात् वा यत् गुणः यकारस्य षज्-वद्भावो षच् च, नञ्-तत् । १ सम्भवशून्य, वैक्याम, जो गुजर न सकता हो । (स्त्री०) भावे यत् । २ असम्भवमात्र, नामुमकिन् यात । (वै० अर्थ०) ३ असम्भव रीतिसे, नामुमकिन तौरपर ।

असम्भावना (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । सम्भावनाका अभाव, अनहोनी, न होनेकी बात । उत्कट कोटिक संग्रह अर्थात्—यदि इस प्रकार हो—ऐसे तर्क एवं योग्यता प्रकाशकी अत्युक्तिकी सम्भावना कहते हैं । सम्भावनाका अभाव ही असम्भावना है ।

असम्भावनीय (सं० त्रि०) सम् चुरा० भू षनीयर्, नञ्-तत् । सम्भावनाशून्य, अशक्य, नामुमकिन, ऊटपटांग ।

असम्भावित (सं० त्रि०) सम्भव न समझा हुआ, जो मुमकिन ख्याल किया न गया हो ।

असम्भाव्य (सं० त्रि०) असम्भावनीय देखो । (अर्थ०) असम्भव रीतिसे, नामुमकिन तौरपर ।

असम्भाव्य (सं० त्रि०) १ सम्भावषर्क अयोग्य, जो बोलने काबिल न हो । २ दुष्ट, जिससे बोल न सकें । (स्त्री०) ३ कुत्सित कथन, बुरी बात, जो बात कही जा न सकती हो ।

असम्भूत (सं० त्रि०) उत्पत्तिरहित, नापेद, जो पैदा न हो ।

असम्भूति (वै० स्त्री०) सम्-भू-क्तिन्, अभावे नञ्-तत् । १ सम्भवका अभाव, अनहोनी, न होनेकी बात । सम्भूतिः कार्योत्पत्तिः सा नास्ति यस्याः । २ अव्याकृत नामक प्रकृतिरूप कारण ।

असम्भूत (सं० त्रि०) नञ्-तत् । १ अयत्न सिद्ध, वे तदवीर बना हुआ । २ सुन्दररूपसे अपालित, जो अच्छी तरह पाला न गया हो ।

असम्भेद (सं० पु०) सम्भेदो मेलनं भेदश्च, अभावे नञ्-तत् । १ मेलनका अभाव, न मिलनेकी हालत । २ भेदका अभाव, फर्कका न पड़ना । (त्रि०) नञ्-वद्भ्री० । ३ मेलनशून्य, अलाहदा । ४ भेदशून्य, जिसमें फर्क न रहे ।

असम्भोग (सं० पु०) सम्भोगका अभाव, अनियुक्ति, बरतरफी, काममें न लानेकी हालत ।

असम्भ्रम (सं० पु०) सम्भ्रमः उत्सुकतया कार्यव्यस्तता सम्यक् भ्रान्तिश्च, अभावे नञ्-तत् । १ स्थिरता, क्याम, टिकाव । २ कार्यकी वास्तताका अभाव, फुरसत । ३ भ्रमका अभाव, शककी अदममौजूदगी । (त्रि०) नञ्-वद्भ्री० । ४ सम्भ्रमशून्य, भूलसे खाली, सञ्जीदा, ठण्डा । चलती बोलोमें असम्मान वा अनादरकी असम्भ्रम कहते हैं ।

असम्भ्रत (सं० त्रि०) सम्-भ्रन् क्त, अभावे नञ्-तत् । १ अलोकित, नापसन्द, जो माना न गया हो । २ ध्यक्, अलाहदा, सुफारक, जो मिलता न हो । ३ विरुद्ध, प्रतिहन्वी, खिनाफ, डलटा ।

असम्भ्रतादायिन् (सं० त्रि०) १ स्वामीकी इच्छाके बिना ही ग्रहण करनेवाला, जो मानिककी बिना मर्जी लेता हो । (पु०) २ तस्कर, चोर ।

असम्भ्रति (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ सम्भ्रति-का अभाव, इच्छुतिनाफ राय, मगबिरका न मिलना । २ अस्वीकृति, नाराजी, नारजामन्दी, अनवन । (त्रि०) नञ्-वद्भ्री० । ३ सम्भ्रतिशून्य, सुफारक, राय न देनेवाला । ४ अस्वीकृत, नाराज ।

असम्भ्रर (हिं० पु०) खड्ड, छुरा ।

असम्भ्रान (सं० स्त्री०) अपमान, निरादर, बेहज्जती, तौहीनी ।

असम्भ्रित (टं० त्रि०) सम् मा-क्त, नञ्-तत् । अपरिमित, बेहद, जो नपा न हो ।

असम्भ्रुध (सं० त्रि०) सम्-सुह-क्त, नञ्-तत् । १ अकृत-सन्देह, शक न करनेवाला । २ प्राणित्यके अभिमानसे रहित, इल्मदारौका फखूर न रखनेवाला, जिसे पढ़ने-लिखनेका घमण्ड न रहे ।

असम्भ्रुद (सं० त्रि०) सम्-सुह-क्त, नञ्-तत् । स्थिर-निश्चय, ठीक समझनेवाला, सञ्जीदा, जो भूलता न हो ।

असम्भ्रष्ट (सं० त्रि०) सम्-भ्रश-क्त, नञ्-तत् । १ परस्पर सङ्घर्षशून्य, आपसमें न टकरानेवाला । २ वाधा-रहित, बेरोक, जिसमें भगड़े न लगे ।

असाधो, असाधिनृ देखो।

असाध्य (सं० स्त्री०) साध्यका अभाव, गवाहीका न होना, अदम शब्दादत।

असाढ़ (हिं० पु०) आषाढमास, सालका चौथा महीना।

असाटा (हिं० पु०) १ बट्टे छुए रेशमका वारीक धागा। २ कच्ची शकर, साफ न की चुयो चीनी।

असाढ़ी (हिं० वि०) १ आषाढका, आषाढमें होनेवाला। (स्त्री०) २ आषाढमें बोया जानेवाला अन्न, खुरीफ, जो अनाज असाढमें बोया जाता हो। ३ गुरु-पूर्णमा, आषाढकी पूर्णमासी। इस दिन हिन्दू अपने गुरुका पूजन करते हैं।

असाढ़ू (हिं० पु०) स्थूल शिला, मोटी चटान।

असात्म्य (सं० स्त्री०) १ सात्म्य वैपरीत्य, प्रकृति-विरोध, जिन्ही खासियतकी सुखालफत। (त्रि०) २ प्रकृत्यसुखावध, नागवार, तन्दुरुस्ती खराब करनेवाला।

असाद (वै० त्रि०) असनशून्य, नशिस्तगाह न रखनेवाला, जो बैठा न हो।

असाधन (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ सम्पादनका अभाव, अदमतकलीम, सुदूत न पहुँचनेकी हालत। साधनहेतुः नञ्-तत्। २ अकारण, सबवका न होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ कारणशून्य, बिसवध, जो जुरिया, सामान या औजार रखता न हो।

असाधनीय, असाध्य देखो।

असाधारण (सं० त्रि०) साधारण सामान्य धर्मयुक्तम्, नञ्-तत्। विशेष, असामान्य, गौ रमासूली, जो साधारण न हो। (पु०) २ न्याय मतमें, सपक्ष और विपक्ष दोनोंसे व्याहृत हेतु। जैसे वड्डिसाधनमें गगनादि हेतु है। यह हेतु पक्ष पर्वतादि पक्ष पक्ष भिन्न जलादिमें कहीं नहीं रहता, अतएव दोनोंसे व्याहृत (निराकृत) है। (स्त्री०) ३ प्रकार, भेद, जिन्य, कि, ख। (स्त्री०) असाधारणी।

असाधारणनैकान्तिक (सं० पु०) असाधारण तत् अनैकान्तिकश्चेति कर्मधा०। न्यायशास्त्रोक्तं सर्वं सपक्ष व्याहृतं हेत्वाभास विशेष। यथा—'शब्देनित्यः शब्द-

त्वात्।' शब्दत्व विशिष्ट होनेसे शब्द नित्य पदार्थ है। शब्दत्व सकल नित्य पदार्थसे व्याहृत अथच शब्दमात्रमें स्थित है, इसीसे शब्दत्वका उक्त नाम पड़ा।

असाधित (सं० त्रि०) सम्पादनशून्य, नाकामिल, जो पूरे न पड़ा हो।

असाधु (सं० त्रि०) न साधु नञ्-तत्। असच्चरित, अविनीत, अशिष्ट, दुष्ट, खल, दुर्जन, असंस्कृत, बदमाश, गुस्ताख, बुरा, बिगड़ा हुआ। (स्त्री०) असाधो, व्यभिचारिणी पत्नी।

असाधुता (सं० स्त्री०) दुष्टता, अशिष्टता, बदमाशी, गुस्ताखी, खोटाया।

असाधुत्व (सं० स्त्री०) असाधुता देखो।

असाधुवृत्ता (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणी पत्नी, जो औरत पाक-साफ न हो।

असाध्य (सं० त्रि०) सध-णिच्-यत् साध-यत् वा नञ्-तत्। दुष्कर, कठिन, सिद्ध करनेके अयोग्य, जो सिद्ध हो न सकता हो। जैसे असाध्य रिपु एवं असाध्य रोग।

असान्तापिक (सं० त्रि०) सन्तापाय न भवति ठक्। सन्ताप पहुँचानेमें असमर्थ, तकलीफ न देनेवाला।

असान्द्र (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। अनिविद्ध, पृथक्, विरल, बुराफ, कागजी, जो सटा न हो।

असान्निध्य (सं० स्त्री०) अन्तर, विप्रकर्ष, दूरता, फ़ासला, बिधा।

असामञ्जस्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ सामञ्जस्यका अभाव, मीमांसिका अभाव, अयुक्तत्व, सन्निवेशका अभाव, अक्षरण, अस्थापन, नादुरुस्ती, नाका-विलियत। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ सामञ्जस्यके अभावसे युक्त, अमीमांसाविशिष्ट, असन्निवेशित, नाकाविल, जो दुरुस्त न हो।

असामर्थ्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। सामर्थ्यका अभाव, अटलका अभाव, अचमत्त्व, नाताकृती, कामजोरी।

असामयिक (सं० त्रि०) असमयचित, अकालिक, अकालोद्भव, गौरवक, विफसल।

असामान्य (सं० त्रि०) नास्ति सामान्यं तुलना

यस्य । १ असाधारण, गौरमान्मूली । इस अर्थमें
असाम्य शब्दभी प्रयुक्त होता है ।
असामि (सं० त्रि०) १ सम्पूर्ण, समूचा, जो अधूरा
न हो । (अथ्य०) २ पूर्णरूपसे, पूरे तौरपर, विल-
कुल, सब ।
असामि शब्द (वै० त्रि०) पूर्णशक्ति-सम्पन्न, पूरी
ताकत रखनेवाला ।
असामी (हिं० पु०) १ पुरुष, नर, आदमी । २ व्यव-
हारो, सेने-देनेवाला । ३ कृषक, कागत्कार, लगान-
पर खेत जोतनेवाला । ४ प्रतिवादी, षट्ठी । ५ अप-
राधी, सुलज्जिम । ६ मित्र, दोस्त । ७ काम देनेवाला
आदमी । ८ आसाम देशका अधिवासी, जो शंखुस
आसामका वाशिन्दा हो । (स्त्री०) ९ वेश्या, रण्डी ।
१० स्थान, नौकरो, जगह । (वि०) ११ आसामदेश
सम्बन्धीय, जो आसामका हो ।
असाम्यत (सं० त्रि०) अयोग्य, अनुचित, नाकाविल,
गौरवाजिब, जो हीनहार न हो ।
असाम्यतम् (सं० अथ्य०) नञ्-तत् । अयुक्त, अयोग्य,
अनुचित वा अन्याय रूपसे, नासुनासिब तौरपर ।
असाम्य (सं० स्त्री०) १ अस्तर, फर्क । २ अनुपयुक्तता,
नाकाविलियत । ३ अप्रियता, नाखुशी ।
असार (सं० पु०-स्त्री०) नास्ति सारो यस्य । १ एरुड
वृक्ष, रेङ्का पेड़ । (स्त्री०) नास्ति सारो यस्मात् ५ नञ्-
बहुव्री० । २ अग्रहचन्दन । (त्रि०) नञ्-तत् । ३ सार-
शून्य, खाली । ४ शक्तिरहित, नाताकत । ५ व्यर्थ,
बिफायदा । ६ निर्बल, कमजोर ।
असारता (सं० स्त्री०) १ निःसारता, निःसत्वता,
बेधरकी । २ अयोग्यता, नाकाविलियत ।
असारदधि (सं० स्त्री०) षट्कोत-नवनीत-दधि, बलायी
उतारा हुआ दही । यह संपाही, शीतल, लघु, विष्टिभि,
दीपन एवं रुच होता और ग्रहणी रोगको नाश करता
है । (भाष्यप्रकाश)
असारा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, कैलेका पेड़ ।
असाम्यत (अ० स्त्री०) १ कुलीनता, खान्दानोपन ।
२ तत्व, निचोड़ ।
असालतन् (अ० स्त्री० वि०) स्वयं, खुद, अपने पाप ।

असाला (हिं० स्त्री०) तरातेजक, हालो, हालिम,
चंसुर ।
असावधान (सं० त्रि०) नञ्-तत् । अवधानहीन,
प्रमत्त, बेपरवा, घामड़ ।
असावधानता (सं० स्त्री०) अनवधानता, सापरवायी ।
असावधानत्व (सं० स्त्री०) असावधानता देखो ।
असावधानी, असावधानता देखो ।
असावरी (हिं० स्त्री०) आसावरी, आशावरी, रागिणी
विशेष । यह भंरव रागकी भार्या होती और प्रातः-
काल सात बजेसे नौ बजेतक जमती है ।
असासा (अ० पु०) यन्तु, द्रव्य, माल, असबाब ।
असासुलबैत (अ० पु०) षट्द्वय, मकान्का
सामान् ।
असाहस (सं० स्त्री०) साहसका अभाव, बेहिम्नती,
नरमी ।
असाहसिक (सं० त्रि०) शान्त, ठण्डा, नर्म, जो
हिम्नतो न हो ।
असाहाय्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ साहाय्य-
का अभाव, मददका न मिलना । (त्रि०) नञ्-बहुव्री० ।
साहाय्यशून्य, जिसे मदद न मिले ।
असि (सं० अथ्य०) अस दीप्तौ इन् । १ भवान्,
पाप, तुम । विभक्तिका प्रतिरूपक होनेसे यह 'त्वं'
अर्थमें लगता है । (पु० स्त्री०) अस्त्यते हेदनाथं
क्षिप्यते, उत क्षिपे (अतिक्रम्यसि इत्यादि । अ० भा० १२८ ।)
इति इ । २ खल्ल, तलवार । असि शब्दके पर्याय यह
हैं—निक्षिंश, चन्द्रहास, रिष्टि, कौक्षिरक, मण्डलाप्र,
करपाल, कृपाथ, प्रवालक, भद्रात्मज, रिष्ट, षट्ठि,
धाराविष, शौच्येय, तरवारि, तरवाज, कृपायक, कर-
वाल, कृपायी, शास्त्र, विषसन । असिकी स्तुति इस
प्रकार की जाती है—
“असिर्विषयः खड्गोऽस्यधारी दुरासदः ।
श्रीमर्षो विजयधरं धर्मपात्री मरुत्त पृ ४”
असिः प्रहरणमस्य । मरुत्तम् । वा भा० ३५१ । इति उक्त्
प्रासिक, खड्गधारी, तलवारशब्द । वा डीप् ।
३ धारापथीके दक्षिणं सुद्र नदीविषय । असि नदी
गङ्गाके सङ्ग जाकर मिल गयी है । वरणा और असि

रुहों दोनो नदीके नामसे 'वाराणसी' शब्द बना है।
यथा—

“असिच वरुणा यत्र चैवरेणा ह्रमी कृते।

वाराणसीति तिल्लता तदारण्य महासुते ॥” (भागवत)

अस्यते क्षिप्यते अस-इन्। ४ ख।स, सांघ।

असिक (सं० स्त्री०) असि-संश्रायां कन्। १ अथर
एवं चिबुकका मध्यभाग, होंठ और दाढ़ीके बीचकी
लगह। २ एक देवका नाम, कोयी मुल्क।

असिक्रिका, असिक्री देखो।

असिक्री (सं० स्त्री०) सो-क्त सित्ता केगादौ शुभ्रा
जरती तद्भिन्ना डीप् न क्तादेयो वा। अक्षितपक्षितयोः
प्रतिषेधः। असिता। ह्रस्वसि कृत्स्निके के। पा ३।१।२८ शार्तिक। १ अन्त-
पुरचारिणी अष्टहा दासी, मकानके भीतर रहनेवाली
जवान् दासी। २ नदीविशेष, Akesines, चन्द्रभागा,
पञ्जाबकी चिनाव। ३ कन्याविशेष, वीरथ प्रजा-
पतिकी जो कन्या दत्तकी ब्राह्मी थी। ४ रात्रि,
रात।

असिगण्ड (सं० पुं०) असिः क्षिप्ती गण्डो यत्र।
सुदोपाधान, गलतकिया।

असिजीविन् (सं० पुं०) असिना तद् व्रापारिण
जीवति, असि-जीव-णिनि। खड्गसे जीविका करने-
वाला पुरुष, जो वस्त्रि पञ्चद्वारा युद्धादि करके
जीविका चलाता हो। यह ब्राह्मणके लिये अति
निन्दनीय कार्य है।

असित (सं० पुं०) सो-क्त सितः विरोधे नञ् तत्।
१ क्षुण्णवर्ण, कानारङ्ग,। २ क्षुण्णपत्र, अंधेरा पाख।
३ नीलहृत्, नीलका पेड़। (स्त्री०) ४ भगुरकाष्ठ,
भगरुचन्दन। ५ शनिग्रह। ६ कालाराक्षस। ७ कश्यप
वंशज यशस्विशेष। ८ नीलगिरि पर्वत। ९ काला
सांप। १० देवल ऋषि। हरिवंशके अष्टादश
अध्यायमें इनका विवरण है। (त्रि०) ११ क्षुण्ण
वर्णयुक्त, काला। असित शब्द अनुदात्तान्त एव
इसके उपधामें तकार है, इसलिये (वर्णद्वयान्तान्तोप-
धातो नः। पा ३।१।२८।) इस मूलके अनुसार इसका ली
लिङ्गमें 'असिता' और 'असिती' दो प्रकार रूप होता
है। परन्तु विशेष शार्तिक छवद्वारा उसका निषेध

किया गया है। इस कारण इसका वेदमें 'असिता'
एवं 'असिक्री' उभय प्रकार रूप होता है।

असितकार्षिस् (सं० पुं०) असितयति असित-कृत्वर्थे
णिच् ण्वुल् णिच् लोपः तथोक्ता अक्षिः शिष्टा यस्य।
अग्नि, प्राग। अग्निकी शिष्टा लगनेसे सभी वस्तु
काले पड़ जाती, इसलिये अग्निकी असितकार्षिः
कहते हैं।

असितकी (सं० स्त्री०) हृत्क्षिप्रिये, कोयी पोधा।
असितकीशान्त (सं० त्रि०) क्षुण्ण-केशविशिष्ट, काली
जूल्फ़ीवाला।

असितगिरि (सं० पुं०) कर्मघा०। नीलगिरि, नील-
पर्वत, काला पहाड़।

असितश्रीव (सं० पुं०) असिता श्रीवा यस्य। १ अग्नि,
प्राग। २ नीलकण्ठ शिव। ३ मयूर, मोर।

असितजफल (सं० पुं०) नारिकेलहृत्, नारियलका
पेड़।

असितशु (वै० त्रि०) क्षुण्णवर्णं जानुविशिष्ट, काले
घुंटेनेवाला।

असिततिल (सं० पुं०) क्षुण्णतिल, काला तिल।

असितद्रुम (सं० पुं०) क्षुण्णताल, काला ताड़।

असितनयन (सं० त्रि०) क्षुण्णनेत्रयुक्त, कासी
आंखवाला।

असितपल्लवा (सं० स्त्री०) १ भूमिजम्ब, भुयिंजामन।
२ नदोजम्बहृत्, पनिहा जामुन।

असितफल (सं० पुं०) असितं क्षुण्णवर्णं फलं यस्य।
मधु नारिकेल, मोठा नारियल।

असितभ्रू (सं० त्रि०) क्षुण्णभ्रूविशिष्ट, काली पल्लकों-
वाला।

असितशृंग (सं० पुं०) कर्मघा०। क्षुण्णसार शृंग,
काला हरिण।

असितवह्नी (सं० स्त्री०) नीलदूर्वा, काली दूब।

असितवेद्य (सं० स्त्री०) श्यामालता, काली बैल।

असितसार (सं० पुं०) तिन्दुकहृत्, तेंदूका पेड़।

असितसारक, असितसार देखो।

असिता (सं० स्त्री०) १ यमुना नदी। २ अक्षनीली
हृत्। ३ कालातिविया। ४ हरिवंशधृत एक अप्सरा।

५ पिङ्गला नामकी नाड़ी। यमुना नदीका जल कृष्ण-
वर्ण होनेसे असिता नाम पड़ा है।
असिताङ्ग (सं० पु०) १ सुनिविशेष, कोई सुनि।
(त्रि०) २ कृष्णवर्ण-विशिष्ट, काला।
असिताङ्गनी (सं० स्त्री०) कृष्णकार्पासी, काली
कपास।
असितानन (सं० त्रि०) कपि, लङ्कुर।
असिताभ्रगेश्वर (सं० पु०) १ शुद्धविशेष। २ नीली-
दृष्ट।
असिताम्बुज (सं० स्त्री०) कर्मधाः। नीलपद्म, काले
कमलका फूल।
असिताम्बुर्द्ध, असिताम्बु देवो।
असिताचिंस् (सं० पु०) असिता कृष्णा अचिंः शिखा
यस्य। अग्नि, आग। अग्निकी धुंकी कृष्णवर्ण शिखा
निकलनेसे असिताचिंः कहते हैं।
असिताक्षता (सं० स्त्री०) १ नीलदूर्वा, कालीदूर्वा।
२ श्यामालता, काली बेल।
असिताक्षु (सं० पु०) नीलाक्षु, कोयी पौधा।
असिताश्वन् (सं० पु०) कर्मधा०। अश्वने जाति-
त्वेऽपि समानविधेरनित्यतया न समासान्त प्रत्ययः।
मणि विशेष, इन्द्रनील मणि, नीलकान्तमणि, नीलम्।
असिष्ट (सं० त्रि०) अस-सिपे ष्टच्। सैपक, फेंकने-
वाला, जो अपनी चीज फेंक देता हो।
असितोत्पल (सं० स्त्री०) कर्मधा०। नीलपद्म, काला
कमल।
असितोपल, अशिताश्वन् देवो।
असिदंष्ट्र (सं० पु०) असिरिव तीक्ष्णा दंष्ट्रा यस्य।
१ मकर, घड़ियाल। कामदेवकी धजापर इनकी
मूर्ति विराजमान रहती है। २ जलजन्तु विशेष,
पानीका कोयी जानवर।
असिदंष्टक, असिदंष्ट्र देवो।
असिदन्त (सं० पु०) १ मकर, घड़ियाल। २ कुम्भीर,
गोह।
असिह (सं० त्रि०) सिहं निष्पन्नं पक्षस्य, नञ्-तत्।
१ अनिष्पन्न, जो निकला न हो। २ अपक्ष, सैपका,
कच्चा। ३ अपूर्ण, नासुकमिल। ४ निष्पन्न, बेफायदा।

५ अप्रमापित, सावित न होनेवाला। (पु०) ६ न्याय
मतमें आश्रयद्वारा असिद्धत्व प्रकृति दीपसे दूषित
कारण, जो सबव श्रद्धाजसे समक्ष न पड़ता हो।
असिद्धि (सं० स्त्री०) सिध क्तिन्, नञ्-तत्। १ अग्नि-
व्यक्ति, निकाम न होनेको सुरत। २ पाकका अभाव,
न पकनेको हालत, कच्चापन, कच्चायी। ३ अपूर्णता,
पूरा न पड़नेको हालत। ४ योगशास्त्रीक सिद्धिका
अभाव, नाकामयायी। ५ न्यायमतसे आश्रयासिद्धि
प्रकृति हेतुदीप। यह तीन प्रकारका होता है—
१ आश्रयासिद्धि। २ स्वरूपासिद्धि। ३ व्याप्यतासिद्धि।
सिद्धिः साध्यवन्ता निश्चयः, अभावे नञ्-तत्। ६ साध्य-
विशिष्टके निश्चयका अभाव, अनिश्चय, यकोनका न
पाना।
असिधारा (सं० स्त्री०) ६-तत्। खड्गका तीक्ष्ण
अग्रभाग, तलवारकी वाड़।
असिधाराव्रत (सं० स्त्री०) नरके असिधारासुहिम्न
व्रतम्, शाक० तत्। व्रतविशेष, जिस व्रतसे खल-
नादि दीप होनेपर नरकमें असिधाराका आघात
लगता है। यादवने लिखा है, सुन्दर युवा युवतीके
सङ्गमें पतिकी तरह आचरण रखे, किन्तु कामभाव
देखा या सङ्ग कर न सकेंगे। इसीको असिधाराव्रत
कहते हैं।
असिधाव (वे० पु०) असिं खड्गं धावयति माल-
यति धाव-अण्। खड्गमार्जनकारी, हथियार साफ
करनेवाला; जो हथियारपर सेकल धटाता हो,
सैकलगर।
असिधावक, असिधाव देवो।
असिधेनु (सं० स्त्री०) असिधेनुकेव। उप० समा०।
हुरिका, हुरी।
असिधेनुका, असिधेनु देवो।
असिन्व (वे० त्रि०) अतोपपीय, आसूदा न होनेके
काविल।
असिन्वत, असिन्व देवो।
असिन्वता (वे० स्त्री०) पिञ्-धन्वने, अनेकार्यत्वात्
धातूनामन्वसङ्ख्यादानार्थः, लट् शतरि श्रुः (अनित्य)।
श.भा.१।१।) इति स्त्रीप्, पूर्वसवर्णदीर्घः। असङ्ग-

दन्धावित्यर्थः। अतुविशेष्यते (निरक्त)। असङ्गाद,
खु,ग्र न होनिवाली। "असिपत्री यपुत्री मृतः।" (संस्कृत-टीका)

असिपत्र (सं० पु०) असिरिव तीक्ष्णधारं पत्रमस्य,
बहुव्री०। १ इच्छुवृष, ईशुका पेड़। २ गुगु नामक वृष।
३ सङ्घुष्ट वृष, सं० इच्छुका पेड़। (क्ली०) असेः पत्र-
मिव आच्छादकत्वात्। ४ खड्गकोप, तलवारका
म्यान। ५ उभयदिग् धारयुक्त खड्ग या तलवार,
दुधारा। ६ नरकविशेष। इस नरकके वृक्षोंमें तलवार
जैसे पत्ते लगे हैं।

असिपत्रवृष (सं० क्ली०) गुण्डावृष, छोटा कांस।
यह शीत एवं मधुर होता और कफ वात, रक्तदोष,
अतिसार तथा दाहको मिटाता है। दीर्घ और लघु
भेदसे इसे दो प्रकार देखते हैं। दीर्घमें गुण अधिक
रहता है।

असिपत्रक (सं० पु०) श्वेतदर्भ, सफेद कुश।

असिपत्रवन (सं० क्ली०) असिरिव पत्रमस्य तथोक्तं
वनं यस्मिन्। पुराणोक्त नरकविशेष। इस नरकमें
चार हजार कीसतक भाग जलती और उसके बीच
तलवारकी धार जैसे पत्तेवाले पेड़ोंका वन है।

असिपत्रव्रत (सं० क्ली०) अश्वमेध यज्ञके मध्य
कर्तव्य व्रतविशेष, जो व्रत अश्वमेध यज्ञके बीचमें करना
उचित हो।

असिपथ (वै० क्ली०) यज्ञीय आयुधका भाग, वलि-
दानवाली तलवारकी राह।

असिपुच्छ (सं० पु०) असिरिव धारायुक्तः वक्रः सूक्ष्मापो
या पुच्छोऽस्य। शशक, सकुची मछली।

असिपुच्छक, असिपुच्छ देखो।

असिपुत्रिका (सं० क्ली०) असेः पुत्राव स्वार्थे कन्
ईकार ऊस्वः टाप्। कुरिका, कुरी।

असिपुत्री, असिपुत्रिका देखो।

असिमत (वै० द्वि०) कुरिकायुक्त, कुरी बांधे
हुआ।

असिमद (सं० पु०) असिः चित्तो मेदो निर्यास-
रूपावसा यस्मात्। १ खदिर-सुप, खैरका भाह।
२ विटखदिर, दुर्गन्ध खैर।

असिर (वै० द्वि०) अस-सिपे किरच्। १ सैपक,

फेंकनेवाला। (पु०) २ किरण, श्वा। ३ बाण,
तौर।

असिलोमन् (सं० पु०) असि इव तीक्ष्णानि लोमा-
न्वस्य। दनुके पुत्रविशेष। महाभारत आदिपर्व
६५ अध्यायपर दनुके चालीस पुत्रोंमें इनका नाम
लिखा है। हरिवंशके देवासुरयुद्धमें वायुके साथ
इनका युद्ध वर्णित है। अष्टौमें भी इनका नाम
देख पड़ता है।

असिष्टण्ड (अं० वि०) सहायक, मददगार, हाथ
नीचे काम करनेवाला।

असिष्ठ (वै० त्रि०) शस्त्र प्रहारमें कुशल, जो हथि-
यार खूब चलता हो।

असिष्ठव्य (सं० त्रि०) असिना इत्वं घातं अशि-
ष्ठन-वाहु० क्वप्; इ-तत्। १ खड्गद्वारा वधके योग्य,
तलवारसे भारने लायक। (क्ली०) २ खड्गयुद्ध, तल-
वारकी लड़ायी।

असिष्ठिति (सं० पु०) अन्ते हिंनोतेर्वा। (कति-यति-श्रु-ति-
साहि-दिति-कौतेव्य। या २।१।२०।) इति-निपा० क्तिन् इतिः
शस्त्रम्; असिरिव इतिः शस्त्रं यस्य, बहुव्री०। खड्ग
द्वारा युद्धकारी, जो तलवारसे लड़ता हो। 'शक्ति-विशो-
दितिः स्वात्।' (अमर)

असी (सं० स्त्री०) नदीविशेष। -असि देखो।

असीतक (वै० क्ली०) अगुरु काष्ठ, अगुरुचन्दन।

असीतका (सं० स्त्री०) क्षुणापराजिता, काली
अपराजिता।

असीतकादिषूण (सं० क्ली०) चूर्णविशेष, आमवात
रोग पर दिया जानेवाला चूर्ण। -असीतक, भाग-
धिका, गुड़ची, श्यामा, बरानी, गजकर्ण एवं शुष्कीकी
बराबर कूट-पीस चूर्ण बनाये और गर्म पानीके साथ
सेवन करे। (भाष्यनिदान)

असीम (सं० त्रि०) १ सीमारहित, बेहद। २ अनन्त,
बेशुमार। २ अपार, अगाध।

असीमल, असीम देखो।

असीस (सं० स्त्री०) अश्विष् देखो।

असीसना (हिं० क्ति०) आशीर्वाद देना, दुवा मांगना,
भला चाहना।

असु (सं० पु०) अस्यते चिद्यते अस चेपे उ। १ चित्त, दिव्य। कर्तैरि उ। २ ताप, तकलीफ। अस्यन्ते सिष्यन्ते चाश्रयन्ते वा प्राणिनो एभिः, करणे बाहुलकात् उ। ३ प्राणवायु। 'बुधि म्यास्यः प्राणः।' (अमर)

असुकर (सं० वि०) सुखेन क्रियते, सु-क-खल-विरोधे नञ्-तत्। दुष्कर, दुःशयार, मुश्किल, कठिन।

असुक्षण, असुपण देखो।

असुख (सं० क्ली०) न सुखं विरोधे नञ्-तत्। दुःख, तकलीफ। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ सुखग्रन्थ, दुःखी, रङ्गीदा।

असुखजीविका (सं० स्त्री०) सुखग्रन्थ जीवन, जो जिन्दगी मज्जदार न हो।

असुखपीडित (सं० त्रि०) दुःखसे प्रसित, रक्षते भरा हुआ।

असुखावह (सं० त्रि०) दुःख उत्पन्न करनेवाला, तकलीफदिह, जो रक्ष लाता हो।

असुखाविष्ट, असुखवीरित देखो।

असुखिन् (सं० त्रि०) सुखग्रन्थ, कमबख्त, रङ्गीदा।

असुखोदय (सं० त्रि०) दुःखमें समाप्त होनेवाला, जो तकलीफमें पूरा हो।

असुखोदकं (सं० त्रि०) दुःखदायी, तकलीफ, देनेवाला।

असुग, (हिं०) अगम देखो।

असुगम (सं० त्रि०) सुखेन गम्यते प्रायते बुध्यते वा, सु-गम-खल, विरोधे नञ्-तत्। १ दुर्गम, जो हासिल न हो। २ दुर्बोध, जो समझ न पड़ता हो।

असुचि (हिं०) अचि देखो।

असुत (वै० त्रि०) १ दवाया न हुआ, जो निचोड़ा न गया हो। यह सोमरसादिका विशेषण है। (सं० त्रि०) २ सन्तानरहित, वैध्यालाद, जिमके बालबच्चा न रहे।

असुतर (सं० त्रि०) दुर्गम, जो आसानीसे गुजर जानेवाला न हो।

असुत्थ (वै० त्रि०) ठस न होनेवाला, जो आसुदा किया जा न सकता हो।

असुत्थ (सं० पु०) असुवः परकीयाः प्राणान्तदायेन

दृष्यति, त्वप् इगुपधात् क इति क प्रत्ययः, इ-तत्। यमदूतविशेष।

असुधारण (सं० क्ली०) असुनां प्राणादिपञ्चवायु-वृत्तीनां धारणम्, इ-तत्। १ जीवन धारण, जिन्दगी।

असुनिरस (सं० त्रि०) अमिय, उद्वेग, नागवार, तकलीफ देनेवाला।

असुनीत (वै० क्ली०) आत्मलोक, रूहानी दुनिया।

असुनीतस् (वै० पु०) आत्मप्रसु, रूहोंका मालिक।

असुनीति (वै० स्त्री०) असुन् नयति। असु शब्द उपपदे नीतिन्। (निरस) १ प्राणवायु। न सुनीति, नञ्-तत्। २ अनौति, जो उत्तम नीति न हो।

असुन्दर (सं० त्रि०) साधारण, कुरूप, सादा, बद-शक्त। २ अयोग्य, असुचित, गैरवाजिब, नादुस्त, जो ठीक न हो। (पु०) ३ व्यङ्गविशेष। इसी देखते वाच्यार्थमें विशेष भाव रहता है। यह गुणीभूत व्यङ्गका ही अङ्ग है।

असुन्व (सं० त्रि०) सुञ्-अभिप्राये वाङ्० शः (वादिभः ५ः। १ श १११२) इति सु उकारस्य वः नञ्-तत्। जो सोमलताको सींचता न हो।

असुपाद (सं० पु०) कालविशेष। देहधारियोंको एक श्वास खीच पुनः श्वास ग्रहण करनेमें जितना काल लगता, उसका अस्तुर्धाग असुपाद कहाता है।

असुत (सं० त्रि०) निद्राके वशीभूत न होनेवाला, जो सोता न हो।

असुमदृग् (सं० त्रि०) निद्रामें नेत्र न बन्द करनेवाला, जो हमेशा आंख खोले रहता हो।

असुविधा (सं० स्त्री०) १ कठिनता, अड़चन। २ दुःख, दिक्कत।

असुभ, (हिं०) अगम देखो।

असुभङ्ग (सं० पु०) १ जीवनका नाश, जिन्दगीका तोड़-फाड़। २ जीवनसम्यन्धीय भय, जिन्दगीके लिये खीफ। ३ जीवनका सन्देह, जिन्दगीका खतरा।

असुभृत् (सं० त्रि०) असुन् प्राणान् विभक्तिं, असु-ष्ट-क्षिप् तुगागमश्च, इ-तत्। प्राणधारी, प्राणी, मख-लक, जानवर।

असुमत् (सं० त्रि०) असुयः सन्नास्य, मत्पु० प्राणी, जीवमात्र, जानवर ।

असुय (वे० चि०) प्रतिकूल, खिन्नाफ, जो मिलता न हो ।

असुर (सं० पु०) अस्यति क्षिप्यति देवान् असु क्षेपणे (असुरन् । अ० १११) इति उरन् । १ सुरविरोधी दैत्य । 'असु देवयोश्चात्तरन् प्रत्ययः । असति असुरो दैत्यः ।' (उज्ज्वलदत्त) २ प्राचीन भारतियों और पारसियोंके प्रधान देवता । यह वरुणके प्रतिनिधि होते और पारसी इन्हें अहुर-मज्दके नामसे पूजते हैं । जन्म अवस्थामें असुरको अहुर कहते हैं । भेद इतना ही है, कि जरथुस्त्रीय धर्ममें असुरका अर्थ देवता और हमारे धर्ममें राक्षस है । किन्तु ऋग्वेदमें कितनी ही जगह असुर शब्द देवताओंके लिये भी व्यवहार किया गया है । असति दीप्यते, अस-दीप्तो उरन् । ३ सूर्य । ४ राहु । ५ हस्ती । ६ बादल । ७ प्रेत । 'असुरः सृष्टं देवयोः ।' (शन) (वे० त्रि०) ८ भ्रातृवान्, जिन्दा । 'असति गच्छति अनाथो दीप्यते सूर्यं शान्तं वा जलं । यदा सुर देव्यं सुप्नोति सुर-व ईश्वरः स्वतन्त्र इत्यर्थः । असुर अनाथः उन्मत्तितन्त्र इत्यर्थः ।' (निरुक्त) ९ निराकार, ईश्वरीय, जो श्राद्धमैके काबूका न हो । (स्त्री०) १० सासुद्रलवण, असुद्रका नामक । ११ देवदारुवृक्ष । १२ अन्नादरोगविशेष, किसी किष्पका पागलपन । इस रोगमें पीड़ित व्यक्तिके श्वेद नहीं छुटता और वह देवी-देवता तथा गुरु-ब्राह्मणादि को खरो-खाटी कहते रहता है । कोई वस्तु उसे सन्तुष्ट नहीं करती, वह बुरी राह पकड़ लेता है ।

१३ लोहारडांगि और पूर्व सरगुजाकी एक पनार्थ जाति । असुर लोहा गलाके ही अपना निर्वाह करते हैं । कर्नल डालटन इन्हें उर्हीं असुरोंके वंशज बताते, जिन्हें प्राचीन काल सुषुक्तोंने मारपीट निकाल दिया था । किन्तु हारजेलिहोसका कहना है, कि असुर स्थानिका काम करने और मन्दिर बनानेवाले उन सभ्य शिल्पियोंके सन्तान ठहरते, जिनके चित्र छोटा-नाग-पुरमें इस चित्रसे उस चित्रतक मिलते हैं । इनके तेरह गोत्र हैं । अपने-गोत्रकी स्त्रीसे कोई पुंस्वय विवाह नहीं करता । अनेक पत्नीकताके विधानमें

विवाहोच्छेदके लिये बड़ी अनुमति लेनी पड़ती है । इनकी स्त्रियां छोटानागपुरके शहरों और बड़े-बड़े गांवोंमें नाचकूद अपना निर्वाह करती हैं । असुरोंके धर्मका हत्तान्त अज्ञात है । डालटनके मतानुसार यह सिद्धबोद्ध नामक देवताको पूजते हैं ।

१४ असुरिया राज्य । यह शब्द हिब्रु भाषाका है । १५ प्राचीन नगर-विशेष । यह असुरिया राज्यको राजधानी रहा । इसीके नामपर असुरिया (Assyria) राज्य असुर कहाया है । सुषुक्त असुरियाके राज्यकी दक्षिण सीमापर इस नगरको बाबिलोनियाके सेमैतिकोंने पूर्वकालमें बसाया था । सन् ई०से २२५० वर्ष पहले बाबिलोनियाके नृपति खमूरबीकी मृति-प्रस्तावनामें असुर और निनेवीः दोनो नगरोंका नाम आया है । किन्तु प्रस्तावनामें जो असुरकी शब्द लिखा, उससे विदित होता, कि इस नामका कोई प्रान्त भी रहा ; क्योंकि 'की' का अर्थ 'भूमिसीमा' है । आजकल यह ताइग्रिस नदीके पश्चिमतट उच्च एवं निम्न जाब नदीके बीचोबीच काले-शेरघाट नामसे प्रसिद्ध है । सर ए० एच० लेयार्ड साइबन जो मदीका पतुल यहांसे खोदकर निकाला, उसमें तिगलथ पिलेसर प्रथमका हत्तान्त लिखा है । सन् १८०४ ई०में जो प्राक्कार हुआ, उससे प्रमाणित होता है, कि असुर देवके पूजारी बाबिलोनियाके अधीन यहां शासन करते थे । बाबिलोनियाका राज्य घटनेसे पूजारी स्वतन्त्र नृपति बने और असुर अपने प्रान्तकी राजधानी हुआ । इस नगरकी चारो ओर पक्की दीवार रही । सन् ई०से १२७० वर्ष पहले तुकुलती-इनारिस्ती या तुकुलती मारुनी नदीकी ओर इसको रक्षा करनेको गहन परिखा खोदायी और भूमिकी ओर भित्ति बनवायी थी । सन् ई०से पहले १५ वें शताब्दीमें भी यह दक्षिण की ओर बहुत बढ़ा रहा । नगरके उत्तरांगमें मन्दिरोंकी शोभा देख पड़ती थी । सिवा असुर देवके अनु और हदादका मन्दिर भी बहुत बड़ा था । दूसरे देवताओंके अनेक मठ रहे । निनेवीके राजधानी होते भी असुर देवका धार्मिक केन्द्र बना था । १६ असुरियाके प्रधान देव । प्रथमतः यह असुर

नगरके रक्षक देव रहे। इनके उड़नेवाले परिधिमें शरासन लगा है। दूसरे देवताओंके लो वर्णन मिलते, उनसे वह असुर देवके सगुरूप ही प्रमाणित होते हैं। असुरियाके वीर इन्होंने नाम लेकर युद्ध करनेकी भागी बढते रहे। सन् ई०से १२०० वर्ष पहले उस-पियाने इनके मन्दिरकी नींव डाली थी।

असुरकुमार (सं० पु०) भयनाधीश-सम्बन्धीय देवविशेष।

असुरघ (सं० त्रि०) सुखेन रक्षते; सु-रघ-खल, नञ-तत्। स्वच्छन्दसे रक्षित किया न जानेवाला, जिसे आज्ञादीसे बचा न सके।

असुरचपथ (वै० त्रि०) असुर-नाशकारी, असुरोंको मार डालनेवाला।

असुरध्व (सं० त्रि०) कठिनतासे वचाने योग्य, जो सुत्रिकलसे रह सकता हो।

असुरगुरु (सं० पु०) असुरोंके गुरु शुक्राचार्य।

असुरपह (सं० पु०) भूतपहविशेष।

असुरत्व (वै० स्त्री०) अमूर्तता, परमार्थनिष्ठा, नफ-सानियत, रुहानियत।

असुर-बनी-पाल—असुरियाके बड़े राजा। ऐयरके १२वें दिन यह धूमधामसे असुरियाके राज्य-सिंहासन पर अपने पिता ईशरहहोन द्वारा बैठाये गये थे। सन् ई०से ६६८ वर्ष पहले पिताके मरनेपर इन्होंने मिथकी युद्धप्रवृत्ति समाप्त करना चाही। तिरहाकहके दधि-वोपियाको भगी और असुरीय सेनाको नाहलपर चढ़नेमें ४० दिन लगे थे। तिरहाकहके साथ साजिश करनेपर सैसके मण्डलेखर नेकी और दो दूसरे नृपति कै.द कर निनेवी: भेजे गये। सन् ई०से ६६७ वर्ष पहले तिरहाकहके उत्तराधिकारी तन्दमन उच्च मिथमें पड़चे और शिवसेने असुरियाके विरुद्ध विद्रोह उठाया। मेसफिसपर एकायक अधिकार कर विद्रोहियोंने असुरीय सेनाको वहांसे निकाल बाहर किया था। उसी समय तायरमें भी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। किन्तु असुर-बनी-पाल विद्रोही प्रान्तमें सेना भेजते ही रहे। अन्तको असुरीय सेनाने शिवसे-
छटा और दो सूत्राकार-सन्धियोंके निनेवी: भय

चिह्नकी तरह भेज दिया। इसी बीच तायरने भी पानी न मिलनेसे आत्मसमर्पण किया था। असुरीय सेनाने फिर शरासतसे दक्षिणपूर्व मन्नाकी राजधानी दशा ली। इस्लामके व्युत्पन्न कै.द कर निनेवी: भेजे और उनकी जगह उम्मानियस सिंहासन पर बैठाये गये थे। सिलिसिया और तबलके नृपतियोंने अपनी कन्यायें असुर-बनीपालको ब्याह दीं। किन्तु मन् ई०से ६६० वर्ष पहले लीदिया-नृपतिके साहाय्यसे सन्धेतिकमने असुरीय सेनाको मिथसे निकाल बाहर किया था। उधर वाविलोनियामें भी असुरीय बड़ा और समसुम-युकिनने जातीय दलके नेता बन अपने भाईके विरुद्ध युद्धोपणा की। किन्तु उन्हें अकृतकार्य ही पीछे हटना पड़ा था। सन् ई०से ६४८ वर्ष पहले वाविलोनने आत्मसमर्पण किया और समसुमयुकिनको आगमें जल मरना पड़ा। अन्तको असुरीय सेनाने शरवकी भी पराजय किया, किन्तु वह सिमेरोय-सीदीय दलका सामना पकड़ न सकी। सन् ई०से ६२६ वर्ष पहले असुर-बनी-पालके मरनेपर असुरीय सम्राज्य विध्वंस हो गया। यह रसिक, दीर्घ-सूत्री और निर्दय रहे, किन्तु कला-कौशलका बड़ा पादर करते थे। निनेवी:का बड़ा पुस्तकालय इन्हीं की सम्पत्ति है।

असुरमाया (सं० त्रि०) पेशाचिक कुसृति, पासेबजद अफसुन, भूतोंका जादू।

असुररक्षस (वै० स्त्री०) १ असुर एवं राक्षस। २ पिशाच, भूत, पासेस, शैतान्।

असुरराज (सं० पु०) असुरेषु राजते; राज-क्रिप्, ० तत्। १ बलिराज। यह प्रह्लादके पौत्र थे। २ वकाशुर। ३ असुरोंका अध्यक्ष, शैतानोंका बादशाह।

असुररिपु (सं० पु०) १-तत्। १ असुरोंका शत्रु, पासेवोंका दुश्मन्। २-विष्णु। असुरारि प्रवृत्ति शब्दसे भी विष्णुका बोध होता है।

असुरसा (सं० स्त्री०) न सुष्टु, रसो यस्याः, नञ-बहुव्री०। बबरी, तुलसी विशेष, बबयी।

असुरसूदन (सं० पु०) असुरोंको नाशकरनेवाले विष्णु।

असुरसेन (सं० पु०) दैत्य विशेष। इसके देहपर गया नामक नगर प्रतिष्ठित है।

असुरघ्न (सं० त्रि०) असुरं हन्ति, असुर-घ्न-क्विप्। दैत्यनाशक, भासिषकी बरबाद करनेवाला। यह शब्द अग्नि, इन्द्र प्रभृति देवताओंका विशेषण है।

असुरा (सं० स्त्री०) अस्यति छिपति जनान् अन्व-कारेण, असु छिपणे उरन् टाप्। १ रात्रि, रात। २ राशि। ३ वेश्या, रखड़ी। ४ हरिद्रा, हलदी। ५ राई। 'असुरः सुधाभिन्नमोरानिक्ता ऋषिकामरौ।' (अमर)

असुराई, असुरावो देखो।

असुराचार्य (सं० पु०) असुराणामाचार्यो गुरुः, इ-तत्। दैत्योके गुरु श्रुक्ताचार्ये।

असुराधिप (सं० पु०) इ-तत्। १ प्रह्लादपौत्र वलि-दैत्य। २ असुरोंका अध्यक्ष, असिषोंका बादशाह।

असुरायी (हिं० स्त्री०) असुरता, दुष्टता, बुरायी।

असुरारि (सं० पु०) देवता, असुरका शत्रु।

असुराह्न (सं० स्त्री०) असुरस्थाह्ना संज्ञा यस्य, शाक-वह्व्री०। कांस्थ, कांसा।

असुराह्नपतङ्ग (सं० पु०) तैलपायिपतङ्ग, तिलचट्टा।

असुराह्नविट् (सं० पु०) कांस्थमल, कांसिका मैल।

असुराह्ना (सं० स्त्री०) असुराह्न देखो।

असुरिया, असुरीय देखो।

असुरी (सं० स्त्री०) १ राजिका, राई। २ असुर-पत्नी, असुरकी स्त्री।

असुरीय (Aesuria) असुरिया और वाक्लिोनियाका बड़ा साम्राज्य। यह टिगरिस और युफ्रेटस नदीकी दोनो ओर बसा था। वाक्लिोनिया देखो।

असुर्य (सं० त्रि०) असुराय हितम्, गवा० यत्। १ असुरकी हितकर, भासिषकी फायदा पहुँचानेवाला। २ अमूर्त, वेगस्त। ३ असुरसम्बन्धीय, भासिषसे ताड़क, रखनेवाला। (स्त्री०) ४ अमूर्तता, रुहानियत। ५ असुरसमूह, शैतानीका गिरोह। ६ भेद्यल, वाटलका पानी।

असुराम (सं० वि०) सुखेन लभते, सु-लभ-उल्ल, विरोधे नञ्-तत्। दुष्प्राप्य, असाध्य, सुत्रिकलसे हासिल होनेवाला।

असुखि (वे० त्रि०) सु बाहु० कि दिर्भावः, नञ्-तत्। सोमलताका पीड़क न होनेवाला, जो सोमलताको निचोड़ता न हो।

असुसू (सं० पु०) असुन् प्राणान् सुवति यमसदनं प्रेरयति, असु-सू प्रेरणे क्विप्। बाण, जान मारनेवाला तीर।

असुस्य (सं० त्रि०) सुखेन तिष्ठति, सु-स्य-क्, विरोधे नञ्-तत्। दुःस्य, दुःखिस्थित, रोगयुक्त, बीमार, जो आराममें न हो।

असुहृद् (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन्, जो शत्रुस दोस्त न हो।

असू (सं० स्त्री०) न सृते, सू-क्विप्, नञ्-तत्। प्रसव न करनेवाली स्त्री, प्रकीमा, बांभ।

असूलण (सं० स्त्री०) सूच सुर्ध्वं वा लुगट्, नञ्-तत्। अनादर, अवज्ञा, अवहेला, बे-इज्जती, नाफरमांवर-दारी।

असूष्म (सं० त्रि०) सूच-ष्मन् विरोधे नञ्-तत्। स्थूल, मोटा, जो बारीक न हो।

असूष्क (हिं० वि०) सूक्ष्म या देख न पड़नेवाला, अदृश्य, पौष्टीदा, जो नजर न आता हो।

असूत (वे० त्रि०) सृयते स्र, सू-क्त-नञ्-तत्। १ अम-सूत, बांभ, प्रसव न करनेवाली। (सं०) नासित सूतो यस्य, नञ्-वह्व्री०; २ सारथिशून्य, जिसके गाड़ीवान् न रहे। 'असूत सा गावरथमोयम्।' (इमर १।१०) (पु०) सूतः सारथिः, नञ्-तत्। ३ सारथि न होनेवाला व्यक्ति, जो शत्रुस गाड़ीवान् न हो। (हिं० वि०) ४ प्रतिशून्य, सम्बन्धशून्य, खिलाफ, वैमिलसिला, जो मिला न हो।

असूति (वे० स्त्री०) १ उत्पत्तिका अभाव, पैदा न होनेकी बात। २ प्रतिबन्ध, रोक। ३ अमसूतता, बांभपन।

असूतिक (वे० त्रि०) असूत देखो।

असूयक (सं० त्रि०) असूय कण्डादि० यक् खल्। दोषारोपशील, सुक्ताचीन्, हासिद, भलाईमें बुराई लगानेवाला।

असूयन (सं० स्त्री०) परिवाद, पैगन्ध, मिथ्याभि-थाय, निन्दारामियोग, दोहमत।

असूययित्वा (सं० अथ०) मिथ्याभिग्राह्य देकर, तोड़मत लगाके ।

असूया (सं० स्त्री०) असू असूय वा यक् अ-टाप ।
१ परगुणमें दोषारोप, दूसरेकी सिद्धतमें तोड़मतका लगाना । मनुने असूयाकी पापमें गिना है । 'असूया व दोषातोःशुभेष्वपि' (अमर) २ विरोध, भगड़ा । ३ शत्रुता, दुश्मनी । ४ मञ्जारी भाष विशेष । काव्यमें यह रसके धन्तगत आती है । ५ अत्रिकी स्त्री ।

असूयिष्ठ (सं० त्रि०) असन्तुष्ट, जातामर्ष, कुपित, नाखुश, जो बखेड़ा कर रहा हो ।

असूयु (सं० त्रि०) असू असू वा क्यडादि० यक् उन् । १ असूयागोल, तोड़मत लगानेवाला । (पु०) २ असूया, तोड़मत ।

असूर (सं० त्रि०) सूरौ स्तभो धातूनामनेकाधत्वात् स्तुती भावे घञ् नञ्-बहुव्री० । १ स्तोत्ररहित, स्तव रहित, जिसे तारीफ न मिले । (दे० श्लो०) २ सोमरम निकालनेवालेकी अनुपस्थिति । ३ स्तोत्ररहित स्थान, जिस जगहकी कोई तारीफ न करे ।

असूर्षण, अक्षय देकी ।

असूर्त (वै० त्रि०) सूरौ स्तभो क्त बाहुल० न तस्य नत्वम् । १ अप्रेरित, जो भेजा न गया हो । २ दूरस्थ, जो नजदीक न हो ।

असूर्य (वै० त्रि०) सूर्यग्रन्थ, आफतावसे खाली ।
असूर्यग्रन्थ (सं० त्रि०) सूर्यमपि न पश्यति, असूर्य-दृग्-खग्-सुम् च, असमर्थ-समा० । अत्यन्तगुप्त, सूर्यको भी न देखनेवाला, निहायत योगोदा, जो आफतावकी भी देखता न हो ।

असूर्यम्भश्या (सं० स्त्री०) १ नृपपत्नी विशेष, बाद-शाहकी औरत । २ अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्री मात्र, महलके भीतर रहनेवाली औरत । यह सुन्दर स्त्रीके विशेषणमें भी आती है । ३ सतो-साध्वी स्त्री, पाकदामन औरत ।

असूय, अक्षय देकी ।

असूयक् (सं० स्त्री०) १ सूक्ष्मानाम गन्धद्रव्य, मेथी । २ कुडूम, केसर । ३ रक्त, खून ।

असूयकर (सं० पु०) असूयकरत्नं करोति असूयज-क-

ट, उप० सं० । शरीरस्थ रस धातु । वैद्यशास्त्रके मतसे अन्नदि भक्षण करनेपर पहिले यह सब एक प्रकारके रसरूप (काइल)में परिणत होकर फिर रक्त हो जाता है । स्रुत्यमें लिखा है,—रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा एवं मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है । भावप्रकाशमें भी कहा है,—प्राणवायु भुक्तद्रव्यकी पहिले आमाशयमें ले जाता है । वहां भुक्तद्रव्य कषाय, मधुर, लवण, कटु, तिक्त, अम्ल—इन छः रसोंसे युक्त होकर फेनका आकार धारण करता, उसीका नाम रस है ।

असूयक्प (सं० पु०) १ जलौका, जौक । २ रात्रस-विशेष । यह रक्त पिया करता है ।

असूयक्पात (सं० पु०) रक्तप्रवाह, खूनका गिरना ।

असूयक्पावन् (सं० त्रि०) रक्तप, खून पौनेवाला ।

असूयक्याव (सं० पु०) रक्तप्रवाह, खूनका गिरना या निकलना ।

असूयक्याविन् (सं० त्रि०) रक्त निकालनेवाला, जो खून बहा रहा हो ।

असूयुत्य (सं० पु०-स्त्री०) केसर, अयास, घोड़े या शेरके गर्दनका बाल ।

असूयुसद (सं० पु०) कौष्ठ, मेदा, कौठा ।

असूयुदर (सं० पु०) असूयुदर्यसे व्ययते अननेति । रक्तप्रदर । यह रोग विरुह मद्यादिके अग्रन, अजीर्ण, गर्भप्रपात, अति भोग्य, यानाध्वगोक, अतिकर्षण, भाराभिघात और दिनके गयनसे उत्पन्न होता है । इससे सवेदन साङ्गमर्द, दौर्बल्य, भ्रम, मूर्च्छा, मद, टपा, दाह, प्रलाप, पाण्डुत्व और तन्द्रारोग नष्ट हो जाता है । (भावप्रकाश)

असूयुदरशैलेन्द्ररस (सर्वोद्भसुन्दर) (सं० पु०) रक्त-प्रदरका रसविशेष । इसके बनानेकी रीति यह है—इंटाका चूर्ण, शोधित अश्वक १ पल, साङ्गा २ तोला, दाक्षिणी, एलायची, तेजपत्र, कर्पूर, नलद (खम्), जालबी, बाला, सुस्ता (मोथा), नागेश्वर, लवङ्ग, कुष्ठ और त्रिफला प्रत्येक चार-चार धानाभर ले जलमें मर्दन करके २ रत्नी प्रमाण यटी बनानी चाहिये । इस औषधिकी सेवन करनेसे अक्ष-

मर्द और वेदनायुक्त सर्वप्रकार प्रदर नष्ट होता है।

(प्रयोगाद्य)

असृग्दोह (सं० त्रि०) रक्त चूसनेवाला, जो खून बहाता हो।

असृग्धरा (सं० स्त्री०) असृक् रक्त धरति, असृग्-धृ-भच्-टाप्। चर्म, चमड़ा।

असृग्धारा (सं० स्त्री०) १ चर्म, चमड़ा। २ रक्त-प्रवाह, खूनका दरया।

असृग्बहा (सं० स्त्री०) असृक् शोषितं वधति सर्वत्र सञ्चालयति, असृग्-वध-भच्। नाड़ी, नब्ज। नाड़ी, शरीरके सकल स्थानमें रक्तवहन करती, इसीसे उसका यह नाम पड़ा है।

असृग्मोक्षण (सं० स्त्री०) असृजो रक्तस्य देहा-दिमोक्षणं निःसारणम्, ६-तत्। रक्तका मोक्षण, खूनका निकास। देहमें यदि रक्त बढ़े या किसी-तरह विगड़े, तो उसे देहसे निकाल डालना चाहिये। उसी निःसारणका नाम असृग्मोक्षण है। पूर्वकालमें सकल देशके चिकित्सक ज्वर प्रसूति नाना प्रकार रोगमें रक्तमोक्षण करते थे। रग और कुहनीके ऊपरसे सचराचर रक्त निकाला जाता है। रक्त निकालनेसे पहले रोगीको शय्यापर बैठा देना चाहिये। क्यों कि मत्स्या नीचा रहनेसे हठात् अधिक रक्त गिर सकता, जिससे रोगीके प्राण जानकी सम्भावना रहती है। रोगीको बैठाकर हाथपर पट्टी बांध देना चाहिये। उसके बाद गिराको फूल धानेपर हवाझुंझसे दबाकर नश्वर लगाते हैं। फिर प्रयोजनानुसार रक्त निकल या रोगीके मूर्च्छित हो जानेसे अतः स्थानपर अङ्गुलि लगा पट्टी खोल डाले। परिशेषमें अतः स्थानको दबाकर बांधनेसे फिर रक्त नहीं निकलता।

रगमें धमनीके मध्यस्थलमें तिरछा नश्वर लगानेसे भी रक्तमोक्षण किया जाता है। प्रयोजनानुसार रक्त निकल जानेसे इस धमनीको बिलकुल काट डालना चाहिये। न काटनेसे उस जगह एन्थ्रिजय नामक अशुद्ध निकल सकता है। किन्तु काट देनेसे उसके उभय सुख सुड़कर सुख-जाता है।—कुहनीवाली

गिराको तरह पैरकी गिरासे भी रक्तमोक्षण करते हैं। मासारोग या ज्वरकालमें अत्यन्त मस्तकवेदना होने और मत्स्या भारी पड़नेपर कितने ही लोग नासिकाके भीतरसे रक्त निकाल डालते हैं। सचराचर नासिकाका आभ्यन्तरिक पर्दा (Schneiaian membrane) फार रक्तमोक्षण किया जाता है।

तीन प्रकारकी प्रणालीसे रक्तमोक्षण करते हैं।

१म—अश्वप्रयोगसे इसकी बात पहले ही बतायी जा चुकी है। २य—कटोरी तथा सींगी और ३य—जोंक लगानेसे।

सींगी लगानेके लिये शीशेकी छांटी कटोरियां रहती हैं। सींगी लगाते समय शीशेकी कटोरी नश्वर, सुराका प्रदीप प्रसूति निकटमें प्रस्तुत रखे; फिर जिस स्थानसे रक्त निकालना हो, उसे पहले धोकर उष्ण वस्त्रसे अच्छी तरह रगड़े। उसके बाद कटोरीमें थल्य सुरा डाल प्राग लगा देना चाहिये। अग्निके तापसे जब कटोरी अल्प उष्ण होती और भीतरका वायु निकल जाता, तब धीत स्थानमें यह कटोरी उलटाकर लगानेसे चर्मपर चिपक बैठती है। यह सकल प्रक्रिया शीघ्र-शीघ्र करना चाहिये। चर्मपर कटोरी चिपक बैठनेसे धीरे-धीरे वह स्थान रक्तवर्ण हो जाता है। उस समय कटोरी निकाल रक्तवर्ण स्थानको तिरछा-तिरछा और दे और अतिशीघ्र पहले-को तरह फिर कटोरी लगाये। धीरे-धीरे कटोरीके भीतर रक्त निकल पाता है। प्रयोजनमत रक्त निकल जानेसे कटोरीको हटा अतः स्थानपर लिपट वस्त्र लपेट देना चाहिये। अधिक रक्त निकालना आवश्यक होनेसे दो-तीन कटोरियां लगानी पड़ती हैं।

पश्चिम-देशके कफ़ड़ शीशेकी कटोरी नहीं, सींगी लगाते हैं। मछिपके शूद्रकी टोनी औरसे छिद लेते हैं। शरीरके किसी स्थानपर अल्प औरकर शूद्रकी मोटी और लगा देते हैं। पीछे डूमरी और सुंघमें सांसको ऊपर खींच शरीरका रक्त निकाल लेते हैं। जोंक लगानेसे पहले शरीरका उपरिभाग अच्छीतरह परिष्कृत करे। फिर कपड़ेसे जोंकका अङ्ग ढोख डाले। शेषको किसी ग्लास या प्यालेमें रख चर्मपर

उलटकर लगानेसे जोक चिपक जाती है। चर्मको कुछ और डालनेसे भी उस स्थानपर जोक लगानेमें कष्ट नहीं पड़ता। जोक छुट जानेसे घातस्थानपर खेद या अलसीका प्रलेप चढ़ता, जिससे और भी किञ्चित् रक्त निकल आता है। किन्तु अधिक रक्तस्राव होनेसे घातस्थानपर मकड़ीका छोटा जाला रख या काटिक लगा देना चाहिये। अन्तमें उस स्थानको वस्त्रसे बांध देते हैं।

दुर्बल व्यक्ति, बालक, गर्भवती स्त्री और षोड़ा विशेषसे सहज ही निर्बल हो जानेवाले रोगीका रक्तमोक्षण करना न चाहिये। किन्तु विशेष आवश्यक आनेपर सावधानसे यत्सामान्य रक्त निकाल लेते हैं।

असृज् (सं० क्लो०) अस्यते चिप्यते इतस्ततो अन्धनाडीभिः, अस षट्त्रि—यद्वा न सृज्यते अन्धरङ्गवत् शरीरेण सममेव जातत्वात्, सृज्-किन् । १ रक्त, खून। अमरकोषमें असृज्के यह पर्याय लिखे हैं,—रुधिर, स्तोहित, अश्रु, रक्त, चतज, शोणित। २ मङ्गलपद। रक्तवर्ण रङ्गनेसे मङ्गलपद असृज् कहलाता है। ३ कुङ्कुम, केसर। ४ विष्णुभ्रमे षोडश योग। असृज् योगमें जन्म लेनेसे मनुष्य धनी कुतूंसित और दुरात्मा होता है। वह विदेश जाता और महाप्रचीभी बलवान् निकलता है।

असृष्य (सं० क्लो०) स्वर्णमैरिक, सोनगिरु।
असृषि (सं० त्रि०) अप्रतिहत, वैरोक, जो रीका न गया हो।

असृत (सं० त्रि०) १ असिद्ध, जो तैयार न हो।
२ अपक्व, कच्चा, जो पका न हो।

असृन्मिथ्र (सं० त्रि०) रक्तसे आच्छादित वा मिथित, खून आसूदा, जो खूनसे भरा हो।

असृन्मुख (द्वे० त्रि०) नृशंस मुख-विग्रिष्ट, खूनी दहनवाला, जिसके खूनी मुँह रहै।

असृपाट (सं० पु०) पत्तणो देवो।

असृपाटो (सं० स्त्री०) असृजो रक्तस्य पाटो गमन-मनया रौत्या पृषो० साङ्ग। रक्तधारा, खूनका दरया।

असृष्ट (सं० त्रि०) १ अरचित, जो बनाया न गया

हो। २ अपदत्त, जो बंटा न हो। ३ प्रवाहित, जारो, जो रीका न गया हो।

असृष्टान्न (सं० त्रि०) अन्नको न वांटनेवाला, जो अनाज न देता हो।

असृशेग (हिं० वि०) असृष्ट, बरदायत न होनेवाला, जो सहा न जाता हो।

असेचन, असेचनक देखो।

असेचनक (सं० त्रि०) न सिद्धति मनोऽध्यात्, सिच् अपादाने ल्युट् सञ्चार्यां कन्—यद्वा सिद्धति मनस्तोपयति, सिच् कर्तरि ल्युट् स्वार्थे कन्; नास्ति सेचनकः मनस्तोपको यध्यात्, नञ् प्र-बहुव्री०। १ अत्यन्त प्रियदर्शन, निहायत खूबसूरत, जिसे देखनेसे पेट न भरे। २ सेकशून्य, बेसीव। (क्लो०) सेचनं सेकः, स्वार्थे कन् अभावे नञ्-तत्। ३ सेकका अभाव, सिंचायीका न होना।

असेन्य (वे० त्रि०) १ सेन्यके अयोग्य, फौजके नाका-विल। २ आघात न करनेवाला, जो जख्म न देता हो।

असेरी—बम्बई प्रान्तके कोडण जिलेका एक स्थान। यहां एक पहाड़ी किला बनी, जिसमें एक छोटी गुफा खुदी है।

असेवग (सं० क्लो०) अभावे नञ्-तत्। २ सेवाका अभाव, शय्याका न होना, अदम-तावेदारी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। सेवाशून्य, तावेदारी न करनेवाला।

असेवित (सं० त्रि०) १ असेवित, विखरित, खुयाल न किया हुआ, जो भूलमें पड़ गया हो। २ लुप्तव्यवहार, मतभ्रक, जो छूट गया हो।

असेवितेखरद्वार (सं० त्रि०) धनियांके द्वारपर बैठके राह न देखनेवाला, जो बड़े आदमियोंके दरवाजेपर नौकरी या-याज्ञके लिये ठहरता न हो।

असेव्य (सं० त्रि०) १ सेवाके अयोग्य, जो तावेदारी किये जानिके लायक न हो। २ अभ्यासके अयोग्य, जो काममें जानिके लायक न हो।

असेसर (सं० पु०) सभ्य, सभासद, सालिस, आसिस, पञ्च। Assesor फौजदारीका मुकद्दमा फौसल करने में जजकी राय देनेके लिये असेसर चुना जाता है।

असेना (हिं० पु०) हृत्त्वविशेष, कोई पैड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है।

असेना (हिं० वि०) ग्रेनीपर न चलनेवाला, बेकायदा, जो राहसे जाता न हो।

असो, आसो (हिं० क्रि० वि०) वर्तमान वर्गसंग, इस साल।

असोक (हिं०) अनेक शब्दों।

असोकी (हिं० वि०) शोकशून्य, अफसोस न करनेवाला।

असोच (हिं० वि०) शोच न करनेवाला, जिसे फिफ्न न रहें।

असोज (हिं० पु०) आश्विन मास, कारका महीना।

असोम (हिं० वि०) शुष्क न होनेवाला, जो सूखता न हो।

असोसियेशन (अ० स्त्री०) १ सङ्गम, मंसंग, साहचर्य, हमनशीनी, साथ, मिलाप। २ सभा, समाज, पंक्ति, परिपट, मजलिस, अज्जुमन, जमात। Association.

असौध (हिं० यी०) दुर्गन्ध, बदबू।

असौध, असौध शब्दों।

असोनामन् (ई० त्रि०) ऐसे-वैसे नामवाला, जिसके नामका ठिकाना न रहे।

असौन्दर्य (म० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ सौन्दर्यका अभाव, बदसूरती, भौंड़ापन। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ सौन्दर्यशून्य, बदसूरत, भौंड़ा।

असौम्य (म० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। १ सौन्दर्यशून्य, बदसूरत, भौंड़ा। २ अप्रिय, नागवार, डरावना।

असौम्यस्वर (सं० त्रि०) असौम्यः कुत्सितः स्वरौ यस्य, बहुव्री०। फाफकी तरह मन्द स्वरयुक्त, कर्कश स्वरयुक्त, काँव-काँव करनेवाला, जो बड़बड़ाता हो।

असौष्ठव (म० स्त्री०) सुष्ठु, भवम्, सुष्ठु-अण् नञ्-तत्। १ सौन्दर्यका अभाव, बदसूरती, भौंड़ापन। २ अयोग्यता, नाकाबिलियत। ३ अलङ्कार शास्त्रमें स्वरदशा विशेष। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ४ सौष्ठवरहित, बदसूरत।

अस्त (हिं० पु०) १ बुलाक, नाकमें पड़नेका लट-

कन। नैनोतालकी और लटकनदार जो छोटीसी नथनी पहनी जाती, यही अस्त कहाती है।

२ मन्द्राज प्रान्तके गञ्जाम जिलेकी एक जमीन्दारी। इसका क्षेत्रफल १६० वर्गमील है। पड़ले यह गुमसूर राज्यका एक अंग रही। २ मन्द्राज प्रान्तके गञ्जाम जिलेका एक नगर। यह अक्षा १८° ३६' ३५" उ० और द्राघि० ८४° ४२' ६" पू० पर अवस्थित है। गुमसूर यहांसे ५ कोस दक्षिण पड़ता है। ऋषिकुल्या और महानदीके सङ्गमपर इस नगरका दृश्य विद्यमान है। नगरके पास ही ऋषिकुल्या नदीपर १८ विघे लम्बा इमारती पुल बना है। अस्तमें जमीन्दारीका इंजकार्टर होनेसे उसके प्रभु निवास करते हैं। नगरमें छोटी कचहरी, कौदखाना, धाना और ढाकघर बना है। सन् १७२५-२६ ई०को गुमसूर विद्रोह उठनेपर सरकारी सेनाने कुछ दिनोंके लिये इसे अधिकार कर लिया था। इसकी चारो तरफ उपजाऊ भूमि विद्यमान है। अस्तकी खेती अधिक होती है। इसके निकट ही जो चीनीके कारखाने हैं, उनमें हजारों आदमी काम करते और लाखों रुपयेका साल बनाते हैं।

अस्तन्दगिरि—युक्तप्रदेश-बाँदाके एक कवि। इनका जन्म मन् १८५८ ई०में हुआ था। यह गोसाईं नवाब हिम्मत बहादुरके वंशज रहे। अज्ञाररसकी कविता इनका प्रधान लक्ष्य थी। 'अस्तन्दविनीद' नामक काव्यग्रन्थमें इन्होंने अपना चातुर्य प्रकट किया है।

अस्तन्दित (म० त्रि०) अचरित, अप्रतिहत, जो गिरा न हो।

अस्तन्दितव्रत (म० त्रि०) व्रतशील, अचदका सच्चा, वातका धनी।

अस्तन्न (त्रि० त्रि०) स्कन्द क्त, नञ्-तत्। १ अचरित, जो बिचरा न हो। २ अनाच्छादित, जो टंका न हो। ३ स्थायी, पायदार।

अस्तभन (ये० त्रि०) स्तम्भ-लुपट, नञ्-तत्। १ बोधका अभाव, नासमझी। २ स्तम्भ वा साहाय्यका अभाव, सहायिका न मिलना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ बोधशून्य, नासमझ।

अश्वधोयु (वै० त्रि०) कृती च्छेदने वाहु० कु
तकारस्य धकारः। रुधु रुद्रस्यनाम। नञ् पूर्व धातोः
अकारः उपजनः, धुगुम्स्य धो भावः—यद्वा नञ् पूर्वात्
करोतिनिर्णयामकृतग्रन्थस्य अश्वभावः। दधातेभि्रियते-
र्वा वाहुलकात् उभि प्रत्ययः, णित्वाद् युगागमः
धकारस्य धोभावः। (निरुक्त) अश्वस्य, अश्वस्य, अवि-
च्छिन्न, वडा, भारी, बहुत, क्यदा, जो कटा न हो।
“बले धनं यदसदश्वधोयु धुव”। (अश्व० ५३१।१)

अश्वसलित (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ खलनगून्य,
जो फिसल न पड़ता हो। २ अग्रमत्त, जो मतवाला
न हो। ३ स्थायी, मजबूत, जो हिला न हो।

अश्वसलितप्रयाण (सं० त्रि०) अग्रसर वननेमें खलित
न होनेवाला, जो मजबूतीसे कदम बढ़ा रहा हो।

अश्व (सं० पु०) अश्वन्ते सायं प्रातर्वा सूर्यस्य
चान्द्रस्य वा किरणा यत्र, अश्व क्षेपणे आधारे ङ।
१ पश्चिमाचल, अश्वपर्वत। २ सूर्यास्त, गु.रुव-भाफताव।
३ ज्योतिषोक्त सन्नेसे सप्तस्थान। समय यह अश्वने
सन्नेसे सप्तम स्थानपर पहुँचकर अश्व हो जाते हैं।
(क्ली०) ४ गृह, मकान्। ५ मृत्यु, मौत। ६ दर्शन-
का अयोग्यत्व, देख न पड़नेकी हालत। (त्रि०)
७ क्षिप्त, फेंका हुआ। ८ अश्वसित, निकाला हुआ।
९ अश्वसानप्राप्त, खतूम। १० निरस्त, हटाया हुआ।
११ प्रेरित, जो रवाना कर दिया गया हो। (अश्व०)
१२ गृहमें, मकान् पर।

अश्वक (सं० पु०) अश्वं अश्वनराहसिं अश्वसानं वा
करोति, अश्व-णिच्-खुल्। १ निर्वाणमोघ। (दे० क्ली०)
२ गृह, मकान्।

अश्वकोप (सं० त्रि०) विगतकोप, जो गु.म्हा करके
ठण्डा पड़ गया हो।

अश्वग (सं० त्रि०) अश्वमदर्शनं पश्चिमाचलं वा
गच्छति, अश्व-गम-ङ्-इ-तत्। अश्वस्य, सूर्यकी किरणसे
आच्छन्न, पश्चिमाचलगत, हुआ हुआ, जो बैठ गया हो।

अश्वगत, अश्व देखी।

अश्वगमन (सं० क्ली०) अश्वस्यादर्शनस्य गमनं
प्राप्तिः, इ-तत्। डूब जानेकी हालत, गु.रुव। अश्व
सकलके पहले किसी रागिमें रह पीछे-उसमें सप्तम

रागिपर उदय एवं अश्वस्य होनेकी अश्वगमन कहते
हैं। सूर्य चन्द्रादिके अश्वस्यत्व जानेकी भी अश्वगमन
ही कहा जाता है।

अश्वगिरि (सं० पु०) पश्चिमाचल, मगरवी देहाड़।
इस पर्वतपर सूर्य जाकर डूबता है।

अश्वङ्गत (वै० त्रि०) १ डूबा हुआ, जो बंठ गया
हो। २ गठ, बरबाद। ३ अवनत, झुका हुआ।

अश्वधी (सं० त्रि०) निवृद्धि, अश्वमक।

अश्वान (हिं०) सन देखी।

अश्वबल (अ० क्ली०) अश्वशाला, तबेला, घोड़शाल।
Stable.

अश्वव्य (सं० त्रि०) अश्वायी, विचनित, नापायदार,
जो ठहरा न हो।

अश्वव्यल (सं० क्ली०) अश्वायिल, विचलित दगा,
नापायदारी, घबराहट।

अश्वमतौ (सं० स्त्री०) अश्वमतति, अत-अच् गौरादि०
डीप्। शालपर्णीवृक्ष, सलूनका पेड़।

अश्वमन (सं० क्ली०) अश्वनाहु० भावे अच् अश्वं
अदर्शनस्य अश्वः गतिः। १ भूगोलकचामे आच्छादन-
हित सूर्यादिकी अदर्शनप्राप्ति, जमीनकी दूसरी ओर
जानेसे आफताव वर्गेरहका देख न पड़ना। अश्व
सूर्यादेरदर्शनस्य अश्वः प्राप्तिर्यस्मिन् काले, अश्वमी०।
२ सूर्यादिके अश्व होनेका समय, आफताव वर्गेरहके
डूबनेका वक्त।

अश्वगमनचक्र (सं० क्ली०) अश्व होनेका नक्षत्र,
जिस नक्षत्रमें किसी ग्रहका अश्व रहे।

अश्वमनवेला (सं० स्त्री०) सूर्यास्तका समय, जिस
वक्तमें आफताव डूबे।

अश्वमय (सं० पु०) अश्वं ईयति गम्यतेऽस्मिन्,
अश्वं इण परजिति अच्। १ प्रलय, कृयामत।
२ सूर्यादिका अदर्शन, आफताव वर्गेरहका देख न
पड़ना। ३ अन्य ग्रह सकलका सूर्यके साथ योग,
दूसरे सितारोंका आफतावसे मिल जाना।

अश्वमयन (सं० क्ली०) अश्वमय देखी।

अश्वमित (सं० त्रि०) डूबा या बंठा हुआ, जो
डूब या बैठ गया हो।

अस्तमौके (दे० अथ०) अस्तं मातेः कौकन् धातो-
र्नापस निपात्यते, अस्त प्राप्यतेऽस्मिन् । अन्तिकमें,
घरपर, पास, नजदीक ।

अस्तर (फा० पु०) १ भित्तहा, दोहरे कपड़ेके नीचे
की तरह । २ दोहरे कमड़ेके नीचेकी तरह । ३ जमीन्,
चन्दनका तेल । इसमें अतर बनता है । ४ वारोक
साड़ीके नीचे लगनेवाला वस्त्र । धुनीचिका रङ्ग । इसपर
दूसरा रङ्ग चढ़ता है । (हिं०) ६ धूल, इयियार ।
अस्तरकारी (फा० स्त्री०) १ चूनेका रगड़ रगड़ कर
चढ़ाया जाना । २ बनावट, साज ।

अस्तरण (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-त्त्वं । स्तरणका
अभाव, विस्तारका न होना, न फूलनेकी हालत ।

अस्तावत् (सं० त्रि०) अवरोधित, निवारित, अटका
हुआ, जो रोका गया हो ।

अस्ताव्यस्त (सं० त्रि०) आकुल, अव्यवस्थित, अस-
व्यव, खराब-खस्ता, घमर-घमर, ऊटपटांग ।

अस्तासङ्ख्य (सं० त्रि०) अगणित, वेशमार ।
अस्ता (वे० स्त्री०) १ आयुध, वाण, इधितार, तीर ।
(अथ०) २ भयनमें, घरपर ।

अस्ताग (सं० पु०) अर्हत् विशेष । यह उत्सर्पिणी
युगके पन्द्रहवें अर्हत् रङ्ग ।

अस्ताघ (सं० त्रि०) अस्तं नटं अघं आगित्य
यत्र, बहुव्री० । अति गभीर, निहायत गहरा ।

अस्ताचल (सं० पु०) कर्मधा० । पश्चिमाचल, अस्त-
पर्वत, जिस पहाड़में आफताब है वे ।

अस्ताचलावलम्बिन् (सं० त्रि०) अस्ताचलका अव-
लम्ब लेनेवाला, जो अस्ताचलको पकड़े हो । सन्ध्याको
हूँते समय सूर्य अस्ताचलावलम्बो कहाता है ।

अस्ताद्रि, अस्ताचल द्वयोः ।

अस्तापुर—उड़ीसा प्रान्तके बालेश्वर जिलेका एक
नगर । यहाँ एक सरकारी स्कूलमें परीचीत्तोर्ण
विद्यार्थियोंको प्राथमिक अध्यापन कार्यकी शिक्षा
दी जाती है ।

अस्तावलम्बन (सं० स्त्री०) चित्तिकके पश्चिम भाग-
पर अष्टका उदय, उष्यके मगरी द्विष्टेपे सितारिका
ठहराव ।

अस्तावलम्बिन् (सं० त्रि०) अस्ताका अवलम्ब लेने-
वाला, जो डूब रहा हो ।

अस्ति (सं० अथ०) अस-श्-त्तिप् । अस्तिनास्तिद्वि-
भक्तिः ।
पाशम० । १ होके, ठहरकर । (स्त्री०) २ स्थिति,
वियमानता, हस्ती, हाजिरी ।

अस्तिकाय (सं० पु०) अस्तिकायः स्वरूपं यस्य,
बहुव्री० । जैनमतसिद्ध विद्यमान-स्वरूप पदार्थ विशेष ।
हालत, सुरत । अस्तिकाय पांच प्रकारका होता
है,—१ जीवास्तिकाय, २ पुद्गलास्तिकाय, ३ धर्मास्ति-
काय, ४ अघर्मास्तिकाय और ५ आकाशास्तिकाय ।
शाङ्कराचार्यमें उपरोक्त जैन अस्तिकायका मत काट
दिया गया है ।

अस्तिघोर (सं० त्रि०) दुग्धविशिष्ट, दूधसे लवरङ्ग ।
अस्तिघोरा (सं० स्त्री०) अस्ति घोरं यस्याः, बहुव्री० ।
सुपरिपरिस्तिघोरतीनां बहुव्री०विशेषः । (काशिका) टाप् । बहु
दुग्धवतीं गो, खूब दूध देनेवाली गाय ।

अस्तित्व (सं० स्त्री०) अस्ति भावः त्व । वियमानता,
मौजूदगी, हाजिरी ।

अस्तिनास्ति (सं० अथ०) कदाचित्, शायद ।

अस्तिनास्तिता (सं० स्त्री०) अस्तित्वदेवी ।

अस्तिनास्तित्व (सं० स्त्री०) सन्दिग्ध विद्यमानता,
समझक मौजूदगी ।

अस्तिप्रवाद (सं० स्त्री०) जैन पूर्व विशेष, जैनियोंके
किसी पूर्वका नाम । जैनियोंके चौदह पूर्वां या प्राचीन
ल्लोमें चौथेको अस्तिप्रवाद कहते हैं । पूर्वंक्षो ।

अस्तिमत् (सं० त्रि०) अस्ति विद्यमानं धनसम्बन्ध,
मत्तु । धनी, दौलतमन्द, रुपयेवाला । (स्त्री०)
होप् । अस्तिमती ।

अस्तिस् (सं० स्त्री०) जरासन्ध्यकी कन्या, प्रासिकी
भगिनी और कंसकी पत्नी ।

अस्तीन् (हिं०) आशुन देवाः ।

अस्तु (सं० अथ०) अम भावे तुन् । १ ऐसा ही
हो, जो चाहे सो हो, खैर, भला, क्या मुजायका है ।
२ फिर, भासो ।

अस्तुहार (सं० वि०) प्रबल, समर्थ, ताकतवर,
जोरदार, दगा-जेसा ।

अस्तुत (वै० त्रि०) १ अपभ्रंशित, जो तारीफ़की काविल न हो। २ स्तोत्रगुण्य, जो भजनमें गाया न गया हो। (हिं०) ३ प्रशंसित, सुसतइसिन।

अस्तुति (सं० पु०) १ प्रशंसाका अभाव, अपकीर्ति, हिकारत, घुडू-युडू। (हिं०) २ स्तुति, प्रशंसा तारीफ़।

अस्तुरा (फ्रा० पु०) छुर, बुरा। इससे बाल बनाते हैं।

अस्तुत (वै० त्रि०) अप्रतिहत, जबरदस्त, प्रजैत।

अस्तुतयज्वन् (वै० त्रि०) अदम्य रूपसे यज्ञ करनेवाला, जो यज्ञ करनेमें घकता न हो।

अस्तोने (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ साधु, भला, अच्छा, जो चोर न हो। (क्ली०) २ स्तोकका अभाव, ईमान्दारी, चोरी न करनेकी हालत।

अस्तोय (म० क्ली०) अभावे नञ्-तत्। स्तोय वा चौर्यका अभाव, ईमान्दारी, साहूकारी। पातञ्जल-सूत्रमें लिखा, कि अहिंसा, मत्य, अस्तोय ब्रह्मचर्य और परिग्रह यम कइता है।

अस्तोभ (सं० त्रि०) स्तुभ्यते येन, स्तुभ करणं घञ्-नास्ति स्तोभः डुंफडादिः निरर्थकः शब्दो यत्र। अनर्थक शब्दगुण्य, वीषायदा भावाञ्ज न रखनेवाला।

अस्त्य (वै० क्ली०) गृह, घर, मकान।

अस्त्यान (सं० क्ली०) स्तौ भावे क्त, नञ्-तत्। १ निन्दा, हिकारत, बुरायी। २ भर्त्सन, भाङ्-फटकार। (त्रि०) ३ शसंहत, जो मिला न हो।

अस्त (सं० क्ली०) अस्तते चित्यते, असु क्षेपणे द्रुन्। १ क्षेपणीय वाणादि, फेंककर मारा जानैवाला तीर वगैरह। २ आयुध, हथियार। करणे द्रुन्। ३ चाप, कमान्। ४ रिपु कर्टक प्रहार-साधन खड्गदि, टाल वगैरह। ५ करवाल, तलवार। ६ व्याघ्रनाख, शेरका नाखून। ८ चिकित्सास्त्र, नश्वर वगैरह।

अस्तकण्टक (सं० पु०) अस्त्रं कण्टक इव। वाण, तीर, कांटेजैसा हथियार। अप्रभाग कण्टक-जैसा रहनेसे वाणका यह नाम पड़ा है।

अस्त्रकार (सं० त्रि०) अस्त्रं करोति निर्मितेति; अस्त्र-क-अण्-उप० समा०। अस्त्रनिर्माणकर्ता, हथियार बनानेवाला।

अस्त्रकारक, अस्त्रकार देखो।

अस्त्रकारिन्, अस्त्रकार देखो।

अस्त्रक्षेपक (सं० त्रि०) वाण फेंकनेवाला, जो तीर चला रहा हो।

अस्त्रघला (हिं० वि०) अस्त्र फेंकनेवाला, जो तीर मार रहा हो।

अस्त्रचिकित्सक (सं० पु०) अस्त्रवैद्य, ज़राह, नश्वर लगानेवाला तबیب।

अस्त्रचिकित्सा (सं० स्त्री०) अस्त्रेण चिकित्सा, इ-तत्। अस्त्रादिसे चतव्रणादिका प्रतीकार, ज़राहो, चौरफाड़। यह पाठ भागमें विभक्त है,—१ छेदन चौरना, २ भेदन—फाड़ना, ३ लेखन—खुरचन, ४ वेधन-बुभाना, ५ मेघण-धुलायी, ६ आङ्करण-काट-छांट, ७ विश्रावण—चतके पूय आदिकी वक्ता देना और ८ सिन्नायी-जखममें टंकि लगाना।

अस्त्रजित् (सं० पु०) अस्त्रं तदाघातजं व्रणं जयति तत्रिवारकत्वात्, अस्त्र-जि-क्तिप् तुक्। कवाटवक्रद्वय, देंदुवेका पेड़।

अस्त्रजीव, अस्त्रजीविन् देखो।

अस्त्रजीविन् (सं० पु०) अस्त्रेण तद्व्यापारेण जीवति, णिनि। अस्त्र द्वारा युहादिकर जोविका चखानेवाला, जो हथियारसे लड़ अपनी जिन्दगी बसर करता हो, योद्धा, सिपाही।

अस्त्रधारक, अस्त्रधारिन् देखो।

अस्त्रधारण (सं० क्ली०) अस्त्रका अवस्थान, हथियारका बांधना।

अस्त्रधारिन् (सं० त्रि०) अस्त्रं धरति धारयति वा, अस्त्र धृ चुरा० धारि वा णिनि। अस्त्रधारक, हथियार बांधनेवाला।

अस्त्रनिवारण (सं० क्ली०) प्रहारसे रक्षाका उपपत्य, हथियारकी चोटका बचाव।

अस्त्रमन्त्र (सं० पु०) अस्त्राणां विप्रकर्षाकर्षयोर्मन्त्र, इ-तत्। तन्त्रोक्त फट् मन्त्र, अस्त्रप्रयोग एवं प्रदिग्म अस्त्रके शाकर्षणका मन्त्र।

अस्त्रमार्ज (सं० पु०) अस्त्रं मार्जि, अस्त्र-मृज-अण्, उप० समा०। श्राणकर, सैकुलगर, हथियार घर शान रखनेवाला, जो हथियार साफ़ करता हो।

अस्त्रमात्रं क, अस्त्रमात्रं देखी।

अस्त्रयुध (सं० स्त्री०) अस्त्रद्वारा युध, हथियारकी लड़ाई।

अस्त्रनाशय (सं० स्त्री०) अस्त्रनेपुष्ट, हथियार चला-
नेकी सफाई।

अस्त्रविद् (सं० पु०) अस्त्रं तत्प्रयोगादि वेत्ति, अस्त्र-
विद्-क्षिप्, ३-तत्। अस्त्रप्रयोगादिमें अभिज्ञ, जो
हथियार खूब चलाता हो।

अस्त्रविद्या (सं० स्त्री०) ३-तत्। अस्त्रवेपथु एवं
पाकपंथुप्रापक विद्या, अस्त्रवेपणादिका ज्ञान, जङ्गलका
दृष्टा। २ अस्त्रविद्याबोधक शास्त्र, जिस किताबमें
लहायी सिखानेकी बातें रहें।

अस्त्रविहस, अस्त्रविद् देखी।

अस्त्रवृष्टि (सं० स्त्री०) बाणकी वर्षा, तीरोंकी
बारिश।

अस्त्रवेद (सं० पु०) विद्यते ज्ञायते वेद, विद् करणे
घञ्, अस्त्रस्य तत्त्वेषुपादेः वेदः शास्त्रम्, ३-तत्।
धनुर्वेद, जिस शास्त्रमें हथियार चलानेकी तरकीबें रहें।

अस्त्रद्वैय (सं० पु०) अस्त्रचिकित्सक, जुराह, नयतर
लगानेवाला हकीम।

अस्त्रशस्त्र (सं० स्त्री०) सकल प्रकार आयुध, सध
क्षिप्रका हथियार, तलवार वन्दूक वगैरह।

अस्त्रशाला (सं० स्त्री०) अस्त्रागार, मिलहखाना,
हथियार रखनेकी जगह।

अस्त्रशिक्षा (सं० स्त्री०) सामरिक व्यायाम, जङ्गी
कसरत, हथियार चलानेकी तालीम।

अस्त्रसायक (सं० पु०) अस्त्रं क्षेप्यं सायक इव।
१ नाराचास्त्र। नाराचास्त्र बाणकी तरह चलनेसे अस्त्र-
सायक कहाता है। अस्थाने क्षिप्यते शत्रुरनेन, भम
करणे द्रुन् सतः कर्मधा०। २ सकल लौहमय बाण,
कोहेका तीर।

अस्त्रहीन (सं० स्त्री०) अस्त्रेण तत्प्रयोगेन वा हीनम्,
३-तत्। अस्त्रशून्य, अस्त्रव्यापाररन्त्य, वैहथियार, जो
हथियार चलाना जानता न हो।

अस्त्रागार (सं० स्त्री०) ३-तत्। आयुधागार, अस्त्रवृष्टह,
सिलहखाना, हथियार-घर।

अस्त्राघात (सं० पु०) ३-तत्। अस्त्रका आघात,
अस्त्रका प्रहार, हथियारकी चोट।

अस्त्राहत (सं० स्त्री०) ३-तत् अस्त्रद्वारा आहत, हथि-
यारसे मारा गया।

अस्त्रि (वे० पु०) बाण मारनेवाला, जो शत्रुस तीर
चलाता हो।

अस्त्रिन् (सं० स्त्री०) अस्त्रं धनुस्स्राप्य इति। धनुर्धर,
शस्त्रुधारी, तीर-कमानसे लड़नेवाला, जो हथियार
बांधे हो।

अस्त्री (सं० स्त्री०) १ स्त्रीभिश्च, जो चीज धौरत न हो।
व्याकरणमें—स्त्रीलिङ्गको छोड़ पुंलिङ्ग धौर नपुंसक
लिङ्ग।

अस्त्रीक (सं० स्त्री०) पत्नीरहित, स्त्रीशून्य, धे-धौरत,
जो धौरत रखता न हो।

अस्त्रण (वे० स्त्री०) अस्त्रेण देखी।

अस्त्रनवत् (वे० स्त्री०) अस्त्रिमय, हठडीदार।

अस्त्रल (हिं०) अस्त्र देखी।

अस्त्रला (सं० स्त्री०) अस्त्ररत्न विग्रय, किसी परीका
नाम।

अस्थ्या (वे० स्त्री०) शनकोटि, झादिनी, सेका,
विजलो, गाज।

अस्थ्याग (सं० स्त्री०) अस्थ्यामस्थितिं गच्छति, अस्थ्या-
गम-उ। अगाध, अतलस्पर्श, निहायत गहरा।

अस्थ्यान (सं० स्त्री०) अप्रमादस्त्रेण नञ्-तत्। १ अय-
ल्लट स्थान, अयोग्य स्थान, खुराय जगह। (स्त्री०)
अतलस्पर्शी, निहायत गहरा। (अर्थ०) १ अयुक्त
रूपसे, वेमौके। (हिं० पु०) ४ स्थान, जगह।

अस्थ्याने (सं० अर्थ०) स्थ्याने युक्तम्, नञ्-तत्।
अयुक्तरूपसे, नाकाबिल तीरपर।

अस्थ्यायिन् (सं० स्त्री०) न तिष्ठति स्थाण्डिनि-युक्,
नञ्-तत्। अस्थल, गिताव, लज्ज गुजर जानेवाला।
(स्त्री०) डोप। अस्थ्यायिनी।

अस्थ्यायी (हिं०) स्थ्यायी देखी।

अस्थ्यावर (सं० स्त्री०) विरोधे नञ्-तत्। १ जङ्गम,
मनकूला, जो चल-फिर सकता हो। (हिं०)

२ स्थावर, गुरु-मनकूला, जो चलता फिरता न हो।

पस्थि (सं० स्त्री०) पस्थते पस (पश्निवर्धिता पश्निन् । प० ॥ १२४) इति कश्चिन् । हाडू, पस्थि शब्दके ये कई पर्याय देखे गये हैं,—कीकस, कुख्य, मीदोज। फलके बीज गुठसीको भी पस्थि कहते हैं।

भायमकाशके मतानुसार मेट शरीरके पश्निसे एकता है। उसके बाद यायुहारा गोपित होनेपर पस्थि पंदा होता है। हाडू शरीरका सारभाग है। जैसे हथका सारभाग हथकी, वसी तरह शरीरका सारपदार्थ हाडू देखकी रचा करता है। इसीसे शरीरका मांस चार चमड़ा नष्ट हो जानेपर भी पस्थि नष्ट नहीं होता।

रासायनिक परीक्षा द्वारा मनुष्यके हाडूमें मैकड़े पीछे छे मय चीजे पाई जाती हैं,—

जाम्बवपदार्थ (जिलेटिन) ...	३३-३०	भाग ।
फस्फेटचूर्ण ...	५३-०४	..
कार्बन चूर्ण ...	११-२०	..
फस्फेट चय मैग्नेशिया ...	१-१६	..
मोडा और ममक ...	१-२०	..

प्रथम पक्षस्थामें हाडूकी बनावट मार्मपेगी जैसे रहती है। इसमें छोटे-छोटे छेद एक माय मिले रहते हैं। परन्तु गिरकी खोपड़ी और कर्णके हाडूमें वेना नहीं रहता। क्रमसे इस मार्मपेगीमें पार्थिव पदार्थ, फस्फेटचूर्ण और कार्बन चूर्णके जमनेसे यह सफ़्त हो जाता है। किसी प्रकारके जलमिश्र द्रव्यकमें हाडू भिगाकर रखनेसे पार्थिव पदार्थ गल और वह फिर कोमल एवं स्थितिस्थापक हो जाता है। हाडूमें अत्यन्त ताप लगानेसे जाम्बव पदार्थ नहीं रहता, इसीसे जरासा जिला देनेपर वह चूर-चूर हो जाता है। अतएव दोनों प्रकारके पदार्थोंके न रहनेसे हाडू कठिन होना कैसे सम्भव है।

बचपनके हाडूमें पार्थिव पदार्थ कम रहता है, इसमें खेलते-खेलते लड़कोंके इतना गिर पड़नेपर भी हड्डी नहीं टूटती। फिर परिपक्व वयसमें थोड़ी थोड़ी चोट लग जानेसे ही बहुत मोड़ा होती और सड़क ही हाडू टट जाता है।

गिरावोंको यथेष्ट दुग्ध द्वारा लालन पासन न

करनेसे उनके हाडूमें पार्थिव पदार्थ कम पैदा होता, सुतरां वह कोमल हो जाता है। इसीसे कितने ही रोगी बच्चोंके उठकर चलने फिरनेपर शरीरके भारसे पैर टेढ़े पड़ते हैं। इसका नाम है रिकेट्स रोग। दरिद्रोंके घरमें ही यह पक्षिक देखा जाता है।

पस्थि ही शरीर निर्माणका प्रधान उत्पादान है। देखकी प्रधान प्रधान इन्द्रियां रक्ष करनेके लिये ही पस्थिमें गद्गर निर्मित होता और देख सुकोशलसे चालित होनेके लिये कोमलताय इसके साथ मिलता है। हाडू खेतवर्ण, कठिन और स्थितिस्थापक है। हाडूका उपरीभाग कठिन, संयत और चिकना तथा भीतरी भाग ठोक मधुमचीके छत्ते जैसा छिद्र-युक्त है।

शरीरके हाडू चार खण्डोंमें विभक्त हैं, यथा— दीर्घास्थि, क्षुद्रास्थि, प्रगम्यास्थि एवं विषमास्थि। शरीरकी जड़ एवं अधःशाखामें दीर्घास्थि है। ये सब हाडू खोपड़े हैं। इनके भीतर मज्जा रहती है।

सारे कद्वानमें २८४ प्रथक् प्रथक् हाडू हैं। यथा—मेरुदण्डमें २६, करीटी ८, कर्णास्थि ६, सुजास्थि १४, पक्षर एवं बघोस्थि २६, ऊर्ध्वशाखा ६४, अधःशाखा ६०। इनके सिवा दांत, प्यातिला सेनामेद एवं पन्थान्य वार्मियन अस्थियां ८० हैं।

हमारे देगके शब्दतन्त्र मतमें मनुष्यके शरीरमें सर्वसमेत ३०० अस्थि हैं। इनमें दो हाथों और दो पैरोंके १२०, दोनों पाखं, कटिदेय, वधःस्थल, छठ एवं उदरमें ११७, श्रोत्रके ऊपर ६३—यही ३०० अस्थि हैं।

पैरकी प्रत्येक अंगुलीमें तोन-तोन करके १४, पदतलमें ६, कूर्ची (भ्रूमध्य) में २, एड़ोंमें १, गुल्फमें २, जामुमें १, उरुदेगमें १, इसी तरह दूसरे पैरमें भी ३०, अस्थि रहते हैं सुतरां हाथ और पैरमें सब मिलाकर १६० हूये।

प्रत्येक पाखंमें छत्तीस छत्तीस करके ७२, लिङ्ग या योनिमें १, गुच्छामें १, दोनों नितम्बोंमें २, छठवशमें १, वधःस्थलमें ८, छठमें ३० और नेत्रद्वयमें २ अस्थि हैं।

प्रीवादेशमें ८, कण्ठनालीमें ४, दोनों हनुषामें २,

अस्त्रमार्जक, अस्त्रमार्जक शब्दोः ।

अस्त्रयुद्ध (मं० स्त्री०) अस्त्रद्वारा युद्ध, हथियारकी लड़ाई ।

अस्त्रलाघव (मं० स्त्री०) अस्त्रनैपुण्य, हथियार चलानेकी सफ़ाई ।

अस्त्रविद् (मं० पु०) अस्त्र तत्प्रयोगादि वेत्ति, अस्त्रविद्-कृत्, इ-तत् । अस्त्रप्रयोगादिमें अभिज्ञ, जो हथियार खूब चलाता हो ।

अस्त्रविद्या (सं० स्त्री०) इ-तत् । अस्त्रचेपण एवं भावपूर्ण ज्ञापक विद्या, अस्त्रचेपणादिका ज्ञान, जड़का इत्यम् । २ अस्त्रविद्याबोधक शास्त्र, जिस किताबमें नहायी सिखानेकी बातें रहें ।

अस्त्रविद्वत्, अस्त्रविद् शब्दोः ।

अधुहृष्टि (सं० स्त्री०) धाणकी वर्षा, तीरोंकी धारिश ।

अधुवेद (मं० पु०) विद्यते ज्ञायते वेद, विद् करणे घञ्, अस्त्रस्य तत्चेपणादिः वेदः शास्त्रम्, इ-तत् । अधुवेद, जिस शास्त्रमें हथियार चलानेकी तरकीबें रहें ।

अधुवेद्य (मं० पु०) अधुवेदिकित्प्रसक्त, जराह, नयतर लगानेवाला हकीम ।

अधुवश्वत् (मं० स्त्री०) सकल प्रकार आयुध, सब किष्पका हथियार, तलवार बन्दूक वगैरह ।

अधुवशाला (मं० स्त्री०) अस्त्रागार, सिनहखाना, हथियार रखनेकी जगह ।

अधुवश्या (सं० स्त्री०) सामरिक व्यायाम, जङ्गी कसरत, हथियार चलानेकी तालीम ।

अधुवसायक (सं० पु०) अस्त्रं श्रेष्ठं सायक इव । १ नाराचास। नाराचासूत धाणकी तरह चलनेसे अस्त्रसायक कहलाता है। अस्त्रते सिध्यते शत्रुरनेन, अम करणे दृन् ततः कर्मधा० । २ मकल लोहमय धाण, कोहिका तीर ।

अधुवहीन (सं० स्त्री०) अस्त्रेण तत्प्रयोगेन वा हीनम्, इ-तत् । अस्त्राग्र्यन्, अस्त्रस्थापारग्र्यन्, वेहथियार, जो हथियार चलाना जानता न हो ।

अधुवशागर (सं० स्त्री०) इ-तत् । आयुधागार, अस्त्रग्रह, सिनहखाना, हथियार-घर ।

अस्त्राघात (मं० पु०) इ-तत् । अस्त्रका आघात, अस्त्रका प्रहार, हथियारकी चोट ।

अस्त्राहत (सं० स्त्री०) इ-तत् अस्त्रद्वारा आहत, हथियारसे मारा गया ।

अस्त्रि (वे० पु०) धाण मारनेवाला, जो अस्त्रस तीर चलाता हो ।

अस्त्रिन् (सं० स्त्री०) अस्त्रं धतुरस्त्रस्य इति । धतुर्धर, शत्रुधारी, तीर-कमानसे लड़नेवाला, जो हथियार बांधे हो ।

अस्त्री (मं० स्त्री०) १ स्त्रीमित्र, जो चौक औरत न हो । व्याकरणमें—स्त्रीलिङ्गको छोड़ पुलिङ्ग और तनुसक लिङ्ग ।

अस्त्रीक (मं० स्त्री०) पत्नीरहित, स्त्रीशून्य, धी-औरत, जो औरत रखता न हो ।

अस्त्रण (वे० स्त्री०) अस्त्रोत् शब्दोः ।

अस्त्रनवत् (वे० स्त्री०) अस्त्रिमय, हड्डीदार ।

अस्त्रल (हिं०) स्थल शब्दोः ।

अस्त्रला (सं० स्त्री०) अस्त्ररस विग्रेय, किसी परीका नाम ।

अस्या (वे० स्त्री०) शनकोटि, झादिनी, शैका, विजकी, गाज ।

अस्याग (मं० स्त्री०) अस्यामस्थितिं गच्छति, अस्यागम-इ । अगाध, अतलस्वर्ग, निहायत गहरा ।

अस्यान (सं० स्त्री०) अस्याशस्त्रे नञ्-तत् । १ अतल स्थान, अयोग्य स्थान, खराब जगह । (स्त्री०) अतलस्वर्ग, निहायत गहरा । (अथ०) ३ अयुक्त रूपसे, बेमौकों । (हिं० पु०) ४ स्थान, जगह ।

अस्याने (सं० अथ०) स्थानं युक्तम्, मञ्-तत् । अयुक्तरूपसे, नाकाशिन तीरपर ।

अस्यायिन् (सं० स्त्री०) न तिष्ठति स्वाग्नि-युक्, नञ्-तत् । अस्त्रल, गिताध, अस्त्र गुजर जानेवाला । (स्त्री०) डीप् । अस्यायिनी ।

अस्यायी (हिं०) स्थाने शब्दोः ।

अस्यावर (सं० स्त्री०) विरोधि नञ्-तत् । १ अस्त्रम, मनकूला, जो चल-फिर सकता हो । (हिं०) २ अस्यावर, मर-मनकूला, जो चलता फिरता न हो ।

बसिख (सं० स्त्री०) बस्यते बस (बसिषिषिष्ठां बसिन् ।
 ७५१।३) इति क्यङ् । हाड़, बसिख शब्दके ये कई
 पर्याय देखे गये हैं,—कौकस, कुख्य, मेदोज। फलके
 बीज गुठलीको भी बसिख कहते हैं।

भावप्रकाशके मतानुसार मेट शरीरके बनिसे
 पकता है। उसके बाद वायुद्वारा गोपित होनेपर
 बसिख पैदा होता है। हाड़ शरीरका सारभाग है।
 जेमे हडका सारभाग हडकी, उसी तरह शरीरका
 मारपदार्थ हाड़ देखकी रचा करता है। इसीसे
 शरीरका मांस चार घनड़ा नष्ट हो जानेपर भी
 बसिख नष्ट नहीं होता।

रासायनिक परीक्षा द्वारा मनुष्यके हाड़में मैकड़े
 पीछे ये सब चीजें पाई जाती हैं,—

जलान्वयपदार्थ (जिलेटिन) ...	११-३०	भाग।
फस्फेटचूर्ण ...	५१-०४	..
काब्रिन चूर्ण ...	११-३०	..
फस्फेट चर्ब मिग्नेशिया ...	१-१६	..
मोडा और जमक ...	१-२०	..

प्रथम धवस्थामें हाड़की बनावट मानिसी जेसो
 रहती है। इसमें छोटे-छोटे छिद एक साथ मिले रहते
 हैं। परन्तु गिरकी छोपड़ो और कन्धेके हाड़में वेदा
 नहीं रहता। क्रमसे इस मांसपेशीमें पार्थिव पदार्थ,
 फस्फेटचूर्ण और कार्बन चूर्णके जमनेसे यह सख्त हो
 जाता है। किमी प्रकारके जलमिय द्रव्यकमें हाड़
 भिगाकर रखनेसे पार्थिव पदार्थ गल और बह
 फिर कोमल एवं स्थितिस्थापक ही जाता है। हाड़में
 बस्यता ताप लगानेसे जलान्व पदार्थ नहीं रहता,
 इसीसे जलान्व क्षिप्ता होनेपर यह धूर-धूर हो जाता
 है। अतएव दोनों प्रकारके पदार्थोंके न रहनेसे हाड़
 कठिन होना कैसे सम्भव है।

बचपनके हाड़में पार्थिव पदार्थ कम रहता है,
 इसमें खेलते-खेलते लड़कोंके इतना गिर पड़नेपर
 भी हड्डी नहीं टूटती। फिर परिपक्व वयसमें थोड़ी
 भी धोत लग जानेसे ही बहुत पीड़ा होती और सहज
 ही हाड़ टूट जाता है।

गिरावकी यथैव दुग्ध द्वारा सालन पासन न

करनेसे उनके हाड़में पार्थिव पदार्थ कम पैदा होता,
 सुतरां वह कोमल हो जाता है। इसीसे कितने ही
 रोगी बच्चोंके उठकर चलने फिरनेपर शरीरके
 भारसे पैर टूट्टे पड़ते हैं। इसका नाम है रिकेट्स
 रोग। दरिद्रोंके घरमें ही यह अधिक देखा जाता है।

बसिख ही शरीर निर्माणका प्रधान उपादान है।
 देखकी प्रधान प्रधान इन्द्रियां रह सकनेके लिये ही
 बसिखमें गह्वर निर्मित होता और देख सुकोमलसे
 चालित होनेके लिये कोमलांग इसके साथ मिलता
 है। हाड़ श्वेतवर्ण, कठिन और स्थितिस्थापक है।
 हाड़का उपरीभाग कठिन, संयत और चिकना तथा
 भीतरों भाग ठोक मधुमचीके कत्ते जैसा किट्ट-
 युक्त है।

शरीरके हाड़ चार योनियोंमें विभक्त हैं, यथा—
 दोषांसिख, शुद्रांसिख, प्रगध्तांसिख एवं विषमांसिख।
 शरीरकी जर्ब एवं पधःशाखामें दीर्घांसिख है। ये सब
 हाड़ खोखले हैं। इनके भीतर मज्जा रहती है।

सारे कद्वालमें २८४ पृथक् पृथक् हाड़ हैं।
 यथा—नेरुदण्डमें २६, करोटी ८, कर्णांसिख ६,
 मुलांसिख १४, पञ्जर एवं बघोंसिख २६, ऊर्ध्वाशाखा
 ६४, पधःशाखा ६०। इनके सिवा दांत, प्यातला
 विसामेद एवं अन्यथा मानिसयन बसिखयां ८० हैं।

हमारे देगके शस्यतन्त्र मतसे मनुष्यके शरीरमें
 मर्बघमेत ३०० बसिख हैं। इनमें दो हावी और दो
 पैरोंके १२०, दोनों पार्श्व, कटिदेग, बघःस्यल, पृष्ठ
 एवं उदरमें ११०, शीयाके ऊपर ६३—यही ३००
 बसिख हैं।

पैरकी प्रत्येक अंगुलीमें तीन-तीन करके १५,
 पदतलमें ६, कूर्ची (भ्रूमध्य) में २, पड़ोंमें १, गुल्फमें
 २, जातुमें १, उरुदेगमें १, इसी तरह दूसरे पैरमें भी
 ३०, बसिख रहते हैं सुतरां हाथ और पैरमें सब
 मिलाकर १६० हुये।

प्रत्येक पाखमें कत्तीस कत्तीस करके ७२, लिङ्ग वा
 योनिमें १, गुच्छामें १, दोनों नितम्बोंमें २, पृष्ठवंगमें १,
 बघःस्यलमें ८, पृष्ठमें १० और नेरुदण्डमें २ बसिख हैं।

शोयादेगमें ८, काण्डनालीमें ४, दोनों हड्डीमें २,

दन्तमें ३२, मांसिकामें ३, तालुमें १, गण्डस्थलमें २, दोनों कानोंमें २, गद्ग (ललाट)में २ और मस्तकमें १ अस्थि हैं।

अस्थितन्त्रमें ये सब अस्थि पांच त्रेणियोंमें विभक्त हैं। यथा—१ तरुपास्थि, २ कपालास्थि, ३ रुचकास्थि, ४ वक्षयास्थि, ५ मज्जाकास्थि।

पक्षिकोप, नासिका, कर्ण एवं श्रोत्रांशमें तरुपास्थि, मस्तक, शङ्ख, तालु, गण्डस्थल, स्तम्भ, जालु एवं नितम्बमें कपालास्थि, दन्तमें रुचकास्थि; हस्ता, पद, पात्र, घृष्ट, वक्ष और उदरमें वक्षयास्थि; हस्तपदके पद्मलितल, कूर्चदेग, मणियन्त्र, वाहुहृदय एवं जङ्घामें गजकास्थि है।

शरीरके किस किस स्थानमें कितनी हड्डियां हैं और उनका गठन आदि कैसा है, इसका विस्तारित विवरण उस उस अष्टमें देखो।

मनुष्य प्रकृतिके कुछ हाडोंके भीतर मज्जा है। अनेक मछलियोंके कांटोंके अन्दर छेद नहीं होता। हाथी आदि, कुछ जानवरोंके गिरके हाडमें वायु रहता है। इच्छा करने ही से हमलोग निश्वास छोड़ फेफड़ेको वायुसे भर सकते हैं। फेफड़ा वायुसे परिपूर्ण रहनेपर जलमें डूब जाते भी शरीर ऊपर उतरा जाता है। पक्षी भी इसीतरह निश्वास छोड़ कर हाडके भीतर वायु भर सकते हैं। इसीसे इच्छा करते ही ये सब जमीनपरसे अनायास ही ऊपर उड़ जाते हैं।

दुर्बल मनुष्यके लिये यदि मांसका शरीरवा पकाया जाय, तो उसमें हाड रहना आवश्यक है। कारण, हाडका जिस्तेटिन शरीरके साथ मिल जानेसे वह लघु पथ्य होता है। जिस्तेटिन पुष्टिकर है, कि नहीं इसमें मतभेद है। परन्तु यह स्पष्ट देखा जाता है, कि कुत्ते हाड खाकर दृष्टपुष्ट होते हैं। फिर यह भी सुननेमें आता है, कि दुग्धिके समय नरसे और स्त्रियके बादमी मछलीका कांटा और चनेक लघुपौका हाड खाकर प्राणधारण करते हैं।

मकराचर हाडकी कुरो, कड़ी आदि और नाभा मकारके पक्षोंकी मूठ बनती है। असभ्य लोग

हाडसे तीर और वक्रमकी गांसी तय्यार करते हैं। दक्षिण अमेरिका और तातारकी कोई कोई जाति लकड़ीके प्रभावमें हाड जलाकर चाग बनाता है। उसी चागसे उसको रसोई आदिका काम चसता है। भूमिमें अस्थिमज्जा डालनेसे उसकी उर्वरतागन्धि बढ़ती है। हाडके कायलेसे चीनी आदि कीतना ही चीनें साध की जाती हैं।

अस्थिक, अस्थिक्षोः।

अस्थिकुण्ड (सं० स्त्री०) नरकविशेष। इस नरकमें हड्डी ही हड्डी देखायी देतो है। जो लोग गयामें विष्णुपदपर पिण्डदान नहीं करते, वह अस्थिकुण्ड-नरकमें डाले जाते हैं। (ब्रह्मवैवर्त)

अस्थिकण्ठ (सं० पु०) करोति, क्ल-क्षिप् अस्थिः क्लृत्, इ-तत्। अस्थिकारक मेदोधातुविशेष, मगज, हड्डीका गूदा। वैद्यशास्त्रमतमें मेदोधातुसे अस्थि बनता है।

अस्थिगतज्वर (सं० पु०) अस्थिमें पड़ना बुधा ज्वर, हड्डीका बुध्दार। मेद एवं अस्थिका कूजन, श्लाम, विरेक, छर्दि और गात्रोंका विक्षेपण अस्थिगतज्वरमें होता है। (वैष्यनिष्य) इसका प्रतिकार यान्त्रिक भौषध, वस्तिकर्म और अभ्यङ्गोद्घर्षण है।

अस्थिग्रन्थि (सं० पु०-स्त्री०) ग्रन्थिरोग, गांठीकी बीमारी।

अस्थिच्छिन्नित (सं० स्त्री०) सुन्धुतोत्त काण्डभग्न नामक रोग विशेष, गिकस्तगी-उत्तुपान्, हड्डी-टूटन।

अस्थिज (सं० पु०) अस्थि जायते, अस्थि-जन-ञ। १ अस्थि-धातुजात मज्जा, मगज, गूदा। २ रज्ज, विजली, गात्र। (वै० त्रि०) ३ अस्थिमें उत्पन्न, जो हड्डीसे पैदा हो।

अस्थिजननी (सं० स्त्री०) १ पदाधातु, धर्मी। २ मेदो-धातु, मगज, गूदा।

अस्थित (सं० त्रि०) चञ्चल, नापायदार, जो खमीय न खड़ा हो।

अस्थिति (सं० स्त्री०) अभावे नञ् तत्। १ स्थितिका अभाव, अस्थैर्य, अगह या अज्ञानकी अदममौजदगी। २ मर्यादाका अभाव, हदका न होना। (त्रि०) नञ्-

बहुमी० । १ मर्यादागृह्य, धृष्ट । ४ ख्यैरहित, डावांडोल ।
 अस्थितुण्ड (सं० पु०) अस्थिव कठिनं तुण्डमस्य ।
 अस्थिविग्रह, कोई चिड़िया । इसके मुंहमें हड्डी ही
 हड्डी रहती है ।
 अस्थितेजसु, अस्तिज्ञ देवी ।
 अस्थितोद (सं० पु०) १ अस्थिकी धृषीविहवत् वेदना,
 हड्डीमें सूईं शुभने-जैसा ददे । २ अस्थिपोड़ा, हड्डी
 की बीमारी ।
 अस्थित्वक् (सं० स्त्री०) अस्थिकी त्वक्, हड्डीके
 ऊपरकी झिल्ली ।
 अस्थिधन्वन् (सं० पु०) अस्थिमयं धनुस्त्व, पनड्-
 ममा० । शिव, हड्डीकी फमान् बांधनेवाले गह्वर ।
 अस्थिनिर्मित धनुष रथनेमें शिवकी अस्थिधन्वा कहते
 हैं ।
 अस्थिपञ्चर (सं० पु०) अस्थिपञ्चर एव । १ गरी-
 रस्य अस्थिसमूह, जिन्हकी हड्डीका जखीरा ।
 २ विश्वराकार कद्दान, ठठरी । ३रा३ देवी ।
 अस्थिप्रघेप (सं० पु०) मृतस्य अस्थ्या गद्वाया यथा-
 विधि प्रघेपः, ६-तत् । सत्कार बाद मृत व्यक्तिके
 अस्थिविधानका क्रमसे गद्वामें समर्पण क्रिया जाना,
 हड्डीका गद्वामें सेराना ।
 अस्थिफल (सं० पु०) पनसहृष, कटहनका पेड़ ।
 अस्थिमक्ष (सं० पु०) अस्थि मक्षयति, अस्थि पुरा०
 मक्ष-प । १ कुक्षुट, कुक्षा । २ मृगाल, गौदड़ ।
 ३ अस्थिखानेवाली पक्षी, जो बिड़िया हड्डी निगल
 जाती है ।
 अस्थिमक्षा (सं० स्त्री०) शोषधि विरोग, कोई जड़ी मूटी ।
 अस्थिमद्ग (सं० पु०) अस्थ्या मद्गः, ६-तत् । १ अस्थि-
 मद्घन, शिकस्तगी समुदाय, हड्डीटूटन । २ इसी
 नामका रोगविरोग, हड्डीटूटन ।
 अस्थिमुञ्ज, अस्थिमक्ष देवी ।
 अस्थिमूयस् (सं० स्त्री०) अस्थिमय, सूखा हुआ, जिसमें
 सूक्ष्मकर हड्डी ही हड्डी रहें ।
 अस्थिमैद (सं० पु०) १ अस्थिमद्ग, शिकस्तगी-सम्प-
 दान् । २ अस्थिविरोग, किसी किन्हकी हड्डी ।

अस्थिभेदक (सं० स्त्री०) अस्थि भङ्ग करनेवाला, जो
 हड्डी तोड़ता है ।
 अस्थिमत् (सं० स्त्री०) अस्थीनि सन्तप्रस्य मत्तुप् ।
 पृष्ठमंशविग्रह, जो हड्डी ही हड्डी रहता है ।
 अस्थिमय (सं० स्त्री०) अस्थो विकारः मयत् । अस्थि-
 निर्मित, हड्डीका बना हुआ, जिसमें हड्डी ही
 हड्डी रहें ।
 अस्थिमर्म (सं० स्त्री०) ६-तत् । अस्थिका मर्म,
 हड्डीका नाजुक सुकाम । यह अटसंशक होता
 है । कटिमें दो, मितस्त्रमें दो, अंगफलकमें दो
 और गद्गमें दो अस्थिमर्म रहता है ।
 अस्थिमाना (सं० स्त्री०) अस्थिनिर्मिता माना ।
 १ अस्थिनिर्मित जपकी गुटिका, हड्डीसे बनी जप
 करनेकी माना । ६-तत् । २ अस्थियंगी, हड्डीको
 क्तार । ३ अस्थिसूत्र, हड्डीका हार ।
 अस्थिमानिन् (सं० पु०) अस्थिमाना सूत्रप्रयितास्त्रि-
 समूहोऽस्त्रास्य, अस्थिमाला हनि । शिव, हड्डीका
 हार पहननेवाले महादेव ।
 अस्थियुज् (सं० पु०) अस्थि युनक्ति, युज्-क्तिन् ।
 हड्डीका पिड़ ।
 अस्थियोग (सं० पु०) भग्न अस्थिका संग्रेष, टूटी
 हड्डीका मिलान ।
 अस्थिर (सं० स्त्री०) न स्थिरम्, नञ्-तत् । १ स्थिर
 न रहनेवाला, नापायदार, जो टिकता न हो ।
 २ कम्पायमान, चञ्चल, चुनबुला, जो कांप रहा हो ।
 ३ अनिश्चित, सुगतवा, नामालूम । ४ अस्थिरसनीय,
 नाकाविल-पतवार, जो पडान न हो । (हिं०) ५ स्थिर,
 टिका हुआ ।
 अस्थिरता (सं० स्त्री०) १ स्थिरताका अभाव, चाञ्चल्य,
 अनिश्चितता, नापायदारता, चुनबुलाहट, तगेयुद,
 डावांडोलवन । (हिं०) २ ठहराव, मजबूती ।
 अस्थिरत्व (सं० स्त्री०) अस्थिरता देवी ।
 अस्थिराक्षिक (सं० पु०) हिक्ताल वृक्ष, मोन-
 पट्टेका पेड़ ।
 अस्थिवत् (सं० स्त्री०) अस्थिमय, उन्मुखानी, हड्डीदार ।
 अस्थिविपह (सं० पु०) अस्थि-धीणत्वात् अस्थि

मारो विषयो देही यस्य, बहुवी० । १ शिवके भनुषर भूमी । इनके सूत्रे शरीरमें हड्डी ही हड्डी देख पड़ती है । (वि०) २ अतिघोष शरीर-युक्त, जो सुषकर लकड़ी बन गया हो ।

अस्विगृह्यना (सं० स्त्री०) अस्यां गृह्यते योजनहेतुः ।
अस्विमंहार, हड्डीगुह ।

अस्विगृह्यनिका, अस्विगृह्यना देवी ।

अस्विमेव (सं० वि०) अस्विमात्रं मेघो यस्य, शाक० बहुवी० । मांसादिगुण्य, अतिलग्न, निहायत नागुर, यद्गुत दुग्धमा, जिसके जिष्णवे हड्डी ही हड्डी देख पड़े ।

अस्विगोष (सं० पु०) अस्याका निर्जनत्व शौर चय, हड्डीकी शूरकी शौर घटती ।

अस्विमंहार (सं० पु०) अस्वीनिर्मंहरति श्रुतयति,
अस्वि-सम्-घ्न-घल् । अस्विमान् हृत्, हड्डीगुहका पेड़ ।

अस्विमंहारक (सं० पु०) गण्ड पक्षी, हड्डीगुह ।

अस्विमंहारिका (सं० स्त्री०) अस्विमंहार देवी ।

अस्विमहात (सं० पु०) अस्विमेलनस्थल, हड्डीके छोड़की जगह । अस्विमहात अष्टादश ज्ञाते हैं,— गुल्फमें पांच; कान्त, यक्ष, कटिदेग एवं मस्तकमें एक-एक ।

अस्विमक्षय (सं० पु०) मृतस्य दाहानन्तरं अस्यां मक्षयः । शवदाहानन्तरं चित्तके अस्याका संपह, सुदां लनाने वाद चित्तकी हड्डीयोंका इकट्ठा करना ।

पैदिका समय अस्वि इकट्ठा कर प्राद्वय महीमें गाड़ देते थे । पात्र भी अग्निहोत्री प्राद्वय शौर अस्वि राजा ऐसा ही करते हैं । सुविधा पानेसे प्रायः सकल श्री मक्षित भय शौर अस्विको गृह्यजन्ममें छोड़ते हैं ।

सर्वतर्तने निष्ठा है,—प्रथम, तृतीय, पञ्चम, सप्तम अथवा नवम दिन ज्ञातिके साय चित्तासे अस्विसक्षय करना चाहिये । किसी स्थानमें द्वितीय दिन भी अस्वि-मक्षयका विधान है । वैशाख चतुर्थ दिवस अस्विमक्षय करते हैं । अनेक स्थानों पर है ।

अस्विमन्थानकर (सं० पु०) मथन, हड्डीमें घुम छानेवाला लकड़गुन ।

अस्विमन्थानजनी (सं० स्त्री०) अस्विमन्थान देवी ।

अस्विमन्थि (सं० स्त्री०) १ अस्विसक्षे लनस्थान, हड्डी मिलनेकी जगह । २ अस्वियोग, टूटी हड्डीका मिलान ।

अस्विमन्थिक, अस्विमंथार देवी ।

अस्विममर्षण (सं० स्त्री०) मृत व्यक्तिके अस्याका गद्गामें फेंका जाना, हड्डीका सेराना ।

अस्विममुद्गव (सं० पु०) मज्जा, चर्बी ।

अस्विमस्यन्धन (सं० पु०) राल, धूना ।

अस्विमभ्र (सं० पु०) अस्विः सभ्रयः कारणं यस्य, बहुवी० । १ अस्विजात मज्जा धातु, हड्डीसे पैदा होनेवाली चर्बी । २ यक्ष । इन्द्रने टधीवी मुनिकी हड्डीयोंसे वक्ष बनाया था । इसीसे वक्षकी अस्वि-सभ्रय कहते हैं । ३ (वि०) अस्विये लक्ष्य, जो हड्डीसे पैदा हो ।

अस्विमभ्रयच्छेद (सं० पु०) मज्जा, चर्बी ।

अस्विमार (सं० पु०) अस्यां सारः पाकपरिणामः । तत् । १ मज्जा धातु, चर्बी । (वि०) अस्थ्येव

मारो यस्य, बहुवी० । २ रक्तमांसगुण्य, जिसमें गोमृत शौर खून न रहे । चनित भायामें अतिशीघ्र अस्विकी भी अस्विमार कहते हैं ।

अस्विमारस्थिता (सं० स्त्री०) मज्जा, चर्बी ।

अस्विस्थ (सं० पु०) शरीर, जिस, जिस चीजमें हड्डीके खभे रहे ।

अस्विच्छेद (सं० पु०) मज्जा धातु, चर्बी ।

अस्विच्छेदमंश, अस्विच्छेद देवी ।

अस्विमांस (सं० वि०) अस्विकी प्रयक् प्रयक् गिर-यानेवाला, जो हड्डीयोंको इधर-उधर बिखरवा देता हो ।

अस्वूरि (सं० पु०) न तिष्ठति, स्या वाष्टुं कूरि । १ बहु अग्निगुण्य रथ, जिम गाड़ोंमें बहुतसे घोड़े लगे ।

(वि०) २ बहु अग्निगुण्य, जिसमें एकसे ज्यादा घोड़े रहें । ३ एक ही शौर न रहनेवाला, जो एकसे ज्यादा पहलू रखता हो । "अस्वूरिने कार्श्वकानि मन्तुः" (अथ० ११५१२१)

अस्वूल (सं० वि०) १ लघु, विरल, सूक्ष्म, पतला, जो मोटा न हो । (वि०) २ स्थूल, मोटा, भारी ।

मारो विग्रहो देहो यस्य, बहुव्री० । १ शिवकी अनुचर भृङ्गी । इनके सूखे शरीरमें हड्डी ही हड्डी देख पड़ती हैं । (त्रि०) २ अतिघोषण शरीर-युक्त, जो सूखकर लकड़ी बन गया हो ।

अस्थिशृङ्खला (सं० स्त्री०) अस्थ्यां शृङ्खलेषु योजनहेतुः ।
अस्थिसंहार, हड़जोड़ ।

अस्थिशृङ्खलिका, अस्थिशृङ्खला देखो ।

अस्थिशोष (सं० त्रि०) अस्थिमात्रं शोषो यस्य, शाक० बहुव्री० । मांसादिशून्य, अतिकृष्ण, निहायत सागर, बहुत दुबला, जिसके निम्नमे हड्डी ही हड्डी देख पड़े ।

अस्थिशोष (सं० पु०) अस्थिका निर्जलत्व और क्षय, हड्डीकी खुरकी भीर घटती ।

अस्थिसंहार (सं० पु०) अस्थीनिःसंहति श्रियोजयति, अस्थि-सम्-ह-अण् । अस्थिमान् हृष्य, हड़जोड़का पेड़ ।

अस्थिसंहारक (सं० पु०) गहड़ पत्ती, हड़गोला ।

अस्थिसंहारिका (सं० स्त्री०) अस्थिसंहार देखो ।

अस्थिसङ्घात (सं० पु०) अस्थिमेलनस्थल, हड्डीकी जोड़की जगह । अस्थिसङ्घात अष्टादश हाते हैं,— गुल्फमें पांच; जाड़, वहण्य, कटिदेश एवं मस्तकमें एक-एक ।

अस्थिसञ्चय (सं० पु०) मृतस्य दाहानन्तरं अस्थ्यां सञ्चयः । शवदाहानन्तरं चिताके अस्थिका संग्रह, मुर्दा जलाने बाद चिताकी हड्डियोंका इकट्ठा करना । वैदिक समय अस्थि इकट्ठा कर ब्राह्मण महीमें गाड़ देते थे । आज भी अग्निहोत्री ब्राह्मण और क्षत्रिय राजा ऐसा ही करते हैं । सुविधा पानेसे प्रायः सकल ही सखित भस्म और अस्थिको जग्राजलमें छोड़ते हैं । संवर्धने लिखा है,—प्रथम, द्वितीय, पञ्चम, सप्तम अथवा नवम दिन ज्ञातिके साथ चितासे अस्थिसञ्चय करना चाहिये । किसी स्थलमें द्वितीय दिन भी अस्थि-सञ्चयका विधान है । वैश्याद चतुर्थ दिवस अस्थिसञ्चय करते हैं । अनेक शब्द देखो ।

अस्थिसन्धानकर (सं० पु०) लघुन, हड्डीमें घुस जानेवाला लहसुन ।

अस्थिसन्धानजनी (सं० स्त्री०) अस्थिसंहार देखो ।

अस्थिसन्धि (सं० स्त्री०) १ अस्थिसन्धिलनस्थान, हड्डी मिलनेकी जगह । २ अस्थियोग, टूटी हड्डीका मिलान ।

अस्थिसन्धिक, अस्थिसंहार देखो ।

अस्थिसमर्पण (सं० स्त्री०) मृत व्यक्तिके अस्थिका गङ्गामें फेंका जाना, हड्डीका सेराना ।

अस्थिसमुद्भव (सं० पु०) मज्जा, चर्बी ।

अस्थिसम्बन्धन (सं० पु०) राल, घूना ।

अस्थिसम्भव (सं० पु०) अस्थिः सम्भवः कारणं यस्य, बहुव्री० । १ अस्थिजात मज्जा धातु, हड्डीसे पैदा होनेवाली चर्बी । २ वज्र । इन्द्रने दधीची सुनिकी हड्डियोंसे वज्र बनाया था । इसीसे वज्रकी अस्थि-सम्भव कहते हैं । ३ (त्रि०) अस्थिवे उत्पन्न, जो हड्डीसे पैदा हो ।

अस्थिसम्भवच्छेद (सं० पु०) मज्जा, चर्बी ।

अस्थिसार (सं० पु०) अस्थ्यां सारः पाकपरिणामः, इतत् । १ मज्जा धातु, चर्बी । (त्रि०) अस्थिवे मारो यस्य, बहुव्री० । २ रक्तमांसशून्य, जिसमें गोमृत और खून न रहे । च्लित भायामें अतिशीर्ण व्यक्तिको भी अस्थिसार कहते हैं ।

अस्थिसारस्थिता (सं० स्त्री०) मज्जा, चरबी ।

अस्थिस्यण (सं० पु०) शरीर, जिस, जिस चीजमें हड्डीकी खन्ने रहें ।

अस्थिच्छेद (सं० पु०) मज्जा धातु, चरबी ।

अस्थिच्छेदसंज्ञ, अस्थिच्छेद देखो ।

अस्थिसांस (वै० त्रि०) अस्थिको घृथक् पृथक् गिरवानेवाला, जो हड्डियोंको इधर-उधर बिखरवा देता हो ।

अस्थूरि (वै० पु०) न तिष्ठति, स्या बाहु० कूरि । १ बहु अश्वयुक्त रथ, जिस गाड़ीमें बहुतसे घोड़े जुते । (त्रि०) २ बहु अश्वयुक्त, जिसमें एकसे ज्यादा घोड़े रहें । ३ एक ही और न रखनेवाला, जो एकसे ज्यादा पड़लू रखता हो । "अस्थूरि मो मांसं चान्तिं संतु" (अश्व० ४।१५।२८)

अस्थूल (सं० त्रि०) १ लघु, विरल, सूक्ष्म, पतला, जो मोटा न हो । (त्रि०) २ स्थूल, मोटा, भारी ।

अस्यै यम् (सं० त्रि०) चपल, अनवस्थित, पधीर, नापायदार, विसवात, सुतगौरव, जो ठहरा न हो।
 अस्यै (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ चपलता, पधैर्ध, नापायदारी, धेमवाती । (त्रि०) नञ्-वहुव्री० ।
 २ स्यैर्येहीन, धेमवात, जो ठहरा न हो।
 अस्त्राष्ट (षं० त्रि०) खानसे प्रेम न रखनेवाला, जो नहाता न हो।
 अस्त्रान (ङि०) शान देना।
 अस्त्राविर (वै० त्रि०) स्त्राः शिराः यस्मिन् न विद्यन्ते, नञ्-वहुव्री० । गिरा-वर्जित, स्थूल शरीर-गुण्य, नर्म न रखनेवाला।
 अस्त्रिध्व (सं० त्रि०) १ कर्कश, पक्ष्प, कठिन, दुःखा, मघत्, जो चिकना न हो। २ निर्दय, नामेहरवान्।
 अस्त्रिध्वदारु (सं० स्त्री०) अस्त्रिध्व चाक्षुषिष्यगृन्थं दारु कर्मधा० । टैवदारु।
 अस्त्रिध्वदारुक, अस्त्रिध्वदारु देवी।
 अस्त्रेष्ट (सं० पु०) अभावे नञ्-तत् । १ खेहका अभाव, मुह्यत्वकी अदममज्ञेदगी। (त्रि०) नञ्-दुष्टी० । २ अस्त्रेष्टग्य, मुह्यत्वमे स्थाली।
 अस्पताल (सं० स्त्री०) Hospital, पीयधानय, देवाशाना।
 अस्पन्द (सं० पु०) अस्पन्द देवी।
 अस्पन्दन (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ चलन-का अभाव, अदमहरकती। (त्रि०) नञ्-वहुव्री० ।
 २ क्रियाशून्य, हरकत न करनेवाला।
 अस्पर्श (सं० पु०) अस्पर्श भावे घञ्, अभावे नञ्-तत् । १ अस्पर्शका अभाव, जिम हालतमें छू न सके। (ङि०) २ अस्पर्श, दुवायी। (त्रि०) नञ्-वहुव्री० ।
 ३ अस्पर्शग्य, जो छूता न हो।
 अस्पर्शन (सं० स्त्री०) अस्पर्श वस्तुका न छूना, नापाक चीजन किनाराकशी।
 अस्पर्शनीय (सं० त्रि०) अस्पर्शके अयोग्य, अशुद्ध, नापाक, जिमे छू न सके।
 अस्पर्शयोग (सं० पु०) नास्ति अस्पर्शः विषयसम्बन्धो यत्र तादृशो योगः, कर्मधा० । १ विषयसह्यशून्य, जिम बातमें किसी वस्तुका सालाच न रहे। २ निर्विकल्पक ज्ञान, निराली समझ।

अस्पर्शा (सं० स्त्री०) आकाशवस्ती, आसमानो देव।
 अस्पर्शित (सं० त्रि०) जो छूना न गया हो।
 अस्पष्ट (सं० त्रि०) नञ्-तत् । अव्यक्त, मखलत, नामाफ, नामालूम।
 अस्पृत (वै० त्रि०) अनिवाय, दुर्धर, गुर-काविल-मुर्जाहमत, नाकाविल-मुकावला, जो जीता न गया हो।
 अस्पृश्य (सं० त्रि०) न स्पृष्टमर्हम्, अर्हार्थे क्वप्, नञ्-तत् । अस्पर्शिवर, नाकाविल-मम, जो छूने नायक न हो।
 अस्पृष्ट (सं० त्रि०) अस्पर्श न किया हुआ, जो छूना न गया हो।
 अस्पृष्टरक्षामस्क (सं० त्रि०) अतिशय शुद्ध, निहायत पाकीजा, जो बुराईसे छू न गया हो।
 अस्पृष्टवर्द्धि (सं० त्रि०) अनिका अस्पर्श न किये हुआ, जो आगसे छू न गया हो।
 अस्पृष्टि (सं० स्त्री०) अस्पर्शका अभाव, न छूनेकी शानत, छूपाइतमे किनारा।
 अस्पृष्ट (सं० त्रि०) १ अनिच्छुक, सन्तुष्ट, आशिश न रखनेवाला, खु,रसन्द, जो लालची न हो। २ विरक्त, लापरवा।
 अस्पृष्टशीय (सं० त्रि०) अकाम्य, अनिष्ट, अमयस्त, नामरग्य, नारवा, जो चाहने लायक न हो।
 अस्पृष्टा (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ इच्छाका अभाव, आशिशका न होना। (त्रि०) नञ्-वहुव्री० ।
 २ अस्पृष्टारहित, निष्पृष्ट, जो लालची न हो।
 अस्पृष्ट (सं० त्रि०) न स्फुटं प्रकाशम्, नञ्-तत् । १ प्रकाशरहित, अव्यक्त, नामाफ, योगीदा, देख न पड़नेवाला। (स्त्री०) २ अव्यक्त वाक्य, नामाफ कलाम, जो बात समझ न पड़ती हो।
 अस्पृष्टफल (सं० स्त्री०) अव्यक्त परिणाम, नामाफ नतीजा। २ त्रिकोणादिना इष्टत् धैवफल, सुसप्तस वधै रक्षका मोटा रक्षवा।
 अस्पृष्टवाक्, अस्पृष्टवाक् देवी।
 अस्पृष्टवाच् (सं० त्रि०) अस्पृष्टा अव्यक्ता वाच् यस्य । १ अव्यक्तवर्णजस्यित, सुकमत करनेवाला, जो अफ

न धोलाता हो। (स्त्री०) अस्फुटा चासी वाक् चिति, कर्मधा०। २ अश्वत्थ वाक्य, नासाफ कलाम, तोतलो बोलो।

अस्फोट (सं० पु०) काश्चनहृत्, कचनारका पेड़।

अस्मत्त्वा (सं० अथ०) अस्मद् बाहु० त्वाच्। हमारे साथ, हमलोगोंमें।

अस्मत्वाच्, अस्मद्राच, देखो।

अस्मद् (सं० त्रि०) अस्मते क्षियते देहनायात् पचात् असु क्षेपणे (युवाक्षिभा मदिव्। घृ० १।१२२) इति मदिव्। उत्तम पुरुष, मैं यह अर्थ समझानेका सर्वनामविशेष, देहाभिमानी जीव। अस्मद् शब्दका रूप तोनो लिङ्गोंमें एक ही सा रहता है।

युष्मद् और अस्मद् शब्दके उत्तर इदमर्थमें छ एव अण् प्रत्यय होता है। आचयोः अस्माकं वा अर्थ अस्मदीयः। यह हम दोनों आदमियों वा बहुत आदमियोंका है। (तस्मिन्निच य युष्माकाण्यौ। पा ४।१।२) खल् और अण् प्रत्यय परे रहनेपर बहुवचनार्थमें युष्मद् शब्दके स्थानमें युष्माक, अस्मद् शब्दके स्थानमें अस्माक आदेश होता है। आस्माकीनः। आस्माकः। यह हम दो आदमियोंका है। (तत्रकनकावेकवचने। पा ४।१।५) खल् एव अण् प्रत्यय परे रहनेसे एकवचनार्थमें युष्मद् शब्दके स्थानमें तवक एव अस्मद् शब्दके स्थानमें ममक आदेश होता है। मामकीनः। मामकः। यह मेरा है। मम अयम् अस्मद् छ। मदीयः। (प्रत्ययौपरपदयोश्च। पा २।५।८) प्रत्यय वा उत्तर पद परे रहनेसे म पर्यन्त एकार्य युष्मद् शब्दके स्थानमें त्वद् एव अस्मद् शब्दके स्थानमें मद आदेश होता है। मदीयः। उत्तरपद परे रहनेसे, मत्पुत्रः ऐसा रूप होगा, तसिल् अस्मत्तः। एकवचनमें मत्तः। मामिच्छति। (सुप आत्मनः क्वप्। पा १।१।५) मयति। अस्मानिच्छति अस्मद्यति। मामाचरु मापयति। (सि० कौ०। पा १।१।२२ एवमे।) भावयतीति आत्मन्। (सि० कौ० उक्त पृथगे)

अस्मदीय (सं० त्रि०) हमारा, हम लोगोंका।

अस्मद्रात (वे० त्रि०) हम लोगों द्वारा दिया हुआ।

अस्मद्रुह् (वे० त्रि०) अहित, विपक्ष, अननुकूल, यद् अन्देश, सुखाक्षिफ, जो हमसे या मुझसे दगा करता हो।

अस्मद्यक् (वे० अथ०) हमारी ओर, हम लोगोंकी तर्फ।

अस्मद्यच् (वे० त्रि०) अस्मानश्चिति, अस्मद्-अश्च-क्षिन् अद्यादेशः। १ अस्मदमित्युक्, हमारे प्रति प्रसन्न, हमसे सुखातिव, जो हमारी ओर घुमा हो। (अथ०) २ हमारी ओर, हम लोगोंकी तर्फ।

अस्मद्विध (सं० त्रि०) अस्माकमिव विधा धर्मोऽस्य, बहुव्री०। १ अस्मादृश, हमारे-जैसा, मेरी तरह। २ हम लोगोंमें एक।

अस्मन्त (सं० क्लो०) सुक्षी, चूल्हा, भट्टी।

अस्मयु (दे० त्रि०) आत्मन अस्मान् इच्छति, अस्मद्-क्वच्-उ बाहु० दलोपः। हमें चाहनेवाला, जो हमारे क्षिये अच्छा हो।

अस्मरण (सं० क्लो०) अनवधान, अतिलोप, फ़रा-मोशी, बिसराहट, याद न रहनेकी हालत।

अस्मरणीय (सं० त्रि०) स्मरणके अयोग्य, जो याद आने काविल न हो।

अस्माक (वे० त्रि०) अस्माकमिदम्, अस्मद्-अण् अस्मकादेशः पृथो० वेदे ह्रदा-भावः। अस्मात् सम्बन्धी, हमारा, हमसे तालुक् रखनेवाला।

अस्मादृश, अस्मादृश, अस्मद्विध देखो।

अस्मार्त (सं० त्रि०) १ स्मरणातिशय, अतिमाचीन, क़दीम, ज़माने दरज़का, पुराना। २ नियम-विरुद्ध, अविधि, खिलाफ़-क़ानून, नाजायज़, हराम। ३ शास्त्र-विधानसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो हिन्दुधर्मके दस्तूरमें न हो।

अस्मित (सं० त्रि०) विकसित, गिगुफ़ता, खिला या फ़ूला हुआ।

अस्मिता (सं० स्त्री०) अग्निभावः, तलू। आत्मज्ञाता, ममता, खुदफ़ुरीयो, डींग। अस्मिताकी योग्यास्त क्लेश, सांख्य मोह और वेदान्त हृदयपण्य वताता है।

अस्मिति (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत्। १ अति-ज्ञानि, विस्मरणशीलता, फ़रामोशी, बिसराहट। २ अन्धार्थता, अव्यवस्था, नाजायज़ी, जो बात कानूनके खिलाफ़ हो। (वे० अथ०) ३ सप्रमाद, असमीक्य, विपरवायीसे।

अक्षर (ये० त्रि०) विष्वासापय, विष्मस्त, पतवार
 रचनेवाला, जो मातृगुण न हो ।
 अक्षरहित (ये० स्त्री०) हमारा मन्द्ग, हमलोगोंका
 पैगम, जो ख़ुदर हमारे लिये हो ।
 अक्षरमान (ये० त्रि०) किमल न पहुँचनेवाला, जो
 गुज़र न रहा हो ।
 अक्षरामौघ (सं० स्त्री०) अक्षरामेति शब्दोऽक्षर
 सृष्टे मन्वर्थे क । अक्षराम शब्दयुक्त सृष्ट, जिस भजनमें
 अक्षराम शब्द पहिले लगे ।
 अक्षरद्वय (सं० पु०) इन बाहु० अणु, गजःतत् ;
 अग्निना अक्षरः, इ-तत् । अक्षरं न भारा जानेवाला,
 जो तलवारमे मारा न जाता हो ।
 अक्षरहेति (सं० पु०) अक्षिः खड्ग अक्षेतिर्यस्य, व ह्रस्वी० ।
 खड्ग अक्षर न रखनेवाला योद्धा, जो सिपाही तलवारका
 रुयियार न रखता हो ।
 अक्षर्यत (सं० त्रि०) अक्षर्यत उत्थापितो येन,
 बाहु० परनिपातः, व ह्रस्वी० । उद्धृतअक्षर, जो तलवार
 उठाये हो ।
 अक्ष (सं० पु०-स्त्री०) अक्षु सेपणे बाहु० रन् ।
 १ कोण, गीगा, काना । २ क्षेप, घान । ३ रत्न,
 खून्, लक्ष । ४ अक्षुका जल, अक्षु ।
 अक्षकण्ठ (सं० पु०) अक्षः कोण इव कण्ठो यस्य ।
 याण, तीर । अग्रभाग नीकीला होने पौर युद्धकाल
 कण्ठमें रत्न मग जानेमे याणको अक्षकण्ठ कहते हैं ।
 अक्षखदिर (सं० पु०) अक्षवर्षः रत्नवर्षः खदिरः,
 ग्राक कर्मधा० । रत्नखदिर वृक्ष, क्षाल पौरका पेड़ ।
 अक्षत्र (सं० पु०) तैजवृक्ष, किमी विष्मका पीषा ।
 अक्षत्र (सं० स्त्री०) मांस, गोशत ।
 अक्षत्रित् (सं० पु०) अक्षत्रित विगेष, कोई जड़ी वृटी ।
 अक्षत्रप (सं० पु०) अक्षर रत्नं विवति, अक्ष-पा-क ।
 १ राक्षस, आदमखीर, खून् पीनेवाला शङ्खस ।
 २ जलोका, लोक । ३ मत्स्य, खटमस्य । ४ मूल
 नक्षत्र । (अक्षः कोषः अक्षान् अक्षदीर्घप आक्षरः । (अक्षर)
 अक्षपत्र, अक्षपत्रक दीर्घ ।
 अक्षपत्रक (सं० पु०) अक्षमिव लोहितं पत्रमस्य,
 व ह्रस्वी० संज्ञायां कन् । मेष्ठावृक्ष, मजौठ ।

अक्षपा (सं० स्त्री०) अक्षं रत्नं विवति, अक्ष-पा-
 क्षिप क वा, कपधे स्त्रीत्वात् टायपि । जलोका, लोक ।
 २ डाकिनी, डायन ।
 अक्षपित्त (सं० स्त्री०) रत्नापित्त, इन्द्रात् खून् ।
 अक्षफला (सं० स्त्री०) अक्षमिव रत्नं फलमस्याः ।
 गृहक्षीवृक्ष, मलायीका पेड़ ।
 अक्षफली, अक्षफला दीर्घ ।
 अक्षमाटका (सं० स्त्री०) अक्षस्य रत्नस्य मातेव
 उत्पादिका, संज्ञायां कन् । रसधातु, कैमूर, अक्ष
 खानेपर आमरसमे मिल पाकयन्त्रमें प्रथम दुग्धवत्
 उत्पन्न होनेवाला रस ।
 अक्षरेण (सं० पु०) मन्दूर, सेंदुर ।
 अक्षरोधिका (सं० स्त्री०) लज्जालुकाक्षता, साजयती ।
 अक्षरोधिनी, अक्षरोधिका दीर्घ ।
 अक्षवत् (सं० त्रि०) न स्रवति चरति, खू गती शब्द,
 गज-तत् । १ मवाहरहित, जो बहता न हो । अक्ष-
 मस्यस्य मत्तुप मस्य वः । २ रत्नयुक्त, खून्-आलूदा ।
 (ये० त्रि०) ३ खिदरहित, जिसमें छुराक न रहे ।
 (अक्ष्य०) अक्षस्येव तत्र तस्येविति वति । ४ रत्नकी
 भांति, खून्की तरह ।
 अक्षविन्दुच्छ्रदा (सं० स्त्री०) अक्षविन्दुः रत्नविन्दुरिव
 छदः वर्षं यस्याः, व ह्रस्वी० । लक्षणात्मक वृक्ष,
 कोई गांठदार पेड़ ।
 अक्षशिव्यी (सं० स्त्री०) रत्नशिव्यी, क्षाल सेम ।
 अक्षसुती (सं० स्त्री०) रत्नस्त्राव, खून्का बहाव,
 फुसद ।
 अक्षसाम (सं० त्रि०) १ अक्षस्य, अक्षिकस्यगति, मुत्तायम,
 जो नाक्षि न हो ।
 अक्षार्जक (सं० पु०) अक्षं रत्नं अर्जयति सेवनाया,
 अक्ष चुरा०-अर्ज-खून् । १ खेततुलसी वृक्ष । २ रत्नोत्-
 पादक रस, खून्, पैदा करनेवाला अर्क । (त्रि०)
 ३ रत्नोत्पादक, खून् पैदाकरनेवाला ।
 अक्षार्ह (सं० पु०-स्त्री०) कुडूम, कैसर ।
 अक्षिः (सं० स्त्री) अक्षिः । १ रत्न, खून् । २ कोण,
 गीगा । ३ कोटि, करोड़ ।
 अक्षिध् (ये० त्रि०) न स्रेयते श्योतति, सिध्-क्षिप,

नञ्-तत् । १ अक्षरप, जो थका-मांदा न हो । २ शानि न पहुँचानेवाला, जो नुकसान न करता हो । ३ शास्त्रभाव, पारसा, सुलक्षपसन्द, जो लड़ता-मिड़ता न हो ।

अस्त्रीवचस् (वै० त्रि०) अक्षरप खाद्यविशिट, जो टपक पड़नेवाला खाना रखता हो ।

असु (सं० स्त्री०) अस्यते सिध्यते, असु क्षेपणे रु । चक्षुषा जल, अग्रक, भास् । असुके निरोधसे पीन-सादि रोग उत्पन्न होते हैं ।

असुक (सं० पु०) अक्षीरहृत्, कोई पौधा ।

असुव (सं० स्त्री०) पोथकी, दाने-दानेकी साखत, बड़नेवाले लखूममें दानेका पड़ना ।

असुवाह्निनी (सं० स्त्री०) असुवाहक धमनीदय, भास् निकालनेवाली दोनो नाड़ी ।

अस्त्रेमन् (वै० त्रि०) स्त्रिय-मनिन्, गुणो वा लोपय । १ प्रगस्य, तारीफकी काविल । २ प्रथस्त, साजवान, जो सड़ता-गलता न हो ।

अस्त, असल देखो ।

अस्त्री, असली देखो ।

अस्त्रील, अश्लील देखो ।

अस्त्रोक, शोच देखो ।

अस्त (सं० त्रि०) नास्ति स्वं धनमस्य, बड़नी० । १ निर्धन, जिसके पास दौलत न रहे । स्वः आत्मोय, नञ्-तत् । २ अनात्मोय, जो अपना न हो ।

अस्तक, अस देखो ।

अस्तकीय, अस देखो ।

अस्तग (वै० त्रि०) निरालय, निराश्रय, लामकान, जो खास अपने मकान न जाता हो ।

अस्तगता (वै० स्त्री०) निराश्रयता, खामेवदोषो, ठिकाना न लगनेकी हालत ।

अस्तच्छ (सं० त्रि०) प्रकाशभेद्य; कलुष, तारीक, कशीफ, धुंधला, जो साफ न हो ।

अस्तच्छन्द (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत् । १ पराधीन, मातहत, जो मनमाना काम कर न सकता हो ।

२ अश्रय, तरबियतपिजौर, सधने योग्य ।

अस्तजाति (सं० स्त्री०) न स्वजातिः, नञ्-तत् ।

१ भिन्न वर्ण, अन्य कुल, सुखतलिफ जात, लुदा कौम, जो दूध अपना न हो । जैसे, अत्रियादि ब्राह्मणकी स्वजाति नहीं होता । (त्रि०) न स्वस्ये जातिर्यस्य, नञ्-बहुव्री० । २ भिन्न जाति, सुखतलिफ कौमका, जो अपने दूधका न हो ।

अस्तन्व (सं० त्रि०) न स्वतन्वम्, विरोधे नञ्-तत् । १ पराधीन, मातहत, जो आजाद न हो । २ अश्रय, तरबियत-पिजौर, गरीब ।

अस्तता (सं० स्त्री०) स्वत्वका न पहुँचना, हक्का न होना ।

अस्तत्व (सं० स्त्री०) अस्तता देखो ।

अस्तन्त (सं० स्त्री०) अस्तन्तां च्छुद्रश्रुत्प्राणानां अन्तो नाशो यस्मात्, ५-बहुव्री० । १ लुप्तो, लुल्ला । (त्रि०) सुष्टु न अन्तो यस्य, असमर्थ बड़नी० । २ दुष्ट परिणाम, जिससे अच्छा नतीजा न निकले । (पु०) ३ मरण, मौत ।

अस्तप्र (सं० पु०) नास्ति स्वप्नी निद्रा अस्तता वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ देवता, जो कभी सोता या भूलता न हो । २ निद्रानाश, निद्राभाव, वेदारी, बेकली, नोंद न आनेकी हालत । (त्रि०) ३ निद्रारहित, वेदार, बेकल, जो सोता न हो । ४ कार्यदक्ष, होशियारीसे काम करनेवाला ।

अस्तप्रज (वै० त्रि०) निद्रारहित, वेदार, जिसे नोंद न आये ।

अस्तभाव (सं० पु०) असाधारण आचरण वा प्रकृति, गैरमामूली चाल या मिजाज । (त्रि०) २ भिन्न-प्रकृतिविशिट, सुखतलिफ-तथोयत ।

अस्तर (सं० पु०) अग्रशस्तः स्वरो यत्र । १ स्वर-वर्ण-रहित व्यञ्जनमात्र, छर्फ-सही । २ उदात्तादि स्वर-वर्जित लौकिक उच्चारण, जिस तलफ फुजुमें क'बे छर्फ इकत न रहे । 'सादशोपसृपिः' (अतर) (त्रि०) ३ मन्दस्वरयुक्तः जिसके खुराब भावाजु रहे । ४ अवि-स्यष्ट, मखलूम, मिला जुला । (अथ्य०) ५ अवि-स्यष्ट रूपसे, मखलुत तौरपर ।

अस्तरूप (सं० त्रि०) न स्वस्ये रूपं यस्य, नञ्-बहुव्री० ।

असमान स्वभाव, जो बिलकुल सुखतलिफ हो ।

अस्वार्थ (सं० त्रि०) स्वार्थाय हितम्, स्वार्थ-यत्, नञ्-तत् । स्वार्थके अयोग्य, जिसे करनेसे स्वार्थ न मिले ।

अस्वार्थी (वै० त्रि०) निजका वृद्ध न रखनेवाला, जो परमे निकाल दिया गया हो ।

अस्वस्थ (सं० त्रि०) न स्वस्तिन् स्वभावे तिष्ठति, स्व-स्वा-क, नञ्-तत् । अमलतिस्य, रोगादिभिः अस्व-भूत, बीमार, जो तमदुःख न हो ।

अस्वस्वता (सं० स्त्री०) १ स्वाम्यका अभाव, नञ्-तत् न रखनेकी द्वायता । २ पीड़ा, व्यथा, निर्वेणता, बीमारी, कष्टकारी ।

अस्वतन्त्रता (सं० स्त्री०) न स्वातन्त्र्यात्, अभावे नञ्-तत् । १ स्वातन्त्र्याका अभाव, पराधीनता, मातहत्य, आज्ञा न रखनेकी द्वायता । (त्रि०) नञ्-वद्भूती० । २ पराधीन, मातहत, जो आज्ञा न हो ।

अस्वदुःख (सं० त्रि०) कौरव, विरव, शिशुपाल, धर्मजा, भीष्मा, भीष्मा ।

अस्वदुःखक (सं० पु०) अस्वदुःखमधुरः कष्टको दम्प । गोपुरु, जिसके भीष्मा काटा न रहे ।

अस्वाध्याय (सं० त्रि०) नास्ति स्वाध्यायो वेदाध्यायमस्य । १ विधिपूर्वक वेदाध्ययन न करनेवाला, जो कदापि वेद न पढ़ता न हो । (पु०) २ अध्यायन निदिह कान्, जिस वर्गमें पढ़ न मके । जैसे अष्टमी प्रभृति तिथि या रविवार वर्ग रखकी छुट्टी । अधि-इत्, कर्मणि अञ्, स्वयं अध्यायः, नञ्-तत् । १ स्वीय अध्याय आशादि, अपने न पढ़नेकी किताय, जिसे पढ़ न मके ।

अस्वाभाविक (सं० त्रि०) १ निमग्नैरिच्छ, अटिकाम-यात्, जिनाफ-तया, मापूता, जो जाती न हो । २ कृत्रिम, मसनयी, बनावटी ।

अस्वामिक (सं० त्रि०) नास्ति स्वामी यस्य, वद्भूती० । शिवादिमादेति कप् । स्वामिरहित, साधारण, जिसके स्वामिक न रहे । पर्यंत, पुण्य, मदीं और तीर्थको श्रावणकारोर्नि अस्वामिक बताया है । इन सकल स्थानोर्नि प्रतिपद्य न करना चाहिये । दायभागकी टीकांर्नि गद्यारण्यके हृद्य, मदींके जन और निधिको भी अस्वामिक कहा है ।

अस्वामिकृत (सं० त्रि०) स्वामिना कृतम्, नञ्-तत् । स्वामिभिः अन्य द्वारा किया हुआ, जो स्वामिकने न किया हो ।

अस्वामिन् (सं० त्रि०) १ स्वामिरहित, जो स्वामिन् न हो । २ स्वामिरहित, साधारण, जिसके स्वामिक न रहे ।

अस्वामिविक्रय (सं० पु०) न स्वामिना कृतो विक्रयः शाक० नञ्-तत् । १ स्वामिभिः अन्य द्वारा विक्रय, स्वामिकको छोड़ दूसरेके जरिये की हुई फरोखत । २ अतद्विषयक व्यवहार, इसी कामकी बात चीत । ३ इसका विचार, इसी बातका सूचना । अस्वामि-विक्रयका विचार या व्यवहार-सहितार्नि अच्छीतरह लिखा है ।

अस्वाम्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ समताका अभाव, नाश्मकारी, बराबरीका न मिलना । २ स्वामित्वका अभाव, स्वामित्वकीका न होना । (त्रि०) नञ्-वद्भूती० । ३ समताशून्य, नाश्मवार, जो बराबर न हो । ४ स्वामित्वशून्य, निष्क्रियता न रखनेवाला, जो स्वामिक न हो ।

अस्वार्थ (सं० त्रि०) १ अपने लिये न होनेवाला, जो स्वाम अपने वास्ते न हो । २ उचित पदायके अर्थ न होनेवाला, जो वाजिब बातके लिये न हो । ३ भिन्न अर्थ विधि, सुपुत्रनिक मानी रखनेवाला । ४ निस्वह, सुलभ, मापूदपरस्त, जो अपने गरज न रखता हो ।

अस्वार्थी (सं० त्रि०) स्वस्तिन् भावनि स्वस्थाने स्वभावे वा आविर्गति, स्व आविर्ग-अच्, ७-तत् । आत्मा, स्वभाव वा कामस्थानमें अस्थित, जो अपने अर्थ, मित्राज या सुकामपर न हो ।

अस्वार्थ्य (सं० स्त्री०) अभावे नञ्-तत् । १ स्वार्थ्यका अभाव, लक्ष्य, बीमारी, तन्दुहस्तीका न रहना । (त्रि०) नञ्-वद्भूती० । २ उद्विग्न, पीड़ित, बीमार, जो तन्दुहस्त न हो ।

अस्वीकार (सं० पु०) न स्वीकारः, अभावे नञ्-तत् । १ स्वीकारका अभाव, नामसूरी, इनकार । (त्रि०) नञ्-वद्भूती० । २ स्वीकार, अस्वीकार अर्थ प्रतिपद्य इत्यादिसे रक्षित, नामसूरी ।

नञ्-तत् । १ अक्षरप, जो थका-मांदा न हो । २ हानि न पहुँचानियाला, जो नुकसान न करता हो । ३ शान्तस्वभाव, पारसा, सुलहपसन्द, जो लड़ता-भिड़ता न हो ।

अस्त्रीवचस् (वै० त्रि०) चरण खाद्यविशिष्ट, जो टपक पड़नेवाला खाना रखता हो ।

असु (सं० स्त्री०) अस्यते चिप्यते, असु चेषणे क । चतुका जल, अशक, चांस । असुके निरोधसे पौन-सादि रोग उत्पन्न होते हैं ।

असुक (सं० पु०) अक्षीरहृद्य, कोर्रं पौधा ।

असुव (सं० स्त्री०) पोथकी, दाने-दानेकी साखत, वड़नेवाले लूखर्मने दानेका पड़ना ।

असुवाहिनी (सं० स्त्री०) असुवाहक धमनीहय, चांस निकालनेवाली दोनो नाड़ी ।

अस्त्रेमन् (वै० त्रि०) स्त्रिय-मनिन्, गुणो वा लोपथ । १ प्रगस्य, तारौफकी काविल । २ प्रगस्त, लालवाल, जो सड़ता-गलता न हो ।

अस्र, अस्र देखो ।

अस्री, अस्री देखो ।

अस्रील, अस्रील देखो ।

अस्रीक, अस्री देखो ।

अस्र (सं० त्रि०) नास्ति स्त्रं धनमस्य, बहुव्री० । १ निर्धन, जिसके पास दौलत न रहे । स्वः आत्मीय, नञ्-तत् । २ अनात्मीय, जो अपना न हो ।

अस्रक, अस्र देखो ।

अस्रकीय, अस्र देखो ।

अस्रग (वै० त्रि०) निरालय, निराश्रय, लामकान्, जो खास अपने मकान् न जाता हो ।

अस्रगता (वै० स्त्री०) निराश्रयता, खानेबदोगी, ठिकाना न लगनेकी हालत ।

अस्रघ्य (सं० त्रि०) प्रकाशभेद्यः, कसुप्र, तारौक, कसीफ, धुंधला, जो साफ न हो ।

अस्रच्छन्द (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत् । १ परा-धीन, आतहत, जो सममाना काम कर न सकता हो । २ शिष्य, तरवियतपिञ्जीर, अपने योग्य ।

अस्रजातिः (सं० स्त्री०) न सजातिः, नञ्-तत् ।

१ भिन्न वर्ण, अन्य कुल, सुखतलिफ जात, लुदा कौम, जो दूध अपना न हो । जैसे, अत्रियादि ब्राह्मणकी सजाति नहीं होता । (त्रि०) न स्वस्य जातियस्य, नञ्-बहुव्री० । २ भिन्न जाति, सुखतलिफ कौमका, जो अपने दूधका न हो ।

अस्रतन्त्र (सं० त्रि०) न स्रतन्त्रम्, विरोधे नञ्-तत् । १ पराधीन, आतहत, जो आज्ञाद न हो । २ शिष्य, तरवियत-पिञ्जीर, ग्रीष ।

अस्रता (सं० स्त्री०) स्वत्वका न पहुँचना, हक्का न होना ।

अस्रत्व (सं० स्त्री०) अस्त्रा देखो ।

अस्रन्त (सं० स्त्री०) अस्रान्तां सुदृग्जन्तुप्राणानां अन्तो नाशो यस्मात्, ५-बहुव्री० । १ सुज्ञो, सुज्ञा । (त्रि०) सुष्टु न अन्तो यस्य, असमर्थ बहुव्री० । २ दुष्ट परिणाम, जिससे अच्छा नतीजा न निकले । (पु०) ३ मरण, मौत ।

अस्रप्र (सं० पु०) नास्ति स्त्रप्रो निद्रा अश्रता वा यस्य, नञ्-बहुव्री० । १ देयता, जो कभी सोता या भूलता न हो । २ निद्रानाश, निद्राभाव, वेदारी, बेकली, नींद न आनेकी हालत । (त्रि०) ३ निद्रा-रहित, वेदार, बेकल, जो सोता न हो । ४ कार्यदक्ष, होशियारीसे काम करनेवाला ।

अस्रप्रज् (वै० त्रि०) निद्रारहित, वेदार, जिसे नींद न आये ।

अस्रभाव (सं० पु०) असाधारण आचरण वा प्रकृति, गैर-मामूली चाल या मिजाज । (त्रि०) २ भिन्न-प्रकृतिविशिष्ट, सुखतलिफ-तथोक्त ।

अस्रर (सं० पु०) अप्रशस्तः स्वरो यत्र । १ स्वर-यर्ण-रहित व्यंजनमात्र, हर्ष-सही । २ उदात्तादि स्वर-वर्जित लौकिक उच्चारण, जिस तलफूफुजमें कंसे हर्ष इलत न रहे । 'साधीयसतोःस्वराः' (चर) (त्रि०) ३ अमन्दस्वरयुक्तः, जिसके खुराब आवाज रहे । ४ अवि-सष्ट, मखलूत, मिला लुला । (अथ०) ५ अविषष्ट रूपसे, मखलूत तौरपर ।

अस्ररूप (सं० त्रि०) न स्वस्यैव रूपं यस्य, नञ्-बहुव्री० । असमान स्वभाव, जो बिलकुल सुखतलिफ हो ।

पदार्थ (सं० द्वि०) परमाणु द्वितम्, परमो-दत्, नञ्-तत् । परमके पदोप्य, जिमे करमेवे पर्या न मिले ।

पदार्थेय (वै० द्वि०) निम्नका गृह न रणनेशाना, जो परम निष्ठाक दिया गया हो ।

पदार्थ (सं० द्वि०) न पर्यन्तु स्वाभावे निम्नति, स्वा-व्या ह, नञ्-तत् । पदार्थत्व, रोगादिभि पमि-भूत, बीमार, जो तन्मुद्रका न ही ।

पदार्थता (सं० स्त्री०) १ स्वाभ्याका पभाव, मञ्-दुत् न रणनेकी वाचन । २ धोडा, व्याप, निर्बलता, बीमारी, कमजोरी ।

पदार्थता (सं० स्त्री०) न स्वाभ्याताम्, पभावे मञ्-तत् । १ स्वाभ्याका पभाव, पराधीनता, मातृकता, दास्यत्वं न रणनेकी वाचन । (ति०) मञ्-बहुव्री० । २ पराधीन, मातृक, जो पालाट न हो ।

पदार्थ (सं० द्वि०) मोरग, विरम, रिकल्प, रोगता, मोहा, धोडा ।

पदार्थव्यय (सं० पु०) पदार्थरूपः कल्प्यो दत् । मोक्षत्, शिमेके मोहा काटा न रहे ।

पदार्थाय (सं० द्वि०) नास्ति स्वाभावो वेदाभा-टमस्य । १ विधिपूर्वक वेदाध्ययन न करमेशाना, जो कादरेम पदका न हो । (पु०) २ पद्यटन निविह काल, छिन्न वस्त्रमं ददु न मके । जेमे पदमी पमति निदि वा रविचार वगैरेरकी वृत्ति । अपि इत्, कमपि गञ्, वाच्य पध्याय, नञ्-तत् । ३ शीघ्र पदाय प्राप्तादि, पदमे न पदमेकी किताय, जिमे पद न मके ।

पदार्थाविक (सं० द्वि०) १ निमगेविह, वृष्टिकम-वाच, विभाप-तवा, वाचुता, जो ज्ञानी न हो । २ क्लिप्त, ममन्थी, बभापटी ।

पदार्थिक (सं० द्वि०) नास्ति सामी दत्, बहुव्री० । प्रेदादिभावेति कट । सामिरहित, साधारण, जिमके सामिक न रहे । परंत, पुष्ट, मर्दा खोर तीरकी साधारणरि पदार्थिक बताया है । इन मकम ज्ञानमि प्रतिपद्य न करना चाहिये । दापभागकी टीकांमि साधारणके लक्ष, मदीके क्ल खोर निधिंको भी पदार्थिक कहा है ।

पदार्थिक (सं० द्वि०) सामिना क्तम्, नञ्, तत् । सामिभिय पद्य द्वारा किया हुआ, जो सात्त्विकने न किया हो ।

पदार्थिक (सं० द्वि०) १ सात्त्विक, जो हृद्यार न हो । २ सामिरहित, साधारण, जिमके सामिक न रहे ।

पदार्थिकय (सं० पु०) न सामिना क्तो विक्रयः शाकं नञ्-तत् । १ सामिभिय पद्य द्वारा विक्रय, सामिकको छोड़ दूमेके लिये की हुई प्ररोचन । २ यत्प्रिययक व्यवहार, हमी कामकी बात चीत । ३ समका विचार, हमी बातका सुयाल । पदार्थि-विक्रयका विचार दास्यत्वरक संदितामि पद्वीतरह किया है ।

पदार्थ (सं० स्त्री०) पभावे नञ्-तत् । १ समताका पभाव, नाहमवारी, बराबरीका न मिलना । २ सामित्यका पभाव, बकूटारोका न होना । (ति०) नञ्-बहुव्री० । ३ समतागुण्य, नाहमवार, जो बराबर न हो । ४ सामित्यगुण्य, मिलकियत न रणनेशाना, जो सामिक न हो ।

पदार्थ (सं० द्वि०) १ पदमे निवे न ज्ञोनेशाना, जो साम पदमे वाकी न हो । २ उचित पदार्थके पद्ये न ज्ञोनेशाना, जो वाजिब बातके निवे न हो । ३ भिय पद्ये विमिट, सुगू, तनिक मानी रणनेशाना । ४ गिस्ट्य, सुकमज, नागू, दपरक, जो पवनी मरज न रणता हो ।

पदार्थिग (सं० द्वि०) पयिन् सामिनि साम्याने स्वाभावे वा साविमति, य साविग-पद्य, त-तत् । पाषा, स्वाभाव वा सामस्यामि पमित, जो पवने पाये, मित्राज या मूकामवर न हो ।

पदार्थ्य (सं० स्त्री०) पभावे नञ्-तत् । १ सास्यका पभाव, उद्येग, बीमारी, तन्मुद्रकीका न रचना । (ति०) नञ्-बहुव्री० । २ उद्विन्न, पीड़ित, बीमार, जो तन्मुद्रक न हो ।

पदार्थकार (सं० पु०) न लोकारः, पभावे नञ्-तत् । १ लोकारका पभाव, नामधूरी, इनकार । (ति०) नञ्-बहुव्री० । २ लोकार, पदोकार एवं प्रतिपद्य इत्यादिमे रहित, नामधूर ।

अखीकृत (सं० त्रि०) न खीकृतम्, नञ्-तत् ।
अनङ्गीकृत, अप्रतिगृहीत, नामञ्जूर, जो माना न गया
हो। चलती बोलतीमें इनकार करनेवालेको अखीकृत
कहते हैं।

अखेद (सं० पु०) १ दवा बुधा पचीना। (त्रि०)
२ पसीनेसे खाली, जो पचीजता न हो।

अखेरिन् (सं० पु०) खेरी स्वाधीनः, नञ्-तत् ।
पराधीन, मातहत, जो स्वाधीन या खुदमुखतार न हो।
(स्त्री०) डीपू। अखेरिणी।

अम्सायी—निजाम राज्यके अन्तिम उत्तरपूर्व प्रान्तका
एक ग्राम और रणक्षेत्र। यह अक्षां २०° १५' १५"
उ०, तथा द्राघि० ७५° ५६' १५" पूर्व पर अवस्थित
और औरङ्गाबादसे उत्तर-पूर्व ४३ मील दूर है।
सन् १८०३ ई०की २३वीं सितम्बरको सर अयंर
वेल्लेस्लिने देखा, कि सेधिये और राघवजी भोंसलेके
साथ कितनी ही महाराष्ट्र-सेनाका वामभाग इस
ग्राममें पड़ा था। सेनामें १६००० शिष्टित प्रदल—
२०००० सवार और कितने ही आदमी रहे। १००
तोपें प्रान्तीयी अफसरोंके हाथमें थीं। इधर जनरल
वेल्लेस्लिके पास साढ़े चार हजारसे ज्यादा सिपाही
और सवार न रहे। किन्तु उन्होंने साहसपूर्वक केलना
नदी पार की और शत्रुको भीषण युद्धके बाद इस
स्थानसे पीछे हटाया। इसी बीच जो महाराष्ट्र मुदंका
बहाना कर लीट गये थे, वह पीछेसे आगे बढ़नेवाली
सरकारी सेनापर गोले फटकारने लगे। फिर भी
जनरल वेल्लेस्लिने पीछे घूम उनपर धावा मारा और
तोपोंको अधिकार किया। महाराष्ट्र-सेनाके १२०००
आदमी काम आ और दांत खट्टे हो गये थे। इस
ग्रामके अधिवाधियोंने कितनी ही बन्दूकों, तोपके
गोले और लड़ाईकी दूधरों चीजें पायी हैं।

अखो (हिं० वि०) संख्याविशेष, अशीति, दस और
आठका गुणन-फल।

अह (सं० अथ०) अहि-घञ्, घृषो० न कोपः ।
१ निःशब्देष्ट, अवश्य, वेगक, जहर, हाँ, अच्छा ।
२ अर्थात्, यानी। ३ माना, समभलिया, दरहकी-
कृत। ४ न्यूनसे न्यून, कमसे कम। ५ वाह-वाह,

शावाय। ६ खी-खी, नफूरत। (हिं०) अह देखो;
अहंद् (हिं० वि०) प्रकाण्ड, बड़ा, भारी।

अहंयु (सं० त्रि०) अहमहङ्कारोऽत्यस्य । १ गर्वयुक्त,
अभिमानी, फखूर रखनेवाला, घमण्डी।

'अहङ्कारानर्घुः शान्।' (अनर)
(पु०) २ योद्धा, सिपाही।

अहंवाद (सं० पु०) साहसिकता, छटता, गुस्ताखी,
शेखी, डींग-भरा।

अहंवादिन् (सं० त्रि०) साहसिक, छट, अत्यभिमानी,
गुस्ताख, बहुत ज्यादा फखूर रखनेवाला, जो अपने
को कहता हो।

अहंथेयस् (सं० त्रि०) अहं अहमेव येयान् यत्न,
बहुव्री०। अपनेको ही बड़ा समझनेवाला, जो
अपनेको ही आरामकी जगह मानता हो।

अहंथेयस, अहंथेयस् देखो।

अहंसन (वे० त्रि०) अपने ही निमित्त प्राप्त करने-
वाला, जो अपने ही लिये हासिल करता हो।

अहःकर, अहःकर देखो।

अहःपति, अहःपति देखो।

अहःशेष, अहःशेष देखो।

अहक (हिं० स्त्री०) अभिलाषा, खादिश।

अहकाम (अ० पु०) १ आश्रायें, हुकम। २ नियम,
कायदे। यह शब्द 'हुकम'का बहुवचन है।

अहङ्कर्तव्य (सं० त्रि०) १ अपने हीसे सम्बन्ध रखने-
वाला, जो दूसरेसे तात्कृ न रखता हो। (स्त्री०)
२ अहङ्कारका विषय, फखूरकी चीज।

अहङ्कार (सं० पु०) अहमिति ज्ञानं क्रियतेऽनेन,
अहं क्त-करणे-घञ् । १ आत्माभिमान, खुदी, डींग ।
२ आत्मानें उत्कर्षका अवलम्बन, गर्व, गुस्ताखी,
घमण्ड। ३ गर्वका आश्रय अन्तःकरण विशेष, दिलमें
फखूरके रहनेकी जगह। वेदान्त परिशिष्टमें मन, बुद्धि,
अहङ्कार और चित्तको अन्तःकरण कहते हैं।

४ संश्लेषमतसिंह महत्तत्त्वके अभिमानका कारण, पञ्च-
तन्मात्रका कारण तत्त्वविशेष। ५ वैद्यमतसे—क्षेत्रज्ञ-
पुरुषका चेतन। इन्द्रियादि निम्निल शरीरमें जो
अहङ्कार समाया, उससे लगी प्रवृत्ति ही अहङ्कार

दे। यह पहलति वैचारिक, तेजस और भूत भेदमें विविध रहती है।

पहलारपत्त (सं० लि०) आर्यवशापत्त, सुदृग्गत्त, धमपत्ती।

पहलारिम् (सं० लि०) पहलमत्तभिमानं करोति, पहल-कविदि। अभिमानपुष्प, मयंपुष्प, मन्दहर, सुदरीम्, जो पदमेंको बड़ा समझता है।

पहलारो, पहल-रु-दीम्।

पहलारोपुर—पहल मालिक ऐजुवाद जिनिका मगर। यह जो आराध मरही म्वाह कोम यत्रता है। इम वरपाह मरदार पहलारो रापने पवने म्वामवर कमादा वा। पहलिक कमकमोको जितना हो कथा पामडा मिमा जामा है। पवप दईमवपुष्ट रमयिका यह एक बड़ा देगम है। देगमके पाग बहूत बड़ा वाकार कमाने मगा है।

पहलारो (सं० लि०) पधने कलेका काम, जो बात सुनेमें बल न भइता है।

पहलगत (सं० लि०) पहलमिति ज्ञाने जने मोग, पधुमी० । १ वाक्याभिमानो, सुदृक्करोम, होमि केने-पाला। २ भगवै, मन्दहर, धमपत्ती। ३ पामिध, माहिर, माह्वु-कार।

पहलदि (सं० लि०) पहलु-ल-दिम्। पहलार, सुदमितापो, धमपत्त।

पहलाना (सं० लि०) १ टुटना, खोजना, पाहट लेना, पता भगाना। २ पीडा देना, दण्ड करना।

पहल (सं० लि०) न पहलने म्ग, वन-न, मन्-तत्त। १ मूलम पला, मया कपडा, जो कपडा भुला न हो। (लि०) २ पहलिकल, जो मारा न गया हो। ३ मूल, मया, जो भुला न हो। ४ मूढ, निच्छलद, जो विगडा न हो। ५ पागापित, जो माठफेद न हो।

पहलति (सं० लि०) न पहलति, पमापि मन्-तत्त। १ जनकका पमाप, न मारनेकी धामत। २ पविनाम, अलांमगी। (लि०) ३ पविनट, जो वरवाद न गया हो।

पहलद (सं० पु०) १ प्रतिष्ठा, पपन, इकरार, यादा,

बात। २ मद्यप, विचार, इरादा, । ३ भमय, वज्ज, जमाना।

पहलदार (सं० पु०) प्रतिष्ठा करनेवाला, जो मग्गुम कोर काम पन्थाम देनिका इकरार करता है। मूलमगानी बादगाहोमें करका ठेका लेनेवाला पहलदार कथाता था। यह मोकडा पीहे तीम रुपया पार्ने और माग कर चुकाने रहा।

पहलदामा (सं० पु०) १ प्रतिष्ठापत्त, इकरारनामा। इमके पधुमार दो या उममे पदादा भोग काई काम करना तइराने है। २ मन्थिपत्त, सुलजनामा, जिम पत्तके पधुमार भगवदा-भक्कपट मिट जाये।

पहदी (सं० पु०) १ यादा, मियाहो। यह पक-करके भमय कठिन कार्य उपपित हानेमें कमर बांधने है। माधारपत्तः पड़े-पड़े पाना जो इनका काम रहा। इमोमि सुस्त बादमाको भी भोग पहदी कहने मने है। (लि०) ३ पलम, सुस्त, काम न करने-वाला।

पहदीमाला (सं० पु०) पलमके रखनका म्यान, तहा काहिन रहे।

पहदेदुक्कमत (सं० पु०) राजत्वकाल, मामनका समय, माहोका जमाना।

पहन् (सं० लि०) न पहलति त्यजति हाकानं पा-पा-कोपः। दिवस। 'पहोरामः' 'पहलारः' इत्यादि व्यनने पहन् मद्यका पये कथन दिन है। दगाह पमोप, पहल्यहनि इत्यादि स्यामने पहन् मद्यका पय दिन और रात दोनो हो है। एक मयु पहलरके उचारण-कालको माता या निमेष कहते हैं। दो निमेषका नाम तटि है। पाप तटिका एक प्राप, छः प्रापको एक विनाडिका या विपल, माठ विनाडिकाको एक माडिका या दण्ड, और माठ माडिकाका एक पहोराम कोना है। एक पहोराममें तीस मुहने होते हैं।

पहल (सं० लि०) १ प्रकाशक, रोशनी देनेवाला, जो उजेला लेनाता हो। (शो०) २ प्रातःकाल, सवेरा।

पहलनोय (सं० लि०) पधने पयोग्य, जो कर्तन करने काहिन न हो।

अस्त्रीकृत (सं० वि०) न स्त्रीकृतम्, नञ्-तत् ।
अनस्त्रीकृत, अप्रतिष्ठहीत, नामञ्चूर, जो मानां न गया
हो । चलती थोलीमें इनकार करनेवालेको अस्त्रीकृत
कहते हैं ।

अखेद (सं० पु०) १ दया हुआ पसीना । (वि०)
२ पसीनेसे खाली, जो पसीजता न हो ।

अखैरिन् (सं० पु०) खैरी खाधोनः, नञ्-तत् ।
पराधीन, मातहत, जो खाधोन या खदसुखतार न हो ।
(स्त्री०) लीप । अखैरिणी ।

अध्यायी—निजाम राज्यके अन्तिम उत्तरपूर्व प्रान्तका
एक ग्राम और रणक्षेत्र । यह अक्षा० २०° १५' १५"
७०, तथा द्राघि० ७५° ५६' १५" पूर्व पर अवस्थित
और औरङ्गाबादसे उत्तर-पूर्व ४३ मील दूर है ।
सन् १८०३ ई०की २३वीं सितम्बरको सर अर्थर
वेल्लेस्लिने देखा, कि सेधिये और राघवजी भीसलेके
साथ कितनी हो महाराष्ट्र-सेनाका वामभाग इस
ग्राममें पड़ा था । सेनामें १६००० शिष्टित पैदल—
२०००० सवार और कितने ही आदमी रहे । १००
तोपे फ्रान्सीसी अफसरोंके हाथमें थीं । इधर जनरल
वेल्लेस्लिनेके पास साढ़े चार हजारसे ज्यादा सिपाही
और सवार न रहे । किन्तु उन्होंने साहसपूर्वक केलना
नदी पार की और शत्रुको भीषण युद्धके बाद इस
स्थानसे पीछे हटाया । इसी बीच जो महाराष्ट्र मुर्दका
बहाना कर लीट गये थे, यह पीछेसे आगे बढ़नेवाली
सरकारी सेनापर गोले फटकारने लगे । फिर भी
जनरल वेल्लेस्लिने पीछे घूम उनपर धाया मारा और
तोपोंको अधिकार किया । महाराष्ट्र-सेनाके १२०००
आदमी काम आ और दांत खट्टे हो गये थे । इस
ग्रामके अधियाधियोंने कितनो ही बन्दूकों, तोपके
गोले और महार्द्ध की दूसरी चीजें पायी हैं ।

अधो (हिं० वि०) संख्याविशेष, अधोति, दय और
घाठका गुणन-फल ।

अध (सं० अव्य०) अधि-घञ्-श्रुपो० न लोपः ।
१ निःसन्देह, अयश्व, योग्य, जूर, हां, अच्छा ।
२ अर्थात्, यानी । ३ माना, समझलिया, दरहकी-
कृत । ४ न्यूनसे न्यून, कमसे कम । ५ वाह-वाह,

शानाश । ६ क्री-क्री, मफूरत । (हिं०) अन् देखो
अधू (हिं० वि०) प्रकाण्ड, बड़ा, भारी ।

अधयु- (सं० वि०) अहमहङ्कारोऽस्त्यस्य । १ गर्वयुक्त,
अभिमानी, फखूर रखनेवाला, घमण्डी ।

'अहङ्कारान्तःशुः क्षत्' (अमर)

(पु०) २ योहा, सिपाही ।

अधवाद (सं० पु०) साहसिकता, छटता, गुस्ताखी,
शैथी, डींग-भरा ।

अधवादिन् (सं० वि०) साहसिक, छट, अत्यभिमानी,
गुस्ताख, बहुत ज्यादा फखूर रखनेवाला, जो अपनी
हो कहता हो ।

अध्वेयस् (सं० वि०) अधं अहमेव श्रेयान् यत्र,
बहुश्री० । अपनेको ही बड़ा समझनेवाला, जो
अपनेको हो आरामकी जगह मानता हो ।

अध्वेयस, अध्वेयस् देखो ।

अधंसन (वै० वि०) अपने ही निमित्त प्राप्त करने-
वाला, जो-अपने ही लिये हासिल करता हो ।

अधःकर, अधःकर देखो ।

अधःपति, अधःपति देखो ।

अधःश्रेय, अधःश्रेय देखो ।

अधक (हिं० स्त्री०) अभिलाषा, खाद्दिश ।

अधकाम (अ० पु०) १ आजायें, हुकम । २ नियम,
कायदे । यह शब्द 'हुकम'का बहुवचन है ।

अधह्वर्तव्य (सं० वि०) १ अपने होसे सम्बन्ध रखने-
वाला, जो दूसरेसे तात्काल न रखता हो । (स्त्री०)
२ अहङ्कारका विषय, फखूरकी चीज ।

अहङ्कार (सं० पु०) अहमिति ज्ञानं क्लियतेऽनेन,
अहं क्त-करणे-घञ् । १ आत्माभिमान, खुदी, डींग ।
२ आत्मानें उत्कर्षका अथलम्बन, गर्व, गुस्ताखी,
घमण्ड । ३ गर्वका आश्रय अन्तःकरण विशेष, दिलमें
फखूरके रहनेको जगह । वेदास्त परिशिष्टमें मन, बुद्धि,
अहङ्कार और चित्तको अन्तःकरण कहते हैं ।

४ मांख्यमतसिद्ध महत्त्वके अभिमानका कारण, पञ्च-
तन्मात्रका कारण तत्त्वविशेष । ५ वैद्यमतसे—चेतन-
पुष्टका चेतन । इन्द्रियादि निखिल शरीरमें जो
अहभाव समाया, उससे जमी प्रवृत्ति ही अहङ्कार

मीजूद है। १५६४ ई०को बीजापुर, गोलकुण्डा, वीदर आदिके राजाओंके साथ विजयनगरके राम-राजका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें हुसैनने रामराजके विपक्षमें फल धारण किया, परन्तु हिनूराजसे सभी पराजित होकर बन्दी बने।

१५८८ ई०में हुसैन शाह अपने लड़के मीरन हुसैन निज़ाम शाह द्वारा गुप्तभावसे मारे गये। मीरन भी अधिक दिन राज्यसुख भोग न कर सके। दश महीनेके अन्दर ही यमपुरीकी यात्रा कर गये। उनके बाद उनके भतीजे इम्पाईल निज़ाम राजा हुए। इम्पाईलके पिता पुत्रका राज्यभोग देख न सके। पुत्रको सिंहासनसे उतार एवं बुहान् निज़ाम शाह (२५) नाम धारण कर आप सिंहासनपर बैठ गये। उनके बाद उनके लड़के इम्पाहीम निज़ामशाह राजा हुए। वह बीजापुरराजके साथ युद्ध करनेमें हार गये। इसके बाद अहमद नामक उनके एक ज्ञातिकी अहमदनगरका सिंहासन मिला, परन्तु नव कुछ दिनोंके बाद यह मालूम हुआ, कि अहमद इम्पाहीमके साक्षात् ज्ञाति नहीं, तब इम्पाहीमके बालक पुत्रको उसकी मामी चांद बीबीने सिंहासनपर बैठा दिया।
नोट नीचे दीजो।

१५८८ ई०को सन्नाट अकबरके पुत्र दानियालने अहमदनगरपर चढ़ाई की। इस समयके बादसे अहमदनगरके राजा नाममात्रके राजा हुए। उनकी कीर्ति विशेष कमता न थी। १६१३ ई०को सन्नाट आहमदहानि अहमदनगरको राजशुल्क कर दिया। १७५८ ई०को यह नगर पेशवाको मिला, १७८७ ई०को टीलनराव से थिथके अधिकारमें आया और १८१७ ई०को ब्रिटिश सननेसेथके अधिकारभुक्त हो गया।

अहमद निज़ाम शाह वहरी—इतिहासके मुताबिक निज़ामशाही राजके स्थापयिता। यह निज़ाम-उल-सुल्तान वहरीके पुत्र है। सन् १७८८ ई०को इन्होंने मुल्ताबपुरका दुर्ग पकड़ लिया। इनके पिताने लखनऊ काह बहमानीसे कुछ आधीर पायी थी। इस आधीरके विनाटल खानोंको अहमदने अधिकार किया और मित्तकी

मृत्युके बाद निज़ाम-उल-सुल्तानका उपाधि लिया। यह बड़े भारी योद्धा रहे। युद्धके समयमें प्रायः सेनापतिका भार ग्रहण करते थे। सुलतान महमूद शाहने अहमदका बल प्राप्त करनेका सङ्कल्प किया। परन्तु सुलतानकी सेना अहमदसे हार गई। इस घटनाके बाद ही अहमदने श्रेतछत्र धारण किया और स्वाधीन राजा हो गये। १८८४ ई०को इन्होंने ही अहमदनगर वसाया। अहमदनगर शब्दमें इनके उत्तराधिकारियोंका शक्ति विवरण दीजो।

अहमदपुर—१ पञ्चाव प्रान्तके भङ्ग जिलेकी शेरकोट तहसीलका नगर। २ बङ्गाल प्रान्तके वीरभूम जिलेका व्यवसायी ग्राम और ईट इण्डियन रेलवेकी लुप लायिनका टेशन। रेलवे खुल जानेसे यहां चावलका व्यवसाय बढ़ गया है। ३ पञ्चाव प्रान्तके भावलपुरकी अपनी तहसीलका नगर। यह अक्षां २८° ८' ३०" उ० और द्रि० ७१° १८' पू० पर अवस्थित है। यहां प्रधानतः हथियार, रुई और रेशमका व्यवसाय होता है। ४ पञ्चाव प्रान्तके भावलपुर राज्यकी सादिकाबाद तहसीलका नगर।

अहमद बख्श खान्—पञ्चाव प्रान्तस्थ फीरोज़पुर और लोहारके जागीरदार नवाब। इन्होंने फख्रुद्दीलाका उपाधि पाया था। मरने पीछे इनके पुत्र नवाब शमसुद्दीनकी उत्तराधिकार मिला, जो सन् १८३५ ई०के अक्तोबर मास वधके कारण फाँसी पर चढ़ाये गये।

अहमद वेग—बम्बई प्रान्तस्थ भडोचकी नवाब। सन् ई०के १८ वें अताब्द कामाजी होमाजी नामक पारसी सुल्तानने एक सुसलमानको काफिर कहने पर इनके द्वारा सुसलमान इने या प्राण गंवानेका दण्ड पाया था। किन्तु उसने अपना बर्ग न छोड़ इसते इसते शाह दे दिया।

अहमद वेग काबुली—सुसलमान बर्गधारी विशेष। इन्होंने पच्छी अकबर आता सुहबाद एकीम और पीछे अकबर तथा जहांगीरके बर्गधारी काबुली नाम किया था। कुछ समयतक यह काबुलीके काबुली रहे। सन् १६१३ ई०को इनकी मृत्यु हुई।

पहमद वेग खान्—नरजखान्के भ्राता सुहम्बद शरीफ्के लड़के। इन्होंने यज्ञानमें जहांगीरके अधीन कार्य किया और विद्रोह बढ़ते समय ग्राहज्जदे ग्राह-लखान्को साहाय्य दिया था। पन्नाको ग्राहज्जहानि इन्हें लक्षे, भीमस्थान और मुलतानका शासक बनाया। इन्होंने पपधमें कैस तथा पमिठो जागीर पाया और वहीं अपना शरीर छाड़ा।

पहमद ग्राह—दिल्लीके बादशाह सुहम्बदशाहके लड़के। इनका उपाधि मुशाहिदुद्दीन सुहम्बद बहुत मशहूर रहा। इनको माताका नाम ऊधम बायी था। मन् १०२५ ई०की १४ वीं दिसम्बरको यह दिल्लीके फिलिमें उपास्य हुए और मन् १०४८ ई०की १५ वीं अग्रेनको राजमिंहासमपर बैठे थे। ६ वर्ष १ मास ८ दिन राज्य करने बाद मन् १०५४ ई०की २ री जुनको प्रधान मन्त्री इमादुलमुल्क ग़ाज़ीउद्दीन खान्ने इन्हें और इनकी माताको कैद कर पंजि फोड़वा दीं। पीछे २१ वर्ष कैदित रह मन् १०७५ ई०की १ री जगवरीकी इन्होंने रोगपस्त हां शरीर छाड़ा था। दिल्लीमें खादिम शरीफ्की मसजिदके सामने इनका शवदेह गाड़ा गया।

पहमद ग्राह—(१म) गुजरातके २४ राजा। तातार धाकि पुत्र और मुजफ्फर ग्राहके पोत्र। मुजफ्फर ग्राह अपनी जिन्दगी हीमें पहमदको राज्यभार दे गये।

पहमद ग्राहने शायरमतो नदीके किनारे पहमदा बाद नामक नगर बनाया था। पहमदाद ६६। ६९ वर्ष राज्य करनेके बाद मन् १४४८ ई०की ४ वीं जुलाईको इनकी मृत्यु हुई।

२ गुजरातके नवाब पहमद ग्राह द्वितीय। यह पहमदाबाद शासक ग्राहज्जदे पहमद खान्के लड़के रहे। महमूद ग्राह खतीयके मरनेसे राज्यका दूषरा उत्तराधिकारी न मिलने पर प्रधान मन्त्री इतमाद खान्ने इन्हें मन् १५५४ ई०की १८ वीं फरवरीको गुजरातका राज्यमिंहासम सौंपा था। इन्होंने सात वर्ष और कुछ मास राज्य किया। मन् १५६१ ई०की २१ वीं अग्रेनको राजप्रासादकी दीवारके नीचे इन्हें कोई भारकर दफ्त किया गया था।

इनका उत्तराधिकार मुजफ्फर ग्राह खतीयके हाथ लगा।

पहमद ग्राह अबदाली—एक विख्यात चाफ़गान वीर। लड़कपनमें नादिरग्राह इन्हें पकड़ ले गये और अपना दास बनाकर रखा था। उनके पास रहकर इन्होंने सामान्य कामसे लेकर सिन्धुसका भारतक पाया। मन् १०४७ ई०की ११ वीं मईको नादिर विनष्ट हुए थे। यह खबर पाते ही पहमद ग्राहने ईरानी सेनापर आक्रमण किया, परन्तु इस युद्धमें क्षतकार्य न हो समेन्य फन्दहारमें जा पहुँचे। काबुल और फन्दहार इनके हाथ लगा, उमीके साथ साथ सिन्धु और काबुलमें भेजे हुए ईरानके बहुतसे रत्न भी इन्हें मिले। एकवारगो ही बहुत धन पाकर हिन्दुस्थान जय करनेकी याचना इनके मनमें जाग उठी थी। पेशावर और लाहोरको इन्होंने जीत भी लिया। १०४८ ई०की इन्होंने लाहोरसे दिल्लीपर चटायो की। उस समय दिल्लीके सम्राट् 'सुहम्बद' ग्राह बीमार थे। इन्होंने अपने पुत्र पहमदको पहमद ग्राह अबदालीसे लहनेके लिये भेजा। सरहिन्दके पाम दोनों सेनायें भिड़ गईं। ग़ज़ावारको धजोर कमर उद्दीन अपने तम्बमें ईश्वरके भजनमें निमग्न थे। उसी समय शत्रुके गोलेको पीठसे घायल होकर वह मर गये। यह शोचनीय व्यापार देखकर मुग़लसेना रथमदसे उग्रच हो गयी। उस दिनके युद्धमें हज़ारी फ़ागान खेत पाये। रत्न खराब देखकर पहमद ग्राहने पीठ दिखाई और काबुलजाकर नई राह निकालनेकी चेष्टा करने लगे। १०५० ई०की यह भागरे तथा दिल्लीतक पाये और राहमें मधुराको लूटकर फन्दहार लौट गये। इसी समय महाराष्ट्रके भत्याचारसे समस्त हिन्दुस्थान उत्पीड़ित हो गया था। हत्याधिप नाज़िर-उद्दीला, भयधके नवाब गुज़ा उद्दीला तथा दूषरी भी कितने ही सुसन्तमानोंने महाराष्ट्रके भत्याचारसे हूटकारा पानेको भागापर पहमद ग्राह अबदालीको बुलाया और उनके लिये दिल्लीका तषुल तक छोड़ देना चाहा। अबदाली फिर सेना लेकर भारतवर्षमें पाये। महाराष्ट्रसे इनकी कई लड़ाइयाँ हुईं। उनमें

मीरजुद है। १५६४ ई०की बीजापुर, गोलकुण्डा, वीदर आदिके राजाओंके साथ विजयनगरके रामराजका युद्ध हुआ था। इस युद्धमें हुसैनने रामराजके विपक्षमें अन्न धारण किया, परन्तु हिन्दूराजसे सभी पराजित होकर बन्दी बने।

१५८८ ई०में हुसैन शाह अपने लड़के मीरन हुसैन निजाम शाह द्वारा गुप्तभावसे मारे गये। मीरन भी अधिक दिन राज्यसुख भोग न कर सके। दश महीनेके अन्दर ही यमपुरीकी यात्रा कर गये। उनके बाद उनके भतीजे इब्नाईल निजाम राजा हुए। इब्नाईलके पिता पुत्रका राज्यभोग देख न सके। पुत्रको सिंहासनसे उतार एवं वुहान् निजाम शाह (२य) नाम धारण कर आप सिंहासनपर बैठ गये। उनके बाद उनके लड़के इब्नाहीम निजामशाह राजा हुए। वह बीजापुरराजके साथ युद्ध करनेमें हार गये। इसके बाद अहमद नामक उनके एक आतिकी अहमदनगरका सिंहासन मिला, परन्तु जब कुछ दिनोंके बाद यह मालूम हुआ, कि अहमद इब्नाहीमके साक्षात् आति नहीं, तब इब्नाहीमके बालक पुत्रको उसकी मामी चांद बीबीने सिंहासनपर बैठा दिया। चांद बीबी देखी।

१५८८ ई०की सम्राट् अकबरके पुत्र दानियालने अहमदनगरपर चढ़ाई की। इस समयके बादसे अहमदनगरके राजा नाममात्रके राजा हुए। उनकी कोई विशेष क्षमता न थी। १६६३ ई०की सम्राट् शाहजहानने अहमदनगरकी राजशून्य कर दिया। १७५८ ई०को यह नगर पेशवाको मिला, १७८७ ई०की दौलतराव शिंदियाके अधिकारमें आया और १८१७ ई०की ब्रिटिश गवर्नमेंटके अधिकारभुक्त हो गया।

अहमद निजाम शाह बहरी—दक्षिणापथवाले निजामशाही वंशके स्थापयिता। यह निजाम-उल्-मुल्क बहरीके पुत्र थे। सन् १४८६ ई०की इन्होंने दुन्द्राजपुरका दुर्ग अयोध किया। इनके पिताने मद्दमूद शाह बहमानेसे कुछ जागीर पायी थी। इस जागीरके निकटस्थ स्थानोंको अहमदने अधिकार किया और पितानेको

मृत्युके बाद निजाम-उल्-मुल्कका उपाधि लिया। यह बड़े भारी योद्धा रहे। युद्धके समयमें प्रायः सेनापतिका भार ग्रहण करते थे। सुलतान मद्दमूद शाहने अहमदका बल प्राप्त करनेका सङ्कल्प किया। परन्तु सुलतानकी सेना अहमदसे हार गई। इस घटनाके बाद ही अहमदने खेतखत धारण किया और स्वाधीन राजा हो गये। १४८४ ई०की इन्होंने ही अहमदनगर बसाया। अहमदनगर अर्द्ध इतने उत्तम-कारियोंका धर्म विवरण देखो।

अहमदपुर—१ पञ्जाब प्रान्तके भद्र जिलेकी शीरकोट तहसीलका नगर। २ बङ्गाल प्रान्तके वीरभूम जिलेका व्यवसायी याम और ईट इण्डियन रेलवेकी लुप लायिनका स्टेशन। रेलवे खुल जानेसे यहाँ चावलका व्यवसाय बढ़ गया है। ३ पञ्जाब प्रान्तके भावलपुरकी अपनी तहसीलका नगर। यह अक्षा० २८° ८' ३०" उ० और द्रावि० ७१° १८' पू० पर अवस्थित है। यहाँ प्रधानतः इधियार, रुई और रेशमका व्यवसाय होता है। ४ पञ्जाब प्रान्तके भावलपुर राज्यकी सादिकाबाद तहसीलका नगर।

अहमद बख्श खान्—पञ्जाब प्रान्तस्थ फीरोजपुर और लोहाड़के जागीरदार नवाब। इन्होंने फ़खरुद्दीलाका उपाधि पाया था। मरने पछे इनके पुत्र नवाब शमसुद्दीनको उत्तराधिकार मिला, जो सन् १८३५ ई०के अक्तोबर मास वधके कारण फाँसी पर चढ़ाये गये।

अहमद वेग—बम्बई प्रान्तस्थ भडोचके नवाब। सन् ई०के १८ वें शताब्द कामाजी होमाजी नामक पारसी जुलाहेने एक मुसलमानको काफिर कहने पर इनके द्वारा मुसलमान होने या प्राण गंवानेका दण्ड पाया था। किन्तु उसने अपना धर्म न छोड़ हंसते-हसते प्राण दे दिया।

अहमद वेग काबुली—मुसलमान कर्मचारी विधेय। इन्होंने पहले अकबर आता मुहम्मद हकीम और पीछे अकबर तथा जहांगीरके अधीन काबुलमें काम किया था। कुछ समयतक यह कश्मीरके शासक रहे। सन् १६१४ ई०की इनकी मृत्यु हुई।

कुनवियोंकी गिराहत्या रोकनेके लिये सन् १८०० ई०में एक पार्षद जारी हुआ।

यहाँके राजपूतोंमें दो श्रेणियाँ हैं। एक श्रेणीके बादमियोंकी जमीन परौर है। ये प्रायः सभी बालकी हैं। फिर दूसरी श्रेणीके अनुषोंका जीवनीपाय किमाभी है। यहाँके प्रायः सभी खोरी किसान हैं, और वति सामान्य व्यवसायमें कालयापन करते हैं।

इस जिलेकी लोकसंख्या प्रायः साढ़े पाठ लाख है। इसके प्रधान नगर हैं—पद्मदावाद, धोन्का, वरि-जाम, धोलेरा, धन्क, गोधा, परानिज, मोगग और सानन्द।

यह स्थान रंगभी घोर लोनी कपड़ेके लिये प्रसिद्ध है। यहाँ व्यापक घोर घोरमान जैन धाम करते हैं।
 कर्मरं दनेदिवसके घोर भाने पद्मदावादका विद्वान् विवरण देवी।

२ पद्मदावादनगर। यह नगर गुजरातमें सर्व-श्रेष्ठ है। गावरमती नदीके बायें किनारे ममा है। इसका दृश्य वति सुन्दर है। दूरमें देखनेपर नयन घोर मन शीतल हो जाता है। इस नगरके पूर्व घोर पश्चिम घोर लक्ष्मी शहरपनाह बनी है। यह शहरपनाह प्रायः एक कोन लक्ष्मी होगी। गुजरातके राजा पद्मद गाहने इसे सन् १४१३ घोर १४४३ ई०के बीच मचाया था।

१५०३ ई०में यह स्थान पद्मवरेके अधिकारगुरु हुआ। सन् १०की शीलधर्म घोर सत्रधर्म गताष्ट्यमें इस स्थानकी सन्धि खूब बढ़ी थी। फिरस्ता नामक पारसी इतिहास ग्रन्थमें लिखा है, कि उस समय गुजरातके ३६० नगरोंमें शहरपनाह रही। महाराष्ट्रके उत्थानमें यह सब कीर्ति विलुप्त हो गई। १०३८ ई०की दामाजी गायकवाड़ घोर मुनीष खाँ नामक एक मनुष्यके हाथमें यह शहर भाया था। दोनोंने मिल लुप्तकर कुछ दिन इसका उपलब्ध भोग किया।

१०५३ ई०में महाराष्ट्रोंने इस स्थानको देखकर लिया। बीचमें मुनीष खाँने कुछ दिनोंके लिये इसे अधिकार किया था, परन्तु फिर यह महाराष्ट्रोंके हाथमें चला गया। (१०५० ई०)

१०८० ई०की श्रुतिग सेनापति गर्डेने इस स्थानपर चढ़ाई की और १८८१ ई०की यह चंगरेजीके देखनेमें था गया। यहाँ जैनधर्मके १२० मन्दिर हैं। स्थानीय हिन्दू तीन तीन वर्षपर एकवार नरुं पेर इस नगरकी परिक्रमा करते हैं।

इस नगरकी सोने घोर चांदीकी खरी प्रसिद्ध है। यहाँ जो कागज तथार होता, वह गुजरात प्रदेशमें काम जाता है। *

पद्मदी—एक तुर्की कवि। इनका पूरा नाम खाना पद्मद जापरी रहा। यह पनेमियामें रहते थे। किसी दिन विजयविजयी तातार-रूपति तैमूरलङ्गने कण्ठभी जाते समय इनके ग्राममें विथाम किया। इन्होंने पपनी बनायी रज्जु लहे जा सुनायी थी। तैमूरलङ्ग साहित्यप्रेमी रहे। उनमें घोर इनमें शार्दिक छेह बढ़ गया। किसी दिन दोनो खानागारमें डेटे थे। तैमूर इनसे झूठ प्रश्न करते घोर उत्तर पर हंसते जाते थे। बादगाहने अनुचरोंकी घोर सद्देशकर पूछा,—यदि आपमें कोयी इन तीम सुन्दर बालकोंका सूक्ष्म पूछे, तो क्या वतायियेगा ? पद्मदीने बड़े शान्त भावसे उत्तर दिया, पद्मदीका एक ऊँट चाँदी, दूसरेका १८२ सैर मोती और तीसरेका दाम सोनेका ४० खूँटा है। तैमूरने कहा,—बहुत ठीक, पद्मदी भी सूक्ष्म वता दीजिये। कविने कहा,—चीबीस भगरकीने कम न क्यादा। तैमूरने 'सते-हसते फिर पद्मदीने पूछा,—क्या, चीबीस भगरकीकी तो मैं सदरी ही पहले हूँ ? कविने उत्तर दिया,—तभी तो, वरं आपका सूक्ष्म कौड़ी भो नहीं थाता। तैमूरने कविको इस चातुर्य घोर स्पष्ट कथनपर कितना ही प्रस्तार दिया था। इन्होंने 'कुसियात खाना पद्मद जापरी', तुर्की-भाषाका 'सिकन्दरनामा' घोर तैमूरलङ्गकी वीरताका वर्णन बनाया है। सन् १४१२ ई०की इनकी मृत्यु हुई।

पद्मसम्मिका (सं० स्त्री०) पद्मसह शब्दोपस्यत्र शीषार्या द्विर्भावः टन् निपातनात् न ट्श्रीयः । १ परस्पर पद्मद्वार, पालमदावा, खुदबीनी, सागडाँट,

पानी पतका युद्ध ही प्रधान है। १७६१ ई०में यह युद्ध हुआ था। इस युद्धमें महाराष्ट्रोंने पूर्णरूपसे पराजय स्वीकार कर लिया।

सुदूर लौट जानेके समय अहमदाली शाह पालम-की भारतवर्षका सम्राट बना गुजा उद्दौला आदि नयाबोंकी उनकी अधिपता स्वीकार करनेका आदेश दे गये थे। २६ वर्ष राज करनेके बाद १७७३ ई०को अहमद शाह अहमदालीने प्राणत्याग किया। कन्दहारके राजभवनके पास ही इनकी मर्दा दी गई थी। इनकी कब्रकी भोग सिद्दायत समझते हैं। इनकी मृत्युके बाद इनके लड़के तैमूर शाह तग़्ग़पर बैठे। अहमद शाह अहमदालीकी शाह दुरानी भी कहते हैं।

अहमद शाह वली बहमानी—दक्षिणपथके एक सुलतान। यह अष्टमाम्बुश्रीय सुलतान दावूद शाहके पुत्र थे। पहले इनके बड़े भाई फ़ारोज़ शाहकी राज्य मिसा, परन्तु उन्होंने अपनी इच्छासे अपने छोटे भाई अहमदशाहको दे दिया। सन् १४२२ ई०की अहमद शाह राजसिंहासनपर बैठे थे।

एक दिन अहमद शाह शिकार खेलने गये। परन्तु आखेट करते करते एक मनोहर स्थानमें जा पहुँचे। वहाँ खच्छरसलिला नदी बहते रहीं। फलसे लदे हुए हज़ार वनकी शोभा बढ़ा और शनैक प्रकारके पक्षी कक्षरवसे कागन गुंजा रहे थे। यह दृश्य देख सुलतानका मन मुग्ध हो गया। इन्होंने उस स्थानमें अहमदाबाद बौदर नामक सुन्दर नगर और दुर्ग बनाया। यहाँ दमयन्तीके पिताका राज्य था। १२ वर्ष राज करनेके बाद १४३६ ई०की अहमद शाह कालके कलैया हो गये।

अहमदाबाद—१ बम्बई विभागके अन्तर्गत गुजरात-प्रदेशका एक जिला। यह अक्षा० २१° ५०' १०" तथा २१° २४' ३०" उ० और द्राघि० ७१° २०' एवं ७२° २०' २०" पू०के मध्य अवस्थित है। इस जिलेकी उत्तर सीमामें बड़ोदा, उत्तर पूर्वमें मन्हीकान्ता, पूर्वमें यान्नामिनोर एवं कैरा जिला, दक्षिणपूर्वमें कम्बे और पश्चिममें काठियावाड़ है।

अहमदाबादके भूतत्वकी पर्यालोचना करनेसे

अनायास ही स्वीकार करना पड़ता है, कि पहले यह स्थान समुद्रमें था और इसे वर्तमान भूमिके प्रकारमें परिणत हुए बहुत दिन नहीं बीते।

पहले अहमदाबाद अमरसिंहवाड़ राजाओंके अधिकारमें था। सन् ७४६ ई०में उन्होंने इस स्थानको किसानी करनेके लिये लोगोंको दे दिया। १२६० ई० तक यह जगह उन्हींके हाथमें रही। उसके बाद भीलोंने इसे दखल कर लिया। फिर १५७२ ई०की अकबर शाहने इसे भीलोंसे खीना था। १७५१ ई०की पेशवानी इस जगहको दखल किया। १८०७ ई०की गायकवाड़ने अपना और पेशवाका हिस्सा हटिग गवर्नमेंण्टको दे दिया था।

अहमदाबाद खूब उपजाऊ है। बम्बई प्रदेशमें यह वाणिज्यका प्रधान स्थान है। यहांके अधिकांश आदमी खेती-किसानी करके जीविका निर्वाह करते हैं। उनमें कुनबी, राजपूत और कोरी ही प्रधान हैं। कुनबी सचराचर तीन श्रेणियोंमें विभक्त है,—अश्वना, कदावा और लेवा। इस समय हिन्दुस्थानमें जिस तरह सामान्य गृहस्थके यहां कन्याका जन्म होनेसे यह अपनेकी विपदग्रस्त समझता, कुनबीयोंकी भी यही दया है। इस विपदसे बचनेके लिये कुनबी जन्मते ही कन्याको मार डालते रहे। पचा। मा होकर भी सम्मानके ऊपर ऐसा अत्याचार करना पड़ता था। बिना बहुत खर्च किये कन्याका विवाह न होता था। किसीने बहुत कष्टसे कन्याको पाला पोसा। किन्तु यह जड़ बड़ी हुई, तो मन लायक पति न मिला। ऐसी हालतमें प्रायः पहले उसका विवाह फूलके गुलदस्तेमें होता था। फिर वह गुलदस्ता कुयेंमें फेंक देनेसे कन्या विधवा हो जाती रहीं। ऐसे स्थलमें वह कन्या पुनर्विवाह कर सकती थी। उसमें बहुत खर्च भी न लगते रहा। किसी स्थलमें विवाहित पुरुषके साथ कन्याका विवाह कर दिया जाता था। परन्तु शर्त यह ठहरा ली जाती थी, वर विवाह करनेके बाद ही कन्याको परिव्याग कर देगा। वरके परिव्याग कर देनेपर फिर जिसकी इच्छा ही, वह उस कन्यासे विवाह कर सकता था।

कुनवियोंकी गिरावट्वा रोकनेके लिये सन् १८०० ई०में एक बाईन जारी हुआ।

यहाँके रातपूर्तोंमें दो श्रेणियाँ हैं। एक श्रेणीके प्रादमियोंकी जमीन बगैर है। ये प्रायः सभी चालसी हैं। फिर दूसरी श्रेणीके मनुष्योंका जीवनीपाय किमाभी है। यहाँके प्रायः सभी कोरी किसान हैं, और प्रति सामान्य पचव्यासमें कालयापन करते हैं।

इन जिनकेकी मोरुसंख्या प्रायः साढ़े पाठ लाख है। इनके प्रधान नगर हैं—पद्मदावाद, धोल्का, बरि-काम, धोलेरा, धन्वक, गोधा, परान्तिज, मोराग और सातम्द।

यह स्थान रैगमी और जनी कपड़ेके लिये प्रसिद्ध है। यहाँ व्यापक और पोसवान जन वाम करते हैं।

३ पद्मदावादनगर। यह नगर गुजरातमें सर्व-श्रेष्ठ है। गाहरमती नदीके बायें किनारे बसा है। इसका दृग्ग पति सुन्दर है। दूरसे देखनेपर गमन और मन गीतन ही जाता है। इस नगरके पूर्व और पश्चिम और ऊँची गहरपनाह बनी है। यह गहरपनाह प्रायः एक कोम लम्बी होगी। गुजरातके राजा पद्मद गाहने इसे सन् १४११ और १४४३ ई०के बीच बसाया था।

१५०३ ई०में यह स्थान पकवरके अधिकारभुक्त हुआ। सन् १०की सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें इस स्थानकी समृद्धि ध्रुव बढ़ी थी। फिरस्ता नामक पारसी इतिहास ग्रन्थमें लिखा है, कि उस समय गुजरातके ३६० नगरोंमें गहरपनाह रही। महा-राष्ट्रोंके उत्थानसे यह सब कीर्ति विलुप्त हो गई। १०३८ ई०की दामाजी गायकवाड़ और सुनीव खाँ नामक एक मनुष्यके हाथमें यह गहर आया था। दोनोंने मिल कुसकर कुछ दिन इसका उपस्रत्व भोग किया।

१०५३ ई०में महाराष्ट्रोंने इस स्थानको दखन कर लिया। बीचमें सुनीव खाँने कुछ दिनोंके लिये इसे अधिकार किया था, परन्तु फिर यह महाराष्ट्रोंके हाथमें चला गया। (१०५० ई०)

१०५३ ई०में महाराष्ट्रोंने इस स्थानको दखन कर लिया। बीचमें सुनीव खाँने कुछ दिनोंके लिये इसे अधिकार किया था, परन्तु फिर यह महाराष्ट्रोंके हाथमें चला गया। (१०५० ई०)

१०८० ई०की छटिम सेनापति गर्डने इस स्थानपर चढ़ाई की और १८१ ई०की यह चंगरेजोंके दखलमें आ गया। यहाँ जैनयायकोंके १२० मन्दिर हैं। स्थानीय हिन्दू तीन तीन वर्षपर एकवार नङ्गे पैर इस नगरकी परिक्रमा करते हैं।

इस नगरकी सोने और चांदीकी जरी प्रसिद्ध है। यहाँ जो कागज तय्यार होता, वह गुजरात प्रदेशमें काम आता है।

पद्मदी—एक तुर्की कवि। इनका पूरा नाम खाना पद्मद जाफरी रहा। यह पश्चिमियाँ रहते थे। किसी दिन विग्नविजयी तातार-नृपति तैमूरलङ्गने कण्ठोकी जाते समय इनके ग्राममें विग्राम किया। इन्होंने अपनी बनायी रज्ज उखे जा सुनायी थी। तैमूरलङ्ग साहित्यप्रेमी रहे। उनमें और इनमें छोटिके छेह बढ़ गया। किसी दिन दोनो खानागारमें बैठे थे। तैमूर इनसे कूट प्रश्न करते और उत्तर पर हंसते जाते थे। बादगाहने पनुचरोंकी और सद्देतकर पूछा,—यदि आपसे कोयी इन तीम सुन्दर बालकोंका मूख्य पूके, तो क्या बतियावियेगा ? पद्मदीने बड़े शान्त भावसे उत्तर दिया, पहलैका एक छंट चांदी, दूसरेका १८२ सेर सोती और तीमरेका दाम सोनेका ४० खूँटा है। तैमूरने कहा,—बहुत ठीक, अब मेरा भी मूख्य बत दीजिये। कविने कहा,—चीथीस चगरफ़ीसे कम न ब्यादा। तैमूरने 'सने-हसते फिर पद्मदीसे पूछा,—क्या, चौथीस चगरफ़ीकी तो मैं सदरी ही पछने हूँ ? कविने उत्तर दिया,—तभी तो, वरं आपका मूख्य कौड़ी भी नहीं आता। तैमूरने कविको इस चातुर्य और स्पष्ट कथनपर कितना ही पुरस्कार दिया था। इन्होंने 'कुशियत खाना पद्मद जाफरी', तुर्की-भाषाका 'सिखन्दरनामा' और तैमूरलङ्गकी वीरताका वर्णन बनाया है। सन् १४१२ ई०को इनकी मृत्यु हुई।

पद्महमिका (सं० स्त्री०) पद्महं गद्योऽख्यत्र वीषायां द्विभोवः ठन् निपातनात् न टेलोपः । १ परस्पर पद्महार, चालदादा, खुदवीनी, लागडाट,

हमाहमो । २ गुहविषयक दर्प, नङ्गेकी चटाऊपरी, मारकाट, धरपकड़ ।

अहमिति, अहमिति देखो ।

अहमेव, अहमिति देखो ।

अहम्यर्थ (दे० त्रि०) अहं पूर्वं करोमि अहं पूर्वं करोमि इत्यभिधानं यस्य । प्रथम होनेका अभिलाषी, उत्साह हेतु मैं पहले करूंगा मैं पहले करूंगा कहने-वाला, जो मैं पहले मैं पहले कहता हो ।

अहम्यविका (सं० स्त्री०) अहंपूर्व अहंपूर्व इत्यभिधानं यत्र । १ योहाथोंका उत्साहसे मैं ही पहले जाऊंगा मैं ही पहले जाऊंगा कहना, जयस्कु आत्मण, हमसरीका हमला । २ गर्ध, घमण्ड ।

अहम्यत्वय (सं० पु०) अहमेवं रूपप्रत्ययः विज्ञासः, रूप० कर्मधा० । मैं और मेरेका ज्ञान, अहं शब्दाभिलाषी आत्मा । धार्याक कहता, कि अहम्यत्वय देहके ही मध्य रहता है । बौद्ध इसे धार्मिक विज्ञान बताया और आस्तिक दर्शनके अनुसार देहादिसे व्यतिरिक्त समभक्ता है ।

अहम्ययमिका, अहम्ययिका देखो ।

अहमभद्र (सं० त्रि०) अहमेव भद्र इति निर्णयो यत्र । अपनेकी ही भद्र समझनेवाला, जो अपने हीको बड़ा मानता हो । (स्त्री०) २ आत्मभिमान, खुदबीनी, अपनी बड़ाई ।

अहममति (सं० स्त्री०) अहमित्वेवं मतिः ज्ञानम्, रूप० कर्मधा० । अविद्या, अज्ञान, खुदबीनी, जोम, अपनी बड़ाई ।

अहम्यान (सं० स्त्री०) अहमिति देखो ।

अहर (सं० त्रि०) न हरति, ह-अच्, नञ्-तत् ।

१ हारक न होनेवाला, जो छोन न लेता हो । नास्ति हरो हारको यथ्य, नञ्-बहुव्री० । २ हारकशून्य, याहनहीन, जिसे छींचनेवाला न रहे । (पु०) गणित-शास्त्रके मतसे—शुद्धराशि, अर्थात् जो राशि फिर बंटता न हो, तत्कसीम न होनेवाली अदद । ४ असुर-विशेष । ५ हादग मनु ।

अहरणीय (सं० त्रि०) हरण किया न जानेवाला, जो चोराने या ले जाने लायक न हो ।

अहरदृक् (सं० पु०) गृध्र, उक्ताव, गीघ ।

अहरन (हिं० स्त्री०) शूर्मी, स्यूषा, सनदा, निहायी ।

अहरना (हिं० क्ति०) गढ़ना, बनाना, क्रील-कास करना ।

अहरनि, अहरन देखो ।

अहरा (हिं० पु०) १ सुलगाये जानेवाले कण्डोंका ढेर । २ सुकाम, ठहरनेकी जगह । ३ पानी पीनेका अड्डा । यह संस्कृतके आहरण शब्दका अपभ्रंश है ।

अहरागम (सं० पु०) प्रातःकालको उपस्थिति, सबेरकी आमद, तड़केकी पहुँच ।

अहरादि (सं० पु०) अहः प्रादिः, ६-तत् । अहरतीनाप्य-दिङ् ना रेकः । (महाभाष्य) १ प्रातःकाल, सबेरा । २ गण-विशेष । इसमें निम्नलिखित शब्द पठित हैं,—अहनृ, गिरु और धुर ।

अहरित (बे० त्रि०) जो पीला न हो ।

अहरी (हिं० स्त्री०) १ अरही, अशुभके पानो पीनेका हौज । २ हौज, पानी भरनेकी जगह । ३ पानी पीनेका अड्डा ।

अहर्गण (सं० पु०) अहर्जाः गणः । माघ, दिनसमूह, महीना । इसके पर्याय यह हैं,—द्युहन्द, दिनीम, दुगण, दिनपिण्ड ।

२ अहर्गणं भावादि प्रापक सृष्टि, श्वेतवराहकल्प-किन्वा कल्प आरम्भ इष्ट दिन पर्यन्त वीतनेवाले दिनोंका समूह । सृष्टिके एक हजार युगमें ब्रह्माका एक दिन होता, जो मनुष्यका कल्प भी कहता है । ब्रह्माका रात्रिमान भी एक हजार युग है । इन्हीं दो युग सप्तसहस्रकी ३६० से गुणाकरनेपर ब्रह्माका एक वर्ष होता है । ऐसे ही सौ वर्षसे ब्रह्माका परमायु आता है । पूर्वोक्त कालमें पाधा ब्रह्माका अर्धपरमायु है । ब्रह्माके इसी अर्धपरमायुमें मन्वि-महित छः मनु वीत चुके हैं । वैवस्वतमनुवाले युगके तीन घन गत हुये हैं । समके २८ युगमें सत्ययुग वीता था । सूर्यसिंहासने निम्नलिखित नियमसे इसकी गणना की है,—मनुष्यके ४३२०००००० वर्षका ब्रह्माका एक दिन होता, और इतना ही समय रातमें भी आता

कुमागढ़में इनोंने सोमनाथका दूसरा-नया मन्दिर पड़ा कराया, जो ३८ फीट लम्बा और ४२ फीट चौड़ा है। मन्दिरकी चारो ओर २२ फीट चौड़ा चबूतरा खिंचा है। चबूतरोंमें धर्मशाला और भस्म-पूर्णा एवम् गणपतिका दो छोटा मन्दिर है। सोमनाथके मन्दिरपर तीन गुम्बज सजे हैं। गढ़ले-भर सिद्धके नीचे १२ फीट लम्बी-चौड़ी कोठरी खुदी, जिसमें सोमनाथका सिद्ध विराजमान है। गुम्बजोंमें ३२ खम्भे लगे हैं। परन्तु सकल स्थानकी अपेक्षा गयाधामवाली इनकी कतिर्ति ही अधिक प्रशंसनीय है। गयामें इनके प्रतिष्ठित अनेक देवालय हैं, जिनके मध्यमें विष्णुपदमन्दिर और साठ-मन्दिर अतिगौरव प्राप्त हैं। मन्दिरकी कारीगरी विस्मयकरानी मानो अपने हाथ निकाली है। ऊपरी मेहराब अति चमत्कार है, मानो शून्यपर आप ही लटकती है। फिर एक मन्दिरमें रामसीताकी प्रतिमूर्ति है, जिसके समीप बहलाराज बैठ भक्ति भावसे गिरपूजा करती है। इनके समस्त देवालयाँमें प्रतिवर्ष विभार अर्घ्य और खाद्यद्रव्यादि दान किया जाता था। इससे भिन्न यह नित्य दरिद्रोंको भोजन कराती थीं। शीतकाल पानिसे पथिकोंके लिये बहलाराज स्थान स्थान पर लक्ष्मण बैठाने देती रहीं। शीतकालमें दरिद्रोंको यह वस्त्र वितरण करती थीं। पशु-पक्षियोंके लिये भी खाद्यद्रव्य निर्दिष्ट था। जलक शम्भुदेवमें पक्षियोंको बैठाने न देती थी। अस्संख्य अस्संख्य पक्षी दल बांधकर ऊपर उड़ा करते, परन्तु कुछ भी पानि न पाते रहे। यह देखकर बहलाराज रामो जलकोंसे फुसली खेत खरीद कर पक्षियोंके निमित्त छोड़ देती थीं। इसीतरह सन् १०६५ से १०८५ ई० तक प्रायः तीस वर्ष सुखपूर्वक राजत्व चला साठ वर्षकी अवस्थामें इनोंने स्वर्गगमन किया।

बहलाराज (सं० पु०) ६-तत् । इन्द्र ।

बहलाराज—विहारप्रान्त दरभंगा जिलेके पलियारी धामला मन्दिर। प्रति मास इस मन्दिरमें धार्मिक मेला लगता और दिन रात ठहरता है। प्रायः दस अष्टस्र यात्रो पकड़ होती है। पहले तिरसठ परगनेके

देवकली कुछमें छान कर पीछे लोग यहां सीताका पदचिह्न देखने पाते हैं। पदचिह्न चपटे पत्थर पर उतरा है। कहते हैं, गीतम ऋषि यहीं रहते थे। बहलाराज (सं० पु०) बहलाराज जतो-ऊदः, शाक ३-तत् । गीतमके प्रायमका खनामप्यात तीर्थविशेष। बहलाराज (सं० पु०) बहलाराज लीयते जननं इत्यते बहलाराज लीयते नृपा० उ संज्ञायां ठन् । अतः, दिनको देख न पड़नेवाला अंतान् ।

बहलाराज—पवधके राजपूतोंका एक वंश। कहते हैं, कि गुजरात बहलाराज पाटनके खवार शासक ब्राह्मण गीयो और सोयी बहलाराजोंके पूर्वपुत्र रहे। दोनो ही नेता सन् ई०का शताब्द आरम्भ होते समय पवध पाये थे। इनमें कुछ हिन्दू और कुछ मुसलमान होते, किन्तु साथ ही बैठकर खाते हैं। हिन्दू हिन्दुओं और मुसलमान मुसलमानोंके साथ विवाह करते हैं। बहलाराज (सं० द्वि०) बहलाराजके अयोग्य, जिसे पाहुतिमें डाल न सकें।

बहलाराज (द्वि० पु०) मोहाग, जिस डालतमें खाविन्द जिन्दा रहे।

बहलाराज (द्वि०) बहलाराजके।

बहलाराज (सं० पु०) हत्तात्, याने, खबरें। २ दगायें, हालतें। यह शब्द 'हाल'का बहुवचन है।

बहलाराज (वे० द्वि०) बहलाराज, बहलाराज।

बहलाराज (वे० अष्ट०) प्रतिदिन, रोज-रोज।

बहलाराज (सं० पु०) बहलाराजः शेषः। १ दिवसका शेष, सन्ध्या, शाम। बहलाराजः शेषो यत्, बहुवचनं। २ प्रतीक-प्रतादिके पूरे होनेका दिन।

बहलाराज (सं० पु०) १ उपकार, भलायी, मसूका, नेकी। २ अनुग्रह, मेहरबानी।

बहलाराज (सं० पु०) बहलाराजः करो बहलाराज-ऊद उप० समा०, बहलाराजो यस्य बहुवचनं वा, कस्कादित्वात् सः। १ अर्थ। २ अर्थहृत् ।

बहलाराज (सं० द्वि०) न स्याः इदानीं यस्य नञ्-बहुवचनं। १ इदानीं। अर्थे आगादि प्राणो। २ इदानीं, इदानीं रहित, जिसके टूटा हाथ रहे। नास्ति बहलाराजः अर्थो यस्य। १ अनुग्रहित, अर्थहृत् ।

पश्चिमपति (सं० पु०) पश्चिम पतिः तत् वा. सत्वम् ।
१ सूर्ये । २ परमेश्वर ।

पश्चिम (सं० पश्च०) पश्चिम पश्चिमार्थं जहाति, पश्चिम-
वाक्यं पश्येत् साधु । १ धी, प । २ परे, वया । ३ हाय
-हाय, वेद । ४ क्षेम, तत्कर्मिणः । ५ प्रकर्ष, वया ज्ञेय ।

पश्चिमा (सं० पश्च०) पश्चिम पश्चिमाभिमानं जहाति ।
पश्चिम-पश्चिमा । १२११ श्लो ।

पश्चा (हिं०) १२११ श्लो ।

पश्चाता (सं० पु०) १ पश्चिम, प्राङ्मुख, घेरा । २ पश्चिम,
पश्चिमदिशि ।

पश्चान् (हिं०) पश्चान् श्लो ।

पश्चारे (हिं०) पश्चारे श्लो ।

पश्चारे—१ राजपूतानेके छदयपुर राज्यका विध्वस्त नगर ।
यह छदयपुर नगरसे ३ मील पूर्व पड़ता है । कहते
हैं, पश्चिमदिक्के पुरातन राजधानी तम्या नगरोके
स्थानमें इतने प्रतिष्ठित किया गया । सज्जन हाय पानेमें
पड़से विक्रमादित्यके तुवार पूर्वपुदय तम्या नगरोमें
ही निवास करते रहें, जिनका नाम बिगड़ कर पड़से
पानन्दपुर पौर पालि पश्चारे हुआ । इस स्थानकी पूर्व
पौर कितने ही पुरानेके निगम मिमने, जिन्हें 'धन-
कोट' कहते हैं । धनकोटमें पश्चारेकी तरागी हुई
चीर्जे, मटोके बरतन पौर सिद्ध हाय लग जाते हैं ।
कुछ बहुत पुराने जैनमन्दिरोंका प्राज भी पता
चलता, जिनका मधाला दूसरे पश्चिम पुराने गिरे
मन्दिरोंसे लिया गया है । भूमि चौर्या पौर मन्दिरोंके
टूटे पत्थरमें भरौ, जो राजावोंकी कतरी बनानेमें
लगा है ।

२ युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर जिलेका एक प्राचीन
नगर । यह गङ्गाके दाहने किनारे बुलन्दशहर नगरसे
२१ मील दूर बैठता है । यहां थाना, पोष्टाफिस पौर
स्कूल बना है । जेष्ठ मासमें गङ्गास्नानका बड़ा मेला
लगता है । नगरमें कितने ही माधारण मन्दिर बने
हैं । नगरकी भवस्था अब बिगड़ गयी है । शीत पौर
शीत ऋतुमें गङ्गापर नावका पुल बांध दिया जाता है ।
पौर शीतके समय पश्चारेके नागर प्राङ्मुख सुचलमान
हो गये हैं, जो सन् १८५० ई० तक पश्चिमी दिक्-

कियतका जूक पाते रहें । सिधाही, विद्रोहके बाद
उमकी भूमि सुपदाबादके राजा गुबसहाय मसको
दी गयी थी ।

पश्चारिन् (सं० त्रि०) से न जानेवाला, जो सेता
न हो ।

पश्चारे (हिं०) पश्चारे श्लो ।

पश्चार्थ (सं० पु०) न ज्ञियतेऽक्षो, दृ-स्यत्, नञ्-तत् ।
१ पर्यंत, उठ न सकनेवाला पश्चार्थ ।

'पश्चारेऽपर्यन्तः' (पश्चारे)

(त्रि०) २ हरण करनेकी भयम्ब, जिसे चौरा न
सकें । ३ परमेश, जो टूट न सकता हो ।

पश्चार्थता (सं० स्त्री०) रथा, गुप्त, विफाज्जत, जिस
जालतमें चीज उठाकर ले न जा सकें ।

पश्चाद्वा (हिं०) १२११ श्लो ।

पश्चि (सं० पु०) पश्चिम पश्चिमने वा, पश्चि-
द्वय, तस्य दित्वं कित्वात् टिनीयः पाला क्लृप्य । १ सूर्य,
साय । २ हमाधुर, पाममान्का साय । ३ ऋष्यदेव
पश्चिमविषय । यह इन्द्रका पश्चिमय ग्रन्थ था । ४ सूर्य ।
५ राष्ट्र । ६ पश्चिम, राष्ट्रगौर । ७ जल, खूदा
पश्चिमो । ८ वक्षक, ठग । ९ सर्वलामिक भरोषा
नक्षय । १० जल, पानो । ११ भेष, वादस ।
१२ धावापृथिवी, पश्चिमान् पौर जमीन् । १३ शीतक,
सीसा । १४ पृथिवी, जमीन् । १५ गो, गाय ।
१६ नामि, तांदी । १७ उच्छ्रायर्ष । १८ वयोवृद्ध ।
(त्रि०) १९ व्यापक, सुगरह, मामूर । २० व्याप,
परागन्दा, फेला हुआ । २१-पश्चिमवर्ता, चोट
चलानेवाला, जो मारता हो ।

पश्चिमक (सं० त्रि०) न विनाश, हिंस-पुत्र, नञ्-
तत् । हिंसारहित, माघ्म, जो मारता न हा ।

पश्चिमा (सं० स्त्री०) हिन्व-प-टाप, नञ्-तत् ।
१ पश्चिम, पश्चिमकार, बिगुनाही, माघ्मियत,
भीलापन । २ योग्यपश्चिमे—मनीवाक्यकाय द्वारा
परपीडाका पश्चिम, दिस, ज्ञान्, वा हाय-परसे
किसीकी तकसोफ न देना । ३ प्राचिणीहा-गिहृति-
जानवरोंको न मारना । ४ पश्चिमीय प्राचिणीहाका
पश्चिम, पश्चिमपश्चिमकार, जानवरोंको न मारना ।

शास्त्रकारोंने लिखा, कि वेदविहित हिंसा चर्हिंसा कहती है। मनुने भी वेध हिंसामें कोयी दोष नहीं बताया। मोमसक भी इसी मतको मानते हैं। किन्तु सांख्यमतसे वेध हिंसा पुरुषके लिये पापजनक होती है। बौद्ध और जैन चर्हिंसाको ही परमधर्म समझते हैं।

चर्हिंसान (सं० त्रि०) न हिनसि, हिंसस गीलायें शानम्, नञ्-तत्। हिंसा न करनेवाला, जो मारता-पीटता न हो।

चर्हिंसानिरत, चर्हिंसान देखो।

चर्हिंसित (वे० त्रि०) पीड़ारहित, जो मारा न गया हो।

चर्हिंस्यमान, चर्हिंसित देखो।

चर्हिंस (सं० त्रि०) १ चर्हिंसक, मासुस, जो मारता-काटता न हो। (स्त्री०) २ हिंसाग्र्य व्यञ्जहार, जिस काममें मार-काट ग रहे। (पु०) ३ कुलिक वृक्ष, काकरोलका पेड़।

चर्हिंसा (सं० स्त्री०) कण्टकपाली वृक्ष, काकरोलका पेड़। यह विष और शोथको दूर करता है।

(एजनिपट्)

चर्हिक् (सं० पु०) चम्ब सर्प, चम्बा सांप। इसमें विष नहीं होता। २ शास्त्रलोहक, सेमलका पेड़।

चर्हिक्का (सं० स्त्री०) शास्त्रलोहक, सेमलका पेड़।

चर्हिक्कान्त (सं० पु०) चर्हिक्किः काम्यते छ, कमत्, इ-तत्। वायु, सांघोकी धारी चीज जवा। कहते, कि सांघ वायुको खाकर जीते हैं।

चर्हिक्कुटी (सं० पु०) भारद्वाजघोषी, चकीर।

चर्हिक्कोप (सं० पु०) निर्मोक, खुरण्ड, सुरदारगोश्त, जेचली।

चर्हिक्चव, चर्हिक्च देखो।

चर्हिक्चेत्र (सं० पु०) चर्हिक्का गोभितं चेत्रम्, शाक०

तत्। १ इक्ष्वाणुपुरके पूर्वदेशका क्षेत्र। चर्हिक्च देखो।

२ सर्पके रहनेकी भूमि, जिस जगहमें सांप रहें।

चर्हिक्क (सं० पु०) १ हस्तविशेष, एक बहर। इसके

आदिमें एक शूद्र और अन्तमें तीन सप्त मात्रा रहती

है। इ-तत्। २ सर्पसमूह, सांघोका जलो।

चर्हिक्कफला (सं० स्त्री०) सन्नकीवृक्ष, सुवानका पेड़।

चर्हिक्कन्धा (सं० स्त्री०) शर्पगन्धा, सांघगन्धा, एक पेड़।

चर्हिक्कोप (वे० त्रि०) सर्पसे रक्षित, जिसको सांघ बचाता हो।

चर्हिक्क (वे० स्त्री०) स्वर्गीय नदीकी राह रोकनेवाले वृक्षावृत्ता इनन।

चर्हिक्की (वे० पु०) सर्पविनाश, सांघोका कृतज्ञ।

चर्हिक्कृत (सं० पु०) चर्हिक्कः फणाकारः कृतः कादकः,

शाक० इ-तत्। १ मेघशृङ्गीवृक्ष, मैदासोगीका पेड़।

२ देशविशेष। अर्जुनने यह देश जीत द्रोणाचार्यको

दिया था। ईमचन्द्रकोपमें इसका नाम 'प्रत्यक्ष' लिखा है।

चर्हिक्कृतका दूसरा नाम चर्हिक्केट है। कहते

हैं, कोयी चर्हिक्केट मैदानमें सो रहा था। उसी समय

एक सांघ उसके मस्तकपर अपना फणा फेलाकर जा

बैठा। वही चर्हिक्केट पीछे राजा हो गया, सो ग उसे

आदिराज कहने लगे। इसीसे चर्हिक्केटका नाम

'आदिकोट' भी है।

कौरवोंने द्रुपदराजको युद्धमें हरा पश्चात्तदेय दो

भागमें बांटा था। उसमें गङ्गातोरण्य माकान्दो देशमें

चर्मण्वती नदी पर्यन्त दक्षिण पश्चात्त द्रुपदके अंगमें

पड़ा। इसको राजधानीका नाम काम्पिष्य रहा।

उत्तर पश्चात्त जनपदको चर्हिक्कृत कहते थे। इसको

राजधानी चर्हिक्कृतना नामसे प्रसिद्ध रही। द्रोण

यहाँका राजा बने थे।

चीनपरिभाषक युष्मद्भुयाङ्गका कहना है, कि इन

स्थानमें एक नागरुद्ध रहा। इसी रुद्धके किनारे बुद्ध

देखने सात दिन तक अपना मत प्रकाश किया था।

चीनपरिभाषकके समय यहाँ बारह मठ रहे। उनमें

कोई एक हजार सन्नासी निवास करते थे। सिवा

इसके ब्राह्मणोंके भी गो देवालय रहे। इनमें भी

कोयी तोन सो ब्राह्मण महादेवको पूजा करते थे।

चर्हिक्कृतक (सं० स्त्री०) गोमयज, कुङ्कुमवर्णा-

सांघोकी टोपी।

अहिच्छवा (सं० स्त्री०) १ गताद्वाक्षुप, सौफका भाङ्ग । २ शर्करा, चीनी । ३ अहिच्छत्र देगकी राजधानी । इसकी चारो ओर प्राचीर बना था । उसका परिधि कौची तीन कोस रहा । यहाँ रामगङ्गा और गङ्गान नदीके मध्य एक क़िला था, जहाँ अग्नी मुहम्वट मृनि कितनी ही मसजिदें बनवायीं ।
 अहिजाहक (सं० पु०) क़कलास, गिरगिट ।
 अहिजित् (सं० पु०) अहिं सयं अस्त्रविशेषं वा जितवान्, अहि-जि-क्रिप्-तुक् । १ छया । यमुना नदीमें कालीय अहि पर्याय सर्प जीत लेनेसे छाप्यकों अहिजित् कहते हैं । २ इन्द्र । अश्वेदमें लिखा, कि इन्द्रने अहि नामक अस्त्रको मारा था ।
 अहिजिन, अहिजिन् शब्दो ।
 अहिजिह्वा (सं० स्त्री०) अहिजिह्वेव । नागजिह्वा नामक मत्ता, नागफली । इसका अग्रभाग सांपकी जीभ-जैसा होता है ।
 अहिजिह्विका (सं० स्त्री०) महाग्रतावरी, बड़ी गतावर ।
 अहिष्ठुका (सं० स्त्री०) हिष्ठ-उकञ् टाप्, नञ्-तत् । सुश्रुतोक्त कीटविशेष, एक ज़हरीला छोटा कीड़ा ।
 अहित (सं० पु०) नञ्-तत् । १ शत्रु, दुश्मन् । (स्त्री०) २ अति, तुक्मान् । ३ कुप्य, बीमारोंमें न खाने लायक चीज् । (त्रि०) ४ अप्रतिष्ठित, जो रखा न गया हो । ५ अयोग्य, नाकामिन । ६ हानिकारक, तुक्मान्दह । ७ प्रतिहन्त्री, हासिद । ८ प्रतिक्षुब्ध, सुधामिक ।
 अहितकारिन् (सं० त्रि०) प्रतिहन्त्री, सुखालिक, जो भन्नायी न करता हो ।
 अहितद्रव्य (सं० स्त्री०) अघ्राय द्रव्य, न खाने लायक चीज् । शिम्बीधान्यमें माप कलाय, फलमें डडुक (बड़हल), दुग्धमें मीथीदुग्ध, तेलमें कुशुभतैल और इक्षुविकारमें फाणित अहितद्रव्य है । (भाष्यभाष्य)
 अहितनाभन् (सं० त्रि०) अघ्ययन्स नामसे रहित, जो अघतक घेनाम हो ।
 अहितपदार्यं (सं० पु०) १ हह रमणी, उड़ी श्रीरस । २ प्रतिमास, गन्दा गोशत । ३ प्रभातनिद्रा, सवेरकी नींद ।

अहितमनस् (सं० त्रि०) विरोधी, सुखालिक, बुरा चेतनेवाला ।
 अहितहितविचारशून्यमुहि (सं० त्रि०) भलाई-बुराई न समझनेवाला, जिसे अच्छा बुरा समझ न पड़े ।
 अहिताहार (सं० पु०) अहितकर द्रव्यका भक्षण, तुक्सान् पद्वं चानेवाली चीज्का खाना । अहिताहार पीड़ा उत्पन्न करता है । (वाग्भट)
 अहितुष्टिक, (सं० पु०) अहितुष्टं सुखं तेन दिव्यति, ठन् ठञ् वा । ध्यानघाटी, सपेरा ।
 अहितेषु (सं० त्रि०) अशुभचिन्तक, बदमाह ।
 अहित्य (सं० पु०) धनमेयिका, जहली मीथी ।
 अहिदत्, अहिरन् शब्दो ।
 अहिदन्त (सं० त्रि०) संपदन्तविशिष्ट, सांपके दांत रखनेवाला ।
 अहिदिप् (सं० पु०) अहिं सयं हवासुरं वा हिटवान्, अहि-दिप् भूते शिप् । १ गरुड़ । २ मयूर, मोर । ३ नकुल, नेवला । ४ इन्द्र ।
 अहिनकुल (सं० स्त्री०) अहिन् नकुलय समाहार इन्द्रम् । सर्प एव नकुल, नेवलासांप ।
 अहिनकुलता, अहिनकुलिना शब्दो ।
 अहिनकुलिका (सं० स्त्री०) अहिनकुलयोर्वैरम्, तुन् । १ सर्प एव नकुलका स्वाभाविक विरोध, नेवले ओर सांपकी जाती दुश्मनी । २ नित्यविद्येयभाव, हमेशा रहनेवाली दुश्मनी ।
 अहिनामशत् (सं० पु०) बलदेव, लण्यके बड़े भाई ।
 अहिनाह (हिं० पु०) श्रेयनाग, सर्पके राजा ।
 अहिनिक (सं० पु०) अहिना निमंभ्य त्यज्यते, अहि-निर-सुच् कर्मणि घञ् ६-तत् । सर्पका निर्मोक, सांपकी केशुली ।
 अहिनिलयनी (सं० स्त्री०) अहिः निलीयते प्रत्याम्, अहि-नि-ली आधारे ल्युट् ङीप् । अहिनिक शब्दो ।
 अहिपताक (सं० पु०) अहिषु मध्ये पताका तदाकारोऽक्षय, अग्रे चादि० अच् । सर्पविशेष, कोई सांप । यह ज़हरीला नहीं होता ।
 अहिपति (सं० पु०) १-तत् । १ श्रेयनाग । २ वासुकि । ३ बड़ा सांप ।

अहिपुत्रक (सं० पु०) अहिः पुत्र इय कायति शोभते गतिकाले, अहिपुत्रकै-क। नौकाविशेष, एक नाव। यह माय तीग हाथसे चपादा प्रगस्त नहीं रहती, किन्तु टैर्चमें ३० हाथ तक होती है।

अहिपुष्प (सं० स्त्री०) नागकेसर पुष्प, कबाध-चीमौका फूल।

अहिपूतन (सं० स्त्री०) बालरोगविशेष, शिशुका गुच्छघन, वस्तुकि पिच्छसे जिम्बका जन्म। Intertrigo स्थूलकाय शिशुओंके अधिक घर्षं निकलने अथवा घर्षण लगनेसे गाली प्रभृति स्थान रक्तवर्ण पड़ जाता किंवा मसलदार अपरिष्कार रहनेसे कण्डु उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सामें धात्रीके स्नानदुग्धपर दृष्टि रखना चाहिये। घतस्थानकी त्रिफलाके जलसे धोते और उसमें नारियलका तेल लगाते हैं।

(स्त्री०) अहिपूतना।

अहिपूतना (सं० स्त्री०) बालरोगविशेष। इस रोगकी उत्पत्ति होनेका कारण यह है—अपान स्थान अच्युती तरह न धोने तथा विष्ठा-भ्रूयुक्त रहनेपर, लड़कियोंके शरीरमें रक्त एवं कफसे कण्डू अर्थात् खुजलाहट पैदा होती है। खुजलानेसे बहुत शीघ्र स्कोट (फोड़ा) और स्नाय निकलता है। पीछे सब फोड़े एकत्र मिलकर भयङ्कर ग्रन्थ हो जाता है। इसको अहिपूतन या अहिपूतना रोग कहते हैं।

(नाथबिन्दन—अहिपूतनाचिकित्सा)

अहिफल (सं० पु०) दोषकर्कटिका, लम्बी ककड़ी।

(स्त्री०) अहिफला।

अहिफेन (सं० पु०) अहिः फेनं गरलमिव तैश्चपात्, ६ तत्-श०। १ सांपकी नार। २ अफीम। यह पोस्तके फलसे भारतवर्ष, पारस्य, तुर्क्य, मिस्र, जर्मनी, फ्रांस और इङ्ग्लैण्डमें पैदा होता है। इसमें सबसे अधिक भारतवर्ष ही अफीमका घर है। किन्तु तुर्क्यकी अफीम उत्तम होती है।

अफीमका पेड़ दो तरहका देखा जाता, एक का (*Papaver somniferum*) फूल सान एवं बीज काष्ठा और दूसरेका (*Papaver officinale*) फूल तथा दाना सादा रहता है। भारतवर्षमें मकै

ही पोस्त अधिक है। यह गद्दातकी भूमिमें बहुत पैदा होता है। पटना और बनारस विभागमें प्रायः ३०० कोस दीर्घ और १०० कोस प्रगस्त भूमिमें अफीमकी छपि की जाती है। भारतवर्षकी अफीमका व्यवसाय गवरभेष्टके अधीन है। पटना और गाजीपुरमें इसका प्रधान कारखाना है। इसमें पतिरिक्त मालव, खान्देश और कच्छ देशमें भी अफीम पैदा होती है।

मध्यदेश और मलक्कामें भारतवर्षकी अफीम अधिक बिकती है। अफीमकी भूमि विलक्षण उर्वरा होना चाहिये। छपक सोग वर्षा कालमें खेतकी खाद डाल अच्छीतरह जोत देते हैं। इसके बाद कार्तिकमें खेतकी पुनः जोत और मयी देकर बीज बोते हैं। बीज डालकर भी जोतना पड़ता है। अखतः ६-७ हाथ लम्बी खारी बनाते हैं। खारीके किनारे किनारे जल देनेके लिये नाली रहती है। १०/१५ दिनमें बीज अद्भुतित होता है। पोषा कुछ बढ़ जानेपर छपक खेतकी निरा घास और फस निकाल देते हैं। माघमासके शेषमें फूल आता है। भङ्ग जानेसे छपककी छाी और यालक यालिका फूल खेतसे उठा जाती है। फिर उन्हें मटोके खप्परमें थोड़ा गरम करके रोटी बनाते हैं। इसी रोटीमें अफीमका गोला लपेटा जाता है।

फूल फटनेसे प्राय एक मानके मध्य ही पोस्त की छोटी डालियोंमें टेढ़नी छोटे बनारकी तरह बढ़ने लगती है। उस समय छपक बहुत मधुर उठकर चाकूसे टेढ़नोको दो तीन लगह लम्बा-लम्बा चोर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बहकर बाहर निकलता है। सूर्योदयके बाद चीरनेसे अधिक दूध नहीं होता। दृष्टि होनेसे भी दूध धी जाता है, इसीसे उस दिन अफीम नहीं लगती। दूसरे दिन प्रातः काल छपक उस दूधकी निकाल मटोके पात्रमें रखते हैं। समस्त हवाका दूध इकट्ठा होनेपर छपक मकान पशुच किमी कांभिके बरतनमें ढाँड़ देते हैं। कुछ देर कांभिके बरतनमें रहनेसे दूधका पानी निकलता है। यह जल बाहर फेंक न

देनेसे अफीम नष्ट हो जाती है। शेषको यह दूध प्रतिदिन एकबार डिला देनेसे गाढ़ा होता है। उत्तमदूधसे गाढ़ा होनेमें कमवेध एक महीना लगता है। फिर सब अफीम इकट्ठा कर महीके बरतनमें रखते हैं। अफीम प्रस्तुत हो जानेपर छपक गडरमेण्टके गुदाममें ले जाते हैं। वजन हो जानेसे कुन्नी इसको एक चूहबर्षके भीतर जमा करते हैं।

उसके बाद कुन्नी कटहरमें अफीमको तीड़कर गोला बनाते हैं। उसी गोलेपर अफीमके पत्तोंकी रोटी मपेट लीयो लगा देने हैं। लीयो दूध जैसी होती और पुराब अफीममें बनती है। पत्तोंकी रोटी लगा देनेसे अफीमके गोलोंको टीनके बरतनमें रक्षते हैं। टीनका बरतन मिक्सीपर लटका करता है। उसी जगह बासकोंके हिसाने-डुलानेसे अफीम धीरे-धीरे सूख जाती है।

भारतवर्ष, चीन, ब्रह्मदेश तथा मलक्कामें कच्ची अफीम, पका चण्डू और मदक खानेको लोग इसे खरीदते हैं। युरोपमें अफीमसे औषध तयार किया जाता है। भारतवर्षके अनेक स्थानमें मनुष्य पोम्बके पीनका बड़ा बनाकर खाते हैं। अफीम बाहर करने पर बीड़ी सूख जाती है। उस समय पचिम देशके दरिद्र लहकें उसके पीन निकाल कच्चे भी खाते हैं। पोम्बकी बीड़ीकी जलमें उबाल उसी जलसे घेदनाके स्थानपर खेद देनेसे पीड़ा कम होती है। देखनेमें अफीम लाल होती है। यह पीनमें कठिन एवं वर्षाकालमें लहकें पतनी पड़ती और विपचिपामि लगती है। यह तिल और एकप्रकार विंगेय गन्ध-युक्त रहती है। यह पचिमसे गन्ध जाती है। जल, सुरा और जलमिय द्रावक द्वारा इसका धमे (नगा बन्दूक) गृहीत होता है। लिट्मस् कागजमें इसका जलीय द्रावक लगानेसे पारल्लिम (घोड़ा-माल) वर्ण होता है।

अफीममें जो पदार्थ रहते, वह नीचे लिखे हैं,—

१। अफीममें मेकोनिक एसिड नामक एक प्रकार अम्ल रहता है। यह अम्ल पतला, दानेदार और

भोतीके सदृश शुभ्र स्वच्छवर्ण है। यह जलमें गल जाता है। लौहघटित पार्साल्लिके सङ्ग मिलानेसे यह रक्तवर्ण निकलता है। चूना, बेराइटा, लोहा और सीसा धातुके सङ्ग योग देनेसे एकप्रकार लवण बनता, जो जलमें गल जाता है।

२। अफीमके प्रधान वीर्यका नाम मर्किया है। यह श्रेतवर्ण होता और इसीसे अफीम खानेपर नगा पाना है।

३। दूसरे वीर्यका नाम थोडाइया है। यह चतुष्पददेश या षट्पददेश दानायुक्त होता और सुरा, इधर तथा स्फुटित जलमें मिलानेसे गल जाता है।

४। तीसरे वीर्यका नाम पेपेरेरिन् है। इसमें सुयो-अंभे छोटे-छोटे दाने होते हैं। यह गन्धकी अर्कसे मिलानेपर नोलवर्ण लगता है।

५। चिबाइया या थ्यारेमर्किया चौथा वीर्य होता, जो विप्टा, दानायुक्त और देखनेमें चांदी-सेना उज्वल रहता है।

६। मार्कोटिन् अफीमका समघातान्त्र लवण है। यह तीन प्रदेश युक्त एवं उज्वल होता और सुरा, इधर तथा द्रायकमें गल जाता है। एतद्विष, नार्सिया, मेकीनारन प्रभृति दूसरे भी पदार्थ अफीममें रहते हैं।

उत्तम अफीममें मेकड़े पीछे ४—८ मेकीनिक एसिड, ४—१२ मर्किया, १ शंगवे कम कोडिया, चिबाइया एवं पेपेरेरिन्, ६—१० मार्कोटिन्, ६—१२ नार्सिया, ४—६ कोषीक, २—४ गौद और अन्यन्य पदार्थ, ४०—५० पर्यन्त होता है।

अफीम उत्तेजक, मादक, निद्राकारक, धारक, खेदजनक, पीड़ानिवारक, अग्नेचारक और पर्याय-निवारक है। इसकी क्रिया मस्तिष्क ही में अधिक प्रकाय पाती है। और और औषधके प्रभावमें अन्य किमी द्रव्यकी व्यवस्था की जा सकती, किन्तु अफीम जैसी दूसरे कोष दुनियामें नहीं होती। शिशुओं और स्त्रियोंके लिये अफीम मिला औषध देना प्रशस्त नहीं है, किन्तु बहुत आवश्यक होनेपर अत्यन्त सावधानतासे प्रयोग करना चाहिये।

अहिपुत्रक (सं० पु०) अहिः पुत्र इव कायति शोभते गतिकाले, अहिपुत्र-कै-क। मौकाविशेष, एक नाम। यह मास तीस हाथसे ज्यादा प्रगस्त नहीं रहती, किन्तु देरमें ३० हाथ तक होती है।

अहिपुत्र्य (सं० स्त्री०) नागकिंगर पुत्र्य, कबाब-घीमौका फूल।

अहिपूतन (सं० स्त्री०) यानरोगविशेष, मिश्रका गुच्छाघत, यहाँके पिछले जिघ्रका जखम। Intertrigo मूलकाय मिश्रणके अधिक घर्मे निकलने पद्यवा घर्षण लगनेसे यान्नी प्रभृति स्यान् रक्तवर्ण पड़ जाता किंवा मलहार अपरिष्कार रहनेसे कण्डू उत्पन्न होता है। इसकी चिकित्सामें धात्रीके स्नानदुग्धपर टुटि रगना चाहिये। चतस्यामकी त्रिफलाके जलसे धोते और उसमें नारियलका तेल लगाते हैं।

(स्त्री०) अहिपूतना।

अहिपूतना (सं० स्त्री०) यानरोगविशेष। इस रोगकी उत्पत्ति होनेका कारण यह है—अपान स्यान् पच्छी तरह न धोने तथा बिठा-मूलयुक्त रहनेपर, सड़केके शरीरमें रक्त एवं कफसे कण्डू अर्थात् खुजलाहट पैदा होती है। खुजलानेसे बहुत शीघ्र स्कोट (फोड़ा) और स्यान् निकलता है। पीछे सब फोड़े एकत्र मिलकर भयङ्कर ग्रन्थ हो जाता है। इसको अहिपूतन या अहिपूतना रोग कहते हैं।

(भाष्यनिदान—पदगीतविहितम्)

अहिफल (सं० पु०) दोषकर्कटिका, लम्बी ककड़ी।

(स्त्री०) अहिफला।

अहिफेन (सं० पु०) अहिः फेनं गरलमिव तेषणात्, इ तत्-सं०। १ सांपकी नार। २ अफीम। यह पोम्पके फलसे भारतवर्ष, पारस्य, तुर्क्य, मिस्र, जर्मनी, फ्रांस और इंग्लैण्डमें पैदा होता है। इनमें सबसे अधिक भारतवर्ष ही अफीमका घर है। किन्तु तुर्क्यकी अफीम उत्तम होती है।

अफीमका पेड़ दो तरहका देखा जाता, एक सा (Papaver somniferum) फूल लाल एवं बीज काला और दूसरेका (Papaver officinale) फूल तथा दाना सादा रहता है। भारतवर्षमें अफीम

ही पोस्त अधिक है। यह गङ्गातटकी भूमिमें बहुत पैदा होता है। पटना और बनारस विभागमें प्रायः ३०० कोस दीर्घ और १०० कोस प्रगस्त भूमिमें अफीमकी छपि ली जाती है। भारतवर्षकी अफीमका व्यवसाय गवरमेण्टके अधीन है। पटना और गालीपुरमें इसका प्रधान कारखाना है। इसमें पतिरिक्त मालव, खान्देश और कच्छ देशमें भी अफीम पैदा होती है।

ब्रह्मदेश और मलक्कामें भारतवर्षकी अफीम अधिक बिकती है। अफीमकी भूमि विलक्षण चउरा होना चाहिये। छपक लोग वर्षा कालमें खेतको खाद डाल अच्छीतरह जोत देते हैं। इसके बाद कार्तिकमें खेतकी पुनः जोत और मयी देकर बीज बोते हैं। बीज डालकर भी जोतना पड़ता है। प्रगस्तः ३-७ हाथ लम्बी खारी बनाते हैं। खारीके किनारे किनारे जल देनेके लिये नाली रहती है। १०।१५ दिनमें बीज अद्भुतित होता है। पोषा कुछ बढ़ जानेपर छपक खेतको निरा घास और फस निकाल देते हैं। माघमासके शेषमें फूल पाता है। भड़ जानेसे छपककी छी और बालक बालिका फूल खेतसे उठा लाती हैं। फिर उन्हें मटोके खप्परमें घोड़ा गरम करके रोटी बनाते हैं। इधे रोटीमें अफीमका गोला लपेटा जाता है।

फूल फूटनेसे प्राय एक मासके मध्य ही पोस्त की छोटी छालियोंमें टेहनी छोटे पगारकी तरह बढ़ने लगती है। उस समय छपक बहुत सघेरे उठकर चाकूसे टेहनीको दो तीन जगह लम्बा-लम्बा चोर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बहकर बाहर निकलता है। सूर्योदयके बाद चीरनेसे अधिक दूध नहीं होता। हट्टि होनेसे भी दूध धी जाता है, इधेसे उस दिन अफीम नहीं जमती। दूसरे दिन प्रातः काल छपक उस दूधकी निकाल महीके पात्रमें रखते हैं। समस्त हप्ताका दूध इकट्ठा होनेपर छपक मकान पहुँच किसी कभिके घरतममें छोड़ देते हैं। कुछ देर काँसके घरतममें रहनेसे दूधका पानी निकलता है। यह जल बाहर फेंक न

देनेसे अफीम नष्ट हो जाती है। शेषको यह दूध प्रतिदिन एकबार हिना देनेसे गाढ़ा होता है। छत्तमदपसे गाढ़ा होनेमें कामवेद्य एक महीना लगता है। फिर सब अफीम इकट्ठा कर मट्टीके बरतनमें रपते हैं। अफीम प्रस्तुत हो जानेपर छपक गन्धमेण्टके गुदाममें ले जाते हैं। वजन हो जानेसे कुली इसकी एक चूबचूकी भीतर जमा करते हैं।

उसके बाद कुली कटहरमें अफीमकी तोड़कर गोला बनाते हैं। उसी गोलेपर अफीमके पत्तेकी रोटी लपेट लिये जाते हैं। लिये दूध जैसी होती और गुरास अफीमसे बनती है। पत्तेकी रोटी लगा देनेसे अफीमके गोलोंकी टीनके बरतनमें रहते हैं। टीनका बरतन गिकच्चेपर झटका करता है। उसी जगह मालफांके हिसाने-डुलानेसे अफीम धीरे-धीरे सूख जाती है।

भारतवर्ष, चीन, ब्राह्मदेश तथा मलक्काके कभी अफीम, पका चण्डू, और मटक खानेकी शो ग इसे खुरीते हैं। युरोपमें अफीमसे औषध तय्यार किया जाता है। भारतवर्षके अनेक स्थानमें मनुष्य पीपलके वीजका बड़ा बनाकर खाते हैं। अफीम बाहर करने पर बीड़ी खूब जाती है। उस समय पश्चिम देशके दरिद्र लड़के उसके वीज निकाल कच्चे ही खाते हैं। पोपलकी बीड़ीकी जलमें उबाल उसी जनसे वेदनाके स्थानपर खेद देनेसे पीड़ा कम होती है। देखनेमें अफीम माल होती है। यह पीपलमें कठिन एवं वर्षाकालमें कुछ पतली पड़ती और विपचिपाने लगती है। यह लिल और एकप्रकार विभेद्य गन्ध-युक्त रहती है। यह अग्निसे गल जाती है। जल, सुरा और ललमिय द्रावक द्वारा इसका धमे (नशा खुरेख) रहती होता है। लिट्मस कागजमें इसका जलीय द्रावक लगानेसे पारशिम (घोड़ा माल) वर्ण होता है।

अफीममें जो पदार्थ रहते, वह नीचे लिखे हैं,—
१। अफीममें मेकोनिक एसिड नामक एक प्रकार अम्ल रहता है। यह अम्ल पतला, दानेदार और

मोतीके सदृश शुभ स्वच्छवर्ण है। यह जलमें गल जाता है। लीहप्रतिट पासील्लके सङ्ग मिलानेसे यह रक्तवर्ण निकलता है। अना, बेराइटा, लोहा और सीसा धातुके सङ्ग योग देनेसे एकप्रकार लवण बनता, जो जलमें गल जाता है।

२। अफीमकी प्रधान वीर्यका नाम मर्फीया है। यह ज्वेतवणे होता और इसीसे अफीम खानेपर नशा आता है।

३। दूसरे वीर्यका नाम कोडाइया है। यह अतुपपदेग या अतपदेग दानायुक्त होता और सुरा, इधर तथा स्फुटित जनमें मिलावसे गल जाता है।

४। तीसरे वीर्यका नाम पेपेरेरिन् है। इसमें धुयो-असे छोटे-छोटे दाने होते हैं। यह गन्धकके अर्कसे मिलावपर नोलवर्ण लगता है।

५। चिवाइया या थ्यारमर्फीया चौथा वीर्य होता, जो बिपटा, दानायुक्त और देखनेमें चांदी जैसा उज्वल रहता है।

६। नार्कोटिन् अफीमका समचारक लवण है। यह तीन प्रदेश युक्त एवं उज्वल होता और सुरा, इधर तथा द्रावकमें गल जाता है। एतद्विष, नार्सिया, मेकोनाइन प्रभृति दूसरे भी पदार्थ अफीममें रहते हैं।
उत्तम अफीममें मेकड़े पीछे ४—८ मेकोनिक एसिड, ४—१२ मर्फीया, १ अंशसे कम कोडिया, चिवाइया एवं पेपेरेरिन्, ६—१० नार्कोटिन्, ६—१२ नार्सिया, ४—६ कोचीक, २—४ गोद और अन्यन्थ पदार्थ, ४०—५० पर्यन्त होता है।

अफीम उत्तेजक, मादक, निद्राकारक, धारक, स्वेदजनक, पीड़ानिवारक, अयंकारक और पर्याय-निवारक है। इसकी क्रिया मस्तिष्क ही में अधिक प्रकाश पाती है। और और औषधके प्रभावमें अन्य किसी द्रव्यकी व्यवस्था की जा सकती, किन्तु अफीम जैसी दूसरी चीज दुनियामें नहीं होती। शिशुओं और स्त्रियोंके लिये अफीम मिला औषध देना प्रयत्न नहीं है, किन्तु बहुत आवश्यक होनेपर अत्यन्त सावधानतासे प्रयोग करना चाहिये।

मय, मापका हर । १ विम्लासघातकी पागडा, पात्रीका दगटगा ।
 यटा (मं० स्त्री०) अहिमयं अति खण्डयति, भय स्त्री-क । सर्वका भय छोड़ानेवाली भूम्याम-
 , मुयिं पायला ।
 तु (मं० पु०) अहिव्याप्यः भातुः लघुपाया
 तिः यस्य । प्रवाहशायु, हवा । ज्योतिषमें लिप्ता,
 वाह-वायु द्वारा ही सूर्यकी गति होती है ।
 ज् (सं० पु०) अहिं भुङ्क्ते, अहि-भुज-क्तिप् ।
 पके मानेवाले गरुड़ । २ मयूर, मोर । ३ नकुल,
 । ४ तार्थ्य, साल या मावूका पेड़ । ५ नाकुली-
 महाकन्द शाक, छोटा चांद । कहते हैं, हमके
 ३ मांपके लड़ते समय काटनेमें नेवलेपर विष
 पड़ता ।
 त् (मं० पु०) अहिं सर्पं विभक्तिं भूषणरूपेण
 ति, अहि-भृ-क्तिप् तुक् । सर्वको आभूषणकी
 पहननेवाले गिय ।
 (मं० स्त्री०) न हिमम्, विरोधे नष्-तत् ।
 पप्रगे, लस-गर्म । (ति०) २ अण्यस्मर्शुत्त,
 नेमें गर्म हो ।
 कर, अहिमपुति देखो ।
 तेजस्, अहिमपुति देखो ।
 द्युति (सं० पु०) अहिमा उष्य द्युतिरस्य ।
 र्, गर्म रोगनीवाला पापताप । २ अर्कहृत्,
 टुका पेड़ ।
 य् (वै० ति०) अहिरिय हिंसो मन्धुः क्रीधो
 यदुयो । १ इननगोल, हिंस, पूंछार,
 ते तरह भयटनेवाला । (पु०) १-तत् । २ सर्पका
 मांपका गुग्गा । ३ वायु, हवा ।
 हनि, अहिमपुति देखो ।
 र्दनी (सं० स्त्री०) अहिः स्यतेनया, अहि-
 हरणे-भुरद् । १ गन्धनाकुली नामक कन्द विंगेय,
 चांद । २ अहिलता विंगेय ।
 ग्, अहिमपुति देखो ।
 त (हिं० पु०) पाकका गड़ा । हमीके महारै
 कीसपर पड़ता है ।

अहिमाय (वै० ति०) अहिरिय कुटिला माया यम् ।
 सर्ववत् कुटिल, मांप-त्रैसा टेढ़ा ।
 अहिमार (मं० पु०) अहिं मारयति, अहि-मृ-विच्
 षच् णिच् शीपः, उप० ममा० । १ विट्खुदिर, गन्ध-
 खेर । २ गरुड़ । ३ मयूर, मोर । ४ ह्रदासुरनायक इन्द्र ।
 अहिमारक, अहिमार देखो ।
 अहिमालो (सं० पु०) सर्वका हार पहननेवाले गिय ।
 अहिमेद, अहिमार देखो ।
 अहिमेदक, अहिमार देखो ।
 अहियारी—विहार प्रान्तके दरभङ्गा राज्यका एक
 ग्राम । यह अक्षा० २६° १८' उ० और द्राधि० ८५°
 ५०' ४५" पू० पर अवस्थित है । बर्यालाल देखो ।
 अहिर, अोर देखो ।
 अहिरानी—बम्बई प्रान्तके खान्देश जिलेकी भाषा ।
 अहीरोंका प्रभाव अधिक रहनेसे खान्देशकी महाराष्ट्र
 भाषा अहिरानी कहाती है ।
 अहिरिपु (सं० पु०) १-तत् । १ सर्वके शत्रु, गरुड़ ।
 २ मयूर, मोर । ३ नकुल, नेवला । ४ लण्ड । ५ इन्द्र ।
 ६ गन्धनाकुलीवृक्ष, छोटा चांद ।
 अहिवुंघ, अहिरु देखो ।
 अहिवुंघ्र (वै० पु०) योऽहि स एव बुधरासेति
 समानाधिकरणयाहिवुंघ्रारागधोऽसमन्तः, तथा च
 अहिना बुधरेन युती तिङ्गम् । अग्नि, चाग । "मनोऽहि-
 बुंघ्रेति वाक्वा ।" (शब्० च० ३१०)
 अहिवुंघ्रदेवता, अहिरु देखता देखो ।
 अहिवुंघ्र, अहिरु देखो ।
 अहिलता (सं० स्त्री०) अहिलोकस्य पातालस्य
 सता, शाक० तत् । १ गन्धनाकुली, छोटा चांद ।
 २ ताम्बूलो, पानकी बेल ।
 अहिलय (हिं० पु०) आधिक्य, बढ़ती, भरमार ।
 अहिला (हिं० पु०) १ अभिप्लव, मेनाम, बूझा ।
 २ पसामन्त्रस्य, भगड़ा ।
 अहिलामरियार—विहारके शाकदीपीय ब्राह्मणोंका एक
 विभाग ।
 अहिलोक्तिका (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, मुयिं
 पायला ।

अहिलोचन (सं० पु०) गिवके अनुचर विगेष ।
 अहिष्ठा (सं० स्त्री०) धर्मभेदिका, जहलो भियो ।
 अहिषट (सं० पु०) छन्दोविगेष, एक दोहा । इसमें
 पाँच गुरु और षडतीस मनु लगते हैं ।

अहियत—यम्बई नामिक जिलेके चांदोर पर्यतकी
 घाटी । यह समथ्रइसे पश्चिम डिंडोरी और बानीक
 वाशारोंकी भभोगामे मिलातो है । केवम स्वामोय
 क्रयविक्रय होता है ।

अहिवक्त्रो (सं० स्त्री) नागवक्त्रो, पान ।

अहिवात, अहम ६७।

अहिवातिय, अहिवाती (हिं० स्त्री०) सुधवा, भौभाग्य-
 यती, जो रांड न हो ।

अहिवासी—युक्तप्रान्तके मयुरा और भवात स्थानकी
 जमीन्दार, काश्कार और मजदूर जाति । इसका
 पर्थ है—अहिवामका रहनेवाला पर्थार्त् संपके
 रहनेकी जगहका वागिन्दा । पुराणमें इस जातिकी
 सम्बन्ध सोमरि ऋषिये यों देखाया गया है—

हहावस्थामं सोमरि ऋषिको सन्तान उत्पन्न करने
 की उत्कण्ठा दृष्टी और छन्दोंने मान्याता राजानि
 आकर पचासमें एक कन्या मांगी । राजाने कहा, पचासमें
 पापकी जो पसन्द करे, वही दे दो जायेगी । किन्तु
 मार्गमें ऋषिये ऐसा मनोहर रूप बना लिया था, कि
 देखते ही पचासो कन्या मोहित हो गयीं । अन्तमें
 यह पचासोकी अपने घर व्याह साये । उन्होंने विग्र-
 कर्माको प्राप्ता दे प्रत्येकके लिये सुन्दर प्रासाद बन-
 याया और पचास रूप रख सबके साथ पानन्दसे दिन
 फाटा । ऋषिके डेढ़ ही सन्तान दृष्टि पे । किन्तु
 छन्दोंने मायाका प्रभाव बढ़ते देख सबको छोड़ दिया
 और विष्णुके चरणकमलमें ध्यान लगाया । यह
 अपने सन्तान त्याग पद्वियोंकी साथ बनकी गये पे ।
 ऋषिको पक्षियोंपर बड़ा क्रोध चढ़ता, कारण यह
 मसमूदादि उनके प्रायमपर डाल देते रहे । इसीसे
 यदि क्रोधो पक्षी उनके प्रायमपर पड़चता, तो यह
 उसे शाप दे भक्ष कर देते पे । इसी वीच गण्ड-
 सर्पोंका सर्वनाश करनेमें लगे रहे । सर्पोंने गण्डसे
 मार्गना की,—यदि पाप अधिक बंध न करे, तो

इस प्रायके पर्थ एक सर्प नित्य भेज देंगे । गण्ड इस
 धात पर सम्प्रत हो गये । किन्तु कालीय नामक
 एक बड़े ऋषिने गण्डकी भक्ष सर्पोंकी बचाया और
 उन्होंने उसका पोछा पकड़ा था । कहीं शरण न
 मिलनेपर उससे कहा गया,—तुम सोमरि ऋषिके
 प्रायमें जाकर बैठ रहो, वहाँ ऋषिके शापसे गण्ड-
 की दास न मनेगी । इसीसे मयुरा जिलेके जिन
 सुनरख प्राममें ऋषिका प्रायम रहा और कालीयने
 जाकर शरण लिया था, उसका नाम 'अहिवास'
 पर्थार्त् संपके रहनेकी जगह पड़ा । अहिवास ही
 अहिवासी जातिकी उत्पत्तिका स्थान है । इस
 जातिके लोग अपनेकी सोमरिके वंशज बताते और
 सुनरखकी अपना प्रधान स्थान समझते हैं । छन्दानमें
 कालीमर्दन घाटके पास हो सुनरख प्राम अवस्थित
 है । वनदेव मन्दिरके पण्डा अहिवासी ही है ।
 इस जातिमें कोयी ७२ कुल होते, जिनमें डिधिया
 और बिजरायत प्रधान हैं । पञ्चायतमें चौधरी जातिकी
 विवाद मिटाता और अपराधोकी पर्थ दण्ड देता या
 जातिष्णुत करता है । विधवाविवाह, पतिके मरने-
 पर उसके भायीसे विवाह कर लेना, विद्यासेवा, अनेक-
 भर्त्सका भादि विषय बहुत निषिद्ध समझे जाते हैं ।
 ऋण-सहदेव अहिवासियोंके उपास्य देव हैं । किन्तु
 सोमयती अभावस्थाकी गद्गा और मङ्गल एवं शनि-
 चारको हनुमानका भी पूजन होता है । सोमरि
 ऋषिके प्रायमकी यात्रा की जाती है । गौड़, सनाथ
 और गुजराती ब्राह्मण अहिवासियोंके पुरोहित होते
 हैं । दीपमालिका, दगहरा और होलिका इनके बड़े
 लोहार हैं । यह गद्गा, यमुना और बलदेवका प्रपय
 ठाते हैं । व्यवसाय ही इनकी प्रधान जीविका है ।
 यह राजपूतानेसे नमक अपनी गाड़ियोंमें भर उत्तर-
 भारतमें जा कर बेचते और वहाँसे चीनी तथा दूसरो
 चीजें बदलेमें लाद लाते हैं । पुरुषोंके व्यापार कारने-
 को दूर देग चले जानेसे स्त्रियां खेतीका काम चलाती
 हैं । आगरा, फर्रुखाबाद, सेनपुरी, इटावा, एटा,
 बदायूँ, शाहजहापुर, पीलीभोत, कानपुर, फतेहपुर,
 अलाहाबाद, भाँसी और जासौनमें अहिवासी रहते हैं ।

२ सर्पमय, सांपका डर। ३ विग्रामघातकी पायदा, दग्गापात्रीका दगदगा।
अहिभयदा (मं० स्त्री०) अहिभयं घति षण्डयति, अहि-भय द्यो-क। सर्पका भय छोड़नेवाली भूम्याम-लकी, भुधिं पावला।
अहिभातु (मं० पु०) अहिर्घ्याप्यः भातुः लघुपया भातुगतिः यस्य। प्रवाहभातु, हवा। ज्योतिषमें लिखा, कि प्रवाह-वायु द्वारा ही सूर्यकी गति होती है।
अहिभुज् (मं० पु०) अहिं भुज्, अहि-भुज्-क्तिप्। १ सांपके खानेवाले गरुड़। २ मयूर, मोर। ३ नकुल, नेवला। ४ तार्प्य, मान या साधुका पेड़। ५ माकुली-नाम महाकन्द गाक, छोटा चांद। कहते हैं, हमके खानेसे सांपके लहते समय काटनेमें नेवलेपर विष नहीं चढ़ता।
अहिशृत् (सं० पु०) अहिं सर्पे विभर्ति भूषणरूपेण धारयति, अहि-भृ-क्तिप् तुक्। सर्पको आभूषणकी तरह पहननेवाले शिव।
अहिम (मं० स्त्री०) न हिमम्, विरोधि नञ्, तत्। १ उष्णस्वर्ग, मन्म-गर्भ। (वि०) २ उष्णस्वर्गयुक्त, जो छूनेमें गर्म हो।
अहिमकर, अहिमदुति देखो।
अहिमतेजसु, अहिमदुति देखो।
अहिमदुति (सं० पु०) अहिमा उष्ण द्युतिरस्य। १ सूर्य, गर्म रोगमीवाला पाफुताव। २ अर्कहृद्य, अर्कहृदिका पेड़।
अहिमन्यु (सं० त्रि०) अहिरिय हिंस्रो मन्युः क्रीडो यस्य, अहिमो०। १ इनलघोम, हिंस्र, खूंघार, सांपकी तरह भपटनेवाला। (पु०) ६-तत्। २ सर्पका क्रोध, सांपका गुप्ता। ३ वायु, हवा।
अहिमदधि, अहिमदुति देखो।
अहिमर्दनी (मं० स्त्री०) अहिः मृद्यतेऽनया, अहि-मृद-करणे-मुदात्। १ गन्धमाकुली नामक कन्द विमेष, छोटा चांद। २ अहिलता विमेष।
अहिमांघ, अहिमदुति देखो।
अहिमात (हिं० पु०) आकका गदा। रघुकी सहारे आक कीसपर चढ़ता है।

अहिमाय (सं० त्रि०) अहिरिय कुटिला माया यञ्। सर्पवत् कुटिल, सांप-जैसा टेढ़ा।
अहिमार (सं० पु०) अहिं मारयति, अहि-मृ-लिट् षण् णिच् कोपः, उप० ममा०। १ विट्छदिर, गन्ध-वेर। २ गरुड़। ३ मयूर, मोर। ४ हवासुरनामक इन्द्र।
अहिमारक, अहिमार देखो।
अहिमात्तो (मं० पु०) सर्पशा हार पङ्कननेवाले शिव।
अहिमेद, अहिमार देखो।
अहिमेदक, अहिमार देखो।
अहियारी—विहार प्रान्तके दरभङ्गा राज्यका एक ग्राम। यह अक्षा० २६° १८' उ० पौर द्राधि० ८५° ५०' ४५" पू० पर अवस्थित है। अज्ञान्य देखो।
अहिर, अहोर देखो।
अहिरानी—अन्ध्र प्रदेश प्रान्तके खान्देश जिलेकी भाषा। अहोरानीका प्रभाव अधिक रहनेसे खान्देशकी महाराष्ट्र भाषा अहिरानी कहाती है।
अहिरिपु (सं० पु०) ६-तत्। १ सर्पके शत्रु, गरुड़। २ मयूर, मोर। ३ नकुल, नेवला। ४ छत्वा। ५ इन्द्र। ६ गन्धमाकुलीवृक्ष, छोटा चांद।
अहिरुंभ, अहिरुंभ देखो।
अहिरुंभ्रा (सं० पु०) योऽदि स एव बुभ्रायेति समानाधिकरणयाहिरुंभ्रागम्योऽसमस्तः, तथा च अहिना बुभ्रान् श्रुती लिङ्गम्। अग्नि, पाग। "गान्धी-रुंभ्रायेति शब्दाः" (शब्० ७३११८)
अहिरुंभ्रादेवता, अहिरुंभ्रा देखो।
अहिरुंभ्र, अहिरुंभ्र देखो।
अहिलता (सं० स्त्री०) अहिलोकस्य पातालस्य सता, गाक० तत्। १ गन्धमाकुली, छोटा चांद। २ ताम्बूली, पानकी बेल।
अहिलव (हिं० पु०) आधिक्य, बढ़ती, भरमार।
अहिला (हिं० पु०) १ अहिमय, सेनाध, बूढ़ा। २ अनामद्यय्य, भगड़ा।
अहिलामरियार—विहारके गाकदोषीय ब्राह्मणोंका एक विभाग।
अहिलोक्तिका (मं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुधिं पावला।

पहिलोचन (सं० पु०) गिबके भनुषर विग्रीप ।
 पहिल्या (सं० स्त्री०) बनमेयिका, जहलो मेयो ।
 पहिवट (सं० पु०) छन्दोविग्रीप, एक दोहा । इसमें
 पाँच गुरु और चहत्तीस लघु लगते हैं ।
 पहिवत—वम्बई नासिक जिल्लिके चांदोर पर्यंतकी
 घाटी । यह सप्तशृङ्गसे पश्चिम डिंडोरी और वानोके
 बाजुरांकी प्रभोभासे मितानतो है । कंबन स्थानोय
 क्रयविक्रय होता है ।
 पहिवत्ती (सं० स्त्री) नागवत्ती, पान ।
 पहिवात, चरनद्वयो ।
 पहिवातिन, पहिवाती (हिं० स्त्री०) सधवा, सौभाग्य-
 यती, जो रांड न हो ।
 पहिवासी—युक्तप्रान्तके मथुरा और निवात स्थानकी
 लुमीन्द्र, कायकार और मजदूर जाति । इसका
 अर्थ है—पहिवामका रहनेवाला अर्थात् सांपके
 रहनेकी जगहका बागिन्द्र । पुरापमें इस जातिका
 सम्बन्ध सौमरि ऋषिमें यां देखाया गया है—
 उदायस्थानमें सौमरि ऋषिको सन्तान उत्पन्न करने
 की उत्कण्ठा हुयी और उर्द्धाने मान्याता राजामें
 जाकर पचासमें एक कन्या मांगी । राजाने कक्षा, पचासमें
 पापकी को पसन्द करे, वही दे दो जायेगी । किन्तु
 मार्गमें ऋषिने ऐसा मनोहर रूप बना लिया था, कि
 देखते ही पचासो कन्या मोहित हो गयीं । अन्तमें
 वह पचासोको अपने घर ब्याह लाये । उर्द्धाने विष्णु-
 कर्माको आन्ना दे प्रत्येकके लिये सुन्दर प्रासाद बन-
 वाया और पचास रूप रख सबके साथ पानन्दसे दिन
 काटा । ऋषिके डेढ़ सौ सन्तान हुये थे । किन्तु
 उर्द्धाने मायाका प्रभाव बढ़ते देख सबको छोड़ दिया
 और विष्णुकें चरणकमनानमें ध्यान लगाया । यह
 अपने सन्तान त्याग पत्नियोंके साथ बनको गये थे ।
 ऋषिको पत्नियोंपर बड़ा क्रोध चढ़ता, कारण यह
 मसमूदादि उनके पायमपर डाल देते रहे । इसीसे
 यदि कौयी पत्नी उनके पायमपर पट्टु चला, तो यह
 उसे गाय दे भय कर देते थे । इसी बीच गहड़
 सर्पोंका सर्वनाश करनेमें लगे रहे । सर्पोंने गहड़से
 आर्घना की,—यदि पाप अधिक बध न करें, तो

हम पापके अर्थ एक सर्प नित्य भेज देंगे । गहड़ इस
 बात पर सम्यक्त हो गये । किन्तु कालीय नामक
 एक बड़े ऋषिने गहड़के भय सर्पोंकी बचाया और
 उर्द्धाने उसका पीछा पकड़ा था । कहीं शरण न
 मिलनेपर उससे कक्षा गया,—तुम सौमरि ऋषिके
 पायममें जाकर बैठ रहो, वहां ऋषिके शपथसे गहड़-
 की दात न गलेगी । इसीसे मथुरा जिल्लिके जिम
 सुनरख ग्राममें ऋषिका पायम रहा और कालीयने
 जाकर शरण लिया था, उसका नाम 'पहिव्वास'
 अर्थात् सांपके रहनेकी जगह पड़ा । पहिवाम ही
 पहिव्वासी जातिकी उत्पत्तिका स्थान है । इस
 जातिके लोग अपनेकी सौमरिके वंशज बताते और
 सुनरखकी अपनी प्रधान स्थान समझते हैं । इन्द्रावनमें
 कालीमर्दन घाटके पास ही सुनरख ग्राम अवस्थित
 है । बलदेव मन्दिरके पण्डा पहिव्वासी ही हैं ।
 इस जातिमें कौयी ७२ कुल होते, जिनमें डिघिया
 और विजरायत प्रधान हैं । पञ्चायतमें चौधरी जातिका
 विवाद मिटाता और अपराधोकी अर्थ दण्ड देता या
 जातिच्युत करता है । विधवाविवाह, पतिके मरने-
 पर उसके भायोसे विवाह कर लेना, वेद्यासिवा, अनेक-
 भर्तृका पादि विषय बहुत निषिद्ध समझे जाते हैं ।
 जल्प-बलदेव पहिव्वासियोंके उपास्य देव हैं । किन्तु
 सोमयती अमावस्याकी गङ्गा और मङ्गल एवं शनि-
 वारको हनुमान्का भी पूजन होता है । सौमरि
 ऋषिके पायमकी यात्रा की जाती है । गौड़, सनाथ्य
 और गुजराती ब्राह्मण पहिव्वासियोंके पुरोहित होते
 हैं । दीपमालिका, दशहरा और होलिका इनके बड़े
 त्योहार हैं । यह गङ्गा, यमुना और बलदेवका शपथ
 पठते हैं । ध्ववसाय ही इनकी प्रधान जीविका है ।
 यह राजपूतानेसे नमक अपनी गाड़ियोंमें भर उत्तर-
 भारतमें ला कर बेचते और वहांसे चीनी तथा दूसरो
 चीजें बदलेमें लाद लाते हैं । पुरुषोंके व्यापार करने-
 को दूर देश चले जानेसे स्त्रियां खेतीका काम चलाती
 हैं । भागरा, फरुवाबाद, सैनपुरी, इटावा, पटा,
 बदायूँ, शाहजहांपुर, पीलीभोत, कानपुर, फतेहपुर,
 अलाहाबाद, भांसी और जालौनमें पहिव्वासी रहते हैं ।

अहिविद्वद् (मं० त्रि०) सर्वसे इसा दुष्प, जिमको सांपने काटा हो ।

अहिविद्विद्, अहिविद्विः ।

अहिविद्यापट्टा (सं० स्त्री०) अहिनता, छोटा चांद ।

अहिशुभ (द्वे० त्रि०) अष्टौति व्याप्नोति अष्ट व्याप्तौ इत्, अहि व्यापिशुभं यस्य, बहुव्री० । व्यापकवचन, यडा क्षीर ।

अहिशुभमत्तन् (वै० पु०) इन्द्र ।

अहिशुभता (सं० स्त्री०) मिशुरोगविशेष, बघोंकी एक बीमारी । इसमें धानी-जैसा पतला दस्त उतरता और गुप्त्रदेशमें मस निकला करता है । गुप्त्रदेश रहयत्ने रहै, भावदस्त लेने या पीकनेसे खुजलाये और फीडा पड़ जायेगा ।

अहिसकथ (सं० स्त्री०) अहिरिष दीर्घं सकथि यस्य, यच्च बहुव्री० । १ सर्वतुल्य दीर्घं सकथियुक्त, सांप-जैसा लम्बा । (पु०) २ तदाकार देश, सांप-जैसा लम्बा सुल्क ।

अहिसाय (द्वि० पु०) सांपका बघा, छोटा सांप । यह अहिसायक शब्दका अपभ्रंश है ।

अहिसकन्ध (सं० पु०) गुल्फ, घुटिका, टछना, काव ।

अहिसत्य (सं० स्त्री०) अहिः इत्यन्, इ-तत् । १ हवा-सुरका हजम । १ सर्वघनन, सांपका मारा जाना ।

अहिसन् (वै० पु०) अहिसन् देखो ।

अहिसन (सं० पु०) अहिं सपे हवाहरं वा हतयान्, अहि-हन भूते क्विप् । १ गरुड़ । २ इन्द्र ।

अहिसयकुल (ऐश्वर्यकुल) कार्तवीर्यंका वंश । सन् १०५४-५५ ई०के समय कार्तवीर्य-वंशज महामण्डले-भर विचार सन्निजाम राज्यके सिमसायी स्थानके समीप ग्रामन करतें थे । ऐश्वर्य देखो ।

अही (सं० स्त्री०) गम्यते इत्या घौरादहिविः, गम्यते इत्यया पुल्कम्, अहिति इन्द्रादिना समुत्थान्, न हतव्या वा, अहि-होप् । १ गोद, मवेगी । २ अन्वोक एवं वृषियौ, जमीन और घासमान् । (वै० पु०) १ अमुर-विशेष । इसे इन्द्रने जोता था ।

अहीन (सं० पु०) अह्नां समूहः, अहर्गण-घाथो वा न । १ बहुदिन माध्य दिवासादि याग ।

२ हादग दिवस माध्य याग, बारह दिनमें पूरा होने-याना यज्ञ । अहीनामिनः स्तामी । १ सर्पराज वासुकि । (त्रि०) न हीनम् नञ्-तत् । ४ समथ, पूरा, जो कम न हो । ५ पूरित, भरा दुष्प । ६ बहु दिवस-स्यायी, बहुत दिन चम्नेवाना । ७ अष्ट, श्री महारुम किया न गया हो । ८ सम्यय, क्वञ्जा हामिन किये दुष्प । ९ अज्ञान्य, अनिहाट, जो हकीर न हो ।

अहीनयु (सं० पु०) अहीना समयया गौ वृषियौ यस्य, पुंयज्ञाय गोस्त्रियोरुपमअंनस्येति ङलाः, बहुव्री० । सूर्यवंशीय राजवृषिय । यह देवामीकके पुत्र थे ।

अहीनर (सं० पु०) अन्द्रवंशीय उदयनके पुत्र । अहीनवादिन् (सं० त्रि०) न हीनः वादी, नञ्-तत् । अभियोगके अन्वया प्रमाणावादीमें मिस, ठीक-ठीक गयाही देनेवाला ।

अहीनवादी, अहीनवादिन् देखो ।

अहीन्द्र (सं० पु०) १ शारिवा, अमलामूल । २ मात्य-शास्त्र-रचयिता पतञ्जलि मुनि ।

अहीमती (सं० स्त्री०) अहिरह्यस्याम्, अहि-मत्तुप् ङीप्, शरादित्वात् दीर्घः । नदीविशेष, कोयी दरया ।

अहीर (सं० पु०) आभीर शब्दस्य निपा० साधु । आभीर, भाला । यह गाय-भैस पासते और दूध-दही घेघते हैं । (स्त्री) अहीरिनी । आभीर देखो ।

अहीरगौर—उड़ीसा प्रांतके बालेश्वर जिलेकी एक खेच्छापारी जाति । इस जातिके लोग गुरुरकी पत्तियोंमें चटाई बना एक-एक आने बाजारमें घेघते हैं ।

अहीरणादि (सं० पु०) गणविशेष, कुल नाम पलकाज । अहीरणादि देखो ।

अहीरणि (सं० पु०) अहीन् ईरयति दूरी-करोति, अहि-ईर-अनि । हिमुष सर्व, दुग्धुं हा चाप । कर्कश, कि इसे देगते ही दूग्धरे सांप भाग जाते हैं ।

अहीरणिन्, अहीरणि देखो ।

अहीरी (सं० पु०) १ राजविशेष । इसमें मकल ही धर कोमल रहते हैं । (द्वि०) २ माध्यदेशके दक्षिण चांदा जिलेकी जमीन्दारी । यह अमा०

१८० ५०' १०" से २०० ५२' १०" उ० और द्राघि ७८' ५०" से ८१' १' पु० तक अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल २५७२ वर्गमील है। अहीरीके पूर्व और दक्षिण पहाड़ पड़ता, जिसका जङ्गल बहुत प्रसिद्ध है। जितने ही काट कर खाते भी साखूके सेकड़ों हथ खड़े हैं। यहाँके अधियासी प्रायः पूर्णरूपसे गोंड ठहरते और गोंडी एवं तेलङ्गो भाषा बोलते हैं। इस जमीन्दारीके स्वलाधिकारी बांदावाले जमीन्दारोंमें सबसे श्रेष्ठ समझे जाते और गोंड राजवंशसे सम्बन्ध रखते हैं।

अहीरीगांव—अब्दई मान्तेके नासिक जिलेका ग्राम। यह निफादसे उत्तर-पश्चिम पांच कोय दूर है। सन् १८१८ ई०में गढ़ापर शास्त्रीके घातक ब्रह्मकजी डेगलिया इसी गांवमें दो बार कैद हुए। गुप्त समाचार या खानदेशके पोलिटिकल एजेंट कप्तान ब्रिग्सने कुछ सुइसवार कप्तान स्मॉनटनके अधीन अहीरीगांव भेजे थे। उन्होंने एकान्तिक छप घरकी लाकर घेरा, जिसमें ब्रह्मकजी छिपे रहे। किन्तु यह दूसरे मस्जिदमें घासके मोचे दबककर जा बैठे। सवार ब्रह्मकजीको कैदकर चांदोर लाये थे, जहाँसे यह बुनारगढ़ कैदीकी तरह भेजे गये। ब्रह्मकजी माजीराय पैशावाके बड़े प्यारे रहे और सन् १८१६ ई०को याना लेससे निकल भागे थे।

अहीरा (सं० पु०) १ सर्पराज, शेषनाग। २ लक्ष्मण। ३ बलराम।

अहीरव (सं० त्रि०) अहीं शक्ति, शुक। पशु-विशेष। इसे इन्द्रने जीत लिया था।

“अर शीघ्रतोषः।” (शब्० १०१४३१२)

अहु (सं० त्रि०) अह व्याप्ती छन्। व्यापक, भरा हुआ। (स्त्री०) डीप। अह्नी, व्यापिका। अंहते, आधारे छन्। अंह। (स्त्री०) भग।

अहुटना (हिं० क्ति०) निवृत्त होना, निकलना, हटना, भागना।

अहुटाना (हिं० क्ति०) निकाल देना, भागाना, हटाना, दूर करना।

अहुठ (हिं० वि०) अहुष्ट, साढ़े तीन, साढ़े तीन फेर खाये हुआ।

अहुत (सं० पु०) नास्ति हुतं इवमं यत्र, नञ्-बहुव्री०। १ होमशून्य वेदपाठ, ब्रह्मयज्ञ। (त्रि०) २ होम न किया गया, जो आगमें डाला न गया हो। ३ बलिहरित, जिसे बलि न मिला हो। ४ बलिद्वारा भ्रमात्, जो होम करनेसे हाथ न आया हो।

अहुनाद (सं० त्रि०) बलिदानके अयोग्य, जिसे बलि देनेकी आज्ञा न रहे।

अहुठन (हिं० पु०) स्थूण, ठीहा, पोड़ा। यह लकड़ोका टुकड़ा होता है। कृपक पृथिवीमें गाड़ इसपर चारा काटते हैं।

अहुणान (सं० वि०) हृषी रोपणो कण्डादि० तच्छिस्त शानच् वेदे निपा० साधु, नञ्-तत्। अक्रोधन, अक्रोधो, सुगन्धिक, मेहरवान्, जो नाराज न हो।

“अं से इवमहुणानः।” (शब्० ५८१२१)

अहुषीयमान (सं० त्रि०) १ पापगत होनेपर अलज्जमान, जिसे बुरा काम करनेपर शर्म न आये। २ अक्रोधन, मेहरवान्। ३ सन्तुष्ट, राजी। ४ प्रसन्नता-पूर्वक दिया जानेवाला, जो खुशीसे बहूया गया हो।

“आज्ञा सममहुषीयमानः।” (शब्० ५८१२१४)

अहुति—अन्ताल परगनेकी मानपहाड़िया जातिके एक गोत्र। यह लोग ब्याध या शिकारी होते हैं।

अहुद्य (सं० त्रि०) अनौपित, भागवार, जो चाहान गया हो

अहे (सं० अर्थ०) १ ही-ही, विहार, धत। २ पलंग, दूर, हटावो। ३ शो, देखो, इधर। यह छेप, वियोग और सम्बोधनमें लगता है। (हिं० पु०) ४ हथ विशेष, एक पेड़। इसका काष्ठ भूरा होता और गूँद, हल, शकट प्रभृतिके निर्माणकार्यमें, काम आता है।

अहेड़ (सं० त्रि०) हेड़ अनादरे अच्, नञ्-तत्। अयज्ञाशून्य, अनादररहित, इज्जतदार, जो वे-इज्जत न हो।

अहेड़मान (सं० त्रि०) हेड़-मानच्, नञ्-तत्। आद्रियमाण, अयज्ञाशून्य, इज्जतदार।

चहेतु (मं० पु०) मन्त्र-मन्त्र। १ हेतुमित्र, मन्त्र-
को चतुसमीशुद्धता। २ काव्यालङ्कार विनय। इसमें
कारण उपस्थित रहते भी कार्यकी अनिष्टता देखायी
जाती है। (वि०) मन्त्र-मन्त्रमी०। ३ हेतुगुण्य, वे-मन्त्र।

चहेतुक (मं० वि०) चहेतुद्वयोः।

चहेतुता (मं० स्त्री०) हेतुता चामात्र, वे-मन्त्रमी०।

चहेतुत्व (मं० स्त्री०) चहेतुद्वयोः।

चहेतुसम (मं० स्त्री०) वंकांन्यामिरेष्टीरहेतुसमः।
गीर्षो कालमें चमिहहेतु यानि हेतुत्वके चसम्भय
कथनको चहेतुसम कहते हैं। हेतु ही साधन है, चतः
इस साध्यके पूर्ण, पचात् वा सङ्ग रहना चाहिये।
यदि साध्यके पूर्ण साधन माना जाये, तो साध्यके
विद्यमान न रहनेपर यह किसका साधन और
साधनको पीछे रखें, तो किसका साध्य होगा ?
यदि साध्य और साधनको एक ही समयमें विद्यमानता
मानो जाय, तो कौन किसका साधन एवं कौन
किसका साध्य निकलेगा। यह हेतुवे चलग नर्ही हो
सकता। चतएव चहीको चहेतुसम कहते हैं।

चहेर (हिं० पु०) चायेट, गिकार।

चहेरिया—मध्य दोबावकी एक जाति। यह गिकारियों
और चौरोंका काम करते हैं। कोई-कोई
चहेरियोंको एक प्रकारका धानुक बतता, किन्तु यह
उनको तरह मृतक शरीरको नर्ही खाता। गोरखपुर
जिल्लेमें धानुकोंके जो चहेरिया संग्रह रहते, वह
सांपको पकड़ कर खा जाते हैं। प्रधानतः चहेरिया
भोलों और बहेलियोंके संग्रह मानलूम होते हैं।
किन्तु यह अपनेको किसी धर्मधर्मो राजाका संग्रह
प्रमाणित करते हैं। इनका कहना है,—‘एक धर्म-
धर्मो राजकुमारको चायेटका बड़ा प्रेम था। वह
इसोमे पितृकृतमें शाकर रहने लगे। चायेटमें राज-
कुमारकी बड़ी चेष्टा देख मोग उन्हें ‘चहेरिया’ कह-
कर पुकारते थे। उन्होंने हमारा चहेरिया संग्रह
निकला है।’ यह मोग पितृकृत और चयोध्याकी
नीर्ययाता करते हैं। पचायत जातिका विवाद
मिटाती है। मरपच संवेदा एक ही ध्यति रहता है।
यदि मरपच हीमार पड़ जातो या नाबाकिर होता, तो

पचायतभी कोई मध्य उसके खानमें काम करता है।
किन्तु उसके पयोग्य प्रमाणित होनेपर सर्वसम्भतिमें
दूसरा मरपच चुना जाता है। इनमें चार-चार
विवाद होते और कितने ही मोग दो बहनोंको
साध ही व्याह साते हैं। विधा-विशहकी प्रया भी
प्रचलित है। धनी मृतकको जसाते और निर्धन
नदोमें बहा या भूमिमें गाड़ देते हैं। भूतप्रेतकी
पूजा बहुत होती है। चलीगढ़ जिल्लेकी चतरोना
तहसीलके गद्दीरो गांवमें मीघासुरका मन्दिर बना है।
रामायण-रचयिता वाल्मीकि मुनिको यह पचना
महाका सम्भते हैं। चतरो और टोकरी बना तथा
टाकरी गहद और गौद निकासकर नगरमें बचना
इनका काम है। किन्तु संघ लगाने और डाका
छालनेमें यह बड़े ही चालाक होते हैं। सन् १८४५
ई०के समय इन्हीं बड़ी लूटमार उठायी थी।

चहेरी (हिं० पु०) चायेटक, गिकारो, जो गिकार
मारता हो।

चहेर (मं० स्त्री०) न हिमोति गच्छति, हि-ह
मन्त्र-मन्त्र। मन्त्रमूली, मन्त्रावर।

चहेलत्, चहेलद्वयोः।

चहेलमान, चहेलानद्वयोः।

चहेलवत्, चहेलानद्वयोः।

चहेतुक (मं० वि०) हेतुत चागतं ठञ्, मन्त्र-मन्त्र।

१ हेतुवे चामात्र, जो मन्त्रधर्म मिल न सकता हो।

२ उपपत्तिगुण्य, नापेद, जो पेदा न हो। ३ साहाय्य-
गुण्य, वे-मन्त्र।

चहो (मं० पद्य०) चह-डो। १ गोक, चम-
सोम, पाह। हाय। २ धिहार, मानत, छो-छो।
३ दवा, रहम, हा। ४ पो। ऐ, देपो। ५ पायर्थ,
ताल्लु, चर। ६ धम्य, वाह, वाह। नवा चूब।
गावाय। ७ बवो, कैम, किमतरहं।

चहोय (वे० पु०) १ यत्र न करनेवाला पुह्य।

२ यत्र करनेमें चचम।

चहोपनिषदा (मं० गो०) १ स्वायम्भुव, बृ-
हतमीनांनो, चपना भरोगा। २ पाकघावा, बृ-
मिताहं, चपनी तारीक।

पहोम—पासाम उपत्यकामें रहनेवाली गानवंशीय एक जाति। वर्तमान शताब्दके प्रारम्भ समय और ब्रह्म-वासियोंके प्रारम्भ करनेसे पहले पासाम उपत्यकामें पहोम जातिका बड़ा प्रभाव रहा। कहते हैं,—मन् ७७७ ई०की सुकम्पा नामक नृपतिके समय उनकी भाई समनोनफा सेनापति थे, जिन्होंने सदियासे कामरूप तक मगध देग अपने पहोम किये। ममलोनफेसे ही पहोम राजवंश चला है। किन्तु मतभेदसे मन् १२२८ ई०को पोद्ग राज्यके अधिकारी, सुकम्पाने गानमं निजासे लानेपर पासाम लीत पहोम नाम ग्रहण किया और प्राम्साका भी नाम पासाम रख दिया। मन् १६५४ ई०को पहोम-नृपति चतुमला हिन्दू बनाये गये थे। मन् १२२८ ई०से छेड़ शताब्द तक पहोम-नृपति धेयटके दिदिङ्गनदीके दास थोड़े देगपर राज्य करते रहे। किन्तु मन् १९७६ ई०को पहले-पहले मखोमपुर और शिवसागरके चूता राजाओंसे उन्हें लड़ना पड़ा था। यह युद्ध १२४ वर्ष चला। अन्तमें पहोमोंने मन् १५०० ई०के समय चूता नृपति-की इरा शिवसागर जिलेका गढ़गांव अपनी राजधानी बनाया। मन् १५६९ ई०की कोच-नृपतिने इनके मये देगपर प्रारम्भ कर गढ़गांव राजधानी छीन ली थी, किन्तु उसे अपने अधिकारमें रखनेकी चेष्टा न की। पहोमोंको फिर अपना अधिकार प्रतिष्ठित करनेमें नोगांव और पूर्व दरङ्गके कछारियोंसे सहायता पड़ा था। फिर औरङ्गजेबके सेनापति मीर जुमलेने इनपर प्रारम्भ किया, किन्तु उन्हें पहोम राजधानी छीनने और उसके नृपतियोंपर कर लगाने बाद ग्वासपाड़ेको पीछे हटना पड़ा। उस समय ब्रह्मपुत्र-उपत्यकामें सदियासे ग्वासपाड़े और दक्षिण पर्वतसे भूटान 'सीमातक पहोमोंकी मूर्ती बोलती थी। मन् १६८५ ई०के समय दरङ्गने सिंहासनाह्वर हो इस राज्यको उच्चतिके शिखर पर चढ़ाया। उसके दूसरे शताब्द गृह विवाद और विदेशीय प्रारम्भसे पहोम राज्य विगड़ने लगा था। मोवामेरियोंके धार्मिक विद्रोह खड़ा करने पर पहोमोंको अपने राजधानी गढ़गांवसे रङ्गपुरं चला ले जाना पड़े।

किन्तु यहीं अन्त न हुआ, आपसमें भगड़ा बट जानेसे धीरे-धीरे इनकी राजधानी कामरूपके गौहाटी स्थानमें जा पहुँची थी। मन् १८१० ई०में किसी प्रति-पत्नीने अपने साहाय्यके लिये ब्रह्मदेगवासियोंकी बुनाया। किन्तु यह स्वयं राजा बन बैठे और निर्दय रूपसे मगध उपत्यकामें शासन करने लगे। मन् १८२४-२५ ई०के समय चंगरेजोंने ब्रह्मदेग-वासियोंको यहांसे निकाल बाहर किया। पहोम-नृपति टंयके स्थानमें लोर्गसे अपना काम लेते थे। दूसरे विषयमें बिलकुल उन्हें हिन्दुओंका जेसा ही भावण दिखाया।

पहोरा—१ राजपूतानाके उदयपुर राज्यका प्राचीन नगर। यह उदयपुर नगरसे एक कोस दूर है। २ युक्तप्रदेशके रुहेलखण्डकी एक जाति। यह राम-गङ्गा नदीके किनारे रहती तथा क्षत्रिकर्मसे अपना काम चलाती है। इस जातिके लोग जाटों और गूजरोंके साथ खुले तौरपर शराब और ड्रक्का पीते, किन्तु पहोरोंको नोच समझते हैं। कहते हैं, पहले रुहेलखण्डमें पहोरोंका राज्य रहा। सभ्यतः तोमरोंके समय (मन् ७००-११५० ई०) इन्हें बहुत अधिकार प्राप्त था। पहोरोंमें सैकड़ों कुल होते हैं। मिरठ, तुलन्दगहर, एटा, बरेली, विजनौर, वदावू, सुरादाबाद, पीलीभीत, कुमावू और तरायीमें कितने ही पहोरा निवास करते हैं।

पहोराखत्तर (सं० स्त्री०) अङ्गि गेयं रघत्तरं साम-भेदः न रोराः। दिवसमें गाने योग्य रघत्तर नामक साम, जो साम सिर्फ दिनमें गाया जाता हो।

पहोराव (सं० पुं०) अहय रात्रिय, अजन्त समाहा० चन्द। १ दिवाराव, दिनरात, एक दिन, सूर्य निकलनेसे दूसरे दिन सूर्य निकलने तक चौबीस घण्टे मनुष्यका दिन। मनुष्यके एक मासमें पैंत और एक वत्सरमें दैव पहोराव होता है। (अथ०) २ सूर्यदा, रातदिन, हमेया।

पहोरा-वहोरा (हिं० पुं०) विवाह विशेष, किसी किष्ककी शादी। इसमें नववधू ससुराल पहुँच उठी दिन अपने घर वापस आ जाती है।

पां (हिं० पय्य०) १ पाचयें, ताज्जुध, बग हुपा ।
 (पु०) २ बालकके रोदनका मण्ड ।

पांक (हिं० पु०) १ पट्ट, पदद । २ चिह्न,
 निगम । ३ वर्ष, वर्ष । ४ नियय, यकीन् । ५ भाग,
 हिमम । ६ कुल, खानदान । ७ कोड़, मोद । ८ पवि-
 यकी धुरी शाननेका टांघा । यह गाड़ियोंकी बलियोंकि
 नीचे लगता घोर मजबूत लकड़ीका बनता है ।
 ९ हस्तोविगम । इसमें नीं माता रहती है ।

पांकड़ा (हिं० पु०) १ पट्ट, पदद । २ पेंच, फन्दा ।
 ३ पयरोम विद्रोय, घोषायोंकी एक बीमारी । ४ मदार,
 पाक । (स्त्री०) पांकड़ी ।

पांकल (हिं० पु०) दाना निकाला हुआ ख्यारका
 मुद्दा ।

पांकना (हिं० क्लि०) १ पढित करना, निगमन लगाना,
 दागना । २ कृतगत, ताज्जुमीना करना, ठहराना, दाम
 लगाना । ३ अनुमान बांधना, फुर्ल करना । ४ लिखना ।

पांकनी (हिं० स्त्री०) लेखनी, कलम ।

पांकर (हिं० वि०) १ आकर जैसा, गहरा ।
 जोतायी दो तरहकी होती है—पांकर रूख गहरी
 घोर प्याह या शिव । २ मरुंग, गरान् । ३ पत्यधिक,
 बहुत, ज्यादा ।

पांकल (हिं० पु०) पढित-हयम, दागा हुआ मांड़ ।
 पांकड़ा, बरुग देखो ।

पांकुम (हिं०) बरुग देखो ।

पांकू (हिं० पु०) पांकनेवाला, कृतनेवाला, दाम-
 लगानेवाला ।

पांच (हिं० स्त्री०) १ पवि, देखनेका इन्द्रिय, अंश ।
 इसमें जीवोंकी दृष्य, विस्तार घोर आकारका ज्ञान
 होता है । शरीरमें इस इन्द्रियपर आनोकके द्वारा
 यमुका विष्य उत्तर पाता है । जीव जितना उचत
 या सुद होता, पांच भी उतनी ही कटिल एवं सरल
 रहती है । सुद जीवकी पांच बहुत मादी होती
 घोर कहीं विन्दु ही जेमी देव पड़ती है, रघाके निये
 पलक या बरोमी मर्छी लगती । बहुत छोटे जीवोंमें
 पांचका जेमी घोर संख्याका नियम मर्छी है । शरीरके
 जिमी अंशमें एक, दो या चार विन्दु निकलते, जो

पांचका काम देते हैं । मकड़के पाठ पांचे होती
 है । रीढ़याके कौड़ेकी पांच जोपड़ेके नीचे मड़ेमें
 रहती, जिसपर पलक घोर बरोमी चढ़ती है । यह
 बाहरसे देखनेमें गोल घोर जम्बी तया दोनो किनारे
 नोकदार निकलती है । सामनेकी मकड़ भित्रीके पीछे
 लो भिन्ना पड़ती, उसमें एक छिद्र रहता है । इसी
 छिद्रमें मोटे गोमि-जेसा एक द्रव्य होता, जो प्रकाशको
 भीतर पड़्या ज्ञानतन्तुपर प्रभाव डालता है । पांचके
 पर्याय नीचे देगिये—लोचन, नयन, नेत्र, ईचन,
 पवि, दृक्, दृष्टि, पय्यक, विभोचन, वीचय, प्रेषय,
 चक्षु । २ ध्यान, इरादा । ३ विधिक, पञ्चान ।
 ४ जया, मेहरवानी । ५ मन्नाति, पौसाद । ६ पांचके
 ऊपरका निगम । ७ ईशकी ठाँठी । ८ पनवागका
 दाग । ९ घुरैका घुराक ।

पांचड़ी, पांच देखो ।

पांचफोड़टिछा (हिं० पु०) १ घुरे रणका एक
 कौड़ा । यह मदारके हथ पर रहता घोर उमीकी
 पतियां पाता है । २ कृतप्र, एहमान-फुरामी श ।

पांचमिचौली, पांचमोचनी, (हिं० स्त्री०) एक देव ।
 एक लड़का किमी दूरसे लड़केकी पांच नूद देता
 है । जब दूरसे लड़के छिप जाते, तब उस लड़केकी
 पांच खोनी जाती घोर यह लड़कोंको छेनेके
 निये दूदते फिरता है । जिस लड़केको यह छु
 सेता, वही घोर ठहरता है । यदि यह किमीको छु
 नही पाता, तो फिर वही घोर बनाया जाता है ।
 ७ बार इसी तरह घोर जोनेपर मय लड़के उसके
 घेर बांध घोर चारो घोर कुच्छन रीव देते हैं ।
 दूरसे लड़के धारो-धारो कुच्छनमें घेर रहते घोर
 उस बुढ़िया-बुढ़िया कष्ट कर बिढ़ती है । कुच्छनके
 भीतर किमीको छु लेनेपर घोर लड़केका दाव
 उतरता है ।

पांचो, पांच देखो ।

पांग (हिं० पु०) १ पङ्क, पङ्गे । २ प्रति जोपावे
 पर लो जानशाली चरायो । ३ कुच, दान ।

पांगन (हिं० पु०) पङ्कन, पङ्कन, घरके भीतरका
 मदन, खीक ।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) बह्विका, श्रांगिया, शोली, छोटा कपड़ा।

श्रांगुर (हिं०) चट्टन देवी।

श्रांगुरी (हिं०) चट्टन देवी।

श्रांगुल, चट्टन देवी।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) महीन कपड़ेसे मढ़ी हुई चन्ननी। इससे मटा घालते हैं।

श्रांग (हिं० स्त्री०) १ अग्निशिखा, भागकी लपट। २ ताप, गर्मी। ३ अग्नि, आतप। ४ तेज, प्रताप। ५ आघात, चोट। ६ अहित, अहित, हागि। ७ विपत्ति, सट्ट, सन्नाप, श्राफत। ८ प्रेम, दाह। ९ कामताप।

श्रांगका (हिं० पुं०) नावका लटकता हुआ रश्मा। इसकी छोरपर लक्ष्मीमें बह रश्मा लगता, जिसपर ठहर रश्मासे जहाजका पाल खोलता और लपेटता है।

श्रांगना (हिं० स्त्री०) सुलगाना, श्रांग देना।

श्रांगर, श्रांग देवी।

श्रांगल (हिं० पुं०) १ अचल, धोती या दुपट्टेका छोर। २ अरिओंकी साड़ीका छातीपर रहनेवाला किनारा। ३ माथुका अंचला।

श्रांगू (हिं० पुं०) एक कंटीली भाड़ी। इसमें शरीके जैसे छोटे छोटे फल लगते, और मीठे रससे भरे दाने पड़ते हैं।

श्रांगन (हिं०) चट्टन देवी।

श्रांगना (हिं० स्त्री०) अश्वन लगाना।

श्रांगट (हिं० स्त्री०) १ हस्ततन्त्रमें तर्जनी एवं अङ्गुठके मध्यका स्थान। २ दाँव, वग। ३ वैर, लाग लट। ४ अन्ध, गाँठ। ५ पूला, गडा, पेंच।

श्रांगटना (हिं० स्त्री०) १ समाना, श्रांगना, समाना। २ पूरे उतरना, काफ़ी निकलना। ३ आना, मिलना। ४ पड़ना।

श्रांगट-श्रांगट (हिं० स्त्री०) १ गुप्त अभिसन्धि, श्रांगिय, बन्धि। २ मिसजोल।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) १ लम्बी घासका छोटा गडा, पूला। २ लड़कीके खेलनेकी गाली। ३ कुशतीका एक पेंच। इसमें टांगसे टांग लगा और कमरपर साद लड़ने-वालेकी चित्त मारते हैं।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) १ अट्टि, गाँठ। २ वीक, गुठली। ३ दही, बालायी वगैरहका लच्छा। ४ नवींकाका उदत स्तन।

श्रांग (हिं० पुं०) अण्डकोश।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) १ अंटी, गाँठ, कन्द। २ कोण्डूकी जाटका गोला। ३ बैलगाड़ीके पहियेमें जड़ी हुई लोहेकी सामी। ४ छतकी पीनी।

श्रांगू (हिं० पुं०) अण्डकोशगुल, जिसके कूचा अण्डकोश न रहे। यह शब्द चौपायेका विशेषण है।

श्रांगेबाड़े खाना (हिं० स्त्री०) शहर-उधर घमना, बकर काटना।

श्रांग (हिं० स्त्री०) अन्ध, प्राणियोंके पेटमें गुदातक जानेवाली लम्बी नली। भुक्त पदार्थ पेटमें पचकर दही नलीमें जाता, जहाँसे रस अन्नप्रत्यङ्गमें पड़ना और मल बाहर निकलता है। मनुष्यकी श्रांग लीलाडोलेसे पाँच-छः गुण दीर्घ होती है। मांस-भक्षियोंकी अपेक्षा शाकाहारियोंकी श्रांग छोटी बैठती है।

श्रांगकटू (हिं० पुं०) पशुरोगविशेष। इस रोगमें चौपायोंको दस्त बहुत पता है।

श्रांगर (हिं० पुं०) १ अन्तर, दो वस्तुओंके बीचका स्थान। २ एकवार जीतनेके अन्तरे घेरा जानेवाला खेतका हिस्सा। ३ पास, पानकी क्वारियोंके बीच अग्नि-जानेकी जगह। ४ तानिमें दोनों सिरोंके बीच छंटियोंकी लकड़ी। यह श्रांगी चलानेकी योड़ी-योड़ी दूरपर गाड़ी जाती है।

श्रांगू (हिं० पुं०) १ अन्ध, लोहेका कड़ा, बेली। २ बांधनेका सोकड़।

श्रांग (हिं० स्त्री०) १ अन्धकार, धुंध। २ रतींधी। ३ कष्ट, तकलीफ।

श्रांगना (हिं० स्त्री०) वेगसे धावा मारना, टट पड़ना।

श्रांगर (हिं० वि०) अन्ध, अन्ध। (स्त्री०) श्रांगरी।

श्रांगरा, श्रांग देवी।

श्रांगरअ (हिं० पुं०) अन्धखता, मनमाने बात।

श्रांगी (हिं० स्त्री०) प्रचण्ड वायु, जोरसे चलनेवाली,

हज। इसमें इतनी धूमि उड़ती, कि चारों ओर
पत्थरकार हवा जाता है। भारतवर्षमें इसकी पानिका
ममय वन्यता ओर प्रोच है।

पाँच, चम देखो।

पाँचा इमदी, चम इमदी देखो।

पाँचपाँच (हिं० पु०) चमग्रन्थमलाप, ध्वर्यकी बात,
चंद्रधंड, चमपायनाप, छटपटांग।

पाँच (हिं० पु०) चम, चम न पचनेमें उत्पन्न
हीनेवाला एक प्रकारका निकला सफेद समदार मस।

चम देखो।

पाँच (हिं० पु०) १ किनारा, चारों। २ कपड़ेका
हौर। ३ बरतनकी चारों।

पाँचटना (हिं० क्रि०) उमहना, ऊपरकी उठना।

पाँचड़ा (हिं० वि०) गभीर, गहुरा।

पाँचन (हिं० पु०) १ लोहकी चामी, सुंझड़ी।
यह परिष्कृत चम लोह पर लगती, जिनमें धुरीका
लपटा रहता है। २ एक बीजार। इसमें लोहका
लेद बढ़ता है।

पाँचरा, चमकी देखो।

पाँचन (हिं० स्त्री०) नाम, खेड़ी, खीरो, किमी
किष्ककी मिट्टी। इसमें गर्भमें बच्चे लिपटे रहते हैं।

पाँचन प्रायः बच्चा होनेके पीछे गिर जाती है।

पाँचनगहा (हिं० पु०) पाँचलेका छाया फल।
यह बीपपमें पड़ता और गिर मनुनेके काम
आता है।

पाँचना (हिं० पु०) हच विमेष। इसकी पत्तियाँ
इसकीकी तरह छोटी छोटी होती हैं। पाँचलेकी
मकड़ी कुछ सकेदी सिये रहती और हाल प्रतिवर्ष
उतरा करती है। कार्तिकमें प्रायः तब इसका कागुनी
नीपु-लेमा फल रहता है। हाल पतनी होनेमें नभे
देग पड़ती है। खादमें यह कसेमापन लिये खाया
जाता है। शुषमें इसे गोतन तथा मनु पाने ओर
दाह, पित्त पर्व प्रनिहका मायक बनाते हैं। इसके
योगमें तिष्ठना, चपनप्राय प्रमत्ति चनेक बीपप प्रस्तुत
होते हैं। पाँचलेका मुरब्बा भी बहुत अच्छा बनता
है। इसकी पत्तियोंमें चमड़ा मिश्राते हैं। मकड़ी

पानीमें न सहनेमें कुबोके नीमचक चादि उमीने
बनते हैं। चमकी देखो।

२ कुम्भीका पेंच। इसमें विपचीको नीपु
जाते हैं।

पाँचनापती (हिं० स्त्री०) किमी किष्ककी मिट्टाई।

इसमें पत्तीकी तरह दोनों ओर तिरछे टांके लगते हैं।

पाँचनाचारगन्धक (हिं० पु०) चति शुद्ध एवं पार-
दगक गन्धक। यह बहुत साफ़ और चानमें पड़ा
होता है।

पाँचा (हिं० पु०) महीके वर्तन पकानेका मसू।

पाँचिक (सं० वि०) चंगमयन्त्री, चंगविषयक,
हिष्केका।

पाँचकजल (सं० स्त्री०) किरण दिशाया चूषा अन्न।

जनको एक तांबिके पात्रमें रम दिनभर धूप और
रातभर चांदनी देपाते हैं। वैद्यकशास्त्र इग जलकी
बड़ी प्रशंसा करता है।

पाँच (हिं० स्त्री०) १ पीड़ा, दर्द। २ पाय, सुतनी,
हारी। ३ रेगा।

पाँचा (हिं० स्त्री०) भाजी, बेना, दटमिन्नीके यहाँ
बंटनेवाली मिट्टाई।

पाँचू (हिं० पु०) चयू, चक्रक, पाँचका पानी।
यह पाँचमें नाककी ओर जानेवाली नलीके पाय
जमा रहता है। इसमें पाँचकी मिट्टी तर रहती है
और डिलेपर तिनका तथा गर्द नर्वा बैठती। धुककी
तरह यह भी पैदा होता और गारीरिक या मानसिक
पाधातमें बढ़ता है। पीड़ा, गोक, क्रोध और हर्षमें
पाँचू आ जाता है। अधिक होनेसे यह गर्नीपर
बढ़ता और कभी-कभी भीतरी नलीकी राह नाकमें
दांसिल होता है।

पाँचुटास (हिं० पु०) पयुरोग विमेष, बीपयाकी
एक बीमारी। इसमें जानवरकी पाँचमें पानी निकला
करता है।

पाँचड़ (हिं० पु०) भाच्छ, बरतन।

पाँचा (हिं० चम०) नर्वा।

पाँच (हिं०) चम देखो।

पाँचना (हिं०) चम देखो।

आइन्दा (फ्रा० वि०) १ भविष्यत्, सुगतकविल, पागे
आनेवाला। (पु०) २ भविष्यत्काल, इतिहासकाल
आनेवाला जमाना। (क्रि० वि०) ३ भविष्यत्में,
आकिबतपर, पागे।

आइस, आइसु, आइस दंडी।

आई (हिं० स्त्री०) १ मृत्यु, मोत। २ आयुम्,
जिन्दगी।

आईन (फ्रा० पु०) १ व्यवस्था, सूत्र, दस्तूर, चलन।
२ शासन, शरिगत।

आईन-र-अकबर—ऐतिहासिक ग्रन्थविशेष। यह पुस्तक
फारसी भाषाके प्रसिद्ध अकबरनामैका छठीय खण्ड है।
महाकवि शेख अबुल फजल इसके रचयिता हैं। इसमें
सम्राट् अकबरके राजत्वकालका भ्रमस्त विवरण लिखा
है। यह पांच अध्यायमें सम्पूर्ण हुआ है। प्रथम अध्यायमें
अकबरके परिवार और समाजका विवरण तथा स्वयं
सम्राट्का हस्तान्त प्रभृति अनेक विषय लिखा है।
द्वितीय अध्यायमें सम्राट्के कर्मचारियोंका विवरण
है। तृतीय अध्यायमें शासन एवं विचार विभागका
हस्तान्त तथा भूमिकी माप और राजस्व निरूपणका
विषय दिया गया है। चतुर्थ अध्यायमें सामाजिक
नियम, विद्या आलोचनाके उत्कृष्ट साधन, विदेशी
राजाओंके आक्रमण, परिस्राजक और सुसजमान-
फकीर प्रभृतिकी बातें हैं। पंचम अध्यायमें नीतिवाक्य
यमित हुए हैं।

आईना (फ्रा० पु०) आदर्श, शीशा, आरसी।

आईनादार (फ्रा० पु०) नापित, हल्लाम, शीशा देखाने-
वाला नौकर।

आईनावन्दी (फ्रा० स्त्री०) १ शीशाका साज। २ फर्श-
वन्दी, पत्थर या ईंटकी सजाई। ३ टहलीकी तैयारी।
इस पर रोगनी करते हैं।

आईनामाज (फ्रा० पु०) दर्पण या शीशा बनाने-
वाला।

आईनासाजी (फ्रा० स्त्री०) १ आईनासाजका काम।
२ कांच पर कलई चढ़ाना।

आईनी (फ्रा० वि०) राजनियमके अतुल्य, काननी,
कायदेसे चलनेवाला।

आउ (हिं०) आउव, देखी।

आउज (हिं० पु०) वाद्यविशेष, तागा। यह
गलेमें डालकर दो लकड़ियोंसे बजाया जाता है।

आउभा, आउन देखी।

आउट (अंग० वि०) बहिर्भूत, खिलसे हारकर निकला
हुआ। (Out) क्रिकेटके खेलमें यह शब्द प्रयुक्त होता
है। गेंद विकेटमें लगने या बल्लेसे मारा हुआ गेंद
हाथमें रुक जानेसे खिलाड़ी आउट होता है।

आउटराम—(Sir James Outram, Lieutenant-
General G. C. B.) एक प्रसिद्ध अंगरेज वीर। ये
भारतवर्षके एक प्रधान सेनापति रहें। सन् १८०३ ई०को
उर्दुवायरके अन्तर्गत वटार्लीहालमें इनका जन्म हुआ
था। इनके पिताका नाम वेल्हामिन आउटराम
रहा। पहले इन्होंने अर्धसैनिक अन्तर्गत उदनी और
पीछे मारिष्काल कालिजमें शिक्षा पायी। १८२८
ई०का निम्नश्रेणीके सेनापति होकर यह भारतवर्ष
आये थे। उससे बाद १३०० वर्षीय देशीय पदातिकके
लेफ्टनेण्ट और आउट्राम हुए। इन्होंने खानदेशके
असह्य भाँलोंको युद्धकोगल सिखाया और अन्तमें
भाँलोंकी सेना ही साथ से जाकर दौड़ जातिको परास्त
किया था। १८३५ से १८३८ ई० तक ये मही-

कण्ठमें सुशुद्धता स्थापन करनेपर ब्याप्त रहें। लार्ड
किन्के सदस्य बनकर ये अफगानस्थानपर आक्रमण
करने गये थे। ये गुजरातके पोलिटिकल एजेंट और
मिन्सुदेशके कमिश्नर भी हुए। उची समय मिन्सु-
देशके अमीर विद्रोही बन बैठे थे। सर चाल्स नैपि-
यरको मन्त्रणाके अनुसार सेनापति आउटरामने उन
लोगोंको दमन किया। पीछे ये सितारि और बड़ोदे
राज्यके रेसिडेण्टके पदपर सुगोभित हुये थे। उची
समय अथवा अंगरेजोंराज्यके अन्तर्गत हो गया। लार्ड
हाल्लडउचीने आउटरामको वहाँका रेसिडेण्ट और
कमिश्नर नियुक्त कर दिया था।

सद्युत दिनोंतक भारतवर्षमें रहनेसे आउटराम
बीमार पड़े और १८५३ ई०को इङ्ग्लैण्ड चले गये।
परन्तु ईरानसे लड़ाई छिड़ जानेपर इन्हें कमिश्नर
बनकर सेनाके साथ ईरान उपसागरमें पहुँचना पड़ा

हवा। हमने इतनी धूलि उड़ती, कि चारो ओर
अन्धकार छा जाता है। भारतवर्षमें हमके पानिका
समय वसन्त और शीत है।

पांव, नाम देखो।

पांवा हलदी, नाम देखो देखो।

पांवापांवा (हिं० पु०) अस्मन्व्यप्रलाप, व्यर्थकी बात,
पांडबंड, अनापशनाप, ऊटपटांग।

पांव (हिं० पु०) अस्त्र, अस्त्र न पचनेसे उत्पन्न
होनेवाला एक प्रकारका चिकना सफेद लसदार मत्त।

अर्थ देखो।

पांवाठ (हिं० पु०) १ किनारा, बारी। २ कपड़ेका
कौर। ३ बरतनकी बारी।

पांवाड़ना (हिं० क्रि०) उमड़ना, ऊपरकी उठना।

पांवाड़ा (हिं० वि०) गभीर, गहरा।

पांवन (हिं० पु०) १ लोहकी सामी, सुंफड़ी।
यह पहिथके उस छेद पर लगती, जिसमें धुरीका
छेदा रहता है। २ एक औजार। इससे लोहका
छेद बढ़ाते हैं।

पांवर, नाम देखो देखो।

पांवल (हिं० स्त्री०) साम, खेड़ी, जेरी, किसी
किष्मकी भिक्षी। इससे गर्भमें बच्चे लिपटे रहते हैं।

पांवल प्रायः बच्चा होनेके पीछे गिर जाती है।

पांवलगद्दा (हिं० पु०) पांवेलेका सूखा फल।
यह औषधमें पहता और गिर मलनेके काम
आता है।

पांवला (हिं० पु०) हल विशेष। इसकी पत्तियां
द्रमलीकी तरह छोटी छोटी होती हैं। पांवेलेकी
लकड़ी कुछ सफेदी लिये रहती और छाल प्रतिवर्ष
उतरा करती है। कार्तिकसे माघ तक इसका कागजी
नीचू-भेसा फल रहता है। छाल पतली होनेसे नरें
देख पड़ती हैं। स्वादमें यह कसेलापन लिये खटा
होता है। गुणमें इसे शीतल तथा लघु पाते और
दाह, पित्त एवं प्रमेहका नाशक बताते हैं। इसके
योगसे त्रिफला, अवनमात्र प्रथति अनेक औषध प्रस्तुत
होते हैं। पांवेलेका सुरब्धा भी बहुत अच्छा बनता
है। इसकी पत्तियोंसे चमड़ा मिभाते हैं। लकड़ी

पानीमें न सड़नेसे कुयोके नीमचक आदि उसीके
बनते हैं। नाम देखो देखो।

२ कुशतीका पेंच। इससे विपत्तीको नीचे
लाते हैं।

पांवलपत्ती (हिं० स्त्री०) किसी किष्मकी सिलाई।
इसमें पत्तीकी तरह दोनों ओर तिरखे टांके लगते हैं।
पांवलसारगन्धक (हिं० पु०) अति शुद्ध एवं पार-
दर्शक गन्धक। यह बहुत साफ और खानेमें खटा
होता है।

पांवां (हिं० पु०) महीके बर्तन पकानेका गद्दा।

पांमिक (सं० वि०) अंगसम्बन्धी, अंगविषयक,
हिस्सेका।

पांशकजल (सं० स्त्री०) किरण दिखाया हुआ जल।
जलको एक तांके पात्रमें रख दिनभर धूप और
रातभर चांदनी देखाते हैं। वैद्यकशास्त्र इस जलकी
बड़ी प्रशंसा करता है।

पांश (हिं० स्त्री०) १ पीड़ा, दर्द। २ पाय, सुतली,
डोरो। ३ रेशा।

पांशी (हिं० स्त्री०) भाजी, बेना, दृष्टिमित्रीके यज्ञ
बंटनेवाली मिठाई।

पांशू (हिं० पु०) अशु, अशक, पांशुका पानी।
यह पांशुमें नाककी ओर जानेवाली नलीके पास
जमा रहता है। इससे पांशुकी भिक्षी तर रहती है
और डेलेपर तिनका तथा गर्द नहीं बैठती। घूककी
तरह यह भी पैदा होता और शारीरिक वा मानसिक
पाघातसे बढ़ता है। पीड़ा, गोक, क्रोध और हर्षमें
पांशू आ जाता है। अधिक होनेसे यह गालोंपर
बढ़ता और कभी-कभी भीतरी नलीकी राह नाकमें-
दाखिल होता है।

पांशुदाल (हिं० पु०) पयारोग विशेष, चौपायीकी
एक बीमारी। इसमें आनवरकी पांशुसे पानी निकला
करता है।

पांशुड़ (हिं० पु०) भाण्ड, बरतन।

पांहां (हिं० अर्थ०) नहीं।

पाइ (हिं०) आइ देखो।

पाइना (हिं०) पारना देखो।

चाइन्दा (फा० वि०) १ भविष्यत्, सुगतकविता, आगे
आनेवाला। (पु०) २ भविष्यत्काल, इस्तिक्वाल
आनिवाला जमाना। (क्रि० वि०) ३ भविष्यत्में,
आकिवतपर, आगे।

चाइस, चाइस, चाइस देवो।

चाई (हिं० स्त्री०) १ खट्ट, मोत। २ चायुम्,
जिन्दगी।

चाइंन (फा० पु०) १ व्यवस्था, सुख, दस्तूर, चलन।
२ शासन, शरिगत।

चाइंन-र-पकवरो—ऐतिहासिक चरित्रविशेष। यह पुस्तक
फ्रांसीसी भाषाके प्रसिद्ध पकवरनामिका प्रथम खण्ड है।
महाकवि शेख् अबुल फज्जान इसके रचयिता हैं। इसमें
सम्ब्राट् पकवरके राजत्वकालका भ्रमस्त विवरण लिखा
है। यह पाँच अध्यायमें सम्पूर्ण हुआ है। प्रथम अध्यायमें
पकवरके परिवार और समाजका विवरण तथा स्वयं
सम्ब्राट्का हस्तान्त प्रकृति अनेक विषय लिखे हैं।
द्वितीय अध्यायमें सम्ब्राट्के कर्मचारियोंका विवरण
है। तृतीय अध्यायमें शासन एवं विचार विभागका
हस्तान्त तथा भूमिकी भाव और राजस निरूपणका
विषय दिया गया है। चतुर्थ अध्यायमें सामाजिक
नियम, विद्या आलोचनाके उत्कर्ष साधन, विदेशी
राजाओंके आक्रमण, परिस्राजक और सुसलमान-
फकीर प्रकृतिकी बातें हैं। पंचम अध्यायमें मौतिवाक्य
रचित हुए हैं।

चाईना (फा० पु०) आदर्श, शीशा, आरसी।

चाईनादार (फा० पु०) नापित, इज्जाम, शीशा दिखाने-
वाला नौकर।

चाईनाबन्दी (फा० स्त्री०) १ शीशिका साज़। २ फर्श-
बन्दी, पत्थर या ईंटकी लुड़ाई। ३ टडीकी तैयारी।
इस पर रोगनी करते हैं।

चाईनासाज़ (फा० पु०) दर्पण या शीशा बनाने-
वाला।

चाईनासाज़ी (फा० स्त्री०) १ चाईनासाज़का काम।
२ कांच पर कलई चढ़ाना।

चाईनी (फा० वि०) राजनियमके अनुकूल, जाननी,
कायदेसे चलनेवाला।

पाउ (हिं०) पाउध् देवो।

पाउज (हिं० पु०) वाद्यविशेष, तागा। यह
गलेमें डालकर दो लकड़ियोंसे बजाया जाता है।

पाउक, पाउज देवो।

पाउट (फा० वि०) वहिभूत, खिलसे हारकर निकला
हुआ। (Out) क्रिकेटके खेलमें यह शब्द प्रयुक्त होता
है। गेंद विकेटमें लगने या बल्लेसे मारा हुआ गेंद
हाथमें रुक जानेसे खेलाड़ी पाउट होता है।

आउटराम—(Sir James Outram, Lieutenant-
General G. C. B.) एक प्रसिद्ध अंगरेज वीर। ये
भारतवर्षके एक प्रधान सेनापति रहे। सन् १८०३ ई०को
डर्बियायके अन्तर्गत वटर्लीहानमें इनका जन्म हुआ
था। इनके पिताका नाम वेल्हामिन आउटराम
रहा। पहले इन्होंने अर्द्धांगिक अन्तर्गत उदगी और
पीछे मारिफाल कालिजमें शिक्षा पायी। १८१८
ई०का निस्त्रयैकी सेनापति होकर यह भारतवर्ष
आये थे। उससे बाद १९०० ई०का देस्यो पदातिकके
सेफ्टेनएण्ट और आउट्रामएण्ट हुए। इन्होंने खानदेशके
पञ्चम भौलोकके युद्धयोग्य सिखाया और अन्तमें
भौलोककी सेना ही साथ ले जाकर दौड़ जातिको परास्त
किया था। १८३५ से १८३८ ई० तक ये मही-
कण्ठमें सुन्दरला स्थापन करनेपर व्याप्त रहे। लार्ड
किन्के सदस्य बनकर ये अफगानस्थानपर आक्रमण
करने गये थे। ये गुजरातके पोलिटिकल एजेंट और
सिन्धुदेशके कमिश्नर भी हुए। उसी समय सिन्धु-
देशके अमोर विद्रोही बन बैठे थे। सर चालं नेपि-
यरको सन्धपाके अनुसार सेनापति आउटरामने उन
लोगोंको दमन किया। पीछे ये सितारि और बड़ोदे
राज्यके रिसिडेण्टके पदपर सुशोभित हुये थे। उसी
समय अरब अंगरेजोंराज्यके अन्तर्गत हो गया। लार्ड
डालहउसीने आउटरामको वहाँका रिसिडेण्ट और
कमिश्नर नियुक्त कर दिया था।

बहुत दिनांतक भारतवर्षमें रहनेसे आउटराम
कीमार पड़े और १८५३ ई०को इङ्ग्लैण्ड चले गये।
परन्तु ईरानसे लड़ाई छिड़ जानेपर इन्हें कमिश्नर
बनकर सेनाके साथ ईरान उपसागरमें पहुँचना पड़ा

या। वहाँ कार्य सिद्ध करके यह भारतवर्ष भौट पाये। उसी समय यहाँ सिपाही-विद्रोह उठा था। लार्ड कनिङ्गके परामर्शानुसार ये लफ्फेज लगे। पहले हाथेलक साइबन विद्रोहियोंकी कितना ही दमन कर दिया था, परन्तु फिर बड़ा गड़बड़ मच गया। पाउटराम पालमवागमें ठहर सिपाहियोंसे युद्ध करने लगे। परसंख्य परसंख्य विद्रोही चारो ओर भोलिकी भाति गोले बरसाते थे। पन्तकी इनकी मददपर लार्ड ब्राइड या पहुँचे। उसी समय ये सेना मरिफत गोमतीकी पृथं ओर जा तुमुल संधाम करने लगे। उसमें विद्रोही पराम्द हो कर भागे थे। इसके बाद ये अवधके चीफ कमिश्नर और १८५८ ई०की सेफ्टिनण्ट अनरल मने। पन्तकी भारतवर्षकी प्रधान मन्त्रिमहा (Supreme Council)के यह सदस्य हुए थे। १८६० ई०की यह बीमार होकर इङ्गलैण्ड चले गये। १८६१-६२ ई०का शीतकाल मिग्रमें बीता; फिर फ्रान्समें कुछ दिन रहने बाद १८६३ ई०की ११वीं मार्चकी पेरिस नगरमें इन्होंने प्राण छोड़ा था। इनकी प्रतिमूर्त्ति कलकत्तेके मैदानमें विद्यमान है। नङ्गौ तलवार लिये महावीर पाउटराम घोड़ेकी पीठपरसे पीछे देख रहे हैं। उधर इनके घोड़ेकी लातसे एक तोप चूर चूर हो गयी है।

पाउन्स (चं० Ounce) पंगरेली मानविधिप, किसी किस्मकी तौलका मिकदार। यह दो प्रकारका होता है। एकसे कड़ी वस्तु तौलते और दूसरेसे द्रव पदार्थ नापते हैं। तौलनेका पाउंस सवा दो तोलके बराबर है। बारह पाउन्ससे एक पाउंड समता है। नापनेका पाउंस सोलह ड्रामका है। एक ड्राममें साठ बूंद होती हैं।

पाउसाठ, चार बार्द है।

पाउल, पाउलिया—वैष्णव सम्प्रदाय विधिप। ये कर्ता-भजाकी शाखामाल होते, इसीसे इन्हें सहज कर्ताभजा भी कहते हैं। ये प्रकृति से कर साधन करते हैं। एक एक पाउलके साथ अपने प्रकृतियां रहते, उनमें कोई देशा और कोई कुलवती जाती है। सब जातिके प्रकृति-प्रवृत्त एक साथ बैठकर खानपान

करते हैं, जिसमें कोई जातिविचार नहीं। मनुष्य-मात्रका स्वभाव है—यदि कोई किसीकी स्त्रीके पास जाता, तो मनमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है; परन्तु पाउलोंका मन प्रत्यन्त उदार है। इनमें यदि किसीकी प्रकृतिके निकट दूसरा पुरुष चला लाये, तो मनमें विद्वेष नहीं होता। पाउल दादो मूक नहीं रखते।

पाउलियाचान्द (पीलियाचांद)—एक सम्प्रदाय-प्रवर्तक, इन्होंने ही पहले पहल कर्ताभजाकी सृष्टि की थी। पाउलियाचांदके प्रकृत इतिहास जाननेका कोई उपाय नहीं है। अपने भादमी अपने प्रकाशकी बातें करते हैं। कोई कोई कहते हैं,—एक बार कहींसे एक संन्यासी पाये थे। उनके पैरमें खड़ाऊं, देखमें कफनी और कमरमें कौपीन रहा। खड़ाऊं पहने ही वे एक बड़ेदमलीके पेड़पर चढ़ बैठे करते थे। इच्छा होनेसे कभी नीचे उतर भाते, नहीं तो दिन रात यहीं बैठे रहते। एक दिन किसी गृहस्थका लड़का मर गया। उसकी माता पुत्रशोकसे रोते हुए लड़केकी लाशकी उसी दमलीके पेड़के तलेसे लिये जाती थी। दया करके संन्यासीने मरे लड़केको जिन्दा दिया। उसी समयसे पाउलियाको देवप्रतिपत्तिकाग हो गई।

कोई कोई दूसरी हो बात कहते हैं। उला-पाममें गायद महादेव नामक एक तंबोली रहता था। एक दिन वह अपने भीठमें पान तोड़ने गया। पान तोड़ते तोड़ते उसने भीठमें एक पाउल बर्षके लड़केको देखा। १६१८ गकमें फाल्गुन मासके प्रथम शुकवारकी गायद वह लड़का मिना था। बालक कीन है, किधका लड़का है, नाम क्या है, निवास कहाँ है—यह सब कोई बता न सका। खुद लड़केने भी अपना कोई परिचय न दिया। महादेव उसे अपने घर लाकर लड़केकी तरह पालने लगा और उमका नाम पूर्णचन्द्र रखा। कहते हैं, कि पूर्णचन्द्र बारह वर्षतक उसी तंबोलीके यहाँ रहे थे। उसके बाद वह एक गन्धर्वकके यहाँ जा कर दो वर्ष ठहरा। वहाँसे वह एक जामोन्दारके यहाँ पहुँच कर छोट वषे रहे। उसके बाद पूर्ववर्षामें

जाकर उद वर्ष बिताया। भन्तमें मागा देश घूम फिर कर मसार्ईस वर्षकी छत्रमें बेजरा घाम पड़ुचे थे। वहां सबसे पहले हट्टुघोष उनके शिष्य हुए। उसके बाद घोषपाहके रामशरण पाल भी उनसे उपदेश पा कर कर्त्तामजाका मत प्रचार करने लगे थे। आज भी होलीके दिन बड़ी धूम-धामसे वहां मेला लगता है।

कोई कोई कहते हैं, कि क्रिहत्तरमें मन्वन्तरके समय रामशरण पाल सुलसगरके बाजारमें घायल खरीदने गये थे। वहाँ भाउलियाचांदसे मुलाकात हुई। भाउलियाचांद रामशरणके मकान पर आकर उन्हें उपदेश देने लगे। एक बात थीर भी सुननेमें आती है। रामशरण पाल एक दिन अपना खेत जोत रहे थे। भाउलियाचांद वहां जा पड़ुचे पीछे उनके घर आकर उन्हें धर्मोपदेश देने लगे।

भाउलियाचांद देहपर कफनी डाले रहते, कोपीन पहनते, हिन्दू सुसलमान दोनोंको समान समझते थीर सबके वहां भोजन करते थे। स्त्रेच्छ जातिसे इन्हें छुपा न रही। सुसलमान लोग भी इनसे उपदेश लेते थे। मालूम होता है, सुसलमानोंने ही इनका नाम 'भाउलिया' रखा था। फारसी भाषामें पोलिया शब्दके माने बुत्तुग हैं। प्रवाद है, कि भाउलियाचांद खड़ाक पहनकर गद्दाके ऊपर घूमते-फिरते थे। इन्होंने अनेक कोटियोंकी भच्छा कर थीर मरे हुए पादमियों को भी जिला दिया था। अनुमान होता है, इन्होंने शक्तियोंके कारण सुसलमान इन्हें पोलिया कहते थे।

भाउलियाचांदके कई नाम सुननेमें आते हैं। भाउलेचांद, प्रभु, भाउलिया महाप्रभु, भाउलिया फकीर, भाउले ब्रह्मचारी, कङ्गालीप्रभु, फकीर ठाङ्कर, माई, गोसाईं, इन कई नामोंसे ये जनसमाजमें प्रसिद्ध हैं। कर्त्तामजा लोग कहते हैं, कि श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीचैतन्य जाकर अस्तदान थीर पीछे वही भाउलिया चांदके रूपमें आविर्भूत हुए थे।

सबसे पहले बाईस पादमी भाउलियाचांदके शिष्य माने रहे। उनके नाम ये हैं,—१. हट्टुघोष, २. बचूघोष,

३. रामशरण पाल, ४. नयन, ५. लक्ष्मीकान्त, ६. नित्या-नन्द दास, ७. खिलाराम उदासीन, ८. लक्ष्यदास, ९. हरिघोष, १०. कन्हारि घोष, ११. गड्डर, १२. निताड घोष, १३. आनन्दराम, १४. मनोहर दास, १५. विशु-दास, १६. किन्दु, १७. गोविन्द, १८. श्यामकांसारी, १९. भीमराय राजपूत, २०. पांठू रुद्रदास, २१. निधि-राम घाय, २२. शिशुराम।

इस तरहकी गल्प सुननेमें आता है, कि १६०१ शककी बायाली घाममें भाउलियाचांदकी मृत्यु हुई। प्रभुके परलोक गमन करनेपर श्यामबेरागो, हरिघोष, हट्टुघोष, कन्हारि घोष, रामशरण पाल, भीमराय राजपूत, सच्चराम घोष थीर बचूघोष—इन आठ शिष्योंने इनकी कफनीकी बायाली घाममें समाधिस्थ किया था। पीछे चाकदहसे तीन काष्ठ पुष्ट परारि नामक घाममें इनका मृतदेह गाड़ा गया।

अब बङ्गालके अनेक भले पादमियोंने भाउलिया-चांदका मत ग्रहण किया है। उनमें सुवर्षषणिक ही अधिक हैं। जितनी ही वेष्टायें भी इन्ही मतानुसार चलता हैं। भाउलियाचांदके सब शिष्योंका मन एक है, सभी मन मन प्राण प्राण आपसमें मिलते रहते, इसीसे इन मतावलम्बियोंकी 'एकमन' भी कहते हैं। फिर ये लोग भाउलियाचांदकी 'जय कर्त्ता' कह सम्बोधन करते, इसीसे इस सम्प्रदायकी पादमों 'कर्त्तामजा' नामसे भी विख्यात हैं। कर्त्तामजा देखो।

भाउलिया सम्प्रदायके गुरुका नाम 'महाशय' थीर शिष्यका 'वरातो' है। दीक्षा करनेके समय महाशय शिष्यको पहले यह उपदेश देते हैं,—“गुरु सत्य है”। गुरु शिष्यसे पूछते हैं,—“क्या तू यह धर्म ग्रहण कर सकेगा ?” शिष्य उत्तर देता है,—“सकूंगा।” उसके बाद गुरु कहते हैं,—“तो भठ न बोलना थीर चोरी, परस्त्रीगमन तथा अपनी स्त्रीका सुद्ध भी अधिक न करना।” शिष्य अङ्गोकार करता है,—“न कहूंगा।” भन्तमें गुरु कहते हैं,—“बोल, तुम सत्य थीर तुम्हारा वाक्य सत्य।” तब शिष्य यह कहकर मन्त्र ग्रहण करता है,—“तुम सत्य थीर तुम्हारा वाक्य सत्य।” मन्त्र देनेके बाद गुरु यह बात

कह देते हैं,—बिना भेरी पात्राके यह बात किमीमें न बताना।

क्रमसे शिष्यके मनमें प्रगाढ़ भक्ति उपजनेपर गुरु इस तरह उपदेश करते हैं,—“कर्त्ता आउले महाप्रभु। मैं तुम्हारे प्रतापमें चलता फिरता हूँ, तिलार्हे भी तुमसे भयग नहीं, मैं तुम्हारे सद्गुरु हूँ, दुहाई महाप्रभु।”

आउलियाचान्द महाप्रभु दश पापकर्म निषेध कर गये हैं। वे दशों पापकर्म ये हैं,—

तीन शारीरिक पापकर्म—परस्त्रीगमन, परद्रव्य अपहरण एवं जीवहत्या।

तीन मानसिक पाप—परस्त्रीगमनकी इच्छा, परद्रव्य ग्रहणकी इच्छा एवं दूसरेके प्राणनाश करनेकी इच्छा।

चार वाचनिक पाप—भूठ बोलना, कटु वाक्य कहना, अनर्थक बात बड़ाना और प्रलाप उठाना।

दशनेमें आता है, कि पहले इस सम्प्रदायमें कुछ भी व्यभिचार दोष न था। इन लोगोंका एक प्रचलित वचन है,—“दौरत हिलही मर्द खोजा, तब होवे कर्त्ताभजा।” इस नियमके अनुसार सभी पुरुष स्त्रियोंकी बहन समझते और बहन ही कहकर पुकारते थे। इनमें जातिभेद नहीं, सभी एक साथ भोजन और शयन करते रहे। परन्तु इसी तरह स्त्रीपुरुषके एक साथ वास करते करते धब व्यभिचार दोष इस सम्प्रदायके साधनका एक अङ्ग हो गया है।

इस सम्प्रदायवालोंके मुंहसे सुननेमें आता, कि एकमात्र ईश्वरकी उपासना करना ही इनके साधनका बीजमन्त्र है। किन्तु आउलियाचान्द खुद मनुष्य थे, इसीमें ये लोग कहते हैं, कि मनुष्य ही सत्य और मनुष्य गुरु ही परम पदार्थ है। चैतन्य सम्प्रदायके ऐश्वर्य जिस तरह गद्गद होकर अत्युपात करते और पुलकित होते, आउलिया सम्प्रदायके साधकोंमें भी ठीक वैसे ही नियम है। रातकी गुरुशिष्यमें प्रेममालापन और गूढ़ साधनके समय अत्युपात, रोमाञ्च और मोह बढ़ जाता है।

आरम (हिं० पु०) आशुधान्य, किछी क्षिप्यका धान, पोसहन। इसे मयी-जून मास होते और अगस्त

वितम्बरमें काटते हैं। वैद्यशास्त्रके मतसे यह मधुर एवं पाकमें गुरु होता और अम्ल तथा पित्तको बढ़ाता है।

आक (हिं० पु०) अर्क, मन्दार, अकपन। अर्कवृक्ष (*Calotropis gigantea*. अंगरेजी *Mudar*)। यह अर्क शब्दका अपभ्रंश है। बंगालामें आकान्द। आकका पेड़ दो तरफका होता है,—सफेद और लाल। नदीके किनारे रिसोसो जमीनमें यह पेड़ बहुत उष्यता है। साधारण आकके ये कई पर्याय देखे जाते हैं,—चीरदल, पुच्छी, प्रताप, चीरकाण्डक, विचीर, चीरी, खजुंघ, शीतपुष्पक, जगन, चीरपर्षी, विकीरण, सदापुष्प, स्यामोतक, तुलुकल, शुकफल, वसुक, आस्कोत, गणरूप, मन्दार, अकपर्ण।

सफेद आकके ये कई पर्याय हैं,—अलर्क, राजार्क, प्रतापस, गणरूपी। लाल आकके पर्याय हैं,—विश्वीर, सदापुष्पी, रूपिका, आदित्यपुष्पिका, दिव्यपुष्पिका, अर्क। आकके सूषिको बुद्धिया कहते हैं।

आकका पेड़ दो हाथसे लेकर चार पांच हाथ तक ऊँचा होता है। इसका फूल सफेद और लाल रहता है। सेमरकी तरह इसमें भी फल लगता है। फलसे पक जानेपर अच्छी रुई निकलती है। इसका फल, पत्ता और फूल तोड़नेपर डालीसे दूध निकलता है। आकके पेड़में प्रायः चारही महीने फूल उतरता है। डालकी डालकी नीचे रंगम जैसा धिकना सफेद सूत रहता है।

वैद्यशास्त्रके मतसे यह कटु, उष्ण और आम्लेय है। इससे वात, गाय, ग्रन्थ, अग्नि, कुष्ठ, क्रिमि प्रस्थिति गट हो जाता है। युरोपीयचिकित्सकोंने परीक्षा करके देखा, कि इसका मूल, बकला और दूध वमनकर, धर्मकर, धातुपरिवर्तक और विरिचक है। इसके मूलकी डालका चूर्ण १५।२० ग्रैन भेदन करनेसे रक्त आमामय रोग नष्ट होता है। इस रोगमें यह ठीक इपिकाकूयामाकी तरह काम करता है। अधिक मात्रा भेदन करनेसे वमन होता है। २ ग्राम शुष्क मूलकी डालकी आधसेर गर्म जलमें मिंगा बाणी

हटाककी मात्रा सेवन करनेसे पुराना उपदंश और कुष्ठरोग अच्छा हो जाता है। इससे बंडीके कीड़े, खांसी, शोथ और सदरी रोग दूर होते हैं। इससे मूलको ज्वान, डालकी ज्वाल, पक्षा, दूध और फूलको समभाग लेकर अच्छी तरह पीसना। फिर छोटे सटर जैसे मोल्लो बनाकर सुखा लेना। प्रतिदिन सवेरे एक गोली खानेसे अनैश प्रकारके चर्मरोग नष्ट होते हैं। इसके फूलका दूध २१३ रसी सेवन करनेसे भूख बढ़ती और हफनेसे खांसी अच्छी हो जाती है। कष्टमें आकका दूध लगानेसे यह सूख जाता है। कण्ठके राखमें आकका दूध गन्नाकर नष्ट लेनेसे छीक जाती है, इससे सर्दिका बिरका ददं चाराम हटा जाता है। कहते हैं, कि श्वेत आकन्दके मूलको मिर्चके साथ पीसकर सेवन करानेसे नांपका विष उतर जाता है।

आकके दूधमें गाटावार्ध तय्यार हटा सकता है। तकिचमें इसकी रुई भी जाती है। इसके सूतको कातकर कपड़ा बुननेसे ठीक फलासेन कैसा कपड़ा तय्यार होता है। इसकी रुईसे अच्छा कागज भी बनता है। आकको ज्वानका सूत बहुत भारसह होता है। कितने ही बादमें इससे धनुषका गुण बनाने हैं। आकका तथा और और सूत कितना भारसह सकते हैं, सोयार्द इत्थ मोटे तीन तारकी रस्सोमें उसकी परोसा की गई हो—

आक	...	प्रायः	सेर	२०६
सन	...	"	"	२०५
सुगरा	...	"	"	१०१
कपास	...	"	"	१०२
सुर्वाभूल	...	"	"	१५८
सिक्तापाट	...	"	"	१४५
मास्तिष्ककी कास	...	"	"	११२

आकड़ा, आ० ६७।

आकम्पन (सं० स्त्री०) आकप्राधा, खुदबोनी, डोंग।
आकल्प (सं० स्त्री०) न कतः खच्छनाकारो, नव-
तत्। तस्य भाव अल्प। अल्पच्छताकारित्व, गन्दगीका
पेदा करना।

आकन (सं० पुं०) आ-कन्-भच्। अतिविशेष,
कोई सुनि। (हिं० पुं०) २ जोते खेतसे निकाला
घास-फूस। ३ जोते खेतसे घासफूसका हटाना।

आकनादी—(Cissampelos Parreira) पाठानता।
इसके ये कई संस्कृत पर्याय देखे जाते हैं,—
अम्बठा, अम्बठिका, प्राचीना, पापचेलिका, युधिका,
स्यापनी, श्रेयशी, विदकारिका, एकाछोला, कुचेली,
दीपनी, बनतिष्ठिका, तिष्ठपुष्पा, हृहतिष्ठा, शिथिरा,
ठकी, मालती, घरा, देवी, वृत्तपर्णी।

आकनादी और निम्ब्या दोनों एकही सता हैं,
कि भिन्न भिन्न, इस विषयमें उद्भिद्तत्त्वज्ञ बहुत
विरोध करते हैं।

यह तिष्ठ, गुद और उष्ण है। इससे वात, पित्त,
ज्वर, दाह, पतिसार, शून प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।
वेधलोग पुराने ज्वरमें पाठामूल व्यवहार करते हैं।
साँप काटनेपर इसके मूलको मिर्चके साथ पीसकर
सेवन करने पर अक्षुमपर लगानेसे उपकार होता है।
आकवत (फा० स्त्री०) परलोक, यमसदन, मरनेके
बाद जानेको जगह।

आकवत-अन्देश (फा० वि०) १ परलोकका विचार
रखनेवाला, धार्मिक, जो मरनेके डरसे बुग काम
करता न हो। २ दूरदर्शी, धार्मिक स्थान रखनेवाला।
आकवत-अन्देशी (फा० स्त्री०) १ परलोकका विचार,
मरनेके बाद जानेवाली जगहका ख्याल। २ धार्मि-
कता, सवाधका काम। ३ दूरदर्शिता, दूरान्देशी।

आकवती लङ्कार (सं० पुं०) चगले मखलका रस्सी
या रिङ्गीनके पास बौचके टूटकरसे रहनेवाला लङ्कार।
यह सङ्घटके समय पड़ता है।

आकवाक (हिं० पुं०) अया वाक्य, विह्वला वात,
बकभक्त।

आकम्प (सं० पुं०) आ ईपदर्थे कपि चलने घञ्।
अल्प कम्पन, कपकपो।

आकम्पन (सं० स्त्री०) आ कम्पते आ ईपदर्थे कपि
चलने-गुच्। अवनववावार्धकमेकादवृत्त्या १-२-३-४-५-६-७-८-९-१०-११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२०-२१-२२-२३-२४-२५-२६-२७-२८-२९-३०-३१-३२-३३-३४-३५-३६-३७-३८-३९-४०-४१-४२-४३-४४-४५-४६-४७-४८-४९-५०-५१-५२-५३-५४-५५-५६-५७-५८-५९-६०-६१-६२-६३-६४-६५-६६-६७-६८-६९-७०-७१-७२-७३-७४-७५-७६-७७-७८-७९-८०-८१-८२-८३-८४-८५-८६-८७-८८-८९-९०-९१-९२-९३-९४-९५-९६-९७-९८-९९-१००-१०१-१०२-१०३-१०४-१०५-१०६-१०७-१०८-१०९-११०-१११-११२-११३-११४-११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१-१२२-१२३-१२४-१२५-१२६-१२७-१२८-१२९-१३०-१३१-१३२-१३३-१३४-१३५-१३६-१३७-१३८-१३९-१४०-१४१-१४२-१४३-१४४-१४५-१४६-१४७-१४८-१४९-१५०-१५१-१५२-१५३-१५४-१५५-१५६-१५७-१५८-१५९-१६०-१६१-१६२-१६३-१६४-१६५-१६६-१६७-१६८-१६९-१७०-१७१-१७२-१७३-१७४-१७५-१७६-१७७-१७८-१७९-१८०-१८१-१८२-१८३-१८४-१८५-१८६-१८७-१८८-१८९-१९०-१९१-१९२-१९३-१९४-१९५-१९६-१९७-१९८-१९९-२००-२०१-२०२-२०३-२०४-२०५-२०६-२०७-२०८-२०९-२१०-२११-२१२-२१३-२१४-२१५-२१६-२१७-२१८-२१९-२२०-२२१-२२२-२२३-२२४-२२५-२२६-२२७-२२८-२२९-२३०-२३१-२३२-२३३-२३४-२३५-२३६-२३७-२३८-२३९-२४०-२४१-२४२-२४३-२४४-२४५-२४६-२४७-२४८-२४९-२५०-२५१-२५२-२५३-२५४-२५५-२५६-२५७-२५८-२५९-२६०-२६१-२६२-२६३-२६४-२६५-२६६-२६७-२६८-२६९-२७०-२७१-२७२-२७३-२७४-२७५-२७६-२७७-२७८-२७९-२८०-२८१-२८२-२८३-२८४-२८५-२८६-२८७-२८८-२८९-२९०-२९१-२९२-२९३-२९४-२९५-२९६-२९७-२९८-२९९-३००-३०१-३०२-३०३-३०४-३०५-३०६-३०७-३०८-३०९-३१०-३११-३१२-३१३-३१४-३१५-३१६-३१७-३१८-३१९-३२०-३२१-३२२-३२३-३२४-३२५-३२६-३२७-३२८-३२९-३३०-३३१-३३२-३३३-३३४-३३५-३३६-३३७-३३८-३३९-३४०-३४१-३४२-३४३-३४४-३४५-३४६-३४७-३४८-३४९-३५०-३५१-३५२-३५३-३५४-३५५-३५६-३५७-३५८-३५९-३६०-३६१-३६२-३६३-३६४-३६५-३६६-३६७-३६८-३६९-३७०-३७१-३७२-३७३-३७४-३७५-३७६-३७७-३७८-३७९-३८०-३८१-३८२-३८३-३८४-३८५-३८६-३८७-३८८-३८९-३९०-३९१-३९२-३९३-३९४-३९५-३९६-३९७-३९८-३९९-४००-४०१-४०२-४०३-४०४-४०५-४०६-४०७-४०८-४०९-४१०-४११-४१२-४१३-४१४-४१५-४१६-४१७-४१८-४१९-४२०-४२१-४२२-४२३-४२४-४२५-४२६-४२७-४२८-४२९-४३०-४३१-४३२-४३३-४३४-४३५-४३६-४३७-४३८-४३९-४४०-४४१-४४२-४४३-४४४-४४५-४४६-४४७-४४८-४४९-४५०-४५१-४५२-४५३-४५४-४५५-४५६-४५७-४५८-४५९-४६०-४६१-४६२-४६३-४६४-४६५-४६६-४६७-४६८-४६९-४७०-४७१-४७२-४७३-४७४-४७५-४७६-४७७-४७८-४७९-४८०-४८१-४८२-४८३-४८४-४८५-४८६-४८७-४८८-४८९-४९०-४९१-४९२-४९३-४९४-४९५-४९६-४९७-४९८-४९९-५००-५०१-५०२-५०३-५०४-५०५-५०६-५०७-५०८-५०९-५१०-५११-५१२-५१३-५१४-५१५-५१६-५१७-५१८-५१९-५२०-५२१-५२२-५२३-५२४-५२५-५२६-५२७-५२८-५२९-५३०-५३१-५३२-५३३-५३४-५३५-५३६-५३७-५३८-५३९-५४०-५४१-५४२-५४३-५४४-५४५-५४६-५४७-५४८-५४९-५५०-५५१-५५२-५५३-५५४-५५५-५५६-५५७-५५८-५५९-५६०-५६१-५६२-५६३-५६४-५६५-५६६-५६७-५६८-५६९-५७०-५७१-५७२-५७३-५७४-५७५-५७६-५७७-५७८-५७९-५८०-५८१-५८२-५८३-५८४-५८५-५८६-५८७-५८८-५८९-५९०-५९१-५९२-५९३-५९४-५९५-५९६-५९७-५९८-५९९-६००-६०१-६०२-६०३-६०४-६०५-६०६-६०७-६०८-६०९-६१०-६११-६१२-६१३-६१४-६१५-६१६-६१७-६१८-६१९-६२०-६२१-६२२-६२३-६२४-६२५-६२६-६२७-६२८-६२९-६३०-६३१-६३२-६३३-६३४-६३५-६३६-६३७-६३८-६३९-६४०-६४१-६४२-६४३-६४४-६४५-६४६-६४७-६४८-६४९-६५०-६५१-६५२-६५३-६५४-६५५-६५६-६५७-६५८-६५९-६६०-६६१-६६२-६६३-६६४-६६५-६६६-६६७-६६८-६६९-६७०-६७१-६७२-६७३-६७४-६७५-६७६-६७७-६७८-६७९-६८०-६८१-६८२-६८३-६८४-६८५-६८६-६८७-६८८-६८९-६९०-६९१-६९२-६९३-६९४-६९५-६९६-६९७-६९८-६९९-७००-७०१-७०२-७०३-७०४-७०५-७०६-७०७-७०८-७०९-७१०-७११-७१२-७१३-७१४-७१५-७१६-७१७-७१८-७१९-७२०-७२१-७२२-७२३-७२४-७२५-७२६-७२७-७२८-७२९-७३०-७३१-७३२-७३३-७३४-७३५-७३६-७३७-७३८-७३९-७४०-७४१-७४२-७४३-७४४-७४५-७४६-७४७-७४८-७४९-७५०-७५१-७५२-७५३-७५४-७५५-७५६-७५७-७५८-७५९-७६०-७६१-७६२-७६३-७६४-७६५-७६६-७६७-७६८-७६९-७७०-७७१-७७२-७७३-७७४-७७५-७७६-७७७-७७८-७७९-७८०-७८१-७८२-७८३-७८४-७८५-७८६-७८७-७८८-७८९-७९०-७९१-७९२-७९३-७९४-७९५-७९६-७९७-७९८-७९९-८००-८०१-८०२-८०३-८०४-८०५-८०६-८०७-८०८-८०९-८१०-८११-८१२-८१३-८१४-८१५-८१६-८१७-८१८-८१९-८२०-८२१-८२२-८२३-८२४-८२५-८२६-८२७-८२८-८२९-८३०-८३१-८३२-८३३-८३४-८३५-८३६-८३७-८३८-८३९-८४०-८४१-८४२-८४३-८४४-८४५-८४६-८४७-८४८-८४९-८५०-८५१-८५२-८५३-८५४-८५५-८५६-८५७-८५८-८५९-८६०-८६१-८६२-८६३-८६४-८६५-८६६-८६७-८६८-८६९-८७०-८७१-८७२-८७३-८७४-८७५-८७६-८७७-८७८-८७९-८८०-८८१-८८२-८८३-८८४-८८५-८८६-८८७-८८८-८८९-८९०-८९१-८९२-८९३-८९४-८९५-८९६-८९७-८९८-८९९-९००-९०१-९०२-९०३-९०४-९०५-९०६-९०७-९०८-९०९-९१०-९११-९१२-९१३-९१४-९१५-९१६-९१७-९१८-९१९-९२०-९२१-९२२-९२३-९२४-९२५-९२६-९२७-९२८-९२९-९३०-९३१-९३२-९३३-९३४-९३५-९३६-९३७-९३८-९३९-९४०-९४१-९४२-९४३-९४४-९४५-९४६-९४७-९४८-९४९-९५०-९५१-९५२-९५३-९५४-९५५-९५६-९५७-९५८-९५९-९६०-९६१-९६२-९६३-९६४-९६५-९६६-९६७-९६८-९६९-९७०-९७१-९७२-९७३-९७४-९७५-९७६-९७७-९७८-९७९-९८०-९८१-९८२-९८३-९८४-९८५-९८६-९८७-९८८-९८९-९९०-९९१-९९२-९९३-९९४-९९५-९९६-९९७-९९८-९९९-१०००-१००१-१००२-१००३-१००४-१००५-१००६-१००७-१००८-१००९-१०१०-१०११-१०१२-१०१३-१०१४-१०१५-१०१६-१०१७-१०१८-१०१९-१०२०-१०२१-१०२२-१०२३-१०२४-१०२५-१०२६-१०२७-१०२८-१०२९-१०३०-१०३१-१०३२-१०३३-१०३४-१०३५-१०३६-१०३७-१०३८-१०३९-१०४०-१०४१-१०४२-१०४३-१०४४-१०४५-१०४६-१०४७-१०४८-१०४९-१०५०-१०५१-१०५२-१०५३-१०५४-१०५५-१०५६-१०५७-१०५८-१०५९-१०६०-१०६१-१०६२-१०६३-१०६४-१०६५-१०६६-१०६७-१०६८-१०६९-१०७०-१०७१-१०७२-१०७३-१०७४-१०७५-१०७६-१०७७-१०७८-१०७९-१०८०-१०८१-१०८२-१०८३-१०८४-१०८५-१०८६-१०८७-१०८८-१०८९-१०९०-१०९१-१०९२-१०९३-१०९४-१०९५-१०९६-१०९७-१०९८-१०९९-११००-११०१-११०२-११०३-११०४-११०५-११०६-११०७-११०८-११०९-१११०-११११-१११२-१११३-१११४-१११५-१११६-१११७-१११८-१११९-११२०-११२१-११२२-११२३-११२४-११२५-११२६-११२७-११२८-११२९-११३०-११३१-११३२-११३३-११३४-११३५-११३६-११३७-११३८-११३९-११४०-११४१-११४२-११४३-११४४-११४५-११४६-११४७-११४८-११४९-११५०-११५१-११५२-११५३-११५४-११५५-११५६-११५७-११५८-११५९-११६०-११६१-११६२-११६३-११६४-११६५-११६६-११६७-११६८-११६९-११७०-११७१-११७२-११७३-११७४-११७५-११७६-११७७-११७८-११७९-११८०-११८१-११८२-११८३-११८४-११८५-११८६-११८७-११८८-११८९-११९०-११९१-११९२-११९३-११९४-११९५-११९६-११९७-११९८-११९९-१२००-१२०१-१२०२-१२०३-१२०४-१२०५-१२०६-१२०७-१२०८-१२०९-१२१०-१२११-१२१२-१२१३-१२१४-१२१५-१२१६-१२१७-१२१८-१२१९-१२२०-१२२१-१२२२-१२२३-१२२४-१२२५-१२२६-१२२७-१२२८-१२२९-१२३०-१२३१-१२३२-१२३३-१२३४-१२३५-१२३६-१२३७-१२३८-१२३९-१२४०-१२४१-१२४२-१२४३-१२४४-१२४५-१२४६-१२४७-१२४८-१२४९-१२५०-१२५१-१२५२-१२५३-१२५४-१२५५-१२५६-१२५७-१२५८-१२५९-१२६०-१२६१-१२६२-१२६३-१२६४-१२६५-१२६६-१२६७-१२६८-१२६९-१२७०-१२७१-१२७२-१२७३-१२७४-१२७५-१२७६-१२७७-१२७८-१२७९-१२८०-१२८१-१२८२-१२८३-१२८४-१२८५-१२८६-१२८७-१२८८-१२८९-१२९०-१२९१-१२९२-१२९३-१२९४-१२९५-१२९६-१२९७-१२९८-१२९९-१३००-१३०१-१३०२-१३०३-१३०४-१३०५-१३०६-१३०७-१३०८-१३०९-१३१०-१३११-१३१२-१३१३-१३१४-१३१५-१३१६-१३१७-१३१८-१३१९-१३२०-१३२१-१३२२-१३२३-१३२४-१३२५-१३२६-१३२७-१३२८-१३२९-१३३०-१३३१-१३३२-१३३३-१३३४-१३३५-१३३६-१३३७-१३३८-१३३९-१३४०-१३४१-१३४२-१३४३-१३४४-१३४५-१३४६-१३४७-१३४८-१३४९-१३५०-१३५१-१३५२-१३५३-१३५४-१३५५-१३५६-१३५७-१३५८-१३५९-१३६०-१३६१-१३६२-१३६३-१३६४-१३६५-१३६६-१३६७-१३६८-

भावे स्युट । १ घोड़ा कपाना । (वि०) ४ घोड़ा कपानेयाना ।

प्राकर्मित (सं० वि०) प्राकवि कर्त्तरि क्त । १ इत्यत् कर्मित, घोड़ा कपानुषा । (स्त्री०) भावे क्त ।

२ इत्यत् कम्पन, घोड़ा वांजना । विच् कर्त्तरि क्त । ३ इत्यत् चानित, जो घोड़ाही हिलाया गया हो ।

प्राशम्भ (सं० वि०) प्राकवि-र । कंन कवि रणादि रः । वा १११११ । इत्यत् कम्पनशील, घोड़ा कपानेयाना ।

प्राकर (सं० पु०) प्राकुर्वन्ति सम्भूयनिष्पादयति व्यवहारं यत्र, प्रा-क-प्राधारे घ । १ समूह, टेर । प्राकीर्त्येने धातयोऽत्र, प्रा-क-प्राधारे घप् । २ धातु एवं रत्नादिका उत्पत्तिस्थान, प्राणि । यान्देशोः । ३ भाण्डार, गुजाना । ४ वि.सी द्रव्यके रङ्गनेका स्थान मात्र । जैसे, पद्माकर समोवर, गुणाकर व्यक्ति, रत्नाकर समुद्र । ५ अर्थान्तिके निकटयत्तीं प्राचीन जनपद । ६ महाभाष्य । ७ तलवार चलानेका एकमेद । (वि०)

८ गुणित, गुण । जैसे पांच प्राकर, दश प्राकर । ९ दक्ष, कुमन, व्युत्पन्न, चतुर, होमियार । १० श्रेष्ठ, बड़िया । प्राकरकटा, (Pyrethrum indicum) एकजड़ी

विशेष । गुनघोनी एवं प्राकरवड़े नामसे बाजारमें प्रायः एकही वस्तु विक्री होती है । यह कश्मीर और पार्थकमें उत्पन्न होता है । इसका सून् कुछ कड़वा होता एवं मुँहमें रखनेसे कामको निवारण करता है । इससे प्रतिरिक्त यह मस्तरुपेदना (गिरके दर्द) और शूनरोग, वायुगुल्म, सांघिपातिक

ः स्वप्नं भो व्यपद्यत होता है । प्राकरकरहा, प्राकरवड़ा शब्दोः । प्राकरखना, प्राकरना शब्दोः । प्राकाज (सं० स्त्री०) । रत्न, स्थानिसे निकलनेयाना जवाहर । प्राकरण, प्राकारण शब्दोः । प्राकरिक (सं० वि०) प्राकरे नियुक्तः उच् । प्राण खोदनेयाना, रत्नादिके उत्पत्तिस्थानपर राजनियुक्त कर्मचारी । प्राकरिन् (सं० वि०) प्राकरः उत्पत्तिस्थानमस्वस्य, प्राकर प्रायस्ये इति । प्रमस्त प्राकरज्ञान, जो बड़ी स्थानिसे निकला हो ।

प्राकरोट, प्राखरोट -- (Aleurites moluccana) । यह संस्कृत प्राषोटी शब्दका अपभ्रंश है । एक प्रकारके फलका पेड़ ।— यह पञ्चाव, पाषाण प्रादि स्थानोंमें पहाड़ पर जन्मता है । फल देखनेमें बड़ेहा जैसा होता है । ऊपर गिरा रहता और इसका हिलका यादाम जैसा कड़ा रहता है । भीतरका मूटा तेनाह और खानिमें प्रायः यादामकी तरह सुगता है । भारतवर्षके दक्षिण और लद्दामें इसका तेल निकाला जाता है । उसका नाम 'केकुना तेल' है । तेल निकाल लेनेके बाद खली गाय बेलको खिना दी जाती है । पांसेके लिये बद्ध चेतमें भी डाली जाती है । अपटेशोः । प्राकर्ण (सं० अश्व०) प्राकर्ण कर्णपर्यन्तः । रश्मिर्वाभिरुच्योः । वा १११११ । इति शब्दश्री० समाप्त । कर्णपर्यन्त, कानतक । जैसे प्राकर्णसन्धान अर्थात् कानतक खींचके तीर चलाना । प्राकर्णन (सं० स्त्री०) प्राकर्ण-स्युट् । अश्व, सुनायी । प्राकर्णित (सं० वि०) सुनाइया, जो कानमें पड़ गया हो । प्राकर्ण्य (सं० अश्व०) अश्व करके, सुनके । प्राकर्ष (सं० पु०) प्राकृष्यते घनेन, प्रा ह्यप करषि-घञ् । १ पागक, पासेका खिल । २ विमान, शीघ्र । ३ इन्द्रिय । ४ धनुर्धारीको विद्याका अभ्यास, तीर मारनेका मगक ।— भावे घञ् । ५ प्राकर्षण, विभाव, कशिय, एक जगहकी शीघ्रकी जोरसे दूसरी जगह ले जाना । प्राधारे घञ् । ६ कष्टिप्रसार, कसीटी । वृक्षस्य फल पत्रादि प्राकृष्यते घनेन, करषि-घञ् । ७ अद्भुताकार, अंगुली, फल-फल तोड़नेकी मन्की । प्राकर्षः अत्र प्राकर्षः । वा १११११ इति वि० को० । प्राकर्षति कर्त्तरि घच् । ८ प्राकर्षणकर्ता, खींचनेयाना । प्राकर्षण चरति उल् । (वि०) प्राकर्षिक, प्राकर्षणकारी । (स्त्री०) प्राकर्षिकी, प्राकर्षणकारिकी स्त्री । 'प्राकर्षः प्राकृष्यते कर्त्तरि घञ् इति घञ् प्राकृष्यते कर्त्तरि घञ् इति' (इति) प्राकर्षक (सं० पु०) प्राकर्षति सञ्ज्ञकत् सोऽ, प्रा ह्यप स्युत् । १ शुभक । (वि०) प्राकर्षितः अर्

‘शं शश(०) इति कन् । ३’ शाकपेयकर्ता, खींचनेवाला ।
 २ शाकपेयकृत्यन, जो पच्छोतरह खींचता हो ।
 शाकपेय (सं० वि०) शाकपेयस्य । १ किसी
 स्थानसे चलनी पल्लवके दूसरे स्थानपर खींच ले
 जाना । विंचाव । शाकपेयते पनेन, करणे स्युट् ।
 २ शाकपेयसाधन, तन्त्रगाद्योक्त ३ कर्मके प्रत्युत्पत्त
 प्रयोग विधि । इन प्रयोग द्वारा जो प्रभृतिज्ञान मन
 चक्षु करके उनको किसी परभीट स्थान पर ले जाते
 हैं । त्रिपुरामारतन्त्रमें इसकी प्रकथा यों लिखी
 है—‘ॐ श्रीं क्लीं, ह्रीं त्रिपुरा देवि । यमुकीं शाकपे
 शाकपे स्यात् ।’ यह मन्त्र दस हजार बार जप
 किया जाता है । रत्नचन्दन और कुङ्कुमसे पड़कीण
 चक्र बना ह्रीं धीप्रसे पूजा करना चाहिये । त्रिपुराका
 ध्यान भीचे निम्ना है—

“भावेत्तच्छादेवी विनेता चन्द्रनेकरा ।
 शाकांतरिचरणां चन्द्रावचरिवरा ।
 पश्य देवि पाशो जगताशच नामके ॥” (त्रिपुराचरतम)

इसी तरह ध्यानपूर्वक पोड़गीपचारसे देवीकी
 पूजा और उक्त मन्त्रका दस हजार जप करने पर
 सर्वशो, रक्षा प्रभृति दुष्पयोगको भी शाकपेय कर
 सकते हैं । फिर इसी प्रयोगसे दूरहा कीरे भी द्रव्य
 अपने साधकके पास या पहुंचता है ।

शाकपेयशक्ति (सं० स्त्री०) कृतकतमिग, खींचनेको
 ताकत । यह शक्ति (Gravitation) प्रायः प्रत्येक पदार्थ
 में होती, जिनमें प्रायस खिंचतान चला करती है ।
 समस्त जगत्की दृष्टीसे मिला चुला रखा है । पृथिवीके
 द्रव्य दूसरी जगह जान पड़नेका कारण शाकपेयशक्ति
 ही है । जब जन चन्द्रकी शीर विचता, तब समुद्रमें
 लार बढ़ता है । आकाशमें नवग्रहादि इसी शक्तिके
 सहारे ठहरते और अपनी कक्षापर घूमते हैं ।
 शाकपेयशक्ति ही पृथिवीमें वायुमण्डलको पकड़
 रखा है । यदि पृथिवीमें यह शक्ति न होती, तो हवसे
 फन गिरनेपर न जाने कहाँ चला जाता । वैज्ञानिकोंने
 गुदत्वाकर्षण, चुम्बकाकर्षण, संस्रमाकर्षण, केमाकर्षण,
 रासायनिकाकर्षण पादि कयी प्रभेदोंमें इसे बांटा है ।
 शाकपेयशक्तिका प्रभाव कहीं अधिक और व्युन

पड़ता है ! भ्रमरको पद्म शीर चकोरकी चन्द्र हवी
 शक्तिसे अपनी शीर खींच लेता है । भास्कराचार्य
 शोनाध्यायमें भाहटिशक्तिका नाम उल्लेख किया है ।
 शाकपेयो (सं० स्त्री०) शाकपेयते उच्चैस्थं फलादि
 निकट नीयते चनया शाकपेकरणे लुप्त टिल्लात्
 छीप् । उचसे फल तोड़नेको शंकुषा । तन्त्रोक्त मुद्रा-
 विधि । यथा तन्त्रधारमें,—

“सथमातन्त्रं मोक्षान्ननिशामदिके समी ।
 चन्द्रशाकारववायां नयने परमेश्वरि ३
 चन्द्र उचु निमुद्रोत कनिशामदिकोपरि ।
 यथासकं मुद्रा यैलोत्था करिषो मया ॥”

चन्द्रशाकार तर्जनी शीर मध्यमां शंगुलीके साथ
 पहले कनिठा शीर चनामिकाको समान रूपसे रख
 हवीकीके बीचमें उन दोनों शंगुलियोंकी गुंठाकर उध
 पर शंगुंठा धरना । इसीका नाम शाकपेयीमुद्रा है ।
 इन मुद्रा द्वारा स्वयं, मर्त्य एवं पाताल शाकपेय
 किया जाता है ।

शाकपेय (हिं०) शाकपेयस्य ।
 शाकपेयना (हिं० स्त्री०) शाकपेयशुकरना, खींचना ।
 शाकपादि, शाकपादि (सं० पु०) शाकपेयः शाकपेयः
 वा पादिर्यस्य, चण्डी । कन् प्रत्ययके निमित्त पाकि-
 न्युक्त शब्दगण विधेय । इस लक्षमें निम्नलिखित शब्द
 हैं,—शाकपेय, शाकपेय, त्वरु पियाच, पिचण्ड,
 शगनि, चमन, विचय, विजय, जय, चय, पाचस,
 अय, नय, पाद, पीठ, छद, छ्वाद, छ्वाद, गद्गद,
 शकुनि, निपाद, दीप । (पं शश(०))

शाकपेयिक (सं० स्त्री०) शाकपेय शाचरति शाकपे-
 ठन् । शाकपेयत् कन् । वा शश(०) : शाकपेयकारी, खींचने-
 वाला, जो शाकपेय द्वारा शाचरण करता हो । (स्त्री०)
 पित्वात् छीप् शाकपेयिकी, शाकपेय करनेवाली ।

शाकपेयित (सं० स्त्री०) शाकपेय, खींचा हुआ ।
 शाकपेयिन् (सं० स्त्री०) शाकपेयति शाकपेयिनि
 गुणः । शाकपेयकर्ता, खींचनेवाला । (स्त्री०) छीप्
 शाकपेयी, खींचनेवाली । संपूर्ण शाकपेयिन् शब्द
 द्वारा (सन्यासकठिन्) दूरगामी गन्ध समझ पड़ता,
 कारण यह दूरस्थ स्थलिकी शाकपेय करता है ।
 ‘समाकषो तु निर्गते’ । (चर) :



द्वितीय सम्प्रदायका नाम—कुपचोर है। इस शब्दसे कार्पास-चैत्रके (रुईकी खेतके) चोरका बोध होता है। यह दोनो शब्द आसामी भाषाके अपभ्रंश हैं। पहले ये लोग पर्वतसे नीचे उतरकर जन-पदके मध्य महा उत्पात उठाते और ब्रह्मपुत्र नदमें नौका एवं तीर्थयात्रियोंकी द्रव्यसामग्री सट सेते थे। छापकोंके खेतसे कपास और चयादि हरण करनेसे इनके दोनो सम्प्रदायोंका इस प्रकार नाम पड़ा है।

आकाधोंके उत्तर मिश्री जाति है। यह भी असभ्य होते हैं। आकाधोंके माघ मिश्री-कन्याका पादान-प्रदान चलता है। मिश्री लोग कभी पर्वतके नीचे नहीं उतरते, केवल आका धा विपद् पड़नेपर आलोय खलनको उधार करनेके लिये पर्वतसे नीचे आते हैं। आकाधोंके सर्वसमत २३० और मिश्री जातिके ४०० मकान् वने हैं।

असभ्यावस्थापर सकल ही जातिकी केवल बाह्य जगत्में ऐंगी शक्ति देण पड़ती है। सृष्टिके मध्य लड़ा कुल अद्भुत एवं भयङ्कर होता और विपद् आनेकी सभाषना रहती, वहाँ देवता तथा ईश्वर विद्यमान है। आकालोग पर्वतमें रहते हैं। पर्वतकी भयङ्कर एवं लघु चूड़ा, कल्लोनिनी नदी, और वन्य पशुपूर्ण निविड़ जङ्गलकी ही ये लोग देवता समझते हैं। कुछ जङ्गल और जलके देवता हैं। युद्धकी अधिष्ठात्री-देवी फिरन् और सिमन् हैं। सतु क्षेत्र एवं गृहके देवता हैं। इनके पुरोहितका नाम देवरी है। देवरीकी पूजादि कितनी ही दैवक्रिया करना पड़ती है। एक एक कुटीरमें जङ्गलादिकी देवमूर्ति स्थापित है। पुरोहित उन सकल देवताओंकी पूजा करते हैं। शस्य कटने पर ये देवतादिकी उसका अन्नभाग उत्सर्ग कर देते हैं। विवाहके समय हमलोग हाथमें राखी बांधते हैं। आका असभ्य हैं, किन्तु इनमें भी यह मङ्गलाचरण प्रचलित है। विवाहके पूर्व पुरोहित जा कर वर एवं कन्याके हाथमें सूतकी धन्वि बांध देता है। पीड़ा होनेपर कोई धीपधका भरोसा नहीं करता। ओम्हा मन्त्र पढ़के रोगीकी

भाइते एवं पुरोहित कुछ देवताके समीप कुकुटादि बलि देकर स्वस्थ्ययन करते हैं।

आकाधोंका गृह प्रायः काष्ठ एवं प्रस्तरसे बना और भीतर सज्जता बिछा रहता है। ये प्रायः धनु-ग्रर लेकर सर्वदा भ्रमण करते हैं। हस्ति-प्रभृति वृहत् जन्तुका शिकार करनेमें आका तीरकी गांसीपर काष्ठविष चढ़ा देते हैं।

ये पर्वतोत्पन्न अनेक प्रकारका द्रव्य संचय करके तिष्यत, भूटान एवं सिकिममें और पहाड़के नीचे याणिय्य करने आते; तन्निर चपने प्रयोजनातुसार तांघे और कोसेके पात्र तथा यस्त्रादि क्रय करके ले जाते हैं।

आका आसाम-निकटवर्ती जनपदके भीतर बीच बीच अतिशय अत्याचार करते हैं। सन् १८१८ ई०में इनके सर्दार टागीराजकी अंगरेजोंने गिरफ्तार करके गौहाटीके जेलमें कैद किया था। सभी जगह वह एक हिन्दू गुरुको पा कर उनके निकट हरिभक्ति और हरिमन्त्रमें दीक्षित हुए। गुरु शिष्यको चाहते और शिष्य गुरुको मानते थे। क्रमशः दोनोंके मध्यमें बिलक्षण अनुशासन उत्पन्न हुआ। सन् १८३२ ई०में टागीराजने अपने गुरुकी आग्नि बना सुक्ति पायी। किन्तु जब फिर पर्वतका स्वाधीन वायु उनके अङ्गमें जगा, तब वह हरिभक्ति और गुरुके प्रति यथा कुछ भी न रही। पूर्वमें जिन लोगोंने पढ़्यन्त्र करके उन्हें पकड़वा दिया था, टागीराजने प्रथम ही उन्हें नष्ट किया। निकटके अंगरेजोंकी चौकी भी लूटी। अंगरेजोंके जितने कर्मचारी उनके समुख पड़े, उनमें अनेक हत एवं घाइत हुए थे।

उपरोक्त अत्याचार निवारण करनेके लिये ब्रिटिश सेन्य प्रेरित हुआ। यह नियय करना दुर्घट पड़ गया, आकाराज कड़ा रहते और किंस पर्वतसे किंस पर्वत-पर भाग जाते थे। अंगरेज बहुत दिनतक उनके पीछे पीछे फिरे, किन्तु कोई सन्धान लगा न सके। अन्तमें टागीराजने सोचा, कि बहुत दिन उभतरह उद्दिग्ध रहनेकी अपेक्षा मृत्यु वा कारावास ही अच्छा था। युद्धका वैसा कोई उपकरण न रहा, जो अंग-

शैलीकी गोसाष्टिके मन्मुख पड़े रह मजत, सुतारं ये पाप ही ना कर छात्रि रूप। फिर मन्धिकी बात कसी। यह जैसे राजा थे, उनके लिये वार्षिक तनखाहकी व्यवस्था भी वैसी ही हुई। चंभरेजोंने कहा,—“पाप मात गिट ही जायो, लोगीके प्रति पाव उत्पीड़न न करो; पापको प्रतिपय १६०) रुपया पेनुगन मिलेगा। किन्तु पापकी किसीके ऊपर बत्याधार न करनेकी हद्द प्रतिष्ठा करना चाहिये।” टांगीराज उषीमें सभ्यत हो गये। उम समय बन्नीकारके निमित्त पवित्र द्रव्यकी भावश्यकता पड़ी थी। कुकूट पाया, भङ्गूक और व्यान्नघर्म पाया। सुन्दारे हमारे समीप जो पपविव्र ठहरता, संभारमें दूसरी जगह वही पवित्र है। हिन्दू के लिये गोमय और भाकाके लिये हस्तिविठा पवित्र है। गण्डके लिये टेरकी टेर हस्तिविठा संगायी गयी। प्रथम सत्यपाठमें सुगीका बलि चढ़ा था। उसके बाद भाकाराज एक हाथमें भङ्गूक-धर्म और दूसरे हाथमें व्यान्नकृति लेकर बोले—‘जो होना था हुआ, पाव सावधान बना, फिर कभी मैं चंभरेजोंकी बात न टालूंगा।’ परिणाममें पञ्चसो भर हस्तीकी विठा चढाकर कहा,—‘चंभरेजोंके साथ विरोध इस जन्मके लिये मिट गया, जीवन रहते फिर कभी विवाद न कर्दंगा।’ अन्तमें एकवार हरिनामकीर्त्तन करके प्रतिष्ठा समाप्त हुई।



सिद्धी-मन्दार

भाका एवं मिग्मी लोगीकी आकृति-मल्लि, विग-भूया, नोऊ-लोकता, पादार-व्यवहार, सब एक ही प्रकार है। यह मिश्र मिग्मी-मदारीकी प्रतिमूर्ति है। इस चित्तपटसे भाका और मिग्मी लोगीके मध्य वैगभूया पहचानका प्रमाण मिलता है। विगत मन् १८८१ ई०की

कलकत्तेकी प्रदर्शनीमें पनेक पसभ्य जातिकी प्रति-मूर्ति देखायी गई थी। प्रतिमूर्ति बनाने समय भाका लोगीकी भी आकृति देनेकी कल्पना हुई। इसलिये पासाम सरकारके कर्मचारियोंने नमूनेकी तरह किसी भाकाकी कलकत्ते में बननेकी चेष्टा की थी। किन्तु उस प्रस्तावपर समस्त भाका जाति एकबारगी ही चित्त हो गयी। इससे अधिक चपझत कया दूसरी क्या हो सकती है, कि प्रतिमूर्ति बनवानेके लिये जीवित मनुष्यकी कलकत्ते जाना पड़े। इस अपमानका प्रतिशोध लेनेके लिये भाका द्वितीय प्रजाके कयो भादमी अपने पर्वतमें एकड़ ले गये। उषीसे पञ्च-रेजोंके साथ एक सामान्य युद्ध हुआ था। अन्तको भाका परास्त ही पर्वतके उपरिभागमें भाग गये।

भाका-राजकी मूर्ति देखनेसे विपद्भूतका अरण्य भाता है। इनका सर्वाङ्ग गोदनेसे विव्रित, कण्ठमें पत्थर तथा हड्डीकी माला, मत्सेपर पक्षीका पुच्छ, और शरीर पर लता लिपटा है। ये पारं-तीय वनके मध्य दिवानिधि जङ्गनी फलोंकी माला पहनकर घूमते एवं धनुर्वाण लेकर नृत्यया करते हैं। तीरमें कौन विप चढ़ा रहता है, इसका ठोक निराय नहीं होता। कोई कोई अशुभान करते, कि तीरमें मोठा विप (Aconitum ferox) लगती है। किन्तु दूसरे कहते, कि भासामी लोग जिसकी विप (Coptis Teeta) यताने, भाका वही तीरकी गांधी-पर चढाते हैं। इस विपान्त पदा द्वारा शरीर पर पाघात लगनेसे गोघ ही मृत्यु होती है। कहते, किसीकी पाघात लगनेसे भाका सतस्थानपर इन्द्रिय (Sausseria Lappa) घसकर प्रसेप देते एवं उषीका जाय शीघ्र करता है। इसकी परीक्षा करना उचित है, कि इन्द्रियमें यद्यपि विपनाशक-शक्ति होती है या नहीं।

मन्धिके बाद देग पाकर पाकाराजने अज्ञातिके मध्य हरिभक्तिका प्रचार किया। इस समय मायः समस्त ही भाका वैष्य हो गये हैं। प्रत्तेक भाका शब्दके धरमें बहुत गो रहती है। यह गोमान् साने, किन्तु गोका दूध किसीतरह पवित्र नहीं बन-

भक्ते। भाका कण्ठागत प्राण होनेपर भी गोटुग्ध नहीं
 कृते। संसार विचित्र स्थान ठहरता, केवल कार्य वेप-
 रीत्यसे ही इनका व्यापार चलता है। यह सुन हम
 हंसते, कि भाका गोमांस खाते—किन्तु गोटुग्ध नहीं
 कृते। फिर घरस्थके भाका यह देख हंसते, कि हम-
 लोग दुग्ध खाते हैं; किन्तु गोमांस अग्रं नहीं करते।
 यह सुभर, सुगं एवं कयूतर पासते हैं। इन सकल
 जीविका मांस ही भाकाओंका प्रधान खाद्य है। ये
 प्रायः सब जन्तुओंको खाते हैं। केवल सुगोबो, राजहंस
 एवं कुत्ते वगैरह जिन पशुओंका मांस सघराघर
 मनुष्यका खाद्य नहीं, वही इनमें खानेको निषिद्ध है।
 मृत्युके बाद ये शय दाह नहीं करते, मष्टेमें गाड़
 देते हैं। इन पशु क्रियाकी प्रथाओं सिंगो मध्य देहो।

भाका (अ० पु०) स्वामी, मालिक, सरपरस्त।
 भाकाखिल—मिथुनदके उत्तरपश्चिम पार कोषाट
 निकटवर्ती भद्रौदी जातिके मध्य एक पठान-
 सम्प्रदाय। अन्यान्य पठानोंकी तरह भाकाखिल
 भी प्रतिगय धीर्यवान् और दुर्दात्म होते हैं। दस्यु-
 हत्ति, नरहत्या एवं युद्ध प्रभृति सामुहिक कार्य ही
 इन लोगोंका व्यवसाय है। भाकाखिलोंके मध्य घनेक
 भिन्न भिन्न सम्प्रदाय हैं। यथा—मारुफखिल, मरगब
 खिल, शेरखिल, सन्दलखिल, सुण्डाखिल, इत्यादि।
 पूर्वमें अङ्गरेजाधिकारकी शीघ्र पड़च ये सर्वदा ही
 उपद्रव करते थे। सन् १८५६ ई०को अंगरेजोंने इस
 जातिका भारतवर्षमें प्रवेश करना रोक दिया। इससे
 भाकाखिलोंकी बहुत क्षति होने लगी थी। एकदिनकी
 नहीं, भारतवर्षमें आ वाणिज्य कर न सकनेसे चिर-
 कालकी क्षति हुई। इसी कारण भाकाखिलोंने
 २६७० ई० अर्धदण्ड देकर हिन्दुस्थानमें प्रवेश करनेकी
 पत्तमति ली। इदृश गवर्णमेण्ट केवल अर्थ पाकर
 ही सन्तुष्ट न हुई थी। उसने इनसे यह प्रतिज्ञा भी
 करायी—भाका-खिलोंके मध्य कोई व्यक्ति अङ्गरेजो
 अधिकारमें रहकर अत्याचार न करेगा। उस दिनसे
 इस जातिका दौरात्म्य कितना ही कम पड़ा सही,
 किन्तु विशकुल चान्त नहीं हुआ।

भाकाङ्क (सं० त्रि०) १ इच्छुक, अभिलाषी, आक्षिप्त-

मन्द, चाहनेवाला। २ व्याकरणमें—अर्थपूर्तिके लिये
 शब्दकी आवश्यकता रखनेवाला, जो माने पूरे करने-
 को सफुल्ल चाहता हो।

भाकाङ्कक, भाकाङ्कको।
 भाकाहणोय (सं० त्रि०) सुहणोय, काम्य, काविल
 तमसा, पसन्दीदा, मनभाज्क।

भाकाङ्कत् (सं० त्रि०) १ अभिलाष रखनेवाला, जिस
 उन्मत्त रहे। २ दृष्टि डालनेवाला, जो देखता हो।

भाकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) आकाङ्क्षा-प्रयोगः।
 पा १११०१ इति च टाप्। १ अभिलाष, इच्छा,
 आक्षिप्त, पसन्द। २ जिज्ञासा, प्रश्न, सवाल, पूछताछ।
 ३ अभिप्राय, मतलब। “आकाङ्क्षा योयताकाङ्क्षावसिषुव पदे-
 ष्यः।” (आक्षिप्त०) ४ दृष्टिपात, नजारा। ५ व्याकरणमें—
 अर्थपूर्तिके लिये शब्दापेक्षा, माने पूरे करनेकी सफुल्लकी
 जरूरत। योग्यता, आकाङ्क्षा एवं आसक्तियुक्त पद
 समूहका नाम वाक्य है। “आकाङ्क्षाप्रतीति-पर्यवसान-विरहः।
 च च श्रोत्रिन्श्राया सवयः। निराकाङ्क्षस्य बाहलं शीरवः उपयो
 ह्योत्पादोनामपि वाच्यं स्यात्” (आक्षिप्त०) ६ न्यायशास्त्रके
 मतमें वाक्यार्थ ज्ञानका हेतु अन्वय विधेय। यथा—
 “सर्वपर्योयने अन्वयमित्यवरोधनकालम्।” (तर्का०)। ‘यत्-
 त्वदं यत्पदेन सद्यः साहचर्यमवश्यं भवेत्, तत्पदस्य तत्पदस्यमित्याहार-
 साहचर्यावरोधे आकाङ्क्षा।’ (जा० सं०) ‘यस्य पदस्य येन
 पदेन विनाशवरोधनकालं नास्ति तत्र पदस्य तेन पदेन समन्वित्याहार
 आकाङ्क्षा।’ (त० ली०) अर्थात् जिस पदके व्यति-
 रेकसे जौन पदका अन्वय नहीं होता, उसी
 पदमें वही पदस्य रूप सम्बन्ध या एक पदके व्यतिरेक-
 में अन्वयका अभाव आकाङ्क्षा कहता है। जैसे दास
 भायाँ कहनेपर ‘जिस दासकी भायाँ?’ ऐसी आकाङ्क्षा
 रहनेमें अन्वयका अभाव होता है। पीछे ‘चेन्नस्य’
 चेन्नकी—इस सम्बन्धिपदके उल्लेख करने पर, उसके
 सहित अन्वय होता है। उस समय आकाङ्क्षा छूटती
 है। वाक्यमें पदोंका परस्पर सम्बन्ध रहता और
 उसी सम्बन्धसे वाक्यार्थका ज्ञान होता है। जब
 वाक्यमें एक पदका अर्थ दूसरे पदके अर्थ ज्ञानपर
 आश्रित रहता, तब आकाङ्क्षा रहती है। जैसे—
 ‘घड़ा खानो’—इसमें केवल ‘खानो’ कहने पर खोताको

'श्या नामे' की भाकाड् चा होती है। कारण, 'नायो' पदका भ्रान घट्टानके पान्थित है। ० जैनमतानुसार पतिपार विग्ये। यह एक प्रकारकी रक्षा होती, को धन्य मतावलम्बियोंकी विभूति पर दौड़ती है।

भाकाड् चित्त (सं० वि०) भा-काड्-घ कर्मणि ऋ ।
१ इच्छित, इक्षित, प्राश्निय किया हुआ। २ प्रय किया हुआ, पूछा गया। ३ ध्यान किया हुआ, ध्यानमें माया गया। ४ अपेक्षित, ज़रूरी।

भाकाड् चित्तव्य, वाकाड् चित्तव्ये शब्दो।

भाकाड् चित्तन् (सं० वि०) भा-काड्-घ-णिनि ।
१ इच्छायुक्त, इच्छा करनेवाला, इच्छुक, चाहने-वाला। २ प्रत्यागी, पूछनेवाला। (स्त्री०) डीप् ।
भाकाड् चिषी।

भाकाड् चो, वाकाड् चित् शब्दो।

भाकाड् च्य (सं० वि०) १ स्पृहणीय, काम्य, कांक्षित-तमसा, पसन्देदा। (स्त्री०) ३ अर्थपूर्तिके लिये शब्दापेक्षा, मानी पूरा करनेको लक्ष्णकी कुरुरत।
भाकापर्वत—भाका नामक एक पहाड़। इस पर्वतकी सचराचर भाका ही कहते हैं। यह गिरि-माना प्रामामके ठीक उत्तरमें अवस्थित है। इससे दक्षिण दरङ्ग प्रदेश, पूर्व दफ्ना पर्वत और पश्चिम भोटान राज्य है। भाका पर्वतके रहनेवाले प्रति चमभ्य जाति होते हैं। भाका शब्दो।

भाकाय (सं० पु०) भा-चि कर्मणि घञ् चित्तौ क्तवम् । निवास चित्परीरोपकभावात्भादेव ऋः। वा वाकाय ।
१ चीयमान पत्नि, सखित पत्नि, यज्ञके लिये रखी हुई भाग। २ चित्त। ३ स्पृह, निवास, नकान्।

भाकायाव (पञ्चाय) —पंजरजाधिकृत ब्रह्मदेगके चन्त-गंत पाराकान विभागका एक जिला। कहते हैं, गौतमके जन्ममें पहले पाराकानकी राजधानी राम-वन्दो वाराणसीके राजाको कर देती थी। प्रायः सन् ८०० ई०को मुसलमानोंने पाराकानपर आक्रमण किया। नधीं गताब्दीमें पाराकानके राजाने बह्मदेग-पर चढ़ाई की थी। उन्होंने चटगांवमें गौतागङ्ग नामक एक जयप्रथ निग्राह्य कराया।

भाकायावमें मन्नाती नामक एक मन्दिर है।

गन्धी नामक राजाने उसे बनवाया था। पहले भाका-याव ब्रह्मदेगीय सैन्यका दुर्ग रहा। उसके बाद १८२३ ई०को पंजरजी सेनाने पाकर इसे दूरस्त कर लिया। नेरहवीं गताब्दीको पाराकानवासी पूर्ववर्द्धमें पा पक्षमें थे। उस समय टाका जिलेके चन्तगंत सुप-याम प्रभतिके राजासेने उन्हें कर देकर सुटकारा पाया। इसीको हमलोग मधरापर मगोशा दीरात्म्य कहते हैं। मगोने मेघना नदीके किनारे सब देगोमें पाकर बड़ा पत्थापार किया था। क्रमसे उन्होंने चटगांव प्रधिकार कर लिया और वहाँ पोर्तुगीजोंको पायथ दिया। पोर्तुगीज भी अत्यन्त पत्थापार करने लगे। वे भावपर हमेगा मेघनामें घुसते फिरते और वणिक्, पयिक तथा तीर्थयात्रीका सर्वस्व लूट लेते थे। कबिकद्वयमें जो—'हरामदके डरमें' इत्यादि उल्लेख किया गया है, वे हरामद (Armada) यही जलडगू रहे। ऐसा पत्थापार देखकर कुछ दिनोंके बाद पाराकान-वासियोंने सब पोर्तुगीजोंको चटगांवमें निकाल बाहर किया। यहाँमें भागकर वे लोग सान्-यिप द्वीपमें जाकर रहे। परन्तु उनके सेनापतिने क्रोधमें पाकर पाराकानपर आक्रमण किया था। पाराकानके राजाने युद्धमें उनका प्राणयिनाग कर सान्-यिप द्वीप अधिकार और वहाँके सब प्रादमियोंको कैद कर लिया।

१६६१ ई०को शाहजहाने औरङ्गजीयके डरसे भाग-कर पाराकानमें आश्रय लिया था। किन्तु वहाँके राजाने शाहजहानकी कन्यासे रूपलावण्यपर मोहित होकर विवाह करना चाहा, परन्तु शाहजहान उस बातपर राजी न हुए। इसलिये पाराकानके राजाने शाहजहान और उनके पुत्रादिको एक नदीमें डुबाकर मार डाला।

१८८४ ई०को पाराकान ब्रह्मराज्यमें मिला लिया गया था। इससे पाराकानवासियोंने चटगांव तथा पत्थान्य पंजरजी राज्यके स्वामीमें पाकर पायथ लिया। ब्रह्मवासियोंने उन्हें गिरफ्तार करा देनेके लिये पंजरजीमें पनुरोध किया, परन्तु जिनोंने उनको

बात न सुनी। इसीसे १८२४ ई०को ब्रह्मदेशके साथ बंगरेजीका युद्ध हुआ था। पोलि १८२६ ई०के सन्धि-सूत्रसे बंगरेजोंमें और तेजासारिम बंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया।

भाकायाममें जलपयसे ही वाष्पित होता है। धान, सुपारी, पान, केला, सरसो, भारियल, नील और नामा-प्रकारकी सब्जी यहाँसे दूसरी जगह भेजी जाती है।

भाकाय्य (वे० त्रि०) सृष्टीय, काम्य, पसन्दीदा।

भाकार (सं० पु०) भा-ऊ-घञ्। १ स्मृति, धरत।

२ पचयय संस्थान विमेष, डीलडोल, बनावट।

३ हृदयगत भावप्रापक सुखकी प्रसन्नता और

विषयता, दिलका हाल बतानेवाले मुँहकी चुभी

और बदनही। ४ रूप, धर्म और दुःखसूचक देहकी

चेष्टा, सुरत, सुग्री और तकलीफ बतानेवाले जिभकी

हालत। भाये घञ्। ५ हृदयगत भाव-प्रापन,

मनोगत भाव प्रकाश, दिनके हालका उद्गार।

६ इङ्गल, नियान्। ७ भाष्यादि मतसिद्ध धर्मोद

स्थानीय पदार्थ विशेष। सांख्यवादी कहेता,—जैसे

शरीरकी पुष्टिसे भोजन, मनुष्यकी भाषामें जन्मभूमि

और संभ्रमसे खेह, देहकी चानरूप भाकारसे प्रय

वस्तुका अनुमान होता है। ८ भाकार पचर, भा।

भाकारकरम (सं० पु०) भाकाराभक, भकरकरहा।

(स्त्री०) भाकारकरभा।

भाकारगुप्ति (सं० स्त्री०) भाकारस्य मनोमतभावस्य

गुप्तिः गोपनम्, ६-भत्। व्याज, मिया हेतु, रत्यादि

जनित सुखकी प्रसन्नता एवं भयजनित विषादादिका

प्रकृत हेतु न बता पन्थ हेतु द्वारा उसका गोपन,

बहाना, धरतका छिपाना।

भाकारगोपन (सं० स्त्री०) भाकारगुप्ति दृष्टो।

भाकारण्य (सं० स्त्री०) भा-ऊ-विष्-सुपट् णिच्

लोपः। १ भादान, गुलावा। २ समरादान, ललकार।

(अर्थ०) ३ कारण पर्यन्त।

भाकारण्योय (सं० त्रि०) भादान किया जानेवाला,

जो बोलाया जाता हो।

भाकारिक (सं० त्रि०) भाकार कुग्रलम्, ठञ्।

इतितादिमें निपुण, हमारा करनेमें होशियार।

भाकारित (सं० त्रि०) १ भाङ्गन, बोलाया हुआ।

२ प्रतिप्रात, निरूपित। ३ याचा किया हुआ, मांगा

गया। ४ ठहराया हुआ।

भाकारी (हिं० वि०) भादान करने या बुकाने-

वाला।

भाकारीठ (हिं० पु०) संघाम, युद्ध, लड़ायी।

भाकाल (अर्थ०) १ काल पर्यन्त (भाङ्गमार्गमिच्छोः।

न ४।।१) इति अर्थय्यो। २ पूर्व दिन निमित्तके जिस

समयसे दूसरे दिनके उषी समयतक। जैसे, पूर्व दिन

एक कासमें विद्युत्गर्जनके साथ साथ वर्षण और

धर धर उधर उधरका पात होनेसे दूसरे दिन उषी

समयतक धनध्याय रहता है।

“निमित्तकालमात्र पर्युपान्तु स एव भाङ्गमार्गमात्रम्।”

(कार्त)

जिस समयमें जिस कार्यका विधान है उसी समय

तक। जैसे ब्राह्मणके उपनयनका काल सोलह वर्ष-

तक है। यहाँ ‘भाकालं ब्राह्मणं उपनयेत्’ प्रयोग

किया जा सकता है। इतरभाषामें दुर्भिक्षकी भी

पकाल कहते हैं।

भाकालिक (सं० त्रि०) भाकाले भवं ठञ्। १ पचा-

मयिक। २ पूर्व दिन निमित्त पड़नेसे दूसरे दिन उषा

समय तकका।

“निमित्ते स्मिन्नने कौतिकाद्युपसर्गे।

घटानाभाङ्गितान् विपुत्रन्यायात्तत्पि॥” (मनु ४।।१२)

‘निमित्तकालमात्र पर्युपान्तु स एव भाङ्गमार्गमात्रम्’ तत्र भाङ्ग-

मात्रिका’ (कार्त) ३ अस्मय-ज्ञान, जो वैदिक, पैदा

हो। (स्त्री०) डीप, भाकालिकी। ‘भाकालिकी’ इतिनेच

नका’ (अति) आशुविनाशिनौ, जल्द मिट जानेवाली।

विद्युत् शीघ्र ही विनाश हो जाती, इसलिये वह भी

भाकालिकी कहाती है।

भाकालिकत्व (सं० स्त्री०) प्रस्तावसादृश्यका प्रभाव,

चाञ्चल्य, वैफल्य, वैमहत्ती, नागहानी।

भाकालिकप्रलय (सं० पु०) प्रलय विमेष, कपिलके

शापसे धंससमयमें जगत्का प्रापन।

भाकाय (सं० पु०-स्त्री०) भा-समन्तात् कायन्ते

दीप्यन्ते सूर्योदयोदरे। भा-काय दीप्यते—इति क'शाण

भाकायकल्प (सं० पु०) द्वैपदसमाप्तः भाकायः, भाकाय (१ ईश्वरवर्मा चरकस्य द्वैपद्येः वा शाश्वत्) इति कल्पप्रत्ययः। परब्रह्म। भाकायको तरङ्गनिःसङ्ग, प्रधान एवं पयिनश्चर होनिसे परब्रह्मको भी भाकायकल्प कहते हैं।

भाकायकुसुम (सं० स्त्री०) भाकायि उदितं कुसुमम्, शाक० तत्। १ खपुष्प, भासमानका फूल। २ पस-भय विषय, भनहोनी बात। भाकायमें फूल नहीं खिलता, पतएव “भाकायकुसुम” कहनेसे मिया विषयका बोध होता है।

भाकायग (सं० त्रि०) भाकायमें चलनेवाला, जो भासमानमें घूमता हो।

भाकायगङ्गा (सं० स्त्री०) भाकायस्या गङ्गा, शाक० तत्। १ मन्दाकिनी, विषद्वगङ्गा, स्वर्णदी, सुरदौर्घिका, भाकायनदी प्रकृति शब्द भी इसी अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। २ नक्षत्रमण्डल विशेष। यह भाकायमें उत्तर-दक्षिण विस्तृत है। इसमें अनेक छोटे-छोटे नक्षत्र रहते, जो आँखसे देख न पड़नेपर सफेद सड़क जैसे मालूम होते हैं। यह कहीं कम और कहीं ज्यादा चौड़ी है। भाकायगङ्गाकी शाखायें भी इधर-उधर फैल गयी हैं। पानीय लोग इसे भाकाय-कनक, हहर या हायीकी सूँड़ कहते हैं।

भाकायगर्भ (सं० पु०), बोधिसत्त्व विशेष।

भाकायगा (सं० स्त्री०) भाकायि गच्छति भाकाय-गम-उ-टाप्। स्वर्गगङ्गा।

भाकायगामिन् (त्रि०) भाकायि गन्तुं गीलमस्य, भाकाय-गम गीलार्थे णिनि। भाकायगमनमें चम, शून्यचारी, भासमानमें फिरनेवाला।

भाकायचमस (सं० पु०) चन्द्र, चाँद।

भाकायधारिन्, भाकायगामिन् देखो।

भाकायचारी (सं० पु०) १ सूर्यादि ग्रह, भाफताव वर्ग रह तारा। २ वायु, हवा। ३ पक्षी, चिड़िया। ४ देवता। ५ राजसूय। (त्रि०) भाकायगामिन् देखो।

भाकायघोटी (हिं० स्त्री०) भाकायकी मिखा, शीर्ष-विन्दु, बिलकुल गिरके ऊपर पड़नेवाला कल्पित विन्दु।

भाकायज (सं० त्रि०) गगनजात, भासमानसे पैदा। भाकायजननिन् (सं० पु०) भाकायजनने देखो।

भाकायजननी (सं० स्त्री०) भाकायस्या जननीव शुभप्रदानात्। छिद्रयुक्त प्रगल्भो, भरोका। दुर्गके भीतरी भादमियोंको बाहरका काम देखाने और शत्रु-पर मोला प्रकृति मारनेके लिये दीवारमें छेद रहते हैं। ऐसे छेदवाली दीवारको प्रगल्भो कहते हैं। दुर्गसे बाहर शत्रुके भाते स्वयं छिपे रहकर छेदेसे आन्ने-यास्य चादि फेंकनेपर शत्रुका नाश होता, इसीसे इसका नाम भाकायजननी है। महाभारत याज्ञिक-पर्वके ६८वें अध्यायमें इसका विवरण लिखा है।

भाकायजस्र (सं० स्त्री०) १ इष्टिका नीर, मेहका पानी। २ तुपार, पौस। मद्य नक्षत्रमें जो पानी पड़ता, वह पात्रमें भरकर रख छोड़ा जाता और शीघ्रमें व्यवहृत होता है।

भाकायदीप, भाकायप्रदीप देखो।

भाकायदीया (हिं०) भाकायप्रदीप देखो।

भाकायधुरी (हिं० स्त्री०) खगोलध्रुव, भासमान्शुकी धुरी।

भाकायध्रुव (सं० पु०) भाकायधुरी देखो।

भाकायनदी, भाकायगङ्गा देखो।

भाकायनिद्रा (सं० स्त्री०) प्रगस्त स्यानका शयन, खुली जगहकी नींद।

भाकायनीम (हिं० स्त्री०) नीमके पेड़पर फेत्तने-वाली घेल, नीमका बाँटा।

भाकायपटल (सं० स्त्री०) पञ्चधातु, पञ्चरक।

भाकायपुष्प, भाकायकुसुम देखो।

भाकायप्रतिष्ठित (सं० पु०) सुद्विषेय, किसी बुद्धका नाम।

भाकायप्रदीप (सं० पु०) भाकायि सत्तज्जीकविश्वो-स्तोपार्थे दीयमानः प्रदीपः शाक-तत्। भाकायदीया, भासमानो चिरान्। सौर कार्तिक मासमें प्रतिदिन लक्ष्मणनदी पर जो प्रदीप जलाते, उसे भाकायप्रदीप कहते हैं।

इमाद्विद्वत पाद्विप्राथमें भाकायप्रदीपका नियम इस तरह लिखा है,—ग्रहके निकट-किसी प्रकार

को दमोय लक्ष्मीका पादमौके बराबर एक स्तम्भ गाढ़े घोर उसमें यवाङ्गुल तुष्य देद करके दो हाथकी पट्टी लगाये। फिर चौकीन चटपटलाजति कर्पिकाके बीचमें दीप देना चाहिये।

पाककन पाकाग्रमदीप देनेकी रीति दूसरी ही तरह प्रचलित है। बृहस्पत्य लोग घरके बाहर या भीतर एक बड़ा बाँस गाढ़, उसके निरियर साम भण्डा उड़ा घोर चटपटलू मालटेनमें दीप जला देते हैं।

ममस्त कार्तिक मास पाकाग्रमदीप देनेका नियम है। कार्तिक मासके प्रथम दिनमें साध्य हस्तकी पूजा करते हैं। इसमें लक्ष्मीदामोदरकी ही पूजा होता है। पीछे सभ्यरा समय साकटेनको दीप रख घोर रक्षीसे खींचकर ऊपर चढ़ा देते हैं। मदीपमें तिस्रतैल चयवा छतादि देनेका ही नियम है। पाकाग्रमदीप देनेका मन्त्र यह है,—

“दामोदरय नमसि शुभानि चोन्वा यव ।
 धरोव नै प्रचयानि मनीजलाय वैषे ॥” (चरार्क)

कार्तिक मासमें लक्ष्मी सहित दामोदरको भी पाकाग्रमें यह मदीप देना है। वैशा धनस्तको नमस्कार है।

इसका दूसरा मन्त्र भी देपनेमें पाता है ; यथा—

“निरिय चर्कर इराव रुमे दामोदरायव्य चर्कराये ।
 वनान्दिमस्तव शान्तिरामः मे नैव यथाय तमः क्लिमेः ॥”

पाकाग्रमल (सं० स्त्री०) मन्तान, पौन्दा, यास-बद्या ।

पाकाग्रमुहसव (सं० पु०) नाय्य भाषामें—दर्शक-मण्डलीको देप न पढ़नेवाले पदार्थपर टकटकीका बधिना ।

पाकाग्रपेन, चमरके देकी ।

पाकाग्रभापित (सं० स्त्री०) भाष-भाषे ल, पाकाग्र भापितम्, अ-तत् । १ देववाची, जो बात देवता पाकाग्रमें चटपट रूपसे रहकर कहता हो । २ मरा-हित, चाचात् देववाची सुन नहीं पढ़ती। किन्तु कोई व्यक्ति चन्दको लपकर जब किसी कामके होने या न होनेकी बात कहता, तब उसका जल मिल

जाता है । १ चटपट भावसे कहन, घोसीदा तोरपर बीनना । नाय्यभाषामें किसी देवताका वाक्य निष्कारने समय नट चटपट रहकर देववाचीकी तरह जो बात कहता, यही पाकाग्रभापित है । इसमें वक्ता देखे पाकाग्रकी घोर देव प्रत्यका उत्तर देने लगता, है । दर्शक यही समझता, मानी उससे कोई बात करता है ।

पाकाग्रमण्डल (सं० स्त्री०) पाकाग्रो मण्डलमिय । १ गगनमण्डल, इवाका कुरा । पाकाग्रकी कोई बालति या इयत्ता नहीं, किन्तु मण्डलाकार बेलनके चभावमें जो गोल मानल पड़ता है । इसीसे गगनको पाकाग्रमण्डल कहते हैं । नभोमण्डल प्रकृति शब्द भी इस अर्थमें प्रयुक्त हो सकते हैं । २ तन्त्रील भूतशक्ति पन्तर्गत विस्तारीय भूमध्यसे परब्रह्म पर्यन्त अवस्थित हस्ताकार सच्च नभोमण्डल । पाकाग्रमय (सं० पु०) पाकाग्र-मयट् । १ पाकाग्र-तुष्य चावा, शतपथब्राह्मणमें लिखा,—चावा ही ब्रह्म एव चावा ही विद्यानमय, मनोमय, वाद्यय, प्राचमय, चतुर्मय, श्रोत्रमय घोर पृथिवीमय है । फिर शतपथब्राह्मणके भाष्यकारने बताया, कि चाकामें इस संसारका सब होना वास्तविक नहीं रूपस उपाधि-विशिष्ट मात्र है ।

पाकाग्रमसी (सं० स्त्री०) पाकाग्र जटा मांस हव यस्याः शाक-बहुमी० । आतिवात् स्त्रीप् । घृण जटामांसे, यह शीतल, शोफल, प्रचनाङ्गील, सूता-मर्दमजलादि रोगघ्न घोर वर्षकर होता है ।

(शब्दार्थ)

पाकाग्रहृष्टी—श्रेय सम्पदाय विदेव । जो मश्यामी सर्वदा लक्ष्म सुख रहते उन्हें पाकाग्रहृष्टी कहते हैं ।

पाकाग्रमूली (सं० स्त्री०) पाकाग्रमें चमूनिवर्ष-तया प्रकाशने, प्रकाश भाषे घल्, तयोर्ल मूलमज्जा-बहुमी० । लक्ष्मीधि, कुम्भिका, पागा ।

पाकाग्रयान (सं० स्त्री०) पाकाग्र शूष्य जायते-जिन, पाकाग्र-या-शुट, अ-तत् । कीमद्योम, इवांयी लडाज्, ली, पलिन ।

पाकाग्रचिन् (सं० पु०) पाकाग्र रचति, पाकाग्र-

‘रक्ष-पिनि।’ दुर्गके वङ्गिस्थित माघीरपर खड़े हो रक्षा करनेवाला घोर, जो सिपाही किसिकी बाहरी दीवारपर डिफाजत रहता हो।

भाकाश्लक्षित (सं० स्त्री०) भाकाशय्य श्लक्षितम् । भाकाशसे पतितजल, धाममानुसे गिरा हुआ पानी।

भाकाशलोचन (सं० स्त्री०) मानमन्दिर, रसदगाह, बबजरभेटरी। इस स्थानसे घट्टाकी स्थिति या गति देखते हैं।

भाकाशवधन, भाकाशमानित देखो।

भाकाशवत् (सं० द्वि०) भाकाशः शून्यं पक्षराशय गन्धत्वम्, भाकाश-मत्तुप मस्य वत्वम्। १ भाकाश-गामी, पासमानुसे चलनेवाला। २ विसृत, कुगादा, सम्या-चौडा, पासमानु-जैसा।

भाकाशवर्धन (सं० स्त्री०) भाकाशे शून्य वक्षं पत्याः, ७-तत्। शून्यमार्ग, भाकाशपथ, धाममानी राह।

भाकाशवल्ली, भाकाशवली देखो।

भाकाशवज्रिका, भाकाशवज्री देखो।

भाकाशवल्ली (सं० स्त्री०) भाकाशय्य वल्ली मतीव । भाकाशवेत्त, धमरवेत्त। यह तिन्ना, पिच्छला, नित्र-रोगघ्नी, पानिवर्धनी, हृद्या और पिच्छद्रेषामनाग्निनी होती है। (भाष्यकार) इसे मधुरा, कटु, पिच्छघ्नी, शुक्रहृत्कारि, रसायनी और वस्या पाते हैं।

(राजनिघण्टु)

भाकाशवापी. (सं० स्त्री०) भाकाशमानित देखो।

भाकाशवायु (Atmosphere) वायुमण्डल, इसका कुरा, जो वायुमण्डल पृथिवीकी चारो ओरसे घेरे हुए है, उसे भाकाशवायु कहते हैं। अहिद एव प्राणिके जीवन धारण करनेकी भाकाशवायुःतितान्त्र आवश्यक है। इस वायु योगमें शब्द एक स्थानसे दूसरे स्थान जाता है। इसीसे धुँयका उच्चाप लगता और रीढ़का रूपान्तर होता है। भाकाशवायु रहनेसे गोघूलिके समय रोगनीके वाद धीरे-धीरे शून्यकार होता है। नहीं तो धुँयस्त होनेके वाद एकदम शून्यकार हो जाता है। इससे मरीचिका प्रकृति बहुत भौतिक दृश्य देखनेमें पाते हैं।

मन्थाकर्षणके निमित्त भाकाशवायुका भाकार ठीक पड़े जैसा है। इसका सारा भार पृथिवीके ऊपर पड़ा है। अन्यथा तरल वस्तुओंकी तरह इसमें भी भार झालनेकी क्रिया ठीक जलके तुल्य है। परन्तु इसकी भीतरी घबह्या घोर और तरल वस्तुओं जैसी नहीं है। भाकाशवायुके परमाणु परस्पर प्रतिविम्ब हुआ करते हैं। सुतरां जिस परिमाणसे प्रतिघेपका जोर पड़ता, इसका भार भी उसी परिमाणसे अन्य अन्य तरल वस्तुओंसे घृण्य रहता है। इसलिये बाहरका जोर देखकर हमें घोर और तरल वस्तुओंके समान कहते हैं। अतएव समान भाकारका जल और भाकाशवायु लेनेसे बाहरके भारमें भाकाश-वायुका ही अधिक परिवर्तन होता है, जलका नहीं। इसीसे ऊपरको घेपका पृथिवीके निकट वायुका जो तह रहता, वह अधिक घन है। कारण अधिक संचाईपर चारो ओरसे प्रति घस्य परिमित वायुका भार पड़ता, इसीसे परमाणुका प्रतिघेप बल फेंस जाता है।

तौलनेसे वायुका गुरुत्व अष्ट मालूम होता है। पहले वायुपूर्ण कांचका एक मोलपात्र तौल पीछे वायुनिष्काशन-यन्त्रसे उसकी हवा बाहर निकाल फिर तौलनेसे उतना भारी नहीं मालूम पड़ता। इसलिये जिस परिमाणसे भार कम पड़ जाता, वही वायुका गुरुत्व है। तापमान-यन्त्रमें ६०° और वायुमान-यन्त्रमें ३०° ताप होनेसे १०० घन इंच परिमित शुष्क वायुका वजन प्रायः ११'०४ घन होता है।

किसी चीजको डुबाकर रखनेसे उसको चारो ओर जल घट जाता है। आर्किमिडिसने स्थिर क्रिया, किसी चीजको डुबाकर रखनेसे उसकी चारो ओर जल जिस परिमाणसे घटता, ठीक उसी जलके परिमाण चीजका वजन कम पड़ता है। वायुके सम्बन्धमें भी ठीक यही नियम देखा जाता है। इसकी परीक्षा प्रति सहज ही हो सकती है। किसी छोटी तराजूमें लड्डीकी एक ओर वायुपूर्ण कांचके पात्रको मुँह बन्द करके खटका और दूसरी ओर

उत्तमे ही वजनका षट् बढ़ा दे। फिर तराजूकी वायुनिष्ठागत-यन्त्रमें रखकर मय हवा बाहर निकाल देनेमें नियम भारी चीक, रङ्गी, अधिक भारके कारण तराजूकी छट्टी भी छपर ही झुक जायगी।

पाकागणयुक्ती पाण्डित चण्डके समान होती है। वेन्द्रके निरुद्ध प्रविषीके दोनों प्राक्त पतले घोर दशे दृप तथा मध्यस्थल लंघा है। यह भवी मति नियत नहीं हुआ। शून्यमें कदातिक पाकागणयु है। पनेकीकी अनुमान होता, कि ५० से १०० कोस तक यह वायु रक्ष सकता है।

वायुमें भार होना इसका एक विशेष गुण है। जलकी कलमें यह गुण साफ मालूम पड़ता है। नलके भीतर छट्टी पच्छीतरह सटी रहनेपर वगलमें हवा भा जा नहीं सकती। छट्टीकी छींफ कर छपर छठा सेनेमें भीतर खाली हो जाता है। उस समय नलके बाहर जल छठ पानिमें छपर वायु-स्रग्भका भार पड़ता, सुतरां वायुके गुरुत्वमें यह छपरकी घोर बढ़ता है। नलकी छट्टी प्रायः ३४ फीट छठ पानिपर लम छपरकी घोर भपटकर दीड़ता है। इसमें साफ हो मालूम पड़ता, किसी वायुस्रग्भका वजन ठीक वैसी ही चक्राकार घोर ३४ फीट लंबे जलस्रग्भके समान है।

जलकी चपेचा पारा १३.६ गुण भारी है। पारद-स्रग्भकी एक घोर वायुका भार न पड़ने घोर दूसरी घोर लम जानिमें जलस्रग्भकी चपेचा इसकी लंघाई १३.६ गुण कम होती, अर्थात् प्रायः १० दृप रहती है।

रासायनिक परीचा द्वारा नियत हुआ, कि १०० पेंग शुद्ध वायुमें यह सक्षम पदार्थ विद्यमान है—
 द्रवधार ०.६८४, पवित्रजन २३.१० घोर चारास्य ०.६ टेंग।

पाकागणित (सं० खी०) सन्दिग्ध जीवतसाधन, गैरमुद्धर भाग, जो कसामो बंधो न हो।

पाकागणितक (सं० खि०) १ सन्दिग्ध प्रातिपाला, जो मुद्धर भाग रखता न हो। २ पाकागणके जसपर पाण्डित, जिसे सिवा मीहके दूसरा पानो न मिले।

पाकागणनित (सं० खी०) पाकागण जल, पर्वो-दक, मीहका पानो। यह रुष्य, दीपन, पच्यद, ज्ञाना-नामक, यमग घोर मीहग होता है। किन्तु मय पाकागणनित कसुप एवं दीपदायक है। (ल० ११८८)
 पाकागणस (सं० खि०) गगनस्थायी, हवायी, पास-मानुमें रहनेवाला।

पाकागणस्फटिक (सं० पु०) पाकागणस्य स्फटिक इव। स्फटिक विषेय, किसी किष्कका बिलोरी पत्थर। कहा जाता, कि यह पाकागणमें उत्पन्न घोर सूर्यकान्त पर चन्द्रकान्त मीदशे दो प्रकारका होता है।

पाकागणन्यायतन (सं० खी०) १ पचीमतका स्थान, सा-इन्तिहायीका मुकाम। २ मोह जगत् विषेय।

पाकागणस्तिकाय (सं० पु०) कमधा० जेन-मतसिद्ध जीव एवं पापरलभिष पदार्थ विषेय, जेनीके छः पदार्थोंमें एक। इसका कोयी रूप नहीं रहता। सोक तथा पसोक दोनों स्थानोंमें यह विद्यमान है। जीव एवं पुद्गल इसीके मध्य पयकाग पाता है।

पाकागी (हि० खी०) १ चादनी। यह धूप पट्टे-रक्ष बधानेके लिये तनती है। (वि०) २ पासमानी।

पाकागीय (सं० खि०) पाकागण्येदम्। पाकागण-सम्बन्धी, हवायी।

पाकागीम (सं० पु०) १ पाकागणके ईम, इन्द्र। २ धर्मशास्त्रानुसार—निराभ्यं प्यक्ति, धीरुष गन्गु। कथे, घोरत, गुरीय घोर सीमारकी तरह भिवा हुआये दूसरी चीज पर कब्जु। न रपमेंवालेको पाकागीम कहते हैं।

पाकागण, पाकागण १की।

पाकिण्ण, चन्द्रिष्य १की।

पाकिण्य (सं० खी०) पाकिण्य भाषः पत्तु। दरिद्रता, गुरुजन, गुरीवी।

पाकिदलित (सं० पु०) १ देगविषेय, एक सुक्क। २ पतदेसावाची, इसी देगका रहनेवाला। (ल० ११९१६)

पाकिज (सं० खि०) चन्द्रमन्द, बुद्धिमान्, समभ्रदार।

पाकीर्त्त (सं० खि०) ब्याप्त, विदित, मामूर, कौता हुआ।

शाकीम् (वे० च०) शा-कन् बाहु० डीमि ।
 १ वर्जन, रोकटीक । २ वितर्क, मुवाइसा ।
 शाकुचनं (सं० स्त्री०) शा कुचि-सुट् । १ सङ्कोचन,
 इनकिवाज, दबाव । २ सघय, रूकड़ा करना । ३ यकता,
 टेढ़ापन । ४ वंरुप्य, मरोड । वैशेषिक इति पांच
 प्रकारके कर्मों में एक कर्म मानते हैं ।
 शाकुचनीय (सं० त्रि०) शाकुचनमोल, सिकुड़ने
 लायक, सिमट जानेवाला ।
 शाकुचित (सं० त्रि०) शा-कुचि-क्त । १ सङ्कुचित
 सिकुड़ा या सिमटा हुआ । २ शामुग्न, टेढ़ा ।
 शाकुधीर्हिषा (हिं० स्त्री०) हिंसित कर्म, जोशके
 साथ तकसीफ दिष्ट कामका करना ।
 शाकुण्डन (सं० स्त्री०) १ गुठला जानिकी झालत,
 कुन्द पड़नेकी बात । २ लज्जा, गर्म ।
 शाकुण्डित (सं० वि०) १ कुन्द, गुठला, जो चसता
 न हो । २ लज्जित, गर्मिन्दा ।
 शाकुर्वती (सं० स्त्री०) पर्यंत विगेष । (राजयज्) ।
 शाकुल (सं० त्रि०) शा-कुल-क । १ व्यध, घबराया
 हुआ । २ अनियमित, वीतरतीव । ३ विह्वल, आपसि
 बाहर । ४ प्रतिक्ल, सुखान्निप । ५ व्याप्त, माचूर,
 मरा हुआ । सद्दिग्ग, निराकुल, पर्याकुल, व्याकुल
 और समाकुल शब्द भी उपरोक्त अर्थमें भा सकते हैं ।
 (स्त्री०) ६ निवासित स्थान, जिस जगहमें लोग रहें ।
 (पु०) ७ अन्नभेद, किसी किसका घोड़ा ।
 शाकुलकत् (सं० स्त्री०) अककार, अकरकरहा ।
 शाकुलता (सं० स्त्री०) शाकुल-द्वी ।
 शाकुलत्व (सं० स्त्री०) १ सञ्चय, समुदाय, अम्बार,
 ढेर । २ व्याकुलता, मोह, घबराहट ।
 शाकुला (सं० स्त्री०) तत्तापज गोधूमाम्दि, गर्म
 और कच्चा गेहूं यगैरह । तप्त एवं अपक्व गोधूमको
 शाकुला कहते हैं । यह गुरु, तप्य, सधुर और बल-
 कारी होती है । (राजनिघण्टु)
 शाकुलाकुल (सं० त्रि०) शाकुल प्रकारे द्विर्भावः ।
 अत्यन्त शाकुल, निहायत परैगान् ।
 शाकुलि (सं० पु०) शा-कुल-इन् । १ सधुर पुरी-
 षित विषय । २ शाकुलत्व, परैगानी ।

शाकुलित (सं० त्रि०) शा-कुल-क्त । १ व्याकुली-
 भूत, घबराया हुआ । २ सञ्चय, परैगान् । ३ दुःखित,
 आफतज्दा, सुधीवतमें पड़ा हुआ ।
 शाकुलीकृत (सं० त्रि०) अनाकुलं शाकुलं कृतं
 शाकुलं भभूततद्वाये चि क्त कर्मणि क्त । व्याकुलता-
 प्रापित, जो परैगान् किया गया हो ।
 शाकुलीभूत (सं० त्रि०) अनाकुलं स्वयमाकुलं भूतम्,
 शाकुल-धि-भू-क्त । आप ही शाकुल होनेवाला, जो
 खुद-ब-खुद घबरा गया हो ।
 शाकुलेन्द्रिय (सं० त्रि०) स्थात्मचित्त, दिलमें घब-
 राया हुआ ।
 शाकुट (सं० त्रि०) निष्कासित, निकाला हुआ ।
 शाकुषित (सं० त्रि०) शा-कुष-क्त । ईयत् बहुवित,
 कुक्ष सिकुड़ा हुआ ।
 शाकृत (सं० स्त्री०) शा-कृ भावे क्त । १ शाम्य,
 मानी, मतलब, इरादा । २ अभिप्राय, इच्छा,
 खाहिश ।
 शाकृति (सं० स्त्री०) शा-कृ-भावे-ज्ञिन् । १ अभिप्राय,
 मतलब । संज्ञायां ज्ञिन् । २ स्थायशुभ मनुष्यारा निज
 शतरूपा नाथी पक्षीषि उत्पादित कन्याविशेष । भाग-
 वतके तृतीय स्कन्धमें शाकृतिकी उत्पत्तिकी कथा यों
 लिखी है,—ब्रह्माका शरीर पड़ले दो भागोंमें विभक्त
 हुआ था । उसका एक भाग पुरुष और दूसरा
 स्त्री बना । उसमें पुरुषका स्थायशुभ मनु और स्त्रीका
 नाम शतरूपा पड़ा था । स्थायशुभ मनुने शतरूपाके
 गर्भमें पांच सन्तान उत्पन्न किये । उनमें दो पुत्र
 और तीन कन्या थीं । पुत्रोंके प्रियव्रत एवं उत्तानपाद
 और कन्यायोंके नाम शाकृति, देवहति, और प्रसृति
 रहे । पीछे स्थायशुभ मनुने ही शाकृतिका विवाह
 रुचिके साथ कर दिया ।
 शाकृतिप (वे० त्रि०) अपनी इच्छा पूर्ण करनेवाला,
 जो अपनी खाहिशकी पूरा करता हो । (पथ० ४० ३१०२)
 शाकृती (हिं०) शाकृति शब्द ।
 शाकृत (वे० त्रि०) १ निकट शानोत, नज्दीक
 लाया हुआ । २ समीपस्थ, पास रहनेवाला ।
 शाकृति (सं० स्त्री०) शा-कृतिने, व्यन्त्ये, आतिरनय,

प्राकृ करके लिङ् । १ मीर, जिह्व । २ पाकार, मूत्र । ३ मद्यप, निगान् । ४ व्यदहार, पानपसन । ५ जाति, क्षीम । ६ ह्यदोविशेष । दममें बायीं-बायींम पक्षके वार पद होते हैं । ७ पयव संस्थान-विशेष, यनापट । तर्कशास्त्रके मतमें जातिनिष्ठको प्राकृति कहते हैं । जिसमें जाति पौर जातिनिष्ठ जाना जाता, वही प्राकृति है । जैसे गौमे गोत्वादि 'जाति एव' शास्त्रादि संस्थानविशेष लिङ् है । यह क्षीय तथा लभके पयववर्गके नियत एव च्युद्ध (तर्क)में चमक प्रकारकी होती है । (संस्थानसम्बन्ध १५७०)

प्राकृतिगण (सं० पु०) प्राकृतो प्राकारे प्रसिद्धो गणः, शाक०-तत् । पादगंधेषु, नमूनेकी फेहरिस्त । यह व्याकरणके नियम विशेषमें सम्मन्य रहता है । इसमें प्रत्येक मन्द् नहीं, केवल पादगंध प्रकाशित होता है ।

प्राकृतिच्छया (सं० स्त्री०) प्राकृतिं छाद्यति, छद प्राये विद्, इन् इन्मः विष् क्षोपः टाप्, १-तत् । १ क्षीयधि, घाना । २ घोषातकी सता, सटजीरा ।

प्राकृतिमत् (सं० द्वि०) प्राकारयुक्त, घृतयाना ।

प्राकृत (सं० द्वि०) प्रा-क्षय-क्त । प्राकर्मयुक्त, शीघ्रा वृषा ।

प्राकृतमानस (सं० द्वि०) भ्रान्ताधित्त, दिलमें पवराया वृषा ।

प्राकृतपत् (सं० द्वि०) १ प्राकर्षक, धीपनेवाला । २ सम्बोद्धक, फरेकता करनेवाला ।

प्राकृष्टि (सं० स्त्री०) प्रा-क्षय-सिन् । प्राकर्मप, क्षमिग, धेवताम ।

प्राकृष्टिमन्थ (सं० पु०) प्राकर्मपका मन्थ, दूधमें मद्युपकी धीप लानेवाला अफयुत् ।

प्राकृष्य (सं० षष्ठी०) प्राकर्मप करके, शीघ्रके ।

प्राकृष्यमाप (सं० द्वि०) प्राकर्मप किया जानेवाला, जो शीघ्रा जा रहा हो ।

प्राडे (सं० द्वि०) प्राह्, क्षामते, (संस्थानसम्बन्ध १५७०) प्राडे प्रत्यये धातोर्लोपय निपात्यते । १ पर्वोक्तता, पीडे करनेवाला । (षष्ठी०) २ पानिक्त, निकट, नजदीक, पास, पड़ोसमें ।

प्राडेकरा (सं० स्त्री०) प्राडे निकटे करो यथाः । १ यकाधि, कैषी पांष । २ निकटकी दृष्टि, पाषण्डो मज्जर । नेत्रका विशेषण यन्नेसे यह मन्द् ओडित्ति होता है ।

प्राडेनिप (सं० द्वि०) प्राडे निकटे निपयति, प्रा-डे-नि-प-त-ड । १ निकट घतित होनेवाला, निकट-गामी, पाससे गुजरनेवाला, जो नजदीक गिर रहा हो । के प्राकृनि पन्ति पध्याकप्राने पतन्ता इत्यर्थः । २ मधायी, पक्कमन्द् ।

प्राकीयल (सं० स्त्री०) पकुगनप्य भापः, पकुगन-पय्, द्विपदह्रिः पूर्वेष्य था । पपाटय, पपटुता, नावाक्षिणो, वैहङ्गमपन ।

प्राक्त (सं० द्वि०) प्रागमित, प्रपय, प्रमीदा, प्रमदार, मुडा वृषा ।

प्राकृत् (सं० पु०) प्रा-कृत्-घञ् । १ शीघ्रकार-पूर्वक रोदन, विज्ञाष्टकी बनायी । २ प्राज्ञान, पुकार, बुलावा । ३ मन्द्, पादाज् । प्राकृत्पते प्राहृयते, प्रा-कृत् कर्मणि घञ् । ४ मित, दोषा । ५ भ्राता, भायी । प्राकृत्पते परस्परं अर्धया प्राहृयते यत्, प्राधारे घञ् । ६ दाहय युव, घमासान सहायी । ७ दुःखियोंका रोदनस्थान, पकुष्टर्दोंके रोनेकी जगह । प्राकृत्ति घञ् । ८ समीपस्थ राजाके पीछेका नरीय । ९ युद्धधनि, लसकार । १० राजा । ११ मासक, क्षीर । १२ बलापहारो, गासिष, दवा घेठनेवाला मन्द्स । १३ प्रहसन । युद्धकी जिम पवसामें पक यह दूधरसे चलवान् निकमता, छी प्राकृत् कहते हैं ।

प्राकृत्तन (सं० स्त्री०) प्रा-कृत्-त्-त् । १ शीघ्रकार-पूर्वक रोदन, विज्ञाष्टकी बनायी । २ प्राज्ञान, पुकार ।

प्राकृत्तक (सं० द्वि०) प्राकृत् रोदनस्थानि मकृति, प्राकृत्-त्-त् ठञ् था । दुःखोंके रोदनस्थानको जाने-माना, जो पकुष्टर्दोंके रोनेकी जगहकी जाना हो । (स्त्री०) प्राकृत्तिका; रोदनस्थानको स्त्री ।

प्राकृत्तित (सं० स्त्री०) प्रा-कृत्-माये क् । १ कृत्तन, विज्ञाष्ट । २ रोदन, बनायी । (द्वि०) ३ कृत्तन-

करनेवाला, जो चिन्ता रक्षा हो। ४ चामन्धित, प्राणित, बुलाया हुआ।

श्राक्रान्दिन् (सं० त्रि०) श्राक्रान्दति, श्रा-क्रान्द-णिनि। १ रोदनपूर्वक श्राद्धानकर्ता, रो-रोके बुलानेवाला। २ कलकल करनेवाला, जो चीख या चिन्ता रक्षा हो।

श्राक्रम (सं० पु०) श्रा-क्रम-घञ् न वृद्धिः। १ समीप गमन, उपस्थिति, प्राप्ति, रसायी, हासिल, पहुँच। २ भवस्कन्द, आपात, हमला, धावा। ३ प्रतिभारोपण, ज्योदा सादनेकी बात। ४ शक्ति, बल, ताकत, शोभ।

श्राक्रमण (सं० स्त्री०) श्रा-क्रम-ण्यट्। १ भवस्कन्द, हमला। २ दमन, निग्रह, दबाव। ३ प्रसारण, फंसाव। ४ पद्यगमन, बड़ावढ़ी। श्राक्रम्यते पर-लोकोऽग्निं करणे घञ्। ५ परलोकप्राप्तिसाधन विद्याकर्मादि। श्राक्रमति अभिभवति क्षुधान्, श्रा-क्रम-भच्। ६ चन्न, अनाज। (घे० त्रि०) ७ निकट उपस्थित होनेवाला, जो नज़दीक आ रहा हो।

श्राक्रमणीय (सं० त्रि०) १ निकट उपस्थित होने योग्य, जिसके पास जायें। २ आपात पाने योग्य, जिसपर हमला पड़े। ३ आरोहण क्रिया जानेवाला, जो दधाने लायक हो।

श्राक्रमित (सं० त्रि०) आपात किया हुआ, जिम्ह-पर हमला पड़ा हो।

श्राक्रमिता (सं० स्त्री०) प्रौढ़ा नायिकामेद। यह अपने नायकको सर्व प्रकार यश कर लेती है।

श्राक्रम्य (सं० अर्थ०) श्राक्रमण करके, हमला मारकर। (त्रि०) श्राक्रमण्ये देखो।

श्राक्रान्त (सं० त्रि०) श्रा-क्रम-क्त। १ अधिष्ठित, नज़दीक पहुँचा हुआ। २ परामूल, हारा हुआ। ३ प्राप्त, पाया हुआ। ४ अधिष्ठित, जो कृद्घञेन आ चुका हो। ५ भवस्कन्दित, हमला खाये हुआ। ६ अधिष्ठित, जो मोचा देख चुका हो। ७ परि-लुप्त, घिरा हुआ। ८ विह्वल, घबराया हुआ। ९ पीड़ित, तकलीफ पाये हुआ। १० व्याप्त, भरा हुआ।

श्राक्रान्तमति (सं० त्रि०) १ मनसा परामूल, दिलसे

हारा हुआ। २ भवगाढ़-हृदय, जो दिलपर धक्का खा चुका हो।

श्राक्रान्ति (सं० स्त्री०) श्रा-क्रम-क्तिन्। १ श्राक्रमण, हमला। २ उत्थान, चढ़ायी। ३ पराभव, हार। ४ बल, ताकत।

श्राक्रय (घे० पु०) आपणिक, दुकानदार।

श्राक्रामक (सं० त्रि०) उपलब्धी, गनीम, चढ़ पाने-वाला। (स्त्री०) श्राक्रामिका।

श्राक्रोड़ (सं० पु०) श्राक्रोद्यतेऽत्र, श्रा-क्रोड़-घञ्। १ क्रोड़ास्थान, खेलकी जगह। २ उद्यानादि, बाग बगैरह। 'दुलालाक्रोड़ उद्याने रामः साधारणं वनम्।' (चमर) ३ क्रोड़ा, खेलकूद। ४ कदव्यामकी किसी पुत्रका नाम। (त्रि०) श्राक्रोड़ति, श्रा-क्रोड़ कर्तरि भच्। ५ विहारशौल, खिलाड़ी।

श्राक्रोड़न (सं० स्त्री०) विहार, विलास, खेल, तमाशा।

श्राक्रोड़िन् (सं० त्रि०) श्रा-क्रोड़-धिण्यन्। क्रोड़ा-ग्रीन, खेलाड़ो। (स्त्री०) श्राक्रोड़िनी।

श्राक्रुष्ट (सं० त्रि०) श्राक्रुश्यते स्म श्रा-क्रुश-क्त। १ निन्दित, तिरस्कृत, झुंका हुआ। २ शब्दित, विज्ञाया हुआ। ३ अपवादित, गाली खाये हुआ। ४ शप्त, कोषा हुआ। (स्त्री०) ५ प्राहान, पुकार।

श्राक्रोश (सं० पु०) श्रा-क्रुश-घञ्। १ श्राप, बद-दुवा। २ निन्दा, इकारत। ३ अपवाद, गाली। ४ प्राहान, पुकार।

श्राक्रोशक (सं० त्रि०) श्राक्रोशति, श्रा-क्रुश-ञञ्। श्राक्रोशकर्ता, कोसनेवाला।

श्राक्रोशन (सं० स्त्री०) श्राक्रोश देखो।

श्राक्रोशनीय (सं० त्रि०) श्राक्रोश देने योग्य, कोसने काबिल।

श्राक्रोशपरिपह (सं० पु०) श्राक्रोशका सङ्घन, गालीकी बरदाशत। जैन-मतमें २२ परिपह (दुःखोंका सङ्घन) सुनिके लिये धारणीय बतलाया है। उनमें १२ वां परिपह श्राक्रोश-परिपह है। तोत्र मोहनीय कर्मके उदयसे मित्याडिटि प्रायं ज्ञेच्छ, दुष्ट, पापाचारी, उन्मत्त, गर्बित प्रमथति मनुष्यो द्वारा

कष्टे नधि क्रीडयती यस्मिन्ने मन्वन्ति धरन् पौर
 इदमिं शुद्धे ममान् लगनेयानि कठोरं चधनेको
 यद्यपि मुनिलोग सुनने ई, तो भी परिणाममें कसुचित
 नहीं होते। ये वह मोक्षकर सामान्य धारण करने से
 कि,—'इतके चक्रान ई, हमारे देखनेमें इनके दुःख
 उभया ई। इमसिधे ई विचार ईधे यथन कष्ट रहूँ ई।
 इनका कुछ भी चपराध नहीं, हमारे ईधे यथुभ-
 कर्मका उदय ई।'

- पाकोगित (सं० ति०) गावित, कोमा दुषा।
- पाकोगितव्य, चकोरगीव देवो।
- पाकोग्या, चकोरगीव देवो।
- पाकाट्ट (सं० पु०) १ पाकोगकर्ता, कोमनेवाला।
 २ पाकोगकर्ता, पुकारनेवाला।
- पाकात्त (सं० ति०) लगा, भरा या निपटा हुआ।
- पाकित्त (सं० ति०) १ पाट्ट, तर, लो गुणा न
 हो। २ कोमल, सुनायम, लो मयूत न हो।
- पाक्रेद (सं० पु०) पा-क्रेद-वञ्। चार्द्रिभाव,
 तरो, विद्वकाय।
- पाक्रेदिभाव (सं० पु०) चार्द्रकारित्तके गुणका ईतु।
- पांचयुतिक (सं० लो०) पंचयुतेन निहंसम्, ठक्।
 द्यत जेभनेमें धतूपय हुआ है, लुपिका भगडा।
- पाचपच (सं० लो०) उपवास, चनाहार, फाका-
 कर्मी।
- पाचपाटिक (सं० पु०) पचपाटे क्रीडास्थाने विचार-
 खाने वा नियुक्तः। १ पचक्रीडाध्यक्ष, लुपिके चिन्तका
 गतिक। २ विचारध्यक्ष, सुननिष्। ३ प्राडुविधाक,
 गत्राका प्रतिनिधि विचारक।
- पाचपाट (सं० ति०) पचपाटस्य गीतमम्पेटम्,
 पंचपाद-पच्। १ गीतम सुनिका मत। पचपाट-
 मोक्षम्, पच्। २ गीतम सुनिका बनाया हुआ गान,
 गीतमम्पेट। यह गान पांच पंचायतमें समाप्त हुआ
 है। इममें समाप्त प्रथम पाटि योडुम तत्र धर्तित
 है। पचपाट मचोनं वित्त, पच्। १ श्यावगात्रक,
 मेवाधिक, मेवािकी, मंलिंकुदात्।
- पाचाच (सं० ति०) पंचायमान, पैला हुआ।

- पाचार (सं० पु०) पा-चार-विष्-वञ्, विष् लोपः।
 पुदपपर पचम्यागमन पचया लोपर पचम्य गमनका
 दोषरोप, लोडमत, इनजाम।
- पाचारण (सं० लो०) चकार देवो।
 (लो०) पाचारणा।
- पाचारित (सं० ति०) पा-चार-विष्-वञ्-पट, विष्
 लोपः। १ पचम्य लो-पुदप विदयक पचपाद पाग
 दूयित, डिगाना करनेका सुननिष्म। २ ककहित,
 भूठ-भूठका सुननिष्म। ३ चपराधो, सुनहारा।
 ४ निन्दित, गाली चारि हुआ।
- पाचिक (सं० ति०) पचोः दीद्यति जयति जितं वा,
 पच-ठक्। १ द्यतमध्यभ्योय, लुपिके सुनात्तिक।
 २ पच द्वारा जीतनेवाला, लो पामिं लीत सेता हो।
 ३ पच द्वारा जित, पामिंसे जीता हुआ। (लो०)
 द्यतवटप, लुपिमें घोषा हुआ इयया। (पु०)
 ४ पाच्युकहच, पालका पेट्ट।
- पाचिकपच (सं० पु०) म्बट, बाजी, दाव, चोड।
- पाचिकगीषु (सं० पु०) विभीतक पोर मुकुंम बना
 धातकीपुष्पका मय, किसी किष्मको गराव। यह
 पाण्डुरोगघ्न, बन्ध, भेदाहक, मपु, कपाय, मपु,
 गोपु, विषाघ्न पोर पच्यकृपादन होता है। (मन्त्र)
- पाचिकी (सं० लो०) विभीतक-लृक् पोर गानि-
 तत्पुल्लने यनी दूरं सुरा, किसी किष्मको गराव। यह
 पाण्डु, गोक, परं, पित्त, पच, कफ तथा कुटकी दूर
 करती, द्य, दीपन, रेशन एवं मपु होती पोर कुड
 वात बढ़ाती है। (मन्त्र) कोई-कोई तिनिकी
 सुराको भी पाचिकी कहते हैं।
- पाचिष् (सं० ति०) पा-चि-जिष्-लृक्। चार्द्रतमान,
 चापिप चानेवाला।
- पाचिपत् (सं० ति०) १ चक्रने, मारने या उडानने
 वाभा। २ पचम्य कडने या गाली देनेवाला।
 ३ ललित करने या गरमानेवाला। (लो०) पाचि-
 पत्तो, पाचिपत्ती।
- पाचिा (सं० ति०) पा-चिष्-लृक्। १ चक्रा या
 उडाना हुआ। २ गिराया या दूर किया हुआ।
 ३ उभारा हुआ। ४ पाक्रेद, लाया या लुपिका

हुषा। ५ निन्दित, झिड़का हुआ। ७ सट्टा, बराबर।

आक्षिप्तिका (सं० स्त्री०) गीत विरोध, किसी किछका गाना। इसे रङ्गमञ्चपर पट्टुचनेवाला पात्र गाकर सुगाता है।

आक्षिप्य (सं० शब्द०) अपमान करके, झिड़की देकर।

आक्षेप (सं० पु०) आ-क्षेप-णिच्-प्रच्, णिच् लोपः।
१ गोभनाञ्जन हृष, सञ्जिन। (त्रि०) क्षेप-क्त, निपा० ऋष्य च, क्षेपो मत्तः आ-ईपत् सभ्यत्वा, प्रादि समा०। २ शब्द उभक्त, किसी कदर मतवाला। ३ सभ्यक् उभक्त, शब्द मतवाला।

आक्षेप (सं० पु०) आ-क्षिप-घञ्। १ भत्सन, झिड़की। २ अपवाद, गानो। ३ पाकर्षण, कशिश। ४ धनादि प्रमानत रखना। ५ अर्थानुसार विरोध।

“बद्धो बद्ध निन्दित विन्दे प्रतिपत्तये।

निन्दे धामास आक्षेपो न चानाक्षेपे गोविधा ॥”

(आक्षिप्तये च)

बोलनेके लिये ईप्सित विषयकी विरोध प्रतिपत्तिके निमित्त (बैलचरख देखानेके लिये) जो निषेधाभास होता, उसीका नाम आक्षेप है। वक्ष्यमाण विषयके किसी स्थलमें सामान्य प्रकारसे सब विषयोंकी निषेध-उक्ति रहती, फिर किसी अंशान्तरमें निषेध होता है। इससे पहले यही दो भेद किये गये हैं। इनके सिवा और भी दो भेद हैं, यथा,—उक्त विषयके किसी स्थलमें वस्तुतः और किसी स्थलमें वस्तुतः कथनका निषेध। अतएव दोनोंमें दो दो करके आक्षेपके चार भेद होते हैं, यथा,

“कारणपरतविपुत्राया मयाभि मथ्याः कते किमपि।

अपनिह विषयास सवे निदं वक्ष्यदयम् किं नदात्यववा ॥”

इं सखे। तुम यहां कुछ देरतक विद्याम करो; कामके सैकड़ों वाणोंमें कातर सखे। लिये तुमसे कुछ कहना है। अथवा तुम निर्दयहृदय हो, तुमसे और क्या कहूं।

यह नायकके निकट विरहिणीकी प्रिय सखी कहती है। इस श्लोकमें ‘कामके सैकड़ों वाणोंसे कातर’

एवं ‘निर्दयहृदय’ वाक्य द्वारा सामान्यतः सूचित सखी विरहके वक्ष्यमाण विरोध विषयपर ‘इसे विरहमें भरगकी ही सभावना है’ कहनेकी सोचकर पीछे बीनी,—‘क्या कहूं’। यहां नहीं कहूंगी, यह वक्ष्यमाण विरोधका निषेध हो गया। उल्लिखित न होनेपर भी इस बातका भाव समझा जाता है। इसीका नाम निषेधाभास है।

“तव विरहे हरिवाचो निरीचा नवमाक्षिका विदविता।

इयं नितान्तमिदानीनाः किं इतन्नक्षितैरववा ॥”

यह किसी विरहिणीके नायकसे दूती कहती है। हरिवाची (तुम्हारी नायिका) तुम्हारे विरहमें नवमाक्षिका पुण्यको विकसित देखकर इस समय नितान्त ही खेद और सन्तापका विषय हो गई है, अथवा जो बात कही नहीं जा सकती, उसमें और प्रयोजन ही क्या।

इस श्लोकमें, “वह पक्ष जीवित न रहेगी” यह क्षिपा अंश ही निषेधाभास है। अग्रिय वाक्य प्रयोगके निन्दारहित यह वाक्य सुद्धतका अनिष्टजनक है। निकटमें कहा जा न सकनेसे यही वस्तुका विषय है।

नायकवाचं दूती गुणविशालिनिवमहनासती।

सामरपुत्रगुणवचोवचं चक्षुषं भविमः ॥ (प्रा० क०)

नायक वाचं दूती तस्याः प्रियोऽसौतिनमन्याताः।

सं विवये तयाय एवं धर्मावरं मयापः ॥ (च० क०)

नायिकाकी भेजा हुई दूती नायकसे कहती है,—इं बालक। मैं दूती नहीं हूं अर्थात् दूतियां जिस तरह माना मिथ्या प्रवचन वाह्य कहती हैं, मैं वैसी नहीं हूं। नायिकाका प्रिय बना मेरा काम नहीं है। परन्तु उसका मरणान्त होय छटाना तुम्हारे लिये अग्रयणकी बात है, इसीसे यह धर्मवाक्य तुमसे कहती हूं।

यहां—“मैं दूती नहीं हूं” इस उक्त वाक्यका ही निषेधाभास होता है।

विरहे तव तनवी कपं अपयत्त चनाम्।

दाहवच्यवधायस पुत्रो भवितेन किम् ॥

यह दूतीकी उक्ति है,—छगाही तुम्हारे विरहमें किसतरह रात काट सकती, तुम्हारा व्यवसाय

पतिग्रय भयद्वर है। पतएय तुमसे कहकर और
न्या होगा।

यहां कहनेका ही नियेधामास हुआ। प्रथममें
सकीका पयग्रभावा मरण, द्वितीयमें अग्रक
वहृष्यत्वादि, तृतीयमें ययार्थ कथन, और चतुर्थ उदा-
हरणमें दुःखातिग्रय ही विग्रय है।

३ निविगन, दाक्षिणा। ० उपस्थापन, नजदीकका
रखना। ८ अनुमान, कथाम जातिगणित्यादीके मतमें
पासेप (अनुमान) से व्यक्तिका बोध होता है।

शास्त्रेयक (सं० त्रि०) शा-स्त्रि-युक्त। १ निन्दक,
हिकारत करनेवाला। २ आकर्षक, खींचनेवाला।
(पु०) ३ रोग, बीमारी। ४ वातरोग विशेष, लगभुज।
कुपित थायुके धमनीमें प्रवेश करने और बार-बार देह
कंपानेकी शास्त्रेयक कहते हैं। इसमें पट्टे और मसे
पपने पाप पेटे जाती हैं। कोई अन्न अपनी पयस्था-
पर नहीं रहता और शरीर टेढ़ा होने लगता है।
शास्त्रेयक होनेसे घोड़ा आगे बढ़कर पीछे हटता,
अन्न स्वाद्य पड़ जाता और वेदनाते देखायी देता
है। 'वाचेनोऽग्निपथाथो व्यधि निन्दक इति च' (वि०)

शास्त्रेय (सं० स्त्री०) शा-स्त्रि-युट्। प्रासन, प्रेरण,
फेंक, उल्लान।

शास्त्रेयिन् (सं० त्रि०) शास्त्रिपति, शा-स्त्रि-पिनि।
१ आकर्षकारी, खींचनेवाला। शास्त्रेयः सूक्ष्मदृष्ट्या
पर्यालोचनमध्यस्य, इति। २ सूक्ष्म दृष्टि द्वारा आलो-
चना कर आकर्षणकर्ता, यारीक बीनीसे देखभालकर
खींचनेवाला।

शास्त्रेयी, शास्त्रेयिन् दे०।

शास्त्रेयस्य (सं० स्त्री०) अध्यात्ममोक्ष, नवाकर्मियत-
रुहानी।

शास्त्रोट (सं० पु०) शा-पण-षोट। गिरिजाषोट
वृक्ष, पहाड़ी पक्षुरोटका पेड़। अक्षरी दे०। यह
मधुर, मध्य द्विगुण, वातपित्तघ्न, रक्तदायक,
शीतल और कफकोपन होता है। (गणनिष्यु)

शास्त्रोड (सं० पु०) शा-पण-षोड। पक्षुरोटका पेड़।

शास्त्रोदन (सं० स्त्री०) नगया, पापेट, गिकार।

शास्त्रायिष्ट (सं० स्त्री०) इत, सुख सुभाव, मोरचा।

यह अक्सिजन और दूसरे धातुके योगसे बनता है।
जिस धातुका जो आक्सायिड होता, वह उसीके नामसे
पुकारा भी जाता है।

शास्त्रिजन, अक्षिन् दे०।

शास्त्र (सं० पु०) शास्त्रन्यतेऽग्नि, शा-स्त्र-न-ड।
खनित्र, खन्ता, खुरपी।

शास्त्रण (सं० त्रि०) कठोर, सङ्कृत, कड़ा।

शास्त्रणयिष्ट (सं० पु०) भक्षक, भेदक, गारतगर,
सुखरिच, विगाड़ू।

शास्त्रणल (सं० पु०) शास्त्रणयति परबलम्, शा-
स्त्रण-यिच् वाहु० चलच्, यिच् लोपः। १ दूसरेका
बल तोड़नेवाले इन्द्र। २ हन्ता, कानिल। (त्रि०)
३ भेदक, विगाड़ू। ४ शत्रुनाशक, दुश्मन्को बरबाद
करनेवाला।

शास्त्रण्डि (सं० त्रि०) शा-स्त्रण-इन्। भेदक, तोड़
डालनेवाला।

शास्त्रत (त्रि० पु०) १ अक्षत, देवदेवीपर चढ़ाने
या आशीर्वाद देनेका चावल। यह कभी सादा रहता
और कभी कुटुम्ब आदिसे रंग लिया जाता है।
२ नेगी परलोकियो दिया जानेवाला अन्न। यह विवाहा-
दिके समय कोई शुभ कार्य आरम्भ होनेसे पण्डे
बंटता है।

शास्त्रता (फा० वि०) यधिया। जिस घोड़े, कुत्ते या
अकरके अण्डकोश खींचकर निकाल लिये जाते, उसे
शास्त्रता कहते हैं।

शास्त्रन (सं० पु०) शास्त्रन्यतेऽग्नि खन घ। १ पतित,
खन्ता। (त्रि० त्रि० वि०) २ क्षण-क्षण, बार-बार।

शास्त्रना (त्रि० त्रि०) १ वर्णन करना, बताना।
२ पाकाट्चा रखना, दाहिग करना। ३ धिच
लगाना, नजर डालना।

शास्त्रिक (सं० पु०) शास्त्रन्यतेऽग्नि, अन्न करके
इकनू। १ खनित्र, खन्ता। २ अन्नक, खुराक लगाने या
कान खींचनेवाला। या सम्यक् अन्नति भित्ति भूमि
वा, शास्त्रन कर्तार इकनू। ३ खीर, खीर। ४ शूकर,
खुर। ५ मूयिक, चूहा। (त्रि०) ६ अन्नकर्ता,
खींचनेवाला।

शाखनिकवक् (सं० पु०) शाखन्यतेऽनेन, शा-खन करणे इकवक् । १ खनित्र, खन्ता । शाखनति भित्तिं खेतं वा, शा-खन कर्तेरि इकवक् । २ चौर, चोर । ३ शूकर, सूकर । ४ मूयिक, चूहा । ५ मिथिल व्यक्तिके प्रति चौरत्व प्रकाश करनेवाला पुरुष । (त्रि०) ६ खननकर्ता, खोदनेवाला ।

शाखर (वे० पु०) शाखन्यतेऽनेन, शा-खन करणे डर । १ खनित्र, खन्ता । २ खगमज, जानवरका भाट । ३ तपेता, पद्मवल ।

“सुपर्वां शाखनशरीप यथापरैः ।” (धा० १-१०८५४)

(हिं० पु०) ४ अक्षर, हर्फ ।

शाखरिष्ठ (वे० त्रि०) शाखरिं स्थित, भाटमें रहनेवाला ।

शाखा (हिं० पु०) १ शाखरण्याका यात्र, किसी किष्मकी घननी । यह वारीक कपड़ेसे मढ़ा रहता और मंदा छाननेके काम जाता है । २ अघारी, गठरी । (वि०) ३ अचय, समूचा, जो टूटा-फूटा न हो ।

शाखान, शाख शिखी ।

शाखातीज (हिं० स्त्री०) अचययतीया । शाखा-तीजकी हिन्दू षट पूजते और ब्राह्मणकी ध्यान, कस्तूर आदि-द्रव्य प्रदान करते हैं । अचययतीया शिखी ।

शाखान, शाख शिखी ।

शाखानवमी (हिं०) अचयनवमी शिखी ।

शाखिर (फ्रा० वि०) । १ अन्व, पिछला । (पु०) २ अन्त, छोर । ३ फल, हासिल । (क्रि० वि०) ४ शेषमें, सबसे पीछे ।

शाखिरकार (फ्रा० क्रि०-वि०) शेषमें, सबसे पीछे ।

शाखिरी (फ्रा० वि०) अन्व, पिछला ।

शाखिस्य (सं० स्त्री०) शाकस्य, सामग्र्य, सबका सम, कुल ।

शाखु (सं० पु०) शाखनति, शा-खन कु प्रत्ययस्य डिङ्ङावच । १ मूयिक, चूहा । २ अन्वमूयिक, जइली चूहा । ३ चौर, चोर । ४ शूकर, चोर । ५ खनित्र, खन्ता । कर्मणि कु डिङ् । ६ देवदार-ष्ठक ।

शाखुक, शाख शिखी ।

शाखुकरीप (वे० स्त्री०) शाखोः करीपम्, इ-तत् । मूयिककी शृङ्क विष्टा, चूहेका घूखा मैला ।

शाखुकर्णपरिष्का (सं० स्त्री०) शाखुर्णविव परिष्कान्यस्याः, बहुव्री० वा कप् । सुद्रमूयिककर्णी, छोटी मूसाकानी ।

शाखुकर्णी (सं० स्त्री०) शाखोः मूयिकस्य कर्ण इव पर्णमस्याः, स्त्री । १ लसजमूयिककर्णी, पानीकी चूहाकानी । यह छत्र पर दीर्घ भेदसे दो तरहकी होती है । छोटी चूहाकानी फट, उष्ण, कफपित्तहरी तथा भानाहज्वरगुलातिहरी रहती है । (राजनिषध्) २ द्रवन्तीसुप । ३ दन्तीभेद ।

शाखुग (सं० पु०) शाखुना मूयिकेन गच्छति, शाखु-गम-ड । १ मूयिकवाहन गणेश । २ कार्तिकेय । शाखुगम्भी (सं० स्त्री०) कर्पूररहरिद्रा, काफूरी इलदी ।

शाखुघात (सं० पु०) शाखुं हन्ति, शाखु-हन बहुल-वचनात् अण् प्रत्ययः । शूद्रादि नीचजाति, चूहे-मारनेवाला कमीना ।

शाखुजित् (सं० स्त्री०) मूय्यामलकी, सुयिं भावला ।

शाखुपर्णा, शाखुर्णवा शिखी ।

शाखुपर्णिका (सं० स्त्री०) शाखोः कर्णाविव पर्णे-मस्याः, शाक० बहुव्री०, वा कप् टाप् भत इत्वम् । १ खूनमूयिककर्णी, बड़ी मूसाकानी । २ छत्रदन्ती । ३ क्षणदन्ती । ४ छहदन्ती । ५ मण्डकपर्णी ।

शाखुपायाण (सं० पु०) शाखुनामा पायाणः, शाक० तत् । लौहसुम्भक, सङ्गमिकनातीस । यह सिन्ध, पारदका नियामक, लौहभेदकर, धीयं बढ़ानेवाला, कार्निवर्धन, और त्रिदोष तथा सप्रेथाधिनाशक होता है । किन्तु अशुद्ध रह जानेसे सप्तधातुको बिगाड़ता, दाह उत्पन्न करता और चित्त भटकाता है । उस समय लालास्राव होने लगता, कितनी ही वेदना बढ़ती, बहुत-सी व्याधि घेर लेती, तथा मृत्यु भी हो जाती है । टटा बहुत मालूम पड़ती है ।

(रेपकनिषध्)

शाखुफला (सं० स्त्री०) छत्रदन्ती ।

शास्त्रभुज् (सं० पु०) शास्त्रं भुङ्क्ते, शास्त्रभुज्-
क्तिः । १ मूलिकभयक विद्वान्, चूड़े चानिवाला
विनाय । २ रत्नायामार्गं, साल सटत्रीरा ।

शास्त्रमार्ग (सं० स्त्री०) मूलकमार्ग, चूड़ेका मोट्ट ।

शास्त्ररथ (सं० पु०) मूलिकराहन, चूड़ेकी गाड़ीपर
बढ़नेवाले गधेग ।

शास्त्रविष (सं० पु०) दाहमोच, किसी विषका
सहर ।

शास्त्रविषजित् (सं० पु०) सतपणहच ।

शास्त्रविषहा (सं० स्त्री०) शास्त्रो मूलिकस्य विषं
हन्ति, शास्त्र-विष हन्-उ-टाप् । १ देवदासहच ।
२ पौतदेवदानी लता ।

शास्त्रविषाघहा, शास्त्रविषा शब्दोः ।

शास्त्रश्रुति (सं० स्त्री०) श्रुद्-मूलिककर्षी, छोटी
मृमाकानी ।

शास्त्रज्ञर (सं० पु०) शास्त्रभिरुत्कीर्यते, शास्त्र-उद्-
क्त श्रुतदोरविति कर्मणि भप् । मूलिककी निकानी
दुयी मही ।

शास्त्र्य (सं० त्रि०) शास्त्रम्य उत्तिष्ठति, शास्त्र-उद्-
स्था-य । १ शास्त्रं उच्यते, शास्त्र्य-चूड़े मिकला
हुपा । (पु०) २ शास्त्रका चत्याग, चूड़ेका
निकलता ।

शास्त्रे (सं० पु०) शास्त्रेति विभेति प्राप्तिनो
त्थात्, शास्त्रे चपादाने घञ् । १ श्रमया, शिकार,
चहर । २ भय, शौफ् ।

शास्त्रेक (सं० स्त्री०) शास्त्रे स्वार्थे कन् । १ श्रमया,
शिकार । कर्तरि ण्वृत् । २ श्रमया लम्, शिकारी
जानवर । (त्रि०) ३ श्रमयु, शिकारी । ४ भयहर,
शूमार ।

शास्त्रेतीर्थक (सं० स्त्री०) शास्त्रेति विभेति, शा-
स्त्रे कर्तरि षच्; शास्त्रेति शीर्षे यञ् पा कप् । गहर,
शानिक, काम, सुरह ।

शास्त्रेतिह (सं० पु०) शास्त्रेति कृयसम्, ठक् ।
१ श्रमयाकृयस कुङ्कर, शिकारी कृता । (त्रि०) २ श्रमयु,
शिकारी । ३ भयहर, शौलताक ।

शास्त्रेटी (सं० त्रि०) श्रमयु, शिकारी ।

शास्त्रेटी (सं० पु०) शास्त्रेति कृयति, गतिरादि-
त्थात्, शास्त्रे-षच् । शास्त्रेटीह, शास्त्रेटीका शब्दोः ।
शास्त्रेटीशब्दोः ।

शास्त्रेड, शास्त्रेटीशब्दोः ।

शास्त्रोर (प्रा० पु०) १ उत्तिष्ठट घञ्, जो चारा
जानवर खाकर छोड़ देता हो । २ चमार, भज्,
रही, कूड़ा । ३ निष्प्रायोजन द्रव्य, निकली चीज् ।
(वि०) ४ निरर्थक, शिफायद । ५ चमार, फोह ।
६ मलिन, गन्दा ।

शास्त्रम् (सं० पु०) प्रजापति, दुनियाका मालिक ।

शास्त्र्या (सं० स्त्री०) शास्त्र्या-षच्, श्या इत्याकार
शेषः टाप् । संघा, रुद्र, वाचकगण्ड, इष्वा, लक्ष्म,
तक्षुस, नाम ।

शास्त्र्यात (सं० त्रि०) शास्त्र्यायते ध्व, शास्त्र्या कर्मणि
श । १ कथित, कहा हुआ । 'शामं भावितवदितं कर्मि-
नाप्यातमविरितं कथितम् ।' (चर) २ पठित, पढ़ा हुआ ।
३ प्रकाशित, खोला हुआ । ४ साधा हुआ, गरदाना
गया । (स्त्री०) ५ क्रियापद, फेन ।

शास्त्र्यातव्य (सं० त्रि०) १ कथनयोग्य, कहा जाने-
वाला । २ प्रकाशनयोग्य, जाहिर करने लायक ।

शास्त्र्याता, शास्त्र्यात शब्दोः ।

शास्त्र्याति (सं० स्त्री०) शास्त्र्या भावे क्तिन् । १ कथन,
वात । कर्मणि क्तिन् । २ कीर्ति, मोहरत । ३ नाम,
इष्वा, शक्य ।

शास्त्र्यात् (सं० पु०) शास्त्र्यात् क्त्वाति, शास्त्र्या-त्वाच् ।
उपदेशक, बोलने या कहनेवाला ।

शास्त्र्यान (सं० स्त्री०) शास्त्र्या भावे क्त्वात्, क्त्वा-
त्प्राप्तवत्त्वोक्तिश्च । शास्त्र्यात् ११० । १ कथन, बयान् ।
२ वक्तृता, बोलो । ३ कथा, किस्सा, कहानी ।
४ उपन्यास विशेष । इसमें शास्त्र्याता ही उपनि शब्दों
सम वात कहता है, पाठके बोलनेका बोधो काम
नहीं । ५ प्रसिद्ध शास्त्र्यान-संज्ञक सम्युक्त शास्त्रं शीर्षं
मेवावहपादि ।

“शास्त्र्यात् शास्त्रेति विभेति कर्मणि क्त्वात् ।
शास्त्र्यातमविरितं कथितम् । (चर) ११० ।
“शास्त्र्याति शीर्षं यञ् पा कप् । (उद्) ११० ।

शाब्दान्तक (सं० स्त्री०) कथा, छोटा किष्का ।
 शाब्दान्तकी (सं० स्त्री०) विषयवृत्त विगेष, दण्डकका
 एक भेद । यह इन्द्रवज्रा-धोर उपेन्द्रवज्राके योगसे
 बनती है । इसके विषम चरणमें त, ल, ज, ग एवं ग
 धोर सममें अ, त, ल, ग तथा ग रहता है ।
 शाब्द्यापक (सं० त्रि०) कहना देनेवाला, जो ज़ाहिर
 करा देता हो ।
 शाब्द्यापन (सं० स्त्री०) कहलाना, ज़ाहिर कराना ।
 शाब्द्यापक (सं० पु०) शाब्द्यायते कथयति, शाब्द्या-
 -पन् । १ वार्ताबद्ध, दूत, नामावर, कामिद, एतयो ।
 (त्रि०) २ कथक, कहनेवाला ।
 शाब्द्यायिका (सं० स्त्री०) शाब्द्यायन्-पु-युक् ।
 १ गल्प, किष्का । २ गल्पकया विशेष, सखी कहानी ।
 इसमें कभी-कभी पात्र भौ बोनने लगता है ।
 शाब्द्यायिन् (सं० त्रि०) शाब्द्याति कथयति, शा-
 ब्यायिनि-युक् । कथक, कहनेवाला ।
 शाब्ध्येय (सं० त्रि०) १ कक्षाया बयान् क्रिया जानि
 वाला । २ कथनोपयोगी, कहने लायक ।
 शाग (हिं० स्त्री०) १ चमि, पातिय । २ दाह,
 ललन । ३ चण्णता, गरमी । ४ कामाग्नि, ग्रहवतका
 जोय । ५ वत्पुष्य प्रेम, वचकी सुहृद्यत । ६ रैर्ष्या,
 हसद । (वि०) ७ पत्युष्य, निहायत गर्मे । (पु०)
 ८ इत्तुका अथभाग, अगोरा । ९ हलका खड्डा ।
 यह हलकी नोकपर रहता, जिनमें रस्सीसे लुवा
 बंधता है । (सं० त्रि०) १० आकस्मिक, नागहानी ।
 ११ अकक्षात् होनेवाला, जो एकाधिक गुञ्जरता हो ।
 शागहा (हिं० स्त्री०) मरी हुई थी बाल । इसका
 दाना सूख जाता है ।
 शागण (हिं० पु०) अग्रहायण, अग्रहणका महीना ।
 शागत (सं० त्रि०) शा-गम-क्त । १ उपस्थित,
 आया या पहुँचा हुआ । २ गुञ्जरा हुआ । ३ निवास
 करने या रहनेवाला । ४ प्रत्यावर्तित, वापस आया
 हुआ । ५ अंशमें पड़ा हुआ, जो अपने दिष्टमें
 आया हो । ६ गिरा हुआ, दो या पड़ा हो । ७ प्राप्त,
 आया हुआ । (स्त्री०) भावे क्त । ८ शागमन,
 आमद ।

शागतसोम (सं० त्रि०) श्याकुल, पर्यान्, अश्वराया
 हुआ ।
 शागतपतिका (सं० स्त्री०) नायिका विगेष । जिस
 स्त्रीका पति परदेशसे वापस आता, उसको नाम
 शागतपतिका है ।
 शागतसाध्व (सं० त्रि०) भयातुर, खौफ़नादा, डरा हुआ ।
 शागत स्नागत (सं० स्त्री०) यादर-सत्कार, निह-
 मांदारी ।
 शागति (सं० स्त्री०) शा-गम-क्तिन् । १ शागमन,
 आमद, अवायी । २ प्राप्ति, हासिल । ३ प्रत्यावर्तन,
 वापसी । ४ मूल, जड़ । ५ समाप्ति, इत्तेफाक ।
 शागत्य (सं० अर्थ०) शा-गम-त्यप्, वा मानोपे
 तुक् । आवार, पहुँचने ।
 शागत्य (सं० पु०) देववटन, इत्तिफाक ।
 शागन्तव्य (सं० त्रि०) १ शागम्य, पानिवाला । २ प्राप्त,
 हासिल किया हुआ । (स्त्री०) भावे क्त । ३ शागमन,
 आमद ।
 शागन्तु (सं० पु०) शा-गम-तन्तु । १ प्रतिधि,
 पाहुना । २ देववटन, इत्तेफाकिया चीट । (त्रि०)
 ३ शागमनयोग्य, पानिवाला । ४ अथलम्बनयोक्त,
 सट जानिवाला । ५ वाह्य, वैरुभौ, वाहरसे पानिवाला ।
 ६ देवायत्त, इत्तिफाकी ।
 शागन्तुक, शागन्तु शकी ।
 शागन्तुकञ्जर (सं० पु०) पमिधातसे उत्पन्न अ्वर,
 जो पुष्पार चीटके समथ आया हो ।
 शागन्तुज (सं० त्रि०) शागन्तोः हठादागताव्यायते,
 जन-ह । हठात् उत्पन्न, जो एकाधिक पैदा हो । यह
 शब्द रोगादिका विशेषण है ।
 शागन्तुत्रण (सं० पु०) सद्योत्रण, ताला लक्ष्म,
 टटका घाव ।
 शागम (सं० पु० स्त्री०) शा-गम-च । १ शागमन,
 आमद, अवायी ।
 "शुभकालेनाम एव इहताम्" (भाषे ११०)
 "शागम शागमनमेव" (सङ्घिताय)
 २ प्राप्ति, आमदनी । ३ उत्पत्ति, पैदायम । शाग-
 म्यते प्राप्यतेऽनेन, शा-गम करवै, घ । ४ सामदाय-

भेदादि उपाय, जानूनी महसूस। ५ शास्त्रका परि-
 त्तम, इन्द्रकी महिमता। 'महत्तुपपत्तापरिदमः' (महिनम)
 व्यवहारमात्रकाकार एव वाचस्पति मिश्रने सिद्धा,
 कि आगम शब्दका अर्थ क्रियादि है। ६ तत्त्व धाये-
 दक शास्त्र, जड बतानेवाला इत्य। ७ शास्त्रमात्र,
 मज्जुषी रिसाला। ८ वेद। ९ मन्त्र। १० तन्त्रशास्त्र।

"आगत" निरवन्तु। गुण मन्त्र निरिभातुधम्।

मन्त्र भातुदेवता महादानम सन्धिने ॥

पदाचार्ये वाचस्पत्यन (११-५)।

११ व्याकरणोक्त प्रकृति वा प्रत्ययका अनुपघाती षट्
 इत्यादि शब्दविशेष। १२ उपस्थिति, पडुंच।
 १३ योग, जोड़। १४ मार्ग, राह। १५ नदीसुख,
 दरयाका सुधाना। १६ सम्पत्तिकी हृष्टि, जायदादकी
 बढ़ती। १७ नोतिशास्त्र। (वि०) १८ निकट जाने-
 वाला, जो पास पडुंच रहा हो।

आगमजानी (हिं०) आगमजानी देखो।

आगमज्ञानी (सं० हिं०) आगम ज्ञान लेनेवाला,
 जो होनहारकी समझ जाता हो।

आगमन (सं० स्त्री०) आ-गम भावे लुट्। १ आगति,
 आगम, आवासी।

"नरकोदय सङ्घे हृष्टद सङ्घस्य शोभि महीन।

निमि तुकार आगमनं पुंन मयि उपति वचकीन ॥" (सुनयो)

२ प्रत्यावर्तन, वापसी। ३ उत्पत्ति, निकास।

आगमनकारण (सं० स्त्री०) आगमका हेतु, जानेका
 सबब।

आगमनतत् (सं० षष्ठी०) आगमके कारण, जानेसे,
 या पडुंचनेके सबब।

आगमनिरपेक्ष (सं० वि०) प्रमापपत्रका भरोसा
 न रखनेवाला, जो सनदका सुझता न हो।

आगमनीत (सं० वि०) पठित, परीक्षित, पढ़ा या
 ख्या हुआ।

आगमरहित (सं० वि०) १ प्रमापपत्र न रखनेवाला,
 जिनके पास सनद न रहे। २ शास्त्रशून्य, मज्जुषी
 रसासिधे खानी।

आगमशक्ता (सं० पुं०) १ शिव। २ श्पोतिषो, भविष्य
 ऋषिनेवाला, जो होनहारकी पता देता हो।

आगमवत् (सं० वि०) आगमोत्सव, आगम
 षष्ठीयें मनुष्य, मध्य पत्रम्। १ आगमयुक्त, या
 पडुंचनेवाला। (षष्ठी०) २ वेदकी तरह।

आगमयापी (सं० स्त्री०) भविष्यवापी, भोगीभोगी।

आगमविद्या (सं० स्त्री०) वेदविद्या।

आगमहृष्ट (सं० वि०) आगमेश शास्त्रालोचनया
 हृष्टः प्रवीणः, ३-तत्। शास्त्रालोचनया द्वारा मार्शित-
 बुद्धि, जो मज्जुषी रिसाले पढ़-पढ़के होशियार बन
 गया हो।

आगमवेष्ट (सं० वि०) आगमं वेष्टि, आगम-विद्-
 ष्ट, ३-तत्। आगमग्र, होनहार जाननेवाला।
 (स्त्री०) आगमवेष्टी।

आगमवेदिन् (सं० वि०) आगमं वेत्ति, आगम-विद्-
 षिनि, ३-तत्। १ आगम-वेत्ता, होनहार जाननेवाला।
 (पुं०) २ गङ्गाचार्यके परमगुरु गौडपादाचार्य।

आगमसाधेय (सं० वि०) प्रमापपत्रयुक्त, मन्त्र-
 याप्यता।

आगमसोची (हिं० वि०) आगमका ध्यान रखने-
 वाला, जो होनहारका ख्याल रखता हो।

आगमसाधिन् (सं० वि०) आगमस्य साधयश्च
 तो श्रोतव्य, इति। उत्पत्ति एवं विनाशमोल, पैदा
 होने और मर जानेवाला।

आगमसाध्या, आगमसाधिन् देखो।

आगमसाध्या (सं० स्त्री०) आगम-मात्रेण प्राप्तमात्रेण
 आवर्त्तते कण्डूयनमस्याः, आगम-आ-हत चणदाने
 घञ्। १ हथिकानी घुप, बढ़ता। २ घुदुमियश्री-
 कण्ठी भेदासौगी।

आगमिक (सं० वि०) आगमादागतम् उष्।
 आगममात्र, आया हुआ, या पडुंचनेवाला।

आगमित (सं० वि०) आ-गम आर्ये विष्णु-इद-
 विष्णु नोपः। १ पधीत, पठित, पढ़ा हुआ। २ ज्ञात,
 समझा हुआ। ३ ख्यापित, पडुंचाया हुआ।

आगमिन्, आगामिन् (सं० वि०) आ-गम-इनि-
 षित्। १ भाषी, जाने या होनेवाला। २ सामुद्रिक
 शास्त्रज्ञ, हाथकी रखा देखनेवाला। ३ भविष्य-
 वला, भोगीभोगी।

भागमिष्ट (वे० त्रि०) इयं वा मीनतासे उपस्थित
होनेवासा, जो खुशीसे या जब्द-जब्द भा रहा हो।

भागमी, भागमिन् देवी।

भागव्य (सं० त्रि०) १ सुलभ, सुगम, सुमकिन्-
छद्-दखल, पङ्घने काविल। (अव्य०) २ उपस्थित
होके, पङ्घचकर।

भागर (सं० पु०) भागरति सिद्धति जलं यर्षायां
प्रायेषात्, भा-ग्य सेचने भाघारे भए। १ भमावस्था।
वर्षाकालमें भमावस्थाको प्रायः दृष्टि होनेसे 'भागर'
कहते हैं। (हिं) २ भाकर, कान, टेर, खजाना।
३ नमक बनानेका गद्दा। ४ बर्गल, ब्योड़ा। ५ गृह,
घर। ६ छपर। (वि०) ७ उत्तम, बढ़िया। ८ कुग्रह,
होमियार।

भागरवध (हिं० पु०) कपठमाला, गलेकी एक
बौमारी। इससे गलेमें छोटी-छोटी फुगसी निकल
जाती हैं।

भागरा—१ युक्तप्रदेशका एक जिला। यह पश्चिम
गङ्गाका पश्चिम होता और पश्चात् २६° ४४' ३०"
तथा २७° २४' ०" एवं द्राधि० ७७° २८' तथा ७८°
५' ४५" पू०के मध्य पड़ता है। इससे उत्तर मयुरा
एवं एटा, पूर्व मेनपुरी तथा इटावा, दक्षिण दोलपुर
एवं खालियार और पश्चिम भरतपुर है। २ अपने
जिलेकी तहसील। ३ अपने जिलेका गहर।

भागरा नगर यमुना नदीके दक्षिण तटपर अवस्थित
है। यहाँ बहुत दिनतक सुसलमान राजाओंकी
राजधानी रही। अकबरसे पूर्व प्रथम लोदी-वंशीय
सुसलमान सम्राटोंने यहाँ अवस्थान किया था। इम्रा-
होम लोदी बाबरसे युद्धमें परास्त हुए। इसके एक वर्ष
बाद फतेहपुर-सीकरीमें बाबरने राजपूत-सैन्यको परा-
भूत किया। इसके पीछेही भागरमें राजधानी संस्था-
पित हुई थी। बाबरके परलोक जानेपर उनके पुत्र
हुमायूँ शेरशाह द्वारा परास्त एवं दूरीभूत किये
गये। अन्तमें हुमायूँके पुत्र अकबरने ग़ज़नीकी युद्धमें
शरा और दिल्लीसे राजधानी उठा भागरमें संस्थापित
की। अकबरके राजत्वकाल इस नगरमें अनेक दुर्ग
और मनोहर इर्य्य बने थे। सन् १६५८ ई०की

औरङ्गजेब दिल्लीमें अवस्थिति करने लगे। उसी समयसे
भागरे नगरका पतन आरम्भ हुआ। १७८४ ई०की
यह संधियाके हाथ लगा था। परियेदमें १८०१ ई०की
खार्ड लेकने यह स्थान बंगरेजोंके अधिकास्तुक्त किया।

भागरेकी पश्चिमिका सर्वस प्रसिद्ध है। जहा-
गीरने अपने शहरके आरणार्थ जहागीर-महल
नामक एक कबर निर्माण करवायी थी। मोती
मस्जिद, जामा मस्जिद, खास महल, ताजमहल
प्रभृति अपूर्व स्थान शाह-जहाँके समयमें बनाये गये।
जामामस्जिद अर्थात् हृद्य मस्जिद, खेत और रक्तवर्ष
प्रस्तरसे बनी है। शाह-जहाँकी कन्या जहानाराके
आरणार्थ यह निर्माण की गयी है। जहानारा औरङ्ग-
जेबकी भगिनी रहो। औरङ्गजेबने उनको कारारुह
किया था। दिल्लीके निकट उनकी कबर स्फटिककी
तरह परिष्कार (साफ सुधरे) खेत प्रस्तरसे बनी है।

भागरेका प्रसिद्ध दुर्ग सात पत्थरका है।
इसकी चहारदीवारी ४६ हाथ जंघी और परिधि
अन्युन डेढ़ मील है। किलेके भीतर अनेक मकान
बने हैं। सबसे पहले दीवान-खाम है। इसे औरङ्ग-
जेबने निर्माण कराया था। उसके बाद दोवान, खास,
दीवान-खासके बाद खास-महल और खासमहलके
दक्षिण जहाँगीर-महल है। यह पश्चिमिका सुन्दर
खेत प्रस्तरसे बनी है। मोतीमस्जिद दीवान-
खामके उत्तर है। प्रवाद है—एकवार सम्राट् मान-
सिंहके जपर दृष्ट हुये थे। इसलिये मानसिंह किलेके
जपरसे घोड़ा फंदा नीचे कूद पड़े। नीचे जाकर
घोड़ेने तत्क्षणात् प्राणत्याग किया था। मानसिंहके
इस वीरत्वके आरणार्थ अद्यावधि किलेके पास पत्थरके
घोड़ेका शिर जमीनमें गड़ा है। अब किलेके पास
रेलका स्टेशन भी बन गया है।

युक्तप्रदेश या केवल भारतवर्ष ही नहीं, ताज-
महल भुवन विख्यात है। पत्थरकी नक्काशी और
मकान बनानेकी कारीगरीकी बात उठाने समय
ताजमहलका नाम भागे लेना पड़ता है। विचित्र
उद्यानके भीतर यह मनोहर कब्र खड़ी है। इससे
नीचेसे जपरतक खेत पत्थर चगा है। कितना समय

व्यतीत हुआ। किन्तु यह आज भी मयी देय पड़ती, मानो कमकी बनी है।

बाहरमें पड़ने कुछ ऊपर चढ़ने पर उद्यानका द्वार मिनता है। उसके बाद भीचे उतरनेपर बागकी लमीनू है। मामने चौड़ी धीर पक्षी राइ निकली है। दोनों तरफ जनकी प्रणाली, बड़े बड़े पुरातन पामके पेड़ धीर फल-फलके नानाविध हव है। नन्दनवनके सदृश यह स्थान यत्रपूर्वक सजया गया है। मामने ही ताजमहल है। पड़ने पनेक प्रगस्त चतुष्कोण पीठ श्वेत प्रस्तरमें बंधे हैं। इसकी चारो धीर कमकत्तेके किलेवाले मैदानके मान्दूमैण्ट जैसे चार उच्च म्नाम हैं। उनके भीतर ऊपर चढ़नेकी पथ बना है। बीचमें ताजमहलका गुम्बज है। गुम्बजके नीचे दीवारमें बहूसूत्र्य रत्न जड़े एवं कितने ही धनभूटे कटे हैं। गुम्बजके भीतर धीरे धीरे कोई बात कहनेमें उसी समय ऊपरकी धीर प्रतिध्वनि पर प्रतिध्वनि होती धीर सातवार वही बात सुन पड़ती है। मध्यस्थलमें उच्चतम श्वेत पत्थरकी क्वर बनी है। उसके किनारे-किनारे पत्थरका ही कटहरा है। ऊपरकी क्वर अश्ली नर्षी है। सम्मुख द्वारकी बगलमें नीचे उतरना पड़ता है। इसी जगह मन्नाट गार्ड-जहांके पास प्रिय-महिषी सुमताज-महलका क्वर है। मन्नाट प्रेयसीके प्रणयसिन्धुमें डूब धीर प्राणके साथ प्राण दे मानो साथ ही भी रहें हैं।

गाहलझांकी प्रियतमा महिषी पर्जमन्द बानूके धरपायं ताजमहल निर्मित हुआ है। पर्ज-मन्दबानूका दूधरा नाम सुमताजमहल था। सन् ११२८ ई०को सुमताजकी मृत्यु हुई। उसके बाद ही यह मनोहर क्वर भोग निर्माण करने लगे। कहते हैं, कि बीम ज्जार कारीगरोंने बीम वर्ष तक कार्य बना ताजमहलकी समाप्त किया था। मृत्युके बाद गार्ड-जहानू भी सुमताज रागोके पास ही गाड़े गये।

ताजमहल देखो।

तुका (ई०) धीर सबध चागरेका प्रधान वाचिष्य द्रव्य है। कहते हैं—यहां परगाराम अथनीचं दूयी यि। गत सिपाही विद्वोहके समय चागरेके अंगरेजोंकी

बहुत कष्ट भेसना पड़ा। उसके बाद करम-होस्येने विद्वोहियोंको दमन किया।

चागरो (हिं० पु०) सोनिया, नमक तैयार करनेवाला।

चागल (हिं० पु०) १ पर्गल, ब्योड़ा। (वि०) २ पगला, पागे रहनेवाला। (क्रि० वि०) ३ चागे, सामने।

चागला, चला देखो।

चागलित (सं० त्रि०) अथमक, ज्ञान, पद्ममुदी, सुरभाया हुआ।

चागवन (हिं० पु०) चागमन, पाना।

चागवाह (हिं० पु०) धूम, चागकी उड़ा से जाने-वाना धुंफा।

चागविष्ठ (घं० त्रि०) निकट चागमन करनेवाला, जो नजदीक भा रहा हो।

चागवीन (सं० त्रि०) गोः प्रत्यर्पण-पर्यन्तं यः कर्म करोति, भाङ् पूर्वान्तोः कर्मकरेऽयं ख प्रत्यक्षो निवात्यते। चागवीनः। या ३११। ३। गृहस्थके घरसे होइ देनेपर प्रत्यर्पण पर्यन्त गोका काम करनेवाला, जो लोगोंके मकानमें चरागाहकी रवाना करने पर मयेगीकी देव-भान रखता हो।

चागस् (सं० स्त्री०) एति गच्छति दण्डदागम्, इण-पठन् धातोरामादेमय। अपरार्ध, दण्ड, पाप, जुर्म, कुसूर, इजाब, मन्ना। 'वतापराधनीयः।' (अनर)

चागस्कृत (सं० त्रि०) चागसु-कृतः। १ अपराधी, सुजरिम। २ वाधित, प्रतिह्व, विजया हुआ।

चागस्तो (सं० स्त्री०) अगस्त्यस्येयम्, अगस्त्य-पप्-हीप् यतोयः। अगस्त्यकी दक्षिण दिक्।

चागस्तोय (सं० त्रि०) अगस्ताय हितम्, रूप, य तोयः। अगस्त्यका हितकारक, अगस्त्यकी कायदा पङ्चार्चनवाला।

चागस्त्य (सं० त्रि०) अगस्त्यस्येदम्, अगस्त्य-यञ्, य तोयः। १ अगस्त्य सुनि सम्भोय। २ दक्षिण दिक्का।

(पु०) अगस्त्येपरयम्, गर्गादि यञ्। ३ अगस्त्यका अथव्य। अगस्त्य कपडादि यञ्। ४ अगस्त्यहा गोत्रापत्य। (स्त्री०) ५ अकपुय। (स्त्री०) चागस्तो।

आगा (सं० त्रि०) १ निकट उपस्थित होनेवाला, जो अपनी ओर आ रहा हो। (हिं० पु०) २ अग्र-भाग, अग्रभाग। ३ वचनस्थल, सीमा, छाती। ४ मुख, मुँह। ५ ललाट, मला। ६ लिङ्ग। ७ अंगरखे या कुरतेके आगिका दिखा। ८ पगड़ीका उठान। ९ गृहके सम्मुखका भाग। १० सेनाका अग्रभाग। ११ नौका अग्रभाग, मांग। १२ गृहके सम्मुखको भूमि। १३ आगिका डीरा। १४ पहननेके कपड़ेका पट्टा। यह आगे रहता है। १५ परिणाम, नतीजा।

आगा बन्दुखनाम—ईरानके पोशीदा इमाम। इनका निवासस्थान केलुत रहा। सन् १५८४ ई०के समय गुजरातके कपूर लोहाना और दूसरे खाना हिन्दुस्थानी अघ्यायितियोंकी दगाश भोली इनके गांव लेकर पहुंचे। धर्मार्थ प्रेरित व्यक्तियोंका अभाव मिटाने और अपने भारतीय अनुयायियोंको राह देवानेके लिये इन्होंने 'पन्द्याद-जवांमर्दी' नामक पुस्तक लिखा था। उसका अनुवाद सिन्धी तथा गुजराती भाषामें हुआ और बड़े आदरकी दृष्टिसे देखा गया। खाना प्रोरीकी तालिकामें 'पन्द्याद-जवांमर्दी'ने २६ पां खान पाया है। इस पुस्तकमें खानाओंकी प्रार्थना तथा मंस्कार करनेका विषय अच्छीतरह लिखा गया है।

आगा इसलाम ग्राह—वर्तमान हिज्र हायिनेस आगा खान्की पूर्वज। गुजरातके पीर सदरुद्दीनने इसम्रायि-नियाम धर्म सुदृढ बनानेके लिये इन्हें अलीका अवतार प्रसिद्ध कर दिया था।

आगाज (अ० पु०) आरम्भ, शुरु।

आगाह (सं० पु०) गान द्वारा प्राप्ति करनेवाला, जो गानसे हासिल करता हो।

आगाध (सं० त्रि०) आगाधः अतलस्पर्श एव, स्वार्थे अण् आद्योत्पत्तिः। १ अतलस्पर्श, निहायत गहरा। २ सहजमें समझ न पड़नेवाला, जो आसानीसे समझमें आता न हो।

आगान (सं० स्त्री०) १ गानसे प्राप्ति करनेका कौशल, गानसे अभ्यानेका हुनर। (हिं० पु०) २ वर्णन, बयान्।

आगान्तु (सं० पु०) आ-गम-तुन्, निपा० वृद्धिः। अतिथि, मिहमान्, पाहुना।

आगापीडा (हिं० पु०) १ सोच-विचार, खेचतान। २ आदि-पन्त, भलाई-बुराई। ३ देहकी अगाड़ी और पिछाड़ी।

आगामिक (सं० त्रि०) आगमयति भविष्यदसु बोधयति, आ-गम-णिच् वृद्धिः, प्रया० न ङस्त्वः श्वल् णिच् शोषः। भविष्यद्विषय ज्ञापक, आदिन्देकी बातके सुताज्ञिक।

आगामिन् (सं० त्रि०) आगमिष्यति, आ-गम-इनि, णित्वाद् वृद्धिः। आगन्तुक होनहार, आगे आनेवाला। आगामी, आगामिन् देखो।

आगामुक (सं० त्रि०) आ-गम-उकञ्, णित्वाद् उपधा-वृद्धिः। आगमनशाल, आ पहुंचनेवाला।

आगार (सं० स्त्री०) अग कुटिलयागं गतौ घञ्, आगन्तुमृच्छति, षट्-अण् उप० समा०। १ गृह, मकान्, घर। २ कोष, खजाना। जैन मतमें वाधक नियम एवं व्रतभङ्गको आगार कहते हैं।

आगारमोधिका (सं० स्त्री०) १-तत्। गृहमोधिका, द्विपकली।

आगारदाह (सं० पु०) गृहदाह, आतमज्जन, आतमज्जगी।

आगारदाहिन् (सं० त्रि०) गृहदाही, आतमज्जन, आगलग्नाज, घरजलाज।

आगारधूम (सं० पु०) आमारं गृहं धूमयति, आगार-धूम ह्यर्थे णिच्-अण्, णिच् शोषः। १ दीपककी कालिमा, चिरागकी कालक। ७-तत्। गृहस्थित धूम, घरका धूँसा।

आगारधमाद्यतैल (सं० स्त्री०) तैलमेद, धूँवेकी कालिकका तैल। गृहधूम एक तोले, हरिद्रा दो तोले और सुराकिद (गरावका मैल) तीन तोले तीन पल तैलमें पकानेसे यह औषध बनता है। इसे उपदंशपर लगानेसे बड़ा उपकार होता है।

(अकषयिदपञ्जवषं पठ)

आगारलौमिका (सं० स्त्री०) गृहलौमिका, आग्रण-यष्टिका।

भागाङ्ग (ङा० वि०) १ विद्म, ज्ञानो, माह्वर,
जाननेवाला । (ङि० पु०) २ भविष्यद्विषय, भागे
चाननेवाला ज्ञान ।

भागाङ्गी (ङा० स्त्री०) विद्वता, दत्ताता, स्वर ।
भागि, चान्निहोत्र ।

भागिन (ङि० वि०) १ चगसा, भागे रहनेवाला ।
२ भविष्यत्, ज्ञानहार, भागे चाननेवाला ।

भागिता, चान्निहोत्र ।

भागिवर्त (ङि० पु०) चान्निवर्त, भाग वरचाननेवाला बादस ।
भागो, चान्निहोत्र ।

भाग्य (वै० स्त्री०) भा-गुर-क्लिप् । १ प्रतिज्ञा,
चतुर्मास, रजामन्थो । २ प्रमंसा-सम्बन्धीय घोषणा,
फरयाद-तद्वचनम् । पुरोहित इसे यज्ञीय संस्कारमें
उच्चारण करता है ।

भाग्य (सं० स्त्री०) भा-गुर-लुट् प्रथो० गुणा-
भावः । उद्यम, काम, काज ।

भाग्य, चान्निहोत्र ।

भाग्य (सं० स्त्री०) भा सम्बन्ध गच्छति, भा-गम-क्लिप्,
मलोपः । १ प्रतिज्ञा, कौस्त । 'चान्निहोत्रः प्रतिज्ञात्' (चान्निहोत्र)
(ङि०) भावे ङी ।

भाग्य, चान्निहोत्र ।

भाग्यार्ण (सं० त्रि०) भा-गुर गूर वा ङ, रेफात्
परतया तस्य नः । १ उद्यत, मुक्तीद, काम करनेवाला ।
(स्त्री०) भावे ङ । २ उद्यम, कामकाज ।

भाग्यार्ण (वै०) चान्निहोत्र ।

भाग्यार्णम् (वै० त्रि०) भाग्यार्णं चान्निहोत्रम् ।
उद्यम, कामकाज ।

भाग्य (ङि० त्रि० वि०) १ अथभाग्यं, घोड़ी दूर ।
२ मन्थुप, मामने । ३ कौचित्त अथस्यामं, ज्ञानिर
रहते । ४ इमके चान्निहोत्र, फिर । ५ भविष्यत् समय,
चायिन्दा । ६ पीछे, बाद । ७ पूर्व, कृष्ण, पक्षे ।
८ अधिक, ज्यादा । ९ ज्ञोद्वार, गोदमें ।

भाग्य (ङि०) चान्निहोत्र ।

भाग्योष्ण (वै० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (वै० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० पु०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० पु०-स्त्री०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० पु०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० पु०-स्त्री०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० पु०-स्त्री०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

भाग्योष्ण (सं० त्रि०) चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।
भाग्योष्णो तो देवतेऽप्य चान्निहोत्रं चान्निहोत्रम् ।

शान्ती (सं० स्त्री०) अग्निमित्ये, अग्नि-इत्य-क्लिप्, शान्तीत्स्य शरणं ष्टइम्, इष् प्रत्ययः । १ यजमान-का स्थान । यहाँ यज्ञीय अग्नि प्रकल्पित किया जाता है । २ यज्ञीय अग्नि जलानेवालेका कार्य । (पु०) ३ सांस्कृतिक विज्ञ, अग्नि प्रकल्पित करनेवाला पुरो-हित । ४ स्त्रायश्रुय मनुके एक पुत्र । ५ मियत्रत-राजाके एक पुत्र । (वै० वि०) ६ शान्ती धृ द्विज सम्बन्धीय ।

शान्तीधा (सं० स्त्री०) यज्ञीय अग्नि की रक्षा ।

शान्तीधीय (सं० वि०) १ शान्ती धृ वा यज्ञीय अग्निस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला । (पु०) २ शान्ती ध-का अग्नि । ३ शान्ती धृ का उद्धान ।

शान्तीधरा (सं० वि०) शान्ती धृ पुरोहित सम्बन्धीय ।

शान्तीधरा (सं० स्त्री०) शान्ती धृ स्थानमहंति, यत् टाप् । अग्निस्थानिके याग्य शास्त्रा ।

शान्तेन्द्र (सं० वि०) अग्नि य इन्द्र य इन्द्र० धान इ, तौ देवते अस्य, अष् न परपदद्विजः द्वहराभावाच्च इत् । अग्नि एव इन्द्र देव सम्बन्धीय । (स्त्री०) शान्तेन्द्री ।

शान्तेय (सं० वि०) अग्नेरिदं अग्निदेवता वास्य, ठक् । १ अग्नि सम्बन्धी, आतिथी । २ अग्निदेवता-विषयक, अग्नि देवपर चढ़ाया जानेवाला । ३ अग्निमें आगत, आगसे निकला हुआ । अग्नेो अग्न्युद्दोपने साधु ठक् । ४ आग लगनेसे बहू जल उठनेवाला । लाह, घी, सोहन प्रभृति द्रव्य शान्तेय होते हैं । पाण्डुर्वीकी जलाकर मार डालनेके लिये शारण्यायतमें लाह वगैरेहसे ही घर बनाया गया था । ५ पिता-हीपक, सुधाजनन, भूख बढ़ानेवाला । ६ अग्निके समान, आग-डेसा । (स्त्री०) ७ कृत्तिका नक्षत्र । कृत्तिका नक्षत्रके देवता अग्नि होती । इसीसे उसे शान्तेय कहते हैं । ८ अन्न, सोना । अग्निके दीर्घसे उत्पन्न होनेपर अन्न का नाम शान्तेय पड़ा है । ९ रत्न, खून् । रत्नको जठरानलसे निकलने या दिवस्य पित्तद्वय अग्नि का विकार होनेसे शान्तेय कहा जाता है । १० अग्निद्वट्ट क्षाप्रवेद । ११ अन्न विधि । अन्न लगाकर नवानेका नाम शान्तेय है । १२ राजाका चरित्र विधि ।

१३ अक्षविशेष, किसी कृष्णका हृदियार । १४ बन्दूक वगैरेह । जो हृदियार आग लगनेसे चलते या जिनसे आतिथी टुकड़े निकलकर चोट मारते, उन्हें शान्तेय कहते हैं । अग्नेरागतम्, ठक् । १५ अग्निप्रकृतिका कीटविशेष । यह कीट चौबीस प्रकारका होता है,— १ कीटिष्ठक, २ करभक, ३ वर, ४ पत्रवृश्चिक, ५ विना-यिका, ६ ब्रह्मणिका, ७ विन्दन, ८ अमर, ९ वाह्नकी, १० पिच्छित, ११ कुम्भ, १२ वलंकीट, १३ अरिसेदक, १४ पद्मकीट, १५ दुन्दुभि, १६ मकर, १७ अतपादक, १८ पाखाल, १९ पाकमत्स्य, २० कृष्णगुण्ड, २१ गर्दभी, २२ क्रीत, २३ ह्रिमिसगरा और २४ उत्क्रेयक । यह कीट जिसे काटना, उसको पिचन रोग हा जाता है । शान्तागो देवता अस्य, ठक् पुं वद्वावः । १६ खाहा देवताका स्थानीपाक । १७ अग्निपुराण । १८ ब्राह्मण । १९ घृत । २० अग्निकोष । २१ वारुद वगैरेह भड़क उठनेवाली चीज । २२ ज्वानामुखी पर्वत । २३ प्रतिपत् तिथि । २४ दौपन औषध । (पु०) २५ कार्तिकेय । महादेवका दीर्घ अग्निमें गिरने और उससे उत्पन्न होनेके कारण कार्तिकेयका नाम शान्तेय पड़ा है । २६ देशविशेष । इसी देशमें खाभाविक अग्नि की उत्पत्ति हुयी थी । यह दक्षिणा-यके निकट किष्किन्धा देश समीपस्थ माहिषतीपुरसे मिला है । यहाँ अग्निने नीलराजको कन्यासे सौन्दर्य-विमोहित हो विवाह किया था । पीके उसकी रक्षा करनेको अग्नि स्वयं इसी देशमें रहने लगे । इस विषयका विवरण महाभारतके सभापद्यमें लिखा है । २७ अगस्त्य । (स्त्री०) शान्तेयी । शान्तेयकीट (सं० पु०) आगमें उड़नेवाला कीड़ा । संघ लगा और विराम बुझा देने कारण चोरकी भी शान्तेयकीट कहते हैं । शान्तेयपुराण (सं० स्त्री०) अग्निपुराण । शान्तेयवायु (सं० पु०) अग्निकोषस्य समीरण, दखिनहवा । शान्तायस्त्र (सं० स्त्री०) अक्षविशेष, एक हृदियार । प्राचीन समय इस अक्षके प्रयोगसे अग्निद्वट्ट होने लगते थे । अक्षक शब्दः

पान्थेयी (मं० स्त्री०) पान्थेयी यमसूक्त द्वाया ।
 पान्थ्याधानिकी (सं० स्त्री०) पान्थ्याधानस्य दक्षिणा,
 ठञ् । पान्थ्याधान यज्ञकी दक्षिणा ।
 पान्थ्याधीयक (मं० द्वि०) पान्थ्याधीय मन्वन्थी ।
 पापभोजनिक (मं० पुं०) पापभोजनं नियतं दीयते-
 ऽग्रे, ठञ् । १ नियतं पापभोजनदानका सम्प्रदान ।
 २ पापदानी ब्राह्मण, ग्राहका पापभोजनं द्रव्य सेने-
 वाना । (द्वि०) ३ सप्तसे पक्षसे भोजनं करनेवाला ।
 पापमाम (मं० पुं०) पितृक ह्य, चौतका पेङ् ।
 पापयथ (मं० पुं०) पापं पयनं भोजनं शस्यादेयं,
 ङकश्चादि० प्रकारसोपः । १ नूतनं शस्यं लानिके
 विधिं मानिक-कर्तव्यं यज्ञविशेष, शस्यके पाकात्मने
 समाधेयं यागविशेष, नवगस्थेष्टि, नवाश-विधान ।
 पापत्रायायन-श्रोतसूत्रमें इसका विशेष विवरण लिखा
 है । वर्षामें माघ, हिमन्तमें श्रौष्ठि पार वसन्तमें यज्ञसे
 पापयथ यज्ञ किया जाता है । २ अग्निविशेष ।
 (स्त्री०) १ यथा शत्रुके अन्तमें नय फलोंका हवन ।
 (स्त्री०) पापयथी ।
 पापस्त (सं० द्वि०) विह, सच्छिद्र, छिदा कुषा,
 जिघर्से देद रछे ।
 पापष्ट (सं० पुं०) पापष्ट यशोभूयते मनो धीम,
 पा-पष्ट-पष्ट् । १ पापेग, हीघला । २ पासन्ति,
 शिंवाव । ३ अग्निविशेष, सुप्तोदी । ४ पायम,
 ठिकामा । ५ पनुग्रह, मेहरवानी । ६ पडण,
 गिरपतारी, पकड़ । ७ आक्रमण, हमला । ८ उत्-
 कर्षमाधन, सबकत से जानेका काम, वटावटी ।
 ९ संवर्धन, हिमायत । १० साहस, हिम्मत । ११ डठ,
 जिद ।
 पापष्टयथ (सं० द्वि०) पापहायथ माम मन्वन्थी,
 पगहनवाला ।
 पापहायथ (मं० पुं०) पापहायथी ऋगगिरो
 नक्षत्रम्; ऋगगिरिस्थानिषे पापहायथी, तथा युक्ता
 पौर्णमासी । पापहायथ मास, आश्विनमासीर्ष मास,
 पगहनका महीना ।
 पापहायथक (मं० स्त्री०) पापहायथी देयं
 शत्रुम्, पापहायथी-वात्-पुञ् । १ पापहायथ मासकी

पूर्वमासकी दिया जानेवाला ऋष, लो कर्जु, पगहन
 सूदी पूरनमासीकी चदा श्री । (त्रि०) २ पापहायथ
 मामकी पूर्वमासीकी दिया जानेवाला ।
 पापहायथिक (सं० स्त्री०) पापहायथी देयं शत्रुम्,
 पापहायथी-ठञ् । पापहायथ मासकी पूर्वमासीकी
 दातव्य ऋष, पगहन सूदी पूरनमासीकी युक्ताया
 जानेवाला कर्जु । (पुं०) २ पापहायथी पौर्णमासी-
 युक्त मास, पगहनका महीना । सप्तमदशे यथा
 वत्सरका प्रथम मास है । (द्वि०) ३ पापहायथकी
 पूर्वमासीकी दिया जानेवाला ।
 पापहायथी (सं० स्त्री०) अग्ने हायनमस्याः, प्रश्नादि०
 पय-हीप् । अग्नेहायथी-भाषा । पा ३१५१० । १ पाप-
 हायथ मासकी पूर्वमास, पगहन-महीनेका पूरनमासी ।
 २ पाकयज्ञ विशेष । ३ ऋगगिरा नक्षत्र ।
 पापहारिक (सं० द्वि०) पापहारोऽप्यमागे नियतं
 दीयते ऽग्रे, ठञ् । १ पापदानी । २ पापहार सेनेवाना ।
 पापहिका (सं० स्त्री०) पनुग्रह, संवर्धन, साहाय्य,
 मेहरवानी, हिमायत, मदद ।
 पापही (सं० द्वि०) पापह करनेवाला, जिहो,
 लो दूस्रेकी बात मानता न हो ।
 पापायथ (सं० पुं०) पापनाशः ऋषेः गोत्रापत्यम्,
 नडादि० फक् । १ पापनामक ऋषिके गोत्रापत्य ।
 यह बड़े वेधाकरण रछे । ऋषे पयनं शस्यस्य अस्त्य,
 पष्ट् । २ नवगस्थेष्टि, नवाश निमित्त सामिक कर्तव्य
 यागविशेष ।
 पापायथेष्टि (सं० स्त्री०) पापायथ यज्ञका उत्पथ,
 नवाशका जनसा ।
 पाघ (द्वि० पुं०) पाघं, मूल्य, दाम, कौमत् ।
 पाघटक (सं० पुं०) पाघट्टयति रोगान्, पाघट-
 तुन् । १ रक्त पयामागं सुप, साल बिचङ्गीका पङ् ।
 २ घर्षक, रगड़नेवाला । ३ घर्षणं उत्पन्न करनेवाला,
 जिससे रगड़ लग जाय ।
 पाघन (सं० स्त्री०) घर्षण, मटन, रगड़, मानिक ।
 (स्त्री०) पाघना ।
 पाघट्टित (मं० द्वि०) पा-घट्ट-ङ इट् । मानिक,
 चाकित, रगड़ा या हिजाया हुआ ।

भाघमर्षण (सं० स्त्री०) घघमर्षणो दितम्, अण् ।
 पापनाशके लिये दितकर सूत्र विशेष ।
 भाघर्ष (सं० पु०) भा-घृष-घञ् । १ मर्दन, मालिग ।
 २ मन्थन, मयायी ।
 भाघर्षण (सं० त्रि०) १ विदारक, खुरच लेनेवाला ।
 (स्त्री०) २ मर्दन, रगड़ ।
 भाघर्षणी (सं० स्त्री०) सोममयी मार्जनी, बालोंकी कूची ।
 भाघर्षित (सं० त्रि०) मार्जित, रगड़ा हुआ ।
 भाघाट (सं० पु०) भा-इन कर्तरि संज्ञायां घञ्,
 घृपो० तस्य टः । १ पपामार्ग, चिचड़ी । २ वाय-
 विशेष, एक वात्रा । यह माचनेवालीके साथ ही
 साथ बजाया जाता है । ३ भङ्गक, जलाजल, भाँभ,
 मंजीरा, खड़ताल । ४ सीमा, इद । (त्रि०) ५ पाघात-
 कर्ता, चोटीना ।
 भाघाटि (घे० पु०) भङ्गक, भाँभ, मंजीरा ।
 भाघाटिन् (सं० त्रि०) भा-इन-णिनि, घृपो० तस्य टः ।
 पाघातकर्ता, चोट करनेवाला ।
 भाघात (सं० पु०) भा-इन-घञ्, नस्य तः इत्स्य घञ् ।
 १ वध, कत्ल । २ आह्वान, ठीकर, धक्का । ३ घत,
 गुल्म । ४ ताड़न, मारपीट । ५ ताड़ना देनेवाला,
 जो मारता हो । ६ मूत्रसङ्ग, हवसलशील, पेमात्रकी
 रोक । ७ पमाग्य, कमबख्ती । आधारी घञ् ।
 ८ वधस्थान, मकतल, बूचड़खाना ।
 भाघातञ्चर (सं० पु०) अग्निघात-जन्य ज्वर, चोटसे
 आनेवाला दोखार ।
 भाघातन (सं० स्त्री०) आहन्यते ऽन, भा-इन स्वाधे
 णिच् आधारी ऋट्, णिच् लोपः । १ वधस्थान,
 कत्लगाह । भावे ऋट् । २ इनन, मारपीट ।
 भाघार (सं० पु०) प्राप्तिर्यते वक्षी सिच्यते, भा-घृ
 कर्मणि घञ् । १ घृत, घी । भावे घञ् । १ ज्वालित
 अग्निमें वायुकीपक्षे पारस्य कर आग्नेयकीपक्षे धोर
 रेकर्त कोणसे पारस्य कर ऐशानी दिक् पर्यन्त
 अविच्छेद धाराक्रमपर घृत-सेवन । इसमें 'अग्नेये
 स्वाहा' एवं 'सोमाय स्वाहा' मन्त्र पढ़ा जाता है ।
 ऋग्वेदी उपरोक्त मन्त्र मन ही मन पढ़ते, किन्तु
 यजुर्वेदी लघुःस्वरसे उच्चारण करती है । ; ; ;

भाघी (हिं० स्त्री०) १ व्याजकी स्थानमें दिया जाने-
 वाला घत्र । खेतकी फसल तैयार होनेपर किसान
 महाजनको यह सूद देता है । २ व्याजकी स्थानमें
 पत्रका लेनदेन ।
 भाघु, पत्र देखो ।
 भाघूर्ण, बाधूर्ण देखो ।
 भाघूर्णन (सं० स्त्री०) १ लोठन, परिभ्रमण, गडिंग,
 चक्कर, घुमाव, लुढ़काव । २ चाखल्य, आन्दोलन,
 विमवातो, तजलजुल, हांयाहोली ।
 भाघूर्णित (सं० त्रि०) भा-घूर्ण-क्त इट् । १ चलित,
 चक्कर काटनेवाला । २ भ्रान्त, भटका हुआ ।
 भाघृण्यि (सं० पु०) १ क्रोध, गुस्सा । २ पूया देव ।
 (त्रि०) ३ प्रव्वलित, पागकी तरह भभकनेवाला ।
 ४ प्रदीप्त, चमकदार ।
 भाघृण्यित्सु (द्वै० त्रि०) १ प्रव्वलित, प्राणसे भरा
 हुआ । २ अधिक धनसम्पन्न, निहायत दौलतमन्द ।
 (पु०) ३ अग्नि ।
 भाघोष (सं० पु०) चरोष देखो ।
 भाघोषण (सं० स्त्री०) भा-घृष-लुगट् । सकल स्थानमें
 प्रचारके लिये लघुःस्वरसे शब्द करना, आह्वान, आम-
 न्वयण, सुनाजात, पुकार ।
 भाघ्राण्य (सं० त्रि०) भा-घ्रा-क्त, तकारस्य नः, रेफात्
 परतया णत्वम् । १ श्छहीत-गन्ध, सूँधा हुआ । २ द्रव्य,
 भासुदा, हका हुआ । (स्त्री०) भावे क्त । ३ गन्ध-
 ग्रहण, सूँघाये । ४ द्रव्य, भासुदगो, हकाहकी ।
 भाघ्रात (सं० त्रि०) भाघ्रायते अ, प्राघ्रा कर्मणि
 क्त वा तस्य नत्वाम्भावः । १ श्छहीतगन्ध, सूँधा हुआ ।
 २ द्रव्य, भासुदा । (पु०) ३ ग्रहण विशेष, किसी
 किन्धका कुस्फ । इसमें चन्द्रः या सूर्यमण्डल एक
 धोर मलिन पड़ जाता है । भाघ्रात-ग्रहण लगनेसे
 सुष्ठुष्टि होती है ।
 भाघ्राय (सं० त्रि०) भा-घ्रा-यत् । १ घ्राण द्वारा
 घ्राण, सूँधा जा सकनेवाला । २ घ्राण करने योग्य,
 सूँघने काबिल ।
 भाङ् (सं० अथ०) ऋ वाङ् ङाङ्, प्रयोगे तस्य
 ङित्वम् । भा शब्दार्थ । ऋ ङत्वका निरवयव रूपमें देखो ।

शास्त्रगायन (मं० वि०) चन्द्रमैत्रि मित्रंस्तम्, चन्द्रम
पचादि० कर्त्तुः । चन्द्रम द्वारा मित्रंस्त वा निष्पादित,
सो चन्द्रमके कर्त्तव्ये पूरा पठा हो ।

चन्द्रमित्र (मं० वि०) चन्द्रम प्रवरपमस्य, ठक् ।
चन्द्रम प्रहारगुह, चाकुमको मारवाला ।

चान्दी (मं० स्त्री०) चन्द्र, तम्बूर, तयला, टोलक ।

चान्द्र (मं० स्त्री०) चन्द्र स्यायै० पण् । कोमनाद्र,
नाजूक पञ्जी । २ चन्द्रदेगजात द्रव्य, चन्द्र मुस्कमे
पेदा पूर्व भीञ् । ३ चन्द्रदेगके नृपति । ४ व्याकरण
प्रसिद्ध चन्द्रके अधिकारमे विहित कार्यं । (वि०)
चन्द्र भवम्. पण् । ५ चन्द्रदेगजात, चन्द्र मुस्कमे पेदा
दृष्या । ६ व्याकरणमे—चन्द्राधिकार मन्वन्ती । ७ शारी-
रिक, जिग्रामो । ७ नाटकके भीष व्यक्तियोगे मन्वन्त्य
रचनेवाला, स्यागके छोटे लोगमे मुनिक्रि ।

चान्द्रक (सं० वि०) चन्द्रेण जनपदेणु भवम्. व्यञ्ज् ।
१ चन्द्रदेग-जात, चन्द्र मुस्कमे पेदा दृष्या । चन्द्राः
चन्द्रियाः तदेग नृपतयोः भक्तिरस्य, युञ् । २ चन्द्र-
देगके चन्द्रियोंका संघक । (पु०) ३ चन्द्रदेगके राजा ।
४ चन्द्रदेगका अधिवासी ।

चान्द्रदी (सं० स्त्री०) चन्द्रके राज्यकी राजधानी ।
चान्द्रविद्य (मं० वि०) चन्द्रं चन्द्रनाम विद्यां वेद, चन्द्र
विद्या-पण् । १ व्याकरणसादि चन्द्रविद्या ज्ञाननेवाला ।
गिह्या, वस्य, व्याकरण, निरुह, एवोतिप और हस्तःमसूत्र
वेदका चन्द्र होनिसे चन्द्रविद्या कहाता है । उपरोक्त
मकस विद्याके ज्ञाननेवासेको ही चान्द्रविद्या कहते हैं ।
चन्द्रविद्याएं भवम्. पण् । २ चन्द्रविद्यादि ज्ञान, चन्द्र-
विद्या चादिमे पेदा । (स्त्री०) तद्दद्यास्यानो पत्यः,
चागपनादि पण् । ३ चन्द्रविद्याका व्याख्यान-पत्र ।

चान्द्रार (मं० स्त्री०) चन्द्राराणां समूहः, भिषादि०
पण् । चन्द्रारमसूत्र, चन्द्रारका टेर ।

चान्द्रिक (मं० पु०) चन्द्रेण चन्द्रपालनेन गिरणाम्,
ठक् । १ भाष्यवशात्त चन्द्रनिष्पन्न गटादिना भ्रुविषे-
वादि । चान्द्राधिकीं मतदे भाष्यकागक भ्रुविषेगादि
चान्द्रिक, चापक, चारार्थ और सात्त्विक चार प्रकार-
का होता है । चान्द्रिक चन्द्र, चाद्रिक चमन, चाचार्य
ईश्वरुवा और सात्त्विक साभावसे बलता है । २ चान्द्रो-

का चाप, भाप, भ्रुभक्ति प्रभृति चेटाविशेष, चौरहोके
चटक-मटक । चन्द्रं चन्द्रं तद्व्यं गिरणमस्य, ठक् ।
३ चन्द्रक बजानेवाला, तबलघो । ४ चान्द्रक,
पोपनका पिड़ । (वि०) ५ शारीरिक, मधरार,
जिग्रामो, वदनी । ६ महोत-सुचिन, मकस करके
देखाया दृष्या ।

चान्द्रिरम (मं० पु०) चन्द्रिरमोऽपत्यम् चान्द्रिरम्-पण् ।
चान्द्रिरा चन्द्रिका सन्तान । चान्द्रिराके तीन पुत्र रहे—
हृदस्मति, उत्तल और संवर्त । चान्द्रिरा हटं नाम
पण् । २ चयववेदोक्त मूलविशेष । चन्द्रिरं देवो । चान्द्रिनां
चन्द्रानाश्च रमः सारः, स्यायै० पण् । ३ चान्द्रा, दृष्ट ।
(वि०) ४ चान्द्रिरा चन्द्रिमे मन्वन्त्य रचनेवाला, जो
चान्द्रिरामे पेदा हो ।

चान्द्रिरमेश्वर (मं० पु०) चान्द्रिरसेन प्रतिष्ठित ईश्वर,
शाक० इ-तत् । कामीस्य गिरणिक्र विमेष । इहे
चान्द्रिरामे प्रतिष्ठित किया था ।

चान्द्रुरिक, चान्द्रुरिक देवो ।
चान्द्रुलिक (सं० वि०) चान्द्रुलि ठक् वा रत्वम् ।
चान्द्रुलि-सदृश, चान्द्रुल-लेसा ।
चान्द्रुप (सं० पु०) चान्द्रु, पूर्वात् युप् कर्मवि घञ् ।
स्त्रोत्र, स्त्रोम, चाधोप ।

“चान्द्रुपे च यमिचरणः ।” चण्ड० १००/३१८ ।
चान्द्रुप (वे० वि०) १ स्त्रोत्रविषयक, जोरमे शारीक
करनेवाला । २ प्रमंसाभाजन, शारीक करने लायक ।
चान्द्र (सं० वि०) चन्द्रो भवं चान्द्रम्, पतुर्भां
सद्वागादि० ष्य । चन्द्रजातके निकटस्थ ।
चान (सं० पु०) चन्त, चाप ।
चापचाप (मं० वि०) चापटे, चा-बस-मानप ।
व्याख्यानकर्ता, यद्यन् देनेवाला ।
चापसुम् (मं० पु०) चा-बस वाद्-उमि । विद्याम्
पुस्य, पण्यत, इत्यदार, देस भाषके काम करनेवाला
चादमी ।
चान्तुर (मं० चय०) चतुः पदंस्तम्, चय्यो टण् ।
चार पुरुष पदंस्त, चार पीढ़ी तक ।
चान्तुर्यं (मं० स्त्री०) चपाटन, चैरकृ.पी ।
चाचम (सं० पु०) चा-चम-पण् । चाचमन ।

आचमन (सं० क्ली०) आ-चम भावे-ष्णुट् । १ डोबेर, रुसा घास । २ भोजनान्त सुखचालन, भोजनके बाद सुंझका धोना । ३ पूजादिके पूर्व हाथको गोरुर्षाकार बना और उसमें जल रख तीन बार पान एवं आंठ हाथको दो बार मर्जन करके यथा स्थान हस्त प्रदान करना । ४ कर्द संस्कारक ऋद्ध विशेष । ५ क्रियाविगेष । ६ आचमनका जल । भरद्वाज मुनिने आचमनका ऐसा नियम बताया है—दक्षिण हस्तकी अङ्गुलियोंके पथ सरल और विस्तृत करके हाथ गोरुर्षाकार बनाये एवं अङ्गुलि परस्पर संलग्न रखे । द्रमो भयस्या-पर एक मटर डूबने जायक जल उसमें ले तथा अङ्गुठ एवं कनिष्ठा दो अङ्गुलि छोड़ ब्राह्मणको “ॐ विष्णु” मन्त्रद्वारा तीन बार जल पीना चाहिये ।

कात्यायनने लिखा है—तीन बार उपरोक्त प्रकारसे जलपान करके षोडशहाथको दो बार मर्जनपूर्वक सुगन्धके ऊपर हाथ रखे । पीछे एकवार हाथ धो डाले । फिर अङ्गुठ एवं तर्जनी इन दोनों अङ्गु-लिके अग्रभाग संलग्न करके नासिकाहाथको अग्र करती हैं । उसके बाद अङ्गुठ और अनामिकासे दोनों आंख एवं दोनों काम छू लेती हैं । तदनन्तर नाभि, वक्षःस्थल, मस्तक एवं स्कन्धहाथपर हाथ लगाये ।

तान्त्रिक सन्ध्यामें—“आकतस्त्राय स्वाहा, विद्या-तस्त्राय स्वाहा, गिवतस्त्राय स्वाहा”, मन्त्रद्वारा तीन बार जलपान करना पड़ता है । काली, तारा एवं विष्णुपूजाके लिये पृथक् रूप आचमनका विधि है । देवस्य कहते हैं—चलते-फिरते, सोते-पड़ते, हंसते-बोलते, कांपते-यांपते या छाती देखते-भानते, आचमन करना न चाहिये । बाल, धोतीके नीचेका भाग या मूत्रिका अग्र करके भी आचमन करना है ।

आचमनक (सं० क्ली०) आचमनस्य कं जलमव । १ निष्ठीवनवात्र, पीकदान । आचम्यते जिन, करणे ष्युट् स्वार्थे कन् । २ आचमनका जलादि, कुक्षी करनेका पानी ।

आचमनी (हिं० स्त्री०) आचमन- करनेका पाव,

जिस चीजसे पूजाके समय जल सुंझमें फेंका जाये । आचमनी छोटे चम्बूच-जेठी पीतल या तांबेको बनती है । यह पक्षपात्रमें रहती और आचमन करने या चरणासृत देनेके काम आता है ।

आचमनीय (सं० क्ली०) आचमनाय दीयते वृद्धाच्छ, आ-चम-करणे बाहु० अनीयर् वा । १ आचमनके निमित्त देय जातिफलादि चूर्ण-मिश्रित कः पत्र परिमित जल, कुक्षी करनेको दिया जानेवाला पानी । कर्मणि अनीयर् । २ पेय जल, पीनेका पानी । (त्रि०) ३ आचमनार्थं व्यवहृत, कुक्षी करनेमें लगनेवाला ।

आचमित (सं० त्रि०) आचमन किया हुआ, जो पी लिया गया हो ।

आचम्य (सं० क्ली०) आ-चम-यत् । १ आचमनके योग्य जलादि, कुक्षी करने काविल पानी । (भव्य०) आ-चम-स्यप् । २ आचमन करके, कुक्षी डालकर ।

आचय (सं० पु०) आ-चि-अच् । १ दूरस्थ पुण्यादि-का चयन, दूरसे फूल वगैरहका तोड़ लाना । २ समूह, टेर ।

आचयक (सं० त्रि०) आचये नियुक्तः, आचय आकर्षादि० कन् । चयनमें नियुक्त, फूल वगैरह तोड़नेका काम करनेवाला ।

आचरज (हिं०) आचरं देखो ।

आचरजित (हिं०) आचरितं देखो ।

आचरण (सं० क्ली०) आ-चर-अच् । १ आचार, चाल-चलन । २ उपस्थिति, आमद पहुँच । ३ आचार-का नियम, चलनका तरीक़ । करणे लुट् । ४ रथ, शकट, गाड़ी ।

आचरणीय (सं० त्रि०) आ-चर-अनीयर् । १ अनु-ष्ठेय, करने काविल । २ उपयुक्त, वाजिव ।

आचरन (हिं०) आचर देखो ।

आचरना (हिं० क्ति०) आचरण करना, व्यवहार वांधना, चलन बनाना ।

आचरित (सं० क्ली०) आ-चर भावे-लट् । १ आचार, चलन । २ अर्थोपेक्षे अर्थ सेनेका उपाय विधेय, कर्तु-दारसे रूपया वसूल करनेकी तरकीब । (त्रि०) कर्मणि

१। ३ अनुष्ठित, दक्षुर्के तोरपर क्रिया हुआ।
४ साधारण, सामान्य। ५ नियम द्वारा नियत, कायदेमि
ठहराया हुआ।

शाचरितव्य, शाचरिण्य शब्दों।

शाचर्य (सं० स्त्री०) शाचर्ये यत्न, शाचर्ये शाचर्ये
यत्। १ गमनके योग्य स्थान, ज्ञाने लायक, जगद।
कर्मवि यत्। २ शाचर्योय कर्म, करने काविल काम।
३ यमयम, नैक काम। (वि०) ४ उपस्थित होने
योग्य, यत्न करने लायक; ५ कर्मव्य, करने काविल।

शाचान, शाचानक, शाचान, शाचानक शब्दों।

शाचाना (सं० स्त्री०) शाचान-शब्द। १ शाचमन-कर्ता,
कुसी करनेवाला। २ कृताचमन, शाचमन किया हुआ।

शाचाम (सं० पु०) शाचाम भाये घञ्, हृत्तिः।
१ शाचमन, गरारा, कुसा। भक्तमण्ड, भातका मांड़।
२ भय्य धनु, चागेको चीज।

शाचामक (सं० स्त्री०) शाचमनकर्ता, कुसी करने-
वाला।

शाचामनक, शाचमनक शब्दों।

शाचाम्य (सं० स्त्री०) १ शाचमन-कार्य, कुसी कर-
नेका काम। २ शाचमनका जल, कुसी करनेका
पानी। ३ शाचमन, कुसा। (स्त्री०) ४ शाचमनमें
काम पानेवाला, जो कुसी करनेमें लगता हो।

शाचार (सं० पु०) शाचर-भाये घञ्। १ शाचरण,
शाचमनन। २ अनुष्ठान, काम। ३ नियम, तरीक।
४ पद्धति, रिवाज। ५ मदाचरण, भसी पान।

५ चर्मके मालके रत्नागिरि जिनेकी मानवम
तहसीलका एक ग्राम। यह मानवममे उत्तर दम
मोक जगता है। इसमें रामेश्वरका मन्दिर बना
जिमका चारो चार पत्थरकी दीवार चौर चोखुरा
पहाता विरा है। विद्याम-ग्रह इतना मज्जा चोडा
है, कि मधु जातिके हिन्दू उनमें रह सकते हैं। राम-
मनमीके चवसर पर निजटम्य चामामि हजारो पादमी
चार्यकोत्पन्न देखने पाते हैं। मन् १६०४ ई०की
कोम्पायुरके मध्य महाराजने जो दानपत्र लिखा,
उमके अनुसार इन चामकी कोई दारु हजार रूपये
मासकी चामदनी मन्दिरेकी ही चर्चमें लगती है।

शाचारज (हिं०) शाचर्ये शब्दों।

शाचारजी (हिं० स्त्री०) शाचार्यका शार्थ, पुरो-
हितायो।

शाचारतम्य (सं० स्त्री०) शौद्धिके चार तन्वामि एक।

शाचारदोष (सं० पु०) शाचारार्थः नौराजमार्थे शौद्धः
१ नौराजमके निमित्त शौद्ध, सफाईका चिराम।
२ पारतीका शौद्ध। ३ राजावके पाजि-नौराजमका
प्रदोष। ४ नागदेव भद्र-पत्नीत शाचारनिर्णय विषयक
पत्र्य विगेष।

शाचारभ्रत (सं० स्त्री०) श्यमंस्वामी, बदचलन।

शाचारवत् (सं० स्त्री०) शाचारः शास्त्रविहितानु-
करण्योत्पन्न शोभारम्य, मनुष्य मस्य वत्सम्। शास्त्रोक्त
अनुष्ठानयुक्त, नेकचलन। (स्त्री०) शाचारवती।

शाचारवर्जित (सं० स्त्री०) शाचार्य वेद-श्रुत्यादि
सदनुष्ठानेन वर्जितम्, शतत्। १ शास्त्रोक्त शाचार-
धीन, विस्वाक-परिष्ठा। २ वद्विष्कृत, चर्चाके
प्राति, निकम्मा।

शाचारवान्, शाचारण्य शब्दों।

शाचार-विचार (सं० पु०) शाच-चलन, राह-रम्य,
कामकाज।

शाचारविद्वद् (सं० स्त्री०) पद्धतिके प्रतिकूल, गिनाम्-
नरिष्ठा।

शाचारवेष्ट (सं० स्त्री०) शाचार' वेष्टि, विद्व-वष्टः।
शाचारक, राह-रम्य जाननेवाला। (स्त्री०) शाचार-
वेष्टी।

शाचारवेदिन्, शाचारण्य शब्दों।

शाचारवेदी (सं० स्त्री०) शाचारण्य वेदीर। १ पुण्य-
भूमि, पच्छी जगद। २ चार्थोपार्थे श्रेम।

शाचारहोम, शाचारण्य शब्दों।

शाचारान् (सं० स्त्री०) शाचारो इहमिव। इष्टिवाट, के-
मतम-दादम पद्धतिके मध्य पद्ध विगेष। शाचारण्य शब्दों।
शाचारिक (सं० स्त्री०) १ चिरकाल-युक्त, चर्चादि-
परम्पराप्रप्त, कृतीमी, रिवाजी। (स्त्री०) २ नियम
विगेष, कोई फायदा। इसमें भोजन, चर्चापत्र, शाच-
धारणके क्रम और शास्त्रकी रक्षा रहते हैं।

शाचारिन् (सं० स्त्री०) शाचरति दद्यायाकम्, शा-

चर-णिनि । १ ग्राह्योक्त अनुष्ठाना, कदोम चाल चलनेवाला ।
 आचार्यी (सं० स्त्री०) आ-सम्यक् चारः प्रसरणं यस्याः, गोरादि० जातिवादा ह्रीप् । १ हिलमोचिका, कोई सब्जी । (पु०) २ रामानुज साम्प्रदायिक वैश्याय । (त्रि०) ३ ग्राह्योक्त अनुष्ठाना, कदोम चाल पकड़ने-वाला ।
 आचार्यं (सं० पु०) आ-चर-ण्यत् । इन्द्रवरुणवसवैर-सङ्घिमास्त्रयववममत्तुआचार्यांवासायुक् । या शा० १२८ । १ गुरु, सुरगद, उस्ताद । मनु कहते हैं,—जो ब्राह्मण शिष्यको उपनयन पहना मकल्प पौर मरइस्य वेद पढ़ाता, वही वेदाध्यापक आचार्यं कहाता है । किन्तु आजकल वेदकी आलोचना नहीं होती, इसलिये वास्तविको जो उपनयन कर गायत्री सुनाता, वही आचार्य है । २ मत संस्थापक शङ्कराचार्यदि । ३ यजुर्वादिमें क्रमोपदेश । ४ पूज्यमात्र । ५ शिष्यकमात्र । ६ भटा-चार्यं । मचराचर हम गणक या देवप्र ब्राह्मणको आचार्यं पदवा प्रहाचार्यं कहा करते हैं । (स्त्री०) आचार्या । आचार्यंकी पत्नी आचार्यानी कहलाती है ।
 आचार्यक (सं० स्त्री०) आचार्यस्य कर्म भावो वा, युञ् । १ आचार्यका कर्म वा धर्म, सुरगद पाकका काम । (त्रि०) २ आचार्यसे निकलनेवाला, जो सुर-गद पाकसे पैदा हो । (स्त्री०) आचार्यता ।
 आचार्यता (सं० स्त्री०) गुरुका कर्म, उस्तादी ।
 आचार्यत्व (सं० स्त्री०) आचार्यता देखो ।
 आचार्यदेव (सं० पु०) अपने इष्टदेवको गुरु मानने-वाला व्यक्ति, जो शब्द-स परमेश्वरको सुरगद मानता हो ।
 आचार्यभोगीन् (सं० त्रि०) आचार्यभोगाय हितम्, ख । आचार्यके भोग योग्य, सुरगदको खुश करनेवाला, जो उस्तादके काम न्यायक हो ।
 आचार्यमित्र (सं० त्रि०) आचार्यी मित्रः । अति-शय पूज्य, मुहुर्गंधार, काबिल ताजीम ।
 आचार्यवान् (सं० त्रि०) आचार्य रखनेवाला, जिसके सुरगद रहे । (स्त्री०) आचार्यवती ।
 आचार्यानी (सं० स्त्री०) आचार्यपत्नी, सुरगदकी पौरत ।

आचार्यी (सं० त्रि०) आचार्य-विषयक, सुरगदका ।
 आचार्योपासन (सं० स्त्री०) आचार्यको सेवाशुभ्या, सुरगदको फरमांवरदारी ।
 आचिख्यासा (सं० स्त्री०) आख्यातुमिच्छा, आ-ख्या-सन्-प्र प्रत्ययादिति च टाप् । आख्यानके निमित्त इच्छा, बोलनेकी खाहिश ।
 आचिख्यासु (सं० त्रि०) आख्यातुमिच्छुः, आ-ख्या-सन् उ । आख्यानके निमित्त इच्छुक, बोलनेका खाहिशमन्त ।
 आचिख्यासोपमा (सं० स्त्री०) चलद्वार-ग्राह्यको एक उपमा ।
 आचित् (वै० त्रि०) ध्यानमें लानेवाला, जो खयाल करता हो ।
 आचित (सं० त्रि०) आ-चि-क्त । १ व्याप्त, साम्भूर, भरा हुआ । २ गुम्फित, बंधा हुआ । ३ पधित, गूँथा हुआ । ४ संघड़ किया हुआ, इकट्ठा । (स्त्री०) ५ द्विषद्वष्ट पलका मानविशेष, पचीस मनकी तीन । (पु०) ६ शाकट भार, एक गाड़ी माल ।
 'आचित्' इयमासुः शब्दोभार आचितः । (चर)
 आचितादि (सं० पु०) आचित आदियंश्च । गण-विशेष । इसमें निम्नलिखित शब्द पठित हैं,—
 आचित, पर्याचित, अस्थापित, परिगृहीत, निरुक्त, प्रतिपन्न, अपप्रिष्ट, प्रशिष्ट, अपहत, उपस्थित, संहिता ।
 आचितिक (सं० त्रि०) आचित मानके बराबर, जो पचीस मन चीज पका रहा हो ।
 आचितोन, आचितिक देखो ।
 आचिन्त्य (सं० त्रि०) १ सर्वप्रकार सोचने योग्य, सबतरह खयालमें लाने काबिल । (द्वि० वि०) २ अचिन्त्य, खयालमें न आनेवाला ।
 आचौर्यं (सं० त्रि०) भुक्त, आस्त्रादित, खाया हुआ ।
 आचु (सं० पु०) आच्छुक हृत्, आलका पेड़ ।
 आचूगिदेव—प्रथम परमर्दिदेवके पिता । बम्बई प्रान्तस्य धारवाड़ जिलेकी रोम तहसीलके कोडोकीय गांवमें मूल ब्रह्मदेवके मन्दिरकी दीवारपर इनके समयका एक शिलालेख विद्यमान है ।

सोऽनर्थां ह्यथच्छेदो ननुसाधरो य यो नरः । निष्पीडितः संकुसुको मेहाशुचिन्दते महत् ॥
 गरी इदमनाद्युर्ध्वं कोष्ठे विचन विवते । वाद्यं पुत्रवनेद परतोरीपरीचनम् ॥
 शशभो गोमहायाः सुः शोभां गार्ते नु निर्मितः । तावदर्थं मद्युषाधि नरकं पयुं पावते ॥
 तीरयन्ती मोदीशेकाभितिके तु कदाचन । नातिक्रम्य नातिघातं न च मन्थदिने स्थिते ॥
 र्ना र्थो ह्यो कदाचन गोभो राजभ्य वच च । इहाय भारतायन गमिष्ये दुर्लभाय च ॥
 र्दधिचक्षुः कुर्वीत परिदायात्यनस्थतीन् । अद्युष्यात् प्रकृतौ सन्निभे प्रदक्षिणात् ॥
 उपानदी च वक्रश्च धृतमन्यैर्नपरीयते । ब्रह्मचारी च निर्वं स्यात् पादं पादैन ग्राहकमेतु ॥
 वनावनां पोर्षमासो वतुर्दग्धाद्य सर्वशः । अट्वां सर्वदवाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥
 सा मांसं न खादति वृश्मांसं तद्वै च च । बाहोयं परिवादश्च पियुष्यश्च विवर्त्तयेत् ॥
 नाचलुदः स्नात उर्ध्वं सदादी न क्रीनतः परममाददतीतः ।
 यदास्तवाथा पर उचिञ्जेत न तां वद्वीदुमतीं पापनीयाम् ॥
 वाक्सायका वदनाभिचतभि देवास्तः शीचति रागास्त्रानि ।
 परस्य ना ममंश्च शी पतन्ति तान् पथितो ग्राहयन्तेतु परेत् ॥

इते सायकैर्बद्धं वनं परपञ्चासतम् । माथा दुग्धव्य विह्वं न सं रोहति वाक् चतम् ॥
 चिन्ताभीकनाटाचानिङ्गनमि मरीरतः । वाक्स्थल्यत् न निर्गुं गको रुदि मरीचि सः ॥
 निरगं वेदिन्द्रियाय दीवताप्राय कृतसमम् । हे वलाभाभिमानश्च तेषाश्च परिवर्त्तयेत् ॥
 ब्राह्मव्यान् परिवर्त्तयेद्युषाधि न निर्दिजेत् । तिथिपक्षसो भूयासायासायुर्न रिच्यते ॥
 वा मृतपुरीषे तु रथ्यानाक्रम्य वा पुनः । पादप्रचालनं कुर्यात् स्नाथ्यै भोजने तथा ॥
 वाचं ह्यस्यं माधं शकुन्तो पापवर्षं तथा । वासायं न प्रकृत्यै देवायं नु प्रकल्पयेत् ॥
 यथेकाहृष्टाभि परंस्त्रिभि विवर्त्तयेत् । उदग्धु च्च सततं गौषं कुर्यात् समाहितः ॥
 मृतपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदग्धुः । दक्षिणभिसुखो रात्रौ तथाप्राणुर्न रिच्यते ॥
 शीरो न चादमीं मन्त्रिनो वृद्धिमनः । न चास्त्राणां निर्यं गच्छे द्विर्मिषीं वा कदाचन ॥
 म्रियरा न खपेत तथा प्रयच्छिरा न च । मास्त्रिशातु क्षपेरिहाजयथा दक्षिणा शिराः ॥
 मये शास्त्रदीर्घं च शयने प्रसवीत च । नाग्यभिन न संपुले न च तिर्यङ्गशयन ॥
 नयः क्षिप्रिचिन्तु प्रायामिन्द्रियाणं कदाचन । याला च भास्त्रवन्त्ये त गताणि दक्षिणचयः ॥
 शृणोते त पुरीषय सेवे वासव्य चाभिके । सभे मृतपुरीषे तु नाग्यं कुर्यात् कदाचन ॥
 मृतपुरीषे निशमश्रीयाहायतीं प्रमत्तुपयन् । मरुन्द्येय मगधा मृगा चाभिसुष्य मेत् ॥
 शयं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते शयं भुङ्क्ते उदग्धुः । पथ्य पथ्यान् शो भुङ्क्ते यमसं दक्षिणासुखः ॥

मोक्षिता कायं न मञ्जनि न शोभते । चास्त्रं पादनु भुञ्जीत नास्त्रं पादस्य व विर्मिन् ॥
 पादनु सुखानो वषाणां शीवते शतम् । शीचि शीजाधि शीचिष्ट च्चामते कदाचन ॥
 गं गां ब्राह्मण्यं च सदाप्राणुर्न रिच्यते । शीचि शीजाधि शीचिष्ट च्चदीचे त कदाचन ॥
 चन्द्रको वैश्व नचवाधि च सर्वशः । ऊर्ध्वं प्रायाशुत्तुनामनि मः स्त्रिभिर चावति ॥
 श्यानाभिनादायां पुनस्तान् पतिवपते । चमिशादतीत इहाश्च द्वाघं वासनं सधम् ॥
 दक्षिणपक्षीत गच्छन् इतकीं गिष्यात् । नचाशोनाथवे निमं निमदक्षिण्य चर्त्तयेत् ॥
 वक्षे च शीच्यं न नयः शानुमर्तेति । सत्यं वै च नये न शोचिष्टोऽपि शिविमेत् ॥
 वृद्धो न श्ये च्छीवै सर्वं प्रायासदायवाः । किरण्यं प्रश्नारच विरथ्ये ताभि वर्यं शीत् ॥
 श्वनामां वाधिन्वां च्छुद्वेदाशक्तः मिरः । नचाभोलां मिरः श्यानासदायानुर्न रिच्यते ॥
 श्यानासु वैमच नाशं क्षिप्रिदधि श्य मेत् । निष्टष्टं नयः प्रायानयासानुर्न रिच्यते ॥
 वा वैश्व निर्वं चो न करुण्यः कदाचन । चतुर्माणाः मसाथय मृगः कु शो मुषिचि ॥
 दिग्घ्यापरसेवि वर्त्तितयं मुराचिः । मुदिन्द्या ददप्रायं मुश्याचं न संशयः ॥

दूरादावधायान् न दूरात् पादावधीचनम् । अष्टिष्टोत्सर्गं नये च दूरे कायं ॥
 रकमाथं न धार्ये श्याक्लं धार्यन्तु पथितः । वर्यं पिशाः तु कमनं नरा कुम्भं
 पर्वकाथितुं च्छेत्तु ब्रह्मचारी सदा भवेत् । समानमेकपात्रे तु सुष्ठु प्राणुं अनेर ॥
 सायं प्रातश्च भुञ्जीत जालराशे समाहितः । शशैन नृपन्धीन परराजं तर्त्तयेत् ॥
 शायतो मेककन्यय नाश्व विष्टः कदाचन । भूमौ सदैव नाश्रीयामानाश्रीना न इन्दुः ॥
 तीरयन्तीं प्रदायाप्रमतिविभयो विवर्त्तयेत् । पदाशु चीत मेधाशो नचायममना नरः ॥
 समानमेकपत्रे कृत्वा तु भोजनमं नरेर । विषं श्यानाहृष्टं भुङ्क्ते शीप्राय
 पराशपादं न श्याप्राश्रियश्च कदाचन । न मनुः कथिदुत्तु पायः पुत्रवे से मयर्त्तयेत् ॥
 न दिवा मेषु न मच्छं ब्रह्मन्नां न च बन्धकीम् । नचाश्यातां शिवं नच्छे ॥
 इदो शान्तिस्था भित् हरिदो यो भवे दधि । यष्टे नाश्रियतयस्ते भयनाशुश्चै च ॥
 (महाभारत)

भावाय—घापसे पाप शौर पुण्यसे धर्म उत्पन्न होता है ।
 की पूजा शौर पुण्यकी अपूजा करनेसे मनुष्य नरहत्याके
 पापी ठहरता, इससे ऐसा न करना चाहिये । जो प्रतिदिन
 कालमें ठठ हवासे सम्मति पूकता, किशोसे कुछ नहीं लेता,
 दूसरेको देता, माता पिताका पालन करता, अपनी क्षीमे
 टस रहता, सब देवतीमें प्रेम, सब धर्मोंमें श्रद्धा रखता,
 बोलता शौर किशोकी बुराई नहीं करता, यह सदा सुखी
 बड़ेसे बड़े दुर्गतिसे पार हो जाता है । दूसरेकी क्षी वा धन
 न करना, किशोकी निन्दा चुगली न करना, वासक, इ
 दासको विना दिये स्वयं भोजन न करना, चमा रहना, दान,
 एवं मत्वमें रत रहना, पुरीय एवं मूत्रको न देखना एवं
 काल बर्हा पर ठहरना भी न चाहिये । दूसरेका लुता एवं
 न पहनना, चमावश्या, पौर्णमासी प्रभृति पुण्यकालमें सदा
 चर्चसे रहना, मांसादि अमभ्य पदार्थोंकी न खाना, दिनमें
 सुख शौर रात्रिमें दक्षिणमुख हो मूत्र-पुरीय त्याग करना शान्ति
 उत्तरगिर करके तथा टूटी फटी श्यायापर नहीं मोना शौर
 हो खान न करना । प्रतिदिन पर धोकर उत्तर या पूर्वमुख बैठ
 हो भोजन करना, एकपक्षि बंटे हुये कोई चीज, विना दूसरेके
 भाप नहीं खाना, क्योंकि वह हलाहल विषके समान हो
 है । दूसरेकी निन्दा या अप्रिय वचन नहीं कहना, कमी
 शोध न करना, दिनमें मेषुन न करना, एवं क्रम्या शौर व
 साय भी रमण न करना । उपरोक्त पावण्यकी शास्त्रकारों
 पाधार बतलाया है । इसे सेवन करनेसे मनुष्य इस लोकमें धर्म
 धनवान्, यशस्वी, एवं निरामय रहता शौर परलोकमें
 सुखात्मय करता है ।

चर-पिनि । १ शास्त्रीक अनुष्ठाना, कदौम चाल चलनेवाला ।
 आचारी (सं० स्त्री०) आ-सम्यक् चारः प्रसरणं यस्याः, गौरादि० जातित्वाद्वा लीप् । १ हिलमोचिका, कोई सब्जी । (पु०) २ रामानुज साम्प्रदायिक वैष्णव । (त्रि०) ३ शास्त्रीक अनुष्ठाना, कदौम चाल पकड़ने-वाला ।
 आचार्य (सं० पु०) आ-चर-ण्यत् । इन्द्रवज्रवर्मवन्द-मरुद्दिमारख्यवचनमातृनाचार्याणामाहुः । पा ३।१।२। १ गुरु, सुरगद, छद्माद । मनु कहते हैं,—जो ब्राह्मण शिष्यको उपनयन पहना सकत्य और मरुदस्य वेद पढ़ाता, वही वेदाध्यापक आचार्य कहता है । किन्तु आजकल वेदकी भानोचना नहीं होती, इमन्त्रिये बालकको जो उपनयन कर गायत्री सुनाता, वही आचार्य है । २ मत-संस्थापक गुरुआचार्यदि । ३ यज्ञादिमें कर्मोपदेश । ४ पूज्यमात्र । ५ शिष्यकमात्र । ६ भद्राचार्य । मध्वारचर इम गणक वा दंभत्र ब्राह्मणको आचार्य प्रथमा प्रहाचार्य कहा करते हैं । (स्त्री०) आचार्या । आचार्यको पत्नी आचार्यानी कहलाती है ।
 आचार्यक (सं० स्त्री०) आचार्यस्य कर्म भावो वा, युञ् । १ आचार्यका कर्म वा धर्म, सुरगद पाकका काम । (त्रि०) २ आचार्यसे निकलनेवाला, जो सुरगद पाकसे पैदा हो । (स्त्री०) आचार्यता ।
 आचार्यता (सं० स्त्री०) गुरुका कर्म, उस्तादी ।
 आचार्यत्व (सं० स्त्री०) आचार्यता देको ।
 आचार्यदेव (सं० पु०) अपने इष्टदेवको गुरु मानने-वाला व्यक्ति, जो शब्दस परमेश्वरको सुरगद मानता हो ।
 आचार्यभोगीन् (सं० त्रि०) आचार्यभोगाय हितम्, ख । आचार्यके भोग योग्य, सुरगदको खुग करनेवाला, जो उस्तादके काम लायक हो ।
 आचार्यमित्र (सं० त्रि०) आचार्यो मित्रः । प्रति शय पुन्य, बुलुगवार, काबिल ताजीम ।
 आचार्यवान् (सं० त्रि०) आचार्य रखनेवाला, जिसके सुरगद रहे । (स्त्री०) आचार्यवती ।
 आचार्यानी (सं० स्त्री०) आचार्यपत्नी, सुरगदकी चोरत ।

आचार्यी (सं० त्रि०) आचार्य-विषयक, सुरगदका ।
 आचार्यासन (सं० स्त्री०) आचार्यकी सेवाशुभ्या, सुरगदको फरमांवरदारौ ।
 आचिख्यासा (सं० स्त्री०) आख्यातुमिच्छा, आख्या-मन्-प्र प्रत्ययादिति थ टाप् । आख्यानके निमित्त इच्छा, बोलनेकी खाहिश ।
 आचिख्यासु (सं० त्रि०) आख्यातुमिच्छुः, आख्या-मन् उ । आख्यानके निमित्त इच्छुक, बोलनेका खाहिशमन्द ।
 आचिख्यामोपमा (सं० स्त्री०) चलद्वार-शास्त्रकी एक उपमा ।
 आचित् (वे० त्रि०) ध्यानमें लानेवाला, जो ख्याल करता हो ।
 आचित (सं० त्रि०) आ-चि-त्त । १ व्याप्त, मामूर, भरा हुआ । २ गुम्फित, बंधा हुआ । ३ प्रथित, गूँथा हुआ । ४ संघड़ किया हुआ, इकट्ठा । (स्त्री०) ५ द्विसदृश पलका मानविशेष, पचीस मनकी तौल । (पु०) ६ शाकट भार, एक गाड़ी माल ।
 'आचित' दशमाराष्ट्रः शब्दटीका आचितः । (बनर)
 आचितादि (सं० पु०) आचित आदिदेश्य । गण-विशेष । इसमें निम्नलिखित शब्द पठित हैं,— आचित, पर्याचित, अस्थापित, परिगृहीत, निरुक्त, प्रतिपन्न, अपप्रिष्ट, प्रप्रिष्ट, अपहत, उपस्थित, संहित ।
 आचितिक (सं० त्रि०) आचित मानके बराबर, जो पचीस मन धौज़ पका रहा हो ।
 आचितिन, आचितिक देको ।
 आचिन्त्य (सं० त्रि०) १ सर्वप्रकार सोचने योग्य, सबतरह ख्यालमें लाने काबिल । (हिं० वि०) २ अचिन्त्य, ख्यालमें न आनेवाला ।
 आचोर्ण (सं० त्रि०) मुक्त, शास्त्रादित, खाया हुआ ।
 आचु (सं० पु०) आच्छुक हृत्, आलका पेड़ ।
 आचूगिदेव—प्रथम परमर्दिदेवके पिता । वस्वई प्रान्तस्य धारवाङ् जिलेकी रोन तहसीलके कोड़ीकोय गांवमें मूल ब्रह्मदेवके मन्दिरकी दीवारपर इनके समयका एक शिलालेख विद्यमान है ।

आचूषण (सं० स्त्री०) आचूष-सुरट् । १ भोष्ठादि संयोग विगेष द्वारा आकषेण, शुभाव, दमकगी, जज्व । करणे सुरट् । २ शरीरस्य रक्त चसनेकी सीगी । ३ मींगीका लगाना ।

आचिपत्र (सं० पु०) आच द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर ।
आच्छक (सं० पु०) रश्मनद्रुम, आलका पेड़ । यह साल रङ्ग तैयार करनेमें लगता है ।

आच्छद (ई० स्त्री०) आच्छाद्यतेऽनेन, आ-छद-णिच्-क्तिप् ङस्त्वः णिच् लोपः । १ आच्छादन, टकान, भोहार । २ कोप, विधान, म्यान ।

आच्छद (सं० पु०) आ-छद-व । आच्छादनवद्वा, टाकनेका कपड़ा ।

आच्छदविधान (वै० स्त्री०) रक्षा रखनेका प्रबन्ध, द्विफाजत करनेका इन्तजाम ।

आच्छन्न (सं० त्रि०) आ-छद-क्त । १ आहत, टका, छिपा या लिपटा हुआ ।

आच्छाक, आच्छक देवो ।

आच्छाद (सं० पु०) आच्छाद्यतेऽनेन, आ-छद-णिच्-करणे घञ्, णिच् लोपः । आवरण, परदा ।

आच्छादक (सं० त्रि०) आच्छादयति, आ-छद-णिच्-ण्वुल, णिच् लोपः । आच्छादनकर्ता, टाकने या छिपानेवाला ।

आच्छादन (सं० स्त्री०) आच्छाद्यतेऽनेन, आ-छद-णिच्-करणे सुरट्, णिच् लोपः । १ आवरण, परदा । २ भन्तर्धान, छिपाव । ३ कोप, म्यान । ४ वस्त्र । कपड़ा । ५ लवादा, भूल, भोहार । ६ छतका टांदा । यह लकड़ीका वनता है । ७ कार्पास, कपास ।

आच्छादनफला (सं० स्त्री०) रक्तकार्पास, लाल-कपास ।

आच्छादनौ (सं० स्त्री०) कार्पास, कपास ।

आच्छादित (सं० त्रि०) आ-छद-णिच्-क्त-इट्, णिच् लोपः । १ आहत, टका हुआ । २ गुप्त, पोथीदा ।

आच्छादिन् (सं० त्रि०) आच्छादयति, आ-छद-णिच्-बिन्, णिच् लोपः । आच्छादनकारी, टाकनेवाला ।

(स्त्री०) आच्छादिनी ।

आच्छाद्य (सं० त्रि०) आच्छाद्यते, आ-छद-णिच्-

कर्मणि यत् । १ आच्छादनीय, टाकने जायक । २ गोप्य, छिपाये जानेवाला । (अथ०) आ-छद-णिच्-ण्वय्, णिच् लोपः । आच्छादन करके, पहनकर, छिपाते हुये ।

आच्छिद्य (सं० अथ०) १ काटकर, फाँककर । २ भलग करते हुये, ख्याल न साते हुये । ३ तथ्यापि, फिर भी ।

आच्छिन्न (सं० त्रि०) आ-छिद-क्त । १ वलद्वारा गृहीत, जोरसे लिया या छीना हुआ । २ सम्यक् रूप छिन्न, अच्छेतरह काटा हुआ ।

आच्छुक (सं० पु०) आ-च्छी बाहु० लु संप्रायां कन् । खनामस्थान हृत्त, आलका पेड़ ।

आच्छुरित (सं० स्त्री०) आ-छुर-क्त-इट् । १ शब्दयुक्त हास्य, कृङ्कल, खिलखिलाहट । २ नखाघात, नाखूनकी रगड़ । ३ नखद्वारा बाध, उँगलीके नाखून एक दूसरे पर रगड़ आवाजका निकालना । (त्रि०) ४ मिश्रित, मिलावटी । ५ उच्छेदित, नोचा, सुरवा या बकोटा हुआ । ६ उत्तेजित, खिजाया हुआ ।

आच्छुरितक (सं० स्त्री०) आच्छुरित एव, आच्छुरित-स्त्रायं कन् । १ शब्दयुक्त हास्य, खिलखिलाहट । २ नखाघात, खराश, बुजटा, नुइटा ।

'आशाच्छुरितकं द्वासनवापातभेदयोः ।' (वि०)

आच्छेद (सं० पु०) आ-छिद-घञ् । १ समस्तात् छेदन, पूरी काट-काँटा । २ ईपत् छेदन, थोड़ी कटायी ।

आच्छेदन (सं० स्त्री०) आच्छेद देवो ।

आच्छोटन (सं० स्त्री०) आ-स्फुट-सुरट्, प्रयो० स्फुत्त्वच्छ । १ सुटकीका मजाना । २ उँगलीका चिटकाना ।

आच्छोटित (सं० त्रि०) आ-स्फुट-क्त, प्रयो० स्फुत्त्वच्छ । १ फोड़ां हुये, जा चिटकायी गयी हो । २ जो सुटकी मजानेके काम भाये हो । यह शब्द प्रकृति प्रभृतिका विशेषण है ।

आच्छोदन (सं० स्त्री०) आच्छिद्यतेऽनेन, आ-छिद-सुरट्, प्रयो० इतभोत् । मगया; गिकार ।

आच्युतदत्ति (सं० पु०) अच्युत-दत्तस्यापत्यम्, अच्युत-दत्त-इच् । आयुधभोवि-विशेष, कीयो लड़ाका कौम ।

पाच्यतदन्तीय (सं० पु०) टामन्यादिं स्त्रायं छ ।
 एकत्रस्थितं पनेक पाच्युषजीविविशेष ।
 पाच्यतन्त्रि (सं० पु०) पचुरतं तस्यापत्यम्, इत् ।
 पाच्युषजीविविशेष, कोषी संडाका काम ।
 पाच्यतिक (सं० पु०) पंच्युतस्य ह्यत्वः, काम्यादि०
 एत्ञ् जिठ् वा । पच्युतका ह्यत्त्वं । (स्त्री०)
 पाच्यतिकी ।
 पाचित (हिं० क्ति० वि०) रक्षते, होति, समक्ष, सामने ।
 पाचना (हिं० क्ति०) १ रक्षना, ठहरना । २ होना,
 मोक्षद मिलना ।
 पाक्षा, पक्षा देखो ।
 पाक्षी (हिं० वि०) १ भक्षक, खानेवाला । २ भली,
 जो बुरी न हो ।
 पाक्षिप (हिं०) पक्षिप देखो ।
 पाक्षी, पक्षा देखो ।
 पाक्षोत्प (हिं०) पाक्षोत्प देखो ।
 पाज (सं० स्त्री०) पाज्यतेऽनेनेति, प्रा-पञ्च घञ्च
 क । १ घृत, घी । २ छागघृत, बकरीका घी ।
 (पु०) ३ रघु, रक्षान, गीध । (त्रि०) ४ छाग-
 जात, बकरीसे पैदा हुआ । (हिं० क्ति० वि०) ५ पच्य,
 हमरोज । (पु०) ६ विद्यमान दिवस, गुजरनेवाला
 दिन ।
 पाजक (सं० स्त्री०) पजानां समूहः, इत् । छाग-
 समूह, बकरियोंका भुण्ड ।
 पाजकरीण (सं० त्रि०) पाजकेनोपलक्षिता रोषी
 नाम काचित् नदी तस्याः सञ्जकट स्थानादि पच्य ।
 रोषी । पा ३४५०० । छागसमूहयुक्त नदीके निकटस्थ,
 बकरियोंके भुण्डसे भरे हुये नदी किनारेका । यह
 शब्द देगादिका विशेषण है ।
 पाजकल (हिं० क्ति० वि०) सम्प्रति, पधुनातनकाल,
 देरीबिला, इन दिनों ।
 पाजकार (सं० पु०) पजस्य विष्णोरयम्, पज-
 षण, पाकारः शकन्वादि । शिषकां ह्यपि । त्रिपुरा-
 सुरके वधकाल ह्यपि पाकारं बनाते भीरु काम
 करनेसे विष्णुकी आजकार कहते हैं । विष्णुके ह्यप-
 रूप धारणका विषय हरिवंशमें लिखा है ।

पाजकार, पाजक देखो ।
 पाजकार (सं० स्त्री०) छागदुग्ध, बकरीका दूध ।
 "यह गन्धगुण, पाक्षी, दीपन, संक्षु भीरु सर्वरोगघ्न होता
 है ।" (संज्ञानाम्) १८५
 पाजगर (सं० त्रि०) इत्त्वं सर्व-सम्बन्धीय, पजगरी ।
 महाभारतके एक अध्यायको पाजगर कहते हैं ।
 पाजगव (सं० स्त्री०) पजगवमेव, प्रप्राथ्य ।
 १ शिषका धनुष्य । २ पजगवकी तरह भति कठिन
 धनुष्य ।
 पाजघेनवि (सं० पु०-स्त्री०) पजेव घेनुरस्य, प्रयो०
 पु० शब्दावः, तस्यापत्यं वाह्यदिराकृतिगण्यत्वादिञ् ।
 ह्यङ्गीरुप घेनुयुक्त सुनिका भपत्य, बकरीसे गोको काम
 होनेवाले फकीरकी शौलाद ।
 पाजमन (सं० स्त्री०) पा पमिष्यामी जननम्, प्रादि
 समा० । १ विख्यात जन्म, मंगहर पैदायर्था । (त्रि०)
 भा विख्यातं जननं यस्य, बंधुव्री० । २ विख्यात-
 जन्मा, शोहरतके साथ पैदा होनेवाला । (बंध्य०)
 जमनात् पा सीमार्थ, पच्ययी० । ३ जन्म पर्यन्त,
 जीते जी ।
 पाजनयनीत (सं० स्त्री०) छाग-दुग्ध-जात नवनीत,
 बकरीके दूधकां भेकड़ने । यह मधुर, कषाय,
 त्रिदोषघ्न, चंचुष्य, दीपन भीरु बन्ध होता है ।
 (राजनिघण्टु,)
 पाजनि (वे० स्त्री०) हांकेनेकी छड़ी ।
 पाजम् (सं० बंध्य०) जन्मनः पा पर्यन्तम्, सीमार्थ
 पच्ययी० । जन्मपर्यन्त, उच्छमर ।
 पाजभानु, पाजभ देखो ।
 पाजभसुरमिपत्र (सं० पु०) पाजभं जन्मपर्यन्तं
 सुरभि सुगन्धि पत्रं यस्य, बहुव्री० । मद्रवके पत्र,
 नागस्थाना । (स्त्री०) पाजभसुरमिपत्रां ।
 पाजमखां—खां-पाजमके पुत्र । इहं लोग प्रायः
 "मिर्जा पजीज" कोका कहते, क्योंकि इनकी माताने
 धात्रीरूपसे भकवरकी दूध पिलायी थी; यह भी उन्हें
 खिलाते रहे । सर्वोत्तम सेनापति होनेसे सम्नाट
 भकवरने अपने शासनके इहं वर्ष इनकी पाजमखां
 सेपाधि प्रदान किया । इन्होंने कितने भी वर्ष

गुजरातका शासन चलाया था। सन् १५८२ ई०को दरभारमें बहुत दिन उपस्थित हो न सकनेसे पकवरने इन्हें दिल्ली बुलाया। किन्तु इनके मनमें हज्रत खानकी श्रद्धा थी। फिर इनके मित्रोंने यह भी कहा,— बादशाह क़दर नाराज मालूम पड़ते और आपकी केवल कौद करनेका भवसर टूँते हैं। उस पर यह अज्ञानमें अपने कुटुम्बकी बैठे और खजाना साद विना कुछ कहे-सुने हज्राजकी रवाना हो गये। किन्तु वहाँ रहनेमें अहमदनगरके इन्हें भारत सौदना और बादशाहके सामने हाज़िर होना पड़ा था। बादशाहने प्रार्थना सुनते ही इन्हें छमाकार पूर्ववदपर प्रतिष्ठित कर दिया। सन् १६२४ ई०को इन्होंने अहमदाबादमें प्राण छोड़ा था। इनका शवदेह दिल्ली मेजा और वहाँ गाड़ा गया। इनकी क़दमरकी वनी और ६४ खम्बे लगनेसे 'वीसठखम्बा' कहलाती है। इनका मसल अहमदाबादमें सबसे बड़ी इमारत है। आजकल उसमें कौड़ी रखे जाते हैं।

भाजमगढ़—१ युक्तप्रान्तकी बनारस विभागका एक जिला। यह अक्षा० २५° ३८' एवं २६° २५' उ० और द्राधि० ८२° ४२' तथा ८३° ४८' पू०के मध्य अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल २१४० वर्गमील है। भाजमगढ़से उत्तर फेजाबाद तथा गोरखपुर, पूर्व बनिया, दक्षिण गाजीपुर और पश्चिम जौनपुर एवं सुलतानपुर जिला है। यह गङ्गाके मैदानका एक अंग और आकार-प्रकारमें विषम चतुष्कोण-जैसा देख पड़ता है। इसकी भूमि समुद्रतलसे २५५ फीट ऊँची है। दक्षिण-पूर्वकी ओर धरातल टालू रहनेसे नदियाँ भी लघुरकी ही बहती हैं। दक्षिणमें कितने ही भील भरे हैं। इस जिलेमें रेश बहुत होता, किन्तु उससे नमक निकालनेपर व्यय भी कम नहीं पड़ता। जङ्गलमें टाक और बयलकी पूष व बढ़ती है। घाघरा प्रधान नदी है। दूसरी नदियाँकि नाम यह हैं,—गुनिस, छोटी सरयू, फरायी, बसनायी, गङ्गा, रेश, कुंवार, उंगरी, माझुयी, मिलायी, कयार और सुलसोयी। गभीर वन, कीतल, जम्बावन, गुमाडीह, कोयल, सकोना, पकरीयवा, नरजा और रतौयी सबसे

बड़े भील हैं। धातुमें केवल कच्चा ही पाया जाता है।

विचार—प्रवाद सुनते, कि भाजमगढ़के बादिम निवासी राजभर, सुयिरी, सद्धारिया और चेद हैं। कहते हैं, किसी समय इस जिलेका प्रधान भाग राजभरोंके ही अधिकारमें रहा। भाजमगढ़पर तीन बार घोर आक्रमण पड़ा है। पहली राजपूताने आकर राजभरोंसे भूमि छोन ली थी। पीछे भूमिहार ब्राह्मण पहुँचे। सुसलमानोंके धावा मारनेपर यह जिला दिल्लीकी बादशाहतमें मिला लिया गया था। सन् ई०के १४वें शताब्दान्त जौनपुरने अपना स्वातन्त्र्य प्रतिष्ठित किया और उसके शरकी नृपतियोंने भाजमगढ़पर भी अपना अधिकार जमाया। किन्तु उनके वंशका पतन होनेपर यह जिला फिर दिल्लीमें मिल गया था। सिकन्दरपुरका किला सिकन्दर-सोदीने अपने नामपर बनवाया रहा। किन्तु सन् ई०के १७ वें शताब्दान्त गौतम राजपूतोंने पञ्जाबके बल भाजमगढ़ अधिकार कर लिया। गौतम-वंशके परिमानचन्द्रसेन सन् १६०० ई०के समय बढ़े थे। पन्तकी वह सुसलमान हो गये और पकवरके अधीन रह इतना धन कमाया, कि इस जिलेमें दौलताबादकी जमीन्दारी खरीद सके। परिमानचन्द्रसेन और उनके भाईके लड़कोंने अपने पड़ोसियोंको यहाँतक लटा, कि सन् ई०के १८ वें शताब्दारभ्रमें गोमती नदी तथा वर्तमान गाजीपुर जिलेके मध्यका देग उनके हाथ जा पड़ा था। फिर भी लखनऊके खानखाना नवाब कोई नया हजार रुपये वार्षिक भाजमगढ़से कर पाते रहे। किन्तु सन् ई०के १८वें शताब्दारभ्रमें इस नगरके नवाब महावत खाने कर देना न चाहा, अपने राजधानीको सुरक्षित बनाया और तिलाहरमें भागे बढ़ जौनपुरकी फौजकी युद्धमें विजयकर हरा दिया। जौनपुरके साहाय्य मांगनेपर लखनऊके नवाब शहादत खाने महावत खाने लड़नेकी बहुत बड़ी सेवा मेजी थी। महावत खाने गोरखपुरकी भागी, किन्तु पकड़ सिये गये। सन् १७५८ ई०को भाजमगढ़ अवधकी

चकला बना था। सिवा नादिर खां डाकूकी लूट-भारकी सन् १८०१ ई० तक इस जिल्लेमें सखनबी वजीरकी अधीन शान्ति प्रतिष्ठित रही। इसी वर्ष प्राजमगढ़ उस करकी बदले ईष्ट इण्डिया कम्पनीको सौंपा गया, जो सखनजके खजानेसे अंगरेजोंको सामरिक धनरूप साहाय्य और अन्य-अन्य व्ययके लिये मिलता था। नादिरखाने अपना जमीन छोड़ लेनेकी नालिग कम्पनीपर की, किन्तु कोई सुनायी न हुई; केवल राजाका उपाधि धार पेनुयन उनके सड़कोंकी दिया गया। फिर कोई बड़ी बात पड़ी न थी। किन्तु सन् १८५० ई०की शरी जूनको १७ वीं रोजी-मेप्टके देसी सिपाहियोंने बलवा उठा कुछ अफसर मार डाले और सरकारी खजाना फँजावाद ले गये। गुराधीय गाजीपुरको भागे थे। किन्तु १६ वीं जूनको गाजीपुरसे फौजन आकर फिर इस नगरपर अधिकार जमा लिया। १८ वीं जुलाईके युद्धमें अंगरेजोंको पीछे हटना और २८वींके दिन दानापुरमें बलवा भड़क उठनेसे गाजीपुर वापस जाना पड़ा था। २७वेंसे २५वें अगस्ततक प्राजमगढ़ पलवारोंके अधीन रहा, किन्तु २६वींको राजमन्न गोरखोंने उन्हें निकाल बाहर किया। २० वीं सितम्बरकी पलवारोंके प्रधान बेणोसाधवके हार जानेपर अंगरेजोंका फिर अधिकार प्रतिष्ठित हुआ था। नवम्बरमें बलवायी अतरी-लियेसे निकाले गये। सन् १८५८ ई०के जनवरा मास गोरखे शमशेरजङ्गके अधीन गोरखपुरसे फेजावादको भागे बढ़े, जिसपर बलवायी फिर इस नगर बाध्य हो वापस आये। फरवरी मासके मध्य कुंवरसिंह लखनऊसे भाग इस जिल्लेमें दाखिल हुये थे। अतरीलियेमें अंगरेजी फौजन उनपर आक्रमण किया, किन्तु हारकर प्राजमगढ़को पीछे हटना पड़ा। कुंवरसिंहने अपने मासके मध्यतक इस नगरको घेर रखा था। अस्तकी वह हार गये और गङ्गा पार करते अपना प्राण छोड़े। किन्तु अक्तोबर मास तक बलवायी तहसील और थाने लूटते रहे थे। पीछे सेनापति कैलीने इस जिल्लेमें विद्रोहियोंकी दवां शान्ति स्थापित की।

प्रवक्तव्य—इस जिल्लेमें कितने ही दुर्गोंका अर्ध-संव्यय पाया जाता है। कहते, यह किले भरोके समय बने थे। कितने ही किले बहुत बड़े देख पड़ते, किन्तु उनके बननेके दिनों और बनवानेवालोंके नामोंका पता हम नहीं पाते। घोषिका किला सबसे बड़ा है। कहा जाता, कि राजा घोपने पिशाचोंके साहाय्यसे इसे बनवाया था। यही बात कुंवारसे मङ्गायी तकके रन्धु और इन्दावन किलेसे नज् ताल-तककी कुख्याके विययमें भी प्रसिद्ध है। गोपाल पर-गनेके महाराजगङ्गमें भैरवका प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। लोग कहते हैं,—किसी समय अथोधा नगर इतना विस्तृत रहा, कि उसमें बयालीस बयालीस फीस दूर चार फाटक लगे थे; भैरव-मन्दिर पूर्व द्वारका अर्ध-संव्यय है।

इस जिल्लेमें निम्नलिखित नगर बड़े हैं,—१ प्राजमगढ़, २ मन्न, ३ सुवारकपुर, ४ मुहम्मदाबाद, ५ दुबरी, ६ कोयागङ्ग, ७ वालिदपुर और ८ सरापमौर।

॥१॥—प्राजमगढ़की भूमि कहीं बांगर और कहीं कटार है। मही तीन तरहको होते हैं,—मटियारी, कारायल और काविस। अब ऊपरमें भो चावल पैदा करने लगे हैं। किन्तु इस जिलेकी कृषि प्रधानतः सुहृष्टिपर ही निर्भर है। खरीफमें चावल, अरहर, ज्वार और रबीमें गेहूँ, यय, चना, मटर, अमोह पैदा होता है। इस जिल्लेमें सरकारी नहर नहीं चलती। अत्रिय एवं वैश्य व्यापार करते और पटना, मिर्जापुर तथा कलकत्तेको पैदावार भेज देते हैं।

॥१॥—प्राजमगढ़का व्यापार जल तथा खल दोनो मार्गसे होता है। घाघरा नदी उत्तर तथा पश्चिमसे अन्न मंगाने और बङ्गाल एवं पूर्वकी चीनी भेजनेके काम आते हैं। इस नगरसे गाजीपुर, लौनपुर, गोरखपुर, बलिया और फेजावादको पक्की सड़क गयी है। चीनी, गुड़, नील, अफीम, मोटा कपडा तथा जलानेकी लकड़ी यहांसे बाहर भेजते और अन्न, विलायती कपड़ा एवं छत, कपास, रेशम, तम्बाकू, नमक, लोहालकड़, दवा, चमड़ेकी चीज, पत्थरकी चक्री अमोह दूसरीजग हसे मंगाले हैं।

पहले भाजमगदसे कलकत्तेकी राह कितनी ही साफ
 होनी यूरोप भेजी जाती थी। किन्तु अब वह वात
 नहीं रही।

साधारणतः इस जिलेका स्वास्थ्य अच्छा रहता, किन्तु
 वर्षा ऋतु भरतुमें ज्वरका प्रकोप बढ़ जाता है।
 २ अपने जिलेकी तटसील। इसका क्षेत्रफल ४४२
 वर्गमील है। ३ अपनी तटसीलका नगर। यह
 तोष्म नदीपर बनारससे ८१ मील उत्तर पश्चां २६°
 ३०' और द्राविं ८३° १३' २०" पू० अवस्थित है।
 भाजमगद नगरका क्षेत्रफल १३०४ एकर और लोक-
 संख्या प्रायः बीस हजार है। सन् १६६५ ई०की
 निकटके शक्तिशाली जमीन्दार भाजमखनि यह
 नगर प्रतिष्ठित किया था।

भाजमाना (हिं० लि०) भाजमायम करना, परीक्षा
 लेना, जांचना।

भाजमायम (फ्रा० स्त्री०) परीक्षा, जांच।

भाजमार्य (सं० पु० स्त्री०) भजमारस्थापत्यम्, भाज-
 मार-स्थ, रिफात् परस्थाकारस्थ लोपः। छत्रिंशोऽक्षः।
 भा० भा० १११। भजमारकी कन्या वा पुत्ररूप सन्तान,
 भजमारकी बीसाद।

भाजमीद (सं० त्रि०) भजमीदो नाम कश्चिद्देशः
 तत्र भवः, भण्। १ भजमीद-देश-जात, भजमीद
 सुस्तका पैदा। (पु०) भजमीदस्थ राजा भण्।
 २ भजमीद-देशका राजा। "तः सन्तानः सपत्न्याजनीदो यथो-
 चितं वाचुपुत्रान् वर्धयाम्" (महाभारत)

भाजमूय (सं० स्त्री०) हागमूय, बकरेका पेयाव।

भाजमूदा (फ्रा० वि०) परीक्षित, जांचा या परखा
 हुआ।

भाजयन (सं० स्त्री०) भा सम्यक् जायतेऽस्मिन्, भा-
 जि आधारि सुगद। युष्, लड़ायी।

भाजरस (वे० अर्थ०) जरापर्यन्तम्, सीमार्ये भजन्त
 अर्थ्योः। १ जरा पर्यन्त, बुढ़ापे तक। (त्रि०)

भागता जरा यस्य, प्रादि० बहुभो० अच् जरासादेश्य।
 २ जराप्राप्त, बुढ़ा। "जरापति राजरथस्य।" (अथ० १००३११)

(सं० पु०) ३ हागमांस-काय, बकरेके गोष्ठका
 खाड़ा।

भाजवन (सं० स्त्री०) प्रपात, भाकमण, युष्, धावा,
 हमला, लड़ायी।

भाजवक्ष (सं० पु०) वनतुलसी, जङ्गली तुलसी।
 यह कट, उष्ण, शीत, दाहकर, म्रिय, रुष्ण, हृद्य,
 दोषक, लघु, पाकमें पित्तल, तिक्त, मधुर, सुख-प्रसव-
 एवं व्रण्य होता और वात, कफ, नेत्ररोग, मूत्रकण्ठ,
 अर्चि, विपाकामला, कुम्भकामला, पनाहवास, शूल,
 अग्निमान्द्य, रक्तदोष, श्वास, कास, दह, हृत्-पार्श्व-
 वेदना, कण्ठ, कुष्ठ और वमनको दूर करता है।
 भाजवक्षका सुगन्ध, कटु, उष्ण, द्रविकर, पित्तोत्पादक
 एवं मित्राजनक रहता और वमन, वात पक्षवाधा,
 पार्श्वशूल, कास, श्वास, कफ, शोथ तथा अङ्गके दोग्ग-
 को मिटाता है। (वैद्यकनिघण्टु)

भाजवस्तिक, भाजवसेवःदक्षी। (स्त्री०) भाजवस्तिका।

भाजवस्त्य (सं० स्त्री० पु०) भजवस्तोः ऋषेरपत्यम्,
 श्वादि० टक। भजवस्ति नामक ऋषिका पुत्र-कन्या-
 रूप सन्तान। (स्त्री०) डीप। भाजवस्त्यो।

भाजवाह (सं० त्रि०) भलो वाद्यतेजस्व, भज-वह-
 णिच भाधारे वज्ज, श-तयु; भजवाही नाम कश्चि-
 द्देशः तत्र भवादि भण्। भजवाह देश जातादि, भज-
 वाह सुस्तका पैदा वगैरह। वेदरिकायमसे उत्तरस्थ
 पर्यंतमय उच्य स्थानका नाम भजवाह है। कौञ्जि
 वहाँ लोग बकरेपर ही घोभ ठीते हैं।

भाजवाहक, भाजवाह दीपो।

भाजा (हिं० पु०) पितामह, जद, दादा, बापका
 बाप। (स्त्री०) भाजी।

भाजागुरु (हिं० पु०) गुरुका गुरु, उस्तादका
 उस्ताद।

भाजातशतव (सं० पु०) भाजातशरीरपत्यम्, भाजात-
 शत-भण्। १ युधिष्ठिरके अपत्य, धर्मराजके सङ्के।
 २ भाजातशतु नामक राजाके अपत्य। ३ भद्रसेन
 नामक राजा।

भाजाति (सं० स्त्री०) भा-जन्-क्तिन्। १ भाजनन,
 जन्म, पैदायश। (अर्थ०) जातिपर्यन्तम्, सीमार्ये
 अर्थ्योः। २ जन्म पर्यन्त, उन्मभर। ३ जातिपर्यन्त,
 कीमतक।

भाजाद (फा० वि०) १ सुक, जो बंधा न हो।
२ निश्चिन्त, विपरया। ३ स्वतन्त्र, जो मातहत न हो।
४ निर्भय, शैलीफ। ५ स्वतन्त्रभायी, विधङ्क दोलने-
वाला। ६ उद्वत, भङ्गड़। ७ अकिञ्चन, जो गरीब न
हो। ८ नामधाम-रहित, गुमनाम। (पु०) ९ साधु-
सम्पदाय विशेष, एक फकीर। यह सुसलमान होते
घौर दाढी, मूँछ तथा भौं मुँहा डालते हैं। इनमें
न तो कौयी रोज़ा रखता घौर न नमाज़ हो पढ़ता
है। भाजाद किसी किछकें सफ़ी घौर भङ्गेतवादी
होते हैं।

भाजादगी (फा० स्त्री०) भाजादी, स्वतन्त्रता।

भाजादाना (फा० वि०) भाजाद, स्वतन्त्र, जो
मातहत न हो।

भाजादी, भाजदगी ईश्वी।

भाजाघ (सं० त्रि०) अजं ह्राजं अत्ति तस्य मुने-
रपत्यम्, अज-अद-अण् गगादि० यञ्, उप० समा०।
अजभक्षक मुनिका अपत्य। (स्त्री०) डीपूय-सोपः।
भाजादी। अजभक्षक मुनिकी कन्या।

भाजान (सं० अर्थ०) अनो जनमेव, जन-अण्
सीमायें अर्थ्यी०। १ सृष्टिकाल पर्यन्त, दुनिया रहने
तक। (पु०) २ उत्पत्ति, पैदायश। ३ जन्मभूमि,
वतन।

भाजानज (सं० त्रि०) भाजानां जायते, भाजान-
जन-ङ। सृष्टिकाल पर्यन्त जात, दुनियाके बननेतक
पैदा हुआ। वेद दो प्रकारके होते हैं, भाजानवेद
घौर कर्मवेद। सृष्टिकाल-प्रकाशित भाजान घौर
कर्मकाल प्रकाशित कर्मवेद कहते हैं।

भाजानदेव (सं० पु०) भाजानं सृष्टिकालात् प्रभृति
देवः देवत्वमाप्तः। चिरप्रसिद्ध या कर्मद्वारा प्रकाशित
न होनेवासे देव।

भाजानि (बै० स्त्री०) भा-जन अन्तर्भूतख्ये इनि,
कन्दसीति दीर्घः। १ उत्पत्ति, पैदायश। २ श्रेष्ठ
कुल, शरीफ़ खान्-दान्। ३ माता, मा।

“भाजानोदभवसे अर्थः।” (पञ्च० १।७।३)

भाजानिक्य (सं० स्त्री०) भाजानो भवम्, ठन् तस्य
भवदादौ पुरो० यक्। अजन्म-सिद्ध पदार्थका भाव

घौर कर्म, पैदायशसे आवित चोजका कयाम घौर
काम।

भाजानु (सं० अर्थ०) जांघ या घुटनेतक।

भाजानुवाङ्मू (सं० त्रि०) घुटनेतक लम्बे हाथवाला।

भाजानेय (सं० पु०) भाजि विपद्यमध्ये भानेयो
युधार्थम्। १ कुलीन अन्ध, सुदङ्गा घोड़ा। (त्रि०)
२ कुलीन, सुदृब्ध, बढ़िया।

भाजानेय्य (बै० त्रि०) कुलीन, सुदृब्ध, बढ़िया।

भाजायन (सं० पु०) अजस्यापत्यम्, नडादि० फक्।
१ अज नामक राजाके अपत्य। २ अज नामक ब्राह्मणके
नङ्के।

भाजार (फा० पु०) रोग, वेदना, दर्द, बीमारी।
२ कष्ट, सुसीवत।

भाजि (सं० पु०-स्त्री०) अजत्यस्याम् इण् णित्वा-
दुपधादृष्टिः। अश्रुतिवाचः। उप० १।२०। १ समरभूमि,
लड़ायीका मैदान्। २ अश्रुत, लड़ायी।

‘भाजिः अश्रुतः।’ (उज्ज्वलदत्त)

३ समतल क्षेत्र, हमवार मैदान्।

‘भाजिः शान्तिः।’ (शिवोक्ति)

४ चण, लमहा। ५ मार्ग, राह। भावे इण्।

६ पाचेप, फटकार। ७ दौड़का खेल।

भाजिकृत् (बै० त्रि०) १ पुरस्कारके लिये लड़नेवाला,
जो इनाम पानेको दौड़ रहा हो। २ युद्ध करनेवाला,
जो लड़ रहा हो।

भाजिज्ञिया (सं० स्त्री०) युद्ध, लड़ायी, ठनाठनी।

भाजिनीपु (सं० त्रि०) उत्साही, हौसलेमन्द,
समकृत ले जानेकी खाहिश रखनेवाला।

भाजिप्रह (सं० त्रि०) लेने या पकड़नेवाला।

भाजिज् (अ० वि०) १ हलीम, नम्र। २ परेशान्,
सुख्य।

भाजिज्ञी (अ० स्त्री०) गरीबी, मुसालासमित, नम्रता,
दीनता।

भाजिज्ञासैन्य (बै० त्रि०) १ अनुसन्धानके योग्य,
जांचने काबिल।

भाजितुर (बै० त्रि०) युद्धमें विजय पानेवाला, जो
लड़ायीमें जीतता हो।

आजिनीय (सं० दि०) अजिन चतुरर्थां छायाशादि०
हृत् । चर्मके निकटस्थ, चमड़ेके पासवाला । यह
शब्द देगादिका विशेषण है ।

आजिपति (सं० पु०) युद्धके स्वामी, लड़ायिके
मानिक ।

आजिरि (सं० दि०) अजिर चतुरर्थां सुतङ्गमादि०
इज् । १ अङ्गनके समीपस्थ, इहातिके पास होनेवाला ।
२ चतुरके पासवाला । यह शब्द स्थानादिका
विशेषण है ।

आजिरय (सं० दि०) अजिर शब्दादि० टक् ।
अजिरसे उत्पन्न होनेवाला, जो प्राग्गने पैदा हो ।

आजिहोर्षा (सं० स्त्री०) आहर्षुमिच्छा, आ-ह-सन्
भाये अ प्रत्ययादिति अ टाप् । आहरणकी इच्छा,
घोरी करनेका मालव ।

आजिहोर्षु (सं० दि०) आहरण करनेकी इच्छा
रखनेवाला, जो माल उड़ा देना चाहता हो ।

आजीकृण (सं० स्त्री०) आर्जी कृणति आहृणोति
यस्मिन्, आजी-कृण आधारे क । मर्यादा रखनेवाला
देग, जो मुक्त इच्छत वधाता हो ।

आजीगर्ति (सं० पु०-स्त्री०) अजीगर्तस्थापत्यम्,
अजीगर्त-वाह्नादि० इज् । अजीगर्तका पुत्र वा कन्या-
रूप मन्तान ।

आजीव (सं० पु०) आ-जीव्यते जनेन, आ-जीव करणे
घञ् । १ जीवनीपाय द्रव्यादि, जिन्दगी बख्शनेवाली
चीज वगैरह । २ उपाय, तद्वीर । प्राचीन शास्त्र-
कारोंने लिखा है,—अन्नप्राग्गनके दिन दाल-भात
खिलाने बाद लड़केके सम्मुख यक्ष, अक्ष, पुस्तक,
सिंहनी, स्वर्ण, रौप्य प्रभृति रख देना चाहिये । बालक
सकल द्रव्यमें जिसे हाथसे पकड़े, वही उसका जीवनी-
पाय होगा । आ-जीव भाये घञ् । १ जीवनके
निमित्तका अयत्नमय, मांग, पैसा । आजीवति, कर्तंरि
घञ् । ४ जीवनीपायकारी, पैसाकम । आजीवति
कर्म्म नृपमान्यित्य या, आ-जीव-घञ्, उप० ममा० ।
५ किसी कर्मके अयत्नमयसे जीवित रहनेवाला ।
६ राजाके आश्रयसे जीनेवाला । ७ प्राचीन भिक्षु सम्प्र-
दाय विशेष ।

आजीवक—१ अति प्राचोन धर्मसम्भेदाय । कोई कोई
इस सम्प्रदायकी जैन सम्प्रदायकके ही अन्तर्गत बताते
हैं । किन्तु भगवतीसूत्र और आचाराङ्गसूत्र पाठ करनेसे
मालूम होता, कि आजीवक सम्प्रदाय जैन सम्प्रदायसे
भिन्न है । शेष तीर्थंकर महावीरस्वामीके समसामयिक
मङ्गलौपुत्र गोगाल इस सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य
थे । भगवतीसूत्रसे जाना जाता, कि मङ्गलौ नामक एक
भिक्षुके औरस और उनकी पत्नी भद्राके गर्भसे गोगाल-
का जन्म हुआ था । इसीसे उनका नाम मङ्गलपुत्र-
गोगाल पड़ा । महावीरस्वामीने संसार छोड़ने और
भिक्षुकजीवन ग्रहण करनेके बाद दूसरे वर्ष जब
राजगृहके समीपवर्ती किसी तन्तुवायके घरमें उप-
वास किया, उही समय यहाँ सामान्य भिक्षुक-
रूपसे गोगाल भी जा पहुँचे । गोगाल महावीर-
स्वामीका परिचय पाकर उनके शिष्य होनेकी उद्यत
हुये थे । किन्तु महावीरस्वामीने यह बात न
सुनी । उसके बाद जब महावीरने कुशाग-ग्राममें
आकर बहुल नामक ब्राह्मणके घर अस्थान
किया, तब गोगालने फिर भी यहाँ पहुँचकर
उनका पैर पकड़ लिया था । उस समय महा-
वीरने गोगालकी प्रार्थना पूर्ण की । फिर ६ वर्ष
गोगाल उनके मङ्गल शिष्य रूपसे रहे एवं उही
समयसे क्रमशः सुख, दुःख, रति, विरति, मोक्ष
और अन्धन प्रवृत्ति विषय समझने लगे । पीछे
कूर्मनामक ग्राममें महावीरके साथ गोगालका
मत भेद हुआ । राहमें फलपुष्पशोभित तिल हृत्तकी
देखकर गोगालने महावीर स्वामीसे जिज्ञासा
की,—यह हृत्त मरेगा या नहीं एवं मरनेके बाद
इसके सप्तजीवका क्या परिणाम होगा । महावीर
स्वामीने उत्तर दिया,—हृत्त मर जायगा, किन्तु
उही हृत्तके बीजसे पुनः सप्तजीव उत्पन्न होगा ।
गोगालने उनकी बातपर विश्वास न कर हृत्तकी
छत्राड़ डाला था । फये मास बाद दोनों जब उस
स्थानकी वापस गये, तब यह देख दृष्ट रह गये, कि
पानी पड़नेसे उही तिलका एक बीज पैदा हो गया
था । महावीरस्वामीने गोगालसे कहा,—इसने

तुमसे पूर्वमें जो यथाया, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख लीजिये; पहला हृद्य मर गया था, परन्तु उसीके बीजसे नूतन हृद्य उत्पन्न हुआ। गोशाल फिर भी उनकी वातपर विश्वास कर न सके, और पैड़का एक बीज उठा उसकी छाल नीच-नीचकर देखने लगे, कि प्रकृत ही उसके मध्य पति सुद्ध सात दाने थे। इसीसे गोशालकी धारणा हुई, केवल हृद्यलता ही नहीं—सकल जीवका जन्मान्तर सम्भव है। फिर कठोर योगसाधन कर गोशालने अमानुषिक चमत्ता प्राप्त किये एवं स्वयं एक जिनके नामसे परिचित हुये। किन्तु महाशौरस्वामीने उनका कभी जिनत्व स्वीकार किया न था। निर्यन्त्र एवं आजीविक सम्प्रदायके मध्य बहुत दिनतक परस्पर द्वेषभाव रहा। आजीविकगणको विश्वास था,—परिणाममें मोक्ष या परममार्ग पानेपर सब जीवोंकी चौरासी लाख कल्प सप्त देवयानि, सप्त अर्द्धयानि, सप्त जीवयानि और सप्त जन्मान्तर भतिक्रमण करना पड़ता है।

बौद्ध सम्प्रदायका 'समनफलसूत्र' पढ़नेसे मालूम कर सके, कि महाराज अज्ञातशत्रुसे महत्प्रियुक्त गोशाल मिले थे। अज्ञातशत्रुने सबसे गोशालका मत इसतरह प्रकट किया,—

"महाराज। धितरण, दान, बलिबिधान, पुण्य, पाप, पापपुण्यका फलाफल, वर्तमान जगत्, स्वर्ग-नरक, पिता, माता, देव, असुरा, जीवलोक, त्रयण, ब्राह्मण भादि कहीं कुछ भी नहीं होता और न उसकी विद्यमानताका कोई प्रमाण ही दे सकता है। जो लोग इन द्रव्योंका अस्तित्व बताते, वह भ्रूटे हैं।"*

'भगवतीसूत्र'में भी देखते हैं,—"लघु महत्प्रियुक्त गोशाल चौबीस वर्ष अज्ञातशत्रुसे विता चुके, तब त्रावस्तुकी कुम्भार-वाजारमें हालाहला नाम्नी कुम्भारिनके साथ रहने और आजीविक मत फलाने लगे। किसी समय निम्बलिखित छः दीचावर उनके पास पड़े थे,—साण, कलन्दु, कवियार, प्रत्येद, अनि-वेशयिण और अक्षय गोमायुपुत्र। उन्होंने इन दस पुस्तकोंसे अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ वाक्य उद्धृत

किये,—"दिध्यं, शीतपातं भान्तरिचं, भोय्यं, अङ्गं, खरं, लक्षणं, व्यञ्जनं, गीतमार्गलक्षणं" और नृत्य-मार्गलक्षणं। उपरोक्त दस पुस्तकोंमें पहले पाठ पूर्व और पिछले दो मार्गका अर्थ है। कछो दीचावरोंने गोशालका ही मत माना था। गोशालने स्वयं महानिमित्त मतसे अपने लिये छः विषय चुने थे,—सुक्ति, वन्यन, सुख, दुःख, जीवन और मरण।"

उद्धृत प्रमाणको देखकर कहा जा सकता, कि शाक्यबुद्ध और श्रेय तीर्थंकर महाबोर स्वामीके अभ्युदयसे पहले ही आजीविक सम्प्रदाय चल पडा था। सम्प्रदाय अगोकेके पौत्र दमरयके अनुयायनसे मालूम हुआ, कि उन्होंने आजीविक भिक्षुओंकी सेवाके लिये कितना ही दान दिया।

आजीवन (सं० स्त्री०) आ-जीव्यतेऽनेन, आ-जीव-करणे लुगट्। १ वृत्तिका उपाय, पेगकी किन्न। भाषे लुगट्। २ जीवनके निमित्त उपायका अर्थ, जिन्दगीके लिये पैयाकगो। 'जीवामाजीवनादेश' (वृत्ति) (अर्थ०) ३ जीवन पर्यन्त, उच्च भर।

आजीवनार्थ (सं० पु०-स्त्री०) वृत्ति, पैया, कामकाज। आजीविका (सं० स्त्री०) आजीवयति, आ-जीव-षिच् लुगट्, षिच् लोपः। जीविकावृत्ति, जीवनके धारणका उपाय, पैया, माय, रोजी, रोजगार।

आजीविन् (सं० पु०) १ आजीविका-युक्त, पेगेकय, रोजगारी। २ भिक्षु विषेय। आजोश्च देखी।

आजीव्य (सं० स्त्री०) आ-जीव्यतेऽनेन, बाहु० करणे ख्यत्। १ जीवनोपाय वृत्त्यादि, रोजी, रोजगार। २ वृत्तिके निमित्त अवलम्बनीय नृपादि, रोजगारके लिये पकड़े जानेवाले बड़े भादमो। आजीव्यतेऽव, आधारे बाहु० ख्यत्। ३ आजीवन देश, जिध सुक्तमें जीये। (त्रि०) ४ जीवनोपायके अर्थ अन्वय किया जानेवाला, जो रोजगारकी तरह मशक किया जा सकता हो। ५ वृत्तिके योग्य, जो रोजगार देता हो। ६ वाद्यधम, रहने काविले। ७ सफल, भविषे लदा हुआ।

आहु, आज देखी। आजुर् (सं० स्त्री०) आ-श्वर-क्षि-उट्। १ अगो-

* Vide Bunyin Nanjio's Chinese Tripitaks, No. 515.

शास्त्रापक (सं० त्रि०) शास्त्रापयति आदिगति, शास्त्रां-षिष्-पुक्-प्लु-ल्, षिच्-सोपः । आदेशा, अयुमति-कर्ता, हुक्म देनेवाला ।

शास्त्रापक (सं० स्त्री०) शास्त्रापकं पत्रम्, शान्क-तत् । आदिगशापक पत्र, हुक्मनामा ।

शास्त्रापन (सं० स्त्री०) आदेश, हुक्म, इत्तिला ।

शास्त्रापालक, शास्त्रप देखो ।

शास्त्रापित (सं० त्रि०) आदेश किया हुआ, जो हुक्म पा चुका हो ।

शास्त्राप्य (सं० त्रि०) आदेश पानेवाला, जिसे हुक्म मिले ।

शास्त्राप्रतिघात, शास्त्राप्र देखो ।

शास्त्रामङ्ग (सं० पु०) शास्त्राया आदेशस्य भङ्गः यत्रल-नम् । आदेशका अन्वयाकरण, नाप्तरमानो, उद्दल-हुक्मी ।

शास्त्रावह (सं० त्रि०) शास्त्रां वहति, शास्त्रा-वह-षच् । शास्त्रानुसार-कार्यकारी, हुक्मके सुताविक काम करनेवाला ।

शास्त्रासम्पादिन् (सं० त्रि०) शास्त्रां सम्पादयति, शास्त्रा-सम्-पद्-षिच्-णिनि, षिच्-सोपः । आदिष्ट विषय-सम्पादक, वताया हुआ काम करनेवाला ।

शास्त्र्य (सं० स्त्री०) शा सम्पत्क शब्दते स्त्रश्चते अनेन शा-शब्द करणे वाङ्-शब्द, न सोपः । १ छत, घी । २ इविः । ३ श्रीवास, तारपीनका तेल । ४ धार्मिक गीत विधेय ।

शास्त्र्यदोह (सं० पु०) सामवेदीय पाठ्य सृष्टविधेय । इधमें तीन ऋचा रहती और जय वा पाठ करनेसे पवित्रता आती है । सामग यह पन्थ पढ़ते हैं,— वामदेव्य, वृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, शास्त्र्यदोह, साम, गान्धिक, भागुड़ और पश्चात् द्वारपालद्वय । इनमें तीन देवव्रतसंघक हैं ।

शास्त्र्यप (सं० पु०) शास्त्रं पिबति, शास्त्र्य-पा-क, छप० समा० । १ पुलस्त्यके पुत्र और वैश्वोके पित्रदेव । आदिपर्वमें लिखा है,—

“शोमया नाम विद्यायां श्रितियायां इविर्भुक् ।

श्रेयानामाश्रया नाम यदाशान्कं सुकान्तिः ॥

शोमपाप कनेः पुत्राः इविषकोऽपिःसुतः ।

पुत्राश्चाश्रयाः पुत्रा इविषस्य सुकान्तिः ॥ (महाभारत)

पर्यात् ब्राह्मणोंके सोमप, अत्रियोंके इविर्भुज, वैश्वोंके शास्त्र्य और शूद्रोंके पित्रदेव सुकालिन हैं । गुकाचार्यके सोमप, पत्निराके इविषत्, पुलस्त्यके शास्त्र्य और वगिष्ठके पुत्र सुकालिन रहे । आदि पित्रदेव होनेसे इनके तर्पण करनेका विधान है । शास्त्र्यपा, शास्त्र्य देखो ।

शास्त्र्यपात्र (सं० स्त्री०) द्रुतभाजन, घियांड़ा, घी रखनेका बरतन ।

शास्त्र्यभाग (सं० पु०) शास्त्र्यस्य भागः, १-तत् । १ घृतका एक देग, घीका कोथी हिस्सा । २ घृतकी वैदिक आहुति । उत्तरकी ओर खूब द्वारा अग्निके उद्देश जो आहुति ऋग्वेदी देते, उसे शास्त्र्यभाग कहते हैं । फिर अग्निकी दक्षिण ओर सोमके उद्देश दीयमान आहुति भी शास्त्र्यभाग ही है । यजुर्वेदी अग्निके उत्तर-पूर्वार्धमें ‘अग्नये स्वाहा’ एवं ‘इदमग्नये’ और दक्षिण-पूर्वार्धमें ‘शोमाय स्वाहा’ तथा ‘इदं शोमाय’ कहकर जो आहुति डालते, उसे भी शास्त्र्यभाग बतते हैं । ‘अग्नये स्वाहा’ और ‘शोमाय स्वाहा’ अग्निमें आहुति देनेके मन्त्र हैं । ‘इदमग्नये’ और ‘इदं शोमाय’ दोनों मन्त्र पात्रमें शास्त्र्यभाग रखते समय पढ़े जाते हैं ।

शास्त्र्यसुक, शास्त्र्यसु देखो ।

शास्त्र्यसुज् (सं० पु०) शास्त्र्यं मन्त्रेण विधिवदग्नी दत्तं घृतं सुज्ज्, शास्त्र्य-भुज-क्लिप् । देवता, अग्नि, द्रुत घृत-खानेवाले ।

शास्त्र्यवारि (सं० पु०) घृतका समुद्र, घीका बहर ।

शास्त्र्यस्याची (सं० स्त्री०) शास्त्र्यपान देखो ।

शास्त्रन (सं० स्त्री०) शरीरसे कण्ठको या वाणीका प्रांशिक निष्कर्षण, जिम्हसे कांटों या तीरोंका कुछ-कुछ निकास ।

शास्त्रन (सं० स्त्री०) अस्थि वा पादका सन्निवेश, ‘हृच्छी यां पेरका बैठाना, यानी फेला, सुका या खोंचकर अस्थी जगह फिर लाना ।

शास्त्रन (सं० स्त्री०) शा-अश्व-सुराट् । १ समन्ता-

दभ्यञ्जन, सकल दिक्में कल्लल, गहरी कालिक ।
 पञ्चनाय भव, पञ् । पञ्चनाके पुत्र हनुमान् । (वि०)
 पञ्चानभ्येदम्, पञ् । १ पञ्चन सभ्यन्तो, सुरमयी ।
 (श्री०) पाञ्चनी ।

पाञ्चनाभ्यञ्जनोय (सं० स्त्री०) उत्सवविशेष, एक
 जपमा । (श्री०) पाञ्चनाभ्यञ्जनीय ।

पाञ्चनिक (सं० स्त्री०) पञ्चनाय हितम्, पञ्चन-
 ठन् ततः पुरो भावे कर्मणि च यक् । अथउत्तरीकदिग्धा
 वृ । पा ४।१।१०८ । पञ्चन साधनत्व, सुरमेका कमाल ।
 पाञ्चनीकारी (सं० स्त्री०) पञ्चन लगाने या बनाने-
 वाला स्त्री, जो पीरत सुरमा लगती या बनाती
 हो ।

पाञ्चनीय (सं० पु०) पञ्चनाया अपत्यम्, टक् ।
 शीघ्रो इव । पा ४।१।१०८ । पञ्चनाके गर्भजात हनुमान् ।
 पाञ्चनित्य (सं० स्त्री०) पञ्चनित्येव, स्वार्थे कन् ततः
 पुरो भावे कर्मणि च यक् । पञ्चनिका वनाप, दोनो
 ढायका एकत्र मिलान ।

पाञ्चिक (सं० पु०) दामव विशेष ।
 पाञ्चिनेय (सं० पु०) पञ्चिन्यां भवः, टक् । सरो-
 यप विशेष, किसी कुष्मका गिरगिट ।

पाट (सं० पु०) सर्पविशेष, किसी सांपका नाम ।
 पाटना (हिं० क्रि०) मूदना, दवाना, छिपाना,
 तोपना ।

पाटरूप, पाटरूप शब्दो ।
 पाटरूप (सं० पु०) पाटरूप एव, स्वार्थे षण् । वासक
 हृष, चङ्गुसिका पिड । ४२४२ शब्दो ।

पाटलाण्डिक महासमुद्र—पाटलाण्डिक नामक महा-
 सागर, पाटलाण्डिक बहरे-प्राजम् । (Atlantic
 Ocean) यह यूरोपीय पश्चिम तट एवं अफ्रीका
 पीर उत्तर तथा दक्षिण अमेरिकाके पूर्व तट क्षेत्र
 पवस्थित है । भूमध्यरेखा इसे उत्तर तथा दक्षिण पाट-
 लाण्डिक नामक दो भागमें विभक्त करती है । उत्तर
 पाटलाण्डिक अथवा अरबी तटरेखाके लिये प्रसिद्ध
 है । इससे कितने ही उपसागर मिले, जिनमें पश्चिम-
 की पीर क्षेत्रियन सागर, मेक्सिकोका अखात, मध्य-
 कारैबियाका समुद्रबड एवं बहमन-खाड़ी पीर पूर्वत

भूमध्य, कृष्ण, उत्तर तथा बालटिक सागर प्रधान
 हैं । किन्तु दक्षिण पाटलाण्डिककी तटरेखा बहुत
 छोटी है । इसमें भीतरी सागर देख नहीं पड़ते ।

उत्तर पाटलाण्डिकका क्षेत्रफल १२२६२००० पीर
 दक्षिण पाटलाण्डिकका १२६२००० वर्गमील
 लगता है । प्रथिवीकी कितनी ही बड़ी-बड़ी नदियां
 पाटलाण्डिक महासमुद्रमें आकर गिरती हैं । कौची
 अक्षांश ५०° उ०से ४०° दक्षिण तक इसमें पानांके
 नीचे जो पहाड़ पड़ता, उसकी गहराईका औसत
 १०२०० फीट है । पाटलाण्डिक महासमुद्रके प्रधान-
 प्रधान द्वीप नीचे लिखे जाते हैं,—भूमध्यसागर
 द्वीप, प्रायसिलेण्ड, इटिया प्रायसिल, अज़ोरेस, मदिरा,
 कनारीज, कैप वर्ड द्वीप, असेनसन, मण्ड्र द्वीपना,
 ड्रिडन दा कुनहा पीर बोवेट द्वीप ।

उत्तर पाटलाण्डिककी ३४०६६ पीर दक्षिण
 पाटलाण्डिककी गहराई औसतमें ३५१३६ फीट
 है । पाटलाण्डिक महासमुद्रके तलमें सृष्टुमत्तिका
 भरी है । सकल महासमुद्रोंमें इसका जल खारी है ।
 मालूम होता, कि पाटलाण्ड पर्वत अथवा कास्तनिक
 पाटलाण्डिस द्वीपसे यह नाम निकला है ।

पाटविक (सं० त्रि०) अटव्यां चरति भवो वा, ठक् ।
 १ परस्परचारी, जङ्गलमें रहनेवाला । २ वन्य,
 जङ्गली । (पु०) ३ लकड़हारा । ४ परस्परचारी सैन्य
 विशेष, जङ्गलमें रहनेवाली फौज । सैन्य कः प्रकारका
 होता है,—१ मोल, २ अत्य, ३ सङ्घ, ४ अेषी,
 ५ टिपट्ट पीर ६ पाटविक । (सं० ११२)

पाटवी (सं० स्त्री०) अटव्याः सचिक्रटो पुः, षण् ।
 दक्षिण दिक्स्थ यवनपुरी विशेष । महाभारतमें इस
 नगरीका वर्णन मिलता है ।

पाटव्य (सं० पु०) उपाध्याय विशेष, किसी उपाध-
 का नाम । वायुपुराणमें इनका वर्णन है ।

पाटा (हिं० पु०) १ अथका धूर्त, विमान ।
 २ बुकनी ।

पाटि (सं० पु० स्त्री०) या सम्यक् अटति, आ-अट्-
 षाङ् ६प् । १ अकारिण्यी, एक बिरिया । २ मनुष्य
 विशेष, कोई मङ्गली ।

पाठिक (सं० लि०) पाठाद्य गमनाय प्रवृत्तः, ठन् ।
 गमनपर प्रवृत्त, जानिमें लगा हुआ ।
 पाठिकी (सं० स्त्री०) पाठ गमन चर्चति, चण-
 डीप । १ गृहसे बाहर जानि योग्य प्रजातपोधर स्त्री,
 बालिका । २ रमस्त्रिकी स्त्रीका नाम ।
 पाठिक्य (सं० वि०) पाठिक स्वार्थे ण्यच् । गमनमें
 प्रवृत्त, जो जलयात्रामें हो ।
 पाठी (हिं० स्त्री०) घटक रहनेवाली चीज, डाट,
 पच्चड़, टिक । (सं०) पाठि देखो ।
 पाठीकन (सं० स्त्री०) पाठीक्यते ईयद्गम्यते, पा-
 ठीक भाषे ल्युट् । वस्तुको प्रथम-प्रथम पक्ष गति,
 बहनेका पहिले-पहल धीरे-धीरे चलना ।
 पाठीकनक, पाठीकन देखो ।
 पाठीकर (सं० पु०) द्रव्य, बैल ।
 पाठीमुख (सं० स्त्री०) पाठ्याः शरारिपक्षिण्या
 मुखमिव मुखे यस्य, ग्राक० बहुव्री० । प्रय विस्त्रावणका
 पक्षविशेष, जखुम धीरनेका एक नमतर । सुन्दरमें
 लिखा,—यह शरारि पक्षीके सुँह-जैसा होता है ।
 पाठीवदन, पाठीवद देखो ।
 पाठीप (सं० पु०) पा-सुपु-घञ्, प्रथो० तस्य टत्वम् ।
 १ दर्प, घमण्ड । २ संरम्भ, भागान, किसी कामका
 हाथमें लेना । ३ पाठस्वर, तड़क-भड़क । ४ उदरके
 मध्य सवेदन गुहगुहा शब्द, दर्दके साथ घेटकी गुह-
 गुहाघट । यह जठरसे उत्पन्न होता है । (भाग्यभाग)
 ५ फलन, सूजन ।
 पाठ्यस्तक (सं० स्त्री०) पाठ्यतो देखो ।
 पाठोप (सं० पु०) रोगविशेष, किसी किष्पकी बीमारी ।
 इसमें उदरके पन्त नन जाते हैं ।
 पाठ्याष्ट (वै० पु०) शतपथब्राह्मणके परका नाम ।
 पाठ्याष्टिक, पाठ्याष्टिक देखो ।
 पाठ (हिं० वि०) घट, हस्त, दोषे घोणना ।
 पाठक (हिं० वि०) पाठके धराधर, पाठसे कुछ
 कम या ज्यादा ।
 पाठका (हिं० वि०) घटम, हस्तम, पाठकी जगह
 रहनेवाला ।
 पाठे (हिं० स्त्री०) घटमी तिथि ।

पाठी, पाठे देखो ।
 पाड़ (हिं० स्त्री०) १ यवनिका, परदा । २ ललाटके
 तीरान्तर खींची हुई समरखा, जो सीधी सतर मध्ये पर
 पाड़ी निकाली जाती हो । ३ वारण, रोक ।
 ४ रक्षा, हिफाजत । ५ रोड़ा, बंट या पत्थरका
 टुकड़ा । यह पड़ियेके नीचे गाड़ी एक जगह खड़ी
 रखनेकी घटका दी जाती है । ६ चष्टताल भेद ।
 ७ धनी । ८ तिलके भरो हुई बोंड़ी । ९ कलकूला ।
 यह चीनीके कार्यालयमें व्यवहृत होती है । १० वृद्धिक
 पादिका डह । ११ स्त्रियोंके मध्येपर लगनेवाली
 लम्बी टिकली । १२ भाभूपण विशेष, टीका । स्त्रियां
 इसे ललाटपर धारण करती हैं ।
 पाड़गीर (हिं० पु०) श्रेवके समोपका दण, जो
 घास खेतके पास लगाती हो ।
 पाड़ण (हिं० स्त्री०) टाक ।
 पाड़ना (हिं० क्रि०) १ रोक रखना, छेक खेना ।
 २ आवध करना, बांध देना । ३ वारण करना,
 रोकना । ४ घटकाना, गहने रखना ।
 पाड़वम, पाड़व देखो ।
 पाड़वन्द (हिं० पु०) घिट, जांचियेपर बंधनेवाला
 लंगोटा ।
 पाड़व्य (सं० पु०) पा-डवि जेपये धरण् । १ हर्ष,
 खुशी । २ दर्प, गुहूर । ३ तूफेखन, तुरहीकी पावाज ।
 ४ युद्धकालीन घोषणा, सङ्घायोके वक्की बलकार ।
 ५ भारभ, शूर । ७ चतुका लोम, बरोनी । ७ मेघका
 शब्द, बादलकी गरज । ८ युध, लड़ायी । ९ हस्तीका
 गर्जन, हाथीकी चिन्कार । 'पाठव्यस्युर्धको चरथे यजमर्जिते'
 (वेदिते) १० रणदुन्दुभि, डह । ११ क्रोध, गुस्सा ।
 १२ नेत्रच्छेद, पलक । (स्त्री०) १३ शरीरका मर्दन,
 जिम्पकी मालिय ।
 पाठव्यराघात (वै० पु०) रणदुन्दुभि बजानेवाला,
 जो लड़ायीके डहोपर घोष मारता हो ।
 पाठव्यरिन् (सं० वि०) मलयें द्रनि । अभिमानी,
 मगूर, घमण्डी । (स्त्री०) पाठव्यरिपो ।
 पाठव्यरी, पाठव्यरि देखो ।
 पाड़ा (हिं० पु०) १ वस्त्रविशेष, एक कपड़ा ।

धारोदार होता है। २ सूक्ष्मकाष्ठ, मरतीर। ३ दाह-
कलक, मकड़ीका तन्तु। यह नाव या जहाजकी
बगलमें लगाता है। ४ सफड़ीका सामान। इस पर
सुनाई चल फेरते हैं। ५ नौ मात्राका ताल विभेय।
इसका ठेका इसतरह बजते घोर एक खाली तथा
तीन ताल भरै लगते हैं,—

+।	।+	१।	।+	०।
धिधि	ताधि		धिता	तिति
। × १।	। ×			
ताधि	धिधा	::।		

(ति०) १ यक, तिरछा। (खी०) भाड़ी।

घाड़ाखिमटा (हि० पु०) ताल विभेय। इसमें कोई
चारह घोर कोई साढ़े तीरह ताल बताने, जिसमें एक
खामो तथा तीन भरै रहते हैं। ठेकेका बोल
यह है,—

+।	।	।	१।	।
धारी	त्रेकेटे	धेने	धारी	धारी
।	०।	।	।	१।
तेने	ताके	त्रेकेटे	धेने	धारी
।	।			
धाय	धेने	::।		

घाड़ाघोताला (हि० पु०) सात मात्राका ताल
विभेय। इसमें चार ताल भरै घोर तीन खाली पड़ते
हैं। यह छोटा घोताला भी कहता है। श्रद्धका
हाथ इसतरह निकारते हैं,—

+।	१।	०।	१।
धारी	धादा	धिता	कति
०।	१।	०।	
भाधा	त्रेकेट्धा	धिता	::।

घाड़ाठेका (हि० पु०) ताल विभेय। चार धेको।
घाड़ागा, घाड़ागा (हि० पु०) अंगला राम
विभेय। यह दो प्रकारका है। एकमें सुधरायी,
कान्हरा एवं सारङ्ग घोर दूधरेमें सोरठ या मसार तथा
कान्हरा मिला रहता है। घाड़ानेमें सारङ्गका जो
भाग बाधक लगता है। सरधाम यह है,—

नि छ क ग म प च

घाड़ापघताल (हि० पु०) ताल विभेय। इसमें
पाँच घाघात घोर नौ मात्रा देते हैं। ठेकेकी बोल
यों है,—

+	१	१
धि	तिर	किट धिना धि धि ना
		१

ना तुना कत्ता धि धि ना धि धि ना।
घाड़ाक (सं० पु०) पड़ लयमें लय, तत भारक।
कृपिविभेय।

घाड़ासोट (हि० पु०) बाधक, तलधन-मिठाओ,
कपकपी, सकुच।

घाड़ि (सं० पु०-खी०) पड़ लयमें हण्। १ स्वाम-
ध्यात मत्स्यविभेय, एक मकली। २ मरारि पक्षी,
एक चिड़िया। यह श्रद्ध-जैसी होती है।

घाड़िक, चरि धेको।

घाड़िका, चरि धेको।

घाड़ी (हि० खी०) १ ताल विभेय। किसी तालमें
पूर्ण समयके तृतीय, पष्ठ वा द्वादश भागपर पूरा ताल
संगीतका नाम घाड़ी है। २ चर्मकारकी कुडी।
३ तर्क, घोर। ४ सहायक, मदद देनेवाली।
५ तिरछी। (सं०) चरि धेको।

घाड़ीकी, चरि धेको।

घाडु (सं० ति०) ईशदवि पानके लिये थेटा करने-
वाला, जो कोई चीज हासिल करनेमें लगा हो।

घाडु (सं० पु०) पच दण्डकः ज पितृ, दिवा-
दुपधातुः पश्य लय। श्री १५। १५। १५। १५।
१ इध, २ भेड़ा, ३ घोघड़ा। (हि०) २ फल विभेय, एक मिया।
स्वादमें यह खटमिठा होता घोर देहरादूनकी घोर
बहुत उपजता है। इसका फल घोड़ा घोर गोल
दो तरहका होता है। इसे मजतानु भी कहते
हैं। ३ भाडूका पेड़।

घाडू (हि० पु०) १ घाटक, चार घेरकी लोल।
(खी०) २ घाडू, परदा। ३ घात्रय, सवारा।
४ धत्तर, फर्क। ५ घाड़ि, एक मकली। ६ कियेके
मस्तकका चामूयक, टोका। (ति०) ० घाध, भा
हुपा।

आढक (सं० पु०) आढौकते धान्यादेः परिमाणार्थं गम्यते, आढोक कर्मणि घञ्, ष्टपो० षीकारस्य आम् । १ गमीधान्य विशेष, भरहर । २ षट्शरावमित धान्य-मान-विशेष, अनाज नापनेको लकड़ीका वरतन । इसमें चार सेर अन्न आता है । ३ प्रस्य चतुष्टय, चार सेरकी तौल । आढ सुट्टिका एक कुञ्चि, आढ कुञ्चिका एक पुष्कल और चार पुष्कलका एक आढक होता है । मतान्तरधे—१२ प्रस्यतिमें १ कुडव, ४ कुडवमें १ प्रस्य और ४ प्रस्यमें १ आढक बैठता है । सुश्रुतमें लिखा.खण्णदि तौलनेका आढक २५६ पल होता है । आढकजम्बू (सं० पु०) आढकमिता जम्बू यस्मिन् देगे, बहुव्री० । स्थूल जम्बू-युक्त देग, जिस सुक्तमें बड़े-बड़े जासुन रहें ।

आढकजम्बुक (सं० त्रि०) स्थूलजम्बूयुक्त देशजात, जो बड़े-बड़े जासुनके सुक्तमें पैदा हो ।

आढकिक (सं० त्रि०) आढकं सभवति षवहरति पचति वा, ष-ठञ्-वा । १ आढक परिमित; जिसमें एक आढक द्रव्य रख सके । २ आढक परिमित बीज बोया हुआ, जिसमें एक आढक बीज डाल सके । (स्त्री०) आढकिकी ।

आढकिका, आढकी देखी ।

आढकी (सं० स्त्री०) आढकेन मीयते, आढक-घञ्, जातित्वात् ङीप् । १ भरहर । यह खेत, रक्त और पीत मँदसे तीन प्रकारकी होती है । माधारण आढकी कषाय, मधुर, कफ एवं पित्तकी जीतनेवाली, ईषत् वातकर, रुच्य,गुरु और ग्राहिणी रहती है । (रात्रनिचय्) यह हृय, रुच, मधुर, गीतल, लघु, ग्राहिणी, यात-जननी, वर्ण्य और पित्त कफ तथा-रक्तकी जीतनेवाली है । (भावप्रकाश) भरहर श्लु एवं कषाय होती और सरक्त पित्त, ऋत, कफ, सुक्ष्मण; गुष्म, च्वर, शरो-चक, कास, छर्दि तथा हृद्रीगको दूर करती है । (चरिष-हिता) खेत दोषकर; रक्त रुच्य, पित्त एवं ताप मिटानेवाली, और पीत आढकी दीपन तथा पित्त-टांछण है । (रात्रनिचय्) २ परिमाणभेद, चार सेरकी तौल । ३ सौराष्ट्रसत्तिका, खुशबूदार मछी । ४ गोपी-चन्दन । ५ गन्धद्रव्य विशेष ।

आढकीन, आढकिक देखी ।

आढकीयूप (सं० पु० स्त्री०) तुवरीयूप, भरहरका पानी । यह वष्य होता है । (रात्रनिचय्) आढकीयूप मधुर, विगेषण, वातनिवारण, स्नेहापह और पित्तहर है । (चरिष-हिता)

आढत (हिं० स्त्री०) व्यवसाय विशेष, एक रोज-गार । इसमें व्यापारीका माल अढतिया अपनी दुकान पर रखता और कुछ दलाली खा कर बँच देता है । २ आढती माल बिका देनेके बदलेका रूपया ।

आढतदार, अढतिया देखी ।

आढतिया, अढतिया देखी ।

आढती (हिं० वि०) आढतसे सरोकार रखनेवाला ।

आढीलक, आढी बन देखी ।

आव्य (सं० त्रि०) आ-ध्वै-क, ष्टपो० साधु । १ धनी, दौलतमन्द । २ युक्त, मिला हुआ । ३ विगिष्ट, भरा हुआ । ४ सम्पन्न, कसीर । 'श्व पाव्यो वनी' (चनर) (स्त्री०) आव्या ।

आव्यक (सं० स्त्री०) धन, बहुतायत, दौलत, कसरत ।

आढाकुलीन (सं० पु०-स्त्री०) आव्यकुले भवः, ख । आव्यकुल-जात, जो खंवे खान्दानमें पैदा हो ।

आव्यद्वरण (सं० स्त्री०) अनाव्यमाव्यद्वारोत्पन्नेन, आव्य-क करणे सुान् सुम्, उप० समा० । आव्यद्वरण-पक्षितलक्ष्यमिविदु पदेष्वथौन्नः कश्चि सुान् । पा १।१।३६ । अम्यु-दयका उपाय, बदनका जरिया । (त्रि०) २ अम्यु-दयकारी, दौलत देनेवाला । (स्त्री०) आढाद्वरणी ।

आढावर (सं० त्रि०) भूतपूर्व आढम्, आढा-वरट् । मृतशे वरट् । पा १।१।३० । पूर्वमें आढा, जो पछले दौलत-मन्द रहा हो । (स्त्री०) आढावरी ।

आढावतम (सं० त्रि०) अतिशयेन आढाम्, आढा तमप् । अतिशयने तमविठनी । पा १।१।३१ । अतिशय आढा, निहायत दौलतमन्द ।

आव्यता (सं० स्त्री०) विभव, ऐश्वर्य, तालेवरी, मानदारी ।

आव्यपदि (सं० अव्य०) आव्यं पदं ग्रहणं यत्, हिदय्यदादि० इच्, इजन्तत्वादव्ययत्वम् । इदव्या-दिपद्य । पा १।१।१८ । आव्यपद ग्रहरणयुक्त युवमें ।

पाठ्यपवन (सं० पु०) ज्वरदायक रोग, जाघका भोग्ना ।

पाठ्यपवन (सं० पु०) पनाथ्यं पाथ्यं भवत्यनेन, पाठ्य-भू कर्तरि ण्युच् मुम्, उप-समा० । पनाथ्यको पाठ्य पननिवासा द्रव्य, जो बीज गरीबको पमीर कर देती हो ।

पाठ्यभविष्यु (सं० त्रि०) पनाथ्यं पाथ्यं भवति, पाठ्य-भू कर्तरि ण्युच् मुम्, उप-समा० । पाठ्यता-प्राप्त, जो पमीर बन रहा हो ।

पाठ्यभाषुक (सं० त्रि०) पनाथ्यं पाठ्यं भवति, पाठ्य-भू कर्तरि ण्युच् मुम्, उप-समा० । पाठ्यभविष्यु द्योः ।

पाठ्यावात (सं० पु०) पाठ्यो वातो यत्र, बहुव्री० । वातरक्त, वातरोगमेद, फालिज । शैथ्याथ्यके मतसे कफ-मेदो-द्वारा पाठ्य हो ज्वरदेयमें वायु पद्वचनपर यह रोग होता है ।

पाठ्या (सं० स्त्री०) पजमोदा, पजमोद ।

पाठ्याङ्ग (सं० त्रि०) पाठ्य वननेकी चेष्टा करने-वाला, जो दोरुत हासिल करनेमें लग्य हो ।

पापक (सं० त्रि०) पथकमेव, स्वार्थे षण् । १ पथम, कमीना । २ कुत्थित, खराब । (स्त्री०) ३ ममीपमें सो मीयुनका करना । ४ पाना, हृष्यका सोलहवां चिह्न । (स्त्री०) पापका ।

पाप्य (सं० स्त्री०) पयोर्भाविः, प्रयादि० या षण् । १ पण्य, घृण्यता, सुर्दी, वारीकी । (त्रि०) २ पतियय घृष्य, निहायत वारीक ।

पाप्यीन (सं० त्रि०) पथ-घान्यानां सर्वपादीनां भवनं चेतं वा, पथ-खण्ड । मरसो-जैसा छोटा पथ चतुष्पथ करनेवाला, जिसमें छोटा पनाज होयें । यह मण्ड्य चेष्टादिका विमेष है । (स्त्री०) पाप्यीना ।

पापि (सं० पु०-स्त्री०) पण्-इण् । १ तन्नामक मर्मस्थान, पापि नामकी माजुक जगह । यह छात्रुका मर्म होता घोर आनुके ऊर्ध्व भागमें दोनों पार्श्वपर तीन पङ्कन बराबर रहता है । (इण्) २ पचापकीन, सुरिका खांटा । इससे पणिया बाहर निकल नहीं सकता । ३ इच्छकोप, मन्थान्का गोमा । ४ सीमा,

वद । ५ पमिपारा, तमवारकी बाढ़ । (स्त्री०) पापी ।

पापीय (सं० पु०-स्त्री०) पथिरस्वस्व वा दीर्घः पापीयः ष्यपिविगोपः तस्यापत्यम्, गुग्नादि० टङ् । पापीय ष्यपिका पुत्र वा कन्याएव ष्यत्य । (स्त्री०) पापीयिया ।

पाण्ड (सं० त्रि०) पण्टे भवः, षण् । १ पण्डमे जन्म लेनेवाला, जो पण्टेसे पैदा हो । यह मण्ड्य पक्षी, सर्प प्रभृतिका विमेषण है । (पु०) २ हिरण्य-गर्भ मण्ड्य । पण्डमेव, स्वार्थे षण् । ३ पण्डका हृष्य, पण्डकोप, फोता, बेजा, खाया, खुसया, पेलड़ । पण्डं हृष्यमस्त्वय्य, षण् । ४ पण्डकोप-युक्त, जिसके फोता रहे । पण्डेन निर्हतम्, पण्ड-षण् । ५ पण्डनिय्यक कपालरूप पाकाग एवं भूलोक । दो कपालसे जैसे घट बनता, वैसे ही पर-मम स्वप्नसुत पण्डके ही दो टुकड़े उतार पाकाग एवं भूलोक तैयार करता ; इसीसे इन दोनों लोकका नाम पण्ड पड़ा है । ६ पण्ड, पण्डा । ७ समुत्पन्न श्रावकगण, भोक्त ।

पाण्डज (सं० पु०) पण्डे जायते, पण्ड-जन इ स्वार्थे षण् । १ पण्डजात पचा सर्पादि, पण्डेसे पैदा होने-वाले परिन्द सांप वगैरह । (स्त्री०) २ पण्डजात जीवका शरीर, पण्डेसे पैदा होनेवाले जानवरका शिख । (त्रि०) ३ पण्डजात, पण्डेसे पैदा । (स्त्री०) पाण्डजा । पाण्डवम् (सं० त्रि०) पण्ड वा हृष्य-विगिट, जिससे पण्डा या फोता रहे । (पु०) पाण्डवान् । (स्त्री०) पाण्डवती ।

पाण्डाद (सं० पु०) १ पण्डभयक, पण्डाघोर । २ दानव विमेष ।

पाण्डायन (सं० त्रि०) पण्डेन निर्हतम्, पण्ड पचादि० ङक् । पण्डनिर्हतं, पण्डनिय्यक, पण्डेसे निकला हुआ ।

पाण्डो (सं० स्त्री०) हृष्य, फोता ।

पाण्डोक (सं० त्रि०) पण्डोत्पादक, पण्डे देने-वाला । जो पण्डे पण्डे-अंसे मोन-मोस कन रहता, यह पाण्डोक कहाता है । (स्त्री०) पाण्डोका ।

समुदाय-पत्रके ८५ अध्यायमें सुधिहरने भीषमे
पूजा था,—'आह एव' पत्र-पत्र मुख्यक्रममें जाता
पौर जाता उत्तममें करनेका वया कारण है ? भीषने
उत्तर दिया,—'पूर्वकालमें सुगुर्वगोह्य जमदग्नि
वाक्यप्रयोग मीषनेके निये किसी स्थानशो ताक पुनः
पुनः गर द्रोहने मग। जो गर द्रोहता, उनकी पत्नी
रेणुका उमे उठा जाता थी। क्रममें मध्याह्नकाल
उपस्थित हुआ और रोद्र प्रचुर पड़ा। पशुकी बालू
तपस्कर धाम बन गयी थी। रेणुका क्रान्त हो हलकी
छायामें बैठी और वाण लानेमें पनेक विनम्य लगाने
लगी। जमदग्निने क्रुह हो उतने विनम्यका कारण
पूछा था। रेणुकानि विनय-वाक्यमें स्त्रीमें कहा,—
मस्तकापर प्रचुर सूर्यका ताप लगता और रोद्रमें प्रघ
जन्मा जाता है, प्रघ में घा-जा नहीं मकती। यह
वात सुग जमदग्नि सूर्यके प्रति वाण फेंकने लगी थी।
सूर्यने प्राणणके योगमें उनके पास पशु'व' और जाता
तथा जाता देकर कहा,—'आजसे जो जाता और जाता
देगा, उसे महत् फल मिलेगा। अभी समयसे आह्लादि
मुख्य-कार्यमें जाता और जाता दिया जाता है।'

घातपत्रक (सं० स्त्री०) सुद्र ह्व, छोटा जाता। जो
'उठाये या टोकरे मन्त्रेपर जातेकी जगह रखते, उसे
भी घातपत्रक कहते हैं।
घातपत्र (सं० पु०) ताप उत्पन्न करनेवाले गिय।
घातपत्रिका, घातपत्रिका।
घातपत्री (सं० स्त्री०) चीरिका, छिरी।
घातपत्रम् (सं० स्त्री०) घातपीडयस्य, घातप-मत्पु,
मकारण्य प्रकारः। तापयुक्त, रोगन किया हुआ, जो
पादनाथकी रोगनी जाता हो। (पु०) घातपत्रान्।
(स्त्री०) घातपत्रतो।
घातपत्रवर्ष (सं० स्त्री०) घातपे निमित्त सति वर्षन्ति,
वाष्प कर्तारि पत्। रोद्रके समय हटिने उत्पन्न, जो
धूप रखने मीष घरनेसे पैदा हो। यह शब्द जलादिका
विशेष है। (स्त्री०) घातपत्रवर्षा।
घातपत्रवारप (सं० स्त्री०) घातपे रोद्र वारयति,
घातप-उ-पिद्-सुर। ह्व, धूपकी दूर रखनेवाला
जाता।

घातपशुक (सं० स्त्री०) रोद्रमें छाया हुआ, जो
धूप लगनेसे कड़ा पड़ गया हो।
घातपातव्य (सं० पु०) १-तत्। १ रोद्रका पत्रगम,
धूपकी रवानगी। घातपत्र पत्रव्यो यत्र, वहुमी।
२ वर्षाकाल, धूपकी दूर करनेवाली धारिग।
घातपाभाव (सं० पु०) १-तत्। १ रोद्रका पभाव,
धूपका देख न पड़ना। घातपत्र्य पभावो यत्र, वहुमी।
२ छाया, साया, परदाही। ३ छायायुक्त स्थान,
गायिदार जगह।
घातपिन् (सं० स्त्री०) १ रोद्रमन्त्रव्यथीय, धूपमें तापुक्
रखनेवाला। (पु०) घातपी। स्यं।
घातपीय (सं० पु०) घातपत्र्य मयिकृत् देशादि
उत्करादि० छ। रोद्रके निकटस्थ स्थानादि, धूपके
पामकी जगह। (स्त्री०) घातपीया।
घातपीदक (सं० स्त्री०) घातपे रोद्रे सख्यमाण
उदकमिय, शक० तत्। १ मरौचिका, सगवन्धा,
सुराव, धोका।
घातप्य (सं० स्त्री०) रोद्रमें विद्यमान, धूपमें रखने-
वाला।
घातम (स्त्री०) घातपृथ्वी।
घातमा (स्त्री०) घातपृथ्वी।
घातमान् (सं० प्रथ०) घा-तमप्-घामु। १ प्रति-
गय मानुस्य, विस्तृत सामने। २ समस्ताहाय,
सकल दिक्, चारो ओर, सब जगह।
घातर (सं० पु०) घातायते पभेत्, घा-त करदे
पप। पार जानेका भाड़ा, उतराये, नापका मह-
सूज। 'घातरारव' पत्। (पत्)
घातरदन (सं० स्त्री०) उट्टघाटन, उन्मीनन, गिराफ,
घात, फाँक।
घातरदन (सं० स्त्री०) घा-उट्ट-घाट। १ छति,
बाधुदगी, हकाहट। घा-उट्ट-गिष्-सुद्, निष्,
नीपः। २ छतिका उत्पन्न करना, बाधुदगीका
जाना। ३ महामद्रव्यका पानेपन, पीताये। घाते-
पनमें व्यवहृत होनेवाला वर्षक, छिपन, घातेका
रङ्ग।
घातघ्न (सं० पु०) घा-त-घ्न। छिन्नाका करना,

तकलीफ़का पङ्कचाना। २ एक राजा। (त्रि०)
कर्तरि भच्। ३ ईंसक, तकलीफ़ देने या मारने-
वाला।

भातवायन (सं० पु०) भातवस्यापत्यम्, भातव
पश्चादि० फक्। भातव राजाके पुत्र और कन्यारूप
अपत्य, भातवकी औलाद।

भातग (फा० स्त्री०) अग्नि, आग।

भातगक (फा० स्त्री०) उपदंश, मेदरोग, गर्मी,
फिरंगकी बीमारी। हस्तके अभिघात, मख एवं दन्तके
पात, पाधावन, अति उपसेवन और योनिके प्रदोषसे
विविध अपचार पर पांच प्रकारका उपदंश शिशुमें
होता है। सतोद भेद, सूरण, और सङ्खण स्कोट
निकलनेसे पवनोपदंश समझा जाता है। पीत, बहु-
क्रेदयुत और भदाह स्कोट पिप्पापदंशका लक्षण है।
रक्ताक्षक उपदंशमें सङ्खण स्कोट पड़ता और उससे
रुधिर टपका करता है। कफोपदंशका स्कोट सकण्डुर,
ग्रोथयुत, मद्यत्, शूल, घन और स्वावयुत रहता है।
त्रिमलोपदंश नानाविध स्त्रावरोगमें निकलता और
असाध्य होता है। (मासवन्दिदान) अतिमैथुन, अति
ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचारिणी, चिरोत्सृष्टा, रजस्रला,
दीर्घरोमा, कर्कशरोमा, सङ्कीर्णरोमा, निगूढरोमा, अल्प-
हारा, महाहारा, अप्रिया, अक्रामा, अपरिष्कार सलिल-
प्रचालित-योनि, अचालितयोनि, योनिरोमोपसृष्टा,
दुष्टयोनि वा विद्योनि नारीके अत्यर्थ उपसेवन और
हाथके नाखून तथा दांतकी नोकका विष लगने एवं
शूकके निपातन, अर्दन, हस्तके अभिघात, चतुष्पदी-
गमन, गन्दे मल्लिके प्रचालन, अश्वीङ्गल, मैथुनान्तमें
शुक्रमूत्रके वेगधारण एवं प्रचालनादिसे मेद्वर्मागका जो
प्रकुपित दोष अत वा अक्षतमें स्वयं उभर आता, वही
उपदंश कहता है। हृदि, विरेक, ध्वज, मध्य नाड़ीका
वेध, जन्तिका, परिपातन, मेक प्रलेप, यव, शालि, जाङ्गल-
पशुमांस, सुहरस, घृत, कठिलक, गिमुफल, पटोल, वन-
मूलक, शालिशक, तिक्त कपाय, मधु, कूपवारि और
तल उपदंशकी दूर करता है। दिवानिद्रा, मूत्रवेग,
शुक्र अन्ध, मैथुन, गुड़, आयास, अन्न और तप्त
उपदंशके रोगीको घचाना चाङ्घिये। - (दृष्टन्)

भातगखाना (फा० पु०) अग्न्यागार, आग रखनेकी
जगह। पारसी जिस स्थानमें अग्निस्थापन करते, उसे
भी भातगखाना कहते हैं।

भातगखोर (फा० वि०) अग्निभक्क, आग खाने-
याना।

भातगगाह, भातगखाना द्वीची।

भातगजून (फा० वि०) गृहदाहों, घरमें आग
लगानेवाला।

भातगजुनी (फा० स्त्री०) गृहदाह, घर फूंक देनेका
काम।

भातगदान (फा० पु०) अग्नि रखनेका पात्र, अंगौठी,
बोरपी।

भातगपरस्त (फा० वि०) १ अग्निपूजक, आगकी
परस्तिग करनेवाला। (पु०) २ पारसी।

भातगवाज (फा० पु०) हवायीगर, भातगवाजी
तैयार करनेवाला।

भातगवाजी (फा० स्त्री०) १ आग्नेय चूर्णसे निर्मित
क्रीडनकके छूटनेका दृश्य, बारूदसे भरे खिलौनोंके
चलनेका नज़ारा। २ आग्नेय चूर्णसे निर्मित क्रीड-
नक, बारूदका खिलौना। यह कयी तरहकी होती
है,—धमार, फुलभड्डी, महतावा, चकरी, वाण, छह-
दर, हवायी, वमगोला, फटाका इत्यादि।

भातग्री (फा० वि०) १ आग्नेय, आगके सुता-
जिक्। २ अग्न्युत्पादक, आग पैदा करनेवाला।
३ अग्निमें डालनेसे न बिगड़नेवाला, जो आगमें पड़नेसे
जलता न हो।

भाता (सं० स्त्री०) आभिमुख्येन अत्यन्त गम्यते
प्राणिभिः, आ-अत-घञ्। अत्रैरि च कारकैः। पा ३।३।१८।
दिक्, जानिक्, तर्फ, ओर।

भातान (वे० पु०) भातन्वते, आ-तन्-घञ्। १ आभि-
मुख्येन विस्तार, कुशादगी, फैलाव। २ खींचतान।
कर्मणि घञ्। ३ विस्तार्य, फैलाया जानेवाला।
४ कर्तव्यकार्य, फर्ज।

भातानक (सं० त्रि०) आ-तन्-ण्डुल्। विस्तारक,
फैलानेवाला।

भातापि (सं० पु०) आ-तप्-इण्। १ एक अक्षर।

मात्र द्वारा परमात्माकी चिन्ता करते, वह परलोक जानिको उत्तरदाह पर पहुँचते हैं। वहाँ ईश्वर-नियुक्त अभिमानी देवगण ज्ञानी मनुष्यका परलोक ले जाता है। इसीका नाम अर्चिरादि है। साक्षरशुद्धके ग्राह्यरभावमें इसका विशेष विवरण लिखा है। अतिवाह्य अतिवाह्यकाले (लोकांतरगतिकाले) भयः उज् । २ मनुष्यके मृत्युका जात देह । विष्णुधर्मोत्तर पुराणमें लिखा, कि मनुष्य मरनेपर अतिवाहिक शरीर पाता है। उसी शरीरसे तेज, वायु एवं आकाश तीन भूत ऊपर चढ़ जाते हैं। अतिवाहिक शरीर केवल मनुष्यके ही होता है, अन्य प्राणीके नहीं। (प्राणविज्ञान-विषय) अतिवाहिक शरीरकी 'भोग-शरीर' भी कहते हैं। (त्रि०) ३ इहलोकसे परलोक जानिमें नियुक्त, इस दुनियासे दूसरी दुनियामें पहुँचानिके काम आनेवाला।

आतिविज्ञान्य (सं० त्रि०) ज्ञानको अतिक्रमण करनेवाला, जो ममभवे सबकुत् ले जाता हो।

आतिप्र, आत्म देखो।

आतिग्रय (सं० स्त्री०) अतिग्रय एव, स्वार्थे ष्यञ् । आधिक्य, प्राधान्य, कसरत, बहुतायत।

आतिश्रयान (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं श्रानं कुकुरम्, श्रयो० न समासान्तः अतिश्रदासः, अत्यधीनत्वात् फक्। पचादिभ्यः फक्। वा ४।७८०। दासके निकटस्थ, नौकरके नजदीक। यह शब्द देगादिका विशेषण है।

आतिष्ठ (सं० स्त्री०) अति-स्था-क पत्वम्, अतिष्ठस्य भावः अष्। उत्कर्ष, अन्यको अतिप्रम करनेवाली स्थिति, बढ़ती, जिस हलतमें दूसरेमें बढ़े रहें।

आतीपाती (हिं० स्त्री०) क्रीड़ा विधेय, पहाड़ी डिलो, एक खेल। इसमें कितने ही बालक एकत्र होते और एकको चोर बनाते हैं। फिर चोर लड़का यह कहकर किसी पेड़की पत्ती लाने भेजा जाता है,—'पाती मार छाती, लावे नीमकी पाती।' इस वाक्यमें नीमकी जगह जिस पेड़की पत्ती मंगाना चाहते, उसीका नाम रखते हैं। चोर-लड़केके पत्ती तोड़ने जाते ही दूसरे उधर उधर किसी गुप्तस्थानमें छिप जाते हैं। मंगायी हुई पत्ती ज्ञायमें लिखे वह

जिस लड़केको छू लेता, उसे चोर बना और दांव देना पड़ता है। योपकालकी चन्द्रयोद्धामें ही यह क्रीड़ा प्रायः हुआ करती है।

आतु (सं० पु०) आट् देखो।

आतुच् (वै० स्त्री०) आकारे क्षिप्। सूर्यका अस्तगतिकाल, सन्ध्या, प्राफुतावके मुख्य होनेका वक्त, शाम। 'यमशब्दि आतुचि।' (शब्० पाठशाला) 'आतुचिर्ननाथः' (शायच)

आतुज् (सं० पु०) शत्रुकी नाश करनेवाला, घन देनेवाला, जो दुश्मनको बरबाद करता या दोस्तकी दीक्षत देता हो।

आतुजि (वै० त्रि०) आ-तुज हिंसावलादान-निकेतनेपु इन् क्षिञ्। शृणुभान् क्षिन्। उच् ३।११८। १ हिंसक, चोट देनेवाला। २ बलप्राप्तक, क्षीन लेनेवाला। ३ आक्रमणकारी, भ्रष्ट पढ़नेवाला।

आतुर (सं० त्रि०) अत सातत्य-गमने उरच्, प्रपो० अकारदीर्घः। अतुरपदस्य। उच् ३।११८। १ आहत, अशुभी। २ पीड़ित, तकलीफ उठानेवाला। ३ रोगी, बीमार। ४ कार्यचम, नाकास। ५ व्याकुल, परेशान। 'आसनादी-विज्ञानो व्योमिषोऽप्यतुः आतुरः।' (पत्तरे) 'आतुरे नियमी मतिः।' (ण०ति) (क्षि० वि०) ६ शीघ्र, जल्द, क्षीरन्। (स्त्री०) आतुरा।

आतुरता (सं० स्त्री०) १ पीड़ा, तकलीफ। २ रोग, बीमारी। ३ कार्यचमता, निकम्पापन। ४ व्याकुलता, परेशानी। ५ शीघ्रता, फुर्ती।

आतुरतायो (हिं०) आतुरता देखो।

आतुरसत्र्यास (स्त्री०) ६-तत्। सत्र्यास विधेय, जो सत्र्यास बीमार लेता हो। भारतवर्षके दक्षिण किशो-किशो स्थानमें मृत्युकाल या पड़चनेसे सुसुप्त व्यक्तिको सत्र्यास दे नियुक्त उपासना मिछाते हैं। इसीका नाम आतुरसत्र्यास है। आतुर-सत्र्यास लेने बाद मृत्युसे बच जानेपर कोई धर्ममें सुसने नहीं पाता। तुलसीदास नामक एक ब्राह्मणकी ऐसी ही दशा हुई थी। सुसुप्तकाल पाकर आतुरसत्र्यास धर्म दिया गया उसी, किन्तु मृत्यु उनका कुछ बिगाड़ न सका। इसीसे वह काशीमें रहने और

वेदान्त पत्रमे जने से । तुलसीदासका तत्त्वज्ञान और
 भक्तियोग्य चरित्रय प्रसिद्ध है । तत्त्वज्ञान ईशा ।
 पातुरी (हिं०) वाग्म्य ईशा ।
 पातुरीपञ्चमपीय (सं० पु०) पातुरी रोगिनमधि-
 कृत्य रोगनिवारणाय उपक्रमपीयः, माक० तत् ।
 १ पौष्टिकी निमित्तमाके निधि उपक्रमपीय व्यापार
 विनिध, बीमारकी मज्जाके लिये कमलमें माया ज्ञाने-
 वाला काम । इसमें चायु, व्याधि, चतु, चरित्र,
 ययम, देह, मन, सत्वमांस, प्रकृति, भयम और देह
 पर ध्यान रखना पड़ता है । तदधिकृत्य ज्ञानो पश्यः,
 ह । २ तत्प्रातिपादक पश्य, इसी मज्जामूर्त्ती किताब ।
 पातुर्यं (सं० स्त्री०) पातुर्य्य भायः, वज् । १ पातु-
 रत्व, घबराहट । २ पीड़ा, तकलीफ । ३ फनगामक
 चरित्रगिर्येय, किर्मा क्रियाका कुषार । वस्तुमेंदेसे
 चरित्र नामाविध होता है । इसका वर्णन हरिवंशके
 १८३ अध्यायमें पञ्चहीतरह लिखा है ।
 पातुर्य (सं० स्त्री०) पा-तुर्य-रु । १ छिद्र, गिराफ,
 छिद्र । २ मद्यिद्र चत, खुना खुसुम । (हिं०)
 ३ किंसित, चोट घावे हुआ । ४ द्विच, कटा-फटा ।
 पातुर्य (सं० पु०) पातुर्य्यनिधेन, पा-तुर्य वाहु०
 क्वपु । १ पातका पिङ्ग, शरीरके का दरगृत । (स्त्री०)
 २ पातका फल, शरीरके का मिया । यह दग्नि-जनक,
 रक्तवर्षक, स्नाद्, ग्रीतल, द्रव्य, वस्य, मांसकर और दाह,
 रक्त, पित्त एवं वातप्र होता है । (पाल्कियु) (हिं०)
 ३ दम होने शीघ्र, जो पातुरा किया जा सकता हो ।
 पातोदिन् (वे० हिं०) वेधक, माहसी, मारनेवाला,
 जो धका दे रहा हो । (पु०) पातोदी । (स्त्री०)
 पातोदिनी ।
 पातोप (सं० स्त्री०) पा समन्तात् तुच्यते, पा-तुद्
 क्वत् । पोषादि चार वाद्य, शीत वसोश्च चार यज्ञ ।
 इसमें पोषादि तत, सुरवादि पगह, वंशी प्रश्रति
 यदिर और क्वाय तानादि वाद्य घन होता है ।
 पात (सं० हिं०) पा-दा-त । १ गृहीत, मज्जुर
 किया हुआ । २ पशुद्विध, पक्षा । ३ पाहट, चींवा
 हुआ ।
 पातमन्त्र (सं० हिं०) पातो गृहीतः मनुष्या मन्त्रः

गर्वो यच्च, माक० वहुमी० । १ गतुकर्त्तक अभिभूत,
 दुग्मनसे दया हुआ । २ गृहीत-मन्त्र, पांघा हुआ ।
 पातमन्त्र (सं० हिं०) पातो गृहीतो गर्वो यच्च,
 वहुमी० । अभिभूत, पराजित, दया या क्षारा हुआ ।
 पातमनस्क (सं० हिं०) स्वयं मन सो बैठनेवाला,
 जो दुर्गमिं पादिसे बाहर निकल जाता हो ।
 पातमन्त्री (सं० हिं०) धन गंया देनेवाला, जो
 दीनत सो बैठा हो ।
 पातवचम् (दे० हिं०) वचनशून्य, जो बोल न
 सकता हो ।
 पाप (हिं०) वाग्म्य ईशा ।
 पापक (सं० हिं०) द्रव्यकी प्रकृतिसे सम्बन्ध रखने-
 वाला, जो चीजकी कृदरतसे तात्पर्य रखता हो । यह
 गन्ध प्रायः पदके समामानाने पाता है । जैसे—
 मद्रव्यात्मक, पचापक, विपापक, चरुगामक इत्यादि ।
 (पु०) वाग्म्य ईशा । (स्त्री०) पापिका ।
 पापकर्मन् (सं० स्त्री०) पापना क्रियते, पापान्-
 क्त-मपिन् । सर्वपापभाषिन्, १८३ ३१०० । शीघ्र कर्त्तव्य
 कर्म, अपने हाथका काम ।
 पापकल्पात् (सं० स्त्री०) शीघ्र मङ्गल, अपने भला ।
 पापकाम (सं० हिं०) पापनं कामयते, पापान्-
 कम-निह-पण्, उप० समा० । अपने ही और देखने-
 वाला, स्त्रीर्षी, मतलबी । २ पश्य विषय परिस्थान
 कर देखन पापकाका अभिप्राय रखनेवाला, जो दूसरी
 याने छोड़ रहका ही हाल जानना चाहता हो ।
 पापकामिय (सं० हिं०) पापकामाय इदम्, इक् ।
 पापकामका सम्बन्धी, अपने या दुष्टके कामसे तात्पर्य
 रखनेवाला ।
 पापकामियक (सं० हिं०) पापकामिय त्वायं
 राजस्यादि० पुञ् । पापकामियाकीर्ण, पापकामियार्थि
 पाषाद ।
 पापकार्यं (सं० स्त्री०) शीघ्र कर्म, घराऊ काम ।
 पापकीय, वाग्म्य ईशा ।
 पापकृत (सं० हिं०) १ शीघ्र सम्पादित, अपने
 हाथों किया हुआ । १ शीघ्र प्रतिक्रियाचरित, अपने
 दिमाक किया हुआ ।

आत्मगत - (सं० अथ०) स्वगत, प्रायतः, जगन्तिक, भलग, किनारे। यह शब्द प्रायः नाथ भाषा में आत्मीय वचन गुप्त रूपनेको व्यवहृत होता है। पात्र जो कुछ कहता, मानो वह उसीके लिये रहता और सिवा दर्शकमण्डलीके दूसरा कोयी सुन नहीं सकता।
आत्मगति (सं० स्त्री०) १ जीवन्तके अस्तित्वकी हति, रूहकी हस्तीका तरीफ। २ स्त्रीय हति, अपनी चाल।

आत्मगत्या (सं० अथ०) स्त्रीय कर्मसे, अपने हाथों।

आत्मगन्धक (सं० पु०) गन्धबोल। (गन्धनिपट्ट)

आत्मगन्धिहरिद्रा (सं० स्त्री०) कर्पूरहरिद्रा, आमा-हलदी।

आत्मगुप्त (सं० त्रि०) आत्मना गुप्तः रचितः। निज शक्ति द्वारा रचित, अपनी तावतसे टिका हुआ।

आत्मगुप्ता (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, केवांच। 'आत्म-गुप्तमहाशय्या।' (अमर) केवांच शुक्रवर्धक, मधुर-तिक्त, मांसवर्धक, गुरु, वातघ्न, बन्ध और कफ-पित्त-रक्षक होता है। आत्मगुप्ताका बीज वातकी मिटाता और शुक्रको बहुत बढ़ाता है। (भावप्रकाश) इसका फल स्त्रियोंको प्रसव कर देने कारण वालीकरण है। (वाग्भट)

आत्मगुप्ति (सं० स्त्री०) गुहा, दरी, खो, गोछा, जानवरको छिप रहनेकी जगह।

आत्मगौरव (सं० स्त्री०) स्त्रीय प्रभाव, अपनी रुच्य।

आत्मप्राप्ति (सं० त्रि०) आत्मानं आत्मार्षमेव वा गृह्णाति, आत्मन्-प्र-णिनि। उदरभरि, स्तार्धपर, आत्मघ्न, खुदगर्ज, लालची, मतलबी, पेटू, अपनी ही फिक्र रखनेवाला। (पु०) आत्मप्राप्ति। (स्त्री०) आत्मप्राप्तिनी।

आत्मघात (सं० पु०) १ आत्महत्या, प्राणत्याग, कत्लनफूस, खुदकुशी, आपघात। जब मनुष्य पक्षधर दुःखमें पड़ जाता और उससे छुटकारा पानेका उपाय नहीं देखता, तब अपने हाथों फाँधी लगा, विष खा या भस्म मार प्राण दे देता है। इसीका नाम आत्म-

घात है। हमारे शास्त्रानुसार यह चार प्रकारका होता है,—वैध, अवैध, आनकृत एवं अप्रानकृत। मनु एवं बृह गर्गने लिखा, जब मनुष्य अत्यन्त बृह वन शौचवर्जित तथा लुप्तक्रिय होता, और चिकित्सा करते भी आरोग्यकी सम्भावना नहीं रहती, तब उच्च स्थानसे गिर, अग्निमें कूद, अग्निग्न रह या जलमें डूब प्राण छोड़नेसे तिरात्र अगौच माना जाता है। उसके दूसरे दिन अस्थि सञ्चय करना आवश्यक है। तीसरे दिन उदक तथा पूरक पिण्डदान और चौथे दिन आह होता है। अवैध आत्मघातमें अगौच, उदकक्रिया और आहदि कुछ भी करना न चाहिये।
२ पापघटमार्ग, मास्तिकता, इलहाद, विदत।

आत्मघातक, आत्मघातिन् देखो।

आत्मघातिन् (सं० त्रि०) आत्मानं देहं हन्ति शास्त्र-विरुद्धेन उदन्धनादिना विनाशयति, आत्मन्-हन्-घित्नु, ६-तत्। आत्मनाथी, स्वमायावह, खुदकुशी करनेवाला, जो अपने हाथों अपनी जान लेता हो। (पु०) आत्मघाती। (स्त्री०) आत्मघातिनी।

आत्मघोष (सं० पु०) आत्मानं घोषयति क वा कु कु इत्यादि स्वगन्धैः लोके प्रचारयति, आत्मन्-घुष-घञ्। १ काक, कौवा। २ कुकुट, मुर्गा। कौवा कांठ-कांठ और मुर्गा कुकड़कू बोल अपना परिचय देनेसे आत्म-घोष कहाता है।

आत्मज (सं० पु०) आत्मनः देहात् मनसी वा जायते, आत्मन्-जन-ङ। १ पुत्र, पिसर, धेटा। २ कन्दर्प, कामदेव। ३ रक्त, खून।

आत्मजसन् (सं० स्त्री०) आत्मना जस पुत्ररूपेण उत्पत्तिः, ६-तत्। १ आत्माकी पुत्ररूपमें उत्पत्ति, रुहका पिसरकी शक्तमें पैदा होना।

आत्मजन्मा, आत्मज देखो।

आत्मजय (सं० पु०) १ स्त्रीय विजय, अपनी जीत। २ आत्माका जय, रुहका जीता जाना।

आत्मजा (सं० स्त्री०) आत्मन्-जन-ङ-टाप्। १ कन्या, दुखतर, धेटा। २ मनोजात बुद्धि प्रथति, अक्ष, समझ-बुझ। ३ शक्यशक्ती, केवांच।

आत्मजात, आत्मज देखो।

मैदान पट्टे ७६६ है। तुलसीदासका तत्त्वज्ञान और
 ज्ञानिनीय अतिरथ प्रसिद्ध है। १-१०-१० ई०।
 भातुरी (हिं०) १-१०-१० ई०।
 भातुरीपदकमपीय (सं० पु०) भातुरी रोगिणमपि-
 ज्ञाय रोगनिवारणाय उपकमपीयः, माक० तन्।
 १ पीडितको निश्चित्माहे सिधे उपकमपीय व्यापार
 विनेय, बीमारको मज्जाके सिधे उपकममें माया जाने-
 वाला काम। इसमें पायु, व्याधि, अरतु, अग्नि,
 अयस, देह, बल, मलमांस, प्रकृति, भिन्न और देय
 पर ध्यान रचना पढ़ता है। तदधिकृत्य छतो अन्यः,
 ८। २ तत्प्रतिपादक अन्य, इसी मज्जामुक्ती किताब।
 भातुर्यं (सं० स्त्री०) भातुरण्य भावः, अज्। १ भातु-
 रत्न, घबराहट। २ पीडा, तकलीफ। ३ फलनायक
 चरामविशेष, किमी क्षिप्रका दुपार। यमुभेदमें
 चरामि नामाविध होता है। इसका वर्णन हरिवंशके
 १८३ अध्यायमें पक्षीतरङ्ग निपा है।
 भायस (सं० स्त्री०) भायदृ-ः। १ हिद, गिगाफ,
 हेद। २ सधिर अत, पुना लपुम। (ति०)
 ३ हिंसित, पीट साथे हुआ। ४ हिंस, कटा-फटा।
 भायस्य (सं० पु०) भायस्यतेनिन, भा-यस्य बाहु-
 क्वप्। १ भातका पेड़, मरीचिका दरभूत। (स्त्री०)
 २ भातका फल, मरीचिका मिया। यह अति-जनक,
 रक्तवर्धक, स्वादु, मोतम, हृद्य, बल्य, मांसकर और दाह,
 रक्त, विष एवं वातघ्न होता है। (भायस्य) (ति०)
 ३ यम होमि योग्य, जो आधुदा किया जा सकता हो।
 भातोदिन् (वे० ति०) वैधक, माहमी, मारनेवाला,
 जो धडा दे रहा हो। (पु०) भातोदी। (स्त्री०)
 भातोदिनी।
 भातोद्य (सं० स्त्री०) भा समस्तात् तुद्यते, भा-तुद-
 यत्। भातादि चार भाय, बीन वगैरह चार भाजे।
 इसमें बीयादि तन, मुरजादि अन्त, वंशे प्रश्रुति
 अतिर और कांय भातादि भाय घन होता है।
 भात (सं० ति०) भा-दा-त्। १ अश्वीत, मज्जूर
 किया हुआ। २ अमरिष्य, पडा। ३ आरुह, धींसा
 हुआ।
 भाततय (सं० ति०) भातो अश्वीतः मज्जूर मयः

मर्गे यय, माक० यदुमी०। १ मनुकयक अभिभूत,
 दुग्ममम दवा हुआ। २ अश्वीत-मय, अंधा हुआ।
 भातगर्व (सं० ति०) भातो अश्वीतो मर्गे यय,
 यदुमी०। अभिभूत, पराजित, दया या धारा हुआ।
 भातमनरुह (सं० ति०) अयंमं मन एो अश्वीतवासा,
 जो दुग्मीमें भादिम वाहर निकल जाता हो।
 भातसध्मी (सं० ति०) धम गंवा देनेवाला, जो
 दोलत एो ठेठा हो।
 भातवचम् (दे० ति०) वचनशून्य, जो बीन न
 सकता हो।
 भाव (हिं०) भाव् ई०।
 भावक (सं० ति०) द्रव्यको प्रकृतिमें सम्बन्ध रखने-
 वाला, जो बीजकी फुदरतमें ताम्बूक रचना हो। यह
 मध्य प्रायः पदके समासात्ममें जाता है। जैसे—
 मद्रव्यात्मक, पद्यात्मक, विद्यात्मक, अरगात्मक इत्यादि।
 (पु०) भाव् ई०। (स्त्री०) भाविका।
 भावकमेन् (सं० स्त्री०) भावना क्रियते, भावन्-
 क्त-मपिन्। कर्मभावात्मिन्, अर् भावः। स्त्रीय कर्तव्य
 कर्म, अपने हाथका काम।
 भावकत्वात् (सं० स्त्री०) स्त्रीय मद्रुत, अपने मझ।
 भावकाम (सं० ति०) भावने कामयते, भावन्-
 क्त-मपिन्-पच्, उप० ममा०। अपने ही और देवने-
 वाला, चायों, मतमही। २ अय विषय परिग्याग
 कर देवन भावाका अभिभाव रगनेवाला, जो दूसरी
 बातें होतु रहका ही हाल जानना चाहता हो।
 भावकामिय (सं० ति०) भावकामाय इदम्, इत्।
 भावकामिका सम्पत्ती, अपने या रहके काममें ताम्बूक
 रगनेवाला।
 भावकामियक (सं० ति०) भावकामिय चायें
 राजस्यादि० वुच्। भावकामियाकांने, भावकामिणीमें
 भावाद।
 भावकाय (सं० स्त्री०) स्त्रीय कर्म, पराक काम।
 भावकीय, भाव् ई०।
 भावकत (सं० ति०) १ स्त्रीय सम्पत्ति, अपने
 चायों किया हुआ। १ स्त्रीय प्रतिक्रियापरित, अपने
 विश्वास किया हुआ।

आत्मगत (सं० अव्य०) स्वगत, पोषितः, जनात्मिक, भ्रमण, कितारे। यह शब्द प्रायः नाव्य भाषामें आगामी वचन गुप्त रखनेको व्यवहृत होता है। पात्र जो कुछ कहता, मानो वह उसीके द्विये रहता और सिवा दर्शकमण्डलीके दूसरा कोयी सुन नहीं सकता।

आत्मगति (सं० स्त्री०) १ जीवन्के अस्तित्वकी वृत्ति, रुहकी इस्तीका तरीफ़। २ स्त्रीय वृत्ति, अपनी चाल।

आत्मगत्या (सं० अव्य०) स्त्रीय कर्मसे, अपने हाथों।

आत्मगन्धक (सं० पु०) गन्धबोला। (देवकविण्ड्य)

आत्मगन्धिहरिद्रा (सं० स्त्री०) कर्पूरहरिद्रा, आमा-हलदी।

आत्मगुप्त (सं० त्रि०) आत्मना गुप्तः रक्षितः। निज शक्ति द्वारा रक्षित, अपनों तावतसे टिका हुआ।

आत्मगुप्ता (सं० स्त्री०) कपिकच्छु, किर्वाच। 'आत्म-गुप्ताश्वाश्वपथा।' (बभर) किर्वाच शुभ्रवर्धक, मधुर-तिक्त, मांससंवर्धक, शुद्ध, वातघ्न, बन्ध और कफ-पित्त-रक्तघ्न होता है। आत्मगुप्ताका बीज यातको मिटाता और शुभ्रको बहुत बढ़ाता है। (भावप्रकाश) इसका फल स्त्रियोंको प्रसन्न कर देने कारण वाजीकरण है। (शङ्खर)

आत्मगुप्ति (सं० स्त्री०) गुप्ता, दूरी, खो, गोहा, जानवरको छिप रहनेकी जगह।

आत्मगौरव (सं० स्त्री०) स्त्रीय प्रभाव, अपना रुख।

आत्मप्राप्ति (सं० त्रि०) आत्मानं आत्मार्थमेव वा शृण्वति, आत्मन्-ग्रह-णिनि। उदरभरि, स्वार्थपर, आत्मघ्न, खुदगर्ज, झालची, मतलबी, पिट, अपनी ही फिक्र रखनेवाला। (पु०) आत्मप्राप्ति। (स्त्री०) आत्मप्राप्तिणी।

आत्मघात (सं० पु०) १ आत्महत्या, प्राणत्याग, कत्लनपस, खुदकुशी, आपघात। जब मनुष्य भयङ्ग दुःखमें पड़ जाता और उससे छुटकारा पानेका उपाय नहीं देखता, तब अपने हाथों फाँसी लगा, विय खा या अस्त्र मार प्राण दे देता है। इसीका नाम आत्म-

घात है। हमारे शास्त्रानुसार यह चार प्रकारका होता है,—वैध, अवैध, ज्ञानकृत एवं अज्ञानकृत। मनुष्य एवं हृद गगने सिखा, जब मनुष्य भयन्त हृदय वन शीघ्रज्वलित तथा लुप्तक्रिय होता, और चिकित्सा करते भी आरोग्यकी सम्भावना नहीं रहती, तब उच्च स्थानसे गिर, अग्निमें झूद, अनशन रज या जलमें डूब प्राण छोड़नेसे विराव अशोच माना जाता है। उसके दूसरे दिन अस्थि सञ्चय करना आवश्यक है। तीसरे दिन उदक तथा पूरक पिण्डदान और चौथे दिन ग्राह होता है। अवैध आत्मघातमें अशोच, उदकक्रिया और आहादि कुछ भी करना न चाहिये।

२ प्राणघ्नमार्ग, नास्तिकता, इलहाद, विदत।

आत्मघातक, आत्मघातिन् देखो।

आत्मघातिन् (सं० त्रि०) आत्मानं देहं हन्ति शास्त्र-विरुद्धेन चतन्वनादिना विनाशयति, आत्मन्-घ्नन्-घितृन्, ६-तत्। आत्मनाशी, खनाभावह, खुदकुशी करनेवाला, जो अपने हाथों अपनी जान लेता हो। (पु०) आत्मघाती। (स्त्री०) आत्मघातिनी।

आत्मघोष (सं० पु०) आत्मानं घोषयति क का कु कू इत्यादि स्वशब्दैः लोके प्रचारयति, आत्मन्-घुष-घञ्। १ काक, कौवा। २ कुकूट, मुर्गा। कौवा काँव-काँव और मुर्गा कुकडूकू बोल अपनी परिचय देनेसे आत्म-घोष कहता है।

आत्मज (सं० पु०) आत्मनः देहात् मनसो वा जायते, आत्मन्-जन-ङ। १ पुत्र, पिसर, धेटा। २ कन्दर्प, कामदेव। ३ रक्त, खून।

आत्मजन्मन् (सं० स्त्री०) आत्मना जन्म पुत्ररूपेण उत्पत्तिः, ६-तत्। १ आत्माकी पुत्ररूपमें उत्पत्ति, रुहका पिसरकी शक्तमें पैदा होना।

आत्मजनमा, आत्मज देखो।

आत्मजय (सं० पु०) १ स्त्रीय विजय, अपनी जीत। २ आत्माका जय, रुहका जीत जाना।

आत्मजा (सं० स्त्री०) आत्मन्-जन-ङ-टाप्। १ कन्या, दुख्तर, बेटी। २ मनोजात बुद्धि प्रसृति, भक्त, समभ-दूक। ३ शुक्राश्रयी, किर्वाच।

आत्मजात, आत्मज देखो।

पातञ्जलध्याना (सं० श्लो०) श्रोत्रनक्षो विचारणा,
दृष्टको तन्नाम ।

पातञ्जलध्याय (सं० ति०) श्रोत्रनक्षो विचारणा करमे-
कामा, शो दृष्टको तन्नामर्मे हो ।

पातञ्ज (सं० पु०) गिर, मायु, मध्यम, पाञ्जि,
शान्तिमन्त्र, शाना, चरमो चौर दृष्टको कृदरत
ममभनेवाला ।

पातञ्जान (सं० श्लो०) पातञ्जो ज्ञानम्, १-तत् ।
१ यद्यार्थं द्य पातञ्जः प्राग्, दृष्टका दृष्टम् । श्रुतिर्मे
लिषा, जि यद्यार्थं ज्ञान ही मोक्षमाधन होता है ।
२ श्लोच प्राग्, मयी ममभ । पातञ्जोपादि मन्त्रोका
भी यथां यथं है ।

पातञ्जानो, कच्छ ईधा ।

पातञ्जत्त (सं० श्लो०) पातञ्जत्तत्त्वम्, १-तत् ।
पातञ्जका यथायं ज्ञत्त, धेतत्त्वा द्य, दृष्टको मयी
मलः । मत्तर्दिधे कर्त्तृत्त्वत्त वा पातञ्जत्त परमपदार्थ-
को भी पातञ्जत्त कहते हैं ।

पातञ्जत्तस्य (सं० पु०) पातञ्जका यथायंरूप ममभने-
वाला येदात्तो, जो मयुग्म दृष्टको मयी मलको
पदपातना था ।

पातञ्जता (सं० श्लो०) चमूर्ताता, चर्माधारिकता,
अक्षान्तिगत, दृष्टान्तिगत ।

पातञ्जतुष्टि (सं० ति०) पातञ्जोव तुष्टियंश्च, बहुव्री० ।
पातञ्जान द्वारा तुष्टि पाभेवाला, जो हमीगा विर्ण
दृष्टक दृष्टी मयु रदता चौर परमज्ञको पदपातना
ही । (श्लो०) १-तत् । पातञ्जका मन्त्रोव, दृष्टको
पातञ्जमी ।

पातञ्जानाग (सं० पु०) १ श्वायंस्याग, दृग्गीही
मन्त्रोके भिधे चपने शुद्धज्ञानका किया जाता ।
२ पातञ्जान, पुदकुमी ।

पातञ्जान्तिन् (सं० ति०) पातञ्जानं देहं मन्त्रति,
पातञ्ज-मन्त्र मन्त्रादि विदुम् । १ श्वायंस्यागो,
दृग्गीके भिधे चपना मन्त्रान् कर्तनेवाला । २ पात-
ञ्जानो, पुदकुमी कर्तनेवाला ।

पातञ्जानाव (सं० श्लो०) श्लोच रद्व, चरमो
विद्यायुत ।

पातञ्जानं (सं० पु०) पातञ्जो देहो दृष्टान्तिन्, पातञ्ज-
द्वम पातञ्जो चम्, १ द्येच, पायोना । २ पादम,
मन्त्रान् । भावे चम्, १-तत् । १ पातञ्जका दृग्गी,
पातञ्जानात्कार, दृष्टका मन्त्रान् ।

पातञ्जानं (सं० श्लो०) पातञ्जो दृग्गी मन्त्रान्तिन्-
तिन्, पातञ्ज-द्वम कर्तये लुट् । १ पातञ्जानात्-
कारका साधन अथच, मन्त्र चौर निदिध्यागन, दृष्टके
मन्त्रोका क्रिया युक्तता, मोक्षता चौर ममभना ।
भावे लुट् । २ पातञ्जानात्कार, मन्त्रान्तिन् पात-
ञ्जान, दृष्टका मन्त्रान्, मन्त्रोर्भावे दृष्टका देगा ज्ञान ।

पातञ्जानो (सं० ति०) व्यङ्गित चन्तिन्तिन्, तेनेवाला,
जो मन्त्रोको जिन्तमी वच्युता हो ।

पातञ्जानाग (सं० श्लो०) पातञ्जाना दान, पातञ्जानाग,
प्रत्यादेय, दृष्टको वच्युगिम, पुदकुमी, द्येच ।

पातञ्जान्ति (सं० ति०) पातञ्जानो द्युतिन् कर्तनेवाला,
जो दृष्टको मन्त्रोका कर्त देता हो ।

पातञ्जानो देवता (सं० श्लो०) पातञ्जो देवता । निजका
दृष्टदेवता ।

पातञ्जान्तिन् (सं० ति०) पातञ्जो दृष्टान्तिन्, पातञ्ज-
दृष्ट-विनि । पातञ्जानो, मन्त्रमन्त्रिन्, विदुनिद्वा,
बन्धीन, दृष्टके दृष्टमी रगनेवाला । (पु०) पात-
ञ्जोको । (श्लो०) पातञ्जोको ।

पातञ्जानाग (सं० श्लो०) पातञ्जानो ध्यागं विद्या-द्वय-
योग-विधेयः । पातञ्जानात्कारका साधन मन्त्रोर्भा-
विधेय, दृष्टका च्याग । मन्त्रान्तिन् द्वयका मन्त्रोव
देव चरता है ।

पातञ्जान् (सं० पु०) पातञ्जो मन्त्रान्तिन् श्वायंति द्यि दायन्,
चन्-गती मन्तिन् । चन्तिन् चन्तिन्को । चन् गती ।
१ पुद्व, पादमी । २ श्वाभा, कृदरत । ३ मन्त्र,
मन्त्रोव । ४ मन्त्र, दित । ५ श्रुति, द्यतञ्जान ।
६ मन्त्रोवा, बुधि, चम् । ७ मन्त्रोव, निज । ८ मन्त्र ।

पातञ्जान्तिन् (सं० ति०) पातञ्जानं देहं मन्त्रति,
पातञ्ज-मन्त्र मन्त्रादि विदुम् । १ श्वायंस्यागो,
दृग्गीके भिधे चपना मन्त्रान् कर्तनेवाला । २ पात-
ञ्जानो, पुदकुमी कर्तनेवाला ।

८ चर्क, लुट् । १० चन्ति, चान् । ११ चान्,
द्वय । १२ श्लोच, प्राग् ।

‘आत्मा चित्तो यत्र विषयाणां कथितरः।

परमात्मनि जीवेशे इत्यात्मनोऽप्ये। स्वभावे।’ (१८)

१३ पुत्र, वीटा।

‘आत्मा वे पुत्रनामादि।’ (सृति)

श्रुतिमें आत्माका अर्ह-प्रत्यय विषयत्व लिखा है—
‘अर्थात् पुरुष, ‘अहमस्मि’ समझ कर आत्मज्ञान पा
सकता है। साङ्ख्यभाष्यमें अर्ह प्रत्यय विषयसे भी
बहुवादी प्रतिपत्ति देखायी गयी है। यथा—प्राज्ञत
‘एवं लौकायतिक लोग चेतन्यविशिष्ट देहमात्रको
आत्मा कहते हैं। कोई चेतन इन्द्रिय और कोई
मनही को आत्मा बतलाते हैं। फिर कोई आत्माको
व्यक्त विज्ञानमात्र और कोई शून्यमय समझते हैं।
कोई कहता, कि आत्मा संसारी कर्ता एवं भोक्ता
देहादिसे व्यतिरिक्त है। फिर देहादिसे व्यतिरिक्त
सर्वशक्ति सर्वश्र ईश्वर ही किसीके मतसे आत्मा है।
किसीके मतमें भोगमील ही आत्मा होता है।

जीवात्मा और परमात्मा दोष।

न्यायमतमें आत्मत्वजातियुक्त अर्थात् अमूर्तसमवेत-
द्रव्यत्वापर ज्ञाति, समवायसे ज्ञानरश्मिदि रखनेवासे
और ज्ञानाधिकरणका नाम आत्मा है। जैसे—
‘आत्मा चारि इत्यः श्रोतव्यी मनव्यी निदिश्यासितव्यः।’ (श्रुति)

आत्मा द्विविध होता है, जीवात्मा और परमात्मा।

‘दे ब्रह्मो वेदितव्ये परात्परमेव च।’ (श्रुति)

‘तदर्थं निदिश्यासितव्यमिति।’ (भाष्यविद्वानमश्वरीप्रभाय)

उसमें प्राण्य (जीवात्मा) प्रतिशरीर भिन्न, विभु,
नित्य, कर्ता एवं भोक्ता है। द्वितीय (परमात्मा)
ईश्वर, सर्वज्ञ तथा केवल एक है। (तर्ककोष्ठो)

वैशेषिक आत्माको अप्रत्यक्ष अर्थात् अनुमानगम्य
कहते हैं। अनुमान यह है—करणव्यापार करण-
व्यापारत्वसे छिदनादि क्रियामें वास्यादि शस्त्रादि व्यापार-
वत् सकलक होता है। करणव्यापारसे कर्ताका अनु-
मानगम्य होनेपर तत्त्वजातिमें ज्ञानक्रिया करण भी
सकलक है। अतएव अक्षरादि ज्ञान साधनसे आत्माका
अनुमान किया जाता है। परन्तु नैयायिक उसमें जीवा-
त्माको मानस-प्रत्यक्ष-विषय मानते हैं। (भाष्यपरिच्छेद)

जैनमतमें नाना अविद्याओंसे आत्माके नामा भेद

किये गये हैं, जिनमें मुख्य दो हैं—संसारी आत्मा
और मुक्तात्मा। संसारी आत्मा वह कहलाता, जो
अनादि कालसे अज्ञान द्वारा किये शुभ एवं अशुभ
कर्मोंके प्रभावसे कभी मनुष्यका शरीर धारण करता
और कभी जानवर (तिर्यक्ष) होता है। कभी
नरकमें जाता तथा कभी देवता ही स्वर्गके सुख
भोगता है। मुक्तात्मा वह है, जो तपश्चरणादिके
द्वारा समस्त शुभ अशुभ कर्मोंका नाशकर अज्ञान
शुद्ध स्वभाव (अनन्तज्ञान दर्शन सुख आदि) या
सांसारिक दुःख सुखोंसे सर्वदाके लिये मुक्त हो गया
है। जैनशास्त्रोंमें सामान्य आत्माका लक्षण “अपरो
मचरं” (तत्त्वावेक) अर्थात् ज्ञान और दर्शन जिसके
हो वह आत्मा है, यह बतला किर विग्रह रीतिसे
संसारी आत्माको पहिचाननेका उपाय इस प्रकार
लिखा है—“जिज्ञासो बहुवाणा इन्द्रिय वक्तव्यु आचरणाधीय। वरदार
को जोको विषयव्ययी इ वेदथा नाः” (श्रीमत्रे भिन्दे विद्वान् वक्तव्यो)
अर्थात् संसारी जीवके अधिकसे अधिक १० प्राण
तक होते हैं उनमेंसे जिसके कमसे कम चार प्राण
तक ही अर्थात् पांचों इन्द्रियोंमेंसे एक तो अर्थम
इन्द्रिय, मानसिक, वाचनिक और कायिक इन तीन
वर्गोंमेंसे एक कायिक बल, आयु और प्राणप्राण
(श्लासोच्छ्वास) हो वही जीव या आत्मा है। इसी
लक्षणसे हम वनस्पति आदिमें भी जीव (आत्मा)
समझते हैं। क्योंकि उसके उपयुक्त चारो ही प्राण
स्यष्टतया दृष्टिगोचर होते हैं। यह संसारी आत्मा ही
कर्माका नाशकर परमात्मा हो जाता है। क्योंकि
समस्त आत्माओंमें सर्वज्ञता आदि गुण तो समान ही
है, यदि अन्तर है तो केवल व्यक्ति, अन्वयिका। जिन
आत्माओंके स्वाभाविक गुण कर्मोंके अभावसे प्रकट-
व्यक्त हो जाते हैं, वे परमात्मा कहलाते हैं और जिनमें
वे गुण प्रकट नहीं होते वे आत्मा कह जाते हैं।

यह प्रायः दूसरे शब्दके आदिमें आता और ‘अपना’
अर्थ रखता है। जैसे—प्राणवन्तु, अपना साथी और
आत्मप्रति अपनी खुशी।

आत्मनित्य (सं० त्रि०) सर्वदा हृदयमें रहनेवाला,
जो बहुत धारा लगता और दिलसे न उतरता ही।

आत्मनिन्दा (सं० स्त्री०) स्त्रीय तिरस्कार, अपनी मनामत ।

आत्मनिषेदन (सं० स्त्री०) १ स्त्रीय समाचार, नियाज या पढ़ाया ।

आत्मनिषेदानामिष्ठ (सं० स्त्री०) स्त्रीय विनियोगका अथवा अर्थ, अपने नियाजकी धुन ।

आत्मनिष्ठ (सं० द्वि०) आत्मनि आत्मज्ञाने निष्ठा यस्य, बहुव्री० । १ आत्मज्ञानमें निष्ठा रखनेवाला, जो आत्मज्ञान लाभके लिये यत्न करता हो, ब्रह्मनिष्ठ, मुमुक्षु । आत्मनि तिष्ठति आत्मन्-नि-स्या-क पत्वम् । २ आत्मामें रहनेवाला, जो रहमें मौजूद हो ।

आत्मनीन (सं० द्वि०) आत्मने हितम् च । आत्मनिवृत्त-भीषाकरपदम् च । वा १।१।२ । १ आत्महितकार, अपनी भलाई करनेवाला । १ स्त्रीय सम्बन्धीय, अपना । १ यत्नवान्, जोरदार । (पु०) ४ पुत्र, बेटा । ५ शालक, शाला । ६ नाटकप्रसिद्ध विद्वयक, मसरुवा । ७ पथ, बीमारके खानेकी चीज । ८ प्राणधर, जामवर ।

आत्मनेपद (सं० स्त्री०) आत्मने आत्मार्थफलशोधनादेष पदम्, अस्तुक्-समा० । तद्व्याजनात्मनेपदम् । वा १।१।२०० । १ आत्मगामी फलबोधक व्याकरण-प्रसिद्ध तडादि, जिस पदके रहनेमें आत्मगामी ही फल समझ पड़े । तिङ्-यङन्त धातुके अर्थका आर्थकत्वबोधनके योग्य आत्म्यात् आत्मनेपद कहता है । जैसे अत्रः पापयति, इत्यादिमें आत्मनेपद हुआ है । (२०००) आत्मगामि-फल बोधक तिङादि, अर्थात् अपने फलकी जानने-वाला तिङ्-प्रथित प्रत्यय भी आत्मनेपद है यथा—इदमर्चं मंत्रदेदि । आत्मनेपदार्थ कभी कर्मत्व और कभी कर्मका ही बोधक है । कहीं-कहीं इसमें कर्तृत्व भी रहता है । यथा—अटल्विग्यजतः ।

धातु तीम प्रकारका होता है । परमै, आत्मने और लभयपद । इन तीम प्रकारके धातुमेंमें जहाँ क्रियाफल कर्तृनिष्ठ (कर्तामें) रहता वहाँ आत्मनेपद और दूसरे स्थानमें परमैपद होता है । “कतिचित् कर्म-इत्येते विचारयेत्” (वा १।१।२०२) इसके ही अनुसार दानादि स्वयंमें अगत फल रहनेसे ‘देदे’

और परगत फल होनेसे ‘ददाति’ वाक्य प्रयोग वृहल्लोग करते हैं ।

चिन्तामणिकार (गङ्गोपाध्याय) क्रियाफलमें कर्ताकी अभिप्राय इच्छा रहनेसे ही आत्मनेपद मानते हैं । इसीसे याजकादि द्वारा दक्षिणादि लाभकी इच्छामें यागादि किये जानेपर ‘यजन्ति याजकाः’ परमैपद एवं परगत यागादिफल रहने भी इच्छामें किये जानेपर ‘यजन्ते याजकाः’ आत्मनेपद ही होता है ।

आत्मनेपदिन् (सं० द्वि०) आत्मनेपदं विहितत्वे-नाप्त्यस्य, आत्मने-पद-इति । आत्मनेपद-सम्बन्धीय । पाणिनिने इसके विषयमें लिखा,—गणपाठमें इत्तस्य अनुदात्तेत् एयं स्वरान्त इ इत् धातु आत्मनेपदी होती है । फिर कर्तृगामी क्रियाफल-विशिष्ट स्वरित एवं जित् धातु भी आत्मनेपदी ही हैं । मिया इसके अर्थ विषयमें उपसर्ग विशेषके योगसे कर्तृवाच्य धातु आत्मनेपदी बन जाता है । (पु०) आत्मनेपदी । (स्त्री०) आत्मनेपदिनी ।

आत्मनेभावा (सं० स्त्री०) आत्मने-पाळोद्देशेन भाषा परिभाषा, अस्तुक्-समा० । व्याकरण-प्रसिद्ध आत्मने-पदका अर्थ, संस्कृतकी दरमियागी फलम् ।

आत्मन्वत् (वे० द्वि०) आत्मा अप्त्यस्य, मत्तुप् । आत्मविगिष्ट, जानदार, जिन्दा, जो मरा न हो । (पु०) आत्मन्वान् । (स्त्री०) आत्मन्वती ।

आत्मन्दिन् (वे० द्वि०) आत्मन् अस्त्यर्थे याद्-विनि । मनस्वी, प्रगल्भमना, दिनदार । (पु०) आत्मन्वी । (स्त्री०) आत्मन्विनी ।

आत्मपरित्याग (सं० पु०) स्त्रीय ममर्पण, अपना नियाज ।

आत्मपुराण (सं० पु०) आत्मनः पुराणां सृष्टादि कर्तृ-त्वादिरूप निमित्तमधिष्ठत्य लतो अन्तः, अण् । उप-नियतके अर्थका पुस्तक विशेष । यह गङ्गारानन्द-प्रणीत और पहारण अथायमें समाप्त है । इसके प्रथममें ऐतरेय, द्वितीयमें बृहदारण्यकके कौपीनकी ब्राह्मण, तृतीयमें अजातशत्रु-संवाद, चतुर्थमें बृहत् सधुकाण्ड, पंचममें बृहद्वाचस्पत्यकाण्ड, षष्ठमें बृहद्वाचस्पत्य

जनकसंवाद, सप्तममें वृहदद्यावत्कार-मेलेयी-संवाद, षष्ठममें श्वेतान्तर, नवममें काठक, दशममें तैत्तिरीय, एकादशमें गर्भादि, द्वादशमें क्रान्दोग्यके श्वेतकेतु-संवाद, त्रयोदशमें क्रान्दोग्यके सनत्कुमार-नारद-संवाद, चतुर्दशमें क्रान्दोग्यका प्रजाके प्रति इन्द्रसंवाद, पञ्चदशमें तनवकार, षोडशमें सुण्डक, सप्तदशमें प्रथम और षष्ठादश अध्यायमें मण्डूक्य, दशमा, जाबालि प्रभृति प्रणीत उपनिषत्का अर्थ है। यह ग्रन्थ सुगम उपाय द्वारा वेदान्त समझनेके लिये अतिशय उपयोगी है। काकारामगोस्वीने इसकी टीका बनायी है।

आत्मप्रकाश (सं० पु०) चैतन्यका प्रकाश, रुद्रकी रोगिणी।

आत्मप्रबोध (सं० पु०) आत्माका ज्ञान, रुद्रकी पहचान।

आत्मप्रभ (सं० त्रि०) आत्मना स्वयमेव प्रभा यस्य, बहुव्री०। स्वयं प्रकाशमान, अपने आप चमकने-वाला। (पु०) २ परमात्मा। (स्त्री०) आत्मप्रभा। इ-तत्। स्वयंप्रभा, स्वयंप्रकाश, जो रोगिणी अपने-आप निकली हो।

आत्मप्रभव (सं० पु०) प्रभवत्यस्मात्, प्रभू अपा-दानि अप, आत्मा देहः मनो वा प्रभवो यस्य। १ तनुज, पुत्र, वेटा। २ मनोभव, कन्दर्प। आत्मा परमात्मेव प्रभवः कारणं यस्य, बहुव्री०। ३ आकाश परमाणु प्रभृति, आसमान् वगैरह। (स्त्री०) आत्मप्रभवा। १ कन्या, वेटा। २ बुद्धि, समझ।

आत्मप्रवाद (सं० पु०) १ आत्मविषयक कथनोपकथन, रुद्रके वारमें बातचीत। २ जेनेके चौदह पूर्वमें सातवां पूर्व। पूर् देखो।

आत्मप्रगोष्ठा (सं० स्त्री०) स्त्रीय झाडा, अपनी तारीफ़।

आत्मप्रीति (सं० स्त्री०) स्त्रीय आनन्द, अपना मजा। आत्मवध, आत्मघात देखो।

आत्मवन्धु (सं० पु०) आत्मनो बन्धुः इ-तत्। १ निजका मित्र, अपना साथी। मीसेरा, फुफिरा तथा ममेरा भाई ही शास्त्र-सम्मत आत्मवन्धु है। आत्मैव बन्धुः कर्मधा०। २ अपना साथ देनेवाला आत्मा, रुद्र।

आत्मबुद्धि (सं० स्त्री०) स्त्रीय ज्ञान, अपने रुद्रका इत्त। आत्मबोध (सं० पु०) १ आत्मज्ञान, रुद्रका इत्त। २ स्त्रीय ज्ञान, अपने आपकी जानकारी। ३ शङ्कराचार्य-प्रणीत ग्रन्थविशेष। ४ अथर्ववेदका एक उप-निषत्। (त्रि०) ५ आत्मज्ञानी, रुद्रका इत्त रखने-वाला।

आत्मभव (सं० पु०) १ स्त्रीय प्रभित्व, अपना वजूद। (त्रि०) २ स्वयं जात, अपने आप निकला हुआ।

आत्ममाय (सं० पु०) १ आत्माका प्रभित्व, रुद्रका वजूद। २ स्त्रीय प्रकृति, अपनी कृदरत। ३ गरीर, जिम्हा।

आत्मभू (सं० पु०) आत्मनो मनसः देहाद्वा भवति, आत्मन्-भू-क्षिप्, इ-तत्। १ मनसे उत्पन्न होनेवाला कन्दर्प। २ अपने देहसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र, वेटा। आत्मनो स्वयमेव भवति। ३ स्वयं उत्पन्न होनेवाला ईश्वर। ४ शिव। ५ विष्णु। आत्मनः ब्रह्मणः भवति। ६ ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा। (त्रि०) ७ स्त्रीय मन वा देहसे उत्पन्न होनेवाला, जो अपने दिल या जिम्हसे पैदा हो। ८ स्वयं उत्पन्न, अपने-आप पैदा होनेवाला।

आत्मभूत (सं० त्रि०) आत्मनः देहात् मनसो वा भूतः। १ देह वा मनसे उत्पन्न, जिम्हा या दिलसे पैदा। २ अनुकूल, वफादार। (पु०) ३ तनुज, वेटा। ४ कन्दर्प। (स्त्री०) टापू। आत्मभूता। १ कन्या, वेटा। २ बुद्धि, प्रकृत।

देहादिपहले आत्मसम्बन्धी नहीं रहता; पीछे जन्म लेनेमें आत्मासे सम्बन्ध हो जानेपर आत्मभूत कहता है।

आत्मभूय (सं० स्त्री०) आत्मनो भावः, आत्मन्-भू-क्यप्, इ-तत्। भवः क्यप्। वा शरत्००। आत्मत्व, ब्रह्मरूप, रुद्रानियत।

आत्ममय (सं० त्रि०) आत्मात्मकः, आत्मन्-मयट्। आत्मस्वरूप प्राप्त, रुद्रानी। (स्त्री०) डोपू। आत्ममयी।

आत्ममात्रा (सं० स्त्री०) परमात्माका चुद्राय।

आत्ममानिन् (सं० त्रि०) आत्मानुसृत्कर्मण्ये मन-एनि, इ-तत्। १ गर्हित, अपने उत्कर्षका अभि-

मागो, मग्दर, चपनी बड़ाईका फर्स् ररनेवाना ।
२ मकम प्राचीको चपना-जैसा समझनेवाना, जो
सब जानवरीको चपनी बराबर जानता हो ।

आत्ममूर्ति (सं० पु०) आत्मको मूर्तिरिव मूर्तिर्येष्य,
बहुव्री० । स्त्रीय आकृति-जैसा भ्राता, चपनी शक्तके
मानिन्द भाई । एक मातापिताके मन्तानको आकृति
प्रायः मह्य ज्ञानिने भ्राताको आत्ममूर्ति कहते हैं,
(स्त्री०) १-तत् । २ वेदान्त मतसे आत्माका स्वरूप
चैतन्यादि, ज्ञान्दारी । १ न्यायमतसे कर्तृत्वादि,
वमीना, जूरिया ।

आत्ममूल (सं० त्रि०) १ आत्मभू, स्वदभू, चपने पाप
मोजुद रहनेवाला ।

(स्त्री०) आत्मा ब्रह्मैव मूलं कारणं यस्य, बहुव्री० ।
२ जगत, दुनिया ।

याप्रथमकव-संज्ञितार्थे लिप्सा,—जैसे कुम्भकार
सृष्टिका, दण्ड, चक्र, मलिन, सूत्र प्रभृति द्वारा घट ;
रुद्रकर्ता सृष्टिका, लघ एव काष्ठसे रुद्र ; स्वर्णकार
स्वर्ण वा रौप्यसे चतुर्द्वार चौर श्रमका कीड़ा कपनी
मारसे धागा बनाता, येमे ही परमात्मा कारण तथा
करणसे योनि-योनिमें आत्माकी सृष्टि करता है ।

आत्ममूली (सं० स्त्री०) आत्मैव रचये मूलं कारण-
मस्या चन्य जन्तु कर्तृक व्याहृतत्वात् जातित्वात् टीए ।
दुरानभा सता, धमाभा ।

आत्मभरि (सं० त्रि०) आत्मानं विभर्ति, आत्मन्-
ध-इन्-सुम्ब, उप० समा० । चमेरिण्यपरिच । पा १:५११ ।
कुचिभरि, उदरभरि, मधुसपरस्त, पेट । (स्त्री०)
आत्मभरो ।

आत्मयाजिन् (सं० त्रि०) आत्मानं ब्रह्मरूपेण कर्म-
करणादिकं भावयन् यजति, आत्मन्-यज-यिनि ।
१ कर्मयोगी, भला काम करनेवाला । २ चपने चयै
यज करनेवाला । १ स्त्रीय वलि घटानेवाला । (स्त्री०)
आत्मयाजिनी ।

आत्मयाजी (सं० पु०) बुद्धिमान् पुरुष, चक्र,मन्द
पादमी, चपनी चौर रुद्रकी कृदरत समझनेवाला
गुरु ।

आत्मयोनि (सं० पु०) आत्मैव योनिरस्य, बहुव्री० ।

१ हिरण्यगर्भ । २ मद्या । ३ विष्णु । ४ मित्र ।
५ कामदेव । पाप ही पाप पैदा हो जानेवालेको
आत्मयोनि कहते हैं ।

आत्मरचक (सं० त्रि०) स्त्रीय रचा ररनेवाला, जो
चपनेको बचाता हो । (स्त्री०) आत्मरचिका ।

आत्मरक्षण (सं० स्त्री०) स्त्रीय परिचाय, चपनी
दिकान्त ।

आत्मरचा (सं० स्त्री०) आत्मन एव रचा यस्याः ।
महेन्द्रवाहणी सता, कुंदर । १-तत् । २ शास्त्रानु-
सार विप्लकारियेमे चला द्वारा चपनी रचाका
करना ।

आत्मरत (सं० त्रि०) आत्मासे प्रेम ररनेवाला, जो
रुद्रका मजा उड़ाता हो । (स्त्री०) आत्मरता ।

आत्मरति (सं० स्त्री०) आत्माका पानन्द, रुद्रका
मजा ।

आत्मराम (सं० पु०) आत्मनि रमते, संप्राया कर्तारि
घञ् । आत्मज्ञान मात्रसे उत योगीन्द्र ।

आत्मराम (सं० पु०) आत्मनो रामः, १-तत् । यथा-
स्वरूप ज्ञान द्वारा आत्माकी प्राप्ति, इत्यसे रुद्रका
ज्ञापन ।

आत्मरिद्ध (सं० स्त्री०) आत्माके चक्षित्वका परि-
चायक सुख-दुःख प्रभृति, जो चाराम तकनीक चतुरे
रुद्रका यजुद देताता हो ।

“यतोर्ध्वो हृष्यदुःखनिष्कारो यो तथेव च ।

मदब्रह्मवन्कारमन्त्रिभृशुदायन् ॥”

(कामन्दकीय नीतिशास्त्र)

आत्मलोक (सं० पु०) आत्मैव लोकः आत्मप्रकाशः ।
स्वप्रकाश, आत्मा, रुद्र ।

आत्मलामन् (सं० स्त्री०) १-तत् । १ गरीरस्य नीम,
जिह्वका धान । २ शम्भु, दाढ़ी ।

आत्मवचक (सं० त्रि०) आत्मानं वचति, आत्मन्-
वच-वन् । लपन, बचीन, चपनेको ही धोका देने-
वाला । (स्त्री०) आत्मवचका ।

आत्मवचना (सं० स्त्री०) स्त्रीय प्रतारणा, ज्ञाती सुराव,
चपने पापको धोका देनेकी बात ।

आत्मवत् (सं० त्रि०) आत्मा ममः वमीभूतत्वेनास्त्वस्य,

आत्मन्-मतुप्, मस्य वः । १ वगोभूत-चित्त, दिलको कावूमें रखनेवाला । २ निर्वाकारचित्त, साफ्दिन । (चथ्) ३ आत्मेव, अपनांतरह । (पु०) आत्मवान् । (स्त्री०) आत्मवती ।

आत्मवृत्ता (सं० स्त्री०) १ स्वीय भुक्ति, अपना मदाखलत । २ स्वीय साहस्य, अपनी सुगावहत् ।

आत्मवध, आत्मवत् देखो ।

आत्मवध्या (सं० स्त्री०) आत्मवत् देखो ।

आत्मवश (सं० द्वि०) आत्मनो वशमायत्तताव अस्य वा । १ स्वाधीन, खुदसुखुत्तर, अपनी ही मातहतोमें रहनेवाला । (पु०) २ आत्मसंयम, इन्द्रियजय, जवत्ज्ञान, अपने ऊपर काव । (स्त्री०) आत्मवशा ।

आत्मवश्र (सं० द्वि०) आत्मा मनो वशो यस्य, बहुव्री० । १ वगोभूत-चित्त, दिलको कावूमें रखनेवाला । २ कामंशम-शरोर, अपने जिह्मपर कामका बोझ उठा लेनेवाला । आत्मनो वश्रम्, ६-तत् । ३ आत्माके वगनोय, रुहके कावूमें आ जानेवाला ।

आत्मविक्रय (सं० पु०) ६-तत् । स्वदेहविक्रय, खुदफुरोगी, अपना जिह्म किमोके हाय वैध गुलाम बननेका काम । यह उदपातकके मध्य गिना गया है,—

“श्रीवधोऽपराध-संवात्-पारदायौकविक्रयः ।
गुरुनाशपितृव्यायः श्लाघ्यायः सुतय च ३” (मनु ११६०)

अर्थात् गोवध, अयाज्ययाजन, परस्त्रीगमन, आत्मविक्रय, मातापिता प्रभृति गुरुजनकी सेवा न करना, पाठ होम भादि ब्रह्मयज्ञ एवं स्मार्ताग्निजा त्याग और पुत्रका जातकर्मादि संस्कार न करना उदपातकके मध्य परिगणनीय है ।

आत्मविक्रयिन् (सं० द्वि०) स्वीय विक्रय करनेवाला, खुदफुरोग, जो अपने आपकी वैध डालता हो । (पु०) आत्मविक्रयी । (स्त्री०) आत्मविक्रयिणी ।

आत्मविज्ञान (सं० स्त्री०) योग्याभास-समाधिसे परमात्माके स्वरूपका विज्ञान ।

आत्मविद् (सं० पु०) आत्मानं याथाद्येन वेत्ति, आत्मन्-विद्-क्षिप्, ६-तत् । १ आत्मज्ञ, रुहकी समझनेवाला । आत्मानं स्वपथं वेत्ति । २ स्वपथज्ञता, अपनी तर्फका हाल-जाननेवाला । ३ शिव ।

आत्मविद्या (सं० स्त्री०) आत्मनो विद्या, ६-तत् । ब्रह्मविद्या, योगशास्त्र, रुहका इत्तम् ।

आत्मविष्मति, आत्मविद् देखो ।

आत्मविष्मृति (सं० स्त्री०) स्वीय विस्मरण, अपने आपको याद न रखनेकी हालत ।

आत्मवीर (सं० द्वि०) आत्मा प्राणः वीर इव यस्य, बहुव्री० । १ पतिशय बलयुक्त, निहायत शौरावर । २ उपयुक्त, वाजिव । ३ विद्यमान, मौजूद । (पु०) आत्मनो वीरः आत्मोयत्वेन श्रेष्ठः, ६-तत् । ४ श्यालक, साला । ५ पुत्र, बेटा । ६ विदूषक, ख्यांका मसखरा । ७ बलवान् पुरुष, ताकतवर पादमी ।

आत्मवृत्तान्त (सं० पु०) स्वीय चरित-रचन, स्वीय उपाख्यान, तुज्जक, खास अपना तज्जिकरा ।

आत्मवृत्ति (सं० स्त्री०) आत्मनो वृत्तिः, ६-तत् । १ स्वीय जीवनोपाय, खान अपना पेया । (द्वि०) आत्मनि स्वस्मिन् वृत्तिर्यस्य, शाकं बहुव्री० । २ अपनी-जैसी वृत्ति रखनेवाला, हमपेया, जो अपना-जैसा काम करता हो ।

आत्मवृद्धि (सं० स्त्री०) स्वीय उत्कृष्ट, अपनी बढ़ती । आत्मवृद्धि (सं० स्त्री०) आत्मनः इव शक्तिः, ६-तत् । स्वीय चमता, अपनी ताकत । २ आत्मानुरूप चमता, रुहानी कुवत । ३ परमेश्वरके जगत् उत्पादन करनेकी माया । आत्मशब्दा (सं० स्त्री०) आत्मा स्वरूपं शब्दमिव यस्याः । गतावरौ, सतावर ।

आत्मशुद्धि (सं० स्त्री०) आत्मनः देहस्य मनसो वा शुद्धिः, ६-तत् । देहशुद्धि, चित्तशुद्धि, अपने जिह्म या दिलको सफाई ।

आत्मशावा (सं० स्त्री०) आत्मनः श्वावा, ६-तत् । १ स्वीय मिथ्या गुणका प्रकाश, अपने भूठे हुनरका इजहार । २ स्वीय प्रगंसा, अपनी तारीफ । ३ निज मुखसे स्वीय गर्वका प्रकाशन, अपने मुंह अपने गुरुरकी बघार ।

आत्मशाधिन् (सं० द्वि०) स्वीय प्रगंसा करनेवाला, जो अपनी तारीफ करता हो । (पु०) आत्मशाधी । (स्त्री०) आत्मशाधिनी ।

आत्मसंयम - (सं० पु०) आत्मनो मनसः संयमः

नियमनम्। मनोवर्गीकरण, सुखदुःखसमता, मनस्ये
विकारका न्याय, ममत्वा-जघर, पृथ्वी चौर ममसि
वैपरवायोका चकीटा।

पाठमसंवेदन (सं० स्त्री०) स्वीय ज्ञान, चपनी
ज्ञानकारी।

पाठमसंस्कार (सं० पु०) स्वीय मंस्कार, ज्ञाती इमत्वाह,
चपना सुधार।

पाठमद् (वे० स्त्रि०) पाठवर्ती, ज्ञाती, जो चपने हीमें
रहता हो।

पाठमनि (वे० स्त्रि०) जीवनीहारदायक, जिम्मेगीका
नफूम यत्नगनेवाला।

पाठमन्देश (सं० पु०) पाठ्यन्तरिक विकल्प, भीतरी
शक्त।

पाठममुद्रव (सं० पु०) पाठनः सर्वं ममुद्रवसम्य,
बहुश्री०। १ चपनेने उत्तुपन्न होनेवाला पुत्र, धेटा।

२ मनमिज। ३ हरिश्चर्यगर्भ, मद्रा। पाठना स्वयमेव
ममुद्रवति, पाठन-मन्-उत्-भू कर्तरि अच् अच् वा।

४ स्वयं उत्तुपन्न होनेवाली गिय। ५ विष्णु। ६ पर-
मात्मा। (स्त्रि०) ७ स्वीय शरीरजात, चपने जिघमसे
पेटा। ८ स्वयमुत्तुपन्न, चपने पाप पेटा होनेवाला।

पाठममुद्रवा (सं० स्त्री०) १ चपने देशसे उत्तुपन्न
होनेवाली कन्या, धेटा। २ बुद्धि, चक्र।

पाठमभ्रव (सं० पु०) पाठखेने मभ्रवः, पाठन-
मन्-भू कर्तरि अच्, शाक० इ-तत्। "पाठा ई मभ्रवे पुनः।"

(हर्ष) यदा पाठामभ्रवोऽस्य, चपादानि चप, बहुश्री०।

१ पुत्र, धेटा। २ हरिश्चर्यगर्भ। ३ उत्तुपन्न। ४ शिव।

५ विष्णु। ६ परमात्मा। (स्त्रि०) ७ मनमें उत्तुपन्न
होनेवाला, जो दिवमें पेटा होता हो।

पाठमभ्रवा (सं० स्त्री०) १ कन्या, धेटा। २ भग-
वती, देवी। ३ बुद्धि, चक्र।

पाठमाचिन् (सं० स्त्रि०) पाठनः मुहिरुत्तः साची
प्रकाशकः। १ बुद्धिप्रतिप्रकाशक, चक्रकी ज्ञानत
चमका देनेवाला, जो दिवकी राह देवाता हो।

वेदान्तादिके मतमें चेतन्य पाठमाची सिद्ध हुआ है।

(पु०) पाठमाची। (स्त्री०) पाठमाचिणी।
पाठमात् (सं० चम्ब०) कात्तुर्छं माधनोऽधीनो भवति

मव्ययते अधीनं करोति वा, माति। सकल प्रकार
चपने अधीन, सब तरह चपने ताधिमें रहनेवाला।

पाठमात्कृत (सं० स्त्रि०) विनियोगित, उपकल्पित,
चपनू किया या चपनाया हुआ।

पाठमिह (सं० स्त्रि०) १ स्वयं निष्पन्न, चपने पाप
बना हुआ। २ पाठमाकी वधमें रखनेवाला, जो रहकी
कावुमें रखता हो।

पाठमिदि (सं० स्त्री०) पाठ्यरूपा सिद्धिः। पाठ-
भाव-लाभ, मोक्ष, ज्ञाती चक्रमत।

पाठमसुप्त (सं० स्त्रि०) पाठ्य सुप्तस्यः। १ पाठ-
लाभ मात्रसे सुप्तो, चपने पाप सुप्त रहनेवाला।

(स्त्री०) पाठ्य सुप्तं मसिदानन्दपत्वात्। २ पाठ-
रूप परमानन्द, रहानी सुप्तो।

(पु०) ३ हरिश्चराचार्यके शिष्य भौर उत्तमसुप्तके
विद्यार्थी। इदंनि योगयाशिष्टीका भौर योगयाशिष्ठ-
मंघेपटीका नामक दो ग्रन्थ बनाये हैं।

पाठमसुति (सं० स्त्री०) स्वीय प्रशंसा, चपनी
तारीफ़।

पाठमस्य (सं० स्त्रि०) पाठने पाठ्यज्ञानाय तिष्ठते
यतते, पाठन-स्या-क, इ-तत्। पाठमस्य सगभनेकी
यत्नवान्, जो रहके रह परचनेकी विक्रमें हो।

२ प्रकृतिय, मञ्जीदा। ३ मनोउत्तिमय, दिभी।

पाठमहत्या (सं० स्त्री०) पाठने दिहस्य इममन्,
पाठन-हन्-यवप्। इममन् वा मारुत्वा पाठघात,

स्वयध, सुदकुशो। हन् धातुके पडने कोई उपपद
न रहनेमें हत्या शब्दकी उपपत्ति चमभ्रव है। इमीसे

'वधं हत्या दुर्द' भौर 'वधी हत्याकाण्ड' इत्यादि
प्रयोग व्याकरणाविहह ठहरता है।

पाठमहन् (सं० स्त्रि०) पाठनं हतवान्, पाठन-हन्-
क्रिप्। १ यथायं पाठज्ञान-रहित, ठीक रहका इमम
न रहनेवाला। २ देशदिका अधिमानो, जिघ
वगैरहका गृहर रहनेवाला। ३ पाठघाती, सुदकुश।

(पु०) ४ पुत्रागे, धन सेवर प्रतिमापूजन करनेवाला
पुत्रय।

पाठमहन (सं० स्त्री०) स्वयध, सुदकुशो।

पाठमहिंसा (सं० स्त्री०) पाठन ईधी।

धात्महित (सं० त्रि०) १ स्रजार्थीपयोगी, धपनेको फायदा देनेवाला। (स्त्री०) २ स्त्रीय लाभ, फायदा धपना फायदा।

धात्मा, धात्म् ईको।

धात्माटिट (सं० त्रि०) १ स्तः विवेचित, धपने पाठ मधीडत किया हुआ। (पु०) २ मन्थिविगीय, किन्ती विष्णुको धमक। स्तः धाहनेवाला पक्ष ही हमें धुलित करता है।

धात्माधीन (सं० पु०) धात्मनोऽधीनः। १ पुत्र, धटा। २ ग्नामक, गाना। ३ विद्वज्ज, ममपुरा। (त्रि०) ४ धनयुक्त, ध्याधीन, श्रीराधर, धाजाट। ५ वर्तमान, गीजुद।

धात्मान्द (सं० पु०) धात्माका धात्म्, रुहका मङ्ग। यह ध्यानको एकत्र करनेसे हृदयमें मिलता है।

धात्मानुभव (सं० पु०) ध्याय धनुभव, धपना तत्ररुधवा।

धात्मागुरुध (सं० त्रि०) धात्मनोऽगुरुधं सर्वप्रका-
शं महाम्। ज्ञानि, गुण किंवा क्रियादि द्वारा धपने गुण, धपने-श्रेया।

धात्माधकारक (सं० त्रि०) धात्मानं धपहरति निद्रुति,
धात्म्-ध-प-ह-र-त्-नुम्। धर्त, धात्माके धयाधरुधका
धपण्यकारी, धात्मपरिधय न देनेवाला, मङ्गार, ठग,
को हीटिंगे बढ़ा बनता या धपना ठीक-ठीक धगा न
बताता ही।

धात्माभिमान (सं० पु०) स्त्रीय धपहृदार, धपने
धापका गुदर।

धात्माभिमानिन् (सं० त्रि०) स्त्रीय धपहृदार रगने-
वाला, जिसे धपने धापका धमण्ड रूँ। (पु०) धात्मा-
भिमानो। (स्त्री०) धात्माभिमानिनी।

धात्माभिमाय (सं० पु०) स्त्रीयकी धप्या, रुहकी
फ्याहिय।

धात्माराम (सं० त्रि०) धात्मा धाराम इय धप्य,
रुह्यो। १ धात्माको धपयन मसभनेवाला, जो
रुहको धाय मानता ही। धपयन लैसा मनोन्न होता,
वेधा ही धात्मा रगनेवाला धात्माराम कहाता है।

२ योगी विगीय। कागोखण्डमें लिखा,—जिसका
धात्मा सर्वदा परिधय रहता धौर जो समस्त विष्णुको
धात्मारूप मसभता, धधी धात्माराम योगीका स्वरूप
होता है। हिन्दूमें धात्माराम तोतिको भी कहने हैं।

३ जयधुन्य भङ्के पुत्र। फर्कके कात्यायन-
श्रीतद्वृत्तभाष्यपर रक्षेति 'भावविगीधनी' टीका
मिणी है।

धात्मार्य (सं० त्रि०) स्त्रीय निमित्त-धापक, धपना
काम देनेवाला।

धात्मान्ध (सं० पु०) हृदयस्थं।

धात्माधकाम्यन् (सं० त्रि०) स्त्रीय धपमयन रखने-
वाला, जो धपना ही सधारा पकडता ही। (पु०)
धात्माधकाम्यो। (स्त्री०) धात्माधकाम्यनी।

धात्मागिन् (सं० पु०) धात्मानं धकुलमश्याति,
धात्म्-धग्-धिनि, ३-तत्। धकुलमधक मौन, धपने
धपठे खानेवाली मङ्गनी। एक जय धपने धपठे छोड़
धकी जाती, तब टूमरी धाकर उर्ध्वे रडा डालती;
रुमीने मङ्गली धात्मागी कहाती है। (पु०)
धात्मागी। (स्त्री०) धात्मागिनी।

धात्माधय (सं० पु०) धात्मानं धाययति, धात्म्-
धा-यि-ध-य, ३-तत्। १ निजका धायय, धपना
सधारा। २ निज स्थापेधित्व हेतुक धनिठ मसङ्गधप
तर्कका दोध धियेय। धायमतसे जो प्रधङ्ग धपने
धापकी धपेधा रखता, यह धात्माधय कहाता है।

“मय धापेधाधकः प्रधः।” (धर्कयत)

धिर धपने धापेधितत्वमें धनिठ मसङ्ग दोध भी
धात्माधय ही है। यह धत्पत्ति, स्थिति धौर धमि
रीदने हीन प्रकारका है,—धटसे धत्पव होनेपर
धगधिकरणका धधयोत्तरवर्ती, तथा धटमें रधनेसे
धध्याय धौर धटधानसे धधिय ठधरनेमें धटधान
धामधीजन्य है। (धौनधरुधिय)

धात्तिक (सं० त्रि०) १ धात्मासे सध्वन्य रखने-
वाला, रुहानी। २ स्त्रीय, धपना। ३ मानसिक।
धात्मीकृत, धात्मीकृत धेवी।

धात्मीभाव (सं० पु०) धरमात्माका धंगविगीय धन
धानिकी दगा।

शास्त्रीय (सं० त्रि०) शास्त्रज्ञ इदम्, शास्त्रज्ञ- ।
१ शास्त्रसम्बन्धीय, रुद्रार्थोः । २ श्रमार्थ, शास्त्रमात्री ।
३ शस्त्रारूढ, दिवोः ।

शास्त्रीयता (सं० श्लो०) १ शास्त्रसम्बन्ध, याम् चपना
तादृक्, । २ मितता, दीप्तोः ।

शास्त्रेश्वर (सं० त्रि०) शास्त्रज्ञो ममस ईश्वरः,
६-तत् । १ ममका संयमनमोल, दिलको कायदेपर
रक्षनेशाना । (पु०) २ चपने चापज्ञा श्चास्त्री, चपने
दिग्दर्शन इकूमत रक्षनेशाना । ३ परमात्मा ।

शास्त्रोत्पत्ति (सं० श्लो०) शास्त्रोत्पत्तिः श्लोवा-
ध्यन्तःकरणवृत्तिकर्षणापूर्वदेहसंयोगः, ६-तत् । किमी
कारणवयम पन्तःकरणवृत्तिके कर्मसे अपूर्व देह-
संयोगरूप शास्त्राका जन्म । प्राचीन शास्त्र कहता,
कि शरीर प्रतिक्षण नतन होता है । उसके मध्य
किमा कारणवयम मन ही मन कीर्ति यात चाहनेपर
तत्कालीन अपूर्व देहसे शास्त्राका संयोग ही शास्त्रोत्-
पत्ति माना जाता है ।

शास्त्रोत्सर्ग (सं० पु०) स्वार्थत्याग, जाती इष्टराज,
चपनी भलायीका छोड़ना, दूसरेके लिये चपने
चापका निष्कास ।

शास्त्रोदय (सं० पु०) श्लोय उत्सर्ग, चपनी समक ।

शास्त्रोद्धार (सं० पु०) १ शास्त्राका उद्धार, मुक्ति,
रुद्रका हुटकारा, निष्कास । सांघारिक विषयका
त्याग धीर धारमायिक पदार्थका प्रहय शास्त्रोद्धार
कहाता है ।

शास्त्रोद्भव (सं० त्रि०) १ शास्त्रासे निकलना हुआ,
खो रुद्रसे पैदा हो । २ स्वयं उत्पन्न, चपने चाप पैदा
होनेवाला । (पु०) १ पुत्र । ४ कर्षर्ष ।

शास्त्रोद्भव (सं० श्लो०) शास्त्रसे उद्भवति, शास्त्र-
उत्-भू-पञ्-टाप् । मायपत्नी हय, रामकुरयी । २ धन-
सुह, भोट । शास्त्रः देहात् मनसो वा उद्भवो यस्याः ।
-१ ज्ञ्या, शेटोः । ४ मुक्ति, प्रज्ञ ।

शास्त्रोद्भूति (सं० श्लो०) १ श्लोय उद्भवति, चपनी
तरङ्गी ।

शास्त्रोपजीविन् (सं० त्रि०) शास्त्रज्ञा देहव्यापारेण
उपजीवति, शास्त्र-उप-जीव-विनि, १-तत् । १ चपने

देहके व्यापारसे जीवन चलायेवाला, जो चपने चाप
भेदनसे जियेगी बसर करता हो । २ चपनी पत्नी
द्वारा जीवन निर्वाह करनेवाला, जो चपनी धीरनके
सहाय जीता हो । ३ मजदूर, दिनको काम करने-
वाला । (पु०) शास्त्रोपजीवी । (श्लो०) शास्त्रोप-
जीविनी ।

शास्त्रोपनिषद् (सं० श्लो०) परमात्मा-विषयक उप-
निषद्का उपाधि, एक किताब । इसमें परमात्माका
वचन विगद रीतिसे किया गया है ।

शास्त्रोपम (सं० त्रि०) शास्त्रा देह उपमा यन्त्र,
वधुश्री० । चपने महय, चपनी मानिन्द, जो चपनेसे
मिलता जुड़ता हो । यह शब्द पुत्रादिका विशेषण है ।
(श्लो०) शास्त्रोपमा ।

शास्त्रोपम्य (सं० श्लो०) शास्त्रज्ञ पीपम्यम्, शास्त्र-
उपमा-प्यञ्, ६-तत् । १ चपना साहय, चपनी
मिमाल । (त्रि०) शास्त्रः सस्य चोपम्यं यत्र यस्य
या । २ शास्त्रसहय, चपने-जैसा । (श्लो०) शास्त्रो-
पम्या ।

शास्त्र (सं० त्रि०) शास्त्र सम्बन्धीय, जाती, चपने
चापसे तादृक् रक्षनेवाला । समासात्मने यह शब्द
विनी द्रव्यको प्रकृतिका बोधक है ।

शास्त्रान्तिक (सं० त्रि०) शस्त्रन्तं भयति, शस्त्रन्त
भावार्थे ठञ् । १ शस्त्रिय, बहुत प्यादा । २ शस्त्रि-
रिक्त, काफीसे प्यादा । ३ प्रधान, बड़ा ।

शास्त्रान्तिक-दुःख-निवृत्ति (सं० श्लो०) शास्त्रान्तिकी
दुःखनिवृत्तिः, कर्मधा०, पूर्वपदस्य पुंयद्वापः । चप-
नसंशुक्ति, सुदामो तकलीबसे हुटकारा ।

शास्त्रान्तिक-प्रलय (सं० पु०) कर्मधा० । प्रलय-
विशेष, सही कथामत । शिदपरिगटमें चार प्रकारका
प्रलय निष्ठा है,—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और
शास्त्रान्तिक । इसमें मोक्षको शास्त्रान्तिक प्रलय
कहते हैं ।

शास्त्राधिष्ठ (सं० त्रि०) शस्त्रः शायः प्रयोजनसम्बन्ध,
ठञ् । १ शयकर, घातुक, मुक्ति, उजाड़ । २ चपरि-
शायं, ताकीदी ।

शास्त्रक (सं० पु०) वज्र, रागाः ।

धात्यूह (सं० प्र०) दात्यूह पत्नी, सुग्रीवो ।
 धात्रेय (सं० पु०) धात्रेयत्वम्, ठक् । १ धात्रिके
 मन्तान्, धात्रिके भङ्गके । दशा, दुर्वा मा धौर चन्द्र धात्रिके
 पुत्र रक्षे । २ मदर्पणे भयभ्य रक्षनेवाने पुरोहित ।
 ३ शरीरस्य रमभासु, जिष्णका पके । ४ गिष । (ति०)
 ५ धात्रिमे छत्रपय होनेवाला, जो धात्रिमे वेदा दृषा हो ।
 धात्रेय—१ प्राचीन दर्शनम्, एक पुराने सुनि ।
 मन्त्रपय धौर मोमाभास्यमे इनका नाम धाया
 है । २ वेदाकरण विगेष, कोई पुराने कृपायददान् ।
 भाषयोपधातुसिद्धिमें कई स्थानपर इनके धात्र्य छत्रुत
 किये गये हैं । ३ धात्रि-प्रत्ययि-वचसमर्थक विगेष,
 एक पुराने धर्मशास्त्रकार । दानवच्छर्म छेमाद्रिने
 इनके धात्र्य छत्रुत दिचे हैं । ४ एक वैद्यक धात्र्य-
 कर्ता । इन्होंने छत्रुपयःकल्पमेद, नाड़ीप्रान, धारीत्-
 गंधिता भेद, धात्रेयधारीतोषाराहे धौर धात्रेयमंजिता
 नामक धात्र्य रनाये हैं ।
 धात्रेयभट्ट—मनांदयटोका-रथपिता ।
 धात्रेयिका (सं० स्त्री०) धात्रुमती, जो धौरत
 हैलमें हो ।
 धात्रेयी (सं० स्त्री०) १ धात्रुमती, हैजु रक्षनेवाली
 धौरत । २ नदविगेष । यह ब्रह्मासके उत्तर राजमाही
 जिसेमें बहती है । ३ धात्रिर्गमको स्त्री ।
 धायमा (हिं० स्त्री०) होना, रहना ।
 धायर्षय (सं० पु०) धायर्षया सुनिता हटो वेदः,
 धय् ; धायर्षयमधीते वेत्ति धा, पुनः धय् । १ धयर्ष-
 येदप्र ब्राह्मण । २ पुरोहित । 'धायर्षयः पुरोहितः धायर्ष-
 यः' (ई०) धयर्षयिकध्यायं धर्मः धायर्षयो वा,
 धय् इक सोपय । धायर्षयः सोपय । वा ३।१।११ ।
 ३ धयर्षयेदी धर्म । धनन्तर हैको । ४ धयर्षा ब्राह्मणके
 मन्तान् । ५ धयर्षयेद । (स्त्री०) धयर्षानां समूहः, धय् ।
 ६ धयर्षयेदका समूह । ७ निश्चयमाना, तन्मूर्तिके
 मकान् । यहाँ यन्दिदानके बाद पुरोहित यज्ञमानको
 यज्ञके पूर्ण होनेका शुभ संवाद लाकर सुनाता है ।
 धायर्षिक (सं० पु०) धयर्षायं वेदं वेत्ति धाधीते
 वा, दृष्ट्यादि-निषा- ठक् । धयर्षयेद धमभने या
 पढ़नेवाला ब्राह्मण ।

धायर्षिक-रुद्रोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्-विगेष ।
 धाद (सं० लि०) पक्षय करनेवाला, जो पा रहा
 हो । यह शब्द किसी-किसी समासात्ममें धाता है ।
 (स्त्री०) धादा ।
 धादंग (सं० पु०) धादंग्य भावे घञ् । १ दंगन,
 बुरका, काटजूट । धादंग्यतिस्र, धाधारि घञ् । २ दंगन-
 स्थान, बुरकेको जगह, जिस जगहवे कोरं काट
 पाये । धादंग्यतिस्रने, करणे घञ् । ३ दगा, हट,
 जिस चीजमें काटा जाये ।
 धादप्र (सं० लि०) सुप्य पर्यंत पशुं चनेवाला, जो
 सुंनतक पा जाता हो । यह शब्द जलादिका
 विगेष है ।
 धादत (सं० स्त्री०) १ मित्राज, श्वसिष्यत, प्रकृति,
 रभाष । २ मछारत, पभ्याम, चाल, टेव ।
 धादत्त (सं० लि०) १ गृहीत, पकड़ा हुआ ।
 २ स्वीकृत, हाथमें लिया या ग्रह किया हुआ ।
 धाददान (सं० लि०) ग्रहण, स्वीकार वा धारण
 करनेवाला, जो देता, मानता या ग्रह करता हो ।
 धाददि (सं० लि०) धा-दा-कि दिर्भावः । धादन्मन्-
 वनः (बिकीने निरुच । वा ३।१।१० । १ लाभवान्, हासिल
 करने या पानेवाला । २ ग्रहण करनेवाला, जो उठा
 ले जाता हो ।
 धादम (सं० पु०) यहदियों धौर सुषलमानोंके
 धर्मानुसार धादि मानव । पुस्तकॉमें देखा धौर सोगंधि
 सुना, कि परमेश्वरने अपने पशुपय प्रथम धादमको
 बनाया था । यद्यो धयिषीके धादि पुरुष रक्षे ।
 यज्ञदियोंके 'तालमूट' धय्यमें इनका कितना ही
 पमोक्तिक विवरण लिखा है । वह कहते हैं,—
 'प्रथम धादमकी विराट्मूर्ति रक्षे, खड़े होनेपर
 इनकी गिषा धाकागये जा सगती । सूर्यमण्डलकी
 धयेला इनका सुप्य पधिक ज्योतिर्मय देप पड़ता
 था । उस समय देवता लाकर समभूम इनके पास
 खड़े हुये धौर समस्त प्राणी इनकी पूजा करने लगे ।
 समके बाद ईश्वरने अपने महिमा देखानेको उन्हें
 सुषा दिया । नौद सेनेपर देवताधोनि धादमके
 शरीरका एक-एक पसि निकासी, जिससे इनका

पाकार एवं ही गया। किन्तु उसमें पादम चंद्रहीन न हुये थे। पादमकी प्रथम पत्नीका नाम लिजिष रहा। यही देव्योही माता मांगी जाती है। लिजिषके पादमको छोड़ जानेपर परमेश्वरने स्वकी शक्ति की थी। स्वका दूसरा नाम होश रहा। होशके माय पादमका विशाह हुआ। परिषयके उत्सवमें चन्द्रमयं मध्य नाचने, कोई कोई देवता वाद्य बजाने और कोई नागाविध वाद्यसामग्री पट्टु खाने लगे थे। वीहि पादम और होशकी सुखसम्पत्ति मामूलक दैत्य देव न सका। उसमें विशावय उन्हें पापपयमें घुमा दिया।

फुरानुका मत दूसरी तरह है। समस्त देवता जाकर पादमको पुजने लगे, किन्तु स्वामीच भ्रमग बैठे रहे थे। इसी अपराधपर वह सुघोषानमें निकाले गये। स्वामीने उसका प्रतिगोध लेनेके लिये पादम और होशको कुपयमें डाल दिया था। उसके बाद दोनोंमें विच्छेद पड़ा। पादम पशुतल हृदयसे मछके मन्दिर पास किसी तम्बुमें रहने लगे थे। उसी जगह लियरीसने उन्हें दूसरका प्रत्यादेश सुना दिया। दो घंटे मकर विच्छेदके बाद पादमकी चाराफट पर्वतपर पुनर्वा होशका साक्षात् भिना।

जिनिममके मतमें जगत् शक्तिके पठ दिग्ग परमेश्वरने कर्टमें पादमकी बनाया था। उसके बाद होशने जन्म लिया। यह दम्पती सुघोषानमें रहते थे। इसमें न तो जरा-शुद्ध और न प्रथम मत्सा, भय, शोक, तप आदिका कोई ज्ञान ही रहा। परमेश्वरने इसमें उद्यानके मत्स फलादि खानेकी कहा, किंतु एक हृदके फल हूनेकी रोका था। वीहि प्रेतान्ने चनेक मनोभन देखा उन्हें उगी हृदका फल तिला दिया। पृष्टधर्मके मतमें उगी अपराधपर पादमके माय मनुष्य जातिका पतन हुआ है।

२ विष्णुके प्रसिद्ध किये हुये एक चयतार। प्रायः सन् १४६ ई०के बाद कश्मीर, सिन्धु और पश्चात्तमें प्यात्रादीके प्रधान बर्तने पर सदृशहीने पादमकी विष्णुका चयतार समाहर कर दिया था। ३ गुजरातके एक प्रधान मुजा। इसके शेटेका इशाहोम और नागीका नाम चले रहा। चमीने गुजरातमें सन्

१६२४ ई०की चयने नाम पर शोहराका एक सम्प्रदाय बनाया था। ५ गुजराती मोहाना बंयके राजपुत्र सुन्दरकी। सुमलमानधर्म पक्ष्य करनेपर इनका नाम पादम पड़ा था। वीहि मोहाना बंय भी मोमिल कहलाया। इन्हें आदर-दृष्टिमें मरीया और नये सम्प्रदायका प्रधान पद दिया गया था।

पादमगिरि—मिंहलके एक पहाड़का नाम। इसी सोमगिरि वा सोममैल भी कहते हैं। यह मिंहलके दक्षिण मायः ७४२० फीट ऊंचा है। इसी पर्वतपर मनुष्यके पैरका चिह्न मिलता है। सुमलमानोंके मतमें सुघोषानमें निकाले जानेपर पादमने यहीं हजार वर्षतक पड़े रह पशुताप किया था। इसीसे पश्चात्त चनका पदचिह्न चमक रहा है। योह इस चिह्नकी खोपाद बताते हैं। उनके मतमें बुद्ध मिंहलमें जाते समय इस गोलचूड़ पर चपना पदचिह्न छोड़ गये थे। हिन्दू इस महादेवका पदचिह्न मानते हैं। इन पुलास्यानपर काठका पाच्छादन बना है। हिन्दू, योह और सुमलमान् यादो पदचिह्नका दर्शन करने जाते हैं।

पादमचम (५० पु०) मनुष्यके समान जैव रत्न-वाना चम, जिम घोड़ेके पादमीकी तरह पांच रहे। पादमचम पड़ा कहर होता है।

पादमजाद (५० पु०) १ पादमकी घोसाद, पादमी, मनुष्य।

पादम-को-तन्दो—दम्बई प्रान्तके सिन्धु-ईदराबाद जिनकी छाया तहसीलका नगर। यह पचा० २५० १६० उ० और द्राधि० ६८ ४१ १५ पूर्वपर अवस्थित है। यहां शिमग, रुई, चनाज, तैल, चीनी और चीका व्यापार होता है।

पादम लोहन—भारतके एक भूतपूर्व गवरनर जनरल या बड़े नाट। सन् १८२३ ई०की कुछ मधीमें इन्होंने भारतके बड़े नाट लार्ड चामबर्टकी जगह काम किया था।

पादमपुर—पश्चात्त प्रान्तके जलन्धर जिनकी करतारपुर तहसीलका एक बड़ा ग्राम। इसमें तीर्थ दर्शनकी स्थितिपलिटो बैठती है।

पादम विलियम पात्रिक—मन्द्राजके एक भूतपूर्व गवर-
नर। यह मनु १८०५ में १८८० ई० तक मन्द्राजके
गवरनर रहे।

पादम सर फेडेरिक—मन्द्राज प्रांतके एक भूतपूर्व
गवरनर। इनका समय १८२०-३२ रहा।

पादम-सेतु—बातुका तथा गिनाका एक धरत्व, रेत
घोर घटानकी एक पहाड़ी। यह पचा० ८' ५' से
८' १२' १" उ० घोर द्राघि० ७८' २२' ४०" से
८०' पू० तक अवस्थित है। इसकी लम्बाई १० मील
है। यह उत्तर-पश्चिमसे दक्षिण-पूर्वकी विस्तृत है।
भारतीय तटमें कुछ दूर रामेश्वरम् द्वीप इसके निक-
सनेकी जगह है। यह सिंहमके पास मनार द्वीप
तक चला गया है। इसीमें मनार नज़ादीकी उत्तर
सीमा प्रायः शब्द है। समुद्रमें जहर चढ़ते समय
इसपर कहीं-कहीं तीन-चार फीट पानी चढ़ जाता
है। रामायणमें लिखा है, कि लह्वार चढ़ते समय
रामने इसी सेतुकी चपनी फौज उत्तरनेके भिये प्रधान
मार्ग बनाया था।

पादमियत (च० स्त्री०) १ इत्तानियत, मनुष्यत्व,
पादमी होनेकी क्षमता। २ शायफ्तगी, मध्यता।

पादमी (च० पु०) १ इत्तान्, मनुष्य। २ ध्व्य,
नौकर। ३ श्यामी, प्याविन्द।

पादर (सं० पु०) पा-इ-अप् गुणः। १ मर्पाटा,
इल्लत। २ पनुराग, प्यार। ३ मय्याग, प्यातिर।
४ पारभ, पागाज्। ५ पामरि, जगाव। ६ यत्र,
तदधीर।

पादरथ (सं० स्त्री०) सत्कार, तयल्लो, प्यास।

पादरथीय (सं० त्रि०) पा-इ-अनीयर्। मय्यागनीय,
इल्लत किये जाने काविध। २ ध्यान देने योग्य, प्यास
करने काबिल। (स्त्री०) पादरथीया।

पादरना (हिं० स्त्री०) पादर देना, इल्लत करना,
मानना।

पादरभाव (सं० पु०) पादर-सत्कार, प्यातिर-तयल्लो,
मानपान।

पादरम (हिं०) चारमें ईको।

पादरतथ (सं० त्रि०) पा-इ-तथ। पादरथीय ईको।

पादरेंरि (वे० त्रि०) कुचल डालने वा टुकड़े छोड़ा
देनेवाला।

पादर्य, चारकीय ईको।

पादर्य (सं० पु०) पाहयतेइत्र, पा-इय पाधारे
घञ्। १ दर्पण, पाथीना। २ प्रतिलिपि, किसी
किताबकी कापी। ३ पादि इत्तलियि, पसली
लिपावट। इमे देखकर मकूल उतारते हैं। ४ नमूना।
५ स्यानका चित्र, जगहका नक्शा। ६ टीका।
'पादर्यं सर्वे टोका प्रतिउत्तयोरति।' (भक्ति)

पादर्यक (सं० त्रि०) भवादी बुद्ध। १ प्रदेयके
सीमावृत्तक स्यानमें उत्पन्न, जो सुखी छद बतानेकी
जगहसे निकला हो। (पु०) २ दर्पण, पाथीना।

पादर्यम (सं० स्त्री०) १ दिवाय, नजारा। २ दर्पण,
पाथीना।

पादर्यमच्छल (सं० पु०) पादर्य इव मण्डलत्वं।
धर्म विगेष, एक धांप। इसके शरीरपर दर्पण-जैसे
चिह्न होते हैं। (स्त्री०) पादर्या मण्डलसिख।
२ गोलाकार दर्पण, गोल पाथीना।

पादर्यमन्दिर (सं० पु०) शीघ्र महल, पाथीनाघर।

पादर्यित (सं० त्रि०) देण्डाया या काश्चिर किया
हुआ।

पादर्यन (सं० स्त्री०) पा-दइ भावे लुट्। १ दाइ,
जलन। २ हिंसा, मारकाट। ३ कुत्सन, निन्दा,
दिकारत। पादर्यतेइत्र, पाधारे लुट्। ४ श्रमयान,
सुर्दा फूंकनेकी जगह। ५ जलानेका स्यान, जला
डालनेकी जगह।

पादा (हिं० पु०) चरक ईको।

पादातय्य (सं० त्रि०) लिया जानेवाला, सेने
काबिल।

पादाता चरक ईको।

पादाष्ट (सं० पु०) पा-दा-छच्। पहीता, सेने-
वाला।

पादादिक (सं० त्रि०) पदादिगणे पठितम्, ठक्।
पदादिगणे पठित। यह शब्द धातुका विशेषण है।

पादान (सं० स्त्री०) पा-दा भावे लुट्। १ पक्ष,
पकड़। २ चरकका चलहार विगेष, घोड़ेका एक चरक।

कोयो वान्प्रोक्तिको पदेषा व्यामको प्राचीन कवि
बताता है ।

पादिकारण (सं० स्त्री०) पादिभूतं कारणम्, शाक०
तत् । १ परमेश्वर, सकल कारणका मूलकारण,
सबब-उत्प-सबब । महर्षि कपिलने पन्थित्यका प्रमाय
न पानेमे ईश्वरको नहीं माना है । उन्होंने विना
ईश्वर जगत्को सृष्टिका प्रकार उदरानेको कहा है,
पहले कुछ उपादान न रहनेमे कोयो वस्तु कैसे उत्पन्न
हो सकता है । प्रत्येक द्रव्य बनानेमे उपादान आवश्यक
है । पहले दुग्ध रहनेमे ही पीछे दधि बन सकता
है । दुग्ध न होनेमे दधि कैसे मिलेगा । इसीमे उन्होंने
प्रकृति और पुद्गल नामक दो नित्य पदार्थ माने हैं ।
प्रकृति जड़ पदार्थ है । इसीके विकारमे जगत् उत्पन्न
हुया है । यह प्रकृति ही उनके मतमे पादिकारण
है । पादिकारण नित्य होता और अपनी उत्पत्तिके
निये अन्य कारणकी आवश्यकता नहीं रहता ।
कपिलने पादिकारणको बारबार 'अमूलमूल' कहा
है । सांग्यवादियोंके मतमे इसका दूसरा नाम प्रधान
भी है । न्यायिक प्रवृत्ति पादि कारण शब्दमे निमित्त
निकलनेपर ईश्वर और समवायिकारणार्थ पानेपर
परमात्मा समझते हैं । २ निदान, बीमारोंकी पहचान ।
३ व्यवच्छेद, धीजगणित, लघु-सुखावना, जघ-
सुखावलेमे सवाम निकालनेका तरीका ।

पादिकाल (सं० पु०) प्राचीन समय, जामिद जमाना ।
पादिकाव्य (सं० स्त्री०) पादिभूतं काव्यम्, शाक०
तत् । बार चरणयुक्त शब्दोबद्ध वाक्य, वाल्मीकिरचित
रामायण ।

पादिकण्ठ, पादिकर्ष शब्दो ।
पादिकेशव (सं० पु०) पादिभूतः केशवः शाक० तत् ।
१ काशीस्य केशवमूर्तिविगेष । २ विष्णु भगवान् ।
पादिगदाधर (सं० पु०) १ काशीस्य विष्णुमूर्ति-
विगेष । २ गया तीर्थस्य विष्णुमूर्ति विगेष ।
पादिगृध (सं० द्वि०) निम्न, पाठ, पानूदा, पुपड़ा
या भरा हुआ ।
पादिजिन (सं० पु०) पादिभूतः जिनः, शाक०
तत् । अष्टमभेद, जैनोंके पादि देव । अष्टमशब्दो

पादित (द्वि०) पादित शब्दो ।
पादितम् (सं० अथ०) पादिने, पारभने, ग्रहने,
पहले ।
पादिता (सं० स्त्री०) पूर्वता, प्रथमता, कृदामत,
तकदीम ।
पादिताल (सं० पु०) कर्मधा० । ताल विगेष, एक
ठेका । इसमे एक सप्त ताल गगता है ।

“एक एव मष्टयं पादितालः स चक्षते ।
द्वन्द्वत्वं पुरतो वाच्यः कश्चित्त्रिदशं वत् ।” (सङ्गीतशा०)

पादित्य (सं० पु०) पादित्या अपत्यम्, टक् ।
१ पादितिके सन्तान, पादितिके मङ्गके । २ देवता ।
३ धर्म ।
पादित्य (सं० पु०) पादित्या अपत्यम् अथ ।
निबन्धिकादि इत्यादि । वा ३. १. ५२ । १ पादितिके सन्तान,
पादितिके मङ्गके । २ मङ्गल देवता । ३ धर्म ।
बार, पूर्वां वाने दोषने वा (अष्टादिकान्) वत् । अकारिकारको-
विचार, शक्यत्वं शेषनेः अकारण तत्रापर निगमने । (निबन्ध)
४ धर्म अधिष्ठित गगन, जिम आसमान्मे सूरज रहें ।
५ सूर्यका त्रिभोग्युत्तल । ६ पादित्यमण्डलान्तरगत
चिरस्थवर्ग परमपुद्गल विष्णु । ७ उपासक शौरीके
पतिशाहनको दक्षिण और उत्तर पयमे ईश्वर नियुक्त
धृमादि एवं अर्धराटि अविमानो देवगण । ८ अर्क-
उत्त, मदारका पेड़ । ९ गेताकं सुप, सकेद अकोड़ेका
पेड़ । (त्रि०) पादित्यस्यापत्यम्, पादित्य-ण यो-
नोपः । १० सूर्यके पुत्र । ११ इन्द्र । १२ वामन ।
१३ वसु । १४ विश्वेदेवा । १५ बारहमासाका छन्द ।
(त्रि०) १६ पादिति-सम्बन्धीय । अष्टदेकी (२२०११)
अष्टधामे पादित्यगणकी संख्या छः लिखी है—मित्र,
अयमा, भग, वहण, दक्ष और अंश । फिर (२१११११)
अष्टकमे इनकी संख्या सात है । किन्तु इस स्थलमे
उनका नाम नहीं लिखा । (१०७२०८८) अष्टकमे
पादितिके पाठ सन्तान कहे हैं । इनमे मात पुत्र
उन्होंने देवताओंके दे दिये, केवल मातेश्वर रह गये थे ।
अथर्ववेदमे (८८२११) पाठ पादित्यका उल्लेख है ।
किन्तु वहुधा द्वादश पादित्यका ही नाम-देख पड़ता
है—विद्यमान्, अयमा, पूषा, अर्वा, संवित, भग,

धाता, विधाता, बहव, मित, मज्ज एवं उपज्जम।
 स्वयेदके (१।२।८१) भाष्यमें सायणाचार्यमें तैत्तिरीय
 ऋषिशास्त्री एक शब्द उद्धृत की है। उसमें मित,
 बहव, धाता, अयंमा, अयं, मज्ज, इन्द्र और विष्वान्
 इन पाठ आदित्यका ही नाम मिलता है।

तैत्तिरीय ऋषिशास्त्रमें (३।१।६।१) आदित्यका जन्म-
 विवरण इस प्रकार लिखा है—अदितिने पुत्रकी
 कामनामें देवताओंके निमित्त ब्रह्मोदन पाक किया
 था। उन्होंने अदितिको उच्छिष्ट दे दिया। यह इस
 प्रवादको पानेमें गर्भवती हुई थीं। उसमें चार
 आदित्यने जन्म लिया। अदितिने द्वितीय बार भी
 पाक बनाया। किन्तु इस समय उन्होंने मोषा,
 कि उच्छिष्ट पानेमें जब रसै मन्त्रान् उत्पन्न
 हुए, तब चक्रका पचभाग लेनेमें और भी तेजस्वी
 मन्त्रान् उत्पन्न हो सकते। ऐसा विचार यह चक्रका
 पचभाग त्याकर गर्भवती हुईं। पीछे उन्होंने एक पचक
 पण्ड प्रसव किया था। फिर अदितिने आदित्योंके लिये
 तृतीय बार यह मन्त्र पढ़कर यह चढ़ाया,—
 ('अथैव मे वदन्मन्त्रः') अर्थात् यह आत्मा (परित्रय)
 भेदे भोगके लिये हो। इसपर आदित्योंने कहा,—
 'हम पर देते हैं। जो इसमें जन्म लेगा, वह हमारा
 ही होगा और हम प्रजापति को मशूच बनेगा, यह
 हमारे ही भोगमें लगेगा।' अर्थात् आदित्य विष्वान्-
 का जन्म हुआ। तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें भी बिलकुल
 ऐसा ही एक विवरण मिलता है। उसमें लिखा, कि
 अदितिने प्रथम ब्रह्मोदन प्रसाद था कर धाता तथा
 अयंमा, द्वितीय बार मित एवं बहव, तृतीय बार अंम
 एवं मज्ज और चतुर्थ बार इन्द्र तथा विष्वान्को प्रसव
 किया। तैत्तिरीय-ऋषिशास्त्रमें यह भी देखा, कि मन्त्र-
 पतिसं हादम आदित्यका जन्म हुआ था। २४वें
 मन्त्रपत्रब्राह्मणमें हादम आदित्यको हादम नामके
 साय मिला दिया है।

आदित्यकान्ता, अदित्यकान्ता इति।

आदित्यकेतु (मं० पु०) आदित्यः केतुर्दण्ड, ब्रह्मदी०।

१ आदित्य-अधर-रघु-युद्ध इत्यादिके पुत्र। अपने
 भाई इत्यादिके माई जानकर इन्होंने मर्चोदर प्रथति

हः भ्राताओंके साथ भीममें युध किया था। पीछे
 यह भी निहत हुए। २ बहव, सूर्यके सारथि।

आदित्यकेतव (मं० पु०) १ तत्। कामोष्ण क्षेत्र
 मूर्ति विगीय।

आदित्यमं (मं० पु०) किसी बोधिसत्वका नाम।
 आदित्यनेजा, अदित्यनेजा इति।

आदित्यपत्र (मं० पु०) आदित्यस्य चक्रैर्हृत्पत्र पत्र-
 मित पत्रमस्य। १ सुपविगीय, एक वीदा। इसमें कुछ
 पर्याय यह हैं,—चक्रपत्र, चक्रदंश, सूर्यपत्र, तपनचन्द्र,
 कुष्ठारि, विटप, सुपत्र, रविमिय, रजिपति और इन्द्र।
 आदित्यपत्र कटु एवं लघु होता, कफ, वातरोग, गुल्म
 तथा शरोचक्रको हटाता और अग्निवृद्धि करता है।
 (अथर्ववेद, १)

२ आदित्यभक्ता भेद। (श्री०) ६-तत्। १ चक्र-
 हृत्पत्रका पत्र, मदारका पत्र। (श्री०) आदित्यपत्र।

आदित्यपत्रक, अदित्यनेजा इति।

आदित्यपत्रिका, अदित्यनेजा इति।

आदित्यपत्रिणी (मं० श्री०) आदित्यस्य चक्रं पत्रि-
 मस्त्वस्या इति। १ आदित्यभक्ता, सुरजसुरी।

२ अथर्वविगीय, एक वृत्ति। इसका मूलदेव सूर्य
 रत्नचक्र होता, गुणधना कृष्ण धाता और क्षीमस-
 कोमल पांच पत्रा लगता है।

आदित्यपत्री, अदित्यनेजा इति।

आदित्यपाकतेज (मं० श्री०) तेजसिद, किमो विश्वका
 तेज। मच्छिन्ना, लाक्षा, तिफला, हरिद्रा, मज्जःमिता,
 हरताल एवं मन्त्रकण्ठके सम भाग लेकर सबके बराबर
 तेजमें पकाना चाहिये। किन्तु विना जलके पाक बन
 नहीं सकता, इसलिए तेजके सृष्ट्य जल भी डालना
 पड़ता है। इसे धूममें तपान करना अच्छा है। सब
 तक पाने न सके, तबतक धूम देनाता जाये।
 आदित्यपाकतेज कुष्ठरोगको दूर करता है।

(अथर्ववेद, १)

आदित्यपुराण (मं० श्री०) आदित्योक्तं पुराणम्,
 माह० तत्। उपपुराण विगीय। भोरपुराण, भास्कर-
 पुराण, सूर्यपुराण इत्यादि मन्त्रों में आदित्यपुराणका
 ही बोध होता है।

षादित्यपुष्या (सं० श्लो०) १ घातकीपुष्पसुप, भायके
कृतका पेड़। २ खीरकाकोसी।

षादित्यपुष्यिका (सं० श्लो०) षादित्यवर्षे रत्नं
पुष्पमस्याः। १ चक्रेष्ठप, मदारका पेड़। २ खीरिताक-
सुप, सात मदार।

षादित्यपुष्यो, षादित्यपुष्या श्लो०।

षादित्यभक्ता (सं० श्लो०) षादित्ये विषये भक्ता,
०-तत्। बुरबुर, कमफटिया। यह ज्ञेय एवं पीत
मिदमे दो प्रकार है। यह हृष्य ग्रीतल, कटु एवं
तिक्त रक्ता शौर कफ, त्वग्दोष, कफ, प्रघ,
कुष्ठ, भृशघ्न तथा ग्रीहण्यरको दूर कर देता है।
(तर्कनियन्त्र) इसमें स्यापु पाकरमल, गुहल, चाररमल,
पवित्रवर्षकत्व, विटशित्त, वातहरत्व शौर कर्षणूल
मिटानेका गुण पाते हैं। (चरकचिन्तामणि)

यह हृष्य ग्रीतल, कफ, स्यादुपाक, मर, गुह, कटु,
पवित्रल, चार, विटश और कफ-वात-घ्न होता
है। फिर दूसरा तिक्त, कषाय, उष्ण, मर, कष, लघु
एवं कटु सगता शौर कफ, पित्त, रक्त, माघ, काम,
पक्षाघ, श्वर, पिस्साटक, कुष्ठ, मीह, पशुगोनिरोग,
हृमि शौर पाण्डुकी दूर करता है। (भावप्रकाश)

षादित्यमण्डल (सं० श्लो०) सूर्यका हृष्य, चाफतावका
शुरा।

षादित्यवन् (सं० श्लो०) षादित्यसे चाहत, चाफतावसे
धिरा हुआ। (पु०) षादित्यवान्। (श्लो०) षादित्य-
यत्नी।

षादित्यवनि (सं० श्लो०) षादित्यकी कृपा प्राप्त करने-
वाला, जो षादित्यको अपने ताम्रिमें ला रहा हो।

षादित्यवर्षे (सं० श्लो०) सूर्यके वर्षे-विगिष्ट, चाफ-
ताव-अंश, जिसके शूरजकी तरह रङ्ग रहें।

षादित्यवर्षा—भारतीय टासियात्यके एक प्राचीन
नृपति। यह पुनकेगो राजाके पुत्र रहें। कृष्णा शौर
रुद्रभद्राके समीपस्थ मालापर इनका अधिकार था।
अपने मामलके पहले यह इनके जो ताम्रफलक प्रदान
किया, वह फरहूल फिन्नेमि मिला है।

२ सुमाखाके एक नृपति। सुमाखामें षादित्यकृत
मिथ्यानिधिमें मान्य करने, कि वहाँ मन् ईके ७म

मताप्यात् षादित्यवर्षा नामक प्रथम पराक्रान्त
नृपति हुए थे। इनकी वार्तिकका बहुत धंसावर्ष
प्राय भी सुमाखादीयके नामा खानमें पडा है।
१ ब्रह्मदेगके एक राजा। पक्ष दिन हुये ब्रह्मदेगसे
जा राजकीय पुरातत्वविवरण कथें, इनके पशुसार
सन् ईके नवें मताप्य षादित्यवर्षा नामक शौरनृपति
प्रथमप्रतापमें वहाँ राजत्व चलाते थे।

षादित्यवहभा, षादित्यवहभा श्लो०।

षादित्यवहिका, षादित्यवहिका श्लो०।

षादित्यवहो, षादित्यवहो श्लो०।

षादित्यवार (सं० पु०) रविवार, सूर्यका दिन,
पतवार।

षादित्यव्रत (सं० श्लो०) षादित्यव्य तदुपासनायें
प्रतम्, ६-तत्। १ सूर्यकी उपासनाके निमित्त व्रत-
विशेष। इसमें नमक नहीं खाते। (त्रि०) षादित्य-
प्रतम् ब्रह्मचर्यमस्य, ठञ्। २ षादित्यव्रतिक, षादित्य-
व्रतके निमित्त ब्रह्मचर्य-युक्त, रविवारका व्रत करने-
वाला।

षादित्यगति—बम्बई प्रान्तस्य कनाही जिलेके एक
नृपति। श्यासियर-राष्ट्रस्य नौसारी जिलेके बगुमरेसे
जो दानपत्र दिया गया, उसमें निम्नलिखित वृत्तान्त
मिला है,—इनके पिताका नाम भागुगति शौर पुत्रका
नाम इयिपीयत्तम निकुञ्जलगति रहा। इनका समय
सन् ६५५ ई० बताते हैं।

षादित्यशूर—राष्ट्रदेगके कोई शूरवंशोय प्रसिद्ध नर-
पति। इनका दूसरा नाम धरणाशूर रहा। सिंहशूर
नामक खानमें षादित्यशूरकी राजधानी थी। प्रायः
सन् ७०१ से ८०५ ई० तक इन्होंने राजत्व किया।
इनके समय भी अनेक ब्राह्मण शौर कायस्य उत्तर
राजमें प्रतिष्ठित हुए थे।

षादित्यसद्व्य (सं० श्लो०) सूर्यके समान, चाफताव
जैसा। (श्लो०) षादित्यसद्व्यो।

षादित्यसुत (सं० पु०) ६-तत्। १ सूर्यपुत्र सुधीय।
२ कर्ण। ३ यम। ४ शनि। ५ भावर्षि मनु।
६ शैवस्यत मनु।

षादित्यसेन—मगधके गुप्तवंशीय एक सम्राट्। यह मन्वाट्

इसपर्वणके प्रियसखा माघयगुप्तके पुत्र रहे। सम्राट्
इसकी मृत्युके बाद उत्तराधिकारियों और मन्त्रियोंमें
जब साम्राज्यके अधिकार पर झगड़ा चला, तब
आदित्यसेनेने धीरे-धीरे बल बढ़ा और परम महारक
महाराजाधिराज सपाधि से समस्त प्राण्य भारतका
अधिकार पाया था। नृबर्षेन्द्रमें विदूत विवरण देखो।
आदित्याचार्य (सं० पु०) प्रत्यकार विशेष, एक
सुसन्धि।

आदित्य (सं० स्त्री०) आदित्य देखो।

आदित्या (सं० स्त्री०) ग्रहण करनेकी इच्छा, ले-
लेनेकी खाहिश।

आदित्य (सं० त्रि०) आदातु-मिच्छुः, आ-दा-सन्-
त्। ग्रहणके निमित्त इच्छुक, लेनेका खाहिशमन्त।

आदिदेव (सं० पु०) आदिभूतो देवः, शाक० तत्।
१ नारायण। २ गिष। ३ सूर्य। 'आदिदेवी मरुतिनि-
मित्तवित्तदोषः।' (पु०) आदौ दीयति, आदि-दिय-प्रच्,
०-तत्। ४ आदिकारण। परमेश्वर।

आदिदेव्य (सं० पु०) आदिभूतो देव्यः, शाक० तत्।
हिरण्यकगिपु नामक देव्य। दितिके प्रथम गर्भसे
जन्म लेने कारण हिरण्यकगिपुको आदिदेव्य
कहते हैं। भागवत आदिस्तम्भके १५वें अध्यायमें
इसका विवरण सिखा है।

आदिन् (सं० त्रि०) पत्ति, पद-पिनि। भक्षक,
खानेवाला। यह शब्द समासान्तमें व्यवहृत होता
है। जैसे—पदादिन्, पनाज खानेवाला। (पु०) आदौ।
(स्त्री०) आदिनी।

आदिनप (सं० पु०) आदीनवप्यः, प्रपो० वेदे ऋषः।
दुर्भाग्य, वाधा, कमवश्वती, बड़ेडा।

आदिनवदगं (सं० त्रि०) सायमें पासा या काबतैज
खेननेवालोंसे घालाकी करनेवाला।

आदिनाथ (सं० पु०) १ प्रत्यकार विशेष, एक
सुसन्धि। २ आदित्येश्वर। गुजरातके शत्रुघ्नय
नामक स्थानमें इनका मठ स्थापित है। कहते हैं,
(सन् ११४६-११०४ ई०) घनहिलवाड़के वल्लभीराल
कुमारण्यके प्रधान मन्त्री किछी समय मन्दिरमें
आदिनाथका पूजन करनेकी पट्टसे, उसी समय चूहे

दीपककी बत्ती घसीट लें गये। मन्दिर लकड़ीका रहा,
इसीसे भाग लगते ही भस्मीभूत हुआ। 'मकड़ीकी
इमारतको विपद्जनक देख मन्त्रीने पका मन्दिर
बनानेका विचार किया था।' अथमेश्वर देखो।

आदिपर्वन् (सं० स्त्री०) आदिभूतं पर्वं, शाक० तत्।
प्रथम अध्याय, पहला बांब। महाभारत अष्टादश
पर्वके अन्तर्गत प्रथम पर्वकी भी इसी नामसे पुकारते हैं।

आदिपुराण (सं० स्त्री०) आदिभूतं पुराणम्, शाक०
तत्। १ पुराण विशेष, अष्टादश पुराणके अन्तर्गत
प्रथम पुराण, चतुर्लक्ष्यात्मक ब्रह्मनिर्मित पुराण विशेष,
ब्रह्मपुराण। २ जिमसेनरचित प्रत्यविशेष। इसमें
दाक्षिणात्यके महाराज यमोद्यय्य और राष्ट्रकूट-
नृपति चकलह, प्रभावन्त एव पात्रकेशरीका उल्लेख
विद्यमान है। जिमसेन देखो।

आदिपुरुष (सं० पु०) आदिभूतः पुरुषः, शाक० तत्।
१ मनुष्यके आदिबीजस्वरूप हिरण्यगर्भ। २ ब्रह्मा।
३ नारायण।

आदिपुरुष, आदिपुरुष देखो।

आदिवल (सं० स्त्री०) उत्पादक शक्ति, पैदा करने-
वाली ताकत।

आदिवलमहत्त (सं० त्रि०) शक्तगोपितान्वयज,
मनी और खूनके मिलने पैदा हुआ। शक्त और
गोपितके योगसे उत्पन्न होनेवाली कुष्ठ, पर्ण प्रथति
रोग आदिवलमहत्त कहते हैं। यह दो प्रकारके होते
हैं,—माटज और पिट्तज। (चू०) ऐसे रोगोंको
आध्यात्मिक भी कहते हैं।

आदिबुद्ध (सं० त्रि०) १ पारश्वसे ही मान्य किया
हुआ, जो शुरुमें ही समझ पड़ा हो। (पु०) २ प्रथम
बुद्ध, उत्तरीय बौद्धोंके प्रधान देव।

आदिभक्ष—भक्ष्यंगके प्रथम नृपति। कहते, कि मनु-
भक्षके अन्तर्गत आदिपुरमें यह राजत्व करते थे।
मथमेश्वर देखो।

आदिभव (सं० पु०) आदौ भवतीति, आदि-भू-प्रच्।
१ हिरण्यगर्भ, परमेश्वर। २ ब्रह्मा। ३ विश्व।
(त्रि०) ४ पयज, शुरुमें पैदा हुआ।

आदिभूत, आदिभूत देखो।

पादिम (सं० वि०) पादि-हिमच् । वरादि वशाभिनम् ।
(१५१३-१५१४) प्रथमजात, पादिमें उत्पन्न, पक्ष्सा,
पगना, बुनियादी ।

पादिमत् (सं० वि०) पादिरुच्य, मत्तृप् । पादि-
कुञ्ज, पञ्चास्य, पादि मीमायुक्त, रश्मिदायी, पागान्ज
या सव्य रत्ननेवाला । (पु०) पादिमान् । (छी०)
पादिमती ।

पादिमत्त—विष्णुपुर या मङ्गभूमके मङ्गवंशीय प्रथम
शृपति । इन्होंने ममयम मङ्गाब्द रक्ता है । मङ्गम
का स्थान है ।

पादिमा (सं० छी०) भूमि, जमीन ।

पादिभूज (सं० ली०) प्रथमजात पापार या कारण,
पक्ष्मी बुनियाद या सव्य ।

पादियोगाशायां (सं० पु०) योगके प्रथम गुरु । यह
शब्द मिश्रका उपाधि है ।

पादिरण (सं० पु०) प्रधान रम, पक्ष्मा लक्ष्मा ।
शुद्धार रमका ही दूसरा नाम पादिरण है ।

पादिराज (सं० पु०) पादिभूतो राजा, शाक० टजन्त
तत् । शाकः कविभारत् । काश्यात् । १ प्रथम शृपति,
पक्ष्मे मादगाह । २ छट्टु नामक शृपति । भागवतके
चतुर्थ स्कन्धमें पादिराज प्रष्टुका विवरण निदा है ।
३ कुडके एक पुत्र । ४ मनु । कालिदासने रघु-
वंशमें विवर्णित मनुकी पादिराज कहा है ।

पादिम (फा० वि०) अदस या इत्याफ् करनेवाला,
न्यायी ।

पादिल पान्—इसमें प्रालम्ब पान्देशके नवाव ।
मन् १४५० ई०की सुधारिक पान्के मरने पर यह
खान्देशके नवाव बने थे । इन्होंने १५०२ ई० तक
राज्य किया । इनके समय खान्देशकी बड़ी श्रीशक्ति
हुई थी । पादिनपान् गुजरातकी कर देनेमें
सममत्त रहे, किन्तु कोई १४८८ ई०के समय वेसा
करनेपर बाध्य किये गये । गोपालराय कविने
इनकी प्रशंसापर कुछ पद्य लिखा था ।

पादिलगाही—दाक्षिणात्यके यहमानी राजवंशका
एक भाग । मन् १४४८ ई०की द्वितीय चमूरथके
किसी पुत्रने बीजापुरमें अपनी राजधानी प्रतिष्ठित की

थी । पोरकूजेवने १५८१-८८ ई०की बीजापुर जीत
दित्रीकी बादगाहतमें मित्रा लिया ।

पादिवंग (सं० पु०) प्रथम कुल, बुनियादी खान-
दान् ।

पादिवराह (सं० पु०) पादिभूमी वराहः, शाक०
तत् । यक्षवराह रूपमें पयतीर्थ विष्णुका एक अव-
तार । इरिवंगमें निवा, पक्ष्मे यह जगत् प्रजा-
पतिके भूर्तिधर हिरण्यमय चण्डने परिणत हुआ था ।
उत्तार वर्षके बाद नारायणने उसी चण्डकी कईसुत्र
छठाके दो भागमें विभक्त किया । उसके जल भागमें
पर्यंतकी सृष्टि हुई थी । मकल पर्यंतके भारमें
प्यथित हो तथा नारायणनामक जलरागिमें डूब जब
पृथिवी रसातलकी जाने लगी, तब नारायणने यक्ष-
वराह भूर्ति धारण कर ऊपर उठा ली । पादिवराहकी
भूर्ति दग योजन विस्तृत पौर गत योजन उचत रही ।
इनके देखके कान्ति मेघकी तरह नील वर्ष एवं
गर्भन जलद छेमी गभीर थी । श्रेतवर्ष, दीप्तिगुण पवं
छत्र छंट्टामे पर्यंत पर्यन्त विदोर्ष हो जाते रहे । चक्षु
विद्युत्-पन्नि या सूर्य-किरणकी तरह तीव्र था । मन्म
स्यूल, विस्तृत पौर गोलाकार रहा । विक्रम ध्यात्रकी
तरङ्ग चति भयङ्कर पौर कटिद्विग पीन एवं उचत था ।
शरीरमें देखनेमें विनकुल प्रपका लक्षण मिलता रहा ।
चतुर्वेद वेद, यूप दांत, क्रतु हाथ, धितो मुख, पन्नि
जिह्वा, दर्भ शोम, प्रणय मन्त्रक, दिवारात्र चक्षुड्वय,
वेदाङ्ग कर्णभूषण, पाण्य नासिका, सुव सुष्ठ, साम-
वेदध्वनि कण्ठनिलन, क्रियामय गोदानादि घोषा,
पद्य जातु, मण्ड पाङ्गति, उहाता पन्ध, शोम लिङ्ग,
महाफन पीन तथा चोपधि, वायु पन्तरात्मा, सव
स्त्रिक, सोमरस शोषित, वेदि स्तम्भ, इविः गन्ध, इन्ध-
कथ्य वेग, प्राग्गंभ शरीर, दक्षिणा हृदय, वेदोपकरण
पीठका चक्षुद्वार, होमान्नि नाभिभूषण, कन्दः गतिपथ,
गुह्य उपनिषत् प्राप्त पौर ज्ञाया पादिवराहकी
पत्नी थी ।

“पायो वा इदमने सविन्वन्तमीनु तन्निनु प्रजापतिर्षीयुर्षुत्तारणत्त व
इत्तानमयत् । सं वराहो मूला इत्तु ।” (तैत्तिरीयसंहिता ३।१।५१)

यथात् प्रथम यह जगत् जनमय रहा, सब जगद

अस ही अस देव पड़ता था। प्रजापति वायु वन
उममें घूमने लगे। उन्होंने हमें देख और बराह ही
आहरण किया था।

“राजी वैश्वानरे ब्रह्मा नष्टं स्यात्प्रजसिम् ।
सुखावाचसि यत्सुखान् मारायण इति खत्तः ।
सर्वेभ्यो ब्रह्मो वै इष्टः सा सर्वं चराचरम् ।
षट् तदा नति चर्के ब्रह्मः ब्रह्मरिदावरः ।
उद्वेगस्ततो यो नो समादाय समतमः ।
पूर्वम् स्यादायाम आराधे वपनादितः॥”

(विश्वपुराण पूर्वभाग ३।३८ १०)

लिङ्गपुराणमें लिखते,—रात्रिकी एकाणवमें स्यावर
जन्म ममदा नष्ट हो जानेसे ब्रह्मा जलपर सोते,
हमीसे मारायण कहते हैं। ब्रह्माविदोंमें अष्ट
ब्रह्माने रात्रि बीतनेपर जागरित हो और चराचरकी
शून्य या सृष्टि रचनेकी इच्छा की। फिर उन्होंने
आदि-बराहमूर्ति धारणकर जलप्लावित पृथिवीको
उठा पूर्ववत् रख दिया।

ब्रह्माष्टपुराण (६।१-११)में भी लिखा कि, पहले
सकल स्थान जलमें लय हो गया था। पीछे पृथिवी
वर्नी और फिर देवताओंके साथ स्वयम्भू ब्रह्माने भी
जन्म लिया। उन्होंने ही बराहमूर्ति धारणकर
पृथिवीको जलमें डुबनेसे बचाया।

इस प्रकार मतभेद पड़नेका कारण है। आज
भी विष्णुकी ही मारायण कहा जाता, किन्तु याम्भविक
रैसा ठीक नहीं बैठता। मनुसंहितामें मारायण
शब्दकी व्युत्पत्ति इमतरह लिखी,—‘नरनामक पर-
मात्माके देहमें उत्पन्न होनेपर जलका नाम मारा
पड़ा है। यही जन्म प्रसवकालमें परमात्माका चपन
पर्याय स्थान होता, इसीसे उन्हें मारायण कहते हैं।
सृष्टिके समय जलमें रहनेसे ब्रह्मा ही प्रकृत मारायण
टहरते हैं। (मनुसंहिता १।१-११)

आदिवाराह (सं० वि०) आदिवाराह सम्प्रभ्यो ।
आदिविद्म (सं० पु०) आदिभूतो विद्वान् निखिन-
सम्प्रदायप्रवर्तकात् । कविल । सकल सम्प्रदायके
प्रवर्तक होने और उपायना द्वारा जगत्कर्ताकी सिद्ध
करनेसे कविने आदिविद्वान् कहे जाते हैं।
आदिविपुना (सं० स्त्री०) कन्दो विग्रेय । यह एक

प्रकारकी चार्या होती और पहले दसके प्रथम तीन
गणमें अपूर्ण पाद रखती है।

आदिविपुलाजघनचपला (सं० स्त्री०) कन्दो विग्रेय ।
यह एक प्रकारकी चार्या होती और प्रथम पादके
तीन गणमें अपूर्ण पाद एवं द्वितीय दलमें दूसरा तथा
चौथा गण लक्षण रखती है।

आदिहृष (सं० पु०) चमत्कत हृष, एक पेड़ ।
आदिग् (सं० स्त्री०) १ अभिमाय, इरादा । २ प्रयुक्ति,
तदवीर । ३ वर्णना, कैफियत । ४ प्रदेश, जगह ।
५ यत्न विग्रेय ।

आदिगति (सं० स्त्री०) आदिभूता गतिः । १ परमे-
श्वरकी मायारूप गति । २ देवीमूर्ति विग्रेय ।
बापा श्लो ।

आदिशरीर (सं० स्त्री०) आदि आदिभूतं शरीरम्,
शाक० तत् । १ भोगके निमित्त परमेश्वर-सृष्ट आद्य
लिङ्गाख्य शरीर । आदिकारणात् परं जातं सूक्ष्मं
शरीरम् । २ अविद्याख्य सूक्ष्म शरीर । वेदान्तके
मतमें कारण, सूक्ष्म एवं स्थूल भेदमें शरीर तान
प्रकारका होता है।

आदिशूर—गोड़ एवं बद्धमें ब्राह्मण धर्मके प्रतिष्ठाता
पराक्रान्त नृपति । बंगला कुलपञ्चिका नामक विभिन्न
जातीय समाजके इतिहासमें आभास मिलता, कि
बौद्धधर्मका प्रभाव छोड़ा वैदिक धर्म चलानेके लिये
जिस यज्ञने सर्वप्रथम उपयुक्त आयोजन लगाया, उसी
यज्ञके प्रथम व्यक्तिका आदिशूर नाम प्रसिद्ध था।
६५४ शकाब्दकी इन्होंने ही साग्निक ब्राह्मण बुना
प्रथम चपने देगमें बसाये। तत्पर तद्दशमीय आदित्य-
शूर भी किमी किमी उत्तरराष्ट्रीय-कुलपञ्चोमें आदिशूर
नामसे प्रसिद्ध हुए थे। पीछे गोड़ाधिप बल्लालसेनके
पिता विजयसेन चपने गोड़ाधिकारमें वैदिक-धर्मकी
प्रतिष्ठाकर आदिशूर कहाये। और और सेनके श्लो ।

आदिग्य (सं० पेश्य०) आदिग्य-स्यप् । चतुर्गामन
देके, द्युम्न लगाकर ।

आदिश्रमान्, आदिष्ट श्लो ।
आदिष्ट (सं० स्त्री०) आदिग् भावे क्तः । १ आदिग्,
इक्ष्म । २ उपदेश, नसीहत । ३ उच्छिष्ट भाजनका

सुश्रांग, सामी दृष्टं चीशका टुकड़ा। (ति०) कर्मणि क्त। ४ उपदिष्ट, मधीहत पाये हुआ। ५ ध्याकरण-प्रसिद्ध स्वामी जात। जिन वर्षका किमीके स्याममें धादेग होता, वह धादिष्ट कहता है। जैसे इसके स्याममें धादेग होनेसे यच् (यवरत्न)को धादिष्ट कहते हैं। ६ धाघत, हुक्म पाया हुआ।

धादिष्टिन् (सं० पु०) धादिष्ट धादेगी प्रतादेगी-इत्यस्य, इति। १ प्रतादेगयुक्त प्रद्वपारो। २ पदु-तापदन्धपुद्व, पगेमान् गन्म। (ति०) धादिष्ट-मनेग, इटादि० इति। ३ धादेगकर्ता, हुक्म देनेवाला। (पु०) धादिष्टो। (सो०) धादिष्टिनो। धादियगं (सं० पु०) धादिः धादिभूतः सर्गः, ग्राक० तन् कर्मधा० वा। प्राकृत प्रत्ययके बाद प्रथम छटि, कृदन्ती क्यामतके पीछे पड़नी पेटायग।

धादी (सं० वि०) १ धादत रचनेवाला, अभ्यस्त, जो किमी बातको महारत रचता हो। (चिं० स्त्री०) २ धादक।

धादीचक (चिं० पु०) धादक विगिय, किमी कियको धादक। इमकी तरकारी बनती है।

धादीनव (सं० पु०) धा-दी भाये क्त, धादीनव्य वानं प्रातिः, वाहु० क। १ दोष, बुराई। २ क्रोध, तकलीफ। ३ वाधाजनक पुद्व, तकलीफ पड़नेवाला गद्वम्। (ति०) कर्मणि क्त। जोदितव। वा ५५५५५। ४ दुर्दैव, ऐशो। ५ क्रोधयुक्त, तकलीफ उठानेवाला।

धादीपक (सं० वि०) धादीपयति ध्वम्यव्य इष्ट-मन्दिना, धा-दीप-विच्-पुन्त्, विच् लोपः। १ ध्वम्यके इष्टमें ध्वनि लगानेवाला, जो दूसरेका सकान् जना देता हो। २ उद्दीपक, जला डालनेवाला। ३ प्रकाशक, रोगभी देनेवाला।

धादीपन (सं० स्त्री०) धा-दीप-विच्-पुन्ट, विच् लोपः। १ ध्वम्यके इष्टमें ध्वनि लगानेका कर्म, धातिगजनी। २ द्रव्य विगियसे उत्पन्नके समय इष्ट पोतनेका काम, लिपयौ पोतायी।

धादीपित (सं० वि०) धा-दीप-विच्-क्त इट्, विच् लोपः। उद्दीपित, प्रकाशित, लोपा-पोता, धम-काया हुआ।

धादीम (सं० वि०) जलाया या जलता हुआ, जो भभक रचा हो।

धादुरि (सं० वि०) धा-दृ पन्तभूतल्यर्थे कि। १ विदारणकर्ता, कुशल डालनेवाला। २ सचेत, धीमियार।

धादृत (सं० वि०) धा-दृ कर्मणि क्त। १ सम्मानित, पूजित, इज्जतदार। कर्त्तरि क्त। २ सोत्साह, पत्यासक्त, दोसलेमन्, मिहमती। ३ धादर करनेवाला, धातिरदार। (स्त्री०) भाये क्त। ४ धादर, सातिर, इज्जत।

धादृत्य (सं० वि०) धादृत्यते, धा-दृ-क्वप्। पत्कि-काकृद्वचः क्त्वा। वा ३३३३०६। १ धादरणीय, धातिर किये जाने काविल। (ध्वम्य०) ल्यप्। २ धादर करके, धातिरदारोके साथ।

धादृष्टि (सं० स्त्री०) धा ईदृत् दृष्टिः, प्रादि० समा०। त्रिभाग-सद्वृत्तित दृष्टि, उपान्त मयोन्नितनेव, धारह पाने सुदी दृष्टं नञ्चर। चक्षुके दोनो कोष संलग्न पोर मध्यम्यल पत्त्व सुना रचनेको धादृष्टि कहते है। धादृ—ध्वम्यई प्रातके रत्तगिरि ज्ञितेका एक धाम। यह केनमीसे दक्षिण डेढ़ कोम एक छोटी चौर गहरी खाड़ीपर बसा है। सन् १८१८ ई०को धन्दरगाह रचा, पचादिका थोड़ा व्यवसाय चलता था। इसमें धरगुरामका मन्दिर बना है।

धादेय (सं० वि०) धादीयते, धा-दा-यत्। धादृ, सेने काविल।

धादेयकर्मन् (सं० स्त्री०) जेनमतसे—वाक्स्थिति देने-वाला कर्म, जिन कामसे धादमीको बात ठीक निकले।

जेनशास्त्रानुसार जीवोंको इस संसारमें भ्रमण करानेवाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, धन्त-राय, धायु, नाम, धेदनीय और गोत्र नामके पाठ कर्म हैं उनके उत्तरोत्तर बधुतसे भेद है। उनमेंसे नाम कर्मकी लो गति धादि ४२ प्रकृतियां हैं उर्ध्वोकी ३८वी प्रकृति धादिय नामकी प्रकृति है इसके उदयसे जीवका प्रमासहित शरीर होता।

धादेवक (सं० वि०) धादीव्यति, धा-दिव-खल्। धातकारक, कि, मारवाज, लुवा खेलनेवाला, खेलाही।

आदेवन (मं० स्त्री०) आ-दिव भावे लुट् । १ द्यूत, पामिका खेल, किमारबाजी, लुवा । कल्पे लुट् । २ द्यूतघातन पामा, लुवा खेलनेका कौड़ी । आघारे लुट् । ३ विघात, जिस चीजपि पासा फेंका जाये । ४ द्यूत खेलनेका स्थान, लुवाड़घाना ।

आदेग (सं० पु०) आ-दिग् भावे घञ् । १ उपदेग, नशीहत । २ आघा, हुकम । ३ लोप, तख्तीरोव । 'नीलोत्पलदेग लभते ।' (व्याकरणकारिका) ३ व्याकरण-प्रसिद्ध किमी वर्षके स्थानमें पन्च वर्षकी उत्पत्ति । प्लानिपदा ईमाननरिणी वा एतत् । आ-दिग् कर्मणि घञ् । ४ समाचार, खबर । ५ भविष्यत्वापी, पेगीनूयोगी । ६ प्रणाम, यन्दगी ।

“आनशीलुपयातो यः प्रकृतिः प्रत्यय वा ।

तयोपे सपयातो य आदिगः परिकीर्तितः” (व्या० क०)

व्याकरणमें प्रकृति वा प्रत्यय इन दोनोंकी जो नहीं उठाता, उसे आदिग कहा जाता है । फिर इन्होंने दोनोके नाम करनेवालेका नाम आदिग है ।

आदिगक (सं० त्रि०) आदिगति, आ-दिग-खलु ल् । आदिग देनेवाला, जो हुकम लगाता हो । आदिगकारिन् (सं० त्रि०) वचनपाहिन्, सुत्रपु, तावेदार, हुकम बजा लानेवाला ।

आदिगन (सं० स्त्री०) आ-दिग भावे लुट् । आदिग-चेष्टित, हुकमरानी, हुकमत, हुकम देनेका काम ।

आदिगिन् (सं० त्रि०) आदिगति, आ-दिग-णिनि । शासक, हाकिम, हुकम देनेवाला ।

आदिगी (सं० पु०) १ आघापक, हाकिम । २ ज्योतिषी, मन्त्री ।

आदिग्य (सं० त्रि०) आदिग्यते, आ-दिग कर्मणि खलु । उपदेश्य, आघाप्य, कथनीय, समभाषा वा सुनाया जानेवाला ।

आदिष्ट, अर्द्धेष्टी ।

आदिष्ट (सं० पु०) आ-दिग-ठप् । १ आघापक, हुकमरान् । २ यजमान, पुरोहितसे काम देनेवाला ।

आद्य (सं० त्रि०) आदी भवन्, आदि यत् । (विनयिको ह्य् । वा भाष्येण । १ आदिमें उत्पन्न हुआ,

जो शुरूने हो । २ प्रधान, बड़ा । ३ पारम्भ हो जानेवाला । ४ पूर्वगामी, पहले जानेवाला । (पु०) ५ अद्भुत, अंगूठा । (स्त्री०) ६ पारम्भ, आगाज । प्रत्ये अद् कर्मणि यत् । ७ भक्षणीय द्रव्य, खानेकी चीज । ८ धान्य, अनाज ।

आद्यधातु (सं० पु०) शरीरस्य रसधातु, कैलम् । यह भोजनसे पेटमें घनता और पित्तके सहारे रक्तमें परिणत होता है ।

आद्यपुष्य (० स्त्री०) त्रिभागकुङ्कुमोपेत स्त्रीवेरचन्दन ।

आद्यमापक (सं० पु०) आद्यः मापकः, कर्मधा० । पक्ष गुञ्जा परिमित मापक माष, पांच रत्तीका मासा ।

आद्यमाया (सं० स्त्री०) मापपर्यालता, रामकुरधी ।

आद्यवीज (सं० पु०) कर्मधा० । १ मूलकारण, बुनियादी सबब । २ ईश्वर । ३ सांख्यप्रसिद्ध प्रधान ।

आद्यथाह (सं० स्त्री०) कर्मधा० । मृत्युके बाद, पशोवास्तका पहला थाह । यह ब्राह्मणके मरनेके ग्यारहवें, क्षत्रियके तेरहवें, वैश्यके पंद्रहवें और शूद्रके एकतिसवें दिन होता है । नार देवी ।

आद्या (सं० स्त्री०) आदी भया, आदि-यत्-टाप् । १ तन्त्रोक्त दुर्गा । सत्ययुगमें सुन्दरी, त्रेतामें भुवनेश्वरी, सापरमें तारिणी और कलिमें काली आद्या कहाती है । (तन्त्रशा०) २ भूमि, जमीन ।

आद्याकान्ठी (सं० स्त्री०) नित्यसमा० संज्ञास्वात् पुं बहुवचनः । तन्त्रोक्त प्रथमा प्रकृति । सकलका आदि-रूप होने और कालको निगल जानेसे भगवतीका यह नाम पड़ा है ।

आद्यादि (सं० पु०) आदिरिति आदियंस्य, बहुमी० । तसि प्रहरणी आद्यादिषु सप्तव्यं व्याजम् । (काशिका) पञ्चमीके स्थानमें तसि प्रभृति प्रत्ययके निमित्त काशिका और वार्तिकमें कहा हुआ शब्द गणविशेष । इसमें आदि, मध्य, अन्त, अष्ट, पार्श्व प्रभृति शब्द पठित हैं ।

आद्युदात्त (सं० त्रि०) आदिः उदात्तो यस्य । आदिमें उदात्त स्वर रखनेवाला । यह शब्द प्रत्ययादिका विशेषण है ।

आद्यून (सं० त्रि०) आ-दिव ल् उट् नत्वच् । १ः यद्गुणविशेषः वा वा भाष्येण । १ पोटरिक, पेट, काकीमें

प्रादा या ज्ञानमेवाना । २ आरभ्यगूय, आगाज् न
रखनेवाना ।
 आद्योत (सं० पु०) प्रकाश, समतुल्य, रोगनी,
 उजाला ।
 आद्योपाना (सं० पु०) आद्य-मपधीकृत्य पत्नः
 पर्यन्तः, गाक० तत् । १ प्रयमाशधि शीघ्रपर्यन्त, शुद्धे
 अप्पौरतक, सध, विप्रकुल । यह शब्द हिन्दुओं
 क्रिया-विशेषकी तरह व्यवहृत होता है ।
 आदा (हिं०) आदि शब्द ।
 आदिमार (सं० द्वि०) ओदनमिश्रित, आदनी, मोहसे
 बना हुआ ।
 आदादगम् (सं० पद्य०) आदाद पर्यन्त, आरहतक ।
 आध (हिं० वि०) अध, आधा । यह प्रायः योगिक
 शब्दोंके आदिमें आता है । जैसे—आधमन, आधमेर ।
 आधमन (सं० स्त्री०) आ-धा-कमनम् । १ बन्धक-
 दान, रेशन, चमानत, धरोहड़ । २ स्त्रीति, धुजन,
 मोटावी ।
 आधमस्यं (सं० स्त्री०) आधमस्यं भावः कर्म वा,
 अर्थ । आचीका धर्म, कर्ज दारी, मक, दूनी ।
 आधमिक (सं० द्वि०) अधमं चरति, ठक् । अवर्त-
 मीन, फानिक, निया-शातिन्, धिरेमान् ।
 आधर्ष (सं० पु०) आ-धृष भावे चञ् । कर्षण शब्द ।
 आधर्ष (सं० स्त्री०) आ-धृष भावे चञ् । १ अप-
 राध-स्थापन, लुप्त मगानेका काम । २ दण्ड, मजा ।
 ३ तिरस्कार, बलहेतु पीड़न, झिड़की, हिङ्-छाड़ ।
 आधर्षित (सं० द्वि०) आ-धृष-ल दृष्ट, कित्वा भावः ।
 निज शीघ्रनिर्दिष्टविषयः । आ।आ। १ धर्ममानित,
 मजायाफूला । २ तिरस्कृत, झिड़का हुआ । ३ बल-
 द्वारा पराजित, चोट खाया हुआ ।
 आधर्ष्य (सं० द्वि०) आधृष्यते, आ-धृष-ण्यत् ।
 १ चवमाननीय, झिड़का जाने काबिल । २ बलहेतु
 पीड़नीय, जोरसे पीटा जानेवाला । ३ दुर्वन, लाम् ।
 (स्त्री०) भावे ण्यत् । ४ दुर्वनता, कमजोरी ।
 आधर्षिण—श्रुतिविशेष, एक राजा । यह वाष्पावर्गीय
 रावण भरतरीजीके पुत्र रहे । इनकी राजधानी
 विश्वोर थी ।

आधा (हिं० वि०) अध, निरक, नीम । (स्त्री०)
 आधी ।
 आधाभारा (हिं० पु०) अयामार्ग, चिचड़ी ।
 आधाग (सं० स्त्री०) १ संस्कार-पूर्वक अग्नि प्रशुक्तिका
 स्थापन, रखनेका काम । २ घण्टा, पकड़ । ३ प्राति,
 जामिन । ४ धारण, मुद्रायोग, ममायी । ५ अन्व्या-
 धान । ६ गर्भाधान । ७ बन्धकदान, निवेदन, रेशन,
 धरोहड़ । ८ प्रतिभू, जामिनो । ९ नियुक्ति, मन-
 श्रवित । १० आधार, किमी चीजके रखने या रखनेकी
 जगह । ११ पात्र, बरतन । १२ कुत्त, घेरा ।
 आधागतती (सं० स्त्री०) गर्भवती, जिस औरतके
 हमल रहे ।
 आधागतिक (सं० पु०) आधानं गर्भाधानप्रयोजनस्य,
 ठक् । गर्भाधानके निमित्त वेदविहित गर्भपात्रका
 संस्कार, गर्भधारणसंस्कार ।
 आधागत्य (सं० द्वि०) आदधाति, आ-धा-ण्य ।
 १ आधानकर्ता, रखनेवाला । (पु०) भावे चञ् ।
 २ आधान, रखनेका काम । (पद्य०) सप्त ।
 ३ आधान-पूर्वक, रखके ।
 आधागत्यक (सं० द्वि०) आधागत्यकर्ता, रख देनेवाला ।
 (स्त्री०) आधागतिका ।
 आधार (सं० पु०) आश्रित्य परस्परया क्रिया यत्,
 आ-धृष अधि करणे चञ् । आश्रित्यपरम् । आ।आ। १
 १ अधिकरण, सङ्घारा । २ आश्रय, मदद । ३ शस्य
 सम्पादनार्थं जलरोधका बन्धन, पानीका बांध । ४ हथके
 जल देनेका स्थान, याना । ५ पात्र, बरतन । ६ नहर ।
 ७ सम्यग्, रिच्छा । ८ व्याकरण-प्रसिद्ध कारक । व्याक-
 रणमें आधार तीन प्रकारका माना गया है—शौचश्रेयिक,
 दैविक और अभिव्यापक । जैसे—चतुरपर घंटा है ।
 इस स्थानमें देवदत्तादि किसी कर्त्तृपदका अध्याहार
 होता और उससे 'घंटा है' क्रियाका आधार चतुररा
 ठहरता है । इस लिये चतुररा ही कर्त्तृद्वारा क्रियाका
 आश्रय-रूप शौचश्रेयिक (एकद्वय सम्यग्गुण) आधार
 है । 'लोटेमें डालता है' वाक्यमें दुग्धादि पदका
 अध्याहार और उससे 'डालता है' क्रियाका आश्रय
 लोटा होता है । अतएव यह कर्मद्वारा क्रियाश्रय-

रूप धीयद्यैविक आधार है। 'मोक्षकी इच्छा होती है' कष्टनेत्र मोक्ष विषयमें इच्छा रहनेका अर्थ निकलता, इमोने यह वैयक्तिक आधार है। 'परमात्मा मज्जन् स्थानमें है' योनिनेपर आत्मा कर्तारमें 'है' क्रियाका आधार सकल स्थान होता है। इसलिये यह अभि-
ध्यायक आधार है।

आधारक (सं० पु०) भित्तिमूल, नीव।

आधारण (सं० स्त्री०) वहनकार्य, धारणरदारी, सहारा देनेका काम।

आधारगति (सं० स्त्री०) आधारस्य गतिः, ६-तत्, आधार एव गतिः, कर्मधा० वा। १ सकल आधारकी गतिकारूप, माया, प्रकृति, कुदरत। २ चन्द्रकी अमा मास्यी महाकला। 'आधारप्रदिवना अमासाथी महाकला शोभा।' (शार्ङ्गसुप्रश्न) ३ तन्त्रोक्त मूलाधारस्य कुण्ड-
लिनी परमदेवता।

आधारधियभाव (सं० पु०) आधारस्य धियेयव तौ तयोर्भावः, ६-तत्। आधार और धियेयका सम्बन्ध-
विशेष। जैसे घट और भूतल। यहाँ भूतल आधार और घट धियेय होनेसे दोनोका सम्बन्ध आधारधियेय भाव कहता है।

आधारिन् (सं० त्रि०) आश्रयस्थित, सहारा पकड़नेवाला। (पु०) आधारि। (स्त्री०) आधारिणी। यह शब्द प्रायः समासान्तमें आता है—जैसे, दुग्धाधारी।

आधारी (सं० पु०) १ आधारस्थित, सहारा पकड़ने-
वाला। (हिं० स्त्री०) २ सहारा देनेकी लकड़ी। मायु प्रायः इसके सहारे बैठ-उठा करते हैं।

आधार्य (सं० त्रि०) स्थापनीय, रक्ता जानिवाला।
आधार्याधारसम्बन्ध, आधाराध्यायक है।

आधावमान (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, दौड़ या
फ़रपट पड़नेवाला।

आधामोक्षी (हिं० स्त्री०) पर्यकपाली, आधिसरका दटें।

आधि (सं० पु०) आधीयते अधिप्रियते शोकादिनो मनोऽनेन, आधा करके कि। १ सामम दुःखकर व्याधिविशेष, दिली तकलीफ़। २ दुर्भाग्य, कामबन्धुनी। ३ धर्म वा कर्तव्यका विचार, मजहब या फ़र्जकी फ़िक्र। ४ आमा, तमबा। ५ अपने कुलकी शीविकाके

निमित्त उत्सुक मनुष्य, अपने आत्मानकी रोज़ीके लिये होसला रखनेवाला शब्द।

आ ईयत् धीयते अधिप्रियते उत्तमपत्तेमात्र चसौ वा, आधा अधिकरके कर्म वा कि। ६ अधमर्ण-
कष्टक उत्तमर्णके निकट रचित बन्धक द्रव्य, रेशम या अमानतकी चीज़। ७ बन्धक, रेशम, अमानत। ८ अधिष्ठान, रखनेकी जगह। ९ आधान, जगहकी बन्दिया। १० लक्ष्य, निर्देश, सिफ़्त, आसियत।

आधिक, अधि० देवो।

आधिकारणिक (सं० पु०) अधिकरके विचारस्थाने नियुक्तः, ठक्। विचारस्थानमें नियुक्त प्राङ्गविवेकादि, अदासतमें इनसाफ़ करनेवाले मुसिफ़ यगै रह।

आधिकारण्य (सं० स्त्री०) अधिकार, इशूतियार।
आधिकारिक (सं० त्रि०) १ प्रधान, श्रेष्ठ, पाला, इशूतियारवाले हाकिम या ग़ैके सुतानिय। २ पद-
सम्बन्धी, हुजूरी, मनसूमी, हाकिमाना।

आधिक्य (सं० स्त्री०) अधिकस्य भावः, अर्थः। १ अधि-
कता, बहुतायत, ज्यादाती। २ आतिशय, यड़ाई।

आधिज (सं० त्रि०) पौड़ादिसे उत्पन्न, दई यगै रहसे पैदा होनेवाला।

आधिष्ठ (सं० त्रि०) आधि मनःपीडा जानाति, अधि-
ज्ञा-क। १ व्यथाका अनुभावक, मनोदुःखयुक्त, ध्ययित, सुखीवतजुदा, दईसे तकलीफ़ उठानेवाला। २ यक, टेढ़ा।

आधित्व (सं० स्त्री०) बन्धकका हथाना, रेशमका हान, गहने रखनेकी बात।

आधित्वोपाधि (सं० पु०) बन्धक रखनेका प्रयोजन, रेशमकी गर्त।

आधिदैविक (सं० त्रि०) अधिदैवे भयः देवान् याता-
दैनौ अधिल्व्य प्रहृत्तं वा, ठक्, अनुगतिशक्ति-
द्विपद-
सदिः। १ देवताधिकृत, देवताधिकारमें प्रहृत्त। इस अर्थमें यह शब्द शास्त्रादिका विशेषण है। २ पायु-
प्रसृतिजन्य, अवा यगै रहसे पैदा हुआ। यहाँ 'आधि-
दैविक' दुःखादिका विशेषण है। पैदाकसतमें दुःख
आत प्रकारके होते, जिनमें काम, देव एवं अभावके
अनमें उत्पन्न होनेवाले आधिदैविक है। अधिक

मीन, घोष वा हृष्ट होनेको फालकवत्कृत, विजकी निरस तथा भूतादि चरुनेको देवबलकृत घोर बुभुषा-
हृष्टादि जननेको स्वाभावबलकृत कहने हैं ।

आधिपत्य (सं० स्त्री०) अधिपतिभायः कर्म वा, प्रत्यन्तात् टक् । स्वामित्य, सरदारी, अज्मत् ।

आधिबन्ध (सं० पु०) आधिः प्रजानो कथं पालनं स्यादिति चिन्ता एव बन्धः । बहुप्रकारचकार्यं चिन्ता, बहुतमो रैयतको विष्कायत रचनेना स्यात् ।

आधिभोग (सं० पु०) आधिर्बन्धकद्रव्यस्य भोगः, इ-तत् । बन्धक-द्रव्यका भोग, रैहनको चीजका काममें लाना । आधिर्भनोव्यथाया भोगः । २ मनो-
व्यथाया अनुभवव्यय भोग, दिने तदपीफका सठाना ।

आधिभोति (सं० स्त्री०) भूतानि व्याप्तमर्वादीन्आधि-
कृत्य जातम्, अधिभूत-ठक्, द्विपदहृष्टिः । १ व्याप्त-
सर्वादिजनित, गिर घोर बगैरक्षी मिला हुआ ।
२ चित्वादिमभूत, जसोम् वगैरक्षी पैदा हुआ ।
३ जीवसम्बन्धो, जानवरके सुतासिद्ध । बंदाकमनमें
दधिर, वीर्य, भोजन एवं विचारके विकारमें सत्पच
आधिको आधिभोतिक ही कहने हैं ।

आधिभोतिक, (सं० स्त्री०) आधिभोति एव स्वार्यं क ।
अन्वयीन ईको ।

आधिमन्य (सं० पु०) अधिमन्ये हितम्, अण् ।
स्वरका मन्ताप, बुधारकी जलन ।

आधिमान (सं० स्त्री०) चिन्ताये विमोर्षं, जिक्रसे
सुरभाया हुआ ।

आधिरयि (सं० पु०) अधिरयः धतराट्ट-मारयिः तस्यायम्,
इत् । सृतपुत्र कर्ष, धतराट्ट-मारयि अधिरयके अङ्क ।

आधिराज्य (सं० स्त्री०) अधिराजस्य भावः कर्म वा
अण् । आधिपत्य, सरदारी, साजवरी ।

आधिवेदनिक (सं० स्त्री०) अधिवेदनाय अधि-
विवाहाय हितम् ठक्, तत्र कासे दर्शं ठक्, वा ।
द्वितीय विशाहके समय प्रथम स्त्रीके मन्तोपार्थं दिया
जानेवासा धन, जो दोस्त दूसरो शादीके बन्ध पक्षी
घोरतको दो जानी थी ।

आधिगमी (सं० स्त्री०) गमीभेद, किसी दिग्वाकी
फली या छेमी ।

आधिसोन (सं० पु०) आधेगुंसाधेर्मीगात् स्नेन इव ।
गोपमर्मे गच्छित धन बलपूर्वक भोग करनेवाला, जो
पादमी जोरावरीधे छिपाकर रैहन रखी हुई चीजको
काममें लाता हो ।

आधी (ये० स्त्री०) चिन्ता, अधिसाप, शोचना,
सवाल, आह्वय, जिक्र । (हिं०) अथा श्लोः ।

आधीकरण (सं० स्त्री०) पनाधेः पाधेः करणम्,
आधि-धि-ज-तुरट् । १ कृप सेनेको किसी वस्तुका
बन्धक रखना, कर्ण पानेके लिये कोई चीज पगेरह
रखनेका काम ।

आधीकृत (सं० स्त्री०) आधि-धि-ज-त । बन्धक
रखा हुआ, जो रैहन कर दिया गया हो ।

आधीकृत्य (सं० अण्य०) बन्धक रखकर, रैहन
करके ।

आधीत (ये० स्त्री०) १ विचारा हुआ, जो लुपाममें
माया गया हो । (स्त्री०) २ विचारका प्रयोजन
वा विषय, बरादा या सपीद की हुई बात ।

आधीन (हिं०) अधीन श्लोः ।

आधीनता (हिं०) अधीनता श्लोः ।

आधीयमान (सं० स्त्री०) बन्धक रखा जानेवाला, जो
रैहन किया जाता हो ।

आधीयमानचित्त (सं० स्त्री०) मनको लगा देनेवाला,
जो दिमको किसी बातपर भुका देता हो ।

आधीरात (हिं० स्त्री०) अधैरात्रि, रातके बारह
बजनेका बह ।

आधृत (सं० स्त्री०) आ-धृ-ज्ञ । १ चालित, हटाया
हुआ । २ रैपत् कर्मित, जो कुछ हिल गया हो ।

आधृतिक (सं० स्त्री०) अधृता भवम्, ठक् । सम्प्रति-
जात, अर्वाचीन, अमाचीन, नया, हालमें पैदा
होनेवाला ।

आधृत, अधृत श्लोः ।

आधृत्यं (सं० स्त्री०) निर्भलाता, कमजोरी ।

आधृत (सं० स्त्री०) सम्प्रितित, प्रोत्साहित, समया
हुआ, जो सझारा पा चुका हो ।

आधृष्ट (सं० स्त्री०) निवारित, विजित, जो रोक
या भीत लिया गया हो ।

षाष्टि (मं० स्त्री०) षा-ष्टय भावे ङिन् । १ परि-
मय, पराजय, मित्रहन्, हार । २ पाकमपकायं,
इमला मारनेका काम ।

षाधेक (द्वि० वि०) षधंके ममान, भाधेके वरावर,
जो षाधये ल्यादा न हो ।

षाधेनव (मं० स्त्री०) गोका षमाव, गायोंकी षदम-
सोन्नदगी ।

षाधेय (मं० स्त्री०) षाधीयते, षा-धिङ् कर्मणि यत् ।
१ उत्पाय, बनाया या किया जानियाना । २ मन्त्रक
रग्या जानियाना, जिसे रहन किया जाये । ३ षमानत
रग्या जानियाना, जिसे धरोहड़के तीरपर रखा जाये ।
४ रखा हुआ, जो जगह या तुका हो । ५ दिया
जानियाना, जो देखा गया हो । (स्त्री०) भावे
यत् । ६ षाधान, रखनेका काम । ७ गुणविशेष ।
इमका सभाष यदन्त चौर उसमें षन्थ गुण लगा दिया
जाता है । ८ जलाकर रत्नवर्ण किया हुआ घटादि,
जो घड़ा जलाकर सुवर्ण बना दिया जाता हो ।

“षाधेयषाधियाजय सोऽसत्प्रकृतिर्षः ।” (व्याकरणकारिका)

(पु०) ८ विधिक्रममे स्यापनीय वक्ति । १० षधि-
करणमें षभिभियेगनीय द्रव्य, सधारा पकड़नेवाली
षीज ।

षाधोरण (मं० पु०) षा-धोर गतिधातुर्यं लुर । हस्तो
षनानेमें निपुण हस्तिपक, होमियार मद्दायत ।

षाधमात (सं० त्रि०) षा-धमा-त् । १ शब्दित,
बजाया हुआ, जो षामाज दे रहा हो । २ दग्ध,
जला हुआ । ३ वातदोष-जात उदरस्त्रोतता-सम्पाटक
रोगयुक्त, फूला हुआ । (स्त्री०) भावे ङ । ४ षाध्यात,
सुजन । ५ शब्द, षामाज । ६ पन्निसंयोग, षामकी
चपेट । (पु०) ७ वायुरोगभेद, एक बीमारी ।
इसमें पेट फूलता चौर बोना करता है । ८ ममर,
झड़ायी ।

षाधमान (सं० पु०) षा-धमा षाधारे ल्युट् । १ वात-
व्याधि विशेष, एक बीमारी । (स्त्री०) भावे लुट् ।
२ उदरस्त्रोतता, पेटका फूलना । साटोप एवं पति
हृष रोगमें पेट फूलनेकी षाधमान कहते हैं । यह रोग
घोर घोर वातके निरोधसे उत्पन्न होता है । षाधमानमें

पहने लहान, पीछे दीपन एवं षाधन तथा फलवर्ति-
क्रिया, वस्त्रिकर्म चौर मोघन करना चाहिये । (वृ०)
३ फूंक, हवाका भरना । ४ दर्प, विकलन, गेव्ही,
छोंग । ५ चोंकनी ।

षाधमानी (सं० स्त्री०) षा-ध्या करणे लुट् ।
नलिका नामक वनिगुद्ध्य, षम्बारी । यह सुगंधुदार
हानो है ।

षाधमापन (सं० स्त्री०) षा-धमा-पिच् करणे ल्युट्,
पिच् लोपः । १ शब्दनिष्पादन, षावाजका निकालना ।
२ शरीरमें विह वाष्पादिके उदाराका उपाय विशेष,
जिहमें चुभे हुये तीर वगैरह निकालनेकी एक
तरकीब ।

षाध्यष्य (सं० स्त्री०) षध्यष्य भावः, ष्यच् ।
षध्यक्षता, एहतिमाम, निगहधानी ।

षाध्यत्रि—स्थान विशेष, किसी जगहका नाम ।

षाध्या (सं० स्त्री०) षा-ध्यै भावे घञ् । १ चिन्ता,
चिन्ता, फिक्रमन्दी, फिक्र । २ शीतुष्यवहेतु श्रमण,
पफसोसके साथ यादगारी ।

षाध्यामिक (मं० त्रि०) षाध्यामं मनः शरीरादि-
कमधिकृत्य भवः, ठञ् । १ स्त्रीय, चपना, लुाम चपने
सुतामिक । २ ऐगो, परमात्मामे सम्बन्ध रखनेवाला ।
३ शास्त्रमन्वन्धीय, रुहानी पाक-साफ् । (स्त्री०)
षाध्यामिकी ।

षाध्यान (सं० स्त्री०) षा-ध्ये-लुट् । १ चिन्ता,
फिक्र । २ उत्कृष्टापूर्वक श्रमण, पफसोसके साथ
यादगारी ।

षाध्यापक (मं० पु०) षध्यापक एव, सार्थं षच् । षध्या-
पक, गुरु, उस्ताद, सुरगद, पढ़ाने या सिवानेवाला ।

षाध्यायिक (सं० त्रि०) षधीयतेऽध्याया धेदृप्तम-
धीते, ठञ् । १ षधीतवेद, जो वेद पढ़े हो । २ षध-
यनगोन, पढ़ने-निखनेवाला । (स्त्री०) षाध्यायिकी ।

षाध्यामिक (मं० त्रि०) षध्यामिण कन्पितम् ठञ् ।
पययार्थं, झूठा, माना हुआ । वेदानामतमें षध्याम
द्वारा पययार्थ वस्तुमें ययार्थज्ञान षाध्यामिक कथाता
है, जैसे—शक्तिमें रजतादिकी कल्पना चौर पर-
ब्रह्ममें जगत्का आरोप ।

धात्र (सं० पु०) धा-धृ-क। १ धाधार, महारा।
 (ति०) २ निर्वन, कामजोर, गुरोव।
 धाधनिक (सं० ति) धधनि कुगमम्, ठक्। पयमें
 कुगम, पयका विषय भनो भाति ममभनेवाला,
 राहगीर, जो मुमाफ़िरोषा हान धधोतरह
 मानता हो। (स्त्री०) धाधनिकी।
 धाधरायण (सं० ति०) धाधरो यथाभिन्नद्वय
 मोतापत्यम्, नडादि फक्। धाधर या धधोतरह
 यथाविषय ममभनेवानेका पुत्र या कन्यारूप धयव्य,
 धाधरके लड़के सोनाद।
 धाधरिक (सं० पु०) धधरस्य व्याख्यानो धयः,
 ठक्। १ धधरके व्याख्यानका धय। धधरं यथा
 धति तत्प्रतिपादकधयमधीत वा। २ धधर-प्रति-
 पादक धयका धधयनकर्ता। (ति०) ३ सोमयथा-
 मयन्धीय।
 धाधर्यव (सं० ति०) धधर्योयंशुर्वेदविद इदम्, धधर्यु-
 पत्। १ धधर्यु-मयन्धीय। (स्त्री०) २ धधर्युं पुरो-
 हितका कर्मादि।
 धान (सं० पु०) धानति औशयनेन, धा-पन कश्चि
 जित् धान् प्रापवायुः ततः धूरभवादेो धन्।
 कुशुर्वास्कीत्। वा ३।१००५। १ धानमुंशुग्राम, मुंशुके
 भीतरकी मांस। २ औशनसाधन गरीर मध्यस्थित
 प्रापवायुका नामिका द्वारा वहनिःसारण-रूप
 उच्छ्वास। ३ वहिसुंशुग्राम। ४ सुप्त, नासिका, मुंशु,
 नाक। ५ ग्राम, शानित, मांस लेनेका काम।
 (हिं० स्त्री०) ६ सोमा, हद। ७ शपय, कश्म।
 ८ दोहायो। ९ पन्दात्र, तरीक, टङ्ग। १० धय,
 कामदा। ११ वनावट, ठमक। १२ नला, गर्म।
 १३ भय, जोङ्। १४ विचार, निहाज। १५ प्रतिष्ठा,
 पहद। १६ हठ, जिद। (वि०) १० धय, दूररा।
 धानक (सं० पु०) धानयति सोत्साहात् करोति,
 धन्-धिष्-ष्-ष्-ष्। १ पटह, नङ्गारा। २ भेरी, टोल।
 ३ इदह, टोलक। ४ शब्दमुक्त शिव, गरजनवाला
 बादल। 'धानकः पटह भेरे धनन्धीयपरशयोः।' (हिं०)
 (ति०) ५ उत्साहक, होसनेधण्ड।
 धानकदुन्दुभि (सं० पु०) धानकः उत्साहकः दुन्दुभिः

देववायुविगो यजै, वडुती०। १ वसुदेव। कण्यके
 जन्म होनेपर देवताओंके माधुवादपूर्वक वाद्य वजानेसे
 वसुदेवका यह नाम पड़ा है। (इति०)
 धानकदुन्दुभी (सं० स्त्री०) इहत् पटह, वडा
 नङ्गारा।
 धानकस्यमक (सं० ति०) धानकस्यसां भवः, धूर-
 देगादो युञ्। धानदिधयः वा ३।१।१०। धानकस्यस्त्रीके
 निकटस्थ, धानकस्यस्त्रीके धाम।
 धानकस्यनी (सं० स्त्री०) धानकप्रधाना स्वली,
 शाक० तत्। धानकस्यनी गामक एक जनपद,
 किरी मुस्तका गाम। (वा ३।१।१०)
 धानकामनि (सं० ति०) कर्णादि-फिञ्। धानकके
 निकटस्थ, जो धानकसे दूर न हो। यह शब्द जन-
 पदादिका विगोषण है।
 धानण, धान्य शब्दों।
 धानहुह (सं० ति०) धनहुह इदम्, धन्। १ हय-
 मयन्धीय, धेनका। यह शब्द गोमय किंवा चर्म
 मांसादिका विगोषण है। (स्त्री०) धनहुही।
 (स्त्री०) २ तीर्थविगोषण। धनहुहतीर्थं सहायर्थतेके
 निकट विद्यमान है। हरिवंशके ८५वें अध्यायमें इसका
 नामोल्लेख मिलता है। कण्य पीर बलराम इस तीर्थमें
 घूमने गये थे।
 धानहुहक (सं० ति) धनहुहा जतम्, संश्रयां कुला-
 सादिभ्यो युञ्। (वा ३।१।१०) हयमयन्धीय, धेनका।
 यह शब्द गोमय, चर्म, मांसादिका विगोषण है।
 धनहुहायन (सं० ति०) धनहुहो गोत्रापत्यं धनहुदि०
 फक्। धानहुह-जात, धानहुहमे पैदा होनेवाला।
 धनहुहके पुत्र या कन्या रूप धयव्य।
 धानहुह (सं० पु०) धनहुहो गोत्रापत्यम्, गर्गादि०
 धन्। धनहुत् नामक सुनिके गोत्रापत्य।
 धानहुहायनि (सं० ति०) धनरथां कर्णादि फिञ्।
 धानहुहके निकटस्थ देगादि।
 धानत (सं० ति०) धान-न-श। १ धधोमुख, विनय-
 हेतु नन्वीभूत, पतित, खुब झुका हुआ। (पु०) २ जिन-
 देव विगोषण। कल्पभवनमें यह एक वैमानिक नामक
 देवता माने गये है।

पान-तान (सं० स्त्री०) १ छटपटांग, चण्डचण्ड, रघर-उधर । २ मर्यादा, पाबन्ध । ३ छठ, ज़िद ।

पानति (सं० स्त्री०) पानमति नस्त्रीभवत्यनया, पान-म कश्चि जित् । पानुगत्य जन्म सन्तोष, पधो-मुधो भाव, नस्त्रता, लुकाव ।

पानादयत् (सं० स्त्री०) बलवानिवासा, लो पावाज निकम्ना रक्षा हो ।

पानघ (सं० स्त्री०) पान-नष्ट-ल । १ बह, घघित, रंधा या गुंधा दुषा । (स्त्री०) २ वेगभूपादि, पच-नाय । ३ चर्म द्वारा बहमुष वाधादि, चमड़ेसे मढ़े हुए मुंझका बाजा । इसके मध्य वायां, तमला, टोलक, पन्पाज पादि नृत्यगीतमें काम देता है, सकीर्तनमें मृदङ्ग बजता है । टला, टोल, नकारा, तामा, टमामा प्रभृति वाद्य अथवाग्न विद्याहादिमें व्यवहृत होता है । युद्धकालमें भी छडा, टोल, तामा और टमामा बजाया जाता है । खम्बली, डमरु, गोपीयन्त्र, तम्बूर, वृष्टुक प्रभृति पानघ यन्त्र पाव्य हैं ।

पानघवन्धिता (सं० स्त्री०) सूत्रसङ्घ, हवसुलबौल, पियायका बन्धेज ।

पानन (सं० स्त्री०) अनित्यनेन भक्ष्यपानादि हेतु-त्वान्, पन कश्चि नुरट् । सुग, मुंह । "वशान् भग-वति विहीनः ।" (१७४१ १११) २ समझा मन्त्रक, चेहरा । "कश्चिन्निदानो ।" (१७४८ १०१)

पानन-पानन (अ०-क्रि०-वि०) फौरन, जल्द, पति-गीघ, भटपट, बातकी बातमें ।

पानना ((ङि० स्त्री०) पानयन करना, सिवाधाना ।

पाननाय (सं० स्त्री०) पानन-कमल, कमल-क्षेपा सुघ ।

पाननार्थ (सं० स्त्री०) पानन्तरमेव, स्वार्थे ष्यच् ।

१ अव्यवहित परिचाम, तमलसुल-नज्दीक । पानन्तरस्य भावः । २ अव्यवधान, पानन्तरता, पुराबग, नज्दीकी ।

पानन्य (सं० स्त्री०) नास्ति पन्तः श्रेयो यश्च स एव, स्वार्थे ङा । १ पानन्त, पधीम, पधिनायो, साजुवान, शिद । पानन्य भावः, ष्यच् । २ धीमाशुन्यस्य, वेवायानी, हदका न रहना । ३ माघादिराहित्य, विरयिस्थानि, जयात-भाविदानो, बका, कभी मिट न सकनेवासी हासत ।

पानन्द (सं० पु०) पानन्द-वल् । १ हर्ष, हृष, पाहाद, खुशी, चाराम । २ विष्णु । ३ विन्दुके एक गव । ४ गिव । ५ बत्तराम । ६ च्च-संश्लेषिता

बुद्धगाव्यमुनिके चत्साही पतुवर, प्रियमिव और भतीजिका नाम । ७ साठ संवत्सरके मध्य पानन्द नामक वर्ष विशेष । श्योतिषके अनुसार इस संवत्सरमें शम्बकी रूच्य उत्पत्ति होती, किन्तु मूस्य हृदि रहती है । घृत एवं तैलका मूस्य समान रहता है । इसमें प्रला हंसी-खुशी अपने दिन काटता है । (स्त्री०)

८ मध्य, गराव । ९ सम्पद । १० राजजम्बुद्विप ।

पानन्दक (सं० स्त्री०) हर्षित करनेवाला, ओ खुग कर देता हो ।

पानन्दकर, पानन्द देवी ।

पानन्दकामन (सं० स्त्री०) पानन्दानि पानन्दयुक्तानि कामनानि शृणुयि यत्र, यष्टुमी ; यदा पानन्दजनकं कामनमिव । पविस्तुक्त कामीश्वर । कामीके सकल ही शृष्ट पानन्दयुक्त हैं । फिर कामीवासियोंके मनमें भी सर्वदा पानन्द बना रहता है, इसीमे कामीको पानन्दकामन कहते हैं । कामीश्वरके २५० पद्यायमें पानन्दकामनका विवरण दिया है । शमी शेषः ।

पानन्दलक्षण वधु—कलकत्तेके एक प्रधान विद्वान् । सन् १८२२ ई०को कलकत्तेमें अपने मातामह घर राजा

राधाकान्तदेव बहादुरके घर इन्होंने जन्म लिया था । इनके पिता मदनमोहन वधु कायस्थोंमें मुख्य कुलीन रहे । कुछ दिन घरमें पढ़ने बाद इन्होंने भूतपूर्व

शिष्टू-कालेजमें (वर्तमान प्रेसिडेन्सी कालेज) नाम लियाया था । यहाँ क्रमागत सात वर्षपर छात्रोंका शीर्षस्थान देखा यह प्रधान हस्ति घाते रहे । शीव

परीक्षामें पानन्दलक्षकी विद्या ज्ञानके पथ सकल विषयपर सर्वोत्तम पद मिला । भारतके बड़े नाट प्रथम

सार्धे द्वाविंशति टागुनहासमें जो पुरस्कार बांटा था, उसमें शारीरिक बलस्थानके कारण इनका जगना

बन न पड़ा । इसीमे स्वस्थ होनेपर पानन्दलक्षकी इन्होंने शिष्टू कालेजमें सभा जग प्राप्य पुरस्कार

दिया था । दोहरकी योग्यतासे बड़े नाटन घर राजा

राधाकान्तदेव बहादुरकी भी अभिनयित लिखा ।

पानन्दकृत्यमें सुप्रसिद्ध विद्यासागरकी धंगरेजी पढ़ायी थी। फिर पचयकुमारदत्त इनकी साहित्य और पद्यशास्त्र भी पढ़ते रहे। इन्होंने पचयकुमारकी पद्यकीर्ति 'उपामक-सम्प्रदाय' बनानेमें भी यथेष्ट साहाय्य दिया। सुधी श्रीयुक्त गगेन्द्रनाथ घोषने कहा है,—'इस देशमें साधारणतः जैसी होता, वैसी ही पानन्दकृत्य द्वारा उपकार पहुँचते भी कोई मानता-न था।"

राय ईमचन्द्रकर बहादुरके पनुरोधसे इन्होंने 'गजिकी रिपोर्ट' लिखी रकी। सरकारने उसी रिपोर्टपर ईमचन्द्रकी बड़ी प्रशंसा की। ईमचन्द्र कहा करते थे,—"पानन्दकृत्य ही राजकार्यमें हमारे साफल्यके अत्यन्त कारण हैं।"

इसबटंविन वित्तकमें राजा राजेश्वरारायण देवके स्थापित मकान पर इन्होंने लिखे थे। यह घर पड़ पानीमेंपट्टके मध्य हवन सर छो० एम० माजकरसेन की मूर्ति, पचपञ्चा मिटर स्टाइटोन, बड़े नाट नाई रिपन और भारतवन्धु मिटर प्राडमाने भी बड़ी प्रशंसाकी। मिटर प्राडमाने अपने पत्रमें इस रचनाकी सुदीर्घ समालोचना निकाली थी। कांगरेस-वन्धु मिटर एम और सुपण्डित डाक्टर विभारिज दोनो पानन्दकृत्यमें घरमें पाकर मिलते रहे। डाक्टर विभारिजने मन्त्रकुमारके मुकुटमेपर अपना प्रतिष्ठ पुस्तक बनाने समय इनके कथे धार अपनेक उपदेश लिये थे। पानन्दकृत्य निधा संस्कृत, बंगला, धंग-रेजी, फारसी और उर्दूके चोकर (युगानो), लिटिन एवं हिन्दू (यज्ञो) भाषांमें भी व्युत्पन्न रहे।

मातामाहके 'शब्दकल्पद्रुम'की रचनामें इन्होंने यथेष्ट साहाय्य दिया। विदेशीय विद्वानसमाजकी राजा सर राधाकान्त देवकी धोरने उस समय पत्रादि पानन्दकृत्य ही लिखते थे। यह बहानके एक विद्वान इतिहास और धंगला ऐतिहासिक शब्दाभिधानका मशयिदा होइ गये हैं। हिन्दी विश्वकोषके प्रधान सम्पादक श्रीयुक्त गगेन्द्रनाथ वसु जिस समय बंगला 'विश्वकोष' बनते, उस समय पानन्दकृत्य 'कर्म', 'गीता' पादि शब्दोंपर चम्पूख निबन्ध लिख

भाषा और भाषका पादगं देखाते थे। गगेन्द्र वायु अपने सु'हने इनकी शतशः प्रशंसा करते और गुरुके समान पादरणीय समझते हैं। सन् १८८७ ई०की १४वीं सितम्बरकी सवेरे गोतापाठके उपरान्त रोगयातनाविहीन अवस्थामें महसा पानन्दकृत्यका प्राचवियोग हुआ।

पानन्दगिरि—गहराचार्यके अनुश्रिय। इन्होंने गहर-दिन्द्रिजय नामक पुस्तक बनाया, जिसमें गहराचार्यका चरित उलारा है। निधा इसके उपनिषद्वाच्य प्रश्रुतिकी टोका और वाक्यवृत्तिविवरण भी लिखा है। यह पति सुपण्डित व्यक्तित्व रहे। सन् ई०के ८म शताब्द इनका जन्म हुआ था।

पानन्दधन—दिल्लीके एक प्राचीन कवि। रागकल्पद्रुम और सुन्दरीतिलकमें इनकी कविता विद्यमान है। मिश्रमिहने इनकी रचना सुयं-श्रीमो प्रकाशमान बताया है। इनका कोई पूर्ण पुस्तक न रहते भी पांच सौ छोटी छोटी पुस्तिकायें देखनेमें आती है। महादेव प्रसादके बनावे साहित्यभूषणको देखते हैं यह जातिके काव्य और (सन् १०१८—१०४८ ई०) सुहृद्मदमाहके सुन्धी रहे। मरनेसे पहले सुदायनवाच करने लगे थे। नादिरशाहके मयुरापर अधिकार करते ही इनकी गत्यु हुई। सम्भवतः कोकसार इन्हींका बनाया है। कभी-कभी यह अपनेको घन-पानन्द भी लिख देते थे।

पानन्दज्ञान, पानन्दगिरि श्यो।
पानन्दज्ञानगिरि, पानन्दगिरि श्यो।
पानन्दचन्द्र—संस्कृत पानबोधक एवं प्रायचित्तोवसारके रचयिता।

पानन्दज (सं० त्रि०) पानन्दात् ज्ञायते, पानन्द-जन-ड, ५-तत्। पानन्दज्ञान, सुगीमे निकला हुआ। यह शब्द अत्युपमादिका विशेषण है।

पानन्दता (सं० स्त्री०) प्रसन्नता, खुशी, मञ्जुदारी। पानन्दतायें—माण्डूक्योपनिषद्वाच्य, गोताभाष्य, गोता-नात्पर्यनिर्णय, महाभारतनात्पर्यनिर्णय, तंतिरियोप-निषद्वाच्य पादिके रचयिता।

पानन्दयतोया (सं० स्त्री०) व्रतविशेष। वेयाच,

आर्य पयया पयहायप मासके गुरुपक्षकी यमीयाकी यह होता है। मांवित्रीके भापके लक्ष्मीने गौरीकी छोड़ दिया था। पीछे मङ्गादेवके उपदेशसे उन्होंने ब्रतकर लक्ष्मी पायी। (भक्तिरत्नम्)

पानन्द्यु (सं० पु०) पा-टु नदि भाये पयध् ।
पुस्तकः । न १११८६ । प्रीति, हर्ष, प्रमोद, पानन्द,
पान्हाद, सुमी ।

पानन्दद, पानन्द देवी ।

पानन्ददत्त (सं० पु०) पानन्दो दत्तो येन, बहुमी० ।
१ पानन्द देनेवाला उपस्थ । २ मित्र ।

पानन्ददेव—१ वल्लभदेवके पिता । कुमारसम्भवकी टीका प्रभृति पुस्तक इन्होंने लिखे थे। २ पद्मिप्रायश्चित्त-रचयिता ।

पानन्दधर—विद्याधरके शिष्य । इन्होंने माधवानल-कामकन्दना कथा लिखी थी ।

पानन्दन (सं० स्त्री०) पानन्दयत्यनेन, पा-नदि-पिषु करणे लुट् । १ गमनागमन कालमें बन्धुके पारोग्य स्वागतादिका प्रथ, पाने-जानेके वस्तु पञ्जीजकी मन्दुबन्धी धीर सुगामदेवी वगैरहका सवाल । २ गमना-गमनके समय पालिह्वन, पानेजानेके वस्तुकी हमामोमी । भाये लुट् । ३ सुखजनन, पारामदिही । ४ सभ्यता, शायस्तगी । ५ पानन्ददायक द्रव्य, सुग करनेवासी धीज ।

पानन्दनाय मलिकार्जुनयोगीन्द्र—नृसिंहके शिष्य धीर योगिनोद्भवदोषिका तथा श्रीविद्यापद्धति (मन् १५१४ ई०) नामक पुस्तकके रचयिता ।

पानन्दपट (सं० पु०) पानन्दनमकं पटम्, गाक० तत् । मयोद्गावन्न, नूतन मालिकाके विवाहका धरिद्राह वस्त्र, हूँह्वनकी योगाक ।

पानन्दपुर—मुजरातके पन्तर्गत एक प्राचीन नगर । वर्तमान नाम महुनगर है । पानन्द देवी ।

पानन्दपूर्व (सं० पु०) पानन्देन पूर्वज्जुमः । पानन्द-मय परमात्मा, परब्रह्म ।

पानन्दपूर्व सुमीन्द्र—समथानन्दके शिष्य । इनका उपाधि विद्यागार रहा । निम्नलिखित पुस्तक इनके रचनायें हैं—सुरेश्वरके उद्धारशकशक्तिरत्नकी व्याप-

कल्पमतिक्रमा नाम्नी टीका, पञ्चपादिकाटीका, ब्रह्मसिद्धि-व्याख्यान, वेदान्तविद्यासागर, महाभारतकी व्याख्या-रत्नावली धीर समन्वयसुवहसि ।

पानन्दप्रभव (सं० पु०) पानन्दः प्रभवः पपादानं यस्य, बहुमी० । १ रेतः, तुत्फा । २ बोध, ममी । ३ भूतादिप्रपञ्च, ज्ञानधर । श्रुतिके मतमें पानन्द-रूप परब्रह्मने जन्म लेने, पानन्दरूप परब्रह्मद्वारा जीति रचने धीर पन्तकाल पानन्दरूप परब्रह्ममें मिल जाने कारण प्राणिसमूहकी पानन्दप्रभव कहते हैं ।

पानन्दपथायी (हिं० स्त्री०) सुखका वाद्य, सुमीका वाजा ।

पानन्दबोधोद्यार्य—प्रभापरब्रह्माला-रचयिता ।

पानन्दबोधेन्द्र—एक प्राचीन टीकाकार ।

पानन्दभुञ्ज (सं० पु०) पानन्दं भुञ्जे, पानन्द-भुञ्ज-क्रिप् । परब्रह्मके साक्षात्कारसे पानन्द लेनेवाला, प्राज्ञ, तत्त्वज्ञानविगारद ।

पानन्दभैरव (सं० पु०) १ तन्मोक्ष शिष्यमूर्तिविशेष । २ रसोपधविशेष । यह तीव्र प्रकारका होता है । मन्—हिङ्गुन, विष, ध्योप, मरिच, टङ्गय एवं जातो-कोपकी बराबर-बराबर चूर्ण कर जम्बीरके रसमें घोंट छाले धीर रसी-रसीकी गोली बना ले । इसकी शिपनश्री गीताङ्गमन्त्रिवात शास्त्र ही जाता है । पीठ—हिङ्गुन, विष, ध्योप, टङ्गय धीर मन्त्रकका चूर्ण बराबर-बराबर छाल जम्बीरके रसमें दो प्रहर घोंटने धीर रसी रसीकी गोली बनानेसे तैयार होता है । यह खरातिघारके लिये महीषध है । शीघ्र—मद्गम्य, चूत हर्ष धीर रसकी चोदमें घोंटनेसे बनता है । दो गुप्ता मित्य पानेसे प्रमिष्ट दूर होता है ।

(१०१२१११११)

पानन्दभैरवो (सं० स्त्री०) १ रागविशेष । इनमें गहरामरप धीर भैरव दोनो राग मिले रहते हैं । २ पानन्दभैरव-देवकी पत्नी । इद्रयामलमें इनके प्रथका पानन्दभैरवने उत्तर दिया है । ३ वटी विशेष, दवाकी गोली । विषकी, जातोकोप (जावती), विष, त्रिहृत्क (सीठ, मिर्च, धोपल), मन्त्रक, लीहागा, नून-यस्वक, धतूरा वीर एवं हिङ्गुन बराबर ही

दिनभर विमयाके द्रवमें घंटी खोर चपकके समान पटी बनाये। इसे खाकर प्रभुवरीके मूलजा कपाय पीनेसे शीताङ्ग सखियात दूर होता है। (रवेन्द्रकाल'६४)

षानन्दमत्ता, षानन्दबोधिता: ६५।

षानन्दमय (सं० पु०) षानन्दः प्रभुवरीऽय, षानन्द प्रापुंयं मयद्। १ प्रभुरामस्वरूप परमात्मा। (त्रि०) २ षानन्दमसूहमस्य, सुग्रीसे भरा हुआ। (स्त्री०) स्त्रीप्। षानन्दमयी। तारामूर्तिविशेष।

षानन्दमयकोष (सं० पु०) षानन्दमयण परमात्मनः कोष इवावरकः। १ वेदान्तमतसे—पञ्चकोषके मध्य पञ्चम कोष, निहायत चन्द्रको रूह। २ षविद्या-स्वरूप कारणगौर। ३ सुपुति, गहरी नींद। ४ सत्य-प्रधानप्राण, मयो ममम्।

षानन्दयितव्य (सं० स्त्री०) षानन्दका विषय, सुखका इन्द्रियार्थ, मनुके शीज।

षानन्दयिता (सं० पु०) षानन्द देनेवाला पुद्गल, जो चादमी सुग कर देता हो।

षानन्दराज मज्जपति—मन्द्राजप्रान्तस्य विजयनगरके राजा। मनु ई०के १८७७ गताम्बिका इन्होंने मन्द्राजका मज्ज प्रान्त ब्रह्मणकी पंगरेज-संस्कारकी शोष दिया था।

षानन्दराम बहुया—षाशामके एक प्रसिद्ध विद्वान् खोर राजकर्मचारी। मनु ई०के १८७७ गताम्बिके मध्यभागमें एक लहत् संस्कृत-पंगरेजी षमिषान, बहु संस्कृत कोषपत्र खोर पत्रद्वारपत्र प्रकाश किया। पंगरेज-सरकारने इन्हेंको एक लहत् प्रादेमिक षमिषान बनानेका भार दिया था।

षानन्दराय पंगार—एक सुप्रसिद्ध शिवाध्य। मनु १७४८ ई०को इन्होंने जामोरमें यामीराय पिंगरासे धार प्रान्त पाया खोर यहाँ पपना पंग बड़ाया था। इनके स्वर्गमासी होनेपर सेधिया खोर होमकरने कई वार धारको जटा-मारा, किन्तु षानन्दराय द्वितीयकी पत्नी खोर रामचन्द्र पंगारकी धर्ममाता माती बार्की कीगियापीसे लष्टभट्ट म हुआ।

षानन्दकहरी (सं० स्त्री०) १ गहुरापायका बनाया हुआ स्त्रीत। २ इमें पायतौ-प्रगंशके षानन्दकी लहर

उठती है। २ बाध्यम्ब विशेष, एक राजा। छोटी डोलक-ऊँची खोखली लकड़ीका एक सुँह तड़ तथा दूसरा बड़ा होता खोर चमड़ेसे मढ़ा रहता है। फिर दूसरे छोटे बरतनके सुँह पर भी चमड़ा चढ़ाया जाता है। इन दोनों यन्त्रोंके चमड़ेमें बीबी बीध छेद बना तांत लगा देते हैं। डोलकको बायें फोछमें लटका खोर बरतनको बायें हायमें पकड़ छिपटोसे तांत बजाते हैं। यह कितनी ही गोपीयन्त्र-जैसे होती है।

षानन्दवन—रामतापनी उपनिषत्की टीका 'श्रीराम-कामिका'के रचयिता। यह एक प्रसिद्ध परमहंस परि-याजक रहे। २ सुषोषानस्वरूप कामोषेत्त, बनारस।

षानन्दवर्धन (सं० त्रि०) १ षानन्दकी बढ़ानेवाला, जो सुग्रीको दोषन्द कर देता हो। (पु०) २ एक संस्कृतवित् पण्डित, इनका बनाया 'धन्यालोचन' नामक पत्र विद्यमान है।

षानन्दवस्त्री (सं० स्त्री०) तैत्तिरीय उपनिषत्का द्वितीय विभाग।

षानन्दव्रत (सं० पु०) व्रतविशेष। इमें चैत्रादि चार मास व्रत खोर पीके यक्षयुक्त तिल किंवा हिरण्य दान करना पड़ता है।

षानन्दगर्मा (सं० पु०) 'ध्वजस्यादर्वय' नामक स्मार्त्त पत्रके रचयिता। इनके पिताका नाम रामगर्मा था।

षानन्दसम्भव (सं० पु०) षानन्दस्य ब्रह्मज्ञानस्य सम्भवः प्रकाशः, १-तत्त्वं। १ तत्त्वज्ञान-धारा ब्रह्म-ानन्दका प्रकाश। (त्रि०) षानन्दः सम्भवोऽस्य। २ भूतादि, प्राणी, सुग्री रखनेवाला।

षानन्दसम्मोहिता (सं० स्त्री०) नायिका विशेष। षानन्दमें मत्तो भांति मोहित हो जानेवाली प्रौढ़ा नायिकाको षानन्दसम्मोहिता कहते हैं।

षानन्दा (सं० स्त्री०) षानन्दयति, षानन्दि-षिष्य-पत्, षिष्यकोपः। १ विजया, भांग। २ बायिकी पुष्यलक्ष, धेला। ३ पाराराम-योतला। इसकी पत्नी सुगबूदार होती है। ४ सुदुपर्षी, सुगानी।

षानन्दार्थव (सं० पु०) षानन्दः पण्ये इय षमीम-खात्। १ ब्रह्मज्ञानन्द। २ परमेस्वर। ३ ज्योतिष-प्रसिद्ध योग विशेष।

पानन्दाश्रम (सं० पु०) एक प्राचीन टीकाकार ।
 पानन्दि (सं० पु०) पानन्द-इन् । १ धर्म, सुग्री ।
 २ कौतुक, तामाया । ३ महत्त्व नृसिंहके एक गिथ ।
 इन्द्रेनि प्रबोधानन्द-परमार्थोक्ति विरचित पंतन्य-
 चरिताश्रत नामक पत्रकी टीका लिखी है ।
 पानन्दि (सं० त्रि०) पानन्दि-इन् । १ इष्येयुष्, पुत्र ।
 २ छट, पाशुदा । ३ सुग्री, चाराम सेनेयाना ।
 पानन्दि-विष्-इन् । ४ अभिनन्दि, खुग किया हुआ ।
 पानन्दिन् (सं० त्रि०) पानन्दि-पिनि । १ पानन्द-
 युष्, पुत्र । पानन्दि-विष्-पिनि । २ पानन्दजनक,
 पुत्र कर देनेयाना । (पु०) पानन्दी । (स्त्री०)
 पानन्दिनी ।
 पानन्दी (सं० स्त्री०) पानन्दयति, पानन्दि-विष्-
 चष्, गोरदि० टीप् । हृद्यविग्रेय, एक पितृ ।
 पानन्दीयः । (त्रि०) पानन्दिन्-इयो ।
 पानन्दादयरम (सं० पु०) रसभेद । पारद, गन्धक,
 भीक्ष, चम्पक एवं विष समान्, मरिच चट और सोडागा
 चतुर्गुण खाद भद्रराजरम, अश्व तथा दाहिसकी
 मात्र भाषना देनेसे यक्ष बनता है । मन्थ्याकी गुच्छाद्य
 वर्धयच्छर्म पाननेसे पाण्डुरोगकी दूर करता है ।
 (चिकित्साशास्त्र)
 पानपत्य (सं० स्त्री०) पसन्तागता, लावण्य,
 अपुत्रता ।
 पानपान (हिं० स्त्री०) पमक-टमक, मज्जपत्र,
 तड़क भड़क, रद्रुष्य, ठाटवाट, चदा-चन्द्राञ्ज, तर्ज-
 तरीक ।
 पानभिर्यात (सं० पु०) पानभिर्यातके एक वंशजका
 नाम ।
 पानम (सं० पु०) नति, चापका प्रसारण, मुक्ताय,
 कमानुका धेसाय ।
 पानमन (सं० स्त्री०) पानमन्ये चापसोक्रियते इति,
 पानम करके सुट । १ मन्त्रोपके निमित्त पचाइमनादि
 मन्त्रना, दृष्टीकी पुत्र करनेके क्रिये पीके चर्मने चगे-
 ररका मुक्ताय । भाषि सुट । २ मन्त्रक नति, याना
 मुक्ताय । पानम-विष्-चष् । ३ मन्त्रनासम्पादक
 व्यापार, नरमीका काम ।

पानमित (सं० त्रि०) पानम-विष्-इन् इत्, विष्-
 लोपः । चापजित, पानमीकृत, पाकुलीकृत, भुक्ता
 हुआ, भुक्ताया गया ।
 पानम्य (सं० त्रि०) पानम-विष्-यत् । १ मन्त्र
 समाने योग्य, भुक्ता देने कावित्त । (चष्०) पानम-
 लप् । मत हो या नमस्कार करके, नरमीके माय,
 पदच वजाकर । इसी अर्थमें 'पानम्य' शब्द भी
 पाता है ।
 पानय (सं० पु०) पानो भाषे चष् । १ देगमें
 देगाश्रकी से जानिका कार्य, सवायी, सेते पानिका
 काम । पानोयते वेदाध्ययनाय पत्र, पापारे इत् ।
 २ चपनयनमंस्कार, लनेयु देनेका काम ।
 पानयन (सं० स्त्री०) पाव इयो ।
 पानयितव्य (सं० त्रि०) पानयनयोग्य, से पाने
 कावित्त ।
 पानर (सं० स्त्री० = Honour.) पादर, चर्चप, इज्जत,
 चदय, चावट ।
 पानरेविभ (सं० त्रि० = Honourable) पादरकीय,
 इज्जतदार । यक्षे तथा छोटे नाटकी कौन्सिलके
 भिष्य, हाईकोर्टके जज और कुछ निर्वाचित व्यक्ति
 को पानरेविभ कहते हैं ।
 पानरेरी (सं० त्रि० = Honorary.) १ पचेतनिक,
 पनामकर, इतिव्याप्ती, ताजीमी, मुफ्तमें काम करने-
 याना । जो भोग पादरके लिये काम करते और
 धनमादि कुछ नहीं लेते, वही पानरेरी कहते हैं—
 जैसे पानरेरी मजिस्ट्रेट, पचेतनिक विचारपति और
 पानरेरी मेकटरी, पचेतनिक मन्त्री । २ बिना लाभ
 किया जानेयाना, जो मुफ्तमें हो ।
 पानर्त (सं० पु०) पान्त्वते इत, पापारे चष् ।
 १ मृत्युमाना, नाचघर । २ युद्ध, मनुष्यो । भाषे चष् ।
 ३ नर्तन, नाच । ४ अर्थसंग्रह एक राजा । इतिवर्षाके
 १००० अध्यायमें इनका विषय विवरण दिया गया है ।
 ४ पानर्तसंज्ञकत कनपदविमेष । पट देग मुक्ता-
 रतमें पचयित है । पचमान नाम पाठियाइ
 है । पानर्तकी राजपायी दारका या कुमरुनी
 रथी । कविग इयो । ५ पानर्तदेगयायी जन, पानर्त

मुक्कका वागिन्दा । ६ पानतंदेयीय राजा ।
 ७ चन्द्रवंशीय एक राजा । हरिवंशके ३२५ अध्यायमें
 लिखा है—पानतके पितामहका वर्षकेतु, पिताका
 विभुराज और पुत्रका नाम सुकुमार था ।
 (क्री०) कर्तार चप् । ८ लज, पाने । तरङ्ग, नृत्य
 कोसा देवा पड़नेसे जनको पानत कहते हैं । (ति०)
 ८ नतक, रक्षाभा, मधनिया, मधवेधा, माधनेगाना ।
 पानतक (सं० ति०) पाशुत्यति, पाशुत्-पुञ्ज् ।
 १ नतक, मधनिया । पानतंदेमे भयम्, पुञ्ज् ।
 २ पानतंदेमजात, पानतं मुक्कका पेदा ।
 पानतंनगरी (सं० स्त्री०) पानतं देगकी राजधानी ।
 पानतंपुर (सं० स्त्री०) पानतं देगय्य प्रधानं पुरम् ।
 द्वारवती पुरी ।
 पानतीय (सं० ति०) पानतंदेमे भयः, वृहत्वाच्छ ।
 १ पानतं देगजात । (पु०) २ व्यहिविमेय, किछी
 यज्जका नाम ।
 पानयंय (सं० स्त्री०) पनयंय्य भावः, यञ् ।
 दशताका पभाव, पयोध्वता, नाकाबलियत, बद् पन-
 सुमी । २ निष्पू योजनल, धिमुनफातो, धिपुदी ।
 पानसवि (सं० पु०) व्यहिविमेय, किछी पादमीका
 नाम ।
 पानथ (सं० ति०) पनिति पाशुः प्राची तन्वेदम्,
 पन-ठप्-पच् । १ मानवीय, इमानो, मानपायो ।
 २ दयालु, परोपकारगोन, पौरपाच, भला चाइने-
 वाका । (स्त्री०) पानथी ।
 पानय्य (सं० स्त्री०) पानोर्नरयेदम्, यत् । नर-
 मय्यथीय तन्त्रोक्त दी प्रकारका मन ।
 पानस (सं० ति०) पनसः शकटम्य पितृयो इदम्,
 पच् । १ शकटमय्यथीय, गाइने तानुक् रउनेवाना ।
 २ विदसमय्यथीय, विदरी, वापमे मय्यथ रउनेवाना ।
 पाना (हिं० पु०) १ पाणक, गण्डा, इपयेका १६वां
 द्विष्ठा । चार पैमे या बारह पाईका एक पाना
 होता है । २ किछी पस्तुका घोड़गांय, किछी चीजका
 १६वां द्विष्ठा । ३ पागमन, पामद । (क्रि०)
 ४ पागमन करना, पाने बढ़ना, किछीकी और कदम
 रचना । ५ गुजरना वाके, होना, पीतना । ६ प्रत्या-

वर्तन करना, छोटना । ७ चारम्भ होना, लगना ।
 ८ फलपुष्प प्रदान करना, फलना-फलना । ९ उत्पन्न
 होना, निकलना । १० परिपक्व होना, एक जाना ।
 ११ खरलित होना, टोला पड़ना । १२ चढ़ना, छा
 जाना । १३ देख पड़ना, नमूदार होना । १४ पशुं
 जाना, दाखिल होना । १५ बिकना, फरोख्त होना ।
 १६ तैयार होना, कमर कसना । १७ मिलना, हाथ
 लगना ।
 पानाकानो (हिं० स्त्री०) १ पनाकर्षन, सुनी-
 पनसुनी, कान न देनेका काम । २ बहानेबाजो, टाल
 मटोल । ३ गुप्तपार्तो, कानाफूसी ।
 पानायु (सं० पु०) इक्षुतुष्या, कास ।
 पानाय्य (सं० स्त्री०) पनाय्य्य भावः, यञ् । स्वामि-
 गृह्यत्व, पतिराहित्य, यतीमी, मानिक न रह की
 दानत ।
 पानानास (Ananassa sativa) पनयास, एक पेड़ ।
 इसका पत्ता किनारे-किनारे तिरछे तौरपर कटा और
 फलपर चाँप-जैसा दाग रहता है । फलके ऊपरसे
 छाल निकलती है । कच्चा पनयास हरा और पक्का
 पूर पीला होता है । फलके भीतर छोटा-छोटा
 बीज रहता है । पक्का पनयास यकला अच्छीतरह छील
 छालनेसे पानेमें अच्छा लगता है । पाजकल भारत-
 वर्षके पनीस स्थानमें उगता पनयास उत्पन्न होता है ।
 कोयी-कोयी कहता, कि यह दक्षिण अमेरिकाके ब्राजिल
 प्रांतका वृक्ष है । सन् १५८४ ई०को पोर्तुगीज इसे
 दक्षिण-अमेरिकासे भारतवर्ष लाये थे । किन्तु अबुल-
 फुज्जन्ने आईन-एकबरीमें पनयासका उल्लेख किया
 है । इसका बहुमे बड़ा फल कोई १४ सेर तक वजनमें
 बैठता है । थ्रीड्ड (मिलठट)का पनयास पति
 समित और सुखादु होता है । बङ्गालमें कितनी ही
 जगह वृक्षके नीचे इसे लगाया करते हैं । किन्तु
 अधिक छाया इसके निधि उपयोगी नहीं ठहरती ।
 मटोकी पक्षसे अच्छीतरह बना—पुनाके तर जमीनमें
 पनयास लगाना चाहिए । अधिक छायामें इसे लगाना
 मना है । यर्षाकालमें इसका फल परिपक्व होता है ।
 पनयासके पत्तेका रोगा वारीक, साफ और बोभकी

हरदारत करनेवाला है। पत्ते को १८ दिन पानीमें
 बुझोकर रखनेमें बहुत सुन्दर रंगा उत्तरता है। हार
 विरोधके लिये भारतमें उमकी पावप्रकृता रहती
 है। रंगा रंगमके स्थानमें व्यवहृत होता और लन
 या लदेमें भी मिलाया जाता है। यह चीने और
 विरोधके बड़े काम पाता है। उममें घटाई और
 कामग्न बनाते हैं। किनिपार्सन दोपपुष्पमें पन-
 चामके रंगमें कपड़ा तैयार किया जाता है। रङ्ग-
 पुरके पमार उममें कृता गाठते हैं। भारतवासी पत्तेके
 नये रमकी छमिनामक और रङ्गगोधक मगभते हैं।
 उम पत्तेके पानोमें मिलाकर पिनानेमें चमका छमि
 मर जाता है। परिपक फलका विरुद्ध रम पेटकी
 कुङ्कुटो तथा पाण्डुरोगकी दूर करता, पेमाव खाता,
 यमीना बढाता और ठण्डा होता है। पत्तेका नया रम
 पीनेमें द्विचकी नहीं पाती। कथा पनचाम रानेमें
 गांवात होता है। पत्तेके रंगे चमका ताजा रम
 बीनीके माघ मिलाकर पीनेमें रचक है। इसका फल
 भी रङ्गगोधक है। मरुके पाम मनपर-रट और ब्रह्म-
 देगमें पनचाम बहुत उत्पन्न होता है। इसका तेन
 मिठाईमें खाद बुढानेकी काम देते है। पनचाम देवी।

पानाम्य (सं० सि०) पान-मम् कर्मणि स्यम्, पानिद-
 यत्वात् इत्याभावः। नमस्कार्यं, मलाम किये जाने
 काविल, जिनके लिये भूकना पड़े।

पानाय (सं० पु०) पानीयते मत्स्यायनेत्र, पा-नी
 करणे घञ्। पानायते। प ११, ५४। मत्स्यादि
 वक्रकृतेके निमित्त मत्स्यादि निर्मित जाव, मष्टकी
 मारनेका काम।

पानायिन् (सं० सि०) पानायति, पा-नी-पनि।
 १ पञ्च। कामने किमीको स्थानान्तरमें ले जानेवाला,
 जो किमीको एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचा देता
 है। (पु०) पानायो। (की०) पानायिनी।

पानायो (सं० पु०) पानायो जायध्यादि, पागाय-
 युक्तिः, आश्रित, मनुका, और, माहीनीर।

पानायो (सं० पु०) पानायते वाचस्पत्यादीनां
 पानायते, पा-नी-पञ्च, निवां- पाणदेवः।
 पानायते वाचस्पत्यादि। १ पानायते द्विपानायिनिव,

यह गांधेपत्यसे लेकर दक्षिणकी ओर रखा जाता है।
 (सि०) २ समीप उपस्थित बिया जानेवाला, जो
 मनुदेक लाया जाता हो। (चम्य०) ३ मंगाकर,
 बुलवाके, इकट्ठाकरके।

पानाह (सं० पु०) पानाह-घञ्। १ टैप्यं, मम्भार।
 प्रधानतः बलके देव्यंको ही पानाह कहते हैं। पान-
 हते घपमरघमतिरोधेन वध्यते विरुद्धाद्यनेन, वा-
 मह करणे घञ्। २ विरुद्धरोधक ध्याधि, कोठबह,
 पाधाना और पेमाव रोकनेवाली बीमारी। इसका
 लक्षण इस प्रकार है—जब पानामयमें पाम एकवार
 भर जाता या क्रमगः बार बार बहुत, तब वायु कुपित
 हो इमें उत्पन्न करता है। यह रोग पैदा नहीं होता।

पानादिक (सं० पु०) पानाह पागाहुरोगप्रतीकारे
 विहितः, ठक्। १ पानाह रोगके प्रतीकारका विधि,
 पाधाना और पेमाव बन्द होनेकी बीमारी दूर करने-
 का तरीक। (सि०) २ पानाह रोगमें ध्यवहृत
 होनेवाला।

पानि, पान देवी।

पानिधेय (सं० सि०) पा ममन्ताविधीयते, पा-नि-धि
 कर्मणि यत्। समन्तात् सप्तमीय, पारो और इकट्ठा
 किया जानेवाला।

पानिहृत् (सं० सि०) पानिहृत्स्यापत्यम्, उट्टित्वात्
 घञ्। पानिहृत्ते उत्पन्न। उपापति पानिहृत्के पुत्र
 या कन्यारूप मन्तानका यह मण्ड विधीयत है।

पानिहंत (सं० सि०) पानिहंत एव, ह्यर्थं घञ्।
 १ पुत्र्यं वीतिमें पमारमें निकला हुआ, जो बिनकुन
 दुनियामे बाहर चला गया हो। (पु०) २ पविनहर
 मन्त्रि, भाङ्गवान कुदरत। ३ देवद्वय तुला देवता
 विधेय। (श्री०) पानिहंता।

पानिय (सं० सि०) पानिभ्येदम्, पानिय-घञ्।
 १ वायु मन्त्रयोग, हवाधे। (पु०) पानिंघां देवताप्य।
 २ वायुदेवताके लिये इपनीय हवादि। ३ इन्मान्।
 ४ भीम। वायुमें उत्पन्न पानि कारण पन्मान् और
 भीममल पानिल कहते हैं।

पानिला (सं० पु०) त्रहाङ्के लट्ठकी कुट्टी।

पानिलि (सं० पु०) पानिभ्योपत्यम्, पानिय-घञ्,

हरदायत करनेवाला है। पत्तेको १८ दिन पानीमें टुबोकर रफनेकी बहुत घुस्कर रंगा छतरता है। चार पिटोनेके लिये भारतमें उमकी चामरगुठता रहती है। रंगा रंगमके पतनमें व्यवहृत होता और लन या र्दईमें भी मिलाया जाता है। यह सीने और पिटोनेके बड़े काम आता है। उमकी घटाई और कागज बनाते हैं। जिलिपार्सन होपपुष्पमें पन-सामके रंगीन कपड़ा तैयार किया जाता है। रङ्ग-पुरके चमार उमके जूता गांठते हैं। भारतवासी पत्तेके लये रंगको छमिनामक और रङ्गगोधक समझते हैं। उमके पत्तेके पानोमें मिलाकर विधानोमें पन्सका छमि मर जाता है। परिपक फलका विग्रह रम पेटकी कुड़कुड़ो तथा पाय्दरोगकी दूर करता, पैमाव लाता, पमीना बढाता और ठण्ठा होता है। पत्तेका नया रम पीनेमें हिचकी नहीं पातो। कथा पनसाम रानोमें गर्भपात होता है। पत्तेके ज्येत पंगका ताजा रम थोनीके माथ मिलाकर पीनेमें रीचक है। इसका फल भी रङ्गगोधक है। मछीके पाम मनघर-तट और ब्रह्म-देगमें पनसाम बहुत उत्पन्न होता है। इसका तेल मिठाईमें खाद बढानेकी छान देते है। चमरगुठो।

शानाम्य (सं० ति०) शानाम्य कर्मणि श्यत्, चमिर्-कत्वात् प्रत्याभावाः। नमस्तार्थ, मलाम किये जाने काविम, जिनके लिये भुजना पड़े।

शानाय (सं० पु०) शानोयते मत्स्यापनेन, शानो करणे घञ्। शानाम्यः। वा १.१ (११)। मत्स्यादि पकडनेके निमित्त मत्स्यादि निमित्त जान, महली मारनेका हाम।

शानायिन् (सं० ति०) शानायति, शानो-णिनि। १ एक व्यासकी किमीको व्यासाश्रममें से शानेवाला, जो क्रिषीको एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचा देता है। (पु०) शानायो। (स्त्री०) शानायिनी।

शानायी (सं० पु०) शानायी शानप्याश्रित, शानाय-इनि। शानिक, मत्स्या, धोवर, माहीगीर।

शानाय (सं० पु०) शानायते शार्ङ्गवन्दादानोय संश्रियतेऽने, शानो-शान्, निपा० शानादेशः। शानायोः। वा १.१ (११)। शिदमगिह दक्षिणाग्निर्विदेय,

यह शार्ङ्गवन्दमें लेकर दक्षिणकी ओर रखा जाता है। (ति०) २ शमीप उपस्थित किया जानेवाला, जो मज्जदीक लाया जाता है। (पद्य०) १ मंगकर, बुनवाके, इकट्ठाकरके।

शानाह (सं० पु०) शानह-घञ्। १ देव्यं, मन्वारं। प्रपानतः वृष्टके देव्यंको ही शानाह कहते हैं। शान-श्रुते पपमरचपरिरोधिन बध्यते विष्णुतापमेन, शानह करणे घञ्। २ विष्णु तरोधक व्याधि, फोठबह, पाषाणा और पैमाव रोकनेवाली बीमारी। इसका लक्षण इस प्रकार है—जब शामामयमें पाम एकबार भर जाता या क्रमगः बार बार बढ़ता, तब वायु कुपित हो रही उत्पन्न करता है। यह शायं पैदा नहीं होता।

शानाहिक (सं० पु०) शानाहे पाषाणरोगप्रतीकारे विदितः, ठक्। १ शानाह रोगके प्रतीकारका विधि, पाषाणा और पैमाव बन्द होनेकी बीमारी दूर करनेका तरीक। (ति०) २ शानाह रोगमें व्यवहृत होनेवाला।

शानि, शान श्वी।

शानिषेय (सं० ति०) शानमन्त्रादिषेयते, शानि-वि कर्मणि घत्। समन्तात् मघमोय, शारो और इकट्ठा किया जानेवाला।

शानिहह (सं० ति०) शानिहह्यापयत्, छटित्वात् पच्। शानिहहो उत्पन्न। शपापति शानिहहके पुत्र या कन्याद्वय मन्त्रानका यह शब्द विनोयक है।

शानिहंत (सं० ति०) शानिहंत एव, शार्ङ्गं पच्। १ पुष्यं रीतिमें शंभारसे निकला हृषा, जो विनकुल दुनियामें बाहर चला गया हो। (पु०) २ शनिमन्त्र प्रकृति, शान्शान कुदरन। ३ देवहृदय तथा देवता विनोयः। (स्त्री०) शानिहंती।

शानिम (सं० ति०) शानिमन्तम्, शानिम-पच्। १ वायु मन्त्रोय, हवायोः। (पु०) शनिभो टेरताप्य। २ वायुदेवताके लिये हवनीय एतादि। ३ इन्द्रमातृ। ह भीमः वायुमें उत्पन्न होने कारण इन्द्रमातृ और मोक्षमेन शानिम कहाने हैं।

शानिसा (सं० पु०) शानाहके कट्टरको कुण्ठी।

शानित्ति (सं० पु०) शानिमन्त्रापयत्, शानि-हह,

मना समस्तको प्राग जो जाता है। दक्षिणत रोप्य
पान्थरीय शब्दोदत्तविच्छेद कालकर यथासं रथ दिनेपर
यदि एक सुष्ठुमें मर्षी विगड़ता, तो धार सम
गात्र कदाता है। (पान्थरीय, १)

पान्थरीय, पान्थरीय शब्दः।

पान्थरीयक (मं० ति०) पान्थरीये भवम्, पुष्प।
पान्थरीय-जात, रागी, जमीन्की गर्दनमें पैदा होने-
वाला।

पान्थरीयिक (मं० ति०) पान्थरीयं भवम्, ठक्।
गन्धमध्य जात, एक गन्ध वा जातिकी भिन्न श्रेणीमें
उत्पन्न।

पान्थरीयिक (मं० ति०) पान्थरीयं भवम्, ठक्। वृद्ध-
मध्यजात, मझानुके पन्धर होनेवाला।

पान्थरीयिक, पान्थरीय शब्दः।

पान्थरीय (मं० स्त्री०) पान्थरीय भावः, यच्। पान्थ-
वर्तित्व, निश्चयत सुष्ठुपिण मातृदारी।

पान्थरीय (मं० स्त्री०) पान्थरीय, यच्। पान्थरीय-
टाप्। एतेषा भगिनी, पान्थरीय, यद्गी वृद्ध।

पान्थरीय (मं० स्त्री०) पान्थरीय, यच्। पान्थरीय-
श्रीर्षः। पान्थरीय शब्दः। यच्। पान्थरीय
विष्णुश्रीर्षः। पान्थरीय। १ दासुयाचक गाडीविमेव,
इया निश्चयनेवाणी एक पान्थरीय। (ति०) पान्थरीय-
यच्। २ पान्थरीय-यच्। पान्थरीय तासुक्, रपान्थरीय।
(स्त्री०) पान्थरीय।

पान्थरीय (मं० ति०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
रपान्थरीय।

पान्थरीय (मं० पु०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
भोगीकी एक शक्ति।

पान्थरीय (मं० पु०) पुनः पुनः दोबल, भुञ्जान।

पान्थरीयक (मं० पु०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
१ दोबलकर्ता, भुञ्जानेवाला। २ किमी विषय-
की पान्थरीय करनेवाला, जो कोई बात उठाना
हो।

पान्थरीयक (मं० स्त्री०) पान्थरीय-यच्।
१ प्रेक्षक, भोजक, पेंग। २ कल्प, कल्पनी। ३ पन्थ-
रियान, धोज। ४ विवेचन, परेष।

पान्थरीयक (मं० ति०) पान्थरीय, मिश्रित, भोजक
पान्थरीय।

पान्थरीय (मं० पु०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
मात्र।

पान्थरीयक (मं० पु०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
पापक, मानवायी।

पान्थरीयक (मं० स्त्री०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
दृष्टं साम, यच्। यतोग मन्थरीय रीय पान्थरीयमान
सुष्ठुगत सुष्ठु विमेव।

पान्थरीय (मं० स्त्री०) पान्थरीय भावः, यच्। पान्थरीय-
नाथीनायी, चंद्रनायी।

पान्थरीय (मं० पु०) पान्थरीय-यच्। १ सनपद विमेव,
तामिल धोर तिसु सुष्ठु। (ति०) २ पान्थरीय-
मन्थरीय, तिसु धोर तामिल सुष्ठुकी तासुक् रपान्थरीय-
वाला। यच्। पान्थरीय शब्दः।

पान्थरीयक (मं० स्त्री०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
धोर तामिल सुष्ठुकी सुपारी। यच्। पान्थरीय-
किञ्चित् पान्थरीय, सुपार, पान्थरीय धोर सुपारजाचकर
होता है। (पान्थरीय, १)

पान्थरीय (मं० ति०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
यच्। १ मन्थरीय, पान्थरीय, पान्थरीय सुष्ठुकी, जो
पान्थरीय वा मया हो। २ पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
तासुक् रपान्थरीय। (स्त्री०) पान्थरीय।

पान्थरीयक (मं० ति०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
यच्। पान्थरीय-यच्।

पान्थरीयक (मं० स्त्री०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
यच्। पान्थरीय-यच्।

पान्थरीयक (मं० ति०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
ठक्। १ पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-यच्।
२ पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-यच्।

पान्थरीयक (मं० स्त्री०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
यच्। पान्थरीय-यच्। (पान्थरीय-यच्)
पान्थरीय शब्दः।

पान्थरीयक (मं० ति०) पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-
भवम्, ठक्। पान्थरीय-यच्। पान्थरीय-यच्।
पान्थरीय, यच्। पान्थरीय-यच्।

पाप्मोचिकी (सं० श्लो०) गवधारण ईसा पर्या-
 कोचना सा प्रयोक्तव्याः, ठक् । १ तर्कविद्या, इन्द्र-
 मन्त्रिक । 'पाप्मोचिकी इत्यनेन विद्वान्कथयति' (५५८)
 २ द्रोतम प्रयोक्तव्या विद्या । पचपादने इमं पाप
 कथायामे पुरा क्रिया है । पादिम सुतमे प्रमाच,
 प्रमि, संसु, प्रयोक्त, इत्यादि, चवच, तर्क, निरुच,
 चार, कल्प, वितप्या, ईत्याभाव, इम, क्राति पौर
 निवहवा विषय है । इतो मन्त्रमन्त्रात्कं तत्रप्रमाण
 हेतु मोक्ष मित्रता है । पम्पोचा मोक्षमप्याः तप्ये
 वितं वा, ठक् । १ सुता ।

पाप्मोच (सं० श्लो०) अनुमता पयो यमिन्, अनु-
 च्य-ईत् । पाप्मोचोऽन्वयः । पाप्मोचः अनुकूलन,
 मीहवाग्नेः ।

पाप्मोचक (सं० श्लो०) पाप्मोचं व्रतने, ठक् । अनुकूलन,
 मीहवाग्नेः ।

पाप (सं० पु०) पाप्मने, पाप कर्मवि यत् । १ पट
 वस्तुके चत्वारंश चतुर्षे यत् । पातो वस्तुके नाम यत्
 है—धर, ध्रुव, सोम, पाप, पतिव, पनन, प्रकूप,
 प्याम । पापं ममूहः, पचः । २ कर्मममूह, पापको
 ट्टर । पाप्मने सर्वं व्याप्नोते । ३ पाचका, गह जगह
 मोक्ष इहनेशना पापमात्र । समाप्तकर्म इम मन्त्रका
 पते 'पापवना' कल्पता है । जेमे—दुराच, मुक्तिवली
 मित्रनेशना । (वि० मर्थ०) ४ सच, सुद । इम
 परमं यत् व्रतन, मन्त्रम धोर च्य मोक्षो मुदपके भिये
 पाता है । जेमे—मे पाप कइता अं, गुम पाप
 चने ज्ञानो, गह पाप मन्त्र संगा । १ गुम । २ यत् ।
 पयोक्त दोनो चर्मं यत् पादरगुहक है । ७ परमिग ।

पाप-पाप कर्ता (वि० श्लो०) पादर देना, इत्यत
 मद्राभा, सुयामद देवाना ।

पापक (सं० श्लो०) पाप-व्याप्ति वत् । प्रापक,
 पचुं चर्मावाला, जो कर्मको छोड़े सोज या जगह
 नर्म रच सुईया करता है ।

पापकर (सं० श्लो०) अपकर भयम्, चप् चक्षुः ।
 'अपकर-ज्ञान, मागधार, सुरा ।

पापक- (सं० श्लो०) पा ईयत् पकम्, पा-पच-ल ।
 चन्व पक द्रव्य, कृक पको इई सोज ।

पापचिति (सं० पु०) पापचित्यापत्यम्, इज् ।
 पापचितका पुत्र । (श्लो०) चम् टाप् । पापचित्या ।
 कोपतिव । पापचितः । पापचितिकी कथा ।

पापगा (सं० श्लो०) पापं ममूहः पापमोक्ष तयिन्
 वा गच्छति, चप्-चप्-गम-ठ । नदो, दरवा ।
 'नदी वरिण इत्यनेन विवक्ष्यते' (५५८) चत्ता ईयो ।

पापगात्रय (सं० श्लो०) नदीजल, दरवाका पानो ।
 यत् दोषन, कच, वातन, मयु पौर सेवन होता है ।
 (५५८)

पापगावारि, चन्वचन ईयो ।
 पापगात्रमिभ, चन्वचन ईयो ।

पापमिथ (सं० पु०) पापगायां गङ्गायां भवः । गङ्गाके
 पुत्र भीष, गाङ्गेय ।

पापचिह्न (सं० श्लो०) पापटं विकृति क्षिणति,
 पापद-चिह्न-चप्, इयो० ककोपः । पापत् चङ्गा
 देनेवाला, जो सुचोबत छोडा देता है ।

पापटव (सं० श्लो०) न मति पटवाऽप्य तप्य भावः ।
 पयाटव, मदावन ।

पापव (सं० पु०) पापपापति विकृताये मम्यक्
 सुपति प्रगच्छति द्रव्यमत्र, पापव पयोदरादित्यात्
 आधारे य । क्रयविक्रयस्थान, इह, बाजार, दुकान,
 शिवनेके लिये जिन जगह पपनी-पपनी सोजकी
 तारोक्ष को लाये ।

पापविक (सं० श्लो०) पापपापिपयाया पागतम्,
 ठक् । १ इहागत, बाजारके पाया दुपा, बाजार ।
 पापवराप्य धर्मम् । २ बादिजगमम्यो, मोदागरो,
 तिजारतो । (पु०) पापवप्य विक्रयः राजपादाः ।
 ३ इहवा राजकर, बाजारकी पुत्री । पापपापति
 विकृताये टप्यं शोति, पा-वच-इकम् । पाप चिह्न-
 टिपिजिताः । चप्, पाद । ४ बलिक्, मोदागर ।
 'पापविकी वरिण' (५५८)

पापवत्, चन्व ईयो ।
 पापत (सं० श्लो०) चन्व ईयो ।

पापतत् (सं० श्लो०) मयिकट, पा पङ्कनेवाला, जो
 पाप पङ्क रथा है । (श्लो०) पापतली ।

पापतन (सं० श्लो०) पा-पत-भायै शरट् । १ पाप-

२ महाभारतका एक सुद्र पर्व। यह शान्तिपर्वके अन्तर्गत है।

आपधाप, आपाधापी देखो।

आपन (सं० स्त्री०) आप भावे ल्युट्। १ प्राप्ति, पहुँच। कर्मणि-ल्युट्। २ मरिच, मिर्च। (हिं० सर्व०) ३ अपना, ख जाति।

“आपन अरित कदा मे गावो।” (तुलसी)

आपनपी, अपनपी देखो।

आपनपी, अपनपी देखो।

आपना, अपना देखो।

आपनिक (सं० पुं०) आपनाय्यते जनैः स्तूयन्ते, आपन-इकन्। १ इन्द्रनीलमणि, सफ़ीर, नीलम्। २ किरात, व्याध, सेयाद, बहेलिया।

‘आपयिकः इन्द्रनीलः किरातश्च।’ (उपनिषद्)

आपनेय (सं० त्रि०) आ-अप-नी कर्मणि यत्। प्राप्त किये जाने योग्य, पाया जानेवाला।

आपनी, अपना देखो।

आपन्न (सं० त्रि०) आ-पद्-क्त। १ आपद्ग्रस्त, सुखीवतजदा, तकलीफ़में पड़ा हुआ। २ प्राप्त, पाया हुआ।

आपन्नसत्त्वा (सं० स्त्री०) आपन्नं प्राप्तं सत्त्वं गर्भरूपः प्राणो यथा, बहुव्री०। गर्भिणी नारी, जामिला औरत।

‘आपन्नसत्त्वायाद् गर्भिणीत्ववो च गर्भिणी।’ (अथर)

आपन्नार्ति-प्रशमनफल (सं० त्रि०) दुःखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाला, जो आफतजदोंका दर्द मिटा देता हो।

आपमित्यक (सं० त्रि०) आपमित्य परिवर्त्य निर्वृत्तम्, कक्। अपमित्य याचिगामा कक्क्री। पा ३।३।२। १ विनि-मयसे क्रय किया हुआ, जो बदलेमें खरीदा गया हो। (स्त्री०) २ विनिमय द्वारा क्रय किया हुआ सम्पदादि, जो जायदाद वगैरह बदलेमें मिली हो। (स्त्री०) आपमित्यकी।

आपया (वै० स्त्री०) आपेन जलसमूहेन याति, आप-या-क। वेदोक्त नदी विशेष। यह कुश्चेदकी मध्य सरस्वतीके समीप अवस्थित थीर पुराणमें आपगा नामसे प्रसिद्ध है।

आपयिता, आपयित देखो।

आपयित (सं० पुं०) अप-यिच्-टच्। प्रापयकर्ता, सुहैया करने या पहुँचानेवाला।

आपराधय्य (सं० स्त्री०) अप-राध-यिच् बाहु० अ अपराधयः तस्य भावः, यञ्। गुणवचनान्नादिभ्यः कर्मणि च। पा ३।१।२४। अपराधकर्तृत्व, गुणहारी।

आपराधिक (सं० त्रि०) अपराधे भवन्, उन्। पूर्वादापराधार्थमूलप्रतीवाकलापयन्। पा ३।१।२८। अपराध-जात, अपराध-व्यापक, दिनके तीसरे पहर होनेवाला। (स्त्री०) आपराधिकी।

आपरूप (हिं० वि०) १ स्वरूपविशिष्ट, अपनी सूरत-शकल रखनेवाला। (सर्व०) २ स्वयं आप, खुद वध, हुजूर, हज़रत।

आपत्तुं क (सं० पुं०) ऋतुमधिकृत्य अध्यायः तत्र विहितः कल्पः, अप-ऋतु संज्ञायां कन् सार्धे अप्। १ ऋतुविशेषमें यागादिके निमित्त निर्दिष्ट अध्याय-बोधक वेदका कल्पग्रन्थ। (त्रि०) २ नियमित समयसे सुक्त, जो मौसमखासमें षटका न हो। (स्त्री०) आपत्तुंकी।

आपव (सं० पुं०) आपुनाति स्वर्गमात्रेण आपु जलं तदधिष्ठाता वरुणोऽपि आपुः तस्यापत्यम्, अप्। कल्पभेदसे वरुणके अपत्य यशिट् सुनि। महाभारतीय आदिपर्वके ८८वें अध्यायमें इनका विवरण लिखा है।

यशिट् देखो। आपं जलसमूहं वाति आश्रयतया प्राप्नोति, आप-या-क। २ नारायण, परमपुरुष। सृष्टिसे प्रथम नारायणका आवासस्थान जल रहा। इसका विशेष विवरण हरिवंशके १२ अध्यायमें विद्यमान है। आपवर्ग्यं (सं० त्रि०) अतिकल्प मोक्ष देनेवाला, जो आखिरी निजात वक्ष्यता हो।

आपस् (सं० स्त्री०) आप्नोति व्याप्नोति प्रसवे समस्मान्, आप-अप्त्तुन्। आपः कर्माख्याय इतो उट् च। उच् ३।२००। १ जल, पानी। २ धार्मिक उत्सव, मनुष्यकी जलसा। ३ पाप, इज्जत।

आपस (हिं० स्त्री०) आकोयतां, रिप्ता, भेजजोके, भेयांशारी।

आपसदारी (हिं० स्त्री०) रितादारी, भाईभन्दी।

२ महाभारतका एक छुद्र पर्व। यह भ्रान्तिपर्वके अन्तर्गत है।

आपधाप, आपधापी देखो।

आपन (सं० स्त्री०) आप भावे ल्युट्। १ प्राप्ति, पहुँच। कर्मणि-ल्युट्। २ मरिच, मिर्च। (हिं० सर्व०) ३ अपना, ख जाति।

“आपन चरित कछा में गयो।” (हलधो)

आपनपो, आपनपी देखो।

आपनपी, आपनपी देखो।

आपना, अपना देखो।

आपनिक (सं० पु०) आपनाय्यते जनैः स्तूयन्ते, आपन-इकन्। १ इन्द्रनीलमणि, सफ़ीर, नीलम्। २ किरात, व्याध, सैयाद, वहेलिया।

‘आपणिकः इन्द्रनीलः किरातश्च।’ (उज्ज्वलदश)

आपनेय (सं० त्रि०) आ-अप-नी कर्मणि यत्। प्राप्त किये जाने योग्य, पाया जानेवाला।

आपनो, अपना देखो।

आपन्न (सं० त्रि०) आप-पट्-क्त। १ आपद्ग्रस्त, समीधतजुदा, तकलीफ़में पड़ा हुआ। २ प्राप्त, पाया हुआ।

आपन्नसत्त्वा (सं० स्त्री०) आपन्नं प्राप्तं सत्त्वं गर्भरूपः प्राणी यया, बहुव्री०। गर्भिणी नारी, जामिला औरत।

‘आपन्नसत्त्वादाद गुर्वेच्छनांर्भो च गर्भिणी।’ (अनर)

आपन्नार्ति-प्रशमनफल (सं० त्रि०) दुःखियोंकी पीड़ा दूर करनेवाला, जो आपन्नजुदाँका दर्द मिटा देता हो।

आपमित्यक (सं० त्रि०) आपमित्य परिवर्त्यं निर्हन्तम्, कक्। अपमित्य दापितामां कक्कनी। पा ३।१।२। १ विनि-मयसे क्रय किया हुआ, जो बदलेमें ख़रीदा गया हो। (स्त्री०) २ विनिमय द्वारा क्रय किया हुआ सम्पदादि, जो जायदाद वगैरह बदलेमें मिली हो। (स्त्री०) आपमित्यकी।

आपया (वे० स्त्री०) आपेन जलसमूहैः याति, आप-या-क। वेदोक्त नदी विशेष। यह कुरुक्षेत्रके मध्य सरस्वतीके समीप अवस्थित और पुराणमें आपया-नामसे प्रसिद्ध है।

आपयिता, आपयित देखी।

आपयित (सं० पु०) आप-णिच्-टच्। प्रापयकर्ता, सुहैया करने या पहुँचानेवाला।

आपराधय्य (सं० स्त्री०) अप-राध-णिच् वाङ्० श अपराधयः तस्य भावः, य्यञ्। गुणवचनब्राह्मणदिभ्यः कर्मणि च। पा ३।१।२। अपराधकर्त्तृत्वं, गुणहारी।

आपराहिक (सं० त्रि०) अपराह्णे भवन्, उन्। पूर्वाह्नपराह्णदोषप्रदोषावस्थापुनः। पा ३।१।२। अपराह्ण-जात, अपराह्ण-व्यापक, दिनके तीसरे पहर होनेवाला। (स्त्री०) आपराहिकी।

आपरूप (हिं० वि०) १ स्वरूपविगिष्ट, अपनी सूरत-शकल रखनेवाला। (सर्व०) २ स्वयं आप, खुद वह, हुज़ूर, हज़रत।

आपर्तुक (सं० पु०) ऋतुमधिकृत्य अध्यायः तत्र विहितः कल्पः, अप-ऋतु संज्ञायां कन् स्वार्थे षण्। १ ऋतुविशेषमें यागादिके निमित्त निर्दिष्ट अध्याय-बोधक वेदका कल्पग्रन्थ। (त्रि०) २ नियमित समयसे मुक्त, जो मौसमख़ासमें षटका न हो। (स्त्री०) आपर्तुकी।

आपव (सं० पु०) आपुनाति स्वर्गमात्रेण आपु जलं तदधिष्ठाता वरुणोऽपि आपुः तस्यापत्यम्, षण्। कल्पभेदसे वरुणके अपत्य वगिष्ठ मुनि। महाभारतीय आदिपर्वके ६६वें अध्यायमें इनका विवरण लिखा है। वगिष्ठ देखो। आप जलसमूहं वाति आश्रयतया प्राप्नोति, आप-वा-क। २ नारायण, परमपुरुष। सृष्टिसे प्रथम नारायणका आवासस्थान जल रहा। इसका विशेष विवरण हरिवंशके १२ अध्यायमें विद्यमान है। आपवर्त्य (सं० त्रि०) अतिकल्प मोक्ष देनेवाला, जो आख़िरी निजात वक्ष्यता हो।

आपस् (सं० स्त्री०) आप्नोति व्याप्नोति प्रलये समस्तम्, आप-घसन्। आपः कर्माख्यां इक्षो मुद् च। उच् ३।२००। १ जल, पानी। २ धार्मिक उत्सव, मजुहवी जलसं। ३ पाप, इजाव।

आपस (हिं० स्त्री०) आप्नोयतां, रिता, मिलजोव, मैत्रीवारी।

आपसदारी (हिं० स्त्री०) रितादारी, भाईबन्दी।

आपात (सं० पु०) आ सम्यक् पातः पतनम् ।
१ पतन, पढ़ाव, धावा, भ्रष्ट, पड़ुंच । आ हठात्
पातः । २ अविचिचनापूर्वक आगमन, विसोचिसमझे
आ पड़नेकी हालत । ३ वर्तमान काल, जमाना-हाल ।
४ उपक्रम, भागाज । ५ समीप आगमन, पासकी
पड़ुंच । आपतति यस्मिन्, आधारे षज् । ६ पतन-
काल, गिरनेका वक्त । ७ फेंकफांक । ८ धक्का ।
९ घटना, सूत्रत । (त्रि०) १० आगमनशील, भ्रष्ट
पड़नेवाला ।

आपाततः (सं० अव्य०) आपात-तसिन् । अकस्मात्,
प्रथम आक्रमणपर, शीघ्र, पहली बारमें, फौरन्,
आतकी बातमें ।

आपातलतिका (सं० स्त्री०) हत्तरदाकरोक्त वैतालीय
वृत्त विशेष । जिस वृत्तमें भगणसे उत्तर दो गुरुवर्ण
लगता और अन्य समस्त वैतालीय-जैसा ही रहता,
वह आपातलतिका कहाता है । (हत्तरदाकर)

वैतालीय देखो ।

आपातिन् (सं० त्रि०) आक्रमणकारी, अधोगामी,
वर्तमान, आ पड़नेवाला, उतारू, जो वाकू हो ।
(पु०) आपाती । (स्त्री०) आपातिनी ।

आपाद (सं० पु०) १ फललाभ, भागति, पलटा ।
आपादन (सं० स्त्री०) आ-पदि-विच्-लुगट् । १ आपत्ति-
विषयीकरण, सम्पादकके ज्ञानद्वारा सम्पादका नियय,
रचनुमांयी, पड़ुंचवानीकी हालत ।

आपादमस्तक (सं० अव्य०) आदिसे अन्ततक,
बिलकुल, सरसे पेरतक ।

आपाधापी (हिं० स्त्री०) १ स्व-स्व कार्यकी विन्ता,
अपने-अपने कामकी फिक्र । २ लड़ायी-भिड़ायी,
मारकाट ।

आपान (सं० स्त्री०) आ सम्यक् पीयते सुरा अत्र,
आधारे लुगट् । १ पानभूमि, शराबकी दुकान, माथमें
बैठकर शराब पीनेकी जगह । २ भैरवीचक्र, शराब
पीनेवालोंका जलया । 'आपानं पानगोष्ठिका ।' (अमर) भावे
लुगट् । ३ मिलित होकर सुरापान, सोहवतकी
शराबखोरी ।

आपानक, आपान देखो ।

आपान्तमन्यु (वै० त्रि०) पान करनेसे उत्साह देने-
वाला, जो पीनेसे जोय बखूबता हो । यह शब्द सोम-
रसका विशेषण है ।

आपापत्नी (हिं० वि०) १ स्त्रीय मार्गका पवलम्बन
करनेवाला, जो मनमानी राह पकड़ता हो ।

२ सम्प्रदाय विशेष । इस सम्प्रदायकी चली सी
वर्षसे अधिक नहीं गुजरा । आपापत्नी एक प्रकारके
रामात् होते और साथ ही बाउलीका कुछ आचार-
व्यवहार रखते हैं । इनमें सुसलमागौ घर्मका
गन्ध भी लग गया है । किसी ज्ञानवान् व्यक्तिके
प्रथम यह सम्प्रदाय चलानेसे हम कह सकती,—
शिव हिन्दुओं और सुसलमानोंका धर्म मिलानेकी
चेष्टाके इष्टमें दूसरी कोई बात नहीं । आपापत्नियों,
सत्नामियों और पलटूदायियोंका व्यवहार प्रायः
एक ही तरह रहता है ।

सी वर्षसे कम ही की बात है, कि वहूदेवान्तर्गत
धीरभूम जिलेके मझारपुर ग्राममें सुन्नादास नामक
कोई स्वर्णकार रहते थे । अयोध्यासे पश्चिम भाड़ा
ग्राममें उनकी गद्दी रही । सुन्नादासके शिष्यका गुरु-
दास और गुरुदासके चेष्टिका नाम भगवानदास था ।
प्रतिवर्ष अष्टहायण मासके मध्य भाड़ा ग्राममें
मेला लगता है । उसी समय गुरुकुण्डमें नहानेको
अनेक शिष्य जाते और गद्दीके महन्तको प्रणाम
करते हैं ।

सुन्नादास किसीके शिष्य न रहे । वह अपने
मनकी ही गुरु मानते थे । आपापत्नी कहा करते
हैं,—

रामानुजकी जीनमें बारा बाढ़ी पोष ।

आपापत्नी महृची जितता टोथे टोथे ॥

इस दोहेके 'मनसुखी' शब्दसे आपापत्नी सम्प्रदायके
गुरुका खासा परिचय मिलता है । जो अन्य किसी
की गुरु नहीं समझता और मनमाना काम करता,
वही मनसुखी होता है । सुन्नादासने प्रथम यही
किया था । उन्होंने अपने मनसे उपदेश लेने बाद
इस मतको चलाया । किन्तु आजकल आपापत्नियोंकी
प्रथम राममन्त्र सुनाया जाता है । गद्दीके महन्त

घोर उदासीन गृहस्थोंके शुभ होते घोर शिष्टोंको मन्त्रदीक्षा देते हैं।

आपापत्रियोंके मध्य गृही एवं उदासीन दो प्रकारके लोग हैं। उदासीन गुरुदा वस्तुका कुरता, कौपीन घोर साफा पहनते हैं। किसी-किसीके गलेमें तुलसीकी शुरिया घोर नाकसे कपालतक ऊर्ध्व पुण्ड्र भी देखते हैं। केग रखनेका नियम विभिन्न है। कोई मत्वा सुंलवा डालता घोर कोई दाढ़ी मूख फटकारता है। महन्तोंके गलेमें जो ऊर्ध्वामयी माला रहती, यह सेली कहाती है। उन्हें दास या माहव कहते हैं। परस्पर सुलाकात होनेसे 'बन्दगी साहव' बोलकर प्रभिवादन देना पड़ता है। प्रयाद है,—पहले आपापत्रियोंके शायद किसी प्रकारका सम्प्रदायिक चिह्न न रहा।

उदासीन राममन्त्रके जपसे मनको दृढ़ बना सकनेपर गायत्री-साधन करते हैं। अपने शुक्रेके पीनेका नाम गायत्री-क्रिया है। हायमें रख मन्त्र-पाठपूर्वक साधक पहले अपने शुक्रेसे कपालपर उर्ध्व पुण्ड्र देता, फिर नेत्रमें अश्रुनकी तरह किञ्चित् लगा अवशिष्ट पी जाता है। इसका स्थिर विहरण सन्तानोत्पत्ति देतो।

आपामर (सं० अव्य०) मर्यादायें अव्ययी०। पामर पर्यन्त, गुरीवतक, सब।

आपायत (हिं० वि०) आप्यायित, आसुदा, रुका हुआ।

आपायिन् (सं० द्वि०) आ पिवति, आ-पा-पिनि। सुरापानकर्ता, मद्यपायी, शराबखोर, शराबी, शराब पीनेवाला, जिसे शराब पीनेका शौक रहे। (पु०) आपायी। (स्त्री०) आपायिनी।

आपानि (सं० पु०) आ-पा भावे क्तिप् आपः सम्यक् पानं शोषितादेः तदर्थमलति व्याप्नोति किमान्, घन-इन्। केगकोट, जू, चिह्नड़।

आपि (सं० पु०) आप्-बिष्-इन्। १ घनादि प्रापक, दोनत वर्गो रह सुदृष्या करनेवाला। आप्यते, आप कर्मणि इन्। २ आपमवन्तु, रफ़ीक, सायी।

आपिचर (सं० स्त्री०) ईपत् पिचरम्, प्रादि सभा०।

१ स्वर्ण, सोना। (पु०) २ ईपद्रव्यवर्ण, सुर्षी-मायल-रङ्ग। (द्वि०) ३ भारक, सुर्षी-मायल, लाल सा। आपित्व (वे० स्त्री०) वस्तुत्व, ह्यता, इत्तिहाद, ललफत, रवत।

आपिगन्त (सं० द्वि०) १ आपिगलिते लुप्तव होने-वाला। (पु०) २ आपिगलिका शिष्य। (स्त्री०) आपिगलिना प्रोक्तम्, धन्य। ३ आपिगलि-प्रचीत शास्त्र।

आपिगलि (सं० पु०) आपिगलस्य तन्नामक मुनि-भेदस्यापत्यम्, इज् आप्यते वृद्धिः। एक आपिगामिक मुनि, एक प्राचीन वैयाकरण।

आपी (सं० द्वि०) आ-पे-क्तिप्, पी सम्प्रसारणं दीर्घः। १ स्थूल, हृदियुक्त, मोटा, चढ़ा-बढ़ा। (स्त्री०) २ पूर्वापादा नक्षत्र। (हिं० सर्व०) ३ स्वयं, खुदबखुद, आपछो।

आपीड (सं० पु०) आ-पीड्-घच्। १ शिरोभूषण, सेहरा, हार। 'किवासापोरुवरी' (चमर) २ गृहसे बाहर निर्गत काष्ठ, घरसे बाहर निकली हुई लकड़ी, मंगौरी। (द्वि०) ३ पीड़ा करनेवाला, जो दर्द लाता हो।

आपीडन (सं० स्त्री०) १ सङ्कोचन, इनक्विषान्, दबाव। २ उपगूहन, वगलमोरी, हमामोरी। ३ व्यथा, तकलीफदिही।

आपीडा (सं० स्त्री०) १ छन्दोविग्रेह। २ सम्यक् पीडा, छासा दर्द।

आपीडित (सं० द्वि०) आ-पीड्-क्त। १ निष्पीडित, दबाया हुआ। २ सम्यक् निवह, मजबूतीसे बंधा हुआ। ३ हिंसित, नुकसान पहुँचाया गया। ४ शिरो-भूषण द्वारा अलङ्कृत, सेहरसे आराम्ता-पैरास्ता।

आपीत (सं० स्त्री०) पा ईपत् पीतम्, प्रादि सभा०। १ रौप्यमाक्षिक धातु, रुपामाखी। २ स्वर्णमाक्षिक, गानामाखी। ३ पद्मकेसर, फूलकी धूस। (पु०) ४ तूणीच, तुनका पेड़। ५ अल्पपीतवर्ण, जर्दी-मायल रङ्ग। (द्वि०) ६ अल्पपीतवर्णयुक्त, जर्दी-मायल, पीलासा। ७ अल्प पान किया हुआ, जो थोड़ा पीया गया हो।

आधौन (सं० क्लौ०) आ-प्याय-क्त, पी आदेशः।
तकारस्थाने नकारः। प्यायः पी। पा १।१।१८। १ ऊघस्,
आयन, वाख। २ सुवर्णसुखी, सोनासुखी। (पु०)
३ क्षूप, कुवां।

आधौनवत् (वै० त्रि०) अभिहृष्टिवाचक। 'आधौनमभिहृष्टिः
तथावत्स आध्यायस्य इति शब्दस्य त्रियमानलादिषु धौमाधौनवतो' (ऐतरेय-
ब्राह्मण १।१।६ माये सावण)

आधु, आप देखो।

आधुन, अपना देखो।

आधुप, आपु देखो।

आधुस, आपस देखो।

आधुप (सं० पु०) १ पिष्टक, पपरो, टिकिया, रोटी।
२ आनूपजन्तुमात्र, पानीका जानवर।

आधुपिक (सं० त्रि०) अपूपः शिल्पमस्य, ठक्।
१ अच्छी रोटी बनानेवाला। अपूपे अपूपमक्षणे साधु
ठक्। गुणदिमाहय्। पा ४।३।१०१। २ रोटीके साथ खाया
जानेवाला। अपूपी भक्तिरस्य, अचित्तत्वात् ठक्।
अविनाददेशकत्वात् ठक्। वा ४।३।२६। ३ अपूपभक्त, रोटीको
पसन्द करनेवाला। अपूपः पण्यमस्य। ४ अपूप-
विक्रोता, रोटी बेचनेवाला। अपूपस्तङ्गक्षणं श्रीलमस्य।
५ अपूपभक्षणयोगी, रोटी खानेवाला। अपूपस्तङ्गक्षणं
हितमस्य। ६ रोटी खानेसे फायदा उठानेवाला।
(क्लौ०) अपूपानां समूहः। ७ अपूपसमूह, रोटीका
डेर। (पु०) ८ कान्दविक, नानवायी। ९ भचङ्कार,
सुरव्यासाज, हलवाई।

आधुय्य (सं० पु०) अपुपाय साधु, वा ज्य। चूर्णं,
पिष्ट, आटा, पिसान, मैदा।

आधुर (सं० पु०) आधुर्यते अनेन, आ-पूर करणे
घञ्। १ जलादिका प्रवाह, पानी वर्ग रक्षकी रविश।
भावे घञ्। २ सम्यक् पूरण, खासा भराव। ३ अल्प
पूरण, हलका भराव। ४ अभिव्याप्ति, इन्द्रिराज।
(त्रि०) ५ व्याप्त होनेवाला, मामूर या भरा हुआ।

आधुरण (सं० क्लौ०) आ पूर भावे श्रुट्। १ सम्यक्
पूरण, खासा भराव। (पु०) २ किसी नागका नाम।
(त्रि०) ३ व्याप्त होनेवाला, जो मामूर या भरा हो।

आधुरना (हिं० क्लि०) आधुरण करना, भर देना।

आधुरित (सं० त्रि०) आ-पूर-क्त-इट्। अभिव्याप्त,
भरा हुआ।

आधूर्ति (सं० क्लौ०) आ-पूर-क्तिन्। १ इष्टवत् पूरण,
हलकी भरायी। २ सम्यक् पूरण, खासी भरायी।

आधूर्य्य (सं० अथ्य०) पूरण करके, भरकर, भरावसे।

आधूर्य्यमाण (सं० त्रि०) आ-पूर कर्मणि शानच्।
१ सम्यक्पूर्यमाण, अच्छी तरह भरा जानेवाला।
(पु०) २ शक्तपत्र।

आधूर्य्यमाणपत्र (सं० पु०) शक्तपत्र, लजला पत्र।
चन्द्रके आधुरित रहनेसे शक्तपत्रका यह नाम
पड़ा है।

आधुय (सं० क्लौ०) आपुयति शरीरमनेन, आ-पूय
ठ्वौ अच्। शरीरको पुष्ट (पुष्ट) करनेवाला रह,
रंगा।

आधृक्, अधृक् देखो।

आधृक् (सं० त्रि०) आ-धृक्-क्तिप्। १ संसर्गयुक्त,
उलझा हुआ। (अथ्य०) २ सङ्कुल, उलझकर।

आधृच्छा (सं० क्लौ०) आ-प्रच्छ-प्रङ्। सम्प्रसारणं
टाप्। १ प्रय, पूछताछ, सवाल। २ आलाप,
आभाषण, बातचीत। ३ यातायातके समयका शुभ-
प्रय, विदा-विदायी।

आधृच्छ्य (वै० त्रि०) आ-प्रच्छ वेदे निपातनात्
क्यप्। इन्द्रि इन्द्रिः। पा ३।१।११। १ जिह्वारस्य, पूछा
जाने काविल। २ श्लाघ्य, काविल-तारोफ। (अथ्य०)
आ-प्रच्छ-श्वप्। ३ जिज्ञासापूर्वक, पूछकर।

आधिक्तिक (सं० त्रि०) अपेक्षातः भागतम्, ठक्।
तुलना द्वारा प्राप्त, अन्यकी तुलनासे निर्धारित होने-
वाला, जो दन्तज्जर रखता हो। (क्लौ०) आधिक्तिकी।

आधोक्तिम (सं० क्लौ०) अधोतिपोक्त जन्मलम्बसे
द्वितीय, पठ, नवम एवं द्वादश स्थान।

आधोमय (सं० त्रि०) आपस् विकारि प्राशुयं वा
मयट्। १ जलरूप, पानीसे मिल जानेवाला। २ जल-
प्रसुर, पानीसे भरा हुआ।

आधोमात्रा (सं० क्लौ०) अतिसूक्ष्म भौतिक जलका
मात्र, रक्षीक इत्तिदायी पानीका माहा।

आधोमूर्ति (सं० पु०) सारोचिक मनुके एक पुत्र।

धीर उदासीन गृहस्थोंके शुभ होते धीर गियोंकी मन्मदीया देते हैं।

आपापत्रियोंके मध्य गृही एवं उदासीन दो प्रकारके लोग हैं। उदासीन गृहस्था वस्त्रका कुरता, कौपीन धीर भाषा पहनते हैं। किसी-किसीके गलेमें तुलसीकी गुरिया धीर नाकमें कपालतक ऊर्ध्व पुण्ड्र भी देखते हैं। केग रखनेका नियम विभिन्न है। कोई मत्वा सुंढवा डालता धीर कोई दाढ़ी मूत्र फटकारता है। महत्त्वोंके गलेमें जो ऊर्ध्वमयी माला रहती, यह सेली कहती है। उन्हें दास या साहय कहते हैं। परस्पर सुन्नावात होनेसे 'बन्दगी साहय' बोलकर अभिवादन देना पड़ता है। प्रवाद है,—पहले आपापत्रियोंके श्रायद किसी प्रकारका सम्प्रदायिक चिह्न न रहा।

उदासीन राममन्त्रके जपसे मनकी हृद् वना सकनेपर गायत्री-साधन करते हैं। अपने शुकके पीनेका नाम गायत्री-क्रिया है। हाथमें रख मन्त्र-पाठपूर्वक साधक पहने अपने शुकसे कपालपर उर्ध्व पुण्ड्र देता, फिर नेत्रमें अञ्जनकी तरह किञ्चित् लगा श्रायगिट पी जाता है। इहका विनियम विवरण सत्संगी मन्त्रमें देखो।

आपासर (सं० अथ०) मर्यादायें अध्ययी०। पामर पर्यन्त, गरीबतक, सब।

आपायत (हिं० वि०) आप्यायित, आसुदा, हका हुआ।

आपायिन् (सं० द्वि०) आ पियति, आ-पा-णिनि। सुरापानकर्ता, मद्यपायी, शराबखीर, शराबी, शराब पीनेवाला, जिसे शराब पीनेका शौक रहै। (पु०) आपायी। (स्त्री०) आपायिनी।

आपान्ति (सं० पु०) आ-पा भावे क्लिप् आपः सम्यक् पानं शोषितादिः तदर्थमलति व्याप्नोति केशान्, अल-इन्। केशकीट, जं, चित्तङ्।

आपि (सं० पु०) आप्-ष्-इन्। १ घनादि प्रापक, दोलत वगैरह सुखैया करनेवाला। आप्यते, आप कर्मणि इन्। २ आतवन्तु, रफ़ीक, सायी।

आपिचर (सं० स्त्री०) ईपत् पिचरम्, प्रादि समा०।

१ स्वर्ण, सोना। (पु०) २ ईषद्रक्तवर्ण, सुर्षी-मायल-रङ्ग। (त्रि०) ३ पारल, सुर्षी-मायल, साल सा। आपित (वे० स्त्री०) यन्तुत्व, हृद्यता, इत्तिहाद, चलफत, रयत्।

आपिगल (सं० द्वि०) १ आपिगलिसे उत्पन्न होने-वाला। (पु०) २ आपिगलिका गिप्य। (स्त्री०) आपिगलिना प्रोक्तम्, अण्। ३ आपिगलि-प्रथीत शास्त्र।

आपिगलि (सं० पु०) आपिगलस्य तन्नामक मुनि-भेदस्यापत्यम्, इत्च्, आथ्यवो ह्रिः। एक आदिगायिक मुनि, एक प्राचीन धैयाकरण।

आपी (सं० द्वि०) आ-पै-क्लिप्, पी सम्प्रसारणं दीर्घः। १ स्थूल, हविगुल, मोटा, चढ़ा-बढ़ा। (स्त्री०) २ पूर्वापादा मघत। (हिं० सर्व०) ३ खयं, खुदवखुद, आपाहो।

आपीड (सं० पु०) आ-पीड्-अच्। १ गिरोभूपथ, सेहरा, हार। 'मिवासापीड्येखरी' (चमर) २ गृहमें बाहर निर्गत काष्ठ, घरमें बाहर निकली हुई लकड़ी, मंगौरी। (त्रि०) ३ पीड़ा करनेवाला, जो दर्द लाता हो।

आपीडन (सं० स्त्री०) १ सङ्कोचन, इनक्लिवाञ्, दवाव। २ उपगूहन, बगलगौरी, हमागौमी। ३ ध्यया, तकलीफदिही।

आपीडा (सं० स्त्री०) १ हृन्दोपिगिप। २ सम्यक्-पीडा, खासा दर्द।

आपीडित (सं० द्वि०) आ-पीड्-ण। १ निष्पीडित, दबाया हुआ। २ सम्यक् निबद्ध, मजबूतीसे बंधा हुआ। ३ हिंसित, नुकसान पहुँचाया गया। ४ गिरो-भूपथ द्वारा चलकृत, सेहरसे आराम्ना-पैरास्ता।

आपीत (सं० स्त्री०) आ ईपत् पीतम्, प्रादि समा०। १ रौप्यमासिक धातु, रुपामाखी। २ स्वर्णमासिक, सोनामाखी। ३ पद्मकेसर, फूलकी धूल। (पु०) ४ तुषीरुष, तुनका पेड़। ५ अस्पपीतवर्ण, जर्दी-मायल रङ्ग। (त्रि०) ६ अस्पपीतवर्ण शुल, जर्दी-मायल, पीनासा। ७ अस्प पान किया हुआ, जो थोड़ा पीया गया हो।

आपोन (सं० स्त्री०) आ-प्याय-ङ, पी आदेशः।
तकारस्थाने नकारः। अत्यः पो। पा १।१।१८। १ ऊचसु,
आयन, खाख। २ सुवर्णसुखी, सोनासुखी। (पु०)
३ कृप, कुवां।

आपोनवत् (वै० त्रि०) अभिष्टुष्टिवाचक। 'आपोनमभिष्टुः
। तदावकस्य आभ्यासश्च इति शब्दस्य विद्यमानत्वादिषु सौम्यापोनवती' (पितरव-
श्रावण १।१।१ भाष्ये सावय)

आपुः आप देखो।

आपुन, आपना देखो।

आपुप, आपुप देखो।

आपुस, आपस देखो।

आपूप (सं० पु०) १ पिष्टक, पपरी, टिकिया, रोटी।
२ भानूपजन्तुमात्र, पानीका जानवर।

आपूपिक (सं० त्रि०) अपूपः शिल्पमस्य, ठक्।
१ अच्छी रोटी बनानेवाला। अपूपे अपूपमचणै साधु
ठक्। मुक्तादिमण्डु। पा ४।४।१०२। २ रोटीके साथ खाया
जानेवाला। अपूपो भक्तिरस्य, अचित्तत्वात् ठक्।
अभिनाददेशकत्वात् ठक्। पा. ४।३।८६। ३ अपूपमत्त, रोटीको
पसन्द करनेवाला। अपूपः पखमस्य। ४ अपूप-
विक्रेता, रोटी बेचनेवाला। अपूपस्तद्वचणं शीलमस्य।
५ अपूपमचणशील, रोटी खानेवाला। अपूपस्तद्वचणं
हितमस्य। ६ रोटी खानेसे फ्रायदा उठानेवाला।
(स्त्री०) अपूपानो समूहः। ७ अपूपसमूह, रोटीका
ढेर। (पु०) ८ कान्दविक, नानवायी। ९ भलङ्कार,
सुरव्यासाज, हलवाई।

आपूप्य (सं० पु०) अपूपाय साधु, वा अर। सूर्ण,
पिष्ट, आटा, पिसान, मैदा।

आपूर (सं० पु०) आपूर्णते अनेन, आ-पूर करणे
घञ्। १ जलादिका प्रवाह, पानी बगैरहकी रविस।
भावे घञ्। २ सम्यक् पूरण, खासा भराय। ३ अख
मूरण, हलका भराव। ४ अभिव्याप्ति, इन्दिराज।
(त्रि०) ५ व्याप्त होनेवाला, मामूर या भरा हुआ।

आपूरण (सं० स्त्री०) आ-पूर भावे लुगट्। १ सम्यक्
पूरण, खासा भराव। (पु०) २ किसी नागका नाम।
(त्रि०) ३ व्याप्त होनेवाला, जो मामूर या भरा हो।

आपूरना (हिं० क्ति०) आपूरण करना, भर देना।

आपूरित (सं० त्रि०) आ-पूर-ङ-इट्। अभिव्याप्त,
भरा हुआ।

आपूर्ति (सं० स्त्री०) आ-पूर-क्तिन्। १ ईयत् पूरण,
हलकी भरायी। २ सम्यक् पूरण, खासी भरायी।

आपूर्यं (सं० प्रथ्य०) पूरण करके, भरकर, भरावसे।
आपूर्यमाण (सं० त्रि०) आ-पूर कर्मणि शानच्।
१ सम्यक्पूर्यमाण, अच्छी तरह भरा जानेवाला।
(पु०) २ शुकपत्र।

आपूर्यमाणपत्र (सं० पु०) शुकपत्र, उजला पत्र।
चन्द्रके आपूरित रहनेसे शुकपत्रका यह नाम
पड़ा है।

आपूप (सं० स्त्री०) आपूचति शरीरमनेन, आ-पूप
लृटौ अच्। शरीरको पुष्ट (शह) करनेवाला रज्ज,
रांगा।

आष्टक, अष्ट देखो।

आष्टच् (सं० त्रि०) आ-ष्टच्-क्तिप्। १ संसर्गयुक्त,
उत्तभा हुआ। (प्रथ्य०) २ सहुल, उलभकर।

आष्टच्छा (सं० स्त्री०) आ-प्रच्छ-अङ्, सम्प्रसारणं
टाप्। १ प्रश्न, पूछताक, सवाल। २ आलाप,
आभाषण, बातचीत। ३ यातायातके समयका शुभ-
प्रश्न, विदा-विदायी।

आष्टच्छय (वै० त्रि०) आ-प्रच्छ वेदे निपातनात्
कषप्। इन्द्रिष्यगदि। पा ४।१।१२। १ जिज्ञास्य, पूछा
जाने काविल। २ द्वाध्य, काविल-तारोफ। (प्रथ्य०)
आ-प्रच्छ-ल्यप्। ३ जिज्ञासापूर्वक, पूछकर।

आपेक्षिक (सं० त्रि०) अपेक्षातः प्रागतम्, ठक्।
तुलना द्वारा प्राप्त, अन्यको तुलनासे निर्धारित होने-
वाला, जो इन्तजार रखता हो। (स्त्री०) आपेक्षिकी।
आपोक्षिम (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त जन्मजन्मसे
छतीय, पष्ठ, नवम एवं द्वादस स्थान।

आपोमय (सं० त्रि०) आपस्व विकारे प्राप्ठ्ये वा
मयट्। १ जलरूप, पानीसे मिल जानेवाला। २ जल-
प्रसुर, पानीसे भरा हुआ।

आपोमावा (सं० स्त्री०) अतिपूष्ण भौतिक जलका
सार, रकीक, द्रवतिदायी पानीका माहा।

आपोमूर्ति (सं० पु०) सारोविष मनुके एक पुत्र।

दृग्म मन्वन्तरके सात ऋषिर्ने यह भी एक रहे ।
हरिश्चन्द्रके ६ठे और ७वें अध्यायमें विस्तृत विवरण
लिखा है ।

आपोऽज्ञान (सं० स्त्री०) अथ व्याप्तौ-भाये वाङ्-
ज्ञानच्. आपसा जलनेन अज्ञानम्, ३-तत् । जल द्वारा
ऊपर और नीचे आन्तरण-रूप अन्वाच्छादनकर्म ।
इसका मन्व भोजनसे पहले और पीछे पढ़ा
जाता है ।

आप्त (सं० त्रि०) आप्-त् । १ प्राप्त, पाया या
हासिल किया हुआ । २ विश्वम्भ, एतवारी । तपो
ज्ञानके बल जो राजसूतमने निर्मुक्त रहते और त्रिकाल-
को अपनी बुद्धिसे चमल रखते, वह विबुध आप्त एवं
शिष्ट होते तथा मंग्यरहित वाक्य बोलते हैं ।
३ युक्तियुक्त, ठीक । ४ कुशल, सायक । ५ सम्पूर्ण,
पूरा । ६ सम्बन्धी, दिक्की, रिगतादार । ७ सत्य,
सच्चा । ८ सम, बराबर । ९ विस्तीर्ण, फैला हुआ ।
१० नियुक्त, रखा हुआ । ११ व्यवहृत, आम तौरपर
इस्तेमाल किया जानेवाला । १२ अक्षत्रिम, असली ।
१३ अभियुक्त, मुशरिम ।

(पु०) १४ क्षमामस्यात नागराज । १५ भ्रम-
प्रमादरहित ज्ञानयुक्त ऋषि । १६ योग्य पुत्रप, सायक
आदमी । १७ मित्र, दोस्त । १८ अर्हत् विशेष ।
१९ शब्दप्रमाण । (स्त्री०) २० लब्धि, हासिल, किष्मत ।
२१ अंगसाध्य, सहावात-मिकदार ।

आप्तकाम (सं० त्रि०) आप्तः प्राप्तः कामो येन,
बहुव्री० । १ उत्त, तुट, राजी, जो अपनी सुराद पा
सुका हो । २ अक्ष एवं आत्माको अभिन्न समझनेवाला ।
आप्तकारिन् (सं० त्रि०) आप्तं युक्तं करोति, आप्त-
क्ष-चिनि, ३-तत् । १ युक्तकारक, याज्ञिय तौरपर
इत्तवाम करनेवाला । (स्त्री०) आप्तकारिणी ।

आप्तकारी (सं० पु०) आप्तयासौ कारी चेति, कर्मधा० ।
विश्वस्त अत्य प्रसूति, एतवारी नौकर वगैरह ।

आप्तगर्भा (सं० स्त्री०) आप्तः प्राप्तः गर्भो यया,
बहुव्री० । गर्भिणी स्त्री, हासिला औरत ।

आप्तगर्भ (सं० त्रि०) आप्तो गर्भः येन बहुव्री० । हस्त,
सुतकन्धिर, घमच्छी ।

आप्तदक्षिण (सं० त्रि०) आप्ता दक्षिणा येन बहुव्री० ।
दक्षिणा पाये हुआ, जो नजराना ले चुका हो ।

आप्तवचन (सं० स्त्री०) आप्तसूत्र, श्रुतिप्रकाश, हासिल
किया हुआ अक्ष, इलहास ।

आप्तवज्रसूचि (सं० स्त्री०) उपनिषत् विशेष ।

आप्तवाक् (सं० पु०) विश्वस्त साध्य देनेवाला, जो
ठीक बात कहता हो ।

आप्तवाक्य (सं० स्त्री०) अभ्यान्त वचन, दुरुम्भ
कलाम ।

आप्तवाच् (सं० स्त्री०) आप्ता युक्ता भ्रमप्रमादादि
दोषरहिता वाक्, कर्मधा० । १ वेद । २ वेदमूलक
श्रुति इतिहास पुराणादि । ३ विश्वस्त व्यक्तिका
साध्य, एतवारी शक्यसकी बात । (त्रि०) आप्ता युक्ता
वाग् यस्य, बहुव्री० । ४ भ्रमप्रमादादि वाक्य-रहित,
ठीक बात बोलनेवाला ।

आप्तव्य (सं० त्रि०) प्राप्त किया जानेवाला, जो
हासिल किये जाने कासिल हो ।

आप्तश्रुति (सं० स्त्री०) आप्ता चासौ श्रुतिर्चेति,
कर्मधा०, पूर्वपदस्य पुं वद्भावः । १ वेद । (त्रि०) २ वेद-
सम्बन्धीय । इस अर्थमें यह शब्द श्रुतिपुराणादिका
विशेषण है ।

आप्ता (सं० स्त्री०) जटा, उलझे हुये बालोंका
गुच्छा ।

आप्ति (सं० स्त्री०) आप्-त्तिन् । १ प्राप्ति, प्राप्त ।
२ संयोग, रिगता । ३ स्त्रीसंयोग, सुयागरत ।
'आप्तिः स्त्रीसंयोगश्चायतोः' (भट्टिनी) ४ मन्वन्व्य, तासुक ।
५ लाभ, फायदा । 'आप्तिः शक्यव्यापयोः' (रेव) ६ समाप्ति,
खातिमा । ७ सम्पत्, दीसत । ८ हित,
भलाई ।

आप्तोक्ति (सं० स्त्री०) १ आगम, उक्ति, सफुञ्जी
आजिर फलामत । २ स्वीकृत एवं केवल व्यवहार
द्वारा प्रतिष्ठित वाक्य, मन्त्र और चमनसे ही कायम
की हुई सफुञ्ज ।

आप्तोर्याम (सं० स्त्री०) याग विशेष । यह मन्त्राके
उत्तर-मुक्त्से उत्पन्न हुआ था ।

आप्त्य (सं० त्रि०) आप्-त्य वेदे द्वयोः साङ्गः ।

१ प्रासथ्य, मिलनेयोग्य । (पु०) २ देव श्रेणीविशेष ।
 आसुर देवता द्वितके समान होते हैं ।
 आप्रवान (सं० पु०) आप्रवान एव, स्वार्थे षण् ।
 वत्सगोत्रप्रवर ऋषि विशेष ।
 आप्य (सं० द्वि०) अपामिदम्, षण् चतु० स्वार्थे
 ष्वल् । १ जलसम्बन्धीय, भावसे तालुक रखनेवाला ।
 २ जलीय, भावै, पनिहा । ३ जलमय, पानी रखने-
 वाला । ४ जलमें निवास करनेवाला, जो पानीमें
 रहता हो । आप-यत् । ५ प्राप्य, हासिल किये जाने
 काविल । (क्ली०) ६ कुटोपधि, कूट । (वै०) ७ सन्धान,
 अहृद्-पैमान् । (पु०) ८ चाक्षुषसम्बन्धीय देव-
 विशेष । चाक्षुष-मनुके समय आप्य, प्रभूत, ऋषभ,
 ऋथुक भीर लेखा नामक पांच देवता रहे । (ऋत्विग्)
 ९ वेदोक्त एक घोरपुरुष । इनके सन्तानका नाम
 द्वित रहता । इन्होंने अजगवसे युद्ध किया और तीन
 मस्तक तथा सात लाङ्गलविशिष्ट असुर मार पशुवोंकी
 बचा लिया था ।
 आप्यान (सं० क्ली०) आप्याय भावे क्त । १ प्रीति,
 आसूदगी । २ हृदि, बढ़ती । (त्रि०) कर्तरि क्त ।
 ३ प्रीत, आसूदा । ४ हृद्, बढ़ा हुआ ।
 आप्याय (सं० पु०) सम्पूर्ण वा स्थूल होनेका भाव,
 भर जाने या मोटे पड़नेकी हालत ।
 आप्यायक (सं० द्वि०) दक्षिकारक, आसूदा करने-
 वाला ।
 आप्यायन (सं० क्ली०) आप्याय-लुगट् । १ हृदि,
 बढ़ती । २ प्रीति, आसूदगी । ३ दस करनेका भाव,
 आसूदा बनानेकी हालत । ४ हृदि पानेका भाव, बढ़
 जानेकी हालत । ५ अग्रगमन, अग्रवान् । ६ उत्तम
 भवस्था उत्पन्न करनेवाला द्रव्य, जिस चौत्रसे अच्छी
 हालत आये । ७ वलकारक औपध, ताकतवर देवा ।
 ८ मोटाघी । ९ दीक्षणीय मन्त्रका संस्कारविशेष ।
 ग्रिथको मन्त्रदीक्षा देते समय जनन, जीवन, ताड़न,
 बोधन, अभियेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण,
 दीपन और गोपन दश प्रकार संस्कार होता है ।
 मन्त्रके प्रत्येक वर्षकी सौ, दश वा सात बार 'ॐ ह्रीं
 कङ्किके प्रोक्षण करनेका नाम आप्यायन संस्कार है ।

आप्यायनशील (सं० द्वि०) दस करनेवाला, जो
 राजी रखता हो ।
 आप्यायित (सं० त्रि०) आप्याय षिच्-क्त-इट्, षिच्
 लोपः । १ प्रीणित, रजामन्द । २ पूरित, भरा हुआ ।
 ३ वर्धित, बढ़ा हुआ । ४ भानन्दित, खुश ।
 आप्र (वै० त्रि०) आप्र-ष्टक । १ पूरक, पूरा कर देने-
 वाला । २ कार्यरत, उत्सुक, मगगूल, होसलेमन्द ।
 ३ पहुँचने योग्य, जो पहुँच जाता हो ।
 आप्रच्छ्वन (सं० क्ली०) आप्रच्छ्व-लुगट् । १ गमना-
 गमनके समय वन्धुगणका कुशलप्रश्न, आगत-स्वागत,
 विदाविदायी, मुलाकातीसे मिलते या छूटते वरु
 खेरियतकी प्रकृताह ।
 आप्रच्छ्व (सं० द्वि०) आप्र-च्छ्व-क्त, तकारस्य
 नकारः । १ अत्यन्त गुप्त, निहायत पोशीदा । २ ईपद्-
 गुप्त, कुह पोशीदा ।
 आप्रतिनिहत (सं० त्रि०) निवारित, रोका या पीछे
 फेरा हुआ ।
 आप्रतिदिवं (वै० अथ्य०) सर्वदा, दिन-व दिन,
 हमेशा ।
 आप्रपद (सं० अथ्य०) प्रपदं पादायं तत् पर्यन्तम्,
 मर्यादायै अथ्ययी० । १ पादाय पर्यन्त, पैरके सिरैतक ।
 (क्ली०) २ पादाय पर्यन्त पहुँचनेवाला परिच्छद,
 पैरकी उंगलियोंतक लटकनेवाली पोशाक ।
 आप्रपदीन (सं० द्वि०) आप्रपदं पादायपर्यन्तं
 व्याप्नोति, ख । आप्रपदं प्राप्नोति । पा ३५४ । मस्तकसे
 पादायपर्यन्त लम्बमान, सरसे पैरके सिरैतक फैला
 हुआ । यह शब्द वस्त्रादिका विशेषण है ।
 आप्रपदीनक (सं० क्ली०) मस्तकसे पादाय पर्यन्त
 लम्बमान वस्त्र, सरसे पैरके सिरैतक फैली हुई पोशाक
 वगैरह ।
 आप्रवण (सं० त्रि०) ईपत् प्रवणम् । अल्प गन्त्र,
 कुह-कुह कृका हुआ । (क्ली०) आप्र-लुगट् । २ ईपत्
 द्रवण, घोड़ा बहाव । ३ अल्प चरण, हलकी टपक ।
 आप्राहप (सं० अथ्य०) वर्षा ऋतु यावत्, मोसमे-
 वरसात तक ।
 आप्री (वै० क्ली०) आप्रीण्यत्यनया, आप्रीड गौरा-

आफ़तावपरस्ती (फा० स्त्री०) सूर्यापासना, सूरजकी पूजा ।

आफ़तावा (फा० पु०) पातविशेष, किसी किष्कका गड़वा । इसकी पीठपर पकड़नेको मूठ और सुंहरपर मूंदनेको टकन लगाते हैं । छाथ-सुंहर धुलानेमें इससे पानी छोड़नेपर बड़ा सुभीता रहता है ।

आफ़ताबी (फा० वि०) १ आफ़तावसे ताझुक रखनेवाला, सीर । २ वृत्ताकार, गोल । (स्त्री०) ३ किसी किष्ककी आतशवाजी । ४ वीजन विशेष, किसी किष्ककी पहली, कतरी । यह ताम्बूलवत् वर्तुल ज़रदोजीसे बनती और काठयष्टिकाके अग्रभागपर लगती है । बीचमें आफ़तावकी शकल कट्टी रहनेसे ही इसे आफ़ताबी कहते और सवारी शिकारी या बरात वगैरहमें देखानेके लिये नौकर आगे लेकर निकलते हैं । ५ ओसारी, आड़ । आतप निवारणके लिये इसे द्वारके ऊपर लगा देते हैं । ६ एक गुलकन्द । यह धर्ममें तैयार होती है । ७ सुनहली डाल । यह कङ्कवेकी पीठसे बनती है ।

आफ़लोदयकर्म (सं० वि०) फ़लोदयपर्यन्तं कर्ममस्य, बहुव्री० । फल न मिलनेतक काम करनेवाला, जो गुनं पूरी न होनेतक काम करता हो ।

आफ़िज़ (सं० स्त्री०) अफ़ीम देखो ।

आफ़ियत (अ० स्त्री०) ज़ैम-फ़ुशल, खैरियत । यह प्रायः खैर शब्दके साथ व्यवहृत होता है, जैसे—खैर व आफ़ियत ।

आफ़िस (अ० स्त्री० = Office) दफ़्तर, कचहरी, उद्योगस्थान, कारख़ाना ।

आफ़ीन (सं० स्त्री०) अफ़ीम देखो ।

आफ़ुक (सं० स्त्री०) अफ़ीम देखो ।

आफू (हिं० स्त्री०) अफ़ीम देखो ।

आफूक (सं० स्त्री०) अफ़ीम देखो ।

आव (फा० पु०) १ अणु, पानी । (स्त्री०) २ रत्नकी प्रभा, लोहादिकी समता, जवाहरकी भलक, मौलाद वगैरहकी ख़सलत । ३ द्युति, नूर, चमक । ४ इत्ज़ान, सम्मान, चाल-चलन । किसी कविने दर्पणके उपलससे निम्नलिखितं प्रहलिका कही है,—

“एक भाव पीयाकी भाली ।
तन बाकी खरौ थीं पानी ॥
आव रखे पर पानी माँह ।
पीया राखे हिरदे माँह ॥”

आवकार (फा० पु०) शराव बनानेवाला, कलवार, मध्यप्रस्तुतकर्ता, कलास ।

आवकारी (फा० स्त्री०) १ शराव बनानेका काम । २ शण्डा, मैखाना, हौली, भट्टी, शराव तैयार होनेकी जगह । ३ शरावकी सुझी, सराका राजस ।

आवखोरा (फा० पु०) पानपाव, मटकैना ।

आवखोरे भरना (हिं० कि०) दूध या शरबतसे आवखोरे भर कर किसी देवता पर चढ़ाना, धर्मार्थ दूध या शरबत पिलाना ।

आवगीना (फा० पु०) १ स्फ़टिकका पानपाव, सीनेका आवखोरा । २ दर्पण, शीशा । ३ हीरक, हीरा ।

आवगीर (फा० पु०) पानी भाड़नेका कूँचा । इसे लुलाहे अपने काम लाते हैं ।

आवजारी (फा० पु०) १ बहता पानी, नदी, नाला । २ बहती या चलते द्युये भाँघ ।

आवगोय (फा० पु०) १ किसी किष्कका सुनहला या दाख । २ शोरवा, यप, उबाले द्युये गीरतका अर्क । उष्य जलमें भाँघ पकानेसे यह बनता है ।

आवताव (फा० स्त्री०) १ प्रभा, चमकदमक । २ उत्कर्म, बड़ाई ।

आवतावा (फा० पु०) गड़वा । आज़ना देखो ।

आवदस्त (फा० पु०) १ पुरीपत्यागके उपरान्त अपान प्रचालन, पाखाने होने पीछे मिक्कदकी धुलायी । २ अपानके प्रचालनका जल, मिक्कद होनेका पानी । कहते हैं, उष्य जलसे कर्मों आवदस्त न लेना चाहिये । इसके लिये शीतल जल उपयुक्त होता है । फिर दस्त आये या न आये, आवदस्त लेनेसे ही शरीरकी बड़ा लाभ पहुँचता है ।

आवदस्त लेना (हिं० क्ति०) मिक्कद धोना, अपान प्रचालन करना, सौचना ।

आवदाना (फा० पु०) १ पसजल, दाना-पानी,

पुराक। २ भाग्य, किष्कत। ३ व्यापार, रोजगार, कामकाज।

बाबदार (फा० वि०) १ परिष्कृत, सुजला, मांभा हुआ। २ मोत, गुह, माफ। (पु०) ३ कदार, पानीकी देखरेख रखनेवाला मौकर।

बाबदारपामा (फा० पु०) पानीय जल रखनेका ब्याग, परण्डा, जिन जगहसे पौनिका पानी रहै।

बाबदारी (फा० स्त्री०) बाबदारका काम। इम अर्थमें यह शब्द प्रायः व्यवहृत नहीं होता। २ कान्ति, चमक। ३ शकता, सफेदी, सफाई।

बाबदीदा (फा० वि०) नेत्रमें जल भरे हुआ, रोने-वाला।

बाबदीदा होना (हिं० लि०) नेत्रमें अशु भर लेना, चाँखे उबडवाना।

बाबध (सं० स्त्री०) या सम्यक् बहम्, आ-बन्ध भावे क। १ दृढबन्धन, मजबूत गाँठ। २ प्रेम, रनिह, सुहृद्व्यत, प्यार। ३ पसन्दार, जेवर, गहना। (त्रि०) कर्मणि क। ४ बह, प्राप्त, प्रतिबह, बंधा, मिला या रुका हुआ।

'बाबधी बहन्ने स्नात् प्रेसावदारयोर्बोः।' (मिदिनी)

बाबध (सं० पु०) बन्धन, बांध, जकड़।

बाबनाय (फा० पु०) समुद्रसदृश, नाका।

बाब-शुकरा (फा० पु०) १ चाँदीका पानी। २ पारा।

बाब-मज्जल (फा० पु०) एक बीमारी। इससे पण्डकीय फूल जाता और पीड़ा देने लगता है।

बाबनमक (फा० पु०) १ जल एवं जयष्का पौचित्य, पानी और नमककी काफ़ी मिश्रदार। २ व्यञ्जन, ममाला। ३ शास्त्रादन, लायका। ४ पबष्टम्, सहाय।

बाबनूस (फा० पु०) कौबिदार, तैदू। यह हथ रुद्धा एवं टचिण भारतमें उत्पन्न होता और कहीं कहीं हिन्दुस्थानमें भी देख पड़ता है। अतिशय पुरातन चीनपर इसका फाठ ग्रामवर्ष और भारवान् निकसता है। बाबनूसमें कितने ही प्रदर्शनीय वस्तु समूह, कस्तमदान, हड्डी, दीवारगीर पगौरह प्रचलित होते हैं।

बाबनूसका कुन्दा (फा० वि०) ग्रामवर्ष, काला, बदगुरु। (पु०) २ हवमी। ३ काला-काला-बादमी।

बाबनूसी (फा० वि०) १ बाबनूससे बना हुआ। २ बाबनूसके रङ्गका, ग्रामवर्ष, काला।

बाबन्ध (सं० पु०) १ अश्वि, गाँठ। २ पुग वा लाहलकी अश्वि, लुये या हलकी गाँठ। यही वेनकी जुये या हलसे षटका रखता है।

बाबन्धन (सं० स्त्री०) गाँठ लगानेका काम, बांध।

बाबपामी (फा० स्त्री०) अभ्युत्थय, सिंचाई, खेत पटानेका काम।

बाब-रवा (फा० पु०) १ बहना पानी, नदी, नाला। २ चलते हुये बाँसू। ३ सूप्यवज विगैय, किछी किष्कका निहायत रुम्दा मस-मस।

बाबरू (फा० स्त्री०) बाब-रू। १ बादर, इज्जत, बड़प्पन। "बाबरू नदमें रहे तो जान जाना पग है।" (क्षेत्रादि) २ पद, दरजा। ३ आभास, देखावा। ४ अभिमान, घमण्ड।

बाबरूरेजी (फा० स्त्री०) बादरका नाम, बड़प्पनका बिगाड़।

बाबर्ह (सं० पु०) बाहल्लते उत्पाद्यते, आ-बर्ह-घञ्। १ उत्पादन, उखाड़। २ भिंसा, मारकाट। (त्रि०) ३ उत्पाटक, उखाड़ जाननेवाला।

बाबर्हण (सं० स्त्री०) आ-बर्ह-न्पुट्। उत्पादन-कार्य, उखाड़ जाननेका काम।

बाबर्हिन् (सं० त्रि०) आबर्ही-इत्यस्य, इति। उत्पादनयुक्त, उखाड़ने काबिन।

बाबला (फा० पु०) वष, फीना, काला, फफोला।

बाबलाफररू (फा० पु०) सुरोपीय पिटिका, उपदर्श, पातग। पातग क्षेप।

बाबल्य (सं० स्त्री०) निर्बलता, कमजोरी।

बाबगिनाम (फा० पु०) जलपरीबक, पानी पछ-पाननेवाला। अहाजूका जो कर्मचारी पानीकी-गहराई मापकर राह बताता, यह बाबगिनाम कहलाता है।

बाबगीर (फा० पु०) समुद्रजल, पारा पानी।

आवशोरा (फ़.१० पु०) यवचारसे ग्रह किया हुआ जल, जो पानी शीरेसे छना हो। २ जम्बीरके रस और शर्करासे बना हुआ शर्बत, नीबूके अर्क और चीनीसे तैयार होनेवाला शर्बत।

आवहयात् (फ़.१० पु०) १ असृत, जिन्दगी बख्-
रानेवाला पानी। २ राजाके पीनेका पानी। ३ साफ़
ठण्डा मीठा पानी।

आवहराम (फ़ा० पु०) १ अशुद्ध वा त्याज्य जल,
नापाक पानी। २ घासव, गराव। ३ कपटाशु,
कठरोना, फ़फ़ड़ दलाली।

आवहवा (फ़ा० स्त्री०) जलवायु, पानी और हवा।

आवहवा बदलना (हिं० क्रि०) रुग्णवायुस्थानमें स्वास्थ्यके
लाभार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना, बीमारीकी
हालतमें सेहतके लिये अपने रहनेकी जगह छोड़ दूसरी
जगहकी रवाना होना। आज कल प्रायः डाक्टर
रोगियोंको आवहवा बदलनेकी अनुमति दिया करते
हैं। संक्रामक रोग होनेसे हिन्दुस्थानी भी घर छोड़
बाग़में जाकर उर। १लते हैं। वास्तुवमें बात ठीक
है। आवहवा बदलनेसे प्रायः सभी रोग शान्त हो
जाते हैं। हमारे देशमें कार्तिक शुद्धा नथमीको
धामलकी हचके नीचे जाकर भोजन बनाने और
खानेकी जो रीति चली आती, वह निःसन्देह
आवहवा बदलनेसे ही सम्बन्ध रखती है।

आवाजाई—भारतकी उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तका एक
गांव और क़िला। यह पश्चापर नगरसे बारह कोस
उत्तर स्वात-नदीके वामतटपर अवस्थित है। सामने
नदी १५० गज चौड़ी पड़ती और घाट पार करनेके
लिये नाव रहती है। सन् १८५२ ई०की अंगरेज-
सरकारने आवाजायी ग्राम और पर्वतके बीच
क़िला बनवाया था। इसके खड़े रहनेसे उतमानखेल
और दूसरे पहाड़ी लोगोंका अंगरेजी भूमिपर घावा
मारना रुक गया। क़िलेके तारोंमें छः बुर्ज बना
और बीचमें चौखण्डा गढ़गज लगा है। सारा काम
महीका ही है। चारों ओर १० चौड़ी और ८
फीट गहरी खाड़ी खिंची है। दीवार १६ फीट
कंचे खड़ी, जो पेटेपर १०, और चोटीपर ४ फीट

मोटी पड़ी है। ऊड़-दो सौ पैदल-सवारकी फौजमें एक
१८ और एक १२ मनी तोप रहती है। आवाजायी
ग्राम अत्यन्त रमणीय है। नदीके तटपर वनका दृश्य
देखते ही बनता है।

आवाजी पुरअर—बम्बई प्रान्तस्य पूना जिलेकी सास-
वाद तहसीलके मुनीव। सन् १७१४ ई०को सुप्रसिद्ध
वीर शिवाजीके पीव शाहसे कितने ही जिनोंकी माल-
गुजारी वसूल करनेका काम पानेपर धनाजी यादवने
इन्हें सासवादका मुनीव बनाया था। आप बालाजी
पेशवाके बड़े मित्र रहे।

आवाजी सोमदेव—सुप्रसिद्ध महाराष्ट्र-वीर शिवाजीके
सेनापति। सन् १६४८ ई०को इन्होंने एकाएक
आक्रमण कर बम्बईके घाना ज़िलेका कल्याणनगर
मुसलमानोंके हाथमें छीन लिया था।

आवाद (फ़ा० वि०) १ जनसम्बाध, गुलज़ार, बसा
हुआ। २ छट, जोता हुआ। ४ प्रघन, खुश।
कानूनमें वह पुरो वा भूमि आवाद कहाती, जो
चाय दे सकती है।

आवादकार (फ़ा० पु०) १ वनकी उत्पाटनकर
बसनेवाला हफ़क, जो किसान जङ्गल काटकर खेतों
करता हो। २ कोई जमीन्दार। यह सीधे सरकारको
कर देते हैं, और नब्यरदारसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।

आवादानी (हिं० स्त्री०) १ जनसम्बाध देग, आवाद
जगह। "बुँडेकी रज घासिकी पाने।

जगल जङल आवादानी" (लोकोक्ति)

२ सभ्यता, शायस्तगी। ३ ऐश्वर्य, इकबालमन्दी,
वदती। "अबका छाले बन पाने।

उरको चौधे आवादानी" (लोकोक्ति)

४ प्रकाश, रौशन।

आवादी (फ़ा० स्त्री०) १ कर्षण, छट स्थान, ज़रात,
खेतोंवाड़ी। २ विस्तारित वा उत्कृष्ट कर्षण, बढ़ायी
या तरकीबी दूई ज़रात, बढ़िया जोत। ३ धान्य
भूमिका जनसम्बाध भाग, गांवकी जमीनका दफ़ा
हुआ हिस्सा। ४ लोकसंख्या, बसती। ५ करवृद्धि,
इजाफ़ा जमा, बढ़ोतरी लगान। ६ भौतिक, गनीमत।
७ प्रसन्नता, खुशी। ८ प्रकाश, रौशनी।

पावाध (सं० पु०) पा-वाध-धञ् । चत्वारिंशत् । लकारः ।
१ षोडश, षट् । 'वाधेन दीक्षायाः' (विद्याभूषणेन)
२ प्राकाम्य, धावा । (ति०) भास्ति वाधा यञ्च,
बहुव्री० । १ षोडशगम्य, धेददं । ४ विषम त्रिभुज
त्रिभुजकी मध्यस्थित मन्वरेखाके उभय पाश्वरेपर
पङ्कनेवाना ।

पावाधा (सं० स्त्री०) पा-वाध भावे च, नित्य स्त्रीत्वात्
टाप् । १ षोडश, षट् । पाधिभौतिक, पाधिदेषिक
चौर पाध्यामिक तीन प्रकारके तापको पावाधा कहते
हैं । २ त्रिभुजके आधारका खण्ड, किता-कायदा-
सुमसप्त ।

पावाह्य (सं० स्त्री०) गौगवके सङ्ग समाप्त होनेवाली
पवस्या, जो उम्न वचपनके साथ स्रुतम हो ।

पावि (सं० पु०) पसुर विज्ञेय, एक राक्षस । यह
चन्द्रक दैत्यका पुत्र रहा । महादेवके चन्द्रको मार
डाननेमें पावि मनमें पत्यन्त क्रुद्ध हुआ था । यह
मोचने लगा, पिताके शत्रुको कैसे मारें । परि-
ज्ञेयमें ब्रह्माकी तुष्ट बना इतने अपने रूपसे चन्द्रया
न होनेपर सदा जीवित रहनेका यर मांग लिया ।

महादेवने उमाकी प्याह जब मन्दर पर्वतपर
वाम किया, तब पार्थसौका रूप काला था । गिवने
किसी दिन परिहामसे उमाकी लक्षणवर्णा कहकर
पुकारा । पार्थसौको उमसे बड़ी भज्जा पारि थी । वह
गौरवर्ष बननेकी हिमान्यके उपरुपुष्टस्य चरखमें
जा सुधी । चन्त समय गर्दीसे कह गयी थी,—
'देवो ! जवतक हम वापस न पाये, तवतक चन्द्र
नारी यहाँ फटकने न पाये ।'

पार्वती चन्ती वनी । पावि दैत्य बहुकालसे
सुयोग दृढ़ता था । किसी दिन पवमर देव भुजङ्ग-
धेगसे महादेवके घरमें घुस पड़ा । नन्दी द्वारके रक्षक
रहें । उन्नेन भुजङ्गकी गिवका चन्द्रभूषण ममभ
कुल कहा न था । घरमें उमाकी मूर्ति बना पसुर
महादेवको मारने लगा । किन्तु ब्रह्मानि कह ही
दिया था,—रूप बदलनेसे पावि मरेगा । इसीसे
महादेवने चनायास इमे ठिकाने बंठा दिया । (पञ्चपत्र)
पावियार—दाक्षिणात्य प्रदेशकी एक विद्यायती

महिमा । भूतस्य चौर चिकित्सा शास्त्रमें इन्ने विनचक
व्युत्पत्ति रहै । चनेककी विश्राम था, कि ब्रह्माकी
पत्नीने शापभ्रष्ट हो पृथिवीपर पवनतार लिया । इनका
रहित नीतियाद्य तामिन विद्यालयमें पढ़ाया जाता है ।

पाविल (सं० ति०) पा-विल भेदने क । १ चम्बक,
कलुप, गन्दा, जो साफ न हो । 'मद्रिपामरिवाचय । (मेष ११२)
चलित कयामे मिठाटिये परिपूर्ण स्थानका नाम
पाविल है । २ भदक, तोड़ डालनेवाना । (वे० पथ्य०)
३ छिद्रपयंस्त, छेदतक ।

पाविलकन्द (सं० पु०) पाविलो भूमेरामीदकः कन्दो
मूलमस्य, बहुव्री० । लताविज्ञेय, एक विल ।

पावी (फ्रा० वि०) १ जनमन्वन्वीय, पानीसे तालूक
रखनेवाना । २ वारिज, पानीसे पैदा होनेवाना ।
३ जलचर, पानीमें रहनेवाला । ४ सिक्त, सींचा
हुआ । ५ ग्रीनवर्ण, नीला । (पु०) ६ मांभर ।
यह लयण समुद्रका जल प्राप्तसे शुद्ध होनेपर बनता
है । ७ पक्षी विज्ञेय, एक चिड़िया । यह जलके
समीप रहता है । पैर चौर भिनकार करा होता है ।
ऊपरका भूरा चौर भोषिका पर सजे दे है । ८ पद्मर ।
(स्त्री०) ९ सिक्तभूमि, सींचकी जमीन ।

पावीषोडा (हिं० पु०) करियाद, दमियायो घोड़ा ।
पावी बनाना (हिं० क्रि०) चमकाना, रङ्ग चढ़ाना ।
दूध, पानी चौर मालवर्दके रङ्गमें वस्तु भिगाना तथा
चमकाना पावी बनाना कहाता है ।

पावीरोटो (हिं० स्त्री०) पानीके ज्ञायकी रोटो,
पानी भगा-भगाकर बननेवाली चपाती ।

पावुल (सं० पु०) पावणम् पाव-ल्लिप् । पावे प्राप्ते
उत्तास्यति, उद्-तम-ड । भगिनी-पति, बहुभोवी ।
'वा मवाच इतने चारुनी माकीणिः मनीषदः ।' (भरत) 'चारुनी-
इन्दुवः ।' (पञ्च) यह शब्द माखीलिमें आता चौर
वकारने भी चनेक स्थानमें लिखा जाता है ।

पावू (हिं० पु०) पवुद पर्वत, राजपूताने सिराईकी
राज्यके परावनी पहाडकी चोटी । यह पचा०
२४' ३५' ३०" उ० चौर द्रावि० ७२' ४५' १६" पू० पर
पवस्थित है । परावनी पर्वतका यह हीने भी पावू
उमसे कोई मन्वन्व नहीं रखाता । चारो चौर जो

મહામુમિ પહોતી, ઠસકી વીચ દસકો આક્રમિત ૫૦૦૦ ફીટ ઠાંચે ધાવલે-જેસો માલુમ દેતો હૈ. ૩૨ીસે સંસ્કૃતમં પર્વુદ કહતે હૈ. કોઈ-કોઈ 'પર'કા પર્વત યદં 'સુધ'કા અર્થ જ્ઞાન લગતે ધીર દસ પર્વતકો જ્ઞાનોદયકા સાધન હોનેસે અર્વુદ પુકારતે હૈ. હીંસાસે ધાવૂ પ્રાયઃ વાર્દસ કોસ દૂર હૈ. પ્રધાન ચૂડા ગુચ-શેખર કહાતી હૈ. પહલે યહાં મહન્ત રહતે ધી. ૩૨મં રામકુપડ, આમોદદેવી, શક્કા, દેવલી, વિમલો, અષ્વલગદુ ધીર નાગરતાલ નામક દૂસરે મી કઈ ઉચ્ચ શેખર હૈ. તલદેશ કોઈ સાદે છઃ કોસ દીર્ઘ તથા પાંચ પ્રયજ્ઞ ધીર પરિધિ પ્રાયઃ પચીસ કોસ પરિમિત હૈ. ચારો ધીર ધના જહ્નલ હૈ. શુદ્ધકે ઠપર વદુનમં મહુત કષ્ટ પહોતા હૈ. ઉત્તર ઈવં પશ્ચિમ દિક્ નિહાયત ઠાલુ હૈ. દક્ષિણ તથા પૂર્વ ધીર ઉચ્ચ-નીચ સ્થાનકે મધ્ય પ્રયજ્ઞ ઉપલ્ચકા આ ગયી હૈ. ઉપલ્ચકાસે હીં આને-જાનેમં સુમીતા પહોતા હૈ. પૂર્વદિક્ ક્ષિણીજ્ઞાપ્તસે પત્થર કાટ પથ વના, જો પ્રાયઃ પાંચ કોસ લગતા હૈ. ૩૨ી પથસે આદમી ધીર વૈલ-ગાઢીકા વદુના-ઉતરના હોતા હૈ. ઠપરી ભાગમં પ્રાયઃ ત્રીન દીર્ઘ ધીર ઈક કોસ પ્રયજ્ઞ સમતલ મુમિ હૈ. જહ્નલી ગુલામ, સેવતી ધીર ક્ષિણ કિષ્મકે પેડુ ધર્પાકા જલ મિલનેસે હરે પહો જાતે હૈ. વિધિવ-વર્ષ કાલિકા તથા દુર્ગા લતાકે દ્વાર લહલહાને લગતે હૈ. ચારો ધીર પહાઢી નિર્મરકા જલ ધરધરાયા કરતા હૈ. કિનારે-કિનારે ગો, મેપ, હાગલ ધીર મહિય ચરતે ફિરતે હૈ. ઠપર અહ્તા સા નહી તાલાવ હૈ. કહતે હૈ, માહિકા ઠપર વ્રહ્માકે વરસે પતિગય પ્રવલ વન ગયા ધા. દેવતાધોને ઠસકે મયમં હિપનેકો મચ્સે ઈક ગતે હોદા. ઠસી ગતેકા નામ નહી તાલાવ હૈ. કારણ, વહ નહ્સે હોદા ગયા ધા. વહ પ્રાયઃ ઠાઠ સો હાથ લચ્ચા ધીર વૈષ-પચીસ હાથ ગહરા હૈ. જલમં સ્થાન-સ્થાનપર હુદ્ર-હુદ્ર હીપ મનોહર તરુ તથા લતાવનસે સુમીમિત હૈ. પશ્ચિમ દિક્ તાલાવપર વાંધ પહો હૈ. પહલે ન તો કોઈ મહ્નલી ધીર ન ચિડિયાકો હી મારને પાતા ધા. કિન્તુ અવ વહ નિયમ ઉઠ ગયા.

ધાવૂ પર્વતકે નિકટ પસમ્ય જાતિકે લોગ રહતે હૈ. વહ મીલોંકી ઈક શાશ્વા માલુમ પહોતે ધીર લોક કહાતે હૈ. લોક સમ્પર્ણ સ્વાધીન હૈ, કિધીકો કર નહીં દેતે. રાજા કોઈ નહીં હોતા; કીવલ ઈક-ઈક સરદાર રહતા, જિસકા હળાધિ રાવત હૈ. હુદ્ર-હુદ્ર કુટીર વનાકર રહતે, ધતુર્વાપસે શ્વગયા મારતે ધૂમતે ધીર પશુપાલન ઈવં હાધિકાર્ય ક્રિયા કરતે હૈ.

ધાવૂ શુદ્ધકા જલવાયુ સુવ સ્વાસ્થરકર હૈ. ધોષમં ઠસુદ્રસે મન્દ-મન્દ શીતલ વાયુ ધાતા ધીર ક્ષય શરોરમં લગનેસે માનો નવ જીવનકા ધાધિમોંચ દેહાતા હૈ. શીતકાલમં મી યહાં શરોર સ્વચ્ચ રહતા હૈ. કિન્તુ હાલ્ટર કુલકે કથાનુસાર ઉપદંચ, વાતરોગ, ફિફડેકી પોહા કિંવા અન્ય યાન્દિક ધ્યાધિમં ધાવૂપર ઠિકના ન ચાહિયે.

ગવરનર-જનરલકે રાજપૂનાનેમં ઠહરનેશાસે ઠજપટ ધીષકાલ લગનેસે યહી ઠાકર રહતે હૈ. રાજપૂતાના ઇટ-રેલવેકે ઠાવૂરોડ ઠેગનસે પર્વતપર વદુનેકો ઠષ્છી રાહ નિકલો હૈ. ઠેગનકી ચારો ઠાર ઠંચા-ઠંચા પત્થર પહો; જિસમં કોઈ લટકા, કોઈ વિગાન શરોર ફેલા સોયા ધીર કોઈ નવવધૂકી તરહ ઠૂંચટ કાઠુ ઠહો હૈ. ઠંગરેજ દસ ઠાનિકો નન કહતે હૈ. ગિર્જા, વારોક, વિદ્યાલય, હસ્તાલ-ક્રહાંતક વતાર્યે-સમ્ય ઠંગરેજાંકે ઠાકર રહનેસે જો ઠાવશ્યક પહોતા, વહ સમો યહાં વિદ્યામાન હૈ.

ધાવૂ પર્વત સિરોહોકે સેઠોંકી સમ્પત્તિ હૈ. યહાંકા રાજસ્થ દેવાલયકે કાર્યમં હી લગતા હૈ. ઠાવૂપર સેઠોંકે કામદાર, નાયવ ધીર સ્વાનેદાર રહતે હૈ. દૂસરે લોગોંમં કઈ સુચલમાનુ ઠુકાનુદાર હૈ. વમાર ધીર મીલ કુલોકા કામ કરતે હૈ. લોક જોતવે-વોતે હૈ. ધોષકાલમં ઠાવૂકી જનસંખ્યા વટ ધીર અન્ય સમય ઘટ જાતી હૈ.

ધાવૂ શુદ્ધકા જલકાલસે હિન્દુઓંકા પ્રસિદ્ધ તીર્થસ્થાન હૈ. વોધ હોતા, કિ મારકેપ્ટેયપુરાણ, ઠપ્પરુણ ધીર ભાગવતમં ૩૨ી પર્વતકી કથા ઉચ્ચિત્તિત હૈ. પહલે શાયદ ઠાવૂપર વગિઠ મુનિકા ઠાવ્યમ રહ્યા. ઠાજ મી ઠનકે નામકા ઈક મન્દિર દેવ પહોતા હૈ.

मन्दिरकी जिनापर लिखा है,—“वगिष्ठ मुनि हिमा-
जयमें तपस्या करने थे। बहुतकाल कठोर तपस्या करने
बाद वह निश्च युधि पौर वहाँसे चलते समय ब्राह्मणकी
अनुमतिसे हिमालयका एक शृङ्ग उखाड़ लाये।
वहाँ यह पापू पर्यत है।” वसुधासक मन्दिरमें
लिखा, “अनुदेगियर गौरीपतिके शशुरका पुत्र पौर
मगिष्ठ गन्नाधरका श्यामक है। उपरोक्त क्षेत्रमें भी
पापू हिमालयका अंग बताया गया है।

बहुत पर्यतमें अग्निकुल राजपूतवंश उत्पन्न हुआ
था। इसी वंशका अपर नाम परमार है। ‘पर’का शब्द
पौर ‘मार’का अर्थ नागक है। पहले देव वेदध्वंज
करते थे। देवोंकी मारनेके निये वगिष्ठने यज्ञ
पारम्भ किया। उसी यज्ञकृष्टमें कोई महाधीर
निकले थे। उन्हें देवोंकी मार डाला, जिनसे
अगका नाम परमार पड़ा।

अर्घुटासन जैनसम्प्रदायका एक प्रधान तीर्थ है।
यहाँ बहुत दूरदेशमें धार्मिक जैन तीर्थ दर्शन करनेको
जाते हैं। चावूके मन्दिरादिमें जो विचरण लिखा,
अगमें एक कौतुक देख पड़ा है। जैनोंने भी अनेक
स्थानमें शिव पौर भगवतीका नाम से मङ्गलारण
किया है। इसीसे ज्ञान पड़ा, कि उस समय हिन्दू
धर्मके साथ जैन मतका सामन्वय बढ़ गया था।
चावूपर अनेक शिवानय पौर विष्णुमन्दिर भी रहे।
किन्तु इन समय उनमें कितने ही टूट-फूट गये हैं।
पहले अचलेश्वर नामक शिवानयमें अघोरपत्नी
रहते थे।

चावूपर कुल पाँच मन्दिर बने हैं। उनमें एक
अपमनायका है। यह जैनोंके चौबीस तीर्थद्वारमें
प्रथम रहे। अपने मन्दिरमें पाप अतृप्तियोंसे मिले
बैठे हैं। मन्दिर तितल्ला है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर
एवं दक्षिण चार द्वार सगे हैं। मन्दिरमें पश्चिम
पौर चार पौर तीन दिक् एक-एक मण्डप है।
प्रत्येक मण्डपमें आठ अश्वे पड़े हैं। अपमनायके
उत्तर दूसरे बड़े मन्दिरमें बाष्ठा शाहका मण्डप है।
किर दक्षिण-पूर्व दिक् पादीगर एवं गौरअनायकका
मन्दिर सगा है। अपमनायके पश्चिम पादिनाय

पौर उत्तर नेमीनायका मन्दिर है। उपरोक्त दोनों
मन्दिर साफ सफेद पत्थरके बने हैं। अश्वे, अत पौर
मण्डपके भीतरकी खोदायोका काम बहुत अच्छा है।
संवत् १०८८ को किसी सेठने पादिनायका मन्दिर
बनवाया था। पीछे संवत् ११०८के ज्येष्ठमासकी
शुक्रा नवमीको उसकी मरम्मत हुई। पादिनायके
मन्दिरकी चारो पौर ५५ प्रकोष्ठ घेठित हैं।
प्रत्येक प्रकोष्ठमें एक-एक तीर्थद्वारकी पापापमयी
मूर्ति घेरपर घेर बड़ा योगामनमें बैठी है। उत्तर-
पश्चिम दिक्के किरी प्रकोष्ठमें अम्बाजीकी प्रतिमूर्ति
है। द्वारके समुद्र पत्थरके नौ हाथी खड़े हैं। अष्ट-
प्रत्यङ्ग ऐसी सजायीं बनी, कि मकामो कष्ट जा नहीं
सकता। शरीरमें केवल जीवन पौर अतृप्तिका
अभाव है। हाथियोंपर रखभूषित छोड़े रखे, समुद्र
महायत पौर पीछे विमलगाह सेठ बैठे हैं। दूसरी
जगह द्वारपर विमलगाह देवताके दर्शन करनेको
हाथोंसे उत्तर हैं। जगत्में ऐसी जीवन्त प्रतिमूर्ति
पौर कहीं नहीं देखते।

संवत् १२०० एवं १२८१ को वासुपाल तथा
वेजोपालने नेमीनायका मन्दिर निर्माण-कराया था।
यह दोनों सफेद रहे। अमहिलपत्तनमें इनका
बासस्थान था। गुजराती राजा धीरधवलके समय
दोनों भाई प्रधान मन्त्री रहे।

पहले पापू पर्यतपर ८०८ शिवलिङ्ग पौर अन्य
देव देवीकी मूर्ति प्रतिष्ठित थी। प्रस्तरपर खुदा,
कब किस महात्माने मन्दिर बनवाया पौर कब
किस महात्माने सकल मन्दिरका संस्कार कराया।
किन्तु अनेक दिन बीत जानेसे सकल अक्षर पढ़नेमें
नहीं जाते। यह ठहरना काठिन पड़ा, सकल मन्दिर
अवश्यामें कितना खपया लगा था। पापू पर्यतकी चारो
पौर प्रायः ऊँटनी कोसलक कहीं सफेद पत्थर नहीं
निकलता। अतएव बहुत दूरसे खंटेकी पीठपर
सदकर यह पत्थर आया होगा। किर पहाड़पर
खदानोंमें भी कम खर्च नहीं पड़ा। किन्तु खोलकर
कहा,—अश्वे, महराब, पौर खोदायीं कितना काम
बीता था।

आबू पर्वतपर जैन राजाओंका नगर न रहा । यदि होता, तो उसका कोई न कोई चिह्न अवश्य देख पड़ता । किन्तु इस शृङ्गसे दक्षिण चन्द्रावती नामक बड़े नगरका चिह्न आज भी चमकता है । गुजरात-नृपतिके मन्त्रियों और परमारोंने उसे बनवाया था । आजकल उसका भग्नावशेष रोज परिष्कार होता है । अष्टमदावादके सुलतान, गिरनारके ठाकुर और सिरोहीके सेठ समस्त प्रस्तारदि उठा ले गये हैं ।

यहां सफेद पत्थरकी दो खानि हैं । किन्तु उनका पत्थर अतिगुण कठिन और लज्जल है । इसीसे ऊपर काम होनेसे टूट जाता है । कच्चा जा न सका, जैनमन्दिर बनते समय कहांसे पत्थर मंगाया गया था ।

आबूपर गेहूं, यव, ज्वार, मकई, धान, दाल, आनू और कच्ची तरफकी दूसरी फसल भी तैयार होती है । शिमला, नैनीताल प्रभृतिके पहाड़ी मधुकी भांति यहां भी उत्कृष्ट मधु मिलता है । वन्य पशुके मध्य शेर और स्याङ्गोश कभी-कभी पहाड़पर चढ़ता है । किन्तु चीता, भालू, सिंह और खुरगोश प्रायः सर्वदा ही देख पड़ता है । गीदड़ और लोमड़ी यहां नहीं । सांभर हरिण दल बांधकर चरते-चरते पहाड़पर आता, किन्तु चित्रशृंग नीचे ही घूमा करता है । आबू पर्वतपर सर्पका भय अधिक नहीं, कहीं-कहीं कोई भजगर कभी मिल जाता है ।

मन्दिरके प्रखरखण्डमें इसका समस्त विवरण खुदा, आबूपर मन्दिर कब किस राजा वा धनाढ्यने बनवाया और कब किस महात्माने उसका संस्कार करवाया था । स्थान-स्थानमें उन महात्माका वंश-विवरण और मन्त्री तथा कारीगरका नाम देखायी देता है । हिन्दू विष्णुकीपमें इस विषयका विस्तारित विवरण लिखना अमभव्य है । हम कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम परिवार और समयके साथ नीचे लिखते हैं,—

अथदिनवाङ्कका पापानुबन्ध—वनराज, योगराज, जेम-राज, भूयड़, वीरसिंह, रत्नादित्य, सामन्तसिंह ।

अथदिनवाङ्कका चौहान-राजपरिवार—मूलराज, चामुण्ड सन् १८८६ ई० ; यत्तम, दुर्लभ १००८ ; भीम, कर्णदेव,

सिंहराज १०८३ ; कुमारपाल ११४३ ; अजयपाल, मूलराज, भीमदेव ११७८ और तत्पुत्र त्रिभुवनपाल सन् १२४२ ई० ।

अथदिनवाङ्कका बाघिका-परिवार—धवल, अर्धराज, लवण-प्रसाद, वीरधवल सन् १२१८ ई०, वीसलदेव, अर्जुन-देव, सारङ्गदेव, कर्णदेव ।

वीरधवलका मन्त्री—तेजःपाल, वस्तुपाल । (सन् १२१८ से १२३७ ई०)

अथदावतीका चौहानगणबंध—तेजसिंह सन् १३३१ ई० ; कान्हरदेव, सामन्तसिंह सन् १३३८ ई० ।

नैदपाटपरिवार गुहिलवंश—अप्यक, गुहिल, भोज, शील, कालभोज, भट्ट भट, सिंह, मङ्गयिक, खुमान, अलट, नरवाहन, शक्तिकुमार, गुहिलवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, हंसपाल, वैरिसिंह, विजयसिंह, अरिसिंह, चोड़, विक्रमसिंह, चेतसिंह, सामन्तसिंह (विक्रम-संवत् -१२७७) ; कुमारसिंह, मयनसिंह, पद्मसिंह, ज्योति-सिंह, तेजःसिंह, समरसिंह (सन् १२७८ ई०) । रत्नसिंह, लयसिंह, लक्ष्मसिंह, अजयसिंह, हम्मीर, चेतसिंह, लक्षसिंह, मोकलदेव सन् १४२८ ई०, कुम्भकर्ण सन् १४३८ ई० ।

शारभरी चौहान-वंश—सिन्धुपुत्र, लक्ष्मण, माणिक्य, अघिराज, महीन्द, सिन्धुराज, कुलवर्धन, प्रसुराम, धुन्धन चौहान, समरसिंह, दगर्थ, लावण्यकर्ण एवं लुधन सन् १३२१ ई० ।

आबोधन (सं० क्लौ०) वा समन्तात् बोधयति आ-बुध णिच् चुट् णिच्लोपः । १ विद्या, बुद्धि, इत्थ, समझ । २ शिशा, समाचार, तालीम, पागाही ।

धाब्द (सं० त्रि०) धब्दे मेघे भयं तस्येत् इति वा, अण् । १ मेघजात, बादलमें पैदा होनेवाला । २ मेघसम्बन्धीय, अथवा, बादलसे तात्तुक् रक्षनेवाला ।

धाब्दिक (सं० त्रि०) वार्षिक, सालाना, साली । (स्त्री०) धाब्दिकी ।

धाब्दिका (सं० स्त्री०) तित्तिड़ी, इमली ।

आब्वोट लिफ्टिनेष्ट—लाहोर-सरकारके अधीनस्थ राजकीय पदाधिकारी । पञ्चावके हजारा जिलेमें इनके भूमिकर बांध देनेपर सन् १८४८ ई०को पूर्ण रीतिसे

गान्धि विराजने लगी थी। मूलतानमें उपद्रव उठनेपर किमेंकी लीज षाब्धोटेमें विगड़ पड़ी, किन्तु मुमनमामोने कोई बाधा न डाली। उस समय यह पत्रिचित मुमनमानी मेनाके महारे अपने स्थानपर उठे रहे। पत्रकी गुजरातके समरमें षाब्धोटेने विजयी हो बजारा जिला अंगरेजी राज्यमें मिला दिया। यह मन् १८४० से १८५३ ई० तक हजारों विवेके डिपुटी कमिश्नर थे।

षाब्धोटावाद (षाब्धोटावाद)—१ पञ्चाय प्रायके हजारों जिलेकी तहसील। यह पचा० ३४०० चौर द्राघि० ०३० १६० पू० पर अवस्थित है। क्षेत्रफल ०१४ वर्ग मील है। जिन पार्षत्य उपत्यकाओंमें डोढ़ और हरोह नदी बहती, इनकी भूमि कुछ इस तहसीलमें पा गयी है। पूर्वकी ओर भी पार्षत्य देग है। उत्तर एवं उत्तरपूर्व पहाड़की बगलमें मङ्गनी पेड़ बढ़े हैं। पूर्वमें प्रधानतः खराल तथा टुंड, केन्दमें लहून और पथिममें भवानों एवं गुजरीके साय तगायकी लीग रहती है। २ षाब्धोटावाद तहसीलकी नगरी और हावनो। यह भिजर लीमस षाब्धोटेके नाममें अभिहित और पचा० ३४०८ १५०० तथा द्राघि० ०३० १५३० पू० पर अवस्थित है। औराम-मेदालके दक्षिण कोणमें पड़नेसे शोभा विधित देख पड़ती है। यह राषनपिण्डीसे ६३, मोरीसे ४०, और पेगावरसे ११० मील दूर है। हावनोमें दो-तिहारे और नगरीमें एक-तिहारे लीग रहते हैं। किमेंमें गुर्वा तथा पञ्चावी लीज और पहाड़ी तोपखाना है। मान भर कुर्कजा पानी खुब मिलता, किन्तु गर्मीमें तीन महीने सूख जाता है। बाजार, कचहरी, राजाना, थोदखाना, हलतार, हाकबंगला, पोटाक्सि और तारघर सभी कुछ मौजूद है। दिसम्बरमें मार्च मास तक कभी-कभी बर्फ गिरती है। पानी घरसनेसे कोई मास पानी नहीं जाता। प्रधानतः मितम्बर और पच्छोबर मास खरका प्रकोप होता है।

शाम (हिं० पु०) १ पत्र, शामान् । २ पाव, जल ।

(फ्री०) ३ शामा, चमक ।

शामग (सं० पु०) चा सम्यक् भर्ग माहाकां यय,

बहुषो० । पतिगय माहात्म्ययुक्त देवता। जो देवता यक्षमें यष्टेय भाग पाता, वही शामग कहाता है।

शामण्डल (सं० स्त्री०) चा-मण्ड-सुरट् । निदपय, तगरोह ।

शामयज्ञात्य (सं० द्वि०) अभय ज्ञातस्थापत्यम्, यत्न ।
 शान्तिमेवम् । चाशा० ११ । अभयज्ञातमे उत्पन्न होने-
 वाना, जो अभयज्ञातमें निकला हो । (स्त्री०) स्त्रीप,
 य लोपः । शामयज्ञातो ।

शामरण (सं० स्त्री०) चाश्रियन्ते अत्रेण पाथियन्ते शोभायम्, चा-श्रु कर्मणि सुट् । १ भूषण, पलङ्कार, लोचन, गहना । शामरण चार प्रकारका होता है,—
 शोषण, बन्धनीय, शैत्य और शारीय । पहलो द्विदफर पहना जानेवाला शोषण, बंधनीयाला बन्धनीय, टाला जानेवाला शैत्य और लटकनेवाला शारीय कहता है। कुण्डलादि शोषण, कुसुमादि बन्धनीय, नूपुरादि शैत्य और हारादि शारीय है । चत्वारश्चो । भाषे-सुट् । २ सम्यक् पोषण, परवरिग ।

शामरत् (सं० द्वि०) मानिवाला । (स्त्री०) शामरती ।

शामरहस्य (सं० द्वि०) मन्सि प्रश्रुति मानिवाला, जो माल-पसबाव ला रहा हो ।

शामरित (सं० त्रि०) शामरः शामरणं ज्ञानोऽप्य, चा-श्रु तारकादित्वात् इतश्च इट् च । पूरित, चनद्वत, भरा या कूपरमें सजा हुआ ।

शामर्मन् (सं० स्त्री०) चा-श्रु-मनिन् । गर्मादिका सम्यक् भरण, पोषण, परवरिग ।

शामा (सं० स्त्री०) चा-भा-पङ् टाप् । १ दीप्ति, रोगनी । २ स्फुरण, चमक । ३ शोभा, प्य वगुणो । ४ लाया, परलाही । ५ उपमान, इमकान् । ६ सर्पु-र-लुच, वपुल । ७ महागताशरो, बड़ी गताशर । ८ यातरोग विरोध, वायकी धोमारी ।

शामामात्मने 'शामा'का शाम हो जाता और महगका अर्थ लगता है । अन्ते—इमाम, इममहग ।

शामागुगुल (सं० पु०) गुगुलुभेदः । शामाफल, त्रिष तथा श्लेषकी समान भाग लेने एवं सबकी बराबर गुगुलु मिलावेसे यह शोषण प्रस्तुत होता और मन्त्रमन्त्रिकों कोड़ देता है । (चरक-विचरन ४६४)

आभाषणक (सं० पु०) १ नास्तिकविशेष, किष्की
किष्कका मुलहिद। २ लोकोक्ति, मसूल।

आभाति (सं० स्त्री०) आ-भा-तिन्। १ प्रतिविम्ब,
अकूस्। २ द्युति, दमक।

आभार (सं० पु०) आ-भृज्-घञ्। १ सम्यक् भार, भारी
बोझ। २ गृहस्त्रीका भार, घरका बोझ। ३ उपकार,
एहसान्। वर्षहत विशेष। इसमें आठ तगण रहते
हैं। जैसे—श्रीरूप श्रीरूप श्रीरूप बोली न। स'चार से पार जो
गाव जो लो न॥

आभारिन् (सं० त्रि०) आभारयुक्त, एहसानमन्द।
(पु०) आभारी। (स्त्री०) आभारिणी।

आभाप (सं० पु०) आ-भाप्-अच्। १ सम्बोधन, गुज-
रिग। २ भूमिका, तमहीद।

आभाषण (सं० स्त्री०) आ-भाष भावे लुगट्।
परस्पर कथोपकथन, आलाप, सम्बोधन, बातचीत।
'आदाभाषणभाषाः।' (अमर)

आभाष्य (सं० त्रि०) आ-भाष्-ख्यन्। १ आमन्त्रणीय,
सम्बोधनीय, आलाप्य, बातचीत किये जाने काङ्क्षित,
जिससे बात हो सके। (अश्व०) ख्यप्। २ सम्बोधन
करके, बोलके।

आभास (सं० पु०) आभासते, आ-भास-अच्।
१ उपाधिके तुल्यता हेतु प्रतिविम्ब, अकूस्, परछाहीं।
२ दृष्ट हेतु प्रभृति, भ्रूटा देखावा। भावे घञ्।
३ तुल्य प्रकाश, धीपस्य, शबाहत, मिलती-जुलती
रीशनी। आभास्यतेऽनेन, आ-भास-णिच् करणे अच्,
णिच् लोपः। ४ ग्रन्थावतरणके निमित्त अभिप्राय
वर्णनरूप व्याख्यान विशेष, किताब बनानेके लिये
मतलब बतानेकी बात। चलती बोलतीं दङ्गित वा
सामान्य अभिप्रायको भी आभास कहते हैं।

आभासन (सं० स्त्री०) आ-भास्-लुगट्। द्योतन,
प्रकाशन, दरखुआनी, सफाई।

आभासुर (सं० त्रि०) आ-भास-सुरच्। भद्रभासविदो
वर्च्। पा ३।१।११। १ सम्यग्-दीप्ति-शील, खूब चम-
कनेवाला। (पु०) २ गणदेव विशेष। यह संख्यामें
साठ होते हैं।

आभासुर (सं० त्रि०) आ-भास-वरच्। श्रेयसावधि-

करी वरच्। पा ३।१।११। १ सम्यग्दीप्तिशील, खूब
चमकनेवाला। (पु०) २ गणदेव विशेष। इनकी
संख्या चौंसठ है। ३ वादग परिमित गणदेव
विशेष।

आभिचरणिक (सं० त्रि०) अभिचरणं प्रयोजनमस्य,
ठञ्। अथर्ववेदादि-ग्रीक शब्द प्रभृतिके मारण,
उच्चाटन, बशीकरणादि अभिचारसे सम्बन्ध रखनेवाला,
आक्रोशगर्भ, खानती। (स्त्री०) आभिचरणिकी।

आभिचारिक (सं० त्रि०) अभिचारप्रयोजनार्थे ठञ्।
१ आक्रोशगर्भ, खानती, बददुवासे तालुक रखनेवाला।
(स्त्री०) २ अभिचार, जादू।

आभिजन (सं० त्रि०) अभिजनादागतं अभिजनस्येदं
वा, अभि-जन-अण्। १ वंश-परम्परादागत, नसली।
(स्त्री०) २ दंशका महत्व, नखकी बुनन्दी। (स्त्री०)
आभिजनी।

आभिजात्य (सं० स्त्री०) अभिजातस्य भावः, घञ्।
१ कोलीन्व, शराफत। २ पाण्डित्य, मौन्द्य, इल्मदारी,
खूबसूरती।

आभिजित (सं० त्रि०) अभिजिति नचवे जातम्,
अण्। अभिजित् नघञ्जात, अभिजित्में घेदा होने-
वाला। (स्त्री०) आभिजिती।

आभिजित्य, आभिजित देखो।

आभिधा (सं० स्त्री०) अभिधैव, स्वायं ऽण्।
अभिधा देखो।

आभिधातक (सं० स्त्री०) अभिधां तकति सहये,
अच्। अभिधा देखो।

आभिधानिक (सं० त्रि०) अभिधानादागतम्, ठञ्।
१ अभिधान-सम्बन्धीय, फरहङ्गनवैसीसे तालुक रखने-
वाला, जो लुगात या कोषमें हो। (पु०) २ कोषकार,
फरहङ्गनवैस, लुगात या डिक्शनरी बनानेवाला
शब्दसु। (स्त्री०) आभिधानिकी।

आभिधानीयक (सं० स्त्री०) अभिधानीयस्य भावः,
वुञ्। योषधश्चोपनाद वुञ्। पा ३।१।११। १ कथनीयत्व,
इच्छाका वस्फ, नामका गुण। (त्रि०) २ शब्दसम्बन्धीय,
सफुज्से तालुक रखनेवाला। (स्त्री०) आभिधानीयकी।

आभिप्लविक (सं० त्रि०) अभिप्लवे विहितम्, ठञ्।

१ अभिप्रेतविविक्त, अभिप्रेत नामक धार्मिक संस्कारमें सम्बन्ध रखनेवाला। यह मन्त्र गुह्य सामादिका विग्रीय है। (पु०) अभिप्रेतय दितम्। २ गवा-मयन यामने पन्नामते पक्ष-विग्रीय।

पामिमानिक (सं० वि०) पामिमाने निर्हत्तम्, ठक्। सोऽयमन्त-मिह पामिमानहेतु उत्पादित (उभय इन्द्रिय, मन्त्रादि पक्षतयात्)।

पामिमुख्य (सं० स्त्री०) पामिमुख्य भावः, यञ्। पामिमुख्य, तर्क, चौर। २ मन्त्रवृत्त, सामना। ३ प्रसन्नता, सुमी।

पामिद्वय (सं० स्त्री०) पामिद्वय भावः, तुञ्। पामिद्वय-द्वयः। वा ३१११११। सौन्दर्यं, य् वसुरती।

पामिद्वय (सं० स्त्री०) पामिद्वय भावः, यञ्। १ सौन्दर्यं, उत्कृष्टं, पाण्डित्य, य् वसुरती, सरफराजी, इन्द्रदारी।

पामिविल (सं० वि०) पामिविलमभिषेकः सेन निर्हत्तम्, यञ्। पामिविल-वा ३१११११। अभिषेक-निष्यय, अभिषेकमे निकला हुआ।

पामिषेचनिक (सं० वि०) पामिषेचनं राज्याभिषेकः सामान्याभिषेको वा प्रयोजनमस्य, ठक्। राज्याभिषेकके उपयुक्त। जिन द्रव्यमें राज्याभिषेक करनेका विधि होता, यह पामिषेचनिक कहाया है। मृत्तिका, सुवर्ण, विविध रत्न, नाना उपकरण-युक्त पामिषेचनिक भाण्ड, अर्घ्यमय ताम्रमय रजतमय एवं त्रिकोणाकार प्रविषो, पूर्णकुम्भ, पुष्प, लाक्षा, हत, दुग्ध, गमी, विषय चौर पन्नामकी समित्, मधुयुक्त घृत, यज्ञ-कुम्भरका सुव चौर अर्घ्यभूषित सह राज्याभिषेकमें काम पानेमें पामिषेचनिक है।

पामिषेचनिकी (सं० स्त्री०) पामिषेचनमभिहित्य कृती पन्नाः, ठक्-टीप्। १ राज्याभिषेकके अधिकारपर लिखित महाभारतका पर्ष। पामिषेचनं खानं प्रयोजनमस्य, ठक्। २ ध्यानार्थ विधान, गुमानका जायदा। ३ विहित ध्यानका द्रव्य चौर मन्त्रादि। ४ तत्तत् कार्यमें अधिकार पानेकी वैदिक, ताशिक चौर वीरापिक मन्त्र। ५ तत्तत् द्रव्य-विग्रीय। ७ अभिषेकका विधान। ८ द्वादशभिषेक

द्रव्य। ९ द्वादशभिषेकका विधान। १० वेदाभिषेकादि साधन द्रव्य।

पामिहारिक (सं० वि०) पामिहारः प्रयोजनमस्य तत्र साधु वा, ठक्। १ पामिहारके उपयुक्त। २ उपटीकनमस्यथीय। ३ मेटका, मज्जरानिमें ताज्ज्क रखनेवाला।

पामीक (सं० स्त्री०) पामीकेन दृष्टं माम यत्। पामीक नामक ऋषिका दृष्ट नाम विग्रीय। यह पत्न्या मधुर हीता है।

पामोष्ण (सं० वि०) १ अधिक, जित्य, श्वादा, सुदामी। (यञ्) २ मदा, पन्-पद्माम।

पामोष्ण (सं० स्त्री०) पामोष्णवमित्यर्थं तस्य भावः, यञ्। पामोष्ण-पद्मम् वा ३१११११। सर्वदा, साहस्य, धोःपुन्व, पविच्छेदेने, रूप क्रियाका करना, पयादा, तकरार, दोहराय।

पामोय (सं० वि०) पालिनिके 'भ'में समाप्त होने-वाले पध्यासे सम्बन्ध रखनेवाला।

पामोर (सं० पु०) पामोस्यक् मिथं भीति रानि दधाति, रा-क। १ गोप, चहीर। २ मन्त्रीयं ज्ञानि विग्रीय, भीम। पामोर ब्राह्मणके चौरस चौर अम्बडाके गर्भमें उत्पन्न है। विष्णुपुराणादिमें दृष्टं स्नेहृताति कहा गया है। गिन्नुनदके फूलवर्ती पामोरीने कृष्णकी रमपियेकी धीन लिया था। पात्रकन युक्तप्रदेशके ग्वाभोमें प्रायः मकल ही पामोर जातीय है। मकोमें पचने पामोर जातिमें गिन्नुनदेशमें दग मुदय राजस्य किया था। चौर देखो।

पामोरनट (सं० पु०) रागविग्रीय। इममें पामोर चौर मट दोनो राग मिले रहते है।

पामोरपति, चौरदेखो देखो।

पामोरपतिजा, चौरदेखो देखो।

पामोरपत्नी (सं० स्त्री०) १-तम्, छदिकास्तात्यादा टीप्। गोवप्रधान पाम, घोव, चहिराया, जिन मांमें बहुतसे चहीर रहते।

(चौर चहीरको पामोर) (पन्ना)

पामोरी (सं० स्त्री०) पामोरीस्य पत्नी पामोरजातिनां, सीत्वात् टीप्। १ गोप जातिकी स्त्री, गोपी, चहीरिन।

२ मङ्गाशुद्धी । 'आभोरो तु मङ्गाशुद्धी' (चमर) ३ आभोरीकी भाषा ।

आभील (सं० स्त्री०) आ सम्यक् भियं लाति, आभी-
ला-क । १ कष्ट, तकलीफ़ । २ भय, खौफ़ ।

'स्नातु कष्टं लक्ष्मणाभीलं त्रिभुं वा भियगामि यत् ।' (चमर)

(द्वि०) ३ कष्टयुक्त, तकलीफ़, उठानेवाला ।

'कामिनी विवलीभवे तथा एव च लक्षणे ।

आभीलं विवृ कष्टेना नाभिरप्येऽपि ह्यगते ॥' (व्याधि)

४ भयानक, खौफनाक ।

आभीशय (सं० स्त्री०) आभीशना दृष्टं साम अण् ।
साम विशेष, आभीशका देखा हुआ साम ।

आभु (सं० द्वि०) आ समन्ताद् भवति, आ-भू-डु ।
१ विभु, व्यापक, मासूर, भरा या समाया हुआ ।
२ रिक्त, खाली । ३ वहसुष्टि, सखील, कल्लूस ।

आभुग्न (सं० द्वि०) आ-भुज कर्तरि कर्मणि वा क्त,
तकारस्य नकारः । १ आकुञ्चित, मुड़ा हुआ ।
२ अल्पवक्त, कुछ टेढ़ा । ३ चारो ओर भग्न, डर
तर्फी टूटा हुआ ।

'आभुग्नं विवर्षिता वविमता मयेन कयसनी ।' (शकुन्तला)

आभू (वै० द्वि०) आ-भू-क्षिप् । आभू देखो ।

आभूक (वै० द्वि०) रिक्त, शून्य, निर्बल, खाली,
नातवान् ।

आभूखन (द्वि०) आभर देखो ।

आभूति (सं० स्त्री०) आ-भू-क्तिन् । १ चमता,
सामर्थ्य, इस्तेदाद, काविलियत । २ पराक्रान्त बल,
दवा देनेकी ताकत ।

आभूषण (सं० पुं०) आभरण देखो ।

आभूषित, आभरित देखो ।

आभूषेष्ट (वै० द्वि०) १ आज्ञा माने जाने योग्य,
हुकूम बजाये जाने काविल । २ प्रशंसनीय, तारीफ़
लायक ।

आभोरी (सं० स्त्री०) राग विशेष, एक रागिणी ।
सचराचर इसे आभोरीकल्याण वा अहोरीकल्याण
कहते हैं । कल्याण, गुच्छरी, श्याम और देवकारके
योगसे यह बनी है । स्वरग्राम है,—स ग म प ध नि ।

आभोग (सं० पुं०) आ-भुज आधारे षष् । १ परि-
पूर्णता, तमामो, कुसियत ।

'आभोगः परिपूर्णाः । (चमर)

२ वरुणका छत्र । ३ यज्ञ, तदवीर ।

'आभोगः परिपूर्णा वरुणवृक्षतययोः ।' (विष-हंस)

'अयमामोदस्योपवनस्य ।' (शकुन्तला)

४ भण्डिता, सङ्गीतादिके श्रियमें कविका नामकथन,
गाने वगैरहके अखीरमें शायरके नामका पड़ना ।

'यवैव कविनाम स्नातु च आभीग इतीरितः ।' (श्रीतदाकोदर)

किन्तु आजकल जेहे स्वरमें आवाज सगानेकी
भी आभोग कहते हैं । ५ सम्यक् सुखादिका अनुभव,
अच्छीतरह आराम वगैरहका उठाना ।

आभोगय (वै० द्वि०) आभोगं याति, आभोग-या-
क । १ आस्वाद्य, मजा लिये जाने काविल । यह
शब्द सोमरसादिका विशेषण है । (स्त्री०) २ दृष्टि,
जीविका, रोजी, रोजगार ।

आभोगि (वै० स्त्री०) आभोगं विषयस्य सम्यक् सुखानुभवं
करोति, आभोगं ह्यत्ययं णिच्-इन् । विषयाभोग,
सम्यक् सुखानुभव, अच्छीतरह आरामका उठाना ।

आभोगिन् (सं० द्वि०) आभोगोऽस्त्वस्य, इनि ।

१ परिपूर्ण, भरा-पूरा । २ यज्ञवान्, तदवीर सङ्गाने-
वाला । ३ सम्यक् सुखादियुक्त, खुब आराम लेने-
वाला । (पुं०) आभोगी । (स्त्री०) आभोगिनी ।

आभ्यन्तर (सं० द्वि०) अभ्यन्तरे भवम्, अण् ।
मध्यवर्ती, दरमियानी, अन्दरूनी, भीतरी, बीचवाला ।
(स्त्री०) आभ्यन्तरी ।

आभ्यन्तरतपस् (सं० स्त्री०) मध्यवर्ती तपस्या, अन्दरूनी
तोमा । यह प्रायश्चित्त, वैयाकृति, स्वाध्याय, विनय,
व्युसमें एवं शुभ ध्यानसे छः प्रकारका होता है ।

आभ्यन्तरिक, आभ्यन्तर देखो ।

आभ्यवकाशिक (सं० द्वि०) असंतुत वायुमें रहनेवाला,
जो खुली हवामें रहता हो ।

आभ्यवहारिक (सं० द्वि०) अभ्यवहाराय हितम्,
ठक । भोजनीय, खाने लायक । भोष्य, भोज्य,
भोजनीय, अभ्यवहार्य, आभ्यवहारिक इत्यादि शब्दके
अर्थ प्रमेद पर मतास्तर मिलता है । पाणिनिने

(० ३।६८) 'मोक्षं भवे' गुण कथा है। किन्तु कात्यायनके कथानुसार उपरोक्त शब्दमें 'मल्ल'के स्थान-पर 'अध्वर्याय' शब्द स्थितता उचित था। उनही हेतु कथनेका तात्पर्य यह होता—मल्लमें कठिन द्रव्यका याना समझा जाता है, तरल का नहीं। किन्तु पतञ्जलिनं यह बात न मान कात्यायनको दोषी ठहराया है।

साध्यासाहिक (सं० लि०) साधारण्य एभिः पञ्चमार्गं तस्मिन् तत्समकृत्यामरणे व्यापृतः टक् । कृत्यस्यै भरणं व्यापृत, व्यापृत्याकी परवरिगमें लगा हुआ। 'व्यापृत्याय' (सो १०) कृत्यस्यै भरणे' (६५)

साध्यासाहिक (सं० ली०) पामिसुख्येनादायः पादानं यद्य तस्मिन् दितम्, टक् । पिता किंवा माताके कुलमें प्राग, गंधर या मसुरानमें मिला हुआ।

साध्यासाहिक (सं० लि०) ममापस्य, पड़ोसी, मज्दोकी। (स्त्री०) साध्यासाहिकी।

साध्यासाहिक (सं० लि०) पञ्चामे निकटे भयम्, टक् । निकटस्थित, मज्दोकी रहनेवाला। पञ्चामाम् पामे द्विगोचरपादागतम् । २ पञ्चाम-प्राग, मरकमे दामिन । ३ पुनःपुनः उचारण-ज्ञात, बारबार कहनेमें पैदा। (स्त्री०) साध्यासाहिकी।

साध्यासाहिक (सं० ली०) अभ्युदयः पुनश्चननादिः म प्रयोशमं यत्, टक् । १ उचि-निमित्तक याह विरोध, यद्गोके निये विपत्तिका पारणा। नन्तेहेवा। पत्र-प्रागम और विवाहमें पुनं जो नादी याह किया जाता, वह सुखमोभाष्य यद्गोके निये होनेमें साध्यासाहिक कहलाता है। "अभ्युदयः पुनश्चननादिः" (विवाहोदयो)

(लि०) २ साहजिक, इच्छान-करण। ३ पटय या पारथ मन्त्रयोग, उद्धत या साधारणके मुनाहिक। (स्त्री०) साध्यासाहिकी।

साध्यासाहिक (सं० लि०) पञ्चया चरति, टक् । १ चर-दारप दारा समन करनेवाला, जो कृदात या कापट्टेमें लोदता हो। पञ्चाम् मीपाम् पागतम् । २ बादलमें चिकला हुआ। यह शब्द रूप प्रकृतिका विशेषक है।

साध्यासाहिक (सं० लि०) पञ्चैः पाकानि भवं पञ्चम्यापयं

वा, एत। उचि-विषयः। १ पाकानागत, पाममामो। २ पञ्च नामक पुरुषमें पैदा होनेवाला।

पाम् (सं० पञ्च०) पम गत्यादौ विष् वाहु० कृत्वा-भायः कृत्, विष् भोवः। डी, ठोह, झर, समान। यह स्वीकृतित या म्प्रुतिका चोतक है।

पाम (सं० लि०) पा देवम् पश्यते पश्यते, पा पम घञ् । १ पपक, जो पकाया न गया हो। २ जो परोमा न गया हो। ३ कथा, जो पका न हो। ४ न पया हुआ, जो हज्जम न हो। 'पामोऽप्येन शब्दम्' (वि०) घेषमतमे तहण्यर चोर पञ्चक स्वीट भी पाम कहाता है। (स्त्री०) ५ पपक, पामो, पशापन। ६ मनाबरोध, कृष्ण। ७ तुपरचित्ता धान्य, भूमो निकाना हुआ टागा। यदा,—

"इति चोच्यते पातुः पञ्चैः पातुमुच्यते।
पामं (विष्पामिन्) च विष्पाममुच्यते।" (बटि०)

घेषमें रहनेवालेकी गण्य, मनुष्यकी धान्य, तुप-रहितकी पाम चोर पकाये जानेवाले द्रव्यको पच कहते हैं। गृहज्ञानि दुग्ध किंवा तण्डुलादि यदि कथा दे, तो पावास्तरमें मापन ले ले। गृहका पाम पच चोर पच उच्छिष्टके तुल्य होता, इमीमें पुत्रा-पार्थलमें पाममें गृहादिका कार्य करना पड़ता है। चापत्काल या एभि न मियनेपर चोर तीर्थस्थानमें दिनानिके लोग भी पाममें याह कर सकते हैं। पञ्च-गुरुके पचलमें पाममें याहादि करनेकी व्यवस्था है। किन्तु गृहादिकों मरकम समय पाममें ही काम लेना चाहिये। (पु०) पश्यते पीचनेजिन पम कार्ये घञ् । ८ रोगगत, बीमारी। ९ मन्त्रप्रव्यर्थरोग, दुष्टे विगहनेकी बीमारी। १० पपकानशरा, हज्जम न हुआ पामा मज्दोकी बीमारी। पाहारका रगवार जो पामिमापयमें नहीं पयता, वही पाम कहाता चोर पट्ट्याधिहा मनायय होता है। इमें कोई पाम, कोई पचरम, कोई मलमयय, कोई प्रथमा चोर कोई दोषदुष्टि कहलाता है। पञ्चमयत् एव' शब्दमें धातुमाप्य, पचापिन, दुष्ट चोर पामाशयनन रूपका नाम पाम है। (विष्पामिन्) ११ पट्टवकार पचोण रोग, कः किण्ठो वटहज्जोका पामा। चोचं हेवा।

(चि० पु०) १२ आन्त्र, घन्वा । शामका फल दो तरहका होता है, पालका और टपकेका । भूमि, पैसे या पत्तेमें दबाकर पकाया जानेवाला पाल और आप ही आप पककर चूनेवाला टपकेका शाम कहा जाता है । पालवालेका 'पालका लड़ुवा' और डालसे चूनेवालेका नाम 'टपका' है । इसके विषयमें अनेक लोकोक्ति सुनते, जिनमें कुछ नीचे लिखते हैं,—

१ शामके आम गुठनिके दाम । अर्थात् आम ऐसा उत्तम पदार्थ होता, कि उसका रस चूस लेते भी गुठलीका दाम छड़ा हो जाता है । यह कहावत उम चौजू पर चलती, जो दुचन्द फायदा पहुँचाती है ।

२ आम खाने या पेड़ गिनने । प्रयोजन यह, कि व्यर्थ प्रयत्न करनेसे कोई लाभ नहीं निकलता ।

३ बाड़ीमें बारह आम छठीमें अठारह आम । यानी बागमें पैसेके बारह और बाजारमें अठारह आम बिकते हैं । इस लोकोक्तिसे किसी वस्तुका न्यून मूल्य लगाना प्रमाणित है ।

वैद्यशास्त्रके मतसे कच्चा आम वायु, रक्त तथा पित्तको बढ़ाता और कपाय, अम्ल एवं सुगन्धि होता है । यह कफ और आमामयको नष्ट करता है । आधा पका और आधा कच्चा पित्तकारी है । पका आम वर्ण, रुचि, मांस, शुक्र और बलको बढ़ाता है । यह पित्त तथा कफको नष्ट करनेवाला, खादु, रुचिकर, अधिक धातुकर, हृद्य, गुरु, टसिजनक, कान्तिजनक और दृष्ट्या एवं श्रमको हटानेवाला है । मधु मिलाकर आमका रस पीनेसे चयुरोग, झींझा, वात और श्लेष्माको लाभ पहुँचता है । आमका पत्ता रुचिकारी और कफ तथा पित्तको नाश करनेवाला है । फूल रुचि और अग्निको बढ़ाता है । बकला कपाय, अम्ल एवं मेटक होता और कफ तथा वातको नाश करता है । चूमकर खाया जानेवाला आम रुचिकर, बलवीर्यकारी, मधु, शीतल, सारक और वातपित्तनाशक है । यह शीघ्र परिपाक होता है । इसका छना हुआ रस गुरु, रुचिकर, हृद्य, टसिजनक, कफकर और वात-पित्त-नाशकारी है । आमकी फांक

गुरु, पुष्टिकर, रोचक, मधुर, बलकारी और शीघ्र पाक होनेवाली है । गुठली कपाय, अम्ल, मेटक और कफ-वात-नाशक होती है । अधिक शाम खानेसे मन्दाग्नि, रक्तामय, चक्षुरोग और विषमज्वर बढ़ता है ।

बीजसे उत्पन्न होनेवालेको बीजू और क्लमसे तैयार होनेवाले आमको क्लमी कहते हैं । हिमालय-पर इसका पेड़ जङ्गलमें आप ही आप जगता है । पत्ता हरा और लम्बा होता है । माघ-फाल्गुन मास मौर आता और चैत्र-वैशाखमें उमके भड़ जानेसे छोटा-छोटा फल लगता है । कच्चे फलको साधारणतः टिकोरा, केरी या अंबिया कहते हैं । कच्चेका मर्फद और पके आमका गूदा पीना होता है । क्लमी आमको गुठली बहुत छोटी रहती और उमपर बरेसे गूदेकी मोटी तह चढ़ती है । आमका क्लम इसतरह तैयार किया जाता है,—

प्रथम किसी पालमें अच्छी मट्टी और इड्डोको खाद डाल वोज बोते हैं । पौधा निकल जानेसे बढ़िया आमकी डालपर चढ़ा और बांध दिया जाता है । पीछे दोनोके आपसमें मिल जानेसे पहला पौधा फल गनिकास लेते हैं । इससे क्लममें सावयले आमका गुण लिंच आता है । क्लमी आम कई तरहका होता है । जैसे—बम्बेया, मालदहा, लंगड़ा, सफेदा, क्षणभोग, पायरी, हापुस, फजली, तोतापरी इत्यादि ।

आमके रमको निकाल और किसी वर्तन या कपड़े पर सुखाकर जो रोटी बनाने, उसे अमापट या अमरस कहते हैं । अंबियाको चटनी बहुत अच्छी होती और नमक, मिर्च, पुदीना तथा चीनी या गुड़ डाल कर बनती है । इसका अचार या मुरब्बा भी डालते हैं । हिन्दुस्थानी पके आमको सिरकेमें डुबो रखते और बहुत दिनतक खाया करते हैं । आमकी फांक सुखाकर रखनेसे चटनी बनाने और दालमें डालनेके काम आती है । हिन्दुस्थानमें प्रवाद है,—पहले आम पृथिवीपर न रहा । इन्द्रको जीत राख्य इसे स्वर्गसे ले आया था ।

पामडा काठ पथिक इट न होतें भी चौघट, काठ, कतरन, कपाट और तपुता बनानेके काम में जाता है। इकडे और पलेने पोना रङ्ग में धार करतें है। एगुको प्रथम पामडा पत्ता विनाया (घर लकडे विगाहमें ध्योरो रङ्ग बनाया जाता है।

(प. वि.) १३ सामान्य, मार्बतिका, मामूली, पामडगु।

पामडगु तियार (प. पु.) सामान्य पथिकार, मामूली कुन।

मक (मं. ति.) १ पपक, कथा। (पु.) २ कुभापठ, मकड़ा।

मकुथ (मं. पु.) पपक शक्तिकाका घट, कथी हीका घड़ा।

मसाम (प. पु.) मामादके भीतर व्यतिके ठनेका ब्याम, मसाममें बादगाहकी नमिपका मसाम।

मगन्धि (मं. ति.) पामप्यापकस्य गन्ध द्य गन्धी प्य, इन् ममां। १ विद्य-गन्धयुक्त, विद्यायं धीइनेयाम्। (स्त्री.) २ पिता-धुमादिका गन्ध, ये मोरत या जलती मगन्धी वृ. विमायंघ।

मगन्धिक, पामगन्धि इयो।

मगन्धिकरिद्रा (मं. स्त्री.) पामाहलदी।

मग्रा (मं. स्त्री.) कटुका, गुटकी।

मगधपक (मं. पु.) पपक पपक, कथा पना।

मद मोतल, हय, मसार्पण, लप्या-दाह-पर, मसारी-मोद-घ, कपाय और ईपान्-कटु-वीथं जाता है। (पामडगु)

मसवर (मं. पु.) पामो पपक, लय, कर्मपां।

पपक लय, ताजा कुपार। तहय पयसकाको म लीपनेसामे बुधारेको पामसवर कहते हैं। इसका

मक कामा-धर्मक, इत्तम, इटपकी पयदि, परोपक, लप्या, पामप्य, पविपाक, वेरप्य और मुहगागता पादि है। (पामडगु)

मसडा (मं. पु.) पामातक, एक पिङ्ग और फल।

पपक दिशुह्वानमें कम, किन्तु मडाममें बहुत लम्बय

होता है। एच बडा जगती भी पाम-जेमा नहीं देख पड़ता। मसरापर पामडा दो प्रकारका होता है,—देमी और विमायती। देमी पामडेको पत्ती कुछ बडो जगती और गरीजेकी पत्तीमें मिलती-जुगती है। फल छोटा होता, गुठली बडो निकलती और गुटका नाम नहीं मिलता; केवल गुठलीपर बकना गिपका रहता है। पकनेपर पाम-जेमा गन्ध उठता और खाद पन्न-मधुर लगता है। इसका पचार भी हालते है। देसनेमें फल घेरके बराबर होता है।

विनायती पामडा यद्यपीये पाया है। फल बडा और पत्ता टानू होता है। सुपक फल गानेमें मोटा लगता है। सुकुल फूटनेमें पकसे पके घेरके साथ पन्न-व्यस्यन बनाकर गानेपर सुखरोधक होता है। कथे पामडेका भी व्यस्यन बनता है। देमी पामडेमें दूध निकलनेपर एच घृण जाता है, किन्तु विनायतीमें दूध नहीं होता। इसकी लकड़ी जलकी और मुलायम रहती है, कीरे बीज बनानेके काम नहीं पाती। एचमें पका फल रहने-रहते पत्ता भङ्ग और सुकुल फूट पड़ता है। कीरे-कीरे एच यथमें दो बार फलता है। मंग्रतमें पामडेको पामरातक, पीतम, कपोतन, वर्यपाकी, पीतमक, कविचडा, पय-वाटिक, शर्डीफल, रगाप्य, तनुधोर, कविपिय, पमरातक, पमरीय, कविचुङ्ग और पमरापतं कहते हैं।

येपामाकाके मतमें इसका कथा फल कपाय, पन्न और इटय एवं कष्ट खोलनेवाला है। पका फल मधुराद्य एवं घिन्ध रहता और पिप्त तथा कफको मारता है। किन्तु पामडा गुरु होता और गर्भदा धानेमें दानि, पन्न, पत्रोचं एवं विटथिको बढ़ाता है। दुग्नेमें जाता, कि गर्भदा जानेमें लयर, कुह, काम और दानिका वातरोग लम्बय होता है। इनकी इधे कुपला मसभना चाहिये। कीरे पक कट तामेमें पामडेकी दूरी पत्ती बोटकर प्रथिय देनेपर रक्त नहीं निकलता। जलमें दुर्द होनेमें भी पत्तीका रस छोड़ते है। सामान्य रजामामय रोगमें बकलेका काय विशानेमें पीडा द्य जाती है। पित्तजनित

अजीर्ण रोगमें पक्षे फलका गूदा खिलानेसे सुधा बढ़ती है। यह बीज और क्लम दोनोंसे तैयार होता है। अग्निहोताशंकी कथनानुसार देगो और विलायती दोनों प्रकारका शामड़ा एक ही वृक्ष ठहरता, किंवल स्थानविशेषमें शक्तिका और जल-वायुके गुणसे रूपान्तर हो जाता है। इसके घालेको गोंड़ने और विशेष यत्र करनेसे जल्द कीड़ा पड़ने तथा वृक्ष सूखने लगता है।

शामण्ड (सं० पु०) १ परण्डवृक्ष, रेड़का पेड़।

२ शूलैरण्ड, सफेद रेड़का पेड़।

शामण्डक, शामण देखो।

शामण्डवास (सं० पु०) आसव, शराव।

शामता (सं० स्त्री०) अपाक, खामी, कचायी।

शामतन्त्रिडि (सं० स्त्री०) अपक तन्त्रिडि, कच्ची इमली।

शामतन्त्रिडि, शामतन्त्रिडि देखो।

शामत्वक् (सं० त्रि०) कीमल चर्मावृत, नर्म चमड़ेवाला।

शामद (फा० स्त्री०) १ आगमन, श्रावई। २ आय, शामदनी। रिशावत वगैरहको बालायी शामद कहते है। (त्रि०) ३ प्रकृत, कुदरती। ४ विशुद्ध, साधारण, साफ, सादा।

शामद शामद (फा० स्त्री०) आगमन-समाचार, आनेकी खबर।

शामद-खर्च (फा० पु०) आयव्यय, नफा-तुकसान।

“बन्धोको शामद धोरकोका खर्च।” (लोकनि)

शामदनी (फा० स्त्री०) १ आय, शामद, नफा।

२ अधिक लाभ, दस्तूरी। ३ कर, राजस्व, महसूल, शुद्धी। ४ देशान्तरसे आनेत द्रव्य, इदखालमाल, बाहरसे अपने मुल्लमें लार्थो हुई चीज़। ५ द्रव्यके आनयनका समय, माल आनेका मौसम।

शामद-मुलाहिजा कागजात (फा० पु०) पत्रका उप-सर्पण, दस्तावेजका गुज़ार।

शामद-रफ्त (फा० स्त्री०) १ आवागमन, आवा-जायी। २ मार्ग, राह। ३ सङ्गति, राह-रख।

शामदवाला (फा० पु०) १ धनी पुरुष, दौलतमन्द आ-मदी। २ बाहरसे थोक माल मंगानेवाला सौदागर।

शामन (वे० स्त्री०) १ प्रवाह, अभिलाप, रगवत, सुहृवत। (हिं० स्त्री०) २ वर्षमें एक ही फुल उतपन्न करनेवाली भूमि, जो जमीन सालमें एक ही फुल देती हो। ३ हैमन्तकालमें उतपन्न होनेवाला धान्य। यह धान्य जुलाई-भगस्त मास बोया और दिसम्बरमें काटा जाता है।

शामनस् (सं० त्रि०) अतुकुल, दयालु, रहमदिल, मेहरवान।

शामनस्थ (सं० स्त्री०) अप्रयत्न मनो यस्य स आमनस्तस्य भावः, थज्। १ वैमनस्य, दुश्मनो। २ दुःख, पीड़ा, ददं, तकलीफ़।

शामना (हिं० क्रि०) आना, समाना, शमाना।

शामनाय (हिं०) आवाय देखो।

शामना-शामना (हिं० पु०) सम्मुखोन होनेका भाव, मुकाबला, मुलाकात, भेंट।

शामनी (हिं०) शामन देखो।

शामने-शामने (हिं० अव्य०) प्रत्यघ, सम्मुख, रूबरू, मुकाबिलेमें, सुहंपर। शामने-शामने घर कदं और नीव कदं मैदान। (लोकनि) यह कहावत निलेका और घृषित स्त्रीपर चलती है।

शामन्त्र (सं० पु०) शामाटजीर्णात् त्रायते, शाम-त्रैक, घृषोदरादिव्वात् सुमागमः। १ परण्डवृक्ष, रेड़का पेड़। फलका तेल पीनेसे अजीर्ण मन गिर पड़ता, इसीसे परण्डवृक्ष शामन्त्र कहाता है।

शामन्त्र-अच्। २ शामन्त्रण।

शामन्त्रण (सं० स्त्री०) शा चदन्त सुरा० मन्त्र-णिच्-लुगट्, णिच् लोपः। १ अभिनन्दन, खुशक। २ सम्बो-धन, पुकार। ३ निमन्त्रण, निवता। ४ विवेचन, विचारण, ताम्युल, गौर। ५ सम्बोधन कारक, निदायिधा। (स्त्री०) टाप्। शामन्त्रणा।

शामन्त्रणीय (वे० त्रि०) सम्बोधन किया जानेवाना, जो पूछा जाने काविल हो।

शामन्त्रयिता (सं० पु०) निमन्त्रण देनेवाला पुरुष, मेजवान, जो ब्राह्मणोंको न्योता देता हो।

शामन्त्रयित् (सं० त्रि०) शामन्त्रण देनेवाला, जो बुनाता हो। (पु०) शामन्त्रयिता। (स्त्री०) शामन्त्रयित्री।

मुखकी और शाखा प्रमाखामें विभक्त है। जटिलको पेप्टिक ग्रन्थि (Peptic glands) कहते हैं। कोई द्रव्य खानेपर सकल ग्रन्थिसे एक प्रकार जो रस निकलता, वही आमरस (Gastric juice) कहाता है।

चुधाके समय पाकस्थलीके ग्रन्थि पिङ्गलवर्ण देख पड़ते और ऊपरकी और प्रति सामान्यरूप सरस रहते हैं। सूख गिरा कुञ्चित होती है। उस अवस्थामें उनके भीतर यन्प्रामान्य रक्त यातायात करता है।

उसके बाद कोई द्रव्य खानेसे पाकस्थली उत्तेजित हो जाती है। फिर मीधो-मीधो गिरा फैलनेसे त्रैभिक भिक्षीमें अधिक रक्त या पङ्चता, इसीसे उनका रूप लालवर्ण देख पड़ता है। उसी समय ग्रन्थिके मुखमें विन्दु-विन्दु रस जम क्रमसे बाहर निकल जाता है। इसी रसको आमरस कहते हैं।

आमरस जल-जैसा होता है। इसमें कई प्रकार-का चार पदार्थ पाया जाता है। तद्विषु हायड्रोसा-येनिक एमिड रहनेसे आमरस अम्ल लगता है। इसके एक प्रधान उपादानका नाम पेप्सिन (Pepsin) है।

खाद्यद्रव्य प्रथम उदरस्थ होनेपर पाकस्थली सिञ्जु जाती है। उसी समय भुक्तद्रव्य घूमने लगता, इसीसे उसमें आमरस अच्छीतरह मिलते रहता है। इसीप्रकार पुनः पुनः घूम-घूम कर आमरसके साथ मिल जानेपर भुक्तद्रव्य शेषको पिण्डाकार बनता है। उसे कायिम (chyme) कहते हैं। कायिमका कितना ही अंग हादगाह्ल अन्धमें प्रवेश करता और बहुरता बहिर्वाह क्रिया द्वारा रक्तमें मिल जाता है। (हिं०) अमरस देखो।

आमरिता, आमरिख देखो।

आमरिख (सं० पु०) नाशक, हन्ता, गारतगर, सुष्करिख, बरवाद करनेवाला।

आमरुट (सं० पु०) आ-रुद-घञ्। १ बलहेतु निष्पीड़न, रौदन, टङ्गर। २ सहीचन, टबाव। ३ नगर विधेव, किसी शहरका नाम।

आमरुकी (सं० स्त्री०) १ फाल्गुन शक्ता एकादशी। २ आमलकी, आंवला।

आमरुदेन (सं० स्त्री०) आ-रुद भावे लुट्। आमरुद, बलहेतु निष्पीड़न, रौदन।

आमरुदिन् (सं० वि०) आ-रुद-णिनि। १ बलहेतु निष्पीड़नकर्ता, कुचल डालनेवाला। २ वाचक, दवानि-वाला। आ-रुद-पिच्-णिनि, पिच् लोपः। अन्यसे मरुदन करवानेवाला, जो दूमरीसे दवायाता हो।

आमरुर्ग (सं० पु०) आ-रुग् स्वर्ग, घञ्। १ सम्यक् स्वर्ग, खास लम्ब, अच्छीतरह छूनेका काम। २ अनु-मति, मगवरा, सलाह।

आमरुर्गण (सं० स्त्री०) आ-रुग्-ल्युट्। सम्यक् स्वर्ग का कार्य, अच्छीतरह छूनेका काम।

आमरुर्प (सं० पु०) रुप चान्तो घञ्, नञ्-तत् दीर्घः। अन्वेषणपि दृश्यते। पा १।३।१९०। १ भक्षमा, कोप, असहन, इज्जतिराव, वेचेनो। २ रसका मस्यारो भाव विशेष। इसमें अन्यका दर्प चमड़ा होता और उसे नष्ट कर देनेका भाव बढ़ता है।

आमरुर्पण (सं० स्त्री०) कोप, तंय, भूअन्त।

आमल, आमलक देखो।

आमलक (सं० स्त्री०) आमलक्याः फलम्। पक्षे लुक्। पा ३।३।१९१। १ पांवलीका फल, पांवरा। (पु०) आ-मल-कान्। अङ्गनमकारि। लृ० ३।२०। २ आमलकी वृक्ष, आंवलीका पेड़। ३ पक्षकाष्ठ, एक सुगन्धदार लकड़ी।

आमलका (सं० स्त्री०) खनामख्यात वृक्ष विशेष, पांवलीका पेड़। इसका गुण प्रायः हरीतकीके तुल्य है। विशेषमें यह रक्तपित्त एषं प्रमेहकी शान्त करती, स्वास्थ्य सुधारती और रसायन होती है। इसका फल भी अम्लतासे वायु, मधुरतासे पित्त एवं रुचकपायत्वसे कफको नाश करता, इसलिये त्रिदोषघ्न कहता है। इसकी मष्ठा तुवर, मधुर एषं वमनकृत् होती और वात तथा पित्तकी ग्रामन करती है। २ भूम्यामलकी, भूमि आंवला।

आमलकायस (सं० स्त्री०) रसायन विशेष, ब्रह्म-रसायन। विधिवत् सूखा निरसिष आमलक ८ ग्राह्य तथा जीवनीयादिक मिश्रित ८ ग्राह्य दमगुण बारिमें उबाले और बीयाई रह जानेसे क्षान्ति ले। फिर

अतिपिच्छल श्रोतमें बहता और बहुत शीघ्र दीर्घ, हृदय गौरवता आदि उत्पन्न करता है। यह सब व्याधियोंका आश्रय और अति दारुण धाम नामक महारोग है। जब एकवार कफ और यात दोनों कुपित हो अन्तको त्रिक सन्धिमें प्रवेश करते, तब शरीरकी स्तब्ध कर देते हैं। (माधवनिदान) धामवात रोगका कारण मत्स्य मांसकी सङ्ग दुग्ध-पान-जैसा विपरीत गुण करनेवाला विरुद्ध भोजन, भोजनकी वाद ही व्यायाम, आलस्य और स्निग्ध अन्न ग्रहण है। अजीर्ण रोगमें धीरे-धीरे दुष्ट आमरस सञ्चित होता, पीछे मस्तक और गात्रमें पीड़ाका धावा लगता है। उपदंश, गीतन वायु-सेवन और आर्द्र स्थानका वास भी प्रधान कारण है।

इस रोगमें प्रथम पृष्ठवंशसे नीचे कमरके भीतर वेदना होने लगती है। इसीके साथ क्रमशः शरीरके अन्य-अन्य अन्धि भी सृजते हैं। पहले पीड़ा अति अल्प मालूम पड़ती, पीछे त्रिक अस्थिमें सूई-जैसी चुभा करती और कमर अकड़ जाती है। रोगी शय्यामें करवट ले सा या उठकर बैठ नहीं सकता। सायही त्वर, पिपासा, निद्राभाय प्रभृति लक्षण देख पड़ता है। प्रायः डेढ़ माससे कम समय उपशममें नहीं लगता।

एलोपाथीके मतसे वेदना-स्थानमें तारपीन तैल द्वारा कोयले या बालूका खेद लगाने, विलेडोनाका पुलटिम चदाने और पिचकारी द्वारा कमरके भीतर मरफिया पहुंचानेपर उपकार होता है। मरफिया अफीम, आयोडिड अब पोटाश प्रभृति औषध खिलाना चाहिये। वेदनास्थानकी सर्दहा रुईसे बंधा रखते हैं।

वैद्यशास्त्रके मतसे धामवात रोगमें लहान, खेद, तिक्त आग्नेय एवं कटु द्रव्य, वसिष्ठक्रिया, विरेचन तथा स्नेह पानकी व्यवस्था करना उचित है। बालूकी पोतली तप्तकर खेद लगानेसे उपकार होता है। पटसन या दूसरे पीदेकी साफकी डुयी डाली मसुर, तिल, यव, रत्न एरण्डका मूल, अलसी, पुनर्णवा

और सनका बीज कूट-पीसकर दो पोतली दनाये। फिर बहु छिद्रयुक्त टकन लगा हण्डोमें काजी पकाते और टकनपर दोनो पोतली रख देते हैं। उष्य होनेपर पोतलीसे वेदनास्थानमें खेद देता जाये। इसे सङ्घर खेद कहते हैं।

राष्ट्रादि दग्मूल, राक्षापञ्चक प्रभृति का पावन, धामगजसिंहमोदक, रसोनपिण्ड, हृहृदयोगराज-गुग्गुल इत्यादि औषध उपकार करता है।

पौतपर्णिका (आर्टिकेरिया) नामक व्याधिको भी चलती बोलोमें धामवात कहते हैं। इसमें शरीरमें स्थान स्थानपर रक्तवर्ण, अल्प उष्ण और विषम कण्डु निकलता है। उसीके साथ सर्वाङ्ग अतिशय तप्य करता है। किसी-किसी स्थानमें यह पीड़ा अल्पवण किंवा दो-तीन दिन रहती है। किन्तु पुरातन धाम-वात (Rheumatism) रोग एक बत्सर पर्यन्त टिक सकता है।

कुकरमुत्ता, ककडी, अधिक अन्न, उपद्रव्य, कुपाण्ड, कांटेदार मकली और अन्य अन्य मन्द सामग्रो खानेसे यह रोग उत्पन्न होता है। पित्ताधिक्य होने, पाकयन्त्रमें अधिक अन्न जमने किंवा किसी कारण उदरको उग्रता बढनेसे धामवात दौड़ पड़ती है। पुरातन वातरोग, रुग्ण देह, पुरातन व्याधि प्रभृति स्थलमें भी यह निकल आता है।

अदरक, अजवायन और पुराना गुड़ मिलाकर खानेसे सामान्य धामवात कूट जाता है। कोई-कोई गोमूत्र और नीमकी पत्तो पीसकर शरीरमें लगा लेते हैं। कण्डू निकल आनेपर कितने हो लोग पैसे आर गायके नोवेकी रस्सीसे शरीरका खुजलाते हैं। किन्तु पाकस्थली किंवा अन्नमें क्रियाविकार पड़नेसे यह रोग बढ़ता है। इसीसे इपिकाक दूर्ण १५ किंवा २० ग्रोन खिलाना प्रथम वमन कराना चाहिये। पीछे पडोक्लिम चौथायी श्रेण, रेमाचीनीका चूर्ण ३ ग्रोन, सेंटको बुराहा २ ग्रोन और सोडा बायकार्ब २ ग्रोन एकत्र मिलाकर पुड़िया बधि। ऐसी ही एक पुड़िया-प्रत्येक रोगीकी खिलाने। उदरमें उत्तेजना न रहनेसे लायिकर आर्सेनिक ३ शिन्दु अदरकके रसमें

युद्ध छिड़ा। यह भी उस समयकी प्रसिद्ध घटना है। युद्धमें अंगरेजोंका कोई तैरह करीड़ रूपया लगाया। किन्तु तैरह करीड़ रूपया बिगड़नेसे ब्रह्मदेशके अनेक प्रसिद्ध स्थान ह्राय आये। भातौवान उप-कूल, आसाम, मणिपुर, अराकान प्रभृति स्थानोंपर अंगरेजोंका अधिकार जम गया था। सन् १८२८ ई०की लार्ड आमहट्टे अपना पद छोड़ विषायत वापस और १८५७ के मार्च मास मर गये।

शामहीय (सं० वि०) आमहाय सम्यक् पूजाये हितम्, छ। सम्यक् रूपसे पूजा करनेको उपयुक्त, जिससे अच्छीतरह पूजा बन पड़े। यह शब्द मन्त्र विशेषका विशेषण है।

शामहीयव (सं० क्ली०) आमहीयुना ऋषिणा दृष्टं साम अण्। साम विशेष।

शामहीया (सं० स्त्री०) ऋक् विशेष, ऋग्वेदके किसी मन्त्रका नाम।

शामां, चामां देखो।

शामाजीर्ण (सं० क्ली०) आमरसाजीर्ण, चांवकी बदहजमी। इसमें भुक्त द्रव्य नहीं पचता, जैसेका तेसा मलद्वारसे बाहर निकल जाता है।

शामातिसार (सं० पु०) १ आमलतोऽतिसारः, शाकं तत्। पड़विधातिसारान्यतम रोगविशेष, पेंचिस, चांव लङ्का दस्त। कफ बिगड़ जानेसे यह जठरमें छत्पन्न होता है। २ विटा, मैला। इसमें पूतिगन्धि और कठोर द्रव्य मिला रहता है। अतिवार देखो।

शामातीसार, चामातिसार देखो।

शामाल्य (सं० पु०) आमाल्य एव, स्वाधिं अण्। १ मन्वी, आमिल। २ नायक, सरदार। चमाल देखो।

शामाद् (सं० वि०) आममत्ति, आम-अद्-विट्। अतोऽन्ने। वा शारात्। अपक्व मांसादि खानेवाला, जो कच्चा गोश वगैरह खाता हो।

शामादगी (फा० स्त्री०) उपकल्पन, साधन, सज्जीकरण, तैयारी।

शामादगी-दहना (फा० स्त्री०) शान्तिमङ्गल करनेका उपकल्पन, भागड़ेकी तैयारी।

शामादगी-शर-फ़िसाद, चामादगी-दहना देखो।

शामादगी-हमला (फा० स्त्री०) भवस्कन्दका उप-कल्पन, धावेकी तैयारी।

शामादा (फा० वि०) सत्रह, तैयार।

शामानस्य (सं० क्ली०) अग्रगस्तं मानसमस्य समानस-स्तस्य भावः, प्यञ्। दुःख, सुखीवत।

शामानाह (सं० पु०) आमका आनाह, चांवका कवज्ज।

शामानुबन्ध (सं० पु०) १ आमसातल्य, चांवका लगाव। २ आम सस्य, चांवका जोड़।

शामान्न (सं० क्ली०) अपक्वान्न, कच्चा चावल।

शामान्न (सं० क्ली०) वालाम्न, कच्चा आम, अंबिया।

यह कपाय, अन्तरस, रूच्य और वात-पित्त-वर्धक होता है। हिन्दुस्थानमें हरे पुदीने, नमक, मिर्च और चीनीसे प्रायः अंबियाकी चटनी बनाकर लोग रोटी या पूड़ेके साथ खाते हैं। अंबिया छीलकर भरहरकी दालमें भी कोड़ी जाती है। करलेकी तरकारीमें इसका पड़ना बहुत आवश्यक समझते हैं। अंबियासे आमचर बनता, जो मालभर चटनी बनाने और दाल-तरकारीमें डालनेके काम आता है। आमकी प्रायः सभी खटायो, फंकिया, फांका, अचारी वगैरह इसीसे तैयार की जाती है। वसन्तके दिन प्रथम अंबिया देवता पर चढ़ाते हैं। लू लगनेसे भूनकर इसका पना पिलाया जाता है। सड़के प्रायः नमकके साथ अंबिया खाते हैं। इसका दूसरा नाम केरी भी है।

शामान्न (अ० पु०) १ पाचार, इस्तेमाल। २ कम, काम। ३ मन्त्र, जादू। ४ मान, पैसायय। ५ शत्रु-छान, काररवायी। ६ परिणाम, असर। ७ प्रवन्ध, इत्तिजाम। ८ उन्मादक पान, नशीला शर्बत। ९ दिनका समय। १० वृत्तियां, पिचकारियां। यह आमल शब्दका बहुवचन है।

शामालक (सं० पु०-क्ली०) पर्वतके निकटकी मूमि, पहाड़के पासकी जमीन्।

शामालनामा (अ० पु०) कर्मपत्र, कामका विद्या। जिस वहीमें नौकरोंका काम-काज चिखते, उसे शामालनामा कहते हैं।

शामिञ्ज (सं० त्रि०) संछट्ट, मिला-लुला। निरुक्तके निघण्टु काण्डमें (१५१) देवराजने इसका प्रयोग किया है।

शामिञ्ज (वै० त्रि०) शामिमुख्य-मिश्य, जसुद मिलाने-वाला, जो मिलाने में ठेठा हो। "स खोन शामिञ्जलमः सुतोऽप्युत्।" 'सूक् १।२८।४। 'शामिञ्जलमः शामिञ्जलमः।' (सायण)

शामिप (सं० स्त्री०) अम् गतौ भोजने शब्दे सेवायाश्च टिपच्। अने दीर्घा षष् १।४०। १ मांस धातु, उनसर-गोशत। २ भच्छमांस, खानेका गोशत। ३ भोग्य-वस्तु, काममें लाने लायक चीज। ४ भोजन, गिजा। ५ सश्रोग, विषय, मजा, मजेदारो। ६ उत्कीच, रिशवत। ७ लाभ, फायदा। ८ कामगुण, खादिश। ९ मनोहररूप, दिलकश-सुरत। १० दृष्या, लालच।

शामिप शब्दसे मत्स्य एवं मांस उभयका बोध होता है। 'देवदत्त शामिप नहीं खाता' कहनेसे समझ पड़ता, कि वह मत्स्य एवं मांस दोनोंसे दूर रहता है। अण्ड शामिपमें ही गण्य है। किन्तु शरीरसे निकलते भी दुग्ध शामिप नहीं कहाता। शास्त्रकारोंने षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा तिथि, रविवार और संक्रान्तिको शामिप खाना रोका है। इसका निवारित विवरण 'मत्स्य' और 'मांस' शब्दमें देखो। सच्चातीय विषवा और ब्रह्मचारी दोनों शामिप नहीं खाते। किन्तु तन्वके मतानुसार जो ब्रह्मचर्य रखता, वह शामिप खा सकता है।

शामिपकर (सं० स्त्री०) शोणित, खून, गोशत बनानेवाली चीज।

शामिपगम्भिनी (सं० स्त्री०) पूतनी, पुटीना, गोशतकी तरह मूहकनेवाली चीज।

शामिपप्रिय (सं० पु०) १ काकपकी, कौवा। (त्रि०) २ मांसभक्षक, गोशतखोर।

शामिपभुक् (सं० त्रि०) मत्स्य-मांस-भक्षक, मछली और गोशत खानेवाला।

शामिपभुज्, शामिपभुक् देखो।

शामिपाशिन, शामिपभुक् देखो। (पु०) शामिपाशी। (स्त्री०) शामिपाशिनी।

शामिपरनेह (सं० पु०) धसा, चरबी, गोशतका रोगन।

शामिपी (सं० स्त्री०) शामिप-भृत्-ङीप्। अने शामिपी १। या १।५।२०। मिपी, जटामांसी, बालकङ्क।

शामिस् (वै० पु०) १ मांस, गोशत। "न चरुं तन्वामिषि ख्योता।" (सूक् १।४।१४।) 'शामिषि शामिषे मांसे।' (सायण) २ शय, सुर्दा। इस शब्दका प्रयोग केवल वेदकी प्राचीन संहितामें मिलता है।

शामी (सं० स्त्री०) १ सुदृढ़ एवं अथक शाम, छोटा और कच्चा शाम, केरी, पंचिया। २ हृत्त विशेष, एक पेड़। इसे तुल्ला या भान भी कहते हैं। परिमाणमें शामी छोटी होती और प्रतिवर्ष शामिन-कार्तिक मास पत्ते भाड़ती है। आन्तरिक काष्ठ किञ्चित् श्यामता लिये पीत, दृढ़ और कठोर निकलता है। सच्चाके कितने ही वस्तु इससे बनते हैं। हिमालयके वेणव इसके नालसे पेटक प्रसृत करते हैं। शिमले, हजारे, कुमायूँ आदिके पर्वतपर शामी खूब उषजती है। ३ यव श्रयवा गोधूमकी दग्ध मञ्जरी।

शामी (अ० अय्य०) १ शोम्, भवतु, एवमस्तु, तथास्तु, ऐसा ही हो, तैरे सुंङ्घी-खांङ्। २ ईश्वर वचाये।

शामीचा, शामिषा देखो।

शामीन्—यानेश्वरके दक्षिण-पूर्वका एक बड़ा जङ्गल। इसे अभिमन्थुखेड़ा या चक्रशूङ्ग भी कहते हैं। यहीं जयद्रथने अभिमन्थुको मार डाला था। इस जङ्गलमें शामीन् नामक आम भी बसा, जिसमें अदिति और सूर्यदेवका मन्दिर खड़ा है। यहाँ सूर्यकुण्ड विद्यमान है। गौड़ ब्राह्मण अधिक रहते हैं। क्षिरां पुत्र-प्राप्तिको कामनासे अदितिको पूजतीं और सूर्यकुण्ड नहातीं हैं। (अ० अय्य०) शामी देखो।

शामीलग (सं० स्त्री०) नेत्रांका विराम, आंखोंका बन्द करना।

शामीवत्, शामीवत् देखो। (पु०) शामावान्। (स्त्री०) शामीवन्ती।

शामोवत्क (वै० त्रि०) सम्मुख प्रापक, सामना पकड़नेवाला। (स्त्री०) शामोवत्का।

शामुक्त (सं० त्रि०) १ अक्क, जो खोल दिया गया हो। २ विसुक्त, घूटा हुआ। ३ क्षिप्त, फेंका हुआ।

शामोखूता फेरना, शामोखूता पदना देखो।
 शामोचन (सं० स्त्री०) आ-सुच्-ल्युट्। १ शिथिलीकरण, छोड़ देनेका काम। २ परिधान, संयोग, लगाव, पहनाव।
 शामोद (सं० पुं०) आ-सुद्-लुट्। १ प्रमोद, शादमाना, मौज। 'प्रमोदोऽसुतोऽश्रीः' (हम) २ दूर-गामी गन्ध, तेज मसक। 'शामोदो नवधरयोः' (मदिनी) ३ परिमल, इत्रियात। ४ यतावरी।
 ५ बन्धुई प्रान्तके मडोंच जिलेकी तहसील। अवि-रल प्रान्त बायोस लम्बा तथा तेरह मील चौड़ा है। उत्तर टाडर नदी, पूर्व बड़ोदा राज्य और दक्षिण तथा पश्चिम मडोंच एवं वागरा तहसील अवस्थित है। क्षेत्रफल १७६ वर्गमील है। विद्रिष्ट ग्राम कहीं नहीं देख पड़ते। टाडर नदीके समीप जङ्गल है। पानीकी कमी रहती है। कूप घोड़े और तालाब छोटे हैं। भूमि काली होती है। पश्चिमकी ओर भूरी पड़ती है, जो जोती-बोयी जा नहीं सकती। पूर्वमें पैदावार अच्छी होती है। (त्रि०) ६ प्रीति-प्रद, मसरूर या खुश करनेवाला।
 शामोदक (सं० पुं०) यमानिका, अजवायन।
 शामोदजननी (सं० स्त्री०) नागवल्ली, पान।
 शामोदन (सं० स्त्री०) आ-सुद्-लुट्। शामोद-करण, प्रहर्षजनन, मसजूजी, मसरूरी, रिभानेका काम।
 शामोद-प्रमोद (सं० पुं०) हर्ष-सन्तोप, खुशी-खुरमी, राग रङ्ग।
 शामोदा (सं० स्त्री०) १ यतावरी, सतावरी। २ कैमूर-गिरि शिखरस्थ ग्राम विशेष, कैमूर पहाड़की चोटी-पर बसनेवाला गांव। यह बोरी बन्दरसे साढ़े तीन कोस दक्षिण-पूर्व है। गोंड राजत्व करते हैं। यहां स्वामीके मरनेसे पत्नी सहगामी होती है। सतीका बड़ा आदर सम्मान और श्रद्धार्थ स्थापनापन किया जाता है। सन् १५६४ ई०को गोंडराज प्रेम-नारायणके राजत्वकाल एक स्त्री सहस्रता हुई, जिसके शरणस्वार्थमें सब बात खुदी है। (Cun. Arch. Reports IX. 39)

शामोदित (सं० त्रि०) १ प्रीत, शादमान, खुश।
 २ सौरभित, सुवत्तर, सौधा।
 शामोदिन् (सं० त्रि०) शामोद-इति। १ हर्षयुक्त, शादमान, खुश। २ गन्धयुक्त, सुवत्तर, सौधा। समासान्तमें यह शब्द 'गन्धयुक्त'का अर्थ रखता है; जैसे—कादम्बशामोदिन्, कादम्बके गन्धसे युक्त। (स्त्री०) शामोदिनी।
 शामोदी (सं० पुं०) १ सुखवासन, सुँहको मड़काने-वाला। २ कपूर्वादिवटिकाकृत सुखगन्ध, काफूरकी डलीसे बना हुआ सुँह मड़कानेका मसाला। वर्तमान समयके ताम्बूल-विहारादिकी शामोदी ही समझना चाहिये।
 शामोप (सं० पुं०) आ-सुप् भावे घञ्। हरण, सरका, चोरी। "यथा विश्वामोचनतोयादेवमेव योऽस्य स्त्रोँ भोको जितो भवति।" (शतपथ-ब्राह्मण १.१.५.५।८)
 शामोधिन् (सं० त्रि०) हरणकर्त्ता, चोर, मूसने-वाला। (पुं०) शामोपी। (स्त्री०) शामोपिथी।
 शामोहनिका (सं० स्त्री०) भपूर्व सुगन्ध, निराली मसक।
 शाम्नात (सं० त्रि०) आ-न्ना-त्त। १ सुन्दर अभ्यस्त, सम्यगधीत, नाम लिया हुआ, जो भूला न हो। (स्त्री०) आ-न्ना भावे त्त। २ सम्यगभ्यास, अच्छी महारत।
 शाम्नातिन् (सं० त्रि०) शाम्नातमनेन, इति। अभ्यास रखनेवाला, जिसे महारत रहे। (पुं०) शाम्नाती। (स्त्री०) शाम्नातिनी।
 शाम्नान (सं० स्त्री०) आ-न्ना-लुट्। १ वेदादिपाठ, वेदादिका अभ्यास। 'शाम्नानं पठन्।' अथर्वशास्त्राख्यपाठ ३।१।२। २ श्रावण, नामप्रहण, तज्जिरा।
 शाम्नाय (सं० पुं०) शाम्नायते सम्यगभ्यस्यते, शाम्ना कर्मणि घञ्। १ वेद, श्रुति। 'श्रुतिः की वेद शान्ना-यन्ती।' (बनर) २ श्रागमप्रधान तर्कशास्त्र। भावे घञ्। ३ सम्यगभ्यास, सम्यक् पाठ, अच्छा महावरा, खासा सबक। ४ सम्प्रदाय। 'शान्नायः सन्नायः।' (बनर) ५ उपदेश, नसीहत। 'शान्नायि निदोषि च उपदेशे।' (मदिनी) ६ कुल, खान्दान। ७ कुलपरम्परा, खान्दान; रथ।

शाम्बता—युक्तमात्सके सङ्घारनपुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८° ५१' १५" उ० और द्रावि० ७७° २२' ३५" के मध्य अवस्थित है। पहले सुगल-फौजकी यहां चौकी रहती। शाह अयुलमालीका सुन्दर समाधि-मन्दिर बना है। पीरजादे तिष्कर भूमि भोगते हैं। इस नगरमें ईंटके बड़े-बड़े मकान् खड़े हैं।

शाम्बरीपुत्रक (सं० पु०) अश्वरीपुत्रक चतुर्थ्यां पुत्र्। गीमोष इत्यादि। पा ३।१।२८। १ अश्वरीप ऋषिके पुत्र। २ देशविशेष।

शाम्बष्ठ (सं० पु०) अश्वठस्यापत्यम्, अश्व। गिनादिभ्यश्च। पा ३।१।२९। १ अश्वठका पुत्र वा कन्या-रूप अपत्य। २ अश्वठ देशका रहनेवाला।

शाम्बता-विहार प्रदेशके छपकोकी एक श्रेणी। शाम्बता दो प्रकारके होते हैं,—घरवायत और बहरायत। घरवायत अनेक दिनसे प्रतिष्ठित और नरवार, नरहन, पटवार तथा परवार श्रेणीमें विभक्त हैं। बहरायतमें खवास, घियहार, खवार आदि उपाधि प्रचलित है। पटने, तिहुंत, दरभङ्गे, मुजफ्फरपुर, सारन, चम्पारन, मुङ्गेर, भागलपुर, राजशाही, दौनाजपुर, सन्याल परगनें यगूरहमें यह देख पड़ते और प्रायः बड़े भादमियोंकी नीकरी करते हैं।

शाम्बतामें वाष्य-विवाहकी प्रथा है। शैशव अवस्थामें पुत्र वा कन्याका विवाह कर सकनेपर यह अपनको मानी समझते हैं। पैसा काम रहनेसे विवाह होना कठिन है। बहुत विवाहकी रीति भी देख पड़ती है। स्वामी मर जाने पर मिवा ज्येष्ठ-सहोदरके दूधर देवरसे स्त्रीका पुनर्विवाह होता है। सतीका बड़ा आदर है। प्रायः सकल ही शाक्त हैं। कालीके निकट बकरेका वलिदान देते हैं। उपास्य देवता पांच है—भवानी, गोरैया, सोखा, बंटी और पैकुराम। पान, तुपारी, मोठे भात और केलेसे भवानीको पूजते हैं। गोरैयेपर छपरका छौना चढ़ता है। सोखाको रोटी प्यारी है। बंटीके श्रिये-मिठाई भाती है। पैकुराम सर्वप्राचीन देवता है। बहुत दिनमें शाम्बताके पूर्वपुरुष उनको पूजा करते प्राये

हैं। शशिन मास पितृपुरुषोंके उद्वेष्टसे तर्पण होता है। ब्राह्मण इनके हाथका जल पी लेते हैं।

शाम्बाद—दक्षिण हैदराबादका एक तालुक। इसका परिमाण ८६० वर्गमील है। २४१ ग्राम बसते हैं। महाराष्ट्रोंके अधीनता स्वीकार करनेपर शाम्बादमें अंगरेजोंका अधिकार हुआ था। कुछ दिन बाद यह निजामके राज्यमें मिला और सन् १८६२ ई०को स्वतन्त्र जिला बना। उस समय पयरी, पुरभानो, जलनापुर, नरसो, पंठन और शाम्बादमें तहसीलदारी रहती। चार बत्सर पोछे अनेक परिवर्तन पड़ा था। जिलेकी बड़ी मदालत औरङ्गाबाद उठ जानेपर यह फिर तालुक हुआ। छपकोका ही अधिक वास है।

शाम्बिकेय (सं० पु०) अश्विकाया अपत्यम्, ढक्क। यथादिभाष्य। पा ३।१।२९। १ धृतराष्ट्र। विचित्रवीर्यको अकालमृत्यु होनेपर सत्यवतीके भादमसे व्यासदेवने अश्विकागर्भमें धृतराष्ट्रको उत्पान किया था। यह बात महाभारत-भादपर्वके १०६ठें अध्यायमें विवृत है।

अश्विकाया दुर्गाया अपत्यम्। २ कार्तिकेय। ३ पर्वत विशेष, एक पहाड़। यह शाकद्वीपके मध्य अवस्थित है। इसी पर्वतपर हिरण्यक मारा गया था। (महाभूषण)

शाम्बोली—रत्नपुरपटके भेद, किसी किस्मकी भाड़ी। यह प्राकृत शब्द ठहरता और कोठण देशमें चलता है।

शाम्बाठ (सं० त्रि०) जन्मात्मक, श्रावी, पनीता। शाम्बासिक (सं० पु०) शम्भवा वर्तते, ढक्क। १ मत्स्य, मङ्गलो। (त्रि०) २ जल-सम्बन्धीय, दरयायी। शाम्बा (सं० त्रि०) शम्भो जातादि, इज्ज सलोपः। महादिभाष्य। पा ३।१।२६। जलजान, श्रावी, पानीसे पैदा।

शाम्भूषी (सं० स्त्री०) वाक्, शम्भूष ऋषिकी कन्या। शाम्भ (सं० पु०) प्राणीविशेष, एक जानवर। यह नकुल सष्टम होता है। शाम्भ (सं० पु०) अम गत्यादिपु न् दीर्घः।

खण्ड, अमचूर। यह अम्ल-मधुर, कषायरस, मीदक और वात-कफघ्न होती है। (भाप्रकाय) अमचूर अकसर लोग सुखाकर रख छोड़ते और दासमें डालते या चटनी बनाते हैं। अमचूरकी चटनी हरी धनिया मिला देनेसे बहुत अच्छी लगती है।

शाम्प्रसाद—नृपति विशेष। भावनगरके गिलालिखमें इनका उल्लेख है।

शाम्प्रफल (सं० स्त्री०) शाम्प्र, आम। आम देखो।

शाम्प्रफलपानक (सं० स्त्री०) शाम्प्रफल-कृत पानक विशेष, आमका पना। कच्चे आमकी पानोमें फुला हाथसे खूब मसे और चीनी, कपूर, मिर्च मिला दे। यह प्रपाणक श्रेष्ठ, सद्य रुचिकर, बन्ध और शीघ्र इन्द्रिय तर्पण है। भोमसेनने अपने लिये इसे बनाया था। (भाप्रकाय)

शाम्प्रमय (सं० त्रि०) शाम्प्रस्य विकारः पचयवो वा, हृदित्वात् मयत्। शाम्प्रकृत, आमसे बना हुआ।

शाम्प्रमूल (सं० स्त्री०) शाम्प्रशिका, आमकी जड़। यह सुगन्ध, रुच्य, संग्राहि और शीतल होता है। (राजनिघण्टु)

शाम्प्रसाकृति (सं० पुं०-स्त्री०) शाम्प्रस्येवाकृतिः स्वादो यस्य, बहुव्री०। पीताख्य रसाल विशेष, किसी किसका आम।

शाम्प्रलेह (सं० पुं०) शाम्प्रकृत लेह, आमकी चटनी। तरुण शाम्प्रको भून गुड़ या चीनीके साथ मले और सेन्धव, मरिच, तथा भर्जित हिङ्गु मिला दे। यह रुचिकृत, मधुर, लसिकारक, हृद्य, सिन्ध और गुरु होता है। (द्वयनिघण्टु)

शाम्प्रवण (सं० स्त्री०) शाम्प्रस्य वनम्, इ-तत्, नित्यं शत्वम्। मरिचकः शरैश्चतुर्भुजात्थेऽदिरेषोयथाभ्योऽवश्यात्पि। पानकः। शाम्प्रवृक्ष समूहात्मक वन, आमका जङ्गल।

शाम्प्रवन्द (सं० पुं०) शाम्प्रवन्द्या, आमका बंदा। इसके पड़नेसे वृक्ष सूखने लगता है।

शाम्प्रवट, शाम्प्रतक देखो।

शाम्प्रवाट, शाम्प्रतक देखो।

शाम्प्रवीज (सं० स्त्री०) शाम्प्रस्य, आमकी गुठली। यह कषाय, हृदि-पतीसार-घ्न, ईषत् शम्भ, मधुर और हृद्य-दाहघ्न है। (भाप्रकाय)

शाम्प्रवेतस (सं० पुं०) शाम्प्रवेतस, चूक।

शाम्प्रहरिद्रा (सं० स्त्री०) शाम्प्रनिया, शाम्प्रहरीदी।

शाम्प्रनात (सं० पुं०) शाम्प्रं शाम्प्ररसं घतति, शाम्प्र-शत-पचायच्। १ खनाम-प्रसिद्ध हल विशेष, अमड़ेका पेड़। बनग देखो। (स्त्री०) शाम्प्रनातस्य फलम्, शम्प्र।

कषि शुक्। प १११२२। २ अमड़ेका फल। यह अल्प वातघ्न, गुरु, लघ्य एवं रुचिकृत होता, पकनेपर तुवर, खादुरसपाक, डिम, तर्पण, श्लेष्मल, सिन्ध, हृद्य, विष्टम्भि, हृद्घ्न, गुरु तथा बन्ध रक्षता और वात पित्त, शत, दाह, चय, अस्त्रको जीत लेता है। आम फल कषायाम्ल और पक मधुर-शम्भ, सिन्ध एवं पित्त-कफघ्न है। (राजनिघण्टु) ३ शाम्प्रवर्त, अमावट।

शाम्प्रनातक (सं० पुं०) शाम्प्र इव घतति, शाम्प्र-घत-गिखल्। १ शाम्प्रनात, अमड़ेका पेड़। 'अथ सो पीतनकपोतनी शाम्प्रनातके' (अमर) शाम्प्रनातकस्य फलम्। २ अमड़ा। शाम्प्रं तत्फलरसेन तक्तै प्रकाशते तदसं मद्यते वा, शाम्प्र-शाम्प्रनातक पचायच्। ३ अमरस, अमावट। ४ पर्वतविशेष।

शाम्प्रनातकेश्वर (सं० पुं०) शाम्प्रनातक इव ईश्वर-लिङ्गमल, शकं बहुव्री०। तीर्थस्थान विशेष। यह नर्मदाके उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां महादेवका दर्शन होता और नहानेसे सङ्घ्न गोदानका फल मिलता है। (मत्स्यपुराण)

शाम्प्रवती (सं० स्त्री०) शाम्प्रं शाम्प्रसोऽप्यस्याम्, मत्स्य मस्य वः दीर्घः। गणतोगण। प १११२०। १ नदी विशेष। इसका जल शाम्प्ररस-जैसा मीठा होता है। २ नगर विशेष, एक पुराना मयूर शहर।

शाम्प्रवर्त (सं० पुं०) शाम्प्रवृक्ष इव शाम्प्रस्य शाम्प्रवर्तते, शाम्प्र-शाम्प्रवृक्ष पचायच्। १ शाम्प्रनातकवृक्ष, अमड़ेका पेड़। (स्त्री०) २ अमड़ेका फल। शाम्प्रं न शाम्प्ररसेन पावर्तते निव्यायते, शाम्प्र-शाम्प्रवृक्ष-पिचु कर्मणि घञ्। ३ अमावट। पके आमका रस कपड़े या किसी बरतन पर निचोड़ धूपमें सुखानेसे यह धनता; शक, रुच्य तथा सधु होता और द्रव्या, हृदि, वात एवं पित्तको मिटाता है। (भाप्रकाय)

शाम्प्रस्य (सं० स्त्री०) शाम्प्र-वीज-स्य, आमकी

मसकन । ४ वनितागार-पालक, जनानिका नाज़िर ।
कर्मणि भच्-घञ् । ५ ज़मीन्दारीसे खामिमात्र
घनादि, ज़मीन्दारीकी आमदनी ।

“कर्मणः सदीव्याय पर्ये शय्यव्यौ स्वप्न ।” (याज्ञवल्क्य)

‘आग्नेयु खामिमात्रो भाग आयः ।’ (सिद्धान्तकौमुदी)

आयःशूलिक (सं० त्रि०) आयः शूलैनार्थान् अन्वि-
च्छति, अयः-शूल-ठक् । अयः शूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठनी ।

या ५२.०६ । ‘तीषा सपाशेयःपुन तेनानिच्छति आयःशूलिकः साप-
सिकः ।’ (सिद्धान्तकौमुदी) ‘आयःशूलिकः यो षट्पदीपाथेनाग्नेय-
न्यानर्थान् अर्थान्निच्छति ।’ (सहाभाष्य) १ तीक्ष्ण कर्म द्वारा

अर्थकर, लठकी ज़ोरसे रूपया लानेवाला । (पु०)
२ साहसिक पुरुष, रूपया पैदा करनेके लिये सर

फोड़नेवाला आदमी । (स्त्री०) आयःशूलिकी ।

आय जाना (दि० क्ति०) आ जाना, पहुँचना ।

“आय मये वरुणैव धरतु धरतु आयव सुमत ।

यथा विभोक्ति चक्रेव, बाल रविचि धरेत दग्धु ॥” (तुषुष्टी)

आयजि (६० त्रि०) अभिसुखेन इज्यते, आ-यज
श्रीषादिक इ प्रत्ययः । आयज्य, सर्वतो यज्ञ-

साधन, चारो ओरसे यज्ञ करनेवाला । “आयजो वाजसातमा ।”
(श्व० १।२८६)

आयजिष्ट (६० त्रि०) देवताके सम्मुख यागका
विषयीभूत । “शोदधामसायजिष्टः ।” (श्व० १।२९०) ‘आयजिष्ट
आग्निहोत्रेण देवानां यच्छतम् ।’ (सायण)

आयज्य (६० त्रि०) १ लाभ चठानेकी चेष्टा करने-
वाला, जो चांसिल करनेमें लगा हो । २ यज्ञ करनेका
तत्पर, जो यज्ञ करना चाहता हो ।

आयत् (सं० त्रि०) आगमन करनेवाला, जो आ
रहा हो । (स्त्री०) आयती ।

आयत (सं० त्रि०) आ-यम-क्त, अनुनासिक लोपः ।
१ विस्तृत, दीर्घ, तवील, दराज, लम्बा । आ-यम
कर्मणि क्त । २ आकृष्ट, खिंचा हुआ । ३ हट, मड़पूत ।
४ नियमित, बकायदा । (पु०) १ ज्यामितिका
दीर्घ-चतुरस्र आकार, तहरीर-वक्रोदसकी यज्ञ
सुस्तनील । (प० स्त्री०) १ इच्छील या कुरान्की
बात ।

आयतच्छटा (सं० स्त्री०) आयती दीर्घच्छटः पत्रं
यस्माः, बहुव्री० । कदलीचुप, केलीकी भाड़ी ।

आयतन (सं० क्तो०) आयतने धर्मार्थं साधवाद्वा,
आ-यत आधारे लुट् । १ अधिष्ठान, बुनियाद ।
२ आयय, सहरा । ३ हेतु, सबब । ४ विश्रामस्थान,
पारामगाह । ५ मठ, मन्दिर । ६ चवुतरा । ७ धान्य-
संग्रहस्थान, खिरमन, खलियान । ८ रोगनिदान,
बीमारीका सबब । ९ यज्ञस्थान । वेदमें आयतन दो
प्रकारका होता है,—पृथिवी और अन्तराक्ष । अन्तः-
अनुष्टुप्, एकविंशतिस्तोम एवं वैराजसाम, पृथिवी
और ऐमन्त, पंक्ति, त्रिणवस्तोम तथा गाङ्गा-
साम अन्तरोक्षका आयतन है । १० अथच्छेदक,
सुच्छिदः । ११ प्रतिमा, गल्ल । १२ बाह-मतात्त
पुट्टोन्द्रयस्थान, छः अन्दरुनी निगस्तागाह । चतु,
कर्ण, नासिका, जिह्वा, समस्त शरीर और मनकी
भोट देशके बौध आयतन कहते हैं । किमो-किमोने
पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, मन और बुद्धिका
मिलाकर द्वादश आयतन माने हैं,—

“अपानुपात्रं बहुभो द्वादशायतनानि वै ।
पतिः पूरुषौषानि किमनेरिष्टं भुजिते ॥
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च व तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिरिन्द्रियं प्रोक्तं द्वादशायतनं तुर्यं ॥” (शिविधितिररथ)

फिर दूसरे मतमें—
“दुःखं चं सारिषः कन्यासि च पथ प्रकीर्तिताः ।
विद्यां वेदनाथं च सत्कारो ६पतेर च ॥
पञ्च इन्द्रियाणि अस्याया विषयाः पञ्चमानसम् ॥
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥” (विश्वविश्वस)

जैनशास्त्रानुसार—“अथस्वामिदिगुपानाकारनयस्यमवाच आयः
आचारकरश्च निदिग्धायतनं मन्थते” (इष्टवचनं ६४) अर्थात्
आत्माकी संसारसे मुक्त करनेवाले सम्म्यग्दंन
(यास्तविक पदार्थोंमें अहान करना), सम्म्यग्ज्ञान
(समस्त पदार्थोंकी विपरोतता, अनध्यवसाय धार
संग्रहरहित ज्ञान होना), सम्म्यक्चारित्र (संसारके
दुःखोंसे भयभीत हो सांसारिक कार्योंके परित्यागपूर्वक
सुतपक्ता तपना) ये तीन कारण हैं । इनके आश्रयभूत
जो पदार्थ हैं, उन्हें आयतन कहते हैं । और ऐसे
आयतन छः हैं—सुदेव, सुयाद्य, सुगुरु, सुदेवागधक,
सुगाहाराधक और सुगुरुसमाराधक । सर्वज्ञ, योग-

सरतान्से तालुक रखनेवाला। (हि० पु०) ३ गवा-
दिका स्तन, बाख।

आयनवलना (सं० स्त्री०) क्रान्तिमण्डलकी साम-
यिक परिहृत्तिमलना, अयन-सम्बन्धो विचलन, खूत-
मोतदिसुल-नहार और रासुल-सरतान्का टेढ़ापन।
यक्षना दो प्रकार है, आक्ष और आयन। यक्षगणनामें
दोनों प्रकारकी वलनाजांच लेना चाहिये। नतज्याकी
अक्षज्या द्वारा गुणन और फलको त्रिज्यासे हरण कर-
नेपर जो शङ्क आता, वही आक्षवलनाज्या कहाता है।
इस ज्यसे सम्बन्ध रखनेवाले चाप भागके निकल आने-
पर आक्षवलनांश ठीक हाता अर्थात् वही चापभाग
आक्षवलनांश ठहरता है। इसी प्रकार जिस ज्योतिष्क-
की यक्षगणना आवश्यक आती, उसीके स्थानको जांच
हो आती है। फिर निर्णीत स्थानमें तीन राशि अर्थात्
८० अंश मिलाकर गिनी जानेवाली क्रान्ति ही आयन-
वलना है। (अक्षिणदाल)

पाषाण्य ज्योतिर्विद्वद् कहता, कि ज्योतिष्कगणकी
क्रान्तिगणना द्वारा समस्तक्रमणिका बनानेसे लक्ष्यके
अनुसार कार्य करनेपर सुभोता बैठता; क्योंकि उसमें
उत्तर एवं दक्षिण भेदका प्रयोजन नहीं पड़ता।
बनना अर्थमें विचारित विवरण देखी।

आयन्ता, आयन् देखी।

आयन्ती-पायन्ती (हि० स्त्री०) १ सरहाना-पाय-
ताना, जं चा-नीचा, ऐताना-पैताना। (क्रि० वि०)
२ जपर-नीचे, चढ़-उतरकर।

आयन्तू (बे० पु०) बांधने या उठानेवाला। सायणने
इसका अर्थ आनेवाला लगाया है।

आयमन (सं० स्त्री०) आ-यम-सुगट्। १ विस्तार,
फैलाव। णिच्-सुगट्। २ नियमन, पाबन्दी। ३ इड़
एवं सङ्कुचित वस्तुका आकर्षण-पुर्वक दीर्घीकरण,
खेचतान। "यथा इदं लघुव आयमनम्।" (शब्दार्थ ७०/१३५)

आयमा (अ० स्त्री०) निष्करभूमि, मापी जमीन।
यह इमाम या मुल्लाको मिलती और मालगुजारीसे
बरी रहती है।

आयम्य (सं० त्रि०) १ विस्तार्य, फैलने काविल।

२ संयमयोग्य, रोक जानेवाला। (अर्थ०) ३ विस्तार
या संयमपूर्वक, फैला या रोककर।

आयर्लैंड—एक युरोपीय द्वीप। यह भूचा ५१° २६' से
५५° २१' ७" और द्राधि ५° २५' से १०° ३०' पू०
तक विस्तृत है। उत्तर, दक्षिण एवं पश्चिम आट-
लाण्टिक महासागर और पूर्वमें नाथ चानेल,
आयिरिस सागर तथा सेण्ट जार्ज चानेल है। क्षेत्रफल
३२५३१ वर्गमील पड़ता है। चार प्रदेश और वत्तीष
जिला है। बड़ा पहाड़ देखनेमें नहीं आता। प्रधान
नगर और बन्दरका नाम डबलिन है। मध्यको सम-
तलभूमि उत्तर और पूर्वके पर्वतको विभाग करती
है। नदी पूर्व और पश्चिम बहती है। छद्
बहुत और जलवायु अच्छा है। भूमि अधिक उर्वरा
है। खनिज द्रव्य बहुत कम निकलता है। जून,
नैनु, रैगम और रुईका काम बनता है। आयर्लैंड
ग्रेटब्रिटेनके संयुक्त राज्यका एक भाग है। भाषा
प्रधानतः अंगरेजी है। प्रायः सन् १४५० ई०के समय
लोगोंने तांबेको काममें लाना सोचा था। पहली
अग्नि, सूर्य, कूप तथा हृत्की पूजा होती रही। अब
ईसाई धर्म फैल गया है। कोर्ड-काई पाषाण्यपरिष्कृत
आयर्लैंडकी पुराणोक्त 'खणप्रस्थ' ठहराता है। पहले
सोने और चांदीको यहां खानि रही। *

इतिहास—आयर्लैंडके आदिम अधिवासियोंका ज्ञान
जानना कठिन है। ऐतिहासिकानि जो कुछ लिखा,
वह कथा-कहानीके ही आधारपर खड़ा है।
कौन बता सका, सन् १८५३ ई०से पहले आय-
र्लैंडका क्या भाव रहा। लोग कहते, सन् ई०से
पांच-छः शताब्द पहले विडेल नामक आक्रमणकारी
आये थे। भाषा केलाटिक रही। वर्तमान समय कीनाटी
और मनटेरियोंमें केलाटिक भिन्न आकार मिननेसे
विडेलोंका आदिम अधिवासियोंके साथ विवाहादि
सम्बन्ध रखना प्रमाणित होता है। आदिम अधि-
वासियोंको भाषाका सम्बन्ध नहीं लगता। सम्भवतः
विडेलोंने ही ब्रुएर, लोएर, कोनाट, पूर्व मग्टर
और पश्चिम मनटर विभाग, बनाया था। फिर सन्

२३४-२६६ ई० समय कलाकौशल बढ़ानेवाले कौर-
माकका राज्य रहा। अलटरके आदिम अधिवासियोंको
उल्लिङ्गियन कहते हैं। योचैद सुयिगमडोयिनके
पुत्र नियल नोयिगियलाके शासन करते ताराका
मिलेसिमन राज्य प्रतिष्ठित हुआ था। नियलने
विदेशियोंपर चढ़ सेण्ट पाट्रिकको कंद किया। वेरस,
इङ्गलेण्ड और आयिल-श्व-मानमें मिले थिला-
लेखोंसे उपरोक्त विषय प्रमाणित है।

किन्तु अब लोग नहीं मानते, कि आयलैण्डवासी
प्रधानतः मिलेसीय हैं। मूर्तिपूजकोंका उत्पत्त
प्रायः अविदित है। हां, कितने ही महापुरुषोंके
उपाख्यान सुननेमें आते हैं। किन्तु पवित्र वृक्ष-
युक्त कूर्पों, प्रस्तर-स्तम्भों और भस्त्र-शस्त्रोंपर ऐसे
बहुतसे चिह्न मिलते, जिनसे जीव पूजा प्रमा-
णित होती है। सूर्य और अग्नि भी पूजे जाते
थे। अस्त्राश्रोंको आयलैण्डवासी बड़े आदरकी
दृष्टिसे देखते रहे। आज भी उनकी कथा-वार्ता
देहाती लोगोंमें हुआ करते हैं। कितने ही मनुष्य
अस्त्राश्रोंके साथ ब्याह गये थे। वृजित कला-कौशल
और भीभाग्यकी देवी रहीं। किलडारमें उनके
नामपर सदा अग्नि जलता और हेन्रायिडस
तथा डोनेगालमें सुभिष्य होनेके लिये पूजन किया
जाता था। क्रिडना और ऐवेल अस्त्राश्रोंकी रानी
हैं। आना, बोडव और माचा नामक तीन युधविषयक
देवियोंका बात प्रायः होते रहती है। क्रोम क्रोच
देवकी मूर्ति सोने-चांदी की बनी थी। उनकी चारो
ओर बारह मूर्तियां पीतलकी रहीं। किसी पुराणमें
क्रोम क्रोच आयलैण्डीय दस्युमूर्ति कहे गये हैं।
सेण्ट पाट्रिकने उक्त मूर्तिको चड़ा कर फेंक
दिया था। उनकी गदाका चिह्न आज भी मूर्तिपर
अंकित है। लोग अधिक धान्य, मधु और दुग्ध
पानेके लिये अपने लड़के क्रोम क्रोचके सामने
वलि चढ़ाते थे। एक समय दुर्भिक्ष पड़ा। पाद-
रियोंने कहा, किसी निरपराध दम्पतीके पुत्रको
लाकर तारा देखीपर चढ़ाया और उसका रक्त मृत्ति-
कामें मिलाया जाता। ड्यूयिड पादरियोंका बड़ा मान

रहा। वह अधिचारसे सुखपर लक्ष्य भार लोगोंको
विचित्र बना और अग्नि तथा रक्त आकाशसे बरसा
सकते थे। उन्हें वादलोंको देख और पवित्र काष्ठ-
खण्डको लठा आगामी विषय बता देनेका अधिमान
रहा। मन्त्र मारनेसे लोग अदृश्य हो जाते थे।
आयलैण्डवासियोंको वैकुण्ठ होनेका विश्वास था।
कोण्डला कायम जीते-जी नावपर चढ़ मान और
फेवालके साथ वैकुण्ठ पहुँचे। दलरियादा नृपति
मोनगनने मरनेके बाद मेडिये, हिरण, इस आदि कई
जीवोंका आकार धारण किया था। बूढ़ा पानेपर
फिनतान भी कितने ही जीवोंके रूपमें बहुत दिन
विद्यमान रहे और अन्तको सन् ई०के ६ठे गताब्द
फिर त्वान-माक-कैरिलके रूपमें उत्पन्न हुए। किन्तु
सन् ई०से ४०० वर्ष पहले आयलैण्डमें वेल्स प्रान्तके
ईसायी धर्मकी चर्चा आ फेली थी। ४३१ ई०को
पेलाज्युसने ईसायी धर्मका झण्डा भा उड़ाया।
उनके मरनेपर सेण्ट-पाट्रिक-विकलो पहुँचे थे।
उन्होंने लोगोंको समझा-बुझा गिरले बनवाये और
ईसायी धर्म सिखानेकी स्कूल खोलवाये। नृपति
सोयिगायर और ड्यूयिड पुरोहितने उनका बड़ा
विरोध किया। अपना धर्म छोडना अस्वीकार
करते भी, सोयिगायरके कितने ही सम्बन्धी ईसायी
हो गये। आरमाघमें गिरजा सेण्ट-पाट्रिकने बनवा
दिया। पहले आयलैण्डमें कोई शहर न था। सेण्ट
पाट्रिकके मरनेपर ईसायी धर्म टीना पड़ा और साधु
समाजका प्रभाव बढ़ा। साधुगण आयलैण्डमें घमा
करते और बड़े आदमियोंके दरवाजे डेरा डालते थे।

सन् ७६५ ई०को नार्थमेनोने आक्रमण कर
लामवेका गिरजा लूटा और जलाया। उस समय
प्रान्तिक राज्य आपसमें लड़-झगड़ रहे थे।
लोगोंकी सुश्रुविद्या विदित न थी। सम्भवतः पहले
पहल नारवीजियनोने आक्रमण किया। उन्हें माल
मारने और आदमियोंको गुलाम बनानेकी आग्र-
कता रही। ८०१ ई०को वह नावपर चढ़ गानोन
पहुँच गये थे। ई०के नवें गताब्द मध्य इस
हीपके प्रत्येक स्थानपर आक्रमणकी धूम रही।

समझा जाता न था। टिरोनकी राजा इरग-घोनीन उपरोक्त विषयका बदलावरण है।

सन् ११५५ ई०की सालिसबरीके जोह्न २य हैनरी नृपतिका सन्देश ले ४वर्ष पोप एडियनके पाम आयलैंड आये थे। पोपने उत्तरमें यहाँका पैलक अधिकार उन्हें सौंपने कहा और प्रतिष्ठापनका चिह्न-स्वरूप अङ्गुरीयक भी साथ ही भेज दिया। ११५६ ई०को डियारमायिट-माक-सुरक्षद प्रजापीडनके कारण लौनटरसे सिंहासनच्युत हुये और अपना पद फिर पानेके लिये हैनरीके पाम पहुँचे थे। फ्रांसी-सियोंसे लड़ने भी राजाने अवसर पा डेरमोडको इङ्लैण्डमें फौज तैयार करनेकी आज्ञा दी। इली-तरह लौनटरमें सज धज और अपनी प्रजासे धन ले डेरमोड इटोल रिचार्ड-डी-क्लारसे माहाय्य मांगने गये। वेस्समें भी उन्होंने राबर्ट-फिटज-एफेन और मोरिस-फिटजजेराल्डसे आयलैंडपर चढ़ायी करनेका वचन लिया। ११६८ ई०की १ली मईको फिटजटफेन कुछ सेना ले वेक्सफोर्डमें आ उतरे और दूसरे दिन मोरिसडेग्रेनडेरगाट भी सदलबल उसी जगह पहुँच गये। डेरमोडके इनके साथ रहने पर वेक्सफोर्डके डेनुंसाने शोध ही वश्यताको स्वीकार किया। प्रायः एक वत्सर पीछे रैमोण्ड-ले-ग्रोसकी अलं रिचार्ड ने अपनी अग्रगामी सेनाके साथ भेजा था। ११७० ई०की २३वीं अगस्तको स्वयं अलं रिचार्ड २०० वीर और १००० दूसर सिपाही ले वाटरफोर्ड पहुँच गये। अन्त समय उन्होंने ईरिनमें डेरमोडके सिंहासनच्युत किये जानिका बदला लेनेको युव ठाना और विजय पानेपर डेरमोडने अपनी कन्याका हाथ उन्हें पकड़ा दिया। नर्मान नेताओंमें अधिक सख्त-सख्तसे प्रथित थे। कितने ही दक्षिण वेल्स नृपति रिच-आय-टुडोरकी कन्या और १म हैनरीकी पत्नी नेट्राके वंशज रहे। नेट्राकी कन्या फ्लारैय विलियम-डे-बारीकी व्याही थीं। उन्होंने आयलैंडके बारीस उत्पन्न हुये। रैमोण्ड-ले-ग्रोस, डेरवी-डे-मोएटमोरैन्-सी और कोजान्स भी नेट्राके वंशज रहे। वर इनके द्वितीय पति एफेन-दी-काटेलानसे उत्पन्न हुये थे।

सन् ११८५ ई०की प्रिंस जोह्न वाटरफोर्डमें जहाजसे आ उतरे और सरदार इनका सम्मान करनेको भागे आये। २य हैनरीने कुछ डेलावीको ८००००० एकर भूमि दे डाली थी। अपने भ्राता १म रिचार्डके समय लानके प्रधान कर्मचारी पेम्ब्रोक्-अधिपति विलियम मारगालाने अर्ल-रिचार्ड या ड्रोडवोकी कन्याको व्याह लोनटर पर अपना स्खल जमाया। १२१० ई०को जोह्न नृपतिने कौनीटराज कायाल क्रोवडेगं थोकोनोरके साथ वाटरफोर्डसे डबलिनकी राह कारिकफेरगुम पर धावा मारा, किन्तु ट्रिममें आगे कदम न बढ़ाया। १२१३ ई०को उन्होंने अपना अधिकार पोपको सौंप दिया था।

सन् १२१० ई०की १४वीं जनवरीको ३य हैनरीने थोक्सफोर्डसे अपने कर्मचारी जिवोफरे-डी-मारिसकोको लिख भेजा, कोई आयलैंडवासी गिरजेमें रखा न जाता। किन्तु १२२४ ई०को ३य हीनोरियमने उपरोक्त आज्ञा अनुचित बताकर उठा दी। फिर १३३३ ई०में अलटरके नद अधिपति विलियम-डे-बुर्थको भाण्डेविलेस आदिने वध किया।

३य एडवार्डके विदेशीय युद्धमें लगे रहनेसे आयलैंडवासी लिसाट थोमोरने कौशपर फिर अपना अधिकार जमा लिया था। मारिस फिटजजेराल्ड डेसमोएकके अधिपति बने और उन्होंने तीन भाइयोंसे द्वाइट, ग्लेन और केरी नाइटोंके वंश चले।

६छ हैनरीके प्रधान कर्मचारी सर जोह्न टालबोटने ट्रिमने पारलियामेण्ट बैठे आयलैंडमें रहनेवाले सब अंगरेजोंको नूछ रखनेकी आज्ञा दी। इसमें आयरिश जाति विभिन्न मालूम पड़ते थी।

सन् १४४८ ई०को योर्कौराज रिचार्डके पायलैंडमें प्रधान कर्मचारीका पद पाते समय आयलैंडवासी जाक-काडने विद्रोह बढ़ाया। १४५० ई०को रिचार्ड इङ्लैण्ड वापस और थोरमोएड तथा थोफोर्टके अधिपति जैम्सको राज्य सौंप गये। जैम्स और किन्डार कुलमें पीढ़ियों भगड़ा चना था। रिचार्डने फिर डबलिनमें आ स्वातन्त्र्य पाया, नया मिजा टाला और अंगरेजी, पारलियामेण्टकी अद्भूत किया।

२३० ई०को समय घायलेंगडमें नारबीजियम पदार्थ
 उद्यमिन, मीठ, क्लिन्डर, विक्रमो, क्लान्को,
 क्लिन्डरों पोर टिपरेरी प्राणमें वम गये। २४० ई०को
 टरनेमियम जाको अहाअंका धड़ा से भण्ट पड़े थे।
 उन्हीं काफरीमें क्लमा बनाया पोर खीसाट तथा
 मीठको विषम किया। परमाघका मठ दग बार
 उठाया पोर गिराया गया था। महत्त पोर काव
 चाक्रमणके भयसे वधुमूख पय वगलमें दाघ भाग
 गड़े हुए। टरनेमियममें घायलेंगडमें कितने ही नगर
 बनवाये थे। २४० ई०को उद्यमिन, पाटरफोर्ड
 तथा मायिमरिक सेवार हुआ पोर इन्डलेण्ड, फ्रान्स्
 एवं नारवेके साथ व्यापार बना। २४४ ई०में
 टरनेमियमको मायनसिकलेनने केंद्र कर डया दिया
 पोर दो वर्ष बाद लनके साथी डोमरायरको भी
 यथ किया था। २४६ ई०तक मनुटरके
 नृपति गया कागेलके पादरी फेडिलमिडने घाय-
 लेंगडका कितना ही भाग लूटा पोर कुछ
 दिन पारमाघके पादरीका अधिकार अपने हाथमें
 लिया। २४८ ई०को दक्षिण इन्डलेण्डमें एक डनिम
 अहाअंकी धड़ा उद्यमिनमें था पड़या था। पड़ने
 तो नारबीजियनी पोर डेनुमेंमें मिल रहा, किन्तु दो
 वर्ष बाद डेनुमेंमें उद्यमिनपर चाक्रमण मारा।
 २५१ ई०को कारन्दिफोर्ड नोर्फमें १ दिन युध
 होने बाद डेनुमेंको विकिन्डमें उद्यमिनने भगा
 दिया। ८० मताष्टके पारभमें मध्यतक चनेक छोी
 केंद्र ही ज्ञानेपर घायलेंगडके अधियासियों पोर
 चाक्रमणकारियोंमें विवाहादि सम्बन्ध बढ़ गया था।
 हमसे वर्षमद्धर जाति उत्पन्न हुई। इन जातिके
 भोग गांधीसे क्लान् पोर समुद्रमें सृष्टमार किया
 करते थे। इन्होंने ईसायों धर्म छोड़ मूर्तिपूजाका
 आश्रय लिया। टना हुआ सिद्ध न रहनेसे विदेशीय
 व्यापार बढ़ न सका था। स्नान-स्नान पर सामयिक
 मिला होने पोर लघमें वस्त्र, पाभुव्यादि खरीदा
 जाते रहा। परन्तु गोम्र ही स्थाण्डिनेविय नगरोंमें
 सिद्धा लनने लगा, व्यापार बढ़ा पोर केमिद्ध, इटा-
 कीय घाटि व्यवसायिका द प था बना। इन्हीं

स्थाण्डिनेविय व्यवसायियों द्वारा ११वें एवं १२वें
 मताष्ट पयगिट युरोपके साथ घायलेंगडका सम्बन्ध
 जुड़ गया था। उपरोक्त विषयका प्रभाव कितने
 ही नगर पोर घाय दम दोपके घायलेंगड नाममें
 मिला, जो स्थाण्डिनेविय शब्दमें निजला है। घाय-
 रिग लोग स्थाण्डिनेविय फौजमें भरती होते थे।
 मनुटरकी बड़ी जाति पलिन पोलम, कागेल
 दयोगन पोर लोयरकी डालकेविय फोरमाक-कामने
 उत्पन्न हुई है। १०१४ ई०के गुडफ्रायिडके
 लीप्टार्फका भोयण युध बढ़ा था। कुछ देर घमासान
 होने बाद नार्स टनके पेर लखड़ गये। मायेन-
 सिकलेन उद्यमिनको भागे थे। दोनों पोरके कितने
 ही सरदार काम पाये। सियन अपने मूरचद पोर
 मायेनमोर्दा पुत्रके साथ मर मिटे थे। हार कर भी
 नार्सनेनेने अपने अधिकृत नगर न छोड़े पोर धीरे-
 धीरे घायलेंगडवासी बन गये। डालकेविय फौजके
 अधिक निर्बल हो जानेसे मायेनसिकलेनको फिर
 घायलेंगडका सिंहासन मिला था।
 मनु १०२२ ई०को मायसिकलेनकी मृत्यु हुई।
 १०४४ ई० समय सियनके पुत्र टोनचदथा प्रभाव
 बहुत बढ़ा था। उन्हीं चाये घायलेंगडको जीत
 अपने पिताका पद पाया। ११०२ ई०को मागनम
 घारेकूटने अधिमकी पोर दम दोपको जीतनेके
 लिये धावा मारा था। किन्तु म्यरपेरटाकने बड़ी
 फौजके साथ लनका विरोध किया। लनको सन्धि
 होनेपर मागनमका विवाह चायिरिग-राजकुमारी
 विदाडम्युनके साथ हुआ था।
 मनुटर-नृपति टियारमायिटका जन्म-सम्बन्ध
 विदेशियोंमें बहुत मिनते रहा। मनु ११५२ ई०को
 टोरडेनवाक कोकोनीरने प्रोयिकन नृपति टियेरननको
 सिंहासनने उतार पोरोरकको पयो डेरबफोरगायिनको
 पकड़ ले गये।
 ईसायी धर्म प्रतिष्ठित होने भी विवाहादि सम्बन्धमें
 बढ़ा गढ़बढ़ रहा। लोग धन देकर स्त्री व्याज लेते थे।
 माधारप स्त्री भी लहका होनेसे पत्नीय समान स्त्रीपर
 व्यव रगते रही। वर्षमद्धर पुत्र स्वामीयोंमें राजग

समझा जाता न था। टिरोनके राजा हरम-भोनील उपरोक्त विषयका उदाहरण हैं।

सन् ११५५ ई०को सालिसबरीके जोह्न २य हैनरी नृपतिका सन्देश ले ४थं पोप एडियनके पास आयलैंड आये थे। पोपने उत्तरमें यहाँका पैलक अधिकार उन्हें सौंपने कहा और प्रतिष्ठापनका चिह्न-स्वरूप अङ्गुरीयक भी साथ ही भेज दिया। ११५६ ई०को डियारमायिट-भाक-सुरक्षद प्रजापीडनके कारण लीनष्टरसे सिंहासनच्युत हुये और अपना पद फिर पानेके लिये हैनरीके पास पहुँचे थे। फ्रान्सी-सियोंसे लड़ते भी राजाने अबसर पा डेरमोडको इङ्ग्लैण्डमें फौज तैयार करनेकी आज्ञा दी। इसी-तरह लीनष्टरमें सज धज और अपनी प्रजासे धन ले डेरमोड इष्टोल रिचार्ड-डी-क्लारसे साहाय्य मांगने गये। वेससमें भी उन्होंने रावर्ट-फिटज-टेफेन और मोरिस-फिटज्जिराल्डसे आयलैंडपर चढ़ायी करने-का वचन लिया। ११६६ ई०की १ली मईको फिटज्जटेफेन कुछ सेना ले वेक्सफोर्डमें आ उतरे और दूसरे दिन मोरिसडेप्रेनडेरगाष्ट भी मददलवल उसी जगह पहुँच गये। डेरमोडके उनके साथ रहने पर वेक्सफोर्डके डेनुंसोंने शीघ्र ही वश्यताको स्वीकार किया। प्रायः एक वत्सर पीछे रैमोण्ड-ले-घोसकी अर्ल रिचार्ड ने अपनी अग्रगामी सेनाके साथ भेजा था। ११७० ई०की २३वीं अगस्तको स्वयं अर्ल रिचार्ड २०० वीर और १००० दूधरे सिपाही ले वाटरफोर्ड पहुँच गये। अन्त समय उन्होंने ईरिनमें डेरमोडके सिंहासनच्युत किये जानेका बदला लेनेकी युद्ध ठाना और विजय पानेपर डेरमोडने अपनी कन्याका हाथ उन्हें प्रकड़ा दिया। नर्मान नेताओंमें अधिक सम्बन्ध-स्वसे ग्रथित थे। कितने ही दक्षिण वेल्स नृपति रिस-आय-टूडोरकी कन्या और १म हैनरीकी पत्नी नेष्टाके वंशज रहे। नेष्टाकी कन्या प्रहारेथ विलियम-डे-वारीकी व्याही थीं। उन्होंने आयलैंडके वारोस उत्पन्न हुये। रैमोण्ड-ले-घोस, हैरवी-डे-मोण्टमोरेन्-सी और कोजाग्म भी नेष्टाके वंशज रहे। वह उनके द्वितीय-पति टेफेन-दी-काष्टेलानसे उत्पन्न हुये थे।

सन् ११८५ ई०को प्रिंस जोह्न वाटरफोर्डमें अज्ञातसे आ उतरे और सरदार उनका सम्मान करनेकी आगे आये। २य हैनरीने कुछ डेलासीकी ८००००० एकर भूमि दे डाली थी। अपने भ्राता १म रिचार्डके समय जानके प्रधान कर्मचारी पेम्ब्रोक्-पधिपति विलियम मारग्यालाने अर्ल-रिचार्ड या ड्रोड्जकी कन्याको व्याह लोनष्टर पर अपना स्वत्व जमाया। १२१० ई०को जोह्न नृपतिने कौन्टीराज कायाल क्रोवडेगं ओकोनोरके साथ वाटरफोर्डसे डबलिनकी राह कारिकफेरगुम पर धावा मारा, किन्तु ट्रिमसे आगे कदम न बढ़ाया। १२१३ ई०को उन्होंने अपना अधिकार पोपको सौंप दिया था।

सन् १२१७ ई०की १४वीं जनवरीको २य हैनरीने ओक्सफोर्डसे अपने कर्मचारी जिबोफरे-डी-मारिसकोको लिख भेजा, कोई आयलैंडवासी गिरजेमें रखा न जाता। किन्तु १२२४ ई०को २य होनोरियसनने उपरोक्त आज्ञा अनुचित बताकर उठा दी। फिर १३३३ ई०में अलष्टरके नव अधिपति विलियम-डे-बुर्थको माण्डेविलेस आदिने वध किया।

२य एडवाडके विदेशीय युद्धमें लगे रहनेसे आयलैंडवासी लिंसाट ओमोरने लीकस्पर फिर अपना अधिकार जमा लिया था। मारिस फिटज्जिराल्ड डिसमोण्डके अधिपति बने और उन्हीके तीन भाइयोंमें ग्राइट, ग्लिन और केरी नाइंटोंके वंश चले।

६ठ हैनरीके प्रधान कर्मचारी सर जोह्न टालवोटने ट्रिमने पारलियामेण्ट बैठे आयलैंडमें रहनेवाले सब अंगरेजोंकी मूछ रखनेकी आज्ञा दी। इसमें पायिरिश जाति विभिन्न मालूम पड़ते थी।

सन् १४४६ ई०की योर्कराज रिचार्डके आयलैंडमें प्रधान कर्मचारीका पद पते समय आयलैंडवासी जाक-काडने विद्रोह बढ़ाया। १४५० ई०को रिचार्ड इङ्ग्लैण्ड वापस और ओरमोण्ड तथा व्योफीर्टके अधिपति जेम्सको राज्य सौंप गये। जेम्स और किलडार कुलमें पौड़ियों भगड़ा चलाया। रिचार्डने फिर डबलिनमें आ स्वातन्त्र्य पाया, नया मित्रा दासा और अंगरेजी, पारलियामेण्टको अङ्गभङ्ग किया।

विजयम चाहेरी रिचार्डको घन्टी धरने पाये छ । किन्तु यह छाप मसुके जाय पत्र जाँसी पर पढाये गये । टोडोमके भोवप सुहदेममें धोरमोच्छको पंगरेजानि घन्टी बना भिया था । उनका मसुक बहुत दिनतक मच्छनके पुनपर मटकने रहा । डेमोएण्डने एमिजा-क्षिपको प्रमथ करनेके लिये उपद्रव छठानेपर प्रापदण्ड पाया था ।

इय रिचार्डके शासनकाल पायिरिम योरकिष्टोके प्रधान किमडार-पधिपतिका प्रभाव बढ़ा । किन्तु टोडोमके बुद्धमें पङ्कनी-पायिरिम सिवासिचोके सरदार रोत पाये छ । उम हुनरीके राजत्वकाल वाटरफोर्ड-माने नागरिक क्रोमभिल, कामान, फेयार्ड और हुटमरके सम्बन्धियोंने मिल जयियार बांधनेको तैयार हुये । डोगहुडाकी पारलियामेण्टमें पंगरेजी कोमिलने पायमें एडके खानून बनानेका काम पाया था । एम हुनरीने भोगविलास धोर विदेनीय साहममें निमग्न रहनेमें पायमें एडपर ध्यान न दिया । राजकीय प्रभाव पेन नामक प्रान्तमें ही सीमाबद्ध रहा । कौलडार-पधिपतिका राजासे भी अधिक बल बढ़ गया था । पङ्कनी-नारमन सरदार मोच-वर्षोंके राजा हुये । इन्हें लोग पायिरिम जातिके मनुष्य कहने लगे थे । मन् १५९४ ई०को हुनरीमें राज्यका भार अपने हाथ उठाया धोर डबलिनकी किमडारवानेके पावेष्टनमें छोड़ाया । किन्तु उनका राज्य १० कीसमें अधिक विस्तृत न था । हुनरी जगह पंगरेज भी पायिरिम भाषा धोर रीतिभौतिका प्रवसम्भन करते रहे । माकसुरोच क्वापामय पायिक-वृत्ति राजधनागारमें पाते, जिन्हें पायमें एडजामी राजा डेमोडका प्रतिनिधि बताते छे । किन्तु हुनरीने पायमें एडके मृपतिकी खान टाल पङ्कनी धोर घोषके लिये राज्य करनेकी बात छठ गयी । मेलरिक धोर विरोधी दोनो दलके लोग दरबार करने लगे छे । एम प्रमथ कितने ही पापा-रथ लोग प्रधानपुरुष बन बेठे । इन्हीं स्टेकिण्ड-टन, ब्राब्राजोम, डेष्ट मेजर, किटज विजयम, विङ्क-पीमड, वेविलपाम क्लर, विलपाम, मोफ्टम धोर

पन्थाम्य पायमें एडके वंग चले छे । केन्टोमें पोनीन धोर पोवीन क्रमागत टिरोन एवं घोमोच्छके पधिपति मच्छनमें लाकर बस पाये छे । पोडोनोमके वंगध टिरोनेमके सरदार कड़ाये । मिप्यावर्षवामे प्रधान माकविजयम, खानरीकाष्टके नायक माने गये ।

मन् १५९० ई०के पारभ्रमें एक पारलियामेण्ट लगा था । उसमें हुनरी धोर एडवर्डकी धीरोबिल-सम्बन्धी पात्रा बहान कर देी । एमिजाक्षिपका राज्य रहा । उनके पिताने टिरोनका पाधिपत्य अपने कल्पित पुत्र मेघुकी घोषा, जो डनतेमोनका वाली बना धोर कारीगरकी धोरतका सङ्कता रहा । माता पतिके जीते एम हुनडाएडके कोन अपने-मङ्कके-भेसा लायी थी । किन्तु राजपुत्र मानने वालिग होनेपर यह प्रबन्ध पक्षीकार किया धोर पिताको उसमें पनभिन्न बताया । टिरोनके मरनेपर डनरीनन पधिपति एवं मेघुपुत्र ब्रियान पोनीसन उनको सम्पत्ति पानेका खल देखाया । परन्तु मान चुने गये छे । पोनीन खजातियोंके बीच प्रधान एवं पधिपति धोर मानके धर्मपुत्र निर्वाचित हुये । लार्ड मेकर्टनेष्ट-ने दो बार मानको पध करनेको ठानी थी । १५६६ ई०को विग्रव बढनेपर रामोने धोर सिङ्गोको तलवार पङ्कदायी धोर मानने पोडे इटने-इटते माकटोनेवर्षोंके हाथ अपने लान गंवायी थी । ग्रीष्म ही दक्षिणमें उपद्रव छठनेपर फिर जनपल पड़ गयी । डेमोएण्डके पधिपति बलपिका बोज योगेमे छः वर्ष मच्छनमें मजरबन्द रहे । उन्हींमें निरुक्त भागनेकी चेष्टा मगायी थी । पङ्कडे जामेपर पलिप्राधने उनको मूमि स्थाधिकार-भुक्त की । पयसर टेल्कर पंगरेज-साहसिकोंने पयिम-मष्टरके पधभागमें पंगरेजी जङ्गी पठठा गेमोममें कीर्क बन्दरतक मगाया पाडा । धोरमोच्छके भाइयोंको छताड़ पथाड़ धोर उनको मय्युर् सम्पत्ति छीन सर पेंटरने हुटमरीकी बनवा करनेपर मङ्कता दिया था । पन्थकी हुटमर मान हुये, किन्तु फारसोके पंगरेजी नायक काफका विरोध करते रहे । दोनो धोरमें बड़ा पन्थाधार बना । सर पेंटरकी मनष्टरवा भी पच्छीतरह खल प्राप्त न था,

कोकैसे उनका अनुयायी दल भगाया गया। फिर सर जोह्न पेरोट मनष्टारके प्रेसिडेण्ट बने थे। उन्होंने जेमस् फिट्जगेराल्डको पर्वतोंपर हटाया, सब जगह किला तोड़ा और बलवायियोंको साहाय्य देनेवाली फौजका काम तमाम किया। अलष्टारमें भी इसीतरह विप्लव बढ़ा था। ऐसेक्स्-अधिपति वालटियार-डेवरे-उक्सने धीकैसे सर इयान थोनीलको पकड़ लिया और उनके साधियोंको बध किया। रायलिनमें समय स्कच मार डाले गये थे। किन्तु ऐसेक्स् अत्यन्त गह्रित भावसे मरे। तीन वर्ष लड़ने-भिड़ने बाद साधियोंने उन्हें छोड़ दिया था।

१५७५ ई०के अन्त सिड्नेय फिर प्रधान राज-प्रतिनिधि बने और धड़ाधड़ एक जगहसे दूसरी जगह पहुँचने लगे। मनष्टारमें एक वर्षकी बीच सर विलियम-ड्यूनीने ४०० आदमियोंको फाँसी दी थी। फिर सर निकोलास-मालबीयने कोनाट-वारकेसोंकी मारते समय लड़के-बुढ़े किसीकी न छोड़ा और सब मकान एवं धामान जला दिया। डेसमोण्डोंने बड़ा उद्योग लगानेकी विचारा था। धर्मयुद्धकी घोषणा हुई। फिट्जमरिस् घोड़े साथी ले केरीमें आ उतरे थे। साथमें सुप्रसिद्ध निकोलास-सनडार्स भी रहे। उन्हें पीपने दूत बना और आशीर्वादात्मक ध्वज पकड़ा भेजा था। काएलेकोनेलके समीप युद्ध होनेपर फिट्ज-मरिस् खेत पाये, किन्तु सनडार्स और डेसमोण्डसके भाई लड़ते रहे। अन्तको डेसमोण्डने तलवार उठायी थी। रातको उन्होंने अंगरेजी नगर यौधल पर आक्रमणकर लोगोंको मार डाला। सचेत होनेपर एलिजाबेथने थोरमोण्डकी मनष्टारका सेनापति बना युद्ध करने भेजा था। वाटलर गेराल्डोंने और राजभक्त विप्लवकारियोंसे लड़ते रहे। १५८० ई०को विकनोंमें लाडें बालटिन्ग्लसने उपद्रव उठाया। ग्लेनमॉरमें लाडें ग्रेन्डा-विलटोन पूर्ण रीतिसे परास्त हुये थे। धेरविकमें इटालियों और स्पानियार्डोंका एक दल आ उतरा। ग्रे उधरको जा पड़े थे। युद्धमें विदेशियोंने धामसमर्पण किया, किन्तु सबकी तलवारका पानी पीना पड़ा। स्मर और राहले

विद्यमान रहे। १५८१ ई०को सण्डार्स गुप्त रीतिसे विनट हुये और १५८३ ई०को केरी पर्वतकी युद्धमें डेसमोण्ड भी मारे गये। इसके उपलक्षमें पांच लाख एकर प्राथिरिग भूमि सरकारने सर्वस्वदण्ड की थी। युद्धकी भीषणताका वर्णन हो नहीं सकता। थोरमोण्डने कुछ ही मासमें ५००० मनुष्योंको प्राण-दण्ड दिया था। दुर्भिक्षने क्षापणसे अधिक काम किया। अतिजीवी चल न सकते थे। वह जङ्गलों और घाटियोंमें घिसट-घिसट कर बाहर निकले।

१५८४ ई०को हुध-थोनीलने टिरोनके कुछ भागका प्राधिपत्य पाया था। १५८७ ई०को यह समय टिरोनके अधिपति और १५८९ ई०की सभी जातिके प्रधान बने। सरकारसे उनका भगड़ा किसी तरह रुक न सकता था। हुधरो थोडोनेलके योग देनेपर अलष्टर सरकारके विपक्षमें खड़ा हो गया। १५८८ ई०की फिट्ज-टमस-फिट्जगेराल्डने डेस-मोण्डका उपाधि ग्रहण किया था। प्रायर्सेण्डके दोनो भिरे शीघ्र ही विप्लवसे भयकने लगे और डेसमोण्ड प्रान्तमें सेक्सनोके मुँह देखनेकी न मिले। एडमण्ड-स्नेन्सरने अपना सर्वस्व खोया और भागकर सण्डनकी दुर्गप्राकारमें प्राणपरित्याग किया। टिरोनने अपना अधिकार बढ़ाया, येलोफोर्डके युद्धमें सर हेनरी-वाग-लालकी हराया, मनष्टारपर धावा लगाया और लार्ड थैरीमोरका प्रान्त जा टहनाया था। टिरोनके मित्र हुध-रो-थोडोनेलने कोनोट-प्रेसिडेण्ट सर कोनयर्स-क्लिफोर्डको जा उखाड़ा। १५८८ ई०की ऐडमण्ड-अधिपति रवार्ट डेवरेउक्स बड़े सेनाके साथ पाये, किन्तु टिरोन उन्हें कर-बल-हनसे नीचे लाये थे। उन्होंने सेनापतिका पद छोड़ पागलकी चाल पकड़ी और अन्तको फाँसी पायी। १६०० ई०की सर लार्ड-केरुके मनष्टारका प्रेसिडेण्ट बननेपर बलवा शीघ्र दब गया था। चार्लम्-वाउण्ट ऐडमण्डका उत्तराधिकार पाकर केरुके साथ हुये और किन-सेलमें उतरनेवाले स्पानियार्ड हारकर सरकारके हाथ लगे। सेना नष्ट-भ्रष्ट होनेसे प्रजा भी दब गयी थी। इसीतरह एलिजाबेथने प्रायर्सेण्ड जीत लिया।

संसारानेन दुःखमित्येवं वा विमन्विद्यान्वय प्रतिष्ठित
 कथाया वा, तदनेन योगिनि चण्डा खल पाया ।

१६०१ ई०को १म अक्टूबरके सिंधानामासकृ होम-
 पर योगिनि संज्ञा वा,—इतने चायसंगठका उप-
 कार होया । यह दोनो चायसंगठयामो पोर रूय
 ई । किन्तु चायसिनिधिं उपद्रव ठठानेमे केस्टोकी
 यात विगत गयो ।

१६१५ ई०को १म मार्चके राजत्वकाल साईं
 हेयुटी झाकाई योगिनि जयभद्रयो रूपया वयुल
 करमे लग्ये । कोनाट पोर मगटारके लसीन्दार
 अधिक धन देनेपर वाच्य हुये । चायसिग लातिमे
 रूपया वयुल कर रूय पोर इन्द्रज योगीके
 टवानकी फौज वयुलमें वषं किया जाता या । रोमन
 कायात्मिकोको दुःख या सुख कुछ भी न मिला । प्रधान
 उमरके साथ वारह पादरियोगे विपद्यमें पाम्दोनन
 कर कथा या—दारिद्र्यका भार सहना सहपाप है ।

भूकोटकी फामो टो पोर फौजकी तनवार खीन भी
 गयो । १६४१ ई०को कायोनिज राजश्रीदिव्योनि
 मारा देग चपने हाय किया, केवल डबलिन वष
 गया । उनका विचार प्रोटेस्टाण्टोकी निर्वाचित
 करमेका या । किन्तु फो प्रोटेस्टाण्ट वड़े निर्दय भावमे
 वष किये गये । १६४२ ई०को पंगरजोने सेमेरान
 रघाटं भोगरीके पपीन पमटार फौज भेल इगका
 मदमा मिया या । किन्तु भोगरीके जारने भी कोर
 फन न हुआ । १६४५ ई०को हेनुविनी पोवको
 पोरमे चायसंगठके पत्याधिकारी वनकर पाये थे ।

उन्हेनि केस्टोकी साथ दिया । १६४० ई०के जुलाई
 मान पारमियाभिष्टकानेनि पारमोण्डमे टवनिन
 दोन मिया या । १६४६ ई०को क्रोमवेल उपयो
 मिला मे रपयेतमे उगरे । उन्हेनि इटभरे वीत फाट
 दिवहर भद्रुनशरीको भूली मार जाला या ।

४० हजार भोग निर्वाचित किये पोर मोगोनेमं कवि-
 त्थी हरमेका नुबरदप्ली चायसिग कायोनिज त्रपक
 दिने मये । नदुनेयाने मियादियोको मूटका क्लिमा
 भी साथ मिला । मियादियोके पवने ज्ञापदाट भेव
 जारनेमे वफपर धुडा बने थे । चायसिग फर्मजोनी

उपनिधिगकोके साथ रहे । मानि फिर प्रतिष्ठित ह;
 गयो यो । १७०८ ई०को याहाने चायसंगठको
 जातोयता मान ली ।

१७०८ ई०को यियोवामुड-पोम्बे-टोमने फिर
 विप्रव बढ़ाया या । उनके जाला होते ही चायसंगठ
 टेटडेटेगमें मिलाया गया । १८०१ ई०को रघाटं
 एमिटम गिर उठाया, किन्तु कोर फन पाया न
 या । इसके बाद कायोनिकोके करमे निम्दार पानेका
 विषय बढ़ा । रोमन कायात्मिक विषय होनको
 योगिनि पाम्दोनन किया या । मषके छोड़त होने-
 पर भी डानोयेल-पोकोनने विरोध किया । पन्नाकी
 १८१८ ई०में करकी घबमता वाम हो गयो । कर
 उठा देनेका पाम्दोनन भी पन्ना ग या ।

१८५८ ई०को विदित हुआ,—जोएन पोमा-
 थोर्गेने पमेरिकामें फोनिक्म-ट्रीड दृष्टकाया या ।
 इन्द्रनेण्डमें इतने योगीवर पत्याचार होने लग्ये ।
 १८६८ ई०को चायसिग वषं तोड़ा पोर १८७० ई०को
 भूमिमय मरोड़ा गया । किन्तु इतने चायसंगठका
 पाम्दोनन दब न सका । १८७४ ई०को फोम-
 टनका वष भी प्रवल पड़ा । १८८१ ई०को लपि-
 पर वदुनने भीयप पत्याचार हुये थे । साथः
 मयेगियोके निर्दय भावमे मारे जानेपर इन्द्रनेण्डमें
 हाहाकार छा गया, परन्तु सरकारने ध्यान देना
 पनुविन समझा । मध्वेजजनक योगीके कोयोगन-
 कानुनमे पकड़े जागेपर कोर फन निश्चला न या ।

पमेरिकामे लगातार रूपया मिलावेपर पत्याचार
 चलते रहा । ग्लाडहोनेने पूर्ण रूपसे नीति बदल
 देनेकी ठानो थी । १८८२ ई०की २री मईको चायि-
 रिग मरदारकी वक्तव्यके विद्वध पारमियाभिष्टके
 पारनेल, डिमटोन पोर पोर्जेमी मामक ममामक
 पथममे मुह किये गये । थेटमूमे पोटा दिगाय
 पानेमे छूटी थी । इमे डिमटोनमम-पानि कहते थे ।
 साईं कोयिर पार फोरटने उमी समय पदम्याग
 किया । उनका वक्तव्यविचार या ६ठी मईको
 साईं कोन्वर पोर साईं एंडेरिक कपिल्लिम हरकी
 पदुं थे । उभो मत्याचरो फोनिक्म पत्याचरमे

१८५८ ई०को विदित हुआ,—जोएन पोमा-
 थोर्गेने पमेरिकामें फोनिक्म-ट्रीड दृष्टकाया या ।
 इन्द्रनेण्डमें इतने योगीवर पत्याचार होने लग्ये ।
 १८६८ ई०को चायसिग वषं तोड़ा पोर १८७० ई०को
 भूमिमय मरोड़ा गया । किन्तु इतने चायसंगठका
 पाम्दोनन दब न सका । १८७४ ई०को फोम-
 टनका वष भी प्रवल पड़ा । १८८१ ई०को लपि-
 पर वदुनने भीयप पत्याचार हुये थे । साथः
 मयेगियोके निर्दय भावमे मारे जानेपर इन्द्रनेण्डमें
 हाहाकार छा गया, परन्तु सरकारने ध्यान देना
 पनुविन समझा । मध्वेजजनक योगीके कोयोगन-
 कानुनमे पकड़े जागेपर कोर फन निश्चला न या ।

पमेरिकामे लगातार रूपया मिलावेपर पत्याचार
 चलते रहा । ग्लाडहोनेने पूर्ण रूपसे नीति बदल
 देनेकी ठानो थी । १८८२ ई०की २री मईको चायि-
 रिग मरदारकी वक्तव्यके विद्वध पारमियाभिष्टके
 पारनेल, डिमटोन पोर पोर्जेमी मामक ममामक
 पथममे मुह किये गये । थेटमूमे पोटा दिगाय
 पानेमे छूटी थी । इमे डिमटोनमम-पानि कहते थे ।
 साईं कोयिर पार फोरटने उमी समय पदम्याग
 किया । उनका वक्तव्यविचार या ६ठी मईको
 साईं कोन्वर पोर साईं एंडेरिक कपिल्लिम हरकी
 पदुं थे । उभो मत्याचरो फोनिक्म पत्याचरमे

१८५८ ई०को विदित हुआ,—जोएन पोमा-
 थोर्गेने पमेरिकामें फोनिक्म-ट्रीड दृष्टकाया या ।
 इन्द्रनेण्डमें इतने योगीवर पत्याचार होने लग्ये ।
 १८६८ ई०को चायसिग वषं तोड़ा पोर १८७० ई०को
 भूमिमय मरोड़ा गया । किन्तु इतने चायसंगठका
 पाम्दोनन दब न सका । १८७४ ई०को फोम-
 टनका वष भी प्रवल पड़ा । १८८१ ई०को लपि-
 पर वदुनने भीयप पत्याचार हुये थे । साथः
 मयेगियोके निर्दय भावमे मारे जानेपर इन्द्रनेण्डमें
 हाहाकार छा गया, परन्तु सरकारने ध्यान देना
 पनुविन समझा । मध्वेजजनक योगीके कोयोगन-
 कानुनमे पकड़े जागेपर कोर फन निश्चला न या ।

पमेरिकामे लगातार रूपया मिलावेपर पत्याचार
 चलते रहा । ग्लाडहोनेने पूर्ण रूपसे नीति बदल
 देनेकी ठानो थी । १८८२ ई०की २री मईको चायि-
 रिग मरदारकी वक्तव्यके विद्वध पारमियाभिष्टके
 पारनेल, डिमटोन पोर पोर्जेमी मामक ममामक
 पथममे मुह किये गये । थेटमूमे पोटा दिगाय
 पानेमे छूटी थी । इमे डिमटोनमम-पानि कहते थे ।
 साईं कोयिर पार फोरटने उमी समय पदम्याग
 किया । उनका वक्तव्यविचार या ६ठी मईको
 साईं कोन्वर पोर साईं एंडेरिक कपिल्लिम हरकी
 पदुं थे । उभो मत्याचरो फोनिक्म पत्याचरमे

१८५८ ई०को विदित हुआ,—जोएन पोमा-
 थोर्गेने पमेरिकामें फोनिक्म-ट्रीड दृष्टकाया या ।
 इन्द्रनेण्डमें इतने योगीवर पत्याचार होने लग्ये ।
 १८६८ ई०को चायसिग वषं तोड़ा पोर १८७० ई०को
 भूमिमय मरोड़ा गया । किन्तु इतने चायसंगठका
 पाम्दोनन दब न सका । १८७४ ई०को फोम-
 टनका वष भी प्रवल पड़ा । १८८१ ई०को लपि-
 पर वदुनने भीयप पत्याचार हुये थे । साथः
 मयेगियोके निर्दय भावमे मारे जानेपर इन्द्रनेण्डमें
 हाहाकार छा गया, परन्तु सरकारने ध्यान देना
 पनुविन समझा । मध्वेजजनक योगीके कोयोगन-
 कानुनमे पकड़े जागेपर कोर फन निश्चला न या ।

लाड फ्रेडेरिक और उपमन्त्री टमास-हेनरी-वर्के मार डाले गये। वधके लिये चण्डकाटनेवाली छुरियां चली थीं। घातकोंकी छाया भी कोई देख न सका। फिर अभियोगमें साध्य देनेका शपथ उठानेवाले फीड नामक व्यवसायी पर भी उसी घातकाटनेमें आक्रमण किया था। उनके कई आघात आये, किन्तु उन्होंने भागकर अपने प्राण बचाये। उन्होंने घातकोंके गाड़ीवान्को पहचान लिया था। इसीसे राजद्रोहका पता लगा। डबलिन-कारपोरेगनके सभ्य और घातकदलके प्रधान उपायज्ञ जेम्स केरिने कहा,—‘फ्रीमान्स जार्नाल’ नामक समाचारपत्रमें एक लेख निकलते ही ‘सुभे डबलिन किलेके अफसरोंको एक सिरसे वध करनेकी आज्ञा मिली थी। साध्यसे विदित हुआ, कि फोरटरको वध करनेकी भी कई बार पहले चेष्टा चली रही। बीस अभियुक्तोंमें पांचको फांसी और बाकीको दीर्घ बन्धनका दण्ड मिला। जुलाई मास केरि जहाजपर चढ़ दक्षिण अफरीकाको रवाना हुये थे। किन्तु राहमें ही पाट्रिक थोडी-नेलने उन्हें मार डाला। घातक अभियुक्त वन लण्डन आया और सन् १८८३ ई०की १७वीं दिसम्बरको प्राणदण्ड पाया था।

राजनीतिमें काम निकलते न देख १८८६ ई०को फिर राजद्रोहका उद्घाटन हुआ। लोगोंको इच्छा थी, कि मालगुजारी छापकोंके अनुमति-अनुसार दी जाती। सन् १८८० ई०को सर एम-डिक्स-बीचके पद-त्यागने और मिटर भार्यार बालफोरके प्रधान मन्त्री बननेपर ‘फ्रायर्स एक्ट’ अर्थात् अपराध करनेसे दण्ड मिलनेका कानून पास हुआ और उपद्रव उठाने-वालोंका कार्य ढीला पड़ा। अन्तको नाशनाश-लीग अर्थात् जातीय-दल तोड़ा गया था। धीरे-धीरे आयर्लैण्डमें शान्ति विराजने लगी। किन्तु सन् १८८७ ई०के सितम्बर मास-फिर मिचेल्स टॉनमें विद्रोह बढ़ा था। पुलिसने गोलीसे दो मनुष्योंको मारा। मिटर हेनरी लावीयर और मिटर दूनर चार्लियामेण्डके दोनों सदस्य पुलिसके विरुद्ध और

होमरूलके पक्षमें थे। सन् १८८३ ई०को ‘होमरूल-बिल’ कानून चला, जिससे इम्पीरियल पार्लियामेण्टमें एकसी तौरके स्थान आयिरिग सदस्यगण अयो हो रह गया। किन्तु ग्रेटब्रिटेनके सम्बन्धमें किमीको मत प्रकाश करनेका अधिकार मिला न था। जातीयदलने आक्षेपकर कहा,—यह कानून आयर्लैण्डको बन्धनमें रखना चाहता है। गत १८१६ ई०को सिनफीन दनने बड़े वेगसे विद्रोह बढ़ाया था। किन्तु अंगरेज-सरकार-की दूरदृष्टि और उद्योगितासे शीघ्र शान्त हो गया।

आयलक (सं० पु०) आ-या-गल आयत् तं आयत्तं आगच्छन्तं लाति गच्छति, आयत् लाक संज्ञायाम् कन्। उल्लेख, इजतिराव, वेकली।

आयवन (वे० स्त्री) चलानेका चमस, चमचा।

आयवस (वे० पु०) १ गोचरभूमि, चरागाह। २ वेदोक्त एक राजा। “भगोरात्र आयवसन् त्रिषोः।” (सू० १।१२१।१) ‘आयवसस सवैतः प्राजाप्रत्य एतत्राचो राजः।’ (साय०)

आयस (सं० त्रि०) अयसो विकारः, अण्। १ लोह-मय, भाइनी। २ लोहमय अक्षयस्त्र वा कवचसे मज्जित, आइनी इधियार बांधने या लोहेका बखतर पहननेवाला। “आयच्छ्या वास्त्रैश्चमावमनभारयो।” (सू० १।१२१।८) ‘आयसः अयमयत्रचयुग्द्वयः।’ (साय०) अय एव, स्त्रायं अण्। ३ तीक्ष्ण लोह, इस्पात। ४ सामान्य लोह, मामूली लोहा। ५ आयुध, इधियार। ६ लोह-निर्मित यस्त्रमात्र, लोहेकी चीज। ७ वायुयन्त्र, योजार-इवा।

आयसमल (सं० स्त्री०) १ मण्डुर लोह, जड़। २ लौहमल, लोहेका कीट।

आयसी (सं० स्त्री०) अङ्गरक्षिणी, वदनका बखुतर, छातीका तवा। ‘अङ्गिवा लक्ष्मिषोः। अङ्गरक्षायसी।’ (३१)

आयसु (हिं० पु०) आशा, इजाजत, हुक्म।

“आयसु दीनूच सखी कर्त्तनी।
निज समान से क्यों क्यारी है।” (गुल्शे)

यह शब्द ‘आदेग’का अपभ्रंश मालम होता है। आयस्कार (सं० पु०) अयस्कार एव, भ्रायं अण्। १ लोहकार, लौहार। २ इस्तीकी लच्छका कर्ष भाग, हाथीकी रान्का ऊपरी हिस्सा।

पाददा (मं० सि०) पा-दम्-दा । १ पिन, जिहा
 कृपा । २ पुःपित, तन्वीय, कृपा । ३ प्रतिहत, शीट
 शान्ति कृपा । ४ शीतलीलन, पैलाया कृपा । ५ पायाम-
 मूत्र, कोमिल करमेवासा । ६ मूत्र, नागान् ।
 'पाददा शिवाय शिवाय' । मूत्र विवेचन' (६६)

पादद्वाम (मं० स्त्री०) १-तन् । सामद्वाम, राजाके
 मूत्रक पदपदका स्थान, मदि प्रभृतिका आकरस्थान,
 सामदमोकी लगड ।

पादस्य (मं० सि०) पदोमयी स्युवा शोधप्रतिना
 मूत्रकमी वा मूत्र म पदस्युः तन्वापस्यम्, पद ।
 विवेचनोः । पा ३११११ । पदस्युः पदो उत्पद्य, औ
 पदस्युः मं पैदा हो । (स्त्री०) पायस्युः ।
 'पादस्युः पादस्युः पदो मूत्रकमी' । (अनुराधा-३०)

पादस्युः (मं० सि०) पा दिया- घुसु यत्रे मय । यद
 विगिट, तदयोर मद्धानिवासा । 'पादस्युः पदस्युः' । (मदि)

पादा (हिं० क्रि०) १ उपस्थित कृपा, औ पदुंवा
 हो । यह मन्द् 'पादा' क्रियाका भूतकाल है ।
 (पौर्णमास स्त्री०) २ धारी, धाय, बालकीकी दुग्ध
 पिलाय शीर सेनानिवासी स्त्री । (फा० पन्थ०) ३ वा,
 कोई, लीनमा, द्या ।

पादाकोट—मजवार प्रदेशका एक नगर । यह पचा०
 १०° ३६' १५" उ० और द्राधि० ७६° ११' १५" पू०
 पर अवस्थित है । यहां मेष-टमाम आकर उत्तरे
 है । नगर प्रतिष्ठापण है ।

पादापित (मं० सि०) पाय निषेदित, ताकीदन्
 मीमा कृपा ।

पादात (मं० सि०) १ पादत, पाया कृपा ।
 (स्त्री०) २ आधिय, बहुतायत ।

पादाति (मं० पु०) पा-या-तिच् । १ हरिपंगोळ
 मधुम राजाके चतुर्थ पुत्र, सुप्रसिद्ध ययातिके छोटीदर ।
 (स्त्री०) पा-या भावे लिच् । २ पागमन, सामट,
 पदुं, पाधापी ।

पादात (मं० स्त्री०) पा-या लट् । १ पादमन, सामट ।
 'पादातमनः पदो मन्' । कृष्ण ३११ । 'पादो मन्' ।
 'पादो मन्' । (अनुराधा) ३ अभाव, पादत । क्रियाका औ
 अभाव होता, वह उमरी आनीवन नहीं दृष्टता । रघोमि

अभावकी पायान कहते हैं । (अन्) ३ पाद-
 पदेल, रवानगीतक । ४ पादमपदेल, मवारीतक ।

पायापन (मं० स्त्री०) पामन्य, तनय, बुभावा ।
 पायापन्या—मन्दाय विमिय । इसका विमिय प्रमाप
 न पाया, किम व्यक्तिते पायापन्यो मन्दाय जलाया
 दा । साध्यपने पति भीष जाति पयंला हर्ममिमे
 है । पायापन्यो पाया माताको पुजन है । पदमे
 विवस राजपुतानिके पदम्य जाति हो पाया माताकी
 पूजा करते थे । इसका कुछ ठौर-ठीक नहीं, किन्तु
 दिग्मे पाया माताकी पूजा होत पायी है । मन्
 ई०के १६पे मताब्द यह मन्दाय बहुत बढ़ गया
 दा । राजस्थानमें निजा है,—१६१५ ई०की मया
 उदयसिंह किसी पायापन्यो साध्यकी कन्याके प्रति
 पतुराठ चुये । साध्यपने सुना, कि कन्याका धर्म
 विगडा था । उम समय यह कन्याको मारनेके लिये
 यज्ञकुण्ड बना होम करने लगे । कन्याका देह पत्त-
 पत्त उडा अपने गात्रके मांम साथ पायामातापर
 पढ़ाया था । उममे फिर अभिगाप दिया,—तीन
 महर, तीन दिन या तीन मत्सरके मध्य उदयसिंह
 इस पापका प्रतिफल पाये । पत्ताको साध्य लखन
 पन्निमें जूद पड़े थे । अभिगाप विफल न हुआ,
 निर्धारित समय उदयसिंहका प्राण छट गया । (Tod's
 Rajasthan, Vol. II. p. 31.) पायापन्यो साध्यप
 मन्दासादि पदप करते हैं ।

पायापाना—हृत्पविमिय, किमो किमका पैद । Euph-
 torium ayapana. पमीरिकाये यह हृत्प भारतमधे
 पाया है । स्या पत्ता शीर उच्छल शीपधमें पड़ता
 है । गुण पर्मकमक शीर पनकर है । मरिच मद्धानं
 यह पायकी पमीरके बदेके काम देता शीर पमीरिकायें
 पुरातन स्वरपर चलता है ।

पायाम (मं० पु०) पा-यम-पच् । १ देव्य, लम्बान ।
 'विश्वं लम्बान् पायामः' । (अन्) 'पायामः लम्बान्
 व' । (अनुराधा) ३ अभाव, पादत । क्रियाका औ
 अभाव होता, वह उमरी आनीवन नहीं दृष्टता । रघोमि

महदादिकी तरह गुण एवं गुणी उभय वाची नहीं, केवल गुणमात्रवाची होती हैं। आ-यम-ण्ड-घृत् । यक्ष आयामः । पा ११।६ । २ नियम, क्रायदा । “आश्यामवर्ष क्लृप्ता कथमुदाय वै दिनः ।” (मउ) ३ वातरोगभेद, वावकी एक बीमारी। यह दो प्रकारका होता है,— अश्वन्तरायाम और वाह्यान्तरायाम । ४ अशङ्कुचिताय-देश्य व्रणका दीर्घकरण, जखमके सुंइका बढ़ाया जाना ।

आयामकाञ्चिक (स० क्ली०) काञ्चिकभेद, किसी किष्काकी कांजी। निस्तुप दर-दलित यव ८ शरावक ६४ शरावक जलमें डेवाला १६ शरावक रहनेसे मण्ड निकाल ले। फिर यह मण्ड, ८ शरावक यथयत्तु और ६४ मध्यविध मूलक ६४ शरावक जलमें डाल एकत्र करे। उसे यवचारादिक प्रत्येक पलइय और पिपल्यादि प्रत्येक पलमित छोड़ विशुद्ध घटमें पञ्चदश दिन यावत् रखनेसे आयामकाञ्चिक बनता है। इसे ग्रहणी अधिकारपर देनेसे उपकार होता है।

(वैद्यनरवाचली)

आयास (स० पु०) आ-यस-ञञ् । १ अतियत्न, कोशिश, दौड़-धूप ।

“आयासश्चलभक्ष प्राथिभोऽपि गरीयसः ।

एकेन गतिरर्दस दानमन्या विपचयः ॥” (लृ० ति)

२ आन्ति, सुस्ती, मांदगी ।

आयासक (स० त्रि०) आ-यस-ण्वुल् । १ आयासयुक्त, कोशिश करनेवाला। आ-यस-ण्डि-ण्वुल् । २ आयास-जनक, सुस्ती लानेवाला, जो थका डालता हो।

आयासिन् (सं० त्रि०) आयास्यति, आ-यस्-णिनि । १ यत्नवान्, मगकृती। २ आन्त, सुस्त, थका-मांदा । (पु०) आयासी। (स्त्री०) आयासिनी ।

आयिन् (सं० त्रि०) आ-योऽप्यस्य, इति। लाभ-युक्त, आमदनीवाला । (पु०) आयी। (स्त्री०) आयिनी ।

आयिन्दा (फ्रा० वि०) १ आगामी, आनेवाला । (त्रि० वि०) २ भविष्यत्में, आगे। फारसीमें, भविष्यत्कालको जमाना-आयिन्दा कहते हैं ।

आयिन्दा-रविन्दा (फ्रा० पु०) पान्य, अध्वनीन, सुसा-फिर, राहो ।

आयिये (हि० त्रि०) पधारिये, तशरीफ आयिये । यह शब्द आना क्रियाकी आनाका समान-सूचक रूप है। साधारण रीतिसे कहनेमें ‘आयो’ होता है।

आयिसलेख—अर्थात् तुपारदीप । आटलाष्टिक महासागरके उत्तरांगमें अवस्थित एक द्वीप। आय-तन ४०४३७ वर्ग मील है। सेकड़े पीछे ८३ अंग अधिल्यका और अवशिष्ट निम्नभूमि है। यह द्वीप पश्चिम और दक्षिण भागमें ही विस्तृत है। उच्च भूमिका अधिकांश आग्नेय-गिरि और हिम-भूमिसे पूर्ण है। उद्भिदका विकृतक नहीं, जलका कहां ठिकाना है। किन्तु उसमें जो रुद भादि पड़ा, वह मत्स्यसे भरा है। ५१०० वर्ग मील भूमि चिरतुपारसे मण्डित है। समुद्र जलपर १३००से ४००० फीट चढ़नेमें बर्फकी सीमा मिलती है।

मरकर फ्रांज़ो, अजरसा, आयनकुसा और छोटी-छोटी दूसरी नदीसे आयिसलेखका जल बहकर समुद्रमें पहुँचता है। निम्न भूमि और पर्वतमालाके मध्यवर्ती नीचे प्रदेशपर आंधीमें विकीर्ण वायुकाकण एवं छुद्र-छुद्र प्रस्तरखण्डसे आकाश छा जाता है। उस समय अधिवासियोंकी बड़ा कष्ट होता है। १०७ आग्नेयगिरि है। अशकजा आग्नेय-गिरि सर्वापेक्षा बृहत् है। १८०५ ई०की अग्न्युत्पत्तसे उसका भस्म दूरवर्ती टकहल्ल शहरतक पहुँचा था।

यह भस्म शस्यादिके पक्षमें बहुत ही अनिष्टकर होता है। १७८३ ई०की स्केपटलकी आग्नेयगिरिके प्रलय एवं शिप उतुपातसे सेकड़े पीछे ५३ गृहपालित पशु, ७७ घोड़े, ८२ भेड़ और २० आदमी मरे थे। १८४५ ई० तक हेकला आग्नेयगिरिके सर्वसमेत अज्ञ-रह वार अग्न्युद्भिदरूपका समाचार मिला है। भूमिकम्प प्रायः दुःखा करता है। उससे भी समय-समय अत्यन्त क्षति पहुँचती है। आयिसलेखके प्रत्येकांगमें उष्ण जलके निर्भर वर्तमान हैं। किन्तु दक्षिण-पश्चिम भागमें उनको संख्या अधिक है। फिर उसी स्थानपर विष्यात पैसार प्रस्त्रवण है। गन्धक, रंग, मट्टी और कार्बोसिलिक एसिडकी भरने आग्नेयगिरि-प्रदेशमें स्थान-स्थान पर देख पड़ते हैं। मेकसिको उपसागरका

प्रजापति, प्रजापतिसे अश्विनोक्तुमारहय, अश्विनो-
क्तुमारहयसे इन्द्रदेव, इन्द्रदेवसे धन्वन्तरि और धन्व-
न्तरिसे सृशुतनि आयुर्वेद पढ़ा। लोकींके महन्नार्य
सृशुत मुनिने आयुर्वेद रचा है। प्रधाने आयुर्वेद
निम्नलिखित आठ भागमें बांटा था,—१ ग्रन्थतन्त्र,
२ शालाक्यतन्त्र, ३ कायचिकित्सातन्त्र, ४ भूतविद्या-
तन्त्र, ५ कौमारभृत्यतन्त्र, ६ अगदतन्त्र, ७ रसायनतन्त्र
और ८ वाजीकरणतन्त्र

१। ग्रन्थतन्त्र—जराही या चीर-फाड़को कहते
हैं। छण, काष्ठ, पापाय, पांश, धातु, इष्टक, अस्थि,
केय, नख आदि कारणवश शरीरमें घुस और मल-
मूलको रोक पीडादायक होते हैं। उन्हें निकालनेके
लिये यन्त्र, चार एवं अग्नि बनाने तथा लगाने और
नानाप्रकार रोगनिर्णय करनेका उपाय इस तन्त्रमें
लिखा है।

२। शालाक्यतन्त्रमें स्तन्यसन्धिके उपरिस्थ चक्षु,
कर्ण, मुख, नासिका, जिह्वा, दन्त, श्रोत्र, अधर, गण्ड,
तास्तु, अलिजिह्वा प्रभृति स्थानके सकल रोग मिटानेकी
वात है।

३। कायचिकित्सातन्त्रमें ज्वर, अतीसार, रक्तपित्त,
शोथ, चन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, मेह इत्यादि सर्वाङ्गव्यापी
रोगको शान्ति कही है।

४। भूतविद्यातन्त्रमें देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष,
रक्ष, पिटलोक, पिशाच, नाग, ग्रहादि द्वारा आक्रान्त
व्यक्तिके चारोग्यपर उपायस्वरूप शान्तिकर्म और
वलिदान विवृत है।

५। कौमारभृत्यमें बालकका प्रतिपालन, धातुके
दुग्धका दोष-संशोधन और स्तन्यदोष एवं ग्रहदोषमें
उत्पन्न रोगकी चिकित्सा है।

६। अगदतन्त्र सर्प, कौट, लता, हृद्यिक, मूष-
कादिके दंशजनित विषको दूर करनेका उपाय बताता
है। सिधा इसके अपरापर विषका लक्षण भी
उसमें विद्यमान है।

७। रसायनतन्त्रमें युवावत् बलिष्ठ बनने, परमायु,
मेधा एवं बल प्रभृति बढ़ने और दिहके रोगसे बचनेका
विषय वर्णित है।

८। वाजीकरणतन्त्रमें पशु पशुवा शुकको
बढ़ाने, विह्वतको स्वाभाविक भवस्यापर जानने और
अयप्राप्त शुकको उपजानेका विधान है। चीय
शरीरकी सवल करने और मनकी सर्वदा प्रफुल्ल रखने
का विषय भी वर्णित है।

इस षट्पादमें आजकलका देहतत्त्व (Physiology),
शरीरविज्ञान (Anatomy), शस्त्रविद्या (Surgery),
भैषज्य एवं द्रव्यगुणतत्त्व (Materia-medica),
चिकित्सातत्त्व (Practice of medicine), रोगनिदान
(Pathology) और धातुविद्या (Midwifery) प्रभृति
विषय विद्यमान है। सिधा इसके मद्य-चिकित्सा-
प्रणाली (Homeopathy), विरोधि-चिकित्सा-
प्रणाली (Allopathy) जल, चिकित्सा-प्रणाली
(Hydropathy) और तन्त्रशास्त्रमें वर्णचिकित्सा
(Chromopathy) भी मिलती है।

आयुर्वेदका चिकित्सा-तत्त्व वैदिककालमें प्रचलित
है। इसमें किसी बातकी कमी देख नहीं पड़ती।

शरीर-विज्ञान और अस्तचिकित्सा प्रथम षट्पके
अन्तर्गत है। यजुर्वेदमें अस्तचिकित्साका आभास
मिलता है— "इदयासापि प्रथम्यत्र जिह्वाया च चक्षुः।"

उपराक्त मन्त्रद्वारा यज्ञार्थं निहत पशुका हृदय,
वचः, यक्तु, वृक्त (वृक्त), वामहस्त, उभयपार्श्व,
श्रोणि, गुदनाल-मध्य-भाग, अन्त-चर्म (वया) और
मेदः (वसा) प्रभृति अस्त्र-विशेषमें बाहर निकाल
अग्निमें आहुति देनेकी विधि विद्यमान है। शस्त्र-
विद्या ज्ञात न रहनेसे यह सकल कार्य होना कसे
संभव था ? वेदमें शरीरतत्त्व-रहनेका विलक्षण
प्रमाण मिला है,—

"यथा इषो वनपतिर्यदेव पुत्रोऽधरा।

तथा लोमादि पशोनि स्तरसामुपाटिका इतिः।

तत्र पशस्य चरिरे प्रत्यदि तत्र चतुष्टयः।

तष्वात्पु मदा तष्वात्पु इति रलो इवादिवाहकान्।

मांसाश्च मक्षराणि किनाष्ट याव तन् सिरान्।

पथीभनन्तो दाक्षि मन्ना मन्थीपमाकता।

यत् इषो इक्को रोहति मूलादवसट पुनः।" (इष्टारणक १।१।१८)

किर अन्य स्थलमें गिरा-प्रगिरा नामादि भी है,—

आयुर्वेद (सं० पु०) आयुष्यका वन, उन्नका जोर। ज्योतिषमें नक्षत्रके, बलावलपर आयुका घटना-बढ़ना माना है।

आयुर्वेद (वे० त्रि०) आजीवन युद्धकर, उन्नकर सहजनेवाला। "शे पर्या परिवर्षम ऐक इदा आयुर्वेदः।" वागभवेन संदिता १(१६०)। 'आयुर्वेदो जीवनेन युद्धमे ते यावन्जीवतुहकारः यदा आयुर्वेदो वनं परोहस्य दुष्प्रति ते आयुर्वेदः।' (मनोपथ)

आयुर्वेद (सं० पु०) उचितस्थायुषो ज्ञापको योगः, शाकतम्। १ ज्योतिषोक्त ग्रहयोगविशेष। इससे उचित आयु मिलता है। २ औषध, दवा।

आयुर्वेद (सं० स्त्री०) आयुषो वृद्धिः, ६-तत्। द्रव्य विशेषके सेवन द्वारा आयुकी वृद्धि, किसी खास बीजके इस्तेमालसे उन्नका बढ़ना। शिवने दुर्गासे कहा है, हे देवि। अश्वक तुम्हारा और पारद हमारा बीज है। इसीसे जो दोनोंको मिलाकर सेवन करता, यह मृत्यु और दारिद्र्यके भयसे छूट जाता है।

"यस्यै तव बीजसु सम बीजसु पारदः।
अनयोन्मथं देवि मृत्युदारिद्र्यात्मनम् ॥"
(सर्वदर्शनचंद्रकृत तत्त्वचक्र)

प्राणायामसे भी सर्वव्याधि छूटता और परमायु बढ़ता है। पूर्वमुक्तवस्तु जीर्ण होनेपर भोजन करना और मलमूत्रादिका वेग न रोकना परमायुवृद्धिका एक उपाय है। सुप्तके मतमें ब्रह्मचर्य, अहिंसा, दुःसाधस-परित्याग, सद्योर्मांस एवं भन भक्षण, वाला स्त्री-सेवन और दुग्ध-घृत तथा उष्याजलपान आयुर्वेदिककर होता है।

आयुर्वेद (सं० पु०) आयुर्वेदो ज्ञायते लभ्यते वा अनन, विद् करणे धञ्। ऋग्वेदका उपवेदविशेष, अथर्ववेदका उपाङ्ग, श्रद्धादि स्थानाटक-सम्पन्न धन्वन्तर्यादि-प्रणीत चिकित्साशास्त्र, इसम-भदविद्या। आयुका हिताहित और व्याधिका निदान तथा श्रमन जिस शास्त्रमें रहता, यही आयुर्वेद कहाता है। (वेदशास्त्र) हित, अहित, सुख, दुःख, और आयु तथा उसका हिताहित एवं मान बतानेवाले शास्त्रका नाम आयुर्वेद है। (चक्र)

आयुर्वेदसे इन दुर्बल विषयोंका ज्ञान मिलता,—

आयुके लिये क्या हितकर एवं क्या अनिष्टकर होता और उसका कितना परिमाण तथा कौसा स्वरूप रहता है। महर्षि सुप्तके मतमें जिससे आयु बढ़ता किंवा मानूस पड़ता, यह शास्त्र आयुर्वेद कहाता है।

"अनेन पुरुषो यथासाधुर्विन्दति वेदिना।
तथासाधुर्विन्दति आयुर्वेद इति षष्ठाः ॥" (भारविश)

अर्थात् रोगान्नात व्यक्तिका रोगनिवारण और सुख व्यक्तिकी स्वास्थ्यका ही आयुर्वेदका प्रयोजन है।

इस विषयमें कुछ मतभेद पड़ता, आयुर्वेद किस वेदके अन्तर्गत आता और किस वेदका उपाङ्ग ठहरता है,—"अथर्ववेदके वेदानामुपवेदा भवति। अथर्ववेदानुवेद उपवेदः। अथर्ववेदस्य शस्त्रशास्त्राणि।" (चरकसूत्र)

सकल वेदका एक-एक उपवेद होता है। ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद है। अथर्ववेदके उपवेदको शस्त्रशास्त्र अर्थात् शस्त्रतन्त्र कहते हैं।

किन्तु सुप्तके मतमें आयुर्वेद अथर्ववेदका उपाङ्ग है, "इह खलुवायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।" (सुप्त एत० १५०)

किसी-किसी पुराणमें लिखा, कि ब्रह्मर्षि ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदका सार निकाल आयुर्वेद बनाया था। असली बात यह, कि आयुर्वेदका बीज सकल वेदमें ही मिलता है। उसके मध्य ऋग्वेदमें कुछ अधिक है। किन्तु वैद्यकगणके अथर्ववेदपर ही अधिक निर्भर करनेका क्या कारण है? "तत्र वेत्त प्रजापत्यः पशुपतयः सामयशुरपर्यवेदानां के वेदसुपरिदरन्नायुर्वेदविदः। तत्र विपना इह मेवं पशुषां अक्षयामयशुरपर्यवेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेया। वेदः ज्ञापयैषः। स्वास्थ्यन-वृद्धि-सङ्क-कोमलाशयिषोपवाच-मन्वादि-परिपद्यः। अहिंसा ॥" (चरक सूत्रस्थान १० अथाथ)

यदि कोई पूछे—आयुर्वेदवेत्ता ऋक्-यजुः-साम-अथर्व चारोंमें किस वेदके अथर्ववेदसे उपदेग दे, तो चिकित्सक ऋक्, यजुः, साम, अथर्व चारोंमें अथर्व-वेदपर अपना भक्ति देखाये। क्योंकि अथर्व-मौक्त वेद ही स्वास्थ्यन, वलि, मङ्गल, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास और मन्वादिको स्वीकारकर चिकित्सा-तत्त्वका उपदेग देता है।

सुप्तमें लिखा, पहले ब्रह्मर्षि महर्षि अथाथ और सषट्कोक्तक आयुर्वेद प्रकाश किया था। ब्रह्मर्षि

• आयुष्टोम (सं० पु०) आयुःसाधनं स्तोमः, शाक० तत् पत्वम् । १ आयुःसाधन ऋक्समुदाययुक्त स्तोम-विशेष । २ आयुष्टोम स्तोमयुक्त भतिरात्रविशेष । आयुष्टोमयज्ञ करनेसे उम्र बढ़ती है ।
 • आयुष्या (वै० त्रि०) आयुकी रक्षा करनेवाला, जो उम्रकी हिफाजत रखता हो ।
 आयुष्यतरण (वं०) आयुक्त देखो । (स्त्री०) आयुष्यतरणी ।
 • आयुष्यत् (सं० त्रि०) प्रगस्तमायुरस्थस्य, आयुस्-मतुप् पत्वम् । १ प्रगस्त्यायुक्त, उम्रवाला, तनदुरुस्त । २ जीवित, जिन्दा । ३ भक्ष्य, कायम, चाल् । ४ हृद, उम्ररसौदा । (पु०) आयुष्यान् । (स्त्री०) आयुष्यती ।
 • आयुष्यान् (सं० पु०) १ प्रगस्त्यायुः व्यक्ति । २ ज्योतिषोक्त विष्कम्भसे तृतीय योग विशेष । यथा—विष्कम्भ, प्रोति, आयुष्यान् इत्यादि । आयुरिति शब्दाऽस्थस्य, मतुप् । ३ आयुस् शब्दयुक्त मन्त्रविशेष । ४ उत्तानपादके एक पुत्र । ५ संक्रादके एक पुत्र । ६ जीवक महाच्युप, दोषहरिया ।
 • आयुष्य (सं० त्रि०) आयुःप्रयोजनमस्य, यत् । स्मार्तिशो यत् । (महाभाष्य) १ आयुर्हितकर, ह्यातवष्यम् । २ पथ्य, बीमारके खाने लायक । भ्रत्र पारदादि द्रव्य और प्राणायामादि कर्म आयुष्य होता है । “पूर्व जातिःरषि कथिला तजिनायुष्य होमान् वृणीति ।” (ह्यति) (स्त्री०) ३ आयुर्हितकर वल, ह्यातवष्यम् ताकत । ४ सजीवीकरण संस्कार । यह पुत्रजन्मके बाद किया जाता है ।
 • आयुष्यच्छ्रुत (सं० स्त्री०) कर्मधा० । ‘आयुष्यानिति शान्दवर्धे जघा तत्र समाहितः’ छान्दोगपरिशिष्टोक्त आशुदयिक आहादिमें पाठ्य छ्रुत विशेष ।
 • आयुस (सं० स्त्री०) एति गच्छति अहरहः; इण गतौ उत्सि, णित्वाङ्ङिः । एतेषिच । ७५५।१।८ । १ जीवित काल, जीस्त । ‘अथायुःकतिनामयी ।’ (उणादिकोष)
 ‘आयुर्जीवनम् ।’ (छम्बनः)
 सत्ययुगके लोग नीरोग रहते, इसमें उनके सकल कार्य बन जाते थे । परमायु चार मी वर्ष रहा । वेतादियुगमें पादक्रमसे परमायु घटना अर्थात् तैत्रामें तीन, हारपरमें दो और कलमें एक मी वर्ष मनुष्य होता है,—

“आरोगः सर्वहिदायां वतुर्वर्षं मतायुषः ।

इति ते तादितु षेयामायुर्द्वयति पादयः ॥” (मनु । १५२)

पुराणान्तरमें मत्यादि युगमें सब वत्सर प्रश्रुति परमायु होनेकी बात लिखी है । प्राण्य प्रत्यह २१६०० खास और उच्छाससे प्राणक्रिया चलता है । ३६०दिनसे २१६००संख्याको गुण करनेपर ७७७६००० आता, जो एक वत्सरका संख्यान होता है । नृत्यादिमें पुरुषका स्वाभाविक परमायु एकगत वत्सर निरूपित है शत द्वारा ७७७६००० को गुण करनेपर ७७७६०००० निकलता है । शतएव मनुष्यके जीवन-कालमें ७७७६०००० संख्यक प्राणक्रिया हो सकती है । प्राणायामादि द्वारा वायुकी रोकनेपर क्रियाकी अनुत्पत्तिके अनुसार परमायु बढ़ता है । पूर्वीक प्राणक्रिया सुस्थ व्यक्तिके लिये ही कही है । रोगादि उपसर्ग और शीघ्र यातायातमें अधिक प्राणक्रिया होनेसे परमायु घटता है । पुरुषका एकगत वत्सर परमायु स्वाभाविक ठहरता, किन्तु कर्म और कुपथ्यादिवश न्यून भा निकल जाता है ।

वेदादिमें मनुष्यका परमायु शत वत्सर निर्दिष्ट है,—“मनिधा यत् षाहति निमित्तं रुदं नमत् ।

वाराहं स पुथंति अयमपे गतयुवर्षं ॥” (सङ्गहिता १११)

अर्थात् हे पतिन ! जो मर्त्य समिध काठ-द्वारा तुम्हें मन्त्र-संस्कृत षाहुतिसे परिपुष्ट करना, वह पुत्रपौत्रादिसम्पन्न रहनेमें शत वत्सर जीवित रहता है । २ यज्ञविशेष । प्रायः हमे आयुष्टोम करते हैं । यह दीर्घजीवन प्राप्त होनेके लिये किया जाता है । फिर इसमें अभिप्लव यज्ञके ‘गो’ और ‘व्यातिः’का भाग भी लगता है । ३ श्वाथ, वृराक ।

आयुष्यम् (सं० पु०) पुरुषा और उःगोके पुत्र ।

आयुस्कार, आयुश्च देखो ।

आयुस्तेजम् (सं० पु०) बुद्ध विशेष ।

आये (सं० अथ०) प्यार, पोजी । प्रोक्तिके माय किसीको पुकारनेमें यह व्यवहृत होता है ।

आयेशा—इमलाम धर्मप्रचारक मुहम्मदकी श्य पत्नी । यह आयु-वृक्षकी कन्या थीं । मात वत्सर वधमें मुहम्मदके साथ इनका विवाह हुआ था । सुननेमें पाया,

“य एवोऽन्वहं देवि मोक्षितं पश्यः । चरेत्तपोरेतन् भारतपम् ।
य ईदमन्वहं देवि जानकानि २ । चरेत्तपोरेवा सतिः सभारपोरेवा ।
उदयात्पूर्वमाहो उदरति पथा ३०३ः सधधथा ।

भित्त एवैवय दिना नाम आयुऽन्वहं देवि इति द्विधाः ।”

मिमा इसके अर्थवेदीय गर्भ और शरीरोपनिषत्में शरीरोपनिष्ठा विमोघ रूपमें कथित है । ऋग्वेदीय उदर-उपस्था १५ और १६ अध्याय देखो ।

उद्भिद्विद्या भी आयुर्वेदमें पायी जाती है । उद्भिद-तत्त्व न समझनेमें आधाधका गुणागुण ठहराना कठिन है । प्राचीन वैदिक ऋषि आधाधिका विषय अच्छीतरह जानते थे । ऋग्वेदमें प्रमाण है,—

“उचं ताडवत्प्रवर्धत विभ्रमन्नातिहृषीषधीनिधमायः ।” (धक्. शा. १३१०)

अर्थात् (यह) जैव सकल शस्यसम्पन्न और नदी सकल प्रेरित करें । जलविहीन स्थान आधाधयुक्त और निम्नस्थान जलमय हो ; फिर देखिये,—

“मधुमतीरोपधीयं चारी” (धक्. शा. १३०१)

प्रयोजन यह, कि आधाधि सकल दुलोकसमूह और जलसमूह मधुयुक्त बनें । ऋषियोंका आधाधि विषय जानना निम्नलिखित वचन द्वारा भी प्रमाणित है,—

“या चौरधिः पूर्वा जाता द्विवेष्वास्तुर्गं पुरा ।

गने नृ वृक्ष, वामर्धं अतं धामानि सप्त व ॥” (धक्. १०८०१)

महाभारतमें रोगहर, धिपहर, शस्यहर और क्षत्याहर कयी प्रकारके आयुर्वेदवित् चिकित्सकीका नाम मिलता है । ईदमन्, शरीरोपनिष्ठा, मन्विद्या, चिकित्सा-तत्त्व, शरीरोपनिष्ठा, आधोविद्या प्रभृति शब्दोंमें विस्तारित विवरण देखो ।

अत्रायुर्वेद, गजायुर्वेद और वृक्षायुर्वेद नामसे आयुर्वेदके कयी विभाग होते हैं । (अभिप्राय १८१—१८२ अध्याय)

मधुसूदन-सरस्वतीने अपने बनारस ‘प्रस्थानवेद’ ग्रन्थमें कामशास्त्रको भी आयुर्वेदका अङ्ग माना है । आयुर्वेदकी चिकित्साप्रणाली यूनानी, ईरानी और अरबी चिकित्साशास्त्र चन्नेसे पह ले हीबनी रहो । बहुकाल पूर्व भारतवर्षमें सर्वप्रथम मूल खुना या, पीछे अरब जातिने सादर उसे अपना लिया ।

‘उद्युन-उरु-अस्था फितुन-कारुन-अतथा’ नामक अरबी ग्रन्थमें लिखते, कि सन् ई०के ८५५ गताब्द भारत-वर्षीय पण्डितके अधीन मगदादकी राजसभामें बैठ लाग

ज्यातिप और आयुर्वेद पढ़ते थे । सरक, सुसुंद और वेदान नामक तीन आयुर्वेदिक ग्रन्थ भारतवर्षसे लोग अरबदेश ले गये । तीनों ग्रन्थ अरक, सुसुन और निदान नामके अक्षर-जैसे हैं । इससे स्पष्ट समझमें आता, कि पायाव्य चिकित्सकोंने भारतवासियोंसे आयुर्वेद पाया था

आयुर्वेददृक्, आयुर्वेददृग्, दीवो ।

आयुर्वेददृग् (सं० पु०) दृष्ट, चिकित्सक, तबीब, इकीम ।

आयुर्वेदमय (सं० पु०) आयुर्वेद प्रसुरः, आयुर्वेद प्रासुर्ये मयट् । १ धन्वन्तरिः, प्रसुर आयुर्वेद जाननेमें धन्वन्तरिको यह उपाधि मिला है । (वि०) २ आयुर्वेदाभिन्न, इसम-अद्विधासे वाक्किप् ।

आयुर्वेदिक, आयुर्वेददृग् दीवो ।

आयुर्वेदिन् (सं० त्रि०) आयुर्वेदी वेद्यानशास्त्रस्य, इति । १ औषधीय, तिब्बो, दवादारुमं ताम्, म्, खने-वाला । २ वंध्य, तमीव (स्त्री०) आयुर्वेदिनी ।

आयुर्वेदी (सं० पु०) वंध्य, इकीम, दवादारु देनवाला ।

आयुष्क, आयुष् दीवो ।

आयुष्क—जेनशास्त्रानुसार देह अथवा पुरुषका मंयोग । आयुष्को घोषणा करनेवाला ।

आयुष्क (सं० त्रि०) आयुष्का सजते आयु-नख-क्षिप् पत्वम् । १ आयुःसम्बन्धी, उम्बसे सरोकार रख-वाला । २ मानवयुक्त, मनुष्योंके योगका, आदर्भियाका मशारा पकडनेवाला । (अथ्य) ३ मनुष्योंके मंयोगसे, आदर्भियोंके मेलमें ।

आयुष्क (सं० त्रि०) आयुष्का कायति, आयुष्क-क । आयुष्का प्रकाशमान, उम्बसे मलकनेवाला ।

आयुष्कर (सं० त्रि०) परमायुष्कनक, उम्ब वट-नेवाला ।

आयुष्कास (सं० त्रि०) आयुः कामयते, आयुष्क-कम्-णञ्-अण् । आयुष्कामिषाणक, उम्बको आदिश रखनेवाला ।

आयुष्कृत (सं० त्रि०) आयुः करोति, आयुष्क-क्षिप्-णक । आयुर्वेदिकर, उम्ब वेदानवाला । अम्बः पारदादि आयुष्कृत होता है । अम्बं वि देखो ।

आयुष्टोम (सं० पु०) : आयुःसाधनं स्तोमः, शाकं
तत् पत्वम् । १ आयुःसाधन ऋक्समुदाययुक्त स्तोम-
विशेष । २ आयुष्टोम स्तोमयुक्त प्रतिरात्रविशेष ।
आयुष्टोमयज्ञ करनेसे उम्न बढ़ती है ।
आयुष्या (वै० त्रि०) आयुकी रचा करनेवाला, जो
उम्नकी हिफाजत रखता हो ।
आयुष्यतरण (वै०) आयुक्त देखो । (स्त्री०)
आयुष्यतरणी ।
आयुषत् (सं० त्रि०) प्रगस्तमायुरस्थस्य, आयुस्-
मत्तुप पत्वम् । १ प्रगस्त्यायुक्त, उम्नवाला, तनदुस्व ।
२ जीवित, जिन्दा । ३ भक्षय, कायम, चाल् । ४ हृद,
उम्नरसोदा । (पु०) आयुषान् । (स्त्री०) आयुषती ।
आयुषान् (सं० पु०) १ प्रगस्त्यायुः व्यक्ति । २ ज्योतिषोक्त
विष्कृभसे तृतीय योग विशेष । यथा—विष्कृभ, प्रोति,
आयुषान् इत्यादि । आयुरिति शब्दाःस्थस्य, मत्तुप ।
३ आयुस् शब्दयुक्त मन्त्रविशेष । ४ उत्तानपादके
एक पुत्र । ५ संज्ञादके एक पुत्र । ६ जीवक महाहृत्प,
दोपहरिया ।
आयुष्य (सं० त्रि०) आयुःप्रयोजनमस्य, यत् ।
स्वर्गादिभ्यो यत् । (महाभाष्य) १ आयुर्हितकर, ह्ययातवष्यगृह ।
२ पथ्य, बीमारके खाने लायक । अन्न पारदादि द्रव्य
और प्राणायामादि कर्म आयुष्य होता है । “एवं जातेरधि
नयित्वा तन्नियोग्य होमान् वृचोति ।” (ह्यति) (स्त्री०) ३ आयु-
र्हितकर वल, ह्ययातवष्यगृह ताकत । ४ सजीवीकरण
संस्कार । यह पुत्रजन्मके बाद किया जाता है ।
आयुष्ययुक्त (सं० स्त्री०) कर्मधा० । आयुषानिति
शान्त्यर्थं जया तत्र समाहितः छान्दोगपरिशिष्टोक्त
आभूद्दयिक आद्यादिमें पाठ्य युक्त विशेष ।
आयुभ (सं० स्त्री०) एति गच्छति । अहरहः, इण
गतौ लसि, णित्वाङ्ङिः । १ वेद्विंश । २ १११८ । १ जीवित
काल, जोस्त । ‘आयुर्न विभावयी ।’ (छण्णादिकीय)
‘आयुर्विवनम् ।’ (छम्ननदस)

सत्ययुगके लोग नीरोग रहते, इससे उनके सकल कार्य
बन जाते थे । परमायु चार भौ वर्ष रहता । वेतादियुगमें
पादक्रमसे परमायु घटना अर्थात् तन्नामें तीन, हापरमें
दो और कलिमें एक भौ वर्ष मनुष्य होता है,—

“आरीगाः सर्वसिद्धार्थानुवर्षं मतायुषः ।

कृते ते गादिषु ईशामायुर्लक्षति पादयः ॥” (मनु १०२)

पुराणान्तरमें सत्यादि युगमें सच वत्सर प्रधति
परमायु होनेकी बात लिखी है । प्राणा प्रत्यह
२१६०० खास और उच्छामसे प्राणक्रिया चलाता है ।
३६० दिनसे २१६०० संख्याको गुण करनेपर ७७०६०००
भाता, जो एक वत्सरका संख्यान होता है । श्रुत्यादिमें
पुरुषका स्वाभाविक परमायु एकगत वत्सर निरूपित
है शत द्वारा ७७०६००० को गुण करनेपर
७७०६०००० निकलता है । अतएव मनुष्यके जीवन-
कालमें ७७०६०००० संख्यक प्राणक्रिया हो सकती
है । प्राणायामादि द्वारा वायुको रोकनेपर क्रियाकी
अनुत्पत्तिके अनुसार परमायु बढ़ता है । पूर्वोक्त
प्राणक्रिया सत्य व्यक्तिके लिये ही कही है । रोगादि
उपसर्ग और शीघ्र यातायातमें अधिक प्राणक्रिया
होनेसे परमायु घटता है । पुरुषका एकगत वत्सर
परमायु स्वाभाविक ठहरता, किन्तु कर्म और
कुपथ्यादिवश म्यन भा निकल जाता है ।

वेदादिमें मनुष्यका परमायु शत वत्सर लिखित
है,—“वनिषा यत् बाहुर्नि निमित्ति मर्त्यो मनुष्य ।

वत्सरं स पुष्यति चयमये मनुषुर्ब ॥” (सर्वभूता १२१)

अर्थात् है मर्त्य । जो मर्त्य समिध काष्ठ-द्वारा
तुम्हें मन्त्र-संस्कृत प्राणुतिसे परिपुष्ट करता, वह
पुत्रपौत्रादिसम्पन्न गृहमें शत वत्सर जीवित रहता है ।
२ यज्ञविशेष । प्रायः हमे आयुष्टोम करते हैं ।
यह दीर्घजीवन प्राप्त होनेके लिये किया जाता है ।
फिर इसमें अभिप्लव यज्ञके ‘गो’ और ‘व्यातिः’का भाग
भी लगता है । ३ खाद्य, चर्राक ।

आयुष्टम् (मं० पु०) पुरुषा और उगंगोके पुत्र ।

आयुस्तर, आयुषर देखो ।

आयुस्तेजम् (सं० पु०) बुद्ध विशेष ।

आये (सं० अथ०) प्यार, पोजी । प्राणिके माय
किसीको पुकारनेमें यह व्यवहृत होता है ।

आयिशा—इसनाम धर्मप्रचारक सुहृद्दकी ३५ पत्नी ।
यह आयु-वृद्धकी कन्या थीं । सात वत्सर वधमें
सुहृद्दके साथ इनका विवाह हुआ था । सुननेमें पाया,

कि वास्तवस्थामें विवाह होनेसे ही इनके बाप पच-
दुहाका नाम बदलकर पचू बक पर्याप्त पचताके
पिता पड़ा या। कोई मन्तान न होने भी मुहम्मद इन्हें
बहुत चाहते थे। किसी घरमें नेत्रकने कहा है,—
‘पचूबक इतनी तरफ कन्या मुहम्मदको देनेके विरोधी
रहें। किन्तु मुहम्मदने विवाहके लिये इश्वरोंय आज्ञा
होनेका बहाना किया। इसपर उन्होंने अपनी कन्या
एक मछूपा खजूरके साथ भेज दी थी। आये-
शाको एकान्तमें पा मुहम्मदने अमर्याद वस्त्र पकड़
लिया उसपर यह सक्तोष धोल उठीं,—‘लोगोंके
विश्वस्य बताते भी आप व्यवहारसे मुझे वस्त्रक
मालूम पड़ते हैं।’ अपने पतिके मरनेपर इन्होंने
अनीक उत्तराधिकार पर आपत्ति डाली थी। कयी
बार इन्हें अनीके साथ घोर युद्ध करना पड़ा। साहसिक
होते भी इनके आचरणका बड़ा आदर रहा। अनीके
इन्हें फौद कर बिना पीड़ा दिये छोड़ा था। आयेशा
भविष्यदादिनी और सत्यसर्वाकी माता कहाती रहीं।
सन् ५८ हि० या ६०८ ई०को इनकी मृत्यु हुई। लोग
कहते हैं,—आयेशाने सनिद्यय और सावमान यज्ञीदके
साथ अनुरक्त होना अस्वीकार किया था। इसपर
सुबावियाने उन्हें विनोदनके लिये बुला भेजा। आये-
शाके स्वागत-शुद्धमें एक बड़ा गट्टा खोद और सुंघ
पत्तीसे टांक दिया गया था। प्राणनायक स्थानपर
कुरसी बिछी। यह उस पर बैठते ही गट्टेमें जा
पड़ी थीं। उही समय गट्टेका सुंघ पत्थरसे गरा
और धुँसि भरा गया।

आयोग (सं० पु०) आयुष्यते सर्वथ मङ्गलादीं आ-
टुञ्ज-घञ् । १ गन्धमाख्योपहार, फूल फुल्ले वगैरहकी
भेंट। २ व्यापार, हादसा। ३ रोष, रोक। ‘आयोगे
गन्धमाख्योपहारं आपत्तिरोपयोः’ (हेन) ४ नियुक्ति, तैनाती।
५ तट, किनारा।

आयोगव (सं० पु०) आयोगं प्रमगस्तयोगं वाति
गच्छति, आयोग-वाक स्वार्थ षण् । १ यैशाके गर्भ
और शूद्रके औरससे उत्पन्न जाति विशेष। ‘यथा-
दालोदरः’ (मृ १०।१२) काठका काम करते-करते पच
सुतार या बट्टी नाम हो गया है। २ आयोगव-

धंगका मनुष्य। (सो०) जातित्वात् ङोप।
आयोगवो।

आयोजन (सं० क्री०) आ सम्यक् युष्यते कर्म
येन, आ-ञ-लुट् । १ उद्योग, जाफिसानी। २ आह-
रण, भूषण-भूषण, धरपकड़। ३ संप्रकार्य, जोड़-
तोड़। नैयायिक-मतमें कर्म और व्याख्यानकी आयो-
जन कहते हैं।

आयोजित (सं० द्वि०) आ-युज-णिच्-क्त सांपः,
आयोजनमस्य जातम्, तारकादित्वादितच् या। सम्यक्
सम्पादित, बना बुना।

आयोद (सं० पु०) आयोदस्यापत्यम्, वाहुलकात्
षण् । धौम्यमुनि।

आयोधन (सं० क्री०) आ सम्यक् युष्यन्ति योदारो-
ऽस्मिन्, आ-युध आधारे लुट् । १ रणक्षेत्र, लड़ाईका
मैदान्। भावे लुट् । २ युद्धक्रिया, जङ्गलदल,
लड़ाई-भिड़ाई। ३ संहार, खूँरेजी। ‘इन्द्रमाधोवर्ध
अर्थ प्रथमं प्रविदारषम्’ (अन १।८।१२)

आर (सं० पु०) आ सम्यक् ऋ गच्छति कालवशात्,
आ-ऋ कर्तरि षञ् । १ मङ्गलघट्ट, मिरखी। यूनानि-
योंके होराशास्त्रमें भी मङ्गल ग्रहका आरस् कहते हैं।
२ शनिघट्ट, जोहल, कौवान्। ३ मधुराम्बुष, एक
पेड़। गौड़ देशमें इसे रैफल कहते हैं। ४ प्रान्तभाग,
कुर्ष, नज्दीकी। भावे षञ् । ५ गमन, रविग, चाल।
आ अभिव्याप्ती पर्यन्ते गम्यते यत्र, आ-ऋ प्राधारे षञ्।

६ दूर, फास। (क्री०) ७ सुण्डलौह, काँचका
लुब्ध-लुलाव। ८ पित्तल, बिरख। आ-ऋप्रतिभय,
स्वार्थे षण् । ९ कोण, जाविया। ‘आः पित्तलैःकंभ्र’
(विच) ‘आतो रौतिः मणिभ्रंजः’ (हेन १।१२५) १० एक भील।
११ सक्थि, पछीयिका आर। १२ हरिताल।

(हिं० पु०) १३ कलहुना। इससे इतुरस
निकासते हैं। १४ महीका लौटा। यह पावननिर्माणमें
लगता है। १५ पापघ, इसरार। (क्री०) १६ नोहेकी
कील। यह पतला होती और सट्टिमें लगती है।
गाड़ीका बेल या भैंसा जब नहीं चलता, तब हाँकने-
वाला इसे उसके पीछे चुभो देता है। १७ पादकण्टक,
पन्ध्रेका काँटा। यह सुगँगे होता और लड़नेमें चलता

हे। १८ टंग, नेश, डङ्क। १९ चर्मप्रसिद्धिका, सुवा, सजा, सुतारी। (५० स्त्री०) २० स्त्री, शर्म। (५० स्त्री०) २१ अंगरेजी वर्षामालाका १८वां अक्षर। यह संस्कृतके रकार, हिंदीके 'र' और फ़ारसी या उर्दूके 'र' से उच्चारणमें मिलता है।

आर आना (हिं० स्त्री०) लज्जा लगना, शर्माना।

आरक (स०) आर देखो।

आरकात् (वै० अथ०) अतिदूर, अलग।

आरकूट (स० पु०-स्त्री०) आरस्य पित्तलस्य कूट इव।

१ पित्तलाभरण, पीतलका गहना। आरमयः कूटोऽस्य।

२ पित्तल, विरञ्ज। 'रीतिस्त्रियामारकूटो। न स्त्रिया।' (धनर १।८।६०)

आरक्त (सं० पु०) आ-ईपत् रक्तः, प्रादिषमासः।

१ ईपद् रक्तवर्णं, मायल व-सुर्खी, लालसा रङ्ग।

(त्रि०) २ सम्यक् रक्त, अहमर, खूब लाल। ३ ईपद् रक्त, सुर्ख सा। ४ सम्यक् अनुरक्त, खूब रंगा हुआ।

(स्त्री०) भावे रक्त। ५ अनुराग, रङ्ग। ६ रक्तचन्दन।

आरक्तपुष्पी (स० स्त्री०) बन्धुजीवकवृक्ष, दो पह-

रियाका पेड़।

आरत्त (सं० पु०) आ सम्यक् रत्तति, आ-रत्त-अच्।

१ हस्तीके मस्तकस्य कुम्भका अधःस्थल, हाथीकी

पेशानीके शिगाफका जोड़। २ हस्तीके मस्तकका चर्म,

हाथीकी पेशानीका चमड़ा। ३ सन्धि, चक्ष, जोड़।

भावे घञ्। ४ रत्तोक्रिया, हिफाजत। 'आरत्तो रत्त

वदिकुम्भाधय। रत्तोः।' (धन २।०२८) (त्रि०) आ सम्यक्

रत्तते, आ-रत्त कर्मणि घञ्। ५ रत्तणीय, हिफाजत

किये जानि काबिल।

'आरत्तो रत्तणीये स्वात्तीर्षं नर्मणि दन्तिनाम्।' (विश)

आरत्तक (स० त्रि०) १ रत्ता करनेवाला, जो हिफा-

जत रखता हो। (पु०) २ रत्ती, सुहाफिज, चौकीदार।

आरत्ता (सं० स्त्री०) आ-रत्त भावे आ-टाप्। सम्यक्

रत्ता, हिफाजत।

आरत्तिक (सं० पु०) १ महरौ, सुहाफिज, चौकी-

दार। २ दण्डाधिकारी, पुलिसका हाकिम।

आरत्त्य (सं० त्रि०) रत्ता किये जानि योग्य, जो

हिफाजत रखे जानिके काबिल हो।

आरग्वध (स० पु०) आ रगे गङ्गायां क्लिप्, आरगं

रोगभयं हन्ति, आरग् हन्-अच् वधादेशय। १ राज-

वृक्ष, अमलतास। अमलतास देखो। २ सुवर्णासुपत्र।

३ सुवर्णासुफल। ४ आरग्वध पत्र। ५ आरग्वध फल।

आरग्वधपञ्चक (सं० स्त्री०) कपायविशेष, एक ली

शांदा। आरग्वध, तिक्तकरोहिणी, हरीतकी, पिप्पलि-

मूल और सुस्तक पांच द्रव्य डालनेसे यह बनता और

वातकफज्वरमें लाभदायक होता है। (अत्रिर्विज्ञा ५२५०)

आरग्वधादि (सं० पु०) गण विशेष, अमलतास

वगैरह चौजूका जूखीरा। इसमें आरग्वध, इन्द्रियव,

पाटल, काक, तिक्ता, निम्बा, अमृता, मधुरसा मुव,

हृच, पाठा, भूमिस्व, सैर्यक, पटोल, कारञ्जयुगल, सप्त-

च्छद, अग्निमुपवीफल और वाणघोषटा द्रव्य पड़ता

है। यह छदि, कुष्ठ, विषमज्वर, कफ, कण्डू,

प्रमेह एवं दुष्टप्रणको दूर करता और विशेषतः वलासप्त

होता है। (आग्मट सुश्रुत १५५०)

आरग्वधाद्यतैल (सं० स्त्री०) १ योनिव्यापत्के अधि-

कारका तैल। चार शरावक सर्पय तैल, ४ शरावक

गर्दभमूत्र, ४ शरावक आरग्वध-मूल-त्वक्, १ पल

शङ्खचूर्ण और २ पल हरिताल एकत्र पकानेमें यह

बनता है। (अत्रिर्विज्ञा-दण्डकतम ५५) २ कुष्ठरोगका तैल।

आरग्वधत्वक्, घटत्वक्, कुष्ठ, हरिताल, मनःशिला,

हरिद्रा और दाहहरिद्राके मिलित पादिक-कल्कसे

४ सेर तैलकी पकानेपर यह तैयार होता है।

(भेषजकारको)

आरङ्ग (अरङ्ग)—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलेका एक

नगर। यह महानदीके तीरे अवस्थित है। अतनामी,

कबीरपत्नी, हिन्दू, मुसलमान और असभ्य जातिके

लोग रहते हैं। पूर्वकाल इस नगरमें देहयश्री

राजपूतोंका राजत्व था। आजकल उनके बनावये

आम्बहृच-वेष्टित वड़े वड़े भवन, मन्दिर और तड़ाग

भग्नावस्थामें पड़े हैं। धातु-निर्मित पावादिका व्यव-

साय चलता है।

आरङ्गर (वै० पु०) मधुकर, नहल।

आरचित (सं० त्रि०) विन्यचित, मुरसाव, मजा या

अंधारा हुआ।

आरज (हिं०) आरं देखो।

धारजा, शक्ति विधि।
 धारजू (फा० स्त्री०) १ धाकाहा, चाट। २ पूजा, परदास। ३ प्रत्यागा, उभोद। ४ धनुराग, धार।
 धारजू करना (हिं० क्रि०) १ धाकाहा लगाना, चाटना। २ अधिक अभिलाष रखना, मनवाना।
 ३ प्रयोजन देखाना, मांगना। ४ प्रार्थना सुनाना, दरमास्त देना।

धारजू कराना (हिं० क्रि०) अधिक अभ्यर्थना चाटना, ज्यादा मियतका खादिसमय होना।
 "दीया देना, बहन धारजू कराना।" (श्रीकोश)

धारजू मन्द (फा० वि०) १ निर्बन्धशील, सुतकाजी, लागू। २ बान्धी, सुगताक, चाट।

धारट (सं० वि०) धा सम्यक् रटति शब्दायते, धा-रट-घच्। १ सम्यक् शब्दकर्ता, अच्छीतरह धावाज लगानेवाला। (पु०) २ नट, धाजीगर। ३ मांस, गोष्ठ।

धारटी (सं० स्त्री०) गौरादित्वात् ङीप्। १ नटी, धाजीगरनी। २ शब्दकर्त्री, धावाज लगानेवाली।

धारट्ट (सं० पु०) धा-रट्ट-टच्। १ ययाति-वंशीय सेतुपुत्र।
 इगके लड़केका नाम गान्धार था। (सप्तपुराण) २ जनपद-विशेष, पञ्जाबसे धारिका देश। महाभारतमें लिखा है,—

"यवनयो बहन्नासा धत धोपुवनपुत्र।
 शतदुष विनासा च हतीशेरावकी तथा।
 चन्द्रभासा विगस्ता च विशुः पञ्च बहिर्मिते।
 धारटी नाम ते देसा मट्टवर्मा न तान् प्रजेत् ॥" (बर्हस्पति ३५, ४०)

धर्यात्—हिमालयसे बाहर जिध स्थानमें पौलुवम देखायी देता और शतदृष्ट, विपागा, दरायती, चन्द्रभागा एवं वितस्ता नदीका प्रयाण पड़ता, यह धारट्ट देश बहुत धर्महीन उदरता है। यहाँ जाना उचित नहीं। धारट्ट देशका आचार-व्यवहार बहुत लज्जमय है। लोग नृण्यय पात्रमें उद्व, गर्दभ एवं भेयका दुग्ध पीर तन्नात दधि प्रश्रुति खाते हैं। अथवाइसमें किसी प्रकारका विचार नहीं रखते। पहली धारट्टदेशीय द्रव्युगधने चोरिसे किसी पतिव्रता रमणिका मत्तौल बिगाड़ डाला था। इसपर उसने अभिग्राप दिया,— 'तुमने पधर्माचरणपूर्वक भेग सत्तौल बिगाड़ा है। अच्छा! तुम्हारी कुलकामिनी भी अविचारिणी बन

जायेगी। फिर तुम कभी इस घोरतर पापसे न छुटोगे। इसीसे पुत्रके वदले भागिनेय धनाधिकारी होता है। इस देशके लोगोंको बाहीक कहते हैं। यह प्रायः सकल ही तस्कर, कामुक एवं मद्यपायी होते, पर-वसुके उपभोगको अपना धर्म समझते और संस्कार-हीन रहते हैं। स्त्रियाँ मनःशिला-जेसा उच्चैन भपाइ देग रखती, सलाट, कपोल एवं चिकुरमें अचैन लगाती और गर्दभ, उद्व तथा अग्गके शब्दतुल्य मूदहादि छटा केलि-प्रसङ्ग करती हैं। सभी गुड़की सुरा पीती और कल्पनाजिन पहनती हैं। वह मद्य-पानसे निर्लेज बन और नग्न ही नगरके बाहर जा अपर पुरुषकी कामना करती हैं। (बर्हस्पति ३५—३६, ४०)

यनान यीसके प्राचीन भूगोलवेत्ताओंने इस देशका नाम धारट्टेष्टि (Adraistae), सुद्रक्ति (Sudraete) और धारिटी (Arestae) लिखा है। बाहीकोंके समय तक्षशिला नगरमें राजधानी प्रतिष्ठित थी। शब्द देखो। धारट्टज (सं० वि०) धारट्टदेशी जायते, धारट्ट-जन-ड। १ धारट्ट देशी, धारट्ट मुल्कमें पैदा होनेवाला। (पु०) २ धारट्टदेशवासी, धारट्टका वासिन्दा। ३ धारट्ट देशीय घोटक, टट।

धारड्डा—बङ्गालदेशान्तर्गत मेदिनीपुर जिल्लाका एक ब्राह्मणप्रधान स्थान। यहाँ बाङ्गुडारायके समय कविकङ्कणने अपना चरटी बनायी थी।

धारण (सं० स्त्री०) धाङ् पूर्वार्द्धेत् ङीट्। १ गाभीर्य, उमक, गहरायी। २ अन्व्यूपादि, अन्वा कृषां वर्ग रह।
 "धलकं लज्जामावये।" अर् ११११।
 'धारणमश्रुनादि तथायुः।' (भाष्य)

धारणज (सं० पु०) देवविशेष, एक देवता। यह कल्पभवका भाग पूरा करते हैं।

धारपाल (सं० स्त्री०) काञ्चिक, कांशी। तिसुपी-कृत आम गोधूमसे बननेवाला काञ्चिक धारपाल कहता है। (परिभाषादीप ३६ मन्त्र)

धारपालक, धारपाल देखो।

धारणि (सं० पु०) धा-नट-घनि। चरित्यवकाप्रतिभा-
 णिः। ९९, १०१। धायते, जसका घूर्णन, गिर्दई, भंवर, पानीका चकर।

आरण्य (सं० पु०) अरण्यं भवः, अरण्य-टक् ।
१ शुकदेव । अरण्यदेवो । (स्त्री०) अरण्यमरु-
हरणमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः । २ महाभारतके वन-
पर्वमें अरण्यहरण-अधिकारपर व्यासकृत अग्रन्तर
पर्व विशेष । वनपर्वमें ३११से ३१४ अध्याय पर्यन्त
आरण्यपर्व वर्णित है । (त्रि०) ३ अरण्य-सम्बन्धीय ।
अरण्य देखो ।

आरण्यपर्व (सं० स्त्री०) आरण्य देखो ।

आरण्यपर्वन् (सं० स्त्री०) आरण्य देखो ।

आरण्य (सं० त्रि०) अरण्ये भवः, ण । १ वनजात,
सहरायी, जङ्गली । (पु०) २ वनजात पशु प्रभृति,
जङ्गली जानवर । पैठीनसिने वनज पशु सात प्रकारके
कहे हैं,—महिष, वानर, भालूक, सर्प, हनु, घृपत
और ऋग । ३ अकटपत्र धान्यविशेष, जङ्गली धान ।
इसका पर्याय लण-धान्य वा नीवार है । ४ ज्योतिषोक्त
मकर राशिसे प्रथम अर्ध-दिवसीय सिंहराशि । ५ नैप-
राशि । ६ वृषराशि । ७ अरण्यजात गोमय । अरण्यं
अरण्यवासमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः । ८ युधिष्ठिरादिके
वनवास अधिकारपर व्यासकृत भारतान्तर्गत पर्व-
विशेष । प्रायः इसे वनपर्व कहते हैं । ९ रामके
वनवास अधिकारपर वाल्मीकि-कृत आरण्यकाण्ड ।

आरण्यक (सं० त्रि०) अरण्ये भवः, वुञ् । अरण्यग्रन्थे ।
पा ४।१।२८ । १ वनजात, सहरायी, जङ्गली । २ अरण्य
गैय, जङ्गलमें गाने लायक । (स्त्री०) ३ वेदका
अंग विशेष । संसार छोड़ अरण्यमें जा अभ्यास
करनेसे वेदके इस अंगको आरण्यक कहते हैं । वेदके
प्रत्येक ब्राह्मणका स्वतन्त्र आरण्यक रहता है । ऐत-
रेयका ऐतरेय, तैत्तिरीयका तैत्तिरीय, गतपथका हृहद
और कौपीतकी-ब्राह्मणका कौपीतकी आरण्यक है ।
यह उपनिषत्का मूल होता है । उपनिषत्में जो
ब्रह्मतत्त्व विशेष रूपसे कहते, आरण्यकमें उसका मूल-
सूत्र देखते हैं । समस्त विषय खोलकर लिखते—
वानप्रस्थ स्त्रिंसे मानव किस प्रकार आचार-सम्पन्न
होते, कौन पथ पकड़नेसे ब्रह्मज्ञान लाभ करते और
कैसे ब्रह्मको पहचानते हैं । वेदकी संहिता शेष
करने पर आरण्यक पढ़ना पड़ता है ।

“वेदमाधीन्य वाच्यनतारण्यकमधीन्य च ।” (मनु ४।१२४)
योगामिलापी पुरुषको योगशास्त्र और आरण्यक
अध्ययन करना चाहिये,—

“अथ आरण्यकमहं यदादिष्टादावात्तवात् ।
योगशास्त्रं च संपूजितं अथ योगमभीष्टता ।” (याज्ञवल्क्य)
४ भारतान्तर्गत वनपर्व । ५ रामायणके अन्तर्गत
आरण्यकाण्ड ।

आरण्यकाण्ड (सं० स्त्री०) १ रामायणका ३५ काण्ड ।
२ गतपथब्राह्मणका १४थ भाग ।

आरण्यकुण्ड (सं० पु०) अरण्ये भवः आरण्ययासी
कुण्डचेति, कर्मषो० । वनकुण्ड, जङ्गली सुर्गा ।
मांस स्निग्ध, पुष्टिकर, श्लेष्मघ्नक, शुक्र और वात, पित्त,
चय, वमि एवं विषम च्वरको मिटानेवाला है ।
(स्त्री०) जातित्वात् स्त्रीप् । आरण्यकुण्डटी ।

आरण्यगान (सं० स्त्री०) आरण्यं वनगीयं गानम्, शाक०
तत् । सामवेदात्मक गानप्रत्य विशेष । सामगान
चार प्रकारका होता है,—गीय, आरण्य, ऊह और
उद्ध । हृन्दोगत्रयचारियोंको कयी वत्सर यह गान
सोखना और भिन्न भिन्न भवस्थानमें रहना पड़ता था ।
अरण्यमें ठहर एक वत्सरके मध्य वह आरण्यगान
अभ्यास करते रहे । इसीसे आरण्यगान नाम हुआ है ।

यह प्रथम तीन पर्वमें विभक्त है,—सर्क, हन्य और
व्रतपर्व । अर्कमें दो, हन्यमें एक और व्रतपर्वमें तीन
प्रपाठक पड़ता है । सब मिलाकर आरण्य-गानमें
छः प्रपाठक हैं । प्रत्येक प्रपाठक दो भागमें विभक्त
है । एक-एक भागमें १०से १४ पर्यन्त गान होते हैं ।
अन्यान्य गानकी तरह आरण्यगान भी ऋद्ध मक है ।
किन्तु कयी गानका न तो ऋद्धन्व मिलाता और न
सायणाचार्यकी व्याख्याका ही ठिकाना लगता है ।
कोई-कोई आरण्यगानको गैयगानका अन्वभाग सम-
भता, किन्तु यह विषय सम्प्रदायसिद्ध नहीं है ।

आरण्यकसंहिता (सं० स्त्री०) हृन्द आर्चिकका षट्-
प्रपाठक । इसे अरण्यमें पढ़ना पड़ता है ।

आरण्यकार्चिक (सं० स्त्री०) आरण्यकसंहिता देखो ।
आरण्यगोमय (सं० पु०) वन्य गोमय, जङ्गली गोबर,
मिनवां कण्डा ।

भारतपर्यटन, भारत देशी।

भारतपर्यटन, भारत देशी।

भारतपर्यटन (सं० पु०) कर्मधा०। अत्युत्कृष्ट महिषादि सप्तप्रकार पर्यटन। भारतपर्यटन विधि देशी।

भारतपर्यटनिका (सं० स्त्री०) टंगक, मच्छर, डाँस।

भारतपर्यटन (सं० पु०) वनसुप्त, जङ्गली सुग।

भारतपर्यटनिका (सं० स्त्री०) भारतपर्यटनस्येवाकारे पर्वोत्सवस्थाः, धर्मशास्त्रात् पञ्च-टाप्। सुप्तपर्वी, सुगानी।

भारतपर्यटनिका (सं० पु०) निपातनात् कर्मधा०।

१ प्रथमार्ध दिवसीय सिंघ लम्न। २ प्रथमार्ध दिवसीय मकर लम्न। ३ मेषराशि। ४ वृषराशि।

भारतपर्यटनिका (सं० स्त्री०) तुण्डिका, तरोयी।

भारतपर्यटनिका (सं० स्त्री०) वनकरीयभक्ष, जङ्गली गोबरकी खाक।

भारत (सं० त्रि०) ग्राम, वेहरकत, सीधा। (हिं०) भारत देशी।

भारत (सं० स्त्री०) भारत-मन्त्रिन्। १ उपराम, निवृत्ति, स्वच्छन्द, ठहराव। २ नीराजन, भारत-विक, भारत।

द्वेषताकी प्रतिभाके समीप ब्राह्मण पूजान्तमें यह प्रकार भारत उतारते हैं। पञ्चाङ्ग भारत ही अधिक रहती, जा पहले दीपमाला, दूसरे वारिपूर्ण गृह, तीसरे धौतवस्त्र, चौथे आन्ध्र अथवा विस्वादि पत्र और पाँचवें प्रणिपातमें होती है।

किष्की-किष्की स्थलमें दीपमालाके बाद प्रवृत्त कर्पूर द्वारा भी भारत करते हैं। साधारणतः पञ्च वृत्तिकाविशिष्ट रहनेमें भारत उतारनेकी दीपमालाको पञ्चपदीय कहते हैं। कभी-कभी एक, सात या उससे भी अधिक शिखाविशिष्ट प्रदीपमें भारत होती है। घृत, कर्पूर, अशुक्-चन्दन प्रभृति उत्तम उत्तम द्रव्य द्वारा ही दीपकी वृत्तिका बनाना प्रशस्त है। तैलमें भारत करना निरुद्ध समझा जाता है। भारत उतारते समय प्रतिभाके पदतलपर चार, आग्निदेवपर दो, सुश्रमण्डलपर एक और अन्नदाता पर सात बार दीपमाला घुमाना पड़ती है।

घण्टा, गृह और बाधादि बजाते रहते हैं। इसमें

साधारणके मनमें अभिनव उत्साह और भक्तिभावका आविर्भाव होनेपर अनिर्वचनीय आनन्द आता है।

पहले हिन्दुस्थानमें पत्नी प्रतिदिन पतिकी भारत करती थी। आजकल केवल विवाहमें वरकी भारत उतारते हैं। कहीं-कहीं घुमादिमें आचार्यकी भी भारत होती है। ३ भारत उतारनेका पात्र। ४ भारतिका स्तोत्र।

भारत (हिं०) भारत देशी।

भारत (सं० पु०) ईषद्रव्य, प्रादि समा०। एक अश्वद्वारा गमन-साधन रथ, एका।

भारत (सं० त्रि०) भारत-भक्त। १ संसिद्ध, दुष्टस्त। (पु०) तिकादित्वात् क्तिञ्। २ सेतुपुत्र। (भद्राचरु०) मत्स्यपुराणमें भारत और विष्णुपुराणमें इनका नाम भारतत् लिखा है। भारत देशी।

भारतवायनि (सं० पु०-स्त्री०) भारतका पुत्र वा कन्या-रूप अपत्य।

भारत (हिं०) भारत देशी।

भारतनाल (सं० स्त्री०) भारतति आ-भृ-भृत् भारतः, नल गन्धे घञ् नालः; आरा दूरगामी मालो गन्धा यस्य, बहुव्री०। काञ्चिक, कांजी। कांजी देशी।

भारतनालक (सं० स्त्री०) भारतनाल स्वार्थे कन्। काञ्चिक, कांजी। 'भारतनालकसीरोरुद्राभिमदुक्तानि च।

भारतनालकसीरोरुद्राभिमदुक्तानि च। (भरत)

भारतपर (हिं०-स्त्री०-वि०) तीरान्तर, पार, वारपर, इस किनारेसे उभ किनारे तक। यह शब्द संस्कृतके 'पार'में तदनुयायो 'भार' मिलानेसे बना है।

भारतपर करना (हिं० स्त्री०) विधना, सालना।

भारतल (हिं०) आगुप्त देशी।

भारत्य (सं० त्रि०) भारत-भक्त। १ छतारभक्ष, प्रस्तापित, शुरु किया हुआ। (स्त्री०) भाषे त्त। २ भारतभ, इतिहा, छटान।

भारतपर्यटन (सं० पु०) भारतपर्यटन।

भारतपर्यटन (हिं० स्त्री०) विधना, सालना।

भारतल (हिं०) आगुप्त देशी।

भारत्य (सं० त्रि०) भारत-भक्त। १ छतारभक्ष, प्रस्तापित, शुरु किया हुआ। (स्त्री०) भाषे त्त। २ भारतभ, इतिहा, छटान।

भारतपर्यटन (सं० पु०) भारतपर्यटन।

भारतपर्यटन (हिं० स्त्री०) विधना, सालना।

भारतपर्यटन (सं० पु०) भारतपर्यटन।

भारतपर्यटन (हिं० स्त्री०) विधना, सालना।

उनका संयोज करना आरखिकर्म कडाता है। जैसे घटादि प्रस्तुत करनेको दण्ड, चक्र (चाक) प्रभृति सामग्रीका एकत्र किया जाना और ग्रन्थसूत्रमें मङ्गलाचरण लगाना। वेदान्ती, फल देनेके लिये सम्भु खीन पुष्पपापान्यतरात्मक श्रेष्ठ विशेष समझते हैं।

आरखि (सं० स्त्री०) आरख, इत्तिदा, शुरु।

आरभट (सं० पुं०) शूर, वीर, दिलावर शरूस, बहादुर आदमी। २ जीर्ण, बहादुरी।

आरभटी (सं० स्त्री०) आरभ्यते ऽनया, आ-रभ-अटि-टीप्। १ अर्थविशेषयुक्त नाट्यरचना, अखाड़ेमें अजीव और मूढीव कैफियतका इजहार। माया, इन्द्रजाल, युद्ध, स्त्रीष, उद्भवान्ति, वध, वधन, नानाप्रकार छलना, प्रवचन, दम्भ, मिथ्यावाक्य आदिस युक्त हृत्तिको आरभटी कहते हैं। परित्याग, अधःपतन, वस्तु उल्यापन और सम्फोट चार अङ्ग हैं। २ सरस्वतीऋष्याभरणोक्त शब्दालङ्काररूप हृत्तिविशेष। ३ छटता, दिलावरी।

आरभमाण (सं० त्रि०) आरभ करनेवाला, जो पूरे उत्तारनेके इरादेसे शुरु करता हो।

आरभ्य (सं० त्रि०) आरभ्यते, आ-रभ कर्मणि क्यप्। १ आरम्भपाह, शुरु होने काविस। (अभ्य०) स्वप्।

२ आरभ करके, उठाकर।

“आरभ्य कृत्ते आर्धं कथांशरीरिषं वृषः।” (अ० नि०)

बौद्ध इस शब्दका अर्थ ‘सम्बन्धीय’ लगाते हैं।

आरभ्यमाण (सं० त्रि०) आरभ्य होनेवाला, जो शुरु किया जाता हो।

आरमण (सं० स्त्री०) आ-रम भावे लुट्। १ आराम, विश्राम, अमन, इतमीनान्। आरभ्यतेऽनेन, करणे लुट्। २ आरति-साधन, आरामगाह। ३ आल्लाद-अपण, अखुज्-खुरमी।

आरमेनिया—फाकेगस पर्वत और क्यूसगरका उत्तर-वर्ती एक देश। यह अक्षां ३०° ३०' से ४१° ३०' उ० और द्राधि० ३०° से ४६° पूर्व तक विस्तृत है। आरमेनियामें ईरान्, रूस और तुर्कस्थानका अधिकार है।

भूगोलकी देखते आरमेनिया ईरान्की बड़ी अधित्यकासे पश्चिम एकखण्ड है। अनाहत पर्वत-

येषी उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमको दीर्घी और आरा-रातमें धरातलसे १७००० फीट ऊपर बढ़ी है। शैलमालाके बीच दीर्घ एवं उबल दरी पडती, जिसमें निम्न भूमिकी जल ले जानेवाले विषम गिरिकन्दर मिलनेसे पहले नदी बहती है। आरमेनिया कहीं आर्कैयिक और कहीं पालेओजोयिक शिनात्मक है। दक्षिणकी ओर वान-ऊदको बढनेवाले आग्नेय-गिरिके बहुकनेसे शिना विच्छिन्न हो गयी है। आरासे उत्तर अलगोउज-दाघ और अरजुरुमसे दक्षिण विङ्गूल-दाघ बहुत उच्च पर्वत है। यूफुतिस, तिग्रिस, आरास, सुकसू और केलकिट-इर्माक नदी प्रधान है। वान ५१०० और उरमिया ४००० फीट दीर्घ चार ऊद है। सेवान (५८०० फीट) तथा चनदौर ऊद क्रमग; आरास एवं कासंचाई नदीमें गिरता है। अधित्यकाका आकार निर्जन और एकरूप देख पड़ता है। दरीमें प्रयत्न छपियोय्य भूमि विद्यमान है। पर्वतपर लण तो बहुत है, किन्तु हचका नाम नहीं। यफ्रेतिस और तिग्रिसका गिरिकन्दर वन्यता तथा श्रेष्ठतामें अद्वितीय है। जलवायुमें भेद रहता है। उच्च स्थानमें हिमस्त-काल दीर्घ लगता, अधिक शीत पड़ता और शीघ्र अल्प, शुष्क एवं उष्ण ठहरता है। अरजुरुममें कभी-कभी जून मास बर्फ गिरता है। आरास दरी और पश्चिम तथा दक्षिण प्रान्तका जलवायु अधिक मंयत है। अधिकांश नगर ४०००से ६००० फीट ऊँचे बसा है। साधारणतः गिरिनितम्बपर ग्राम बसाते और शीतातपकी तीव्रतामें बचनेके लिये पर्वतगात्र कुछ कुछ खोदकर भवन बनाते हैं। अधिकांश प्राचीन नगर आरखेसके निकट प्रतिष्ठित थे। आरमेनिया खुनिज द्रव्यसे सम्पन्न है। अनेक उष्ण एवं शीतल निर्भर विद्यमान है। स्थानानुसार अहिदमें परिवर्तन पड़ता है। धान्य तथा कठिन फल उच्च भूमि-पर उपजता और आरखेसकी उष्ण एवं जलमिश्र उपत्यकामें घावल बोया जाता है। शीघ्रमें उष्णताका अधिक प्रावण्य रहनेसे अशूर बहुत उच्च पर्वतपर जगता और कार्पास तथा दक्षिणके अन्य फलका उच्च अधिक गभीर दरीमें लगता है। कुर्द-समुदायका

पामन करनेवासे गोपचरम प्राचीन सुप्रसिद्ध घोटक और अज्ञात चराया जाता था। अर्द्धों घोटों और वान रुद्धमें एक किष्पकी छोटी मछली मिनती है। इस देगमें पायर्भूत कृत्रिमरचनाका आधिक्य है। पारागतके दृश्यकी प्रगंशा कोरेनके मूसा और फार्बके लाजेरम-जेमे स्वदेगानुरागी ऐतिहासिकने बहुत लिखी है।

भारमैनियामें पिगोरीय, रोमनकायोलिक, प्रोटो-टाण्ट परमनी, पन्थ ईसायी, यद्दी, जिष्पी और सुमनमान लोग रहते हैं। परजुद्धम, वान, विटलिष्ठ, प्ररपुट, दयारवकर, सिवास, असेपो, पदान और द्रुविजाण्ट नामक सात तुर्की विलायतमें प्रायः ६००००० मनुष्योंका नियाम है। द्रुविपीपर कुल २८००००० परमनियोंका प्रोना अनुमान किया जाता है। किन्तु वर्तमान युरोपीय युद्ध बढ़नेपर तुर्कोंने अपने विलायतके कितने ही परमनी मार डाले हैं।

इतिहास—विषम पर्वतमें कठोर पार्यत्यजाति रहती है, जो किष्पीकी अधोमत्ता स्वीकार नहीं करती। आक्रमण होते समय निम्नभूमिके रहनेवाले पर्वतोंपर भाग जाते थे। यह देग पश्चिम और पूर्वके बीच उदाटित द्वारमार्ग मद्ग वियमान है। बहुत प्राचीन समयमें ईरानी अधित्यकाको एगिया-मायिनरके उर्पर स्थान तथा रचित पोताश्रयमें मिलानेवाला मार्ग अधिकार करनेके लिये लोग लड़ते-भगड़ते आये हैं।

भारमैनियाके आदिम अधिवासी अज्ञात हैं। किन्तु ई०के ८वें शताब्द मध्य यहाँ वह लोग बसते, जो सामान्य रूपसे अनार्य भाषा बोलते थे। इन पूर्व परमनियोंमें पसीरीय और यद्दी जातिके कुछ मिमेटिक भा मिले। ६४० और ६०० ई०के पक्षे पायर्भूतने भारमैनियाकी अधिकार किया था। उन्होंने अपनी भाषाका प्रचार बढ़ाया। ईरान और पारथियाके लोग फौजमें भरती किये जाते थे। राजनैतिक दृष्टिमें जेता और विजेता मिलकर एक ही गये। किन्तु नगरके अतिरिक्त पन्थ स्थानमें विवाहादि सम्पन्ध चला न था। अरबों और सेलजुकोंके आक्रमण

करने बाद कुचुनतुनिये तथा मिनसियेमें अनेक कार्य एवं मिमेटिक परमनी जा बसे। मुगलों और तातारियोंने अभिजात राज्य विगाड़ डाला था। इसीमें समझा जा सकता, वर्तमान परमनियोंके आकार प्रकार और आचार-व्यवहारमें कौं विभिन्न पड़ता है। टारस पर्वतके निम्नस्थानवासी रूपक दीर्घकार्य एवं सुन्दर निकलते, यद्यपि किष्पत् सीस्य बदनाकृति-युक्त, चपल और बलिष्ठ लगते हैं। भारमैनिया और एगिया-मायिनरके लोग मांसन, संहत एवं स्तन आकृतिविभिन्न हैं। केग मरल एवं कृणायर्ष और प्राण विशाल तथा बल रहता है। वह भूमि-अर्थण भली भांति करते, किन्तु निर्धन, मूढ़, अनभिन्न एवं निरुत्साह होते और ई०से ८०० वर्ष पहलेके अपने पूर्व पुरुषोंकी तरह आधी-सुरङ्गके घरमें बसते हैं। नगरवासियोंकी आकृति ईरानी आदर्श-जेसी देख पड़ती है। वह गिल्स, धनागारपतित्व तथा व्यसय करते और अपने श्रम, सूक्ष्मज्ञान, कार्य एवं और वित्तके लिये बड़ी योग्यता रखते हैं। रोमक समयमें स्वीदिया, चीन और भारतके साथ उनके पूर्व पुरुष भली भांति व्यापार चलाते थे। उत्तम श्रेणीके पुरुष सम्पत् परिष्कृत, शिक्षित तथा तुर्कस्थान, रूस, ईरान और मिश्रमें उच्च पदपर प्रतिष्ठित हैं। मूलतः परमनी पूर्वके लोग होते और यद्दियोंकी तरह जिस दगामें पड़ जाते, उसीके अनुसार अपना कार्य चला लेते हैं। वह मितव्ययी, गभीर, उद्यमशील और मिधात्री हैं। आचरणकी दृष्टतासे उन्हें नि कठिनमें कठिन परीषामें अपने धर्म और स्वदेगाभिमानकी वधाया है। प्राचीन रीति-नीतिके पूरे पक्षपाती होते भी उत्पत्ति करनेका अभिलाषा रखते हैं। किन्तु उन्हें लाभके लिये बड़ी निष्ठा रहती है। तुच्छ विषयपर विवाद बढ़ाने, स्वार्थपर और अस्वस्थचित्त होते हैं। अति-अशौच और कृतप्रबन्धकी प्रवृत्तिमें परमनियोंके ऐतिहासपर अभद्र प्रभाव पड़ा है। धार्मिक अंधांधे उनमें गभीर पार्यक्य था गया है। अनियत दम्भ, और बुद्धिचापस्य जातीय उत्पत्तिमें बाधा डाल रहा है। निर्दय शासनके अधीन बहुत दिन रहनेसे लोगोंमें

निःसन्देह साहस, स्वावलम्बन, सत्य और आर्जवका प्रभाव बढ़ा है।

भारमेनियाका आदि इतिहास काल्पनिक और विद्यायिनौय नृपतियोंके पारम्पर्यपर आधारित है। असीरीय और बाबिलोनौय सम्राटोंने जिन यहूदियोंको कैद कर यहाँ बसाया था, उन्होंने ही अनेक वृत्तान्त बताया। सेमिरामिस और आरा नरेशकी कथा वेनस (Venus) तथा आदोनिस्की कल्पनासे मिलती है। टिप्रेनेसका गुण बहुत गाया और उनके भ्रातृ लुकुल्लुस्का भी वैभव देखाया गया है। सम्भवतः विद्यायिनौय राज्यको कायघरेसने उखाड़ा था। उसके बाद ही आर्य और अरमनियोंके पूर्वपुरुष इस देशमें आबसे। किन्तु उनके फ़ैलनेमें बिलम्ब हुआ था। ई०से ४०१ वत्सर पूर्व जब दश हजार आर्य अधिव्यका पार कर ट्रेबिजाण्ड गये, तब उन्हें कहीं अरमनी न मिले। मेद और ईरानियोंने भारतमेनियाको मण्डल-राज्य बनाया था। ई०से ३३१ वर्ष पहले अरबेलाका युद्ध समाप्त होनेपर अलेक्सण्डर और उनके उत्तराधिकारी, शासक नियुक्त कर इस देशका राज्य चलाते रहे। ई०से ३१०-२८४ वर्ष पहले अर्धवत्सने सेलौकीवर्गकी अधीनतासे अपनेको छोड़ाया और ई०से १८० वत्सर पूर्व जब रोमकोंने अन्तिओकस्को हराया, तब बड़ी भारतमेनिया तथा छोटी भारतमेनियाके शासक अर्तक्सियास् एवं जदुरिया-देस्ने रोमकी अनुसन्धिसे अपनेको स्वतन्त्र नृपति बनाया। ई०से ८४-५६ वर्ष पहले अर्तक्सियास्ने अरबोंपर अर्तक्सता नगरको राजधानी किया और उनका सुप्रसिद्ध उत्तराधिकारी पञ्चम मिथ्रदातेसका जामाता तिग्रनेस हुआ। तिग्रनेसने उत्तर मेसोपोटेमियामें तिग्रनोसर्ता नामक नवीन राजधानी निर्विघ्न तथा बाबिलनके आदर्शपर प्रतिष्ठित कर यूनानी और दूसरे कैदी बसाये थे। अपने शसुरकी राज्य न सौंपनेसे तिग्रनेसको रोमके साथ लड़ना पड़ा। ई०से ६८ वर्ष पहले लुकुल्लुस्ने तिग्रनेसकी तिग्रनोसर्ताके द्वारपर ही जीत लिया था। ई०से ६६ वर्ष पहले तिग्रनेसने अपना राज्य पोम्पेको

सौंप दिया। पोम्पेने मिथ्रदातेसको फ़ोसिसके पार खदेर भगाया था। उन्हें रोमके करद राज्यको भाँति भारतमेनियापर शासन करनेकी आज्ञा मिली।

लुकुल्लुस् और पोम्पेने युद्ध होनेसे पार्थियाके साथ रोमका सम्बन्ध विरल पड़ गया था। रोमके पक्षीन रहते भी भारतमेनिया भौगोलिक स्थिति, सामान्य भाषा, धर्म, विवाहव्यवहार और पक्षयधर एवं परिच्छदादिकी समतामें पार्थियासे प्रथक् न रहा। फिर एगिया-भायिनरकी तरह रोमका प्रभाव भी इन देश-पर अधिक बढ़ा न था। बहुत दिनतक पूर्व और पश्चिमके नृपति अपना अधिकार जमानेको लड़-भगड़े। ३८० ई०को रोम और ईरानने भारतमे-निया आपसमें बाँट लिया था। रोमका विभाग गोष्ट ही दिवोसेसिस-पोण्टिकामें मिलाया गया। ईरानी हिस्से पर ४२८ ई०तक एक अर्धकिर्वासीय नृपति करद राज्यकी तरह शासन चलाते रहे। पीछे मन्नाट्के निर्वाचनासुसार ईरानो और अरमनो गिष्टजनोंको इस प्रान्तका अधिकार सौंपा गया। विभाग होनेसे पहले सेण्ट-प्रिगोरोने तिरिदातेसको ईसायो धर्मकी दीक्षा दी थी। उन्होंने ईसायो धर्मको राज्यका धर्म बनाया, जिसे कनस्तान्तादनने आदर्शकी भाँति व्यवहार किया। घंटवारेके बाद अरमनी वर्षमानाका आविष्कार हुआ था। ४१० ई०को बायबिलका अनुनाद देशभाषामें बना। इससे अरमनो परस्पर मिल गये और यूनानियोंका धर्माधिकार रकनेपर कुस्तु-नियाका पौरोहित्य-सम्बन्धी आश्रय छोड़ बैठे। ४८१ ई०की पाट्रियार्कने चालसेदोनकी मन्वयासभाका आदेश बिलकुल सुना न था। निर्वाचित शासकोंके समय ईसायियोंपर अनेक अभिशोग पाया। वह बलपूर्वक मगो धर्म ग्रहण करनेपर बाध्य हुये थे। आराजकताका प्रभाव भी बहुत बढ़ा। असीरीयों पार्थियों, ईरानियों, सीरीयों एवं यहूदियों और कहीं कहीं अर्धकीर्वासीयके पक्षीनस्य शासकोंके वंशका अभ्युदय हुआ था। निर्वाचित शासकोंमें यहूदी वपतिद और ईरानी ममेगोनीय रहे। ५०१-५०८ ई०को ईरानी ममेगोनीयोंके प्रधान

वर्तमान बैजन्तायिन्की महायत्नसि स्वतन्त्र बन बैठे। ६१२ ई०की हेराक्लियमके विजयसि भारमिनिया फिर बैजन्तायिन्की छाय पड़ गया था। किन्तु ६१६ ई०की परबी आक्रमणके बाद जो युद्ध हुआ, उसमें पर्सीफार्सकी ६४ देगका अधिकार मिला। उन्होंने परबी और परमनी शासक नियुक्त किये थे। ६१८ वर्षतिद-प्रगोद नामक शासकको ८८५ ई० समय खलीफा मोतमिदने भारमिनियाके सिंहासनपर बैठाया। उन्होंने जो यंग प्रतिष्ठित किया, वह १००८ ई०की २५ कगोगके साथ समाप्त हो गया था। ८०८ ई०की खलीफा मोकतदिरने वानके शासक पर्लिनियन-कगोगको उसी प्रान्तका राजा बना दिया। वान और गियास प्रान्तमें १०८० ई०तक उनके यंगजानि राजत्व चलाया था। ८६२से १०८० ई०तक कार्य और जार्जियामें वर्षतिदने अपना धंग बढ़ाया। उपरोक्त प्रान्तमें इस यंगके लोग १८०१ ई०तक राज्य करते रहे, पीछे रुसके पैर लमे। ८८४ में १०८५ ई०तक दियारबक्र एष' मिलासमरीके बीचका देग परबी, बैजन्तायिनों तथा सेलजुकों और मिरवानीयंगके अधीन रहा। परबीका आक्रमण होनेसे कितने ही सभ्य परमनी कुस्तुनियान भाग गये थे। वहाँ उन्होंने प्राचीन रोमकीके साथ विवाह-व्यवहार बढ़ाया और सिपाही बन बहुतसा धन कमाया। परस'कि यंगज वर्त-वासदेसने यत्नपूर्वक दो वर्षतक बैजन्तायिन सिंहासनको अपने अधिकारमें रखा था। आर्दख्भूरीय धूम सिवो और खोदग जिमीसेधु सन्नाट बने। मेमे-गोनीय मानुयेल और दूसरे लोग साम्राज्यके सर्वोत्तम सेनापति रहे। ८८१ और १०२१ ई०की २५ बसिसने भारमिनियापर आक्रमण किया था। अन्तको वासपुरागान नृपति घेनेकहिरिमने अपना राज्य गियास और उसकी सीमाके साथ उन्हें सौंप दिया। यह कितने ही भरमिनियोंके साथ फिर सिवास-में लौकर रहने लगे। बासिन भारमिनियामें बड़े बड़े दुर्ग बनाया और उनमें सेना रख पूर्व सीमाप्रदेशकी रक्षा करना चाहते थे। किन्तु उनके उत्तराधिकारियोंके

कारण यह बात हो न सकी। उन्होंने प्रान्त रक्षाकी न देख नास्तिक लोगोंकी धार्मिक बगानेपर ध्यान दिया था। अपनी-नृपति कगिग २५ कप्पादोकियाके बदले अपना राज्य छोड़नेपर बाध्य हुये। सेलजुकोंके आक्रमण और बैजन्तायिन सिपाहियोंके उपद्रवमें लोक ब्राह्मि ब्राह्मि पुकारने लगे थे। सन् १००१ ई०की आख-घर्षमान-द्वारा ४४ रोमनसके द्वारने और पकड़े जाने बाद भारमिनिया सेलजुक साम्राज्यका एक भंग हो गया। किन्तु सन् ११५० ई०की इस देगमें फिर परबी, कुर्दी और सेलजुकोंके छोटे-छोटे राज्य प्रतिष्ठित हुये। अन्तकी सन् १२१५ ई०के समय मुगलोंने आक्रमणकर सबको मार भगाया था।

सेलजुकोंके पानिसे तीन शताब्द बाद भारमिनियामें पशुवारणोपजीवी लोग घूमते रहे। उनका प्रधान उद्देश्य एशिया-मायिनरकी जाने समय राधमें पशुवोंके लिये गोचरभूमि ढूँढना था। किन्तु तेमूरने इस देगको बहुत नष्ट किया। क्षपक समभूमिसि भगाये और क्षेत्र महीमें मिलाये गये थे। अनेक परमनी पर्यतमें आ छिपे। उन्होंने सुसलमानो धर्म प्रथम और कुर्दीके साथ विवाह व्यवहार स्थापन किया था। कितनों हीने कुर्द सरदारोंकी सौघ दे अपना प्राण बचाया और कितनों हीने काप्पादोकिया या सिलि-गियामें आ घर बनाया। उस स्थानमें १०८० ई०की वर्षतिद रुकेगने एक राज्य जमाया, जो छोटी भारमिनियाकी राजधानी कहाया था। तीन शताब्दतक इस राज्यमें उपद्रव होते रहा। चारो और सुसलमान वसते और ईसाहियोंकी धूमधामसे दटाहीके माय व्यापार करते देख जमतते थे। १२०५ ई०की मिशने इसे अधिकार किया। क्योंकि गृहविवाद बढ़ा और सूफीग नरैगोंका प्रजामें रोमन-घर्षकी प्रतिष्ठा करनेकी दाँत लगा था। सिलिगियाकी प्रगंभा सायंजनिज गीतोंमें सुन पड़ती है। टारसपर्यंतके जीटन प्रान्तमें परमिनियोंकी एक छोटी गेची अपनी स्वतन्त्रता आजतक अक्षुण्ण रख सकी है। तेमूरके मरनेपर पाक तथा काराकुलन-कीका अधिकार्य मिला और कोमल शासनके कारण

कैथोलिकम्का अधिष्ठान १४४१ ई०की एचमियाड-जिनमें फिर प्रतिष्ठित हुआ। पहले वह सेलजुक शासनके समय सिवाश और वहाँसे छोटे भारत-नियामें उठ गया था।

१५१४ ई०की १म सलीमके ईरानी अभियानसे यह देश उसमानों तुर्कोंके हाथ लगा। इदरिस-नामक बिटलिसके कुदं ऐतिहासिकपर बन्दोबस्तका भार पड़ा। उन्होंने देखा, कि कृषियोग्य स्थान प्रायः शून्य पड़ा और पर्वतमें खाधीन कुदों, घरब, तथा अरमनी दुर्गाधिपोंका परस्पर विग्रह बढ़ा था। रिक्त स्थानमें कुछ बसाये और भारतनियामें छोटे-छोटे विभाग बनाये गये। संमतलभूमिमें तुर्कों अफसर और पर्वतपर स्थानीय नृपति शासन करते थे। इस नीतिसे देशकी अशान्ति मिटी, किन्तु कुदोंकी उन्नति अधिक हुई। १५३४ ई०के समय पश्चिमकी और अहोरातक कुदं फैल पड़े थे। १५०५ और १६०४ ई०की ईरानियोंने आक्रमण किया। शाह अब्बास कयी हजार अरमनी जुरफेसे अपनी नवोन राजधानी इस्फाहान ले गये थे। १६३८ ई०की सन्धिके अनुसार एरिवान प्रान्त ईरानको मिला। १८२८-२९ ई०की रूस और तुर्कस्थानमें युद्ध होने तथा आर्पा-चाथीतक रूसी सीमा बढ़ जानेपर अनेक अरमनी तुर्कों राज्य छोड़ रूसी प्रान्तमें जा बसे थे। १८००-०८ ई०के युद्धमें भी कुछ लोगोंने बँसा ही काम किया। १८३४ ई०की कुदोंका स्वातन्त्र्य शिथिल पड़ा और १८४३ की वेदरखानू वे तथा १८८० की प्रिब्र आविदुखका भड़काया बलवा अच्छी तरह दबाया गया था।

१४५३ ई०की २य मुहम्मदने कुस्तुनियामें अधि कार कर सुसलमान-भिन्न प्रजाको सुझा या प्रधान धर्मयाजकोंकी साधारण दीवानी, फौजदारी और धर्म-सम्बन्धीय यावतीय शासनकी पूर्ण समता दी। इस नियमानुसार बूसामे अरमनी सुझाको कुस्तुनियामें प्रधान आचार्यका और मन्त्रीका पद मिला। अरमनी अपना धर्म स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वाह और सन्तानकी धार्मिक-शिक्षा दे सकते थे। किन्तु पादरीका प्रभाव घट गया। १८६२ ई०की नवोन व्यवस्था

बननेसे प्रधान धर्माचार्य तो अपने पदपर प्रतिष्ठित रहे, किन्तु उनके प्रकृत अधिकार १४० संघोंकी समितिके हाथ जा पड़े। यह लोग प्रयोगीय अरमनी कहते थे।

१३३५ ई०की छोटे भारतनियामें पायात्थ शिल्पियोंके साथ सम्बन्ध बढ़नेपर एक अरमनी समाज बना, जिसने रोमक-चर्चका मत ग्रहण किया। १४३८ ई०की फोरैन्सकी मन्त्रि-सभामें इस समाजको 'संयुक्त अरमनी चर्च' उपाधि मिला था। किन्तु प्रधान धर्माचार्य प्रायः इस समाजके लोगोंपर अभियोग लगा बैठते थे। १८३० ई०का फ्रांसकें इस्तेवैप करनेपर अरमनियाने स्वतन्त्र समाज बनाया और अपना धर्माचार्य नियुक्त कर लिया। इन्होंने शिक्षा और साहित्यमें बड़ी उन्नति की थी। कुस्तुनियामें अहोरा और अिरनामें अनेक रोमन-कायलिक अरमनी विद्यामण हैं।

१८३१ ई०की कुस्तुनियामें अमेरिकाके धर्म-प्रचारक पादरियोंने प्रोटेस्टान्ट प्रयासोंकी नीव डाली थी। किन्तु प्रधान धर्माचार्य और रुसने बड़ा विरोध किया। १८४६ ई०की प्रधान धर्माचार्यने प्रोटेस्टान्ट धर्म माननेवाले अरमनियोंको जातिसे निकाल दिया था। इस कारणसे उन्होंने अपना चर्च फ्रांस और रूसके आपत्ति उठाते भी अलग बना लिया। धर्म-प्रचारक व्यक्तियोंने खरसुत, मार्शिवान और एण्डावने कालेज और स्कूल खोले थे। लोग सुन्दर साहित्य पढ़ने लगे। उन्नति और धार्मिक स्वतन्त्रता फूट पड़ी थी।

१८०६ ई०की अबदुल हमीदके तुर्की अधिमानपद छोड़नेपर अरमनियोंकी दगा पहलमें सुधार गयी। किन्तु १८००-०८ ई०की युद्ध बन्द होनेपर अरमनी प्रथम उठ खड़ा हुआ। सानटेफागोंकी सन्धिके अनुसार तुर्कस्थानने रूसको अरमनियोंका सुधार करने और कुदों तथा सरकेशीयोंका उपद्रव रोकनेका वचन दिया था। १८०८ ई०की १९वीं जुलाईको बरलिनके सन्धिपत्रानुसार भी रूस ही अरमनियोंका साथकर रहा। १८०८ ई०की ४वीं जनको सुधारके

पंगरीजोंका घोटके ईसायियों पोर दूसरे लोगोंकी रक्षा रखनेका वचन दिया था। पंगरीजोंने सुधार होनेसे अपने हमसे अधिकतम स्थान छोड़ देनेको कहा। १८८० ई०की यूरोपीय गतिविधि मिनजुलकर जो पापेटनपत्र घोटके भेजा, उसका कोई फल न हुआ। किन्तु पंगरीज सुलतानका ध्यान बरलिनके सन्धिपत्रकी पोर प्तिवते ही रहें।

१८०१ ई०में जर्जिया अधिकार करनेपर इसकी परमनियोंकी विन्ता लागी थी। १८२८-२९ ई०को पनेक परमनी रुमी राज्यकी प्रजा बने। उसने परमनियोंकी अपने नये देशका उपत्ति-साधन समस्त स्वाधीनता दी थी। बहुतसे लोग सरकारी नौकरों पाने पौर काम-काज बढ़ानेसे धनो वग षंठे। किन्तु १८८१ ई०की २य पलेक्सेन्द्रका वध होनेपर इस परमनियोंसे विगड़ पड़ा था। इस वन्द किये गये। परमनी भाषाका प्रभाव घटा। इसने अपने चर्चमें उन्हे मिलाता चाहा। किन्तु इसके पधीन सराज्य पानेकी प्राप्ति न रहनेसे परमनियोंका ध्यान तुर्की पारमेनियाकी पौर लुिवा था। १९०० ई०को इसने तुर्की पारमेनियामें रनये बनानेका अधिकार पाया।

बरलिनका सन्धिपत्र देख विगोरीय परमनी हताश हुए थे। उन्हे अभिलाष रहा, कि ईसायियोंके पधीन पारमेनिया पौर मिनिगिया मिलकर स्वाधीन प्राप्ति वग जाता। वध साम्राज्यमें दधर-उधर पैले थे। अधिक-संख्या कहीं नरही। दक्षिणके तुर्की कोसनेयासे उत्तरके परमनी भाषा बरतनेवालोंसे कटपूरक सम्भाषण कर सकते पौर पूर्वके पन्न पर्वत-वामी कुमुमुनिया तथा छिरनाके सुमिचित भागरिकोंसे धर्म भिन्न विषयमें मिलने-जुलने न थे। किन्तु सुधार होने न देश यूरोपमें मिचा-पाये लोग विद्रोह बढ़ा अपना अभिप्राय सिद्ध करनेको उद्यत हुए। टिफलिस पौर पनेक यूरोपीय नगरमें राजद्रोहके पुस्तक तथा पत्र फैलानेको गुप्त सभा (Hantchagists) बनी थी। तुर्की पारमेनियामें दूत पक्षगण्य पौर विदारणगोल पदायं पड़ुवारी रहे। पनेक सुबकीने पराजकता

सम्पादन करनेकी समिति बनयी थी। किन्तु पादरी पौर पमेरिकाके धर्मप्रचारक व्यक्ति उक्त कार्यको न तो उचित समझते पौर न उससे साफल्य होते देखते थे। अधिकतम लोग विद्रोहके विरोधी रहे। १८९१ ई०की पर्थी जनपरीको अपने वेकनारथ संसुच्य हो दूतोंने भयप्रद पत्र लिखे पौर युजगात तथा माभि-यानके पमेरिकन कालेजको भित्तिपर विद्रोहात्मक धापणापत्र लगाये। विद्रोही पमेरिकाके धर्म-प्रचारकोंको अपने दलमें मिलाता चाहते थे। पौर इस कार्यमें वध सफलमनोरथ भी हुए। पमेरिकनोंपर घोषणापत्र निकालनेका पभियोग उपस्थित हुआ था। दो परमनी मिश्रक बन्दी बने। यात्रिका-विद्यालय जन्मा उाला गया था। विद्रोह सरलतापूर्वक दबते भी कैसारिये पौर दूसरे स्थानमें भड़क उठा।

विद्रोही पुरातन उारोनको नयोन पारमेनियाका केन्द्र बनाना चाहते थे। किन्तु सुग पौर सासुनके धनी लोगोंने इस पान्दोलनको उत्साह न दिया। १८९१ ई०के शीषकाज सुगके समोप एक दूत पकड़ा गया था। गामकने कुद सवागोंकी पार्वत्य प्रान्तपर पारक्रमण करनेको प्राप्ति दी। किन्तु परमनियोंने कुर्दीको मार भगाया पौर १८९४ ई०की भी सुध होनेपर अपना स्थान न छोड़ा। इसके बाद ग्रासकने सुमिचित गेनाको बुलाया पौर सुलतानने विद्रोह दषानेके लिये राजभक्त प्रजा एकत्र होनेका पादेश निकाला था। निर्दय भावसे पनेक लोगोंका वध होनेपर यूरोपमें जनघन पड़ गया। सुलतानने विद्रोहकी दगा जावनेके लिये कितने ही व्यक्ति नियुक्त किये। १८९४-९५ ई०की पंगदेशने फाम एवं दम्के सधारे परजदम, पान, बिटलिस, मिवास, खरपुत पौर दियारबकरमें प्रबन्ध करनेपर दबाव उाला था। किन्तु तुर्कीने एक न सुनी। सासुनमें हत्याकाण्ड करनेवालोंकी उपहार पौर उपाधि मिला था। १८९५ ई०की ११वीं मईकी हटन, प्रान्त पौर इसने मिलकर एक शोधन-व्यवस्था सुलतानके समक्ष रखी। सुलतानने उत्तर देनेमें

विलम्ब लगाया था। हटेन नियन्त्रणके पक्ष और फ्रान्स तथा रूस विपक्षमें रहा। प्रगस्त मास अंग-रेजोने फिर सन्धिक्रम चलाया। टारसुसमें उपद्रव उठा। जातोय थान्दोलनका समयन न करनेवाले भरमनियोंका वध किया गया। प्रधान धर्माचार्यके प्राण जानेका भी संग्रय था। लोगोंने कहा, कि अंगरेजी राजदूत भरमनियोंका वध करा लहाजी बड़ा कुसुन्तु-निया ले जाना चाहता था। १नी अक्तोबरको कुछ समय भरमनी धारिदनपत्र ले तुकी सरकारके पास पहुँचे, किन्तु पुलिस द्वारा हटाये गये। गोली चलनेसे बहुतसे भरमनी और थोड़े मुसलमान मरे थे। उसके बाद अंगरेजी राजदूतकी प्रेरणासे १७वीं अक्तोबरको सुलतानने संस्कार-व्यवस्था स्वीकार की। और ८वीं अक्तोबरको कुसुन्तुनियामे सयस्र व्यक्तियोंने ट्रेविजाण्ड पहुँच भरमनियोंका संहार किया था। सुलतान संस्कार-व्यवस्थाको प्रकाश न किया और १८६६ ई०के जनवरी मास तक संहार पर संहार होते गया। यूरोपीय शक्तियाँ चुपचाप तमाशा देखती रहीं। १४वीं से २२वीं जूनतक फिर यान, एगिन और निकसरमें बहुतसे भरमनियोंका संहार हुआ। २६वीं अगस्तको राजद्वीहियोंने कुसुन्तुनियाका सरकारी बह्र खीन लिया था। सुलतानकी अभिप्राय विदित रहा। शीघ्र ही पहलसे समभाये और शस्त्र बंधाये हुये नीचजन सड़कोंपर छोड़े गये। उन्होंने छः-सात हजार शिगारीय भरमनियोंको मार डाला था। जिस प्रान्तके लिये संस्कार व्यवस्था बनी, उसीपर आपत्ति अधिक पड़ी थी। विदेशियोंकी रक्षा रही। राजादेश न माननेसे खरपुतमें अमेरिकन भवनोंको क्षति पहुँची थी। एकाएक सेन देन समय वज्रपर आक्रमण हुआ। पुरुष पण्ड्यालमें रहे। स्त्रियाँ घरपर बैठी थीं। शिचित्त, धनी आर मानो भरमनी मारे गये। सम्पत्ति नष्ट होनेसे इनके वंग मद्दोंमें मिले थे। जहाँ रक्षाका उद्योग किया गया, वहाँ संहार बहुत अधिक हुआ। केवल जीटनमें तीन मास लड़ लोगोंने अपना मान बचाया था। कुछ नगरीपर पुलिस और पलटनने

भी संहारमें उत्साहके साथ योग दिया। खरपुत-पर तोप चली थी। कहीं-कहीं भेरी बजती संहार आरम्भ और समाप्त हुआ। कुछ भरमनी निरस्त्र करके भी मारे गये थे। शायकी और पदाधिकारियोंने जहाँ हत्याकाण्डमें बाधा डाली, वहाँ शान्ति रही। स्थानीय मुसलमानोंने नाजियाँ, कुर्दी और सरकासीयोने हत्याकाण्डमें योग दिया। किन्तु अनेक मुसलमानोंने अपने मित्र भरमनियोंको बचा लिया था। किशोक टण्ड न मिला। अनेकोंने हत्याकाण्डमें योग देनेसे उपहार पाया था। कारागृहों और गिरजाघरोंमें स्त्री-पुरुष निर्दय भावसे मारे गये। गिरजाघर, मठ, स्कूल तथा भवन लुटे और मद्दोंमें मिले। पचास हजारसे अधिक भरमनी मरे थे। अनेकोंको मुसलमान बनना और अनेकोंको दारिद्र्यका दुःख भोगना पड़ा। सम्पत्ति अधिक विनष्ट हुई। गृहस्थामाके मारे जानेसे स्त्री-पुरुष निराश्रय हो गये थे। ग्रेटब्रटेन और अमेरिकाने दुःख-निर्वाणका उद्योग लगाया। पदाधिकारियोंके विरोध बढ़ते भी कुन सफलता मिली थी। १८०४ को सुग और १८०८ ई०को वानमें फिर हत्याकाण्ड हुआ। १८०८ ई०को भरमनियोंका अभाव दूर करनेके लिये सुलतानने नवीन व्यवस्था प्रदान की।

माश एवं साहित्य—मूल भरमनी भाषामें अनेक ईरानी शब्द पा मिले हैं। अश्व, साखेट, युद्ध, सेना, परिच्छद, व्यवसाय, मुद्रा, पञ्चिका, मान, न्यायालय, सङ्घोत, भौषध, पाठशाला, मिषा, साहित्य और कलाकौशल सम्बन्धोय शब्द प्रायः ईरानी हैं। विशुद्ध भरमनी शब्दोंमें त्रिजिह्वाचो ईरानी प्रत्यय लगते हैं।

मूल भरमनी भाषाके खरयास्त्रमें पार्थिवशालो नही चलती। संज्ञा, सर्वनाम, प्रथम एवं द्वितीय पुरुष और क्रियाका बहुवचन 'क' लगानेसे बनता है। ई०से ७०० और ८०० वर्ष पहले पारसिनियामें सम्भवतः यिनपेलिय और जर्विय भाषाका अधिक प्रचार रहा। सेमिटिकका भी खासा प्रभाव पड़ा है।

प्राजद्वय परमनी दो प्रकारकी देव पड़तो, एक पारारान एवं टिफनिस और दूसरी म्याम्बूल तथा एगिदा-मायिनरके प्रादेशिक नगरमें चलती है। पिब्रनी तुर्की शब्दोंमें भरी है। किन्तु श्रेष्ठ भाषा पश्चिम पारमेनियाकी पचेसा नामके नवीन याग्व्यवहारमें अधिक मिलती है। ई०के पूर्व शताब्द चौद्वि भाषान्तर करनेवालोंमें केवल शब्द अनुवाद बना युगानीका नियम सुरक्षित रखा है। ऐसा ही शब्दार्थ मिररीयके अनुवादमें भी देव पड़ता है।

परमनिदीका देवालय-सम्बन्धी साहित्य स्वतन्त्र रहा। किन्तु ४वें और ५वें शताब्द ईसायी धर्माध्यापकवर्गने उसे समूल नष्टकर डाला। खौरिनवासी मूमाके इतिहासमें उसकी केषल वीस पंक्ति पचगिट है। ४०० ई०के समय मेसरोप नामक ईसायोंने परमनी वर्षमासा निकाली थी। मशवतः यह अधिक प्राचीन थी। मेसरोपने केवल उसमें स्वर चपनी औरसे मिलाये। किन्तु टुनानी धर्माध्यापक और सम्राट् विथोडोसियमको प्रसन्न करनेके लिये परमनि-योंने पास्यान उठाया, कि दिव्यरूपसे उसका प्रकाशन हुआ था। वर्षमासाके पूर्ण होनेपर परमनी चर्चके प्रधान धर्माध्यापक साहाकने एडेप्पा, पायेनुम, कुस्तुनिय्या, पसेक्सुन्दिया, पस्तिषोक, कायसरीया और दूसरे स्थान कितने ही लोगोंको युगानी तथा मिररीय धर्मशास्त्र अनुवाद करनेको भेजा था। गवटेष्टामिएट्, टर्नियस-इतिहासका पाठभेद पादि उसमें प्रस्तुत हुआ। ५वें शताब्द मौलिक युगानीके भी अनेक ग्रन्थ अनुवाद किये गये। ६वें तथा ७वें शताब्दके पुस्तक बहुत अल्प पचगिट है। पाठाक्षरपर किसोका नाम नहीं मिलता। ८वें शताब्द साहित्यसम्बन्धी उद्योगकी बड़ी धूम रही। ९वें तथा ११वें शताब्द भी अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ था। १२वें, १३वें, १४वें और १५वें शताब्द सुप्रसिद्ध ग्रन्थकारोंने लेखनी उठायी। १६वें शताब्द प्रथमतः परमनी भाषामें पुस्तक छपे। १५६५ ई०की बेनिस्में सुद्रायन्त्र चला था। १७वें शताब्द सेव्गर्ग, मिलन, पारि, दरण्डान, सेगहोने,

पामटेरडाम, सार्सेयिसेम, कुस्तुनिय्या, सिपजिग और पादुयानेमें मुद्रणकार्य पारम्भ हुआ।

वैद्यक, ज्योतिष, भाषाविज्ञान, कौष, इतिहास आदि विद्यासम्बन्धीय ग्रन्थोंका अनुवाद परमनीमें हुआ है। अब स्थान-स्थानपर परमनी सुद्रायन्त्र चलते और नये-पुराने ग्रन्थ छपते हैं। चंगरिजी, फरामी, रुसी और जर्मन ग्रन्थोंका पाठाक्षर किया जाता है। यानार्गीपाट, स्नाम्बूल, येनिस, वीयका, पारि, रीलाण्डन, पेट्रोघाट, मोस्को और जोगुस्फाके पुस्तकालयमें परमनी भाषाके पुरातनग्रन्थ रचे हैं।

प्राच्य पण्डितोंके कथनानुसार पारमेनिया ही प्रायोजातिका प्रादिम वासस्थान है। जर्मन जातिके पूर्वपुरुष यहाँसे जाकर यूरोपमें रहे थे। यहदियोंके धर्मशास्त्रमें इस देगका नाम मिलता है। भूतत्त्व देव समझा गया, कि हमारे पुराणशास्त्रमें पारमे-नियाका नाम हिरण्मयययं लिखा है। अध्यापक विलसन संस्कृत संज्ञा पारस्येय बताते हैं। (Ariana Antiqua, p. 147.) पेरिड्रापयंत पतङ्गगिरि है। (ब्रह्मण्यशास्त्र ३२ अध्याय) किसी-किसीके मतमें परचसु नदीको पुराणोक्त चरुषोदा समझना चाहिये।

पुरातन श्टहादिका ध्वंसावशेष, कोषाकार गिला-लेय और मन्दिर प्रभृति देव समझते, कि पति पूर्वकाल पारमेनिवामें मानाजातिके लोग आकर रहते थे। भारतवासी हिन्दुओंके पङ्कनेका भी प्रमाण मिला है। मिररीय देगके किर्सी पादरीने लिखा,—“हिन्दुओंका एक दल यहाँ पा गया है। यह देमिस्तर और किसननी नामक देवताओंकी पूजते थे। मिथा इसके दूसरी भी अनेक देवमूर्तियाँ स्थापन की। पाट्रिपट नगरमें यह देवतापर बलि चढ़ाते रहे।” (Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. V. 331) प्राचीन परमनी प्रायोजाति-सम्भूत है। अपरापर जातिकी भाँति लोग नामा प्रकार उपासना और सम्प्रदायभुक्त थे। आजकाल अधिकांश ईसायी धर्म फैल गया है।

भारम्वण (ये० क्री०) पा-सि-सुरट्, पेटे लय रत्नम्। पालम्बन, इमदाद, सधारा।

धारम (सं० पु०) धारं-रम-घञ्-तुम् । रमेत्प्रथितोः ।
 'नो अणोः । १ उच्यते, सुहोमि । २ त्वरा, तुन्दी, त्रिजौ ।
 ३ गृह्यादि सम्पादन व्यापार, मकान् वगैरह बनानेका
 क्रोमं । ४ उपक्रम, उनवान, शुरू । ५ प्रथमकाव्य,
 शीवल मसनवी । ६ प्रस्तावना, तमहीद । ७ घ, ३
 मंकातला । ८ दर्प, खुदवीनी । 'धारमन्तं वषट्प्रथितोः । लराधा-
 संयमि च ।' (३५) क्रियासमूहात्मक पाकादिमें प्रथम
 उपक्रमकी धारम कहते हैं । श्रौत वा स्मार्त कायकी
 धारम होने वाद अग्रीव संगनेसे कोई वाधा नहीं
 पड़ती । यज्ञके आदिमें 'सोधुभवान् आस्ताम्' प्रभृति
 वाक्य द्वारा वरण, व्रत एवं जपका सङ्कल्प, संस्कारका
 नान्दीयाह, सामिक आहका पोक धौर निरग्नि
 आहमें भीक्ता ब्राह्मणका नियन्त्रण भी धारम है ।
 द्रव्यान्तरसे द्रव्य धौर गुणान्तरसे गुणके उत्पादन-
 व्यापारकी वैशेषिक धारम मानते हैं । 'प्रक्रमः धातुवक्रमः ।
 स्वादयदानसुदधात धारमः ।' (चमर शशरर)

८ ध्याप्रवृत्ति, पहला काम, शुरू । जैसे यह
 धारम करता हूँ । १० अग्रवृत्तकी ध्याप्रवृत्ति,
 जिसका उलट फेर न हो उसका पहला धारम । जैसे
 सध्याधारम । ११ कर्तव्य कर्मकी इच्छा सोमांसक
 तथा नाटकालङ्कार इसे शीतुसुधारम कहते हैं ।
 धारमक (सं० त्रि०) धारमते, धार-रम-ण्वल्-तुम् ।
 धारमकारक, सुवृत्ती, शुरू करनेवाला । वैशेषिकमत-
 सिद्ध महत्त्वादिजनक अवयव सकलका विजातीय
 संयोग धारमक होता है । (स्त्री०) धारमकी ।
 धारमण (सं० स्त्री०) धार-रम-ण्वल्-तुम् । १ ग्रहण,
 धारण, अमल, भक्षक । कर्मणि लुट् । २ मुटि,
 गिरिफत, पकड़ । धारम्यते ङेन, करण लुट् ।
 ३ उपादान कारण, तकरीबी बानी ।
 धारमणीय (सं० त्रि०) धार-रम शक्यार्थे ङनीयर्-
 तुम् । धारम क्रियेजाने योग्य, शुरू हो सकनेवाला ।
 धारमता (सं० स्त्री०) उपक्रम, इवृत्ति, उठान ।
 धारमना (हिं० क्रि०) धारम होना, उठना ।
 धारमवाद् (सं० पु०) धारमेश्वर वादः परीक्षापूर्वक
 कथाविशेषः । वैशेषिकादिके अभिमत परमाणुसे जगत्-
 की उत्पत्तिका वाद, ज़रुरेसे दुनिया बननेकी बात ।

"द्रव्याणि द्रव्यान्तरकारकानि शुचय गुणान्तरम् ।" (वेदविशेषः)
 ध्यात् द्रव्य द्रव्यान्तर धौर गुण गुणान्तरकी
 धारम करता है । कुलाल, दण्ड, चक्र, सलिल एवं
 सूत्र जैसे घटका, वेसे ही आत्माकाय तथा परमाणु
 ब्रह्माण्डका कारण है । फिर घटकी तरह ब्रह्माण्ड भी
 बनता-बिगड़ता है । पृथिवी, जल, अग्नि धौर
 वायुके कर्मसे संयोजित परमाणु दोके क्रमपर महत्
 ब्रह्माण्डकी धारम करता है ।

धारव (सं० पु०) धार-व-भृप् । १ सम्यक् शब्द,
 नारा, शोर, पुकार । २ देयवाचो विग्रह । धार देवो ।
 धारप, धारयो (हिं०) धार देवो ।
 धारस (हिं०) धारव धौर धारसे शब्द देवो ।

"धारस निद्रा धौर लक्ष्मी ।
 यद्य लीनी है कायकी मायी ॥" (लोकोक्ति)
 धारसा (हिं० पु०) रज्जु, रस्सा ।
 धारसी (हिं० स्त्री०) १ दर्पण, शीशा ।

"फ़ारसी बोकी पायीगा । तुर्की बोकी पायीगा ॥
 हिन्दी बोल् पायी पाये । खुसरो कह को न बताये ॥" (इटपव)
 इस प्रयुक्ति दो अर्थ हैं,—१, जिस धीजकी फ़ारसी
 नहीं आती, जो तुर्कीमें टूट्टे नहीं मिलती धौर
 जिसकी हिन्दी बोलते शर्म लगती है, उसका नाम
 खुसरो-कहता, लेकिन कीयी नहीं समझता । २, जो
 फ़ारसीमें पायीना, तुर्कीमें पायीना धौर हिन्दीमें
 धारसी कहाता, उसका नाम खुसरो बताता है,
 लेकिन कोई नहीं समझता । पहलीमें प्रय धौर दूसरे
 अर्थमें उत्तर विद्यमान है ।
 २ कर्मिका, शब्दधारी, क्ता । इमे क्रिया पपने
 दाहने हाथके शंगूठमें छोट्टासा शीशा लड़ाकर
 पहनती है ।

"दाव कहनेकी धारकी का है ।" (लोकोक्ति)
 धारस्य (सं० स्त्री०) ने रस, नक्ष-तत्त्वं ; धारस्य
 भावः, अचतुरादित्वात् यञ् । १ रमभिवल, सज्जतका
 फ़र्क । नास्ति रमो यंस्य, बाहुलकात् त त्वन्ती न
 यञ् । २ अरसत्व, वेत्तन्ती, फ़ीकापन ।
 धारा (सं० स्त्री०) अ-र-ध-ञ-टाप् । १ अग्रमर्मदेक
 अक्षयविशेष, चमड़ा छेदनेकी सुतारी । 'धारा अर्धकोटिका ।

(बनर ११११११) २ प्रतोद, कीड़ा, पैना। ३ पारागुणी कमपत्ती। (हिं० पु०) ४ लकड़, करोत। यह छोटेकी पटरीमें बनता पौर पार-पाप ज्ञाप मन्था तथा हः-मात पद्मन चौड़ा रहता है। पाकार चाप-जैसा चल होता है। पटरीमें मामनेकी पौर दांत काटते पौर दोनो मिरांपर एकडनेको मूंड लगाने हैं। इसमें लकड़ी बीरनेका काम निकलता है। पटने मट्टेको दो कड़ियोंके मझारे एक मिरा लमीनूमें मिला पौर दूमरा ऊपरको उठा सड़ा करते हैं। फिर भाग समपर रज दो पादमी नीचे-ऊपर खींचने लगते हैं। दांतके जोरमें लकड़ीका सुरादा उड़-उड़कर उधर-उधर गिरता पौर तपता उतरते चना जाता है। ५ पार, पड़विका फेरा। ६ पाड़ा, दासा। यह लकड़ी या पत्थरमें बनता पौर घोड़िया रजनेके काम लगता है। इसमें घोड़िया ठीक बैठ जाती पौर नापजोग बराबर उतरती है।

० विहार प्रान्तके गाहावाद जिलेकी पारा तट-सील। यह पचा० २५° १०' १५" एवं २५° ४०' ३०" पौर द्राधि० ८४° १८' तथा ८४° ५४' पू०पर अवस्थित है। क्षेत्रफल ८१५ वर्गमील है। डिन्दू, सुमलमान पौर ईसायी बहुतमें लोग रहते हैं। इसमें पारा, धौली पौर पीरका घाला लगता है।

८ गाहावाद जिलेका प्रधान नगर। यह पचा० २५° ३१' ४६" उ० पौर द्राधि० ८४° ४२' ४२" पू० पर अवस्थित है। म्यूनिसिपलिटिकी सजाती हपथे मानकी सामदनी है। नगर बहुत अच्छा बना है। जल, अमृतान पौर ईट-इलिया-रजनेका देगन है।

१८५० ई०की बनया होनेपर पारा प्रसिद्ध हुआ। बलवायी सिपाही दानापुरमें नदी पार कर पार पर भवटे थे। उन्होंने राजकीय मूट जलके केदियोंकी छोड़ दिया। कुछ सुरोपीय पौर सिख घर गये थे। उधारके लिये जो पंगरेजी फौज पायी, समने घातकी लगह कर गयी। फिर भी कोई बारह पंगरेज, तीन-चार ईसायी पौर पचास सिख एक मकानमें सड़ने रहे। याने-पीनेका सामान पौर

गोलाबादद सब कुछ इकट्ठा था। २०वीं जुलाईको सिपाहियोंने जोरमें धावा मारा, किन्तु भीषण पब्लि-ट्रिड जोरमें उनका दम टूट गया। भयसे उड़ जाने-वानी थीने जलाकर मिर्चका धूया देने, पादमियों तथा घोडांकी लागे इकट्ठाकर बटपू फेनाने पौर मकानतक सुरङ्ग लगानेभी भी रसकोके पेर उलझे न थे। इसी प्रकार एक सप्ताह बीतनेपर मजर-विनसेण्ट ईयर ४ तोप सैजर पा पट्टे। राहमें उन्हें भी कयी जगह सड़ना पड़ा था। ईयरके तोप चनानेपर बलवायी जङ्गसमें जा हिये पौर दनादन गोभी बरसाने भये। पंगरेजी फौजके मद्रोम निकलन पागे सड़नेमें लोग प्राप छोड़कर भागे थे। इस युद्धमें कुंवरसिंह प्रधान रहे।

गोल नदीकी बड़ी नहरसे एक छोटी गागा पारकी पायी है। यह देहरीमें गोलभट्टमें निकल गइा नदीमें जा गिरी है। सरकार व्यापारके जहाज चनाती पौर गेतीमें पानी पट्टेचाती है।

पाराकण (हिं० पु०) माकधिक, करोतिया, पारा खींचनेवाला। यह मण्ड हिन्दी 'पारा' पौर फारसी 'कम' मिलाकर बना है।

पाराकान—ब्रह्मदेगका एक विभाग। यामीष नाम रसेद्रूप है। मंथत भाषामें रमाङ्ग पौर रमाङ्ग भी कहते हैं। पाराकानके इतिहासमें देखा—जिन प्रथम नृपतिने बनारसमें राज्य चलाया उन्हीं पुत्रने यह देग अपने भागमें पाया। दूमरोंके कयलानुमार एक वस्य मृगीने कुलदान नदीके प्रान्तमें शरप्यङ्ग जैसा मान-वीय गिर उतपच किया था। भेद या मू नृपति पाछेट करने निकले। नवजात गिरुकी वसमें देग यह घर उठा लाये थे। लोगोंने मध्य उमका पामन-पोषण हुआ पौर मारयो (मोय्य) नाम पड़ा। बड़े होनेपर बालकने एक मू-सरदारकी कन्यामें विवाह किया पौर पत्नकी पाराकानका राज्य लिया था। रधी बालकमें पाराकानो वंश चला।

मारयोके राज्य-पानेका समय ई०में २६६६ वर्ष पूर्व बताया है। मारयोके वंशजोंने १८११ वत्सर राज्य किया था। उनके बाद विश्व बड़ा। पत्निस

नृपतिकी रानीने अपने दो कन्याओंके साथ पर्वतमें जाकर आश्रय लिया था। छोटे भाईकी टागौड़का राज्य सीपनेपर बाध्य होनेवाले कान-राजगयी नामक एक क्षत्रिय उत्तर आराकान या पड़ुंचे और अपने साधियोंके साथ कौकपाणडौड़ पर्वतपर जम बैठे। मारयोग्यकी अन्तिम रानीके मिल जानेसे उन्होंने उनकी दोनो कन्या ब्याह ली थीं। कुछ वर्ष पीछे कानराजगयी पर्वतसे उत्तर निम्नभूमिमें बसे तथा प्रधान नगरके अधिपति बने। आराकानी ऐतिहासिकोंके कथनानुसार १७८२ वर्ष उनके वंशजोंने राजत्व चलाया। १४६ ई०को चन्द्रसूर्य नामक नृपति सिंहासनपर बैठे थे। उन्होंने समय बुढ़की धातुमय एक प्रतिमा बनी, जो बहुत प्रसिद्ध हुई। उसकी अलौकिक शक्तिका उपाख्यान पीछे वर्णन चला था। १७८४ ई०को आराकान जीतनेपर ब्रह्मदेशवासी प्रतिमा उठा ले गये। अमरपुरमें उत्तर एक मठमें आज भी उसकी पूजा धूमधामसे होती है। ई०के ८वें शताब्दतक इस प्रान्तमें बौद्धधर्मका प्राबल्य रहा। कानराजगयी-वंशज ५वें नृपतिके राज्यसमय पुरातन राजधानी गुप्तभावसे नष्ट होनेपर विप्लव बढ़ा। ज्योतिषियोंने स्थानपरिवर्तनकी आवश्यकता देखायी थी। इसीसे महातैज्जचन्द्र नृपति सदल-बल अपना प्रासाद छोड़ नयी राजधानी वेद्यालीमें जाकर रहने लगे। चन्द्र-कुलनामधारी नौ नरेशोंने उस नगरमें उत्तरोत्तर राज्य किया। इन राजाओंके सिद्धे देखनेसे विदित होता, कि उस समय सम्भवतः हिन्दूधर्म चलता था। किन्तु आराकानी इतिहासमें उक्त नरेशोंका आदि स्थान नहीं लिखा।

इस वंशके बाद न्यो जातीय एक नृपति और उनके आराजगणे ३६ वर्षपर राजत्व किया था। एक चन्द्रवंशज नरेशके फिर सिंहासनारूढ़ होनेपर राजधानी बदली, किन्तु ग्रीक ही उपद्रव उठनेसे छोड़ दी गयी।

उसके बाद उच्च इरावदीके जानोंने आराकान-पर आक्रमण कर १८ वर्ष राज्य चलाया था। उन्होंने निर्दय भावसे लोगोंको सताया और मठोंकी

सुटाया। ८६५ ई०में उनके चले जानेसे पुगान नरेश आनर्त्त या अनोपरहत बुढ़की सुप्रसिद्ध मूर्ति पानेकी आराकानपर भरपटे। किन्तु देवी व्यवधानसे विना मूर्ति पाये ही उन्हें पीछे पेरों हटना पड़ा था। कुछ वर्ष बाद अनोपरहतके साहाय्यसे चन्द्रवंशीय एक नृपति फिर सिंहासनपर बैठे। पिङ्गत्तसामें राजधानी प्रतिष्ठित हुई थी। आराकान पुगान नृपतिके पधीन ६० वर्षतक करद राज्य रहा। पीछे एक उत्कृष्ट-पदस्थ, मेङ्गविन्दू नामक नरेशको मार स्वयं राजा बना। सिंहासनके उत्तराधिकारी मेङ्गरीवय अपनी रानीको ले पुगान भाग गये थे। वहाँ क्यनसत्या नृपतिने उनका स्वागत किया। २५ वर्षतक राजकीय परिवार निर्वासित रहा। मेङ्गरीवयके पुत्रका नाम लेल्यमेङ्गनान था। पिताके मरनेपर पुगानके वर्तमान नृपति अलौकिसीयुने उसे आराकानके सिंहासनपर बैठाना चाहा। वर्षा ऋतुके अन्त भूमि और समुद्रमार्गसे उन्होंने एक-एक लाख प्यूस तथा तालेङ्ग सेना भेजी। घोर युद्ध होने बाद दूसरे वर्ष उनकी प्रतिष्ठा पूरी हुई। बुढ़गयामें ब्रह्मदेशकी भाषाका जो गिलालिख मिला, उसमें लिखा,—एक लाख प्यूसोंके अधीश्वर सेत्यामेङ्गनान पुगान नरेशके प्रति अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार इस मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया है। अकाल देव।

आराग (सं० पु०) प्रत्यान्तके सातमें एक स्थै।
 आराय (सं० क्षी०) आराया अयम्, ६-तत्।
 १ चर्ममेदिकाका अयभाग, सुतारीकी नोक।
 १ लोहिका तन्ना। यह चाबुकके सिरेपर सगता है।
 २ अर्धचन्द्राद्यक्षमुख, चक्रदार तीरकी नोकका किनारा। (त्रि०) ४ तीक्ष्णोक्त, तैश्च किया या पेनाया हुआ, सुतारीकी तरह जो सिरेपर पेना और घेदेंमें चौड़ा हो।

आराजी (अ० क्षी०) भूमि, क्षेत्र, जमीन, खेत, सुतफररिक् जमीनके हिस्से। यह शब्द 'परज'का बहुवचन है।

आराज्ञी (सं० क्षी०) आराज्ञे, कनिन्-क्षीब्, देग सुक्।

इतिहास-यन्त्रादीनि इत्यादि नाम आरेष्टी (Arestae)
 चौर आड्रेष्टी (Adraistae) लिखाः । चर ६६० ।

आराड (सं० पु०) माका मुनिर्के एक गियक ।

आराटि (सं० पु०) सौत्रात नामक एक अरिपि,
 आराडके पुत्र । ऐतरेय-ब्राह्मणमें इनका उल्लेख विद्य-
 मान है । (१४१४)

आरायु (सं० अय्य०) आ-रा-वाहुलकात् आति ।
 १ अन्तर्वर्ती स्थानमें, सुदा लगहमें । २ अर्धचिह्नट,
 दूर, फर्कमें । ३ विमल्लट देगके प्रति, वायद सुकामको ।
 ४ वाद्य प्रदेशपर, वाहर । ५ समीप, नज्दीक ।
 'आरायुवर्णोः' (चर) ६ शीघ्र, अय्यवहितकाल ।

आराति (सं० पु०) आ-रा-तिच् । अरु, अद्, दुश्मन ।
 'आरातिवर्णोः' (चर)

आरातीय (सं० त्रि०) आराह्वयः जातः आगतो वा,
 छ आराह्वयवर्जनात् आह्वयस्य टिसोपः । इत्यर्थः ।
 वा १४१५ । १ दूरस्थ, दूर-दराज् । २ आसन्न, तत्परोक्षी,
 लगा हुआ ।

आराणात् (सं० अय्य०) दूरस्थ देगमें, दूर-दराज्
 सुकाममें ।

आरात्रिक (सं० त्रि०) आ रात्रि रात्रेः पूर्वसोमा
 तत्र निहंत्तम्, ठञ् मर्यादायैः इत्यधीभावः । आरात्रिकदि-
 त्रिणोः । वा १४१६ । १ नौराजनकमें, आराति । अति
 देवोः । २ संस्कार विगेष, एक रथः ।

आराधक (सं० त्रि०) अर्धक, आविद, पूजा-पाठ
 करनेवाला ।

आराधन (सं० त्रि०) आ-राध-त्तुर्त् । १ साधन,
 फ़ज्जोक्त, काम । २ माति, याकृत, पदुष । ३ तीव्र,
 रजाजोषी, ममोमी । ४ पचन, तब्बाघी, रसोईका
 काम । ५ अर्चन, इबादत, पूजा-पाठ ।

'आराधनश्च अर्चने इती कर्मोपदेशि च ।' (भि०)

आराधना (सं० त्रि०) आ-राध-दिच्-मुच्-टाप् ।
 १ सेवा, विदमन, लोकी । 'दुःखराधनोः' (री० १४१६)
 (हिं० त्रि०) २ आराधन करना, इबादत देना,
 पूजना ।

आराधनी (सं० त्रि०) पूजा, इबादत, बन्दगी ।

आराधनीय (सं० त्रि०) आराधयितुं शक्यम्, आ-

राध-दिच् शक्ये चमीवर्, दिच् लोपः । आराधन
 किये जाने योग्य, जिमें कोई पूजे ।

आराधय (सं० पु०) आ-राध-दिच् बाहुलकात् य ।
 आराधनकारक, इबादत करनेवाला, जो पूजता हो ।

आराधयित् (सं० त्रि०) आ-राध-दिच्-त् । परि-
 चारक, रजाजोईकी कोमिग करनेवाला, जो मनानेमें
 लगा हो । (पु०) आराधयिता । (त्रि०) आरा-
 धयित्री ।

आराधयिषु (सं० त्रि०) १ आराधनशील, कफ़ारावर्णुग,
 मन्त्रतका । २ परिचारक, रजाजो, मनानेवाला ।

आराधय्य (सं० त्रि०) आ-राध-य्यच् । इत्यर्थः ।
 दिग्-कर्मि च । वा १४१७ । आराधनकर्त्तृ, आविदका
 काम, पुजारीपन ।

आराधित (सं० त्रि०) आ-राध-दिच्-इट्, दिच्
 लोपः । १ सेवित, मनाया हुआ । २ सिद्ध, सम्पन्न,
 कामिल, पूरा । ३ अर्चित, इबादत पाये हुआ, जो
 पूजा गया हो । 'आराधितो वदं इति ह्येता नः विद्मः' (चर)

आराध्य, आराधनीय देवोः ।

आराध्यमान (सं० त्रि०) १ पूर्ण होनेवाला, जो पूरा
 किया जाता हो । २ पूजा जानेवाला ।

आराम (सं० पु०) आरम्यतेऽस्य, आ-रम-घच् ।
 १ उपवन, रीजा, कुलवाड़ी । 'आराम, आरुचरम् इतिम् वन-
 मिव वनः' (चर) २ पक्षदग रगपुत्र दण्डक वृत्त-
 विगेष ।

'दिदि च नदुर्भं ततः नद्ये देवभद्रा चण्डिकायाः प्रवेष्टुमः ।
 इति चरवर्णोः' (चर) इत्यर्थः ।
 (इत्यर्थः)

प्रथम दो मग्य चौर तत्पूर गात रगल रहर्गि
 दण्डक चण्डिकायाः कदाता है । फिर प्रथम दो
 मग्य चौर तत्पूर क्रमगः पाठमें रगल बट्टेपर अर्ध
 पाठि नाम होता है । अर्थात् दो मग्यके बाद पाठमें
 अर्ध, तीसरे अर्ध, दसमें व्यास, आरुचरी जीमूत, आरुचरी
 मीनाकर, तैरुचरी उद्दाम, चोटुचरी मद्य, पदुचरी
 आराम, सोलुचरी मंदास, मलुचरी सुरामधेहृष्ट,
 अद्दुचरी मार, लुचरी मार, बीसमें विगार,
 इहोममें संहार, आरुचरी मीहार, तैरुचरी मन्दर,

बीबीससे केदार, पच्चीससे आसार, छत्तीससे सत्कार, सत्ताईससे संस्कार, अष्टाईससे माकन्द, उन्तीससे गोविन्द, तीससे सानन्द, इकतीससे सन्दोह और बत्तीस रगण लगनेसे दण्डकको आनन्द कहते हैं।

(फा० पु०) ३ विद्याम, करार। ४ निर्वापण, फरागत, सुबीता। ५ उचार, छुटकारा। ६ सामर्थ्य, इख्तियार। गृहसुखको 'श्रोटी टुकड़ेका भाराम' कहते हैं।

भाराम करना (हिं० क्रि०) १ विद्याम लेना, सुसताना। २ निद्रागत होना, सोना। ३ ऐं'हना, खाली बैठना। ४ छुलसे निर्वाह करना, मजमें रहना। ५ स्वस्थ बनाना, अच्छा कर देना। यह शब्द फारसीका

'भाराम' और हिन्दीका 'करना' मिलाकर बना है।

भारामगाह (फा० स्त्री०) विद्यामखली, सुसताने या सोनेकी जगह।

भारामघोलि, भारामघोलिका देखी।

भारामघोलिका (सं० स्त्री०) पत्रशाक विशेष, एक मज्जी। यह भन्त, रुच, रुच्य, अनिलापह और पित्त-क्षेपकर होती है। छोटी भारामघोलिका जीर्णोत्तरकी दूर करती है। (राजनिष्यु)

भाराम चाहना (हिं० क्रि०) विद्याम भयवा निद्राका अभिलाषी होना, सुसताने या सोनेकी खाहिश रखना।

भारामतल्लह (फा० वि०) १ विलासासह, नफस-परस्त, आनन्दी। २ आलस्यशील, सुस्त, कामचोर।

भारामदान (हिं० पु०) १ ताम्बूलपिटक, पानका डब्बा। २ शृङ्गारसम्पुट, साजुका सन्दूक।

भाराम देना (हिं० क्रि०) १ शान्तिप्रदान करना, मज्जी बखुशना। २ रोगोपशम करना, भला-चङ्गा बनाना। ३ सन्तोषण करना, भाँसू पोखना।

भाराम पहुँचाना, भाराम देना देखी।

भारामपायी (हिं० स्त्री०) पाटुका विशेष, किष्की किष्की जाती। इससे पैरकी बहुत भाराम मिलता है।

भाराम पाना, भाराम करना देखी।

भाराम लेना, फ्राणनकरना देखी।

भारामवज्रिका (सं० स्त्री०) मज्जिका विशेष, किष्की किष्की चमेली।

भारामवाला, भारामनवर देखी।

भारामवाली (हिं० स्त्री०) १ वलभा, बीबी, जोड़ू। २ आलस्यशील स्त्री, निरुप्री पौरत।

भारामगाह—सुसतानु कुतबुद्दीनु ऐबकके पुत्र और दिल्लीके सम्राट्। १२१० ई०की यह पितृसिंहासन पर बैठे थे। कुछ दिन बाद वदावूके शासनकर्ता अलतमास इन्हें राज्यच्युत कर स्वयं सम्राट् बने।

भारामशीतला (सं० स्त्री०) भारामे उद्याने शीतला, ७-तनु। सुगन्धिपत्रयुक्त शाकविशेष, एक सुगन्धदार सब्जी। उर्वर्यादि गणमें इसका पाठ है। भाराम-शीतला तिक्त, शीतल, पित्तघ्न, दाह-शोथहर और त्रण-विस्फोटक होती है। (राजनिष्यु) यह कटु जगती और पित्त, कफ तथा शर्शको दूर करती है। (नरनराल)

भारामसे (हिं० क्रि०-वि०) यथा सुख, खुशोसे।

भाराम-शोना (हिं० स्त्री०) १ स्वास्थलाभ करना, बहाली पाना। २ सुखप्राप्ति करना, फ्रासुद्गी प्राना, खुश रहना। ३ अचपानुसार—प्राणत्याग करना, मरना।

भारामिक (सं० वि०) भारामे उद्यानरक्षणे नियुक्त, ठक्कू। उद्यानपाल, श्रामवानु, माली।

भारामुख (सं० पु०) श्यमभार्य शल विशेष, फेदनेका एक चौज़ार।

भारामय (फा० स्त्री०) १ फलहार, फलद्विया, भारामक्षगी, संवार। २ शोभाकर वृक्ष और पुष्प, सुयमुमा पेड़ और फूल। यह भौंडल तथा भिन्न-भिन्नसे बनती और वारातके श्लुषमें निकलती है।

भारामय करना (हिं० क्रि०) फलहार पहनाना, सजाना।

भारारात—पार्थतीय भारमेनियाका भूभाग। यह ३८° ४२' उ० और द्रावि० ४४° ३५' पू०पर अवस्थित है। प्राचीन चरमनो इसे 'ऐराट' (पार्याट) पार्यात् पार्याका क्षेत्र कहते थे। इसका कुछ तुर्कों और कुछ अंग रूसियोंके अधिकारमें है। प्राचीन बायबिलके मतसे इसी प्रदेशमें भारारात गिदिमाना है। जलहायनके बाद यहाँ नूहका पोत था जमा था (Genesis VIII)। चरमनो शीतके पड़नेका

श्याम मानिस-पुनर वताते है। तुर्क इन पर्यंत
 शूद्र को चाण्डाल (पार्श्वगिरि) और ईरानी शूद्र-
 मूढ (मूढका पर्यंत) कहते है। भारतात चान्देय-
 मेलनपुत्र और मनुस्मृतनमे प्रायः १०२६० कोट लंका
 है। व्याजोय जोग पात्र भी गिरिद्वार मूढके
 योगदा रचना मानते है। उनके विद्यामानुमार
 पक्षमे पन दा, पक्ष पक्ष हो गया। परमनिर्वांके
 कथमानुमार परिवाम नामक श्यामने मूढने द्वापासता
 मगायी और योगमे उत्तर मनुजोयन मगर (पवतरप-
 भूमि)मे प्रथम रहनेकी कुटी बनायी थी। पाचात्य
 पण्डित हमारे मनुके भाष मूढका ऐश्व ठहराते
 है। किन्तु हिन्दुवोके शास्त्रमे कहे द्युये मनु इम जगद
 नर्ही, हिमालयके निकट मोहन्यन नामक स्थानपर
 उत्तरे थे। मनु और मोहन्यन मन्वे विष्णुवि विराच देवी।

भारत (मं० वि०) ईषदरात्मन्, प्रादि-समा० ।
 पम्पकुटिल, किमी कदर टेढ़ा ।

भारतिका (मं० वि०) भारतं कुटिलं चरति, ठण् ।
 पाषक, वायरी, नामधायी । पञ्च देवी । धनलोभमे
 मनु-मैरिल पाषक भोजनमे विषादि मिला देता,
 इयोमे कुटिल पाचरपकारी समझा और इस नामसे
 पुकारा जाता है। 'मनुपाचः एतपाचः द्वापनिश्चरपाचः'
 (६म ११५०)

भारत, पञ्च देवी ।

भारतवशी (मं० स्त्री०) विन्यनज, विन्याचन
 पहाड़की एक गाया । पञ्चो देवी ।

भारतियन् (मं० वि०) पारोति, पा-रु-विनि । १ मन्थज्
 मन्थकारक, लं० शो पात्राज् देनेशाना । (पु०) पाराशो ।
 अयधनका सपाधि । (श्री०) छीप् । भारतियनी ।
 भारत्या (स्त्री० वि०) १ निष्पय, तेवार । २ पम्पकृत,
 मजा दूपा ।

भारत्या-करना (हिं० क्रि०) १ विधान करना,
 तरतीव देना । २ नियत करना, ठोकाठक मगाना ।
 ३ मंचक करना, बटोरना । ४ निष्पय करना, तेवारी-
 पर माना । ५ पम्पकृत करना, मजाना ।

भारत्या-पेराया (स्त्री० वि०) १ मममकृत, मजा-
 बना । २ मन्थोक्त, मुममक, हदियारकम् ।

भारि (मं० पु०) १ कण्ठकण्ठ, एक पीड़ । २ छटिर-
 चार, कथा, खेर । (हिं०) चार देवी ।

भारिजा (पं० पु०) १ उतासा, वाञ्छिधा, माजरा ।
 २ पाकुनत्व, बीमारी ।

भारिजा कान्नी (पा० पु०) न्याय विचार, मरयी
 मुकम् ।

भारिजा जिष्णामी (पं० पु०) मनु-दोषत्व, काठोका
 बोदावन ।

भारिजा दमागो (पं० पु०) शोध्याधि, दिमकी
 बीमारी ।

भारितिक (मं० वि०) भारतं भीकादपुः तस्य
 भवः, ठञ् भिठ् वा । भाकारिभश्चभित्ति । पञ्चारा ।

भारितभय, भावके दृष्टेमे होनेशाना । (श्री०) छलि
 छीप् । भारतिकी । बिठि-टाप् । भारतिका ।

भारिन्दम (सं० पु०) समस्त राजाके पिता ।
 (पञ्चमपाद पञ्च ११४)

भारिन्दमिक (सं० वि०) भारिन्दमे भयादिः, काशां
 ठञ् बिठ् वा । भारिन्दममे होनेशाना, जो दुग्मन्के
 मारनेवासेमे हो ।

भारिया (हिं० श्री०) एक पतनी ककड़ी । यह बित्ति-
 परिमित बट्टनी और पायस शीतन लगती है ।

भारिजोय (मं० वि०) रिगति, रिग हिंमे मनिन्
 परिज्मः तस्य सचिल्लटदेगादिः, लगादित्वात् ङम् ।
 परिज्मके निकटस्य, परिज्मके पास होनेशाना ।

भारी (हिं० श्री०) १ सुद ककड़, छोटा चारा ।
 इनमे एक ही खोर पकड़ रहती है । बट्टयी दोनो
 खेर पड़ा खोर बाये हाथ पकड़ मकड़ी भारीमे
 खोरते है । २ सोहकी फील । यह गाढ़ी ब्राह्मने
 पनेमे लगती है । ३ चमड़ा टेटनेकी सुगारी ।
 ४ चिनारा, खोर । (पं० वि०) ५ परिचाल, मजा-
 मांदा । ६ निरायय, शिवारा ।

भारी चाना (हिं० क्रि०) परिचाल होना, चक
 जाना ।

भारीहणक (सं० वि०) भारीहणन निष्ठात्, भारी-
 हपादित्वात् पुञ् । मनुपातक द्वारा मन्थय, दुग्मन्-
 के मारनेवासेका तेवार किया दूपा ।

आरौ होना, आरौ बना देको ।

आरु (सं० पु०) ऋ-उण् । १ वृचविशेष, अरुलका पेड़ । यह वङ्गदेशके उत्तर-पूर्वाञ्चलस्य पर्वत, जयन्ती-गिरि, कीयम्बातूर, कनाड़े, सुन्दे, सिंहल, पेगू और तैनेसेरिम प्रभृति स्थानमें होता है । वृच बहुत बड़ा है । बङ्गालमें इसकी लकड़ीके तखत और सिंहलमें पीपे तथा बरंगे बनते हैं । बम्बईका आरु बहुत अच्छा होता और नावका पेंदा तैयार करनेमें लगता है । किन्तु सिलहट, कछाड़ और चटगांवकी लकड़ी सबसे बढ़िया और कीमती निकलती है । आजकल बङ्गालमें इससे कितनी ही चोड़ बनायी जाती है ।

२ कर्कट, सरतानु, केकड़ा । ३ शूकर, सूअर ।

‘आरुः पुं सि तरोमैदे तथा कर्कटर्षट्टिकोः ।’ (मेदिनी)

४ कुष्माण्डलता, कुन्दड़ेकी बेल ।

आरुक, आरु और आरु देको ।

आरुक (सं० स्त्री०) १ वृच विशेष । यह हिमालय-पर्वतपर होता और गुणमें शीतल रहता है । हिन्दीमें इसे आड़ कहते हैं । पत्रपुष्पादि भेदसे चातुर्जात्य है । सभी गुण समान रहते हैं । आरुक जारक होता और वात, मेह, अग्नि तथा कफको मिटाता है । (भद्रगणन) यह मधुर एवं हिम होता और अग्नि, प्रमेह, गुल्म तथा रक्तदोषको दूर करता है । (रात्रनिष्यत्) (पु०) २ आलू-बोखारा । यह आड़ी, तुवर, हृद्य, शीतल, मलावष्टक, उष्ण, मधुर, सुखप्रिय, पाचक, अम्ल एवं मुखस्त्रच्छकार होता और कफ, पित्त, मेह, गुल्म, अग्नि एवं रक्तवात-रोगको मिटाता है । आरुक पकनेपर मधुर, गुरु, कफपित्तकार, उष्ण, रुच्य और धातुविवर्धक निकलता है । (वैद्यकनिष्यत्)

आरुज (सं० त्रि०) भक्षण करनेवाला, जो तोड़ डालता हो ।

आरुज (वै० त्रि०) अरुजति, आ-रुज-क । १ सम्यक्-पीड़क, तोड़ डालनेवाला । “विद्या तिला धनस्यपनिष्ठद्वया नि शारुजः” अरु ८३३।१ । ‘आरुज’ चासिहस्ये न मरु ज्ञारुम् ।’ (सायण) (सं० पु०) २ रावणपत्नीय राघवविशेष । (महाभारत वनपर्व)

आरुजन्तु (वै० त्रि०) रजो भङ्गे इत्थीणादिक-कन्तुत्-प्रत्ययः, कित्वाह्णभाभावः । भङ्गक, भेदकारी, तोड़

डालनेवाला । “श्रीगु विद्यापनगुभिः ।” अरु १।१।१ । ‘आरुजन्तुभिः मरुभिः ।’ (सायण)

आरुणक (सं० त्रि०) अरुण-युञ् । अरुण देयभय, अरुण सुल्लकर्म पैदा होनेवाला ।

आरुणडांगी—मन्द्राज प्रदेशके तञ्जौर जिल्लाका एक भूभाग । पहले यहां चोल राजाओंका राजत्व रहा । ई०के १५वें शताब्द पाण्ड्यराजके सेनाध्यक्ष सेतु-पतिने इसे अधिकार किया था । १७वें शताब्द आरुणडांगी तञ्जौर राज्यमें मिलायी गयी । १८वें शताब्द रामनादका एक व्यक्ति किलावनके शासनमें पहुँचा था । १७४६ ई०को फिर तञ्जौरके राजाने इसपर अपना अधिकार जमाया ।

आरुणपराजिन् (सं० पु०) प्राचीन कल्पप्रत्य विशेष । इसमें ब्राह्मणोंका क्रियासंस्कार वर्धित है ।

आरुणपराजो, आरुणपराजिन् देको ।

आरुणि (सं० पु०) अरुणस्यापत्यम्, इज् । ११११ । पा ३।१।६ । १ उद्दालक गोतम मुनि । यह वैशम्पायनके नौमें एक शिष्य रहे । दूसरोंके नाम हैं,—पालव्य, लता, कामल, रुचाम, ताण्ड, श्यामायन, कठ और कलापी । २ श्रीहालकि, अरुण उपवेशिके पुत्र और श्वेतकेतुके पिता । (भतपत्र तथा ऐतरेय-ब्राह्मण ८०) ३ प्रजा-पतिके पुत्र सुपर्ण्य । (मेनिपेय चारुण्य १।१०६) ४ पन्द्रहवें द्वापरके व्यास । (श्वेती भावत १।३।२६) ५ विनताके पुत्र वैनतिय । ६ आयोदधीम्यशिष्य मुनिविशेष । ७ सूर्य-तनय । ८ सामवेदका एक ब्राह्मण । (पु० स्त्री०) ९ गरुडावजके पुत्र वा कन्यारूप पत्य । (स्त्री०) डीप । आरुणी ।

आरुणिन् (सं० पु०) आरुणिना वैशम्पायनास्ते-वासिता प्रोक्तमधीश्वरि, यिनि । वैशम्पायनशिष्य आरुणि-प्रोक्त प्रत्य अध्ययनकारी ह्यारु सकल ।

आरुण्यो (वै० स्त्री०) अरुणवर्णा बटुवा, लाल रङ्गवाली घोड़ी । “वदारकोट, तरेको-रुपुम् ।” अरु १।१।१० । ‘वदारकोट अरुणवर्णा बटुवा’ (सायण) वायु देवकी घोड़ियाँ लाल होनेसे आरुणी कहाती हैं ।

आरुण्येय (सं० पु०) आरुण्येह्यलकस्यापत्यम्, टन् । उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतु ।

आरोग्य (सं० स्त्री०) अरोगस्य भावः, प्यञ् । रोग-
शून्यत्व, आराम, तन्दुरुस्ती। हिन्दीमें यह शब्द
विशेषणकी तरह भी व्यवहृत होता है।

“आरोग्यं कृतं प्रच्छेत् चतुर्भुजनामयम् ।

देशं चैवं समागत्य शरमात्पुनरेव च ॥” (मनु १।१२०)

परस्पर साक्षात् होनेपर द्वाघ्रायसे कुशल, चित्रयसे
अनामय, देशसे जैम अर्थात् धन-धान्य-निरापद् और
शुद्धसे आरोग्य पूरुना चाहिये।

आरोग्यता (हिं० स्त्री०) आरोग्य देखो।

आरोग्यपञ्चक (सं० स्त्री०) स्वास्थ्यका पञ्च द्रव्य,
तन्दुरुस्तीकी पांच चीज। इसमें पथ्या, आरम्बध, तिक्ता,
त्रिहृत् और आमलक डालते हैं। आरोग्यपञ्चकका
काय पीनेसे साम और्णव्वर छूट जाता है। (भावप्रकाश)

आरोग्यव्रत (सं० स्त्री०) आरोग्यार्थं व्रतम्, शाक०
तत् । व्रत विज्ञेय। यह व्रत सूर्यका होता और
माघ मासकी शुक्लसप्तमीसे लगाकर प्रति शुक्लसप्तमीको
एक वत्सर पर्यन्त किया जाता है। यहाँकी संयम
रखते और सप्तमीके दिन उपवासकर यथाविधि भोजन
करते हैं। (भावप्रकाश)

आरोग्यशाला (सं० स्त्री०) आरोग्यार्थं शाला, शाक०
तत् । चिकित्सालय, दारुल-शफा, अस्पताल।
चिकित्सकके निमित्त राजादि इसे उपयुक्त स्थानपर
बनवा देते हैं। वैद्यकशास्त्रमें लिखते—आरोग्य दान
करनेसे चतुर्वर्ग देनेका फल पाते, क्योंकि उसे धर्म,
अर्थ, काम, और मोक्ष सकलका साधन ठहराते हैं।
आरोग्यशालामें महीपथ और उत्तम उपकरणकी
सामग्री रहना आवश्यक है। रोगीके आहारीय वहु
अन्न, सरस व्यञ्जन और दुग्धादि रखनेकी भी व्यवस्था
होना चाहिये। शास्त्र, प्राज्ञ, भीषण-सकलका
बलवीर्यदर्शी, भीषण एवं मूलका यथार्थ गुणज्ञ और
आहारकालवित् वैद्य नियुक्त करे। जो व्यक्ति शानि,
मांस एवं भीषणका बलवीर्य नहीं जानता, प्रियस्वद
नहीं होता और सर-गले द्रव्यके परिव्यागका कारण
नहीं समझता, वह हया ही वैद्य कहाता है।

आरोग्यशालाका क्रम एवं दैव्यका लक्षण देखनेसे
समझते, पहले भी हिन्दू राजाधिके अधिका-समय

दातव्य भीषणालय और राजनियुक्त प्रवीण चिकित्सक
रहते थे। यूरोपमें सर्वप्रथम ई०के ४थे शताब्द
आरोग्यशाला (Hospital) खुली थी। आजकल
वहाँ जितने अस्पताल देखते, उनमें सेष्ट-वार्धनस्पृको
सर्दप्राचीन पाते हैं। वह ११२२ई०में बनाया गया था।

आरोग्यशिखी (सं० स्त्री०) आरोग्यधर, अम-
लतासका पेड़।

आरोग्यस्नान (सं० स्त्री०) आरोग्ये रोगराहित्ये सति
तस्मिन्निमित्तकं स्नानम्, शाक० तत् । रोगसे छूटनेका
स्नान, बीमारी रफा होनेपर किया जानेवाला मुन्न।

आरोग्यान्द (सं० स्त्री०) पादशेयोश्च जल, गर्म
करनेसे चौथाई बचा हुआ पानी। जो तीय पादशेय
होता, वह आरोग्यान्द् कहाता है। (भावप्रकाश)
इसे सेवन करनेसे सर्वरोग दूर होता है।

आरोचन (सं० त्रि०) तीजस्ती, रोगन, चमकोला।
(वै०) अरुची। (निरुक्त १।१०)

आरोह्य (सं० त्रि०) आरोहणका काम देनेवाला,
जिसपर चढ़ा जाये।

आरोह्य (सं० त्रि०) आरोहण करनेवाला, जो
चढ़ता हो। (पु०) आरोह्य। (स्त्री०) आरोह्यी।

आरोधक (सं० त्रि०) आ-रुध् कर्तारं बुज् । पावरक,
रोकनेवाला।

आरोधन (वै० स्त्री०) आ-रुध् भावे तुग् । १ अ-
रोधन, निरोध, राक। २ गुप्तव्यान, पोगोदा जगह।
“नखे चतुर्थे दिवः” अन् १।१०।१। “आरोधने सर्वकारके”
(चाणक्य)

आरोधना (हिं० क्रि०) अरोधन करना, रोकना।

आरोधनीय (सं० त्रि०) आरुध्यते, कमपि ल्युट् ।
१ अरोधन किया जानेवाला, जिसे रोक जाये।
करणे ल्युट् । २ आरोधन साधन, रोक देनेवाला।

आरोप (सं० पु०) आ-रुध्-णिच्-लुाट्, इण्य प
णिच् लोपः। रुधः पाठ्यपरस्ताम्। पा ०।१०।१। १ न्याय,
स्यायन, निवेगन, तक्रुरो, नगाय, जोडा २ प्रदेश,
चूरत। ३ अन्य पदार्थमें अन्य धर्मका पवभासण
मिथ्याज्ञान। जिसमें जो धर्म नहीं रहना, उसमें
उसी धर्मकी लगा देनेसे बुद्धिका नाम आरोप-ज्ञान

पक्षता है। जैसे दृष्टिमें वस्तुमान। देहात्मिक रूपमें पक्षाम कहते हैं।

पारोप वाच्यं चौर पनाहायं मिथे दो प्रकारका होता है। जहाँ बीच निवृत्त रहते भी काम करनेको भी वाच्यता, वहाँ वाच्यं पारोप जाता है। जैसे, न चोरेका निवृत्त रहते भी सुपुत्रको वस्तु कहते हैं। परोपच प्राप्तका नाम पनाहायं पारोप है। वेदान्त-मतमें प्रथमं पञ्चकाम अत्र दीक्षया पध्यारोप उच्यते है। पञ्चोत्तरैः।

पारोपक (मं० लि०) पा-रुह-विष्-सुम्। पारो-पचरता, जगन्निवासा।

पारोपद (मं० ली०) पा-रुह-विष्-सुम्। १ काम, तज्जरी, जगत्। २ ऊपर उठा देनेका काम। ३ चेटका जगाना। ४ विज्ञान, सुपुर्दगी। ५ तनुपयोग, तार चढ़ाया।

पारोपणीय (मं० लि०) पा-रुह-विष्-पनीयर्। १ चढ़ाया जानेवाला, जिसे ऊपरको उठाया जावे। २ स्थापनीय, रथा जगन्निवासा।

पारोपना (लि० लि०) १ निवेदन करना, जगाना, वेदाना। २ चढ़ाना, ऊपरको उठाना।

पारोपित (मं० लि०) पा-रुह-विष्-रु-इट। १ पारोपण कराया हुआ, जो चढ़ाया गया हो। २ स्थापन किया हुआ, जो जगाना गया हो। ३ पाक-गिरक, इतिहासिकिया।

पारोप्य (मं० लि०) पा-रुह-विष्-यत्। १ पारो-पणीय, जगाना जानेवाला। (चय०) २ पारोप-करके, जगानाकर।

पारोप्यमाय (मं० लि०) चढ़ाया जाता हुआ, जो विंश रहता हो।

पारोह (मं० पु०) पा-रुह-यम्। १ पात्रमय, जगन्नी। २ नीच स्थानमें ऊर्ध्व स्थानको गमन, नीचेमें ऊपरको उठान। ३ चट्टादिका प्रादुर्भाव, कौवल वगैरहका फटना। ४ चप्टी या घोटकके ऊपरकी बेलक, हाथी या घोड़ेकी भगरी। ५ दीर्घ, जगान। ६ प्रचय, बुनयं। ७ निरम्य, सुतङ्ग। ८ ज्ञान, वेदाना। 'पारोहो दीर्घः'। 'पारोहिणी च'। (६५)

८ पारोहयज्ञो, मगार। ९- टण, सुदर। ११ पव-तरण, उतार। १२ पाकर, यान।

पारोहक (मं० लि०) पा-रुह-यम्। १ पारोहय-कर्ता, चट्टनेवाला। २ उच्यतमीन, उठनेवाला। ३ उठा देनेवाला। (पु०) ४ चपायङ्ग, मगार। ५ उच, दस्युत।

पारोहण (मं० ली०) पा-रुह-यत्। १ नीच-स्थानमें ऊर्ध्व स्थानको गमन, नीचेमें ऊपरका जाना। २ चट्टादिका प्रादुर्भाव, कौवल वगैरहका फटना। पाहणनेतिन, करवे स्युट्। ३ शोषण, मिट्टी। ४ अभिज्ञम, जगाना। 'पारोहण मन्त्रः'। (६५) 'पारोहणं मन्त्रोत्तमे पारोहिणी वगैरथे'। (६५) (वि०) ५ मकट, गाड़ी। ६ ल्यात्यनी, नापनेकी जगह।

पारोहणिक (सं० लि०) पारोहणमन्त्र्याय, चट्टनेके मुनातिक, (प्री०) पारोहणिकी।

पारोहणीय (मं० लि०) पाहण्ये, पा-रुह कर्मणि पनीयर्। १ पारोहणके योग्य, चढ़ा जानेवाला। पारोहणं प्रयोजनमस्य, ए। चट्टनेका (पारोहः) मगार। २ पारोहण-माधन, चट्टनेमें काम देनेवाला।

पारोहण्य (मं० लि०) पारोहः प्रमत्त-नितम्ब-स्थानमस्य, मनुष्य मस्य प वसे इति। प्रमत्त नितम्ब-युक्त, थोड़े चतङ्ग रखनेवाला। (प्री०) हीप्। पारोहवती, पारोहिणी। (पु०) पारोहवान्।

पारोहिणी (मं० प्री०) चट्टके लचयकी एक दगा। ज्योतिषमें पचमिपकी पारोहिणी दगाका कम इतरह निधा है,—

सूर्यकी पारोहिणी दगा पानेवर नर महत्त्व, सुख, परोपकारित, धी, पुत्र, भूमि, मो, चन्द्र, चप्टी चौर लविश्रायंमे मन्वय रहता है।

चन्द्रकी पारोहिणी दगामें धी, पुत्र, धन, मज, सुख, खानि, राज्य, सुपयोग, देवायं चौर माह्व-यति मभी हाय या जाता है।

कुजकी पारोहिणी दगा सुख, राजपूजा, माधव्य, धैर्य, मनीजिवाय, मोभाग, गी, चप्टी चौर पत्र प्रदान करती है।

बुधकी पारोहिणी दगा जगन्निधि दमोत्सव, गी,

अश्व, अश्वसमूह, भूपण, वस्त्र, पान, वाणिज्य, भूमि, अर्थ और परोपकार बढ़ता है।

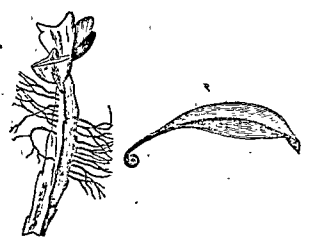
वृहस्पतिकी आरोहिणी दशाका फल महत्त्व, अर्थ, भूमि, गानक्रिया, स्त्री, पुत्र, राजपूजा और स्ववीर्य हेतु यशःप्रतापकी वृद्धि है।

शुक्रकी आरोहिणी दशाको प्रताप, वस्त्र, अलङ्कार, कान्ति, पूजा, प्रवृत्तिसिद्धि, स्वजनके साथ विरोध, मातृविनाश और परस्त्रीप्रसङ्ग देनेवाली समझना चाहिये।

शनिकी आरोहिणी दशासे विपाक अवस्थामें दृप-सम्य भाग्य, वाणिज्य, कृषि, भूमि, गो, अश्व और पुत्र पाते हैं।

आरोहिन् (सं० त्रि०) आरोहति, आ-रुह-णिनि। आरोहणकर्ता, चढ़नेवाला। (पु०) आरोही। (स्त्री०) आरोहिणी।

आरोही (सं० पु०) उद्भिद्का जातिभेद, किसी किष्कका पौदा। आरोही अपना भार संभाल नहीं सकता। यह कभी-कभी अपने-आप टहनियोंमें लिपट लाया करता, जैसे गुड़घी आदि है।



किसी-किसीमें केवल मूल निकलता, जो काण्डको पकड़ लेता है। १ पित देखो। कोई काण्ड अपने पत्तोंके आगे दूसरे वस्तुसे मिल बैठता है। जैसे, करिंदारी। २ पित देखो। अपर वस्तु पकड़नेके लिये आरोही जातिके वृक्षकाण्डसे घागे-जैसा अद्भुत फूटता, जो कलिका वा पत्रका रूपान्तरमात्र होता है।

आर्क (सं० त्रि०) अर्क-अभि-व्याय, चाफताबी।

आर्कलूप (सं० पु०) अर्कलपस्य ऋषिभेदस्यापत्यम्, अण्। ऋष्यन्तर्गे विनादिभ्योऽण्। पा ३।१।१०२। अर्कलूपके पुत्र। (स्त्री०) अर्की। आर्कलूपी।

आर्कलूपायण (सं० पु०) अर्कलूपस्यापत्यम्, युनि अण्यत्वे फक्। अर्कलूपके युवापत्य।

आर्कलूपि (सं० पु०-स्त्री०) अर्कलूपस्यापत्यम्, वाद्या-देराकृतिगणत्वात् इञ्। अर्कलूपके पुत्र वा कन्यारूप अण्यत्वे।

आर्कायण (सं० त्रि०) अर्कस्य गोत्रम्, हरितादित्वात् अण्। अर्कके गोत्रसे सम्बन्ध रखनेवाला।

आर्कायणि (सं० त्रि०) अर्क कर्णादित्वात् फिञ्। १ अर्कके निकटस्थ, अर्कके पासवाला। आर्कायणि देश झिनि-कथित 'आराकोटम्' मानसूय पड़ता है। उनके मतसे रानी सेमिरामिसने इस देशमें एक नगर बसाया था। (Pliny VI. 25) अर्कास्यायनाय सूर्यलोकस्य प्राप्तये हितम्, अण्। २ सूर्यलोकसाधन, सूर्यलोकको पहुँचा देनेवाला।

आर्कायन (सं० पु०) यज्ञविशेष। भगीरथने सोनह वार यह यज्ञ किया था। (नक्षत्रात्—२३३३३३३३ १०१ अथाय)

आर्कि (सं० पु०) अर्कस्यापत्यम्, इञ्। सूर्यपुत्र। यम, शनि, वेवस्तव मनु, सुधीय और कर्ण आर्कि कहते हैं।

आर्चं (सं० त्रि०) ऋषस्येदम्, अण्। १ नक्षत्रसम्बन्धीय, कवाकिवदार, तारोंसे भरा हुआ। २ भल्लूकसम्बन्धीय, भाल्लूके मुतासिक। (पु०) ३ ऋषके अपत्य। यह शब्द अश्वमेध, न्युतवर्ण और संवरणका विशेषण है। आर्चवर्ष (सं० त्रि०) तारकित वत्सर वा रागिचक्र, कवाकिवदार साल या दीर।

आर्चोद (सं० पु०) ऋचोदः पर्वतोऽभिजनीऽस्य, अण्। अभिजन्मप। पा ३।१।१०। ऋचोद पर्वतपर पियादि नामसे वासकारी, हिल विशेष, ऋचोद पहाड़का प्रमत्तौ वागिन्दा।

आर्च्य (सं० पु०) ऋचे भवम्, यञ्। अर्च्योऽपि इञ्। पा ३।१।१०। नक्षत्रमथ, तारोंसे पैदा।

आर्गयण, अर्कयण देखो।

आर्गयन् (सं० त्रि०) ऋगयन्स्य कृती पत्यः तत्त भवः

आर्तिमत् (सं० त्रि०) पीडित, बीमार, आनुर्दा ।
 (पु०) आर्तिमान् । (स्त्री०) आर्तिमती ।
 आर्तिङ्गन् (सं० त्रि०) पीडानिवारक, दट्टे दूर
 करनेवाला । (पु०) आर्तिङ्गा ।
 आर्तिचर, आर्तिङ्ग देखो ।
 आर्ति, आर्ति देखो ।
 आर्ति (वै० स्त्री०) आ-ऋ वाहुलकात् नि, कृदि
 कारान्ताद्वा ङीप् । १ गतिकर्त्री, चलनेवाली स्त्री ।
 २ धनुष्कोटि, कमान्का अक्षीर ।
 आर्तिज (सं० त्रि०) ऋत्वज इदम्, षण् । ऋत्वज-
 सम्बन्धी, पुरोहितसे सरोकार रखनेवाला ।
 आर्तिज्जीन (सं० पु०) ऋत्वजं तत्कर्त्तुं अर्हति
 खञ् । षष्ठ्यभिन्नां षष्ठ्योः । पा ३।१।११ । ऋत्विक्, पुरो-
 हित । (स्त्री०) आर्तिज्जीनी ।
 आर्तिष्य (सं० स्त्री०) ऋत्वजो भावः कर्म वा, थञ् ।
 ऋत्विक् कर्म, याजन ।
 आर्तिषी (सं० स्त्री०) आर्तिवयुक्त स्त्री, जो भीरत
 कपडोंसे हो ।
 आर्तिष्य (सं० पु०) अथर्ववेदोक्त द्विर्भूता नामक
 असुरके पिता । (अथर्ववेदोक्त ११।१२२)
 आर्ष (सं० त्रि०) अर्थादागतम्, षण् । १ यस्-
 सम्बन्धी, शयके सुतासिक । २ वाक्यार्थकी मर्यादा
 द्वारा प्राप्त, माही, पुरमतलव । यह पद 'शाब्द'के
 विरुद्ध है ।
 आर्षपत्य (सं० स्त्री०) द्रव्यका अधिकार, चीजपर कुब्जा ।
 आर्षी (सं० स्त्री०) आर्ष-ङीप् । अलङ्कार शास्त्रोक्त अर्ध-
 सन्धव व्यञ्जना, उपमानद्वारा विशेष । 'आर्षो तुल्यसमानाया-
 श्लेषाय यत वा शक्तिः' (साहित्यदर्पण) तुल्य एवं समानादि
 शब्द रहने और सदृशार्थमें वति प्रत्यय लगनेसे आर्षी
 -उपमा होती है । भट्ट मतसे भावनाविशेष अर्थात् भाव-
 यिताके किसी व्यापारका नाम आर्षी है ।
 आर्षिक (सं० त्रि०) अर्धं ऋहति, ठक् । १ अर्धशाहक,
 पुरमानी । २ धनसम्बन्धी, जरदार । ३ ससार, माही ।
 आर्ष (सं० त्रि०) आ-अर्द-अण् । सम्यक् पीड़क,
 पुरदट्टे, दुःखदायी ।
 आर्षकामिक (सं० त्रि०) कंसः परिमाणभेदः, अर्ध-

यासौ कंसयेति तेन क्रीतम्, ठक् । अर्धे कंस परि-
 मित वस्तु द्वारा क्रीत, एक मनमें खरीदा । दा मनका
 एक कंस होता है । इमीप्रकार आर्षप्रत्यय, आर्ष-
 कोष्ठयिक और आर्षद्रौणिक शब्द भी बनता है ।
 आर्षधातुक (सं० स्त्री०) आर्षधातुर्भवेत् । पा ३।१।१३ ।
 सूत्रविशेष-परिभाषित तिङ् एवं गित् भिन्न धातुके
 उत्तर विहित प्रत्यय विशेष ।
 आर्षपुर (सं० स्त्री०) अर्धपुरस्य, एकदेशि-तत् ततः
 स्वार्थे षण् । पुरका समानार्थ ।
 आर्षरात्रिक (सं० त्रि०) आर्षरात्रे भवम्, ठक् ।
 १ अर्धरात्र-प्रभव, आंधरातका पैदा । (पु०) २ अर्थात्प-
 शास्त्रका शाखाभेद ।
 आर्षवाहनिक (सं० त्रि०) अर्धवाहनेन जोयति,
 ठक् । वितनादिभ्यो । पा ३।३।११ । अर्धं वितनसे लीनेवाला,
 जो बाधी तनवाहसे जिन्दगी काटता हो ।
 आर्षिक (सं० त्रि०) १ ब्राह्मणविवाहित वैश्यकन्योत्पन्न
 जातिविशेष ।

“द्वैश्यान्त्यासतुत्पत्तौ प्राप्तेन तु षं क्तमः ।
 आर्षिकं स तु विद्वा भागा विभे भं षं ष्यः ॥” (पारार)
 (पु०) अर्धं क्षेत्रगस्याधमर्हति, ठक् । स्वामीके
 निकट क्षेत्रजात-शस्यका वितनरूप अर्धप्रहीत छपक-
 विशेष, जो किसान मालिकसे उजरतके तीरपर खेतमें
 पैदा होनेवाले पनाजका बाधा हिस्सा पाता हो ।
 “आर्षिकं कुलमित्यपि गोपाथी दासनापिनी ।
 एते शब्दे तु भोश्यान्त्या यथाकारं निवेदयेत् ॥” (मनु)

अर्थात् छाप चलाने, पुरुषानुक्रमसे अपने धंशके
 मित्व रहने, गो पालने, दास बनने और चौरकर्म
 एवं आत्मसमर्पण करनेवाले शूद्रका पय खा सकते हैं ।
 आर्द्र (सं० त्रि०) अर्ध गतो रक् दीघय धातोः ।
 अर्द्ध दीघय । उण् ३।१७ १ क्लिप्त, तर-ध-तर, भोग ।
 'आर्द्रं आर्द्रं द्विभं दितिते त्रिभित्ते षड्वयुक्तम् ।' (अमर) २ जूतन,
 सरसवृक्ष, हरा । ३ काठिन्यशून्य, नर्म । ४ आतुगुण-
 युक्त, पाजाद, खुला । (स्त्री०) ५ अर्धिनीमें पठ नशय ।
 आर्द्रां देखो । (पु०) ६ पृथुके एक धौत्र ।
 आर्द्रक (सं० स्त्री०) अर्द्धयति रोगान्, अर्द्धं पन्तभूत-
 ष्यार्थे रक् दीघय संप्रायां कन्, आर्द्रायां सरसभूमौ

जातं वा युन्. भार्दयति जिह्वाम्, भार्द्रं कृत्यर्थं पिचु-
क्षीन् वा। बहुवचनवाचि। ७५. १२०। १ शुद्धवेर, अदरक।
'भार्द्रं शुद्धं चान्' (अनर) यह शुष्कीके समान गुण
रखनेवाला एवं कटु होता और पकनेमें मधुर पड़
जाता है। भोजनमें पहली सवणके साथ खानेपर
भार्द्रक अग्निदोषन, रुचिकर और जिह्वा-कण्ठ-शोधन
है। इसे शोथ और शरत् ऋतुमें खाना न चाहिये।
(भाष्यकार) भार्द्रक नागरगुण, भेदन, दीपन और
गुरु है (मदनपात्र) अदरक देखो।

(पु०) २ शुद्धशोथ वसुमित्र नृपतिके पुत्र।
(विचित्राण २१३। १०) पुष्पाणान्तरमें अन्त्रक, अश्वक और
भद्रक नाम भी लिखा है।

(त्रि०) ३ भार्द्रानघत्रजात।

भार्द्रकस्त्रस (सं० पु०) भार्द्रकका स्त्रस, अदरकका
अर्क।

भार्द्रकाष्ठ (सं० स्त्री०) हरिषर्ष दाक, सबजं हेजूम,
इरी सक्की।

भार्द्रचिकण (सं० स्त्री०) आम-चिकण-गुवाक, कच्ची
चिकनी सुपारी।

भार्द्रज (सं० स्त्री०) शुष्की, सींठ।

भार्द्रता (सं० स्त्री०) १ क्लेद, तरी, सीन। वैद्यक-
मतमें सरस और नीरस भेदसे भार्द्रता दो प्रकारकी
होती है। वास्तुक एवं सर्प शाक, निर्गण्डी,
एरण्ड, धत्तूरादिमें सरस और घट, अश्वत्थ,
करीर प्रभृतिमें नीरस भार्द्रता रहती है। नीरस
भार्द्रता भी सदुग्ध और गुग्गरस भेदसे दो प्रकारकी
है। फिर सदुग्ध पदायमें कोरे मृदु और कोरे
तीक्ष्ण होता है। शातला, (पीला सेहुंड) वज्र,
शीतुण्ड, आदि तीक्ष्ण और दुग्धिका, अर्क, चीरिका
प्रभृति मृदुदुग्ध है। (परिभाषाप्रदीप)

२ नयोनता, ताजगी। ३ कोमलता, नमी।

भार्द्रत्व (सं० स्त्री०) भार्द्रता देखो।

भार्द्रदाडिमनिर्यास (सं० पु०) भार्द्र दाडिमका स्त्रस,
ताजे अनारका अर्क।

भार्द्रदानु (वै० त्रि०) क्लेद देनेवाला, जो तरी
वर्षमेंता हो।

भार्द्रनयन (सं० त्रि०) अशुलोचन, अशकवार, चांसे
डवडवाये दुषा।

भार्द्रपदी (सं० स्त्री०) भार्द्रा पादो यन्त्राः, निपा-
तनायु पादस्यान्तलोप डीप् पदादेश। इन्द्रदेव। त
शशास्त्र। भार्द्रचरण स्त्री, भीमे परिवाना औरत।

भार्द्रापवि (वै० त्रि०) क्लिप्तप्रान्त्युक्त, वाहरी शिवा
तर रखनेवाली। यह अश्व शकटादिका विमेषक है।

भार्द्रापवित्र (वै० त्रि०) १ क्लिप्तगावनी, तरमादी-
वाली। (पु०) २ भीम। गोघनी सदा क्लिप्त रहनेमें
सामकां यह नाम पड़ा है।

भार्द्रामरिच (सं० स्त्री०) आममरिच, कृष्णमिर्च।
यह किञ्चित् उष्ण, पाक एवं रसमें उष्ण, अमिष्ठ,
कटुक, गुरु, अग्निप्रदीपन, तिक्त, रुचक, स्नायु, सन्ध-
कर, कफ-वात-हर और हृदय तथा हृन्निहा दूर
करनेवाला है। (विचित्राण ७)

भार्द्रभासा (सं० स्त्री०) क्लिप्तकर्म-भासा, दन्तुद,
मसवन।

भार्द्रवटक (सं० पु०) अन्दि मोक्याएक, अन्तर
खानेकी चाजू। लोग इसे अश्वत्थ वटका अर्क के
मार्पापटका वटक बना तलमें डकिये आम चायने कर
कर डाले। फिर मृदुदिह, अन्दि, भार्द्रक एवं
नीरकचूरा, निम्बूरस तथा यशाने मिला, गोम-गोम
वट, और तेजसे तल वटकको अग्निगात्रमें डबो
देते हैं। यह पाचक होता है। (भाष्यकार)

भार्द्रवृत्त (सं० पु०) कर्मधा०। अश्वत्थ, तर टरखत।

भार्द्रवृत्तय (सं० त्रि०) अश्वत्थी, ताजे

सं०

सरस

नक्षत्रकी प्रथमस्थ ठहरानसे आर्द्रा पठस्थानीय है। यही मत आजकल प्रचलित है। आर्द्राका पतकीय (Tabular Celestial latitude) ११° एवं स्फुट विक्षेप १०° ५०' उत्तर और पतकीय भ्रुवक (Tabular Celestial longitude) ६७° तथा स्फुट (True Celestial longitude) ६५° ५" है। पाद्याल्य ज्योतिर्विदीमें किसी-किसीके अनुमानसे पतद् नक्षत्र-स्थानीय १३३ संख्यक तारा (Tauri) है। २०० वत्सर पूर्व युगोपीय पतकमें इस नक्षत्रके उक्त योग ताराका भ्रुवक ८२° ३८' ४४" रखा। सूर्य-सिद्धान्तके मतसे विक्षेप ८° और भ्रुवक ६७° २०' कला निकलता है। इसमें पाद्याल्य ज्योतिर्विदाओंके अनुमानसे १३७ योगतारा (Tauri) है।

आर्द्रा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मनुष्य अधिक चुधायुक्त, रुक्मशरीर, कलिमिथ, क्रोधी, अशान्त और शरणागतके प्रति निर्दय होता है। (कोशोपदेव)

इसी नक्षत्रपर सूर्य आनेसे वर्षा होने लगती है। कृषक आर्द्रा में धान्य बोते हैं।

२ क्षण्णान्विषा, काली सिद्धिया, तेलियाविष।

३ आर्द्रक, अदरक।

आर्द्रालुब्धक (सं० पु०) केतुघ्न, तुक्ना-रास-जम्बू, आर्द्रावीर (सं० पु०) शक्तिकी उपासना करनेवाला, वाममार्गी।

आर्द्रामणि (सं० स्त्री०) १ तड़ित्, सैका, गाज।

२ अश्वविशेष, एक इयिया।

आर्द्रास्य (सं० स्त्री०) आर्द्रक, अदरक।

आर्द्रिका (सं० स्त्री०) १ छुद्रार्द्रक, छोटी अदरक।

२ आर्द्रधनिका, हरी धनियां। यह तिक्त, मधुर, मूत्रल, पित्तको न बढ़ानेवाली, भेदी, गुण, तीक्ष्ण, उष्ण, दोषन, कटु, पाकमें रुच और वात-कफापह होती है। (भाग्यट)

आर्धं (सं० त्रि०) सामि, नीम, चापा। यह शब्द समासान्त पदके आर्द्रिमें आता है।

आर्धद्रोणिक (सं० त्रि०) सामि-द्रोण-क्रीत, आर्धद्रोणमें खरीदा हुआ, जो चार मन रखता हो।

(स्त्री०) आर्धद्रोणिकी।

आर्धधातुक, आर्धधातुक देखो।

आर्धप्रस्यिक (सं० त्रि०) सामि-प्रस्य-क्रीत, दग्ध सेरसे खरीदा हुआ। (स्त्री०) आर्धप्रस्यिकी।

आर्धमासिक (सं० त्रि०) १ अर्धमास टिकनेवाला, जो आधमहीने रहता हो। २ एक पक्ष अर्धमास करनेवाला, जो पन्द्रह दिन गौर करता हो।

आर्धरात्रिक, आर्धरात्रिक देखो।

आर्धिक, आर्धिक देखो।

आर्धक (वं० त्रि०) हितकर, कारामद, फायदेमन्द। (स्त्री०) आर्धकी।

आपयिता आर्धित देखो।

आपयित (वं० पु०) हानिकारक व्यक्ति, तुक्सान् पङ्कचाने या चोट देनेवाला गजस।

आर्धं (सं० पु०) ऋभुणा दृष्टं साम ऋभुदेवतास्य वा, अण्। १ छतय भावनमें गेय पञ्चसूत्रात्मक सप्तसामात्मक पवमान विधेय। (त्रि०) २ ऋभु-मन्वन्धीय। (स्त्री०) आर्धंवी।

आर्य (सं० पु०) आर्यते गम्यते पूजा, कृ-प्ल्यत्। १ महाकुल, कुलीन, सभ्य, सज्जन, साधु, परमांबरदार या वफादार गजस। 'महापञ्चकोशसंस्कृतमहाशरः' (शर) २ पूज्य, श्रेष्ठ, सज्जन, नाय्योक्तिमें मान्य, उदार-चरित, शान्तचित्त, इज्जतदार गजस। ३ स्वामी, हकदार, वारिस। ४ मित्र, यार। ५ वेद्य, बनिया। ६ तुल्य, वीरमतके चार सिद्धान्त समझने और उनके अनुसार चलनेवाला। ७ मनु सावर्णिके एक पुत्र। ८ अपने देशके देवताका भात, मुस्ककी उन्मुहियतका पावन्द। ९ वेदोक्त प्राचीन जाति विधेय।

पाद्याल्य पण्डित 'अर्' धातुसे अर्धं शब्द बनाते हैं। अर् धातुका अर्थ भूमिकर्षण है। जेटिन, योक्त (यनानी), पड़लो-सेचन, अंगरेजी, रुमी, आयरिंग, कर्षण, वेल्मी, प्राचीन अर्ध, निचुयेनिक प्रभृति अनेक युगोपीय भाषामें इन या कृषिशाब्दक शब्द इधे अर् धातुसे निकलते हैं। उनके मतानुसार कृषिकार्य करनेमें ही इस जातिका नाम आर्य पड़ा है। उक्त युगोपीय जाति भी आर्यवंशसे मनुद्गत हैं। र्भरेण कृषामोहन वन्द्योपाध्यायके मतसे असीरियाकी मिस्र-

सिधिका 'परि' शब्द हलवाचक. ठहरता, जो आर्यका प्रतिरूप हो सकता है। अतएव पाश्चात्य पण्डितोंके मतमें आर्य नामको प्राचीन रूपक जातिका द्योतक मानना पड़ता है।

क्या आर्य रूपक थे ? प्राचीन जातिके मध्य क्षत्रिय-कार्य प्रधान जीवनीपाय रहनेसे क्या आर्य शब्द क्षत्रिय-वाच्य हो सकता है ? वैदिक और लौकिक समय विध प्रयोगमें आर्य शब्द शत शत बार आया है। किन्तु आर्य शब्द अथवा इसके मूल धातु कसे कहीं भूमिकर्षणका अर्थ नहीं निकलता। जहाँ आर्य शब्द पड़ा, वहाँ 'येष्ठ' और 'विश्व' प्रकृति अर्थमें लड़ा है। इसीसे सायणका 'अरणीय' अर्थ ही आर्य शब्दका मूल अर्थ है। हम समझते, कि वैदिक समय हम जातिके लोग नाना स्थानोंमें जाकर रहते थे। इसीसे आर्य नाम निकला होगा।

पारसियोंके अथस्ता नामक प्राचीन धर्मशास्त्रमें 'ऐर्य' शब्द अथास्तद और साधारण दानो अर्थपर लगा है। कावशनी एदलजी कांगेने बन्दीटादका अनुवाद जो गुजरातीमें किया, उसके श्रेष्ठ अभिधानमें ऐर्य शब्दका प्रकृत अर्थ अर्थ और आर्य लिया है। अरमनी भाषामें 'परि' ईरानी और साहसिककी कहते हैं। अतएव वेद अथनीत एशियाखण्डकी अपर भाषाओंमें भी जब विकृताकारप्रप्त आर्य शब्दका अर्थ हल वा भूमिकर्षण लगना कठिन पड़ता, तब समझपर नहीं चढ़ता, पाश्चात्य पण्डितों द्वारा कथित आर्य शब्दके मूल अथवा अर् धातुके अर्थसे कहांतक हल अथवा भूमिकर्षणका भाव कड़ता है।

सायणाचार्यने ऋग्भाष्यमें आर्य शब्दका अर्थ नाना-प्रकार लगाया है,—१ विदुषीऽनुष्ठानोन् (१।१।१८), २ विराटः स्तोत्राः (१।१।११२), ३ विद्वे (१।१।१८१), ४ अरणीयं सर्व-नेरुण्यम् (१।१।१८८), ५ उत्तमं वर्णं ये वर्णिकम् (१।१।१८८), ६ मन्त्रे (१।१।१८९), ७ कर्मयुक्तानि (१।१।१९०), ८ कर्मानुष्ठानसे अर्थ (१।१।१९०)।

अर्थात् १ विश्व यज्ञानुष्ठाना, २ विद्वि स्तोता, ३ विद्वि, ४ अरणीय या सर्वगन्तव्य, ५ उत्तम वर्णं वर्णिक, ६ मन्त्र, ७ कर्मयुक्त और ८ कर्मानुष्ठानसे अर्थ है।

शुक्लयजुःसंहिता (१।४।३०)के भाष्यमें महीधरने आर्य शब्दका अर्थ 'खामी' और 'वैश्व' लिखा है। किन्तु वेदके प्रयोग एवं यास्कके अर्थसे आर्य शब्द मानवका द्योतक है। सायणके भाष्यसे भी यज्ञादि कर्मानुष्ठान द्वारा मानवजातिका अर्थ बनना प्रमाणित होता है।

इस प्रकार आर्य शब्दसे मानवजातिका भाव निकलता है। किन्तु आर्य नाम पड़नेका कारण क्या है ? वर्तमान पण्डितोंके मतमें 'ऋ' और 'एव' से आर्य शब्द बनता है। ऋ धातुका अर्थ चलना और फँसना है। अतएव आर्य शब्दका मूल अर्थ सायणोक्त 'अरणीय या गन्तव्य' ठहरता है। इस जातिने सर्वत्र गमन करनेसे आर्य नाम पाया होगा। आर्य शब्दका दूसरा रूप 'अर्य' है। महीधरके मतसे वैश्वकी आर्य कहते हैं। इस मतकी माननेपर वैश्व होने या सर्वत्र व्यवसाय करनेकी जानेंसे यह जाति आर्य कहायी है। वेदमें आर्य जातिका परिचय जो पाते, उसको विस्तृत भावसे नीचे देखाते हैं,—

आर्यजातिका उद्भव, पुरातत्त्व, इतिहास और सम्बन्ध-निर्णय अत्यन्त प्रयोजनीय है। क्योंकि उसीपर सभ्य जगत्का प्राचीन सम्पूर्ण इतिवृत्त निर्भर है। पक्षसे देखना चाहिये—अति प्राचीनकाल आर्य शब्द कैसे व्यञ्जित होता था। जगत्के आदिग्रन्थ ऋक्-संहितादिमें आर्यशब्द बहुधा स्वान-स्वानपर मिलता है। इससे प्रतीति हुयी, कि उस समय अंधविशेषपर अर्थ जाति ही आर्य नामसे प्रसिद्ध रही। यथा,—

"विशनीर्हान् ये च दशभिर् बर्षंभते रथवा गावदत्तान् ।"

(अथर्ववेद १।१।१८)

'हे इन्द्र ! पशुवानो, कौन आर्य और कौन दस्यु है। कुशयज्ञके हिंसाकारियोंको शासन कर अपने यशमें लावो ।'

"विद्वान् अथिद्वन्ने इतिमसां" सद्यो वर्षं वा पुन्यन्त ।"

(ऋक् १।१।११२)

'हे अग्नि ! हमारी प्रार्थना समझ दस्युओंके प्रति अस्त्र निक्षेप करो और हे इन्द्र ! आर्यगणका सामर्थ्य तथा घन बढ़ावो ।'

“कवि दस्युं वडुरेणां चणनोरं ज्योतिषमनुपायां।” (धृक् १।११।७१)
 हे भविष्यदय। वक्ष्यसे दस्युको मार धार्थके प्रति
 ज्योतिःप्रकाश करो।

“इन्द्रः समन्तं यजमानान्।” (धृक् १।११।०८)

इन्द्र युद्धके समय धार्थ यजमानको बचावे।

“हिरण्यसुत भोगं समाप्त इतो दस्युं धार्थं वर्धनाय॥”

(धृक् १।११।८)

इन्द्रने हिरण्य धन दिया और दस्यु मार
 धार्थवर्ण को बचा लिया है।

“अर्धं भूमिदत्ताभार्यां वार्धं वृष्टिं दास्यते मर्त्याय।” (धृक् १।११।११)

मैं (इन्द्र) ने धार्थको भूमि दी है। मैंने मर्त्य
 (इष्यदाता) को वृष्टि पड़वायी है।

“धया दाशान्पार्थांश्चि इमा करो बन्विन्तुमुद्रका नाशयिषि।”

(धृक् १।११।१०)

“शाश्वाम दास्ये मारं तुङ्गा सहकृतेन संघसा संघसता।”

(धृक् १।११।१२)

“नवदशमिन्द्रवत्पुत्रायां विद्यमान्।” (धृक् १।११।१०)

“नवाहं सर्वं धर्मानि यत्र गृह्णते इत्यतः।” (धृक् १।११।११)

“शूद्राणां धर्मविषयान्धर्ते।” (शाश्वत १।१।११)

तेजिरीयसंहितामें धार्थ और शूद्रका धर्मनिमित्त
 कलह लिखा है। (धृक् १।११।८) ऐतरेय-ब्राह्मणमें भी
 धार्थशब्द आया है। “यद्वं मारं वारं मयति। (धृक् १।११।१२)

निराक्षकार यास्कने जातिवचनमें एकत्र धार्थ शब्द
 व्यवहार किया है। “विकारमसादेव।” (२।१।१०)

उन्हींमें अन्वय धार्थ-शब्दके व्याख्यानमें लिखा
 है,—“धार्थः ईश्वरः।” (१।१।११)

धार्थात् ईश्वरके पुत्रका नाम धार्थ है।

निघण्टु (२।२२) में ईश्वरनामपर ‘धार्थ’ शब्द परि-
 पठित है। उन्हींसे अपत्यार्थ प्रत्ययमें धार्थ शब्द बनता
 है। जैसे सुसलमानोंके धर्मप्रवर्तक मुहम्मद साक्षात्
 ईश्वरदूत और ईसायियोंके ईसा ईश्वरात्मज, जैसे ही
 पहले हमारे भी पूर्वपुरुष रूपवत्, बलवत्,
 विद्वत्, सत्यवादितां धार्दि बहु सद्गुण एवं पवित्र
 धारारोसे ईश्वरपुत्र माने गये हैं। इसीसे ईश्वरपुत्र
 इनका अपदेश हुआ और यही हमारे धार्थ-
 नामका निदान है।

महासुनि पाणिनिने भी एक स्थानपर धार्थशब्दका
 उल्लेख किया है,—“पाणिनिप्रकरणयोः। (१।१।१८)

धार्थ जाति पति प्राचीन है। पूर्व समय यह
 धार्थ-विद्वानादि ब्रह्मविद्वान्त्वक्वित्तम और पति-
 सम्बन्ध रहे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भेदसे धार्थ
 विविध होते हैं। दस्यु और दास द्विविध शूद्रोंसे
 भिन्न ठहरनेपर इन्हें ईश्वरपुत्र कहा है। किन्तु
 पय कालचक्रके परिभ्रमण-नियमसे, वेदविज्ञान,
 ऐश्वर्य और भक्तवाञ्छित्य तथा बहिर्वाचिक्य जो
 सुमुमुक्षु दयामें पड़े बारबार खास होते, इसीसे जोवित्त
 समझे जाते हैं। धार्थवर्तक मर्त्य प्राचीन धार्थवर्तक परिभ्रमणके
 जातिविषय—जगत्के पादिप्रत्य शृङ्खलित्वासे विभक्ति
 होती—पति-पूषकाश्च धार्थजाति स्वतन्त्र समझी
 जाती थी। उस समय वर्तमान कालकी तरह जाति-
 भेद या वर्णविभागकी प्रथा प्रचलित न रही। इस
 जातिके क्षत्रिय, राजा और शूद्रस्य साधारण धार्थ
 नामसे ही परिचित थे। विजित धनार्थ दस्युसे धृष्यक
 रखनेके लिये ‘धार्थवर्ष’ शब्द द्वारा धनपरि-
 चय देते रहे। प्राचीन शृङ्खलित्वासे उस समय
 धार्थ और शूद्र कथन दो ही वर्णविभागका प्रसङ्ग
 पड़ता था। शूद्र कहनेसे प्रथमतः दस्यु या दास
 जातिका बोध होता रहा। क्रम-क्रम धार्थकी संख्या
 जितनी बढ़ी, नागा विषयमें उतनी ही उन्नति देस
 पड़ी। उसी समय विशेष-विशेष व्यक्ति को निर्धारित
 कार्यमें लगानेके लिये वर्णविभागकी आवश्यकता
 आयी थी। शृङ्खलित्वासे वर्णविभाग-मन्वन्तर
 निर्दिष्ट है,—

“आत्मकोश ह्यपराधीनाः धार्थः इति।

कश्च तदस्य वर्धेकं पत्यो यद्वी चरागतः।” (धृक् १।११।११)

‘इह (पुरुष)के सुखसे ब्राह्मण, शूद्रसे राजन्व,
 कुरुसे वैश्य और पदसे शूद्र निकला है।’ विना
 इसके यजुर्वेद (याज्ञसनीयसे) १।१।१८, तेजिरीय
 १।१।११, अथर्ववेद (५।१०।८) और ऐतरेय-ब्राह्मण
 (७।१।८) पद्यति प्राचीन धर्ममें भी वर्णविभागकी कथा
 मिली है। वैदिकयुगके धार्थोंमें शृङ्खलित्वा या पुरोहित,
 राजपुत्र और साधारण व्यवसायी यद्व्ययमनीयो लोग

हे नासत्य पखिद्वय ! यहां तैत्तिष देवताओंके साथ मधु पौन चावो, हमारा प्रायुः बढ़ावो और पाप छोड़ावो । २१२४४ ऋ. देवी ।

ऋक्षसंहितामें इन तैत्तिष उपास्य देवताओंके नाम नहीं दिये । अन्यत्र कहते हैं,—

“ये देवा दिव्येकादशसु शशिन्याग्नेकादश

स्यात्पु उद्यो मदिनेकादशसु ।” (ऋषयजु०००० १।४।१०)

आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षमें ग्यारह-ग्यारह देवता रहते हैं । याज्ञ, अनुयाज और उप-याज ग्यारह-ग्यारह रहनेसे तैत्तिष देवता होते हैं ।

(वेतस्यजु० १।८) अष्टवसु, एकादश रुद्र और द्वादश आदित्यसे तैत्तिष देवता गिने जाते हैं । (अथर्वजु० ४।३।७२)

उस समय प्रायः ऋषि अधिक देवताओंका अस्तित्व भी मानते थे,—

“जोषि मतावीसहस्राब्धिं विंशत्य देवा नव प्रायपर्यन्तु ।”

(ऋक् १०।५।१६)

तीन हजार तीन सौ अन्तालीस (३३३८) देवताओंमें अग्निकी उपासना की है । किन्तु अग्नि प्राचीन कालसे प्रायः एक ईश्वरकी स्वीकार करते प्राये हैं,—

“अद्विकलाधिकतुषादिदस कचोनृष्यामि विधमे न विधान् ।

विश्वस सभ षड्भि राजासगद्य षपे किमपि लिदेकं ।”

(ऋक् १।१।१६)

हम ज्ञानहीन हैं । कुछ न जानकर प्राणियोंसे समझनेके लिये पृकृति—जो छद्मो लोक स्तम्भन करते, यह क्या एक अजरूपमें रहते हैं ?

सिवा इससे २।१२।१, १।५।५।१-२२, ५।८।५।२-५ इत्यादि ऋक् पढ़नेसे एक ईश्वरकी बात आपही मनमें उठ आती है । निम्नलिखित मन्त्रमें इसका आभास है, कि प्रायोंके हृदयमें कैसे ईश्वरवाद प्रवेश हुआ,—

“यं तु सोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सव्यं यदि सव्यमसि ।

नेद्री चतौति वेम स ल प्राय क ईं ददयं कनभि उवाग ॥”

(ऋक् १।०।१)

हे युवाभिस्रापिन् ! इन्द्रका रहना यदि सत्य हो, तो तुम इनके उद्देशसे सत्य बोलो । नेम (ऋषि) कहते, इन्द्र नामके कोई नहीं । किसने सब देवा है ? किसकी स्तुति करेगी ?

उसी अग्नि प्राचीनकाल यज्ञकार्य सुसम्पन्न करनेके लिये विभिन्न-ऋत्विक् नियुक्त होते थे, यथा—देव-गणकी प्राधान्य करनेके लिये ‘होता’, इष्यदान करनेके लिये ‘प्राव या’, अग्नि मन्त्रवृत्तित करनेके लिये ‘अग्निमित्र्य’, पत्यरसे सोमको कूट रस निकालनेके लिये ‘प्रावग्राम’, नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेके लिये ‘प्रासा’ वा ‘प्रगास्ता’ और समस्त यज्ञ सम्पादन करने लिये ‘मिधावो’ वा ‘व्रह्मा’ । (१।१६२।५)

प्रायः ऋषिगणने ठहराया, कि मित्र-मित्र देवता परमात्माका नाम मात्र है । १०।११।४।५ ऋक्, सायणकृत उसके भाष्य और ७।४ निरुक्तमें उक्त विषय वर्णित है ।

प्रायोंकी रीति और प्रवृत्त—प्रायः पुत्रपौत्रादिके साथ एकत्र रहते तथा खाते (ऋक् १।११।४।५), और तत्कालमें सकल पुत्र पित्रधनके अधिकारी होते थे (१।७।३८) । पित्रधनमें अवस्थित अविवाहित कन्या पित्रकुलसे धन पाते रहीं (ऋक् २।१०।७) । पुत्र तथा कन्या उभयके यत्नमान रहते, पुत्र पिताकी क्रियाका अधिकार पाता और कन्याका सम्मान किया जाता था (ऋक् ३।५।२) । पुत्र न रहनेसे दौहित्रको अपना पुत्र बना लेते रहे (ऋक् ३।३।२) । स्त्रियों पतिके साथ यज्ञ करती (ऋक् १।१।३) और रथपर बैठ अपर स्थान घूमती फिरती थीं । इसी प्रकार अविवाहित अयस्यामि अधिक वयसतक रहनेसे पिता किंवा गुरुजन कोई आपत्ति उठाते न थे । विवाहके समय घर सुवर्णालङ्कारसे भूषित होते रहे (ऋक् ५।६।१४) । वधु-वध्यागत रहती थी (ऋक् ८।२।१।२) । यौवन पानेसे स्त्रियोंका विवाह होते रहा (ऋक् १०।८।५।२२) । सुन्दरी मद्र स्त्रियोंके मनोमत्त पतिकी वरप करती थीं (ऋक् १०।२।७।२) । विवाहके बाद स्त्रियोंकी पतिव्रतता के समय उपठीकन मिश्रित रहा (ऋक् १०।८।५।२०) । पतिके अष्ट पशुंच पत्नी कर्त्तव्य बनती (ऋक् १०।८।५।२०) और अथरपर प्रभुत्व, अथरपर वसित एवं नानादा तथा देवरपर कर्त्तव्य रहती थी ।

गुर (नगरादि) और ग्राम स्वतन्त्र रहे (१।४।१२०, ४।८।४, १०।१।१६ ; २।०।३।३।२) । जोइमय नगर

(०३१०, १५१४); प्रस्तरमय गतसंख्यक पुरी (४१२०१२) और स्रष्टवदार तथा स्रष्टव स्तम्भ-विगिष्ट पदास्तिका बनते थे (११२१३४, २४१५, ७८८५)। उत्कृष्ट गृह तथा सामान्य कुटीर (११२०१८) और गतदार-विगिष्ट यन्त्रगृह प्रभृतिका निर्माणकार्य भवगत रहा (१५१३)। षट्कादि द्वारा गृह प्रश्रुति (वाजसनेय १३१३) तथा यातायातका सुन्दर मार्ग (ऋक् १५८१) एवं दुर्गम पार्वत्य-देशमें सुगम पथ बनाने (११२११२०) और विद्यामस्थानमें खाद्यद्रव्यका प्रबन्ध लगाने थे (११२१६८)। गृहकट (१३०१५) घट्टिर वा गिर्यकाष्ठमें (४५११८) बनता और सारथिके बैठनेको स्थान रहता था। पशुहय योजित रथ (१८४१०) भी तैयार होता था। त्रिवन्धयुक्त तथा त्रिकोण रथमें (१.४७१२) बैठनेको तीन स्थान और तीन चक्र रहते थे। धातुवय-विगिष्ट (११८३१२) और युहार्य सुवर्णमण्डित रथ (५१६३५) प्रभृति भी व्यवहृत होता था। युद्धकाल योद्धा सुवर्णमय कवच तथा उष्णोप (१२५१३, ५५४१२), लोहवर्ण (१५१३), तनुवाण, वर्म, शंसत्रा, द्रापि, सुवर्ण वधःच्छादन (४५१४) प्रभृति पहनते रहे। युद्ध-यात्रामें ध्वज उड़ता (११०११२), दुन्दुभि वज्रता (१२८५) और सेनापति समस्त सैन्य ले चाली बढ़ता था (१३१३)। युद्धका सन्देशवच भी रहता था (५८१३)। युद्धजय होनेपर शत्रुका द्रव्य जो लुटता, वध सकल योद्धाओंको बंटते रहा।

चादि वैदिक युगमें रमणियोंको चलदार पहनना बहुत प्रचलन लगता था (१८५११)। निष्क (२१३१०), पात्रि, वासी, स्रक्, रूपम, खादि (५५१४), हिरण्य-कर्ष, मणि प्रभृति चलदारका नाम सुनते हैं (११२११४)। मुक्तादिका व्यवहार भी चलता था (१०६४१२)। निष्ककारी (सोनार) चलदार बनाते थे (८४०१५)। वाण (१८५१०), घोषो (२१३१३) कर्करि प्रभृति बीणा-जैसे वाद्ययन्त्र थे। नर्तकी नृत्य-गीत करते रहीं (१८२४)। रज्जुमण्डप-पुत्रिका (पुतली) का नृत्य भी होता था (४३३२३)। चार्य उर्ध्व, मेषलोम, वर्म और बल्कल पहनते

रहे। स्त्रियां वस्त्र चुनती रहीं (२१८४)। वयन-कार्य रात्रिको होती और ताना-बाना दो स्त्रियोंके-द्वारा चलते रहा (२३१६)।

रमणी रम्यनकार्यमें नियुक्त रहीं। चार्य—दधि-मिश्रित सक्तु, स्रष्टवय, पिष्टक (१५२१६), घृत, दुग्ध, दधि, मधु, षपूप, पक्षकल, शाकादि और चीरपक्ष पच खाते रहे। समय-समय मांसका भोजन भी होता था (५२८७, ८७०१०, १०७८१६, १०८६१४)। पतिधर्योंको सुख देनेके लिये पशुवतिको प्रयाभी रहीं (१३११५)।

गीत-प्रधान देगमें रहनेसे कुछ लोग सुरापिय भी थे (११२१७)। सोमरस-प्रसृत चार्योंके धर्म-कर्ममें परिगणित है।

वाणिष्यके लिये देगभ्रमण और संसुद्र गमन करते रहे (४५५१६)। क्रयविक्रयका नियम जो ठहरता, वध टूटता न था (४२४८)। सुद्राका प्रचलन रहा (५२०१२)। पवि देखो।

भाजकलकी तरह उस समय भी पक्षिग्राममें क्षयिकार्य होता था। कपक खेतो करते रहे (१०११ स्रक्त)। कुशून (खत्ती) में यव रखते थे (१०६८३)। पशुके मध्य श्रद्ध, बड़वा, हस्तो, स्रष्ट, मेष और बहन-कारी कुशुरको प्राचीन चार्य पालते रहे।

वैदिक युगके चार्योंको सूर्यकी दैनिक गति (११२३४), सौर दादग भर (राशि), उत्तरायण तथा दक्षिणायन, प्राचीन मास और षट्शुका विषय भवगत था (११६४ स्रक्त)। भाकर्षण-शक्तिका विषय भी समझते थे (८८५११—१८)।

व्योतिष मन्त्र (वशाति विषय देखो)।

भौषधिका गुणगुण जानने और रोगादिकी चिकित्सा-चलाते रहे। शत्रुप देखो।

षट्कसंहितामें युगादिका नाम नहीं निकलता। यजुःसंहितामें छत, वेता और दापर मन्त्र पाया है। वाजसनेयसंहिता (३०१८) में यह विषय विद्यमान है। षट्कसंहितामें नरकका नाम पविदित रहा। भव्यसंहितामें (१२४३३) में 'नारक' मन्त्र मिलता है।

पृथिवीके सर्वप्राचीन ग्रन्थ ऋक्संहितासे हम पार्थी-
की रीति और व्यवस्थाका वर्णन पहले ही लिख चुके
हैं। अथर्व वेद और ब्राह्मणमें पार्थीकी रीतिनीति-पह-
तिका हस्तान्त जो दिया, वह नीचे प्रकाशित किया है,—

ब्राह्मणोंमें प्रतिपद्दादिसे जीविका चलाना,
दानादिसे धनादिकी त्यागना, विद्याबलसे सर्वतत्त्व
ठहराना और राज्यरक्षणार्थ युद्धके लिये राजाज्ञासे
प्रसन्नतापूर्वक आर्यको पंर बढ़ाना चार धर्म
विशेषतः देख पड़ते थे (ऐतरेयब्रा० ७।५।३)। क्षत्रिय
बलवान्, प्रतिष्ठित, आयित-रक्षक, सर्वोपकारी,
तेजस्वी और यशस्वी रहे। वैश्य धन्यकी कर देते
और धन्यका धान्यादि तथा यथाकाम जीयत्व रखते थे।
शूद्रोंमें धावकत्व, कर्मकारत्व और प्रसन्नतापूर्वक शरीर
प्रदत्त विद्यमान रहा। (ऐतरेयब्रा० ७।५।५-६)

ब्राह्मणोंका बलकर भव्य सोम, क्षत्रियोंका न्यषोष,
उदुम्बर, अश्वत्थ तथा ब्रह्म फल, वैश्योंका दधि और
शूद्रोंका पानीय था (७।५।३-६, ७।४।१)।

ब्राह्मणोंके आयुध यज्ञ रहा। स्वसे शोदन
चलाते, कपालसे पुरोडास चढ़ाते, अग्निहोत्र-हव्यमोसे
देवताको उदक पिनाते, शूर्पसे धान्य उड़ाते, कृष्णा-
जिनपर आसन जमाते, ग्रम्यामें हविः बनाते, उल्-
खलमें सुगन्धसे पत्र कुटाते और हृषद् एवं उपलमें
उपस्कर पिनाते थे। (तैत्तिरीयसं० १।६।८।२-३)
क्षत्रिय अश्व तथा रथपर चढ़ते और ह्यु एवं धनुःसे
लड़ते थे।

ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें शूद्रोंका उपवेशन भी दोषावह
रहा (ऐतरेयब्रा० २।१।१)। यज्ञकाले और गो-
दोहनादिमें उन्हें कोई अधिकार न था (तैत्तिरीयब्रा०
१।२।३)। यज्ञदीक्षित और देवभावापन्न यज्ञमान
अपेक्षित शूद्रोंसे बोल न सकते रहे। (अथर्वब्रा०
३।१।११०) मूर्खोंका सामीप्य भी क्लेशकर समझा
जाता था (ऐतरेयब्रा० ३।३।६)। किन्तु उनसे
दुर्व्यवहार करनेवालेके लिये प्रायश्चित्त शासन विहित
था (शुक्लयजुःसं० २०।१।७।१)। उन्नतिके पार्थ शूद्रोंकी
यथायोग्य उपदेश देना पड़ता था (ऐतरेयब्रा०
२६।२।१)।

चारों वर्णोंके हितप्रार्थनमें साम्य (यजुः-
संहिता १८।४८।१), किन्तु आह्वानप्रयोगमें पार्थक्य
रहा। ब्राह्मणको 'एहि', क्षत्रियको 'आगहि',
वैश्यको 'आद्रव' और शूद्रको 'आधाय' कहकर योचाने
थे (अथर्वब्रा० १।१।४।१२)।

वाग्ध्वव्यवहारपर भी बहुत उपदेश दिया गया
है। वाक् सरस्वती है (ऐतरेयब्रा० ३।१।१, ३।१।२,
३।२।१३)। वाक्के मत्त्व और अमृत दो स्तन होते
हैं (४।१।१)। कौन मनुष्य पूर्ण रीतिसे सत्य कह
सकता है। देव सत्य और मनुष्य अमृत बोलते हैं
(१।१।६)। विद्वानोंको सत्य ही बोलना चाहिये
(५।२।८)। मनुष्योंमें सत्य निहत रहता है।
आँखको देखी कहना उचित है। मूढ़ वेदेकी कहते
और सुनते हैं (१।१।६)। सत्य नहीं—अमृत लोगोंको
भार डालता है (४।१।१)। सच बोलना उचित है
(१।१।६)। इतर वाक् असुर्य होती है (३।५।५)।
मनसे वाक् निकलती और धन्यमाना होनेपर असुर्य
लगती है (२।१।५, ४।४)। दृष्ट और उन्मासकी कड़ी
वाक् राक्षसी ठहरती है (२।१।७)। वाक् और मनः
दोनों बर्तनी हैं। वाक् और मनसे ही यज्ञ होता
है (५।५।८)। यज्ञा पत्नी और सत्य यज्ञमान है।
यज्ञा और सत्यका अत्युत्तम मिश्रण बना है। यज्ञा
और सत्यके मिश्रणसे सब लोक जीते जाते हैं
(७।२।८)। भ्रूट बोलनेवाले पापी होते हैं। सच
कहनेवालोंको परमेश्वर आशीर्वाद देता है (५।१।१)।

पार्थोंका विवाह हितके लिये होता था। विना
पुत्रके संसार शून्य रहता है। पिता ही अपनी पत्नीके
गर्भमें प्रवेशकर पुत्ररूपमें पुनः प्रकाशित होता है
(७।३।१)। उत्पादित पुत्र वंगपरम्परासे पिताके
लिये अमृतरूप उपहार है। ब्राह्मण, वैश्य या शूद्रके
स्वभावका पुत्र क्षत्रिय नहीं चाहते (७।५।१)। एक
वा तदधिक जायाके नीति भी जायान्तर-परिग्रह
दोषावह न रहा। किन्तु जीवतपत्नीक पुत्रपका क्रमः
युगपत् वा बहुविवाह समाजमें पमान्य होता था
(३।५।३)। जीवतपतिका पत्यन्तर-ग्रहण कर न
रहो। मृतपतिका वा त्यक्तपतिकाका पत्यन्तर

पाषाणविद्युत् न था। किन्तु पुराण-इतिहासादिके पाषाणसे विदित होता, कि पत्यन्तर-वद्यत् नौच-जातिमें ही चलता था। स्वयम्बर-सभाके समागत पाषाणवद्युत्पायिर्गमें पचञ्जयकारीकी कन्या दी जाती रही (४।२।१)। श्रियां भी माधारण पण्डित होती थीं (५।५।४)।

धृया (वह) श्वरसे लज्जा रखते रही (३।२।११)। मोदर्थ भगनी आठजायाके अनुगत थीं (३।३।१३)। सोदर्थ भगनीका पनाकीयत्व और अन्वकुलसे लब्ध जायाका पालीयत्व पारम्पर्यागत है।

अपत्रीक भी अग्निहोत्र कर सकता था (७।२।८)। अग्निहोत्रका दृष्ट और पष्ट फल मिल जानेसे अग्निहोत्रियोंको अपने अपने गृहमें अग्निरक्षण कतव्य है (ऋक् १०।१११।१)। हिममें रहनेवाले प्राचीन धार्योंको हिमपातका क्षेम छोड़नेके लिये स्व-स्व गृहमें अग्निरक्षणसे सुख मिलता था (वाजसनेय-सं० २।३।१०)। अग्निमें विविध सगन्ध्यादि द्रव्य डालनेका विधान रहा (ऐतरेयब्रा० १।५।२)। सगन्ध्यादि द्रव्यसे गृहजात वायुदेव देव जाता है। अग्निमें आभ्य, अग्निरपयः, अन्न, पुरोडास, सोमादिका आहुति छोड़नेसे तहाप्य-प्रसूत धारा गुणयुक्त ही जाती है। स्वर्गादि अष्ट श्रुति-गम्य है। इससे स्पष्ट प्रतीत हुआ, कि धार्योंका नित्य अग्निहोत्रानुष्ठान दृष्टादृष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही चला रहा। अग्निहोत्रानुष्ठानमें प्रातःदान कर्तव्य है (७।२।८)। धार्यपक्षसे विना यज्ञ किये नवाग्रप्राशन होने, पाकपात्र टूटने, पवित्र विगड़ने, हिरण्य खो या चोरा जाने, किमी जीते-जागते आत्मोयके मरनेका समाचार भूठ-भूठ सुनने और जाया या स्वर्गादेके यम-सन्तान उपजने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये। सूतक और अन्नप्राशन करनेवालोंकी भी प्रायश्चित्त विहित है। होमादिरूप प्रायश्चित्तसे ही तथाविध पाप छूट जाते हैं। अग्निहोत्रादि अनुष्ठानमें प्राक्खान विहित होते भी किञ्चित् भोजन निषिद्ध नहीं, प्रत्युत कुछ खाकर ही कर्म करना चाहिये (४।२।१)।

सूत देव न मिलनेसे धर्मयरीरके दाहकी व्यवस्था

रही। क्योंकि उसके अभावमें निन्दाभाजनत्व अवश्य-भावी था (७।२।८)। देवी, पितरी और मनुष्याकी पचनान न करनेसे पुरुष अन्नदा या असत्य समझा जाता रहा। अजाके मलसूतको तरह उसका जन्म निरर्थक जाता है। इसीसे तादृग पुरुषकी निन्दा होती है।

धार्मिक धर्मात् देव—निघण्टुमें दुस्थानके भाजनपर पटुविंश पद है। प्रधानतः उनका स्थान सुनोक है। देवराजने भाष्यमें रश्मिको देव कहा है (१।३।१।२)। ऋक् (१।८।१२), निघण्टु (५।३।२६) और निरुक्त (१।२।४।५, १।३।१।१)में उक्त विषय स्पष्ट रूपसे बताया है। रश्मि जन्य-जनक भावमें पाथिव अग्नि, विद्युत् और सूर्यसे अभिव्य है (निरुक्त १।३।६, ७)। यास्नाचार्य व्यक्त रूपसे कहते, कि पाथिव अग्नि, विद्युत् और सूर्यके भक्तिपाठचर्चसे पनेक देवोंकी पचनान करते हैं (७।२।१, ३।१०)।

पितर—निघण्टुमें अन्तरिक्ष-स्थानके भाजनपर द्वादश पद है। प्रधानतः अन्तरिक्ष लोक ही उनका स्थान है (४।३।५)। पितर तीन प्रकारके होते हैं,—अवर, परास और मध्यम। परास दुःख अन्तरिक्षचारी हुए और देवयान मार्गसे स्वर्ग गये हैं (छान्दोग्य उप० ५।१।२)। मध्यम व्याघ्राद्यधिकोके अन्तर ठहर और पिष्टयान मार्गसे चन्द्रलोक पहुँचे हैं (छान्दोग्य ५।१।३-६)। अवर भूदृष्ट अन्तरिक्षमें रहते और निरन्तर पृथिवीपर ही चला-फिरा करते हैं (५।१।७)। विविध पितरोंमें अवर प्रप्रासमार्ग हैं। अमलत् आशर्तिल्लमें कर्पूरौ दीर्घकाल ठहर न सकनेसे उनका पिष्टलोकमें रहना असम्भव है। फिर परासोंकी अवस्था भी ऐसी ही है। चन्द्रलोक या पिष्टलोक जा पहुँचनेसे मध्यम ही प्रधान कहें हैं। अतएव अन्तरिक्ष स्थानमें ही पितर पद पठित है। यास्क मुनिने भी उक्त विषयको ही पुष्ट किया है (१।२।५।५) यम पितरोंके राजा हैं (ऋक् १०।१।४।५)।

तत्पतः अन्तरिक्षके साहाय्य स्वजनक देहपर प्रविष्ट जीव ऐतःके अन्तःस्थ प्रथम गर्भमें पटुचता और ऐतःके योनिमें सिद्ध होनेपर प्रथम जन्म पाता है।

फिर वही रतः मातृयोगिनमें द्वितीय गर्भाकारसे परिष्कृत होता और गर्भके भूमिपर गिरनेसे पुरुष द्वितीय बार उपजता है। मरनेपर पित्रादि अन्त्यतम शरीर पाना ही तृतीय जन्म है (ऐतरेय-ब्रा० २।५।१)। शतपथब्राह्मणमें भी ऋतुपुरुषका पित्रादि देह पाना कहा है (१।४।७।२।१-५)। पित्रा एवं गार्भ्यं गुणकर्मादिमें परस्पर किञ्चित् भेदयुक्त अन्तरिचलोकग रूप है। इमीप्रकार ब्राह्म तथा प्राजापत्य युक्तोकग और देव एवं मानुष ऐहिक रूप है।

मनुष्य—मनुष्य शब्द ऐतरेयमें निबंघन कहा है (१।१।१८)। यास्तु मनुके अर्पणोंको मनुष्य समझते हैं (निरुक्त ३।२।१)। शतपथब्राह्मणमें देवों, पितरों और मनुष्योंका एकत्र ही विधिपरिचय तथा उपासना-प्रकार दिया है (२।४।२।१-२-३)। ऐतरेय देवों, पितरों तथा मनुष्योंका अर्चन कर्तव्य समझता है। अग्निहोत्रादि श्रौत तथा विश्वदेवादि गृह्यमें देवों, ब्रह्मा एवं अन्न-जलादि-प्रदानात्मक ब्राह्मणोंसे पितरों और निष्कण्ठ भाव-प्रदर्शन, आशापालन, समादर, पक्षापक भद्रादि आहार प्रदानसे मनुष्योंका अर्चन होता है।

अतिथिसत्कार न करनेवाला बड़ा पापों समझा जाता था (ऐतरेयब्रा० ५।५।५)। अतिथिसत्कारमें पशुघात प्रचलित रहा (१।१।४)। मांसभक्षणका विधि भी अन्यत्र निकलता है (२।१।३)। अन्धेय मांसके भक्षणमें दोष और मिथ्यमांस भक्षणमें अदोष था (२।१।८)। पुरुष, किम्बुरुष, गौर, गवय, उष्ट्र तथा शरभ छः अन्धेय और अम्ब, गो, मेघादि एवं पृथिवीभय पांड मिथ्य हैं। पृथिवीभयसे व्रीह्यादिका अक्षण होता है (२।१।८)। अन्नके मांसका प्रचलन बहुत रहा। इत्या पशुघातकी निन्दा है (७।१।१)।

अतिथि-सत्कारकी भांति अन्य-पन्थ उपदेश भी मिलता है। स्थान-विशेषमें द्रव्यविशेषकी दानधर्मता विहित है (६।२।५)। सर्व विचार्य कर्ममें गुर्वादि वा स्वामीकी अनुज्ञा अहृषीय है (२।५।६)।

ऋत्विज्यका प्राग्वह्य और अर्थात्थ याजनका निवेद्य रहा (६।४।८)। प्राय पुरुषकी याजनका निवेद्य

अन्यत्र भी मिलता है (४।४।३)। जैसे प्राय-पुरुषका अर्थात्थ विहित, वैसे ही ऋत्विज्यके लिये प्रायपुरुषका वरण निषिद्ध है (७।५।१)। फिर ऋत्विज्यके लिये लोमादिसे पाहृतवित्त, तेजःशून्य, मातृसर्ष-पूर्ण, तमःप्रकृति, पायानुष्ठाना और दुर्मतिकी भी वरण करना न चाहिये (१।५।२)। सूर्यका ऋत्विज्य दूषण कहा है (८।२।७)। धनके लोभसे जो ऋत्विज्य करता और यज्ञमानको चाटु कर्मसे रिक्ता ऋत्विज्य पाता उसका कृतकर्म भक्षित अर्थात् सुखमध्यमें प्रविष्ट-जंघा दूषित ठहरता है। जो समाजके आधिपत्य, ग्रामके प्रभुत्व पथथा क्रिया दूरसे हेतुमें यज्ञमानको हटा ऋत्विज्य लेता, उसका कृतकर्म गौण अर्थात् गनाधःकृत जन्मा दूषित होता है। फिर प्रायकर्म विद्वान्का कृतकर्म धान्त अर्थात् ऊर्ध्वित जैसा देवताओंके लिये छुट्टा है। ऐसे त्रिविध ऋत्विज्यकी वरण करनेको अगाम भी यज्ञमान न रखे। ८।२।७

राजाको पुरोहितकी आवश्यकता बहुत पड़ती थी। केवल ब्राह्मण ही पुरोहित ही मकते रहे (८।५।१)। क्षत्रिय और वैश्यकी पुरोहित ही दीक्षा देता था (७।४।७)। बुद्धिमान् पार्योंमें पुरोहित रहनेका विषय कहें, पृथिव्यादि अर्जाके भी पुरोहित थे (८।५।४)। वेदविद्वद् ब्राह्मणोंका ही पुरोहितत्व व्यवस्थापित है (८।५।३)। पुरोहित यज्ञमानका मङ्गल मनाते थे (४।५।७, ८, ९)। वायादि देवोंके हृदयनि पुरोहित-जैसे राजपुरोहित भी पुरःस्थित, प्राधान्यभाक् और उपकारी रहे। पुरोहिताका कोपनत्व संवरण कर यज्ञमानोंको उसके उपगमनका यज्ञ मगाना पड़ता था (४।५।७, ८, ९)। राजपुरोहित पशुधारण सम्मान पाते, राजगृहमें प्रवेश रहते और विशेष शक्ति रखते थे।

कर्मकारयिताओंकी दक्षिणा देनेकी पतिकर्तव्यता रही (६।५।८)। किसी हेतु परित्यक्त होनेपर फिर दक्षिणा को न जाती थी। यमोक्षिष्ठा भी पति प्रथम रही (५।४।४)। किसी दानादि कर्ममें अपनी श्रेष्ठताका अभिमान रखनेसे पाप लगता था (१।१।२)।

पाषाणविरह न था। किन्तु पुराण-इतिहासादिके पाषाणानामे विदित होता, कि पत्यन्तर-पक्ष्य नीच-जातिमें ही बनता था। अयम्बर-समाके समागत पाषिपक्षपायिंयोंमें पक्ष्यजयकारोंको कन्या दी जाती रही (४।२।१)। स्त्रियां भी साधारण पण्डित होती थीं (५।५।४)।

युवा (अष्ट) मगरमें लज्जा रखते रही (३।२।११)। मोदयं भगनी भ्रातृजायाके अनुगत थीं (३।३।१३)। मोदयं भगिनीका पनाकीयत्व और अन्वकुलसे सन्ध्याका पाकीयत्व पारम्पर्यागत है।

पपत्नीक भी अग्निहोत्र कर सकता था (७।२।८)। अग्निहोत्रका दृष्ट और पष्ट फल मिल जानेसे अग्निहोत्रियोंको अपने अपने गृहमें अग्निरक्षण कर्तव्य है (ऋक् १०।११।१)। हिममें रहनेवाले प्राचीन चार्योंको हिमपातका क्रोध छोड़ानेके लिये स्र-स्र गृहमें अग्निरक्षणसे सुख मिलता था (वाजसनेय-सं० २।३।१०)। अग्निमें विविध सुगन्धादि द्रव्य जलानेका विधान रहा (ऐतरेयब्रा० १।५।२)। सुगन्धादि द्रव्यसे गृहजात वायुदोष दह जाता है। अग्निमें चाण्य, अशिरपयः, अष, पुरोडाम, सोमादिका आहुति छोड़नेसे तदाप्य-प्रसृत धारा गुणयुक्त हो जाती है। सर्गादि पष्ट श्रुति-गन्ध है। इससे स्फुट प्रतीत हुआ, कि चार्योंका नित्य अग्निहोत्रानुष्ठान दृष्टादृष्ट फलकी सिद्धिके लिये ही चला रहा। अग्निहोत्रानुष्ठानमें प्रातःस्नान कर्तव्य है (७।२।८)। प्रायश्चसे विना यज्ञ किये नवाप्तमाशन होने, पाकपात्र टूटने, पवित्र विगड़ने, हिरण्य खो या चोरा जाने, किन्ती जीते-जागते पाकीयके भरनेका समाचार झूठ-झूठ सुनने और जाया वा स्मोत्रके यम-सन्तान उपजने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये। सूतक और अषमाशन करनेवालोंको भी प्रायश्चित्त विहित है। होमादिरूप प्रायश्चित्तसे ही तथाविध पाप छूट जाते हैं। अग्निहोत्रादि अनुष्ठानमें प्राक्स्नान विहित होते भी किञ्चित् भोजन निषिद्ध नहीं, प्रत्युत कुक्त्वाकर ही कर्म करमा चाहिये (४।२।१)।

सूत देह न मिलनेसे पथंगरीरके दाहकी व्यवस्था

रही। क्योंकि उसके पभावमें निन्दाभाजनत्व अपम-भावी था (७।२।८)। देवी, पितरों और मनुष्योंको पचैना न करनेसे पुरुष बनना वा असत्य समझा जाता रहा। पञ्जाके गलस्तनको तरह उसका लम्ब निरर्थक जाता है। इसीसे तादृग पुरुषकी निन्दा होती है।

चार्यका उपास देव—निघण्टुमें युस्वानके भाजनपर पटुविंश पद है। प्रधानतः उनका स्थान युष्नाक है। देवराजने भाष्यमें रश्मिको देव कहा है (१।१।१।२)। ऋक् (१।८।२), निघण्टु (५।६।२६) और निरुक्त (१।२।४।५, १।३।१।१)में उक्त विषय स्पष्ट रूपसे बताया है। रश्मि जन्य-जनक भावमें पायिंय अग्नि, विद्युत् और सूर्यसे अभिन्न है (निरुक्त १।२।३।७, ७)। यास्काचार्य व्यक्तरूपसे कहते, कि पायिंय अग्नि, विद्युत् और सूर्यके भक्तिमाहर्षयसे पनेक देवोंकी पचैना करते हैं (७।२।१, ३।१०)।

पितर—निघण्टुमें अन्तरिक्ष-स्थानके भाजनपर द्वादश पद है। प्रधानतः अन्तरिक्ष लोक ही उनका स्थान है (४।३।५)। पितर तीन प्रकारके होते हैं,—अवर, परास और मध्यम। परास दुर्लभ अन्तरिक्षचारी पृथ्वी और देवयान मार्गसे स्वर्ग गये हैं (छान्दोग्य उप० ५।१।२)। मध्यम व्यावाहृषिवेके अन्तर ठहरि और पितृयान मार्गसे चन्द्रलोक पहुँचे हैं (छान्दोग्य ५।१।३-६)। अवर भूदृष्टस्य अन्तरिक्षमें रहते और निरन्तर पृथिवीपर ही चला-फिरा करते हैं (५।१०।८)। विविध पितरोंमें अवर परासमागे हैं। असकृत् आधर्तित्वमें कर्तुं दीर्घकाल ठहर न सकनेसे उनका पितृलोकमें रहना असम्भव है। फिर परासोंकी अवस्था भी ऐसी ही है। चन्द्रलोक या पितृलोक जा पहुँचनेसे मध्यम ही प्रधान कहें हैं। अतएव अन्तरिक्ष स्थानमें ही पितर पद पठित है। यास्क मुनिने भी उक्त विषयको ही पुष्ट किया है (१।२।५।५) यम पितरोंके राजा हैं (ऋक् १०।१।४।५)।

तत्त्वतः अवरसके साहाय्य अज्ञानक देहपर प्रविष्ट जीव रेतःके अन्तःस्थ प्रथम गर्भमें पहुँचता और रेतःके योनिमें सिद्ध होनेपर प्रथम अन्न पाता है।

फिर वही रेतः मातृयोगिनमें द्वितीय गर्भाकारसे परिणत होता और गर्भके भूमिपर गिरनेसे पुरुष द्वितीय वार उपजता है। मरनेपर पित्रादि अन्यतम शरीर पाना ही तृतीय जन्म है (ऐतरेय-षा० २।५।१)। शतपथब्राह्मणमें भी मृतपुरुषका पित्रादि देह पाना कहा है (१।४।७।२।१-५)। पित्रा एवं गाम्भर्व गुणकर्मदिने परस्पर किञ्चित् भेदयुक्त अन्तरिक्षलोकग रूप है। इसीप्रकार ब्राह्मण तथा प्राजापत्य युलोकग और देव एवं मानुष ऐहिक रूप है।

मनुष्य—मनुष्य शब्द ऐतरेयमें निबंघन कहा है (३।३।८)। यास्क मनुके अपत्यांको मनुष्य समझते हैं (निबन्ध ३।२।१)। शतपथब्राह्मणमें देवों, पितरों और मनुष्योंका एकत्र ही विशेष परिचय तथा उपासना-प्रकार दिया है (२।४।२।१-२-३)। ऐतरेय देवों, पितरों तथा मनुष्योंका अर्चन कर्तव्य समझता है। अग्निहोवादि श्रौत तथा विश्वदेवादि ऋद्धमे देवों, ऋद्धा एवं अन्न-जलादि-प्रदानात्मक आद्यादिसि पितरों और निष्कपट भाष-प्रद्वयन, आज्ञापालन, समादर, पक्षापक अन्नादि आहार प्रदानसे मनुष्योंका अर्चन होता है।

अतिथिसत्कार न करनेवाला बड़ा पापो ममभा जाता था (ऐतरेयब्रा० ५।५।५)। अतिथिसत्कारमें पशुघात प्रचलित रहा (१।३।४)। मांसभक्षणका विधि भी अन्वय निकलता है (२।१।३)। अमेध्य मांसके भक्षणमें दोष और मिथ्यमांस भक्षणमें अदोष था (२।१।८)। पुरुष, किन्मुरुष, गौर, गवय, उष्ट्र तथा शरभ छः अमेध्य और अन्न, गो, भेयादि एवं सुधिवीभव पांच मिथ्य हैं। पृथिवीभवसे व्रीह्यादिका ग्रहण होता है (२।१।८)। अजके मांसका प्रचनन बहुत रहा। तथा पशुघातकी निन्दा है (७।१।१)।

अतिथि-सत्कारकी भांति अन्य-पन्थ उपदेग भी मिलता है। स्थान-विशेषमें द्रव्यविशेषकी दानविप्रता विहित है (६।२।५)। सर्व विचार्य कर्ममें गुवादि वा स्वामीकी अनुज्ञा अग्रणीय है (२।५।६)।

श्रुतिव्यक्त प्राग्राह्य और अयाज्य याजनका निवेध रहा (६।४।८)। पाप पुरुषके याजनका निवेध

अन्वय भी मिलता है (४।४।१)। जैसे पाप-पुरुषका अयाज्यत्व विहित, वैसे ही पार्लिंज्यके लिये पापपुरुषका वरण निषिद्ध है (७।५।१)। फिर पार्लिंज्यके लिये लोभादिसे आहतविच, तेजःशून्य, मात्सर्य-पूर्ण, तमःप्रकृति, पापानुष्ठाना और दुर्मति-को भी वरण करना न चाहिये (१।५।२)। मूर्खका पार्लिंज्य दूषण कहा है (८।२।०)। धनके लोभसे जो पार्लिंज्य करता और यज्ञमानकी चाटु कर्मसे रिक्ता पार्लिंज्य पाता उसका क्षतकर्म भक्षित अर्थात् सुखमध्यमें प्रविष्ट-जंसा दूषित उडरता है। जो समाजके आधिपत्य, ग्रामके प्रभुत्व प्रयत्न किंसा दूमरे हेतुमें यज्ञमानकी डरा पार्लिंज्य लेता, उसका क्षतकर्म शीघ्र अर्थात् गलाघःक्षत जंसा दूषित होता है। फिर पापकर्म विद्वान्का क्षतकर्म वान्त अर्थात् छर्दित-जैसा देवतापंके लिये घृष्ट है। ऐसे त्रिविध श्रुतिव्यक्तकी वरण करनेको आगा भी यज्ञमान न रन्ते। ८।२।०

राजाको पुरोहितकी आवश्यकता बहुत पड़ती थी। केवल ब्राह्मण ही पुरोहित हो सकते रहे (८।५।१)। अथि और वैश्यको पुरोहित ही दीवा देता था (७।४।०)। बुद्धिमान् धार्मीं पुरोहित रहनेका विषय कहाँ, पृथिव्यादि अडोंके भी पुरोहित थे (८।५।४)। वेदविद् ब्राह्मणोंका ही पुरोहितत्व व्यवस्थापित है (८।५।३)। पुरोहित यज्ञमानका मदन मनाते थे (४।५।०, ८, ८)। वायादि देवोंके वृद्धमति पुरोहित-जैसे राजपुरोहित भी पुरःस्थित, प्राधान्यभाक् और उदकारी रहे। पुरोहितोंका कोपनत्व संवरण कर यज्ञमानोंको उसके उपयमनका यज्ञ नगाना पड़ता था (४।५।०, ८, ५।१)। राजपुरोहित असधारण सम्मान पाते, राजगृहमें प्रबन्त रहते और विशेष शक्ति रखते थे।

कर्मकारयिताओंकी दक्षिणा देनेकी शक्तिकर्तव्यता रही (६।५।८)। किसी हेतु परित्यक्त होनेपर फिर दक्षिणा ली न जाती थी। यगोपिशा भी प्रति प्रयत्न रही (५।४।४)। किसी दानादि कर्ममें चपने अथवाका अस्मिमान रहनेसे पाप लगता था (१।३।२)।

हस्तों, चन्द्र, गवादि धनके दानकी प्रशंसा होती रही (८१४८)। चावेय और चन्द्रराजकी गायामें दानो-दानकी बात भी निम्नी है (८१४८)। हरियन्द्रके पुत्र रोहितने मत्तमुद्रात्मक धन दे मुनःश्रेयकी मोन मिया था (७१११)। पुर्वोका पिछदायभाक्त्व भी सूचित है (५१२८)।

वाणिज्यार्थ समुद्रयानपर चंद्र महामसुद्रमें परि-प्लवन भी प्रचलित था (६१४५)। वनदस्यु उपद्रव उठाते रहे (८१२०)। नागरिक शत्रुद्वेषोंका विषय दृष्टान्त-विधिसे कहा है (८१२०)। चोरोकी निन्दा होती थी (५१५५)।

एकराट् सार्धभौम संविघ्नता रक्षा (८१४१)। सार्ध-भौम नरपति सर्व मित्रराज्योसे उपटोकन लेते थे (७१५८)। महाराजकी प्रियतम भार्यासे प्रजा आवेदन करते रहते (१२१११)। राजभ्राताभोंका राज-सह-चरत्व व्यवहार था (१११२)। राजधानीके परिरेक्षणको प्राकारनिर्माणकी प्रथा रही (११४६)। असुरोंके उपद्रवसे यज्ञ बचानेकी देवीनि पन्निकाकार बनाया था (२१२१)। प्रवस्रतर शत्रु वीके राज्यपर आक्रमण करनेसे प्रजा परस्पर मन्वषा लगाती, स्वतः लड़नेकी तैयार हो जाती, एकमतिसे प्रतिष्ठा करती और राज-रक्षि-रक्षित शृद्धमें पुत्रकलत्रादि रख युद्धमें प्रागे बढ़ती थी (११४०)। प्रियवसुके दानादिरूप साम कीश्रमसे रक्षणपात यथा स्वकार्यके उद्धारकी चेष्टा भी चलते रही (११५१)। परस्पर एकमत्व रहनेकी प्राण्य छु लोग प्रतिष्ठा करते थे (ऐतरेयब्रा० ११४०, मत्तपयब्रा० २१४२, तैत्तिरीयमं० १२१११, ६१२२-६)।

सेनापतिके भागसे शत्रु की सेनापर आक्रमण करनेका उपाय निकालते रहे (११४१)। युद्धकालमें राजमाहाय्यकारी प्रजा और सामन्तको प्रसादनाम होता था (१२१८)। युद्धमें लय होनेपर राजाकी भार्यादा बढ़ते रही (१२११०)। पराजितका यष्टुमूष्य-वत्तादि धन समुद्रतीर मीथित होता था (५२१६)। इससे स्फुट प्रतीत हुआ, कि वैदिक समय यष्टु-मूष्य औरकादिका व्यवहार रहा।

सर्वं सभ्यदेशीनि विद्यमान उपविभोक् व्यवहार

भी प्रचलित था (४१४५)। दूराध्वगमनमें उपवि-भोक्की आवश्यकता पड़ती रही (६१४०)।

स्वन्धसे भारयजनको वीथधं (बंधनी)का व्यवहार था (८१११)। वीथधंका दण्ड प्रायः बांससे बनते रहा (१२१५)। मिया हुआ सभ्यजनोचित चन्द्रराजा-दिका (चंगरवत्ता कुरता वगेरह का) व्यवहार चलता था (१२१०)। कर्मठ, अमकारो तथा उद्योगीकी प्रशंसा और भस्म, अमकातर एवं उद्योग-धीनकी निन्दा सुनते हैं (७१११)।

पृथिवी, द्यावापृथिवी, वृष्टि, उदकके प्रतिष्ठा-म-वृष्टिका-प्रभाव और द्यावापृथिवी उभयके प्रतिष्ठाके सभ्यन्धमें विज्ञान था (४१४५)। विवाह-सम्बन्ध-युक्त स्त्री-पुरुषकी भाँति द्यावपृथिवी उभय लोक परस्पर सम्बद्ध रहे। सूर्य ही वृष्टि और तापका हेतु समझा जाता था (४१४५)। पृथिवीके भ्रमण, सूर्यके उदयास्त और अश्विरोत्तके विज्ञानकी बात भी सुन पड़ती है (११४६)। सूर्य पृथिवीको घुमानेवाला माने जाते रहे (२१४१०)। सूर्यको अचल समझते थे (५११११-२)। छःवो लोकके मध्य ईश्वरने सूर्यको ताप देनेके लिये रखा है। चन्द्र पृथिवीका उपपद्य होनेसे घृषक् माना नहीं गया। सर्व लोकोंपर रहनेसे सूर्यका उत्तरत्व विदित होता है (४११४)। ऋक् और यजुःमें सूर्यको पृथिवीका धारण करने-वाला कहा है (ऋक् ७१८८१, यजुःयजुः ५११६)। ताप देनेसे सूर्य जीवनका हेतु है (मत्तपयब्रा० ८१२११)। चन्द्रको देवसोम कहते-थे (ऐतरेयब्रा० ७१२१०)। कारण सूर्य अपने किरणसे उसका अस्त पीता है। चन्द्रमें मर्त्यलोककी छायासे कलाह देख पड़ता है (४१४५)।

वायु ही प्राण है (१२११)। यह सूर्यसे उत्पन्न है (१२११)। पत्नि देवीका प्रथम है (११११)। उभोको विज्ञानपर समझना चाहिये (१११४)। पत्निही पोषधि है (१२११)। जलसे पत्नियेक और दीक्षा दोनोका काम चलता है (११११) इस लोकमें जल ही अस्त है (८१४१)। सोम और पत्निके भागसे जल बना है (ऋक् १२११०)। जलमें-

ज्योतिः प्रतिष्ठित है (तैत्तिरीयं चारण्यक ८।८) ।
विष्णु परम होते हैं। उनका द्विविक्रमपादिक षष्ट
भ्रात्रात् है (गतपथब्रा० १।८।३।७-१२) । विष्णु
सूर्यको कहते हैं (तैत्तिरीयसं० १।२।१।३२) ।

धार्पोंको गर्भोदिका विज्ञान भी अच्छा रहा।
ऋत जन्तुका भातिवाहिक देहधारण और पुनर्जन्म
भ्रात्रात् है (१।४।७।२।४) । ब्राह्मणको भेषज्यका
निषेध है (तैत्तिरीयसं० ६।४।८।२) । भेषजकरण
कालमें ब्राह्मणको बैठे रहना चाहिये। (ऋक्
१०।८।५।४६) । ब्राह्मणितर साधारण जातिकी स्त्रियां
देवरसे कामना करती रहीं (ऋक् १०।४।०।२) ।
उस समय बहु विवाह प्रचलित रहते (१।१०।५।८)
भी प्रायः पुरुष एक ही बार व्याहृ ज्ञाते थे (ऋक्
१।१०।५।२) ।

ऋग्वेदके समय धार्प राजा (१।४।०।८, १।१६।१
इत्यादि), पूरपति (१।१०।३।१०), ग्रामणी (१०।६२।११)
भिन्न-भिन्न सद्यपदपर प्रतिष्ठित थे। राजा साधारण-
पर कर लगाते (१।१०।५), शासनप्रणाली सुनियमसे
चलाते (१।१०।३-२) और गमन करते समय भ्रमात्य-
वेष्टित ही गजस्कन्धपर आसन जमाते रहे (४।४।११) ।
सुवर्ण सजाविशिष्ट अश्व (४।२।८) और युद्धमें युद्धाश्व,
अश्वारोही संन्य प्रभृतिका व्यवहार भी था (४।१८।५) ।
प्रधान व्यक्तियोंको सुति सुनना अच्छा लगता रहा
(१।२।७।१२) । युद्धकालमें राजा एकत्र होते थे
(१०।८।७।६) । शान्ति रहते ऋषि संसारी, किन्तु युद्ध-
काल योद्धा रहे (१।२।०।१) । राजकन्यावोंसे ऋषियोंके
विवाह होते थे (५।६।१।८) । वीर पुरुषका आदर बहुत
रहा (१।३।१।६) ।

राजकालकी भांति उस समय भी उत्कृष्ट, निष्ठ
और मध्यवित्त तीन श्रेणियोंके लोग रहे (४।२।५।८) ।
कोई धनके गौरवमें मत्त रहता और कोई घेतके
स्त्रिये अन्न मांगते फिरता था (१०।११० चूक) । मध्य-
वित्तु मनुष्य याषिष्य-व्यवसाय द्वारा सचसे जौविका
चलाते रहे (१।७।८।१) । लोग नामाप्रकार कर्म
करते—कोई पुरोहित, कोई स्तोता (कवि), कोई
वेद्य, कोई तक्षक (शूद्रयौ), कोई-लोहकार, कोई

नापित, कोई काष्ठिक (लकड़ी काटनेवाले), कोई
रथप्रसूतकारी, कोई धातु वा भस्त्रादि निर्मापकारी,
कोई नौकाकारी, कोई मांसिक और कोई धार्यके
गात्रधोतकारी थे (१।११।५।५, ४।२।१४, —१।१।२०,
५।१०।२।८) ।

प्राचीन ऋषियोंमें परवर्ती धार्पोंके आचार, व्यवहार, और धर्मकी
प्रणाली—ब्राह्मण, चरित्र, वैश्व, वेद, उपनिषद्, जाति, समता प्रभृतिमें
द्रष्टव्य है ।

निश्चित रूपसे कहा जा नहीं सकता, कितने
दिनसे धार्प नामके बदले 'हिन्दू' शब्द इस देशमें
चलता है। किन्तु तिस्रस नदी प्रवाहित सिन्धु-प्रदेशमें
वैदिक धार्पोंका रहना प्रथम ही प्रमाणित हो चुका
है। यही सुभाचीन धार्पवास रहा। ज्ञानार्थं श्वो।
पारसिकोंके 'भवस्ता' प्रत्यमें उसीको 'इफ्त हिन्दु'
लिखा है। इसलिये प्राचीन पारसिकोंके 'हिन्दु'
शब्दसे वर्तमान 'हिन्दू' नाम निकला मालूम देता
है। हिन्दू श्वो।

(पु०) २ श्वर, जोड़ूका बाप । ३ श्वामी, मांसिक।
पठ परिच्छेदमें लिखते, किसे-किसे धार्प कह सकते
हैं,—

"राजद्विगणितिविवाहः शोऽपपत्कयेन च ।

शेष्ठया नामकिंशैवेति धार्पति पितरः ॥

वयसे श्वयवा माया वाथे राजा विदूषकः ।

वाथी नटीश्चपातवाथीनाया परस्परम् ॥" (साहित्यदर्पण)

ऋषि राजासे राजन् अथवा अपत्य प्रत्ययान्त
दाशरथे, पौरव, पाण्डव प्रभृति-जैसे शब्द द्वारा सम्भाषण
करें। विप्र विप्रसे नाम अथवा अपत्य प्रत्ययान्त
कीमिक, कुमिकानन्दन सद्य प्रदहारा बोले। दूसरे
लोग ब्राह्मणको धार्प कहें। राजा विदूषकको वयस्व
या विदूषक पुकारें। नट वा सूत्रधार नटीसे धार्प
और नटी, नट वा सूत्रधारसे धार्प वाक्य द्वारा बताने।
कर्मधारय समासमें 'ब्राह्मण' और 'पुत्र' प्रागे
पानेसे धार्प शब्द प्रकृतिस्वर होता है। 'धार्पे ब्राह्म-
णमारयोः। पा ४।५।१८। 'धार्पेणः। धार्पेणः।' (शिवायकी०)
धार्पक (सं० त्रि०) धार्प एव, कर्त्त० श्वर, पुण्य,
रज्जुतदार। (पु०) संघ्राय।

दादा। १ नामविशेष। ४ लृपति विशेष। यह लृपतिविशेष राजा जन गये थे। (स्त्री०) ५ पिण्ड-मावादि पिण्डकार्य। (स्त्री०) आर्यका, आर्यिका। आर्यशब्द (मं० त्रि०) आर्य-शब्द पश्चार्थ वयम्, ६-तत्। परानेविद्यावचने च। या शा० १११२। "पदे प्रवः पचाः दितादिभ्यो वल्, आर्यपचा कृत्पदानि इवर्थः।" (विद्यामञ्जरी) १ आर्यपचाञ्चित, जिसे इच्छतदार आदमी खातिरके घाय से। २ विनीत, क्षुम-असल्लव, शायक।

आर्यता (सं० स्त्री०) माननीय आचरण, क्षुम-अस-ल्लुषी, भला बरताव।

आर्यतारादेयी (सं० स्त्री०) बौद्धतन्त्रोक्त शक्तिविशेष। मन्त्रायान सम्प्रदाय इन्हे सर्वप्रथम और च्येष्ठ शक्ति मताते हैं। सुदगया, नासिक, अजगटा, औरद्वावाद, नेपाल और कांडेरीमें आर्यतारादेयीकी स्मृति प्रसार-मय विद्यमान है। नेपाल और कांडेरीके गुहामन्दिरमें यह अवलोकितेश्वरके पार्श्वपर प्रतिष्ठित हैं। दक्षिण छन्दमें पुण्य और वाम छन्दमें सुकुल है। बौद्ध इन्हे मानवकी मुक्तिविधायिनी मानते हैं।

(Vassilief Bouddhisme, p. 125)

आर्यत्व (सं० स्त्री०) आर्यता। आर्यदेव (मं० पु०) नामार्जुनके एक मिथ्य। ई०के १म शताब्द इन्होंने दक्षिणात्यमें किसी ब्राह्मणके घर जन्म लिया था। शतसमाधि एवं चतुःशती गाथा नामक ग्रन्थ इन्होंने बनाया। किसी तीर्थिकने पेट फाड़कर आर्यदेवकी मार डाला। दूसरा नाम कानादेव था।

आर्यदेग (सं० पु०) आर्यभूमि, आर्यके रहनेका सुहक। आर्यदेश (सं० त्रि०) आर्यदेश-जात, जो आर्योंके सुहकसे निकला हो।

आर्यधर्म (सं० पु०) आर्योंका धर्म; ६-तत्। सदा-चार, दुष्टदमन पतनार, अच्छा चलन। सरस्वती और दृगदतीगदीके बीच भोग जिस आचारपर चलते, उसे आर्यधर्म कहते हैं। (न० ७१८)

आर्यपय (सं० पु०) आर्योंका पय्या; अजन्त ६-तत्। आर्यपयः पयःपयः। या शा० १०१। सदापार, अच्छा चलन। आर्यमार्गादि शब्द भी इस अर्थमें प्रयुक्त होता है।

आर्यपुत्र (मं० पु०) आर्यम्य पुत्र; ६-तत्। १ सप्रा-ध्यायका पुत्र, सुयंदका मिश्रर। आर्यभाषामें, खासीकी आर्यपुत्र कहते हैं। सम्भ्रातार्य ज्येष्ठभ्राताके तृया अपने पुत्र और सभ्रातरभतः सुभ्रातार्यको इस नामसे सम्बोधित करते हैं।

आर्यभट (सं० पु०) १ प्रसिद्ध ज्योतिष-पद्म-रूपयिता। इन्होंने कुक्षमपुरमें अपने वास्तव्यको निर्देश किया है,—

"मन्त्रप्रविशुषधयर्षिभूषणकोपमयपाम्भुषणव।
आर्यभटप्रिय निवसति कुक्षमपुरेधर्मिर्भूषणम्॥" (बिनिपाद १)
अपने बनाये आर्यसिद्धान्त ग्रन्थमें लिखा है,—
"बध्मनामी यद्विदेहा ज्योतिषाधयव पुत्रपाराः।
आर्यिषा विन्तिरभ्यावदिह मम जन्मनीलोत्पत् ॥"
(आर्यसिद्धान्त १०)

आर्यात् तीन युगके बाद ६० × ६० = ३६०० वर्ष बीतनेपर, हमारे जन्मके २३ वत्सर हुये हैं।

उक्त वचनानुसार (३६००-२३) कलिके ३५०० वत्सर बीतनेपर आर्यभटका जन्म हुआ था। ऐसी अवस्थामें इनका जन्मकाल ४०५ ई० जाता है।

आर्यभट इस प्रकार संख्या गणना करते थे,—

क=१, ख=२, ड=५, घ=१०, ट=२१, न=२०, प=२१, म=२५, य=म+न। सिधा इनके अपर व्यञ्जनवर्ण प्रत्येक १० अर्थात् क कहनेमें य+१०=२० होते रहा। इसी प्रकार घ=३०, प=२०, स=८० और ह=१००के ठहरता था। प्रत्येक इक्ष्वर दशगुणके हिसाबमें बढ़ता है। जैसे—घ=१००, गि=१००, चि=६००, ड=१०००, गु=३००० इत्यादि। इसी प्रकार ४४ लिपिमेंसे घर या प्र होता है। योजनवित्तको आर्यभटने ही आविष्कार किया है।

ज्योतिष-गणना ऐसी रही,—रविका, ४३२०००, चन्द्रका ५०७५३३६, बुधिका १५८२२१०५०, शनिका १४६५६४, शुक्रका १६४२२४ और कुजका भगव २२६८२४ है। शत्रु और बुधका भगव रविके समान लगता है।

चन्द्रीय ४८८२१८, शत्रुका १०६१०१२, और बुधका ३०२२१८८ है। चन्द्रका पात, २३२२३६ है।

२ ग्रन्थकारविशेष। यह द्वादश ई० प्रतापद्वये
नर्तमान रहे। पूर्वोक्त आर्यभट्ट मन्त्रतिका मत एकद
ग्रन्थ प्रताये हैं। ब्रिटिश विररप Journal of Royal Asiatic
Society of Great Britain and Ireland, N. S. Vol. 13
देखो।

आर्यभाव, आर्यधर्म देखो।

आर्यमहावीर—जैन-शास्त्रीका सिद्धपुरुष विशेष। यह
श्रुत वत्सर जिये और जैन संवत् २४८ के बाद मर
गये।

आर्यमार्ग, आर्यपथ देखो।

आर्यमित्र (सं० पु०) १ साधुजन, महानुभाव,
अशराफ, भलामानस। (त्रि०) २ प्रसिद्ध, सर-फराज,
मशहूर। बहुवचनमें यह शब्द साधुजन-मण्डलीका
द्योतक है।

आर्ययुवन्, आर्ययुवा देखो।

आर्ययुवा (सं० पु०) आर्यकुमार, आर्य कौमका
गुंवरू या पट्ट।

आर्यराज (सं० पु०) नृपतिविशेष।

आर्यरूप (सं० त्रि०) १ केवल आर्यका आकार
रखनेवाला। २ दम्भी, कपटी, रियाकार, मकार।

आर्यलिङ्गिन् (सं० त्रि०) दम्भी, कपटी, दगाशाज,
जो भले आदमीकी सूरत बनाये हो। (पु०) आर्य-
लिङ्गी। (स्त्री०) आर्यलिङ्गिनी।

आर्यदमन, आर्यधर्मा (सं० पु०) नृपतिविशेष।

आर्यवृत्त (सं० स्त्री०) १ सदाचार, भला चलन।
(त्रि०) २ साधुजनकी भांति व्यवहार करनेवाला,
जो भलेमानसकी तरह पैग आता हो। ३ धार्मिक,
नेक, पारसा।

आर्यवेश (सं० त्रि०) सुन्दर वस्त्र धारण किये हुआ,
जो अच्छे कपड़े पहने हो।

आर्यव्रत (सं० स्त्री०) आर्योंका व्रतम्, १-तत्।
१ साधुका कर्तव्य-नियम, भले आदमीका काम।
(त्रि०) आर्यस्वैव व्रतमस्य। २ साधुके नियमपर
चलनेवाला, जो भले आदमीकी चाल पकड़ता हो।

आर्यश्रुत (सं० पु०) आर्य-श्रुत श्रुति यज्ञ।
श्रुतचरित, नेकचलन।

आर्यसङ्घ (सं० पु०) १ आर्योंका पूज्य सङ्घ,
भलेमानसोंकी पूरी जमात। २ सुप्रसिद्ध दगुनप्र, एक
मशहूर मुद्दकिक। इन्होंने योगाकार सम्प्रदाय प्रति-
ष्ठित किया था।

आर्यसत्य (सं० स्त्री०) अभिजात तथ्य, इकीकृत-
शरीफ। ऐसे ही चार तथ्योंसे बौद्धधर्मके चार प्रधान
पद्धतियाँ हैं।

आर्यसमाज—सम्प्रदायविशेष। आर्यसमाज, ऐसा कि
उसके नामसे ही प्रकट है, आर्यों (वैदिकधर्मियों)का
समाज है। इसे श्रीधामो दयानन्द सरस्वतीने
१८५५ ई०में वैदिकधर्मके प्रचारार्थ स्थापित किया
था। आर्यसमाजके दगुनियम इस प्रकार हैं—

१ सत्य सत्यविद्या और विद्यासे सम्भके जानेवाले
पदाथ सत्यका आदि मूल परमेश्वर है। २ ईश्वर
सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्याय-
कारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, पनादि,
अनुपम, सर्वेश्वर, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्गामी,
पञ्च, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि-
कर्ता है। उसीकी उपासना करना योग्य है।
३ वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है, वेदका पढ़ना,
पढ़ाना सुनना और सुनाना आर्योंका परम धर्म
है। ४ सत्य ग्रहण करने और असत्यको छोड़ने
में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। ५ सब काम
धर्मानुसार आर्यों सत्य और असत्यकी विचार करना
चाहिये। ६ संसारका उपकार आर्यों गौरीतिक,
प्रात्मिक और सामाजिक उत्थति करना इस समाजका
मुख्य उद्देश्य है। ७ सबसे मोतिपुत्रक, धर्मानुसार,
यथायोग्य वर्तना चाहिये। ८ अविद्याका नाश और
विद्याका वर्धन करना चाहिये। ९ प्रत्येकको
अपनी ही उत्थतिसे समुत् न रहना, किन्तु सबकी
उत्थतिमें अपनी उत्थति समझना चाहिये। १० मनु
मनुष्योंको सामाजिक सर्व हितकारो नियम पालनेमें
परतन्त्र और प्रत्येक हितकारो नियममें अत्यन्त रचना
चाहिये।

आर्यसमाजके संस्थापक श्रीधामो दयानन्द सर-
स्वतीका जन्म विक्रमीय संवत् १८२४की गुजरात देयके

मीरथी राज्यके अवदीष्य ब्राह्मणकुलमें हुआ था। उनके पिता गौरी थे। दयानन्द धारणसे ही बड़े तीव्रबुद्धि थे। राज्यकासमें ही उन्होंने यजुर्वेदका इद्राभाष्य और अनेक अन्यभाग कण्ठस्थ कर लिया था। किसी गिरातिका वह अपने पिताके साथ नगरके बाहर एक गिवालयमें गिरथी उपासना करने गये। वहाँ एक घटनाको देखकर उन्हें मूर्ति-पूजाके विषयमें गद्दा उत्पन्न और मूर्तिपूजा न करनेकी बात उनके हृदयपर पड़ित हुयी। वे अपने चचे तथा बहनकी मृत्युसे विरक्त हो और अपनेको विवाह जालमें फंसता देखकर १८४५ ई०को योगविद्या सीखनेके अभिप्राय घरसे निकल खड़े हुये। विषरण तथा विद्याध्ययन करनेके उपरान्त १८४० ई०को महात्मा पूर्णानन्द नामक एक संन्यासीसे संन्यास ग्रहण किया। तत्पश्चात् स्वामीजी योगियोंकी तत्ताममें वर्षों वर्षों और जङ्गलोंमें घूमते रहे। १८१० को वे मथुरा आकर श्रीस्वामी विरजानन्दजी प्रभा-चण्डके गिथ्य बने और चार वर्ष तक उनसे वैदिक गिथा प्राप्त करते रहे। तदुपरान्त स्वामी जी अपने पुत्रभोग्य गुरुके समक्ष धार्मवर्तकी विगड़ी दशा सुधार-नेकी प्रतिज्ञा कर गुरुकुलसे विदा ले उपदेशार्थ भ्रमण करने लगे। संवत् १८२० से १८२४ तक यत्रतत्र एक ईश्वरकी उपासनाका उपदेग करते हुये हरिद्वार कुम्भके भिलेपर जा पहुँचे। वहाँपर प्रबल रूपसे वैदिकधर्मका भण्डन और अथेदिक बातोंका खण्डन करते रहे। कागी आदि बड़े बड़े नगरोंमें पण्डितोंसे भाष्यार्थ किये। वेद भाष्यादि अनेक उपयोगी धर्मोंकी संस्कृत तथा धार्मभाषामें रचना की। सत्यार्थप्रकाश नामक पुस्तक बनाया, जिसमें संसार भरके मर्ताका समीक्ष्य और वेदोक्त धर्मका प्रतिपादन बड़े शुक्ति तथा उत्तमतासे किया। स्वामी जी रजवाड़ोंमें उपदेग करते करते उदयपुर पहुँचे। वहाँके राधा सख्यसिंहजी पर स्वामीजीकी वक्तृता और विद्वत्ताका ऐसा प्रभाव पड़ा, कि वे उनके गिथ्य बन गये। स्वामीजीने वेदोंके प्रचार तथा

अपने धर्मोंको सुरचित रखने और उपासनेके उद्देश्यसे 'परोपकारिणी समा' स्थापन की। उक्त महाराथा जीने समाके प्रधान बन अपने राज्यमें समाकी प्रथम रजिस्ट्री करायी। कुछकाल पीछे जीपपुराधीग श्रीमहाराज ययवन्तसिंहके आग्रहपर, श्रीस्वामी जी जोधपुर पधारे और निर्भयतापूर्वक वैदिक धर्मका प्रचार करने लगे। स्वामीजीके सदुपदेशोंसे भयभीत होकर जोधपुर नरेशकी एक ययन धैयाने स्वामीजीको विष्य दिलवा दिया। इससे वे बीमा होकर राजमेर आ गये और संवत् १८४१ की दीवा-वलीको ईश्वरुपासना करते करते हमसे सर्वदाकी विदा हुये।

धार्मसमाज, ईश्वर, जीप और प्रकृतिको पनादि मानता है। उसके सिद्धान्तानुसार सृष्टि प्रवाहदृश्यसे पनादि है। धर्मार्थ प्रथम सृष्टिका रचा जाना, फिर प्रलय होना सदैवसे चला आता है।

धार्मसमाज एक ईश्वरका मानता, जो पनादि, पनन्ता, सत्, चित् और धानन्द स्वदय है। मदेव एक रस रहता है। उसके गुण धार्मसमाजके नियम संख्या २में वर्णित हैं। धार्मसमाज केवल इमी एक ईश्वरकी उपासना करनेका उपदेग देता और न्यूनित्पूजा, याह, मृत पितरोंके याह, यज्ञमें पशुवोंके बलि को अथेदिक मानता है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान होता, जिसे ईश्वर सृष्टिके पादिमें अपनी अपार दयासे मनुष्योंको प्रदान करता है। उसीके द्वारा लोग सब कुछ समझनेके लिये समर्थ होते हैं। वेद समस्त सत् विद्यावांका पुस्तक है। वेद चार हैं—ऋक्, यजुः, साम, अथर्व। स्वामी दयानन्दसे पूर्व धार्मवर्तमें धेदोंका लोप छा हो गया था। संहितायें भी कहीं कहीं मिलती थीं। उस समय यदि किसीको वेदका कुछ भाग कण्ठस्थ भी था, तो वह उनका धर्म न जानता था। महर्षिय दयानन्दका सबसे महान् कार्य धेदोंको सच्चा गौरव प्रकट कर प्रतिष्ठाके उच्च आसनपर विराजः मान करा देना है। स्वामीजीके मतमें वेदोंके पढ़नेका अधिकार सबको है।

स्वामीजीने अपने वेदभाष्यकी एक श्रुतम मूर्तिमा संस्कृतमें लिखी है। उसमें वेदांका गौरव वा महत्त्व बड़ी उत्तमतामें दर्शाया है। ऋग्वेदका ६ तथा यजुर्वेदका सम्पूर्ण भाग रचते ही उनका देहपात हो गया। स्वामीजी केवल संज्ञिता भागकी वेद मानते और उसका स्वतः प्रमाण होना स्वीकार करते थे। वेद केवल एक निराकार, निर्विकार सर्वव्यापक, सर्वत्र सच्चिदानन्द स्वरूप सृष्टिकर्ता परमात्माकी उपासनाका उपदेश देते हैं। त्रीपिंडित तुलसीदास स्वामीने रामवेदका उत्तम भाष्य श्रीस्वामीजीको शैलीपर किया है। प्रयागनिवासी श्री० प० क्षेमकरण द्विवेदी भी अथर्ववेदका भाष्य उमो शैलीपर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं।

पञ्च यज्ञ अर्थात् १ सायं, प्रातः दोनोंकाल मन्वा, २ अग्निहोत्र, ३ जोवित माता पितादिका यज्ञा-पूर्वक मतकार, ४ अतिथि सत्कार और ५ अग्नि-वैश्वदेव करना आर्योंका प्रधान कर्तव्य है।

गर्भाधान, पंचघन, शीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नाम करण, निष्कामण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्तेष्टि संस्कार भी कर्तव्य है।

आर्यसमाजकी दृढ़ विश्वास है, जो कर्म मन, वचन अथवा कर्मद्वारा किया जाता है, वह अपना प्रभाव छोड़ किये बिना नहीं रहता। कर्ताकी अवश्य फल भोगना पड़ता है। स्वर्ग और नरक कोई विशेष स्थान नहीं, किन्तु इनी संसारमें दोनो मौजूद हैं। सुखका नाम स्वर्ग और दुःखका नाम नरक है।

आर्यसमाज सृष्टिका आयु ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष मानता है। वर्तमान सृष्टिकी रचना हुये लग भग ८ अरब ८६ करोड़ वर्ष बीत चुके हैं। निवर्त अथ-धिके श्रेय समय तक वह अभी और स्थित रहेगी। चन्द्र तथा तारासोक पृथिवी की तरह गोलाकार है। इन लोकोंमें भी प्राणी वसते हैं।

मनुष्यजातिमें गुणकर्मानुसार संसारका कार्य

विभक्त करनेके लिये आर्यसमाज वर्षोंका पाठशाला होना मानता है। जो विद्वान मोम तथा माइकी त्यागकर परोपकारमें अपना जीवन बिताते, वे ब्राह्मण कहते हैं। जो बोर दुष्टसे जातिकी रक्षा करते तथा यज्ञानुष्ठानका क्रम जारी रखते, वे सविय हैं। जो लोग धर्मखंड गिस्व वापिस्यको उन्नतिमें लगे रहते, वे वैश्य हैं। मन्त्रिक सम्मन्धी कार्योंमें असमर्थ हो सेवा करनेवालोंकी संज्ञा शूद्र है। वैदिक धर्मानुसार चारो वर्ण पार-स्परिक सहायक हैं। आर्यसमाज यह भी मानता, कि गुण कर्मानुसार एक वर्णका मनुष्य अपनेसे ऊपरीके वर्णका अधिकारी बन सकता है। शूद्र उन्नति पौर सद्गुण धारण करनेसे ब्राह्मण बन और निरुद्ध कर्म करनेसे ब्राह्मण पतित हो जाता है। आर्यसमाज पात्रकलकी जातिपातिका, जिसका आधार केवल जन्म पर रहता, विरोधी है।

मनुष्यका कार्य-भार बांटने तथा उसके जीवनकी अधिक उपयोगी एवं उत्तम वनानके लिये वेद-भगवान् चार आयुओंका विधान करते हैं। वेदाध्ययनकाल शरीरको पुष्ट तथा विद्याको उपलब्ध करनेके लिये न्यूनसे न्यून २५ वर्ष पर्यन्त अविवाहित रहना, 'ब्रह्मचर्य' कहाता है। तत्पश्चात् धर्मानु-सार विवाह तथा सन्तान उत्पन्न करके पिछ-वृत्तसे उन्नत होना 'गृहस्थाश्रम' है। पचास वर्षका आयु होनेपर ब्रह्मकी प्राप्ति तथा संसारका उपकार करनेके लिये योग्यता बढ़ानेका नाम 'वानप्रस्थ' है। फिर श्रेय जीवनको सर्वथा जगत्की भलाईमें लगा देना 'संन्यास' कहाता है।

आर्यसमाज विद्वान् पुरुषों, वेदों पौर शास्त्रोंको तीर्थ समझता है। क्योंकि 'तीर्थ'का अर्थ ही तारनेवाला है। जिसके द्वारा मनुष्य भवसागरसे तर जाता, वही तीर्थ है। नदी नासे पर्वतादिको तीर्थ मानना आर्यसमाज वैदिक नहीं समझता।

अपने इन्द्रियोंको वगमें रखते हुये अग्नि-होवादि अनुष्ठान और विद्वानोंका उत्पन्न करना पादि यज्ञ कहाता है। जो लोग पण्डितोंके अति-

दानका नाम यज्ञ ममके हुये हैं, ये चार्यसमाजके मतमें सरामा वेद भगवान्की आज्ञाका विरोध कर रहे हैं।

चार्यसमाज विद्वानोंकी देवता मानता है। व्यक्ति-विशेष तथा वेद विनियमके सकारणमें किसी फल विनियमकी प्राप्ति तथा फलित ज्योतिषकी व्याप्तिपर हमको विश्वास नहीं।

धर्म यही, जो वेद विहित है। सृष्ट्रतया चार्य-समाज धर्मके दम लक्षण मानता है। तदनुसार ही अपना जीवन बनाया मनुष्य मानका परम कर्तव्य है।

“इति चमा दशोत्तमं श्रीचरित्रनिघण्टुः।

श्रीरिचय सत्यशोभा दमर्षं धर्मनयचन्दुः” (मनु १।१२१)

चर्यात् १ धृतिः—मदा धैर्यं रत्नमा, २ चमा—माना-पमान, तथा सुपदुःखमें सहन शीलता, ३ दम—मनकी धर्ममें प्रवृत्त कर धर्मसे रोकना आदि, ४ चन्दोय—शोरीका त्याग, ५ शौच—रागद्वेष पक्षपातशून्य शारीरिक वा मानसिक पवित्रता, ६ इन्द्रियनिग्रह—इन्द्रियोंकी धर्माचरणसे रोककर धर्माचरणमें लगाना, ७ धीः—बुद्धि बढ़ाना, ८ विद्या—पृथिवीसे लेकर परमात्मा पर्यन्त की ज्ञानोपलब्धि करना, ९ सत्य—सैसे पदार्थ की तैसा ही समझना तथा कहना, १० चक्रोध—क्रोध त्यागना।

चार्यसमाजका उद्देश।

प्रत्येक मनुष्य वैदिक धर्मके ग्रहण आकर चार्य-समाजके दम नियमोंकी मानता हुआ समाजका सभामद बन सकता है। प्रविष्ट होनेकी तिथिमें एक वर्षतक सदाचार रखने तथा अपने चार्यका गतांग देनपर वेद चार्यसभामद कहानेके योग्य होता है। चार्य सभामद प्रतिवर्ष अपनेमेंमें प्रधानादि अधिकारियर्ग तथा एक प्रबन्ध-कारिणो-ममतिकका निर्वाचन करते हैं। यह ममिति चत्वारःसभा कहानी है। एक वर्ष पर्यन्त समस्त सामाजिक कार्योंका यथोचित प्रबन्ध करना हमका कर्तव्य होता है। गत मनुष्य मनुष्यके पनुमार भारत भरके समस्त चार्योंकी संख्या द्वादं सखके लगभग थी। हममेंमें मनुष्य प्राणीय

चार्योंकी संख्या एक लाख बीस सखसके इधर उधर है।

प्रत्येक समाज अपने सामाजिक अधिकारण करता है। ये अधिकतर रविशारको होते हैं। इन अधिकारणोंमें जवन, ईश्वर-प्रायना, वेदपाठ, शौर भजन-गानके पतिरिक्त अन्य उपयोगी पुस्तक पढ़े जाती हैं। कभी कभी धार्मिक शौर सामाजिक विषयोंपर व्याख्यान तथा संवाद भी चलते हैं।

एकप्राक्तके समाज मिलकर अपनी महयत्ति द्वारा ‘चार्यप्रतिनिधिसभा’की स्थापना करते हैं। यह विविध समाजोंकी प्रतिनिधि-सभाओं द्वारा संगठित होती शौर अपने प्राक्तमें उपदेशों तथा अन्य धार्मिक कार्योंका प्रबन्ध रखती है।

उपरोक्त समस्त प्रतिनिधि-सभाओं द्वारा चार्यों-वर्तीय सार्वदेशिक सभाकी स्थापना हुई। इसके वर्तमान प्रधान कांगड़ी गुरुकुलके सुखाधिष्ठाता श्रीमान् महात्मा सुग्गी रामजी तथा मन्त्री हन्दा-वन गुरुकुलके सुगाधिष्ठाता श्रीमान् सुग्गी नारा-यण-प्रसादजी हैं।

उपरोक्त सभा-समाजके पतिरिक्त परोपकारिणी सभा स्वामी दयानन्दने अपने चर्योंको उरचित रखने, वेदोंकी प्रचलित करने आदि कार्योंके विचार-से संस्थापित की थी। इस समय हमके प्रधान पदपर चार्यभूषण श्रीमहाराज जनरल सर प्रतापसिंह जी महोदय तथा मन्त्रीपद पर गान्धपुराशोभ राजा-धिराज श्रीनाहर सिंहजी वर्मा सुयोगित हैं। परोप-कारिणीसभा स्वामीजीके वैदिक प्रेमका प्रबन्ध रखती तथा उनके रचे समस्त पुस्तकोंको छपाकर प्रकाशित करती है।

पहलू माद्योंको हिन्दुओंसे चलन रहने देव-कर चार्यसमाजको दया पायी थी। उनमें उनके संस्कारके लिये प्रबन्ध प्रयत्न किया। फ्लानकोट (पञ्जाब)में विद्यमान श्रीनाना गङ्गारामजीके पुद्वार्यमें लगभग २६००० पहलूतोंका उद्यार हुआ है।

चार्यसमाजमें गुरुकुलोंकी स्थापना द्वारा नक्ष-चर्याश्रमका पुनरुद्धार कर वास्तवमें वेदों महत्वका

कार्य किया है। उसने लोगोंका ध्यान वीर्य रक्षाकी ओर खींच कर बतलाया, कि विवाहका अभिप्राय विषय भोग नहीं—बलिष्ठ उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति करना है। आर्यसमाजके सिद्धान्तानुसार प्रत्येक पुरुष ऋतुगामी होते ही पुष्ट और बलिष्ठ सन्तान प्राप्त कर सकता है। बालविवाहके विरोधमें समाजने और आन्दोलन किया नव युवकोंमें स्वदेशी और विदेशी खेल चलाने, मदाचार बढ़ाने, सेवाभाव उपजाने और वैदिक धर्म फौजानेके लिये आर्य-कुमार सभाओंकी स्थापना हुई। वह इस सम्बन्धमें उत्तम और सराहनीय कार्य कर रही है।

आर्यसमाजने बतलाया, कि भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देशमें—जहाँके निवासी घी दूधके सेवनसे ही स्वस्थ और बलिष्ठ हो सकते हैं, और आजकल जिसके न मिलनेसे ही उनकी शारीरिक और मानसिक दुर्दशा हो रही है—गो की रक्षा करना प्रत्येक भारतवासीका परम कर्तव्य होना चाहिये। मांसाहार न केवल वेदविरुद्ध पापमय है, प्रत्युत स्वास्थ्यके लिये घल्लव्य हानिकारक भी है। यदि मांस-भक्षण करनेवाले हिन्दू मांसाहार त्याग दें तो गो रक्षामें बहुत बड़ी सहायता दे सकते हैं। क्योंकि उनके मांसाहार छोड़ देनेपर अन्य पशुओंके न मिलनेसे गोघात करनेवाले लोग गोहत्या से रुक जायेंगे।

आर्यसमाज तो यह भी नहीं चाहता, कोई मनुष्य अपने उदर-पोषणार्थ किसी पशुका वध करे। परन्तु आज्ञा नहीं होती, कि मांस-भक्षणको पाप न समझनेवाले अन्य मतावलम्बी उसे सर्वदा छोड़ देंगे।

पनाथोंकी रक्षाके लिये आर्यसमाजने बड़ा काम किया है। समाजसे पूर्व इस देशमें ईसाइयोंके सिवा दूसरे लोगोंके पनाथालय न थे। परन्तु आर्यसमाजने अजमेर, आगरा, फीरोजपुर, बरेली आदि बड़े बड़े नगरोंमें अपने पनाथालयोंकी स्थापना करके इस अभावकी बहुत कुछ पूर्ति कर दी है। इन आर्य-पनाथालयोंमें सैकड़ों पनाथोंका पालन पोषण और

शिक्षण होता है। समाजके पनाथालयोंके पद्यात् हिन्दूओंके अन्य पनाथालयोंकी स्थापना हुई। मंत्र १८५६ के दमिचन तथा उसके पद्यात् आर्यसमाजके भूषण खनामधन्य नामा साजप्रतिरायजीने पनाथोंकी रक्षाके लिये बड़ा उद्योग किया था।

आर्यसमाजने वैदिक विवाहकी प्रथा प्रचलित की। न्यूनसे न्यून २५ वर्षका वर तथा १६ वर्षकी वधु होना आवश्यक एवम् अनिवार्य है। जाति-पातके बखेड़ोंमें न पड़ गुणकर्मनुसार विवाह करनेका उपदेश आर्यसमाजने दिया है।

स्वर्गाय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागरने १८५६ ई०को सरकारसे हिन्दूविधवाओंके पुनर्विवाहका कानून पास कराया था। परन्तु आर्यसमाजके प्रादुर्भावतक उसका उपयुक्त प्रचार न हुआ। आर्यसमाजने पद्यतयौनि विधवाके विवाहकी वेदान्तकृत मानकर प्रचार किया है।

आर्यसमाजने विधवाओंके लिये आयम खोले, जिनमें उपयोगी कार्योंकी खोजकर वे अपने आयुकी भले प्रकार बिता सकें। ये आयम आगे और जालन्धरमें पञ्चश कार्य कर रहे हैं।

नाथकी दुष्ट और सदाचार नष्ट करनेवाली प्रथाकी दूर करनेके लिये भी आर्यसमाजने बड़ा प्रयत्न लगाया है। इसमें उसे बड़ी सफलता हुई। जो जातिवादी इस दुर्व्यसनमें फँसें थीं, उन्हें निःसंशय त्याग दिया। इस कार्यमें अन्य सुधारकोंसे भी आर्यसमाजको बड़ी सहायता पहुँची है।

आर्यसमाजने बतलाया, कि जोवनकी यह, उष और मस्तिष्ककी गह्विषम्यय धनानेके लिये मांस मदिरा तथा अन्य मादक द्रव्योंका सेवन मटैव वर्जित है। आर्यसमाजके उपदेशसे सहस्रों मनुष्योंने मांस भक्षण पादि दुर्व्यसनसे छुटकारा पाया है।

संघाधारणमें गिदा फौजानेके महत्व पूर्व कार्यको आर्यसमाजने अपने हाथमें लिया है। इसकी ऐसी सफलतासे सम्पादित किया, कि विदेशी लोग भी मुक्त कथसे सराहना करते हैं।

आर्यसमाज द्वारा आर्यमायाका जितना पधिका

दानका नाम दत्त समर्थि
मन्त्रे मरामा इदं भा
कर ररि र्हे ।

चार्यसमाज विद्या

विनिय तथा यह
विनियको प्राणि
धर्म वर्ण
यमात्र धर्म
पदना

गिष्ठा पनिवायं र्हे ।

पुस्तकानामि हिन्दीभाषाका जो
व्यक्ति हैं, वह धन्य कर्षी नहीं। क्योंकि
संस्कृत और पंगरीत्रीके माहिरकी
मिष्ठा ही माध्यम (medium of
communication) हिन्दीभाषा हो र्हे। चार्यसमाजके
पुरुरुरु कर्णकी तथा हन्दावर्णमें हिन्दीभाषा द्वारा
की बुद्धि, इतिहास, गणित, विद्यान चादि विषयोंकी
विद्या हो जाती र्हे। चार्यसमाजने चार्यभाषाके
बनेक साप्ताहिक एवं मासिक पत्र जारी किये, जिनमें
वैदिक धर्म और हिन्दी भाषाका बड़ा प्रचार
हुया र्हे।

कन्दापीके सिधे चार्यसमाजने चयया चार्य-
सामाजिकाने कामन्धर, प्रयाग, देहरादून चादि
नगरोंमें बड़ बड़े विद्यालय स्थापित किये। छोटे
छोटे पुर्वी पाठशालायें तो प्रायः प्रत्येक नगरमें चार्य-
समाजने स्थापित की र्हे।

मोक्षपद प्राप्त करनेके पयात् स्वामी दयानन्दकी
श्रुतिमें १८८६ ई०को "दयानन्द पद्मनो वैदिक
कासेत्र" काशीमें स्थापित किया गया। दोमहात्मा
धर्मराजजीने एतदर्थ पपना जीवन चर्ण किया,
और २५ वर्ष पर्यन्त चिहमाष्टर तथा दिनिपन
रहकर उसकी चमूय सेवायें करत र्हे। चाप ही ने
चपने प्रारंभतोय पुहपायंसि एक साधारण स्कुलकी
इतना बड़ा विद्यालय कर दिनाया। यह
कामेश्वरमें अनुमानमें
सर्वोकी चर्षि
चर्षि कासेत्र निमा

८५०के पधिक र्हे। अन्य सामाजिक स्कुल भी
कायं कर र्हे र्हे। संयुक्तप्रान्तमें भी देहरादून,
चम्पोगढ़, काशी चादि स्थानोंके दयानन्द
स्कुल गिष्ठा प्रचारमें पच्छी सहायता देत र्हे।

वैदिक गिष्ठाका पुनरुद्धार तथा ब्रह्मचर्यायम
किर स्थापन करनेके चर्षिप्रायसे चार्यसमाजने श्रदि
दयानन्द निर्धारित प्राचीन गिष्ठापद्धतिका प्रचार
प्राप्त किया र्हे।

पन्नाइको चार्यप्रतिनिधि सभाने संयुक्तप्रान्तमें
चर्षिहारके समोप एक गुरुकुल स्थापित किया र्हे।
वर्ष १९००के लगभग ब्रह्मचारियों पदते र्हे। इसके
रंस्थापक और संचालक महात्मा मुग्गी रामजीने
पपना जीवन चर्षय करके र्हे र्हे पदस्थाको पधुंवा
दिशा र्हे, कि स्नातक्य (Graduate) निकलना पारम्भ
हो गये र्हे।

संयुक्तप्रान्तकी चार्यप्रतिनिधिपभाने भी हन्दावर्णमें
एक गुरुकुल स्थापित किया र्हे। ब्रह्मचारियोंकी संख्या
१२०के लगभग र्हे। यह 'कुल' यीमान् मुग्गी
नारायणप्रसादजी मधोदयके सुपन्थ्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त
कर रहा र्हे।

चार्यसिंह—मोह धर्मचार्य। यह सिंहालाके पुत्र और
मध्यपदेशके अधिवासी र्हे। काकुलमें मोहधर्म
फैलाने गये थे। किन्तु चमीरने प्राणवधका चादेश
दिया। (Indian Antiquary, Vol. ix, p. 316.)
चार्यसुंस्त—चार्यसुहृदिके प्रधान गिष्थ। यह व्याव-
पद्यागातोय र्हे। इन्हीं व्यक्तिय जर्मोंका फोटिकगच्छ
धंग चला र्हे। वीरनिर्षाणके ११३ पत्सर बाद ८६
वर्षको पवस्थामें इनकी मृत्यु, हुई।

चार्यसुहृदित्त—जर्मोंके एक सिहपुहय। यह पगिष्ठ-
गीतोय र्हे। चपने समयके राजाकी इन्हीं जेन-
धर्मका टीका हो थी।

चार्यचर्म (मं० पद०) चार्यं जनति विदीर्तेति,
चमुह्यारादि पाठादस्याप्यवत्वम्। यन्नात्कार, मुह्य-
दस्यी, जोरमें।

चार्यइदय (मं० त्रि०) चाधु-पिय, जो चयरादकी

आर्या (सं० स्त्री०) १ दुर्गा, पार्वती । २ श्वश्रु, सास । ३ श्वेच्छी, बुजुर्ग औरत । ४ पितामही, दादी । ५ मात्रावृत्तविशेष । 'आर्यामाताःश्वेच्छीः' (विश्व) इसका लक्षण यों लिखा है,—

“लक्ष्मीं तन् सप्तगणानोपेता भवति विष्व विष्वे लः ।

यद्योजय न लघुर्वा मयमेऽथ नियतमावायः ।

यद् हिनोयलात्परकेऽपि मुखलाय भवति पदनिपयः ।

आर्येऽथ पयमेके तथादिष्व भवति यद्यो लः ।” (शपरदाकर)

इस वृत्तमें दो पंक्ति रहती है । प्रत्येक पंक्तिमें साठे सात चरण पड़ते हैं । चरण-चरणमें चार मात्रा लगती हैं । किन्तु दूसरी पंक्तिके पठ चरणमें एक ही मात्रा रहती है । इसप्रकार पद्यलीमें तीस धीर दूसरी पंक्तिमें सत्तार्वस मात्रा आती है ।

आर्या नौ प्रकार होती है,—१ पद्या, २ विपुला, ३ चपला, ४ मुखचपला, ५ लघनचपला, ६ गीति, ७ लपगीति, ८ उद्गीति, ९ आर्द्धगीति ।

आर्यागीति (सं० स्त्री०) आर्या गीतिरिव । वृत्त-रत्नाकरोक्त मात्रावृत्तविशेष । यह वृत्त दो पंक्तिका होता है । प्रत्येक पंक्तिमें आठ समान चरण अथवा बत्तीस मात्रा एक अक्षरकी लगते हैं ।

आर्याण्य—देश विशेष । यह तुषार-देशके निकट अवस्थित है ।

“तुषारवर्षे वैदने कर्मकाण्डनिपातिभिः ।

आर्याण्यशाभिषे देशे विपन्नं केषिचूचिरे ॥” (राजतरङ्गिणी ३।१८०)

यह देश यूनानी (ग्रीक) ऐतिहासिकोंका कछा आरियाना (Ariana) मालूम होता है । इनकी वर्णनाके अनुसार इसे भारतवर्षका उत्तर-पश्चिम प्रान्त, वर्तमान अफगानस्थानका अधिकांश और ईरानका कुछ भाग समझना चाहिये ।

आर्यावर्त (सं० पु०) आर्याः श्रेष्ठा आर्यवर्तन्ते पुंस्य-भूमित्वेन यसन्व्यात्र, आ-वृत्त आधारे षञ् । आर्यावास, भारतवर्षका एक विभाग, हिन्दुस्थानका एक हिस्सा । ऋक्संहिताके ‘अनुप्रवक्षीकसो इव’ (१।१०४) प्रमाणपर युरोपीय पुरातत्त्वविद् सारस्वत आर्योंके आदि-पुरवर्षोंका पूर्ववास एशियाखण्डके मध्यभागस्थित वैजुर्तांग और मुगतांगकी पश्चिम पार्श्वगत अथर्विका भूमि

वताते हैं । किन्तु बहुत-पहले आर्यावास सप्तमिन्नु प्रदेशमें रहा । फिर यथा ‘अनुप्रवक्षीकसो इव’ ऋक्संहिताके अथर्वमात्रसे सर्व आर्योंका आदिवास अन्यत्र क्वचित् अनुमान करना सङ्गत है ।

“पुराण शोकः सत्यं निर्धं वा युगेऽपि इतिर्ष्वं जगाम्वात् ।

पुनः लक्ष्मणाः सत्या मियानि मन्था मर्दने षड् नू सगामात् ।”

(अ. ३।१५८)

उक्त मन्वसे शुनःश्रेयका पुराणशोक वा पूर्ववास जङ्गावीके मूल, लङ्गुर्वीके आधिपत्य और लङ्ग मुनिके आश्रम कान्तारमें बताया है । (ऐतरेयब्रा० २५।१६) हरियन्द्रपुत्र रोहित वहाँसे लङ्गे श्वरोद सारस्वत प्रदेशकी ले गये थे । लङ्गका यह आश्रमरक्षा गङ्गा-प्रभय हिमवत्पृष्ठमें आज भी प्रसिद्ध है । लङ्गव० प्रदेशसे प्रकाश देख पड़नेपर ही गङ्गाका अपर नाम लङ्गवी हुआ है । पश्चात् हिमवत्पृष्ठस्य पौको नाम नदीतीरकी भूमि ही ‘प्रद्वीकम्’ है । यहाँ आर्योंका पहले वास रहना भी ठीक ठहरता है ।

आर्यावर्तका प्रकृत अर्थज्ञान ।

मनुटीकां लुक्लुक्मर्दने निरुद्धा है—

‘आर्याः अर्यावर्तन्ते पुनः पुनः अर्यावर्तन्ते’ (१।११)

आर्यात् जिस स्थानमें आर्योंका पुनः पुनः लक्ष होता, वही आर्यावर्त कह्यता है । किन्तु हमारे मतमें जन्मान्तर मानते भी आर्य अर्थात् ईश्वरपुत्र-व्यपदिष्ट मनुष्योंके प्रधान रूपसे रहनेका स्थान आर्यावर्त है । पहले हिमवत्पृष्ठके पश्चिम भाग सुषासु प्रदेशमें आर्यावर्तकी स्थिति रही ।

“दृषत्ता पथि दुग्धिनि ।” (ऋक् १२९।१०)

यास्कने उपरोक्त ऋग्यजुर्वेदकी व्याख्या इस प्रकार की है,—

“सुषासुर्दो दुग्ध गोर्धं भवति दूर्ध्वं मत्स्यपत्निः” (३।४०)

• लक्ष्मी वा लक्ष्मी—मार्कण्डेयपुराणमें (१०४०) लक्ष्मी और शीरस लक्ष्मीके उल्लेख है । लक्ष्मीका वर्तमान नाम लक्ष्मी है । टल्लोने लक्ष्मी (Lamlatzi) कहकर पुकारा है । शीरस टल्लोका शीरस (पत्नी) वा Baisa (पत्नी) है । आर्यवास ‘पथि’ कहते हैं । यह लक्ष्मीके जनधारिणी अर्थात् है । सुषासु लक्ष्मीके सुषासु लक्ष्मी वा लक्ष्मी मूलक पत्नी ।

जिसके तौर सुदूर पार्यवर्तों का मूलभूमि रहती, यह नदी सुवासु ब्रह्मती है। सुवासु नदीतीरके जलपदका नाम भी सुवासु ही है। 'सुवास्तादिभ्योऽप्' धृत देखनेसे समझ पड़ता, कि पाणिनिको भी उक्त प्रयोग विदित रहा। कनिङ्गहाम मरीचदके मतमें पाञ्जकल सुप्रसिद्ध 'स्वात' (सुवात) नदी प्रवाहित स्वात उपत्यका ही प्राचीन सुवासु है।

"नदी रत्नाकरात्तुमा सु सुनं कः विमुर्तिरीरम् ।
 नातः पुराणान्तरैः सुदीपिपद्ये ननु सुव नदः कः ।"

(अर्. भा. १. ६८)

हे मद्रहण ! रसा, अनिताभा तथा कुभा ' घोर मसुः नदी एवं सर्वत्र गमनशील मित्युक्त तुम्हें विद्वन्म उत्पादन न करे घोर न जनमयी मरुत् एवं पुरीपिपी (पक्ष्णी)०० तुम्हें रोक रहे, जिसमें हमें सुवारा दर्शनसुख मिले।

उपरोक्त षट्पद्योंसे पूर्वतन पार्यवासकी चतुःशीमा भी निकलती है। सुवासु नदीतीरस्थ जलपदमें वषु उत्तरस्थ चतिप्रभावा रसा नदी उत्तर, पाञ्जकल 'काबुल' कण्ठाननिर्वाही क्षीणप्रभावा कुभा पश्चिम, भागप्रसिद्ध मरुत् पूर्व घोर कुभामे नीचे कसु-मित्यु-सुद्वम दक्षिण सीमा है।

"सुदीपे न निरुत्तरादीः स पूर्वमिति रति रतिः ।
 चतुर्षु इति चोपको पयो विनामा उरभिरागे ।"

(अर्. भा. १. ६८)

उपल पर्यतको जो प्रधान नगर है, उसकी रथा विक्रान्त अनुत्तराज करता है। अभिप्राय—यह नगर कभी-कभी प्रामुखादिनी नदियोंमें मादू जानेसे दुःख घाता घोर राजा उसे बघाता था। सुवासुमें ईजान घोर दक्षिणामिसुण बहनेवासी धपसी, सुवासुमें

वायव्यकी घोर दक्षिणामिसुण बहनेवासी कुनिमी घोर सुवासुमें पश्चिमकी घोर दक्षिणामिसुण बहने-वासी घोरपक्षी नदी है।

षट्कर्महितामं 'गोरी' गण्ट दो बार पाया है,—

"दीर्घमिवाव मन्विष्य'न मन्वेत्तु चपदी विरती वा चतुष्पदी ।
 चपत्तौ चपरी चतुष्पदी वरकावता तस्मिन् शोभन् ।" (अर्. भा. १. ६८)

पार्यात् गोरी कल्पितचटि करती हैं। यह एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, षष्टापदी तथा कभी त्रयपदी बन जाती घोर कभी श्योममें (पाकाममें) मद्रसाधर परिमित गण्ट निकालती हैं।

उपरोक्त मन्वेत्तं मायपत्ते 'गोरी' पार्यात् मन्वेत्तंम-रूप वाक् वा गण्ट लिखा है। किन्तु कुछ मनोयोग-पूर्वक यह षट्क पढ़नेपर मद्रह ही किमी नदीकी यणना समझ पड़ती है। 'श्योममें मद्रसाधर परिमित गण्ट' नदीकी कन-कन धनिका यणं माव है। विवेकतः इसके पामे षट्कमें 'मसुद्र' गण्टका प्रयोग पढ़नेसे गोरीका नदी होना स्पष्ट है।

"मसुद्रं धेनि वारने निशोर्धमितिपिपु ।
 कोको कोरी चतिपिताः ।" (अर्. भा. १. ६८)

मद्रसायी मोम मित्युतरक स्थानमें वाम करते हैं। विद्वान् मोम गोरीका पार्यव सेते हैं।

षट्पद्योंदि घोर मद्रसाधरमें भी गोरी नदीकी बात निमी है। मद्रसाधरपुराणमें कैलासमें उत्तर 'गौर' पर्यत बसाया है घोर पर्यतका स्थाननिर्णय करनेमें गोरी नदीका गौरपर्यतसे निकलना स्पष्ट ही समझ पड़ता है। गोरीमें ही पूर्व सुपदिान् नदी है।

• सुवासु—Scythia of Arrian तथा Scythene of Ptolemy की न घोर पाञ्जकल 'द्वार' बहता है।

† कुभा—चतिप्रभावा-चतिर Kopton की न घोर पाञ्जकल काबुल-नदी बहती है।

• कसु—वर्षमान कसु, काबुल नदीमें विहित हुती है।

• पुरीपिपी का चपत्तौ—चपत्तौ है। वर्षमान कसु काती बहती है।

• गोरी—Arrian चतिर Gauria है। यह नदीके चपत्तौ नदीका नाम मन्वेत्तंमसुवासुमें गोरीके दिया है। (अर्. भा. १. ६८) उपरोक्त चपत्तौ Gauria जिना एवं चतिप्रभावा Gauria का है। वर्षमान कसु चपत्तौका उत्तराधन कसु नदीका हीचपत्तौ काव है। कसु नदी काव घोर मद्रसाधरमें गोरी बहती पड़ती है। मद्रसाधरमें केचप चपत्तौ उत्तर चिपी कीचपत्तौका चपत्तौ है। चपत्तौ चपत्तौ उपरोक्त मद्रसाधरमें चपत्तौ चपत्तौ (Das Alt Indus) नामक चपत्तौमें भी चपत्तौ चपत्तौ गोरीके (Gauria) हीका चपत्तौ है।

गौरी और सुवासु या सुभस्तिन् दोनो मिलकर काबुल नदीमें जा गिरी है ।

आर्यावास सुवासुसे प्राक्दक्षिण बहूदूरस्थ, श्रीकण्ठ-ग्रेल-सम्भूत और जङ्गुमुनिके आश्रम-तल-वाड़ी जङ्गावी नदीतक फैला था ।

“पुराणमोः सख्यं शिबं वां कुनोर्नरा द्रविणं जगताः ।

पुनः कृत्वापुनः सख्या गिरानि मथा मदेन सङ्गु सनातः ॥”

(अन् ११५२६)

हे अश्विद्वय ! तुम्हारा पुरातन सख्य वाञ्छनीय और मङ्गलकर है । हे नेत्रद्वय ! जङ्गावीमें तुम्हारा धन रहता है । भवदीय सुखकर सख्य पुनः-पुनः पाकर इस तुम्हारे समान बने हैं । हम हृषिकर सोम द्वारा तुम्हें शीघ्र और युगपत् छूट करेगे ।

जङ्गावी नदी भागीरथीकी शाखा ठहरती, जो आज भी उत्तराखण्डमें बहती है । इससे समझ पड़ा, कि आर्यावास सारस्वत प्रदेशमें फैला है । यहीं बहुतसे ऋक्, यजुः, सामगान और आयर्वेण मन्त्र प्रकाशित हुये । यागविधि यहीं समुद्भूत एवं परिपुष्ट पड़ा और आर्य-साम्राज्य भी यहीं प्रथम विद्युत था ।

सर्ववैदिक ग्रन्थोंमें सरस्वती नामका आख्यानादि बहुतसे स्थानोंपर विद्यमान है । यागभूमि होनेसे सारस्वत प्रदेशकी प्रशंसा अनेकत्र सुननेमें आती है ।

“नि त्वा दधे वर वा शशिया इनायास्यदे सुदिनले अराम् ।

दृषहवां मातुष चापयथां सरस्वा देवदग्ं दिदीष्टि ॥” (११२१४)

शश्यावहल और उत्कृष्ट प्रदेशमें है अग्नि ! हम तुम्हें स्थापन करते हैं । दृषहती तीरसे आपया सरस्वतीतक फैले इस प्रदेशमें तुम लोगोंपर अपनी प्रभा डालो ।

“सरस्वतीहवश्वीदे वनयोर्दंकरम् ।

नं दिवनिर्मितं दीर्घं ब्रह्मावर्तं पृथक्पत्नै ॥” (मत् ४१०)

सरस्वती और दृषहती देवनदीके अन्तर्गत देव-निर्मित देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं ।

“इमं मे नग्ं यदने सरस्वति यदुदि कोर्भं वषता परध्या ।

अविज्जा मरुद् धे वितलपार्श्वोकीये श्वोहरा सुधोमा ।” (अन् १०११३)

गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शतुद्री (शतद्रु), परुष्णी (हरावती), अशिकी (चन्द्रभागा) एवं वितस्ता, इन्हीं

हरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता इन तीनोंके सम्मिलनसे सम्भूत मरुद्-ध्या, शतद्रुके पश्चिम पार्श्वसे सङ्गत प्राचीनतम आर्जोकीया (उरुश्विरा वा विपाद् जो इस समय विपागा नामसे ख्यात है) और तद्यगिला नामक प्रदेशसे निम्नगामी सिन्धु-सङ्गत सुपोमा—सात नदी जिस भूभागमें बहती, समथी संज्ञा समनद या सप्तसिन्धु है । गङ्गा-यमुनाको छोड़ जिस भूभागमें उपरोक्त पञ्च नदीका प्रवाह चलता, वही पञ्चनद या सारस्वतप्रदेश वज्रता है ।

वर्षित समनद प्रदेश सिन्धुके पूर्वोपर पड़ता है । सिन्धुके पश्चिम-पार भी अपर समनद-प्रदेश विद्यमान है । आजकल वह आर्यावर्तसे अलग होत भी पश्चले उसके अन्तर्गत रहा ।

“दृष्टानया प्रथमं यातवे मन्ः सुसर्त्तां रचया देवा व्या ।

सं विन्धो क्रमया गोमतीं क्रुमं मङ्गन्वा वरुं यामितोयसे ।”

(१०१५२)

हे सिन्धु ! प्रथम तुम दृष्टामा नदीसे मिलकर चले थे । पीछे सुसर्त्त, रसा और श्वेतीसे मिले । तुम्होंने क्रमु तथा गोमतीको क्रुमा और मेहत्तुसे मिलाया । इन सफल नदीके साथ तुम एक रथ अर्थात् एकत्र चला करते हो ।

इस मन्त्रमें दृष्टामा प्रथम, सुसर्त्त द्वितीय, रसा० तृतीय, श्वेती चतुर्थ, सुभा पञ्चम, गोमती षष्ठ और मेहत्तुयुता क्रमु नदी सप्तम है । सातो नदी पश्चिम-हिमालयसे उत्पन्न पूर्वपश्चिमाभिमुखगामी पश्चात् दक्षिणप्रवाहो समुद्रगामी सिन्धुनदके पश्चिम पूर्वोदक्षिणाभिमुख बहती पार अन्य नामसे पुकारो जाती है । आजकल विजयदेशसे प्राग् बहमान पञ्च-कोरप्रदेशीय वायव्या 'दृष्टामा', डेराइस्साइन प्त प्रदेश-तल-वाड़ी अर्जुनी 'सुसर्त्त', 'रसा०', श्वेती वा सेवेत, काबुल 'कुमा', वर्ष-प्रदेश-वाहो कुरम 'क्रमु' और गोमन प्रसिद्ध नदी 'गोमती' है । दृष्टामा आदि सातो नदी साक्षात् या परम्परासे सिन्धु-सङ्गत है ।

विजय देशसे प्राक् और बलूचिस्थानादिमें ऊर्ध्व

• रसा—मन्त्र अरक्षामे रसा नामसे वर्णित है । मृद् धा स्थानमें बहती है ।

तक पश्चिमोत्तर सुमिथीयें पुरातन जो आर्यावर्तां ग
 पड़ता, वह पश्चिम-सातव प्रदेग कहा सकता है।
 हिन्दू पूर्व-सातवदेक पश्चिम पड़त-प्रदेगकी तरह
 पश्चिम-सातवदेमें पश्चिमी प्रदेग (पश्चिम-सातव) भी
 समता है। अतः गान्धारका० आर्यावर्तांशगतत्व
 मध्य होता, जिसका प्रमाण वेद. ब्राह्मण और
 पार्ष्णी शास्त्रों मिलता है,—“अतो वा निरतिवा।”
 (यजु. ११११०) “अतिने अन्तरा” (श्रीरामायण ७३८)
 “अन्तरा अन्तरा” (यजु. १११८८)

कुहराज धृतशास्त्री जी टुर्गिशास्त्रि बहूपुत्र-
 प्रमथिनी गान्धारी भारत-प्रसिद्ध ही हैं। वर्त-
 प्रभुतिके आर्य-श्रीवित्का वर्तन पालिनिने निर-
 टिया है। पूर्व एवं पर सातव प्रदेगके बीच
 द्विपय-समुद्र पश्चिमपश्चिम द्वीप प्राचीन आर्या-
 वर्तकी दिशा करनेवाला भीमादण्ड-शंखा मिन्यु नामक
 नद आज भी वर्तमान है। इस मिन्युमें उत्तर दूधरी
 सात नदीकी विद्यमानता भी सुन पड़ती है।

“अतो वा निरतिवा” इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अतो हिन्दु एवमन्तरावा न निरतिवा इति वा निरतिवा
 अतो हिन्दु एवमन्तरावा न निरतिवा इति वा निरतिवा
 अतो हिन्दु एवमन्तरावा न निरतिवा इति वा निरतिवा
 अतो हिन्दु एवमन्तरावा न निरतिवा इति वा निरतिवा”

(यजु. १११८८)

इसमें कैलाश निम्नस्थ उत्प्रेरिणीय उत्प्रेरिता
 और द्विपय, वाजिनीवती एवं सोमसावती
 उत्तरस्थ है। निम्न वल्लिप्याममें ‘दनी’ नदीको कौन
 नहीं जानता! इसी वा पश्चिमनदी विद्वत् प्रदेगमें
 निकल कुभामें मिस्री और जटनीतो सम्भवतः उसीके
 समीप बहती है। उक्त हि-सातनदीकी अपेक्षा मिन्यु
 नदया प्राधान्य दर्शित है,—

“अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा” (१११८८)

अन्तरा—अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा

1. अन्तरा—अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा

नदी मत्त-मत्त होकर तीन त्रेवीमें आर्यावर्तमें
 बहती है। मिन्युमें पूर्व, पश्चिम और उत्तर सात-सात
 नदी विद्यमान है। इन्हीमें नदीके वर्तन प्रतिपादित
 मिन्युनद बना, जिसे उनका पुत्र वा राजा कहा है,—

“अति वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अति वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अति वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अति वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अति वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा”

(१११८८)

है मिन्यु। पयामे युद्ध शिशुकी भाति यह नदी
 पापकी मित्र समझ दुग्ध विमाने चमी पाती है।
 पाप इन्हीं राजाकी तरह युद्धमें शक्ति है। क्योंकि
 पाप इन बहनेवाली नदीमें चमी बड़ रहे हैं।

अन्तरा भी हि-सात-नदीका विषय विद्यमान है,—
 “अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा”

अन्तरा: इम हि-सात-नदीमें परिहत मिन्युके मध्य
 ही पूर्वकालिक आर्यावर्त देग है। उत्तरेयब्राह्मणमें—

“अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा
 अन्तरा अन्तरा वा निरतिवा इति वा निरतिवा इति वा निरतिवा”

प्रागादि दिक् अन्तरा किञ्चि पश्चिमी अपेक्षा
 रक्षता है। क्योंकि प्राक् इत्यादि आकाशमें सर्वत्र
 उपजायमानत्व पाता है। यहाँ आर्यावर्तमें मिन्युका
 मध्य ही पश्चि है। मिन्युमें प्राक् इत्यादि मानते
 ही तेजस् प्रभुतिकी मिष्ट निकलती है। फिर
 मिन्युके प्राग् सरहती आदिकी मोरभूमिमें यज्ञ-
 सामके बाहुभ्यमें तेजस् तथा ब्रह्मयज्ञमि मिलता,
 गत-मत्तमके दक्षिण दिग्-प्रःपुर्वके अभाव तथा
 तापके प्रावण्यमें प्रचुर मध्य उपजता, पश्चिम पश्चिमें
 प्रापुर्वमें पय बहता होता, गत-मिन्यु-मत्तमके
 उत्तर पति मध्यमें वसीमान समता और शरीर-सोम
 बढ़ता है। प्रतिपाकन आर्यावर्तका यह मिन्यु-
 निदृष्ट रथा। आर्यावर्त मीम मिन्युमत्तको ‘मि’
 की अन्तरा ‘दि’ रण्य मिन्युमत्त कहते हैं। मत्तमिन्यु-
 प्रदेग पश्चिममें ‘अन्तरा’ हो गया।

यहाँ नदी मिन्यु-मत्त और पति विकारा रही।
 द्वितीय तथा तृतीय नदी-मत्तमें वर्तन विद्यमान
 है। तदानीमान आर्यावर्तकी उत्तर-गोला बहती
 विदित होती है।

सुवासु प्रदेशकी जो उत्तर-सीमा कही, वही प्रभुरोदक एवं प्रभूतवेग नदी पहले धार्य और अनार्य देशकी सीमा थी।

रसाका वर्णन भी बहुत मिलता है,—

“गिरिरेव प्रसा भस्व निन्दिरे दत्तापि पुश्चभोजसः।” (अक्ष ८३४२)

वह समग्न चलती, शत सेनापति-जैसी देख पड़ती और हृद्यदायीके लिये हृदयघ्न करती है। वह बहु-लोकको पालक है। उनके उद्देश्यसे प्रदत्त रस पर्यंतके रसकी तरह प्रीत करता है।

गिरिकी रसा नदीके न्याय पुश्चभोजका धन भी वर्धित हुआ। इससे समझ पड़ता, कि रसाका समुद्रव किरी गिरिसे हुआ था। जिस प्रकार सिन्धुको पूर्व-देशीय सप्त-नदीमें गङ्गा एक रहते भी दूसरी सरितोंकी गङ्गाही प्रसिद्धि है। तथा सरस्वती भी एक ही श्रनिक नदियोंकी वाचिका है। उसी प्रकार रसा एक होती भी अन्य निम्नगाओंकी वाचिका है। जैसे गङ्गा यमुना प्रभृति नदियोंका साधारण नाम है वैसा ही रसा भी। गङ्गाकी गमन करने, सरस्वतीकी उदक रखने और रसाकी शब्द कर्मसे कोलाहल उठाने-वाली वृत्तपचार्य है। समुद्रमें मिलनेवाली रसा आजकाल धार्यावर्तसे बाहर खुरासान राज्यके अन्तर्गत है। ‘धवस्ता’ ग्रन्थमें ‘रंदा’ नाम लिखा है। पहले रसा ही तदानीन्तन धार्यावासकी पश्चिम सीमा थी।

अंशुमती आदि नदीका धार्यावर्तमें रहना प्म मण्डल ८६ सूक्तके १३, १४ और १५ ऋकमें लिखा है। यह यमुना-मिली और हृद्यहती पूर्वस्थित थी। अश्वत्थकी वर्णन १०।५।८ ऋकमें विद्यमान है। यह चौरसे प्रत्यक्, शतहृसे बहुपूर्व, उत्तर नीचे बहती विनग्रनप्रदेशमें रही।

१३, २२ और ३२ ऋकमें वर्णित शिफा नाम नदी निपद-देशीय ही विदित होती है। क्योंकि प्रथम निपद* नामका उल्लेख विद्यमान है। “जे निट इद निपदे चकारि” (१।१।१।) ६।२०के ६० और ७३ ऋककी

* निपद—प्राचीन शोक शिवासिद्धिने Paropamisadai वा Paropamisus नामसे इस पारंथ्य जनपदको उल्लेख किया है। वर्तमान पाषाण पश्चिमपथके मतसे यह आजकल कश्मिर कहते हैं।

हरियूषीया और यथावती नदी सम्भवतः अफगान-स्थानमें रही। कोई-कोई हजारा प्रदेशकी हरिष्पद या हिरातकी नदीको वैदिक हरियूषीया कहता है।

“जोमानं शिव मयचन शोरा युता थवा चतु दीर चावतु।
वा चतु इवती मन्त्रं। नः परिवयथा चतः पुनना।”

(अक्ष १०।५।१०)

इस मन्त्रमें और अन्यत्र भी जो ‘धवा’* शब्द आता, वह अफगानस्थानके उत्तर प्रवहमान ‘धवस’ (Oxus) नदीको बताता है।

पहले ही श्वेती नदीका वर्तमान नाम सेवेत धता चुके है। श्वेतपर्वतसे निकलनेपर ही यह नाम पड़ा है। दूसरे प्रमाणोंसे भी उपरोक्त विषय प्रमाणित होता है।

“प्राशोऽन्वा नयः सन्दने श्वेत्याः पर्वतेभ्यः श्वेतोऽन्वाः।”

(अथर्व १।४।१८८)

“श्वेता न्वा।” (अक्ष १०।५।४)

श्वेतयावती* नदी भी श्वेतगिरिप्रभव है।

“उत सा यतयावती।” (अक्ष ८।१।८)

वाजसनेयसंहिता (२।१।८) में ‘काम्पिस्थनाशिनो’का नाम लिखा है। याश्चालमें भाग भी कम्पिता ही कहते हैं। हृद्यदारण्यकोत्त (१।१।१, ८।१।१) कपिप्रदेश भा निरुक्तोत्त (४।१४) कपिठलम् है। श्रयंथावत्सर नियय धार्यावर्तीय या।

* कम्पिताय के नाम उदके वल कवनायें सप सन्दने। (अथर्व)

श्रयंथावत्सरकी समीप ही पाणिनि-सूत्र-ग्रथित कापियानगर** विद्यमान रहा। कपियायन मध्य और द्राघा प्रसिद्ध है।

* धवा (Oxus) शब्द हितामें सप (७।१।१८) नाम की निवा वर्त उपायमें हृद्य, श्वेत प्रथित पाठान्त देख पडा है। इस नदीकी आजकल यमु-वरदा कहते हैं।

† श्वेतयावती का श्वेती—वर्तमान कश्मिरकी पर्वतश्रृणु श्वेत नदी है।

‡ कम्पिताय—वर्तमान पश्चिमपथके कश्मिरका कम्पिताय श्वेत नदी है। आजकल कश्मिर कहते हैं।

** कपिस्थ—श्वेतोने Capissa, कपिस्थिने (अथर्व) कपिस्थी वर्त शीमपरिवाजक पुत्रनपुत्रके श्वेत-श्वेत नाम प्रिया है। यह वर्तमान कश्मिरका उपनगर है।

"अथ वा इत्येवमपि कश्चित् इति चोक्तम् ।
अथवा कौशिकस्य कश्चित् इति चोक्तम् ।"

(चरु. भा. १०१)

मत्तमं चण्डमग्नौ पतयान् चरुं पतयन्त्यादिभ्यश्च
बहुवायुसुक्तं प्रदेमिं अतुपयं चोनिवासा तथा इति
देमिं वर्तमानं विभीतकं हृष, मूत्रवान् नामकं चर्षत-
या उत्तुपयं चोनिवासां शोमन्मताका इव योनिमे शोमं
इयं बहुता, यं चो इमांश्च पचमं मीतिकरं चोर
एतुमाश्च देनिवासा ठहरता ई ।

मूत्रवान् चर्षतं पात्रं भो खेलागं गिरिमे उत्तर-
पयिमं विद्यमानं ई । इतोमिं पेटिकं युगमं इरियं वा
इरामं नामकं जनपदकां पार्यायतौपत्यं मानना पड़ेगा ।

चरुवं-मद्विता ५१५२२ मूत्रके इयं मस्यमं
पदमं जनपद, इयंमं मकमरं चोरं महापुत्र, भूम
यं मस्यं मूत्रवान् तथा मल्लिकः यंमं पुत्रः
महापुत्र चोरं मूत्रवान्, ८मं फिर भी मल्लिकं चोरं

• मूत्रवान्—पुत्रावस्यो वेत्तकं चर्षतं भो उत्तरं मूत्रवान् वा
दुष्टवान् चर्षतं ई ।

"मूत्रवान् मूत्रादिभ्यो कश्चिदंभो विनाशिनः ।
मन्विं विरी निरन्तं विरिभो चण्डोपिणः ।
मलं पातयं चण्डमिं मेभो दे नाम म्नु म्नु ।
मन्विं चण्डमिं पुत्रा मती मेभो देवा इवा ।
वा बहु भो देवांश्चो इति वा चरिभो देविम् ।"

(मनु. १२११८-२०)

चरुं मूत्रवान् चण्डवान्, दिग्, चण्डिचं चोरं विद्मं कश्चित् ई ।
चरुं विरिभं चण्डोपिणं मन्विं वाचं चरुं ई । चण्डि चण्डिचं
मेभो मन्विं चण्ड ई । चण्डि इति मेभो देवा (देवोः) मन्विं चण्ड मती
निरन्तं ई । चण्ड मती बहु (Oau) चोरं मन्विं (Mansin) मती मन्विं
मन्विं चो चण्डि चण्डमिं वा विरि ई ।

चरुं चण्डमिं मन्विं चण्ड, वि मूत्रवान् चण्डमिं चण्ड चण्डमिं
चण्डमिं वा इति चण्ड चण्ड चण्ड चण्ड ई । चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं वि चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
"मन्विं मन्विं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं" (चण्ड)

• चण्ड—पुत्रावस्यो चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

• चण्डि—चण्डिचं चण्डमिं चण्डमिं

चण्डमिं इयं मन्विं चण्ड, मन्विं, मूत्रवान् चोरं
मन्विं चण्डमिं चण्डमिं ई । किन्तु पार्यायतौपत्यं चण्डमिं-
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

"चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं"

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

"चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं"

(चण्ड. १०१११)

'चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं'

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

किन्तु चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं
चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं चण्डमिं

• H. H. Wilson's Arisaka Antiqua.

पुराणमें शाकहीपीय मशग-चत्रिय कहावे हैं। पाथात्य ग्रीक ऐतिहासिकगणने उक्त स्थानको Cimbrि नामक जिस जातिका उल्लेख किया, अथर्वसंहितामें (५।२२।४) वह शकभर नामसे मद्वाहप, वन्होक, मूजवान् प्रभृतिके साथ उक्त है। सुतरां पौराणिक शाकहीपीयगणकी उक्त अधिष्ठानभूमिकी बहुपूर्धकाल आर्यदेशमें गण्य होनेका प्रमाण मिलता है।

ऋक्संहिता (१०।१४।१)में मूजवान् नाम मिलता है सही, किन्तु उसमें होनेवाले सोमका भौत्कर्प लिखा है।

“उदङ् जाती दिनवतः स प्राधा नौयते जनम्।” (अथर्व १।१४।१)
उपरोक्त मन्त्रसे तद्रत्य कुष्ठका भौत्कर्पमात्र विदित होता है।

“ऋकोः शक्तिपीयः दधाथ।” (यजुष्यब्राह्मण १।१।१।१)
उक्त मन्त्रमें श्व तपर्वतसे प्रतीच्य और वरुहीकका जो आर्यवासत्व झलकता है, कालभेदसे उसको भी व्यवस्था ही स्वीकार्य है। अथवा उसके आर्याभि-जनत्वमें कोई धाधा नहीं देख पड़ती।

तत्त्वतः हिमवत्पृष्ठके उत्तर-पश्चिमस्थ मूजवान् नामक एवम्त हा आर्यवास और अनादंवास या आर्यावर्तकी उत्तर सीमा मानना उचित है।

“एतन् ते वदामस्य तेन परो मूजवतोऽतोहि।” (वागसनेवर्ध २।१।१)
इसी यजुःका व्याख्यान अन्यत्र भी वर्णित है।

“असिध वा अजानं यन्ति मदेन भी सावस मेऽश्वरान्ति यम यसास-चरवं तदन्वत एना चस उपो मूजवतोऽतोहि।” (यजुष्यब्राह्मण २।१।१।०)

उपरोक्त मन्त्रमें वदनाम श्रुत्य देवतासे मूजवान्की परंपर अर्थात् आर्यावर्तसे दूर जानिकी प्रार्थना की गयी है। इससे विदित होता, कि अद्यतन पारसिक राज्यके पश्चिमोत्तरस्थ एशिया-मायिनरसे पूर्व, अजुगह प्रदेशसे पश्चिम, सिन्धु-सागर-सङ्गमसे उत्तर तथा मूजवान्से दक्षिण संहिताकालीन आर्यावर्त है। किन्तु आर्यसाम्राज्य और अधिक विस्तृत था।

“आरिचिन्तं यमुना वृक्षवपुः शाल वीदं सभेताता ह्यवपुः।
अनासः सिधरी यचवपुः वनिं शोषां च जयुः वपुः।” (सङ् ५।१२।१)

इस युद्धमें इन्द्रने मेदकी मार डाला था। यमुनाने उन्हे सन्तुष्ट किया। अतःसुगणने भी उन्हे सन्तोष

दिया। अत्र, सिधु पौर यस्तु तीन जनपद इन्द्रके उद्देश्यसे अश्वके मस्तकने उपहार दिये थे।

जो इन्द्र सम्वाद इस राज्यमें सर्वकर्मका भेद लेते, उन्हे यामुनप्रदेशवासी सामन्त यमुन, अतःवपु, अजास, शिपव और यचव वनि देते है।

फिर ऐतरेयब्राह्मण-कालमें आर्यावर्तका दृगायतन होना भी प्रत्यक्ष ही समझ पड़ता है। अभियेक-प्रकरणमें लिखा है,—

“प्राधा दिमि वे के च प्राधानां राजानः ०—०
प्रतोषां दिमि वे के च भोजानां राजानः वेऽप्राधानां ०—०
उदोषां दिमि वे के च परेच दिनवतं जनपदा उपरकुष्ठ उनामदः ०—०
सुभयां सप्रभाषां प्रतिहारां दिमि वे के च उदपदानां राजानः
सभयोदोनपाषां राजानोऽपे तसिमिप्यथे।” (ऐतरेयब्रा ५।४।१)

उपरोक्त मन्त्रमें ‘प्राधानां राजानः’से प्रायिके किसी प्रबल नरपतिका नहीं, प्रत्युत शुद्र राजाका बोध होता है। इसीमें अन्यत्र कहा है,—

“प्राधां यामता वदुनाः विटाः।” (ऐतरेयब्रा १।४।१)

उस समय प्राग्देशीय जनपद तथा संहिताकालीन किरातनगरादिक प्रसिद्ध रहा। यहीं सोमवस्तीका क्रय होता था,—

“प्राधां वे दिमि देवाः सोमं राजान मवीचन्।” (ऐतरेयब्रा १।५।१)

प्राणिके आगममें कान्यकुजादिच्छत्रवादीकी विद्यमानता प्रायश्भूमिमें विदित होती है। ऐतरेय-कालमें उन नगरोंके होने या न होनेमें संन्देह है।

दक्षिणमें उस समय एक सत्वत् राज्य ही बल-वत्तम रहा। आर्यकाल उसे हस्तपुर कहते हैं।

“आर्य वज्रं कागेनं भगतः सत्ता मित्रः।” (यजुष्यब्राह्मण १।१।१।१)
गाथाकी यजुःश्रुतिमें ऐतरेयसे भः हस्तपुर वह प्राचीनतर भरतका पयिजन विदित होता है। उसे दौष्यन्ति-भरतने बसाया था। उसके पंगज चिरकालसे भरत कहाते हैं।

“तवाऽप्येतां मगातः मन्वन्ति विनिं वदन्ति।” (ऐतरेयब्रा ५।४।१)
“तवाऽप्येतां भरतानां वदन्तः यजुषः काः मन्वाः सः कदिमि वदन्ति
मन्वन्ति।” (१।४।१)

उक्त दोनो श्रुतिवचनमें ‘वायन्ति’ और ‘वयन्ति’ वर्तमान कालिक प्रयोगसे विदित हुआ, कि ऐतरेयने

पिपराका मज्जरनीं म्मान पार्श्वनायक नाममी पूर्व-
 कावर्तं परिचय रथा । तद्वर्ति मोग मगरदार नामक
 पार्श्व मगरका प्राचीन नाम 'अजुन' बताया करते हैं ।
 यह पार्श्वनायक प्रदेशके पश्चिमिष्ठ जडेमण्य एवंतके
 मिष्टट मांडिडनरीर एनेइमन्डरके ऐतिहासिक
 पारिवायर्त 'पाट्रेप्या' (Adrepa) नामक जियो
 पार्श्व म्भूमागके बात भी कहते हैं । यह पाटगैक
 मन्डका विस्तृत पाठ समस्त पढ़ता है । पात्रकम इम
 स्थानको चन्द्राव कहते हैं । महाभाष्योक्त कालक-
 यम महाभारत पौर पुरापाटिमें कालतोयक नाममें
 चाभीर तथा यथाम्नादि देगके भाय एष वराइ-
 मिहरके तुहत्तर्मचितार्थी भारतवर्षके नैपथत कोषपर
 वैवक्त, मुगट्टादिमें माय कालकजगपद निष्ठा है ।
 पायात्य भोगोलिक टममीने कोलक (Kolaka) एवं
 पारियनमें क्रोकल (Krokala) नाममें भारतके दक्षिण-
 पश्चिम प्रांतामें कोरं जगपद बताया है । करापी
 उपमागरके कुलमें कालकज नामक एक जिना
 विद्यमान है । वही स्थान प्राचीन भारतीय पुराण-
 वर्णित कालक वा कालतोयक एवं प्राचीन पायात्य
 भूगोल-वर्णित कोलक या क्रोकल मान्य देता है ।
 पारिवायर्त पृथीय एम गताप्यीय चीनपरिप्राजक-
 को पो-मी-ये-तो-नी नाममें परिचित रथा । यह
 जममाला विन्ध्यके पश्चिम पौर, उत्तरांगमें राज-
 पूतागके निकट पगर नाममें पात्रकम पुकारी
 जाती है । काश्मीरमें निपायतक हिमालयकी चंग
 ची वृहत्पुराणमें हिमवत्पुच्छ नाममें परिचित
 है । सुतरा महाभाष्यके मतमें पार्यावर्त उत्तरमें
 काडेमण्य एवंतमें जेपायकी पश्चिम मीमा तथा
 दक्षिणमें मिन्धुप्रदेगके दक्षिणाम-स्थित करापी उप-
 कुलमें विन्ध्य एवंतके उत्तर-पश्चिम मीमा पर्वत
 विस्तृत रथा । अरुमंडिताके प्रमाणमें तिसम
 मदी-प्रवाहित मत मिन्धुप्रदेग एवं वारधत तथा
 अनुगट्ट प्रदेशका को परिचय उद्गत हुआ, यह महा-
 भाष्यके प्रमाणमें प्राचीन पार्यावर्तका अर्थ मान्य
 पढ़ता है । अथ मनुमंडितामें पार्यावर्तके मीमा
 इत्यन्तकार निर्धारित है,—

“अथमुत्तरे तुर्गोत्तममुत्तरे पश्चिमात् ।

मदीरेण्यत् विर्गोत्तरेणं विर्गोत्तरेणं” (१.११)

पूर्वममुद पर्वत एव पश्चिम भी मनुद-पर्वत
 विस्तृत देगके अन्तराल प्रदेशमें (पत्तर-दक्षिण) विरिजे
 मध्यवर्ती स्थानको पश्चिममें पार्यावर्त निर्दिष्ट किया
 है । मनु-भाष्यकार मिधातिथिने उक्त टीकाके व्याख्यानमें
 निष्ठा है,—“पार्श्वमगरका पश्चिममगरकोपार्यावर्तके मन्डका ।
 मदीरेण्यत् विर्गोत्तरेणं विर्गोत्तरेणं विर्गोत्तरेणं मन्डं व
 पार्यावर्तं ईमे पूर्वः विर्गोत्तरेणं”

मिधातिथिकी तरह अमरमिंह पौर कुञ्जकभट्ट
 टीमें ही हिमालय तथा विन्ध्यके मध्यवर्ती स्थानको
 पार्यावर्त कहा है ।

“अपारंते कुलमिन्धेजं विन्ध्यविमानयोः” (अमर १.११८)

“विन्ध्यपुच्छं पौर्यावर्तः”

ईमः मनुदक्षिणः अथ उत्तरेणः पश्चिमेणः ।

इत्यन्ते चोत्तरेणः मनुद मन्धेजं मन्धेजः” (अमर १.११९)

प्राग्महित दक्षिण देगकी 'प्राग्-दक्षिण', पश्चिम-
 महित उत्तर देगकी 'पश्चिमोत्तर' पौर अन्तर्के प्रति-
 गतकी 'प्रत्यक्ष' पद्योत् मीमात्रप्रदेग कहते हैं ।

किन्तु पूर्वोद्गत महाभाष्य पौर मूल मनुमंडिताका
 अर्थ पढ़नेमें पार्यावर्त इतना मदीरेण्य मीमाअव मान्य
 नहीं पड़ता । मूल मनुमंडितामें निष्ठा है,

“विन्धुप्रदेगमदीरेण्यं मनुदपुच्छं मन्धेजं ।

इत्यन्तं इत्यन्तं मन्धेजं मन्धेजं” (१.११)

उक्त मनुवचनके अनुसार उत्तरमें हिमालय,
 दक्षिणमें विन्ध्य, पूर्वमें विन्धुप्रदेग पौर पश्चिममें प्रयाग
 अथःमीमावच्छिन्न स्थान मध्यदेग होता है । सुतरा
 मिधातिथि, कुञ्जकभट्ट पौर अमरमिंहमें हिमवत् पौर
 विन्ध्यके मध्य जिन स्थानको पार्यावर्त बताया, अम-
 यान् मनुके मतमें वही मध्यदेग ठहरा है । मनुके
 मतमें मन्धेजं मन्धेजं देग पौर मध्यदेग पार्यावर्तके
 ही अन्तर्के प्रमाण स्थान है । इन कर्मी प्रधान
 भूमागके पश्चिम पूर्वमें मनुद पौर पश्चिममें भी मनुद
 पर्वत पार्यावर्त पार्यावर्तके अन्तर्के पड़ता था ।
 भूतत्परिचयमें पार्यावर्तमें प्रमाण दिया, कि पश्चि
 पूर्वकाल युग्मिन् युग्मं मगरमन्धेजं हिमालयतट पर्वत
 पर्वता था । वही स्थानाधिक निदर्शमें हिमालय-

पृष्ठ छोड़ सिंहल द्वीपकी ओर सरक गया। उस समय प्राकृतिक नियम तथा जलप्रवाहकी परिवर्तन-गतिसे पृथिवीके विभिन्न अंगमें जनपद और द्वीप फिर बने। इसीके फलसे निम्नवर्णकी क्रमशः उत्पत्ति होती रही। भूतत्त्वविदोंने यह भी प्रमाणित किया, कि ग्लिसिन और परवर्ती युगमें राजमहलके निकट पर्यन्त समुद्रतरङ्ग आया था। महाभारतका वनपर्व पढ़नेसे समझ पड़ा, कि युधिष्ठिरके तौरध्यात्रा-काल कौशिकीतीर्थसे कुछ दूर पञ्चगत नदी-युक्त गङ्गासागर-सङ्गम रहा। वर्तमान बङ्गालके हुगली जिलेमें तार-केश्वरके निकट कौशिकीका प्राचोन गर्भ देखनेमें आता है। खृष्टपूर्व तृतीय शताब्द ग्रीक-राजदूत मेगस्थेनिस्ने पटनेसे ३०३ मील दूर गङ्गासागर-सङ्गमका वात कही है। उक्त प्रमाणसे समझ पड़ता, कि उत्तर-राष्ट्रके निकट पर्यन्त किसी-किसी स्थानमें समुद्रतरङ्ग आता, तब इसमें सन्देह नहीं, कि उससे बहुत पहले वैदिक युगमें और भी सौ मील उत्तर समुद्र-तरङ्ग पहुँचता था। इसीप्रकार भूतत्त्वविदोंने यह भी प्रमाणित किया, कि भारतके पश्चिम-प्रान्त स्थित वर्तमान बलूचिस्थानसे सिन्धुप्रदेशतक कराचीका अधिकांश समुद्र-गर्भमें रहा। सुतरां मनुवर्णित धार्थावर्तकी पूर्व और पश्चिम सीमा समुद्र ही ठहरती है।

अग्निमें देखते हैं,—

“धाम्नु वैर्णव्यवस्थाम् यद्विन्दे मे न विपत्ते ।

अच्छेदेग स विप्रेयः धार्थावर्तस्यःपरम् ॥”

धार्थात् जिस देशमें चारो वर्णोंके वर्णगत धान्य-धर्मकी व्यवस्था नहीं, वही स्थान अर्च्छेदेग होता है। धार्थावर्त उससे भिन्न है। मनुवर्णितार्थमें निदिष्ट हुआ है,—

“धरति इधकारणा सगो यव सभापतः ।

स देवी यद्विधो देवी अर्च्छेदेगस्यःपरम् ॥” (११९)

धार्थात् जिस देशमें लखसार मृग सभापतः घूमता, वही यज्ञिय देश ठहरता; उससे भिन्न धरत स्थान अर्च्छेदेग होता है।

उद्धत उभय वचनसे धार्थावर्त यज्ञिय देश प्रमाणित है। इसका आभास मिलता, कि शक्यलुर्वेदीय

गतपथब्राह्मणमें वैदिक काल भारतके पूर्वोपर कितने ही स्थान पर्यन्त यज्ञिय देश कहाता था। गतपथ-ब्राह्मणमें इस बातपर एक गल्प लिखा है,—“विदेघ मायवने सुखमें अग्निको रखा था। गीतम-राह्मण्य नामक उनके एक पुरोहित रहे। गीतमने मायवको पुकारा, किन्तु उन्होंने सुखमें अग्नि निकल पड़नेके भयसे कोई उत्तर न दिया। पुरोहितके ‘बोति होव’ (५।२।१३) इत्यादि ऋड्मन्त्र पढ़कर प्रथम बुलानेपर मायव कुछ न बोले। उन्होंने फिर ‘उदग्ने’ (८।४।१।१०) इत्यादि ऋड्मन्त्रमें सभ्योधन किया, किन्तु फिर भी कोई उत्तर न मिला। अन्तकी ‘तं त्वा छतस्रवीमहे’ (५।२।१२) इत्यादि पढ़नेपर अग्नि ‘छत’ शब्द सुनते ही सुखसे बाहर निकले पार जनने लगे थे। मायव अग्निकी सुखमें रोक न सके। अग्नि मायवके सुखसे निकल पृथिवीपर पथतोर्ष हुये। उस समय विदेघमायव सरस्वतीके तीर रहते थे। फिर अग्नि दहन करते-करते पूर्वाभिमुख पृथिवीपर घूमने लगे। गीतम राह्मण्य और विदेघमायव दोनोंने दाहवानु अग्निका अनुगमन किया। देहानरने समुद्रय नदी जला डाली थी। केवल उत्तर-गिरिसे विनिर्गत सदानोरा नदीका परपार बच गया। इसीसे वह शीघ्रान्तमें भी शीतन रहती है। पूर्वकाल ब्राह्मण उस नदीके पार उतरते न थे। अब अनेक ब्राह्मण पूर्वदिक् रहते हैं। अग्नि धंसा-नरके खाद न लेनेसे वह वामके अयोग्य और अज-सिद्ध है। अब ब्राह्मणोंके यज्ञानुष्ठान करनेमें बाध-योग्य बनी है। विदेघमायवने पूछा,—‘इम कश्चो रहेंगे?’ अग्निने कहा,—‘इम नदीका पूर्व-प्रदेश तुम्हारी वामभूमि होगा।’ उसी समयसे वह नदी कोगस और विदेघके मध्य पत्रसित है। यहाँके नौग माघवसन्तान है।” (अनपवशा १।४।१।१०—१०)

गतपथब्राह्मणसे पक्की तरह समझ पड़ता, पूर्व-काल सदानोराके पश्चिम उपजल धार्थात् कोगमरान्व पर्यन्त यज्ञिय देश लगता था। उसके बाद सदानोराका पूर्वतटस्थ प्रदेश अधिकार करनेपर धार्थावर्त विदेघमायवके नामानुसार यह स्थान विदेघ

वा मियिला कहाया। इसी प्रकार उनके गौतम-
गोक्षीय पुरोहितसे यहाँ यज्ञकाष्ट चला। ब्राह्मण-
शुभने मियिला यज्ञिय देगके पन्तगत रहते भी
मगध, षड् षौर मियिलामे पूर्व पवस्थित समस्त
देग अयज्ञिय गिना जाता था। इसीसे ऐतरेय
आरण्यकमें यह अयज्ञिय षौर मिन्दित देग कहा
गया। ब्राह्मण षौर आरण्यकमें मगध तथा षड्
पर्यन्त ष्रेष्ठ देग माना जाने भी उसके बहुत
पीछे महाभारतके प्रसारकाल यह सकल स्थान
आर्यावास एवं बहु आर्यतोर्ष-ममाच्छ्रय हुआ था।
वनपर्व तीर्थयात्राके पर्याध्यायसे आभास मिलता,
कि उस समय उन सकल स्थानमें सुदूर दक्षिणमें
पवस्थित वैतरणी नदीतीरस्थ कनिष्ठ (वर्तमान
उड़ीसा) यज्ञिय देग कहाता था,—

“पते कदिष्ठाः कामेय यत वैतरणी नदी।
मनाः यज्ञत धर्मोऽपि देवाभ्यर्चयन्ती ॥
आर्यमिः षड्पापुत्रं यस्मिन् शिरिकोमितम्।
उत्तरं तीरमेतदि यततं द्विर्भूषितम् ॥” (महाभारत वनपर्व १११८)

आजकल आर्यावर्त भूमि पश्चिम एवं उत्तरसे
सिकुड़ी, दक्षिणमें प्रायः पूर्वयत् पड़ो षौर पूर्वपर बढ़ी
है। पञ्चाशके पश्चिमप्रान्त आजकल आर्यावर्तसे
बाहर गिना जाता, क्योंकि उत्कल, राट्ट, गौड़, यह
षौर प्राग्व्योत्तिप (कामरूप) प्रदेश आर्यावर्तके
पन्तगत पुण्यभूमि लगता है।

आर्यावर्तीय (सं० त्रि०) आर्यावर्त-सम्बन्धीय, आर्या-
वर्तके सुतासिक्।

आर्याक् (मं० पद्य०) पयात्, अनन्तर, बाद,
तादुपमं, पीछे।

आर्यं (वे० त्रि०) कुरङ्ग-सम्बन्धीय, छत्रेदार शींग
वासे आर्यके सुतासिक्।

आर्य (सं० त्रि०) ऋषेरिदम्, षण्। १ ऋषिसम्बन्धी,
पुराना। २ ऋषिकृत, ऋषियोंका बनाया हुआ।
(पु०) १ ॥ १५५५ ॥

“आर्यं षण्”

पनुगामनको उत्सृष्टकर ऋषियोंका याहा हुआ
पमाशु प्रयोग। (क्री०) ऋषीणां समूहः प्रवरगण-
भेदः। ५ प्रवर ऋषि-समूह। ६ विवाहविशेष।
“यज्ञस्तोत्रेभि देव आदायर्षं गुरवम्” (वायुश्रुत्या)

यज्ञस्य ऋषिर्कस्मि कन्याके विवाह होनेको देव
कहते हैं। उसके पक्षसे दो गो लेकर कन्या-व्याह
देना आर्य कहाता है।

“एवं गो मिक्षुर्भे वा वराशदाय धर्मतः।
कन्याप्रदाने विधिवदती धर्मः स उच्यते ॥” (मनु १।१८)

आर्यात् वरपक्षसे धर्मतः एक गाय षौर एक बैल
पद्यता गोमिक्षुनद्वयसे विधानक्रमसे कन्याप्रदान आर्य
कहाता, जो धर्मजनक होता है। इस स्वल्पपर धम
पद रहनेसे गौहयका ग्रहण शब्दके मध्य परिगणित
नहीं।

“धर्मतः पर्यायं दामादिविद्यये कन्याये वा दातुं न तु शक्यम् ॥”
(पुण्यश्रुत्या)

आर्यक्रम (सं० पु०) आर्य परिपाटी, ऋषियोंकी
चाल।

आर्यधर्म (सं० पु०) कर्मधाम। १ मन्वादि-मोक्ष
धर्म, मनु आदि स्मृतिकारोंका कहा हुआ धर्म।
२ आर्य विवाह, पुरानी चालकी शादी। आर्य श्रुति।

आर्यप्रयोग (सं० पु०) ऋषिसम्बन्धि सन्धि, पुराना
महावरा। वाक्यमें व्याकरणके नियमसे विकृष्ट पढ़ने-
वाला शब्द आर्यप्रयोग कहाता है। ऋषियोंमें व्याका-
रणपर विशेष दृष्टि न रखनेके स्वजनमें उत्पन्न-पलट
किया है। किन्तु उसे पण्डित मान नहीं सकते।
हृदयमें भी व्याकरणका नियम चलना कठिन है।
इसीसे जो शब्द योजना मनमानो रहती, वह आर्य-
प्रयोग वजती है। यह विषय संस्कृतसे ही सम्बन्ध
रहता है।

आर्यम (सं० त्रि०) ऋषयस्य ह्यप्स्वेदम्, षण्।
१ ह्यमसम्बन्धी, नर-गायके सुतासिक्। (क्री०) २ ऋषय-
स्य-वरित।

आर्यमि (सं० पु०) ऋषयस्यापत्यम्, इष्। १ प्रथम
तीर्थयात्रा ऋषयके पुत्र। २ भारतवर्षके प्रथम चक्रवर्ती

। अर्य देवो।

आर्षभौ (सं० स्त्री०) ऋषभस्येयं प्रिया, अण्-ङीप् ।
१ कृषिकच्छ्रुता, केवाचकी वेल । ऋषभस्येयम्,
तुष्याकारत्वात् अण्-ङीप् । २ मध्य-पथस्य वीधि-
त्रयके मध्य वीधिविशेष, राहके वीचकी तीनमें एक
गली ।

आर्षभ्य (सं० पुं०) ऋषभस्य प्रकृतिः, आ । पण्डोप-
युक्त वृष, वधिया बनाने लायक, बैन । 'आर्षभः वनता-
योग्यः ।' (अमर)

आर्षभवाह (सं० पुं०) विवाह-विशेष, किसी किंशकी
गादी । आर्ष देको ।

आर्षिक्य (सं० स्त्री०) ऋषिरेव ऋषिकः, ऋषिकस्य
भावः, पुरो० यक् । ऋषिधर्म ।

आर्षिपेण (सं० पुं०) ऋषिपेणस्य गोत्रापत्यम्, अल् ।
१ ऋषिपेण मुनिके गोत्रापत्य, देवापिका गोत्रनाम ।
(त्रि०) २ ऋषिपेण मुनिसे सम्बन्ध रखनेवाला ।
(स्त्री०) ङीप् । आर्षिपेणी ।

आर्षेय (सं० स्त्री०) ऋषीणां समूहः, टक् । १ ऋषि-
गणरूप प्रवर-विशेष । २ मन्त्रदर्शी ऋषिविशेष ।
(स्त्री०) ङीप् । आर्षेयी ।

आर्षिपेण (सं० पुं०) ऋषिपेणस्यापत्यम्, अल् ।
चन्द्रवंशीय यत्न ऋषतिके एक पुत्र । यह प्रथम राजा
रहे । पर ऋषि हुआ । (हरिवंश २०१ अ०) २ गोत्र-प्रवर
विशेष ।

आर्षिपेणायम् (सं० स्त्री०) तीर्थ विशेष ।

आर्हत (सं० त्रि०) अर्हत इदम्, अण् । १ जैन-
सम्बन्धी, जिन मज्जिमक्के सुतात्मिक । (पुं०) २ जैन,
जिन मज्जिमक्के माननेवाला गच्छस । 'स्वाम्यवार्थः ।'
(दिन १५३३) जैन देको । (स्त्री०) आर्हती ।

आर्हत्य (सं० स्त्री०) अर्हत् या जैन साधुका साधन ।

आर्हन्ती (सं० स्त्री०) अर्हन्तो भावः, अण् लुम्च,
पित्वात् ङीप् यलोपः । योग्यता, काबिलियत ।

आर्हन्त्य (सं० स्त्री०) आर्हन्ती देको ।

आर्हायण (सं० पुं०) आर्हस्यापत्यम्, फल् । अर्ह-
नामक ऋषिके गोत्रापत्य । (स्त्री०) ङीप् । आर्हायणी ।

आर्हाय्य (सं० पुं०) अर्हमभिव्याय अण् आर्हम्
तत्र विहितः तस्येदं वा, इडाच्छ्र । १ पाणिनिके

(५।१।८) 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्टक'सि
(५।१।६३) 'तदर्हति' सूत्र पर्यन्त विहित प्रत्ययविशेष ।
२ उपरोक्त सकल-सूत्र-विहित अर्थ । 'आर्हाय्ये'
(विद्यालकोटने)

आल (सं० स्त्री०) आलति भूपयति, आ-अल
भूपादौ अच् । १ हरिताल, जरनीख । हरिताल
जिस-स्थानमें रहता, उसे भूपित करता है । इसीसे
आल कहते हैं ।

'पिचरं पितरं तापनामच हरितालके ।' (अमर ५।१।१०)

२ अण्ड, मोनाण्ड, मेकाण्ड आदि, मक्षली या
सैंडकका अण्ड । (त्रि०) आ-अल पर्याप्तो अच् ।
३ अलस्य, अधिक, ज्यादा । ४ अष्ट, बड़ा ।

(हिं० स्त्री०) ५ अच्युत वृक्ष, एक पौधा ।
(Morinda citrifolia) यह भारतवर्षके नाना स्थानमें
उपजती है । बुन्देलखण्ड, कोटे, वृद्धी प्रभृति स्थानमें
इसको खेती हातो है । महिसुरका आल सर्वोत्कृष्ट
निकलती है । दूसरे-दूसरे वर्ष इस बोते है । पौदा
दो फीट ऊंचा होता है । छण्डलसे लाल रङ्ग बनता
है । काल धौर जड़को काट होजने मड़ानसे कुछ
दिनमें रङ्ग उतरता, जा कपड़ रंगनेके काम आता
है । रङ्ग पका होता धौर शीघ्र नर्वा उड़ता । आलके
रङ्गसे दोमक मो दूर रहतो है । ६ आलका रङ्ग ।
७ माहो, सरसोंके पिड़में लगनेवाला कांडा । ८ पण्डा-
लुका, हरित माल । ९ खोका, कद् । (पुं०) १० उप-
द्रव, भगड़ा । ११ आर्हीभाव, साल । १२ अण्ड,
आल । १३ प्रान्तभाग, गांवका हिस्सा । भगड़ा-
बड़ेडा आल-जखाल कहता है ।

(अ० स्त्री०) १४ कन्याका सन्तति, बेटोंकी
बीवाह । आलवर्षाको आल-आलाह कहते हैं ।

आलंग (हिं० पुं०) आतप, कामानन्त, सरगमी,
भल, बुल, मस्ती ।

आलंगपर आना (हिं० क्रि०) घोंड़ीका सरगमें
होना या मस्त पड़ना ।

आलंगपर होना, आलंगपर आना देको ।

आलक (सं० स्त्री०) हरिताल, पाना सहिया ।

आलकस (हिं० पुं०) आलस्य, सुप्ती ।

कहते हैं। धीमत्परसमें दुर्गन्ध, मांस, रक्त और मूत्र
पालम्बन है। चन्द्रतरसमें पत्नीक्षिक वस्तु पालम्बन
होता है। ग्राम्तरसमें पत्नित्वत्वादि द्वारा पत्नीय
वस्तुका जो पसारत्व रहता, वही पालम्बन वज्रता है।
भयानक रसमें जिसमें भय उपजता, वही पालम्बन
पाता है। ६ पनुष्ठान, पमन। निर्वापप्राप्तिके लिये
योगियोंद्वारा किं धि जानेवाले मानसिक साधनको
पालम्बन कहते हैं। ७ स्तोत्रकी मूक पाठ्यति,
दुवाका जमोग पद्यादा। ८ बौद्धमतानुसार—पञ्च
प्रानेन्द्रिय सद्य द्रव्यके पांच गुण, पांचो हिमके
मुताहिक शैवी पांच सिद्धते।

पालम्बा (सं० स्त्री०) विपाक पत्रयुक्त हृष्यविशेष,
जङ्गलीनी पत्तियोंकी एक भाड़ी।

पालम्बायन (सं० पु०) पालम्ब रचनात् फञ्।
उपदेष्टा विशेष, एक सुवर्द्धिम। यह पालम्बके
गुवापत्य रहे। (स्त्री०) डीप्। पालम्बायनी।

पालम्बायनिपुत्र, बानभान देणो।

पालम्बि (सं० पु०) पालम्बस्यापत्यम्, इञ्। देश-
म्बायनके शिष्य और पालम्बके पुत्र। (स्त्री०) डीप्।
पालम्बो।

पालम्बित (सं० त्रि०) पालम्बि-क-इट्। १ छत,
गृहोत्, पकड़ा हुआ। २ रक्षित, बचाया हुआ।
३ पालित, मुका या लटका हुआ।

पालम्बितविन्दु (सं० पु०) पालित विन्दु, सहारेका
मुकता। सिरुकी दोनो और जिध जगह जखीर स्तम्भसे
लगती, वह पालम्बित-विन्दु वज्रती है।

पालम्बिन् (सं० त्रि०) पालम्बते, पालम्बि-पिनि।
१ पाल्यी, सहारा पकड़नेवाला। २ पधीन, मातहत।
३ पाल्य देनेवाला, जो टेक लगाता हो। ४ धारण
करनेवाला, जो चलाता हो।

पालम्ब्य (सं० पथ्०) १ पाल्य देकर, सहारा
लगाके। २ इच्छा द्वारा ग्रहणकर, हाथसे पकड़के।

पालम्भ (सं० पु०) पालम्भ-घञ्-तुम्। १ संश्रय,
पानिहान, हमसंगी।

“लोपाद्ये च चामकमुद्रयानं परस च।” (मृ ३।१८)

२ हिंसन, मारकाट।

“पालम्बिच्छिन्नापत्नीकल्पता पत्नि।” (चर ८)

पालम्भा (सं० त्रि०) पालम्बते, पालम्भ-यत्-तुम्।
पाकी वि। पाकारः। हिंस्य, मारा जाने का विस।
“पालम्भी दो।” (विद्यानभोक्तो)

पालय (सं० पु०) पालीयतेऽग्निन्, पाली पाधरि
पच्। १ गृह्य, इधेनी, घर। इस पर्यन्ते यह गृह्य
प्रायः समानात्ममें पाता है, जैसे—हिमालय, कायी-
लय, श्रीपालय।

“यथाः उचि च मूर्ध्नि च निवर्त्तानिपालयः।” (चर ८)

२ पाधार, टेक। भावे पच्। ३ भंग्ये, बगल-
गीरी, पकवारो। (पथ्०) मय्यादाथे पथ्ययी०।
४ लय पर्यन्त, कयामतक। बौद्ध मतमें पालाकी
पालय कहते हैं।

पालयविज्ञान (सं० स्त्री०) पालयं लयपर्यन्तस्थावि-
विज्ञानम्, कर्मधा०। बौद्धमत-सिद्ध पद्मभाष्यद विज्ञान
विशेष। विज्ञानसे प्रतिरिक्त वाद्यवस्तुकी बौद्ध नहीं
मानते।

पालायय (फा० स्त्री०) १ मानिस्य, मल, नजासत,
पालुदगी, गन्दायन। २ दूय, दूय, पोष, मवाद।

पालयके (सं० स्त्री०) पालयकेऽयदेम्, पच्। १ चित्त
कुक्षुर विष, पागल कुत्तेका ज्वर। (त्रि०) २ चित्त-
कुक्षुर-सम्बन्धीय, पागल कुत्तेके मुताहिक।

पालयथ (सं० स्त्री०) न लवणम्, मञ्-तत्;
पालयथस्य भायः, यञ्। नवपरस-भिचल, वैनमकी,
वेनञ्जती, फीकापन।

पालयान (सं० स्त्री०) परं गीत्रं यन्ते यथंते
तरुनेन, प्रपौदरादित्वात् घञ्; यद्वा या समन्तात्
स्यं जनस्यं पालाति गृह्णाति, पालय-पालान-क।
हृद्यमूर्धमें जनमेकके निमित्त खनित और शक्तिका
द्वारा निमित्त जनाधार, याना।

“यादालयानायाजनायाः।” (चर ८)

पालविय (सं० पु०) पालमें विय रहनेवाला जीव,
जङ्गलीसे काटिका जानवर। हृषिक, विग्रधर, राजीव,
मत्स्य, उच्छिदिष्ट और समुद्र-हृषिकके पालमें विय
रहता है। (इह १)

आलविधा (सं० स्त्री०) लघु-साध्य लूताभेद, सुकलसे अच्छी इनिवाली मकड़ीकी बीमारी ।

आलस (सं० त्रि०) आलसति ईपद् व्याप्रियति, अच् । १ अलस, काहिल, सुस्त, जो काम करना चाहता न हो । (हि० पु०) २ आलस्य, सुस्ती ।

आलसायन (सं० पु०) आलस-युनि-फक् । आलसका युवापत्य, काहिलका नोजवान् वेटा ।

आलसी (हि० वि०) अलस, सुस्त, काहिल ।

आलस्य (सं० स्त्री०) न लसति, अच् नञ्-तम् ; अलसः तस्य भावः, थञ् । न नञ्, पूर्वान्तपुत्रादचतुष्पाद-तलवर्णवटइत्तुप्रसक्तम् । वा १।१।११ । १ विहित क्रिया-करणमें अनुत्साह, काहिली, सुस्ती । (त्रि०) आल-स्योऽस्यस्य, अर्गं प्रादि अच् । २ आलस्ययुक्त, काहिल । 'मन्दसुन्दरविद्युत आपसः शौचकोऽप्यसौत्रयः' (५२२)

आला (हि० वि०) १ चार्द्रं, क्लिन्न, तर, गीला ।

"आला देधन ऊं चा चन्दा तथा निजुषो भारी रे ।

मृगन रविदा जल्पनी माहीं कुंकत कंकत हारी रे ॥" (पाण्योति)

२ सपूय, पूयस्त्रावी, जख्मी, पीप देनेवाला ।

(पु०) ३ विविक्त स्थान, ताक, मोखा, सुराष्ट्र ।

"दीवान् खोदी बायीने ।

वर खोया सायोनि ॥" (लोकोक्ति)

४ आलात, कुम्हारका आंवा । ५ चान्दा देही ।

(अ० वि०) ६ आली, ऊंचा, धीवन । (पु०)

७ यन्त्र, छथियार ।

आलात (वै० त्रि०) विपाक, लुहर-वृक्षा । "आलात वा इन्द्रोष्णीको यथा चवीदुष" (अङ् १।०।१।१) 'आलात आक्षिप विरेचकाः' (साधप)

आलाय (वै० त्रि०) समुद्रकी लहरोंमें रहनेवाला ।

आलात (सं० स्त्री०) अलातमेव, स्वार्थे अच् । अलात, अक्षार, कोयला । २ पलाषा, कुम्हारका आंवा ।

आलातचक्र (सं० स्त्री०) लुकका चक्र । किसी ललती चीजकी घुमानेसे भागका चक्र जो बंधता, यही आलातचक्र बजता है ।

आलान (सं० स्त्री०) आ-लीयतेऽत्र, आ-ली पाधात् ल्युट् । १ गजबन्धनस्त्राभ, हाथीके बांधनेका सूंटा । करणैः सुगट् । २ बन्धनरज्जु, बांधनेका रफा । ३ अन्वि,

गांठ । ४ रज्जु, रफा । भावेः सुगट् । ५ बन्धन, बांध, लकड़ । (पु०) ६ गिवके एक मन्त्री ।

'आलानं अरिषा वरुणस्यै रज्जो व न चिन्वात्' (शिदिने)

आलानिक (सं० त्रि०) आलानं बन्धनं प्रयोजन-मस्योक्ति, ठक् । विदयादिभङ्गः । वा १।१।११ । १ आलान-सम्बन्धीय, हाथी बांधनेके सूंटेका काम देनेवाला । (स्त्री०) स्वार्थे ठक् । २ आलान, हाथीके बांधनेका सूंटा ।

"शोटे न तत् पूर्वान्पैर्भोमै आलानिकं व्याहविर विरेचः" (१५ १।१।१५)

आलाप (सं० पु०) आ-नप भावे घञ् । १ कथन, परस्परकथन, कलाम, गुफ्तार, बोली । २ बह्वर्थात् वा वीजगणितके प्रश्नका निर्देश, इत्यदिभ्यसा य ङव-रुल सुकाधिलेके सवालका तज्जमीन । ३ प्रश्न, सवाल ।

"आलाप इव दृष्टेः" (बह्वर्थात्)

४ स्वरसाधनाश्च मा-रु-गम इत्यादि । अनुलोम, विलोम, गमक, मूर्च्छना, तान, लय शौर प्रकृत स्वर प्रादिके संयोग रागादिको प्रकृत रूपसे देखाना आलाप कहता है । आलाप शब्दका अर्थ रागके साथ बोलना अर्थात् किसी रागका यथा-निर्दिष्ट स्वरदि द्वारा प्रतिपन्न करना है । इसमें तालके विशेष समाधायिका प्रयोजन नहीं पड़ता । आलाप कण्ठ शौर बोधादि यन्त्र दोनोमें देखाया जा सकता है । किन्तु वर्णसंयोगसे बनने कारण गान, कण्ठ-भिन्न यन्त्रमें नहीं उतरता ।

"आलापनमापशिः षड्दोवरत्नं हतम् ।" (बहोदरस्य)

आलापक, आलापन देवी ।

आलापचारो (सं० पु०) स्वरसाधन, तान नहानेका काम ।

आलापन (सं० स्त्री०) आ-नप्-पिच्-नुगट् । १ पर-स्परकथन, स्वस्तिवाचन, यातघोत, बालवान । (त्रि०) २ आलाप करानेवाला, जो बात कराता हो ।

आलापना (हि० क्रि०) आलाप छोड़ना, तान लड़ाना, स्वर खोवकर गाना ।

आलापनीय, आलाप देवी ।

आलापवत् (सं० त्रि०) परस्पर कथन करानेवाला, जो आपसमें बातघोत करता हो । (पु०) आलापवान् ।

(स्त्री०) आलापयती ।

पालापित (मं० त्रि०) १ परस्पर कथित, पापघर्म
कथा हुआ। २ स्वरमाधन-पूर्वक उच्चारित, गाय
रूपा।

पालापिन् (मं० त्रि०) परस्पर कथन करनेवाला,
जो आपघर्मों बातचीत करता हो। (पु०) पालापि।

पालापिनी (मं० स्त्री०) अन्नाहु-निर्मित मुरली,
घोंचिका बंगी, मोहर। इसे प्रायः मपरि बलाया करते
हैं। मर्ष इसका गन्ध सुनकर मोहित हो जाता है।

पालापुर—गुरुप्रान्तके वटापू जिलेका एक नगर।
संयदबंधगीय सुनतान् अन्नाउद्दीनके अनुसार इसका
नाम पालापुर पड़ा है। यह स्थान वटापू नगरसे
११ मील दक्षिणपूर्व अवस्थित है। सारस्वत ब्राह्मणोंका
यहां अधिक है। उनके कथनानुसार अन्ना-उद्दीनने
यह स्थान उन्हे दिया था।

पालाप्य (सं० त्रि०) पालाप्यते, पालप-स्तम्।
कथनीय, कहने लायक।

पालाघाला (हिं० पु०) १ छल, कपट, टालमटोल।
२ आरोप, धोका। ३ पालस्य, सुप्ती, काहिली।

“दिन घोषा पालिगः।

कालन बंदो दिया लक्ष्मीः” (मोक्षोत्रि)

पालाहु (मं० स्त्री०) पूर्वपदः दीर्घः या ऊङ्।
अस्त्रम्, कट, लोकी।

पालाहु, पालाहु दीर्घ।

पालारामी, पालरामी दीर्घ।

पालारसी (हिं० स्त्री०) १ प्रमत्तता, अनवधानता,
धैर्यरही। (वि०) २ प्रमत्त, अनवधान, धैर्यरवा।

पालाघर्त (मं० स्त्री०) पालं पर्याप्तं पावर्तते,
पाल-पा-वर्त-पिच् कर्मणि अच्। वस्त-निर्मित व्यजन,
कपड़ेका पट्टा।

“पालाघर्तं तु वस्त्रं (अन्नम्)।” (ईश ३।३।३)

पालाप्य (सं० पु०) पालं पर्याप्तं पावर्तं सुषं यस्य,
वहृमी०। १ कुमोर, घड़ियाल, निहड्ड, मगरमच्छ।

‘मत्तः कुमोरं पालाप्यः’ (ईश ३।३।३)।

(स्त्री०) या सम्यक् मास्यम्, प्राटि ममा०।

२ सम्यक् ष्टस्य, घासा माष।

पालि (सं० पु०) पा-पल पर्याप्तो इन्। १ हथिक,

विच्छु। २ भ्रमर, भौरा। (घो०) ३ सरी, यय्या,
महेनी। ४ भावनी, कृत्तर, मतर। ५ अन्धकान
स्यायी येदस्य जनका निवारक मितु, बांध। ६ कुलक,
गाला। ७ मन्तति, श्रेष्ठो, खान्दान, जात।

‘पालिः षो ष संघायां शैली ष परिशोन्ति।’ (विष)

(त्रि०) ८ अनर्थ, वेपयदा, जो किसी भ्रमरफला
न हो। ९ गृहान्तःकरण, साफ-दिन, ईमान्दार, सया।
पालिस्तम् (मं० पु०) १ सत्ते खन, विदारण, खराग,
खींच। २ राधमविशेष, किसी हमजादका नाम।

पालिप्य (सं० अथ्य०) पाण्डुचित्र उत्तारते हृथे,
नक्षत्रा खींचकर।

पालिगां (धे० स्त्री०) सपेयिगेय, किसी नागनका
नाम।

पालिगव्य (सं० त्रि०) पालिगोरपत्वम्, यत्।
कर्त्तव्यो यत्। पा ३।१।१०४। पालिगु सुनिसे उत्पप्य,
पालिगुसे पेदा। (स्त्री०) यजतन्वात् प्फः पित्वात्

ह्रीप्। भाषांशुः शक्तिः। पा ३।१।१०। पालिगव्यायमी।

पालिङ्ग (मं० पु०) १ पालिङ्गन, हमामोगी, वगुल-
गीरी, चंकवारी। २ दुन्दुभि-विशेष, किसी कुधक
टोल।

पालिङ्गन (सं० स्त्री०) पा-लिगि-लुगट्। पाशेषण,
वगुलगीरी, हमामोगी, चंकवारी, गल-बहियां।
पालिङ्गन सात प्रकारका होता है,—१ पामोदालिङ्गन,
२ मुदितानिङ्गन, ३ प्रेमालिङ्गन, ४ मदमालिङ्गन,
५ मानमालिङ्गन, ६ दृष्यानिङ्गन और ७ विनोदा-
लिङ्गन।

पालिङ्गना (हिं० कि०) पालिङ्गन करना, वगुल-
गीर या हमकिनार होना, गली मगाना, गलबहियां
हानना, चिमटना, लिपटना, पागोगमें लेना, कौली
भरना।

पालिङ्गित (सं० त्रि०) पालिगि-कर्मणि ल-इट्।
१ पाण्डित, वगुलगीर, हमकिनार, गने सगा हुआ।
(स्त्री०) २ पालिङ्गन, वगुलगीरी, चिमट, मपट।
(पु०) ३ तन्त्रकारील्ल विंगति अवधि विंगत् चत्तर
पर्यन्त मन्त्र विशेष।

पालिङ्गितवत् (सं० त्रि०) पालिङ्गन करनेवाका, जो

किष्की गले लगा चुका हो। (पु०) आलिङ्गित-वान्। (स्त्री०) आलिङ्गितवती।

आलिङ्गिन् (सं० त्रि०) आलिङ्गति, आ-लिङ्गि-णिनि।

आलिङ्गनकर्ता, गले लगानेवाला। (स्त्री०) आलिङ्गिनो।

आलिङ्गी (सं० पु०) १ आलिङ्गनकर्ता, गले लगाने-वाला। २ छुद्र दुन्दुभि विशेष, छोटे ढोलकी एक किष्म। यह यथाकार बनाया और हातीपर रखकर बजाया जाता है।

आलिङ्ग (सं० त्रि०) आलिङ्गते, आ-लिङ्गि कर्मणि ष्यत्। १ आलिङ्गनीय, गले लगाने लायक। (पु०)

२ वादनीय मृदङ्ग विशेष, किसी किष्मका ढोल।

‘अहालिङ्गीर्षकाश्रयः।’ (५५२)

(अश्व०) आ-लिङ्गि-ल्यप्। ३ आलिङ्गन करके, गले लगाकर।

आलिङ्ग्यायन (सं० पु०) आलिङ्गस्य मृदङ्गभेदस्यायनं

यत्र, बहुव्री०। १ ग्रामविशेष, जिस गांवमें ढोल बनें।

तस्यादूरभवं नगरम्, अण् वरणादित्वात् तस्य लुगप्।

लुगिपुत्रबन्ध्यात्त्वचने। पा १।५।३। आलिङ्ग्यायन ग्रामसे

अदूरभव नगर, जो शहर आलिङ्ग्यायन गांवसे मजदौक हो।

आलिङ्गर (सं० पु०) अलिङ्गर एव, स्वार्थे षण्।

मृगमय हृत्वा पात्र, पानी भरनेको मट्टीका बड़ा बरतन।

आलिन् (सं० पु०) वृत्तिक, बिच्छू।

आलिनो, आलिन् दीको।

आलिन्द (सं० पु०) अलिन्द एव, स्वार्थे षण्।

वह्निहरिका प्रकोष्ठ, मकान्की सामनेका चबूतरा।

‘प्रनापवचपालिन्दावदिर्हारकोष्ठके।’ (५५२)

आलिन्दक, अलिन्द दीको।

आलिप (सं० त्रि०) आ-लिप-क। आलिपनकारी,

तिस्रा करनेवाला, जो चुपड़ता हो।

आलिप्त (सं० त्रि०) आ-लिप-क्त। हातासेपन,

स्त्रीपा-पोता।

आलिम (अ० पु०) विद्वान् पुरुष, पढ़ा-लिखा

पादमी।

„ आलिम यह क्या पदम न हो लिपिका लिपार पर।” (भीष्मि)

‘आलिम’का बहुवचन ‘उत्तमा’ है।

आलिम-उल्-गंव (अ० वि०) सर्वत्र. पक्षार्थीमी,

हमादान, छिपा हाल जान लेनेवाला।

आलिमाना (अ० वि०) आनवान्, पढ़ा-लिखा,

समभदार।

आलिमाना मुफ्तगू (अ० स्त्री०) विद्या-सम्पन्न वार्ता-

लाप वा विवाद, इलमियतकी बातचीत या बहस।

आलिम्यन (सं० स्त्री०) आ-लिप्-लुगट्, ह्यपोदरा-

दित्वात् लुम्। उत्सवके समय स्त्रीपा-पोत।

आलिम्यना (मं० स्त्री०) वृत्ति, भासुदगी, ककाहट।

आलिम्वद्वा (सं० स्त्री०) आलिम। गुजरातमें इसे

आमालबीज कहते हैं।

आलिसपायिस (Allspice)—हृद्यविशेष, एक दरभत।

(Pimenta vulgaris) यह हृद्य अमेरिकासे भारतपर्यं

आया है। पत्र हरित और मुकुल श्रेत रहता है।

मुकुल निकलते समय प्रकृतिकी गोभा फूट पड़ती है।

औरभसे चारो दिक् गन्धमय हो जाती है। प्रत्येक पत्र

तथा प्रत्येक कोय परिमल प्रदान करता है। फलमें

दालचीनी, जायफल और लवङ्गका गन्ध रहता है।

पत्रसे सुगन्धि तैल खींचते हैं। यह तैल कभी-कभी

बाजारमें लवङ्गतैलके नामसे भी विक्रि जाता है।

व्यवसायी भयक्त फलकी तोड़ धूपमें सुखाते और

व्यवहारमें लाते हैं।

आली (मं० स्त्री०) १ सखो, सपेनो। २ पंलि,

कतार।

(हिं० स्त्री०) ३ भाद्र, भीगी, गीजी। ४ चार

विभेकी नाप।

(अ० वि०) ५ बरेख, युनन्द, बड़ा।

बदाल और उड़ैसेमें एक मल्लिकी भी आली

कहते हैं।

आलीकदर (अ० स्त्री०) वृक्ष पद, लंघा दरजा।

आलीखान्दान (अ० वि०) कुचीन, जो पण्डे बड़े

घरका हो।

आलीजनाम (अ० पु०) मद्दायक, दुजूर, घरकार।

आलीजुर्क (अ० वि०) योग्य, लायक।

आलीजाह, आलीजनाम दीको।

रालेने कारोनिनासे स्वतन्त्र भावमें भालू पायलेंगड पडुंघाया या। पहले इङ्गलेण्ड, स्कॉटलेण्ड और फ्रान्सके लोग कुएँस्तारसे भालू बोते न रहे। इसके साथ उन्हें विपद्यच उत्पन्न होनेका ध्यान था। १७२८ ई०को स्कॉटलेण्ड-निवासी टमाम् प्रिण्टिस नामक किसी व्यक्तिने पहले-पहल भालू बोया। उसके बाद क्रम-क्रम यह अफ्रीका, एशिया और अष्ट्रेलियामें चल निकला।

आजकल भारतवर्षमें सब जगह भालू बोते हैं। बङ्गालमें दुगली और वर्धमान जिला इसकी छापिका प्रधान स्थान है। प्रायः जहाँ नदीका पानी सूखा, वहाँ भालू बो दिया जाता है। मछो रेतोली रहनेसे यह बहुत उपजता है। कंकडदार जमीन ठीक नहीं पड़ती। सींचनेकी भी अधिक आवश्यकता रहती है। बीजकें लिये प्रायः छोटा-छोटा भालू चुनकर निकालते और मजानपर फैलाकर छायामें सुखाते हैं। किन्तु मफेदो आ जानेसे यह बिगड़ जाता और बीजकें योग्य नहीं रहता। एक ही खेतमें प्रति वर्ष लोग भालू लगाया करते हैं। किन्तु पानीकी भङ्ग पड़नेसे फसल सड़ जाती है। देशीको पहले और पहाड़ीको पीछे बोते हैं। खेतको अच्छी तरह जोत जात ४० फीटके अन्तर दो बड़ी और १७ फीटके अन्तर छोटी छोटी सींचनेकी नाली रहती हैं। खलीकी खाद पड़ती है। फिर जुदालसे भूमिको गडरे खोद भालू जमाते हैं। कोपल २३ इंच बड़ पानेसे पीदेकी उखाड़ कर दूरसे स्थानमें सात-सात इंच दूर लगा देते हैं। देशी भालूमें कोपल शीघ्र खाता, किन्तु बखैर्यामें देखे निकलता है। जगनेमें बिलम्ब लगनेमें सींचना पड़ता है। पौदा छः-सात इंच बढ़नेपर सात या दस दिनके बाद पानी दिया जाता है। बीघे पीछे २० मन गोबर और दस मन खलीकी खाद लगती है। पौदा सुखनेसे भालू खोदते हैं। अधिक छिट होनेसे सड़नेकी बीमारी दीड़ती और फसल मार पड़ती है। पत्ती टेढ़ी हो जानेसे भी पौदा सुखता है। भालूमें दोमक लगनेसे बड़ी क्षति पड़ती है।

पाषाणकी खासो पहाड़पर यह बहुत उपजता

है। किन्तु छापिकार्य सुचाररूपसे न चलनेपर सात-पाठ दिनमें भालू सड़ जाता है।

युद्धप्रान्तके नैनीताल, अलमोड़े, पावरी, मोहघाट और समतल स्थानमें यह बहुत होता है। पहाडी भालू आकारमें बड़ा और स्वादमें अच्छा निकलता है। १८४३ ई०को मेजर वेल्लम मिन इसे युद्धप्रान्तमें लाये थे। बीजके लिये भालू समय-समयपर विलायतमें मंगया जाता है। पीप माम फसल होती है। एक पौटेमें कोई पाव भर भालू बंठता है।

पञ्जाबमें बड़े-बड़े नगरोंके पास इसकी छापि होती है। मध्यप्रदेशका भालू कुछ बिगड़ गया है। प्रायः अज्ञोवरमें बोते और फवरी या मार्चमें खोदते हैं।

बम्बई प्रान्तमें पूना, अहमदनगर, सतारा, अहमदाबाद और कोंडा इसके बोनेकी खास जगह है। महावासेश्वरका भालू सुप्रसिद्ध है। खानदेशका पाचोरा स्थान भालूको मण्डो है।

मन्दाज प्रान्तके नीलगिरि पर्वतपर अच्छा भालू उपजता है। किन्तु प्रतिषय एक ही खेतमें छापि होनेसे भालूमें पच रोग लग गया है।

ब्रह्मदेशमें भालू कम होता है। कितनी ही चेटा लगाते भी लोग इसकी छापिमें लाभ उठा न सकें।

बीजधर्म भालूको सुखाकर भालव मिमरीकी जगह व्यवहार करते हैं। प्रायः समय भारतवासो इसे खाते हैं। किन्तु लोग इसे पशोण और यात बढ़ाने-वाला समझते हैं। ब्रतके दिन पन्न न खानेमें प्रायः भालू व्यवहृत होता है। पछले हिन्दू इसे पढ़व मानते थे। किन्तु अब यह प्रथम श्रेणीके शाकमें परिगणित है।

(फ़ी०) २ सुदृजमपाव, पानी पोनेको छोटा बरतन।

भालूक (सं० फ़ी०) या मूलानि, पा-नु-किण्डु प्रायें कन्। १ एजवातुक, एक खुग्गुदार बीज। २ पातुक, किसी किण्डकी गठीली जड़।

भालूका मानन (हिं० पु०) पातुकयुष, पातूका भोर।

भालूचा (फ़ा० पु०) केमिलविनेय, हिं० किण्डका

शर। चीने रङ्गका पाम्पाचा युरोप, मिनिगिया, चीर
 पाम्पिनियामें तथा काश्मिर पर्यंतसे उत्तर एवं
 हिमालयपर गढ़वालसे काश्मीरतक बण्डखानपर
 मिमता है। पाम्पकोठेके समीप जो हृष्य जगता,
 उसमें गहरे हरे चीर नारद्री जैसे रङ्गका फल उत्तरता
 है। समतल भूमिकी पपैसा पर्वत-पान्ना हो हमनी
 हडिडे लिये उपयुक्त है। पाम्पकेका गोट कुड-कुड
 परबी-जैसा होता है। गुठलीके तेलमें रोगनी करते
 है। किन्तु वह किसी कामका नहीं होता चीर शीघ्र
 दुर्गन्ध देने लगता है।

सकड़ी कुड-कुड माल तथा भूरी चीर दानेदार
 निकलती, सिन्धु याडे होमें मुड़ चीर फट जाती है।
 काश्मीरमें इसके मन्दूक तैयार होते हैं।

फल पकनेपर बड़ा, पीला, मीठा चीर रसीला
 होता है। लोग प्रसन्नतापूर्वक खाया करते हैं।
 चण्डमानखानसे सूखा फल बहुत घाता चीर पाल्पा-
 बोखारेके नामसे बाजारमें बिकता है। गर्म पाम्पसे
 पकाकर मोग इसे बहुत खाते हैं। पाल्पाबोखारेकी
 घटनी सादु चीर लाभदायक होती है। यह
 कुड-कुड पछा, ठण्डा चीर तर रहता है। प्वाली
 पीठ पाम्पसे पाचक चीर रचक निकलता है। पिसा
 बढने चीर दाह उठने पर यह बहुत उपकार करता
 है। मूल सद्बोधक होता है।

पाल्पादा (फा० वि०) दूधित, गन्दा, सिपड़ा हुआ।

पाल्पा (सं० त्रि०) पाल्पा-त तस्य न। १ ईषत्
 द्विष, कुड कुड कटा हुआ। २ मय्यक् द्विष, खूब
 कटा हुआ।

पाल्पा-पाल्पा (हिं० पु०) केनिल विमेष, किसी किसका
 पाल्पा। ५५५१०।

पाल्पापुपारा (फा० पु०) शक्य केनिल विमेष, बुपार
 प्राप्ताका घुषा पाल्पा। ५५५१०।

पाल्पापपत्ता (हिं० पु०) लोड़ा विमेष, एक छेन।
 तीन सड़के मिलकर यह छेन करते हैं। एक सड़का
 टुमरेकी पीठपर बड़ अपने हाथसे उसको पाने मूँद
 देता चीर तीसरा उंगली देखाकर छोड़े बने सड़केमें
 छनकी संख्या मुहता है। संख्या ठीक बता देनेसे

सकका दाँव उत्तरता चीर वह उंगली देखावेवासे
 सड़केपर बढता है।

पाम्प (सं० पु०) पाल्पा-घम्। १ मय्यक् लेखन,
 पामी लिपावट। पाधारे घम्। २ लेखन-पत्र,
 लिखनेका काम्प।

पाल्पा (सं० लो०) पाल्पा भाषि ल्युट्।
 १ मय्यक् लिपन, पापी लिपावट। (पु०) २ पार्थायै,
 जम्पवादि प्रभृति लिखनेवाला। करवे ल्युट्।
 ३ लिखन-साधन पत्र प्रभृति, लिखनेका काम्प यमुरङ्।
 (त्रि०) ४ लेखनकर्ता, लिपनेवाला। पाल्पा
 प्रयोग भी होता है।

पाल्पाणी (सं० स्त्री०) पाघपैषा, वनिका, बालीका
 फलम, बीमे या सुरमेका फलम।

पाम्प्य (सं० स्त्री०) पाल्पायते, पाल्पा कर्मणि
 ल्युट्। १ पटस्य घिष, तम्बीर, नकूणा। 'विनामभ्यज्य'
 (१५ १२५) २ लेख्य देवादिका प्रतिविम्ब। (त्रि०)
 ३ लेखनीय, लिखने या छतारने खाबिल। पाधारे
 ल्युट्। ४ विषयभ्यः, तम्बीरके सुताङ्गिण।

पाल्पावेत्ता (सं० स्त्री०) चित्रविद्या, रङ्गभाषी,
 नकूणागो।

पाल्पावेत्तिय (सं० त्रि०) पाल्पायै चित्रमेव श्रेयो यप्,
 बहुषो०। मृत, मरा हुआ। प्रतिविम्बमात्र चित्रपर
 श्रेय रहनेसे मृत व्याहिकी पाल्पावेत्तिय कहते हैं।

"पाल्पावेत्तयो धनिमिहिकताईकमेवम विगुभिरैव।"

(१५ १३१)

पाल्पा (सं० पु०) १ पाल्पा-घम्। उपलेप,
 मिना, मरहम, तेल। शरीरमें उत्पन्न होनेवासे
 शोथस्यपर जो यथोक्त औषध चुपड़ा जाता, वह
 पाल्पा कहाता है। २ बोहमापाके मतानुसार—
 चंग, चण्ड, टुकड़ा।

पाल्पा (सं० स्त्री०) कर्मणि ल्युट्। ५५११०।

पाल्पा (सं० स्त्री०) पद्मकाष्ठ, एक पुग्गुदार सकड़ी।

पाल्पा (सं० स्त्री०) १ रागिणी विमेष। २ अमान
 या पद्यगुल खानसे छलित पाप्य विमेष, मरघट या
 दलदलकी हवा। पल्लियामके मोग इसे मूल समझते
 है। यह वायुकी पपैसा हलकी होती है।

आलेश (सं० पु०) अश्व-सुख-रोग, घोड़ेके मुँहकी बीमारी। हनुदेह (जबड़े)के पश्चन्तर आश्रयपर दन्त निकलनेसे अश्वको आलेश रोग होता है। यह श्लेष्म और रक्तसे उपजता है। अश्व दुर्मन तथा लज्जर पड़ जाता, धीरे-धीरे खाता-पीता, खांसते रहता और बलको गंवा देता है। (अष्टाध)

आलोक (सं० पु०) आलोकितेऽनेन, आ-लोक करणे घञ् । १ सूर्यादि जन्य प्रकाश, रौशनी, उजाला । नैयायिक आलोकको ही द्रश्यके चाक्षुष प्रत्यक्षका कारण बताते हैं। भावे ल्युट् । २ दर्शन, दीद, नजारा । ३ जयशब्द, सना, तारोफ् ।

“आलोकशब्द” वयसां विरारहेः । (अष्टा १।८)

‘आलोकौ श्रयण्यः स्नात् ।’ (विच)

४ उल्लास, फझ । ५ दीप, कन्दील, चिराग ।

आलोकन (सं० क्ली०) आ-लोक भावे ल्युट् । १ दर्शन, नजारा । २ दीप, कन्दील, चिराग ।

आलोकनीय (सं० त्रि०) आ-लोक कर्मणि अनौयर् । १ दर्शनीय, नमूदार, देखने काविल । २ ध्यान दिया जानेवाला, जो ख्याल किये जानिको हो ।

आलोकनीयता (सं० स्त्री०) दर्शनीयता, नमूदारो, जिसे ध्यातमें देख सकें ।

आलोकित (सं० त्रि०) आलोक कर्मणि क्त । १ इट, नजरमें पड़ा हुआ, जो देखा गया हो । भावे क्त । २ दर्शन, नजारा ।

आलोकित् (सं० त्रि०) आलोकते, आ-लोक-णिति । द्रष्टा, देखनेवाला । (पु०) आलोकौ । (स्त्री०) लोपी । आलोकिनी ।

आलोक्य (सं० त्रि०) आलोक्यते, आ-लोक कर्मणि ष्यत् । १ दर्शनीय, देखने काविल । (पथ्य०) ल्यप् । २ आलोकन करके, देखकर ।

आलोच (हिं० पु०) शीला, काटनेसे खेतमें गिरी हुई बाल ।

आलोचक (सं० त्रि०) आलोचते, आ-लोच-ञ्त्सुम् । १ आलोचनकारी, देखनेवाला । २ विवेक, देखानेवाला । (क्ली०) ३ दृष्टिका गुण वा दृश्यका कारण, नज्जर्की सिफत या नजारेका सबब । यह एक

प्रकारका अग्नि होता और नेत्रमें रहता है । इसीसे कृपादिका दर्शन पाते हैं । ४ तयामक पित्त, किसी किष्कका जट्टे-पाव ।

आलोचन (सं० क्ली०) आलोच भावे ल्युट् । १ विमेष धर्मद्वारा विवेचनाका करना, ख्यालका लहाना ।

२ दर्शन, नजारा । ३ अन्तःकरणकी एक वृत्ति । सांख्य मतसे यह सामान्य, विमेषगूय, इन्द्रियजन्य और निर्विकल्प-स्थानीय है । (पथ्य०) मर्यादायै अर्थ्यो । ४ लोचनपर्यन्त, नजरतक । (स्त्री०) लिच्-सुच्-टाप् । आलोचना ।

आलोचनीय, आलोच-इत्थो ।

आलोचित (सं० त्रि०) आ-लोच-ङ्-इट् । आलोचनके विषयीभूत, देखा या समझा हुआ ।

आलोच्य (सं० त्रि०) आ-लोच-ष्यत् । १ आलोचना करने योग्य, जो देखे या समझे जाने काविल हो । (पथ्य०) ल्यप् । २ आलोचना करके, देखभाल या समझ-बूझकर ।

आलोइन (सं० क्ली०) आ-लुङ् मत्से भावे लुङ् । १ बिलोइन, मयायो । २ मिथण, मिलावट ।

आलोइना (हिं० त्रि०) मयन करना, मयना ।

आलोइत (सं० त्रि०) आ-लुङ्-ङ्-इट् । १ मयित, मर्दित, मया या मना हुआ । (क्ली०) भावे क्त । २ मयन, मयायो ।

आलोल (सं० त्रि०) ईपत् लोलः, प्रादि-समा० । १ ईपत् चलल, चुनहुला सा । २ विधलित, कम्पित, हिला या सरका हुआ ।

“लोलोलाः प्रचलन्त्येवैवित्तैर्भावाभ्याः ।”

(अष्टा ११)

३ सम्भ्रमान, बढ़ा हुआ । (पु०) ४ आलुल्य, कम्प, कंपकवी, विकनी ।

आलोलित (सं० त्रि०) आ-लुल-ङ्-इट् । १ आलुल्यः । २ आलुल्यः । ३ आलुल्यः । ४ आलुल्यः । ५ आलुल्यः । ६ आलुल्यः । ७ आलुल्यः । ८ आलुल्यः । ९ आलुल्यः । १० आलुल्यः । ११ आलुल्यः । १२ आलुल्यः । १३ आलुल्यः । १४ आलुल्यः । १५ आलुल्यः । १६ आलुल्यः । १७ आलुल्यः । १८ आलुल्यः । १९ आलुल्यः । २० आलुल्यः । २१ आलुल्यः । २२ आलुल्यः । २३ आलुल्यः । २४ आलुल्यः । २५ आलुल्यः । २६ आलुल्यः । २७ आलुल्यः । २८ आलुल्यः । २९ आलुल्यः । ३० आलुल्यः । ३१ आलुल्यः । ३२ आलुल्यः । ३३ आलुल्यः । ३४ आलुल्यः । ३५ आलुल्यः । ३६ आलुल्यः । ३७ आलुल्यः । ३८ आलुल्यः । ३९ आलुल्यः । ४० आलुल्यः । ४१ आलुल्यः । ४२ आलुल्यः । ४३ आलुल्यः । ४४ आलुल्यः । ४५ आलुल्यः । ४६ आलुल्यः । ४७ आलुल्यः । ४८ आलुल्यः । ४९ आलुल्यः । ५० आलुल्यः । ५१ आलुल्यः । ५२ आलुल्यः । ५३ आलुल्यः । ५४ आलुल्यः । ५५ आलुल्यः । ५६ आलुल्यः । ५७ आलुल्यः । ५८ आलुल्यः । ५९ आलुल्यः । ६० आलुल्यः । ६१ आलुल्यः । ६२ आलुल्यः । ६३ आलुल्यः । ६४ आलुल्यः । ६५ आलुल्यः । ६६ आलुल्यः । ६७ आलुल्यः । ६८ आलुल्यः । ६९ आलुल्यः । ७० आलुल्यः । ७१ आलुल्यः । ७२ आलुल्यः । ७३ आलुल्यः । ७४ आलुल्यः । ७५ आलुल्यः । ७६ आलुल्यः । ७७ आलुल्यः । ७८ आलुल्यः । ७९ आलुल्यः । ८० आलुल्यः । ८१ आलुल्यः । ८२ आलुल्यः । ८३ आलुल्यः । ८४ आलुल्यः । ८५ आलुल्यः । ८६ आलुल्यः । ८७ आलुल्यः । ८८ आलुल्यः । ८९ आलुल्यः । ९० आलुल्यः । ९१ आलुल्यः । ९२ आलुल्यः । ९३ आलुल्यः । ९४ आलुल्यः । ९५ आलुल्यः । ९६ आलुल्यः । ९७ आलुल्यः । ९८ आलुल्यः । ९९ आलुल्यः । १०० आलुल्यः ।

आलोटी (सं० पथ्य०) ईपत् लोलित्य करोत्यनेन, आलोट करोत्यर्थे चिच् आहुसकात् । हिंसाये ।

ब्राह्म ब्राह्मणकी सर्वथ स्त्रीसे उत्पन्न सन्तानका नाम भूर्जकण्टक होता है। किन्तु देश विग्रेषमें उसीको धावन्त्य, वाटधान धौर पुष्यध भौ कहते हैं। भाव देखो।
 धावपन (सं० स्त्री०) धोप्यते स्याप्यते धानाद्यत्, धा-वप धाधादि ल्युट्। १ पाव, जूफ, जगह। “लोको धावपनचत्” (सिद्धान्तकौमुदी) भावे लुट्। २ भूमिमें बीजादिका निधान, बोना। अन्तर्भूतस्थये लुट्। ३ केशादि सर्वमुण्डन, बाल बगैरह सबका मुंडा डालना। (त्रि०) करणे ल्युट्। ४ वपनसाधन, बीनीमें लगनेवाला।

धावपनिष्क्रिा (सं० स्त्री०) धावपनिष्क्रि इत्यप्यति यस्यां क्रियायाम्, मयूरब्धसं समा०। बीजवपनादि क्रिया, बीज बोने बगैरहका काम।

धावपनी (वै० स्त्री०) धावपन-ङीप्। पाव, जूफ, जगह।
 धावपन्तिक (वै० त्रि०) विकीर्ण, विविध, फैलाया या डाला जानेवाला।

धाव-भगत, धाव-धावर देखो।

धाव-भाव, धाव-धावर देखो।

धावय (सं० पु०) धा-वज-धच् वीभावः। १ धाम-मन, धामद, अधायी। कर्तरि धच्। २ धागमनकर्ता, धानेवाला। ३ देशविग्रेष, एक मुल्ल। ४ जल, धाव, पानी। (वै० स्त्री०) ५ वैयर्थ्य, शकता, साहासिली।

धावया (सं० स्त्री०) जल, धाव, पानी।

धावयाज् (वै० त्रि०) धवयाज्, यज्ञानुष्ठान द्वारा प्रायश्चित्त करनेवाला।

धावरक (सं० स्त्री०) धावपानि धनेन, धा-व-करणे धप् ततः संज्ञायां कन्। १ धाच्छादन वस्त्रादि, टांकनेका कपड़ा बगैरह। (त्रि०) २ धाच्छादक, टांकनेवाला।

धावरण (सं० स्त्री०) धावित्यते देहः चैतन्यं या धनेन, धा-व करणे ल्युट्। १ धर्मफलक, डाल। २ वेदान्त-मत-सिद्ध चैतन्यका धावरक अज्ञान। धावरकसिद्धे एषोः। ३ धाच्छादन-साधनमात्र, टांकनेकी हरक बीज। ४ प्राचीरादि, बहारदीवारी बगैरह। ५ वेष्टन, घेड़ा। भावे लुट्। ६ आहति, लपेट।

धावरण-पत्र (सं० स्त्री०) धाच्छादनपत्र, लपेटका कागज।

धावरणशक्ति (सं० स्त्री०) धावरणे शक्तिः, ७-तत्, धावपानि, धा-व कर्तरि लुट्, धावरणं शक्तिः कर्मधा० या०। वेदान्त-मतसिद्ध अज्ञान-शक्ति, धाका या चैतन्यको क्षिपानेवाको ताकत। वेदान्तमतमें जैस प्रत्य होते भी मेघ बह्योजन विद्युत् सूर्यमण्डलको दर्शकोंके नयनपथसे अन्तर्भूत करता, वैसी ही तुच्छ अज्ञान अपरिमित असंघारी धाकाको बुद्धि-विपर्ययसे क्षिपा रखता है। इस शक्तिसे धावत व्यक्तिकी हया अभिमान धाता और प्रमत्तादि प्रवृत्तियोंमें रज्जु देखनेसे सर्प समझनेकी तरह वह धपनकी कर्ता, भोला, सुछी और दुःखो माना करता है।

धावरसमक (सं० स्त्री०) धवर समानम्, एकदेश्ये समा०, निपातनात् डलः। धेधावरकम् डलः। धा० १२० १ धवरसम वर्षका प्रायकाल। तत्र देयं ऋणम् पुञ्। २ वर्षके धाव ममय दत्त ऋण। (त्रि०) ३ धागामी वर्ष दिया जानेवाला।

धावर्जित (सं० त्रि०) धा धुरा० हज-णिच्-त्। दत्त, त्यक्त, निष्कोलत, धावत, संयमित, दिया, छोड़ा, भुकाया या बहाया हुआ।

धावर्ज्य (सं० अर्थ०) तिर्यक्, तिरछे तौरपर।

धावर्त (सं० पु०) धा-वृत्त भावे घञ्। १ धूर्णय-मान जल, गिर्दाव, भंवर। 'नादपरतीन्ध्रयो वनः' (१५७) २ रोमसंस्थान विग्रेष, बालकी भंवरी। कितने जो मनुष्योंके बाल फेरदार होते हैं। धावर्तका रोमावर्त शुभाशुभ फल-सूचक है। यह जानने प्रकारका होता है। वीस प्रकारका शुभ और द्वादश प्रकारका धावर्त धग्गुभ है। उत्तर चोट प्रपाव पड़नेमें यह शुभावह और अरुण मयंकाम-फलप्रद ठहरता है। ललाटमें दो, तीन या चार धावर्त धानेमें धग्गु धन्यतम निकलता है। ललाटके ऊर्ध्व पायुपूर्वस्थित तीन धावर्तका नाम निःश्रेणी पड़ता, जिसमें सामीका मवर्थि मघता है। गिरःके केगान्तमध्य धववर धावर्त उठनेसे धग्गुके स्वामीका जय होता है। घण्टामध्यके ममोप निगान्तमें मगनेवाला देवमवि धमज्ञत् है। कर्णमूत्र, बाह, केगान्त धौर मग्गकका धावर्त धूर्जित होता है। त्रिष धग्गके वधःपर धार धावर्त पड़ता

ब्राह्म ब्राह्मणकी सवर्ष स्त्रीसे उत्पन्न सन्तानका नाम भूर्जकण्ठक होता है। किन्तु देग विगेषमें उसीकी आवन्त्य, वाटधान और पुष्पध भो कहते हैं। प्रायश्चित्त। आवपन (सं० स्त्री०) शोष्यते स्याप्यते धानाद्यत्, आ-वप आधारे ल्युट्। १ पात्र, जर्फ, जगह। “लोको आवपनचैन” (विद्वान्कोशरी) भावे लुट्। २ भूमिमें वीजादिका निधान, बोना। अन्तर्भूतस्त्वयं लुट्। ३ केशादि सर्वसुण्डन, बाल वगैरह सबका मुंडा डालना। (त्रि०) करणे ल्युट्। ४ वपनसाधन, बोनीमें लगनेवाला।

आवपनिष्करा (सं० स्त्री०) आवपनिष्कर इत्युच्यते यस्यां क्रियायाम्, मयूरव्यंसं समा०। वीजवपनादि क्रिया, बीज बोने वगैरहका काम।

आवपनी (वै० स्त्री०) आवपन-ङीप्। पात्र, जर्फ, जगह। आवपन्तिक (वै० त्रि०) विकीर्ण, विचित्र, फेलाया या डाला जानेवाला।

आव-भगत, आव-पादर देखो।

आव-भाव, आव-पादर देखो।

आवय (सं० पु०) आ-वज-वच् वीभावः। १ भाग-मन, आमद, अवायी। कर्तरि अच्। २ भागमनकर्ता, आनिवाला। ३ देगविशेष, एक मुक्त। ४ जल, आव, पानी। (वै० स्त्री०) ५ वैयर्थ्य, शुक्ता, साहासिली।

आवया (सं० स्त्री०) जल, आव, पानी।

आवयाज् (वै० त्रि०) अवयाज्, यज्ञानुष्ठान द्वारा प्रायश्चित्त करनेवाला।

आवरक (सं० स्त्री०) आहणाति अनेन, आ-ह-करणे अप् ततः संज्ञायां कन्। १ आच्छादन वस्त्रादि, टांकनेका कपड़ा वगैरह। (त्रि०) २ आच्छादक, टांकनेवाला।

आवरण (सं० स्त्री०) आत्रियते देहः चैतन्यं या अनेन, आ-ह-करणे ल्युट्। १ चर्मफलक, टाल। २ वेदान्त-मत-सिद्ध चैतन्यका आवरक अज्ञान। आवरणम् इति। ३ आच्छादन-साधनमात्र, टांकनेकी हरक बीज। ४ प्राचीरादि, चहारदौवारी वगैरह। ५ घेठन, बहा। भावे लुट्। ६ आडलि, लपेट।

आवरण-पत्र (सं० स्त्री०) आच्छादनपत्र, लपेटका कागज़।

आवरणगति (सं० स्त्री०) आवरणे गतिः, अ-तत्, आह्वयति, आ-ह कर्तरि लुट्, आवरणं गतिः कर्मधा० वा०। वेदान्त-मतसिद्ध अज्ञान-गति, आत्मा या चैतन्यकी छिपानेवासी तात्। वेदान्तमतमें जैसे अल्प होते भी मेघ बहुयोजन विस्तृत सूर्यमण्डलको दर्शकोंके नयनपथसे अन्तर्भूत करता, वैसे ही तुच्छ अज्ञान अपरिमित असंछारी आत्माको बुद्धि विपर्ययसे छिपा रखता है। इस गतिमें आहत व्यक्तिको हृद्या अभिमान आता और प्रमत्तादि अवस्थामें रज्जु देखनेसे सर्प समझनेकी तरह यह अपनेको कर्ता, भोला, सुखी और दुःखी माना करता है।

आवरसमक (सं० स्त्री०) अवरं समानम्, एकदेशो समा०, निपातनात् छन्दः। दोआवरसमान इत्। पा. ३. १. ३० १ अवरसम वर्षका आयकाल। तत्र देयं ऋणम् पुञ्। २ वर्षके आय समय दत्त ऋण। (त्रि०) ३ भागामी वर्ष दिया जानेवाला।

आवर्जित (सं० त्रि०) आ चुरा० वृज-णिच् ङ। दत्त, त्यक्त, निश्चोक्त, पाहृत, संयमित, दिया, छोड़ा, भुकाया या बचाया हुआ।

आवर्ज्यं (सं० अव्य०) तिर्यक्, तिरछे तीरपर।

आवर्त (सं० पु०) आ-हृत भावे घञ्। १ घूर्णाय-मान जल, गिर्दाब, भंवर। “आवर्तःसिद्धः सः” (पण०) २ रोमसंस्थान विशेष, बालकी भंवरी। कितने हो मनुष्योंके बाल फेरदार होते हैं। चमड़ा रोमावर्त शुभाशुभ फल-सूचक है। यह जानने प्रकारका होता है। बौध प्रकारका शुभ और द्विहत्तर प्रकारका आवर्त प्रथम है। उत्तर चोठ प्रपाप पढ़नेमें यह शुभावह और सुकण सर्वकाम-फलप्रद ठहरता है। ललाटमें दो, तीन या चार आवर्त आनेमें पात्र धन्यतम निकलता है। ललाटके ऊर्ध्व पानुपूर्वस्थित तीन आवर्तका नाम त्रिःशेर्षी पड़ता, जिनमें स्वामीका मर्शियं सुधता है। गिरःके किशाभन्धन्य अवर आवर्त उठनेसे चमड़े स्वामीका जय होता है। चण्डान्यके ममीप निगालमें लगनेवाला देवमणि शुभलक्ष्ण है। कर्ण मूत्र, बाहू, केगान्त और मस्तकका आवर्त शुभ होता है। जिन चमड़े वस्त्रपर चार आवर्त

घोर कण्ठमें पक्ष दिवाली देता, वह धन्य तथा सर्व-
 कामद रक्षता है। रभुका ब्यामीकी इतिहास अथर्वत
 घोर छपरभुका पारसं प्रतिपुत्रित है। गभदेगका
 पारसं मङ्ग, पञ्ज, मदा, पञ्च, इति घोर पञ्च श्रेया
 निरुक्तमें अत्यन्त सुख कदाता है। इत्यु दूमरा
 पारसं प्रति भिक्षित, ब्यामीकी जेगावह घोर धन
 तथा वादका अथकारक है। नाभिकापुत्रके मध्य घोष
 प्रदेगपर छठनेगला पारसं ब्यामीकी नाम करता है।
 नाभिकाके दिद्रमें कर्षका पारसं श्लोककारक है।
 पञ्चके मण्डका पारसं दुरामद भीनेम ब्यामीका मार
 क्षामता है। पञ्चमें भीचे पञ्चपातके समुद्रिष्ठ प्रदेगपर
 छठनेगला पारसं ब्यामीके कुलको नाम करता है।
 पञ्चाम् देी पञ्चुल गभप्रदेगका पारसं ब्यामीके जिये
 विनामक है। भुप्रदेगमें समुद्रुत पारसं पुत्रित नहीं,
 यह सुदृष्टका विभाग नाम घोर ब्यामीके पर्यका
 अथकाद्रक होता है। मन्दा, घोषा घोर शिरःका
 पारसं कुत्तमित है। कक्षका पारसं भी संघाममें
 ब्यामीकी शीघ्र मार क्षामता है। वाम-दक्षिण भागमें
 शिवुकके समोपस्य इन्द्रका पारसं दादन है। पञ्च-
 रोठके भीचे शिवुकके प्रमिष्टक तथा कर्षका पारसं
 ब्यामीकी वापका भागी बसाता है। कण्ठ घोर
 निगामके मध्य गनका पारसं म्कथका मन्थिमें
 क्षनिम वाप है। जत्राम भीचे कूर्ध अन्धियर पानेशला
 पारसं संघाममें ब्यामीका छेवन नि नेता है। कूर्धमें
 पट्ट पञ्चुल अर्ध घार्मीकी कनापर पारसं पट्टनेम
 ब्यामीका प्राण मरापारसं साता है। पञ्चके
 कण्ठका पारसं ब्यामीकी नाम करता है। कण्ठ
 पुरीभागके समीप शीघ्रका पारसं ब्यामीकी सुख समित
 मार क्षामता है। कोकग पारसं दाहक घोर रक्षमें
 ब्यामीका शातक होता है। लीङ्, पामन, इदय घोर
 आद्रुका पारसं भी ब्यामीका नामक है। वागवर
 पारसं रक्षनेशामा पञ्च ब्यामीकी घेमें जो घण करता,
 जेम रवि भीडाराम् का सुखा देता है। कूर्धके पञ्चः
 प्रदेग कृष्टिक श्रद्धा घोर ज्ञानुवर पट्टनेगला पारसं
 पञ्चम् होता है। नाभि, मुष्ट, तिष्ठ घोर पञ्चमूम् का
 पारसं भी धन्य नहीं। कृष्टका पारसं ज्ञाधि बड़ाता

है। वायु घोर घोषनिके मध्यका पारसं पञ्चम् है।
 म्किक्विष्ट घोर स्वरकमें वात्रिके जो पारसं पाता,
 यह भिद्रावतं कदाता घोर ब्यामीका शरापें मिटाता
 है। अपर पारसंका नाम गतपदो, मुकुल, मद्दात,
 पादुक, पञ्चपादुक, गृष्टि घोर अथमीद्र पङ्कता घोर
 वात्रिके देखमें पानिमें गभासुम यताता है। गतपदी-
 जेमा गतपदो, जातोमुकुल जेमा मुकुल, अमितशेमा-
 जेमा मद्दात, गृष्टिनेखानका गृष्टि, पञ्चके अथमीद्रक-
 जेमा अथमीद्र, पादुकाकार पादुक घोर पञ्चपादुका-
 जेमा पञ्चपादुक कदाता है। मतिमान् भिपक्का धानके
 विषेय संख्यानमें विषयनोंके मोक्ष गासामार्गानुसार
 पारसंका निर्दंग करना चाहिये। तबोधनमें वात्रि-
 सत्त्व समभकर पारसंको रोमज बसाता है। जर्हा
 सुभ घोर पञ्चम देी पारसं पाता, यथा एक भो फलपद
 नहीं होता। काकुदो पारसं गुराव है। शीठघ,
 रोचमान, पञ्चदो, घोर सुपनी राख तथा रजप्रद होता
 है। पञ्चके प्रपाणमें मादत, मलाटमें कुतागन, उरःका
 अग्निदध, सूधोका अन्धुषणे, रभुका अन्धुविगाय घोर
 छपरभुका पारसं हर तथा छरिकी तरङ्ग पूजित है।
 किन्तु इनमें एकके भी न रक्षनेम मय पारसं पञ्चम
 टकरता है। (अथर्ववेद)

३ राजाघरतं नामक मणि, भाजवटे। ४ भयके
 पथिव विजिद। 'अथर्ववेदः' (८१५) ५ माथिक
 धातु, घोनामानो। ६ सोम। ७ पारसं नामक
 मर्मस्थान विषेय, भीषंके छपरका मन्था। ८ संकल्प-
 कार मर्मदध। यह दोनो भीषंके छपर रक्षता है।
 दिष् भावे पष्। ९ पुनः-पुनपानन, पञ्च, गटिम,
 गुमाय। १० परिघहन, घोटायो। ११ धातुका द्रानथ,
 गलायो। १२ शिला, दिङ्। बाग्मार विष अममें
 विषयाको पारसं कर्तते है। पारस्येते ममन्थान् पञ्चक
 काटिपु, पान्त-दिष् कर्मवि पष्। १३ बहुविषयक
 संघ, बहुल भी वात्रिका मक। १४ यो ज्ञानिकी
 योनि। मङ्गकी नाभि जेमी दीनेम यो-योनि पारसं
 कदातो घोर उमके ज्ञेय पारसंमें ममन्थया रक्षती
 है। योद्विके मध्यस्थित पारसंकाकार मङ्गी गविषम
 विविधका नाम भी पारसं है। (८१५)

भावर्तक (सं० पु०) भावर्त एव, स्त्रायें कन् । १ मेघा-
धिप विशेष । २ कौटविशेष, एक लक्षरोला कौड़ा ।
इसके काटनेसे वायुजन्य रोग बढ़ता है । (दृष्ट)
३ राजावर्त मणि, लाजवर् । भावर्त इव कायति,
भावर्त-के-क । ४ प्रज्ञादिका रोमचिह्न विशेष, बालकी
भंवरी । भावर्त देखो । ५ भ्रूहृद्योपरिके निम्बदेमका
मर्मस्थान विशेष, भौंहेकि जपर गदा । ६ घूर्णायमान
जल, गिर्दाव, भंवर । ७ घूर्णन, घुमाव । ८ चिन्ता,
फिक्र । (त्रि०) भावर्तयति, आ-हृत-णिच्-खल् ।
९ पुनः पुनः आघट्टक, बार-बार घोटने, घोटने या
चलानेवाला । (स्त्री०) १० स्थलपद्म, गुलाब ।
११ रौप्यमासिक, रुपामाखी ।
भावर्तकी (सं० स्त्री०) भावर्तते वायुना कर्धाध्यलति,
आ-हृत-खल् । १ भगवतयक्षी नामक सता विशेष ।
यह कपाय, लण्य, सर, तिक्त, रसायन एवं हृद्य होती
और वात, आमवात, रक्तशोथ तथा प्रमेहका नाश
करती है । (मदनमाल) भावर्तकी कपाय, अन्न,
शीतल और पित्तघ्न है । (राजनिषध) २ भद्रदन्ती,
हृहृत्ती ।
भावर्तन (सं० स्त्री०) भावर्तते गृह्णादेः पश्चिमदिग्-
वास्थित्वाया पूर्वदिग् प्रत्यावर्तते यस्मिन्, आ-हृत
भाधारे ल्युट् । १ गृह्णादिषु पश्चिमदिक् अवस्थित
छायाका पूर्वदिक् गमनारम्भे मध्याह्नकाल, आफ-
तावके मगरिककी ओर साया छालनेका यत्न, दापहर
लौटनेका समय । “भावर्तने यदा सन्धिः पश्चतिपरीः मन्ते ।”
(नीलिल) “भावर्तनागु पूर्वदिग्ः ।” (अग्निपुराण) भावे ल्युट् ।
२ आलौड़न, चलाव, नधायी । ३ गुणन, ज्वं ।
४ धातुका द्रावण, गलायी । कतेरि ल्युट् । ५ विष्णु
भगवान् । ६ जम्बुद्वीपका उपद्वीप विशेष । ७ चेटन,
घेरा । ८ प्राचीरादि, चहार दीवारो । ९ अभ्यास, मज्जा-
रत । १० पुनः विधान, दोहराव । ११ घूर्णन, घुमाव ।
(वै० त्रि०) १२ घूर्णायमान, घूमनेवाला ।
भावर्तनमणि, भावर्तनवि देखो ।
भावर्तनी (सं० स्त्री०) भावर्तते अनया, आ-हृत-णिच्
करणे ल्युट् गौरादित्वात् डीप् । १ मूषो, कलङ्गुली ।
भाधारे ल्युट् । २ धातु गलानेका पात्र, धरिया ।

कर्मणि ल्युट् । ३ भूषा, छाज । ४ द्रव्यविशेष, मोर-
फलो, लोकरफल, मेट्ट ।
भावर्तनीय (सं० त्रि०) आ-हृत-णिच् कर्मणि अनो-
यत् । १ द्रवणीय, गलने काबिल । २ आलौड़नीय,
मयने लायक । ३ गुह्य, ज्वं दिये जाने काबिल ।
४ पुनः पुनः पाठ्य, बार-बार पढ़ने लायक ।
भावर्तपूलिका (सं० स्त्री०) पूलिका भेद, किसी
किष्कीको कचोड़ो या मठरी ।
भावर्तमणि (सं० पु०) भावर्ताकारो मणिः, शाक०
तत् । राजावर्तमणि, लाजवर्द ।
भावर्तमान (सं० त्रि०) १ घूर्णायमान, चकर देनेवाला ।
२ अग्रगामी, जो पानी बढ़ रहा हो ।
भावर्तिक (सं० त्रि०) भावर्तः प्रयोजनमन्थ, ठक् ।
भावर्ताकार धूम-साधन, चक्रदार घुमां लोड़नेवाला ।
भावर्तित (सं० त्रि०) आ-हृत-णिच्-ल-इट्, णिच्
लोपः । १ हतावर्तन, थोटा या मया हुआ । २ ह्रावित,
गलाया हुआ । ३ गुणित, ज्वं दिया हुआ । ४ पम्पस,
फेरा या पड़ा हुआ । भावर्तः मज्जातोऽस्य, तारका
दित्वात् इतच् । ५ जातावर्त, भंवर पड़ा हुआ, जो
चकर खा गया हो ।
भावर्तिन् (सं० त्रि०) आ-हृत-कतरि णिनि ।
१ वर्तनगोत्र, घूम पड़नेवाला । णिच् णिनि । २ प्रत्या-
वर्तन करनेवाला, जो यापस पा रहा हो ।
भावर्तिनी (सं० स्त्री०) भावर्तते अनया, आ-हृत-
णिच् करणे ल्युट्-डीप् । १ भावर्तमान स्त्री, यापन
आनेवाली धोरत । २ मुषा, कुठाली । भावर्तः मय-
यद्वाकारफलमस्यस्याः, इनि-डीप् । ३ अजयद्वी हृष,
पमलायी ।
भावर्ती (सं० पु०) रोमसंस्थान-विशेषयुक्त पत्र,
जिस घोड़ेके भंवरो रहें ।
भावर्दी (का० वि०) १ पानीन, पशुघटीन, मज्जून,
रियायनी, नाया या दन्तगोरी किया हुआ ।
(हिं० स्त्री०) २ घायु, छत्र ।
भावर्हित (सं० त्रि०) आ-हृह लयने णिच्-इ, भावर्हि
हिंसायां ल् वा । उत्पाटित, उन्मूलित, उपाड़ा
हुआ, जो लड़के को छेद कर फेंक दिया ।

शार्वर्तक (सं० पु०) शार्वर्त एष, स्वार्थे कन् । १ भिवा-
धिप विशेष । २ कौटवियेप, एक जड़रोला कीड़ा ।
इसके काटनेसे वायुजन्य रोग बढ़ता है । (इद्रव)
३ राजावर्त मणि, लाजवर्त । शार्वर्त इष कायति,
शार्वर्त-कौ-क । ४ यश्चादिका रोमचिह्न विशेष, बालकी
भंवरौ । शार्वर्त श्लो० । ५ भद्र ह्योपरिके निम्नदेशका
मर्मस्थान विशेष, भौंहोंके ऊपर गटा । ६ घूर्णयमान
जल, गिर्दाँष, भंवर । ७ घूर्णन, हुमाव । ८ चिन्ता,
फिक्र । (त्रि०) शार्वर्तयति, शार्वर्त-णिच्-खल् ।
९ पुनः पुनः शार्वर्तक, बार-बार घाँटने, शौटने या
चलानेवाला । (स्त्री०) १० खलपद्म, गुलाब ।
११ रौप्यसाक्षिक, रूपामाखी ।

शार्वर्तकी (सं० स्त्री०) शार्वर्तते वायुना ऊर्ध्वाधस्यति,
शार्वर्त-खल् । १ भगवतबह्नी नामक लता विशेष ।
यह कपाय, उष्ण, सर, तिक्त, रसायन एवं हृष्य होती
और वात, घामवात, रक्तशोथ तथा प्रमेहका नाश
करती है । (मदनफल) शार्वर्तकी कपाय, अरुत,
शौतल और पित्तघ्न है । (राजनिषध) २ मद्रदन्ती,
हड़हन्ती ।

शार्वर्तन (सं० स्त्री०) शार्वर्तते ष्टहादिः पश्चिमदिग्-
वर्ष्यतश्चाया पूर्वदिशं प्रत्यावर्तते यस्मिन्, शार्वर्त
शार्वर्तके ल्युट् । १ ष्टहादिषु पश्चिमदिक् अवस्थित
क्षयाका पूर्वदिक् गमनारम्भेऽप मध्याह्नकाल, आफ-
तावके मगरिककी ओर साया डालनेका यत्न, दोपहर
लौटनेका समय । “शार्वर्ते यदा सन्धिः पूर्ववर्तियते भवेत् ।”
(गोमिन्) “शार्वर्तमागु पूर्वार्कः ।” (चण्डिपुराण) भावे लुट् ।
२ शान्तिङन, चलाव, मथायी । ३ गुणन, जर्ष ।
४ घातुका द्रावण, गलायी । कर्तरि लुट् । ५ विष्णु
भगवान् । ६ जम्बुद्वीपका उपद्वीप विशेष । ७ घेष्टन,
घेरा । ८ प्राचीरादि, चहार दीवारी । ९ अभ्यास, मडा-
रत । १० पुनः विधान, दोहराव । ११ घूर्णन, हुमाव ।
(वै० त्रि०) १२ घूर्णयमान, घूमनेवाला ।

शार्वर्तनमणि, शार्वर्तनवि श्लो० ।
शार्वर्तनी (सं० स्त्री०) शार्वर्तते घनया, शार्वर्त-णिच्-
करणे ल्युट् गौरादित्वात् ङोप् । १ मूपो, फलकुली ।
शार्वर्तके ल्युट् । २ घातु गलानेका पात्र, घरिया ।

कर्मणि ल्युट् । ३ भूपा, साज । ४ द्रव्यविशेष, मोर-
फलो, लोकफल, भेंद्र ।

शार्वर्तनीय (सं० त्रि०) शार्वर्त-णिच् कर्मणि घनो-
यत् । १ द्रवणीय, गलने काबिल । २ शान्तिङनीय,
मथने लायक । ३ गुण्य, जर्ष दिये जानि काबिल ।
४ पुनः पुनः पाठ्य, बार-बार पढ़ने लायक ।
शार्वर्तपूत्तिका (सं० स्त्री०) पूत्तिका भेद, किसी
कुम्भीकी कचौड़ी या मठरी ।

शार्वर्तमणि (सं० पु०) शार्वर्ताकारो मणिः, शाक०
तत् । राजावर्तमणि, लाजवर्द ।
शार्वर्तमान (सं० त्रि०) १ घूर्णयमान, चक्र देनेवाला ।
२ श्रयगामी, जो भागे बढ़ रहा हो ।

शार्वर्तिक (सं० त्रि०) शार्वर्तः प्रयोजनमस्य, ठक् ।
शार्वर्तकार धूम-साधन, चक्रदार धूवाँ छोड़नेवाला ।
शार्वर्तित (सं० त्रि०) शार्वर्त-णिच्-क-ट्ट, णिच्
लोपः । १ छतावर्तन, शौटा या मया हुआ । २ द्रावित,
गलाया हुआ । ३ गुणित, जर्ष दिया हुआ । ४ अभ्यस्त,
घेरा या पढ़ा हुआ । शार्वर्तः मञ्जातोऽस्य, तारका
दित्वात् इतच् । ५ जातावर्त, भंवर पड़ा हुआ, जो
चक्र खा गया हो ।

शार्वर्तिन् (सं० त्रि०) शार्वर्त-कत्तरि णिनि ।
१ यत् नशोल, घूम पड़नेवाला । णिच् णिनि । २ प्रत्या-
वर्तन करनेवाला, जो वापस आ रहा हो ।

शार्वर्तिनी (सं० स्त्री०) शार्वर्तते घनया, शार्वर्त-
णिच्, करणे ल्युट्-ङोप् । १ शार्वर्तमान स्त्री, वापस
आनेवाली शोरत । २ मुपा, कुठाली । शार्वर्तः सेप-
शङ्काकारफलमस्यस्याः, इनि-ङोप् । ३ अजशङ्को हृष्य,
घमलायी ।

शार्वर्ती (सं० पु०) रोमसंस्थान-विशेषयुक्त पत्र,
जिस छोड़के भंवरौ रहे ।

शार्वर्दा (फा० वि०) १ शानीत, अनुशुद्धीत, मक्खुल,
रियायती, लाया या दम्तगोरी किया हुआ ।
(हिं० स्त्री०) २ शायु, उष्म ।

शार्वर्हित (सं० त्रि०) शार्वर्त उद्यमे णिच्-क, शार्वर्त
हिंभायां क्त्वा । उत्पाटित, उन्मूलित, उखाड़ा
हुआ, जो जड़से नोच कर फेंक दिया गया ।

भावहन (सं० स्त्री०) आनयन, पेयी, लवायी ।
 भावहमान (सं० त्रि०) भा-वह-मानच् । क्रमागत,
 धारावाही, लठा लेन या पङ्चा देनेवाला ।
 भावा (हिं० पु०) कुम्भकारका आपाक, कुम्हारका
 पजावा । “भाका पेट कुम्हारका पाता लोथी काका बोथो गीरा रे ।”
 (लोकोक्ति)
 भावां (हिं० पु०) १ भावाहन, पुकार, बुलावा ।
 अति तप्त एवं रक्तवर्ण लोहको कूटने-पीटनेके लिये
 अन्य कर्मकारका बोलाया जाना ‘भावां’ है ।
 २ भावा ।
 भावागमन (सं० स्त्री०) आगमन एवं गमन, आमत-
 रफ्तन, आना-जाना । जन्ममरणकी भी भावागमन
 कहते हैं । क्योंकि जन्म लेनेमें जीव इहलोक आता
 और मरण होनेसे परलोक जाता है ।
 भावागमन (हिं०) भावागमन देखो ।
 भावागमन (हिं०) भावागमन देखो ।
 भावाज, (फा० स्त्री०) १ शब्द, सदा । २ आधान,
 पुकार । ३ चीत्कार, चोख । ४ स्वर, तान । ५ खोला-
 हल, शोर । ६ ख्याति, शोहरत ।
 भावाज कयी तरहको होता है, इकहरी (सादी),
 बुलन्द (जंघी), धीमी (नोची), बंधी (एक-जैसी),
 भारी (बंधी), महीन (बारीक) और मोठी (अच्छी
 लगनेवाली) ।
 भावाज आना (हिं० क्रि०) कर्णगोचर होना, सुन
 पड़ना ।
 भावाज लठाना (हिं० क्रि०) ऊंचे शब्दसे बोलना,
 चिन्तना ।
 भावाज ऊंचे करना, आवाज लठाना देखो ।
 भावाज करना (हिं० क्रि०) १ आधान करना,
 पुकारना । २ शब्द निकालना, बोल सुनाना ।
 भावाजका कड़ी चीजमें चलना (हिं० पु०) घनमें
 शब्दका वेग, सुस्त्रमिद गंमें सदाकी रफ्तार ।
 भावाजका धुमना (हिं० पु०) शब्दका आघात,
 सदाकी कड़ी ।
 भावाजका टप्या (हिं० पु०) शब्दका गोचर, सदाकी
 पङ्चा ।

भावाजका पतली चीजमें चलना (हिं० पु०) द्रव-
 वस्तुमें शब्दका वेग, रकीकमें सदाकी रफ्तार ।
 भावाजका पला, आवाजका टप्या देखो ।
 भावाजका लड़ मिटना (हिं० पु०) शब्दका परस्पर
 सहित, सदाका सुकाविना ।
 भावाजका लौटना (हिं० पु०) प्रतिशब्द, वाजगद्य,
 गूँज ।
 भावाजका हवायी चीजमें चलना (हिं० पु०) वायुमें
 शब्दका वेग, वादमें सदाकी रफ्तार ।
 भावाजकी गमक (हिं० स्त्री०) शब्दकी पराकाष्ठा,
 सदाकी सुन्द्री ।
 भावाजकी चान (हिं० स्त्री०) शब्दवेग, सदाकी
 रफ्तार ।
 भावाजदिहन्द (फा० पु०) शब्द सुनानेवाला, जो
 मदा लगाता हो ।
 भावाज देना (हिं० क्रि०) १ आधान करना, पुकारना ।
 २ शब्द करना, सदा निकालना ।
 भावाज निकालना (हिं० क्रि०) शब्द करना, बोलना ।
 भावाजपर कान लगाना, श्रवण करना, सुनना ।
 भावाजपे लगना (हिं० क्रि०) आधानका उत्तर देना
 या आधा मानना ।
 भावाज बेटना (हिं० क्रि०) शब्दचय होना, सदाका
 भारी पड़ना ।
 भावाज भरराना (हिं० क्रि०) शब्द कर्षण एवं रुच
 निकलना, सदा भारी और रुग्ने पड़ना ।
 भावाजमें भावाज मिलाना (हिं० क्रि०) एकतामें
 गान करना, मिलसे गाना ।
 भावाज लहर (हिं० स्त्री०) शब्दका तरङ्ग, सदाकी
 भोज ।
 भावाजा (फा० पु०) कोलाहन, शोर । माह-
 रतनोक्ति (दोमोठोनी) को पयाजा-तयाजा कहते
 हैं ।
 भावाजा कसना (हिं० क्रि०) सोम, रतनोक्ति करना,
 ताना मारना । इसी पर्यमें ‘भावाजा कसना’ और
 ‘भावाजा मारना’ क्रिया भी पानी है ।
 भावाजाही (हिं०) आवाहन देखो ।

पावान् (सं० वि०) बहम करती हुआ, जो बह रहा हो । (पु०) पावान् । (वा०) पावातो, पावानो । पावादानो, बहानो इत्थि ।

पावासा (हि० स्त्री०) पा मय्यङ् वाधा । १ द्रुम, पीडा, ददं, लक्ष्मीङ् । २ मृगिष्य, तिकोपके पावासा विन्दि, मुमसमके जावदेका टुकड़ा ।

पावासा (सं० पु०) पा-वय पापारे घञ् । १ धाम-वास, वासा । 'वत्पववववव' (वत्) २ धाम्यादि रक्षनेका पाव विमि, बर्तन । भावे घञ् । ३ मज्ज टिक् वयम, वारो चोरको बोमी । ४ धाम्यादिवा व्यापन, पनाज वगेरहकी रसायी । ५ मज्जविष्णा, दृग्मन्त्री विज्ज । ६ परावपविष्णा, दृग्मन्त्री रियासतका घुमान । ७ पधान पीम । 'वत्पववववव' (वत्) ८ पावेय, अंजकाङ् । जर्मणि घञ् । ९ पयय, घञो । १० मिश्रासन भूमि, मोनो जर्णो ज्मोन् । ११ कल्क, दशाका मगान् । १२ मिश्रय, निम्बाघट । १३ पानोय ट्पविमि, किय सिम्पता गर्भत । (वि०) १४ पावप-नीय, प्रविषयोय, जेनाया वा जनाया जानिवाला ।

पावासा (सं० पु०) पा वयति, पा-वय कर्मणि घञ् भ्रंशायां ङ् । प्रकोठाभरण पययादि, मोनेकी ष्ठी गद्देह । ङ् । २ पावपनकर्ता, पय्यांतरत भोनेवाला ।

पावासा (सं० स्त्री०) पा-वय-विष् करणे मुट् । १ घृतपल, तातका चरपा । २ घृतमण्डोकरपका कोम, पाया अघटनेका टांवा । भावे ङ् । ३ कंघा-टिका मय्यङ् मण्डल, वाज गगेरहकी घामो मुंघायी ।

पावासा (सं० स्त्री०) पावासाय माधु, ठङ् । पवित्र, निधेयित, जिवादा, मानिल ।

पावासा (सं० स्त्री०) १ परिभ्रमय, घुमकिर । २ शोभाचार, बहमातो ।

पावासा (सं० वि०) १ परिभ्रमयमील, भटकने क्रिमेवामा । २ अटथयित, देहदा, बहमाग ।

पावासा (हि० स्त्री०) वेष्ट्यापारो बहमा, बहमातो विष्णा, सुवाभोमे बहमा ।

पावासाददं, बहमा इत्थि ।

पावासाददो, बहमा इत्थि ।

पावासा जिहवा (हि० स्त्री०) परिभ्रमय करमा, कुंशामदो बहमा, शगतलव घुममा ।

पावासा कोमा (हि० स्त्री०) परिभ्रमयमील बहमा, भटकने क्रिमा, देहदायो सादमा ।

पावासा (सं० स्त्री०) पा-विषये पाच्यमाने, पा-उ बाहुनकात् ङ् । १ बहय, बासाङ् मकात् । (वि०) पा मय्यङ् पारि पत, वहुषी० । २ मय्यङ् जलमुह, पामोमे प् म भरा हुआ ।

पावासा (सं० स्त्री०) पावासाते मघायोमे जलमनेन, पा पन-विष् करणे घञ् । १ पालवासा, पामो टेनेको पोदेकी पारो थीर महीका पीता । भावे घञ् । २ मघार, जनाय । (पय०) मघादाये पययो० । ३ वासक पयला, ष्ठिकक ।

पावासा (सं० पय०) वासात् पा, पयलाये पययो० । वाघ्यायना घटेल, लङ्कपनक ।

पावासा (सं० पु०) पा मय्यङ् पयत्यत, पा-वय पापारे घञ् । १ पामस्यात, ष्टहादि, मकात्, पर । भावे घञ् । २ मय्यङ्-वाम, मूढबाग, रदाय ।

पावासा (हि० स्त्री०) मयय-मययवर चानेके निये तोडो जानिवालो कथे पनात्रको वास ।

पावासा (सं० स्त्री०) पा-वह-विष्-मुट् । निबट चानेके निये देवताका पादान, निमन्थय, पुकार, मुनाया ।

पावासा (सं० स्त्री०) पावासातेनया, पा-वह-विष् करणे ष्ट् टोष् या । देवताके पादानार्थ मुदा विमि । दोमा हाय पच्यनिवहकर दोनो पनामिकाके मूळपथवर दोनो पट्ट मगामिने पावासाते मुदा यनयो हे ।

पावा (सं० पु०) पयो, विट्टिया ।

पावासा (सं० स्त्री०) पविना तक्रोया निमित्तम्, ठङ् । १ कम्बल, मुदमा, मोटी । (वि०) २ शिपमन्त्री, भेङ्के मुनाजिङ् । ३ लणामय, पमो, जमो ।

पावासा (सं० स्त्री०) भिषोदुग्ध, भेङ्का पूय । यह पाद, पय्याय, विष्णोय, मुद, विनात्रोववव वरं हंवन होमा थीर दिवा, यम तदा पविनको मारना हे । (पय०) पावासातेनया पावासातेनया थीर पावासातेनया

लोमग, गुरु, कफपित्तहर, स्थूलघ्न, मेहनान्न, वात-
प्रकोपमें पथ्य और अनिलज कासमें हित है। (राजनिषद्य)
आविकष्टत (सं० स्त्री०) मेपोनवनोत-जात छत,
भेड़का घी। यह लघु पाक, पित्त-कोपन और योनि-
दोष, कफ, वात, शोफ एवं कम्पके लिये हित होता है।
(राजनिषद्य) आविकसपिं सर्वरोगका विप, कफघात,
कु तथा गुल्मोदर दूर करता और दोषन रहता है।
(चरिंहिता)
आविकदधि (अ० स्त्री०) मेपो-दुग्ध-कृत दधि,
भेड़का दही। यह गुरु, सुचिग्ध, कफ-पित्तकर,
रक्तवात तथा वातमें पथ्य और शोफ-घ्नघ्न है।
(राजनिषद्य) आविकदधि मुखरोगके लिये परम हित
और दृष्टफल होता है। इससे पित्त बढ़ता, वात घटता
और कफ चटता है। किन्तु गुल्म, अग्नि, कुष्ठरोग
और रक्तपित्तमें यह ठीक नहीं लगता। (चरिंहिता)
आविक-नवनोत (सं० स्त्री०) मेपो-दुग्ध-जात नवनोत,
भेड़का मसका या नोनो घी। यह पाकमें हिम, लघु
तथा सारक और कफ, वात एवं अग्नि-के लिये सदा
हित है। किन्तु ऐडक-नवनोत क्लिष्ट-गन्ध, शोतल,
मेधाघ्न, गुरु और पुष्टि-स्थोव्य-मन्दाग्निदोषन होता
है। (राजनिषद्य)
आविकमांस (सं० स्त्री०) मेपमांस, भेड़का गोशत।
यह मधुर, रूपाद्गुरु तथा वनकर होता, अजामांससे
विपरीतगुण पड़ता और चल्, प्य, स्निग्ध, गुरु, सद्योष
एवं अभिस्यन्दि रहता है। (राजनिषद्य)
आविकमूत्र (सं० स्त्री०) मेपोमूत्र, भेड़का पेगाव।
यह तिक्त, कटु एवं उष्ण होता और कुष्ठ, अग्नि,
शूलोदर, रक्तशोफ तथा भेड़का विप दूर कर देता है।
(राजनिषद्य)
आविकसोत्रिक (सं० स्त्री०) सूत्रमेव, स्वार्थेऽणु सोत्रम्;
आविकश्च तत् सोत्रचेति, कर्मधा०; तिन निर्मितम्,
ठक। मेपसूत्रनिर्मित, भेड़के सूत्रसे तैयार, जो ऊनी
धागेसे बना हो।
आविकी (सं० स्त्री०) १ कम्पल, गुदमा। २ शलकी,
खारपुरत, सेह।
आविक्य (सं० स्त्री०) आविकानां भावः, यक्।

पथ्यनउपेक्षितयो यक्। वा १।१।१२२। आविकसम्बन्धित,
भेड़का लगवा।
आविक्षित (सं० पु०) पविक्षित, मरुत्तका गोश-
नाम।
आविग्द (सं० पु०) आ-विज कर्तरि क्, तस्य न।
करमदे हृच, करौदेका पेड़।
आविग्रान्य (सं० स्त्री०) पविग्रानमेव, चागुर्यां
स्वार्थे यञ्। अपरिष्कट, नामुमकिन-तमोज, पड़धान
न पड़नेवाला।
आविद् (सं० स्त्री०) १ विद्या, इन्म, समझ, ज्ञान-
कारी। २ आविम् और आवित्तसे पारश्व होनेवाली
वैदिक व्यवस्था।
आविदूर्य (सं० स्त्री०) अवि-दूरस्य भावः, यञ्।
सचिकर्ष, नैकव्य, कुर्व, पड़ोस।
आविह (सं० स्त्री०) आ-व्यध-क्त। १ ताडित, मारा
हुआ। २ विह, भेदा हुआ। ३ क्लिष्टोक्त, क्लेदा
हुआ। ४ क्षित, फेंका हुआ। (पु०) ५ अभिपहार
विशेष, तत्पारका एक ढाथ। अभिपहार वतोंस
प्रकार करते हैं। अमिका घुमाकर गधुका पाघात
वचाना 'आविह' कहाता है।
आविहकर्णो (सं० स्त्री०) पविहो कर्णाविष पत्रमव्याः,
डोप्। पाठा, हरश्रोतो। 'पञ्चमकारिणो' (चर)।
आविध (सं० पु०) आविष्यते काठादनेन, आ-व्यध
घञर्थे क। १ काठादि विधनमाधन घृणाकाराय पथ
विशेष, साल, बरमा। २ अमर, भौरा।
आविर (सं० पु०) प्रसववेदना, ऐञ्का दट।
आविर्भाव (सं० पु०) आविम्-भू-घञ्। १ प्रकाश,
जङ्गल, रोगनो। २ सांख्यमतसे—उत्पत्ति-स्थानोप
अभिश्वाह-स्वरूप भावधर्म विशेष। अंशे—आशामिं
क्रियानिरोध बृद्धिके व्यपदेशसे क्रियाका स्वस्याभेद
नियतभेद साधनमें शक्त नहीं पड़ता। यद्यपि एकमें
उभ उभ विषयके प्रकाश और अनुदयसे विरोध बढ़ता
है। जैसे—कूर्मगरोरमें निविद्यमान हृद्य घट्टादिका
कमो प्रकाश और कमी लय होना आविर्भाव या तिरो-
भाव नहीं कहाता। कारण, कूर्मसे वह मरुत्त नहीं
निकलता। पशुतः कूर्म भी उससे अभिध ठहरता

है। सुतरां मत् मनुका तिरोभाव वा आविर्भाव नहीं होता। फिर भी किसी पद्यस्याभेदको ही आविर्भाव और तिरोभाव कहते हैं। ३ मनुष्यादि रूप बना पद्यतार रूपसे देयताकी उत्पत्ति।

आविर्भूत (सं० त्रि०) आविर्भू-भू कर्तरि क्।
१ प्रकटित, जाहिर। २ अभिव्यक्त, पैदा।

आविन (सं० त्रि०) आविनति वृटिं वारयति,
आ-विन स्तौ क। १ कर्तुप, अपरिष्कृत, गन्दा, मैला।

‘कमुवीरन्व आविनः।’ (चमर)

‘दिग्दारकमदागिनः।’ (कभार २।४४)

(स्त्री०) २ काविल-देशीय फलविशेष, सेब।

आविनकन्द (सं० पु०) मालाकन्द, किसी किष्ककी जड़।

आविनमत्स्य (सं० पु०) मत्स्यविशेष एक मछली। यह शम्भ तथा स्थूल होता और पक्ष ताम्रवर्ण रहता है। आविनमत्स्य अतिरुच्य, मधुर, बलदा, वीर्य-पुष्टि-वर्धन और गुणायु है। (राजनिघण्टु,)

आविना (सं० स्त्री०) १ मत्स्य, मछली। २ चाङ्गेरी, चौपतिया, अमलीनिया।

आविहृद्य (सं० पु०) मेपट्टी, मेढ़ामीनी।

आविगत् (सं० त्रि०) उपस्थित होनेवाला, जो दाखिल हो।

आविष्करण (सं० स्त्री०) आ-विस-कृ भावे ह्युट् पत्वम्।
१ प्रकाश, जह्र, देखाव। “पद्यं शुभे उ शोभाविष्करणम्।” (विशानुशेखरी) करणे ह्युट्। २ प्रकाशसाधन।

आविष्कर्ता, आविष्कृत देखो।

आविष्कर्त् (सं० त्रि०) आविष्-कृ लृच्। प्रकाशक,
जह्रमें आनेवाला, जो ईजाद करता हो।

आविष्कार (सं० पु०) आविष्-कृ-घञ्। आविष्करण देखो।

आविष्कारक, आविष्कृत देखो।

आविष्कृत (सं० त्रि०) आविष्-कृ कर्मणि क्।

प्रकाशित, जाहिर, जो ईजाद किया या ढुंढा गया हो।

आविष्कृत्या (सं० स्त्री०) आविष्करण देखो।

आविष्ट (सं० त्रि०) आ-विष्ट-क्। भूतादिग्रस्त, श्रेतान् यन् रहके फन्देमें फंसा हुआ।

आविष्टा (सं० त्रि०) प्रकाशित, जाहिर, जिसे देख सके।

आविष् (सं० अथ०) आ-पय-इति। ‘शङ्खकादभतेप्याह प्रोदिभिः आ-पय-इति। (उपनिषद्) प्रकाश, प्रस्तुट्व, खुले तौरपर आखके सामने। क्, भू और पश् धातुके साथ इसकी प्रतिभंशा होती है।

आविष्टाराम् (सं० अथ०) आविष्-तरप्-आम्। अतिशय प्रकाय, खूब खुले तौरपर।

आवी (सं० स्त्री०) अविरेव, स्वायं अणु-डीप्।
१ प्रसववेदना, जापेका दर्द, व्यांतकी तकलीफ।
२ रजस्त्रला, जो औरत कापड़ोंसे ही। ३ गर्भवती, जिस औरतके पेटमें बच्चा रहे। ४ प्रसवलिङ्गका मूलकफमसेकादि, जापेसे पेगाव वगैरहका बच्चा।

आवीत (सं० त्रि०) आ-व्ये-क्। १ सकलप्रकार ग्रथित, सब तरहसे गूँथा हुआ। २ उत्सृष्टिपूर्वक धृत, उठाकर लगाया या लटकाया हुआ। (स्त्री०) ३ सम्यक् ग्रन्थन, खासी गूँथगाँथ। ४ उत्सृष्टिपूर्वक धारण, लटकाव। (पु०) ५ दक्षिण स्कन्धपर धारण किया जानेवाला यज्ञोपवीत।

आवीतिन् (सं० पु०) आवीतमस्त्वस्य, इति। अत इति-उगी। वा ४४।११५ दक्षिण स्कन्धके ऊपर यज्ञोपवीत रखनेवाला ब्राह्मण।

उच्यते दक्षिणे पाशाउपवीत्युच्यते रिगः।

सद्ये प्राचीन आवीती द्वितीती कच्छमग्नेः। (मनु २।६०)

आवीती, आवीतिन् देखो।

आयुक्त (सं० पु०) अवति रचति पालयति वा, अव रक्षपालनयोः-उण्-कन्। जनक, पिता, बाप। ‘अयुक्तः जनकः।’ (चमर) यह शब्द नाट्योक्तिमें चलता है।

आहृत् (सं० स्त्री०) आ-हृत सम्पदादित्वात् क्तिप्।
१ आवरण, लपेट। “नात्वा नक्ति विभुषं नाहृतम्।” (शब्द-शुभ्र) ‘आहृतं आवरणं धारणम्।’ (शायब) २ आवर्तन, फेर। ‘पुनःपुनर्यालन, वार वारकी गर्दिग। ‘हस्त-हस्तमन्वते।’ (ग्रहयज्ञवेद २।१६) ‘आहृतमावर्तनम्।’ (नदीपर)

३ वारम्बार एक जातीय क्रियाकरण, बार-बार एक ही-जेसे कामका करना। ४ परिपाटी, रिवाज। ५ अनुक्रम, चाला। ७ गूँथीभाव, रूमोथी। ८ जात-कर्मोदि संस्कार। (त्रि०) कर्तरि अच्। ९ आवृत-मान, घूम पड़नेवाला।

आहत (सं० त्रि०) आ-ह-क्त । १ कृतावरण, अप्रकाशित, आच्छादित, ढंका हुआ, जो लपेट लिया गया हो । २ परिहृत, घिरा हुआ । ३ संश्लेष, लगा हुआ । ४ विस्तृत, फैला हुआ । ५ व्याप्त, भरा हुआ । (पु०) ब्राह्मणके औरस और उग्र जातिकी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न मनुष्य । "भाद्रपदीदुपकथायामावृते नाम आहते" (मनु १०।१२)

आहति (सं० स्त्री०) आ-ह-क्तिन् । आवरण, पर्दा, घेर ।
 आहत (सं० त्रि०) आ-हत-क्त । १ पुनःपुनरभ्यस्त, बारबार महावरा डाला हुआ । २ धावर्तमान, घुमा या वापस आया हुआ । ३ पलायित, भागा हुआ ।
 आहति (सं० स्त्री०) आ-हत-क्तिन् । १ प्रत्याहति, वापसी । २ वारम्बार अभ्यास, पुनःपुनः एक जातीय क्रियाकरण, फिर फिर एक ही कामका करना । ३ पुनराहति, दोहराव । ४ मार्गपरिवर्तन, मोड़ । ५ हत्तान्त, वाकिया । ६ परिवर्तन, घुमाव । ७ सांसारिक स्थिति, पैदायशका चक्र । ८ नियुक्ति, इस्तीमाल, लगाव ।

आहतिदीपक (सं० स्त्री०) आहत्या दीपकम्, १-तत् ।
 १ दीपकाहतिरूप अर्थालङ्कारविशेष । इसमें दोहराकर किसी शब्दपर जोर देते हैं । २ मस्तिष्क, दमाग ।

आहव्य (सं० अव्य०) प्रत्यावर्तनपूर्वक, घूमकर ।
 आहृष्टि (सं० स्त्री०) आ-हृ-ष्टिन् । १ सम्यक् चर्षण, झाँसी वारिश । "आहृष्टेः प्राच्यारहेः" (चण्) (अव्य०) मर्यादार्ये अव्ययी० । २ हृष्टिपर्यन्त, वारिशतक ।

आवेग (सं० पु०) आ-विज-घञ् । १ उत्कण्ठाजनक वा त्वरान्वित मानसिक वेग, दृढ़तिरावी, शिताबी, हड़बड़ी । २ व्यभिचारी भावविशेष, झाल, झुलाव । यथा,—निषेध, आवेग, दैन्य, अम, मद, लड़ता, शौच्य, मोह इत्यादि ।

आवेनी (सं० स्त्री०) आ-वेनीऋत्याः अर्धं चादित्वात् अच् गौरादित्वात् ङीप् । हृदयारकसता, अघातकी बिल ।
 "लादयन्मा वल्लालावेनी हृदयारकः" (वनर)

आवेजा (फा० पु०) कुण्डल, वाला, वाली, सुरकी, गोखर, भूमिका ।

आवेणक (सं० त्रि०) १ स्वाधीन, साज़ाद । २ चंपर

अन्य द्रव्यसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो किसी दूसरी चीजसे लगा न हो । "उदयतां आवेणकारः" (बनिषत्संश्लेषाणा १।२)

आवेदक (सं० त्रि०) आ-विद-णिच्-यत् । १ विज्ञापक, आवेटनकारी, जाहिर करनेवाला, जो हाल बता रहा हो । (पु०) २ प्रायक, उम्मेदवार, सुराफा करनेवाला । ३ सूचक, पिग्गन, मुहबिर ।

आवेदन (सं० स्त्री०) आ-विद-चुरादित्वात् पिच्-लुट् । १ विज्ञापन, व्यवहारोत्थापन, नालिश-कर्याद । करणे ल्यट् । व्यवहारोत्थापक भाषापत्र, पर्जी ।

आवेदनीय (सं० त्रि०) आ-विद-णिच्-अनीयर् । विज्ञापनीय, खबर देने या नालिश करने काविल ।

आवेदित (सं० त्रि०) आ-विद-णिच्-क्त-इट्, पिच् लोपः । विज्ञापित, जाहिर किया या खबर दिया हुआ ।

आवेदिन् (सं० त्रि०) आवेदयति, आ चुरादित्वात् विद-णिच्-णिनि । १ विज्ञापक, नालिश करनेवाला । २ आज्ञाकारी, फरमावरेदार । (पु०) आवेदी० । (स्त्री०) आवेदिनी ।

आवेद्य (सं० त्रि०) आ-विद-णिच्-यत् । १ विज्ञाप्य, बताने काविल । (अव्य०) ल्यप् । २ आवेदन करके, बतानेकर ।

आवेद्यमान (सं० त्रि०) प्रकाशित किया जानेवाला, जो जाहिर किया जाता तो ।

आवेद्य (सं० त्रि०) आ-विद्य-ल्यप् । विद किया जानेवाला, जो हृदये लायक हो ।

आवेस तेल (हिं० पु०) नारिकेल तेल, नारियलक तेल । यह ताजी गरीसे निकाला जाता है । सुखी गरीसे निकलनेवाला नारियलका तेल सुठेन कहता है ।

आवेस्य (सं० पु०) आ-विद्य-घञ् । १ अष्टहार-विशेष, फुहार, घमण्ड । २ संरभ, शोध, गुप्ता । ३ अमिनिवेग, दाखिला, दण्ड । ४ पाघण्ड, बांध । ५ अणुप्रवेग, पड़ुंछ । ६ अहभय, भूतमच्छार, शैतानुका दौर । ७ अघणार रोग, गुगुका पाजार । ८ अघि-ठान, दौर । ९ गर्व, गुदर । १० मनोभाव पापसी-करण, दिनची हालतका जमाव । ११ आन्तरिक यद्य, भीतरी तदबीर ।

धावेशन (मं० स्त्री०) धा विद्यते यत्र, धा-विग
धाधारे लुट् । १ गिस्वगाला, कारखाना । 'धवेशनं
दिल्लमाला' (चमर) भूतादि वाधा, गेतानूका साया ।
१ सूर्यं पथं चन्द्रका परिधि, धाफताव और चांदका
चक्र । ४ स्त्रीधादि, गुष्म । धाधारे लुट् । ५ प्रवेग
मम्पादन-ध्यापार, रसायी,पेठ । ६ मन्वसे भूतकी बुला
गिरःमें सधिवेशन,गेतानूकी सरपर चढ़ा देनेका काम ।

धावेशनमन्त्र (सं० पु०) मन्त्रधिमेष, एक जाडू ।
धावेशनमन्त्र पढ़नेसे दूसरेके शरीरपर भूत चढ़
जाता है ।

धावेशिक (सं० पु०) धावेशो-भृष्टे भयं तत प्रागतः
या, ठञ् । १ प्रतिधि, मेहमान् । (स्त्री०) २ प्रवेग,
पहुँच । ३ प्रातिथ्य, मेहमादारी । (त्रि०) असाधा-
रण, खास । ५ स्वभावज्ञ, पैदायशी ।

धावेशित (सं० त्रि०) धा-विश-णिच्-क्त-इट्, णिच्
लोपः । निवेशित, धावेशयुक्त, मनोयोगयुक्त, पहुँचा
हुआ, जो दाखिल हो ।

धावेश (सं० पु०) परिवेष्टन, संबलन, घेर, चहाता ।
धावेशक (सं० पु०) धावेशयति, धा-विष्ट-णिच्-
खुन् । धावरणकारक प्राचीरादि, वेष्टक, दीवार,
खुदक, चहाता ।

धावेशन (सं० स्त्री०) धा-वेष्ट-भावे लुट् । १ धाव-
रण, लपेट । करणे लुट् । २ धावरणसाधन प्राची-
रादि, चारदीवारी । ३ प्रावार, कोप, लिफाफा,
बस्ता, बुझा, बंधना ।

धावेशित (सं० त्रि०) धावरणयुक्त, घिरा हुआ, जो
लिपटा या बंधा हो ।

धाव्य (वै० त्रि०) ध्वेनेपस्य विकारः, घञ् । १ मेघ-
सम्बन्धीय, मेड़के सुताक्षिक । २ शौर्ष, पशु, ऊनी ।
धाव्याधिन् (दे० त्रि०) धा-व्यध-णिनि । धाघात वा
प्राक्रमण करते हुये, जड़म पहुँचाने या हमला
मारनेवाला । (पु०) धाव्याधी ।

धाव्याधिनी (वै० स्त्री०) धाव्याधिन्-स्त्रीप । १ पीड़ा-
दायक स्त्री । २ तक्षरन्थेयो, रहजनोंकी जमात ।

"या धना चमोत्तरोस क्विभिवरया एत ।" (अथर्ववेद ११००)
'धाव्याधिनी धा समन्वित्प्रिणि ताः धवेशोऽकासाङ्गयन्ताः ।' (महीषर)

धाव्युप (वै० ध्व्य०) उपः पर्यन्त, सवेरेतक । . . .
धाव्यधन (वै० स्त्री०) ईपद्वयप्रपन्नं ह्येदनम्, प्रादि-समा० ।

१ ईपच्छेदन, थोड़ी काट-काट । धाधारे लुट् ।
२ ह्येय हृषप्रदेग, दरखनका काटा जानेवाला ह्येय ।
यह पूपादि बनानेके लिये हृचसे काटा जाता है ।

धाव्यस्क (वै० पु०) धा-व्य-घञ् ; घञ् कत्वम्,
शस्य सत्वम् । यमोः ङ विधायतो । पा ०१५११ । १ ईपच्छेदन,
थोड़ी काटकाट । २ टूपादि बनानेके लिये काटा
जानेवाला हृचका स्थानविशेष, दरखनकी शाख ।

धामोहक (सं० पु०) धामोहानां निर्लज्जानां विषयो
देशः, वुल् । निर्लज्जदेश, वैशमं सुल्क ।

धाम (सं० पु०) धम भोजने घञ् । १ भोजन, खाना ।
कर्मस्थपस्थिति घण्, उप० समा० । २ भोजन करने-
वाला, जो खाता हो । इस अर्थमें धाम शब्द प्रायः
समासान्तमें आता है । यथा,—हुताग, धाम्यधाम,
मांसाग, पलाश, इविष्याग इत्यादि ।

(हिं० स्त्री०) २ धामा, उम्मेद ।

धामंसन (सं० स्त्री०) १ उदीचण, प्रतीक्षण, इन्ति-
ज्ञार, शीक । २ वर्षण, कड़ावत ।

धामंसा (सं० स्त्री०) धा-शन्-घञ्-टाप् । धा संशो
सुत्वञ् । पा ११११२१ । धामंसा धवेशनिक । पा ११११२१ ।
१ धामत वस्तुकी प्राप्तिके लिये इच्छा, धारजू, उम्मेद-
वारी । २-भाषा, वर्षण, बोली, कौप्रियत ।

धामंसित (सं० त्रि०) धा-शन्-क्-ङ्-इट् । १ कथित,
इसरार किया हुआ । २ इच्छा-विषयोभूत; सुतरस्मिद,
खादिश-किया हुआ । (स्त्री०) भावे क् । ३ मनो-
रय, इशितयाक्, पासरा, भरोसा ।

धामंसित (सं० त्रि०) धामंसति, धा-शन्-ल्-ङ् ।
१ धामंसायुक्त, सुन्तजिर, उम्मेदवार, उम्मेद रखने-
वाला । २ कथन करनेवाला, जो इसरार करता या
कहता हो । (पु०) धामंसिता । (स्त्री०) स्त्रीप ।
धामंसित्री । 'धामंसितायित्ति' (चमर) ।

धामंसिन् (सं० त्रि०) धा-शन्-ल्-णिनि । धामं-
साकारी, सुन्तजिर, उम्मेद रखनेवाला । २ धापक,
निवेदक ; सोनने, कहने या इजहार करनेवाला ।

धामंसु (सं० त्रि०) धा-शन्-ल्-च् । धामंसुधमिच कः ।

पा. १५।०८। इच्छाकारक, भाविशुभाकाङ्क्षी, सुल्लजिर, खादिगमन्द, जो चाहना रखता हो।

आशयक (सं० त्रि०) अत्राति, अश-खुल्। १ भयक, खनिवाला। २ भोगयुक्त, खनिकी चीजसे भरा हुआ। आशयति, आश-षिच्-खल्। ३ भोगसाधन, खनिके काम आनेवाला। ४ भोजनकारक, खाना बनानेवाला। आशयक (सं० त्रि०) आ सम्यक् शक्तम्; आ-शक्-क, प्रादि-समा०। सम्यक् शक्तियुक्त, ताकतवर, गहजोर, जबरदस्त।

आशयक्ति (सं० स्त्री०) सम्यक् शक्ति, ताकत, कुश्लत, इक्षुतियार, इस्ते दाद।

आशयज्ञानोय (सं० त्रि०) आ-शक्ति-भनीयर्। गद्या-किये जाने योग्य, जो शक किये जाने काविल हो। २ गहणोय, मानने काविल। ३ विचार्य, समझने लायक।

आशयज्ञमान (सं० त्रि०) गह्यत, समय, डरा हुआ, जिसे शक रहे।

आशयज्ञा (सं० स्त्री०) आ-शक्ति-अङ्-टाप्। १ भय, दास, खोफ, डर। २ सन्देह, शक। ३ अपिखास, नायेतवारी।

आशयज्ञान्वित (सं० त्रि०) १ भयभीत, खोफजदा, डरा हुआ। २ सन्देह रखनेवाला, जिसे शक रहे।

आशयज्ञित (सं० त्रि०) आ-शक्ति कर्तरि क्त-इट्। १ भीत, खोफजदा, डरा हुआ। २ सन्देहयुक्त, जिसे शक आ चुके।

आशयज्ञिन् (सं० त्रि०) आशयति, आ-शक्ति-षिनि। आशयज्ञायुक्त, शक करनेवाला। (पु०) आशयज्ञी। (स्त्री०) डीप्। आशयज्ञिनी।

आशयज्ञ (सं० चि०) आ गह्यति, आ शक्ति कर्मणि ण्वत्। १ आशयज्ञके योग्य, शक किये जाने काविल, जिससे डर लगे। (अध्य०) स्वप्। २ सन्देह करके, शक लाते हुए।

आशय (सं० पु०) अशय एव, स्तार्थे ङप्। १ अशय हृद्य, पीतशालवा पेड़। अशय इति। २ अशय। ३ इन्द्र। (त्रि०) अशय भोजन पिच-सु। ४ भोजन कराने-वाला, जो खिलाता हो।

आशयना (फा० पु-स्त्री०) १ मिथ, सुहृद्, दोस्त। २ प्रापिग, आशिक। "रथोके लायी आशयना।" (लोकोक्ति) ३ वैश्या, रथी, रथो हुयो भोरत; "जिनको आशयना उनको बननस।" (लोकोक्ति) (वि०) ४ परिचित, जान-पह-चानवाला। ५ आसक्त, प्यार करनेवाला। विचाररथ करनेवालेको 'इर्क-आशयना', मित्रको 'दोस्त-आशयना' या 'यार-आशयना' और परिचित व्यक्तिको 'सुरत-आशयना' कहते हैं।

आशयनायी (फा० स्त्री०) १ मित्रता, दोस्ती। २ विशद-सम्बन्ध, रिश्तेदारी। ३ पधर्म्यं स्नेह, नाजयज्ञ प्यार। आशयनायी करना (हिं० क्रि०) १ मित्र बनाना, दोस्ती लगाना। "आशयनायी करना आशयना सुविधना।" (लोकोक्ति) २ आधर्म्य स्नेह या नाजयज्ञ प्यार बढ़ाना।

आशयनायी जोड़ना, आशयनायी करना इति। आशयनायी लगना (हिं० क्रि०) मैत्री बढ़ाना, दोस्ती होना।

आशयनायी लगाना, आशयनायी करना इति। आशयनायी होना, आशयनायी बनना इति।

आशयफल (हिं० पु०) हृद्यविशेष, एक पेड़। यह बड़ा, विदार और मान्द्राज प्राप्तमें अधिक उपजता है। काष्ठ सुहृद् होता और सज्जाद्रथ्य प्रस्तुत करनेमें लगता है।

आशय (सं० पु०) आ-शो-षप्। १९९। न १९९। १ अभिमाय, मकमद, मर्या, मरज्। २ आशय, असकन, जगह। ३ विभव, पसवाव। ४ पनगड्य, कटहलका पेड़। ५ वैद्यगाद्योक्त स्थानविशेष, जिनका जूज। आशय मत होते हैं,—वाताशय, पित्ताशय, कफाशय, रक्ताशय, पक्षाशय, मूत्राशय, और आमाशय। क्षिपिके आठवां गर्भाशय चतुर्दश रहता है। (हृद्य) चरमं रक्ताशय, उससे नीचे प्रेमाशय, प्रेमाशयमें नीचे आमाशय और उसमें नीचे पक्षाशय है। पक्षाशयमें ऊपर गहणो नाथी ओ कना होती, वही पाचकाशय कहाती है। नामसे ऊपर अण्डाशय मध्यभागमें स्थित है। उसपर तिन पड़ता, जिससे नीचे वाताशय आता है। वाताशयसे नीचे पक्षाशयको मलाशय भी कहते हैं। मलाशयसे नीचे आशय या मूत्राशय है। (आपचय)

आयुर्वेद-भाषाघर (वि० त्रि०) भाषाघर-भाषाघर । सुत, तारीफ़
 किया गया ।
 भाषा (सं० स्त्री०) भा समन्तात् चयते व्याप्नोति,
 भा-भश्च ग्यासौ चच् । १ दिक्, फ़ासिला । २ प्रत्यागा,
 इयितयाक, उम्भेद । ३ वसुकी भार्या । ४ न्यायमतसे—
 संख्यापरिमित पृथक्त्व-संयोग-विभागार्थय द्रव्य-
 विशेषः । दैयिक परत्व और अपरत्वके असमवायि-
 कारणका संयोगार्थय होनेसे ही नैयायिक इसको
 स्त्रीकार करते हैं । ५ सांख्यतत्त्व-कौमुदीके मतसे—
 पूर्वापरत्वके व्यवहारका उपाधि । इसी उपाधिको
 दिक् कहते हैं । इसके आशयसे पतिरिक्त दिक्-
 कल्पना करना ठीक नहीं पड़ता । ६ द्रव्या, सालच,
 न मिलनेवाली चीज़ दासिल करनेकी खाद्दिग ।
 भाषाकृत (सं० त्रि०) प्रत्याशा-परिहत, उम्भेदेने
 लगा हुआ ।
 भाषागल (सं० पु०) दिक्छस्त्री, दौरके मुक्तिका-
 दाथी । यह प्रथिवीके एक विभागको साधे है ।
 भाषादृ (सं० पु०) १ भाषादृ, एक मछीना । २ व्रतीका
 पलायदण्ड, व्रत करनेवालीकी छड़ी ।
 भाषादा, भाषादा (सं० स्त्री०) १ भाषादा नक्षत्र ।
 भाषादा प्रयोजनमस्य, चण् । २ ब्रह्मचारीका पलाय-
 दण्ड ।
 भाषाद्री (सं० स्त्री०) भाषादा नक्षत्रे या युक्तः कालः,
 चण्-ङीप् । १ चन्द्रापाद पौर्णमासी ।
 भाषादामन् (सं० स्त्री०) भागा दामिष, उपमिते
 समा० । १ भाषारुप वस्यनसाधन रज्जु, उम्भेदका
 जाल । (पु०) २ नृपतिविशेष, एक पुराने राजा ।
 भाषादामा, भाषादामन् देखो ।
 भाषाकं देखो ।
 जैनग्रन्थकार । निजकृत
 निकट अपना
 जयपुरके निकट क्विरी
 सरस्वती
 नामक
 यह

आयुर्वेद-भाषाघर (वि० त्रि०) भाषाघर-भाषाघर । सुत, तारीफ़
 किया गया ।
 भाषा (सं० स्त्री०) भा समन्तात् चयते व्याप्नोति,
 भा-भश्च ग्यासौ चच् । १ दिक्, फ़ासिला । २ प्रत्यागा,
 इयितयाक, उम्भेद । ३ वसुकी भार्या । ४ न्यायमतसे—
 संख्यापरिमित पृथक्त्व-संयोग-विभागार्थय द्रव्य-
 विशेषः । दैयिक परत्व और अपरत्वके असमवायि-
 कारणका संयोगार्थय होनेसे ही नैयायिक इसको
 स्त्रीकार करते हैं । ५ सांख्यतत्त्व-कौमुदीके मतसे—
 पूर्वापरत्वके व्यवहारका उपाधि । इसी उपाधिको
 दिक् कहते हैं । इसके आशयसे पतिरिक्त दिक्-
 कल्पना करना ठीक नहीं पड़ता । ६ द्रव्या, सालच,
 न मिलनेवाली चीज़ दासिल करनेकी खाद्दिग ।
 भाषाकृत (सं० त्रि०) प्रत्याशा-परिहत, उम्भेदेने
 लगा हुआ ।
 भाषागल (सं० पु०) दिक्छस्त्री, दौरके मुक्तिका-
 दाथी । यह प्रथिवीके एक विभागको साधे है ।
 भाषादृ (सं० पु०) १ भाषादृ, एक मछीना । २ व्रतीका
 पलायदण्ड, व्रत करनेवालीकी छड़ी ।
 भाषादा, भाषादा (सं० स्त्री०) १ भाषादा नक्षत्र ।
 भाषादा प्रयोजनमस्य, चण् । २ ब्रह्मचारीका पलाय-
 दण्ड ।
 भाषाद्री (सं० स्त्री०) भाषादा नक्षत्रे या युक्तः कालः,
 चण्-ङीप् । १ चन्द्रापाद पौर्णमासी ।
 भाषादामन् (सं० स्त्री०) भागा दामिष, उपमिते
 समा० । १ भाषारुप वस्यनसाधन रज्जु, उम्भेदका
 जाल । (पु०) २ नृपतिविशेष, एक पुराने राजा ।
 भाषादामा, भाषादामन् देखो ।
 भाषाकं देखो ।
 जैनग्रन्थकार । निजकृत
 निकट अपना
 जयपुरके निकट क्विरी
 सरस्वती
 नामक
 यह

विजयवर्माके निकट जा-रिषे। उसी स्थानपर राज-
कवि विश्वरूपने इनका यथेष्ट समादर किया था।
पञ्चनके मालवका राजा वननेपर यह मालवकच्छमें
षवस्थित और भित्तुकके कार्यपर नियुक्त रहे। संवत्
१२८६ में आयाधर वर्तमान थे। इन्होंने अनेक
संस्कृत ग्रन्थ बनाये, जिनमें कुछ हाथ आये हैं,—
१ सद्रट्टकृत काव्यालङ्कारकी टीका, २ सटीक धर्मानृत,
३ अमरकोषकी टीका, ४ आराधनासार, ५ अष्टाङ्ग-
हृदयटीका, ६ इष्टोपदेग, ७ जिन-यज्ञकल्प, ८ निव-
न्धके साथ त्रिपष्टिष्, तिशास्त्र, ९ नित्यमहोद्योतशास्त्र,
१० प्रमेयव्याकर, ११ भारतेश्वराम्युदयकाव्य, १२ भूपाल
चतुष्टयिनि, १३ सहस्रनामस्तवन और १४ सूना-
राधनटीका।

आशानन्द—रामानन्दके वारङ्गमें एक शिष्य। रामा-
नन्दके मरनेपर यही उनकी गृहीपर बैठे थे।

आशान्वित (सं० त्रि०) आशायुक्त, उग्रोद्धार, जिसे
भरोसा रहे।

आशायाल (सं० पु०) आशां दिव्यं पालयति ;
आशा-पा-पिच्-घण्, उप० समा०। शैले चोत्तुं पश्यः।
अथ भाति। १ पूर्वादि दिक्पाल, इन्द्रादि।

‘इन्द्र १ भक्तिः शिष्टयति शैलं तो वरषो मवत्।

कुशेर ईशः पश्यः पूर्वोदीनां दिवां कमान्।’ (अमर)

२ वेदीको राजकुमार। यह अश्वमेध यज्ञके पशुकी
रक्षा करती थी। (आशवनेयव २१।१८)

आशापिशाचिका (सं० स्त्री०) अनृतया, नारायण
तमसा, भूठी उग्रोद्।

आशापुर (सं० स्त्री०) पुरविशेष, एक शहर। इस
नगरमें उत्तम गुग्गुलु मिलता और उसमें धूप
बनता है।

आशापुरगुग्गुलु, आशापुरकण्ठ रंजो।

आशापुरसम्भव (सं० पु०) आशापुरे सम्भवति, आशा-
पुर-सं-भू-घच्। गुग्गुलुविशेष, आशापुरमें निकलने-
वाला गुग्गुलु।

आशाप्राप्त (सं० त्रि०) कृतकार्यं, कामयाव, जिसके
उग्रोद् पूरे पड़े।

आशावन्ध (सं० पु०) आशां दिव्यं वप्राति, आशा-

वन्ध-घच्। १ मर्कटजाल, मकड़ीका जाल। २ अष्टा-
वन्ध, तमसाका कन्दा, उग्रोद्की सजड़। ३ दिग्बन्ध,
दिग्मत्की बन्धिग। ४ पाशपात्र, शफा, बरानी।

आशाभद्र (सं० पु०) नैराग्र्य, नाउग्रोद्दी, भरोसेका
टूट जाना।

आशार (सं० पु०) शरण, पनाह।

आशारंगिन् (सं० त्रि०) शरण दूँडनेवाला, जो पनाहकी
खोजता हो।

आशायां—कात्यायन-रचित कामेंद्रोपके टीकाकार।

आशायात् (सं० त्रि०) विश्वासयोग्य, उग्रोद् रखने-
वाला, जिसे भरोसा रहे।

आशावरी (सं० स्त्री०) सङ्गीतकी एक संपूर्ण रागिणी।
इसमें निषाद, ऋषभ, गन्धार और धैवत कोमल लगता
है। गानेका समय द्वितीय याम है। देगी, गान्धार
और टाड़ी मिलनेसे यह बनती है। आशावरोका
ध्यान इसप्रकार करते हैं,—

“श्रीसुन्दरेश्वरिण्ये दिव्यपुष्परसा सातङ्गीतिवचनोत्तरवारिणी।

आशयं चन्दनतोदरसं वदन्ती वायवरी उच्यते उग्रोद्वादिनिः।”

(सङ्गीतरत्न)

आशावह (सं० त्रि०) आशां वहति, आशा-वह-
घच्, इ-त्त्। १ आशाधारी, उग्रोद् पैदा करनेवाला।
(पु०) २ तृपविशेष। ३ आकाशपुत्र। सहहातु,
चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋषीक, पकं,
मातु, आशावह आर रवि आकाशके पुत्र दम्य हैं।
४ उष्णपुत्र।

आशाविभिन्न (सं० त्रि०) इताग, नाउग्रोद्, जिसे
भरोसा न रहे।

आशास्य (सं० त्रि०) आ शिष्यते, आ-शाम-घच्त्।
१ आशासनीय, प्रादंभीय, पमन्दीदा, सो चाहे ज्ञाने
काविल हो। (पद्य०) २ कथन करके, कहके।

आशाहीन (सं० त्रि०) आशाशून्य, नाउग्रोद्, जिसे
उग्रोद् न रहे।

आशि (सं० स्त्री०) आ-पय कि। १ भोजन, पान।
(स्त्री०) २ आशीर्वाद दान, दुषा-गाथा।

आशिक (सं० पु०) १ आशुक्, वाहनेवाला, जो
गद्दस प्यार करता हो।

“शाश्विकं चूडा मेघं पवित्रीं मेघकं ताव नवारी ।

भोजी चरे वरदा माये कंठं विहगपर रायेः” (चरीर)

२ पायिष्टक, प्रार्थक, खाद्यां, सायल, उग्नेदवार ।

३ अनवधान साहसी पुरुष, जो गच्छुष धेपरवा और यैकिल ही ।

शाश्विक-साश्विक (च० पु०) १ नायक-नायिका, प्यार करने और किया जानेवाला । २ भुजगमेखला, मार या सांपका पट्टा ।

शाश्विकमिजाज (च० वि०) क्रीड़ाशील, खुशदिल ।

शाश्विक होना (हिं० क्रि०) कामुक बनना, चाहना, प्यार करना ।

शाश्विकाना (च० वि०) रसिक, रसीला, शाश्विक जैसा ।

शाश्विकाना चमार (च० पु०) प्रीतिकार्य, प्यारकी कविता ।

शाश्विकाना खत (च० पु०) प्रीतिपत्र, प्यारकी चिट्ठी ।

शाश्विकाना गीत (हिं० पु०) शृङ्गारगात, प्यारका गाना ।

शाश्विकी (च० स्त्री०) प्रीति, प्यार, चाह ।

शाश्विका (चै० स्त्री०) शाश्विक-चङ्-सुरट् । शिवा-भिलाप, तालोम हासिल करनेकी खाँदिस ।

शाश्विकित (सं० त्रि०) कण्ठित; सनसनाने, ठन-ठनाने, भ्रनभ्रनाने या छनकारनेवाला ।

शाश्वित (सं० त्रि०) शा-अश्व-क्त । १ भुक्त, खाया हुआ । २ भोजन द्वारा टसियुक्त, आसुदा, छका हुआ ।

(स्त्री०) भाये क्त । ३ समरक भोजन, खासा खाना ।

शाश्वितमस्त्वस्य, अर्थ आदित्वात् अच् । ४ टसि, आसु-दगी, छकायी । “नादिवदे नादिसाधं न सायं मालयमितः ।” (मनु)

शाश्वितद्रव्येन (सं० त्रि०) शाश्विता अश्वनेन टसता गावो यद्व, निपातनात् सुम् । गो द्वारा भक्षण किया हुआ, जो गायने पक्षी ही खाया हो ।

‘विशाश्वितश्चोदनादरायो यशाश्वितः पुत्रः ।’ (चर)

शाश्वितश्वन (सं० त्रि०) शाश्वितोऽश्वनेन टसो भव-त्यनेन; शाश्वित-भू-श्वच्-सुम् उप० समा० । आदिते श्वः अश्वामारयोः । वा १।२।३। १ टसिकारक, आसुदा करनेवाला । (स्त्री०) भाये अच् । २ अश्वानि, अनाज यगैरह । ३ टसि, आसुदगी ।

शाश्वित (सं० त्रि०) शा-अश्व-क्षच्-इट् । अतिशय भोक्ता, इदसे क्यादा खानेवाला । (पु०) शाश्विता । (स्त्री०) टोप् । शाश्वित्री ।

शाश्विन् (सं० त्रि०) अश्व-णिनि । भोक्ता, खाने-वाला । (पु०) शाश्वी । स्त्री० स्त्रीप् । शाश्विनी ।

शाश्विन (चै० त्रि०) शाश्विन् स्वार्थे षण् । वेदे निपा-तनात् न टिलोपः । १ भक्षक, अतिशय भोक्ता, पेटू, बहुत खानेवाला । २ छठ, दुष्टा, जो बहुत चर्पका हो ।

शाश्विमन् (सं० पु०) शाश्वीर्भावः इमनिष् डिङ-ज्ञायः । शीघ्रत्व, जल्दी ।

शाश्वियां (फा० पु०) शाश्वय, पक्षिस्थान, खोता, घोंसला ।

शाश्वियाना, शाश्वियं देखो ।

शाश्विर् (चै० त्रि०) शाश्वीयते पण्यते, शा-शी-क्षिप् निपातनात् साधु । १ पाकके योग्य, पकाने काबिल । (स्त्री०) २ विशुद्ध करनेके लिये सोमरसमें मिला हुआ दुग्ध ।

शाश्विर (सं० त्रि०) शाश्वीरेव, स्वार्थेऽण् । १ पाकके योग्य, पकाने लायक । (पु०) शा-अश्व व्याप्तो भोजने वा किरच, णित्वादुपधादृङिः । २ अग्नि, अश्व । ३ सूर्य, आफताय । ४ राक्षस ।

‘शाश्विरे बहिरचरोः ।’ (उज्ज्वलदत्त)

शाश्विरःपाद (सं० अथ्य०) श्विरःसे पाद पर्यन्त, सरसे पैर तक ।

शाश्विर्वाट, शाश्विर्वाट देखो ।

शाश्विर्विष, शाश्विर्विष देखो ।

शाश्विष् (सं० स्त्री०) १ शाश्वीर्वाट, दुवा । २ काव्या-लङ्कार विगेष । इममें न मिस्री चीज पानके लिये प्रार्थना करते हैं ।

शाश्विषाक्षेप (सं० पु०) काव्यालङ्कारविगेष । इममें अन्यके उपकारपर ऐसा कार्य करनेका उपदेश देते, जिससे अपना क्रोध छोड़ते हैं ।

शाश्विषिक (सं० त्रि०) शाश्विषा चरति, टक् । शाश्वीर्वाटक, दुवा देनेवाला ।

शाश्विष्ट (सं० त्रि०) शा-अश्व-क्त । शाश्वीर्वाट दिया गया, जिसके लिये दुवा मांगी जा चुके ।

आशिष्ट (सं० त्रि०) अतिशयेन आश, इष्टन् इष्टिज्ञावः ।
 'अतिशयेन तमविद्वान् । पा ३।१।५५ । अत्यन्त शीघ्र, निहायत
 जल्दवाञ् ।
 आशिस् (सं० स्त्री०) आ-यास-क्विप्, उपधाया इत्वम् ।
 भाव इदम्, इच्छोः । पा ३।३।३४ । इष्टार्थाविक्रमण, मतलबकी
 वातका ज़हर । २ प्रार्थना, दुवा ३ आशीर्वाद,
 दुवागोयी । ४ सर्पका दन्त, सांपका ज़हरीला दांत ।
 'आशोर्दंते मबद्धजम् । द्वितस्तार्थं चने स्तो आत् ।' (निदिनो)
 आशी (सं० स्त्री०) आ शीयतेऽनया, आ-शु-क्विप्
 घृपोदरादित्वात् । १ सर्पदंष्ट्रा, सांपका ज़हरीला दांत ।
 "आशो भागुता दंष्ट्रा तथा विद्यो न जीवति ।" (विषविद्या) २ सर्प-
 विष, सांपका ज़हर । ३ आशीर्वाद, दुवागोयी ।
 ४ हृदि नामक औषध । यह जड़ी दवामें पड़ती है ।
 आशीत (सं० पु०) पुष्पवृक्ष-विशेष, किष्की क्षिप्तके
 फूलका दरख्त । इसे अडिक्तक कहते हैं ।
 आशीतक, आशीत देखो ।
 आशीय (सं० त्रि०) अतिशयेनाश, ईयसन् इष्टत् ।
 विश्वमन्विषोपदेशेतरशोयद्वनो । पा ३।१।५० । अत्यन्त शीघ्र,
 निहायत जल्दवाञ् ।
 आशीर्गय (सं० स्त्री०) ३-तत् । मान्द्रीपाठ, स्तुतिवाद,
 दुवागोयीके साथ गाया जानेवाला गीत ।
 आशीर्तं (वै० त्रि०) आ-शी-क्त विदे निपातनात् । पक्ष
 दुग्धादि, पक्षा दूध वगैरह ।
 आशीर्दा (वै० स्त्री०) आशिस्-दा-क-भाए । १ देवता,
 पूज्य व्यक्ति । २ स्तुतिवाद ।
 आशीर्वचन (सं० स्त्री०) आशीर्वाद देखो ।
 आशीर्दत् (वै० त्रि०) दूग्ध्ययुक्त, दुग्धसे मिला दूध ।
 (पु०) आशीर्वान् । (स्त्री०) आशीर्वती ।
 आशीर्वाद (सं० पु०) आशिपो वादः ३-तत् । इष्टार्थ
 आविक्रमण वाच्य, दुवागोयी ।
 आशीविष (सं० पु०) आशीः सर्पदंष्ट्रा तत्र विषमस्य,
 घृपोदरादित्वात् मलोपः ; यद्वा आशीर्षा विषमस्य ।
 १ सर्प, सांप । 'आशीर्विको विषवत्पक्षो म्लानः सरीसृपः ।' (चरक)
 २ दर्शिकर सर्प, बड़े फूलका सांप ।
 आशु (सं० त्रि०) अशु व्याप्ता षण्, पित्वादुपधाश्चिः ।
 'अ वा पांति नि स्विदि शाभयश्च षण् । षण् १।१ । १ शीघ्र, सत्वर,

तेज, जल्दवाञ्, जो फुरतीसे चलता हो । 'चरकं चरमं
 त्वंमन्विषमिषयसाध च ।' (चरक) (अशु०) २ शीघ्रतासे,
 तेजीके साथ, फौरन् । (सं० स्त्री०) ३ सर्पामेव धान्य
 विशेष, आशुम् । 'आशीर्गो च चरकः ।' (पिच) धान्य धान्यकी
 अपेक्षा शीघ्र पकनेसे आशु नाम पड़ा है । यह मधुर,
 पाकमें पक्व, पित्तकर और गुल्म होता है । (चरकचिन्दा)
 आशुकुशु—शीघ्र उत्पन्न होनेवाली घुघिया । (Colo-
 casia Antiquorum) यह हृष वृक्षदेग और भारत-
 ययमें उत्पन्न होता है । सात मानके बाद मूलकी
 निकाल लेते हैं । यह परबो उत्कृष्ट और हितकर
 है । घुघियेका रस रक्तस्रावरोधी होता और घतकी
 लाभ पहुँचाता है । पत्तीकी भी अच्छी तरह उषान
 कर खा सकते हैं । जड़की प्रायः तरकारो बनती है ।
 त्रिवाङ्गोके लोग इसे बहुत खाते और मनयपाने
 खादको सराहते हैं । घुघिया बहुत पुष्ट होनेकी और
 लीखरकी मिठायेमें पड़ती है ।
 आशुकवि (सं० पु०) शीघ्र कविता बनानेवाला
 व्यक्ति, जो शत्रुस जल्द गायत्री तैयार करता हो ।
 आशुकारिन् (सं० त्रि०) आशु शीघ्र करोति, आशु-
 क्त-पिनि । शीघ्र कार्यकारी, जल्द काम करनेवाला ।
 आशुकारी (सं० पु०) पित्तोत्पन्न मध्विपातञ्जर । ५में
 अतिभार, भ्रम, मूर्च्छा, मुखपाक तथा दाह प्रवृत्ति
 होता और गात्रमें रक्तविन्दु पड़ जाता है । (भातवचन)
 आशुकीपित (सं० पु०) मध्यदेग-आत वल्लक शाकि,
 किमी क्षिप्तका चावल ।
 आशुकीपिन् (सं० त्रि०) चण्डवमाय, जूदरश्च,
 तुनकमिषाज, जिसे जल्द गुग्गा या जाय । (पु०)
 आशुकीपी । (स्त्री०) आशुकीपिनी ।
 आशुक्रिया (सं० स्त्री०) आशु यथा तथा क्रिया, कर्मधा० ।
 अविनश्यित व्यवहार, फुरतीका काम ।
 आशुग (सं० पु०) आशु शीघ्रं गच्छति, आशु-ग-म-
 ड । १ वायु, हवा । २ वायु, तीर । ३ शूर्य, वायु-
 ताव । 'आशुदीर्घे चरकः ।' (६५) भागवतके पञ्चम
 स्कन्धवाले २३५ अध्यायमें लिखते, कि शूर्य पन्द्रह
 दण्डमें २३००५००० योजन चलते हैं । उपरोक्त
 पदको चारसे गुच करनेपर ८५१००००० जाता है ।

“आदिभूत्वा मेव पत्निको गृहक ताव नरते ।

कोशो चरते एतदा नाथे त्रटे विद्वन्पद राधे ।” (बरीर)

२ पापेटक, प्रार्थक, ग्राहो, सायल, सग्नेदवार ।

३ धनवधान साहसी पुरुष, जो शत्रुस धरवा और यैकिक हो ।

शाश्विक-साश्विक (प० पु०) १ नायक-नायिका, प्यार करने धोर किया जानेवाला । २ भुजगमेखला, मार या सांपका पद्म ।

शाश्विकमिज्ञाज (प० वि०) क्रीडाशौल, खुशदिल ।

शाश्विक होना (हिं० कि०) कामुक बनना, चाहना, प्यार करना ।

शाश्विकाना (प० वि०) रमिक, रसीला, शाश्विक जैसा ।

शाश्विकाना चमार (प० पु०) प्रीतिकार्य, प्यारकी कविता ।

शाश्विकाना खत (प० पु०) प्रीतिपत्र, प्यारकी चिट्ठी ।

शाश्विकाना गीत (हिं० पु०) शृङ्गारगात, प्यारका गाना ।

शाश्विकी (प० स्त्री०) प्रीति, प्यार, चाह ।

शाश्विका (बै० स्त्री०) शाश्विक-चङ्-लुगट् । शिवा-मिलाप, तानोम हासिल करनेकी खाश्विका ।

शाश्विञ्चित (सं० त्रि०) कण्ठित ; सनसनाने, ठन-ठनाने, झनझनाने या हनकारनेवाला ।

शाश्वित (सं० त्रि०) शा-भय-ज्ञ । १ भुक्त, खाया हुआ । २ भोजन द्वारा टसितुक्त, चासूदा, हका हुआ ।

(स्त्री०) भायें ज्ञ । ३ समरक भोजन, खासा खाना ।

शाश्वितमस्यस्य, भर्ग आदित्वात् षच् । ४ टसि, आसू-दगी, हकायी । “शाश्वितमे नातिसाधं न साव” भातरामितः ।” (मनु)

शाश्वितशुवीन (सं० त्रि०) शाश्विता चयनेन तसा गाथो यत्न, निपातनात् सुम् । गो द्वारा भक्षण किया हुआ, जो गायने पहले ही खाया हो ।

“विशाश्वितशुवीनशुवीनयो यथाश्विताः पुत्रा ।” (चमर)

शाश्वितभय (सं० त्रि०) शाश्वितोऽयनेन तसो भय-त्यनेन ; शाश्वित-भू-वृच्-सुम् उप० समा० । आदित्ते सुः चरत्वाभारणोः । वा शाशाश्च । १ टसितकारक, आसूदा करनेवाला । (स्त्री०) भायें षच् । २ चवादि, चनाज वगैरह । ३ टसि, आसूदगी ।

शाश्वित (सं० त्रि०) शा-भय-वृच्-इट् । चतिसय भोक्ता, हृदसे व्यादा खानेवाला । (पु०) शाश्विता । (स्त्री०) डोप । शाश्वितौ ।

शाश्विन् (सं० त्रि०) चय-षिनि । भोक्ता, खाने-वाला । (पु०) शाश्वी । स्त्री० स्त्रीप् । शाश्विनी ।

शाश्विन (बै० त्रि०) शाश्विन् स्त्रायै षच्, वेदे निपा-तनात् न टितोपः । १ भक्षक, चतिसय भोक्ता, घेदू, बहुत खानेवाला । २ हृद, बुद्धा, जो बहुत धर्यका हो ।

शाश्विमन् (सं० पु०) शाश्विर्भावः इमनिष्-डिड-डायः । शीघ्रत्व, जल्दी ।

शाश्विया (फा० पु०) शाश्वय, पक्षिस्थान, खोता, धोंसला ।

शाश्वियाना, आश्वियं देखो ।

शाश्विर् (बै० त्रि०) शाश्वियते पश्यते, शा-शी-क्षिप् निपातनात् साधु । १ पाकके योग्य, पकाने काबिल ।

(स्त्री०) २ विशुद्ध करनेके लिये सोमरसमें मिला हुआ दुग्ध ।

शाश्विर (सं० त्रि०) शाश्विरेव, स्त्रायैऽण् । १ पाकके योग्य, पकाने लायक । (पु०) शा-भय व्याप्तो भोजने वा किरच, पित्वाद्युपधाहृदिः । २ चनि, भाग ।

३ सूर्य, आफ्रताव । ४ राक्षस ।

‘आश्विरो वडित्त्वयोः ।’ (उज्ज्वलहृद)

शाश्विरःपाद (सं० भव्य०) श्विरःसे पाद पर्यन्त, सरसे पैर तक ।

शाश्विर्षाद, आश्विर्षाद देखो ।

शाश्विर्षिप, आश्विर्षि देखो ।

शाश्विष् (सं० स्त्री०) १ आश्विर्षाद, दुवा । २ काव्या-लङ्कार विशेष । इरमें न मिली चोज पानेके लिये प्राथना करते हैं ।

शाश्विषाक्षेप (सं० पु०) काव्यालङ्कारविशेष । इरमें पन्थके उपकारपर ऐसा कार्य करनेका उपदेश देते, जिससे प्रपना शेष छोड़ते हैं ।

शाश्विषिक (सं० त्रि०) शाश्विषा चरति, टक् । आश्विर्षादक, दुवा देनेवाला ।

शाश्विट (सं० त्रि०) शा-गास-ज्ञ । आश्विर्षाद दिया गया, जिसके लिये दुवा मांगी जा चुके ।

आशिष्ट (सं० त्रि०) अतिशयेन आशु, इष्टन् इष्टिदावः ।
अतिशयेन तमविहनी । पा ३।१।५५ । अत्यन्त शीघ्र, निहायत
जलदवाज ।

आशिष् (सं० स्त्री०) आ-शास-क्विप्, उपधाया इत्वम् ।
माघ इदङ्, इतोः । पा ३।३।३४ । इष्टार्थाविव्करण, मतलबकी
बातका ज़हर । २ प्रायेण, दुबा ३ आशीर्वाद,
दुबागोयी । ४ सर्पका दन्त, सांपका ज़हरीला दांत ।
'आशीर्षे नो मदहृत्ताम् । इतितामंशने चो स्यात् ।' (शेदिनी)

आशी (सं० स्त्री०) आ शीयंतेऽनया, आ-शु-क्विप्
घृषीदरादित्वात् । १ सर्पदंष्ट्रा, सांपका ज़हरीला दांत ।
"आमी ताहुगत दंष्ट्रा मया विहो न जीवति ।" (विषविद्या) २ सर्प-
विष, सांपका ज़हर । ३ आशीर्वाद, दुबागोयी ।
४ हृदि नामक औषध । यह जड़ी दवामें पड़ती है ।

आशीत (सं० पु०) पुष्पवृक्ष-विषय, किमी किष्ककि
फूलका दरख्त । इसे अहिन्नक कहते हैं ।

आशीतक, आशीत देखी ।

आशीय (सं० त्रि०) अतिशयेनाशु, ईयसुन् इडित् ।
विचचनशिवश्रीपद्देवसौयधनी । पा ३।१।५० । अत्यन्त शीघ्र,
निहायत जलदवाज ।

आशीर्गय (सं० स्त्री०) इ-तत् । नान्दीपाठ, स्तुतिवाद,
दुबागोयीके साथ गाया जानेवाला गीत ।

आशीर्त (घे० त्रि०) आ-शी-क्त विदे निपातनात् । पञ्ज
दुग्धादि, पका दूध यगै रह ।

आशीर्दा (घे० स्त्री०) आशिष्-दा-क-भाप् । १ देवता,
पूज्य व्यक्ति । २ स्तुतिवाद ।

आशीर्चन (सं० स्त्री०) आशीर्षं देखी ।

आशीर्दत् (घे० त्रि०) दूग्धसुक्त, दुग्धसे मिला दूधा ।
(पु०) आशीर्वात् । (स्त्री०) आशीर्वाती ।

आशीर्वाद (सं० पु०) आशिषो वादः, इ-तत् । इष्टार्थ
आविव्करण वाक्य, दुबागोयी ।

आशीर्विष (सं० पु०) आशीः सर्पदंष्ट्रा तत्र विषमस्य,
घृषीदरादित्वात् सलोपः ; यहा आश्यां विषमस्य ।
१ सर्प, सांप । 'आशीर्विषो विषवरपको भवान् सरोष्ठयः ।' (चनर)
२ दर्शिकर सर्प, बड़े फूलका सांप ।

आशु (सं० त्रि०) आशु ब्याप्ता छण्, पित्वाटुपधाह्रिः ।
'अ मा पांति नि सदि साभस्य छप् । छप् १।१ । १ शीघ्र, मत्वर,

तेज, जलदवाज, जो फुरतीसे चलता हो । 'अनरं चनर
गुंमविचचित्तमाह च ।' (चनर) (अशु०) २ शीघ्रतासे,
तेजीके साथ, फौरन् । (सं० स्त्री०) ३ वर्षाभब धाम्य
विशेष, धावुम । 'आशुर्गो च चनरे ।' (विच) धन्य धान्यकी
अपेक्षा शीघ्र पकनेसे आशु नाम पड़ा है । यह मसुर,
पाकमें अच्छे, पित्तकर और गुह्र होता है । (तत्रविषय)

आशुकुशु—शीघ्र उत्पन्न होनेवाली घुयिया । (Colo-
casia Antiquorum) यह हृष ब्रह्मदेय और भारत-
वर्धमें उत्पन्न होता है । मात माघके बाद मूलकी
निकाल लेते हैं । यह परबो उत्कृष्ट और हितकर
है । घुयियेका रस रक्तस्रावरोधी होता और चतकी
लाभ पहुँचाता है । पत्तीकी भाँ अच्छी तरह उखाल
कर खा सकते हैं । जड़की प्रायः तरकारो बनती है ।
त्रिवाटोहके लोग इसे बहुत खाते और मनयवाले
खादको सराहते हैं । घुयिया बहुत पुष्ट होती और
खीरकी मिठायीमें पड़ती है ।

आशुकवि (सं० पु०) शीघ्र कविता बनानेवाला
व्यक्ति, जो मसुर मालद गायत्री तैयार करता हो ।

आशुकारिन् (सं० त्रि०) आशु शीघ्र करोति, आशु-
क्त-णिनि । शीघ्र कार्यकारी, जल्द काम करनेवाला ।

आशुकारी (सं० पु०) पित्तोत्थण सचिपातञ्जर । इयमें
अतिसार, भ्रम, मूर्च्छा, मुखपाक तथा दाह प्रश्रुति
होता और गात्रमें रक्तविन्दु पड़ जाता है । (भास्कर)

आशुकीपित (सं० पु०) मध्यदेय-त्रात वल्लक शास्त्रि,
किमी किष्कका चावल ।

आशुकीपिन् (सं० त्रि०) अष्टसमाय, जू दरघ,
तुनकमिजाज, जिसे जल्द गुस्सा आ जायि । (पु०)
आशुकीपी । (स्त्री०) आशुकीपिनी ।

आशुक्रिया (सं० स्त्री०) आशु यया तथा क्रिया, कर्मधा० ।
अविनम्यित व्यवहार, फुरतीका काम ।

आशुग (सं० पु०) आशु शीघ्र गच्छति, आशु-ग-म-
ङ । १ वायु, हवा । २ वायु, तीर । ३ सूर्य, पाने-
ताव । 'आशुगो जरे कको ।' (इद) भागवतके पण्ड
स्कन्धवाले २१वें अध्यायमें लिखते, कि सूर्य पश्चिम
दक्षमें २१००१००० योजन चलते हैं । उपरोक्त
पदकी चारसे गुण करनेपर ८५१००००० जाता है ।

वतपव वट्टिदव्याकक वपोरावमें ८५१००००० योजन
 चलनेमें सूर्यका नाम भाशुग पड़ा है। किन्तु भास्करा-
 चार्थं पृथिवीकी यह गति बताते हैं। पृथिवीके
 चलनेमें सूर्य चलते मोध होता है। ४ मास मुनिके
 पार्थमें एक शिष्य। (त्रि०) ५ शीघ्रगामी, जल्द
 चलनेवाला।

भाशुगामिन् (स० त्रि०) भाशु गच्छति, भाशु-गम-
 यिनि। १ शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला। (पु०)
 भाशुगामी। २ सूर्य। ३ वायु। ४ गर। (स्त्री०)
 भाशुगामिनी।

भाशुश्र (दै० पु०) भाशु गच्छति, भाशु गम वेदे
 निपातनात् खच् मुन्। १ पश्चिमिय, एक चिड़िया।
 (त्रि०) २ शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला।

भाशुतीक्ष्णक (सं० स्त्री०) ताम्र, तांबा।

भाशुतोप (सं० पु०) भाशु शीघ्रं तोपमुत्तिष्ठेत्,
 बहुश्री०। १ शिष्य। स्वल्पकाल धर्चना करनेमें ही
 तृप्त होनेपर शिष्यका नाम भाशुतोप पड़ा है। (त्रि०)
 २ शीघ्रतोपी, जल्द खुग होनेवाला।

भाशुतोप मुखोपाध्याय, Sir—कलकत्ता-भवानीपुर-निवासी
 दार्जीलिंग हाय्दर गढ़ाप्रसाद मुखोपाध्यायके पुत्र।
 १८६५ ई०को इनका जन्म हुआ था। १८८५ ई०को
 यह गणितकी एम० ए० परीचामें उत्तीर्ण हुये। दूसरे
 वर्ष रायचन्द-प्रेमचन्द छत्ति पाये। १८८८ ई०को
 हाईकोर्टमें वकालत करना आरम्भ किया। पर
 यत्सर कलकत्ता जनिवार्सिटीके अन्यतम सदस्य मनो-
 नीत हुये। १८८८ और १८०१ ई०को कलकत्ता
 विश्वविद्यालयके प्रतिनिधि बन वल्लोय व्यवस्थापक
 मभामें इन्होंने प्रवेश किया। फिर १८०३ ई०को उक्त
 मभाके प्रतिनिधिसरपसे व्हेलाटकी व्यवस्थापकमभामें
 प्रवेशका अधिकार पाया। १८८४ ई०को इन्हें डि०
 एल० उपाधि मिला था। १८०४ ई०को यह
 कलकत्ता हाईकोर्टके विचारपति पदपर अधिकृत
 हुये। आज भी उसी पदपर प्रतिष्ठाके माय भाप
 काम करते हैं। १८०५ ई०से भाशुगामिन् पाठ वर्ष
 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के चान्सेलर
 (Vice-Chancellor) पदपर बैठे

सम्बन्धमें अनेक कार्य किये। १८०८ ई०को यह
 एगियाटिक सोसायिटीके सभापति रहे। इनकी
 प्रतिभा सर्वतोमुखी है। नयदोषके पण्डितोंने इन्हें
 'सरस्वती' उपाधि एवं सरकारमें अंशुत-परीचा बोर्डके
 सभापतिका पालन दिया है। भारत-सम्बन्धमें
 भी इन्हें 'सर' (Sir) उपाधि प्रदानकर सम्मानित
 किया है। वल्लोय साहित्यपर इन्हें विशेष अनुसन्धान
 रचना है। एक वर्षतक यह कलकत्ता साहित्य-
 सभाके सभापति और वल्लोय-साहित्यपरिपक्के अन्य-
 तम सहाकारी सभापतिके पदपर अधिकृत थे।
 १८०५ ई०को यह उत्तरवङ्ग साहित्य-सम्मेलनके
 सभापति और १८१६ ई०को वल्लोय साहित्य-सम्मेलनके
 सभापति बने। यतमान १८१० ई०को सिंदलकी
 महास्यविरमण्डलीने इन्हें 'सम्बुदागमचक्रवर्ती'
 उपाधि प्रदान किया है।

भाशुत्व (सं० स्त्री०) शीघ्रता, जल्दी, फुरती, तेजी।

भाशुप (सं० पु०) यंशविशेष, किसी कृष्णका बांस।

भाशुपत्री (सं० स्त्री०) भाशु पत्रं यस्याः, बहुश्री०-
 गौरादित्वात् ङीप्। शक्की लता, कुंदरुकी वेल।

भाशुपत्व, भाशुपत् २को।

भाशुपत्वन् (वै० पु०) भाशु पतति, भाशु-पत्-यिनिप्।
 शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला। (स्त्री०) ङीप्।
 भाशुपत्वरी।

भाशुफल (सं० पु०) १ शक प्रश्रुति, समुद्री वन-
 रह। २ वृषयोग। ३ पक्ष विशेष, किसी कृष्णका
 हथियार।

भाशुमण्ड (सं० पु०) भाशु-भक्तमण्ड, पादम चायनका
 मांड। यह घाड़ी, मधुर, कफकर, तपण, चयदोषघ्न
 और श्रुकवर्धन होता है। (परिभक्ति)

भाशुमत् (वै० त्रि०) भाशु शीघ्रं विद्यतेऽस्य, भाशु-
 मतुप्। १ शीघ्रतायुक्त, जल्दवाज। (चय्य०)
 २ शीघ्रतापूर्वक, जल्द। (पु०) भाशुमान्।

(दै० त्रि०) १ शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला।
) २ शीघ्रतापूर्वक, जल्द।

दै० त्रि०) शीघ्रगामो रथ रचनेवाला, जिसके
 गाड़ी रहें।

आशुश्रीहि (सं० पु०) कमंधा० । आशुधान्य, आशुस, बरघातमें पैदा होनेवाला चावल ।

आशुशुचि (वै० पु०) आ-शुष-सन्-चि । १ चिनि । 'शिक्षितो वायुसखा सिखावालायचचिः' (५२२) २ वायु । (त्रि०) ३ दीप्तिमान्, चमकदार ।

आशुपाण (सं० चि०) आ-शुष वाङ्मलात् कानच् । मस्यक् शृष्क होनेवाला, जो अक्षुतेरह सुख जाता हो । आशुपेण (वै० त्रि०) शीघ्रगामी वाण रखनेवाला, जिसके पास अलूद चलनेवाला तौर रहै ।

आशुहेमन् (वै० पु०) शीघ्रगामी चिनि ।

आशुहेमा, आशुहेमन् देखो ।

आशुहेपस् (वै० त्रि०) आशु हेपते, आशु-हेप-असन् । सर्वथातुमोऽहम् । सन् ३।१८८ । १ शीघ्र शब्दाद्यमान, जन्मद आवाज देनेवाला । २ शब्दकारो अश्वयुक्त, जिसके छिनछिनानेवाला घोडा रहै ।

आशु (वै० त्रि०) आशु वेदे षुपोदरादित्वात् दीर्घः । शीघ्र, जल्दवाज, तेज ।

आशुकिटिन् (मं० पु०) आशुतेऽस्मिन्, आ-शु-विच् स इव कुटति चिनि । पर्वत, पहाड ।

आशुकिटी, आशुकिटिन् देखो ।

आशुकीय (सं० चि०) अशोक संख्यादित्वात् ठञ् । १ अशोक वृक्षके निकटस्थ, अशोक पेड़के पास होनेवाला । अशुकीया अशुकीयम्, ठञ् । २ शोकरहित स्त्रीके उत्पन्न । (स्त्री०) डीन् । आशुकीयको होन् । वा ३।१०२ । आशुकीयी ।

आशुकीव (फ्रा० पु०) नेत्रपीड़ा, आंशुका ददें ।

आशुकीषण (सं० स्त्री०) शापणकार्य, सुखनका काम, सुखायी ।

आशुकीच (सं० स्त्री०) अशुचेर्भावः, अण् । मरुः अशुकीचदि । वा ३।१३० । अशुकीचता, कालुष्य, नापाकी, गन्दगी ।

आशुकीयं (सं० स्त्री०) आ-चर-यत्-सुट् । आशुकीयं । वा ३।१३० । १ अशुत, ताज्जुव । २ विषययस, तम-रुक्, परच । ३ अशुत रूप, अनोखो सुख । 'विष्वोक्त आशुकीयं' (५२२) (त्रि०) ४ आशुकीयन्वित, ताज्जु य-अशुकी, अनोखा । (अशु०) ५ अशुत, अजीव तरहसे, निराले टङ्गपर ।

आशुकीयता (सं० स्त्री०) विषय, ताज्जुव, अनोखापन । आशुकीयत्व (सं० स्त्री०) आशुकीयता देखो ।

आशुकीयूत (सं० त्रि०) अशुत, अजीव, अनोखा ।

आशुकीयमय, आशुकीय देखो ।

आशुकीयित (सं० त्रि०) विषययाकुल, सुताज्जिव ।

आशुकीयतन, आशुकीयत देखो ।

आशुकीयतन (सं० त्रि०) मस्यक् योतति, श्योतति वा, आ-यत युत वा लृट् । १ मस्यक् चरपगोन, खूब टपकनेवाला । (स्त्री०) भावे लृट् । २ मस्यक् चरण, खामा छीटा । ३ नेत्रमेचन, आंशुकी प्रलक्षण वी वगैरहका लगाव । ४ चक्षुःपूरण, आंशुमें दवा वगैरहका डालना । आशुकीयतन कायं कर्मा निगमं नर्ही होता । नेत्रमें हाथ, चौट, पागव और खेके विन्दुका डाना जाना आशुकीयतन कहाता है । सेवनमें आठ, खेहनमें दश और रोपणमें बारह विन्दु मात्रा पड़ती है । (अशुकीयतन)

आशुकी (सं० पु०) अशुकीय विकारः, अण् वा टिनोपः । १ प्रक्षारविकार, पत्थरका बतन, विनीना वगैरह । (त्रि०) २ प्रक्षारमय, मद्दोन्, पयरोला ।

आशुकीक (सं० पु०) अशुकीय कायति, अशुकी-क । मास्य देगका आम विशेष ।

आशुकीकिक (सं० त्रि०) आशुकीके भवम्, इत् । आशुकीकिक इत्यप्यशुकीकिककारित् । वा ३।१०२ । आशुकीकिक आमजात, आशुकीकिक गांयका पैदा ।

आशुकीमन (सं० पु०) अशुकीयः सूर्यमारधिरपत्यम्, अण् । १ सूर्यमारधिके पुत्र । अशुकीय विकारः, अण् वा टिनोपामाकः । २ प्रक्षारविकार, पत्थरकी चीज । (त्रि०) ३ प्रक्षारमय, मद्दोन्, पयरोला ।

आशुकीमस्य (सं० स्त्री०) प्रक्षारके निकटस्थ देगादि, पहाड़ी मुख ।

आशुकीमारिक (सं० त्रि०) अशुकीमारं हरति वहति आशुकीयति वा, ठञ् । अशुकीय हरति आशुकीयति । वा ३।१३० । प्रक्षारहारक, प्रक्षारवाहक, पत्थरका टेर रखनेवाला ।

आशुकीरय्य (सं० पु०) अशुकीरय्य मुनेःपत्यम्, यच् । अशुकीरय्यमुनिके अशुकीरय्य । (स्त्री०) टीप् । आशुकीरयी ।

घाग्मरिक् (मं० पु०) अग्नेयं, स्यात् वाङ्मयत्वात्
ठञ् । अग्नेयोरोग, मङ्गलमाना, पयरी । अन्तोश्चो ।

घाग्मायम (सं० पु०) अग्नेयो गोवापत्यम्, फञ् ।
अग्नेयः अत्र । अग्नेयः । अग्नेयम् नामक ऋषिके
गोवापत्यम् । (श्री०) डीप् । घाग्मायनी ।

घाग्मिक (मं० त्रि०) भारतभूतमग्नेयं इति यदिति
पाययति वा, ठन् । प्रस्तरका भारदारक, यादक वा
पावाहक ; मङ्गो, पयरीला ।

घाग्नेय (मं० पु०) अग्नेयोरपत्यम्, ठक् । अग्नेयम्
नामक ऋषिके पत्यम् ।

घाग्नाम (मं० त्रि०) आ-ग्ने-ज्ञ । १ धनीभूत, जो
गदा पड़ गया हो । २ अज्ञप्राय, जो कुछ कुछ
सूखा हो ।

घाय (मं० स्त्री०) अयमेव, स्यात् षण् । चक्षुःका
जल, पांशु, आंशुका पानी ।

घायपथ (मं० स्त्री०) आ-या-पिष्-पुक् ङस्ते लुट् ।
पाककारक, शिपरवायीसे खाना पकानेका काम ।

घायम (सं०-पु-स्त्री०) आ सम्यक् अयो यत्न, आ-यम
साधारे घञ् । १ मुनिगणका वासस्थान । २ मठ ।

‘आयमी प्रतीना मते । ब्रह्मचर्यादित्युत्थं विपि । (ईम) १ तपोवन ।
४ मुक्त व्यक्तित्वा । परमेष्ठिनं मौनं ज्ञेयपरं यमं न
रहनेनैव मुक्तं व्यक्तिको भो आश्रमं कथ्यते । ५ परमे-

ष्ठिनः । ६ पाठयान्ता, मद्दरा । ७ ब्रह्मचारी प्रभृतिका
शास्त्रीका चार प्रकार धर्मविशेष ।

‘ब्रह्मचारी मही वागमयो भिषगुदये । आश्रमोऽस्मी । (चमर)

‘अनादमी न तित्तेत्, अथमावमति विशः ।

आश्रमं विना तित्त्वं प्रायश्चित्तोपमे तस्यै ३” (दच)

‘आश्रमो भेषुचर्येण आश्रमी हो बभौ पुनै ।” (महाविद्यालय)

‘अनादेशमदद्यात् अनादेशदत्तानि च ।

अश्रुदंदा मभिव्यजि तदा वेतात्तित्थः ।” (व्याज)

महाविद्यालयतन्त्रके कथनानुसार कश्चिन्नें आश्रम्यं चौर
भिन्नु दो भिन्न पन्थ आश्रम नहीं होता । व्यासके
मतमें ४४०० वर्ष कल्पियुग वीतनेपर तोम ही आश्रम
रह जायेगी । अग्नेयको लोग चौखण्ड एव पत्यायु
तथा अग्नेय रोगमें प्राकान्त ज्ञेयपर यानप्रत्य किंवा
अग्नेय आश्रम रख न मन्नेगी । द्विजको एकछान भी
आश्रमहीन न रहना चाहिये । आश्रम न रखनेमें

प्रायश्चित्त करना पड़ता है । ब्रह्मचर्यं, आश्रम्यं, वान-
प्रस्थ चौर अग्नेय चार आश्रम होते हैं ।

आश्रमगुरु (सं० पु०) आश्रमाणां ब्रह्मचर्यादीनां
गुरुर्नियन्ता, इ-तत् । १ आश्रमनियन्ता, राजा । आश्र-
मस्य मठस्य तपोवनस्य वा गुरुः स्वामो तस्य छात्राणा-
मुपदेष्टा वा, इ-तत् । २ तपोवनस्वामी । ३ मठस्य
किंवा तपोवनस्य छात्रगणका उपदेष्टा ।

आश्रमधर्म (सं० पु०) आश्रमविहितो धर्मः, याक्-
तत् । ब्रह्मचर्यादि विहित धर्म । धर्म ङः प्रकारका
होता है,—१ वर्षधर्म, २ आश्रमधर्म, २ वर्षायमधर्म,
४ गुणधर्म, ५ निमित्तधर्म चौर ६ साधारणधर्म ।
ब्राह्मणका कभी मद्यपान न करना इत्यादि वर्णधर्म ;
यज्ञके अग्निकी रक्षा, तल्लय काडाहरण तथा भिक्षा
द्वारा जीवनधारण ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्म ; ब्राह्मणी
प्रभृतिका भी पलागदण्ड पश्य वर्णायम धर्म ;
विहित कार्यके अकरण एव निषिद्ध कार्यके आश-
रणकी प्रायश्चित्तादि निमित्त-धर्म चौर अश्रिंसादि
साधारण-धर्म है ।

आश्रमपद (सं० स्त्री०) आश्रम एव पदं स्थान-
रूपम्, कर्मधा० । १ मुनिगणका आश्रमरूप स्थान ।

‘परिब्रह्मणोश्च । इदमाश्रमपदं तावत् परिभाषि ।” (बृहज्जलपा)

२ ब्राह्मणके धार्मिक जीवनका समग्रविशेष ।

आश्रमपर्वन् (सं० स्त्री०) मङ्गाभारतके पन्द्रहवें पर्वका
प्रथमांग ।

आश्रमभ्रष्ट (मं० त्रि०) आश्रमसे गिरा हुआ, जो
अपने आश्रमकी छोड़ बैठा हो ।

आश्रममण्डल (मं० स्त्री०) मुनिगणके वासस्थानका
वृत्त, साधुमन्त्रके रहनेकी जगह ।

आश्रमवास (मं० पु०) आश्रमे वासः, ०-तत् ।
१ मुनिका तपोवनादिमें वास । आश्रमवासमधिकृत्य
छती अन्त्यः, अन् । २ धृतराष्ट्रादिके आश्रमवास अधि-
कारपर व्यास-रचित भारतान्तर्गत पर्वविशेष ।

आश्रमवासिक (मं० स्त्री०) आश्रमवासः प्रतिपाद्यतया-
स्वस्य, ठन् । १ भारतान्तर्गत व्यासरचित धृतराष्ट्रा-
दिके वनवासका प्रतिपादक पर्वविशेष । (ति०)

२ मुनिगणके वासस्थानमें सम्बन्ध रखनेवाला ।

आश्रमवासिन्, आश्रमवासी आश्रमवद ईशो।

आश्रमसद् (सं० त्रि०) आश्रमे सौदति तदामित्वेन तमेवाश्रयति, आश्रम-सद्-क्विप्। आश्रमवासी, तपो-वनवास-रत वानप्रस्थादि।

आश्रमस्थान (सं० स्त्री०) मुनिगणका वासस्थान, साधुसन्तके रहनेकी जगह।

आश्रमालय (सं० पु०) तपोवनवासी, साधु।

आश्रमिक (सं० त्रि०) आश्रमे नियुक्तः साधुः अस्त्रास्य वा, ठन्। आश्रमयुक्त, तपोवन-सम्बन्धीय। (स्त्री०) आश्रमिकी।

आश्रमिन् (सं० त्रि०) आश्रमोऽस्य अस्मिन्, इनि।

आश्रमयुक्त। (पु०) आश्रमी। (स्त्री०) आश्रमिणी।

आश्रमोपनिषत् (सं० स्त्री०) आश्रमोपनिषद् विधेय।

आश्रय (सं० पु०) आश्रयीते इति, आ-श्रि कर्मणि

अच्। १ आश्रयणीय द्रव्य, सहारा लेने लायक चीज।

२ अथलम्बन, सहारा। ३ रक्षाकर्ता, डिफाजत रखने-

वाला। आश्रयीतेऽस्मिन्, आशारे अच्। ४ आधार,

जुम्हावरतन। ५ गृह, सकान्। ६ विषय, मामला।

७ शत्रु से पौड़ित होनेपर बलवानके आश्रयस्वरूप

छः प्रकारमें राजाका गुणविधेय। भावे अच्।

८ शरण, पनाह। ९ अधिकार, इच्छितियार।

१० पायत्ति, बहाना। ११ सम्पर्क, लगाव। १२ ग्रहण,

लेनिका काम। १३ संयोग, मिल। १४ सम्बन्ध,

तालुक। १५ उचित कार्य, मुनासिब काम।

१६ व्याकरणानुसार क्रियाका कर्ता, किलका फायल।

१७ मूल, जड़। १८ बौद्ध मतानुसार पञ्च ज्ञानेन्द्रिय।

समानान्तमें यह शब्द आशारेका बोधक है। यथा—

पटगुणाश्रय, पाठ गुणपर टिका हुआ।

आश्रयण (सं० स्त्री०) आ-श्रु-ल्युट्। १ सम्यक् सेवा,

खासी खिदमत। २ अथलम्बन, सहारा। (त्रि०)

कर्तारि ल्युट्। आश्रयकर्ता, सहारा पकड़नेवाला।

(स्त्री०) लीप्। आश्रयणा।

आश्रयणीय (सं० त्रि०) आश्रयीते, आ-श्रि कर्मणि

पनोयर्। आश्रय लेने योग्य, जिनके सहारे रहना

मुनासिब ठहरे।

आश्रयतः (सं० अद्य०) आश्रयते, सहारा पकड़के।

आश्रयत्व (सं० स्त्री०) आश्रयता, आधारत्व, सहारा लेनिका काम।

आश्रयमुज्, आश्रयस् ईशो।

आश्रयभूत (सं० त्रि०) आश्रयदाता, सहारा देने-वाला।

आश्रयलिङ्ग (सं० त्रि०) अपने सम्बन्धी शब्दमें लिङ्गमें समान रहनेवाला, जो अपने हवालेके लक्ष्मण जिम्मेमें मिलता हो।

आश्रयवत् (सं० त्रि०) आश्रयोऽस्मात्प्रत्यय, मनुष्य मत्प्र

वत्वम्। आश्रययुक्त, सहारेपर टिका हुआ। (पु०)

आश्रयवान्। (स्त्री०) लीप्। आश्रयवती।

आश्रयाग (सं० पु०) आश्रयं काठादिकं पश्याति ;

आश्रय-पश-अण्, उप० समा०। १ पशिन, पाग, अपने

आश्रय काठादिको देखनरूपसे खानेपर पशिनका नाम

आश्रयाग पड़ा है।

‘आश्रयतो ब्रह्मागः कर्मागः पावकोऽन्यः।’ (चरक)

२ चित्रकचक्र, चोतका पेड़। ३ क्षत्तिकानसद्व। (त्रि०)

४ आश्रयनागक, सहारेको तोड़नेवाला।

आश्रयासिद्ध (सं० पु०) आश्रयोऽसिद्धो यच्च। न्यायोक्त

हेत्वाभास, मुगालता, झूठी दलोच।

आश्रयासिद्धि (सं० स्त्री०) आश्रयस्यासिद्धिः, ई-त्त्।

न्यायोक्त हेतुका दोषविधेय, टभीलका ऐश।

आश्रयिन् (सं० त्रि०) आश्रयति, आ-श्रि-इनि।

आश्रय लेनेवाला, जो सहारा पकड़ता हो। (पु०)

आश्रय (सं० त्रि०) आश्रयोति वाच्यं, आ-श्रु-अण्।

१ आश्रानुवर्ती, परमाश्रयदार, बातको माननेवाला।

(स्त्री०) भावे अण्। २ पड़ोकार, इकरार, वादा।

३ क्लेश, आक्षेप, यकाहट। ‘आश्रयो वचनं क्लेशः इति शब्दः’ (ईश) ४ मदी, धारा, टाया, बहाव।

५ दाप, कुसूर। ६ जंममतेमें पुस्त्यागुव चोर पापागुव

नामक मन्धार विधेय। इसमें शीघ्र बह हो जाता

है। ७ बौद्धमतानुसार कायागुव, भशागुव, हटागुव

चोर अश्रियागुव नामक विषय विधेय। इसमें पड़नेमें

मनुष्य सुक्ति नहीं पाता।

आश्राव (सं० पु०) आ-श्रु-विट्-अण्। १ श्रावण,

श्रानेका काम। २ पड़ोकार, इकरार, वादा।

पाश्चात्य (सं० स्त्री०) पाश्चात्यदेशी।
 पाश्चि (सं० स्त्री०) पाश्चिम्यक् पाश्चि, प्रादि० समा० ।
 १ मध्यक् कोण, खासा कोना। २ धारा, तनधारका
 किनारा।
 पाश्चित (सं० द्वि०) पाश्चियते, पा-श्चि-क्त। पाश्चिय-
 प्रात, टिका हुआ। २ पचलम्बित, पकड़े हुआ। ३ अनु-
 श्रुत, इच्छेमान करनेवाला। ४ शरणागत, पनाह
 पाये हुआ। ५ यगीभूत, पधीन, ताधिदार, मातहत।
 पाश्चितत्व (सं० स्त्री०) वश्रता, पधीनता, मातहतता।
 पाश्चित्य (सं० चड्य०) पा-श्चि-त्प्य। पाश्चिय सेकर,
 महारा पकड़के।
 पाश्चिन् (सं० द्वि०) अथं नेत्रजलमस्त्रय, इति।
 एतद्विभक्त्यः। वा ३।१।११। नेत्रजलयुक्त, पांशु भरे हुआ।
 (स्त्री०) डीप्। पाश्चिणी।
 पाश्चुत् (सं० चि०) पाश्चु भावे क्तिप्। १ पङ्गीकार,
 इक्षरार। (द्वि०) कर्तरि क्तिप्। २ पङ्गीकारकर्ता,
 इक्षरार करनेवाला।
 पाश्चुत (सं० द्वि०) पा-श्चु-क्त। १ पङ्गीकृत, माना
 हुआ। २ मध्यक् श्रुत, ख्य सुना हुआ। (स्त्री०)
 ३ सुनानिकी पुकार।
 पाश्चुति (वै० स्त्री०) पा-श्चु-क्तिन्। १ शृणय, सुनायी।
 २ पङ्गीकार, इक्षरार।
 पाश्चुत्कर्ष (वै० द्वि०) चारो चार कान लगाने-
 वाला, जो हर तर्फ कान देता हो।
 पाश्च्येय (सं० द्वि०) पा-श्चि-यत्। पाश्चित्य, सहारा
 दिये जाने काविल।
 पाश्च्येय (वै० पु०) पानिद्वन करनेवाला व्यक्त, जो
 शत्रु म गले लगाता हो। २ प्रेत, शैतान्। ३ पद्मेपा
 नक्षत्र।
 पाश्चिष्ठ (सं० द्वि०) पा-श्चिष्ठ-क्त। १ पानिद्विन,
 हमामोग, गलेसे लगा हुआ। २ मध्यह, मिना हुआ।
 ३ पानिद्वन करनेवाला, जो गले लगाता हो। ४ संस्कृत,
 केना हुआ। ५ प्रतिपादित, साबित किया हुआ।
 पाश्च्येय (सं० पु०) पा-श्चिष्ठ-क्त, पा मध्यक्
 द्वेषः सम्बन्धः, प्रादिस्मा०। १ दार्ष्टिक सम्बन्ध, दिस्ती
 सहाय। "हातेपात्रे वर्तते वै पाश्च्येयः" (हण्णो०)

२ पानिद्वन, हमामोगी, सीनेसे सोना लगाकर
 मिननेकी छानत। ३ दृष्ट्याविशेष, किमी समामेका
 नञ्जारा। वेदमें 'पाश्च्येय' बोधते है। ४ पद्मेपा नक्षत्र।
 पाश्च्येय (सं० स्त्री०) पाश्च्येयैव स्याद्येण्। पद्मेपा
 नक्षत्र।
 पाश्च्य (सं० स्त्री०) पाश्च्यानां समूहः, चण्। १ पाश्च्य-
 समूह, घोडांका कृष्ण। २ पाश्च्यत्व, घोड़ेका काम या
 हान। (द्वि०) पाश्च्येयते शेषिकः, चण्। पाश्च्येयदे
 वाद्यम् चण् वा। ३ पाश्च्यके वहनीय, जिसे घोड़ा से
 जा सके। ४ पाश्च्यसम्बन्धी, घोड़ेके सुतासिक। पाश्च्य-
 मूत्रसे श्लेष्मा, जमि चौर दहृ नष्ट होता है।
 पाश्च्यतर (सं० पु०) १ मुद्गिलका गोखनाम।
 २ पाश्च्यतरका अपत्य, पाश्च्यका लड़का।
 पाश्च्यतराश्रि (सं० पु०) पाश्च्यतरस्यापत्यम्, इज्।
 उद्गिल मुनि।
 पाश्च्यत्य (सं० स्त्री०) पाश्च्यत्यस्य फलम्, चण्।
 श्वादिश्रीण्। वा ३।१।१६। १ पाश्च्यत्यफल, पीपलका मिया।
 (द्वि०) पाश्च्यत्यस्येदम्। २ पाश्च्यत्य सम्बन्धी, पीपलके
 सुतासिक।
 पाश्च्यत्यिक (सं० पु०) पाश्च्यत्येन युक्ता पीपलमासी,
 चण् निपातनात् तस्य ठक्। १ चान्द्र पाश्चिममाम।
 (द्वि०) २ पाश्च्यत्यसम्बन्धीय, पीपलके सुतासिक।
 पाश्च्यती (सं० स्त्री०) पाश्च्यत्य-डीप्। १ ग्राणा वियेय।
 पाश्च्य इय तिष्ठति, पाश्च्य-स्या-क पृषोदरादित्वात्,
 पाश्च्यती पश्चिनेन चतः तस्य पाश्च्यमस्त्राकारत्वात् तैत्र
 युक्तः कालः। २ पश्चिनी नक्षत्रयुक्त रात्रि।
 पाश्च्यतीय (सं० द्वि०) पाश्च्य-स्या-क्त। श्वादिश्रयः।
 वा ३।१।१६। पाश्च्यत्यसम्बन्धीय, पीपलके सुतासिक।
 पाश्च्यपत (सं० द्वि०) पाश्च्यपतेरिदम्, चण्। चण्ण-
 दिभ्यः। वा ३।१।१७। पाश्च्यपति-सम्बन्धीय, घोड़ेके मालिक-
 से तासुक ररनेवाला।
 पाश्च्यपम् (वै० द्वि०) शीघ्र कर्मधारी, जल्द काम
 करनेवाला। "विष्णो विनाचरन्त्यम्" (चण् १।१०।१२)
 पाश्च्यपालिक (सं० पु०) पाश्च्यपालन्यापत्यम्, ठक्।
 श्वादिश्रयः। वा ३।१।१६। पाश्च्यपालीका पुत्र।
 पाश्च्यपेजिन (सं० द्वि०) पाश्च्यपेजिन, मोहमधीने, चिनि।

। शौनकादिप्रकृतयः । पा ३।१।१६ । १ अश्रवणं ऋषिप्रोक्तं
ग्रन्थाध्यायी, अश्रवणकी बनायी किताब पढ़नेवाला ।
(पु०) २ अश्रवणं ऋषिके शिष्य ।

आश्रवण (सं० त्रि०) अश्रवण द्वारा उत्पादित,
जिसे अश्रवण पैदा करे । (स्त्री०) आश्रवणी ।

आश्रवण (सं० त्रि०) अश्रवणालाया पौषधेयम्,
अश्रवणाल-घण् । अश्रवणाल निमित्त, अश्रवणाल बेंतका
बना हुआ ।

आश्रवणिक (सं० त्रि०) अश्रवणं भारतमश्रवणं
भारं वा हरति वृद्धिं चावहति वा, वंशादित्वात् ठञ् ।
अश्रवणज्ञा या अश्रवरूप भारका हरणकर्ता ।

आश्रमधिक (सं० त्रि०) अश्रमधाय दितम्, अश्र-
मध-ठञ् । १ अश्रमधाय-साधन, अश्रमध यज्ञमें
लगनेवाला । (स्त्री०) अश्रमधमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः,
ठञ् । २ अतपश्रमोपान्तगतं तृतीय प्रपाठक पञ्चा-
ध्यायरूप ग्रन्थविशेष । इस ग्रन्थके पांच अध्यायमें
अश्रमधका उत्पत्तिफल, धर्मविषय, अध्वर्यु, उद्-
गाता, ब्रह्मा और यज्ञमानकी बात कही है । शौन
अध्यायमें मन्त्रव्याख्याके साथ विशेष धर्म और शिष्य
दो अध्यायमें धर्मान्तरके साथ पूर्वोक्त विषय सकल
सन्निवेशित है । ३ युधिष्ठिरके अश्रमध अधिकारपर
व्यासकृत भारतान्तर्गत पर्वविशेष ।

आश्रयुज (सं० पु०) आश्रयुजो अश्रिनोयुक्ता षोर्ण-
मासो यस्मिन् अण् । १ शक्यप्रतिपदादि अमाषष्ठा
पर्यन्त चान्द्र आश्रिनमास । (त्रि०) २ आश्रयुज
नक्षत्रमें उत्पन्न ।

आश्रयुज, आश्रयुज-दीर्घ ।

आश्रयुजक (सं० पु०) आश्रयुज्यामुसा मापः, युज् ।
आश्रयुजो युज् । पा ३।१।३३ । १ चान्द्र आश्रिन पूर्णिमाको
उत्त माप । कक्षा जाता, कि चान्द्र आश्रिन पूर्णिमा-
को बोनिसे उडद दूब ऊगता है । (त्रि०) २ चान्द्र
आश्रिन पूर्णिमाको बोया जानियाला । (स्त्री०)
आश्रयुजकी ।

आश्रयुजो (सं० स्त्री०) अश्रयुजा अश्रिनोतद्यक्षेप-
युक्ता षोर्णमासो, षण्-स्त्रीप् । अश्रयुज युजः आश्रः । पा ३।१।
आश्रिनमासकी षोर्णमासो ।

आश्रय (सं० त्रि०) अश्रय युक्तो रयः अश्रय-
स्तस्येदम्, पत्रपूर्वैकत्वादच् । अश्रयके रयसे सम्यन्त्र
रखनेवाला, जो घोड़ागाड़ीमें लगता हो ।

आश्रयचणिक (सं० त्रि०) अश्रयचणं वेत्ति तत्र-
प्रापकशास्त्रमधीते वा, ठञ् । १ अश्रयचणामिष्ट,
घोड़ेके भलेबुरे नियान् पर्वचाननेवाला । २ अश्र-
यचणबोधक शास्त्र अध्ययनकारो, जो घोड़ेके भले-
बुरे नियान् बतानेवाली किताब पढ़ता हो । (पु०)
३ अश्रयाल, सायौष ।

आश्रयायन (सं० पु०) अश्रं साति यद्वाति, अश्र-
ला-कः । अश्रवणो मुनिभेदः तस्यापत्यम्, फञ् ।
१ अश्रवणदीय श्रौत और अश्रवणसुत्रकारक एक ऋषि ।
यह शौनकके शिष्य रहे । शौनक इन्हें बहुत चाहते
थे । इसीमें उन्होंने अपना बनाया अश्रवणकाण्डात्मक
ब्राह्मण-सन्निभ योगसूत्र आश्रयायनके नामसे ही बना
दिया । उसी समयमें अश्रया नाम आश्रमायन पढ़ा
है । (त्रि०) २ आश्रयायन सम्यन्त्रो । (स्त्री०)
आश्रयायनी ।

आश्रय (सं० त्रि०) आश्र-अश्रय । शीघ्रगामी अश्र-
युक्त, जिसमें जल्द दौड़नेवाली घोड़े लगे । "य आश्रय
अश्रय इति शिने ।" (अश्र-अश्रयः) 'आश्रयः शीघ्रगम-
न-वेत्तः' । (मातृप)

आश्रय (सं० स्त्री०) शीघ्रगामी अश्रयात्मक वन,
जल्द जानेवाली घोड़ाकी ताकत ।

"अश्रयः शीघ्रगमः" (अश्र-पाठाः)

'आश्रयः शीघ्रगमः' (अश्र-पाठाः)

आश्रय (सं० त्रि०) १ आश्रय अश्रय करनेवाला,
जो साँप लेता हो । २ अश्रय, जो उठनेवाला ।
३ अश्रय रय जानेवाला, जो आराम ही रहा हो ।

आश्रयित (सं० त्रि०) प्रोत्साहित, शोषसेमन्त्र, जिसे
भरोसा दिया जा चुके ।

आश्रयायन (सं० पु०) अश्रय गोदापत्यम्, फञ् ।
अश्रयनात्मक ऋषिके गोदापत्य । (स्त्री०) शोषः ।
आश्रयायनी ।

आश्रयावतान (सं० पु०) अश्रयावतानात्मक अश्रयायनम्,
अश्रयः । अश्रयावतानात्मक अश्रयायनम् । पा ३।१।३३ ।

शामक इति पुत्रः। (स्त्री०) स्त्री। पागाव-
नामी।

पागाम (सं० पु०) पा-गम-घञ्। १ निर्हति
शौ पात्र्यदान, तमसोदिही। २ मान्दना, दिनामा।
३ पाप्यायिका, किष्मा। ४ परिच्छेद, बाध। 'बाधः
कान्' (इ०)। 'पात्र्यदानं परिच्छेदः' (इ०)

पागासक (सं० त्रि०) पागामयति, पा-गम-घिच्-
यञ्। १ पागामकारक, मान्दनाकारी, तमसो देने-
वाला। (पु०) २ दक्ष, योगाक।

पागामन (सं० स्त्री०) पा-गम-घिच्-त्तुट्।
मान्दना, भरोमा। (त्रि०) कर्त्तरि तुट्। २ पागाम-
कारक, तमसो देनेवाला।

पागामनोय (सं० त्रि०) मान्दना देनेयोग्य, जिसे
तमसो दो जा सके।

पागामयत् (सं० त्रि०) मान्दनाकारक, तमसो
देनेवाला।

पागामित (सं० त्रि०) मान्दना पाये हुआ,
जिसे तमसो दो जा चुके।

पागामिन् (सं० त्रि०) पा-गम-घिन्। १ प्रत्यागा-
युक्त, तमसो रपनेवाला। २ प्रसन्न करनेवाला,
जो खुश करता हो। (पु०) भास्वामी। (स्त्री०)
पागामिनी।

पागाम्य (सं० त्रि०) पा-गम-घिच्-यत्। १ मान्द-
नीय, तमसो दिये जाने कागिन। (अव्य०) ल्यप्।
२ मान्दना देकर, तमसोके साथ।

पागिह (सं० घि०) पागान् भारभूतान् हरति
यइति पावहति वा, ठञ्। १ पागको हरण वा घटन
करनेवाला, जो घोड़ा सुराता वा से जाता हो। (पु०)
पागमिमिषं संयोगः उत्पातो वा, ठक्। १ पागनाभ-
सूचक संयोग, घोड़ेका फायदा देखानेवाला श्लोक।

पागिन (सं० त्रि०) पागू व्याप्तौ शौचादिको विनि,
ततो षच्। १ व्याध, मामूर, भरा हुआ।

'मम पागिनोः परमान्' (अ० ८८५४)

'कादिनेदीपः' (आप०)

(पु०) १ पात्र्य पात्रिमाम, क्षारका महीना।
इम मामकी पमावप्याको हिन्दू पिछ्लोकके उद्देशमें
ग्राह करते हैं। एतदपचमें देवीपूजा शौर विजया-
दशमी होती है, जिसकी अपेक्षा दूधरा पर्व नहीं।
नृत्य, गीत शौर वाद्यके उद्यमसे भारत पामो-
दित रहता है। पावाम-हृह-पनिता मङ्गलके
मनमें जो पानन्द पाता है, यह कहा जा नहीं
सकता। पूर्णिमाको काजागर तन्मो जगामे है।
४ यज्ञाय कपास, एक वरतन। ५ पात्रिनीकुमार
देवता-सम्बन्धीय यज्ञहृतादि द्रव्य विधेय। ६ अक्ष,
इधियार।

पात्रिनी (सं० स्त्री०) पात्रिनी पात्राकारयता मस-
खेष सुखा पूर्णिमा, षष्-स्त्रीप्। १ पात्रिन
मामकी पूर्णिमा। २ इष्टकाविधेय। ३ पिता।

पात्रिनिय (सं० पु०) पात्रिन्याः घोटकाकारवत्याः
संज्ञायाः षपत्यम्, ठक्। शौचोत्थः। पा ११११०।
१ पात्रिनीकुमारहय। तथोरेकैकस्यापत्यम्, षष्।
२ नकुस। ३ सहदेव। पात्रिन्के पाष्टुराजपत्नी
माद्रीसे उत्पादन करनेपर दोनो पुत्रीका नाम पात्रि-
निय पड़ा है। पात्रस्यैकाऽगमः पन्याः। ४ पात्रके
जाने योग्य पय, जिस राइसे घोड़ा निकल सके।

पात्रो (सं० पु०) पात्रस्यैकाऽगमः पन्याः, षष्।
पात्रैकाऽगमः। पा १११११। पात्रके एक दिनमें जाने योग्य
पय, जिम राइसे घोड़ा एक रोजमें निकल सके।

पात्रोय (सं० पु०) पात्रो देवता पात्र्य, ठक्। १ पात्रो
देवता सम्बन्धीय हृतादि। २ पात्रोके षपत्य।

पापाद (सं० पु०) पापादा-नक्षत्रयुक्ता घोर्णमासो
पापादो सा पात्रिन् मासे, षष्। पात्रिन् पूर्णिमाकोनि
संज्ञान्। पा १११११। १ खनामस्यात पात्रमाम विधेय।
कृषिमासमें ठहराया जाता, कि पापाद माममें किस
समय धान्य बोनेसे शक्यका शमाश्रम पाता है।
पराशरके मतानुसार पापाद
पूर्व दिग्ध वा

। पाती। फिर नैऋत कोणमें वायु जानेंगे भी धान्यादि गन्धकी हानि होता है। पश्चिम दिक्से वायुचलने-पर जल पड़ता है। वायुकोणमें वायुके धानिसे भड़-लगती है। यदि उत्तरकी ओरसे वायु चलता, तो सकल पृथिवीमें धान्यादि गन्ध भर जाता है। ईशान-कोणमें भी वायुके धानिसे प्रचुर गन्ध उपजता है।
 -आपादक मासकी श्रद्ध नवमीको वायुवर्षण (तूफान) वदनेसे पानी पड़ता है और वायु बन्द रहनेसे बूंद-नहीं टपकता। इस नवमीको उदयाचल निर्मल रहनेसे सूर्यदेव अपना समय विधान करते हैं। ऐसे समय सूर्यका मण्डल देखते हैं। सूर्य यदि मेघसे आवृत रहता, तो तुला राशिमें भस्त्र होनेतक मेघ गरजता है। 'अभिस्त्रय' चापादे' (चमर)

आपादी पूर्णिमा प्रयोजनमस्य, षण् । २ व्रतियों-के लीने योग्य पलायदण्ड । 'पलायो दण् चापादो व्रते ।' (चमर)
 ३ मलयपर्वत । चापादी मलयपर्वतो व्रतित्ये च साति च । (चमर)

आपादक (सं० पु०) चापाद एव, स्त्रायं कन् ।
 १ चापादमास । २ पलाय वीज ।

आपादभव (सं० पु०) चापादायां नचत्रे भवति, चापादाभू-षच् । १ मङ्गलघट्ट, मिरीछ, जलाद-फलक । २ चापादमासजात और चापादाभू शब्द भी इसी अर्थमें पाता है ।

आपादा (सं० स्त्री०) १ राशिचक्रस्थित विंशतितम नक्षत्र, पूर्वाषाढा । २ एकविंशतितम नक्षत्र, उत्तरा-षाढा । उत्तराषाढा नक्षत्रमें जन्म होनेसे मनुष्य दाता, दयावान्, सत्कर्म और पुत्रभार्यादि सुखमम्यत्र रहता है ।

आपादाभू (सं० पु०) चापादायां भवतीति, चापादा-भू-क्लिप् । मङ्गलघट्ट । 'मङ्गलोऽकारकः ङः । चापादाभूर्नवार्थिव ।' (चमर) (ङि) २ चापादानक्षत्र जात ।

आपादि (सं० स्त्री०) आ-सङ्-ङिन्; ष्योदरादि-त्वात् पत्वम्, शोकारत्वाभावश्च । १ मस्यक् महन, खासी बरदाश । २ रतिदेवी ।

आपादिज्ञा (सं० स्त्री०) राक्षसी विनीय ।

आपादी (सं० स्त्री०) चापादया नक्षत्रेण युक्ता-पूर्णिमा, षण् टिड्ढाणित्वादिना स्त्रीय । १ चापाद-

मासकी पूर्णिमा । चापादोको कृष् धान्य तोनञ्जर वायुमें स्थापन करते हैं। वायुकी भार्दतामे धान्यका परिमाण किञ्चित् घटनेपर सुत्रिष्ट होने और सुनिष्ठ पड़नेका योग सम्भवा जाता है । २ यज्ञोप वटका-विशेष ।

आपादीय (सं० द्वि०) चापादायां भव' तस्येदं ह्यत्वाद्वा, ङ । १ चापादानक्षत्रमें उत्पन्न । २ चापाद-सम्बन्धोय ।

आटम (सं० पु०) षटमा भागः, ङ । १ ४४८ भागः १५५ । २ ११११८ । षटमभाग, षाटर्षा द्विग्या ।

आटमातुर (सं० द्वि०) षटानां मातृणां षण्यम्; षटन् माट-षण्, माटगम्यस्य उकारात्सादेयः । माट-बन्धुत्वात् मट्पूर्वात्; वा ३१११३ । षाट माताका मट्टका ।

पाटा (सं० स्त्री०) पा तिठतिः घञ्-क पत्वम् । दुषामादिनात्; वा २१११८ । दिक्, जानिष, तम् ।

षाटि (सं० पु०) षटानामपत्यम्, षटन्-इच् । षाटिभावेति; वा ३१११२ । षाटजनका षण्य विभेय ।

षाट् (सं० स्त्री०) षट्पुत्रे व्याघ्रोति, षट्पु व्याघ्रो-द्वन् द्विष्य । षट् (वि-विमि-विमि-विमि-विमि) द्विष्य । षट् ३१११४ । आकाश, चासमान् । 'षाट्पुत्राश्चाम् ।' (उत्पलनदच)

षाट्नी (सं० स्त्री०) १ मुदीघवन, मय्या जङ्गल । "इति पविषो न ददायकादनाश्रान् ।" (अश्व १०११३३) 'षाट्पु व्याघ्रानामपत्यानाम् ।' (सायच) २ भीजनट्ट, बाबरघो-षाना ।

षाटा (सं० स्त्री०) देग, प्रासा, मुल्क ।

षास् (सं० ष्य०) आ-षस-क्लिप्, षास्-ञिप् वा । १ स्मरणसे, याद करके । २ पापिषापूर्वक, इतिघन । ३ समन्तात्, चारो ओर । ४ कोप, गुच्छसे । 'षा षस-शान् षकोपयोः ।' (चमर) ५ योऽसि गर्वके साय गरजके, ददेसे शूररके साय जोरमें बिज्ञाकर । ६ चेट, षण्-मोस । (वे० पु०) मुष्, सुं, चेटरा ।

षास (सं० पु०) षाम्-ञच् । १ षामन, विडोना । २ स्थिति, क्षान्त । ३ उपवेशन, बैठक । षण्ते विद्यते षनेन, षम करषे षञ् । ४ धनुः, कमान् । षम षेये भावे षञ् । ५ निक्षेप, जेलघांक । ६ बैठनेका स्थान । ७ धूमि, घास । (दि० स्त्री०) षासा, षषेद ।

८ कामना, चाह। १० आधार, टेक। ११ दिक्, तर्फ।

पासंसार (सं० त्रि०) १ नित्य परिवर्तनशील, बराबर बदलते रहनेवाला। (अर्थ०) २ संसारके नाश-तक, लक्ष्यतक दुनिया रहै।

पासकत (हिं० पु०) पासस, सुस्ती, ताकतका न रहना। पासकती (हिं० वि०) पासस, सुस्त, ताकत न रखनेवाला।

पासक्त (सं० त्रि०) आ-सन्ज-क्त। १ पासङ्गयुक्त, खाया हुआ। २ अन्य विषय परित्यागकर एक ही नियममें निविष्ट, मुग्धाक, चाहनेवाला। (अर्थ०) ३ अनवरत, लगातार, हमेशा। (स्त्री०) ४ सम्यक् सम्बन्ध, खासा लगाव। 'तत्परि प्रसिवासकौ' (चमर)

पासक्तचित्त (सं० त्रि०) अनुरक्त, मुग्धाक दिनकी लगाये हुआ।

पासत् चेतम् (सं० त्रि०) किसी विषयपर हृदयकी लगाये हुआ, जिसका दिल किसी बातपर अटका रहै।

पासक्तमनसु, पासक्तचेतम् देखो।

पासक्ति (सं० स्त्री०) आ-सन्ज-क्तिन्। १ अन्य विषयकी छोड़ एक ही विषयका अवलम्बन, लगाव। (वै० स्त्री०) २ पद्यस्थापन, राह डालनेका काम। (अर्थ०) ३ अभिप्रायपूर्धक, मतलबसे।

पासङ्ग (सं० पु०) आ-सन्ज-घञ्। १ अभिनिवेश, लगाव। २ प्राप्त वा उपस्थित विनाश-वस्तुका रक्षण-आभिलाष, मिट जानेवाली मिली या हानि-चीजके बचानेका इरादा। ३ भोगाभिलाष, ऐशकी खाहिश। ४ कर्तृत्वाभिमान, कारगुजारीका घमण्ड। ५ अन्य विषयकी छोड़ एक ही विषयपर चित्तका अभिनिवेश,

दूसरी बातकी छटा एक ही बातपर दिलका जमाव। ६ सम्यक् सम्बन्ध, खासा ताज्जुक। ७ लगाने योग्य सौराष्ट्रसत्तिका। (वै० पु०) ८ पद्यस्थापन, राह-बन्दी। (त्रि०) ९ अनवरत, सुदामी। (अर्थ०)

१० सदा, हमेशा, लगातार।

पासङ्गत्व। (सं० स्त्री०) न सङ्गत असङ्गतम् तस्य भावः, अल् नोत्तरपदद्वयस्य। सङ्गताभाव, असम्बन्ध, सुफारकत, सुदायी।

पासङ्गा (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रसत्तिका, सौराष्ट्र देशकी सटी।

पासङ्गिनी (सं० स्त्री०) पासङ्गः सातत्यमस्या अस्ति, यन्नि-डोप्। वात्पासम्बुहं, चक्रवायु, गर्दभाद, बगुला, लोंडा।

पासङ्गिम (सं० पु०) पासङ्गे भवः, डिमच्। कर्ण-बन्धनाकृत विशेष, किसी किस्मकी पट्टी। कर्णवन्धनकी आकृति पन्द्रह प्रकार होती है। उसमें जिसका मध्यभाग लम्बा और एक कोणयुक्त रहता, वह पासङ्गिम बजता है। (सङ्घत)

पासञ्जन (सं० स्त्री०) आ-सन्ज-जुगट्। १ पासङ्ग, सोहवत। २ सम्यक् सम्बन्ध, खासा लगाव। ३ योजना, जोड़।

पासञ्जित (सं० त्रि०) आ-सन्ज-ञिच्-क्त-इट्। संयोजित, लगा हुआ।

पासङ्ग—एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। बालचन्द्रकृत विवेकमञ्जरीकी टीकामें लिखा है,—

आसङ्ग प्रसिद्ध जनाचार्य अमरयदेव सूरिके शिष्यने भिन्नमालवंशीय कटुकराजके औरस और अनसदेवीके गर्भसे जन्म लिया था। इन्हें लोग कथिभानुङ्गार कहते थे। इनके पृथिवीदेवी और जैतलदेवी दो स्त्री रहीं। इन्होंने मेघदूतकी टीका, कितने ही जिनस्तोत्र तथा स्तुति, धर्मग्रन्थ उपदेशकुण्डली और विवेकमञ्जरी बनायी है।

आसते (हिं० क्रि० वि०) १ आहिस्ता, आहिस्ता, धीरे-धीरे, जोर न देकर। २ होकर।

आसक्ति (सं० स्त्री०) आ-सद्-क्तिन्। १ सङ्गम, मेल। २ लाभ, फायदा। 'आसक्तिः सङ्गमो भावे' (हेन) ३ नैक्य सम्बन्ध, पासका मेल। ४ न्यायमतसे प्रत्यक्ष-जनक सन्निकषे, दो लफ्ज और उनके मानिके बीचका ताज्जुक।

“आसक्तिं साह शैल्यताकादासक्तियुक्तः पदोच्यते।” (आसक्तिदर्पण)

योग्यता, आकाङ्क्षा और आसत्तियुक्त पदसम्बन्धकी वाक्य कहते हैं। बुद्धिका विच्छेद न पड़ना ही आसक्ति है। “आसक्तिर्बुद्धिविच्छेदः।” (आसक्तिदर्पण)

आसक्ति, योग्यता और आकाङ्क्षे तात्पर्य समझ

पड़ता है। सन्निधान कारणकी पदकी प्रासक्ति कहते हैं। "आसक्तिर्व्यक्ताकाङ्क्षा सत्परं ज्ञानमिच्छते।

कारणं सन्निधानम् पराधर्मान् बन्धते ॥" (भाष्यपरिच्छेद)

जिस पदार्थके साथ जिस पदार्थका अन्वय आवश्यक भाना, उन्हीं दोनोंके अध्येषधानकी उपस्थिति का नाम कारण पड़ता है। इसीमें 'देवदत्तने' आगवाले पर्यन्त 'खाया' इत्यादि स्थानमें शब्दबोध नहीं होता। क्योंकि पर्वत, आगवाले और खाया शब्दके साथ 'देवदत्तने' पदके अध्येषधानमें अन्वय कैसे लगेगा। जिस पदार्थके साथ जिस पदार्थका अन्वय लगता, उसी पदार्थका अध्येषधानकी उपस्थितिका बोध होना प्रासक्ति कहलाता है।

प्रासथा (हिं०) आया देखो।

प्रासथान, आया देखो।

प्रासदन (सं० स्त्री०) आ-मद-लुगट्। १ प्राप्ति, याकृत। २ नेकव्य सम्बन्ध, पासका तादृक्। ३ स्थान, बैठक। ४ उपवेशनकार्य, बैठ जानीकी बात।

प्रासन (सं० स्त्री०) प्रास भावं लुगट्। १ स्थिति, बैठक। २ स्वस्थानमें स्थितिरूप राजाके छः प्रकार गुणके अन्तर्गत गुण-विशेष, ठहराव। उभय पक्षके सैन्यका सामर्थ्य घटनेपर प्रासन (अपने-अपने शिविरमें विद्यामके निमित्त स्थिति) प्रायशः जाता है। ३ ऊर्ध्वरु राजाका याद्वानिवर्तक व्यापार विशेष, दुश्मनसे किसी जगहका बचाव। मन्त्रीकी परपक्ष और स्वस्वार्थके सैन्यकी शक्ति तथा संख्या समान देख अपने राजसे प्रासन (एकत्रावस्थान) लेनेकी योजना प्रासिधे। क्योंकि पीछे सैन्यधर्या बढ़ा सकनेसे ही लयकी सम्भावना होती है। प्रासते उपविशन्तेऽथ, प्रास प्राधारे लुगट्। ४ उपवेशनका प्राधार कम्पनादि, बठनेकी चीज़, कुरसी, मोटा, कायल वगैरह। 'सहासन' शोभनिदाभ्यान्वीय।" (अर्थ) ५ देवपूजाका उपचार विशेष। "प्रासनं मानतं पापसर्वं साधनैः परम्।" (रुच) ६ जीवकद्वय। ७ गजस्कन्ध, हाथीका कन्धा। ८ योगाङ्ग विशेष।

चिरण्डसंहिताके मतसे जीवजन्तुकी संख्या जितनी होती, प्रासनकी गणना भी उतनी ही निकलती है।

पहले शिवने ८४ लक्ष प्रासन कहे थे। उनमें ८४ प्रकारके प्रासन प्रधान हैं। किन्तु मर्त्यलोकके शिवी बत्तीम ही प्रासन समग्रद होतें हैं।

"विश्वं एषं तथा भद्रं तुभ्यं वचसि सविबन्धुः।

विश्वं गोतुभ्यं वीरं धनुषाननमिह च ॥

यत्तं तुभ्यं तथा मानसं सन्तं न्यायनमिह च।

वीर्यं पथिमोत्तानमृत्कटं सट्टटं तथा ॥

मयूरं वृक्षटं कुर्मं तथा धीम नकुर्मन्म ॥

उत्तानममृत्कटं इत्थं सन्तं मयूरं इवम् ॥

मयूरं मकरच्छोटं सुमहत्तं च मानसम् ॥

शक्तिं यदासनाति ० ० मयूरं वीरं च विद्विषम् ॥"

१ मिह, २ पद्म, ३ भद्र, ४ सुक, ५ वष, ६ स्रष्टिक, ७ मिह, ८ गोमुख, ९ वीर, १० धनु, ११ वृत्त, १२ गुप्त, १३ मत्स्य, १४ मत्स्येन्द्र, १५ गोरक्ष, १६ पथिमोत्तान, १७ वृत्कट, १८ सट्टट, १९ मयूर, २० कुक्षट, २१ कुर्म, २२ उत्तानकुर्म, २३ उत्तानममृत्क, २४ वृक्ष, २५ ममृत्क, २६ मयूर, २७ वृत्, २८ मयूर, २९ मकर, ३० वृक्ष, ३१ सुमहत्तं पार ३२ योग प्रासन होता है।

शिवसंहिताके मतमें ८४ प्रकार प्रासन हैं। उनमें १ मिह, २ पद्म, ३ उभय वीर ४ स्रष्टिक ही प्रधान पड़ता है। चिरण्डसंहितामें बत्तीषो प्रासन समा-नका विधि लिखा है,—

१ विहासन।

स्थिरमति योगिगणके एक गुच्छ द्वारा योगिन्याम-को दधाने, दूसरेको निद्रपर लगाने, छातोमें बिजुक्त पडाने और भुके मध्यस्थानपर स्थिरदृष्टि सजानेसे विहासन बनता है। इन प्रासनमें स्थिरमति योगि-गण मोक्ष पाता है। शिवसंहिताके मतानुसार एक पेरकी पड़ी निद्रपर लगाने, उसीपर दूसरे पेरकी भी पड़ी जमाने और नियम, मरम पर निर्दोहान बन ऊर्ध्व दृष्टि उभय भुके मध्यपर सजानेसे विहासन सधता है। इन प्रासनकी लगानेसे योगीकी चमोटा-लाभ होता है। अन्य मरुत प्रासनकी परीक्षा विहासन ही उंच है।

२ प्रासन

प्रास, उदहर दसिच, दक्षिण, प्रास

चरण रख पीठकी और घुमाकर दक्षिण हाथसे दक्षिण पयं वाम हाथसे वाम पैरका वृहाङ्गल (अंगूठा) जोरसे पकड़ छातीपर टूठी अड़ाने और नाककी नोकपर दृष्टि लगानेसे पद्मासन गंठता है। इससे समस्त रोग मिटता और पेटका अग्नि बढ़ता है। यह आसन वह और मुक्त भेदसे दो प्रकारका होता है। जो ऊपर कहा, वह वह है। केवल वाम ऊपर दक्षिण और दक्षिण ऊपर वाम चरण रख दोनो चरण पर दोनो हाथका तालु लगानेसे मुक्त पद्मासन पड़ता है। शिवसंहिताकी मतानुसार दोनो पैर चितकर दोनो ऊपर लगाने, दोनो हाथ चितकर दक्षिण ऊपर वाम तथा वाम ऊपर दक्षिण हाथ बैठाने, नाककी नोकपर दृष्टि जमाने, दन्तमूलपर जिह्वा अड़ाने, विषुक तथा वचः उठा क्रमशः साध्यमत नाकसे वायु खींच पेटमें ठहराने और पीछे धीरे-धीरे वायुको नाकसे ही निकालनेपर पद्मासन सजता है। इससे रोग छूट जाता है। फिर दोनो ऊपर सिङ्गके नीचेसे दोनो पादतल मिलानेपर भी पद्मासन लगता है। पद्मासनसे योगीका समस्त कार्य सिद्ध होता और बन्धन छुटता है।

१ भद्रासन।

अण्डकोपकी नीचे दोनो पैरकी एड़ी उलटी लगाने, दोनो पैरके अंगूठे पीछेसे पकड़ जालन्धर बांधने और नाककी नोकपर दृष्टि जमानेसे भद्रासन बैठता है। इससे भी सकल रोग नष्ट होता है।

४ मुक्तासन।

मलहारपर वामपदकी एड़ी रख उसपर दक्षिण पदकी एड़ी जमाने और मत्स्या तथा धड़ बिलकुल सीधा लगानेसे मुक्तासन बनता है। इससे कार्यसिद्धि होती है।

५ वशासन।

दोनो जड़ा वज्र-जैसी बनाने और दोनो पैर मलहारकी दोनो ओर लगानेसे वशासन होता है। यह योगियोंकी सिद्धि देता है।

८ स्वस्तिकासन।

उभय जानु तथा उरुके मध्य उभयपदका तल रख

विकोणाकार आसन बांधने और सीधे तौरपर स्वच्छन्द बैठनेसे स्वस्तिक सजता है। शिवसंहिताकी मतानुसार जानु तथा उरुके मध्य दोनो पदतल भली भांति रख समान भावमें सुखसे बैठनेपर भी यह आसन लग जाता है। स्वस्तिकासनसे योगीका प्राणायामादि सकल कार्य सिद्ध होता है।

७ मिंहासन।

पैरकी दोनो एड़ी अण्डकोपकी नीचे परस्पर विपरीत भावमें पीछकी ओर ऊर्ध्वमुख निकालने, दोनो घुटने मट्टीपर रख उनपर व्यक्त भावसे मुख उठाने और जालन्धरबन्ध बना नाककी नोकपर दृष्टि जमानेसे मिंहासन लगता है। यह आसन रोगनाशन है।

८ गोमुखासन।

दोनो पैर मट्टीपर रख पीठकी दोनो ओर मिलाने और शरीर सीधा जमा गोमुख जैसा ऊपरकी मुख उठानेसे गोमुखासन गंठता है।

९ वीरासन।

एक पैरको ऊपर और दूसरे पैरको पीछेकी ओर रखनेके वीरासन बनता है।

१० धनु आसन।

दोनो पैर लट-जैसे सीधे फेंकाने और दोनो हाथसे पीठकी ओर दोनो पैर पकड़ समस्त शरीर धनुःकी तरह टेढ़ा बनानेसे धनु आसन होता है।

११ शवासन।

मुर्देकी तरह चित हो मट्टीपर लोटनेसे ही शवासन बन जाता है। इससे अम मिटता और मन शान्त होता है। अन्य नाम श्रुतासन है।

१२ गुप्तासन।

दोनो घुटनोंके मध्य दोनो पैर खूब छिपा दोनो पैर ऊपर रखनेसे गुप्तासन गंठता है।

१३ मत्स्यासन।

मुक्त पद्मासन लगा दोनो कुहनीसे मत्स्या दवाने और चित हो पड़ जानेपर मत्स्यासन लगता है।

१४ पयिनोत्तानासन।

मट्टीपर दण्डाकार सीधे फेंका दोनो पैर दोनो हाथसे पकड़ने और दोनो पैरपर घुटनेके नीचे

भाग मध्य मत्वा रखनेसे पश्चिमोत्तानासन पडता है ।
दोनो पैर परस्पर अर्मलम्ब रूपसे फेला और हृत्तद्वय
द्वारा अर्ध्छीतरह पकड़ दोनो घुटनोंपर मत्वा रखनेसे
भी यह आसन जम जाता है । अपर नाम उग्रामन है ।

१५ गोरक्षासन ।

उभय जानु और उरुके मध्य दोनो पैर चित कर
अप्रकाशित रूपसे जमाने, दोनो हाथ चितकर दोनो
गुल्फ छिपाने और कण्ठको सिकोड़ नाककी नोकपर
दृष्टि लड़ानेसे गोरक्षासन बनता है । इससे समस्त
कार्य सिद्ध होता है ।

१६ मत्स्यंन्द्रासन ।

उदरको पीठकी तरह सीधा कर वाम पद झुका
दाहने घुटनेपर जमाने, उसपर दाहनी कुहनी लगाने
और दाहने हाथपर गुण रख दोनो भूके मध्यभाग
पर दृष्टि बंठानेसे मत्स्येन्द्रासन ठहरता है ।

१७ उत्कटासन ।

दोनो पादकी हृदाङ्गुली द्वारा अक्षिका पकड़ने
द्वये दोनो गुल्फ शून्यमें ठहराने और दोनो गुल्फपर
गुह्रदेश जमानेसे उत्कटासन लाता है ।

१८ चडटासन ।

वाम पद तथा वाम घुटना मट्टीपर रख और वाम
पदका दक्षिण पदसे लपेट दोनो घुटनीपर हाथ
बैठानेसे यह आसन जमता है ।

१९ मयूपासन ।

दोनो हाथके तानुसे भूमिको पकड़, दोनो कुहनी
पर नाभिका पाश लगा और मुक्तपद्मासनके न्याय
पादद्वय पोकिकी और उठा शून्यमें दण्डाकार सम-
भावसे खड़े होनेपर मयूपासन बंधता है ।

२० डकुटासन ।

किसी मट्टीपर मुक्तपद्मासन लगा दोनो घुटने और
उरुके मध्य दोनो हाथ रख दोनो कुहनीपर टिकनेसे
यह आसन सिद्ध होता है ।

२१ श्रुगंधन ।

अण्डकोपके नीचे दोनो गुल्फ परस्पर विपरीत
भावेमें रख गर्दन, मत्वा और देह सीधाकर बैठनेसे
श्रुगंधन कहता है ।

२२ उग्रामनप्रमाणन ।

कुङ्कुटासन लगा और दोनो हाथमे गदेनकी
पिकाड़ी पकड़ कच्छकी तरह चित हो जानेपर यह
आसन जमता है ।

२३ मयूपासन ।

पदतलद्वयसे पीठके पर दोनो पदकी हृत्तद्वय
परस्पर मिलाने और दोनो घुटने मयूपासन जमानेपर
मयूपासन लाता है ।

२४ उग्रामनमयूपासन ।

मण्डूपासन लगा और दोनो कुहनीमें मत्वा
पकड़ मंडककी तरह चित हो पड़नेपर यह आसन
निकलता है ।

२५ हृत्तद्वयन ।

वाम उरुपर दक्षिण पद रख पैडकी तरह भूमि-
पर सीधे तौरसे खड़े होनेपर हृत्तासन बंधता है ।

२६ अर्धआसन ।

उभय जडा तथा उरुद्वारा भूमि अग्रपूर्वक सुसिर
हो दोनो घुटनीपर दोनो हाथ रखनेसे अर्धआसन
गठता है ।

२७ उग्रामन ।

दक्षिण गुल्फपर गुह्रदेश लगा और उसकी वाम
और वामपद चलते तौरपर रख भूमि होनेसे हृत्तासन
बैठता है ।

२८ अर्धआसन ।

अधोमुख लेट तथा हृत्तद्वय छातीपर रख उभय
हस्तके तालु द्वारा भूमि होने और दोनो पद शून्यमें
पाध हात ऊपर उठानेसे अर्धआसन बनता है ।

२९ अर्धआसन ।

अधोमुख लेट मट्टीपर छाती रख और पदद्वय फेला
दोनो हाथमे मत्वा पकड़नेपर अर्धआसन पड़ता है ।
इससे अग्नि हृत्त होती है ।

३० अर्धआसन ।

अधोमुख लेट दोनो पैर पीठपर मे जाने तथा दोनो
हाथमें पकड़ने और उदर एवं मुख गाढ़ रूपसे
पाकुचित करनेपर उग्रामन जमता है ।

३१ श्रुगंधन ।

पैरके अंगुठेमें नाभि परेला भूमिपर

हाथके तालु द्वारा भूमि अर्धपूर्वक सर्पक न्याय ऊपर की ओर मत्वा उठानेसे भुजङ्गासन स्वगता है। इससे मूत्र बढ़ती और बीमारी घटती है। कुण्डलिनी शक्ति भी भुजङ्गासन मारनेसे प्रसन्न होती है।

१२ योगासन।

दीनो पंर चितकर घटने तथा दीनो हाथ चितकर इस आसन पर रखने और पूरक द्वारा वायु खेच कुम्भक करती हुये नाककी नोक देखनेसे योगासन बनता है। इससे अच्छीतरह योगसाधन होता है।

शास्त्रीक आसन दान करनेके मन्त्र यह है,—

“पुत्रव दवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतापतेस्त्वगानो यदग्ने नातिरोचति। (सुति) (पहले हाथमें पानी ले) “आसनमन्त्रस्य सैवमेष सधिः सुतलं इत्यः कुर्मो देवता आसनपरिचरि विनिर्गमः।”

(पात्रमें हाथका पानी डाल और क्षताञ्जलि हो)

“वृधि तया एता लोका देवित्वं विपुना एता।
सद्य धार्य नो मित्यं पवित्रं कुरु आसनम् ॥” (तन्)
“वेदमर्षं महादिभ्यं क्रथाम्परिसदृशकम्।
कं टिहृदमनोकामं यथाआसनमीधर ॥” (पुत्रव)

आसनपर्णी (सं० स्त्री०) अपराजिता, किसी किस्मकी लड़ी।

आसनसोल—बङ्गाल प्रान्तके यर्धमान जिलेका ग्राम। यह अक्षा० २३° ४२' ७" और द्राधि० ८७° १' पू० पर अवस्थित है। यहाँ ईष्ट-इण्डियन-रेलवेका बड़ा स्टेशन बना है। आसनसोलसे कितना ही कीयला रानीगञ्ज जाता है।

आसना (सं० स्त्री०) आस-युच् अण-टाप्। आन-योश्च। वा १। १००। १ स्थिति, उपवेगन, कयाम, रहास, डैठक। (हिं० क्लि०) २ उपस्थित रहना, होना। (पु०) ३ जीवकट्टम, दोषहरियाका पेड़।

आसनादि (सं० पु०) आसनमादिर्यस्य, बहुव्री०। तन्वोक्तु पूजाङ्ग उपचार। यथा,—१ आसन, २ स्वागत, ३ पाद्य, ४ अर्घ्य ५ आचमनीय, ६ मधुपर्क ७ आचमन, ८ स्नान, ९ वसन, १० आभरण, ११ गन्ध, १२ पुष्प, १३ धूप, १४ दीप, १५ नैवेद्य और १६ वन्दन।

आसनी (सं० स्त्री०) आस आधारे लुप्त-डोप्। १ विपणि, दुकान्। २ स्थिति, कयाम, रहास।

‘आसनी विन्वी लिथाम्।’ (मदिनी) ३ छोटा आसन, दुकीची, तिपायी वगैरह।

आसन्द (सं० पु०) आसोदत्यङ्मिन्, आ-सद आधारे घञ्। १ वासुदेव, परब्रह्म। २ खडामेद, किसो किस्मका पलंग। ‘आसन्दो वासुदेवे स्नात् खडामेदे च योचिति।’ (मदिनी)

आसन्दिका (सं० स्त्री०) सुद्र खडा, पलंगड़ी।

आसन्दौ (सं० स्त्री०) आसद्यतेऽस्याम्, आ-सद निपातानात् गारादित्वात् डोप्। १ लघुखटिका, छोटा पलंग। २ कुरसी, आराम कुर्सी।

आसन्दीवत् (सं० त्रि०) आसन्दौ अस्यर्थं मतुप्, मस्य वत्वम्। १ आसन्दीयुक्त, जिसके पलंग रहे। (पु०) आसन्दोमान्। ग्रामविशेष। (स्त्री०) डोप्। आसन्दीवती।

आसन्न (सं० त्रि०) आ-सद-क्त। १ निकटस्थ, नजदीक, लगा हुआ। ‘समीपे निकटासन्नसिद्धसमीपवत्।’ (१५२) (पु०) २ अस्तागत सूर्य, शुरूव होनेवाला आफताव।

आसन्नकाल (सं० पु०) आ सम्यक् सीदति यत्र; आ-सद-क्त, प्रादिसमा०। १ सूर्यकाल, मोतका वक्त। (त्रि०) २ प्राप्त-समय, जिसके आखिरी वक्त आये।

आसन्नतरता (सं० स्त्री०) अधिकतर नेवध्य, ज्यादा नजदीकी।

आसन्नता (सं० स्त्री०) समीप्य, नजदीकी।

आसन्नप्रसवा (सं० स्त्री०) प्राप्त-प्रसव-वेदना, बच्चा देने या जननेवाली औरत।

आसन्नभूत (सं० पु०) वर्तमान भूतकाल, माजी-करीब, हालका गुजरा हुआ जमाना। जैसे,—मैंने कथिता बनायो है, आपने लिखनी उठायी है, उसने बात चलायी है। सामान्य भूतकी क्रियाके आगे है, हो, है वा है लगानेसे आसन्नभूत बनता है।

आसन्न्य (सं० त्रि०) आस्ये भवः यत्। सुखभव, सुंघमें रहनेवाला।

आसन्न्यत् (सं० त्रि०) उपस्थित, मौजूद, हाज़िर। (पु०) आसन्न्यान्। (स्त्री०) आसन्न्यती।

आसपास (हिं० क्लि० वि०) १ समीप नजदीक, इधर-उधर। “धुंनके पास आसपास बगरे रहे।” (श्लोकित)

(वि०) २ निकटस्थ, करीब, लगा हुआ। (पु०)
३ प्रतिवेश हमसाया, प्रड़ोषी। “कप गवे और चापगाव।”
(भोकोलि)

आसफ् उद्-दौला—१ अवध-नवाब गुजा-उद्-दौलाके ज्येष्ठ पुत्र। १७७५ ई०के जनवरी मास इन्होंने अपने पिताका उत्तराधिकार पाया और फौजाबादके बदले लखनऊको अपने राज्यकी राजधानी बनाया। १७८८ ई०की सन्धिके अनुसार यह पांच लाख रुपये ईष्ट-इण्डिया कम्पनीको प्रतिवत्सर देनेपर राजी हुये थे। उपरोक्त प्रबन्धके बाद अयोध्या प्रदेश शास्य पड़ा और राज्य दिन-दिन बढ़ने लगा। कुछ समयके उपरान्त सर जोन गोर गवरनर हुये थे। उन्होंने छल-बलसे नवाबसे अधिक धन पानेकी चेष्टा की। सद्गज रीतिसे कुछ मिलने न देख सर् जोन गोर साहबने नवाबकी विना अनुमति मन्त्री महाराज भावूलालको पकड़ लिया। भावूलाल ही अर्थलाभके पथमें कण्टक समझि गये थे। आसफुद्दौला रङ्ग-बेरङ्ग देख साढ़े पांच लाख रुपये नकद अधिक प्रति वर्ष देनेपर राजी हुये। कुछ दिन बाद किसी कारण वश यह विशेष रूपसे पाहत किये गये थे। १७८७ ई०की २१वीं मितम्बरकी आसफुद्दौला मरे और अपने बनाये लखनऊके इमाम-वाड़ेमें गड़े। इन्होंने उर्दू और फारसी भाषामें एक दीवान् बनाया है। आसफुद्दौला बड़े दानी रहे। अभीतक लोग कहा करते हैं,—“जिसे न ह मोरा, उसे ही आसफुद्दौला।” (भोकोलि)

२ नवाब असद खान्। सिया आसफुद्दौलाके इनका दूसरा उपाधि चुसलतुलमुल्क रहा। तुर्कीमें इनका बंश प्रसिद्ध है। असद खान्के पिता ईरान-सम्राट् शाह अब्बासके अत्याचारने भारत भाग पाये थे। लहान्गीर बादशाहने उन्हें जंघे पदपर बैठायो, जुल-फिकार खान्का उपाधि प्रदान किया और अपनी बेगम नूरजहान्के सब्यन्धीकी किसी लड़कीमें ब्याह दिया। असद खान्को पहले इनाओम कहते थे। शाहजहान्ने शीर्ष ही ध्यान दे अपने वजीर आसफ् खान्की लड़कीमें इनका विवाह करा दिया। १६०१ ई० अर्थात् आसमगौरके १५ वें वर्षतक यह बख्शीके

पदपर प्रतिष्ठित रहे। फिर इनका अधिक सम्मान बढ़ा था। पहले ४००० घोर पीछे ७००० सवार असद खान्की खिदमतमें रहने लगे। मन्त्री तथा जंघे दरजेके भगीरका पद भी मिल गया था। बहादुर शाहके समय यह बकील-सुतलक और इनके लड़के इयाईल भगीर-उन्-उमरा जुसफिकार उपाधिके साथ मीर बख्शी बने। किन्तु फर्रुखियारके सिंहासनारुढ़ होनेपर असदखान् अपमानित हुये थे। इनकी जायदाद जब्त कर भी गयो। इयाईलका बध हुआ था। उस समयसे असदखान् नज़रबन्दकी तरह थोड़े भस्तेपर अपना जीवन बिताने लगे। १७१५ ई०को इनकी मृत्यु हो गयो।

आसफ् खान्—१ अकबरके समयवाले एक सम्मान्य व्यक्ति। इनका उपाधि अबदुल मजीद रहा। १५६५ ई०की इन्होंने बुन्देलखण्डके प्रान्तभागमें नर्मदा-तीर गढकोटपर आक्रमण मारा था। उस समय रामी दुर्गावती गढकोटकी अधीश्वरी रहों। उन्होंने भस्मेय आसफ्खान्के विरुद्ध पक्ष उठाया। किन्तु इनकी गूढ़ नीतिसे वह हार गयो थीं। आसफ्खान्ने उन्हें पकड़नेकी चेष्टा बनायी। दुर्गावतीने सम्मान बना रखनेको उपाघातसे अपना गिर काट डाला था। इन्हें दुर्गावतीकी अनुमत्त सम्पत्ति मिल गयो। सम्पत्तिके अधिकांशको पाप्मसात् करनेके लिये चेष्टा ली। किन्तु गुप्तकाण्ड पकड़ जानेसे यह विद्रोही बन गये थे। फिर भी चित्तोर लीतनेपर बहा इन्हें जागोर मिसी।

२ मिर्जा बदी अब्दुलमान्के पुत्र। मोग इन्हें मिर्जा जांजर बेग कहा करते थे। काश्मीन् नामक स्थानमें इन्होंने जन्म लिया। १५७० ई०की आसफ्खान् भारत पाये थे। इनके मामा अकबर बादशाहके पमात्य रहे। उन्हें पनुरोधमें यह बख्शीगौरके कारंमें नियुक्त हुये थे। इनके मामाका उपाधि भी आसफ्खान् रहा। उनके मरनेपर इन्हें वही उपाधि मिल गया। पहले इन्हें पनिफ्खान् कहते थे। यह कवि और सुपण्डित रहे। मुज्जा अहमदके मरनेपर इन्होंने अकबरके पादशेमें ‘तारीफ-अमज़ी’ नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। १५८८ ई०को अकबरने इन्हें

बनाया था। जहाँगीर बादशाहके राजत्वकाल आसफ़ख़ानको महामन्थान मिला। इनका बनाया 'ग़ीरीनु या ख़ुगरो' नामक एक उत्कृष्ट काव्य विद्यमान है। १६१२ ई०को आसफ़ख़ान मर गये।

३ नरजहान् वेगमके भाई और सुप्रसिद्ध मन्त्री एतमाद्-उद्-दीन्नाके बेटे। नाम भवदुल्ल हसन रहा। सिवा आसफ़ख़ानके एतमाद् ख़ान्, एमीनुद्दीन्ना प्रसूति इन्हें कई उपाधि मिले थे। १६२१ ई०को एतमाद्-उद्दीन्नाके मरनेपर बादशाह जहाँगीरने इन्हें मन्त्री बनाया। इनकी कन्या अर्ज़मन्द बानो वेगम या सुमताज महल शाहजहाँको ब्याहो थीं। सिवा सुमताज महलके गायस्ता ख़ान्, मिर्ज़ा मसीद, मिर्ज़ा हुसेन और शाहनवाज़ख़ान् चार लड़के रहे। १६४१ ई०को १०वीं नवम्बरको आसफ़ख़ान् मरे और लाहोर नगरके समुह्नु रावी किनारे गड़े।

४ आसफ़ख़ान् जाफ़र वेगके चचे और भाका सुल्तानके बेटे। अकबर बादशाहके समय यह बख़्शी रहे। १५७३ ई०को गुजरातमें जीतकर आनेपर आसफ़ने अन्व्यास ख़ान् उपाधि पाया था। १५८१ ई०को गुजरातमें इन्होंने शरीर छोड़ा।

आसवन्द (हिं० पु०) सूत्रविशेष, एक धागा। पटवे टूनमें बांध इसके सहारे आभूषण गूँथते हैं।

आसमान् (फ़ा० पु०) १ आकाश, फलक। २ वैकुण्ठ, विद्विषय। "लंगदी क़ो आसमान् पे चीमना।" (लोकोक्ति)

आसमान्के तारे तोड़ना, आसमान्में देगनो लगाना देखो।

आसमान्-खोंचा (हिं० पु०) उल्युच्च पदार्थविशेष, कीयी बहुत ऊँची चीज़। लम्बे लम्गे या धरहरें, ऊँचे आदमी और बहुत बड़ी नैवाले इककेको आसमान्-खोंचा कहते हैं।

आसमान् ताकना (हिं० क्रि०) आकाशकी ओर देखना, फलकपर निगाह लड़ाना।

आसमान् पर चढ़ाना (हिं० क्रि०) १ उत्कर्ष देना, बढ़ाना। २ व्याजमुक्ति करना, चापलूसी देखाना, फ़ुसलाना।

आसमान्पर ठूकना (हिं० क्रि०) अशुचित कार्य करना, बेजा काम ख़ाना।

"आसमान्का घूका मुँहपर आवे।" (लोकोक्ति)

आसमान् पे कदम रखना (हिं० क्रि०) अभिमान दिखाना, अपने बड़ायीका उड्डा बजाना।

आसमान् पे खँचना, आसमान् पे कदम रखना देखो।

आसमान् पे दिमाग़ होना (हिं० क्रि०) अभिमानमें घूर रखना, मनमानी करना।

"जिसे ग़नाह आसमान् पे दिमाग़।" (लोकोक्ति)

आसमान्में छेद होना (हिं० क्रि०) अतिवृष्टि पड़ना, शदीद बारिश आना, खूब जोरसे बरसना।

आसमान्में घेगली लगाना (हिं० क्रि०) अपने कार्यको अति निगुणतासे करना, वादत फाड़ना।

आसमान्से गिरना (हिं० क्रि०) १ आकाशसे आना, फलकसे टूट पड़ना। २ बिना अयम प्राप्त होना, अचानक पा जाना। २ तुच्छ समझना, कूट न करना।

आसमान्से टखर खाना (हिं० क्रि०) अत्यन्त विशाल होना, मुसल्दीमें सबक़त ले जाना, आकाशको चूमना।

आसमान्से बतितें करना, आसमान्से टखर खाना देखो।

आसमानो (फ़ा० वि०) १ आकाशोप, फलक।

२ आकाशवर्ष, नीलगूँ, भाषी। ३ आकाशिक, नागहॉ, अचानक। (स्त्री०) ४ हूनी: हुयी भांग या ताड़ी।

५ कार्पासभेद, मिथकी एक कपास।

आसमानो ग़ज़ब (फ़ा० पु०) दैवी अचर्य, फलकसे टूटी हुयी बला।

आसमानो गोला, आसमानो ग़ज़ब देखो।

आसमानो तीर (फ़ा० पु०) १ अर्थ कार्य, विफ़ायदा काम। २ आपद्, नागहॉ ग़ज़ब।

आसमानो घपेड़ा, आसमानो ग़ज़ब देखो।

आसमानो पिलाना (हिं० क्रि०) ताड़ी या हूनी भांग पिलाकर मत्त बनाना, सर्ज़ीके नग़से घूर कर देना।

आसमानो फ़रमानो (फ़ा० स्त्री०) १ अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टिके कारण आयी हुयी आपद्, जो मुसीबत ज्यादा बारिश होने या पानी न बरसनेसे पड़ी हो। २ सेख़्रमाण और पटका एक पद, दस्तावेज़ और पट्टेमें लिखा जानेवाला एक सफ़ज़। पट्टेले मौसम विगड़ने और सरकारके नाज़ायज़ तौरपर मासगुज़ारी

वसूल करनेमें जमीन्दारोंको जो नुकसान उठाना पड़ता, उसे कागजकारोंसे वसूल करनेके लिये यह लफ्ज दस्तावेजों और पदोंमें लिखा जाता था।
३ भूमि करके अंग-जैसा निरूपित अर्थदण्ड तथा अपहार, तपुमीना किया हुआ जुर्माना और जवती।

यह गढ़वालमें चलती है।

आसमुद्र, आसमुद्र देखो।

आसमुद्रात् (सं० अर्थ०) समुद्र पर्यन्त, बहरके फैलाव तक।

आसम्बाध (सं० त्रि०) आ समन्तात् सम्बाधा पत्र। निरुध, घिरा हुआ।

आसय (हिं०) आशय देखो।

आसया (द्वि० अर्थ०) मङ्गतिमें, निजट, उपस्थित होकर, साथ-साथ, मिल-जुलके।

आसर (हिं० पु०) १ आशर, रासस, पादमङ्गौर।
२ दसमुद्रा, अशर, दस रुपये। उक्त अर्थमें प्रायः कसार्ह इस शब्दको व्यवहार करते हैं।

आसरना (हिं० क्ति०) आशय ग्रहण करना, सझारा षकड़ना।

आसरा (हिं० क्ति०) १ विश्वास, पतवार, भरोसा।

२ आशा, उम्मेद। "बनने पाव देला तो परावा आसरा केला।" (लोकोक्ति) ३ रक्षा, डिफ़ाजत। ४ ग्ररण, पनाह।

५ आश्रयदाता, सझारा देनेवाला। ६ साहाय्य, मदद।

७ काष्ठका हरित् तथा मृदुस्तर, हीर। यह संस्कृतके प्रायशब्दका अपभ्रंश है।

आसरा तकना (हिं० क्ति०) प्रतीक्षा करना, राह देखना। "शिन क म्मीकी मै रिवा एण्"।

और पढ़ो उल्ला आसरा तर् ३" (निरुध)

आसव (सं० पु०) आसूयते, आ-सू कर्मणि अण्।

१ अभिषय, अर्ककयो, सुवास। 'आसवोऽभिषयः।' (इग)

२ अभिषयणोय मद्य, चीनी या गुड़की ताजी शराव।

'निश्चिनासवः सोऽर्कं देवो जलकः समी।' (अमर)

'असवः-विनाशः' मयं मांशं सुरासवम्।

• तदमाह्वयेन भागवं दीक्षामयत्रा इतिः" (मनु ११:२८)

३ परिष्ट, जोगांदा, षोटी। परिष्ट इयोः (वे०)

४ उत्तेजन, जोग।

आसवद् (सं० पु०) १ असमहस, अमनेका वेड़।
२ तानहस।

आसवद्गम, आसवद् देखो।

आसवी (सं० त्रि०) आसवपान करनेवाला, मराह-खोर।

आसा (सं० स्त्री०) आ-सो-अच्। १ अस्त्रिका, निकट, कुर्व, नज्दीकी। (हिं०) २ आशा, उम्मेद।

३ असा, सोंटा, छपड़ा।

आसा अक्षीर—दाक्षिणात्यके एक खाना-सरदार। मन् ई०के १४वें शताब्द ईस्वनि दाक्षिणात्यमें अक्षीरगट नामक एक दुर्ग बनाया था। प्रायः दो सहस्र अनु-चर आसाके साथ रहे। अक्षीरगट भारतीयोंके हाथका बना सबसे अच्छा और मजबूत जिला है।

अक्षीरगटके लिये पर्यंत मुहट भित्तसे घेरित है। खान्देशके सुसनमान-सरदार मालिक नमीरने इन्-घोकेमे मार अक्षीरगटको अधिकार किया और

जिल्लाका बाकी काम तमान बनाया। दो शताब्द बाद अक्षीरने अक्षीरगट और कुल नोमारको छोट लिया था। १८१० ई०का यह खान्देशके हाथ लगा।

आसाट (हिं०) आसाट देखो।

आसात् (सं० अर्थ०) निकट, समीप, नज्दीक, पास।

आसाद (वे० पु०) पीडोपधान, ममनद, गर्ह।

आसादन (सं० स्त्री०) आ-सद्-विच्-नुगट्। १ सदि-धापन, स्यापन, रपायो। २ आसयता-सम्पादन, मेल-मिनाप। ३ मदन, हमला। ४ प्राप्ति, आसिप।

५ पूरणकरण, कामान्वयत।

आसादयितव्य (सं० त्रि०) १ आश्रमण किये जाने योग्य, जिनसे हमना पड़े।

आसादित (सं० त्रि०) आ-सद्-विच्-ङ-ट्। १ निकटो-रुत, नज्दीक स्याया हुआ। २ प्राप्त, आसिप किया हुआ। ३ आयोजित, लगाया हुआ। ४ सदिधापित, रखा हुआ। ५ सम्पादित, पूरे तौरपर किया हुआ।

६ कामकेनि आसक, जो ऐगो-दयतमें हुआ हो।

'अस' इति' अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति अस्ति (अमर)

आसाय (सं० त्रि०)

हासिल होने काविल। (अव्य०) ल्यप्। २ प्राप्त करके, पाकर। "समुद्रमापाय भवत्यपेया।" (१८)

आसाधन (स० स्त्री०) प्राप्ति, पूर्णता, हासिल, कमाल।

आसाम (फ्रा० वि०) १ सरल, सीधा। "नियत सावित मयिन् आसाम।" (लोकोक्ति) २ अबाधित, अप्रतिबन्ध, वैमुवाखुजा, वैमुतालवा, जो रोकान न गया हो।

आसान सरना (हिं० क्रि०) १ सरल बनाना, चिकनाना, पुल बांध देना। २ स्वतन्त्रता देना, आजादी बख्शना। ३ छोड़ाना, बोझ उतारना।

आसान होना (हिं० क्रि०) सरल लगना, सुगन्धक न देख पड़ना। २ बहना, धारके साथ तेरना।

आसानो (फ्रा० स्त्री०) १ सरलता, सुगन्धक न पड़नेकी हालत, बच्चोंका खेल। २ साध्यता, उप-पायता, अकूपिणीरी, इमकान्। ३ स्वतन्त्रता, आजादी, चिकनापन। ४ सुख, आराम, चैन।

आसापाला (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक दरखत।

आसाम—भारतवर्षका एक सीमान्त प्रदेश। यह बङ्गालसे उत्तर-पूर्व, अक्षां २४° ०' एवं २७° १७' उ० और द्राधि० ८८° ४५' तथा ९०° ५' पू०के बीच अवस्थित है। क्षेत्रफल कोई ४६३४१ वर्गमील लगता है। खासी पहाड़के शिलांग नगरमें चीफ-कमिश्नर रहते हैं। यहाँके अधिवासी आहोम कहते हैं। उन्हींके नामसे इस प्रान्तका नाम आसाम पड़ा है।

आसामसे उत्तर हिमालय, उत्तरपूर्व मिशमी पहाड़, पूर्व ब्रह्मदेशका पर्वत, दक्षिण लुगाई पहाड़ तथा बङ्गालका टिपरा जिला और पश्चिम मैमनसिंह, रङ्गपुर, कोचबिहारराज्य और जलपाईगुड़ी जिला है।

मुख्य आसाम अथवा ब्रह्मपुत्रकी अधित्यका ४५० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी समतलभूमि है। सिवा पश्चिमके बाकी तीनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। ब्रह्मपुत्रनद पूर्वमें पश्चिमकी बहता है। जापसो पर्वतकी गिखा १२००० फीट ऊँची है।

आसामके पर्वतोंमें कोयला, लोहा और चूनेका कड़ाड़ खूब होता है। पहले पहल १८८४ ई०की रेल चली थी। माक्रूममें मट्टोका तेल भी निकलता है। कितनी ही पहाड़ी नदियोंमें सेना पाया जाता है।

यन्त्र पशुओंमें हाथी, गैंडा, चीता, बघेरा, भालू-हरिय, भैंसा और गो प्रधान है। आसामकी भैंस बहुत प्रख्याती होती है। हाथी पकड़नेका ठेका सर-कार उठाती है।

आसाममें आहोम, चूटिया, नागा, खासी, गारो, मिकिर, कछाड़ी, लालुङ्ग, राभा, हाजोङ्ग, खामती, मीरी, डफला, अवर, मणिपुरी, मदही और कुकी लोग रहते हैं। तपन्य मन्त्रमें विवरण देखो। वर्तमान आसाम भाषा मैथिल और बंगलासे बनी है। पहाड़ियोंमें रहनेवाली जातियाँ अपनी ही बोली बोलती और चाल चलती हैं। विभिन्न जातियोंके साथ विवाह-प्रथा प्रचलित है।

सबसे पहले ब्रह्मपुत्र अधित्यकापर ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा कायस्थोंका वास हुआ। ई०के १३ वें और १४वें शताब्द कमतापुरके राजावोंने गौड़से ब्राह्मणों और कायस्थोंके ली जाकर कामरूपमें बसाया था। कमतापुर तथा कोचबिहार देखो। १६वें शताब्दके प्रारम्भकाल कोच-नृपति शिशुसिंह और तत्पुत्र नरनारायण द्वारा प्रतिष्ठित ब्राह्मण कामरूपी कहते हैं। ऊपरी आसामके ब्राह्मणादि उच्चजाति विष्णुपूजक और महापुरुष शङ्करदेव, दामोदरदेव तथा हरिदेव प्रवर्तित सम्प्रदायभुक्त हैं। शङ्करदेव और दामोदरदेव देखो।

१७वें शताब्द आहोम भी गोविन्द ठाकुरकी पूजते थे। निम्नप्रान्तमें शिवपूजक तान्त्रिक रहते, जो अपनेकी नदीयिके ब्राह्मणोंका वंशज कहते हैं। १७वें शताब्दके समय आहोम-नृपति रुद्रसिंहने उन्हें लाकर बसाया था। सुरमा अधित्यका और सिलहटमें सुसलमान बहुत हैं।

आसाम-प्रान्त क्षत्रियप्रधान स्थान है, वाणिज्यव्यवसायका अधिक प्रसार नहीं। मारवाड़ी यहाँका माल बाहर भेजते और बाहरका माल यहाँ मंगते हैं।

आसाममें चायल और सरिसों अधिक उपजता है। सिलहट तथा खासपाड़ेमें सन और पहाड़ी प्रान्तमें रूयीकी खेती होती है। खासी एवं जयन्तिया पहाड़ीके नीचे चालू, नारङ्गी और तेजपात लगाते हैं। युरोपीय चायका काम करते हैं। १८२३ ई०को मिष्ट

दीवानो वख्तगिगके मुताबिक पाया था। १८३० ई०-
को राजा गोविन्दचन्द्रके मरने और काँड़े उत्तराधि-
कारी न रहनेसे कछाड़का ममतल भाग भी अंगरेजोंके
हाथ लगा। १८५४ ई०को तुलाराम सेनापतिके देग-
पर अंगरेजी अधिकार जमा। १८६६ ई०को समा-
गुटिङ्ग नागा पर्वतका फेड काटैर बनाया गया था।
१८७८-८० ई०को सामरिक अभियान भेजने और
कादिमा अधिकार करनेपर ब्रह्मामी प्रान्तके मध्य
फेड काटैर प्रतिष्ठित किया और उत्तर कछाड़ तथा
नवगामपर दुर्दान्त लोर्गोंका आक्रमण करना रोका
गया। १८८२ ई०को सीमा निर्धारित कर अंगरेजोंने
सदाके लिये नागा पर्वत अपने राज्यमें मिलाया।

आसामी (हिं० वि०) १ आसामदेशसे सम्बन्ध रखने-
वाला, जो आसामसे ताज्जुक् रखता हो। (पु०)
२ आसामका अधियासी, आसाममें रहनेवाला
गवूम। (स्त्री०) ३ आसाम प्रान्तकी भाषा, आसाम-
की बोली। आसाम तथा पचाको देखो।

आसायग (फ्रा० स्त्री०) सुख, आराम, सुवीता।
आसार (सं० पु०) आ-सृ-घञ्। १ धारासम्पात,
गहरो बारिश। 'धारासम्पात आसारः' (अमर) २ प्रसरण,
दोड़। ३ सैन्यकी सकल दिक् व्याप्ति, फौजका चारो
ओर जमाव। आश्रित्यतेऽनेन, करणे घञ्। ४ सुदृढ-
यल, दोस्तकी फौज। ५ द्वादश राजमण्डलके मध्यस्य
राजविशेष। 'आसारो वैश्वरथे' सुहृदन्वप्रसारयोः। (हन)
द्वादशमण्डलमें युद्धके समय आत्ममण्डल, रिपुमण्डल,
सुहृदमण्डल, शत्रुमित्रमण्डल, मित्रमित्रमण्डल तथा
मित्ररिपुमण्डल आगे और पाष्णिंशाब्द, आक्रमन्,
आसार, आक्रमन्सासार, निग्रहगणमध्यस्य, अनुग्रहगण-
मध्यस्य एवं निग्रहानुग्रहगण उदासीन पीछे रहता
है। ६ पड़विंशति रगण द्वारा रचित दण्डक छन्दो-
विशेष। आर देखो। ७ भोजन, खाना, रसद। (अ० पु०)
८ चिह्न, निगान्। ९ आयाम, चौड़ाई।

आसारण (सं० पु०) हृषभेद, एक दरख्त।

आसारित (सं० स्त्री०) वैदिक गान विशेष।

आसाव (वै० पु०) स्त्रीता, तारीफ़ करनेवाला
शख्स। (शक्य)

आसावरी (हिं० स्त्री०) १ कपोत विशेष, किसी
किष्करी कत्रतरी। २ रागिणी विशेष। आसावरी देखो।
३ वल्लविशेष, किसी किष्करी रंगमी कपट्टा। इसपर
चांदीके तारका काम रहता है।

आसाव्य (वै० वि०) अभिपवण्य, दशाने काविल।
आसिक (सं० पु०) असिः प्रहरणमस्य, ठक्। १ खड्ग
द्वारा युद्धकारक, बरकन्दज, तलवरया। (हिं० पु०)
२ आशिक, चाहनेवाला।

आसिका (सं० स्त्री०) पर्यायेण आसनम्, आस पर्याये
शुष्-टाप्। पर्यायेणोत्पत्तिश्च लुप्। पा ३।१।१।१। १ पर्याय-
क्रमका उपवेशन, बैठनेकी वारो। २ उपवेशन, बैठक।

आसिक (सं० त्रि०) ईपत् सम्यग्वा सिक्कम्, आ-
सिच्-त्त। १ ईपदुसिक्क, कुक्क-कुक्क सींचा हुआ।
२ सम्यक् सिक्क, अच्छीतरह सींचा हुआ।

आसिख (हिं०) आसिख देखो।

आसिच् (वै० स्त्री०) १ आहुति, होम। २ पाद,
वरतन। ३ स्नानविशेष।

आसित (सं० स्त्री०) आस् भावे ङ। आसिष्कारणे च
श्रीयतिप्रत्ययानादेशः। पा ३।४।०५। १ उपवेशन, बैठक।
आधारि ङ। २ उपवेशनका आधार, बैठनेकी जगह।
(पु० स्त्री०) असितस्य सुनिरपत्यम्, शिवादिगणस्या-
कृतिगणत्वात् अण्। ३ असित मुनिका पुत्र वा कन्या-
रूप अपत्य। असित मुनिके अपत्य गार्ण्डिख्यगोत्रका
प्रवर रहते हैं।

आसिह (सं० त्रि०) आ-सिध-ङ्। राजाज्ञासे वादी
द्वारा वह किया हुआ, जिसे सरकारी हुकमसे मुह्यो
कैद कराये। २ सम्पन्न, पूरा किया हुआ।

आसिधार (सं० स्त्री०) असिधारा इवाक्यवद्, अण्।
कामुक भाव परित्याग-पूर्वक आचरण, जो वरताव
इशक मजाजोसे अलग हो। यदि युवा कामुकभाव
छोड़ युवतीके साथ सुन्दर भर्तीकी तरह व्यवहार
करता, तो वह आचरण आसिधारवत् कहता है।

आसिधन (हिं० पु०) आशिनमास, क्षारका
मछीना।

आसिनासि (सं० पु०) असिः खड्गः स इव तीक्ष्णया
नासा यस्य सोऽसि नासः सुनिभेदस्तस्यापत्यम्, इञ्।

अभिनास मुनिके अपत्य । अभिनास मुनिके पौत्रकी
 आसिनासायन कहते हैं ।
 आसीन (सं० त्रि०) आस-मानच् ईत्वम् । ईदाठः ।
 पा ७४५२ । शानच् । उपविष्ट, बैठता हुआ ।
 आसीन-प्रचलायिन (सं० स्त्री०) आसीनेन उपविष्टे-
 नेव प्रचलवत् आचरितम्, आसीन-प्रचल-व्यच् भावे
 ङ । निद्राके आदेशसे उपवेशनकर दोलन, नींदमें बैठ
 भोजका लेनेका काम ।
 आसीस (हिं० पु०) १ मसनद, तकिया, उसीसे
 रखनेकी चीज । २ आगीर्वाद ।
 आसु (हिं० सर्व०) १ इसका, इससे सम्बन्ध रखने-
 वाला । (क्लि० वि०) २ शीघ्र, जल्द ।
 आसुग (हिं०) आपग देखो ।
 आसुव् (सं० त्रि०) आ-सु-क्लिप्-सुक् । कृता-
 भिषव, कृतस्नान, नहाया-धोया ।
 आसुत (सं० स्त्री०) चिरकालस्थित तथा कम्पादि-
 युक्त अस्त, बहुत दिनकी रखी और जड़ी वगैरहसे
 मिली हुयी खटायी ।
 आसुति (वै० स्त्री०) आ-सु-क्लिप् । १ सोमलतादि-
 निष्पौडन । २ अभिषव, मद्यानिष्पादन, भभकसे
 श्रावका बुवाना । "ह्रियमासुतिश्रावमादाय ।" (ऋक् १११२)
 ३ सौरादि पिय । "की नात्रिद्रव्युत्थतो वय आसुति
 वाः ।" (ऋक् ११०३१) 'वासुति' एवं 'सौरादिकम् ।'
 (भाष्य) आ-सु प्रसवे क्लिप् । ४ प्रसव, बच्चेका पैदा
 करना ।
 आसुतिमस् (सं० त्रि०) आसुतेः सञ्जिह्वटदेशादिः,
 चतुरर्थ्यां मत्तुप् । नष्पादिभाष्य । पा ४१०५८ । १ आसु-
 तिके निकटस्थ । २ आसुतिविगिष्ठ ।
 आसुतीय (सं० त्रि०) आसुत् तस्येदम्, छ । नष्पादिभाष्य ।
 पा ४१०२८ । स्नानकारी वा मद्यकारी सम्बन्धीय, नहाने
 या शराय बनानेवालेके सुतासिक ।
 आसुतीयल (सं० पु०) आसुतिरस्तस्य, वलच् दीर्घः ।
 'रजः कृष्णमासुतिरपिदो वनच् । पा ४१०१११ । १ शौण्डिक, कल-
 थार, शराय बनानेवाला शख्स । २ सोमलताका रस
 निकाल सकनेवाला यांत्रिक ।
 आसुतोष्ठ (हिं०) आसुतोष्ठ देखो ।

आसुर (सं० त्रि०) असुरस्येदम्, षष् । १ असुर-
 सम्बन्धी, शैतान्के सुतासिक ।
 "कुपानपञ्चनिपत्रमासुरं मत्तमयं अत्तम् ।
 तदेव हसपटिनं प्यात्वादि नैदिकं भवेत् ।" (भाषावयन)
 (पु०) २ असुरके न्याय आचारयुक्त व्यक्ति, जो
 शख्स शैतानकी चाल पकड़े हो । आसुर शीघ्र,
 आचार तथा सत्यकी प्रतिपानन नहीं करता और
 कामचारी, दाम्भिक एवं मदयुक्त होता है । यह
 ईश्वरकी नहीं मानता । मनमें सोचा करता है,—
 मैं ही ईश्वर, योगी, सिद्ध, सुखी, बलवान्, धनाढ्य
 और अभिजनगामी हूँ ; मेरी बराबर अन्य नहीं ।
 ३ असुरके न्याय कर्तव्य विवाह विग्रेय ।
 "मादो देवत्ववार्धः प्राणपत्यसमासुरः ।
 मात्तव्यं राघवसेव पेशापवाधमोत्थनः ।" (मनु ३११)
 मनुने पाठ प्रकारका विवाह वर्णन किया है ।
 कन्या और उसके पितादिकी यथागति शुक्य देनेसे
 वरके इच्छानुसार होनेवाला विवाह आसुर कहता
 है । ४ कर्मविष्कारो असुरहस्ता । (भाष्य) स्यात्
 षष् । ५ असुर । (स्त्री०) ६ विह्वलवण । ७ समुद्रमवण ।
 आसुरस्व (सं० स्त्री०) नञ् ई-तत् । यजनहीन व्यक्तिका
 धन, शैतान्की दोलत । "अवयन्तान् यदयथासुरस्यं
 तदुच्यते ।" (मनु)
 आसुरायण (सं० पु०) आसुरेऽपत्यं युवा, फक् ।
 गोतादशुक्लियाम् । पा ३११२४ । असुरका युवा गोत्रापत्य ।
 (स्त्री०) डोप् । आसुरायणी ।
 आसुरि (सं० पु०) अस्थिति क्षिपति पापानि तत्त्व-
 ज्ञानेन, असु क्षेपणे उरन्थ ; असुरः कपिनस्तस्य छात्रः,
 इज्ज न सुक् । अश्वरत्न । ३११०१ । कपिन मुनिके छात्र,
 सांख्यमतप्रवर्तक जनैक मुनि ।
 आसुरिक (सं० त्रि०) असुर-ठञ् । असुर-सम्बन्धीय,
 शैतान्के सुतासिक ।
 आसुरिवासिन् (सं० पु०) आसुरो आसुर मुनिमनोपे
 वसति षिनि । आसुरि मुनिके समोप रहनेवाले शिष्य
 प्रयोपद । आसुरिवासी यजुर्वेदी एक ऋषि रहे ।
 आसुरी (सं० स्त्री०) आसुर-डोप् । १ राजमर्षय, मर्फेद
 सरसों । 'एत इवाभिरनयो पतिवा इतिवाहरी ।' (अमर)

दीवानो वय्, गिगके सुतायिक पाया था। १८३० ई० को राजा गोविन्दचन्द्रके मरने और कई उत्तराधिकारी न रहनेके कड़ाड़का समतल भाग भी अंगरेजोंके हाथ लगा। १८५४ ई०को तुलाराम सेनापतिके देगपर अंगरेजी अधिकार जमा। १८६६ ई०को समाशुटिद्र नागा पर्वतका हिंड काटैर बनाया गया था। १८७६-८० ई०को सामरिक अभियान भेजने और काटिमा अधिकार करनेपर ब्रह्ममी प्रान्तके मध्य हिंड काटैर प्रतिष्ठित किया और उत्तर कड़ाड़ तथा नवगामुपर दुर्दांत लोगोंका आक्रमण करना रोका गया। १८८२ ई०को सीमा निर्धारित कर अंगरेजोंने सदाके लिये नागा पर्वत अपने राज्यमें मिलाया।

शासामी (हिं० वि०) १ आसामदेशसे सम्बन्ध रखनेवाला, जो आसामसे ताज्जुक् रखता हो। (पु०) २ आसामका अधिवासी, आसाममें रहनेवाला शख्स। (स्त्री०) ३ आसाम प्रान्तकी भाषा, आसामकी बोली। आसाम तथा आसामी देखो।

शासायश (फ्रा० स्त्री०) सुख, आराम, सुवीता।
 आसार (म० पु०) आ-सृ-घञ्। १ धारासम्पात, गहरी वारिश। 'आसारव्यात आसारः।' (चर) २ प्रसरण, दोड़। ३ सैन्यकी सकल दिक् व्याप्ति, फौजका चारो ओर जमाव। आश्रितैरनेन, करणे घञ्। ४ सुदृढत्व, दोस्तकी फौज। ५ द्वादश राजमण्डलके मध्यस्थ राजविशेष। 'आसारी शतवर्ष' सुदृढमण्डलारयोः। (हन) द्वादशमण्डलमें सुदृढके समय आत्ममण्डल, रिपुमण्डल, सुदृढमण्डल, शत्रु मित्रमण्डल, मित्रमित्रमण्डल तथा मित्ररिपुमण्डल आगे और पार्श्विग्राह, आक्रमन्, आसार, आक्रमन्सासार, निग्रहशक्तमध्यस्थ, अनुग्रहशक्तमध्यस्थ एवं निग्रहानुग्रहशक्त उदासीन पीछे रहता है। ६ पड़विंशति रमण द्वारा रचित दण्डक छन्दो-विशेष। आत देखो। ७ भोजन, खाना, रसद। (घ० पु०) ८ चिह्न, निशान्। ९ आयाम, चौड़ायी।

आसारण (सं० पु०) हृषभेद, एक दरख्त।
 आसारित (सं० स्त्री०) वैदिक गान विशेष।
 आसाव (वै० पु०) स्तोता, तारीफ़ करनेवाला शख्स। (शण्)

आसावरी (हिं० स्त्री०) १ कपोत विशेष, किसी किष्पकी कन्नुरी। २ रागिणी विशेष। आणवरी देखो। ३ वद्वविशेष, किसी किष्पका देशमी कपड़ा। इसपर चांदीके तारका काम रहता है।

आसाव्य (वै० त्रि०) अभिपवणीय, दवाने काविल।
 आसिक (सं० पु०) अग्निः प्रहरणमस्य, ठक्। १ खड्ग द्वारा युद्धकारक, वरकन्द्याज, तलवरया। (हिं० पु०) २ आशिक, चाहनेवाला।

आसिका (सं० स्त्री०) पर्यायेण आसनम्, पास पर्यायेणु च्-टाप्। पर्यायेणोत्पत्तिः नृच्। पा १५।१।१। १ पर्याय-क्रमका उपवेशन, बैठनेकी वारो। २ उपवेशन, बैठक।
 आसिक (सं० त्रि०) ईपत् सम्यग्वा सिक्तम्, आसिच्-क्त। १ ईपदसिक्त, कुङ्कुह सींवा पुवा। २ मन्यक् सिक्त, अच्छीतरह सींवा पुवा।

आसिख (हिं०) आशिव्-खेको।
 आसिप् (वै० स्त्री०) १ आशुति, होम। २ पात्र, बरतन। ३ स्नानविशेष।

आसित (सं० स्त्री०) आस् भावे क्त। श्लोधिकारवे च श्लोथगतिप्रवचानार्थः। पा १।४।०६। १ उपवेशन, बैठक। आधारे क्त। २ उपवेशनका आधार, बैठनेकी जगह। (पु० स्त्री०) अक्षितस्य सुनेरपत्वम्, शिवादिगणस्याक्षतिगणत्वात् अण्। ३ अक्षित मुनिका पुत्र वा कन्यारूप अपत्य। अक्षित मुनिके अपत्य आशिक्ष्यगोत्रका प्रवर रखते हैं।

आसिह (सं० त्रि) आ-सिघ-क्त। राजाज्ञासे वादी द्वारा वद किया हुआ, जिसे सरकारी हुकमसे सुद्ध्यो कौद कराये। २ सम्पन्न, पूरा किया हुआ।

आसिधार (सं० स्त्री०) अक्षिधारा इवाक्षयव, अण्। कामुक भाव परित्याग-पूर्वक आचरण, जो बरताव इशक् मजाजोमे अलग हो। यदि युवा कामुकभाव छोड़ युवतीके साथ सुन्दर भर्ताकी तरह व्यवहार करता, तो वह आचरण आसिधारव्रत कहता है।

आसिन (हिं० पु०) आशिनमास, जारका महीना।

आसिनासि (सं० पु०) अग्निः खड्गः स इव तीक्ष्णया नासा यस्य सोऽग्नि नासः मुनिभेदस्तथापत्यम्, इच्।

अभिनास मुनिके अपत्य । अभिनास मुनिके पौत्रको
अभिनासायन कछते हैं ।

आसीन (सं० त्रि०) आस-शानच् ईत्वम् । ईशः ।
या अशब्दः । शानच् । उपविष्ट, बंठा हुआ ।

आसीन-प्रचलायिन (सं० क्ली०) आसीनेन उपविष्टे-
नैव प्रचलवत् आचरितम्, आसीन-प्रचल-वच् भावे
क्त । निद्राके आवेशमे उपवेगनकर दोहन, नींदमें बैठ
भोका लेनेका काम ।

आसीस (हिं० पु०) १ मसनद, तकिया, उसीसे
रखनेकी चीज । २ चागीर्वाद ।

आसु (हिं० सर्व०) १ इसका, इससे सम्बन्ध रखने-
वाला । (क्लि० वि०) २ शीघ्र, जल्द ।

आसुग (हिं०) आसु देखो ।

आसुत् (सं० त्रि०) आ-सु-क्लिप्-त्क् । कृता-
भियव, कृतस्नान, नहाया-धोया ।

आसुत (सं० क्ली०) चिरकालस्थित तथा कन्द्यादि-
युक्त अन्न, बहुत दिनकी रखी और जड़ी बगैरइसे
मिली डुयी खटायी ।

आसुति (वै० स्त्री०) आ-सु-क्लिन् । १ सोमलतादि
निष्पीडन । २ अभियव, मद्यनिष्पादन, भभकेसे
शरायका चुवाना । "द्विभामसुतिपाकमादाय" (अक्ष ५१११)
३ पौरादि पेय । "यो नाविन्दुमुष्णतो बध आसुति"
दाः ।" (अक्ष ११०७१) "आसुति" एव "सोतदिवम्" ।
(भाष्य) आ-सु प्रसवे क्लिप् । ४ प्रसव, बच्चेका पैदा
करना ।

आसुतिमत् (सं० त्रि०) आसुतेः ससिक्कटदेगादिः,
चतुर्थ्यां मत्पू । मन्नादिभाष्य । या ४१५८ । १ आसु-
तिके निकटस्थ । २ आसुतिविग्रिष्ठ ।

आसुतीय (सं० त्रि०) आसुत् तस्येदम्, ङ । मन्नादिभाष्य ।
या ४१५१८ । स्नानकारी वा मद्यकारी सम्बन्धीय, नहाने
या शराय बनानेवालेके सुताञ्जिक ।

आसुतीवन (सं० पु०) आसुतिरस्त्यस्य, वलच् दीर्घः ।
रक्तः कृष्णान्तिविधो वलच् । या ४१५१११ । १ शौरिक, काल-
वार, शराय बनानेवाला गुरुम् । २ सोमलताका रस
निकाल सकनेवाला यांत्रिक ।

आसुतीख (हिं०) आसुती देखो ।

आसुर (सं० त्रि०) असुरस्येदम्, षच् । १ असुर-
सम्बन्धी, शैतान्के सुताञ्जिक ।

"कुशाग्रचरनिपत्रमासुरं सुदुम्भं कल्पम् ।
वदिव असुरादिनां प्लाज्जति पौरिवं भवेत्" (बालाहक)

(पु०) २ असुरके न्याय आचारयुक्त व्यक्ति, जो
गुरुम् शैतानकी चाल पकड़े हो । आसुर गौघ,
आचार तथा सत्यकी प्रतिपालन नहीं करता और
कामचारी, दान्निग्न एवं मदयुक्त होता है । यह
ईश्वरकी नहीं मानता । मनमें मोवा करता है,—
मैं ही ईश्वर, योगी, मित्र, सुखी, वनवान्, धनाय
और अभिजनयानी हूँ ; मेरी बराबर अन्य नहीं ।
३ असुरके न्याय कर्तव्य विवाह विमोघ ।

"आद्री देवस्ये वारः आशयवमनसुरः ।
माथवां राघवदेव पितृषुवापनीयनः" (मनु ११११)

मनुने पाठ प्रकारका विवाह वर्धन किया है ।
कन्या और उसके पितादिकी यथागति गुरुम् देनेमें
वर्के इच्छानुसार होनेवाला विवाह आसुर कहाता
है । ४ कर्मविप्रकारी असुरकृता । (भाष्य) स्यात्
असु । ५ असुर । (क्ली०) ६ विदुलवयव । ७ असुरनवयव ।
आसुरस्य (सं० क्ली०) नञ् ई-तत् । यजनहोन व्यक्तिका
धन, शैतान्को दीनत । "अननकान् वरद्वयमदुर्धमं
तदुच्यते" (मनु)

आसुरायण (सं० पु०) आसुरेऽपत्यं युवा, ङक् ।
सोकादृक्कल्पितम् । या ४१५१० । असुरका युवा गोत्रापत्य ।
(स्त्री०) डोप् । आसुरायणी ।

आसुरि (सं० पु०) अस्यति चिपति पापानि तस्य-
ज्ञानेन, असु छेपसि सरत् ; असुरः कविनस्यस्य क्षात्रः,
इत् न लुक् । अक्षरत् । अक्ष ११११ । कविन मुनिके ढाव,
मात्र्यमतप्रयत्तक जनेक मुनि ।

आसुरिक (सं० वि०) असुर-ठप् । असुर-सम्बन्धीय,
शैतान्के सुताञ्जिक ।

आसुरियासिन् (सं० पु०) आसुरो आसुर मुनिकर्मणि
वसति सिनि । आसुरि मुनिके समोप रहनेशने ग्रिप्य
प्रयोपुत्र । आसुरियासी यसुर्वेदो एक भाषि रते ।

आसुरी (सं० स्त्री०) आसुर-ङाप् । १ रात्रमप्य, मनुद
सरस्यो । "एत एव-विषयको कर्तव्यो भविष्यति" (अक्ष)

२ आयामकाष्ठिक, किसी किष्ककी कांजी। १ रत्न-सर्प, राई। ४ छिदभेदात्मक चिकित्साविशेष, चौर-फाड़। चिकित्सा भासुरी, मानुषी चौर टैषी त्रिविध होती है।

भासुरीय (सं० पु०) असुरीय प्रोक्तम्, असुर-क। १ असुर-कथित कल्पयास्त। (त्रि०) २ भासुरिसम्बन्धीय। भासुरित (सं० त्रि०) प्रतिबद्ध, बंधा हुआ, जो हार डाले हो।

भासुदगी (फा० स्त्री०) १ शान्ति, अमन, खुशगोश। २ सुख, चैन, खुशी। ३ इति, ककाहट।

भासुदा (फा० वि०) १ सुखी, स्वतन्त्र, खुश। २ लभ, कका हुआ। (क्रि० वि०) ३ सुखपूर्वक, आरामसे, कककर।

भासेक (सं० पु०) आ-सिच-घञ्। १ जलादि द्वारा हचादिका अथ सेचन, हलकी सिंचायी। २ सम्यक् सचेन, खासी सींच।

भासेक्य (सं० पु०) भासेकमर्हति, आ-सेक-यत्, आ-सिच-ष्वाहा। नपुंसक विशेष, किसी किष्कका नामर्द। पिताके स्वस्व वीर्यसे पुरुष भासेक्य होता, किन्तु सुग्रह पीनेसे अशशय ध्वजोन्नति पाता है। (सुग्रह)

भासेचन (सं० त्रि०) न सिच्यते लप्यति मनोऽस्मात्, प्रपादाने लुप्तं स्वार्थे अण्। १ प्रिय, दिलफरव, प्यारा। (स्त्री०) २ सम्यक् सेचन, खासी सींच। (वै०) ३ सेचनसाधन पात्र, सींचनेका बरतन।

भासेचनक, भासेचन देखो।

भासेचनवत् (सं० त्रि०) उदराकार, उत्तान, सुजब्दफ, खोकला, गहरा। (पु०) भासेचनवान्। (स्त्री०) भासेचनवती।

भासेदिवम् (सं० त्रि०) आ-सद-कसु। १ निकटागत, नजदीक पाया हुआ। २ प्राप्त, मिला हुआ।

भासेदुषी (सं० स्त्री०) आ-सद-कसु डीप् वस्योत्वं इटो निष्पत्तय। १ आगता, आयी हुयी चौरत। २ उपस्थिता, जो चौरत छाज़िर हो।

भासेह् (सं० पु०) आ-सिध-टच्। विवाद विषयमें राजाज्ञासे प्रतिवादीकी गति प्रष्टिका रोषकर्ता यादी, कैद करानेवाला शब्द।

भासेध (सं० पु०) आ-सिध भावे घञ्। विवाद विषयमें राजाज्ञासे यादिकर्तक प्रतिवादीका स्थानान्तरको गमन नियारण, हिरासत, हवालामत, नज़रबन्दी, कैद। भासेध चार प्रकारका होता है,—कालासेध, स्थाना-सेध, प्रवेशसेध और कर्मासेध। समयकी मर्यादाकी निरूपणकी कालासेध, किसी स्थानके प्रति निरोधकी स्थानासेध, अपसरणके प्रतिकूल निषेधको प्रवेशसेध और कार्योद्योगके निवन्धको कर्मासेध कहते हैं।

भासेधक (सं० त्रि०) नियन्ता, नियंहीता, कैद करने या हिरासतमें रखनेवाला।

भासेधनीय (सं० त्रि०) निग्रहके योग्य, जो हिरा-सतमें रखे जाने काविल हो।

भासेध्य, भासेधनीय देखो।

भासेव (फा० पु०) १ प्रेतवाधा, दोष, फ़ितना, विगाड़। २ तुक्छान्, हानि। ३ भय, खौफ़, डर।

भासेव उत्तारना (हिं० क्रि०) १ प्रेतवाधा बुझाना, शैतानके साथ पड़नेसे पैदा हुयी बीमारीकी दूर करना। २ भूतापसरण करना, शैतानको निकाल देना।

भासेव दूर करना, भासेव उत्तारना देखो।

भासेव पट्टचना (हिं० क्रि०) आघात घाना, चोट लगना।

भासेव पट्टचाना (हिं० क्रि०) आघात देना, चोट मारना।

भासेर (हिं० पु०) आय्य, पनाह, क़िला।

भासेवन (सं० स्त्री०) सम्यक् सेवनम्, प्रादिसमा०। निरुपपत्तावासीने। वा ११। १२। कार्यविशेषका प्रसन्न अभ्यास, किसी कामका मेहनती मद्दावरा। २ पौनः-पुन्य, बार-बारका करना।

‘भासेवन’ पौनःपुन्य। (विद्वानकीमती)

भासेवा (सं० स्त्री०) आ-सेव-घङ्-टाप्। १ सम्यक् सेवा, खासी खिदमत। २ राचसी।

भासेवित (सं० त्रि०) आ-सेव-क्त-इट्। १ सम्यक् सेवित, अच्छीतरह खिदमत किया गया। २ पुनः पुनः सेवित, बार-बार खिदमत किया गया। (स्त्री०) भावे क्त। ३ सम्यक् सेवा, खासी खिदमत।

भासेविन्, भासेविन् देखो।

धासेवितन् (सं० त्रि०) धासेवित-इति । सुन्दर-
सेवाकारी, खासी छिद्रमत करनेवाला । (पु०)
धासेवितो । (स्त्री०) डोप् । धासेवितिनो ।

धासोज (हिं० पु० = मंस्कृत आश्रयुज् शब्दका अप-
भ्रंश) आश्रितमास, क्षार ।

धासौ (हिं० द्वि० वि०) इस वत्सर, इससाल ।

धास्कन्द (सं० पु०) धा-स्कन्द-घञ् । १ उत्प्लवन,
उत्थाल, चढ़ावो । २ आक्रमण, हमला । ३ तिरस्कार,
भिड़की । ४ अश्रु प्रसृतिकी आस्कन्दित नामक गति-
विशेष, घोड़ेका उड़ान । ५ आक्रामक, हमला मारने-
वाला शस्त्र ।

धास्कन्दन (सं० स्त्री०) धास्कन्दतेऽत्र, धा-स्कन्द
आधारे लुट् । १ युद्ध, जङ्गल, लड़ाई । भावे लुट् ।
२ तिरस्कार, वैद्वन्ती । ३ आक्रमण, हमला, धावा ।
४ उत्प्लवन, उत्थाल । ५ अश्रुकी गति विशेष, घोड़ेका
उड़ान । ६ संगोपण, खासी सुखावो । ७ विनाग,
वरवादी ।

धास्कन्दित (सं० स्त्री०) धा-स्कन्द-णिच्-ङ-इट् ।
१ अश्रुकी गतिविशेष, घोड़ेको कुदोटी । 'धास्कन्दितं धीरि-
तकं रेचितं वलितं युतम् ।' (५मर) धास्कन्दित अश्रुकी
गतिका पद्यम भेद है । हमचन्द्रने तिर्यक् काण्डमें
लिखा है,—अश्रुकी गति धीरित, वलित, युत, उत्ते-
जित और उत्तेरित पांच प्रकार होती है । गाड़ीमें
जोतनेसे घोड़ा जो चाल चलता, उसका नाम धीरि-
तक, धीर्यं, धोरण या धीरित पड़ता है । लगा
खींचनेपर झोड़को घोर धीरे-धीरे धीरि धीरि घेर उठाने,
अग्निशिखा अथवा कढ़पचीके न्याय गिराधारो हो
अर्थात् घोटीका अग्रभाग ऊपरको निकाल उठानेसे
गला चढ़ाने और मुँहको नीचेकी तर्फ झिकोड़नेसे
वह्नित बनता है । पक्षो वा मृगकी गतिके न्याय
उत्थल-उत्थल कुछ स्थान छाँवने-छाँवने जानेंको प्रुति
अथवा झूत कहते हैं । वीरसे दौड़ना ही उत्तेजित वा
रेचित है । कमी-कमी कोपसे चारो घेर उठा ऊपर-
एकाधिक उत्थलने और उभीतरह धीरे चढ़नेसे उत्तेरित,
उपकण्ठ, धास्कन्दित अथवा धास्कन्दितक जाता है ।

धास्कन्दितक, धास्कन्दित दीपो ।

धास्कन्दित् (सं० त्रि०) धास्कन्दति द्विन्द्वि, धा-
स्कन्द-इत् । १ शंसक, हमलावर, भ्रष्ट पड़नेवाला ।
२ बहानेवाला । ३ दाता, दण्ड देनेवाला । (पु०)
धास्कन्दी । (स्त्री०) धास्कन्दिनी ।

धास्क (वै० त्रि०) धा-क्रम-ड वेदे प्रयोदरादित्वात्
सुट् । १ आक्रामक, हमलावर । भावे ड । २ आक्रमण,
हमला ।

धास्त (सं० पु०) धा-अस विक्षेपे ङ । १ सम्यक्
चित्त, अच्छीतरह फेंका हुआ ।

“वधो धास्तपतिः सन्कादिपद्यवतिष्ठते ।” (मनु १-५४)

धास्तर (सं० पु०) धा स्त-अप् । १ हस्तोके पृष्ठका
कम्बल, झुन । २ बिछौना, चटाई । भावे अप् ।
३ सुविस्तार, रासा फेंकाव । ४ अक्षविशेष, एक
हथियार । वेश्यापानोक्त धनुर्वेदमें लिखा है,—धास्तर
नामक अक्षका पाददेग यन्त्रियुक्त, मन्तक टोचें, हाथ
बड़ा, उदर तथा मत्स्या टेट्टा घोर वर्ण काना होता
है । परिमाण दो हाथ रहता है । इसके द्वारा
धुमायी, सिंचायी और कटावो कयी क्रियायें सम्पन्न-
की जाती हैं । युद्धकालमें धास्तर शत्रुओंको मार
डालता है । अग्नारोही और पदार्थ इसे धारण
करते हैं । ५ कुतरे वगैरहके भीतरका कापड़ा ।

धास्तरण (सं० स्त्री०) धास्तोयति यत्, कर्मणि लृट् ।
१ धास्तोयमान कटादि, फेंकार बिछाया जानेवाला
कानोन वगैरह । भावे लृट् । २ विस्तार, फेंकाव ।
३ पलंग, बिछौना । ४ यष्टमें कुगका फलक ।
५ हस्ति-पृष्ठस्थ-विचित्र कम्बल, हाथीकी पीठपर
पड़नेवाली झुन ।

धास्तरणयत् (सं० त्रि०) यस्मिन् धास्तरादिग,
कालोन या कपड़ेमें टका हुआ । (पु०) धास्तरण-
यान् । (स्त्री०) धास्तरणयती ।

धास्तरणिक (सं० त्रि०) धास्तरणं प्रयोजनमस्य,
धास्तरण-ठक् । १ कटादिपर विद्याम देनेवाला, जो
कानोन वगैरहपर पाराम करता हो । २ धास्तरण-
माधन, बिछौनेके काम देनेवाला ।

धास्तरणी (सं० स्त्री०) धास्तरण-टोप् । धास्तरणपट,
कानोन वगैरह ।

शास्त्ररणीय (सं० वि०) शास्त्ररणस्येदम्, तद्वत्वात् ।
६। शास्त्ररण-सम्बन्धी, विद्योक्तिके सुतासिक ।

शास्त्रायन (सं० त्रि०) अस्ति इति अय्ययम् अस्ति
यिद्यमानस्य स्यिच्छटदेगादि; पञ्चादित्वात् फक्,
अय्ययस्य टिलोपः । यतंमाम निकटवर्ती देगादि ।
शास्त्रार (सं० पु०) अ-स्त-घञ् । विस्तार, फैलाव ।
शास्त्रारपंक्ति (सं० स्त्री०) शास्त्रारो नाम पंक्तिः,
शाक० तत् । वंदिक छन्दोविशेष । इसमें दो पंक्ति
होती हैं। पहली पंक्तिके दोनो पादमें आठ-
पाठ और दूसरीके दोनो पादमें बारह-बारह वर्ण
रहते हैं।

शास्त्राव (वै० पु०) आ-स्तुवस्यत्, आ-स्तु आधारे
घञ् । १ यद्यमें स्तोत्रगणके स्तव करनेका स्थान ।
भावे घञ् । २ सम्यक् स्तव, खासी तारीफ़ ।

शास्त्रिक (सं० त्रि०) अस्ति परलोक इति मति-
र्यस्य, ठक् । अस्तिनास्तिद्वि० मतिः । या शा० १० । १ ईश्वर और
परलोकका अस्तित्ववादी, कयामतको माननेवाला ।
२ पुराणादि पर विश्वास रखनेवाला । ३ धार्मिक,
पारसा । (पु०) ४ जरतूकार मुनिके पुत्र निरुक्त ।
परलोक होनेकी बात प्रथम कहनेसे उक्त मुनिका
नाम शास्त्रिक पड़ा है । आलोक देखो ।

शास्त्रिकजननी (सं० स्त्री०) शास्त्रिकस्य जननी ६-तत् ।
वासुकिकी भगिनी और जरतूकारकी पत्नी मनसा ।

शास्त्रिकता (सं० स्त्री०) ईश्वरमें विश्वास ।

शास्त्रिकात्व (सं० स्त्री०) शास्त्रिकता देखो ।

शास्त्रिकपन (हिं० पु०) शास्त्रिकता देखो ।

शास्त्रिकमति (सं० पु०) उच्चमवैष्य, बढ़िया तबीब ।

शास्त्रिकार्थद (सं० पु०) शास्त्रिकाय अर्थ ददाति,
शास्त्रिक-पर्य-दा-क । जनमेजय । इन्होंने शास्त्रिक
मुनिके कहनेसे तक्षककी विनायसे बचाया था ।

शास्त्रिक्य (सं० स्त्री०) शास्त्रिकस्य भावः, यक् ।
पद्मपुरोहितादिभ्यो यक् । या शा० ११२५ । शास्त्रिकता, परलोक
स्वीकार, उबूदियत, पारभायी ।

शास्तीक (सं० पु०) वासुकिकी भगिनी मनसाके
गर्भसे उत्पन्न जरतूकार मुनिके पुत्र । वासुकिका
ज्ञातिवर्ग मातृश्रापसे अभिभूत हुआ था । उन्होंने

उक्त श्राप छोड़नेके लिये महातपा जरतूकारको
अपनी भगिनी प्रदान की । सम्प्रदानसे पूर्व ही जरतू-
कार मुनिने कहा था,—दे दीजिये, किन्तु उनके
भरण-पोषणका भार हम उठा नहीं सकते; फिर
तुम्हारी भगिनी यदि हमारे अमृत कार्य करेगी, तो
उसी समय छोड़ दी जायेगी । वासुकिने सब बात
मानकर भगिनीको मुनिके साथ ब्याह दिया । पन-
स्तर मुनिके सहवाससे उनके गर्भ रह गया । एकदा
महर्षि निद्रित थे । नागभगिनीने देखा, कि सूर्य अमृत
होता और स्वामीकी साथे क्रियाका समय होता जाता
था । ऋषि भयानक रागी रहे । जगानेसे कर्षों छोड़
कर चले जानेका डर था । किन्तु उन्होंने धर्मसोपकी
अपेक्षा अन्य दुःखकी तुच्छ समझ जरतूकारको जगा
दिया । ऋषिने उठकर कहा था,—भद्र ! तुमने
अप्रिय कार्य किया है, सुतरां यहाँ मेरा रहना अब
किसी प्रकार हो नहीं सकता; तुम्हें और तुम्हारे
भाईको मेरे जानेसे दुःखित न होना चाहिये ।
जरतूकार मुनि यह कहकर चलते बने । वासुकिकी
भगिनीने जाते समय पूछा था—श्राप तो चल दिये,
वासुकिने जिसके लिये मुझे आपको सोपा था, उसका
क्या हुआ । मुनिने उत्तर दिया,—अस्ति अथात् हमारे
श्रीरससे तुमने गर्भधारण किया है । कुछ दिनके
बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ । यह पुत्र सर्पभयनमें
सर्पकण्ठक प्रतिपालित किया और अपने बुद्धि बलसे
शत्रुपुत्र अयनके निकट समस्त शास्त्र पढ़ गया । गर्भमें
रहते ही पिताके 'अस्ति' कहकर चले जानेसे शास्तीक
नाम पड़ा है । इन्होंने जनमेजयके सर्पध्वंसयज्ञमें सर्प-
गणको बचा लिया था । शास्तीकमहिष्ठल्य क्षत्रो धन्यः,
अण् । २ शास्तीक मुनिके जीवनचरित पर महाभार-
तान्तर्गत पर्व विशेष ।

शास्तीक्य, अस्ति देखो ।

शास्तीन् (फा० स्त्री०) परिच्छेदका पियल, पौगाक-
का खरीता, बाँह ।

शास्तीन्का साप (हिं० पु०) शृङ्गवृक्ष, भीतरी दुग्मन् ।
शास्तीन् चदाना (हिं० क्लि०) १ भय देवाना, धम-
काना । २ उपस्थित होना, तैयारी करना ।

शास्त्रीर्ण (मं० त्रि०) शा-स्त्र-ज्ञ। विस्तीर्ण, विस्तारित, फैला हुआ।

शास्त्रत, शास्त्रीय देखो।

शास्त्रीय (मं० त्रि०) 'शस्त्रीत्यव्यय' तत्र विद्यमानि भवन्, ठञ्। इतिङ्प्रिचरविचरान्प्रदेशेभ् । पा ४।१।१। १ विद्यमान पदार्थजात, मौजूदा चीजसे पैदा। (कौ०)

शास्त्रीय मस्त्रीय तस्य भावः, अण् । २ अर्थात्, माह-कारी, घोरी न करनकी बात।

शास्त्र (सं० त्रि०) अस्त्रस्येदम्, अण् । अस्त्रसम्बन्धी, हथियारके मुतासिक।

शास्त्रावुध्र (वै० पु०) अस्त्रवुध्रके पुत्र।
 'ल' शास्त्रिणश्चास्त्रवुध्राय ।' (अ० १।१।१११)

शास्त्रा (सं० स्त्री०) शा-स्त्रा-अङ्-टाप् । १ शास्त्र-स्वन, सहारा। २ अपेक्षा, निम्नत। ३ यडा, एतकाद। ४ स्थिति, हानत। ५ यत्र, तदधीर। ६ आदर, इज्जत। शास्त्रीयतेऽत्र, आधारे अङ्-टाप् । ७ सभा, मजलिस। 'शास्त्रा यथावत्तत्रयोऽस्त्राणामपेक्षयोर्वि ।' (इम)

शास्त्रागम (सं० पु०) जल, पानी।

शास्त्राट (वै० त्रि०) स्थितिकारी, खडा रहने या चट जानेवाला। "शास्त्रात्ते जयन्ते जेतानि ।" (अ० १।१०५।१)
 'शास्त्रात्ता अश्विन्यी रथी ।' (सायण)

शास्त्रान (सं० स्त्री०) शास्त्रीयतेऽत्र, शा-स्त्रा आधारे लुगट् । १ सभा, मजलिस। २ विश्रामस्थान, आराम-गाछ, बैठनेकी जगह। भाषे लुगट् । ३ शास्त्रा, एत-काद। ४ यडा, इज्जतयाक।

शास्त्रानश्टइ (सं० स्त्री०) सभाभवन, मजलिसका मकान।

शास्त्रानमिह—कशोजस्य सुप्रसिद्ध नरेश जयचन्द्र वंशज शिवाजीके पुत्र। यह अपने भाई मोनिहजी और अजयदेवजीके साथ पदलवाड़े घाटनकी घोर कुल्ल राज्य पानके लिये कन्नौजसे निकल पड़े थे। पानीमें जाकर पक्षीवाल ब्राह्मणोंका राज्य देखा। किन्तु परवली पर्वतके भीत उन्हें बहुत सताया करने थे। लोगोंके मार्शना करनेपर इन्होंने रक्षा करनेका बचन दिया। शास्त्रानसिंहने भीलोंके राजा कान्हाको मार चला देनेका विचार किया था। किन्तु लोगोंने कहा,

पाप यहाँ रहें, पापके चले जानेसे भीत हमें फिर मतायेंगे। इन्हें दुर्ग बनानेको बहुत मूमि मिली थी। पक्षीयानोंको निर्बल देपर शास्त्रानमिहने राज्य अपने हाथ लेना चाहा। एक दिन हासोको कितने हो पजो-वान बधकर इन्होंने राज्यपर अपना आधिपत्य जमाया था। फिर थोड़े दिन बाद शास्त्रानमिहजी रूड़े विशाह करने गये। वहाँ गोविन्द वंशज विधवसेन श्रुपति और डावी जातिके भगवन्तराय नामक राजपूत मस्त्री रहे। मस्त्रीने राज्य अधिकार करनेके लिये शास्त्रान-सिंहजीसे माहाय्य मांगा और आधा भाग देनेको वादा किया। शास्त्रानसिंहका विशाह होने समय गोविन्दों और डावियों दोनोंकी राठोरोंने अधिक मदिरा पिलायी थी। जब नोग पचेतन हुये, तब सबके मस्त्रक काटे गये। रूडेका राज्य पाने पोड़े इन्होंने कोठण-राज्यके भी १४० पाम हीन लिये थे। अन्तको इनकी मृत्यु हो गयी।

शास्त्रामी (सं० स्त्री०) शा-स्त्रा-नुरट्, शास्त्रान-होप् । सभा, मजलिस। 'शास्त्रामी शोभनायाम् ।' (अमर)

शास्त्रापन (सं० स्त्री०) शा-स्त्रा-विच-पुक्-लुगट् । १ सम्यक् स्थापन, पानी रखायो। करणे लुगट् । २ श्रुत-तोक्त प्रयोपक्रमणोपय निरुद्धयन्ति, घी तेन वगैरहकी विचकारी। निष् देगा।

शास्त्रापनोपवर्ग (सं० पु०) शास्त्रापनयोग्य वस्-विंश महाकपायका वग, विचकारी देने लायक पयोम कमेसी चीजोंका जपोरा। त्रिङ्, विन्द्, पिप्पनी, कुठ, मर्दप, यथा, इन्द्रयव, शतपुष्पा, यटिमणु और मदनफल शास्त्रापनोपवर्गमें गिना जाता है। (१११)

शास्त्रापित (सं० त्रि०) शा-स्त्रा-विच-पुक्-लुगट् । सम्यक् स्थापित, अच्छेतरह रखा हुआ।

शास्त्राय (सं० अर्थ०) १ आश्रयपूर्वक, मदारीमें। २ आरोहण करके, बढ़कर। ३ चढ़े होते।

शास्त्रायिका (सं० स्त्री०) शास्त्रा धात्वर्णितेमे खन्, स्त्रीत्वान् टाप् अतः इत्वम्। शास्त्राय, सभा, मजलिस।

शास्त्रायो—सङ्घीतमें किमी रागागाय किंवा गीतका प्रथम अक्ष वा मुपश्रय, मुपड़ा, टेक। शास्त्रायो,

शास्त्ररथीय (मं० वि०) शास्त्ररथरथ्येदम्, दृष्टत्वात् ।
 ष । शास्त्ररथ-मन्त्रयो, विद्योक्तिके सुतात्त्रिक ।

शास्त्रायन (मं० त्रि०) अस्ति इति अव्ययम् अस्ति
 विद्यमानस्य सप्रिल्लटटद्गादि ; पद्यादित्वात् फक्,
 अव्ययस्य टिलोपः । वर्तमान निकटवर्ती द्वादि ।

शास्त्रार (मं० पु०) अ-स्तु-घञ् । विस्तार, फौलाव ।

शास्त्रारपंक्ति (मं० स्त्री०) शास्त्रारो नाम पंक्तिः,
 ग्राक० तत् । वेदिक इन्दोपिग्रिप । इमं दो पंक्ति
 दोती है । पहली पंक्ति दोनो पाठमें आठ-
 पाठ और दूसरीके दोनो पाठमें बारह-बारह वर्ण
 रहते है ।

शास्ताव (ये० पु०) शा-स्तुवस्त्यत्र, शा-स्तु आधारे
 घञ् । १ यज्ञमें स्तोत्रगणके स्तव करनेका स्यान् ।
 भावे घञ् । २ सम्यक् स्तव, खासी तारीफ़ ।

शास्तिक (घं० त्रि०) अस्ति परलोक इति मति-
 र्यस्य, ठक् । अस्तिर्नादिष्ट मतिः । वा शास्त्र० । १ ईश्वर और
 परलोकका अस्तित्ववादी, कथामतकी माननेवाला ।
 २ पुराणादि पर विश्वास रखनेवाला । ३ धार्मिक,
 पारसा । (पु०) ४ जरतूकार मुनिके पुत्र निरुक्त ।
 परलोक होनेकी बात प्रथम कहनेसे उक्त मुनिका
 नाम शास्तिक पड़ा है । अलोक देखो ।

शास्तिकजननी (मं० स्त्री०) शास्तिकस्य जननी इ-तत् ।
 वासुकिकी भगिनी और जरतूकारकी पत्नी मनसा ।

शास्तिकता (मं० स्त्री०) ईश्वरमें विश्वास ।

शास्तिकत्व (मं० स्त्री०) शास्तिकता देखो ।

शास्तिकपन (हिं० पु०) शास्तिकता देखो ।

शास्तिकमति (सं० पु०) उत्तमवैद्य, बढ़िया तबीयत ।

शास्तिकार्थद (मं० पु०) शास्तिकाय अर्थ ददाति,
 शास्तिक-पर्य-दा-क । जनमेजय । इन्होंने शास्तिक
 मुनिके कहनेसे तक्षककी विनाग्रसे बचाया था ।

शास्तिकव्य (मं० स्त्री०) शास्तिकस्य भावः, यक् ।
 अन्वयवर्णितकामिनी यक् । वा शास्त्र० । शास्तिकता, परलोक
 स्वीकार, अनुदियत, पारभायी ।

शास्त्रीक (मं० पु०) वासुकिकी भगिनी मनसाके
 गर्भमें उत्पन्न जरतूकार मुनिके पुत्र । वासुकिका
 प्रातिवर्ग मातृगणसे अभिभूत हुआ था । उन्होंने

उक्त गण छोड़नेके लिये महातपा जरतूकारकी
 अपने भगिनी प्रदान की । सम्प्रदानसे पूर्व ही जरतू-
 कार मुनिने कहा था,—दे दीजिये, किन्तु उनके
 भरण-पोषणका भार हम उठा नहीं सकते ; फिर
 तुम्हारी भगिनी यदि हमारे अमत कार्य करेगी, तो
 उसी समय छोड़ दी जायेगी । वासुकिने सब बात
 मानकर भगिनीको मुनिके साथ ब्याह दिया । पन-
 न्तर मुनिके महावाससे उनके गर्भ रह गया । एकदा
 महर्षि निद्रित थे । नागभगिनीने देखा, कि सूर्य अस्त
 होता और स्वामोकी सायं क्रियाका समय होता जाता
 था । ऋषि भयानक रागी रहे । जगानेसे कहें छोड़
 कर चले जानेका डर था । किन्तु उन्होंने धर्मनोपकी

अपेक्षा अन्य दुःखकी तुच्छ समझ जरतूकारको जगा
 दिया । ऋषिने उठकर कहा था,—भद्रे ! तुमने
 अग्रिय कार्य किया है, सुतरां यहां मेरा रहना अब
 किसी प्रकार हो नहीं सकता ; तुम्हें और तुम्हारे
 भाईको मेरे जानेसे दुःखित न होना चाहिये ।
 जरतूकार मुनि यह कहकर चले गये । वासुकिकी
 भगिनीने जाते समय पूछा था—आप तो चल दिये,
 वासुकिने जिमके लिये मुझे आपको सोया था, उसका
 क्या हुआ । मुनिने उत्तर दिया,—अस्ति अथात् हमारे
 औरसे तुमने गर्भधारण किया है । कुछ दिनके
 बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ । यह पुत्र सर्पभयनमें
 सर्पकलक प्रतिपालित किया और अपने बुद्धि बलसे
 भृगुपुत्र अथनके निकट समस्त शास्त्र पढ़ गया । गर्भमें
 रहते ही पिताके 'अस्ति' कहकर चले जानेसे शास्त्रीक
 नाम पड़ा है । इन्होंने जनमेजयके सर्पध्वंसयज्ञसे सर्प-
 गणको बचा लिया था । शास्त्रीकमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः,
 अण् । २ शास्त्रीक मुनिके जीवनचरित पर महाभार-
 तास्तर्गत पर्व विग्रह ।

शास्त्रीक्य, अस्ति देखो ।

शास्त्रीन् (फा० स्त्री०) परिच्छेदका पिप्लव, योगाक-
 का पुरीता, बांह ।

शास्त्रीन्का सांप (हिं० पु०) रहस्यम्, भीतरी दुश्मन् ।

शास्त्रीन् चदाना (हिं० कि०) १ भय देखाना, धम-
 काना । २ उपस्थित होना, तैयारी करना ।

आस्तौर्ण (सं० त्रि०) आ-स्तृ-ण् । विस्तौर्ण, विस्तारित, फैला हुआ ।

आस्तृत, आस्तौर्ण देखो ।

आस्त्येय (सं० त्रि०) अस्त्यैत्यव्ययं तत्र विद्यमाने भवम्, ठञ् । इतिङाचिकनमिषद्यासाहेडंञ् । पा ३।३।३६ । १ विद्यमान पदार्थजात, मौजूदा चीजसे पैदा । (कौ०) अस्त्येय मस्त्येयं तस्य भावः, अण् । २ अचौर्यं, माह-कारी, चोरी न करनेकी बात ।

आस्त (सं० द्वि०) अस्तस्येदम्, अण् । अस्तसम्यन्धी, हथियारकी सुताक्षिक ।

आस्त्यावुध्र (वै० पु०) अस्त्यवुध्रके पुत्र ।

“तं मानिन्द्रमर्थं मास्त्यवुध्राय ।” (ऋक् १।१०।१२)

आस्था (सं० स्त्री०) आ-स्था-अङ्-टाप् । १ आल-स्यन, संहारा । २ अपेक्षा, निम्नत । ३ श्रद्धा, एतकाद । ४ स्थिति, हालत । ५ यत्न, तदधीर । ६ आदर, इज्जत । आस्थीयतेऽत्र, आधारे अङ्-टाप् । ७ सभा, मजलिस । ‘आस्था यथात्मनयोरास्थानादिष्वीरति ।’ (ईम)

आस्थागम (सं० पु०) जल, पानी ।

आस्थाट (वै० त्रि०) स्थितिकारी, खड़ा रहने या चढ़ जानीवाला । ‘आस्थाता नै जयतु जीवानि ।’ (ऋक् १।१७।१६) ‘आस्थाता अचरित्यी रथो ।’ (राघव)

आस्थान (सं० स्त्री०) आस्थीयतेऽत्र, आ-स्था आधारे लुगट् । १ सभा, मजलिस । २ विद्यामस्थान, आराम-गाह, बैठनेकी जगह । भावे लुगट् । ३ आस्था, एत-काद । ४ श्रद्धा, इज्जतयाक् ।

आस्थानगृह (सं० स्त्री०) सभाभवन, मजलिसवा मकाम् ।

आस्थानसिंह—कन्नौजस्य सुप्रसिद्ध नरेश जयचन्द्र वंशज गिषाजीके पुत्र । यह अपने भाई सोनिङ्गजी और अजयदेवजीके साथ बन्दलवाड़े पाटनकी धोर कुछ राज्य पानेके लिये कन्नौजसे निकल पड़े थे । पानेमें लाकर पक्षीवाल ब्राह्मणोंका राज्य देखा । किन्तु परसली पर्वतके भील उन्हें बहुत सताया करते थे । लोगोंके प्रार्थना करनेपर इन्होंने रक्षा करनेका वचन दिया । आस्थानसिंहने भीलोंके राजा कान्हाकी मार-चल देनेका विचार किया था । किन्तु लोगोंने कहा,

भाप यहाँ रहें, पापके चले जानेसे भील हमें फिर सतायेंगे । इन्हें दुर्ग बनानेकी बहुत भूमि मिली थी । पक्षीवालोंकी निर्बल देख आस्थानसिंहने राज्य अपने हाथ लेना चाहा । एक दिन हासोको कितने छो पक्षी-वाल बंधकर इन्होंने राज्यपर अपना आधिपत्य जमाया था । फिर थोड़े दिन बाद आस्थानसिंहजी खुड़े विवाह करने गये । वहाँ गोहिल वंशज विचित्रसेन नृपति और डावी जातिके भगवन्तराय नामक राजपूत मन्त्री रहे । मन्त्रीने राज्य अधिकार करनेके लिये आस्थान-सिंहजीसे साहाय्य मांगा और आधा भाग देनेकी वादा किया । आस्थानसिंहका विवाह होते समय गोहिलों और डावियों दोनोंको राठौरोंने अधिक मदिरा पिलायी थी । जब लोग अचेतन हुये, तब सबके मस्तक काटे गये । खेड़का राज्य पाने पोछे इन्होंने कौडिले-राज्यके भी १४० ग्राम छीन लिये थे । अन्तकी इनकी मृत्यु हो गयी ।

आस्थानी (सं० स्त्री०) आ-स्था-लुगट्, आस्थान-हीप् । सभा, मजलिस । ‘आस्थानी लोचनान्धानम् ।’ (चन्द्र)

आस्थापन (सं० स्त्री०) आ-स्था-णिच्-पुक्-लुगट् । १ सम्यक् स्थापन, स्थायी रखायो । करणे लुगट् । २ सुशु-तोक्त प्रणोपक्रमणोय निरूहवस्ति, घी तेल बगैरहको पिचकारी । निरूह देखो ।

आस्थापनीपवर्ग (सं० पु०) आस्थापनयोग्य पञ्च-विंश महाकपायका वर्ग, पिचकारी देने लायक पचीस कसेनी चीजोंका ज़ुपौरा । त्रिङ्त्, विस्व, पिप्पली, कुष्ठ, सर्षप, बघा, इन्द्रयव, गतपुष्पा, यष्टिमधु और मदनफल आस्थापनीपवर्गमें गिना जाता है । (चरक)

आस्थापित (सं० त्रि०) आ-स्था-णिच्-पुक्-ङ-ट् । सम्यक् स्थापित, अच्छीतरह रखा हुआ ।

आस्थाय (सं० अथ्०) १ पाठ्यपूर्वक, संहारने । २ भारोहण करके, बढ़कर । ३ सड़े होते ।

आस्थायिका (सं० स्त्री०) आ-स्था धात्वर्णनिर्देशे यत्न, स्त्रीत्वात् टाप्, पतः इत्वम् । आस्थान, सभा, मजलिस ।

आस्थायो—सद्वीतमें किसी रामायण प्रथम चरण वा सुखम् ।

आन्तरणीय (मं० वि०) आन्तरण्येदम्, वृद्धत्वात् ।
६। आन्तरण्य-सम्बन्धो, द्विद्वौनेके सुतासिकः ।

आन्तरायन (मं० वि०) अस्ति इति अथयम् अस्ति
विद्यमानस्य सविस्तृतदेगादि; पचादित्वात् फक्,
अथयस्य टिलोपः । वर्तमान निकटवर्ती देगादि ।

आन्तार (मं० पु०) अ-स्तु-घञ् । विस्तार, फैलाव ।

आन्तारपंक्ति (मं० स्त्री०) आन्तारी नाम पंक्तिः,
गाक० तत् । बंदिक हन्दीविशेष । हममें दो पंक्ति
होती हैं। पहली पंक्ति के दोनो पादमें घाठ-
घाठ और दूसरीके दोनो पादमें बारह-बारह वर्ष
रहते हैं ।

आन्ताय (ये० पु०) आ-स्तुवन्त्वत्, आ-स्तु आधारे
घञ् । १ यत्रमें स्तोत्रगणके स्तव करनेका स्थान ।
भावे घञ् । २ सम्यक् स्तव, खात्री तारीफ़ ।

आस्तिक (मं० वि०) अस्ति परलोक इति मति-
र्यस्य, ठक् । अस्तिपरलोक इति मतिः । वा १४६० । १ ईश्वर और
परलोकका अस्तित्ववादी, कयामतको माननेवाला ।
२ पुराणादि पर विश्वास रखनेवाला । ३ धार्मिक,
पारमा । (पु०) ४ जरतूकार मुनिके पुत्र निरुक्त ।
परलोक होनेकी बात प्रथम कहनेसे उक्त मुनिका
नाम आस्तिक पड़ा है । आत्मीक देवो ।

आस्तिकजननी (मं० स्त्री०) आस्तिकस्य जननी ६-तत् ।
वासुकिकी भगिनी और जरतूकारकी पत्नी मनसा ।

आस्तिकता (मं० स्त्री०) ईश्वरमें विश्वास ।

आस्तिकत्व (मं० स्त्री०) आस्तिकता देवो ।

आस्तिकपन (हिं० पु०) आस्तिकता देवो ।

आस्तिकमति (मं० पु०) उत्तमवैध, बढ़िया तबीय ।

आस्तिकावन्द (मं० पु०) आस्तिकाय अर्थ ददाति,

१ जनमेजय । इन्होंने आस्तिक
विनायके वचाया था ।

२ आस्तिकस्य भावः, यक् ।

३ आस्तिकता, परलोक
विश्वास ।

वासुकिकी भगिनी मनसाके
मुनिके पुत्र । वासुकिका
अभिभूत हुआ था । इन्होंने

उक्त गाप छोड़नेके लिये मछलियां जरतूकारको
अपने भगिनी प्रदान की । सम्प्रदानसे पूर्व ही जरतू-
कार मुनिने कहा था,—दे दीजिये, किन्तु उनके
भरण-पोषणका भार हम उठा नहीं सकते; फिर
तुम्हारी भगिनी यदि हमारे अमृत कार्य करेगी, तो
उसी समय छोड़ दी जायेंगी । वासुकिने मद्य बात
मानकर भगिनीको मुनिके साथ ब्याह दिया । अन-
न्तर मुनिके सहवाससे उनके गर्भ रक्ष गया । एकदा
मद्यपि निद्रित थे । नागभगिनीने देखा, कि सूर्य अमृत
होता और स्वामीकी साथ क्रियाका समय होता जाता
था । ऋषि भयानक रागी रहे । जगानेसे कहें छोड़
कर चले जानेका डर था । किन्तु उन्होंने धर्मवीपकी
अपेक्षा अन्य दुःखको तुच्छ समझ जरतूकारको जगा
दिया । ऋषिने उठकर कहा था,—भद्रे ! तुमने
अप्रिय कार्य किया है, सुतरां यहां भेरा रहना अब
किसी प्रकार हो नहीं सकता; तुम्हें और तुम्हारे
भाईको मेरे जानेसे दुःखित न होना चाहिये ।
जरतूकार मुनि यह कहकर चलते बने । वासुकिकी
भगिनीने ज्ञाते समय पूछा था—आप तो चल दिये,
वासुकिने जिसके लिये मुझे आपको सीपा था, उसका
ध्या हुआ । मुनिने उत्तर दिया,—अस्ति अद्यात् हमारे
औरससे तुमने गर्भधारण किया है । कुछ दिनके
बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ । यह पुत्र सर्पभयनमें
सर्पकण्ठक प्रतिपालित किया और अपने बुद्धि बलसे
भृगुपुत्र अथनके निकट समस्त शास्त्र पढ़ गया । गर्भमें
रहते ही पिताके 'अस्ति' कहकर चले जानेसे आत्मीक
नाम पड़ा है । इन्होंने जनमेजयके सर्पध्वंसयज्ञमें सर्प-
गणको दबा लिया था । आत्मीकमधुक्षय कृतो अयः,
अण् । २ आत्मीक मुनिके जीवनचरित पर महाभार-
तान्तर्गत पर्व विशेष ।

आत्मीक्य, आस्तिक देवो ।

आत्मीन् (का० स्त्री०) परिच्छेदका पिप्पल, पौगाक-
का शरीरता, बाँह ।

आत्मीन्का सांग (हिं० पु०) गृहगत, भीतरी दुग्धम् ।

आत्मीन् चदाना (हिं० स्त्री०) १ भय देवाना, धम-
काना । २ उपस्थित होना, तैयारी करना ।

- शास्त्रीय (सं० त्रि०) शास्त्र-ज्ञ। विस्तीर्ण, विस्तारित, फैला हुआ।
- शास्त्र, शास्त्रोपदेश।
- शास्त्रीय (सं० त्रि०) अस्तीत्यव्ययं तत्र विद्यमाने भवम्, ठञ्। इतिउपिचलमिवशास्त्रादिठञ्। पा ४।३।५। १ विद्यमान पदार्थजात, मौजूदा चीजसे पैदा। (कौ०) अस्तीय मस्तीय तस्य भावः, अण्। २ अचौय, साहकारि, चोरी न करनेकी बात।
- शास्त्र (सं० त्रि०) अस्त्रस्येदम्, अण्। अस्त्रसम्बन्धी, हथियारकी सुतास्त्रिक।
- शास्त्रासुप्त (वै० पु०) अस्त्रसुप्तके पुत्र।
“लं नामिन्द्रमर्त्यं मास्त्रसुप्ताय।” (शक् १०।१०।१२)
- शास्त्रा (सं० स्त्री०) शास्त्रा-भङ्-टाप्। १ शास्त्र-म्वन, संहारा। २ अपेक्षा, निश्चय। ३ अहा, एतकाद। ४ स्थिति, हालत। ५ यत्न, तदवीर। ६ आदर, दक्षता। शास्त्रीयतेऽत्र, आधारे अङ्-टाप्। ७ सभा, मजलिस। ‘शास्त्रा यत्नान्मनयोरास्त्राभापेचकोरि।’ (इम)
- शास्त्रागम (सं० पु०) जल, पानी।
- शास्त्रात् (वै० त्रि०) स्थितिकारी, खड़ा रहने या चढ़ जानेवाला। “शास्त्रात् ते जयत् वेज्जानि।” (शक् १।४।२१) ‘शास्त्रात्वा अचस्थितो रथो।’ (घाणप)
- शास्त्रान (सं० स्त्री०) शास्त्रीयतेऽत्र, शास्त्रा आधारे लुट्। १ सभा, मजलिस। २ विश्वामस्यान, आराम-गाह, बैठनेकी जगह। भाये लुट्। ३ शास्त्रा, एत-कदा। ४ अहा, इगिठयाक्।
- शास्त्रानगृह (सं० स्त्री०) सभाभवन, मजलिसका मकान्।
- शास्त्रानसिंह—कन्नोजस्य सुप्रसिद्ध नरेण जयचन्द्र वंगज गिषाजीके पुत्र। यह अपने भाई मोनिङ्गजी और अजयदेवजीके साथ अन्दलवाड़े पाटनकी घोर कुदराज्य पानेके लिये कन्नोजसे निकल पड़े थे। पानीमें जाकर पक्षीवान् ब्राह्मणोंका राज्य देखा। किन्तु अरवली पर्वतके भील उन्हें बहुत मताया करते थे। लोगोंके प्रार्थना करनेपर इन्होंने रक्षा करनेका वचन दिया। शास्त्रानसिंहने भीलोंके राजा कान्हाको मार-चल देनेका विचार किया था। किन्तु लोगोंने कहा,

भाप यहाँ रहें, आपके चले जानेसे भील हमें फिर सतायेंगे। इन्हें दुर्ग बनानेकी बहुत भूमि मिली थी। पक्षीवालोंको निर्बल देव शास्त्रानसिंहने राज्य अपने हाथ लेना चाहा। एक दिन हात्थोको कितने छो पक्षी-वान् बंधकर इन्होंने राज्यपर अपना आधिपत्य जमाया था। फिर थोड़े दिन बाद शास्त्रानसिंहजी खेड़े विवाह करने गये। वहाँ गोहिल वंगज विचित्रसेन नृपति और हाथी जातिके भगवन्तराय नामक राजपूत मन्त्री रहे। मन्त्रीने राज्य अधिकार करनेके लिये शास्त्रान-सिंहजीसे साहाय्य मांगा और आधा भाग देनेकी यादा किया। शास्त्रानसिंहका विवाह होते समय गोहिलों और हाथियों दोनोंकी राठोरोंने अधिक मदिरा पिलायी थी। जब लोग अचेतन हुये, तब सबके मद्दाक काटे गये। खेड़का राज्य पाने पोछे इन्होंने कोडण-राज्यके भी १४० ग्राम छीन लिये थे। पत्नकी इनकी मृत्यु हो गयी।

शास्त्रानी (सं० स्त्री०) शास्त्रा-लुट्, शास्त्रान-ङीप्। सभा, मजलिस। ‘शास्त्रानी कोरनास्यागम्।’ (अमर)

शास्त्रापन (सं० स्त्री०) शास्त्रा-णिच्-पुक्-लुट्। १ सम्यक् स्थापन, ज़ामी रखायो। करण लुट्। २ सुशु-तोक्त ब्रह्मोपक्रमणीय निरुहवस्ति, घी तेल बगैरहकी पिचकारी। निरुह शब्दो।

शास्त्रापनोपवर्ग (सं० पु०) शास्त्रापनयोग्य पञ्च-विंग मद्दाकपायका वर्ग, पिचकारी देने लायक पचीस कसेली चीजोंका ज़खोरा। त्रिङ्, विश्व, पिप्पली, कुठ, मर्दण, बचा, इन्द्रिय, शतपुष्पा, यटिमधु और मदनफल शास्त्रापनोपवर्गमें गिना जाता है। (अमर)

शास्त्रापित (सं० त्रि०) शास्त्रा-णिच्-गुक्-ङ-ट्। सम्यक् स्थापित, अच्छीतरह रखा हुआ।

शास्त्राय (सं० अव्य०) १ आश्रयपूर्वक, सहारेमें। २ आरोहण करके, चढ़कर। ३ चड़े होते।

शास्त्रायिका (सं० स्त्री०) शास्त्रा धात्वर्णनिर्देशे षन्, स्त्रीत्वात् टाप् अतः इत्वम्। शास्त्राय, सभा, मजलिस।

शास्त्रायो—सङ्गीतमें किसी रागान्नाय किंवा गीतका प्रथम अक्षर वा सुप्रबन्ध, सुप्रज्ञा, टेक। शास्त्रायो,

पत्न्या, मन्त्री और शास्त्रोत्तर धार धरप रहनेसे
पान्नाय या गीत सम्पूर्ण समझा जाता है।

पाश्र्वित (सं० वि०) आ-स्या-क्त, रकारोन्तादेयः।
दतिमतिमन्त्राणि ति विजि। सा १३३००। १ पश्वस्थित, ठहरा
हुवा। २ प्राप्त, धामिन किया हुआ। ३ पारुष्ट, चढ़ा
हुवा। ४ पाश्र्वित, चिपटा या लिपटा हुआ। ५ विस्तृत,
पैसा हुआ। ६ पश्याम डासनियाला, जो महारत
बटा रहता हो।

पाश्र्विति (सं० स्त्री०) आ-स्या-क्तिन्। १ सम्यक् स्थिति,
खामा ठहराव। २ निधाम, रहवास।

पाश्र्वेय (सं० त्रि०) आ-स्या-कर्मणि यत्। आश्रयणीय,
सहारा लिये जाने काबिल, जो काम दे सकता हो।

पाघात (वै० त्रि०) आ-स्या-क्त। छतदान, गुसल
किये हुआ, जो नहा चुका हो।

पाघान (सं० स्त्री०) आ-स्या-स्युट्। १ प्रचालन
द्वारा शुद्धि, धोनेसे होनेवाली सफाई। २ सम्यक् स्नान,
खामा गुसल। ३ स्नानगृह, इग्याम, नहानिका घर।

पाश्र्वद (सं० स्त्री०) आ-पद-पश्च-सुट्। आश्रयतिहायाम्।
सा ११११४। १ प्रतिष्ठा, इज्जत। २ पद, दरजा। ३ स्थान,
जगह। ४ कृत्य, काम। ५ प्रसुत्व, मनकथी। ६ अय-
सम्पन, सहारा। ७ विषय, बात। ८ पश्वस्थान, ठह-
राव। ९ समनसे दग्म स्थान। यह शब्द प्रायः समा-
सान्तमें पाता है, जैसे—पश्वद्वाराश्र्वद। 'आश्र्वद
दे हवे।' (वि०)

पाश्र्वन्दन (सं० स्त्री०) आ-श्र्वन्द-स्युट्। १ इषत्-
कम्पन, घोड़ी कंपकपी। २ अतिकम्प, गहरी कंपकपी।

पाश्र्वर्धा (सं० स्त्री०) अहमहमिका, विजिगीषा,
हिमं, हौम।

पाश्र्वर्धन् (सं० त्रि०) विजिगीषु, प्रतिस्पर्धी, हन-
मरी-ओ, होड़ लगानियाला।

पाश्र्वर्ग (सं० पु०) सम्यक्, संयोग, लम्ब, लगाव।

पाश्र्वगतः (सं० अव्य०) सम्पर्क द्वारा, संयोग वग,
लगावसे।

पाश्र्वगत (वै० स्त्री०) आश्र्वदपं पापम्। मुचरुप
पात्र, मुंङ्-जैसा धरतन।

पाश्र्वगत (सं० पु०) आ, स्तल चाले पिच्-पश्च, स्फुल-

वञ् स्फालादेगो वा। १ पाघात, प्रहार, फटकार,
रगड़। २ उत्प्रेषण, फड़फड़ाहट। ३ करिकर्पा-
स्तानन, हावीके कानकी फड़फड़ाहट।

पाश्र्वालन (सं० स्त्री०) आ-स्तन चासे पिच्-स्युट्।
१ ताड़न, मार, फटकार। २ चालन, फड़फड़ाहट।
३ घाटोप, सूजन। ४ दम्ब, गुस्ताखी, धमण्ड।

पाश्र्वालित (सं० त्रि०) आ-शफल-पिच्-क्त। १ चालित,
फड़फड़ाया हुआ। २ आघटित, रगड़ा हुआ।
३ ताड़ित, भाड़ा या फटकारा हुआ।

पाश्र्वालित् (सं० पु०) आश्र्वालति, आ-श्र्वाल-ङुः तं
जयति, जि-क्तिप्-तुक्। शकाचायं, जोहरा, नाहीद,
मोली-फलक।

पाश्र्वोत् (सं० पु०) आ-श्र्वोत्-पिच् कर्तरे पश्च।
१ अर्कहृत्, मदारका पेड़। २ गिरिज पीलु, किसी
विषयका पखरोट। ३ मसका वाहुगण्ड, पक्षमवानोंके
ताल ठोकनेकी भावाज। ४ संवर्षणात शब्द सकल,
रगड़की भावाज।

पाश्र्वोत्क (सं० स्त्री०) आ-श्र्वोत्-पिच्-गुल्। १ पर्यंतका
पीलु विशेष, जङ्गली पखरोट। (त्रि०) २ वाहु
शब्दकारी, ताल ठोकनेवाला।

पाश्र्वोत्तन (सं० स्त्री०) आ-श्र्वोत्-पिच् भावे लुट्।
१ प्रकाश, गिगुफ्फगी, फेलाव। २ वाहुगण्ड, ताल
ठोकनेकी भावाज। ३ शूर्पादि द्वारा धान्यादिका
यितुपीकरण, फटकार, भाड़। ४ चालन, फड़फड़ाहट।
५ कम्पन, कंपकपी। ६ नियमकरण, मोहरणदी।

पाश्र्वोत्तनी (सं० स्त्री०) आश्र्वोत्तवर्त पिट्टीक्रियते
अनया, करण स्युट्-ङीप्। धैर्मानका, मसकव, दरमी।

पाश्र्वोत्ता (सं० स्त्री०) नवमल्लिका, नैवारका फूल।

पाश्र्वोत्तित (सं० त्रि०) आ-श्र्वोत्-पिच् कर्मणि क्त।
१ विदलित, रगड़ा हुआ। भावे क्त। २ वाहु प्रश्र्वतिके
ताल ठोकनेका शब्द प्रकाश, जो भावाज ताल बजानेसे
पाती हो।

पाश्र्वोत्त (सं० पु०) आ-श्र्वोत्-पश्च, इषोदरादित्वात्
टस्य तत्वम्। १ रक्षाकहृत्, खाल मदारका पेड़।
२ क्षीयदार हृत्, कचनारका दरपत। ३ भूपसाग
हृत्, टेसूका पेड़।

आस्फोतक, - आस्फोत देखो।

आस्फोतका, आस्फोता देखो।

आस्फोता (सं० स्त्री०) आ-स्फुट्-भञ्ज, घृषोदरादित्वात् टाप् । १ अपराजिता कालीजीर । 'आस्फोता विरिचर्बो विष्वक्कालापराजिता।' (भावप्रकाश) २ लताविशेष, हापरमाली वेल । ३ शारिवा, अनन्तमूल । ४ काष्ठमल्लिका, जङ्गली चमेली । ५ श्वेत शारिवा, सफेद अनन्तमूल । ६ नवमल्लिका, नेवार ।

आस्फाक (सं० त्रि०) अस्फाकमिदम् ; अस्फुट्-भञ्ज अस्फाकादेशः, पित्वादाद्यचो वृद्धिः । शक्तिवर्षि च पुष्पा-कावाको । वा भा३श२ । अस्फात् सभ्यन्थी, हमारा ।

आस्फाकान (सं० त्रि०) अस्फाकमिदम्, खज् ; अस्फाकादेशः, जित्वादाद्यचो वृद्धिः । उपपदकवीरन्तत्पत्तो खञ् । वा भा३श२ । अस्फात् सभ्यन्थी, हमारा ।

आस्य (सं० स्त्री०) अस्यते क्षिप्यते भक्ष्यां यत्र अनेन वा, अस आधारे वा करणे ण्वत् । १ सुख, सुहृ । 'ब्रह्मणे बदनं तुष्टमाननं उपनं सुखम् ।' (चमर) २ आसति, चेहरा । ३ सुखांशविशेष, सुहृका एक विस्रा । इससे अक्षरोधारण होता है । ४ छिद्र, दरार । (त्रि०) आस्ये भवम् । ५ सुखसभ्यन्थी, सुहृके सुताञ्जिक ।

आस्यदेश (सं० पु०) सुखमध्य, सुहृका विशुद्ध ।

आस्यन्दन (सं० स्त्री०) आ-स्यन्द भावे ण्यट् । १ ईपत् चरण, थोड़ा बहाव । २ अल्प गलन, हलकी गलायी ।

आस्यन्दनवत् (सं० त्रि०) वक्ष चलनेवाला, जो चलते जा रहा हो । (पु०) आस्यन्दनवान् । (स्त्री०) आस्यन्दनवती ।

आस्यन्धय (सं० त्रि०) सुखान्धतास्वादय, सुखसुख्यक, सुखनकारी, बोसा मिट्टी या बन्धी लेनेवाला, जो किसीका सुहृ दूभता हो ।

आस्यपत्र (सं० स्त्री०) आस्येलेवोपमितं पत्रमस्य, बहुव्री० । पत्र, सुहृ-जैसे पत्र रखनेवाला कमल ।

आस्यपुष्प (सं० पु०) श्वेतकण्ठिही वृक्ष, सफेद सटजोरा ।

आस्यफल (सं० पु०) श्वेतधुस्तुरवृक्ष, सफेद धनूरा ।

आस्यताङ्गल (सं० पु०) आस्यं सुखं साङ्गलमिदं

भूविदारकं यस्य, बहुव्री० । १ शूकर, सूवर । २ वन्य शूकर, जङ्गली सूवर ।

आस्यलोम, आस्यलोम देखो ।

आस्यलोमन् (सं० स्त्री०) आस्यभवं लोम, शाक० तत् । श्वश्रु, दाढ़ी-मूँछ ।

आस्यवैरस्य (सं० स्त्री०) सुखविस्वाद, सुहृका फोकापन ।

आस्यशाखोट (सं० पु०) गुल्मविशेष, किसी किष्किका भाड़ । यह शातको बढ़ाता और पित्त, कफ, क्षमि, पाण्डुता, ज्वर तथा कामलकी घटाता है । (अविधित्ता)

आस्या (सं० स्त्री०) आस भावे ष्यप्-टाप् । १ स्थिति, गतिराहित्य, सुकुनत, रक्षास । २ बिलक्षण, झलत-अथतर । ३ उपवेशन, बैठक । ४ निहद्योगोपवेशन, बेकाम-बैठनेकी हालत ।

आस्यास्य (सं० पु०) आस्यास्य इव । सासा, सुबाव-दहन, तुफ, रास, धक् ।

आस्य (सं० स्त्री०) अस्त्रमेय, स्वार्थे षण् । दधिर, रक्त, खनू, सङ्ग ।

आस्य (सं० पु०) आस्यं शक्तिं पिवति, उपसमा० । १ राक्षस, खनू पीनेवाला शक्पस । मूलानपवका देवता भी राक्षस होता है । २ जीक ।

आस्यव (सं० पु०) आस्यवति मनोऽनेन, करणे षण् । १ क्षेश, आस्यत, तकलीफ । २ प्रत्याय, बहाव । ३ पत्रत् तण्डुलका फिन, गर्म चावलका उबाल । ४ जैन मतसिद्ध पदार्थ विशेष । इससे जीय मुक्तिनाम करता है । इन्द्रियको संयमसे रखना और सत्कर्मों लगातार प्रभावक कहाता है । आस्य देवी ।

आस्यस्त (सं० त्रि०) पतित, गिरा-पड़ा, जो छूट गया हो ।

आस्यत् (सं० त्रि०) आस्यं घेटयति, आस्य-व्यहृ-क्षिप् । सुवर्तित्थः बर्हदेशनाम् । वा भा३श२ । आस्यप्रायक, खनू बहनेका हालत बता देनेवाला ।

आस्यायथ (सं० पु०) आस्याय-कश् । आस्यप्रायकका पुत्र वा कन्यारूप भपत्य ।

आस्यव (सं० पु०) आ-स्यवति हधिरमध्यात्, आ-सु-अपादाने घञ् । १ चत, जङ्गम । भावे घञ् २ सम्यक् चरण, आसा बहाव । ३ सुखसाग, सुबाय

दहन, राम, युक्त। ४ ज्ञेय, तत्त्वज्ञेय। (त्रि०)
भासावोऽस्वप्न, धर्म आदित्यात् अच्। ५ मय्यक्
चरणयुक्त, च् व वदनेवासा।

भासाविन् (मं० त्रि०) भासवति, भा-सु-षिणि।
१ मदादि चरणग्रीम, जिसमें ग्राहक वर्गरेख टपके।
भासावोऽस्मात्प्रतीति, अक्षय्ये इति। २ चरणयुक्त, वदने-
वासा। (स्त्री०) भासाविनी।

भासावी (सं० पु०) १ चरणके पादरोगका भेद, घोड़ेके
पैरकी एक बीमारी। क्लेशवतल चर्मात् पैरके
तन्त्रवेमें जड़म रखनेवाले चरणको भासावी समझना
चाहिये। (ज्येष्ठ) २ हस्तो, मस्त हाथी।

भासानित (सं० त्रि०) भा-स्वन-क्त इट्। स्वयन्व-
मंशुवासाया। वा अक्षरः। शब्दित, पुरगौर, भावाञ्ज
देनेवासा।

भासाद (सं० पु०) भा-स्वद कर्मणि घञ्। १ मधुरादि
रस, मीठा वर्गरेख जायका। २ गृहारादि रस, इत्क
वर्गरेखका मजा। भावे घञ्। ३ रसका अनुभव,
जायकेका लेना। गृहारादिते मनमें आमन्द वा
दुःख उपजनेको भासाद कहते हैं। (त्रि०) ४ रस
लेनेवासा, जिसे जायका भावे।

भासादक (सं० त्रि०) भा-स्वद-ञ्चुञ्। भासादन-
कर्ता, जायका लेनेवासा। (स्त्री०) भासादिका।

भासादन (सं० स्त्री०) भा-स्वद भावे लुट्। भासाद,
जायकेका लेना।

भासादनीय (सं० त्रि०) भासाद्य, चञ्चने क्वाप्ति।

भासादयत् (सं० त्रि०) भासाद चातुरार्थिको मत्तुप्।
भासादयुक्त, रसीना, जायकेदार।

भासादित (सं० त्रि०) भा-स्वद-षिच्-क्त-इट्। गृहीत-
भासादन, जायका लिया गया। २ सुक्त, खाया गया।

भासाद्य (सं० त्रि०) भा-स्वद-षिच्-यत्। १ भासाद-
योग्य, चञ्च जाने लायक। (अथ०) स्वप्। २ भासा-
दन करके, जायका लेकर।

भासात्ता (सं० त्रि०) भा-स्वन-क्त दीर्घश्च। शब्दित,
पुरगौर, जिससे भावाञ्ज निकले।

भाह (सं० अथ०) भा-हन-ड। १ सेपपूर्वक,
फेककर। २ नियोग द्वारा, लगायसे। ३ हट् सम्भा-

यनामें, पक्षी उम्मीदपर। ४ विवादपर, रक्के
साय।

'भाह सेवे नियोगे च हट् सम्भावेऽप्यपम्।' (अथ०)

(हिं० अथ०) ५ हाय, चपूसोस। (स्त्री०)
६ दीर्घशास, ठण्डी सांस।

"गुप्तको भाह दूरीवकी इतिहीं गद्दी वहाय।

सग्ये यानको कृष्ण सो भाह मसन को भाय।" (तुलसी)

७ साहस, हिम्मत।

भाहक (सं० पु०) भाहन्ति; भा-हन-ड, ततः
संघ्रायां कन्। नासाञ्चर, नाक सूजनेसे पानेवासा
बुखार।

भाह करना (हिं० क्ति०) दीर्घशास लेना, छसास
छोड़ना, गुमगीन होना।

भाह खेचना, भाह करना देना।

भाहहाय, चरदार देना।

भाहट (हिं० स्त्री०) पादन्धासका शब्द, पैरकी
खटक।

भाहट लेना (हिं० क्ति०) मचेत रहना, च्चरणगौर
रखना।

भाहत (सं० त्रि०) भा-हन-क्त। १ ताड़ित, मार
खाये हुआ। २ हत, जखमी, जो मार खासा गया
हो। ३ गुणित, कुरब दिया हुआ। ४ प्राप्त, जाना
हुआ। ५ श्यार्थक, झूठ कहा हुआ। (पु०) ६ टका,
टोल। (स्त्री०) ७ वस्त्रविशेष, मया कपड़ा। वगिठके
मतसे अल्प प्रचालित, नूतन और न पहने हुये
वस्त्रको भाहत कहते हैं। यह वस्त्र सकल कार्यमें
लग सकता है। ८ पुरातन वस्त्र, पुराना कपड़ा।
वारम्बार रजकका भाघात प्राप्त होनेसे पुरातन वस्त्रका
नाम भाहत पड़ा है।

'भाहन' इतिमं क्वचित् तादृशे च गरादंके।

भात् पुरातनवस्त्रेऽपि नवरस्त्रे च भाहते ॥" (शिवदीप)

भाहतवक्ष्य (सं० त्रि०) भाहतमभ्यर्त्ता मक्ष्य
यस्य, वदुको। शौर्यादि गुण द्वारा प्रसिद्ध, चक्की
सिफतके लिये मगझर।

भाहति (सं० स्त्री०) भा-हन-क्तिन्। १ मन्दहृत्

आघात, चोट । २ ताड़न, मारपीट । ३ आगमन, आमद । ४ गुणन, ज़रव । ५ मर्दन, मालिय, मत्सायी ।
 आहन (फा० पु०) १ आयस. लोहा । (हिं० पु०)
 २ भित्तिनिर्माणार्थं मृत्तिका तथा टणका सम्मिश्रित द्रव्य, दीवार चठानेकी पैरा और मट्टी मिलाकर बनायी हुयी चीज़ ।
 आहनन (सं० स्त्री०) आ-हन्यते,नेन, आ-हन करणे लुगट् । १ ताड़न, मारपीट । २ पशुवध, जानवरका कत्ल । ३ ताड़न-साधन दण्डादि, मारने-पीटनेको छण्डा वगैरह ।
 आहननवत् (द्वै० त्रि०) आहनन-मत्सु । वहन-वत्, मक्कार, दग्गावाज ।
 आहनन्य (वै० त्रि०) ठक्का वजाकर अपनी स्थाति करनेवाला, जो अपनी तारीफ़ टोल वजाकर सुनाता हो ।
 आहनस् (वै० त्रि०) आहन्यते, आ-हन-पसुन् । १ आहननीय, मारा जाने काविल । २ निष्पीछ, निचोड़ा जाने लायक । ३ स्कीत, आधमात, सूजा या फुला हुआ ।
 आहनस्य (वै० स्त्री०) आहनसे साधु, यत् । १ हनन साधन द्रव्यादि, मारकाटमें काम देनेवाली चीज़ । २ स्कीतता, सूजन, मोठायी ।
 आहनस्यवादिन् (वै० त्रि०) कामुक शब्द निकालने-वाला, जो मस्ताना बात करता हो ।
 आह निकालना, आह करना देखो ।
 आहनी (फा० वि०) पयोमय, लोहेसे बना हुआ ।
 आह पड़ना (हिं० क्लि०) १ अन्विके दीर्घश्वास निकालनेसे मारे जाना, दूसरेके अप्सोस करनेसे तकलीफ़में पाना । २ साहस छोना, डरगत बढ़ना ।
 आह भरना, आह करना देखो ।
 आह मारना, आह करना देखो ।
 आहर (सं० पु०) आ-ह-भृच् । १ उच्छ्वास, आह-सर्द, ठण्डी सांस । २ पल्लसुंखनिग्रह, सुंहके भीतर भीतर चलनेवाली सांस । (त्रि०) ३ सञ्चयकारक, इकट्ठा करनेवाला, जो जोड़ता हो । ४ निरुद्ध जाति विशेष । इस जातिके लोग शम्भुस, राजपुर, पद्मद-पुर, उभासी, महेश्वान तथा रामगढ़ाके तीर रहते

और रहिलखण्डके भी किसी-किसी स्थानमें देख पड़ते हैं । यह अपनेकी यदुवंगीय और कृष्णसे उत्पन्न वताते हैं । किन्तु आहीर अपनेको ही कृष्णवंगीय कहते और इनकी उत्पत्ति गोपसे मानते हैं । आहर मत्स्य, गोमांस प्रभृति खाते हैं । युक्तप्रदेशमें नगावत, भट्टि, नौगरी, रुकर, वासोपरा, बकियायिन, भूसायिन, दिगवार प्रभृति कयी येथीके आहर रहते हैं । (हिं० पु०) ५ समय, वक्त । ६ युव, जड़ । ७ जल-स्थान, झोज़ । यह तालाबसे छोटा और मारुसे बड़ा पड़ता है ।

आहरकरटा (सं० स्त्री०) आहरकरट इत्युच्यते यस्यां क्रियायाम्, मयूरर्थं । करटको आहरण करनेका उपदेश देनेको बात, कौबसे उठा ले जानेको सिखा-नेकी बोली ।

आहरचेटा (सं० स्त्री०) आहर चेट इत्युच्यते यस्यां क्रियायाम्, मयूरर्थं । चेटके प्रति आहरणार्थं निदेश-क्रिया, नौकरसे उठा ले जानेको हुक्म देनेकी बात ।

आहरण (सं० स्त्री०) आ-हृ भावे लुगट् । १ आनयन, लवायी । २ आयोजन, जुगाड़ । कर्मणि लुगट् । ३ आह्वयमाण द्रव्य, इकट्ठा की या लायी हुयी चीज़ । ४ विवाहादिका उपटोकन द्रव्य, शादीमें दिया जाने-वाला सामान । ५ प्रहण, लवायी । ५ अपहरण, छोन-छान ।

आहरण्य (सं० त्रि०) आ-हृ-पनीयर् । १ पायो-जनीय, आनयनके योग्य, इकट्ठा करने काविल, जो लाने लायक हो । २ उपटोकनके योग्य, दिये जाने काविल । ३ अपहरण्योग्य, छोन लिये जाने काविल ।
 आहरन (हिं० स्त्री०) स्तूपी, निहायी ।

आहरनियया (सं० स्त्री०) आहरनियय इत्युच्यते यस्यां क्रियायाम्, मयूरर्थं । 'आहरण करो और बोवो' कहनेकी आदेश क्रिया, जिस दुक्मो काममें से पाने और मोज डालनेकी बात सुने ।

आहरनिक्रिया (सं० स्त्री०) आहरनिक्रिय इत्युच्यते यस्यां क्रियायाम्, मयूरर्थं । 'आहरणकर-हालो' कहनेकी आदेश क्रिया, 'साकर कोह दो' हुक्म देनेकी बात । इसी प्रकार

आहारमेवा मन्त्रं भी तत्तदन्तुके आहरपार्थ आदिम्
पाता ई ।

आहरो (हिं० स्त्री०) १ अणु तड़ाग, छोटा तानाव ।
२ पासवान, यात्रा । ३ कूपके समीपका जलाशय,
कुयेंके पासका होज । इसमें पण्ड पानी पीते हैं ।

आहर्त्त (सं० त्रि०) आ-ह-र्त्तच् । १ उपाजक, पैदा
करनेवाला । २ पायोजक, इकट्ठा करनेवाला ।
३ पानयनकर्ता, सानेवाला । ४ अनुष्ठानकर्ता, काम
शुरू करनेवाला । ५ धरण करनेवाला, जो छीन लेता
हो । (पु०) आहर्ता । (स्त्री०) आहर्त्री ।

आहर्त्तक (सं० अर्थ०) आहर्त्तक मन्त्रके धाय, फट-
कारकर ।

आहर्त्ता (हिं० पु०) जलप्रावन, सेलाव, पानीकी वाढ़ ।
आहर्त्तीय (सं० स्त्री०) द्रव्यविशेष, एक चीज ।
गुजरातमें इसे आमालवीज कहते हैं । आहर्त्तीय उष्ण
एवं तिक्त होता और स्वर्गदोष, वात तथा गुल्मकी नाग
करता है । (वैद्यक निघण्टु)

आह्वय (सं० पु०) आह्वयन्ते परस्परं युवाद्यंमरयो
यत्न, आ-ह्वे आधारे षप् सम्प्रसारणं गुणय । आ-ह्वे ।
वा १५५७ । १ युद्ध, लड़ाई । २ समराधान, ललकार ।
आह्वयन्ते यज्ञद्रव्याख्यत्र, आ-ह्वे आधारे षप् । २ यज्ञ,
नियाज । 'आह्वे यमदे यज्ञे ।' (३५)

आह्वयन (सं० स्त्री०) आह्वयते हवनीयं हृतायत्र,
आ-ह्वे आधारे लुगट् । १ यज्ञ, कुरवाने । भाषे लुगट् ।
२ सम्यक् होम, अश्वीतिरह नयाज देनेका काम ।

आह्वयनीय (सं० पु०) आह्वयते प्रक्षिप्यते हविरत्र,
आ-ह्वे आधारे षनीयर्त् ; आह्वयन-मर्हति हृ या ।
१ यज्ञका अग्निविशेष, नयाजकी भाग । यह गार्हपत्य
अग्निसे लिया और होमादिके निमित्त प्रस्तुत किया
जाता है । २ यज्ञमें अक्षनेवालेमें पूर्वीय अग्नि ।
'हविर्वाग्निर्वाग्निर्वाग्निर्वाग्निर्वाग्निः ।' (५५) (त्रि०) कर्मणि
षनीयर्त् । ३ होतव्य, नयाजमें लगने लायक ।

आह्वयनीयक, आह्वयनीय द्योः ।

आह्वयर्त्त (फ्रा० स्त्री०) ठण्ठी सांस, अफसोसके साथ
सांसका सेना ।

आह्व (सं० स्त्री०) अण्विद् द्रव्यभेद, एक चीज ।

(हिं० अर्थ०) २ पायर्त्त, ताल्लव, परे । ३ हर्त्त,
वग सुय ।

आहार (सं० पु०) आ-ह-घञ् । १ आहरण,
सेवायी । २ नियुक्ति, नगायी । ३ द्रव्यगसाधःकरण,
खुवायो । "आहारजिज्ञा मरुभेः मण्डलमभेत्तु पदभिर्नरापत्तु ।"
(शिरोरश्मि) ४ भोजनद्रव्य, खानेकी चीज । भोजन-

द्रव्य द्रव्य और अद्रव्यभेदसे द्विविध होता है । फिर इसमें
भी प्रत्येक स्वभावगुरु, मात्रागुरु और संस्कारगुरु भेदसे
त्रिविध है । प्राणियोंका भूज आहार ही ठहरता
है । क्योंकि इसमें बल, वर्ण और भोजःकी वृद्धि
होती है । आहार पट् रसमें पायसा रहता है ।

स्थिति, उत्पत्ति और विनाशमें वज्रादि भो आहार
करते हैं । इससे ही अतिवृद्धि, बल, शारीर्य, वर्ण
और इन्द्रिय-प्रसादादि मिलता है । फिर आहारके
वैयर्थ्यसे अस्वास्थ्य आता है । (इहम्) आहार यज्ञज्ञत्,
सद्यः प्रीतिप्रद तथा देहधारक होता और भोजः, तेजः,
स्वरोत्साह, धृति, स्मृति एवं मतिकी बढ़ाता है ।

(मदनमाल) प्राणानिलसे इरित हो आहर पहले आमा-
शयमें पट्टंभता और माधुर्य, फेनभार तथा पट् रसकी
प्राप्त करता है । पाचक विक्षेपे विदग्ध होनेपर
यह अन्न पट्ट जाता और पौष्टि समान मरत् द्वारा
अह्वीमें पट्टंभता है । अह्वीमें आहार पकता और
कोष्ठवृद्धिसे कट्ट पड़ता है । सम्यक् रहनेसे रस और
अपक रहनेसे यह आम बनता है । फिर अह्वीवत्तसे
आहारमें माधुर्य और अम्लतादि गुण आता है ।

सम्यक् पक होनेसे आहार अखिल धातुकी परिष्कार
करता और अमृतोपम ठहरता है । किन्तु रस मन्द-
वृद्धिसे विदग्ध, कट्ट तथा अन्न होनेसे विषभावकी
पट्टंभता और रोगसद्वर उपजाता है । (आहार)
५ अन्न, अनाज । ६ अधोहार, आधा खाना । ७
मन्दादि विषयक ज्ञान, आयाज यमैरहका इहम् ।

८ आहरणकारी, उठा ले जानेवाला । ९ राजपूतानेका
एक प्राचीन नगर । पहले आहार नगरमें बड़ी मस्जिद
रही । किन्तु अब उसका ध्वंसायगेय मात्र अवशिष्ट
है । जैनेके अति प्राचीन मन्दिर आज भी पड़े हैं ।

९ गुह्यमानके बुलन्दशहर जिलेकी एक पुरानी बस्ती ।

यहां अनेक देवालय विद्यमान हैं। पास ही गङ्गानदी बहती है। कितने ही लोग स्नान करने भाते हैं। औरङ्गजेबकी समय आहारकी नागर-ब्राह्मणोंने बाध्य हो इसलाम धर्मको ग्रहण किया था।

आहारक (सं० त्रि०) आहरणकारी, खानेवाला। आहारपाक (सं० पु०) आहारस्य भुक्तद्रव्यस्य पाकः रसादिभावेन परिणामः। वेद्यशास्त्रोक्तं भुक्तं अन्नादिका रसादिके रूपेण परिणामसे पाकविशेष, खानेका हाजिमा। आहार देखो।

आहारविरह (सं० पु०) भोजनको न्यूनता, खानेकी तकलीफ, रीटीका माला।

आहार-विहार (सं० पु०) भोजन-भाव, खाना-खेलना। आहार-विहार विगड़नेसे कीटाग्नि बुझ जाता और च्वर उत्पन्न होता है।

आहारशुद्धि (सं० स्त्री०) आहारस्य मध्यावादेःशुद्धिः, इ-तत्। १ भक्ष्य पत्रादिका अत्युक्त शोधन, खानेकी सफाई। २ दुष्ट-आहार-जन्य दोषनिवारणार्थं शुद्धि-रूप प्रायश्चित्त, बुरे खानेसे पैदा हुये ऐवको मिटानेके लिये किया जानेवाला प्रायश्चित्त।

आहारशोधन (सं० पु०) कृष्णजीरक, काला जीरा। आहारसम्भव (सं० पु०) आहारात् भुक्त्वावादेः सम्भवति, आहार-सं-भू-अच्। आहार-पाकज रस-धातु, खानेके हाजमेसे बना हुआ जिम्माका कैलूस।

आहारस्थान (सं० स्त्री०) निर्जनादि देश, सन्नाटेकी जगह। भले आदमीको आहार, निर्हार और विहार-योग विजनमें करना चाहिये। (भावप्रकाश)

आहारार्थिन् (सं० त्रि०) आहारार्थं भिच्छाटन वा अन्वेषण करनेवाला, जो खानेकी पर्ज या तलाशमें हो। (पु०) आहारार्थी। (स्त्री०) आहारार्थिनी।

आहारिक—जेनमतानुसार जोवके पांचमें एक शरीर। इसका रूप अति सूक्ष्म है। आहारिक समाधिस्थ साधुके शिरःसे निकलता, त्रिकालत्र विहसे व्यवस्था लेने जाता और अभीष्ट समाचार पा लीट पड़ता है।

आहारिन् (सं० त्रि०) आहार करनेवाला, जो खाता पीता हो। (पु०) आहारी। (स्त्री०) आहारिणी।

आहार्य (सं० त्रि०) आ-हृ-ल्यत्। १ आहरणीय,

लेने या छीनने लायक। २ ध्याय्य, इत्तिफाकी। ३ कृत्रिम, मसनुयी। ४ भक्ष्य, खाया जानेवाला। ५ ध्यानयनयोग्य, खाने काविल। ६ प्रिय, समझा जाने लायक। (पु०) ७ बन्धनभेद, किसी किष्मकी पटो। ८ सौकिकाम्नि, दुनियावो भाग। ९ औपा-सनिक अग्नि, घरमें पूजो जानेवाली भाग। (स्त्री०) १० निष्कर्षण द्वारा विकृतिष्ठा किया जानेवाला रोग, जो बीमारी निकाससे अच्छी हो। ११ निष्कर्षण, निकास। १२ पात्र, बरतन। १३ नाटकका सुन्दर अभिनय, तमासीका बढ़िया हिस्सा।

आहार्यगोमा (सं० स्त्री०) कृत्रिम कान्ति, मसनुयी खुबसूरती।

आहार्याभिनय (सं० पु०) अभिनय विशेष, किसी किष्मका खेल। इसमें पात्र न कुछ कष्टता-सुगतता और न भङ्गचालन ही करता है। एकमात्र वियभूषासे ही उसका काम निकल जाता है।

आहाव (सं० पु०) आ-हृ-घञ्, सम्भारणं उच्यते। दिवानमाहारः। पा ११७०। १ निपाजलाय, होइ। कूप निकट गो प्रभृतिके जल पीनेको प्रस्तारदि द्वारा निर्मित सुदृ ललायय आहाव कहाता है। 'आहार्य दिवानं स्नादुपपन्नज्जायते' (अनर) २ पात्र, बरतन। आह्व-यन्ते परस्परं युधार्थंमरयो यत्र, पाधारे घञ्, प्रयो-दरादित्वात् साधुः। ३ युद्ध, जङ्ग। भावे घञ्। ४ आह्वान, सलकार। आ-हृ आधारे घञ्। ५ अग्नि, भाग। आ-हृ भावे आधारे वा घञ्। ६ मन्त्रविशेष द्वारा आह्वान, आह्वान-साधन मन्त्रविशेष।

पाहि (हिं० क्लि०) है। यह आमना क्रियाका यतमानकाल और अन्य पुरुषका एकवचन है।

पाहिंसि (सं० पु०-स्त्री०) पाहिंसस्यापत्यम्, इच्। अहिंसका अपत्य, हिंसारहित व्यक्तिका पुत्र वा कन्या-रूप अपत्य। पाहिंसके गोत्रापत्यको पाहिंसायन कहते हैं।

पाहिक (सं० पु०) पाहिरिव, इवायें कन् ततः स्त्रायें पच्। १ केशुपह, सुकृता राम-अर्चन। 'पाहिकः अर्चयन् विभो इन्द्रः' (१५) सर्प-जैसा नाम पाहिक पड़ा है। २

आहिच्छत (सं० वि०) अहिच्छतदेमि भयम्, पच ।
 अहिच्छतदेमिभय, अहिच्छत सुम्बुका पेदा ।
 आहिण्डक (सं० पु०) निपादके धौरम धौर वेदेहीके
 गर्भसे उत्पन्न पच्यत्र मद्धर जाति ।

“आहिण्डको निपादन वेदेधामिभ जातये ।” (मनु १०१०)

यहमे आहिण्डक काराग्राममे बाहर धौकीदारी करते ये ।
 आहित (सं० वि०) आ-धा-क्त छादेगः । १ न्यस्त,
 लित, रचा हुआ, डाला गया । २ स्थापित, रचित,
 धेठाया या मधफूज किया हुआ । ३ अर्पित, नजर
 किया हुआ । ४ कृत, किया हुआ । ५ आधान-संस्कार-
 कृत । ६ जनित, पैदा किया हुआ । अपने स्वामीमें
 एक साथ अधिक धन लेकर कार्य सम्पादन करनेवाला
 मूल्य आहित कहता है ।

आहितकम (सं० वि०) श्याल, चका-भांदा ।
 आहितनचण (सं० वि०) आहितं सचणं यस्य ।
 १ गुणादि द्वारा विख्यात, अच्छे औसाफके लिये मग-
 भूर । २ न्यस्तचिद्ध, टागदार, निग्रान् रखनेवाला ।
 आहितव्यय (सं० वि०) दुःखित, तकलीफ़न्द, द-
 र्दके आसार रखनेवाला ।

आहितस्त्रन (सं० वि०) कोलाहलकारी, पुरगोर,
 गुल्ल मचानेवाला ।

आहिताम्नि (सं० पु०) आहितः आधामीकृतोऽग्नि-
 र्येन, बहुव्री० । १ सामिक, वेदमन्त्रादि द्वारा कृत
 संस्काराम्निगुल । जन्मसे मरण पर्यन्त उत्पन्न होनेवाले
 गृहमें अग्निको बनाये रखनेवाला ब्राह्मण आहि-
 ताम्नि कहता है । आज भी कागो प्रभृति तीर्थमें
 सामिक ब्राह्मण मिलते हैं । २ याज्ञिक, वेदीपर
 यज्ञका अग्नि रखनेवाला पुरुष ।

आहिताम्निगण—आचिन्त्युक्त परनिपातायं शब्दसमूह ।
 यथा,—आहिताम्नि, जातपुत्र, जातदण्ड, जातगन्ध,
 तेनर्षीत, हृतपीत, मध्यपीत, ऊदुभार्थ, गतार्थ ।

“आहितगणः शतान्येति ।” (निशानकोष्ठो)

आहितार (सं० वि०) विद्धित, दागदार, धन्वे
 रखनेवाला ।

आहिति (सं० स्त्री०) आ-स्था-हित्, छादेगः ।

१ स्थापन, रचायी । २ आधान, संस्कारपूर्वक प्रतिष्ठा ।
 ३ मन्त्रद्वारा अन्नरादिकी संस्काररूप आहुति ।
 आहितुण्डक (सं० पु०) अहितुण्डेन दीप्यति, ठक् ।
 शिन दीपति घननि जलति निगम् । वा ३३१ । व्यालघाही, सपेरा,
 सांपकी पकड़नेवाला ।

आहितत (सं० वि०) अहिततो दूरभयम्, पच ।
 सर्पविग्रित देशके निकट उत्पन्न, जो सांपसे भरे
 सुक्कमें पैदा हो ।

आहित्तगी (फ्रा० स्त्री०) १ मन्दता, दीर्घध्वता,
 धीमापन ।

आहित्ता (फ्रा० वि०) १ मन्द, धीमा । २ पलस,
 काहित, सुखा । ३ मृदु, नर्म । (कि० वि०) ४ अगीत्र,
 धीरे-धीरे । ५ गनेः गनेः, बारी-बारी, थोड़ा-थोड़ा ।
 ६ सुखपूर्वक, आरामसे, पुरसतमें ।

आहीर—गोपजाति विगिय, अहीर । महाभारतादि
 प्राचीन ग्रन्थमें आभीर नाम लिखा है । मनुके मतमें
 ब्राह्मणके धौरस धौर अन्वष्ट स्त्रीके गर्भसे अहीरका
 जन्म हुआ है । किन्तु ब्रह्मपुराण अत्रियके धौरस
 धौर वंश स्त्रीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति बताता है ।
 अहीर अपनेकी यदुवंशीय कहते हैं । पूर्वकाल यह
 जाति भारतवर्षके पश्चिम रहती थी । उस समय
 अहीरोंके रहनेका स्थान भी आभीर ही कहाया ।
 पायाल्य ऐतिहासिक टनेमिने आबिरिया (Abirin)
 नाम दिया है । ई०के प्रथम शताब्द आहीरोंको
 नैपालका आधिपत्य मिल गया था । नैपालके 'पार्व-
 तीय वंशावली' नामक ग्रन्थमें इस जातिके तीन राजा-
 योंका नाम विद्यमान है । ई०के षष्ठम शताब्द गुजरात
 पट्टधनेपर काठो भोगोने आधिकार्य अहीरोंका राज्य
 देखा था । आजकल गुलप्रदेश धौर मध्यदेशके
 नामास्थानमें यह जाति बसती है । प्रधानतः मन्द-
 वंश, यदुवंश धौर गोपालवंश (खाला) तीन भागमें
 अहीर विभक्त हैं । गङ्गाकी पल्लवंशीके उत्तर मन्द-
 वंश, अन्तर्वंशीके मध्य यदुवंश धौर कागो, विहार
 प्रभृति स्थानमें गोपालवंश रहता है ।

आहीरस्त्री (सं० पु०) दो गिरःका नर्प, दुहुंहा सांप ।
 आहक (सं० पु०) यदुवंशीय अत्रियविगिय, बहु-

देव। महाभारतीय समापर्वके २रे और हरिवंशके ३८वें अध्यायमें वसुदेवकी आहुति कहा है।
 आहुती (सं० स्त्री०) आहुतिकी भगिनी।
 आहुड़ (हिं० पु०) आहव, जह्न, लड़ाया।
 आहुत (सं० स्त्री०) उद्देश्यस्वामिमुख्येन साक्षादेव हुतं दत्तम् आ-हु-क्त। १ रश्मिद्वारा कर्तव्य पक्ष महा-यज्ञके अन्तगत मनुष्ययज्ञ। २ आतिथ्य, मेहमांदारी। ३ सम्मुख हुत देवादि। ४ सन्ध्यायज्ञ।
 आहुति (सं० स्त्री०) आ-हु-क्तिन्। १ मन्त्रद्वारा देवोद्देशसे अग्निमें घृतादिका निक्षेप, देवताके लिये आगमें घी वर्ग रहका डालना।

“अग्नी प्राताहुतिः सव्यमादित्यमुपतिष्ठते।” (मनु ३।१६)

आहुयते, कर्मणि क्त। २ अग्नि, पाग। ३ होमका द्रव्य घृतादि।

आहुती (हिं०) आहुति देखो।

आहुली (सं० स्त्री०) आहुत्य देखो।

आहुत्य (सं० स्त्री०) आहुतल वाहुलकात् क्यप् सम्प्रसारणञ्च। कश्मोरादि देगमें उत्पन्न होनेवाला तरबट नामक काष्ठनवर्ण पुष्पविशेष, किसी झाड़ुका पौला फूल। यह तिक्त, शीत तथा चक्षुष्य होता और पित्तदाह, सुखरोग, कुष्ठ, कण्ड एवम् शूलग्रणको दूर करता है। (रात्रनिषध्)

आहुव (वे० द्वि०) आ-ह्वे लज्ये कर्मणि क सम्प्रसारणं लवञ्च। आहुतानके योग्य, बोलाये जाने लायक।

आहु (सं० त्रि०) आहुयति, आ-ह्वे-क्तिप् सम्प्रसारणम्। १ आहुयक, बोलानेवाला। २ आहुयमान, जो बोलाया गया हो। (फा० पु०) ३ हरिण, स्तग, छिन्ना।

आहुत (सं० त्रि०) आ-ह्वे-क्त। १ बोलाया या पुकारा हुआ। (अथ०) २ आमृत, प्रलय पर्यन्त, क्रयामत तक।

आहुतप्रपलायिन् (सं० त्रि०) आहुतः विषादनिर्णययत्नाद्वा क्लृप्ताह्वानोऽपि प्रपलायते, प्र-परा-अप-निनि, रस्य सत्वम्। व्यवहारमें हीनवादी विशेष, बोलाये जावे भी भाग खड़ा होनेवाला सुदृयो या भवाह।
 हीनवादी पांच प्रकारका होता है—कुलका ह्नु

उत्तर देने, प्रतिवादीके माफी प्रभृतिसे हथे रखने, विचारके समय न पहुँचने, पहुँचनेपर चुप रह जाने और बोलानेसे भी भाग खड़ा होनेवाला।

आहुतसंग्रह (सं० पु०) आहुतस्य संग्रहः, इ-तत् प्रयोदरादित्वात् तस्य हः। १ दृष्टिवा पर्यन्तका जलमें डुब जाना। आहुतस्य तत्तन्नाम्ना क्लृप्तसङ्केतस्य विश्वस्य संग्रहो यत्र, बहुप्रो०। २ प्रलयकाल, क्रयामत। प्रलयके समय तत्तन्नामसे क्लृप्तसङ्केत विश्वका आहुतान-रूप व्यवहार नहीं चलता।

आहुति (सं० स्त्री) आ-ह्वे-क्तिन्। आहुतानकार्यं, पुकार, बुलाहट। घृत, समिध, तिल प्रभृति द्वारा जो होम होता, वह आहुति कहाता है। आहुति पानेसे देवता उपस्थित हो जाते हैं। सुतरां इसे भी पुकार कहना पड़ता है।

आहुय (सं० अथ०) आ-ह्वे-ल्यप्। आहुतान करके, बुलाकर, पुकारनेपर।

“आहुय दानं कन्याया त्राहो धर्मः प्रकीर्तितः।” (मनु ३।२०)

आहुयकेन (सं० स्त्री०) अहुयकेन, अफीम।

आहुयं (वे० द्वि०) १ नोचे झुकाया या नजदीक लाया जानेवाला। २ अनुकूल बनाया जानेवाला, जिससे झुकना पड़े। ३ पुकारा जानेवाला, जिसे बुलाना पड़े।

आहुत (सं० त्रि०) आ-ह्वे-क्त। आनीत, आहरण क्रिया हुआ, जो लाया गया हो।

आहुतयज्ञकतु (धे० त्रि०) निष्पन्न यज्ञ करनेका अभिलाषी।

आहुति (सं० स्त्री०) आ-ह्वे-क्तिन्। आहरण, पान-यन, लवायो।

आहुत्य (सं० अथ०) आ-ह्वे-ल्यप् तुगागमः। आह-रण करके, लाकर।

आहुय (सं० त्रि०) अहुरिदम्, टक्। १ संप्रसम्यन्ती, मांपसे ताल्लुक् रखनेवाला। (स्त्री०) २ विष, सांपका जहर।

आहृ (हिं० क्रि०) आहृ, है। यह ‘आयना’ क्रियाका वर्तमान काल है।

आहो (सं० अथ०) अ, उत, आहोसित्, अह्वया,

पयया, मोषेत्, वरणा, व्याघ्र, या, गा, जि, नर्ही तो ।
इम मन्द्रमे मय, विकल्प चोर विधर प्रकट होता है ।

'प्राचीन कालो वरिणी वरि वरिचरयोः ।' (रिच)

प्राचीनपुराणिका (सं० स्त्री०) पद्मो पद्मस्य पुत्रयः
पुत्रपदवाच्यः गूर इत्यर्थः, मट्टर्यः ; निपातनात्
पद्मो पुत्रयः तस्य मावः, पुत्र् स्त्रीत्वान् टाप् ।
१ पात्रनाथा, पुदसितायी, पपनी बड़ायीकी यात ।
२ पपने बलका गर्व, पपनी ताकतकी गरी ।

'प्राचीनपुराणिका दर्पणा एतन् सभारनाम्नि ।' (चर)

प्राचीम—प्रासामका एक प्राचीन राजवंश । ई०के
१६वें शताब्द अष्टमसुत उपत्यकाकी पूर्वसीमापर प्राचीम
वंशके पूर्वज इधर-उधर घूमते फिरते थे । यह तार्ई
पयया शान जातिके लोग रहे । प्राचीम अपनेको
ईश्वरके उत्पन्न बताते हैं । ५६४ ई०को सुनसङ्ग
और सुनसार्ई सुवर्णशुक्लके सहारे बैकुण्ठसे सुद्वरी-
सुद्वराम देगपर या उतरते थे । वहकि तार्ई या शान
राष्ट्रविहीन रहे । इनके मायी सद्दी भूलसे छूटे
हुये मगुलसूचक कुण्डु और दूमरे सुसिद्ध द्रव्य
स्नानेकी बैकुण्ठ यापन पड़ें। इसके उपहारमें चीन
तथा इङ्गलानका राज्य उन्हें मिला था । सुनसङ्ग
और सुनुसार्ईने सुद्वरी-सुद्वराममें एक नगर बनाया ।
सुनसार्ईने अपने बड़े भाई सुनसङ्गकी इतना दवाया,
कि उन्हें 'सोमदेव'का उठा मङ्गल-सुद्वराममें अपने
राज्य प्रतिष्ठित किया था । सुनसङ्गके सात पुत्र रहे ।
कनिष्ठ पुत्र सुद्वको सिंहासन प्राप्त हुआ था । दूमरे
भाई अन्य राज्यांक करद नृपति बने । सुद्वकङ्ग-
नरेश षष्ठ पुत्रके पास 'सोमदेव' रहे । सुनसार्ईने
सत्तर और उनके पुत्र त्याउषार्ई-जिपत्याफाने चालीस
वर्ष सुद्वरीसुद्वराममें शासत्व किया । उन्होंने नारायो
और सप्तदेशगामियोंमें आज भी चलनेवाला एजयी
संबन्ध निकाला था । सुनसार्ईके कीथी उत्तराधिकारी
न रहनेसे सुनसङ्ग और सुचूधंशके त्याउषानने अपने
एक पुत्रको सिंहासनपर बैठाया, जिन्होंने पचीस
वर्षतक राज्य किया । उनके मरनेपर पुत्रोंने राज्यकी
बांट पसग चलन सुद्वरीसुद्वराम और मौनसङ्गपर अधि-
कार लमाया था । सुद्वरीसुद्वरामका राजवंश ३३ वर्ष

राज्य बना नष्ट हुआ और सुद्वका एक वंशज राजा
बना । उन्होंने एक पीतका नाम सुकाफा रखा,
जिन्होंने प्रासाममें प्राचीम राज्य प्रतिष्ठित किया ।

किन्तु योगिनोतन्त्रके प्रमाणमें प्राचीम वंशका
परिचय अन्य प्रकार देते हैं । उनके लेणानुसार
मौशारपीठसे पूर्व किसी पहाड़ीपर समिष्ठ मुनिका
पायन रखा । एक दिन मुनिने अपने उद्यानमें
सधीके साथ इन्द्रको क्रीड़ा करते देखा था । उन्होंने
क्रोधमें पाकर ग्राप दिया,—इन्द्र ! तुम्हें किसी नीच
जातिकी स्त्रीके प्रेममें फंसना पड़ेगा । मुनिका वाण्य
सधा निकला । विद्याधरीने किसी नीचके घर पय-
तार लिया था । इन्द्रसे उनका प्रेम बढ़ा और एक
पुत्र उत्पन्न हुआ । इन्द्र उस लड़केको बहुत प्यार
करते थे । उसके कितने ही पुत्र हुए, जिनमें सुनसङ्ग
एवं सुनसार्ई बड़े और सुद्वरीसुद्वरामके राजा थे ।

प्राचीम बुराश्रित अपने और दूमरे प्रमाण पानेसे
सुकाफा ही प्रासाममें प्राचीम राज्यके प्रतिष्ठाता
मानूम पड़ते हैं । यह शानके मौनसङ्ग राज्यमें प्रासाम
पाये थे । सम्भवतः प्राचीमोंका आदिवास पौड्रमें रहा ।
प्राचीम पाकार-प्रकार और भावाभावमें प्रकृत शान
हैं । शानके बौद्धधर्म ग्रहण करनेसे पहले ही प्राचीम
प्रासाम था गये थे ।

लोगोंके कथनानुसार १२१५ ई०को पाठ
सभ्यो और ८०० मनुष्यो, शियों और सधीके साथ
सुकाफाने मौनसङ्ग छोड़ा । मवारीके निधे दो
हाथी और ३० घोड़े भी रहे । तीरह वर्षतक यह
पाटकाईके पावंत्य प्रदेशपर घूमते घूमते और नागा
ग्रामपर आक्रमण करते करते १२२८ ई०को ग्राम-
लान्न पड़ें। नाहन्याङ्ग छदपर पानेसे पहले
सकाफाने शर्गोंके सहारे ग्रामनामजान्न नदी पार
की थी । नागावोंको मारकाट और अपने एक मन्थको
राजा बना यह छद्मकापोरन, ग्रामवाङ्गपुत्र और
नामरूपकी और रवाना हुई । सुकाफा मिसा मदीपर
पुन बांध डिट्टिपर बदे, किन्तु उन स्थानको उपसुन
न देन टियाम सोट पड़े । १२३६ ई०को सुद्वकङ्ग
चेपङ्ग (पम्पपुर)में जा यह कयी वर्ष रहे थे । १२४०

ई०को जलप्लावन होनेसे सुकाफा हाबुङ्ग भाये और दो वर्षतक वहाँ ठहरे। १२४४ ई०को हाबुङ्गमें भी जलप्लावन पड़नेसे उन्हें दौखके सुंछानेपर जाकर ठहरना पड़ा। वहाँसे सुकाफा लिगिरीगांव गये थे। १२४६ ई०को वह सिमलुगुड़ी पहुँचे। १२५३ ई०को सुकाफाने सिमलुगुड़ी कीहू चराईदेयमें धाकर एक नगर बनाया था। उपरोक्त उत्सवके उपलक्षमें भगवान्के प्रीत्यर्थ दो भखका वलि दिया और ब्रह्म-दासके नीचे देवाधारिका शान्तिपाठ किया गया।

प्रकृत प्रभावसे सुकाफा ही चासाममें इन्द्र वा चाहोम-राजवंशके प्रतिष्ठाता रहे। चाहोम बंशके त्रिन-त्रिन राजाोंने चासाममें शासन किया, उनका नाम नीचे दिया है,—

१। सुकाफा	१२१८ ई०से १२६८ ई०तक
२। सुतेउका (१श्रीका बेटा)	१२६८ १२८१
३। सुनिम्का (२रे ,,)	१२८१ १२८९
४। सुखांका (३रे ,,)	१२८९ १२९२
५। सुवर्तका	१२९२ १२९४
६। सुतका (राजकीन—बड़गोईर और बूडागोईरका शासन ४ वर्ष)	१२९४ १२९६
७। त्वाभोखामति (सुखांकाका ३रा बेटा) (राजकीन—८ वर्ष)	१२९६ १२९८
८। सुदाका वा ब्रह्मराज (७मका बेटा)	१२९८ १३००
९। सुजाका	१३०० १३२२
१०। सुफाङ्का	१३२२ १३२८
११। सुसेनुका	१३२८ १३८८
१२। सुकेनुका	१३८८ १३८९
१३। सुनिम्का	१३८९ १३८९
१४। सुङ्गुं वा खर्गनारायण	१३८९ १३९८
१५। सुङ्गुं नुं वा गदगां वा राजा	१३९८ १३९९
१६। सुकाम्का वा खोड़ा राजा	१३९९ १४०२
१७। सुसेका वा बुङ्गे राजा प्रतापसिंह	१४०२ १४०२
१८। सुसामका वा भगा राजा	१४०२ १४०३
१९। सुविन्का वा नरिया राजा	१४०३ १४०८
२०। सुताम्का वा जयभक्तिसिंह	१४०८ १४०८
२१। सुङ्गुं वा भक्तभक्त सिंह	१४०८ १४०९
२२। सुताम्का वा उदयादित्य सिंह	१४०९ १४०९
२३। सुकाम्का वा रामभक्त सिंह	१४०९ १४०९
२४। सुङ्गुं	१४०९ १४०९
२५। वीधर	१४०९ १४०९
२६। सुनिम्का	१४०९ १४०९
२७। सुदेका	१४०९ १४०९
२८। सुनिम्का वा लडा राजा	१४०९ १४०९
२९। सुपानका वा नदाधरसिंह	१४०९ १४०९
३०। सुङ्गुं वा बटसिंह	१४०९ १४०९
३१। सुतानका वा तिरसिंह	१४०९ १४०९
३२। सुङ्गुं वा प्रमथसिंह	१४०९ १४०९
३३। सुसामका वा राजेन्द्रसिंह	१४०९ १४०९

३४। सुङ्गुं भोका वा लकीसिंह	१४०९ ई०से १४०९
३५। सुनिम्का वा भोरीनाथसिंह	१४०९ १४०९
३६। सुनिम्का वा कमलेश्वरसिंह	१४०९ १४०९
३७। सुनिम्का वा अष्टकाल सिंह	१४०९ १४०९
३८। पुरन्दर सिंह	१४०९ १४०९
३९। वीधर सिंह	१४०९ १४०९
(ब्रह्मदेवीयका शासन)	१४०९ १४०९
(इटोम-पथिकार)	१४०९ १४०९
पुरन्दर सिंह (धरत चासाममें)	१४०९ १४०९

उपरोक्त राजावोंमें जिनके समय विशेष-विशेष घटना हुयीं, अति संक्षेपमें उनको बात लिखी है—
 ४ये नृपति सुखांका चासामके राजावोंको हरा समग्र ब्रह्मपुत्र उपत्यकाके अधीश्वर बने। कामताके राजाने युद्ध की भीषणतासे घबरा अपनी कन्या रजनी चाहोमराजको ब्याह दी थी। ५म राजा त्वाभो-खामतिको अमाल्योंने मारवा डाला था। खामतिको छोटा रामो हाबुङ्ग पलायनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुदांका पड़ा। बुड़ा गौहार्देने यह समाचार पा सुदांका बालकको बोसाया और १३६८ ई०को सिंहासनपर बैठाया। ब्राह्मणके घर लालन-पालन होनेसे लोग प्रायः उन्हें 'ब्रह्मराज' कहते थे। उन्होंने धोलामें एक नगर बनाया। किन्तु पीछे अपनी राजधानी दिङ्गि नदीके समीप चारगुयाको ले गये थे। उन्हींके समय सबसे पहले चाहोममें ब्राह्म-णोंका प्रभाव फैला। राजाने अपने पालनेवाले ब्राह्मण और उसके पुत्रादिको मार ना अच्छे-अच्छे पर्दापर प्रतिष्ठित किया था। १४०० ई०को राजा सुङ्गुं चारगुयामें बड़ी धूमधामसे गद्दीपर बैठे। ब्राह्मणोंने राजाका नाम 'खर्गनारायण' रख दिया था। दिङ्गिमें अपनी राजधानी बकटा बनाने और कितने ही चाहोम बसानेसे अधिकतर लोग उन्हें 'दिङ्गिद्रिया' कहते रहे। अतःपर चाहोमराज खर्गदेव नामसे भी ख्यात हुए। १५२७ ई०को मुयनमान् भी चासामपर चढ़े थे। किन्तु चाहोमने उन्हें हराया और ४० घोड़ों तथा २०६४० तक तोपोंकी सेना। १५२१ ई०को सेमाईमें मुसलमानोंने पुनः युद्ध हुआ। मुसलमान-सेनापति अपने लड़ाऊ जोड़ू भाग गये थे। १५३२ ई०को मुयनमानोंने फिर बड़े समारोहमें चासाम पर किया। कितने ही दिन ममर होने बाद

१५३२ ई०की जो जनयुद्ध हुआ, उसमें शाहोमीने धूम-धाममें विजय पाया था। इस विजयके उपलक्ष्यमें एक नदीपर शाहोम-मितापतिने एक मन्दिर और महाराज बनवाया। १५३८ की मुकुन्देनुमुने अपने पिता शाहोमराज सुहुंमुंको मरवा डाला था। उक्त मृत्युके समय शाहोमीने 'तापोमिन्ना' वा पट्टि संवत्-सरके बटने हिन्दुओंका गण बनाया और गङ्गादेयके सहारे देवायमागका प्रभाव बढ़ाया। अपने पिताको मार मुकुन्देनुं राजा बने थे। उन्होंने अपनी राजधानी गढ़गाँवमें प्रतिष्ठित की। १५६२ ई०की टंकेरीराजने भी बढ़ाये की थी। मुराभगके युद्धमें शाहोमीने उन्हें भगाया और हाथियों तथा हथियारोंको लूट लिया। मत् १६१५ ई०का मुसलमानोंने कीचनरेग गनितनारायणको परास्त किया और उन्होंने चाकर शाहोमन्टपति प्रतापसिंहके भिकट आग्रह लिया। इसपर मुसलमानोंने शाहोम राज्यपर आक्रमण मारा था। भरनोमें जो युद्ध हुआ, उसमें पहली तो मुसल-मानोंने विजय पाया; किन्तु पीछे पराजय हाथ लगी। १६१० ई०की प्रतापसिंह हाजोकी और चामे बड़े थे। उन्होंने मुसलमानोंपर आक्रमणकर पाण्डु जीता। किन्तु हाजोका आक्रमण सफल न हुआ, और शाहो-मीको पीछे हटना पड़ा था। १६१८ ई०की मुसल-मानोंने धर्मनारायणको मद्रापुरके दक्षिण किनारे घेर लिया। शाहोमीने यहाँ पट्टेव मुसलमानोंको हराया था। १६१५ ई०की भरली नदीकी लड़ायोंमें भी शाहोम जीते। १६२८ ई०को पल्लतः मुसलमानके साथ मन्नि हुये और मद्रापुरके उत्तर किनारे बड़-नदी और दक्षिण किनारे चतुरारपत्नी मुसलमानों और शाहोमीके राज्यकी सीमा ठहरा। १६५८ ई०की शाहोमीने कोषोंकी भी दो बार सद्योग-नदीके वाम पक्षे मारा था। कहते, कि उस समय शाहोमीने टाके तक लूट-मार मचायी। १६६२ ई०की मीर-जुमना शाहोम राज्यपर चढ़े थे। शाहोम जोगोगोफाका क्षिमा छोड़ शीघाट और पाण्डुको भाग गये। इसी क्रवरीको मुसलमानोंने गोहाटी नगर लीना था। पल्लको गिमनागढ़का क्षिमा भी

शाहोमीने छोड़ दिया। कोसियावरके युद्धमें शाहो-मीके तीन सौ लहाज् मुसलमानोंके हाथ मरी थे। १६६२ ई०की मन्नि हुये और मीर-जुमनाकी फौज बहान्न वापस गयो। परन्तु पल्लानो चामा, कोष-गिरा, सन्देह, बरसिंह, मया, इदिवा, चहानी वगैरे स्थानोंमें इरज्य है। प्राञ्जिक (सं० पञ्च०) प्राञ्जिक स्थित, पञ्चम् । १ विकल्प। गक। २ प्रय। मयास। का। प्राञ्ज (सं० को०) पञ्चां समूहः, पञ्च। १ दिन-समूह, महारका ज्योरा। (वि०) २ दिनमें कर्तव्य, महारमें होनेवाला। प्राञ्जिक (सं० वि०) प्राञ्जिक पञ्चा निर्वृत्तं साध्यं वा उच्यते। १ दिनमें उत्पन्न, महारका पैदा। २ दिन-साध्य, महारमें हो जानेवाला, रोजाना। ३ सात्विक हिन्दुओंका दिनकर्तव्य कार्य सकल। धृतिमें इस तरह लिया है,—प्राञ्जसमूहमें जाग ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं नवग्रहके अरपपूर्वक युद्धको प्रणाम करे। फिर प्राजाकी ब्रह्मरूप भावना कर दिनके कर्तव्य धर्मकर्म और अर्थोपार्जनकी धिन्ता लगाना चाहिये। उसके अनन्तर मन्थाने छठ रात्रिवास छोड़ पृथिवीको नमस्कार कर और दक्षिण चरम भूमिपर रथ कर्कोटकनाग, दमयन्ती, मन, अश्रुपर्ण तथा कांतवीर्यार्जन राजाका अरण कर सप्तः एवं सुष धो दो बार पाचमन लेना उचित है। फिर गैहृत कोष वा दक्षिण दिक् मलमूत्र छोड़ और जनमृत्ति-कासे गोच एवं दो बार पाचमन कर हरिअरण-पूर्वक दिनको सूर्य तथा रात्रिको अश्रु-तारा देवे। सूर्य और अश्रुताराके पमावमें अग्निहा दग्गन विहित है। पीछे दन्तधावन करे। दन्तकाष्ठ न मिलने वा निविह दिन पढ़नेमें दादग गण्डूय जल वा पत्र द्वारा सुप्त गोध दो बार पाचमन करना चाहिये। उसके बाद मातःघान, तिलक, अम्बरा, तर्पण कर सूर्योदय पर्यन्त गायत्री जपे। छात्र कर्तव्यमें पदमर्त्य होनेमें आर्द्रवरा द्वारा मात्र मात्रेण-कर मन्त्रदानपूर्वक अश्रुतोषणमादि करे। द्वितीय यामार्कमें वेदविद्यादिका अध्ययन और मन्त्रिधृ तथा पुष्यादिका आहरण होता है। तृतीय यामार्कमें

गुप्त, देवता, धार्मिक, और कुटुम्ब भरण्याय ईश्वर-
की उपासना करते हैं। चतुर्थ यामार्धमें मध्याह्न-
स्नान किया जाता है। उसके बाद स्नानके वस्त्र
और हस्त भिन्न दूसरी चौजमे गात्र पोंछ तिलक और
तर्पण करना उचित है। फिर अष्टम मुहूर्तमें मध्याह्न-
सन्ध्या समापन, ब्रह्मयज्ञ और देवपूजाकर यथा-
काल पादोदक तथा नैवेद्य ले। पश्चम यामार्धमें
वलि, वैश्वदेव, काम्यवलि कर्म और वामदेवगान करना
चाहिये। गानमें अममर्थ होनेमें तीन बार वामदेवका
मन्त्र पढ़ते हैं। पार्श्व आहादिके दिन पार्श्व आहके
बाद वलिद्वैश्वदेव करना उचित है। वलिकर्मके बाद
अतिथि लाभार्थ भोजन न कर राह देखना चाहिये।
अतिथिभोजन करानेसकनेसे भिक्षा देना योग्य है।
अतिथि न मिलनेसे ब्राह्मणको दान देते हैं। ब्राह्मण-
को कुछ दे न सकनेपर अन्न वा जलमें किञ्चित्
अन्न छोड़े। उसके बाद नित्य आह करे। नित्य आह
करनेमें अममर्थ होनेसे वलि और तर्पणानुष्ठान द्वारा
ही पिष्टयज्ञ बन जाता है। उसके बाद गोघ्रास दान
और गोप्रणाम करे। फिर यथाविधि भोजन करते हैं।
पीछे स्नानान्तर न जा स्तिकाधर्षण द्वारा सुख एवं
हस्त परिष्कार कर दृष्टादिसे दन्तलग्न रसद्रव्य
निकाल जलगण्डरूपसे सुखका मध्यभाग प्रक्षालनपूर्वक
हाथपर धोते हैं। फिर भासनपर बैठ भूमिपर पद-
द्वय रख दो बार आचमन से तुलसीपत्रसे सुखगोधन
कर मन्त्रपाठपूर्वक दक्षिण हस्तसे जन देना चाहिये।
अन्नकी जोर्णताके निमित्त मन्त्रपाठपूर्वक वामहस्त
उदरपर फेर शतपद चलकर वामपाश किञ्चित्काल
वियाम करे। यष्ट और सप्तम यामार्धका कृत्य
इतिहास-पुराणादि श्रवण है। अष्टम यामार्धमें
लौकिकविस्तार, सायंसन्ध्योपासना और इष्टदेवताका
स्मरण आदि होता है। रात्रिको सन्ध्याके अनन्तर
इष्टदेवताका स्मरण, मन्त्रजप, विकालपाठ्यस्तव और
नारायणका स्मरण करना चाहिये। फिर भुक्त द्रव्यादि
पचनेपर पूर्ववत् वलिवैश्वदेव कर्मकर अतिथिको
अन्नादि दे भवश्य भरपीयोके माय साधंभर रात्रिके
मध्य अनतिष्ठत भावसे भोजन करे। अथ भोजन

न करते भी ताम्बूलादि खा लेना चाहिये। प्रथम
प्रहरके मध्य विद्याभ्यास करते हैं। उसके बाद
सोना चाहिये। परिष्कृत स्नानमें खुदापर सज्जा
लगा मस्तककी ओर एक जनपूर्ण कुम्भ रख रात्रिवास
पहन हाथ-पैर धो दो बार आचमन से पूर्व वा दक्षिण
गिरा हो पश्चानामका स्मरण कर द्विप्रहरके मध्य
श्रयन करते हैं। फिर दारोपगमन होता है।
दारोपगमनके अनन्तर एक सज्जापर दम्पती नर्त
सोते। सङ्गण देवो।

तन्त्रमें प्रतिदिनका कर्तव्य कर्म इस प्रकार लिखा
है,—ब्राह्मणमुहूर्तमें उठ भूतशक्ति तथा इष्टदेवताका
ध्यानादि कर गुरुका स्मरण रखते हुये पञ्चभूतात्मक
पञ्चोपचार द्वारा गुरुकी मानस पूजा करना चाहिये।
उसके अनन्तर सद्गुरुका ध्यान लगा कुलहस्तकी
प्रणाम करे। फिर पादुका और सम्प्रदायक्रमसे
गुरुका मन्त्र पठोत्तर शत वा षष्टोत्तर सङ्ख्य जप,
गुरुस्तोत्र-कवच पढ़ते हुये गुरुप्रणाम, सद्गुरु-
नमस्कार और ब्राह्मणादि प्रणाम करना चाहिये।
पीछे श्रीगुरुध्यान, पूजा, स्तव, कवच और गीतापाठ
करे। उसके बाद कुण्डलिनो ध्यान धर, कुण्डलिनो
स्तोत्रकवच पढ़ गोरगणेश मन्त्र जप और अजपा
मन्त्र समर्पण एवं अजपा जप कर इस स्मरण
और 'त्रैलोक्य चेतन्यमयाधिदेव' इत्यादि प्रार्थना करना
चाहिये। पीछे उठ भूमिको प्रणामकर वामपद
पुरःसर शङ्खसे निकल मूलपुरीघोतुसंग एवं दन्त-
धावनकर सुख, नामा तथा नासारभूद्वय धो डाले।
फिर अत्युक्त विधानसे गौघादि और देवशुद्धिकर
रात्रिवास उत्तर अन्य वस्त्र पहन मन्त्रस्नान कर देश-
शङ्खमें पङ्क सन्मार्जनोय लेपनादि लगा देवतानिर्मोक्ष
निकाल पूर्वदिनावगिष्ट पत्रादिसे अन्धर्चनाकर क्रम-
स्तोत्र पढ़े। उसके बाद यद्योक्त विधानसे नया तर्पण
करना उचित है। फिर वस्त्र बदल यद्योपवेश धो
तिलक त्रिपुण्ड्रकादि लगाये। पीछे वैदिक सन्ध्याकर
तान्त्रिको सन्ध्या करना चाहिये। फिर यद्योक्तकारण
पत्रादि शोध इष्टदेवताको
द्वारापदतर्पणमें अचरान विष्णु

शाब्दिकतय यत् शाब्दिकलक्ष्यप्रदीपम् अन्तं शीत
 तन्मन्तारम् तन्निष्क टिप्पण्य विस्तृष्टयमे वर्धित
 है । टिप्पण्य शब्दः । (क्री०) १ धार्मिक संस्कार विधिय ।
 यद्द प्रतिदिन नियत समय पर किया जाता है । ४ एक
 दिनका कार्य, रोजाना काम । ५ सुतामक मासभाष्यके
 पदांगको व्याख्या । यह एक दिनमें होती है । ६ एक
 दिनमें पञ्चायकके नियत पञ्चयन किया हुआ पाठ,
 रोजाना मन्त्र । ७ एक दिन वेतनमें क्रीत दासादि, एक
 रोजकी मजदूरीमें सुर्गाटा हुआ नौकर वगैरह । ८ स-
 मन्तामें एक दिन व्याप्त खर प्रभृति, एकांतर, रोज-रोज
 खानेवाला हृत्पार । ९ एक दिनका भोजन, रोजाना
 खानाक ।

शाब्दिकाचार (म० पु०) दैनिक व्यवहार, रोजाना
 दस्तूर । टिप्पण्य शब्दः ।

शाब्दिय (म० पु०) मौखिके गोवापत्य ।

शाब्दित (म० ति०) शाब्दित, छद्ममी, चोट छाये हुआ ।

शाब्दितमेवञ्च (ये० ति०) शाब्दितकी पञ्चा करनेवाला
 पदाय, जो चीज लुप्तकीको पाराम कर देती हो ।

शाब्दाट (सं० पु०) शाब्दाट-स्यट् । पानन्द, गादी,
 सुमी ।

शाब्दाटक, शाब्दिक्य शब्दः ।

शाब्दाटपुष (म० ति०) पानन्दप्रद, सुमी वषु-
 शनेवाला ।

शाब्दादन (म० क्री०) शाब्दाट-स्यट् । १ पानन्द-
 सम्पादन, सुमीकी वसुमिग । (ति०) कर्त्तरि स्यट् ।

२ पानन्द-सम्पाटक, सुमी वसु शनेवाला । करये
 स्यट् । ३ पानन्दसाधन, जिनमें मज्जा मिले ।

शाब्दादि (म० पु०) यन्त्रके एक पुत्र ।

शाब्दादित (म० ति०) शाब्दाट-पिष्-इट्, पिष्
 भोयः । पानन्दसुह, ममकर, सुग होनेवाला ।

शाब्दादिन् (म० ति०) शाब्दाट-पिनि । १ पानन्द-
 सुह, ममकर, सुग । २ पानन्दकारी, सुग करने-
 वाला ।

शाब्द (म० ति०) शाब्दयति, शाब्द-इ-क । शाब्दान-
 कारी, पुकारने या बोलानेवाला ।

शाब्दय (म० ति०) शाब्दयते वामसीपमानयनाय-
 सुषेः श्वाभ्यन्तेन, वाहुलजात् करये मः । १ नाम,
 इयम् । पुकारनेमें काम खानेमें नामको शाब्दय करते
 हैं । २ मयादि प्राप्ते द्वारा पदपूर्वके क्रीडा विधिय,
 मनुने इमें पटादय विषादके मध्य गिना है ।

शाब्दयत् (म० ति०) शाब्दानकारी, पुकारनेवाला,
 जो मलकार रहता हो ।

शाब्दयन (म० क्री०) शाब्दयं करोत्यनेन, शाब्दय-
 पिष् करये स्यट् । नामादेश-साधन शब्दविधिय ।

शाब्दयितश्च (म० चि०) शाब्दयं करोति, शाब्दय-विष्
 कर्मविषयत्व्य । शाब्दयनीय, पुकारा या बुनाया जानेवाला ।

शाब्दर (म० ति०) शाब्दरति, शाब्द-पष् । १ कुटिम,
 टेढ़ा । २ उमीनरदेशोत्पन्न । (पु०) ३ उमीनरका दुर्ग ।

शाब्दरक (म० ति०) शाब्दर सार्थकन् । १ निन्द-
 नीय, द्विकारत किये जाने काविन । (पु०) २ पित-
 रीको विष्टदान दे स्यं छये शाब्दानेवाला मौख ब्यक्ति ।

शाब्दा (म० क्री०) शाब्द-पङ्-टाप् । १ शाब्दान,
 पुकार । करये पट् । २ संज्ञा, इयम्, नाम ।

शाब्दान (म० क्री०) शाब्द-स्यट् । १ निमन्त्रण,
 तलबी, पुकार, बुनाया । शाब्दयते येन, करये स्यट् ।

२ संज्ञा, इयम्, नाम । ३ शाब्दासाधन राजकीय पत्र,
 तलवनामा, समन, वारण्ट । भाये स्यट् । ४ विचारमें
 विषाद-निर्णयके निमित्त राजाकार्यके बुनाया ।

५ देवताका निमन्त्रण । ६ परिपद्य, मलकार ।

शाब्दाय (सं० पु०) संज्ञा, नाम, तलवनामा, पुकार ।

शाब्दायक (म० ति०) शाब्द-स्यु-स्युक् । शाब्दान-
 कारक, बोलानेवाला । (पु०) २ दूत, हरकारा ।

शाब्दायक (म० ति०) शाब्द-स्यु-स्युक् । १ कुटिम, टेढ़ा ।
 (पु०) २ वहुष्यं २ लयायलुपटका एक संस्कार ।

शाब्दति (म० क्री०) शाब्द-स्यु-स्युक् । १ नीटिष्य । (पु०)
 २ लाह्यो नगरके अधियति । (शब्द-मल ३२० १११२०)

